

મળવાનું ઠેકાણું

શ્રી. અ હા શ્રવે સ્થાનકવાસી

જેન શા ઓ હા ર સ મિ તિ

ઝીન દોજ પામે, રાજકોટ

*

પ્રથમ આવૃત્તિ : પ્રત ૧૦૦૦

વીર સવત : ૨૪૮૩

વિક્રમ સવત : ૨૦૧૩

ઈસ્વી સન ૧૯૫૭

†

સુદ્રક

મણિલાલ છગનલાલ શાહ

ધી નવપ્રભાત પ્રિન્ટીંગ પ્રેસ

ધીકાટા રોડ : અમદાવાદ

રૂ. ૧૦,૦૦૦] આપનાર આદિ મુશ્કેલી
સમિતિના પ્રમુખ દાનવીર શેઠશી,



ગેઠ શાંતિલાલ મગજદારસાહેબ
અમદાવાદ.

શ્રી-વર્ધમાન-મમલુ-સઘના આચાર્યશ્રી

પૂજ્ય આત્મારામજી મહારાજશ્રીએ

આપેલ

સમ્મતિપત્ર

•

ઉપસંત

પૂજ્ય શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ-રચિત

બીજા સુત્રોની ટીકા માટે તેઓજીના મતબો

•

તેમજ

અન્ય મહાત્માઓ મહાસતીજીઓ, અલ્પતન-પદ્ધતિવાળા કેલેજના પ્રોફેસરો

તેમજ

શાસ્ત્રીશ્રી આનંદકાના અભિપ્રાયો

૪ શ્રીમ લોજ પાસે
જરૂરીયા કુવાશક
સાબકેદ : સૌરાષ્ટ્ર

}

શ્રી અખિલ વ્યાસ ત્રવે. સ્થા. હૈન
શાસ્ત્રોચ્ચાર સમિતિ

जैनागमवेत्ता जैनधर्मदिवाकर उपाध्याय श्री १००८ श्री आत्मारामजी
महाराज तथा न्याय व्याकरणके ज्ञाता परम पण्डित मुनिश्री १००७
श्रीहेमचन्द्रजी महाराज, इन दोनों महात्माओका दिया हुआ
श्री उपासकदशाङ्ग सूत्रका प्रमाण पत्र निम्न प्रकार है—

सम्मइवत्तं

सिरि-वीरनिव्वाण-मंवच्छर २४५८ आसोट्ठ

(पुण्णमासी) १५ सुक्कारो लुहियाणाओ ।

मए सुणिहेमचदेण य पडियरयणमुणिसिरि-घासीलालविणिम्मिया सिरिउवा-
सगमुत्तस्स अगारधम्मसजीवणीनामिया वित्ती पंडियमूलचन्दवासाओ अज्जोवंत
सुया, समीईण, इय वित्ती जहाणाम तहा गुणेवि धारेइ, मच्चं अगाराण तु इमा
जीवण (सजमजीवण) दाई एव अत्थि । वित्तिरुत्तुणा मूलमुत्तस्स भावो उज्जु-
सेलीओ फुडीकओ, अहय उवासयस्स सामणविसेसयम्मो, णयसियवायवाओ,
कम्मपुरिसहुवाओ, समणोवासयस्स यम्मदहया य, इच्चाइविसया अस्सि फुडरीइओ
वणिण्या, जेण कत्तणो पडिहाए सुटुप्पयारेण परिचओ होइ, तह इइहासदिट्ठिओवि
सिरिसमणस्स भगवओ महावीरस्स समए वट्टमाण-भरहवासस्स य कत्तुणा विसय-
प्पयारेण चित्त चित्तिय, पुणो सकयपाढीणं, वट्टमाणकाले हिन्दीणामियाए भासाए
भासीण य परमोवयारो कडो, इमेण कत्तुणो अरिहत्ता दीसइ, कत्तुणो एयं कज्ज
परमप्पसंसणिज्जमत्थि । पत्तेयजणस्स मज्झत्यभावओ अस्स सुत्तस्स अवलोयणमईव
लाहप्ययं, अवि उ सावयस्स तु (उ) इमं सत्थं सव्वस्समेव अत्थि, अओ कत्तुणो
अणेगकोडीसो धन्नवाओ अत्थि, जेहिं अच्चतपरिस्समेण जइणजणतोवरिअसीमो-
वयारो कडो, अह य सावयस्स वारस नियमा उ पत्तेयजणस्स पढणिज्जा अत्थि,
जेसिं पहावओ वा गहणाओ आयो निव्वाणाहिगारी भवइ, तहा भवियव्वयावाओ
पुरिसकारपरकमवाओ य अयस्समेव दंसणिज्जो, किंवहुणा इमीए वित्तीए पत्तेय-
विसयस्स फुडसहेहिं वण्णं कय, जइ अनोवि एवं अम्हाण पसुत्तप्पाए समाजे विज्जं
भवेज्जा तथा नाणस्स चरित्तस्स तहा सघस्स य खिप्पं उदयो भविस्सइ, एवं हं मन्ने॥

भवईओ—

उवज्झाय--जइणमुणि-आयाराम, पंचनईओ,

सम्मतिपत्र

(मापान्तर)

श्री चोरनिर्वाण सं० २४५८ आसोत्र

शुक्ला (पूर्णिमा) १५ शुक्लवार छधियाना

मैंने और पंडितमुनि हेमचन्द्रजीने पंडितरत्नमुनिभी घासीलाल-
जीकी रबी हुई उपासकदशांग सूत्रकी गृहस्थधर्मसजीवनी नामक गीका
पंडित मूलचन्द्रजी व्याससे आशोपान्त सुनी है। यह वृत्ति यथानाम
तथागुणवाली-अच्छी बनी-है। सब यह गृहस्थोंके तो जीवनदात्री-
संयमरूप जीवनको देनवाली-ही है। गीकाकारने मूलसूत्र के भाषको
सरल रीतिसे वर्णन किया है, तथा आचकका सामान्य धर्म क्या है ?
और विशेष धर्म क्या है ? हमका खुलासा इस गीकामें अच्छे ढंगसे
बतलाया है। स्यादादका स्वरूप कर्म-पुरुषार्थ-वाद और आचकको
धर्मके अन्दर दड़ता किस प्रकार रखना, इत्यादि बिषयोंका निरूपण
इसमें मली-मांति किया है। इससे गीकाकारकी प्रतिमा खूब झलकती
है। ऐतिहासिक दृष्टिसे भ्रमण भगवान महावीरके समय जैनधर्म
किस जाहोजहल्ली पर था ? और वर्तमान समय जैनधर्म किस
स्थितिमें पहुंचा ? इस बिषयका तो ठीक चित्र ही चित्रित कर दिया
है। फिर संस्कृत जाननेवालोंको तथा हिन्दीभाषाके जाननेवालोंका
भी पुग लाभ होगा, क्योंकि गीका संस्कृत है उसकी सरल हिन्दी
कर दी गई है। हमके पढ़नेसे कर्ताकी योग्यताका पता लगता है कि
वृत्तिकारने समझानेका कैसा अच्छा प्रयत्न किया है। गीकाकारका
यह कार्य परम प्रशंसनीय है। इस सूत्रको मध्यस्थ भाषसे पढ़ने
वालोंको परम लाभकी प्राप्ति होगी। क्या कहें आचकों (गृहस्थों) का
तो यह सूत्र सर्वस्व ही है, अतः गीकाकारको कोटिदाः धन्यवाद दिया
जाता है, जिन्होंने अत्यन्त परिश्रमसे जैनजनताके ऊपर असीम
उपकार किया है। इसमें आचकके बारह नियम प्रत्येक पुरुषके पढ़ने
योग्य हैं, जिनके प्रभावसे अथवा यथायोग्य ग्रहण करनेसे आत्मा
मोक्षकर अधिकारी होता है, तथा अधिकृत्यतावाद और पुरुषकार

पराक्रमवाद हरएकको अवश्य देखना चाहिये । कहां तक कहें इस टीकामें प्रत्येक विषय सम्यक् प्रकारसे बताये गये हैं । हमारी सुसंप्राय (सोई हुईसी) समाजमें अगर आप जैसे योग्य विद्वान् फिर भी कोई होंगे तो ज्ञानचारित्र तथा श्रीसधका शीघ्र उदय होगा, ऐसा मैं मानता हूँ—

आपका

उपाध्याय जैनमुनि आत्माराम पंजाबी.



इसी प्रकार लाहोरमें विराजते हुए पण्डितवर्य विद्वान् मुनिश्री १००८

श्री भागचन्दजी महाराज तथा ५० मुनिश्री त्रिलोकचन्दजी

महाराजके दिये हुए, श्री उपासकदशाङ्ग सूत्रके

प्रमाणपत्रका हिन्दी सारांश निम्न प्रकार है—

श्री श्री स्वामी घासीलालजी महाराज कृत श्री उपासकदशाङ्ग सूत्रकी सस्कृत टीका व भाषाका अवलोकन किया, यह टीका अतिरमणीय व मनोरञ्जक है, इसे अपने बड़े परिश्रम व पुरुषार्थसे तय्यार किया है सो आप धन्यवादके पात्र हैं । आप जैसे व्यक्ति-योंकी समाजमें पूर्ण आवश्यकता है । आपकी इस लेखनीसे समाजके विद्वान् साधुवर्ग पढ़ कर पूर्ण लाभ उठावेंगे, टीकाके पढ़नेसे हमको अत्यानन्द हुआ, और मनमें ऐसे विचार उत्पन्न हुए कि हमारी समाजमें भी ऐसे २ सुयोग्य रत्न उत्पन्न होने लगे—यह एक हमारे लिये बड़े गौरवकी बात है ।

वि सं १९८९ मा आश्विन
कृष्णा १३ वार भौम लाहोर.



श्री ज्ञातापरमकथा मूत्र की 'अनगारधर्माश्रुतवर्पिणी' टीका पर
 जैनदिवाकर साहित्यरत्न जैनागमरत्नाकर परमपूज्य भद्रेश
 जैनाचार्य श्री आत्मारामजी महाराजका

सम्मतिपत्र

लुधियाना, ता ४-८-५१

मैंने आचार्यश्री घासीलाखजी म द्वारा निर्मित 'अनगार-धर्माश्रुत-वर्पिणी' टीका पाठे श्री ज्ञातापरमकथा मूत्रका मुनिश्री रत्नचन्द्रजीसे आधोपान्त भक्षण किया।

यह निःसन्देह कहना पड़ता है कि यह टीका आचार्यश्री घासीलाखजी म ने बड़े परिश्रम से लिखी है। इसमें मूल्यक शब्दका सामानिक अर्थ और कठिन स्थलों पर सार-पूर्ण विवरण आदि कई एक विशेषतायें हैं। मूल स्थलोंको सरल बनानेमें काफी प्रयत्न किया गया है, इससे साधारण तथा असाधारण सभी संस्कृत पाठकोंको लाभ होगा ऐसा मेरा विचार है।

मैं स्वाध्यायमेमी सज्जनों से यह आशा करूंगा कि वे हृदिकारके परिश्रम को सफल बना कर छात्रमें ही गई अनमोल शिक्षाओं से अपने जीवनको शिक्षित करते हुए परमसाध्य मोक्षको प्राप्त करेंगे।

श्रीमानजी जयवीर

आपकी सेवामें पोष्ट द्वारा पुस्तक भेज रहे हैं और इस पर आचार्यश्रीजी की ओ सम्मति है वह इस पत्रके माध्यम से भेज रहे हैं पहुंचने पर समाचार देंगे।

श्री आचार्यश्री आत्मारामजी म ठामे ६ सुखशान्तिसे विराजित हैं। पूज्य श्री घासीलाखजी म सा ठाने ४ को हमारी ओरसे पन्धना अर्पणकर सुखवाता पूछें।

पूज्य श्री घासीलाखजी म श्री का लिखा हुआ (विपाकमूत्र) महाराजश्रीजी देखना चाहते हैं इसलिये १ कापी आप भेजनेकी कृपा करें; फिर आपको वापिस भेज देंगे। आपके पास नहीं हो तो बर्दास मिछे बर्दास १ कापी जरूर भिजवाने का कष्ट करे, उत्तर जल्द देनेकी कृपा करे। योग्य सेवा लिखते रहें।

लुधियाना ता ४-८-५१

निवृद्ध

प्यारेमाल जैन

जैनागमवारिधि-जैनधर्मदिवाकर-उपाध्याय-पण्डित-मुनि
श्रीआत्मारामजी महाराज (पंजाब) का आचाराङ्गसूत्र की
आचारचिन्तामणि टीका पर

सम्मतिपत्र

मैंने पूज्य आचार्यवर्य श्री वासीलालजी (महाराज)की बनाई हुई श्रीमद् आचाराङ्गसूत्रके प्रथम अध्ययन की आचारचिन्तामणि टीका सम्पूर्ण उपयोगपूर्वक सुनी।

यह टीका-न्याय सिद्धान्त से युक्त, व्याकरण के नियम से निबद्ध है। तथा इसमें प्रसङ्ग २ पर क्रमसे अन्य सिद्धान्त का संग्रह भी उचित रूप से मालूम होता है।

टीकाकारने अन्य सभी विषय सम्यक् प्रकार से स्पष्ट किये हैं, तथा प्रौढ विषयोंका विशेषरूप से संस्कृत भाषा में स्पष्टतापूर्वक प्रतिपादन अधिक मनोरञ्जक है, एतदर्थ आचार्य महोदय धन्यवादके पात्र हैं।

मैं आशा करता हू कि-जिज्ञासु महोदय इसका भलीभाँति पठन-द्वारा जैनागम सिद्धान्तरूप अमृत पी-पी कर मन को हर्षित करेंगे, और इसके मनन से दक्ष जन चार अनुयोगों का स्वरूपज्ञान पावेंगे। तथा आचार्यवर्य इसी प्रकार दूसरे भी जैनागमोंके विशद विवेचन द्वारा श्वेताम्बर-स्थानकवासी समाज पर महान उपकार कर यशस्वी बनेंगे।

वि. सं. २००२

मृगसर सुदि १

}

जैनमुनि-उपाध्याय आत्माराम
लुधियाना (पंजाब) शुभमस्तु ॥

*

बीकानेरवाला समाजभूषण शास्त्रज्ञ भेरूदानजी शेठियानो अभिप्राय-

*

आप जो शास्त्रका कार्य कर रहे हैं यह बड़ा उपकारका कार्य है। इससे जैन जनताको काफी लाभ पहुँचेगा।

(ता. २८-३-५६ना पत्रमायी)

॥ श्रीः ॥

जैनागमचारिणि-जैनधर्मदिवाकर-जैनाचार्य-पूज्य-श्री आत्मारामजी-
महारामानी पञ्चनद-(पञ्चाव) स्वानामनुत्तरोपपातिकसूत्राणा-
मर्थबोधिनीनामफटीकायामिदम्-

सम्मतिपत्रम्

आचार्यवर्यैः श्री चासीलालमुनिभिः सङ्गृहिता अनुत्तरोपपातिकसूत्राणामर्थ-
बोधिनीनाम्नी संस्कृतवृत्तिस्ययोगपूर्वकं सकलाऽपि स्पष्टिष्यन्तेनाऽभावि मया, इयं
दि वृत्तिर्गुणिवरस्य वैदुष्यं प्रकटयति । श्रीमद्भिर्मुनिभिः सूत्राणामर्थान् स्पष्टयितुं
य प्रयत्नो व्यग्रायि तदर्थमनेकशो अन्यभाषानर्हन्ति त । यथा वेयं वृत्ति-
सरला सुबोधिनी च तथा सारवत्यपि । अस्याः स्वाध्यायेन निर्वाणपदमभीप्सु
मिर्निर्वाणपदमनुसरद्भिर्ज्ञान-वर्धन-चारित्र्येषु प्रयतमानैर्मुनिभिः भावकैश्च ज्ञान-
वर्धन-चारित्र्याणि सम्यक् सम्प्राप्याऽन्येऽप्यात्मानस्वप्न प्रवर्तयिष्यन्ते ।

आश्वासे श्रीमद्भक्तुर्भिर्मुनिवरो गीर्वाणवाणीशुपां विदुषां मनस्तोपाय
जैनागमसूत्राणां सारावबोधाय च अन्येषामपि जैनागमानामित्यं सरलाः
सुस्पष्टाश्च वृत्तीर्दिशाय तांस्तान् प्रप्रम्यान् देवगिरा सुस्पष्टयिष्यति ।

अन्ते च “ मुनिवरस्य परिभय सकल्यितुं सरलां सुबोधिनीं चेमां
मूत्रवृत्तिं स्वाध्यायेन सनाययिष्यन्त्यवश्यं मुयोग्या ईमनिमाः पाठकाः । ”
इत्याशास्ते—

बिह्रमाब्द २००२
भास्वकृष्णा प्रतिपदा
लुधियाना

उपाध्याय आत्मारामो जैनमुनिः

(श्री दशवैकालिकमूत्रका सम्मतिपत्र)

॥ श्री वीरगौतमाय नमः ॥

सम्मतिपत्रम् ।

मए पडियसुणि-हेमचंदेण य पंडिय-मूलचन्दवासवारा पत्ता पंडिय-रयण-मुणि-घासीलाछेण विरइया सकय-हिंदी-भाषाहिं जुत्ता सिरि-दसवेयालिय-नामसुत्तस्स आयारमणिमजूसा वित्ती अवलो-इया, इमा मणोहरा अत्थि, एत्थ सद्धान अइसयजुत्तो अत्थो वण्णिओ, विउजणाण पाययजणाण य परमोवयारिया इमा वित्ती दीसइ । आयारविसए वित्तीकत्तारेण अइसयपुव्व उल्लेहो कडो, तहा अहिंसाए सखुव जे जहा-तहा न जाणंनि तेसिं इमाए वित्तीए परमलाहो भविस्सइ, कत्तुणा पत्तेयविसयाणं फुडरूवेण वण्णणं कड, तहा मुणिणो अरहत्ता इमाए वित्तीए अवलोयणाओ अइसय जुत्ता सिज्झइ । सकयछाया सुत्तपयाण पयच्छेओ य सुबोहदायगो अत्थि, पत्तेयजिण्णासुणो इमा वित्ती दट्ठवा । अम्हाण समाजे एरिसविज्ज-मुणिरयणाणं सम्भावो समाजस्स अहोभगं अत्थि, किं ? उत्तविज्जमुणिरयणाणं कारणाओ जो अम्हाणं समाजो सुत्तप्पाओ, अम्हकेर साहिच्च च लुत्तप्पाय अत्थि तेसिं पुणोवि उदओ भविस्सइ जस्स कारणाओ भविष्सा मोक्खस्स जोगो भवित्ता पुणो निव्वाणं पाविहिइ अबोहं आयारमणिमंजूसाए कत्तुणो पुणो पुणो धन्नवायं देमि- ॥

वि. सं. १९९० फाल्गुन-

शुक्लत्रयोदशी मङ्गले

(अलवरस्टेट)

इइ-

उवज्जाय-जइण-मुणी, आयारामो

(पचनईओ)

ऐसे ही :-

मध्यभारत सैलाना-निवासी श्रीमान् रतनलालजी डोसी श्रमणोपासक जैन लिखते हैं कि—

श्रीमान् की की हुई टीकावाला उपासकदशांग सेवक के दृष्टिगत हुआ, सेवक अभी उसका मनन कर रहा है यह ग्रन्थ सर्वाङ्ग-सुन्दर एवम् उच्च कोटि का उपकारक है ।

निरयाबलिकासूत्रका सम्मतिपत्र
 आगमचारिषि-सर्वतन्त्रस्वतंत्र जैनाचार्य पूज्यश्री
 आत्मारामजी महाराजकी तरफका आया हुआ
 सम्मतिपत्र

सुधियाना वा ११ नवम्बर ४८

श्रीयुत् गुलाबचन्दजी पानाचंदजी ! सादर जयजिनेन्द्र ॥

पत्र आपका मिला, निरयाबलिका विषय पूज्यश्रीका स्वास्थ्य ठीक न होनेसे उनका शिष्य पं श्री हेमचन्द्रजी महाराजने सम्मतिपत्र लिख दिया है आपको भेज रहे हैं । कृपया एक कोपी निरयाबलिका की और भेज दीजिये और कोई योग्य सेवा कार्य लिखते रहें ।।

भवदीय

हजूरमल्ल-चलवतराय जैन

॥ सम्मति ॥

(लेखक जैनमुनि पंडित श्री हेमचन्द्रजी महाराज)

सुन्दरबोधिनीटीकया समलङ्कृतं हिन्दी-गुर्जर भाषानुवादादमहिंसं च श्रीनिरयाबलिकासूत्रं मेधाविनामल्पमेधसां बोधकारकं भविष्यतीति सुदृढ मेजमिमत्तम्, संस्कृतटीकेय मरला सुषोषा सुललिता चान एव अन्वर्धनाम्नी चाप्यस्ति । सुविधादत्वात् सुगमत्वात् प्रत्येकदुर्बोधपद-व्याख्यायुतत्वाच्च टीकेषा संस्कृतसाधारणज्ञानवतामप्युपयोगिनी भाविनीत्यभिप्रेमि । हिन्दी-गुर्जरभाषानुवादाच्चपि पतदुभाषाविज्ञानां महीयसे लाभाय भवतामिति सम्यक् मेनाबधामि ।

जैनाचार्य-जैनधर्मदिवाकर-पूज्यश्री-धामीलालजी-महाराजानां परि भ्रमोऽयं प्रशंसनीयो धन्यवादाहौ च ते मुनिमत्तमाः । एवमेव श्री-समीरमल्लजी-श्री-कन्हैयालालजी-मुनिवरपण्ययोर्नियोजनकार्यमपि श्लाघ्यं, तावपि च मुनिवरौ धन्यवादाहौ स्तः ।

सुन्दरप्रस्तावभाषियानुक्रमविना समलङ्कृते सूत्ररत्नेऽस्मिन् यदि ग्रन्थकोपोऽपि दत्तः स्यात्सहिं वरतरं स्यात् । यतोऽस्यावश्यकतां सर्वेऽप्यन्वेषकविद्यांसोऽनुभवन्ति ।

पाठकाः सूत्रस्याप्यपनाध्यापनेन लेखकनियोजकमहोदयानां परि भ्रमं सफलपिष्यन्तीत्याशास्महे । इति ।

श्री उपासकदशाङ्ग सूत्र परत्वे जैन समाजना अग्रगण्य जैनधर्ममूषण
महान् विद्वान् संतोए तेमज विद्वान् श्रावकोए सम्मतिओ समपी
छे तेमना नामो नीचे प्रमाणे छे-

- (१) लुधियाना-संवत् १९८९, आश्विन पूर्णिमा का पत्र, श्रुतज्ञान के
मडार आगमरत्नाकर जैनधर्मदिवाकर श्री १०००८ श्री उपाध्याय श्री
आत्मारामजी महाराज, तथा न्यायव्याकरणवेत्ता श्री १०००७ तच्छिष्य
श्री मुनि हेमचन्द्रजी महाराज
- (२) लाहौर-वि० सं० १९८९ आश्विन वदि १३ का पत्र, पण्डितरत्न श्री
१००८ श्री भागचंदजी महाराज तथा तच्छिष्य पण्डितरत्न श्री १००७
श्री त्रिलोकचंदजी महाराज.
- (३) खिचन-से ता. ९-११-३६ का पत्र, क्रियापात्र स्थविर श्री १००८
श्री भारतरत्न श्री समरथमलजी महाराज
- (४) चालाचोर-ता १४-११-३६ का पत्र, परम प्रसिद्ध भारतरत्न श्री
१००८ श्री शतावधानी श्री रत्नचंदजी महाराज.
- (५) बम्बई-ता. १६-११-३६ का पत्र, प्रसिद्ध कवीन्द्र श्री १००८ श्री
कवि नानचंद्रजी महाराज.
- (६) आगरा-ता. १८-१२-३६, जगत् चल्म श्री १००८ जैनदिवाकर
श्री चौथमलजी महाराज, गुणवन्त गणीजी श्री १००७ श्री साहित्यप्रेमी
श्री प्यारचन्दजी महाराज.
- (७) हैद्राबाद-(दक्षिण) ता. २५-११-३६ का पत्र, स्थिवरपदभूषित
भाग्यवान् पुरुष श्री ताराचंदजी महाराज, तथा प्रसिद्धवक्ता श्री १००७
श्री सोभागमलजी महाराज.
- (८) जयपुर-ता. २७-११-३६ का पत्र, संप्रदाय के गौरववर्धक शांत-
स्वभावी श्री १००८ श्री पूज्य श्री खूबचन्दजी महाराज.
- (९) अम्बाला-ता. २९-११-३६ का पत्र, परमप्रतापी पंजाबकेशरी श्री
१००८ श्री पूज्य श्री काशीरामजी महाराज.

- (१०) सेलाना-ता २९-११-३६ का पत्र, शास्त्रोंके ज्ञाता श्रीमान्
रत्नसागरजी डेसी
- (११) मीचन-ता ९-११-३६ का पत्र, पंडितरत्न न्यायतीर्थ सुभाषक
श्रीयुक् माधवसागरजी

सादर जय जिनेन्द्र

आपका भेजा हुआ उपासकदर्शांग सूत्र तथा पत्र मिला यहाँ विरा-
जित प्रबर्तक वयोवृद्ध श्री १०८ श्री तारार्चदजी महाराज पण्डित श्री
किशानलालजी महाराज आदि ठाणा १४ सुख शांति में विराजमान हैं
आपके वहाँ विराजित जैनशास्त्राचार्य पूज्यपाद श्री १००८ श्री
घासीलालजी महाराज आदि ठाणा नभ से हमारी वन्दना अर्ज कर
सुख शांति पूछे, आपने उपासकदर्शांग सूत्र के विषय में यहाँ
विराजित मुनिवरों की सम्मति मंगाई उसके विषय में वक्ता
श्री मोभागमलजी महाराजने फरमाया है कि वर्तमानमें स्थानकवासी
समाजमें अनेकानेक विद्वान् मुनि महाराज मौजूद हैं मगर जैनशास्त्र
की इस रचनका साइस जैसा घासीलालजी महाराजने किया है वैसा
अन्यने किया हो ऐसा नजर नहीं आता। दूसरा यह शास्त्र अत्यन्त
उपयोगी तो यों है ही संस्कृत प्राकृत हिंदी और गुजराती भाषा होने से
चारों भाषा वाले एक ही पुस्तक से लाभ उठा सकते हैं। जैन समाज
में ऐसे विद्वानों का गौरव बढ़े यही शुभ कामना है। आशा है कि
स्थानकवासी संघ विद्वानों की कदर करना सीखेगा।

योग्य लिखे शेष शुभ

मधदीप

जमनालाल रामलाल कीमती

भागरा से—

श्री जैनविवाकर प्रसिद्ध वक्ता जगद्वल्लभ मुनि श्री चोपमलजी
महाराज व पंडितरत्न सुध्याल्लामी गणीजी श्री प्यारचन्द जी
महाराज ने इस पुस्तक को अतीव एसन्द की है।

श्रीमान् न्यायतीर्थ पण्डित

माधवलालजी खीचनसे लिखते हैं कि—

उन पंडितरत्न महाभाग्यवत पुरुषों के सामने उनकी अगाध-
तत्त्वगवेषणा के विषय में मैं नगण्य क्या सम्मति दे सकता हूँ।

परन्तु—

मेरे दो मित्रों ने जिन्होंने इसको कुछ पढ़ा है बहुत सराहना की है, वास्तवमें ऐसे उत्तम व सबके समझने योग्य ग्रन्थों की बहुत आवश्यकता है और इस समाज का तो ऐसे ग्रन्थ ही गौरव बढ़ा सकते हैं। ये दोनों ग्रन्थ वास्तव में अनुपम हैं। ऐसे ग्रन्थरत्नों के सुप्रकाशसे यह समाज अमावास्या के घोर अन्धकारमें दीपावली का अनुभव करती हुई महावीर के अमूल्य वचनों का पान करती हुई अपनी उन्नति में अग्रसर होती रहेगी।

*

ता. २९-११-३६

अम्बाला (पंजाब)

पत्र आपका मिला श्री श्री १००८ पंजाबकेसरी पूज्य श्री काशी-
रामजी महाराज की सेवा में पढ़ कर सुना दिया। आपकी भेजी हुई
उपासदशाङ्गसूत्र तथा गृहिधर्मकल्पतरुकी एक २ प्रति भी प्राप्त हुई।
दोनों पुस्तके अति उपयोगी तथा अत्यधिक परिश्रम से लिखी हुई हैं।
ऐसे ग्रन्थरत्नों के प्रकाशित करवानेकी बड़ी आवश्यकता है। इन पुस्तकों
से जैन तथा अजैन सबका उपकार हो सकता है। आपका यह पुरुषार्थ
सराहनीय है।

आपका

शशिभूषण शास्त्री

अध्यापक जैन हाईस्कूल

अम्बाला शहर

छा-तस्वमाधी बैराम्यमूर्ति तस्वचारिणि, वैर्यवान भी जैनाचार्य पून्यवर भी भी १००८ भी खूबचर्मी महाराज साहेबने सूत्र भी उपासकदशास्त्री की देखा। आपने फरमाया कि पण्डित मुनि घासीछाप्त्री महाराज ने उपासक-दशास्त्र सूत्रकी टीका स्थितिमें में बड़ा ही परिश्रम किया है। इस समय इस प्रकार प्रत्येक सूत्रोंकी संशोधनपूर्वक सरल गीका और शुद्धहिन्दी अनुवाद होने से भगवान निर्गुणों के प्रवचनों के अपूर्व रस का लाभ मिल सकता है।



वाल्मादिक से भारतवर्त्तन क्षतावधानी पंडित मुनि भी १० ८ भी रत्नचन्द्रजी महाराज फरमाते हैं कि—

उचरोचर जोतां मूल सूत्रकी संस्कृत टीकाओ रचरामां टीकाकारे स्तुत्य प्रयास कर्षो छे, जे स्थानकवासी समाज माने भगवरी लेषा जेषु छे, वही कराचीना भी संघे सारा कामळमां भमे सारा टाईफर्मा पुस्तक छपायी प्रगट कर्षु छे जे एक प्रकारनी साहित्य सेवा बलायी छ



बम्बई शहरमें विराजमान कवि मुनि भी नानचन्द्रजी महाराजने फरमाया है कि पुस्तक सुन्दर है प्रयास अच्छा है।



सोचन से स्पष्टिर् क्रियापात्र मुनि भी रत्नचन्द्रजी महाराज और पंडित रत्न मुनिभी समवेमम्मी महाराजभी फरमाते हैं कि—विद्वान् महात्मा पुद्गलका प्रयत्न सराहनीय है, जैनागम भीमव् उपादशास्त्र की गीका, एव उमकी प्रथम सुशोधनी शुद्ध हिन्दी भाषा बड़ी ही सुन्दरता से मिली है।



श्री वीतरागय नमः ॥

श्री श्री श्री १००८ जैनधर्मदिवाकर जैनागमरत्नाकर श्रीमज्जे-
नाचार्य श्री पूज्य घासीलालजी महाराज चरणवन्दन स्वीकार हो ।

अपरञ्च समाचार यह है कि आपके भेजे हुए ९ शास्त्र मास्टर
शोभालालजी के द्वारा प्राप्त हुए, एतदर्थ धन्यवाद ! आपश्रीजीने तो ऐसा
कार्य किया है जो कि हजारों वर्षों से किसी भी स्थानकवामी जैनाचार्यने
नहीं किया ।

आपने स्थानकवासीजैनसमाज के ऊपर जो उपकार किया है वह
कदापि भुलाया नहीं जा सकता और नहीं भुलाया जा सकेगा ।

हम तीनों मुनि भगवान महावीर से अथवा शासनदेव से प्रार्थना
करते हैं कि आपकी इस वज्रमयी लेखनीको उत्तरोत्तर शक्तिप्रदान
करे ता कि आप जैनसमाज के ऊपर और भी उपकार करते रहे और
आप चिरजीवी हों ।

हम हैं आपके मुनि तीन
मुनि सत्येन्द्रदेव, मुनि लखपतराय, मुनि पद्मसेन,

इतहारी बाजार

नागपुर ता १९-१२-५९

प्रखर पिधान जैनाचार्य मुनिराज भी घासीलालजी महाराजद्वारा जो आगमोद्वारा हुआ और हो रहा है सम्मुख मन्तराजभी का यह स्तुत्य कार्य है। हमने प्रचारकजी के द्वारा नौ सूत्रोंका सेट देखा और कई मार्मिक स्थलोंको पढ़ा, पढ़ कर बिधान मुनिराजभी की शुद्ध भद्रा तथा छेम्बनीके प्रति हार्दिक प्रसन्नता फूट पड़ी।

वास्तव में मुनिराज भी जैन समाज पर ही नहीं इतर समाज पर भी गहरा छापकर कर रहे हैं। ज्ञान किसी एक समाज का नहीं होता वह सभी समाज को अनमोल निधि है जिसे कठिन परिश्रम से तैयार कर जनता के सम्मुख रखना जा रहा है, जिसका एक एक सेट हर शहर गांव और घर घर में होना आवश्यक है।

साहित्यरत्न

मोहनमुनि सोहनमुनि जैन



શ્રી દશવકાલિક સૂત્રનું સમ્મતિ પત્ર

શ્રમણ સઘના મહાન આચાર્ય આગમ વારિધિ સર્વતન્ત્રસ્વતન્ત્ર લીનાચાર્ય પૂજ્યશ્રી આત્મારામજી મહાગળે આપેલા સમ્મતિપત્રનો ગુજરાતી અનુવાદ.

✽

મે તથા પડિત મુનિ હેમચંદ્રજીએ પડિત મુલચંદ બ્યાસ (નાગોર મારવાડવાલા) દ્વારા મળેલી પડિત રત્ન શ્રી ધામીલાલજી મુનિ વિરચિત સંસ્કૃત અને હિન્દી ભાષા સહિત શ્રી દશવકાલિક સૂત્રની આચારમણિમંજૂષા ટીકાનું અવલોકન કર્યું આ ટીકા સુદર બની છે તેમા પ્રત્યેક શબ્દોનો અર્થ સારી રીતે વિશેષભાવ લઈને સમજાવવામા આવેલ છે.

તેથી વિદ્વાનો અને સાધારણ બુદ્ધિવાળાઓ માટે ઉપકાર કરવાળી છે ટીકાકારે મુનિના આચાર વિષયનો સારો છલ્લેખ કરેલ છે જે આધુનિક-મતાવલંબી અહિંસાના સ્વરૂપને નથી જાણતા, કયામા પાપ સમજે છે તેમને માટે ‘અહિંસા શુ વસ્તુ છે’ તેનું સારી રીતે પ્રતિપાદન કરેલ છે વૃત્તિકારે સૂત્રના પ્રત્યેક વિષયને સારી રીતે સમજાવેલ છે આ વૃત્તિના અવલોકનથી વૃત્તિકારની અતિશય યોગ્યતા સિદ્ધ થાય છે

આ વૃત્તિમા એક બીજી વિશેષતા એ છે કે મૂલસૂત્રની સંસ્કૃત છાયા હોવાથી સૂત્ર, સૂત્રના પદ અને પદજોડ સુબોધદાયક બનેલ છે

પ્રત્યેક જ્ઞાસુએ આ ટીકાનું અવલોકન અવશ્ય કરવું જોઈએ વધારે શુ કહેવું? અમારી સમાજમા આવા પ્રકારના વિદ્વાન મુનિરત્નનું હોવું એ સમાજનું અહોભાગ્ય છે આવા વિદ્વાન મુનિરત્નોના કારણે સુસપ્રાય—સુતેલો સમાજ અને હુસપ્રાય એટલે લોપ પામેલું સાહિત્ય એ બન્નેનો ફરીથી ઉદય થશે અમે વૃત્તિકારને વારવાર ધન્યવાદ આપીએ છીએ

વિક્રમ સંવત ૧૯૯૦ ક્રાશ્ચન શુકલ } ઈઈ
તેરસ મગળવાર }
(અલવર સ્ટેટ)

ઉવજાણ્ય જઈણી
સુણી આચારામો
પંચનઈઓ

શ્રી દશવકાલિક સૂત્રનું સમ્મતિ પત્ર

શ્રમણ સઘના મહાન આચાર્ય આગમ વારિધિ સર્વતન્ત્રસ્વતત્ર જ્ઞાનાચાર્ય
પૂજ્યશ્રી આત્મારામજી મહારાજે આપેલા સમ્મતિપત્રનો ગુજરાતી અનુવાદ

✽

મે તથા પડિત મુનિ હેમચંદ્રજીએ પડિત મુલચંદ બ્યાસ (નાગૌર
મારવાડવાળા) દ્વારા મળેલી પડિત રત્ન શ્રી ઘાસીલાલજી મુનિ વિરચિત
સંસ્કૃત અને હિન્દી ભાષા સહિત શ્રી દશવકાલિક સૂત્રની આચારમણિમળૂખા
ટીકાનું અવલોકન કર્યું આ ટીકા સુદર ણની છે તેમાં પ્રત્યેક શબ્દોનો અર્થ
સારી રીતે વિશેષભાવ લઈને સમજાવવામાં આવેલ છે

તેથી વિદ્વાનો અને સાધારણ બુદ્ધિવાળાઓ માટે ઉપકાર કરવાળી
છે ટીકાકારે મુનિના આચાર વિષયનો સારો છલ્લેખ કરેલ છે જે આધુનિક-
મતાવલંબી અહિંસાના સ્વરૂપને નથી જાણતા, કયામાં પાપ સમજે છે તેમને
માટે ‘અહિંસા શુ વસ્તુ છે’ તેનું સારી રીતે પ્રતિપાદન કરેલ છે વૃત્તિકારે
સૂત્રના પ્રત્યેક વિષયને સારી રીતે સમજાવેલ છે. આ વૃત્તિના અવલોકનથી
વૃત્તિકારની અતિશય યોગ્યતા સિદ્ધ થાય છે

આ વૃત્તિમાં એક બીજી વિશેષતા એ છે કે મૂલસૂત્રની સંસ્કૃત છાયા
હોવાથી સૂત્ર, સૂત્રના પદ અને પદ-છેદ સુખોપદાયક બનેલ છે

પ્રત્યેક જ્ઞાસુએ આ ટીકાનું અવલોકન અવશ્ય કરવું જોઈએ વધારે શુ
કહેવું? અમારી સમાજમાં આવા પ્રકારના વિદ્વાન મુનિરત્નનું હોવું એ સમાજનું
અહોભાગ્ય છે આવા વિદ્વાન મુનિરત્નોના કારણે સુસપ્રાય—સુતેલો સમાજ
અને હુસપ્રાય એટલે લોપ પામેલું સાહિત્ય એ બન્નેનો ફરીથી ઉદય થશે
અમો વૃત્તિકારને વારંવાર ધન્યવાદ આપીએ છીએ

વિક્રમ સંવત ૧૯૯૦ ક્રાદ્યુન શુકલ } ઈઈ
તેરસ મગળવાર }
(અલવર સ્ટેટ) }

ઉવજાગ્રાય જઈણિ
મુણી આચારામો
પ ચનઈઓ

રૂ. ૧૦૦૦] આપનાર આદ્ય સુરઝીશ્રી



શ્રી ૬ હરખાલ હાળીદાસ બાહીયા
બાણપદ

મમલુ સંમના પ્રનાશમત્રી પબ્બળકેશરી મહારાજ શ્રી પ્રેમચંદ્ર
મહારાજ જેઓશ્રી રાજકોટમાં પધારેલા હતા ત્યારે તેઓના તરફથી શસ્ત્રોને
માટે મળેલો અભિપ્રાય.

*

શાસ્ત્રોદ્ધારસમિતિ તરફથી પૂજ્યપાદ શાસ્ત્રચારિણિ પંડિતરાજ સ્વામીશ્રી
ધાસીલાલ મહારાજ દ્વારા શાસ્ત્રોદ્ધારનું જે કાર્ય થઈ રહ્યું છે તે કાર્ય જૈનસમાજ
તેમના ખાસ કરીને સ્થાનકવાસીજૈનસમાજને માટે મૂળભૂત મૌલિક સંસ્કૃતિની
જરૂરને મળતુત કરવાવાળું છે.

જોટલા ખાતર આ કાર્ય અતિ પ્રશસનીય છે માટે હરેક બ્યક્તિએ તેમાં
યથાશક્તિ સોમ દેવાની ખાસ આવશ્યકતા છે અને તેથી જો ભગીરથ કાર્ય જહ્નવીશ્રી
જહ્નવી સંપૂર્ણપણે પાર પાડી શકાય અને જનતા સુતરજ્ઞાનનો લાભ મેળવી શકે

*

હરીયાપુર સંપ્રદાયના પૂજ્ય આચાર્યશ્રી ઇન્દિરલાલ મહારાજ સાહેબના

સૂત્રો સંબંધે વિચારો

નમામિ વીર ચિસ્તિારધીર

પૂજ્યપાદ રાનિમ્બરશ્રી ધાસીલાલ મહારાજ તથા પંડિતશ્રી કનેયાલાલ
મહારાજ આદિ શાસ્ત્રા છત્રી સેવામાં—

બ્રમહવાદ શાસ્ત્રપુર ઉપાસકશ્રી મુનિ દયાનંદજીના ૧૮ પ્રશ્નિપાત.

આપ સર્વે શાસ્ત્રાઓ સુખ સમાધિમાં કર્યો નિરંતર ધર્મધ્યન ધર્મારા
ધનામાં લીન હશે.

સૂત્ર પ્રકાશન કાર્ય ત્વરિત થાય જોવી આવના છે. દર્શવેકપ્રતિક તથા
આચાર્યશ્રી જોકે જોકે ભાગ પાડી છે ટીકા ગુપ્ત સુદર, સરળ અને પંડિતજનોને
સુગ્રિય થઈ પડે તેવી છે. સાથે સાથે ટીકા વિનાના મુળ અને અર્થ સાથે પ્રકા
શન થાય તો આવકમજી તેનો વિશેષ લાભ લઈ શકે અને પૂજ્ય આચાર્યશ્રી મુરદેવને
આજે ધોતીયો ઉતરાવ્યો છે અને સાફ છે જોજી.

આસો શુદ્ધ ૧૦, મંગળવાર તા. ૨૫-૧૦-૫૫

પુનઃ પુનઃ શ્રાવણ ઇષ્ટિયો,

દયામુનિના પ્રશ્નિપાત.

*

દરીયાપુર સંપ્રદાયના પંડિતરત્ન ભાઈચિંદણ મહારાજનો અભિપ્રાય
શ્રી

રાણપુર તા ૧૯-૧૨-૧૯૫૫

પૂજ્યપાદ જ્ઞાનિપ્રવર પંડિતરત્ન પૂજ્ય શ્રી ધામીલાલજી મહારાજ આદિ
મુનિવરોની સેવામા, આપ સર્વ સુખસમાધીમા હશે

સૂત્રપ્રકાશનનું કામ સુદર થઈ રહ્યું છે તે જાણી અત્યંત આનંદ આપના
પ્રકાશિત થયેલા કેટલાક સૂત્રો એવા જોયા સુદર અને સરલ સિદ્ધાંતના ન્યાયને પુષ્ટિ
કરતી ટીકા પંડિતરત્નોને મુપ્રિય થઈ પડે તેવી છે સૂત્રપ્રકાશનનું કામ
ત્વરિત પૂર્ણ થાય અને ભવિ આત્માઓને આત્મકથ્યાણ કરવામા સાધનભૂત
થાય એજ અર્થ્યર્થના

લી પંડિતરત્ન બાળપ્રદ્યારી
પૂ૦ શ્રી ભાઈચિંદ મહારાજની

આજ્ઞાનુમાર શાન્તિમુનીના

પાયવદન સ્વીકારશે.

*

તા ૧૧-૫-૫૬

વીરમગામ

ગચ્છાધિપતિ પૂજ્ય મહારાજ શ્રી જ્ઞાનચંદ્રજી મહારાજના સંપ્રદાયના
આત્માર્થી, ક્રિયાપાત્ર, પંડિતરત્ન, મુનિશ્રી સમરથમલજી મહારાજનો અભિપ્રાય.

ખીચનથી આવેલ તા ૧૨-૨-૫૬ના પત્રથી ઉદ્ભૂત

પૂજ્ય આચાર્ય ધામીલાલજી મહારાજના હસ્તક જે સૂત્રોનું લખાણ સુદર
અને સરળ લખામા થાય છે તે સાહિત્ય, પંડિત મુનિશ્રી સમરથમલજી મહારાજ
સમય એછો મળવાને કારણે સંપૂર્ણ જોઈ શક્યા નથી છતાં જેટલું સાહિત્ય
જોયું છે, તે બહુ જ સારૂ અને મનન સાથે લખાયેલું છે, તે લખાણ શાસ્ત્ર-આજ્ઞાને
અનુરૂપ લાગે છે આ સાહિત્ય દરેક શ્રદ્ધાળુ જીવોને વાચવા યોગ્ય છે આમા
સ્થાનકવાસી સમાજની શ્રદ્ધા, અરૂપણા અને ફરસણાની દૃઢતા શાસ્ત્રાનુકૂળ છે
આચાર્યશ્રી અપૂર્વ પરિશ્રમ લઈ સમાજ ઉપર મહાન ઉપકાર કરે છે

લી કિશનલાલ પૃથ્વીરાજ માલુ.

મુ ખીચન.

*

હીમદી સમદામના સદાનદી મુનિદી ઓટાલાલ

મદાસાજનો અધિપતિ

શ્રી વીતસરદેવે જ્ઞાનપ્રચારને તીવ્ર કર-નામ-ગોત્ર બાધવાનું નિમિત્ત રહેલ છે જ્ઞાનપ્રચાર કરનાર, કરવામાં સદાચ કરનાર, અને તેને અનુમોદન આપનાર જ્ઞાનાવસ્થાથી કર્મને ક્ષય કરી કેવળ જ્ઞાનને પ્રાપ્ત કરી પરમપદના અધિકારી બને છે શાશ્વત્, પરમ શાન્ત અને અપ્રમાદી પૂજ્યશ્રી ઘાસીલાલ મદાસજ પોતે અવિદ્યાન્તરવે નાનની ઉપાસના અને તેની પ્રભાવના અનેક વિકટ પ્રસંગોમાં પણ કરી રહ્યા છે તે માટે તેઓશ્રી અનેકશઃ ધન્યવાદના અધિકારી છે વદનીય છે તેમની જ્ઞાનપ્રભાવનાની ખજસ ધણા પ્રમાણિએ અનુકરણીય છે જેમ પૂજ્યશ્રી ઘાસીલાલ મદાસજ પોતે જ્ઞાન પ્રચાર માટે અવિદ્યાન્ત પ્રવળ કરે છે તેમજ-શાસ્ત્રોદારસમિતિના કલ્યાણકો પણ જેમાં સદાચ કરીને જે પવિત્ર સેવા કરી રહેલ છે તે પણ અરેખર ધન્યવાદના પૂણ અધિકારી છે

જે સમિતિના કાર્યકરોને મારી જોઈ મુશ્કેલી છે કે —

શાસ્ત્રોદાર પ્રવર પંડિત અપ્રમાદી સત ઘાસીલાલ મદાસજ ને શાસ્ત્રોદારનું કામ કરી રહેલ છે તેમાં સદાચ કરવા માટે-પંડિતો વિચેરેના માટે જે ખર્ચ થઈ રહેલ છે તેને પહેલીજગવા માટે સાથ સરખુ ફંડ લેઈજો જેના માટે મારી જે મુશ્કેલી છે કે-શાસ્ત્રોદારસમિતિના મુખ્ય કાર્યવાહકો-જે બની રહે તે પ્રમુખ પોતે અને બીજા જે ત્રણ વચ્ચેના મુશ્કેલી, સૌજન્ય, અને કમ્પ્રમા પ્રવાસ કરી મેળવે જનાવે અને આર્થિક ત્રહાસ મેળવે

જે કે અસાધની પરિસ્થિતિ વિષમ છે બાપારીઓ, ધાધારીઓને પોતાના અવકાર સામયવા પણ મુશ્કેલી બન્યા છે છતાં જે સભવિત મુશ્કેલી પ્રવાસે નીકળે તેા અત્ર કામ સફળ કરે જેવી અને મદા છે

આર્થિક અનુકૂળતા થવાથી શાસ્ત્રોદારનું કામ પણ વધુ સરલતાથી થઈ રહે પૂજ્યશ્રી ઘાસીલાલ મદાસજ નાં મુખી આ તરફ વિચરે છે ત્યાં મુખીમાં જેમની સમજાવિતો લેટલો લાભ લેવાય તેટલો લઈ લેવો કદાચ સૌજન્યમાં વધુ વળત રહેવાથી તેમને હવે જહાર વિહરવાની ઈચ્છા થતી હોય તેા જ્ઞાનિભાઈશ્રી જેવાએ વિનંતિ કરી અમદાવાદ પધારવા, અને ત્યાં અનુકૂળતા મુશ્કેલી બે-ત્રણ વર્ષની સ્થિતિ કરાવીને તેમની પાસે શાસ્ત્રોદારનું કામ પૂણ કરાવી લેવું લેઈજો

કોઈ વળતમાં જામજોધપુરમાં શાસ્ત્રોદારશ્રીની મજવાની છે તે વળતે ઉપરની મુશ્કેલી વિચારવા તેા કીક

ફરી શાસ્ત્રોદ્ધારક પૂજ્યશ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજને એમની આ સેવા અને પરમ કલ્યાણકારક પ્રવૃત્તિને માટે વારંવાર અભિનંદન છે શાસનનાયક દેવ તેમના શરીરાદિને સશક્ત અને દીર્ઘાયુ રાખે જેથી સમાજ ધર્મની વધુ ને વધુ સેવા કરી શકે હૈં અસ્તુ

ચાતુર્માસ સ્થળ લીળડી } લી
સ ૨૦૧૦ શ્રાવણ વદ ૧૩ ગુરૂ } સદાનંદી જૈનમુનિ છોટાલાલજી

*

શ્રી વર્ધમાન સંપ્રદાયના પૂજ્યશ્રી પુનમચ દ્રજી મહારાજનો અભિપ્રાય

શાસ્ત્રવિશાદ પૂજ્ય આચાર્ય મહારાજ શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજશ્રીએ જૈન આગમો ઉપર જે સંસ્કૃત ટીકા વગેરે રચેલ છે તે માટે તેઓશ્રી ધન્યવાદને પાત્ર છે તેમજ આગમો ઉપરની સ્વતંત્ર ટીકા રચીને સ્થાનકવાસી જૈન સમાજનું ગૌરવ વધાર્યું છે, આગમો ઉપરની તેમની સંસ્કૃત ટીકા ભાષા અને ભાવની દૃષ્ટિએ ઘણી જ સુદૃઢ છે સંસ્કૃતરચના માધુર્ય તેમજ અલંકાર વગેરે ગુણોથી સુકૃત છે વિદ્વાનોએ તેમજ જૈન સમાજના આચાર્યો, ઉપાધ્યાયો વગેરે એ શાસ્ત્રો ઉપર રચેલી આ સંસ્કૃતરચનાની કદર કરવી જોઈએ અને દરેક પ્રકારનો સહકાર આપવો જોઈએ

આવા મહાન કાર્યમા પરિતરત્ન પૂજ્યશ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ જે પ્રયત્ન કરી રહ્યા છે તે અલૌકિક છે તેમનું આગમ ઉપરની સંસ્કૃત ટીકા વગેરે રચવાનું ભગીરથકાર્ય શીઘ્ર સફળ થાય એ જ શુભેચ્છા સાથે

અમદાવાદ }
તા ૨૨-૪-૫૬ રવીવાર } મુનિ પુનમચ દ્રજી
મહાવીર જયતિ }

*

ખંભાત સંપ્રદાયના મહાસતી શારદાબાઈ સ્વામીનો અભિપ્રાય

લખતર તા ૨૫-૪-૫૬

શ્રીમાન શેઠ શાતીલાલભાઈ મગજસભાઈ

પ્રમુખ સાહેબ અખિલ ભારત ઋવેન્ સ્થાન જૈન શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિ

મુ અમદાવાદ

અમો અત્રે દેવગુરૂની કૃપાએ સુખરૂપ છીએ વિ મા આપની સમિતિદ્વારા પૂજ્ય આચાર્ય મહારાજ શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ સાહેબ જે સૂત્રોનું કાર્ય કરે છે તે પૈકીના સૂત્રોમાંથી ઉપાસકદશાગસૂત્ર, આચારાગસૂત્ર, અનુત્તરોપપતિકસૂત્ર

દશવેદાધિકાર સૂત્ર વિશેષ સૂત્રો એવા તે સૂત્રો સંસ્કૃત હિન્દી અને સુબસતી ભાષાઓમાં હોવાને કારણે વિદ્વાન અને સામાન્ય જનોને પણ જ લાભદાયક છે તે વાંચન બધું જ સુદર અને મનોરંજન છે આ કાર્યમાં પૂજ્ય આચાર્યશ્રીને અષાત્ પુરુષાર્થ કાર્ય કરે છે તે માટે વારંવાર ધન્યવાદને પાત્ર છે આ સૂત્રોથી સમાજને પણ લાભવું કારણ છે

હવે સુમાન પુરિષાળા આત્માઓ સ્વપરના લેદથી નિખાલસ ભાવનાઓ અવલોકન કરશે તો આ સાહિત્ય સ્થાનકવાસી સમાજ માટે અપૂર્વ અને ગૌરવ હોવા બેવડું છે દરેક જાન્ય આત્માઓને સૂચન કરું છું કે આ સૂત્રો પોતા પોતાના ઘરમાં વસાવાની સુદર તકને સુકસો નહિ કારણ આવા શુદ્ધ પવિત્ર અને સ્વપરપરાને પુષ્ટિપ સૂત્રો મળવા બહુ મુશ્કેલ છે આ કાર્યને અપક્ષી તથા સમિતિના અન્ય કાર્યકરો ને શ્રમ લઈ રહ્યા છે તેમજ મહાન નિર્ભયતા કારણ એવામાં આવે છે તે બદલ ધન્યવાદ એ જ

લી શરદાબાઈ સ્વામી

અષાત્ સંગ્રહક.



બરવાળા સંગ્રહકના વિદુષી મહાસતીજી મોંઘીબાઈ સ્વામીનો અભિપ્રાય

પ્રજ્ઞા વા. ૨૭-૧-૫૬

શ્રીમાન શેઠ શાન્તીલાલ મજાણસભાઈ

પ્રજ્ઞા જી. જી. ૩૧૦ સ્થા. જૈનશાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિ

ગુ. ૦ શાંતીદેવ

આત્રે બીસજતા સુ સુબ્ય જ હાર મહાસતીજી વિદુષી મોંઘીબાઈ સ્વામી તથા હીસજાઈ સ્વામી આદિકણ્ઠા જન્ને સુખચાતમાં બીસજે છે. આપને સૂચન છે કે અપ્રમત્ત અવસ્થામાં રહી નિવૃત્તિ ભાવને મેળવી પ્રમખાન કરશે એજ આશા છે

વિશેષમાં જમને પૂજ્ય આચાર્ય મહાસજ શ્રી જાસીલાલજી મહાગજના સ્વેલાં સૂત્રો જાઈ પોષટ ધનજીજાઈ તરફથી લેટ તરીકે મળેલાં તે સૂત્રો તમામ આધોષ્ટત વાંચ્યાં મનન કર્યાં અને વિચાર્યાં તે સૂત્રો સ્થાનકવાસી સમાજને અને ગીતસજમાર્ગને ખુબ જ ઉન્નત બનાવનાર છે તેમા આપણી મદદ એટલી ત્યાગદેવથી કરેલી છે તે આપણા સમાજ માટે ગૌરવ હોવા બેવડું છે હવે સમાન

આત્માઓ જ્ઞાનઝરણાઓથી આત્મરૂપવાહીને વિકસિત કરશે, ધન્ય છે આપને અને સમિતિના કાર્યકરોને જે સમાજ ઉત્થાન માટે કોઈની પણ પરવા કર્યા વગર જ્ઞાનનું દાન લવ્ય આત્માઓને આપવા નિમિત્તરૂપ થઈ રહ્યા છે. આવા સમર્થ વિદ્વાન પાસેથી સંપૂર્ણ કાર્ય પુર્ણ કરાવશે તેવી આશા છે

એજ લિ ધરવાળા સપ્રદાયના વિદુષી

મહાસતીજી મોંઘીબાઈ સ્વામી

ના કરમાનથી લી જોડીદાસ ગણેશભાઈ—ધધુકા

સ્થાનકવાસી જૈન સઘના પ્રમુખ

૨

અદ્યતન પદ્ધતિને 'અપનાવનાર વડોદરા કોલેજના એક વિદ્વાન પ્રોફેસરનો અભિપ્રાય

સ્થાનકવાસી સપ્રદાયના મુનિશ્રી ધાસીલાલજી મહારજ જૈનશાસ્ત્રોના સંસ્કૃત ટીકાખંડ, ગુજરાતીમા અને હિન્દીમા ભાષાતરે કરવાના ઘણા વિકટ કાર્યમા વ્યાપ્ત થયેલા છે. શાસ્ત્રો પૈકી જે શાસ્ત્રો પ્રસિદ્ધ થયા છે તે હું જોઈ શક્યો છું, મુનિશ્રી પોતે સંસ્કૃત, અર્ધમાગધી હિન્દી ભાષાઓના નિષ્ણાત છે એ એમનો દુક પરિચય કરતા સહજ જણાઈ આવે છે. શાસ્ત્રોનું સપાઠન કરવામા તેમને પોતાના શિષ્ય વર્ગનો અને વિરોધમા ત્રણ પડિતોનો સહકાર મળ્યો છે તે જોઈ મને આનંદ થયો. સ્થાનકવાસી સપ્રદાયના અગ્રેસરોએ પડિતોનો સહકાર મેળવી આપી, મુનિશ્રીના કાર્યને સરળ અને શિષ્ટ બનાવ્યું છે. સ્થાનકવાસી સમાજમા વિદ્વત્તા ઘણી ઓછી છે, તે દિગંબર મૂર્તિપૂજક શ્રવેતાબર વગેરે જૈનદર્શનના પ્રતિનિધિઓના ઘણા સમયથી પરિચયમા આવતા હું વિરોધના ભય વગર કહી શકું પૂઠ મહારાજનો આ પ્રયાસ સ્થાનકવાસી સપ્રદાયમા પ્રથમ છે એવી भारी માન્યતા છે. સંસ્કૃત સ્પષ્ટીકરણો મારા આપવામા આવ્યા છે, ભાષા શુદ્ધ છે એમ ચોક્કસ કહી શકું છું. ગુજરાતી ભાષાતરે પણ શુદ્ધ અને સરળ થયેલા છે. મને વિશ્વાસ છે કે મહારાજશ્રીના આ સ્તુત્ય પ્રયાસને જૈનસમાજ ઉત્તેજન આપશે અને શાસ્ત્રોના ભાષાતરેનો વાચનાલયમા અને કુટુંબોમા વસાવી શકાય તે પ્રમાણે વ્યવસ્થા કરશે.

પ્રતાપગજ, વડોદરા

કામદાર કેશવલાલ હિંમતરામ

તા. ૨૭-૨-૧૯૫૬

એમ. એ.

મુંબઈની જે કોલેજોના પ્રોફેસરોનો અભિપ્રાય

મુંબઈ તા ૩૧-૩-૫૧

શ્રીમાન શેઠ શાન્તિલાલ મળજદાસ

પ્રમુખ : શ્રી અખિલ ભારત શ્વે સ્થા. જૈનશાસ્ત્રોદ્ધારસમિતિ,
રાજકોટ.

પૂજ્યઆચાર્ય શ્રી ઘાસીલાલભાઈ મહાશયે તૈયાર કરેલાં આચાર્યજી દર્શવેકા
લિઠ, આવશ્યક ઉપાસકદશાજ વગેરે સુત્રો અને જોયાં આ સુત્રા ઉપર સંસ્કૃતમાં
ટીકા આપવામાં આવી છે અને યાદે દિહી અને શુજરાતી ભાષાતરો પણ
આપવામાં આવ્યાં છે સંસ્કૃતટીકા અને શુજરાતી તથા દિહી ભાષાતરો જોતાં
આચાર્યશ્રીના આ ત્રણે ભાષા પરના જોક સરખા અસાધારણ પ્રભુત્વની સંજોટ અને
સુરેખ છાપ પડે છે આ સુત્ર જોયામાં પાને પાને પ્રગટ થતી આચાર્યશ્રીની અપ્રતિમ
વિદ્વત્તા મુખ્ય કરી કે તેની જી શુજરાતી તથા દિહીમાં થયેલાં ભાષાતરમાં
ભાષાની શુદ્ધિ અને સરળતા નોંધપાત્ર છે એવી વિદ્વદ્જન અને સાધારણ માણસ
ઉભયને સંતોષ આપે એવી જોમની લેખનીની પ્રતીતિ થાય છે કર સૂત્રોમાંથી
કુલ ૧૩ સૂત્રો પ્રગટ થયાં છે બીજા ૭ સૂત્રો લખાઈને તૈયાર થઈ ગયા છે
આ બધાં જ સૂત્રો આચાર્ય જોમને હાથે તૈયાર થઈને પ્રગટ થશે ત્યારે જૈન
સુત્ર-સાહિત્યમાં અમૂલ્ય સપત્તિરૂપ બહારો જોમાં સરથ નથી. આચાર્યશ્રીના
મહાન દર્શને જૈનશાસ્ત્રને વિશેષતા જ્ઞાનકવાસી સમાજનો સપૂણ સહકાર
સાંપડી રહેશે એવી અને આશા રાખીએ છીએ.

પ્રો. રમણલાલ વીમનલાલ શાહ

સેટ ગેવિયર્સ કોલેજ, મુંબઈ

પ્રો. તારા રમણલાલ શાહ

સેફ્રીયા કોલેજ મુંબઈ



રાજકોટ ધર્મે દ્રસિહભાઈ કોલેજના પ્રોફેસર આદેખનો અભિપ્રાય

જયમહાલ

ભાગનાથ પોલ

રાજકોટ તા ૧૮-૪-૫૧

પૂજ્યઆચાર્ય પ મુનિશ્રી ઘાસીલાલભાઈ મહાશય આજે જૈનસમાજ માટે
જોક જોવા હાથમાં આવે થયેલા છે કે જે સમાજ માટે જટુ ઉપયોગી થઈ પડશે
મુનિશ્રીએ તૈયાર કરેલા આચાર્યજી, દર્શવેકાલિક શ્રી વિપાકમુત વિ. મે જોયાં.

આ સૂત્રો જોતાં પહેલીજ નજરે મહારાજશ્રીનો સંસ્કૃત, અર્ધભાગધી, હિન્દી તથા ગુજરાતી ભાષાઓ ઉપરનો અસાધારણ કાળુ જણાઈ આવે છે. એક પછી ભાષા મહારાજશ્રીથી અજાણી નથી. આપણે જોઈએ છીએ કે એ સૂત્રો ઉચ્ચ અને પ્રથમ કોટીના છે. તેની વસ્તુ ગંભીર, વ્યાપક અને જીવનને તલસ્પર્શી છે, આટલા ગહન અને સર્વગ્રાહ્ય સૂત્રોનું ભાષાંતર પૂં ધાસીલાલજી મહારાજ જેવા ઉચ્ચ કોટીના મુનિરાજને હાથે થાય છે તે આપણાં અહોભાગ્ય છે યંત્રવાદ અને ભૌતિકવાદના આ જમાનામા જ્યારે ધર્મભાવના ઓસરતી જાય છે એવે વખતે આવા તત્ત્વજ્ઞાન આધ્યાત્મિકતાથી ભરેલા સૂત્રોનું સરળ ભાષામાં ભાષાંતર દરેક જ્ઞાસુ, મુમુક્ષુ અને સાધકને માર્ગદર્શક થઈ પડે તેમ છે જૈન અને જૈનેતર, વિદ્વાન અને સાધારણ માણસ સાધુ અને શ્રાવક દરેકને સમજણ પડે તેવી સ્પષ્ટ, સરળ અને શુદ્ધ ભાષામા સૂત્રો લખવામા આવ્યાં છે મહારાજશ્રીને જ્યારે જોઈએ ત્યારે તેમના આ કાર્યમા સફળતાયેલા જોઈએ છીએ એ ઉપરથી મુનિશ્રીના પરિશ્રમ અને ધગશક્તી કલ્પના કરી શકાય તેમ છે તેમનું જીવન સૂત્રોમા વણાઈ ગયું છે.

મુનિશ્રીના આ અસાધારણ કાર્યમા પોતાના શિષ્યોનો તથા પડિતોનો સહકાર મળ્યો છે અને આશા છે કે જો દરેક મુમુક્ષુ આ પુસ્તકોને પોતાના ઘરમા વસાવશે અને પોતાના જીવનને સાચા મુખને માર્ગે વાળશે તો મહારાજશ્રીએ ઉઠાવેલી શ્રમ સંપૂર્ણપણે સફળ થશે

પ્રો રસિકલાલ કરતુરચંદ ગાંધી

એમ એ એલ એલ બી

ધર્મેન્દ્રસિંહજી કોલેજ

રાજકોટ (સૌરાષ્ટ્ર)

*

મુંબઈ અને ઘાટકોપરમાં મળેલી સભાએ બિનાસર કેન્ફ્રેન્સ તથા સાધુસંમેલનમાં મોકલાવેલ ઠરાવ

હાલ જે વખતે શ્રી જ્વેતાંબર સ્થાનકવાસી જૈન સઘ માટે આગમ સંશોધન અને સ્વતંત્ર ટીકાવાળા શાસ્ત્રોદ્ધારની અતિ આવશ્યકતા છે અને જે મહાનુભાવોએ આ વાત દીર્ઘ દૃષ્ટિથી પહેલી પોતાના મગજમા લઈ તે પાર પાડવા મહેનત લઈ રહ્યા છે તેવા મુનિ મહારાજ પડિતરત્ન શ્રી ધાસીલાલજી મહારાજ કે જેઓને સાદસી અધિવેશનમાં સર્વાનુમતે સાહિત્યમત્રી નીમ્યા છે તેઓશ્રીની દેખરેખ નીચે આ ભાગ્યે સ્થા જૈન શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિ જે એક મોટી વગવાળી કમિટી છે તેની મારફતે કામ થઈ રહ્યું છે જેને પ્રધાનાચાર્યશ્રી તથા પ્રચારમત્રીશ્રી

તથા અનેક યનુભવી મહાનુભાવોએ પોતાની પસંદગીની મહોર છાપ આપી છે. અને છેલ્લામાં છેલ્લા વડોદરા યુનિવર્સિટીના પ્રોફેસર કેશવલાલ કામદાર એમ. એ. પોતાનું સવિસ્તર પ્રમાણપત્ર આપ્યું છે તે શાસ્ત્રોદાર કમિટીના કામને આ સંબંધન તથા કેન્સેલરન્સ હાઈકો અસિનદન આપે છે અને તેમના કામને જ્યાં જ્યાં અને જે જે જગ્યા પડે-પંક્તિની અને નાણાની પોતાની પાસેના ફંડમાંથી અને બહાર જનતા પાસેથી મફત મળે તેવી ઇચ્છા ધરાવે છે.

આ શાસ્ત્રો અને ટીકાઓને જ્યારે આદર્શી જમી પ્રગટાપૂર્વક પસંદગી મળી છે ત્યારે તે કામને મફત કરવાની આ કેન્સેલરન્સ પોતાની ફરજ માને છે અને જે કોઈ તુરી હોય તે પ ૨ શ્રી ઘાસીલાલજી મહાસજની સાનિધ્યમાં જઈ જતાવીને સુધારવા પ્રયત્ન કરવો આ કામને દલ્દે બહાવવા જેવું કોઈ પણ કામ સત્તા ઉપરના અધિકારીઓના વાણી કે વર્તનથી ન થાય તે બેવા પ્રમુખ સાહેબને જાણમણુ કરે છે.

(સ્થા. જૈન પત્ર તા. ૪-૫-૫૬)



સ્વતંત્રવિચારક અને નિહાર લેખક ‘જૈનસિદ્ધાંત’ના ત્રીજી
શેઠ નગીનદાસ ગીરધરલાલનો અભિપ્રાય

શ્રી સ્થાનકવાસી શાસ્ત્રોદાર સમિતિ સ્થાપીને પૂ. ઘાસીલાલજી મહાસજને સૌપ્રથમમાં બોલાવી તેમની પાસે જત્રીસે સૂત્રો તૈયાર કરવાની હિલચાલ ચાલતી હતી ત્યારે તે હિલચાલ કરનાર શાસ્ત્રજ્ઞ શેઠ શ્રી હમીદરાસભાઈ સાહેબાઈ પત્રવ્યવહાર બાલેલો ત્યારે શેઠ શ્રી હમીદરાસભાઈએ તેમના એક પત્રમાં મને લખેલું કે—

“આપણા સૂત્રોના મૂળ પાક તપાસી શુદ્ધ કરી સંસ્કૃત સાથે તૈયાર કરી શકે તેવા સ્થાનકવાસી સમ્રાજ્યના મુનિશ્રી ઘાસીલાલ મ. સિવાય મને કોઈ વિશેષ વિદ્વાન મુનિ બેવામાં આવતા નથી. હાંની તપાસને જતે મેં મુનિશ્રી ઘાસીલાલજીને પસંદ કરેલા છે.

શેઠ શ્રી હમીદરાસભાઈ પોતે વિદ્વાન હતા. શાસ્ત્રજ્ઞ હતા તેમ વિચારક પણ હતા. આપણે તેમજ મુનિઓ પણ તેમની પાસેથી શિક્ષા વાચના લેતા, તેમ જ્ઞાનવર્યા પણ કરતા. એવા વિદ્વાન શેઠશ્રીનો પસંદગી થવાય જ હોય એમાં

નવાઈ નથી અને પૂ શ્રી ઘાસીલાલજીના બનાવેલા સૂત્રો જોતા સૌ કોઈને ખાત્રી થાય તેમ છે કે દામોદરદાસભાઈએ તેમજ સ્થાનકવાત્રી સમાજે જેવી આશા શ્રી ઘાસીલાલજી મ પાસેથી રાખેલી તે બરાબર ફળીભૂત થયેલ છે

શ્રી વર્ધમાન શ્રમણસંઘના આચાર્ય શ્રી આત્મારામજી મહાગજે શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજના સૂત્રો માટે ખાસ પ્રશંસા કરી અનુમતિ આપેલ છે તે ઉપરથી જ શ્રી ઘાસીલાલજી મ ના સૂત્રોની ઉપયોગિતાની ખાત્રી થશે

આ સૂત્રો વિદ્યાર્થીને અભ્યાસીને તેમજ સામાન્ય વાચકોને સર્વને એક સરખી રીતે ઉપયોગી થઈ પડે છે વિદ્યાર્થીને તેમજ અભ્યાસીને મૂળ તથા સંસ્કૃત ટીકા વિશેષ કરીને ઉપયોગી થાય તેમ છે. ત્યારે સામાન્ય હિંદી વાચકને હિંદી અનુવાદ અને ગુજરાતી વાચકને ગુજરાતી અનુવાદથી આખું સૂત્ર સરળતાથી સમજાય છે

કેટલાકને એવો ભ્રમ છે કે સૂત્રો વાચવાનું કામ આપણું કામ નહિ, સૂત્રો આપણને સમજાય નહિ. આ ભ્રમ તદ્દન ખોટો છે ખીજા કોઈ પણ શાસ્ત્રીય પુસ્તક કરતા આ સૂત્રો સામાન્ય વાચકને પણ ઘણી સરળતાથી સમજાઈ જાય છે. સામાન્ય માણસ પણ સમજી શકે તેટલા માટે જ લગવાન મહાવીરે તે વખતની લોકભાષામાં (અર્ધમાગધી ભાષામાં) સૂત્રો બનાવેલા છે. એટલે સૂત્રો વાચવાં તેમજ સમજવામાં ઘણું સરળ છે

માટે કોઈ પણ વાચકને એનો ભ્રમ હોય તો તે કોઠી નાખવો અને ધર્મનું તેમજ ધર્મના સિદ્ધાંતોનું સાચું જ્ઞાન મેળવવા માટે સૂત્રો વાચવાને ચૂકવું નહિ એટલું જ નહિ પણ જરૂરથી પહેલાં સૂત્રો જ વાચવા.

સ્થાનકવાત્રીઓમાં આ શ્રી સ્થાન જૈન શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિએ જે કામ કર્યું છે અને કરી રહી છે તેવું કોઈ પણ સંસ્થાએ આજ સુધી કર્યું નથી સ્થાન જૈન શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિના છેલ્લા રિપોર્ટ પ્રમાણે બાળા છ સૂત્રો લખાવેલ પડ્યા છે, બે સૂત્રો-અનુયોગદ્વાર અને કાણાગ સૂત્ર-લખાય છે તે પણ થોડા વખતમાં તૈયાર થઈ જશે તે પછી બાકીના સૂત્રો હાથ ધરવામાં આવશે

તૈયાર સૂત્રો જલ્દી છપાઈ જાય એમ ઈચ્છીએ છીએ અને સ્થા બધુંએ સમિતિને ઉત્તેજન અને સહાયતા આપીને તેમના સૂત્રો ઘરમાં વસાવે એમ ઈચ્છીએ છીએ.

‘જૈન સિદ્ધાંત’ પત્ર-મે ૧૯૫૫

શ્રી પરપણુ આપનાર આદ્ય સુરજીશી



કોશી ૧૨ગોવિંદભાઈ લેચ દ
મજકોર

શ્રુત-મહિત

(૫૦ આવાધી શ્રી ધાસીલાલજી મં સાંની આરા અનુસાર લખનાર)

દ સ. ના જૈન મુનિ શ્રી દયાનંદજી મહારાજ

તા. ૨૩-૬-૫૬ શાહપુર, અમદાવાદ

આને લગભગ ૨૦ વર્ષથી અદ્યેષ પરમપૂજ્ય, જ્ઞાનદિવાકર ૫૦ મુનિશ્રી ધાસીલાલજી મં અરમ તીર્થેકર ભગવાન મહાવીરના અનુત્તર, અનુપમ ન્યાય મુખ્ય, પૂર્વાપર અવિરોધસ્વરૂપ, કલ્યાણકારક અરમ શાંતળ વાણીના ઘોતક એવા શ્રી જિનાગમ પર પ્રકાશ પડે છે તેઓશ્રી પ્રાચીન, પૌર્વાત્ય સંસ્કૃત્યક્રિ અનેક ભાષાના પ્રખર પદ્ધિ છે અને વિનવાણીને પ્રકાશ સંસ્કૃત, શુભશાંતી અને હિંદીમાં મૂળ શબ્દાથ દીકા, વિસ્તૃત, વિવરણ સાથે પ્રકાશમા લાવે છે એ જૈન સમાજ માટે અતિ ઝોરમ અને આનંદનો વિષય છે

બ મહાવીર અત્યારે આપણી પાસે વિદ્યમાન નથી. પરંતુ તેમની વાણી રૂપે અક્ષરરેહ જણુધર મહારાજેએ શ્રુતપરપરાએ સાચવી રાખ્યો. શ્રુતપર પસંથી સત્તવાતુ જ્ઞાન અત્યારે વિસ્તૃત થવાનો સમય ઉપસ્થિત થવા લાગ્યો ત્યારે શ્રી દેવદિગ્ધિ કમાશમણે વલ્લીપુર-વળામાં તે આગમીને પુસ્તકો રૂપે આરૂઢ કર્યો. આજે આ સિદ્ધાંતો આપણી પાસે છે તે અધમાગધી ભાષામાં છે. અત્યારે આ ભાષા ભગવાનની, દેવેની તથા જનમણુની ધર્મભાષા છે. તેને આપણા કમણે અને કમણીએ તથા મુમુક્ષુ આવક શાવિકાઓ મુખપાક કરે છે પરંતુ તેનો અર્થ અને ભાવ ધણા મૈદાઓ સમજે છે

જિનાગમ જે આપણા અદ્યેષ પવિત્ર ધર્મસૂત્રો છે જે આપણી આંખો છે તેનો અભ્યાસ કરવો જે આપણી સોની-સૈન માત્રની ફરજ છે તેને સત્ત્વ સ્વરૂપે સમજાવવા માટે આપણા સદ્ગુણાંયે જ્ઞાનદિવાકર શ્રી ધાસીલાલજી મહારાજેસત્ત્વ સંકલ્પ કર્યો છે અને તે વિખિત સૂત્રોને પ્રગટાવી શાઓદાર સમિતિદાસ જ્ઞાન પરમ વહેલી કરી છે. આવા અનુપમ કાર્યમાં સકળ જીનોનો સહકાર અવશ્ય છે. એવો થટે અને તેનો વધારેમાં વધારે પ્રચાર થાય તે માટે પ્રયત્નો કરવા થટે

બ મહાવીરને જણુધર ઝોતમ પૂછે છે કે કે ભગવાન, સૂત્રની આરાધના કરવાથી જ્ઞાન પ્રાપ્ત થાય છે? ભગવાન તેના પ્રતિ ઉત્તર આપે છે કે શ્રુતની આરાધનાથી જીવોના અજ્ઞાનનો નાશ થાય છે, અને તેઓ સચ્ચસ્તા કહેશેથી નિવૃત્તિ મેળવે છે અને સંસાર કહેશેથી નિવૃત્તિ અને અજ્ઞાનનો નાશ થતાં મોક્ષ ફળની પ્રાપ્તિ થાય છે

આવા જ્ઞાનકર્મમાં મૂર્તિપૂજક જીનો દિગ્ધર અને અન્ય ધર્મીઓ કલ્પે અને લાખો રૂપિયા ખર્ચે છે. હિંદુ ધર્મમાં પવિત્ર મનાતા જ્ઞાન જીવાના સેકરો નહિ પણ કલ્પે દીકા પ્રધો દુનિયાની લગભગ અર્ધ ભાગાઓમાં પ્રગટ થયા છે. ઈશ્વર ધર્મના પ્રચારકો તેમના પવિત્ર ધર્મજન્ય બાઈલેના પ્રચારથી તેજુ જગતની સ્વ

ભાષાઓમાં ભાષાતર કરી તેને પડતર કરતા પણ ઘણી ઝોઘી કિમતે વેચી ધર્મ-સૂત્રોનો પ્રચાર કરે છે મુસ્લિમ લોકો પણ તેમના પવિત્ર મનાતા ગ્રન્થ કુગનનું અનેક ભાષાઓમાં ભાષાતર કરી સમાજમાં પ્રચાર કરે છે આપણે પંચા પગનો મોઢ ઉતારી ભગવાનના સિદ્ધાંતોનો પ્રચાર કરવા માટે તન, મન, ધન સમર્પણ કરવા જોઈએ. અને સૂત્ર પ્રકાશનના કાર્યને વધુ ને વધુ વેગ મળે તે માટે સક્રિય પ્રયત્નો કરવા જોઈએ. આવા પવિત્ર કાર્યમાં સાપ્રદાયિક મતભેદો મૌઝે ભૂલી જવા જોઈએ અને શુદ્ધ આશયથી થતા શુદ્ધ કાર્યને અપનાવી લેવું જોઈએ. સમિતિના નિયમાનુસાર ૩ ૨૫૧૭ ભરી સમિતિના સભ્ય બનવું જોઈએ ધાર્મિક અનેક ખાતાઓના મુકાબલે સૂત્ર પ્રકાશનનુ-જ્ઞાનપ્રચારનુ આ ખાતુ સર્વશ્રેષ્ઠ ગણવું જોઈએ.

આ કાર્યને વેગ આપવાની સાથે સાથે જો આગમો-ભગવાનની જો મહાવાણીનું પાન કરવા પણ આપણે હરહ મેશ તત્પર રહેવું જોઈએ જેથી પરમ શાંતિ અને જીવનસિદ્ધિ મેળવી શકાય

(સ્થા જૈન તા, ૫-૭-૫૬)

..

શ્રી અ ભા શ્રે સ્થા જૈન શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિના પ્રમુખ શ્રી વગેરે રાણપુર પરમ પવિત્ર સૌગંધીનું પુણ્ય ભૂમિ પર ત્યારથી શાંત-શાન્તવિશારદ અપ્રમાદિ પૂજ્ય આચાર્ય મહારાજ શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજના પુનીત પગલા થયાં છે ત્યારથી ઘણા લાભા કાળથી લાગુ પડેલ જ્ઞાનાવરણીય કર્મના પડળ ઉતારવાનો શુભ પ્રયાસ થઈ રહ્યો છે અને જે પ્રવચનની પ્રભાવના તેઓશ્રી કરી રહ્યા છે તે અનંત ઉપકારક કાર્યમાં તમે જે અપૂર્વ સહાય આપી રહ્યા છો તે માટે તમો સર્વને ધન્ય છે અને જો શુભ પ્રવૃત્તિના શુભ પરિણામોનો જનતા લાલ લે છે, મને તો સમન્વય છે કે સાધુજી છટે ગુણસ્થાનકે હોય છે પણ પૂજ્ય શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ તો બહુધા સાતમે અપ્રમત્ત ગુણસ્થાનકે જ રહે છે એવા અપ્રમત્ત માત્ર પાત્ર-સાત સાધુઓ જો સ્થાનકવાસી જૈનસમાજમાં હોય તો સમાજનું શ્રેય થતા જરાએ વાગ ન લાગે સમાજ કાશમાં સ્થા જૈન સપ્રદાયનો દિવ્ય પ્રભાકર જળહણી નીકળે પણ વો દિન .

શ્રી શાસ્ત્રોદ્ધારસમિતિને મારી એક નમ્ર સુચના છે કે-પૂજ્યશ્રીની વૃદ્ધાવસ્થા છે, અને કાર્યપ્રણાલિકા યુવાનોને શરમાવે તેવી છે તેમને ગામેગામ વિહાર કરવું અને શાસ્ત્રોદ્ધારનું કાર્ય કરવું તેમાં ઘણા શારીરિક માનસિક અને વ્યવહારિક મુશ્કેલી વેઠવી પડે છે, તો કોઈ યોગ્ય સ્થળ કે જ્યાંના શ્રાવકો ભક્તિ ધાળા હોય વાઝાના રાગના વિષથી અલિપ્ત હોય એવા કોઈ સ્થળે શાસ્ત્રોદ્ધારનું કાર્ય પૂર્ણ થાય ત્યાં સુધી સ્થિરતા કરી શકે એના માટે પ્રબળ કરવો જોઈએ. બીજા કોઈ એવા સ્થળની અનુકૂળતા ન મળે તો છેવટ અમદાવાદમાં યોગ્ય સ્થળે રહેવાની સગવડતા કરી અપાય તો વધુ સારું મહારી આ સુચના પર ધ્યાન આપવા ફરી યાદ આપુ છું ફરીવાર પૂજ્ય આચાર્યશ્રીને અને તેમના સત્કાર્યના સહાયકોને મારા અભિનંદન પાઠવું છું તે સ્વીકારશેજી લી. સદાનંદી જૈનસુનિ છોટાલાલજી

“ જૈનસિદ્ધાંતના ” તત્ત્વીયીનો અભિપ્રાય

સ્થાનકવાસીઓમાં પ્રમાણભૂત સૂત્રો બહાર પાડનારી આ એકની એક સભ્ય છે અને એના આ છેલ્લા રિપોર્ટ ઉપરથી જણાય છે કે તેણે ઘણી સારી પ્રગતી કરી છે તે બોધ જ્ઞાન હ થાય છે

મૂળ પાઠ ટીકા, હિંદી તથા ગુજરાતી અનુવાદ સહિત સૂત્રો બહાર પાડવાં એ કાંઈ સહેલું કામ નથી એ બોલે મહાશાસ્ત્ર કામ છે અને તે કામના શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિ ઘણી સફળતાથી પાર પાડે રહી છે તે સ્થાનકવાસી સમાજ માટે ઘણા ગૌરવના વિષય છે અને સમિતિ મન્યવાદને પાત્ર છે

સમિતિ તરફથી નવસૂત્રો બહાર પડી બુકમાં છે હાલમાં ત્રણ સૂત્રો છપાય છે નવ સૂત્રો છપાઈ ગયાં છે અને જાણીપ પ્રસિદ્ધિ તથા નવીસૂત્ર તૈયાર થઈ રહ્યાં છે.

હાલમાં મત્રી શ્રી સાકરજી હ જાતકિંદ સમિતિના કામમાં જ તેમનો આગ્રહ વખત આવે છે અને સમિતિના કામકાજને ઘણો વેગ આપી રહ્યા છે તેમની જત માટે મન્યવાદ

અને આ મહાશાસ્ત્રકામના મુખ્ય કાર્યકર્તા તો છે વધેશ્વર પંડિત યુનિશ્ચી ધાસીલાલ મહાશાસ્ત્ર મૂળ પાઠ સંશોધન તથા સંસ્કૃત ટીકા તેઓથી જ તૈયાર કરે છે યુનિશ્ચીનો આ ઉપકાર આપ્તાય સ્થા. જૈન સમાજ ઉપર ઘણો મહાન છે એ ઉપકારનો બહોલો તો બાબી શકાય તેમજ નથી.

પરંતુ આ સમિતિના શ્રેયશ્ચર બની તેના બહાર પડેલાં સૂત્રો ઘરમાં વસાવી તેનું અધ્યયન કરવામાં આવે તો જ મહાશાસ્ત્રીનું શ્રેષ્ઠ સ્વર્ગ જાડું થાય.

ભગવાને કહ્યું છે કે વક્ષ્ય જાણ તજો જ્યાં પહેલું જ્ઞાન પડી જાય, હયા ધર્મને વશાઈ સમજવો હોય તો ભગવાનની વાણીરૂપ આપણા સૂત્રો વાંચવાં જ બોધને તેનું અધ્યયન કરવું બોધને અને તેનો ભાવાર્થ સમજવો બોધને.

જેટલા માટે આ શાસ્ત્રોદ્ધારસમિતિના સર્વ સૂત્રો હરેક સ્થા. જૈન પાતાના ઘરમાં વસાવવાં જ બોધને સર્વ ધર્મજ્ઞાન આપણા સૂત્રોમાંજ સમાયેલું છે અને સૂત્રો સહેલાઈથી વાંચીને સમજી શકાય છે માટે હરેક સ્થા. જૈન આ સૂત્રો વાંચી એ આપ જરૂરું છે

“ જૈનસિદ્ધાંત ” ટીસેમ્બર-૫૬

શ્રી ઉપાશક દશાંગ સૂત્રને માટે અભિપ્રાય

મૂળ સૂત્ર તથા પૂજ્ય મુનિશ્રી ઘાસીલાલજીએ બતાવેલ સંસ્કૃત છાયા તથા ટીકા અને હિંદી તથા ગુજરાતી-અનુવાદ સહિત

પ્રકાશક-અ ભા શ્રે સ્થાનકવાસી જૈનશાસ્ત્રોદ્ધારસમિતિ, ગરેડીઆ કુવા રોડ, શ્રીન લોજ પાસે, રાજકોટ (સૌરાષ્ટ્ર) પૃષ્ઠ ૬૧૬ બીજી આવૃત્તિ બેવડું (મોટું) કદ પાકુ પુઠું, જેકેટ સાથે સને ૧૯૫૬ કિ મત રૂ. ૮-૮-૦

આપણા મૂળ બાર અગ સૂત્રોમાનુ ઉપાશકદશાંગ એ સાતમું અગ સૂત્ર છે એમા ભગવાન મહાવીરના દશ ઉપાસકો-શ્રાવકોના જીવનચરિત્રો આપેલા છે, તેમા પહેલું ચરિત્ર આનંદ શ્રાવકનું આવે છે

આનંદ શ્રાવકે જૈનધર્મ અગીકાર કર્યો અને બાર વ્રત ભગવાન મહાવીર પાસે અગીકાર કરી પ્રતિજ્ઞા (પ્રત્યાખ્યાન) લીધાં તેનું સવિસ્તર વર્ણન આવે છે તેની અતર્ગત અનેક વિષયો જેવા કે, અભિગમ, લોકલોકસ્વરૂપ, નવતત્ત્વ, નરક, દેવલોક વગેરેનું વર્ણન પણ આવે છે

આનંદ શ્રાવકે બાર વ્રત લીધા તે બાર વ્રતની વિગત અતિચારની વિગત વગેરે બધું આપેલું છે તે જ પ્રમાણે બીજા નવ શ્રાવકોની પણ વિગત આપેલ છે

આનંદ શ્રાવકની પ્રતિજ્ઞામા અરિહત્ત્વેદ્યાઈ શબ્દ આવે છે મૂર્તિપૂજકો મૂર્તિપૂજા સિદ્ધ કરવા માટે તેનો અર્થ અરિહતનું ચૈત્ય (પ્રતિમા) એવો કરે છે પણ તે અર્થ તદ્દન ખોટો છે અને તે જગ્યાએ આગળ પાછળના સબધ પ્રમાણે તેનો એ ખોટો અર્થ બધ બેસતો જ નથી તે મુનિશ્રી ઘાસીલાલજીએ તેમની ટીકામા અનેક રીતે પ્રમાણ આપી સાબિત કરેલ છે અને અરિહત્ત્વેદ્યાઈનો અર્થ સાધુ થાય છે તે બતાવી આપેલ છે

આ પ્રમાણે આ સૂત્રમાથી શ્રાવકના શુદ્ધ ધર્મની માહિતી મળે છે તે ઉપરાંત તે શ્રાવકોની ઋધ્ધિ, રહેઠાણ, નગરી વગેરેના વર્ણનો ઉપરથી તે વખતની સામાજિક સ્થિતિ, રીતરિવાજ રાજવ્યવસ્થા વગેરે બાબતોની માહિતી મળે છે

એટલે આ સૂત્ર દરેક શ્રાવકે અવશ્ય વાચવું જોઈએ, એટલું જ નહિ પણ વારંવાર અધ્યયન કરવા માટે ઘરમા વસાવવું જોઈએ

પુસ્તકની શરૂઆતમા વર્ધમાન શ્રમણસઘના આચાર્ય શ્રી આત્મારામજી મહારાજનું સમતિપત્ર તથા બીજા સાધુઓ તેમજ શ્રાવકોના સમતિપત્રો આપેલ છે, તે સૂત્રની પ્રમાણભૂતતાની ખાત્રી આપે છે

“જૈનસિંધવાત” જાન્યુઆરી-૫૭

શ્રી ૫૦૦૧૫ આપનાર આદ્ય સુરભીશ્રી



(૧૫) શ્રી ૬ આ ર સી ભા ઈ અ વ જ ભા ઈ
સો ભા ધ ર

आचारानुसूत्रके पञ्चम अध्यायनकी

विषयानुक्रमणिका—

प्रथम उद्देश

विषय	पृष्ठाङ्क
१ चतुर्थ अध्यायनके साव पञ्चम अध्यायनका सम्बन्धमतिपादन	१
२ पञ्चम अध्यायनके छ उद्देशों में वर्णित विषयोंका सूचन	२-३
३ प्रथम सूत्र का अवतरण	३
४ प्रथम सूत्र और उसकी छाया	४
५ इस लोकमें कितनेक मनुष्य, प्रयोजन अथवा बिना प्रयोजन के ब्रह्म-स्यावर जीवों की हिंसा करते हैं, वे दुर्गतिमागी होते हैं। वे अति तीव्र दुःखादिविषयोंकी अभिरूपा के कारण इन ब्रह्म-स्यावर जीवों की हिंसा करते हैं और इसके फल स्वरूप उन्हें जन्म-मरण के दुःखों से छुटकारा नहीं मिलता, अतः एव विषयों के सुखोंसे उन्हें वृत्ति भी नहीं होती। और जो अपूर्वकारण से ब्रह्म को भिन्न कर चुके हैं वे न कर्मोंके बीचमें हैं और न बाहर ही; अपना जिनमें निवारण का काम कर लिया है वे न तो कर्म या संसार के मध्य में हैं और न बाहर; अथवा-अर्थक्य से द्वावशाङ्ग उपदेशक तीर्थंकर महाशय न संसार के मध्यमें हैं न उसके बाहर ही।	४-१६
६ द्वितीय सूत्र का अवतरण, द्वितीय सूत्र और छाया	१७
७ सम्यक्त्व के प्रमाण से संसार की असारता समझनेवाले मध्य जीव अपने जीवनको वायुमकम्पित कुशाग्रस्थित अलपिन्दु के समान समझते हैं, उसी प्रकार वे बालजीवों के जीवनको भी अतिषष्ठसमझते हैं। बालजीव भ्रू कर्मोंको करते रहते हैं, वे उनके दुष्परिणामको नहीं समझते हैं और जन्ममरण के चक्र से कभी भी छुटकारा नहीं पाते।	१७-२६

विषय -

पृष्ठाङ्क

- ८ तृतीय सूत्र का अवतरण । २६
- ९ तृतीय सूत्र और छाया । २७
- १० संशय के परिज्ञान से जीव ससार के प्रति संशयशील हो उसका परित्याग करता है, और संशय के अपरिज्ञान से जीव न तो ससार के प्रति संशयशील होता है और न उसका परित्यागही करता है । २७-३१
- ११ चतुर्थ सूत्र का अवतरण, चतुर्थ सूत्र, छाया । ३२
- १२ संसारके कटुविषाकको जाननेवाले चतुर पुरुष, किसी भी प्रकारके सागारिकका सेवन नहीं करते । जो मूढ़ पुरुष महोदयसे सागारिक सेवन करते हैं, उनकी प्रथम बालता सागारिक सेवन करना है और दूसरी बालता पूछे जाने पर उसको छिपानेके लिये असत्य भाषण करना है । इस लिये प्राप्त शब्दादि विषयोंको परित्याग कर और अप्राप्त विषयोंको मनसे भी चिन्तन नहीं करते हुए भव्य जीव, उन विषयों को इहलोक और परलोकमें कटुक फल देनेवाले जान कर दूसरे लोगोंको भी 'मैथुन अनासेवनीय है'-ऐसा उपदेश दें । ३३-३५
- १३ पञ्चम सूत्र और छाया । ३५
- १४ कितनेक मनुष्य रूपमें और कितनेक स्पर्शमें गृह्य हो कर नरकादि गतियों के भागी होते हैं । सावद्य व्यापार करनेवाले मनुष्य, इन सावद्यव्यापारतत्पर मनुष्योंमें उत्पन्न होते हैं, अथवा पट्टजीवनिकायों में उत्पन्न होते हैं । साधु होकर भी कितनेक विषयस्पृही हो जाते हैं, फिर पापकर्मों में रत रहने लगते हैं, वे अशरणको ही शरण मानते हैं, कोई २ उनमें एकलविहारी भी हो जाते हैं । ये अत्यन्त क्रोध आदि दुर्गुणोंसे युक्त होते हैं, सुसाधु बननेका ढोंग करते हैं, 'मेरे दोषोंको कोई

समझे नहीं' इसके लिये सर्वदा प्रयत्नशील होते हैं। वे अज्ञानप्रमाद दोषसंयुक्त होनेसे धर्मके मर्मज्ञ नहीं होते। विषयकृपायोंसे पीड़ित ये कर्म बांधनेमें दक्ष होते हैं, सामर्थ्यव्यापारमें लगे रहते हैं, और ये 'रत्नप्रपणके आराधन बिना ही मोक्ष होता है' ऐसा उपदेश देते हैं। इनका कमी भी मोक्ष नहीं होता। ये तो संसारचक्रमें ही फिरोत रहते हैं।

३५-४९

॥ इति प्रथम उद्देशः ॥

*

॥ अथ द्वितीय उद्देशः ॥

१ प्रथम उद्देशके साथ द्वितीय उद्देशका सम्बन्धव्यपन

५०

२ प्रथम सूत्र और छाया।

५०-५१

३ इस लोकमें कितनेक पङ्कजीवनिकायोंके रत्नक संपत्ति धुनि होते हैं। वे मनुष्यजन्म-आर्यक्षेत्रादिको कर्मसंपत्तिका अवसर समझते हैं। वे कर्मसंपत्तिके लक्षण अभ्येक्षण करते रहते हैं। इस सम्पत्तिदर्शनज्ञानचारित्र्यस्य मार्गका उपदेश तीर्थकरोंनि किया है। साधु कमी भी प्रमाद नहीं करे किसी भी जीवको आस्ताता नहीं पहुँचावे। इस संसारमें मनुष्योंकी रुचि भिन्न होती है इस लिये सुखदुःख भी सबके लिये समान नहीं है। इसलिये धुनि हिंसा मृपायाद आदिसे रहित होकर, परीपदोषसंगोंसे स्पृष्ट होता हुआ भी उन सम्पत्तिसर्वादिविषय जमित परीपदोंको जीतनेका प्रयत्न करे।

५१-५९

४ द्वितीय सूत्र और छाया।

५९

५ परीपदोंको जीतनेवाला धुनि क्षमितापर्याय अथवा सम्यक्पर्याय कहा जाता है। इस प्रकारका धुनि चारित्र्यमोहनी यदि अपना हिंसादि पापकर्मोंमें आसक्त नहीं होता है। यदि उसको कमी शीघ्र पापसंश्लेषसे गुमावि रोग, आ कि आतङ्क

विषय

कहे जाते हैं हो जाते हैं तो वह उनकी वेदनाको शान्तिपूर्वक सहता है, और वह इस प्रकार विचारता है—यह स्वकर्मजनित वेदना पहले या पीछे मुझे ही सहनी होगी। यह शरीर विनाशशील है, विध्वंसनशील है, अध्रुव है, अनित्य है, अशाश्वत है, चया-पचयिक है, परिणमनशील है। अतः ऐसे शरीरको और सुकुलजन्म और बोधिलाभ आदिके अवसरको पा कर तप सयम आदि द्वारा अपने जीवनको सफल बनाना चाहिये।

५९-६८

६ तृतीय सूत्र का अवतरण, तृतीय सूत्र और छाया।

६८

७ शरीर की विनाशशीलता आदि देखनेवाला मुनि नरकादि गति के भागी नहीं होता है।

६९-७१

८ चतुर्थसूत्रका अवतरण, चतुर्थ सूत्र और छाया।

७१

९ इस लोकमें कितनेक मनुष्य परिग्रही होते हैं। थोड़ा या बहुत, अणु या स्थूल, सचित्त या अचित्त जो भी परिग्रह इनके पास होते हैं उन्हीं परिग्रहों में ये मग्न रहते हैं। यह शरीर ही किसी-को महाभयदायक होता है। मुनि, असंयमी लोगों के धन को या व्यवहार को महाभय का कारण जानकर उससे दूर रहता है। द्रव्यपरिग्रह के संबन्धके त्यागो परिग्रहजनित भय नहीं होता है॥

७१-७५

१० पञ्चम सूत्र और छाया

७६

११ निष्परिग्रह मुनि अपने कर्तव्य मार्ग में जागरूक होता है, प्रत्यक्षज्ञानियोंने ऐसे शिष्यों के लिये ही ज्ञान, दर्शन, चारित्र का उपदेश किया है। इसलिये हे भव्य ! मोक्ष की ओर लक्ष्य रखकर सयममें विशेषतः पराक्रमशाली बनो। ऐसे संयमी ही ब्रह्मचारी होते हैं। यह सब मैंने तीर्थङ्कर भगवान् के मुख से सुना है, इसलिये यह सब मेरे हृदयमें स्थित है। ब्रह्मचर्यमें स्थित मनुष्य का ही वन्ध से प्रमोक्ष (छुटकारा) होता है। अथवा—ज्ञानावरणीयादि अष्टविध कर्मों का सम्बन्ध-

रूप वन्ध और उन कर्मों से पृथक् होना रूप, प्रमोक्ष, ये दोनों अन्तःकरणमें ही हैं। आरम्भपरिग्रह या अमशस्त भाव से रहित साधु, सभी प्रकारों के परीपहों को यावन्जीवन सहे। अंतर्गतों को तीर्थकरोपदिष्ट मार्ग से बहिर्वर्त्ती समझे। तीर्थकरोपदिष्ट मार्ग के अन्तर्वर्त्ती मुनि अममत्त होकर विचर। महावत्यस्फुटित इस चारित्र का परिपालन, हे शिष्य ! तुम अच्छी तरह करो। उद्यम समाप्ति।

७६-८१

॥ इति द्वितीय उद्यम ॥



॥ अथ तृतीय उद्देश ॥

- १ द्वितीय उद्देश के साथ तृतीय उद्देश का संपन्ध रूपन । ८२
- २ प्रथम सूत्रका अन्तरण, प्रथम सूत्र और छाया । ८२
- ३ जो कोई इस लोकमें अपरिग्रही होते है, वे संयमीजन, अन्य स्फुल आदि वस्तुओंमें ममत्व के अभाव से ही अपरिग्रही होते हैं। मेधावी मुनि तीर्थकर आदियों की वाणी सुनकर और ठसीको चर्म समस्तकर, तदनुसार आचरण कर के अपरिग्रही हो जाता है इस मार्गमें मैंने कर्मपरम्परा दूर करने का ऐसा सरल उपाय बतलाया है बैसा अन्यमार्ग में नहीं है। इसलिये इस मार्गमें स्थित मुनि अपनी शक्ति को न छिपावे । ८३-८८
- ४ द्वितीयसूत्र का अन्तरण, द्वितीयसूत्र और छाया । ८८
- ५ तीन प्रकार के लोग होते हैं—कोई समय ग्रहण करता है और मरणपर्यन्त पूर्णतत्परता के साथ उस निभाता है, कोई समय ग्रहण करता है और परिहापमगस बाधित हो उसे छोड़ देता है; और कोई न समय छेता इन उस छोड़ता है। जो

संयम लेकर गृहस्थों के आश्रित होकर रहने लगता है वह भी गृहस्थ-जैसा ही है ॥

८९-९२

६ तृतीय सूत्र का अवतरण, तृतीय सूत्र और छाया ।

९३

७ तीर्थंकरोंने यह सब अपने केवलज्ञान से प्रत्यक्ष करके कहा है। इस तीर्थङ्करोक्त प्रवचनमें व्यवस्थित मुनि, तीर्थंकर के आज्ञानुसार चलनेवाला, पण्डित और स्वजन तथा विषय संवन्धी स्नेहरहित होता है; पूर्व और अपर रात्रिमें प्रतिक्रमण स्वाध्याय आदि सद्गुणानुष्ठानमें प्रयत्नशील होता है, शील के स्वरूप को जानकर उसका पालन करता है; शील के आचरण और अनाचरण के फलको सुनकर वह कामरहित और अज्ञा-रहित हो जाता है। भव्यों को इन ज्ञानावरणीयादिकर्मरूप आन्तरिक शत्रुओं से ही युद्ध करना चाहिये, बाह्य शत्रुओं से युद्ध करने से क्या लाभ ?

९३-१००

८ चतुर्थ सूत्रका अवतरण, चतुर्थ सूत्र और छाया ।

१०१

९ परीपह आदिके साथ युद्ध करने योग्य यह औदारिक शरीर दुर्लभ है । इस संसारमें कुशल तीर्थङ्करादिकोंने ज्ञपरिज्ञा और प्रत्याख्यान परिज्ञाका विवेक कहा है । धर्मसे च्युत अज्ञानी जीव, गर्भादिमें निवासजनित दुःखका अनुभव करता है । यह विषय, आर्हत प्रवचनमें ही कहा गया है । धर्मसे च्युत जीव रूप आदिमें और हिंसा आदिमें प्रवृत्ति करता है । जो मुनि होता है वह धर्मपथमें सतत प्रवृत्त, आस्रवरहित और रत्नत्रयके अभ्यासी होता है । वह असयत लोगोंको जानता है; इस लिये वह ज्ञानावरणीयादि कर्मोंको और उनके कारणों को अच्छी तरह ज्ञपरिज्ञासे जान कर प्रत्याख्यानपरिज्ञासे परित्याग करता है, और वह हिंसासे सर्वथा विरत होता है, संयमी होता है, धृष्टता नहीं करता है, सभीके सुखदुःखके जाननेवाला होता है, स्वपरके कल्याणामिलापी होता है, मोक्षमार्गमें ही

सतत प्रवृत्त रहता है, साध्याचरणसे रहित होता है, बाह्यमा
म्यन्तर अभिष्यङ्गके परित्यागी होता है और भीनोंमें आसक्ति
नहीं करता है। इस प्रकारका मुनि कोई भी साध्याचरण नहीं
करता है।

१०१-११५

१० पञ्चम सूत्रका अवतरण, पञ्चमसूत्र और छाया।

११५

११ वसुमान् मुनि पदार्थज्ञानयुक्त आत्मासे संपन्न होकर, अकरणीय
पापकर्मोंका अन्वेषी नहीं होता है। जो सम्यक्त्व है वही
मीन है, जो मौन है वही सम्यक्त्व है—इस वस्तु को समझो।
इस सम्यक्त्वका आचरण वह नहीं कर सकता है जो क्षिपिल
होता है, पुत्रादिकों के प्रेममें फंसा रहता है, श्रम्यादि विषयों
में निसर्फी अभिरुचि होती है, जो प्रमादी है और जो गृह
स्थित है, जो इस सम्यक्त्वका आचरण करता है ऐसा मुनि
सर्व साध्याध्यापारपरित्यागरूप मुनिभाव को सम्पूर्ण प्रकार
से ग्रहण कर कर्मण और औदारिक आदि शरीरों को दूर
करे। ऐसा मुनि नीर होता है, अन्तर्मात आहारको संयन
करता है। ऐसा मुनि ही संसारसागर को विरनेवाला, मृत
और विरत कहा गया है। उल्लेखसमाप्ति।

११६-१२१

॥ इति तृतीय उद्देश ॥



॥ अथ चतुर्थ उद्देशः ॥

१ तृतीय उद्देश क साध चतुर्थ उद्देश का संबन्धकथन।

१२२

२ प्रथम सूत्र और छाया।

१२२

३ ध्यातानभिज्ञ और मत्पश्यस्कृ मुनि को एकाकी ग्रामानुग्राम
विहार नहीं करना चाहिये।

१२२-१२६

४ द्वितीय सूत्र और छाया।

१२७

- ५ कोई कोई एकाकि-विहारी मुनि, गृहस्थोंसे शिक्षावचनद्वारा उपदिष्ट होनेपर भी कुपित हो जाता है। ऐसा अभिमानी मुनि महामोहसे युक्त होता है। इसको विविध प्रकारके परीपहोप-सर्गजनित वेदनाओंका अनुभव करना पड़ता है, इसलिये विवेकी मुनिको ऐसा नहीं होना चाहिये। उसे तो भगवान्‌के कथनानुसार गुरुकी आज्ञामें रहते हुए सावधानताके साथ विहार करना चाहिये। १२६-१३२
- ६ तृतीय सूत्र और छाया। १३३
- ७ आचार्यके आज्ञानुसार चलनेवाला मुनि गमनागमनादि क्रियायें शास्त्रोक्त रीतिके अनुसार करता हुआ गुरुकुलमें निवास करे। कभी कभी मुनिगुणोंसे युक्त मुनिके द्वारा भी द्विन्द्रियादि प्राणियोंकी विराधना हो जाती है, परन्तु उनके वह विराधनाजनित कर्म उसी भवमें क्षीण हो जाते हैं, क्योंकि अप्रमादपूर्वक उन कर्मोंके क्षणार्थ प्रायश्चित्त करता है। १३३-१३८
- ८ चतुर्थ सूत्रका अवतरण, चतुर्थ सूत्र और छाया। १३९-१४०
- ९ ऐसे मुनिकी दृष्टि और ज्ञान विशाल होता है। ये सर्वदा ईर्यासमिति आदिसे युक्त होता है। वह स्त्री आदिके भोगोंकी निरर्थकतासे पूर्ण परिचित होता है। वह स्त्री विषयक वासना को विविध उपायोंसे दूर करता है। ऐसा मुनि स्त्रियोंसे उनके घर सम्बन्धी कुछ भी नहीं पूछता, स्त्रियोंसे मेल-जोल बढ़ानेकी कभी भी चेष्टा नहीं करता। यह सर्वदा वाग्गुप्त, अध्यात्मसंवृत हो कर पापोंसे सदा दूर रहता है। हे शिष्यों ! इस प्रकारके मुनिधर्मका पालन करो। १४०-१४९

॥ इति चतुर्थ उद्देशः ॥

॥ अथ पञ्चम उद्देशः ॥

विषय

पृष्ठाङ्क

- १ चतुर्थ उद्देशके साय पञ्चम उद्देशका सम्बन्ध-कथन । १५०
- २ प्रथम सूत्रका अवतरण, प्रथम सूत्र और छाया । १५१
- ३ आपार्य महाराज हृदके समान निर्मल और असोम्य होकर निर्मय हो विचरते हैं । १५१-१५२
- ४ द्वितीय सूत्रका अवतरण, द्वितीय सूत्र और छाया । १६०
- ५ संश्रयस्मा शिष्य कमी भी स्याधि नहीं पाता । कोईर गृहस्थ भी तीर्थंकरादिके उपदेशानुसार मनुष्य करनेमें उत्पर रहता है और कोई कोई जनगार भी । किसी ज्ञानी मुनिके द्वारा तीर्थंकरादि-उपदेशानुसार मनुष्य-निमित्तप्रेरित शिष्य कमी भी निर्दिष्ट [दुःस्तिष्ठ] न होते । १६०-१६६
- ६ तृतीय सूत्रका अवतरण, तृतीय सूत्र और छाया । १६६-१६७
- ७ तीर्थंकरोंने जो कुछ कहा है वह सभी सत्य और निश्चिन्त है । १६७-१६९
- ८ चतुर्थ सूत्रका अवतरण, चतुर्थ सूत्र और छाया । १६९-१७०
- ९ कोईर भ्रष्टालु विश्वासी मनुष्य, बीसा सेनेके बाद जिनोक्त जीवादि तत्त्वोंमें सन्देह होने पर 'जिनोक्त सभी तत्त्व यथार्थ ही हैं, अन्यथा नहीं हो सकता' इस प्रकार उन तत्त्वोंका सम्यक् मानता है और वह बादमें भी उनको सर्वदा सम्यक् ही मानता है । कोईर सम्यक् माननेवाला बादमें असम्यक् मानने लगता है । कोईर असम्यक् मानने वाला बादमें सम्यक् मानने लगता है । कोईर सम्यक् माननेवाला बादमें भी सर्वोक्त पदार्थों को सम्यक् और असर्वोक्त पदार्थों को असम्यक् ही मानता है । जिन भगवान् से कथित होनेके कारण जो पदार्थ सम्यक् ही हैं उनको असम्यक् माननेवाला कोईर बादमें भी मिथ्यादृष्टियों के

तत्त्वोंको सम्यक् मानता है और जिनोक्त तत्त्वोंको असम्यक् मानता है। सन्देह रहित संयमियोंको चाहिये कि वह सन्देहशील लोगोंको संयममें उद्योगशील होनेकी प्रेरणा करें। इस प्रेरणासे संयमके विरोधी ज्ञानावरणीय आदि कर्मोंकी परम्परा नष्ट हो जाती है। संयमाराधनमें सतत जागरूक मुनियों के आचरणका अनुकरण करो। बालभावमें कभी भी मत पडो।

१७०-१८२

१० पञ्चम सूत्रका अवतरण, पञ्चम सूत्र और छाया।

१८२-१८३

११ तुम जिसे हन्तव्य मानते हो, वह कोई दूसरा नहीं है; अपि तु वह, तुम स्वयं ही हो। इसी प्रकार तुम जिसको आज्ञापयितव्य मानते हो, जिसे परितापयितव्य मानते हो, जिसे परिग्रहीतव्य मानते हो और जिसे अपद्रावयितव्य मानते हो, वह कोई दूसरा नहीं; अपितु तुम्हीं हो। इस प्रकारके परिज्ञानवाला ऋजु-सरल होता है। इसलिये किसी भी जीवका घात न करो और न करवाओ। जो घातक होता है उसे भी उसी प्रकार घातका अनुभव करना पड़ता है। इसी लिये किसी को भी हन्तव्य नहीं समझे।

१८३-१८८

१२ छठा सूत्रका अवतरण, छठा सूत्र और छाया।

१८९-१९०

१३ जो आत्मा है वही विज्ञाता है और जो विज्ञाता है वही आत्मा है। जिससे जाना जाता है वह आत्मा है। वह ज्ञानस्वरूप आत्मा भी उम आत्मशब्दसे ही कहा जाता है, अर्थात् ज्ञान भी 'आत्म' शब्दसे व्यवहृत होता है। यह आत्मवादी सम्यक्पर्याय कहा जाता है।

१९०-१९९

॥ इति पञ्चम उद्देश ॥

विषय

पृष्ठाङ्क

- १ पञ्चम उद्देशके साथ छठे उद्देशका सम्बन्धकथन, और प्रथम सूत्रका अवतरण । २००-२०१
- २ प्रथम सूत्र और उसकी छाया । २०१
- ३ कितनेक लोग तीर्थकरसे अनुपदिष्ट धर्मांमास मार्गमें उपयोगवासी होते हैं और अपनेको तीर्थकरोपदिष्ट धर्ममार्ग के संयमी समझते हैं निन्दित मार्गके अनुयायी कितनेक लोग तीर्थकरसे अनुपदिष्ट धर्ममार्गमें सर्वथा अनुपयोगी होते हैं । हे शिष्य ! तुम ऐसे मत बनो पूर्वोक्त दोनों प्रकारका न बनना यह तीर्थकरोका अभिमत है । शिष्यको सर्वदा आचार्यके संकेतानुसारी होना चाहिये । २०१-२०४
- ४ द्वितीय सूत्रका अवतरण, द्वितीय सूत्र और छाया । २०५
- ५ जो परीपद्मोपसर्ग अथवा धातिकर्म क्लृप्त्यको परामित करके स्वयं उन परीपद्मोपसर्गोंसे या परतीर्थिकोंसे पराजित न हो कर मिनोक्त तत्त्वकी जिज्ञासा करते हैं वह किसीका आत्मम्बन नहीं छेत्त है । रत्नत्रयकी आराधना करनेवाले इन महापुरुषोंका मन बहिर्बर्षी नहीं होता । वे पूर्वाचार्यका पारम्परिक उपदेष्टा वीतरागके बचनोंका अभिन्न हो जाते हैं वे परतीर्थिकोंका मतका खण्डन करते हैं । तीर्थकरोक्त तत्त्वोंको कितनेक सपथी अपनी सहज बुद्धिसे समझ लेते हैं, भाईत आगमके अभ्याससे उन्हें समझत है, और कितनेक आचार्य आदिके उपदेष्टाद्वारा उन्हें समझते हैं । २०५-२१५
- ६ तृतीय सूत्रका अवतरण, तृतीय सूत्र और छाया । २१६
- ७ मेधावी मुनि, वीतरागोपदेष्टा और मिथ्यादृष्टिर्विकी मतकी तुलनात्मक समीक्षा करके, वीतरागोपदेष्टाको उपादेय और मिथ्यादृष्टिर्विकी मतको हेय समझे, कभी भी वीतरागोपदेष्टाका

- अतिक्रमण न करे । मोक्षाभिलाषी वीर मुनि संयमका स्वरूपको जान कर उसका आचरण करता हुआ विचरे । हे शिष्य ! तुम सर्वदा वीतरागोपदेश और आचार्योपदेशका अवलम्बन करके संयमाचरणमें पराक्रम करो । २१६-२२०
- ८ चतुर्थ सूत्रका अवतरण, चतुर्थ सूत्र और छाया । २२०
- ९ ऊर्ध्वलोक अधोलोक और तिर्यग्लोक, इन सभी स्थानोंमें मिथ्यात्व, अविरति आदि स्रोत, अर्थात्-आस्रवद्वार हैं । ये आस्रवद्वार नदीके स्रोत समान कहे गये हैं । इन्हीं आस्रवोंसे जीव कर्मोंको बांधते हैं । २२०-२२३
- १० पञ्चम सूत्रका अवतरण, पञ्चम सूत्र और छाया । २२४
- ११ वीतरागोपदिष्ट आगमके परिज्ञाता मुनि, आर्वर्त्तको पर्यालोचना करके आस्रवद्वारोंसे विरत होता । कर्मोंके आस्रवोंको दूर करनेके लिये प्रव्रजित ये महापुरुष मुनि अकर्म होता है, और ज्ञान-दर्शनसे युक्त होता है । परमार्थ जाननेवाला ये मुनि, अच्छी तरह विचार कर किसी भी वस्तुकी अभिलाषा नहीं करता । मोक्षप्राप्तिके लिये उद्युक्त ये मुनि मनुष्यलोकमें रहता हुआ भी जीवोंकी आगति और गतिको जानकर जन्म मरणके मार्गका उल्लङ्घन कर जाता है, अर्थात् मुक्त हो जाता है । २२४-२२८
- १२ छठे सूत्रका अवतरण, छठा सूत्र और छाया । २२८-२२९
- १३ सिद्धावस्थाका वर्णन । २२९-२३८
- १४ सप्तम सूत्रका अवतरण, सप्तम सूत्र और छाया । २३९
- १५ मुक्तात्मा जीवोंका वर्णन । २३९-२४१

॥ इति षष्ठ उद्देश ॥

॥ इति पञ्चम अध्ययन सम्पूर्ण ॥ ५ ॥

विषय

पृष्ठाङ्क

- १ प्रथम अध्यायनके सात षष्ठ अध्यायनका सम्बन्धकथन ।
भूत स्रष्टाका गर्भ और भेद । इस अध्यायनके पाठों उद्देश्योंमें
प्रतिपाद्य विषयोंका क्रमिक वर्णन । प्रथम सूत्रका अवतरण,
प्रथम सूत्र और छाया । २४२-२४४
- २ इन मनुष्योंमें जो मनुष्य सम्यग्ज्ञानवान् है, वे ही अन्य
मनुष्यों के लिये सम्यग्ज्ञानका उपदेश देते हैं । वे सम्य
ज्ञानी केवलही और भुक्तकेवलही होते हैं । वे एकेन्द्रियादि
जीवोंको यथार्थरूपसे जानते हैं । वे ही इस अनुपम सम्य
ज्ञानके उपदेशक होते हैं । २४४-२४७
- ३ द्वितीय सूत्रका अवतरण, द्वितीय सूत्र और छाया । २४७
- ४ तीर्थंकर गणपर आदि, विसानिष्ठ, धर्माचरणके लिये
उत्तम और हेयोपादेयबुद्धियुक्त मनुष्योंके लिये सुक्ष्ममार्गका
उपदेश देते हैं । इन उपदेश प्राप्त लोगों में कितनेक महा
वीर कर्मशुभ्राके नाशार्थ पराक्रम करते हैं । इनसे निम्न
मोहविषय प्राणी कि जिनकी बुद्धि अन्यत्र लगी हुई है, वे
विपादयुक्त रहते हैं । २४७-२४९
- ५ तृतीय सूत्र का अवतरण, तृतीय सूत्र और छाया । २४९
- ६ शैवाल आदिसे युक्त पुराने इदमें रहनेवाला पण्डित, जैसा
उसीमें निश्चित चित्त होनेसे उससे बाहर नहीं हो सकता,
उसी प्रकार हेयोपादेय बुद्धिरहित मनुष्य, कभी भी इस
संसाररूपी महाइदसे बाहर नहीं निकल सकता । २४९-२५२
- ७ चतुर्थ सूत्रका अवतरण, चतुर्थ सूत्र और छाया । २५२
- ८ जैसे इक्षु शालाछेदनादि इतर्यों सहते हुए अपने ही स्थान
पर रहते हैं, वहीसे इद नहीं सकते; उसी प्रकार किमक

अतिक्रमण न करे । मोक्षाभिलाषी वीर मुनि संयमका स्वरूपको जान कर उसका आचरण करता हुआ विचरे । हे शिष्य ! तुम सर्वदा वीतरागोपदेश और आचार्योपदेशका अवलम्बन करके संयमाचरणमें पराक्रम करो ।

२१६-२२०

८ चतुर्थ सूत्रका अवतरण, चतुर्थ सूत्र और छाया ।

२२०

९ ऊर्ध्वलोक अधोलोक और तिर्यग्लोक, इन सभी स्थानोंमें मिथ्यात्व, अविरति आदि स्रोत, अर्थात्-आस्रवद्वार हैं । ये आस्रवद्वार नदीके स्रोत समान कहे गये हैं । इन्हीं आस्रवोंसे जीव कर्मोंको बांधते हैं ।

२२०-२२३

१० पञ्चम सूत्रका अवतरण, पञ्चम सूत्र और छाया ।

२२४

११ वीतरागोपदिष्ट आगमके परिज्ञाता मुनि, आवर्त्तको पर्यालोचना करके आस्रवद्वारोंसे विरत होता । कर्मोंके आस्रवोंको दूर करनेके लिये प्रव्रजित ये महापुरुष मुनि अरुणा होता है, और ज्ञान-दर्शनसे युक्त होता है । परमार्थ जाननेवाला ये मुनि, अच्छी तरह विचार कर किसी भी वस्तुकी अभिलाषा नहीं करता । मोक्षप्राप्तिके लिये उद्युक्त ये मुनि मृनुष्यलोकमें रहता हुआ भी जीवोंकी आगति और गतिको जानकर जन्म मरणके मार्गका उल्लङ्घन कर जाता है, अर्थात् मुक्त हो जाता है ।

२२४-२२८

१२ छठे सूत्रका अवतरण, छठा सूत्र और छाया ।

२२८-२२९

१३ सिद्धावस्थाका वर्णन ।

२२९-२३८

१४ सप्तम सूत्रका अवतरण, सप्तम सूत्र और छाया ।

२३९

१५ मुक्तात्मा जीवोंका वर्णन ।

२३९-२४१

॥ इति षष्ठ उद्देश ॥

॥ इति पञ्चम अध्ययन सम्पूर्ण ॥ ५ ॥

विषय

पृष्ठसंख्या

- १ पञ्चम अध्यायनके साथ षष्ठ अध्यायनका सम्बन्धकथन ।
पूत स्रष्टाका अर्थ और भेद । इस अध्यायनके पात्रों उद्देश्योंमें
प्रतिपाद्य विषयोंका क्रमिक वर्णन । प्रथम सूत्रका अवतरण,
प्रथम सूत्र और छाया । २४२-२४४
- २ इन मनुष्योंमें जो मनुष्य सम्यग्ज्ञानवान् है, वे ही अन्य
मनुष्यों के लिये सम्यग्ज्ञानका उपदेश देते हैं । वे सम्य
ज्ञानी केवली और श्रुतकेवली होते हैं । वे एकेन्द्रियादि
जीवोंको यथार्थरूपसे जानते हैं । वे ही इस अनुपम सम्य
ज्ञानक उपदेशक होते हैं । २४४-२४७
- ३ द्वितीय सूत्रका अवतरण, द्वितीय सूत्र और छाया । २४७
- ४ तीर्थंकर गणेश आदि, त्रिसान्निध्य परमाक्षरणके लिये
अथ और हेयोपादेयबुद्धियुक्त मनुष्योंके लिये मुक्तिमार्गका
उपदेश देते हैं । इन उपदेश प्राप्त लोगों में कितनेक महा
वीर कर्मशुश्रूषोंके नाशार्थ पराक्रम करते हैं । इनसे मिल
ग्राहस्विक्रम प्राप्ति कि जिनकी बुद्धि अन्यत्र लगी हुई है, वे
विपादयुक्त रहते हैं । २४७-२४९
- ५ तृतीय सूत्र का अवतरण, तृतीय सूत्र और छाया । २४९
- ६ शैवाल आदिसे युक्त पुराने इदमें रहनेवाला कञ्छप, जैसा
उसीमें निविष्ट भिन्न होनेसे उससे बाहर नहीं हो सकता,
उसी प्रकार हेयोपादेय बुद्धिरहित मनुष्य, कभी भी इस
संसाररूपी महाद्वन्द्वसे बाहर नहीं निकल सकता । २४९-२५२
- ७ चतुर्थ सूत्रका अवतरण, चतुर्थ सूत्र और छाया । २५२
- ८ जैसा ब्रह्म शाखाछेदनादि दुःखों सहते हुए अपने ही स्थान
पर रहते हैं, वहाँसे हट नहीं सकते, उसी प्रकार कितनेक

मनुष्य, स्त्री, पुत्रादिसे अपमानित, अनेक आधि व्याधियोंसे ग्रस्त, और राजपुरुषादिकोंसे हतसर्वस्व होते हुए भी गृह-त्याग नहीं कर सकते । वे दुःखी हो कर सकरुण विलाप करते हैं और निदान करते रहते हैं, इस कारण इन्हें मोक्ष नहीं मिलता ।

२५२-२५४

- ९ पञ्चम सूत्रका अवतरण और पञ्चम सूत्र । २५५
- १० हेयोपादेय विवेकरहित मनुष्य जन्म-मरणके चक्रमें पड़े रहते हैं । २५५
- ११ षष्ठ सूत्रका अवतरण, षष्ठ सूत्र और छाया । २५६
- १२ हेयोपादेय विवेकरहित अनात्मज्ञ पुरुष स्वकृत कर्मोंके फल स्वरूप कुष्ठादि रोगोंसे और विविध परीपहोंसे आक्रान्त होते रहते हैं । २५६-२५९
- १३ सप्तम सूत्रका अवतरण, सप्तम सूत्र और छाया । २५९-२६०
- १४ जो प्राणी तममें अर्थात् नरकादि अथवा मिथ्यात्वादिमें पड़े हुए हैं वे अन्धे हैं । ऐसे जीव कुष्ठादिसे आक्रान्त हो कर दुःख भागी होते हैं । २६०
- १५ अष्टम सूत्रका अवतरण, अष्टम सूत्र और छाया । २६१
- १६ वासक रसग आदि जो जीव हैं ये सभी दूसरे जीवोंको कष्ट देते हैं । २६१
- १७ नवम सूत्रका अवतरण, नवम सूत्र और छाया । २६२
- १८ यह लोक महामययुक्त हैं, और इसमें रहनेवाले सभी प्राणी अत्यन्त दुःखी हैं । २६२
- १९ दशम सूत्रका अवतरण, दशम सूत्र और छाया । २६३
- २० कामासक्त मनुष्य, इस क्षणभंगुर निस्तार शरीरकी पुष्टि-

विषय

पृष्ठ

निमित्त प्राणिहिंसा और तथ्यजनित कर्मबन्ध किया करते हैं ।

२६३-२६४

२१ ग्यारहवें सूत्रका अवतरण, ग्यारहवां सूत्र और छाया ।

२६४

२२ मार्च और बहुदुःस्वयुक्त अज्ञानी मनुष्य, अनेक विष दुष्कर्म करके सोलह प्रकारके रोग आतङ्कके भागी होते हैं, और फिर वे उन रोगोंकी चिकित्सानिमित्त एकेन्द्रियादि जीवोंकी हिंसा करते हैं ।

२६४-२६५

२३ बारहवें सूत्रका अवतरण, बारहवां सूत्र और छाया ।

२६५

२४ कर्मोदयजनित रोगोंकी निवृत्तिमें चिकित्साये समर्थ नहीं है । अतः रोगनिवृत्त्यर्थे प्राणिजघसे निष्पन्न चिकित्सा, विवेकियों के लिये हेय है । इस प्रकारकी चिकित्साविधि, जन्म-मरणादिरूप महामयोंकी कारण है । इस लिय किसी भी प्राणीका उपमर्दन नहीं करना चाहिये ।

२६५-२६७

२५ तेरहवां सूत्र और छाया ।

२६८

२६ अष्टविध कर्मके विनाशक घृतपावको समझो; सुनो । इस संसारमें आत्मकृत कर्मके परिणामस्वरूप बीच उच्छ्वनीचादि हस्तोंमें जन्म लेते २ क्रमिक सुनिश्चको प्राप्त करते हैं ।

२६८-२७१

२७ चौदहवें सूत्र और अवतरण ।

२७१

२८ बीजाके लिये उद्युक्त मनुष्यके लिये माता-पिता आदि विनाश करते हैं, और आक्रोश वधन बोझते हैं ।

२७२

२९ पन्द्रहवें सूत्रका अवतरण, पन्द्रहवां सूत्र और छाया ।

२७३

३० संयमामिस्रापी मनुष्य, बीजाके समयमें रोते हुए अपने माता पिता आदिकी ओर विशुद्ध ध्यान नहीं देता । उसका इस प्रकारका व्यवहार उचित ही है, क्या कि वह संसारकी वास्तविकतासे अभिज्ञ, मरक-जैसे शब्दासमें रह ही कैसे

सकता ! हे शिष्य ! इस धृतवादोक्त ज्ञानका सर्वदा चिन्तन करो ।

२७४-२७६

॥ इति प्रथम उद्देश ॥

५

॥ अथ द्वितीय उद्देश ॥

- १ प्रथम उद्देशके साथ द्वितीय उद्देशका सम्बन्धकथन । प्रथम सूत्रका अवतरण, प्रथम सूत्र और छाया । २७७-२७८
- २ इस पङ्जीवनीकायरूप लोकको आतुर जान कर, गृहस्थावास को छोड़ कर, विरतियुक्त हो कर ब्रह्मचर्यमें स्थित कितनेक मुनि अथवा एकादश प्रतिमाधारीश्रावक श्रुतचारित्रधर्मके वास्तविकतत्त्वको जानते हुए भी मोहोदयके कारण समयके पालनमें असमर्थ हो समयोपकरणका परित्याग कर देते हैं । उनमेंसे कितनेक देशविरत हो कर रहते हैं और कितनेक तो मिथ्यात्वी हो जाते हैं । शब्दादि विषयोंमें ममत्व करनेवाले इन समय छोड़नेवालोंमें से कितनेक अन्तर्मुहूर्त में मर जाते हैं और कितनेक अहोरात्रमें कितनेक हमसे अधिक कालमें । इस प्रकार ये भोगार्थी, दुःखसार शब्दादि विषयोंमें आसक्त हो इस मनुष्य जीवनको व्यर्थमें नष्ट कर डालते हैं । २७८-२८१
- ३ द्वितीय सूत्रका अवतरण, द्वितीय सूत्र और छाया । २८२
- ४ कितनेकमनुष्य समयी हो कर, समय ग्रहणके कालसे ले कर संयमानुष्ठान में सर्वदा तत्पर रहते हैं । ऐसे महा-मुनि ही कर्मधूननमें सम्यक् प्रकारसे प्रवृत्ति-शील होते हैं । २८२-२८३
- ५ तृतीय सूत्रका अवतरण, तृतीय सूत्र और छाया । २८४

विषय

- ६ ममत्व भावनासे रहित, अत एव 'अहमेक एवास्मि'—ऐसी भावनासे मायित अन्तःकरणवाला मनुष्य, सभी प्रकारके बाधनोंको छोड़ कर प्रसंगित हो जाता है और अवेस यह मुनि अवमोदरिकासे ही रहा करता है। २८४
- ७ चतुर्थ सूत्रक अपठरण, चतुर्थ सूत्र और छाया। २८५
- ८ ऐसे अवमोदरिकायुक्त मुनि, धर्मानभिष्ट मनुष्योंद्वारा विविध प्रकारसे अपमानित होता हुआ भी उन अपमानोंको समतापूर्वक सहता हुआ विचारता है, और वह सभी परीप होंको समतापूर्वक सहता है। २८५-२८७
- ९ पञ्चम सूत्र और छाया। २८७
- १० सम्यग्दृष्टि मुनि परीपहप्रयुक्त सभी दुःखिन्ताओंका परि त्याग कर परीपहोंको सहे। २८७
- ११ षष्ठ सूत्र और छाया। २८७
- १२ प्रव्रज्याको किसी दुःखव्यवस्थितिमें नहीं त्यागता, ऐसा मुनि ही निर्ग्रन्थ है। २८७-२८८
- १३ सप्तम सूत्र और छाया। २८८
- १४ 'बिनागमके अनुसार ही जिनधर्मका पालन करना चाहिये' यही तीर्थङ्गोंका उच्चम उपदेश मनुष्योंके लिये है। २८८
- १५ आठवाँ सूत्र और छाया। २८९
- १६ कर्मभूमनके उपाय इस संयममें संलग्न हो कर, अष्टविध कर्मको स्थापित हुए विचरे। समस्त कर्मोंको जान कर मनुष्य, उन कर्मों को भ्रमणधर्मका आराधन करके स्थापित है। २८९
- १७ नवम सूत्रक अपठरण, नवम सूत्र और छाया। २८९-२९०
- १८ इस जिनशासनमें रह कर जिन्होंने कर्मवन्धको शिथिल कर दिया है ऐसे कितनेक मुनि एकाक्षिबिहार प्रतिमापारी होते हैं, उन्हें अनेक प्रकारके परीपह प्राप्त होते हैं, उन परीपहोंको वे भीर मुनि समतापूर्वक सहे। २९०-२९३

॥ इति द्वितीय अध्याय ॥

॥ अथ तृतीय उद्देश ॥

विषय

पृष्ठाङ्क

- १ द्वितीय उद्देशके साथ तृतीय उद्देशका सम्बन्धकथन । प्रथम सूत्रका अवतरण, प्रथम सूत्र और छाया । २९४
- २ ममतारहित, ज्ञानाचारादिके प्रतिपालक मुनि, धर्मोपकरणके अतिरिक्त कर्मबन्धके कारण ब्रह्मादिकों को छोड़ कर विचरता है । २९४-२९५
- ३ द्वितीय सूत्रका अवतरण, द्वितीय सूत्र और छाया । २९५
- ४ जो साधु, अचेल (अल्पवस्त्रधारी) और साधुमर्यादामें व्यवस्थित होते हैं उन्हें जीर्णवस्त्रसम्बन्धी चिन्ता कभी भी नहीं होती । २९६-२९८
- ५ तृतीय सूत्रका अवतरण, तृतीय सूत्र और छाया । २९८-२९९
- ६ कर्मबन्धोंके विनाशके निमित्त प्रयत्नशील उस अचेल मुनिको उस अचेल अवस्थामें अनेक प्रकारके परीषद प्राप्त होते हैं, वे परीषद उस मुनिके लिये तपःस्वरूप ही हैं । २९९-३०१
- ७ चतुर्थ सूत्रका अवतरण, चतुर्थ सूत्र और छाया । ३०२
भगवान्की आज्ञानुसार, अपनी २ सामर्थ्यके अनुकूल उत्कृष्ट या अपकृष्ट साध्वाचार पालनमें प्रवृत्त सभी मुनि सम्यक्स्त्री हैं । सभी तीर्थङ्करों के शासनकालमें अचेल मुनि विविध परीषदोंको सहते हैं । ३०२-३०५
- ८ पञ्चम सूत्रका अवतरण, पञ्चम सूत्र और छाया । ३०६
- १० जो सम्यग्ज्ञानको प्राप्त हो चुके हैं उनकी वाहें अथवा बाधाये कृश (क्षीण) हो जाती है कर्मक्षपणार्थ प्रवृत्त इन सम्यग्ज्ञानियोंके मांसशोणित छूट जाते हैं । ये अपनी सम-भावना और क्षमा आदि गुणोंसे संसारपरम्पराको छिन्न करके रहते हैं । इस प्रकारके साधु, तीर्थङ्करों द्वारा तीर्थ मुक्त और विरत कहे गये हैं । ३०६-३०८
- ११ षष्ठ सूत्रका अवतरण, षष्ठ सूत्र और छाया । ३०८

विषय

पृष्ठाङ्क

- १२ असंयमसे निवृत्त, उत्तरोत्तर बढ़ते हुए शुभाध्यवसायमें मग्न
और बहुत कालसे संयममें स्थित ऐसे मुनिको क्या संयममें
अरति हो सकती है ? । ३०८-३०९
- १३ सप्तम सूत्रका अवतरण, सप्तम सूत्र और छाया । ३०९
- १४ पूर्वोक्त प्रकारके साधु, उत्तरोत्तर अधिकधिक प्रशस्त परि
श्रमपारा अथवा गुणस्थानपर आरुढ़ होते हैं, अतः उनको
अरति हो ही कैसे ? । जैसे द्वीप, असन्दीन-बाड़के उपवनसे
रहित होता है, उसी प्रकार यह मुनि भी, उपसर्ग आविसे
बाधित नहीं होता है, अथवा-जैसे असन्दीन द्वीप यात्रिकों
के लिये आश्रयस्थानीय होता है, उसी प्रकार संसारसागरको
छिनेकी इच्छावाले मनुष्य, इस प्रकारके साधुओंके ऊपर
विश्वास करते हैं । ३१०
- १५ आठवें सूत्र और छाया । ३११
- १६ असन्दीन द्वीपके समान भगवद्भाषित धर्म भी है । ३११
- १७ नवम सूत्रका अवतरण, नवम सूत्र और छाया । ३११-३१२
- १८ वह मुनि, निस्पृही अहिंसक सर्वलोकप्रिय साधुमर्यादामें व्य
वस्थित और पण्डित होता है । ३१२
- १९ दशम सूत्रका अवतरण, दशम सूत्र और छाया । ३१२-३१३
- २० आचार्य महाराजको यादिये कि जैसे पत्नी अपने बन्धुओंको
चढ़ना सिखाते है उसी प्रकार वे भी धर्मानुष्ठानमें अनु
स्सारी शिष्योंको दिन-रात क्रमशः एकादश अङ्गोंकी शिक्षा
देते हैं । आचार्यद्वारा शिक्षित वे शिष्य, सकल परिपक्वों के
सहज और संसारसागरके पार करनेमें समर्थ हो जाते हैं । ३१३-३१४

॥ इति तृतीय उपोद्घ ॥

॥ अथ चतुर्थ उद्देश ॥

विषय

पृष्ठाङ्क

- १ तृतीय उद्देशके साथ चतुर्थ उद्देशका संबंधकथन, प्रथम सूत्रका अवतरण, प्रथम सूत्र और छाया । ३१५
- २ आचार्यद्वारा परिश्रमपूर्वक शिक्षित किये गये उन शिष्योंमें से कितनेक अहंकारयुक्त हो कर उपशमको छोड़ गुरुजनोंके साथ भी कठोर व्यवहार करते हैं । ३१५-३१६
- ३ द्वितीय सूत्रका अवतरण, द्वितीय सूत्र और छाया । ३१७
- ४ कितनेक शिष्य ब्रह्मचर्यमें रह कर भी, भगवान्की आज्ञा की आराधनामें सर्वथा तत्पर नहीं हो कर देशतः भगवान् की आज्ञाकी अवहेलना करते हुए सातागौरवकी अधिकतासे बाहुशिक हो जाते हैं । ३१७
- ५ तृतीय सूत्रका अवतरण, तृतीय सूत्र और छाया । ३१८
- ६ कितनेक शिष्य, आचार्यद्वारा कुशीलाचारके विपाकका प्रतिपादन करनेपर, उन आचार्यों के ऊपर ही क्रुद्ध हो जाते हैं ।
- ७ चतुर्थ सूत्रका अवतरण, चतुर्थ सूत्र और छाया । ३२०-३२१
- ८ ये अवसन्न पार्श्वस्थादि, शीलवान् उपशान्त और हेयोपादेय ज्ञानपूर्वक संयममार्ग में प्रवृत्ति करनेवाले साधुओंको 'चारित्रहीन' कहा करते हैं, यह उनकी द्वितीय बालता है, पहली बालता तो इनकी यह है जो ये स्वयं भ्रष्ट हैं । ३२१-३२२
- ९ पञ्चम सूत्रका अवतरण और पञ्चम सूत्र । ३२२
- १० कितनेक स्वयं संयमाचरणमें असमर्थ होते हुए भी मूलगुण और उत्तरगुणकी शुद्ध रूपसे व्याख्या करते हैं, उनको द्वितीय बालता नहीं होती है । ३२२
- ११ षष्ठ सूत्रका अवतरण, षष्ठ सूत्र और छाया । ३२३

- १२ कितनेक सम्यक्त्वपवित ज्ञानभ्रष्ट मुनि, द्रव्यतः आचार्यादिको
मनाम आदि करते है, परंतु वे भावतः अपनी आत्माको
सम्यक्चारिभूत्य योगमार्गसे भ्रष्ट ही करते रहते है । ३२३
- १३ सप्तम सूत्रका अवतरण, सप्तम सूत्र और छाया । ३२४
- १४ कितनेक परीपहोपसर्गस आक्रान्त हो जीवनके मोहसे
संयमका परिस्थान कर देते है, उनका सब कुछ व्यर्थ हो है । ३२४
- १५ अष्टम सूत्रका अवतरण, अष्टम सूत्र और छाया । ३२५
- १६ जीवनके सुखके निमित्त जो चारिषका परित्याग करते है
वे पामरजनोंसे भी निन्दित होत है, और वे एकेन्द्रियादि
दुर्गतिके भागी होते है, संयमस्थानसे गिरकर भी वे अपने
को पण्डित मानते हुए अपनी गर्वसा करते है और उच्य
साधुओंकी निन्दा करत है, उनके ऊपर असत्य दोषोंका
आरोप करते है । मेघावी मुनिको ऐसा नहीं होना चाहिये । ३२५-३२७
- १७ नवम सूत्रका अवतरण, नवम सूत्र और छाया । ३२८
- १८ आरम्भाचीं साधु, हिंसाके निमित्त दूसरों को मेरित करते
है, हिंसाकी अनुमोदना करते है । 'तीर्थङ्करोक्तं परमं धोर
अर्थात्-दुराचरणीय है'—ऐसा मान कर तीर्थङ्कराक्त परमकी
उपेक्षा करते रहते है 'सं मनुष्योंकी तीर्थङ्करानि विपण्ण
अर्थात् कामभोग-मूर्च्छित और वितर्क अर्थात् पक्षीचनि-
कार्येण उपमर्दनमे तत्पर कहा है । ३२८-३२९
- १९ दशम सूत्रका अवतरण, दशम सूत्र और छाया । ३२९
- २० कितनेक जन, मातापिता, श्रातिभन्धु और धन-धान्या
दिकोंको छोड़ कर संयम लेत है और उस संयमका पावन
अच्छी तरह करते है, परन्तु बादमें वे ही कर्मदोषवश
संयमसे गिर पड़ते है दीन-हीन हो कर अत्यभिर्षसक
हो जाते है । ३३०-३३३

विषय

पृष्ठाङ्क

- २१ ग्यारहवे सूत्रका अवतरण, ग्यारहवा सूत्र और छाया । ३३३
- २२ संयमसे च्युत लोगोंकी सर्वत्र निन्दा होती है । ३३३-३२५
- २३ बारहवे सूत्रका अवतरण, बारहवा सूत्र और छाया । ३३५
- २४ कितनेक अमागे साधु, उग्रविहारियोंके साथ रहते हुए भी शीतलविहारी होते हैं, विनयशील साधुओंके साथ रहते हुए भी अविनयी होते हैं, विरतोंके साथ रहते हुए भी अविरत होते हैं, संयमाराधकोंके साथ रहते हुए भी असंयमी होते हैं । अतः संयमी साधुओंकी सगति प्राप्त कर सर्वदा संयमाराधनमे तत्पर रहना चाहिये । ३३५-३३६

॥ इति चतुर्थ उद्देश सम्पूर्ण ॥ ४ ॥

✽

॥ अथ पञ्चम उद्देश ॥

- १ चतुर्थ उद्देशके साथ पञ्चम उद्देशका सम्बन्ध—कथन । प्रथम सूत्रका अवतरण, प्रथम सूत्र और छाया । ३३६-३३८
- २ उन मुनियोंको अनेक स्थानोंमें अनेक प्रकारके उपसर्ग प्राप्त होते हैं, उन उपसर्गोंको वे मुनि अच्छी तरह सहें । ३३८-३३९
- ३ द्वितीय सूत्रका अवतरण, द्वितीय सूत्र और छाया । ३३९-३४०
- ४ जैनागमके ज्ञाता मुनि, लोकस्वरूपको तथा पूर्वादि दिग्विभागोंको भी अच्छी तरह जान कर दयाधर्मकी प्ररूपणा करे और धर्मानुष्ठानका फल कहे । ३४०
- ५ तृतीय सूत्रका अवतरण, तृतीय सूत्र और छाया । ३४१
- ६ वह आगमज्ञ मुनि, सुननेकी इच्छावाले उत्थित, अनुत्थित सभी प्रकारके लोगोंको शान्ति, विरति, उपशम, निर्वाण, शौच, आर्जव, मार्दव और लाघवकी व्याख्या आगमानुसार करके समझावे । ३४१-३४२

विषय

पृष्ठान्क

- ७ चतुर्थ सूत्रका अवतरण, चतुर्थ सूत्र और छाया । ३४२
- ८ मुनि एकेन्द्रियादि सभी प्राणियोंके हितकी ओर दृष्टि रखते हुए पर्मोपदेश करे । ३४३
- ९ पञ्चम सूत्रका अवतरण, पञ्चम सूत्र और छाया । ३४३-३४४
- १० पर्मोपदेश करते हुए मुनि, न अपने अहम्माकी विराचना करे, न दूसरे मनुष्योंकी विराचना करे और न अन्य प्राण, मृत, जीव और सत्त्वोंकी विराचना करे । ३४४-३४५
- ११ छठे सूत्रका अवतरण, छठा सूत्र और छाया । ३४५
- १२ बीबोंक अनाद्यातक मुनि सभी प्राणियोंके शरण होते हैं । ३४६-३४७
- १३ सातवें सूत्रका अवतरण, सातवां सूत्र और छाया । ३४७-३४८
- १४ कर्मविनाशके लिये उत्थित मुनि, भुतचारित्र्य परम में स्थिर हो कर, बलवोर्यको नहीं छिपाते हुए, सभी प्रकारकी परिस्थिति में निष्कम्प, स्थिरमात्सरहित अर्थात् उग्रविहारी और सयमकी ओर लक्ष्य रखते हुए विहार करे । ३४८
- १५ अष्टम सूत्रका अवतरण, अष्टम सूत्र और छाया । ३४९
- १६ सम्पन्नदृष्टि धीमं विनोत्कर्मको जानकर परिनिर्णित हो जाता है । ३४९
- १७ नवम सूत्रका अवतरण, नवम सूत्र और छाया । ३४९-३५०
- १८ आसक्तिपुक्त प्राणी, बाह्याभ्यन्तर परिग्रहोंसे निवृत्त होते हैं, उनमें निमग्न रहते हैं, कामभोगमें अभिनिविष्ट विचषासे होते हैं । मुनिको चाहिये कि वे आसक्तिरहित हो कर संयम प्राप्त करें, संयमसे कमी भी भयभीत न हों । ३५०-३५१
- १९ दशम सूत्रका अवतरण, दशम सूत्र और छाया । ३५२
- २० यह आरम्भ कि जिससे हितक भन भयभीत नहीं होते हैं, उसको सम्पद प्रकारसे जान कर और आरकषार्थोंका वसन करके मुनिजन सयममार्गमें विचरते हैं । ऐसे मुनिजनके सभी कर्म बन्धनशून्य जाते हैं । ३५२-३५४

विषय

पृष्ठाङ्क

- २१ ग्यारहवें सूत्रका अवतरण, ग्यारहवां सूत्र और छाया । ३५५
- २२ इस औदारिक आदि शरीरके विनाशकी तीर्थकरोंने सग्रामका अग्र भाग कहा है । मुनिजन ज्ञानाचारादिरूप नौकाका अवलम्बन कर ससार महासागरके पारगामी होते हैं । परीपह और उपसर्गोंसे हन्यमान मुनि, रागद्वेषरहित अपने मरणकालसे अभिज्ञ हो कर बारह वर्षकी सलेखनासे शरीरका सलेखन करके भक्तप्रत्याख्यान आदिमेंसे किसी एक मग्नसे अपने मरणकालकी प्रतीक्षा करे । इस प्रकारके मुनि सकल कर्मक्षय करके मोक्षगामी होते हैं । ३५५-३६०
- २३ अध्ययनविषयोपसंहार । ३६०-३६१

॥ इति षष्ठ अध्ययन ॥

*

॥ अथ अष्टम अध्ययन ॥

(प्रथम उद्देश)

- १ सप्तम अध्ययनके विच्छेदका कारण । ३६३-३६५
- २ अष्टम अध्ययनका उपोद्घात । ३६५-३६६
- ३ अष्टम अध्ययनमें प्रतिपादित विषयोंका उद्देशक्रमसे संक्षेपतः कथन । ३६७-३७०
- ४ प्रथम सूत्रका अवतरण, प्रथम सूत्र और उसकी छाया । ३७०
- ५ अवसन्न पार्श्वस्थ आदि स्वमतावलम्बियोंका और शाक्यादि परमतावलम्बियोंको, साधु कभी भी आहार आदि न देवे, न उन्हें निमन्त्रित करे, और न उनकी शूश्रूषा ही करे । ३७०-३७१
- ६ द्वितीय सूत्रका अवतरण, द्वितीय सूत्र और छाया । ३७१-३७२

- ७ अवसप्त पार्श्वस्थादिक स्वमतावलम्बियोंद्वारा और शाक्यादि परमतावलम्बियोंद्वारा आहारादि निमित्त आमन्त्रित होनेपर साधु, कमी गी उनके आमन्त्रणका स्वीकार न करे। ३७२-३७३
- ८ द्वितीय सूत्रका अवतरण, तृतीय सूत्र और छाया। ३७४
- ९ कितनेक लोगोको आचारगोचर अर्थात् सर्वज्ञोपदिष्ट संयम मार्गका परिचय नहीं होता है, अतः वे आरम्भाधी होते हैं, और उन आरम्भाधी लोगोकी तत्त्वके सम्बन्धमें परस्पर भिन्न भिन्न रहि होती है। इस लिये उनका धर्म वास्तविक नहीं होनेके कारण मय्योंके लिये सर्वदा परिस्थान्य है। ३७४-३९६
- १० चतुर्थ सूत्रका अवतरण, चतुर्थ सूत्र और छाया। ३९६-३९७
- ११ इस अनेकान्त धर्मका प्ररूपण मगधान् तीर्थकरने किया है। उन्होंने अपने साधुओंके लिये कहा है कि परवादियोंके साथ बादमें मायासमिति का ध्यान सतत रखे। वे परवादि योंसे इस प्रकार कहें कि आपके शास्त्रोंमें पञ्चीनिकयोपमर्दनरूप आरम्भ, धर्मव्ययमें स्वीकृत किया गया है वह हमें प्राप्त नहीं है। क्यों कि आरम्भ नरकनिगोदादिके कात्त्य होने से पाप है। हम साधवाचरणके त्यागी हैं, अतः हमें इस विषयमें आपके साथ बाद नहीं करना है और यही हमारे लिये उचित भी है। 'धर्म न ग्राममें है और न अरण्यमें, धर्म तो बीषाभीषादि-तत्त्व-परिज्ञानपूर्वक निरवधानुष्ठानमें ही है'—यह माइन-मगधान् महावीरका उपदेश है। मगधान्ने तीन यामोंका प्ररूपण किया है, इन यामोंमें संशुष्यमान और सप्रतिष्ठ आर्यजन जो कि पापकर्मोंसे निष्ठुर हैं वे ही अनिदान कहे गये हैं। ३९७-४०३
- १२ पञ्चम सूत्रका अवतरण, पञ्चम सूत्र और छाया। ४०३

विषय

- १३ ' ऊर्ध्वादि सभी दिशाओं एवं विदिशाओंमें सूक्ष्मवादरादि सभी प्राणियोंकी विराधनारूप कर्मसमारम्भ होता है '— इस बातको जान कर मेधावी साधु न स्वयं इन पट्टजीव-निकायोंके विषयमें दण्डका समारम्भ करे, न दूसरोंसे करावे, न करते हुए की अनुमोदना ही करे । हे शिष्य ! तुम्हे इस प्रकारसे विचारना चाहिये कि इन दण्डसमारम्भ करनेवालोंके साथ वार्तालाप करनेमें भी मुझे वृज्जा होती है, फिर मैं दण्डसमारम्भका अनुमोदन कैसे करूँ ? मैं कभी इसका अनुमोदन नहीं कर सकता । उस प्रकार निश्चय कर के साधुमर्यादामें व्यवस्थित, प्राणातिपातसे भयभीत तुम, उस अनर्थकर प्राणातिपातादिरूप दण्डका, अथवा-अन्य दण्ड का समारम्भ कभी नहीं करना ।

४०४-४०५

॥ इति प्रथम उद्देश ॥

*

॥ अथ द्वितीय उद्देश ॥

- १ द्वितीय उद्देशका प्रथम उद्देशके साथ सम्बन्धकथन, प्रथम सूत्र और उसकी छाया । ४०६-४०७
- २ श्मशान आदिमें स्थित साधुको अकल्पनीय अशनादिक छेनेके लिये यदि कोई गृहपति आग्रह करे तो साधु उसके आग्रहको कभी भी नहीं स्वीकारे । ४०८-४१२
- ३ द्वितीय सूत्रका अवतरण, द्वितीय सूत्र और छाया । ४१२-४१३
- ४ उस साधुके समीप आ कर कोई गृहपति उस साधुको, अकल्पनीय अग्न आदि ला कर देवे, या रहनेके लिये अकल्पनीय उपाश्रय देवे, तो साधुको चाहिये कि वह उस गृहपतिके वचनोंको कभी भी स्वीकार नहीं करे । ४१३-४१६
- ५ तृतीय सूत्रका अवतरण, तृतीय सूत्र और छाया । ४१६

- ६ अज्ञानादिस्थित साधुके, गृहपतिद्वारा प्रदत्त अकल्पनीय अज्ञानादिक न छेनेपर, यदि वे गृहपति उस साधुकी ताड़ना आदि कर तो साधु उस ताड़नादिकको क्षान्तिपूर्वक सहन करे। अथवा वह साधु उस गृहपतिके सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि का अनुमान कर, यदि वह सम्यग्दृष्टि हो तो उसे साधुके आचारका परिचय करावे। अथवा—यदि देखे कि यह गृहपति मिथ्यादृष्टि है तो कुछ भी नहीं करे। बुध चाप उसके द्वारा किये गये उपयुक्तों को क्षान्तचित्त हो कर सहे। ४१६-४२२
- ७ चतुर्थ सूत्रका अवतरण, चतुर्थ सूत्र और छाया। ४२२-४२३
- ८ वह साधु गृहपतिद्वारा प्रदत्त उस आहारादिको कमी भी स्वीकार न करे। इतना ही नहीं वह साधु शास्त्रादि पर तीर्थिकों को कमी भी अज्ञानादिक नहीं देवे, न उन्हें निमन्त्रित करे, न उनकी सेवा करे, और न उनका आदर ही करे। ४२३
- ९ पञ्चम सूत्रका अवतरण और पञ्चम सूत्र। ४२३-४२४
- १० मगधानकी आज्ञा है कि साधु अपने सापेक्षिक साधुको अज्ञानादिक प्रदान कर, उसको निमन्त्रित करे, उसकी सेवा करे और उसका आदरसत्कार करे। ४२४-४२५

॥ इति द्वितीय उद्देश ॥



॥ अथ तृतीय उद्देश ॥

- १ तृतीय उद्देशका द्वितीय उद्देशके साथ सम्बन्धस्थान। पथम सूत्रका अवतरण, पथम सूत्र और छाया। ४२६-४२७

२ कितनेक मनुष्य युवावस्थामें ही सबुद्ध हो मुनि हो जाते हैं। उनमें जो बुद्धबोधित होते हैं वे पण्डितों अर्थात् तीर्थ-करगणधर आदिके समीप धर्मवचन सुन कर, उन्हें हृदयमें उतार कर समताभावका अवलम्बन करे; क्योंकि तीर्थकर-गणधर आदिकोंने समतासे ही धर्मका प्ररूपण किया है। उन साधुओंको चाहिये कि वे शब्दादिक विषयोंकी अभि-लाषासे रहित हो कर, प्राणियोंकी हिंसा और परिग्रह नहीं करते हुए विचरते हैं। ऐसे मुनि कभी भी परिग्रहोंसे लिप्त नहीं होते हैं, और न ये प्राणियोंके ऊपर मनोवाकायदण्डका ही प्रयोग करते हैं। ऐसे मुनियोंको तीर्थकरोंने महान् और अग्रन्थ कहा है। ऐसे मुनि मोक्ष और संयमके स्वरूपके परिज्ञाता होते हैं, और वे देव, नारक, मनुष्य और तिर्यञ्चके जन्म-मरणादिक दु खोंको जान कर कभी भी पापकर्म नहीं करते हैं।

४२७-४३०

३ द्वितीय सूत्रका अवतरण, द्वितीय सूत्र और छाया।

४३१

४ आहारसे परिपुष्ट प्राणियों के ये शरीर, परीषहोंके आनेपर विनष्ट हो जाते हैं। देखो; कितनेक प्राणी क्षुधापरीषहसे कातर हो जाते हैं, और इनके विपरीत कोई २ रागद्वेष-वर्जित मुनि क्षुधापरिषहके प्राप्त होने पर भी निष्प्रकम्प हो कर षड्जीविकायके ऊपर दया करनेमें ही संलग्न रहते हैं।

४३१-४३३

५ तृतीय सूत्रका अवतरण, तृतीय सूत्र और छाया।

४३३-४३४

६ पूर्वोक्त मुनि आगममें कुशल होते हैं और वे काल, बल, मात्रा, क्षण, विनय और समयके ज्ञाता होते हैं। वे परिग्रहमें ममत्व नहीं रखते हैं, यथाकाल अनुष्ठान करनेवाले होते हैं और अप्रतिज्ञ होते हैं। ऐसे मुनि रागद्वेषको छिन्न करके मोक्षको प्राप्त करते हैं।

४३४

७ ऋतुर्ध्वं सूत्रका अवतरण, ऋतुर्ध्वं सूत्र और छाया ।

८ श्रीतत्सर्वसे कमितश्चरीरं मुनिको देख कर यदि गृहपति पूछे कि 'हे आयुष्मन् ! क्या आपका शरीर कामबन्धित पीडासे कंपित हो रहा है ?' तो मुनि उससे कहे—'हे गावापति ! मेरा शरीर कामबिचारसे नहीं कंप रहा है, किन्तु शीतकी बाधाको मैं नहीं सह पा रहा हूँ इसलिये कंप रहा है।' इस पर यदि गृहपति कहे कि 'हे आयुष्मन् ! तो आप अभिसेवन क्यों नहीं करते ?' इस पर वह साधु कहे कि 'हे गावापति ! मुझे अभिको मज्जस्थित करना या उसका सेवन करना नहीं कल्पता।' इस प्रकार कहने पर यदि वह गृहपति या अन्य गृहस्थ आग जला कर उस मुनिके शरीरको तापित करे तो वह मुनि गृहस्थको सम्झा कर अभिसेवनसे दूर ही रहे।

४३५-४३९

॥ इति तृतीय उद्देशः ॥



॥ अथ ऋतुर्ध्वं उद्देशः ॥

१ ऋतुर्ध्वं उद्देशका तृतीय उद्देशके साथ सम्बन्धमतिपादन, मयम सूत्रका अवतरण, मयम सूत्र और छाया ।

४४०-४४१

२ मुनिको तीन बल और चौथा पात्र का रखना कल्पता है। इस प्रकारके साधुको यह मानना नहीं होती है कि चौथे बलकी याचना करेंगा। साधु एषणीय बलकी याचना करते हैं, ऐसा बल मिल जाता है उसीको धारण करते हैं, बलोंको धोते नहीं हैं और रंगते ही हैं। साधु धीतरक्त बलको धारण नहीं करते हैं। वे कमो भी बलोंको छिपाते नहीं; क्योंकि उनका बल नीरव और मलिन होनेके कारण

मूल्यवान नहीं होता है। इस प्रकारके साधु सामान्तर्ग में निर्द्वन्द्व विचरते हैं। उन्मारी साधुओंकी यही तीन रग और चौथा पात्ररूप सामग्री होती है।

४४१-४४४

३ द्वितीय सूत्रका अवतरण, द्वितीय सूत्र और छाया।

४४४

४ हेमन्त ऋतुके वीतने पर ग्रीष्म ऋतुके प्रारम्भमें साधुको जीर्ण वस्त्रोंका परित्याग कर देना चाहिये। अथवा शीतमय वीतने पर भी क्षेत्र, काठ और पुरुष स्वभावाके कारण यदि शीतवाधा हो तो तीनों वस्त्रोंको त्याग करे, अर्थात्-शीत लगने पर तीनों वस्त्रोंको धाग्न करे, शीत न लगे और उसकी आगझा हो तो अपने पास रखे, त्यागे नहीं। अथवा शीतकी अल्पतामें एक वस्त्रको धारण करे, और जब शीत विल्कुल ही न रहे तब अचेत अर्थात् प्रावरणरहित हो जाय। इस प्रकारसे मुनिकी आत्मा लघुतासे युक्त हो जाती है। इस प्रकारसे वस्त्रत्याग करनेवाले मुनिको कोयक्लेशनामक तप भी होता है।

४४५-४४७

५ तृतीय सूत्रका अवतरण, तृतीय सूत्र और छाया।

४४८

६ यह सब भगवान् महावीरने कहा है; इस लिये मुनि इस सबका अच्छी तरह विचार कर सचेत और अचेत अवस्थाओंमें साम्यभाव ही रखे।

४४८

७ चतुर्थ सूत्रका अवतरण, चतुर्थ सूत्र और छाया।

४४९

८ जिस मुनिको यह होता है कि मैं रोगातङ्गोंसे अथवा शीतादि या स्त्रीके उपसर्गसे स्पृष्ट हो गया हूँ, मैं इनको सह नहीं सकता हूँ, वह वसुमान् मुनि उस समय अपने अन्तःकरणसे हेय और उपादेयका विचार कर उन उपसर्गोंका प्रतिकार नहीं करते हैं। ऐसे तपस्वी मुनि स्त्रियोंके उपसर्ग उपस्थित होने पर वैद्यप आदि मरणद्वारा शरीर छोड़ देते हैं परन्तु चन्द्रिका नहीं छोड़ते हैं। चन्द्रिका वह मरण बालमरण

नहीं है, अपि सु वह पण्डित मरण ही है। पर मुनि वस्तुतः ससारान्तकारी ही होता है। इस प्रकार वह विमोहका आयतनस्वरूप बेदायस सृष्टि ही उस साधुके हित आदिकी करनेवासी होती है।

४४९-४५६

॥ इति चतुर्थ उद्देश सम्पूर्ण ॥



॥ अथ पञ्चम उद्देश ॥

१ पञ्चम उद्देशका श्रुत्य उद्देशके साथ संबन्धमतिपादन, प्रथम सूत्रका अवतरण, प्रथम सूत्र और छाया।

४५७-४५८

२ जो मिथु, दो बल और एक पात्र धारण करनेके लिये अग्नि ग्रहसे युक्त है उसे यह मायना नहीं होती कि तीसरे बलकी मायना करूँगा। वह यथाक्रम पण्णीय बलोंकी मायना करता है, उसकी इतनी ही सामग्री होती है। जब हेमन्त ऋतु शीत जाती है और ग्रीष्म ऋतु जाने लगती है तब वे परिजीर्ण बलोंको छोड़ देव। अथवा शीत समय शीतन पर भी धन, काल और पुरुषस्वभावके कारण यदि शीतवाषा हो तो दोनों बलोंको धारण कर। शीतकी आसक्तता हो तो अपने पास रखे, त्यागे नहीं। अथवा जबमथेल हों, जबवा एकमात्रकभारी होवे, अथवा बथेल हो जावे। इस प्रकारसे मुनिकी आत्मा छायाय गुणसे युक्त हो जाती है। मगत्रामने जो कहा है वह सर्वथा समुचित है, इस प्रकार मुनि सर्वदा मायना कर। यदि मुनिको ऐसा लगे कि रोगादिकोंसे स्पृष्ट हो गया हूँ निर्बल हूँ मैं मित्राचार्याके लिये यहस्वके घर जानेमें असमर्थ हूँ, उस समय यदि कोई यहस्व मुनिक लिये भजनादिक सामग्रीकी योजना करे तो मुनि उसे अकल्पनीय ... समझकर कभी भी नहीं स्वीकारे।

४५८-४६१

३ द्वितीय सूत्रका अवतरण, द्वितीय सूत्र और छाया ।

४६२

४ जिस भिक्षु का आचार इस प्रकार का होता है कि—

(१) जिसको किसीने वैयावृत्य करने की प्रेरणा नहीं की वह यदि अग्लान होगा और वह आकर मुझ ग्लान को निवेदित करेगा कि मैं आपकी वैयावृत्ति करूँगा तो मैं साधर्मिकों द्वारा निर्जरा के लिये की जाती हुई वैयावृत्ति स्वीकार करूँगा । और अग्लान तथा दूसरों से अप्रेरित मैं ग्लान साधु की वैयावृत्ति अपने कर्मनिर्जरा की इच्छा से करूँगा उसके लिये आहारादि की गवेषणा करूँगा और दूसरों के लाये हुए आहार का भी स्वीकार करूँगा । (२) दूसरों के लिये आहारादि का अन्वेषण करूँगा और दूसरों के लाये हुए आहार का स्वीकार नहीं करूँगा । (३) दूसरों के लिये आहार का अन्वेषण नहीं करूँगा परन्तु दूसरों के लाये हुए आहार का स्वीकार करूँगा । (४) दूसरों के लिये आहार का अन्वेषण नहीं करूँगा और न दूसरों के लाये हुए आहार का स्वीकार ही करूँगा । इस प्रकार अभिग्रहधारी मुनि अपने अभिग्रह को पालते हुए, शान्त, विरत, होकर और अन्तःकरण की वृत्तियोंको विरुद्ध कर ग्लानावस्थामें भक्तप्रत्याख्यान से ही अपने शरीर का परित्याग करे । उस मुनि का वह कालपर्याय ही है । उस का इस प्रकार से शरीर त्याग करना विमोहायतन—महापुरुषकर्तव्य ही है और, हित, सुख, क्षम, निश्रेयस एव आनुगामिक ही है । उद्देश समाप्ति ।

४६३-४६८

॥ इति पञ्चम उद्देशः ॥

*

॥ अथ षष्ठ उद्देशः ॥

१ षष्ठ उद्देश का पञ्चम उद्देश के साथ सम्बन्धप्रतिपादन, प्रथम सूत्र का अवतरण, प्रथमसूत्र और छाया ।

४६९-४७०

- २ जो मिष्ठ एक बख और एक पात्र के अभिग्रहणारी है, उसको यह भावना नहीं होती कि द्वितीय बख की याचना करूँगा। वह मिष्ठ एपणीय बख की याचना करे, जो बख मिले उसी को धारण कर, यावत् ग्रीष्म ऋतु आवे जीर्ण बख का परित्याग कर देवे। अथवा—एक छोटक धारण करे, अपना अवेस होनावे। इस प्रकार के मुनि की आत्मा लघुता—गुण से युक्त हो जाती है। उस मिष्ठ का इस प्रकार का आचार तप ही है। मगवानने जो कहा है वह सर्वथा समुचित है, इस प्रकार वह मिष्ठ सर्वदा भावना करे। ४७०
- ३ द्वितीय सूत्र का अवतरण, द्वितीय सूत्र और छाया। ४७०—४७१
- ४ जिस मिष्ठ को यह होता है कि—मैं अकेला हूँ, मेरा कोई नहीं है, मैं भी किसी का नहीं हूँ। वह साधु अपने को अकल्पा ही समझे। इस प्रकार के साधु की आत्मा लघुता गुण से संपन्न होती है उस साधु की यह भावना तप ही है। मगवानने जो कहा है वह समुचित ही है, ऐसी भावना वह साधु सर्वदा रखे। ४७१—४७२
- ५ तृतीय सूत्र का अवतरण तृतीय सूत्र और छाया। ४७२—४७३
- ६ साधु अथवा साध्या आहार करते समय आहार को मुँह के दाहिने भागसे बाँये भाग की ओर स्वाद लेते हुए नहीं ले जावे, उसी प्रकार बाँये से दाहिने की ओर नहीं ले जावे। इस प्रकार स्वाद की मापना से रहित होकर आहार करना तप ही है। मगवानने जो कहा है वह सर्वथा समुचित ही है, ऐसी भावना साधु को सर्वदा करनी चाहिये। ४७३—४७४
- ७ चतुर्थ सूत्र का अवतरण, चतुर्थ सूत्र और छाया। ४७६
- ८ जिस मिष्ठ को यह होता है कि—मैं इस समय मग्न हूँ, इसलिये इस छरीर को पूर्ववत् परिचर्या करने में असमर्थ हूँ।

३ द्वितीय सूत्रका अवतरण, द्वितीय सूत्र और छाया ।

४६२

४ जिस भिक्षु का आचार इस प्रकार का होता है कि—

(१) जिसको किसीने वैयावृत्त्य करने की प्रेरणा नहीं की वह यदि अग्लान होगा और वह आकर मुझ ग्लान को निवेदित करेगा कि मैं आपकी वैयावृत्ति करूँगा तो मैं साधर्मिकों द्वारा निर्जरा के लिये की जाती हुई वैयावृत्ति स्वीकार करूँगा । और अग्लान तथा दूसरों से अप्रेरित मैं ग्लान साधु की वैयावृत्ति अपने कर्मनिर्जरा की इच्छा से करूँगा उसके लिये आहारादि की गवेपणा करूँगा और दूसरों के लाये हुए आहार का भी स्वीकार करूँगा । (२) दूसरों के लिये आहारादि का अन्वेपण करूँगा और दूसरों के लाये हुए आहार का स्वीकार नहीं करूँगा । (३) दूसरों के लिये आहार का अन्वेपण नहीं करूँगा परन्तु दूसरों के लाये हुए आहार का स्वीकार करूँगा । (४) दूसरों के लिये आहार का अन्वेपण नहीं करूँगा और न दूसरों के लाये हुए आहार का स्वीकार ही करूँगा । इस प्रकार अभिग्रहधारी मुनि अपने अभिग्रह को पालते हुए, शान्त, विरत, होकर और अन्तःकरण की वृत्तियोंको विरुद्ध कर ग्लानावस्थामें भक्तप्रत्याख्यान से ही अपने शरीर का परित्याग करे । उस मुनि का वह कालपर्याय ही है । उस का इस प्रकार से शरीर त्याग करना विमोहायतन—महापुरुषकर्तव्य ही है और, हित, सुख, क्षम, निश्रेयस एव आनुगामिक ही है । उद्देश समाप्ति ।

४६३-४६८

॥ इति पञ्चम उद्देश ॥

*

॥ अथ षष्ठ उद्देश ॥

१ षष्ठ उद्देश का पञ्चम उद्देश के साथ सम्बन्धप्रतिपादन, प्रथम सूत्र का अवतरण, प्रथमसूत्र और छाया ।

४६९-४७०

विषय

पृष्ठाङ्क

४९१

- ३ द्वितीय सूत्रका अवतरण, द्वितीय सूत्र और छाया ।
- ४ उस समयमें पराक्रम करते हुए उस अवेस साधुको वृणस्पर्श, शीतस्पर्श, उष्णस्पर्श और दृश्यमश्रकस्पर्श प्राप्त होते हैं । वह साधु उन स्पर्शों को तथा अन्य भी विविध स्पर्शों को सहता है । उसकी आत्मा लापययुक्त होती है । उसका यह अवेसत्व तप ही है । उस साधुकी यह भावना सर्वदा होनी चाहिये कि भगवान्‌ले जो कहा है वह सर्वथा सगत है । ४९१-४९२
- ५ तृतीय सूत्रका अवतरण, तृतीय सूत्र और छाया । ४९२-४९३
- ६ जिस मिष्ट्रुका यह होता है कि मैं दूसरे मिष्ट्रुमर्षि भिये अश्रना आदि ला कर दूंगा और दूसरोंके लाये हुए अश्रना दिकको स्वीकार भी करूँगा १ । जिस मिष्ट्रुको यह होता है कि मैं दूसरे मिष्ट्रुमर्षियोंके लिये अश्रनादिक ला कर दूंगा और दूसरेके लाये हुए अश्रनादिकका स्वीकार नहीं करूँगा २ । जिस मिष्ट्रुको यह होता है कि मैं दूसरे मिष्ट्रुमर्षियोंके लिये अश्रनादिक लाकर नहीं दूंगा, परन्तु दूसरेके लाये हुए अश्रनादिकको स्वीकार करूँगा ३ । जिस मिष्ट्रुका यह होता है कि-मैं दूसरे मिष्ट्रुमर्षियोंके भिये अश्रनादिक ला कर नहीं दूंगा और न दूसरोंके लाये हुए अश्रनादिकको स्वीकार करूँगा ४ । ये चार प्रकारके अमिग्रहचारी मुनि हात हैं । पाँचवें प्रकारके अमिग्रहचारी मुनि होता है । जिसका अमिग्रह इस प्रकारका होता है कि मैं अपनेस बचे हुए पृथ्वीय अश्रनादिकद्वारा साधर्मियों की वैषाहृत्य करूँगा और साधर्मिकोंके द्वारा भी अपनेस अवशिष्ट दिय गये पृथ्वीय अश्रनादिकका स्वीकार करूँगा । ४९४-४९६
- ७ चतुर्थ सूत्रका अवतरण, चतुर्थ सूत्र और छाया । ४९७
- ८ जिस साधुको यह मान्य हो कि मरा क्षीर अब सञ्चक नहीं है वह साधु सेवारा कर । उद्देश समाप्ति । ४९८-४९९

॥ इति सप्तमोऽध्यायः ॥

उस मुनि को चाहिये कि आहार को क्रमिक अल्प करे, आहार को अल्प कर के और कपायों को कृश कर के अपनी आत्मा को समाहित करते हुए, और मसारजनित कर्म के क्षपण करने की भावना रखते हुए इङ्कित मरण करे।

४७६-४७९

९ पञ्चम सूत्र का अवतरण, पञ्चम सूत्र और छाया।

४८०

१० ग्रामादि किसी स्थानमें जाकर साधु तृण की याचना करे, तृण लेकर एकान्त स्थानमें जायँ। वहाँ कल्पनीय भूमि की प्रतिलेखना प्रमार्जना कर के वहाँ पर तृण का संथारा करें और फिर इङ्कित मरण से शरीर त्याग करे। ऐसा मुनि सत्यवादी, रागद्वेषरहित, तीर्ण, दृढ, जीवाजीवादिपदार्थश्च और अपारससार का पारगामी होता है। वह मुनि इस इङ्कितमरण को सत्य समझकर अनेकविध परीपहोपसर्गों को सह कर, इस जिनशासनमें विश्वस्त हो कातर जनों के असाध्य साधुओं के आचार का आचरण करता है। व्याधिनिमित्त इङ्कित मरण करने वाले साधु का वह मरण पण्डित मरण ही है, यावत् वह आनुगामिक है। उद्देश समाप्ति।

४८१-४८७

॥ इति पण्ड उेश सपूर्ण ॥

+

॥ अथ सप्तम उद्देश ॥

१ सप्तम उद्देशका षष्ठ उद्देशके साथ सम्बन्धप्रतिपादन, प्रथम सूत्रका अवतरण, प्रथम सूत्र और छाया

४८८-४८९

२ जो प्रतिमाधारी साधु वस्त्ररहित हो कर संयममें तत्पर रहता है उस मुनिके चित्तमें यह भावना होती है कि मैं तृणस्पर्श, शीतस्पर्श, उष्णस्पर्श और दंशमशरुस्पर्श सह सकता हूँ, और भी विविध स्पर्शों को सह सकता हूँ; परन्तु लज्जाको नहीं छोड़ सकता हूँ। ऐसे साधुको कटिवन्धन धारण करना कल्पता है।

४८९-४९१

विषय	पृष्ठसंख्या
१३ साठवीं गाथाका अवतरण, गाथा और छाया ।	५८
१४ मुनि ग्राम अथवा अरण्यमें भाषितमिश्र स्पष्टिहस्तका प्रति छेदन करके यहाँ पर दर्भका संयारा बिछावे ।	५०८
१५ आठवीं गाथाका अवतरण, गाथा और छाया ।	५०९
१६ मुनि आहारको छोड़ कर उस दर्भसंयाराके ऊपर शयन करे, अनुकूल प्रतिकूल सभी परिपर्क्षा सह ।	५०९-५१०
१७ नवमी गाथाका अवतरण, गाथा और छाया ।	६१०
१८ उस छव्या पर उस मुनिके मांसलोभितको कीटियाँ और सूक्ष्म आदि पक्षी खावे तो उनकी हिंसा न करे और न सतस्यानका प्रमार्जन ही करे ।	५१०
१९ दशवीं गाथाका अवतरण, गाथा और छाया ।	५११
२० साधु यह विचार करे कि मे प्राणी मेरे शरीरकी हिंसा करते हैं रक्षप्रयकी तो नहीं करते। ऐसा विचार कर वह उन्हें निवारित न करे। अपनी शय्यासे कमी दूर न जाय और परीपक्षो पक्षमौका सङ्ग करे ।	५११
२१ ग्यारहवीं गाथाका अवतरण, गाथा और छाया	५१२
२२ बाह्याभ्यन्तर ब्रह्मसे रहित अपनी आत्माको भाषित करते हुए मुनि अन्तिमश्वासोच्छ्वासपर्यन्त समाधिपुक्त रहे । इस प्रकारका मुनि कर्मके निश्चेष होने पर मोक्षप्राप्ति होता है और यदि कर्म अवशिष्ट रह जाता है तो देवलोकाप्राप्ति होता है। गीतार्थ संपत्ति इस इच्छित मरणको सम्यक् प्रकारसे स्वीकृत करता है ।	५१२-५१३
२३ बारहवीं गाथाका अवतरण, गाथा और छाया ।	५१३
२४ यह इच्छितमरणकर्म धर्म भगवान् महावीरन कहा है, यह मरण मत्तपरिग्रामरणसे भिन्न है। इस मरणका अभिलाषी मुनि	

॥ अथ अष्टम उद्देश ॥

विषय

पृष्ठाङ्क

- १ अष्टम उद्देशका सप्तम उद्देशके साथ सम्बन्धप्रतिपादन,
प्रथम गाथा और उसकी छाया । ५००
- २ बुद्धिमान् धीर मुनि क्रमशः भक्तपरिज्ञा, इङ्गितमरण और
पादपोषगमनरूप विमोहको प्राप्त कर, उस भक्तपरिज्ञानादिक
के औचित्य अनौचित्यको विचार कर समाधिका
परिपालन करे । ५०१-५०२
- ३ द्वितीय गाथाका अवतरण, द्वितीय गाथा और छाया । ५०२
- ४ मुनि बाह्य और आभ्यन्तर तपका सेवन कर, शरीरके अशक्त
हो जाने पर भक्तप्रत्याख्यान आदिमें से किसी एकको
स्वीकार कर आहारादिकी गवेपणासे निवृत्त हो जाता है । ५०२-५०३
- ५ तृतीय गाथाका अवतरण, तृतीय गाथा और छाया । ५०३
- ६ वह भिक्षु अल्पाहारी होता है, कपायादिको कृश करके
दूसरोंके दुर्वचनोंको सह लेता है । यदि उस भिक्षुको आहार
न मिले तो वह आहारका परित्याग कर देता है । ५०४-५०५
- ७ चतुर्थ गाथाका अवतरण, गाथा और छाया । ५०५
- ८ सलेखना करनेवाले मुनिको जीवन-मरणको अभिलाषासे
रहित होना चाहिये । ५०६
- ९ पांचवीं गाथाका अवतरण, गाथा और छाया । ५०६
- १० सलेखनाकारी मुनि निर्जराकी अपेक्षा रखता हुआ मध्यस्थ
हो कर समाधिकी परिपालना करे, और कषाय एवं शारी-
रिक उपकरणों को छोड़ कर अन्तःकरणको शुद्ध करे । ५०६-५०७
- ११ छठी गाथाका अवतरण, गाथा और छाया । ५०७
- १२ अपनी आयुके उपक्रमको जान कर मुनि संलेखनाकालके
बीचमें ही भक्तप्रत्याख्यान करे । ५०७-५०८

ग्रहण नहीं करना चाहिये। इक्षित मरणमें स्थित मुनि अपनी आत्माको कायपोग और मनोयोगसे पृथक् करे और समी परीपद्मोपसर्गोंको सहन करे।

५२०-५२२

३७ उन्नीसवीं गाथाका अवतरण, गाथा और छाया।

५२२

३८ इक्षित मरणकी अपेक्षा श्रेष्ठ पादपोषगमन मरणमें जो मुनि स्थित होता है उसके समी अङ्ग अकट नायें तो भी वह अपने स्वान्तर्ग नहीं उठे।

५२२-५२३

३९ बीसवीं गाथाका अवतरण, गाथा और छाया।

५२३

४० यह पादपोषगमन मरण मत्तपरिज्ञा और इक्षितमरणसे श्रेष्ठ है, अतः मुनि पादपोषगमनमरण स्वीकार करे।

५२४-५२५

४१ इक्कीसवीं गाथाका अवतरण, गाथा और छाया।

५२५

४२ मुनि क्षुब्धविषादरक्तो ह्योदकर अविच्छिन्नं स्पष्टिर्लभं पर्वतके समान अग्रकम्प रह कर विहित प्रत्युपेक्षमादि क्रिया करते हुए समी प्रक्षरसे क्षीर ममत्त्वका परित्याग करे। यदि उसे परीपद्मोपसर्गकी बाधा उपस्थित हो तो विचार करे कि यह क्षीर अब मेरा नहीं है तो उसमें होमेशामी परीपद्मोपसर्गकी बाधासे मेरा क्या सम्बन्ध ? वह मेरा कुछ भी नहीं बिगाड़ सकती।

५२६

४३ बाईसवीं गाथाका अवतरण, गाथा और छाया।

५२७

४४ इन परीपद्मोपसर्गों को तो यावन्जीवन सहना ही है। ऐसा विचार कर क्षीर परित्यागनिमित्त, सकल आरीतिक व्यापारसे रहित हो कर पादपोषगमनमरणके विधिज्ञ वह मुनि समी परीपद्मोपसर्गों को सह।

५२७

४५ तेईसवीं गाथाका अवतरण, गाथा और छाया।

५२७-५२८

विषय

पृष्ठाङ्क

- ४६ यह मुनि ऐहिक कामभोगोंका अनुरागी न बने,
और मोक्षके स्वरूपका पर्यालोचन कर इन्द्रादि देवपदोंकी
भी अभिलाषा न करे । ५२८
- ४७ चौबीसवीं गाथाका अवतरण; गाथा और छाया । ५२९
- ४८ यदि राजा जीवनपर्यन्त निर्वाहके लिये धनादिक प्रदान
करे, और कोई देव दिव्य ऋद्धि देनेके लिये प्रगट होवे तो
भी मुनि अपने तपको खण्डित नहीं करे । वह मुनि राज-
प्रदत्त ऐश्वर्यको और देवप्रदत्त दिव्य ऋद्धिको आत्मकल्याण
के प्रतिकूल जान कर ज्ञानावरणीयादि सभी कर्मोंको
विनष्ट करे । ५२९-५३०
- ४९ पच्चीसवीं गाथाका अवतरण, गाथा और छाया । ५३०-५३१
- ५० पाचों प्रकारके शब्दादिकोंमें अथवा उनके साधक धनोंमें
गृद्धि छोड़ कर मुनि पादपोषगमन मरणसे आयुकालका पार-
गामी होवे । मुनि तितिक्षाको उत्कृष्ट समझ कर भक्तपरिज्ञा,
इङ्गितमरण और पादपोषगमन, इन तीनोंमेंसे किसी एकको
अपनी शक्तिके अनुसार स्वीकार करे; क्योंकि ये तीनों
ही कर्मनिर्जराकारक हैं । अष्टम उद्देशकी समाप्ति । ५३१-५३२
- ५१ अध्ययनस्थ विषयोंका उपसंहार । ५३२-५३५

॥ इति अष्टम अध्ययन ॥

*

॥ अथ नवम अध्ययन ॥

(प्रथम उद्देश)

- १ नवम अध्ययनका पूर्वोक्त अध्ययनोंके साथ सम्वन्धप्रतिपा-
दन, 'उपधानश्रुत' शब्दकी व्याख्या, अध्ययनके चारों
उद्देशोंमें आये हुए विषयोंका दिग्दर्शन । ५३६-५३८

- २ मगध गाथाका अवतरण, गाथा और छाया । ५३८
- ३ मगधान् महावीरस्वामीके चरित्रवर्णन का प्रस्ताव । मगधान् महावीरस्वामी उल्लिखित हो मगध्याकासको जान कर हेमन्त ऋतुमें प्रवर्जित हुए, और मगध्या ग्रहण कर सुरन्त ही वहाँ से बिहार किये । ५३८-५३९
- ४ दूसरी गाथाका अवतरण, गाथा और छाया । ५३९
- ५ मगधान्ने जो वस्त्र धारण किया या वह तीर्थङ्करपरम्पराके रक्षार्थ; नहीं कि हेमन्तऋतुमें श्रीरघुञ्जयन निमित्त । ५४०-५४१
- ६ तीसरी गाथाका अवतरण, गाथा और छाया । ५४१
- ७ मगधान्के श्रीरपर भ्रमरादि माणी कुछ अधिक भार महीनों तक चन्दनादिकी गन्धसे आच्छादित हो कर विचरते थे और रक्तमांसकी जमिजापासे उनके श्रीरको ढसते थे । ५४२
- ८ चौथी गाथाका अवतरण, गाथा और छाया । ५४३
- ९ मगधान्ने एक वर्षसे कुछ अधिक काल तक वस्त्र धारण किया, उसके बाद वस्त्र त्याग कर वे अथेस हो गये । ५४३-५४३
- १० पाँचवीं गाथाका अवतरण, गाथा और छाया । ५४३
- ११ मगधान् जब रास्तामें बिहार करते थे तो बासकगण उन्हें देख कर घृष्टि-पत्थर आदिका प्रक्षेप करते थे, और इनको देखनेके लिये दूसरे बासकोंको भी पुलाते थे । ५४३-५४४
- १२ छठी गाथाका अवतरण, गाथा और छाया । ५४४
- १३ मगधान् जब किसी वासस्थानमें घिरावते थे, जहाँ कि स्त्री पुरुष आदि सभी रात्रिवासके लिये ठहरते थे । वहाँ किसी स्त्रीद्वारा प्रार्थित होने पर भी मगधान् उनकी प्रार्थना स्वीकार नहीं करते अपि तु समय माग में अपनी आत्माको स्थापित कर ध्यान करते थे । ५४४-५४५

विषय

पृष्ठाङ्क

- १४ सातवीं गाथाका अवतरण, गाथा और छाया । ५४५
- १५ गृहस्थलोग भगवान्‌के पास एकत्रित होते तो वे उनकी ओर लक्ष न दे कर अपने ध्यानमें ही मग्न रहते । यदि वे गृहस्थ उनसे कुछ पूछते तो चुपचाप वहांसे चल देते । वे ध्यानसे कभी भी विचलित नहीं होते । ५४६
- १६ आठवीं गाथाका अवतरण, गाथा और छाया । ५४६
- १७ भगवान्‌को कोई अभिवादन करता था तो वे उससे प्रसन्नता नहीं प्रगट करते थे, और यदि कोई अभिवादन न करे तो उस पर क्रुद्ध भी नहीं होते थे । अनार्य देशोंमें भगवान्‌ को यदि कोई त्राडन आदि करता तो भी उनका भाव कलुषित नहीं होता । ५४६-५४७
- १८ नवमी गाथाका अवतरण, गाथा और छाया । ५४७
- १९ भगवान्‌ महावीरस्वामी कठोर वचनोंको सहते थे, नृत्य, गीत, दण्डयुद्ध और मृष्टियुद्ध आदिको सुनने और देखनेके लिये उन्हें कुतूहलता नहीं होती । ५४८
- २० दसवीं गाथाका अवतरण, गाथा और छाया । ५४८
- २१ भगवान्‌ने कभी कभी परस्पर कामकथामें संलग्न स्त्रियोंको देखा, परन्तु उन्हें राग नहीं हुआ । भगवान्‌ने संयमकी आराधनानिमित्त परीषद्‌ोपसर्गों को कुछ भी नहीं गिना । ५४८-५४९
- २२ ग्यारहवीं गाथाका अवतरण, गाथा और छाया । ५४९
- २३ भगवान्‌ साधिक दो वर्ष सचित्त जलका परित्याग कर एकत्व भावना भाते और क्रोध छोड़ते हुए, सम्यक्त्वभावना एव शान्तिसे युक्त हो कर प्रव्रज्या ग्रहण की । ५४९-५५०
- २४ बारहवीं गाथाका अवतरण, गाथा और छाया । ५५०

विषय

पृष्ठाङ्क

- २५ मगवान् पञ्चजीवनिकायोंके स्वरूपको ज्ञान कर उनके आरम्भ का परिहार करते हुए विचरते थे । ५५०
- २६ तेरहवीं गाथाका अवतरण, गाथा और छाया । ५५१
- २७ 'ये पृथिवी आदि पञ्चजीवनिकाय सचिच हैं' । ऐसा विचार कर उनके स्वरूप और भेद-भेदोंको जान कर उनके आरम्भ को परिवर्जित करके विचरते थे । ५५१
- २८ चौदहवीं गाथाका अवतरण, गाथा और छाया । ५५१-५५२
- २९ स्वात्वर जीव भस हो कर उत्पन्न होते हैं, और भस जीव स्वात्वर हो कर । अथवा सभी जीव अपने उपार्जित कर्मांनुसार सभी योनियोगोंमें उत्पन्न होते हैं । ५५२-५५३
- ३० पन्द्रहवीं गाथाका अवतरण, गाथा और छाया । ५५३
- ३१ मगवाने इस प्रकार समझा कि ये मोक्षयुक्त प्राणी द्रव्य और मात्र उपविष्टे युक्त हो कर कर्मके प्रभावसे क्लेशका जलुम्न करते हैं । इस लिये मगवान् ने सभी प्रकारके कर्मों का परित्याग कर दिया । ५५३
- ३२ सोलहवीं गाथाका अवतरण, गाथा और छाया । ५५४
- ३३ मगवान् ने दोनों प्रकारके कर्मोंको जानकर और आदानस्रोत, अतिपावस्रोत और दुष्प्रणिहित मनोवाकायको कर्मबन्धका कारण जान कर संयमको पाया । ५५४-५५५
- ३४ सप्तहवीं गाथाका अवतरण, गाथा और छाया । ५५५
- ३५ मगवान् ने हिंसाको सर्वथा छोड़ कर अहिंसाका उपदेश दिया । उन्होंने स्त्रियोंको सकल कर्मबन्धका मूल समझा, इस प्रकार उन मगवान् ने संसारके यथावस्थित स्वरूपको देखा । ५५५
- ३६ अठारहवीं गाथाका अवतरण, गाथा और छाया । ५५६
- ३७ वे मगवान् आपाकर्मादिविरोधयुक्त आहारशुद्धिको ज्ञानात्तर पीयादि कर्मोंका बन्ध समझा, इसीलिये उन्होंने उत्तम सेवन

विषय

पृष्ठाङ्क

- नहीं किया । तथा भगवान् ने पापकारण सदोष अन्नादिको स्वीकार नहीं करते हुए प्रासुक आहारका सेवन किया । ५५६
- ३८ उन्नीसवीं गाथाका अवतरण, गाथा और छाया । ५५६-५५७
- ३९ उन भगवान् ने दूसरोंके वस्त्रका कभी भी सेवन नहीं किया, दूसरेके पात्रमें भी उन्होंने भोजन नहीं किया। भगवान् अपमानकी गणना नहीं करके आहार बननेके स्थानमें आहारके निमित्त जाते थे । ५५७
- ४० बीसवीं गाथाका अवतरण, गाथा और छाया । ५५७
- ४१ भगवान् अशनपानके मात्राज्ञ थे, वे कभी भी मधुरादिरसोंमें आसक्त नहीं हुए । भगवान् सर्वदा अप्रतिज्ञ रहे । उन्होंने ने आखे कभी भी, नहीं धोयीं, और न उन्होंने ने कभी शरीर को खजुआया । ५५८
- ४२ इक्कीसवीं गाथा का अवतरण, गाथा और छाया । ५५९
- ४३ भगवान् मार्ग में चलते हुए न अपनी दृष्टि को तिरछी करते थे और न पीछे की ओर वे दृष्टिपात करते थे, कोई कुछ पूछता था तो कोई उत्तर भी नहीं देते थे, किन्तु आगे की ओर अपने शरीरप्रमाण भूमि को देखते हुए यतनापूर्वक विहार करते थे । ५५९
- ४४ बाईसवीं गाथा का अवतरण, गाथा और छाया । ५५९
- ४५ मार्गमें चलते हुए भगवान् महावीर शिशिर ऋतुमें वस्त्र छोड़ कर, दोनों बाहुओं को कन्धों पर नहीं रख कर किन्तु दोनों बाहुओं को पसार कर परीषह और उपसर्गों को सहने के लिये यत्न करते थे । ५६०
- ४६ तेईसवीं गाथा का अवतरण, गाथा और छाया । ५६०
- ४७ भगवान् ने इस प्रकार का आचार का सेवन किया । उन्होंने यह आचार इसलिये पाला कि दूसरे मुनि भी इसी तरह आचारकापालन करें । उद्देश समाप्ति । ५६०-५६१

॥ इति प्रथम उद्देश संपूर्ण ॥

*

॥ अथ द्वितीय उद्देश ॥

विषय	पृष्ठाङ्क
१ द्वितीय उद्देश का प्रथम उद्देश के साथ सन्ध्यासंविधान, प्रथम गाथा का अवतरण, गाथा और छाया ।	५६२
२ विहार में भगवान् जिन आसनों को, शृंगार्यों को संवित किया उन्हें कहें—इस प्रकार जम्बू स्वामी का प्रथम ।	५६२
३ द्वितीय गाथा का अवतरण, गाथा और छाया ।	५६३
४ सुषर्मा स्वामी का उत्तर—भगवान् ने विहारकाष्ठमें शून्य गृहोंमें, समाश्रयोंमें, मण्डपशालाओंमें, पण्डितशालाओंमें, कारस्तानोंमें, पुञ्जाल को बनी कुटियोंमें निवास किया ।	५६३-५६४
५ तीसरी गाथा का अवतरण, गाथा और छाया ।	५६४
६ भगवान् ने कमी धर्मशालाओंमें, व्यान स्थित गृहोंमें, नगर के मध्यभागमें, भगवान् में, शून्यगृहोंमें, वृक्षमूलोंमें निवास किया ।	५६४
७ चौथी गाथा का अवतरण, गाथा और छाया ।	५६५
८ भगवान् ने इस प्रकारके आवासोंमें कुछ अधिक तेरह वर्षों तक निवास किया, और वहाँ पर निद्राविमलाद् और विस्तृत सिद्ध से रहित भगवान् ध्यानावस्थामें रहे ।	५६५
९ पाँचवीं गाथा का अवतरण, गाथा और छाया ।	५६६
१० भगवान् महावीर स्वामी अधिक सोते नहीं थे, यदि निद्रा आने लमटी थी तो भगवान् सावधान होकर जागते रहते थे, अप्रतिह भगवान् उद्यमस्थायीमें रात्रि के अन्तिम प्रहरमें अन्तर्गृह्यमाण भजन करते थे ।	५६६
११ छठी गाथा का अवतरण, गाथा और छाया ।	५६६
१२ भगवान् महावीरस्वामी निद्राके दोषोंको अच्छी तरह जानते हुए निद्रा आनेके समय लठ कर, बाहर निकल कर, एक गृह्य भ्रमण कर फिर ध्यानमें बैठ जाते थे ।	५६६-५६७

विषय

पृष्ठाङ्क

- १३ सातवीं गाथाका अवतरण, गाथा और छाया । ५६७
- १४ आश्रयस्थानोंमें भगवान्को भयकर, अनेक प्रकारके उपसर्ग हुए और सांप, नेवले तथा गीध आदिके भी उपसर्ग हुए । ५६७
- १५ आठवीं गाथाका अवतरण, गाथा और छाया । ५६७-५६८
- १६ चोर व्यभिचारी आदि, शक्तिधारी ग्रामरक्षक, व्यभिचारिणी स्त्रियां और अन्य पुरुष लोग भगवान्को उपसर्ग करते थे । ५६८-५६९
- १७ नवमी गाथाका अवतरण, गाथा और छाया । ५६९
- १८ भगवान् ऐहलौकिक पारलौकिक अनेक प्रकारके उपसर्गों को सहते थे, और अनेक प्रकारके सुरभि-दुरभिगन्धों को भी सहते थे । ५६९
- १९ दसवीं गाथाका अवतरण, गाथा और छाया । ५७०
- २० भगवान् पांच समितियोंसे युक्त होकर अनेक प्रकारके स्पर्शोंको सहन किये, अल्पभाषी भगवान् संयममें अरति और विषयानन्दमें रति को दूर कर संयमके आराधनमें प्रवृत्त हुए । ५७०
- २१ ग्यारहवीं गाथाका अवतरण, गाथा और छाया । ५७०
- २२ शून्य घरोंमें अथवा निर्जन प्रदेशोंमें लोग भगवान्से विविध प्रश्न पूछते थे, परन्तु भगवान् मौन रहते थे । कभी कभी कोई कोई जार पुरुष आदि आ कर भगवान्से पूछते थे, परन्तु भगवान् मौन रहते थे; तब वे क्रुद्ध हो कर भगवान् को दण्ड मुष्टि आदिसे ताडते थे; लेकिन भगवान् निर्विकार हो कर सब सह लेते थे । ५७१
- २३ बारहवीं गाथाका अवतरण, गाथा और छाया । ५७२
- २४ भगवान्से कभी कोई पूछता—‘तुम कौन हो?’ तब भगवान् कहते मैं भिक्षु हूं । तब वे भगवान् को निकल जानेके लिये कहते तब भगवान् वहांसे चले जाते । यदि नहीं जानेको कहते तो भगवान् कपाययुक्त उन मनुष्योंके प्रति समभावसे मौन होकर धर्मध्यानमें सलग्न रहते । ५७२
- २५ तेरहवीं गाथाका अवतरण, गाथा और छाया । ५७३

- २६ शिशिर ऋतुमें पवनके चलने पर कितनेक अनगार कांपते थे, कितनेक अनगार उस हिमपातसे पवनेके लिये निर्मात स्थानकी खोज करते थे । ५७३
- २७ चौदहवीं गाथाका अवतरण, गाथा और छाया । ५७३
- २८ उस हिमजलमें कितनेक अनगार क्षीतनिवारणके लिये संघाटी ओढ़ते थे । परतीर्थिक तापसादि घूनी चला कर क्षीतवारण करते थे और गृहस्थ लोग विविध प्रकारके वस्त्र धारण करते थे । ५७४
- २९ पन्द्रहवीं गाथाका अवतरण, गाथा और छाया । ५७४-५७५
- ३० भगवान् महावीरने उस शिशिर ऋतुके हिमपातमें भी अनाहत स्थानमें ही रह कर हिमस्पर्शको समभावसे सहते थे । ५७५
- ३१ सोलहवीं गाथाका अवतरण, गाथा और छाया । ५७६
- ३२ भगवान् महावीरने इस प्रकारके दुःसह क्षीतोंको अनेकवार सहा । भगवान्का उद्देश इसमें यह था कि दूसरे साधु भी इसी प्रकार क्षीतका सहन करे । उद्देश समाप्ति । ५७६-५७७

।इति द्वितीय उद्देश संपूर्ण।

*

॥ अथ तृतीय उद्देश ॥

- १ तृतीय उद्देशका द्वितीय उद्देशके साथ सम्बन्धकथन, भगवत् गाथाका अवतरण, गाथा और छाया । ५७८
- २ भगवान् सर्वदा सभी प्रकारके स्थितियों को सहते थे । ५७८-५७९
- ३ द्वितीय गाथाका अवतरण, गाथा और छाया । ५७९
- ४ भगवान्ने दूसर काह देखकी ब्रह्मभूमि और शुभ्रभूमिमें विहार किया । वहां अन्तर्मातृ द्रव्या आदिका छन्दानि सेवन किया । ५७९-५८०

- ५ तृतीय गाथाका अवतरण, गाथा और छाया । ५८०
- ६ लाढ देशमें वहांके लोगोंने भगवान् को बहुत उपसर्ग किये । कितनेक तो भगवान् की ताडना करते थे, और कुत्ते भगवान् को काटते थे और गिरा कर उनके ऊपर चढ़ बैठते थे । ५८०-५८१
- ७ चौथी गाथाका अवतरण, गाथा और छाया । ५८१
- ८ बहुत थोड़े ऐसे लोग थे जो हिंसक मनुष्योंको और काटते हुए कुत्तों को रोकते थे; अधिकतर तो ऐसे ही मनुष्य थे जो भगवान् को ताडन करके उनके ऊपर कुत्तों को हलकाते थे । ५८१
- ९ पांचवीं गाथाका अवतरण, और छाया । ५८२
- १० लाढ देशकी वज्रभूमिके लोग तुच्छअभमोजी और क्रूर स्वभावके थे । वहां पर अन्यतैर्थिक श्रमण लाठी और नालिका ले कर विहार करते थे । ५८२-५८४
- ११ छठी गाथाका अवतरण, गाथा और छाया । ५८४
- १२ उस लाढदेशमें लाठी और नालिका ले कर यद्यपि अन्य तैर्थिक श्रमण विहार करते थे तो भी उन्हें कुत्ते काट लेते थे । यह लाढ वस्तुतः बड़ा ही दुश्चर था । ५८५
- सातवीं गाथाका अवतरण, गाथा और छाया । ५८५
- १४ भगवान् लाढदेशकी उस अनार्य भूमिमें भी डंडे आदिके बिना ही विचरण करते हुए सभी प्रकारके उपसर्गों को सह्ये । ५८६
- १५ आठवीं गाथाका अवतरण, गाथा और छाया । ५८७
- १६ सग्रामके अग्रभागमें हाथी जैसे शत्रुसेनाको जीत कर उसके पारगामी होता है उसी प्रकार भगवान् भी परीपहोपसर्गोंको जीत कर उनके पारगामी हुए । विहार करते हुए भगवान्

- कमी २ ग्रामको प्राप्त नहीं करते वे अर्थात् ग्रामसे दूर भ्रमण आदिमें स्थित मार्गपर होते उसी समय ग्रामवासी अनार्य लोक आकर मगवान्को परीपदोपसर्ग किये । ५८७
- १७ नवमी गाथाका अवतरण, गाथा और छाया । ५८८
- १८ मगवान् बिहार करते हुए ग्रामके समीप पहुँचते वे कि ग्रामवासी लोग आकर उन्हें दण्डे आदिसे लाठित करते वे और कहते वे कि यहाँसे चले जाओ । ५८८
- १९ दसवीं गाथाका अवतरण, गाथा और छाया । ५८९
- २० अनार्य लोग मगवान्को दण्डे आदिसे बाइत कर रक्खा मचाते थे । ५८९
- २१ ग्यारहवीं गाथाका अवतरण, गाथा और छाया । ५८९
- २२ मगवान्के शरीरमें जहाँ जहाँ पाव या बरिं ये अनार्य लोग मौचते थे और मगवान् के ऊपर घुल्लि डालते थे । ५८९-५९०
- २३ बारहवीं गाथाका अवतरण, गाथा और छाया । ५९०
- २४ मगवान्को कितनेक अनार्य ऊपर उठाकर पटक देते थे, कितनेक उन्हें आसनसे गिरा देते थे; इन सभी उपसर्गोंको कायोत्सर्गस्थित धर्मप्यानकीन मगवान्ने समतापूर्वक सहा । ५९०-५९१
- २५ तेरहवीं गाथा का अवतरण, गाथा और छाया । ५९१
- २६ संग्राम के अग्रभागमें शूर वीर पुरुषके समान मगवान् बहों पर घुस मोढ़े बिना भागे भागे बिहार करते थे । ५९१-५९२
- २७ चौदहवीं गाथा का अवतरण, गाथा और छाया । ५९२-५९३
- २८ मगवान् महावीरने इस प्रकार के उपसर्ग परीपदों को इसप्रिये सहा कि इसरे मुनि भी मेरे देखादेखी उपसर्ग-परीपदों के सहनेमें सह रहें। विशेष समाप्ति ।

॥ इति तृतीय स्रोत्र संपूर्ण ॥

- ३० मायारहित भगवान् स्वयमेव संसारको स्वरूप जानकर स्वयं सबुद्ध हो तीर्थप्रवर्त्तन के लिये उद्यत हुए । भगवान् कर्मों के क्षयोपशम, उपशम और क्षय से समुद्भूत आत्मशोधि द्वारा मनोवाक्काययोग को स्थिर रख कर, कषायाग्नि के प्रशमन से शीतीभूत होकर यावज्जीव पाँच समिति और तीन गुप्ति से युक्त रहे । ६१४-६१६
- ३१ सत्रहवीं गाथा का अवतरण, गाथा और छाया । ६१६
- ३२ भगवानने इस प्रकार के आचार का वारंवार पालन किया । भगवानने यह आचार इसलिये पाला कि दूसरे भी साधु मेरे देखादेखी इसी प्रकार से आचार का पालन करें । ६१६
- ३३ नवम अध्ययन का उपसंहार और शास्त्रप्रशस्ति । ६१७-६१९

॥ इति विषयानुक्रमणिका सम्पूर्ण ॥



॥ अथाचाराङ्गसूत्रस्य लोकसारनामक पञ्चममध्ययनम् ॥

गते चतुर्थमध्ययने साम्प्रतं पञ्चममध्ययनं प्रारम्भ्यते । चतुर्थमध्ययने सम्यक्त्वं, सत्यन्तर्गतं ज्ञानं च निरूपितं, सम्यक्त्वज्ञानकारणमन्यं चारित्र्यं, तदेव प्रधानं मोक्ष-
कारणमस्तदयं लोक सारश्रुतिमिति लोकसाराख्यमिदमध्ययनम् । तथा हि—लोकस्य
सारो धर्मो, धर्मस्य सारो ज्ञानं, ज्ञानस्य सारचारित्र्यं, तस्य च सारो मोक्ष इत्यस्य
प्रतिपादनम्, तेन लोकसारतया चारित्र्ययात्र प्रतिपादयितव्यमस्ति । इहाध्ययन-
वर्णाधिकारस्तु 'लोकस्य सारः परिचिन्तनीयः' इति । उद्देशवर्णाधिकारो यथा—

॥ आचाराङ्गसूत्र का लोकसारनामक पाँचवां अध्ययन ॥

चतुर्थ अध्ययन प्रतिपादित किया जा चुका है । अब यहाँ पंचम
अध्ययनका व्याख्यान प्रारम्भ होता है । चतुर्थ अध्ययनमें सम्यक्त्व एवं
उस के अन्तर्गत ज्ञानका निरूपण किया है । इस पाँचवें अध्ययन का
नाम 'लोकसार' है । लोकमें सारश्रुत चारित्र्य है । बड़ चारित्र्य सम्य
गदर्शन और सम्यग्ज्ञानसे होना है, अर्थात् इनके सहित होनेवाला
चारित्र्य ही सम्यक्चारित्र्य है । बड़ी मोक्षका प्रधान कारण माना गया है ।
लोकका सार धर्म, धर्म का सार ज्ञान, ज्ञान का सार चारित्र्य और
चारित्र्यका सार मोक्ष है । इस कारण लोकमें सारश्रुत होनेसे चारित्र्यका
ही वर्णन इस अध्ययनमें किया जायगा । "लोकस्य सारः परिचिन्त-
नीयः" अर्थात् चारित्र्य ही लोकका सार है, ऐसा विचारना चाहिये ।
इस प्रकार यहाँ पर यह अध्ययनका अर्थाधिकार है । उद्देश का अर्थाधिकार
इस प्रकार है—

आचाराङ्गसूत्रनु 'लोकसार' नामनु पाँचम अध्ययन.

आचार्य अध्ययन उद्देशवाचक अथुं छे हवे अर्थाधी पाँचमा अध्ययननो प्रारम्भ
वाच छे योना अध्ययनमा सम्यक्त्वं ज्ञाने तेना अतर्गत ज्ञानपी समग्रपु आप-
वाभा आवी छे । आ पाँचमा अध्ययननु नाम 'लोकसार' छे लोकमा सारश्रुत
चारित्र्य छे । ते सारित्र समग्रदर्शन ज्ञाने समग्रज्ञानपी वाच छे तदर्थ छे तेनापी
श्रुत चारित्र्य तेव समग्र चारित्र्य छे तेने व मोक्षनु प्रधान कारण मानवार्थ
वाच छे लोकनो सार धर्म धर्मनो सार ज्ञान, ज्ञाननो सार चारित्र्य ज्ञाने
चारित्र्यनो सार मोक्ष छे । आ कारणपी लोकमा सारश्रुत मोक्षपी चारित्र्यनु व वर्णन
आ अध्ययनमा करवावा ज्ञापरी । "लोकस्य सारः परिचिन्तनीयः" ज्ञाननु चारित्र्य व
लोकनो सार छे कोम माननु जेथिजे । आ अर्था अध्ययननो अर्थाधिकार छे ।
उद्देशनो अर्थाधिकार आ प्रमाण छे—

॥ अथ चतुर्थ उद्देश ॥

विषय	पृष्ठाङ्क
१ चतुर्थ उद्देश का तृतीय उद्देश के साथ संबन्धकथन, प्रथम गाथा का अवतरण, गाथा और छाया ।	५९४
२ भगवान् अवमोदरिका तप करते थे और कभी भी चिकित्सा (इलाज) नहीं करवाते थे ।	५९४-५९५
३ दूसरी गाथा का अवतरण, गाथा और छाया ।	५९६
४ भगवान् कभी भी रेचन और वमनका औषध नहीं लिया और गात्राभ्यञ्जन, सवाहन और दन्तप्रक्षालन नहीं किये ।	५९६-५९७
५ तीसरी गाथा का अवतरण, गाथा और छाया ।	५९९
६ भगवान् शब्दादि विषयों से निवृत्त, अहिंसक और अल्प भाषी होकर विचरते थे और शीतकालमें वृक्ष या लता-मण्डप की छायामें बैठ कर धर्मध्यान ध्याते थे ।	६००
७ चौथी गाथा का अवतरण, गाथा और छाया ।	६००
८ भगवान् ग्रीष्म ऋतुमें सूर्याभिमुख उत्कुटुकासन (उकडु आसन) से बैठ कर सूर्यकी तापना लेते थे, और नीरस ओदन, बेरका चूर्ण, कुल्माप आदि आदि से शरीरनिर्वाह करते थे ।	६००
९ पाँचवीं गाथा का अवतरण, गाथा और छाया ।	६०१
१० भगवान् इन नीरस ओदनादिकों को सेवित करते हुए आठ मास बिताये, कभी अर्द्धमासिक चतुर्विधाहारत्यागरूप तप किया ।	६०१
११ छठी गाथा का अवतरण, गाथा और छाया ।	६०१-६०२
१२ कभी कभी भगवान् अट्ठाई महीने तक, तो कभी कभी छ महीने तक पानी भी नहीं छेते हुए चोविहार तपस्या की, और पारणा के दिनमें अन्त प्रान्त ओदनादि से पारणा किये ।	६०२
१३ सातवीं गाथाका अवतरण, गाथा और छाया ।	६०२
१४ भगवान् सयमसमाधिको देखते हुए छठ, अट्ठम, दशम और द्वादश तपका पारणा करते थे ।	६०२

क्रिय	पृष्ठ
१५ आठवीं गाथाका अवतरण, गाथा और छाया ।	६०३
१६ मगवाने पापकर्मोंका तीन करणतीन योगसे परित्याग किया ।	६०३
१७ नवमी गाथाका अवतरण, गाथा और छाया ।	६०३
१८ मगवान् ग्राम और नगरमें प्रवेश करके उद्गमदोष और उत्पादमादोष रहित शुद्ध आहारको ग्रसैपणादोषका परिष जन करत हुए ग्रहण करते थे ।	६०३-६०४
१९ इसबां गाथाका अवतरण, गाथा और छाया ।	६०४
२० मगवान् कौबे और कष्टर आदि पक्षियोंको पृथ्वी पर आहारके निमित्त स्थित देख कर उन्हें बाधा नहीं हो, इस प्रकारसे मार्गके एक ओरसे धीरे धीरे चले हुए आहारकी गवेषणा करते थे ।	६०४-६०५
२१ न्यारही और बारही गाथाका अवतरण, गाथा और छाया ।	६०५
२२ ब्राह्मणों या क्षत्र्यादि श्रमणों या अन्य जीवोंकी वृत्तिछेद नहीं हो; इस प्रकारसे आहारका अन्वेषण करते थे ।	६०५-६०६
२३ तेरही गाथाका अवतरण, गाथा और छाया ।	६०६
२४ मगवानको निर्दोष आहार जैसा-कैसा अन्त मान्त भी मिला या उसीको ले कर समयमें स्थित रहते थे, और यदि नर्हा मिलता या तो वे किसीकी निन्दा नहीं करते थे ।	६०६-६०८
२५ चौदही गाथाका अवतरण, गाथा और छाया ।	६०८
२६ उच्छुद्धकादि आसनस्थित मगवान् निर्भिकार हो कर ध्यान करते थे ।	६०८-६०९
२७ पन्द्रही गाथाका अवतरण, गाथा और छाया ।	६०९
२८ मगवान् कपाय और वृद्धि और ममत्वरहित हो कर ध्यान ध्याते थे । मगवान्ने छद्मस्थानस्थामें भी कमी प्रमाद नहीं किया ।	६०९-६१६
२९ सोरही गाथाका अवतरण, गाथा और छाया ।	६१४

- ३० मायारहित भगवान् स्वयमेव संसारका स्वरूप जानकर स्वयं सबुद्ध हो तीर्थप्रवर्त्तन के लिये उद्यत हुए । भगवान् कर्मों के क्षयोपशम, उपशम और क्षय से समुद्भूत आत्मशोधि द्वारा मनोवाक्काययोग को स्थिर रख कर, कपायाग्नि के प्रशमन से शीतीभूत होकर यावज्जीव पाँच समिति और तीन गुप्ति से युक्त रहे । ६१४-६१६
- ३१ सत्रहवीं गाथा का अवतरण, गाथा और छाया । ६१६
- ३२ भगवानने इस प्रकार के आचार का वारंवार पालन किया । भगवानने यह आचार इसलिये पाला कि दूसरे भी साधु मेरे देखादेखी इसी प्रकार से आचार का पाछन करें । उद्देश समाप्ति । ६१६
- ३३ नवम अध्ययन का उपसंहार और शास्त्रप्रशस्ति । ६१७-६१९

॥ इति विषयानुक्रमणिका सम्पूर्ण ॥



॥ अथाचाराङ्गसूत्रस्य लोकसारनामकं पञ्चममध्ययनम् ॥

गठं चतुर्थमध्ययनं साम्प्रतं पञ्चममध्ययनं प्रारम्भ्यते । चतुर्थमध्ययने सम्यक्त्वं, तदन्तर्गतं ज्ञानं च निरूपितं, सम्यक्त्वज्ञानकारणजन्यं चारित्र्यं, तदेव प्रधानं मोक्ष-
कारणमतस्तद्वद् मोक्षे सारभूतमिह मोक्षसाराख्यमिदमध्ययनम् । तथा हि—लोकस्य
सारो धर्मो, धर्मस्य सारो ज्ञान, ज्ञानस्य सारचारित्र्यं, तस्य च सारो मोक्ष इत्यस्य
प्रतिपादनम्, तेन लोकसारतया चारित्र्यमात्रं प्रतिपादयितव्यमस्ति । इहाध्ययन-
वर्णिकारस्तु ‘लोकस्य सारं परिचिन्तनीयः’ इति । उद्देशवर्णिकारो यथा—

॥ आचाराङ्गसूत्रं का लोकसारनामकं पाँचवां अध्ययन ॥

चतुर्थ अध्ययन प्रतिपादित किया जा चुका है । अब यहाँ पंचम
अध्ययनका व्याख्यान प्रारम्भ होता है । चतुर्थ अध्ययनमें सम्यक्त्व एवं
उस के अन्तर्गत ज्ञानका निरूपण किया है । इस पाँचवें अध्ययन का
नाम ‘लोकसार’ है । लोकमें सारभूत चारित्र्य है । यह चारित्र्य सम्य-
ग्दर्शन और सम्यग्ज्ञानसे होना है, अर्थात् इनके सहित होनेवाला
चारित्र्य ही सम्यक्चारित्र्य है । वही मोक्षका प्रधान कारण माना गया है ।
लोकका सार धर्म, धर्म का सार ज्ञान, ज्ञान का सार चारित्र्य और
चारित्र्यका सार मोक्ष है । इस कारण लोकमें सारभूत होनेसे चारित्र्यका
ही वर्णन इस अध्ययनमें किया जायगा । “लोकस्य सारः परिचिन्त-
नीयः” अर्थात् चारित्र्य ही लोकका सार है, ऐसा विचारना चाहिये ।
इस प्रकार यहाँ पर यह अध्ययनका अर्थाधिकार है । उद्देश का अर्थाधिकार
इस प्रकार है—

आचाराङ्गसूत्रं ‘लोकसार’ नामनु पाँचवें अध्ययन

इस अध्ययन ठोकाई अनु है कि वे अर्थाधिकारी पाचवां अध्ययनको प्रारम्भ
बाध है किन्तु अध्ययनमा सम्भूतत्व जने तेना अतर्गत ज्ञानही सम्बन्ध आ-
नामा आवी है आ पाचवां अध्ययननु नाम ‘लोकसार’ है लोकमा सारभूत
चारित्र्य है ते अस्ति सम्बन्धर्शन जने सम्बन्धानही बाध है तात्पर्य है तेनाही
धर्तु अस्ति तेन सम्बन्ध चारित्र्य है तेने च मोक्षनु प्रधान कारण भाननामा
आवे है लोकने सार धर्म धर्मने सार ज्ञान, ज्ञानने सार अस्ति जने
अस्तिने सार मोक्ष है आ कारणही लोकमा सारभूत ठोकाई अस्तिनु च वर्णन
आ अध्ययनमा ठरनामा आवये “लोकस्य सारं परिचिन्तनीयः” अर्थात् अस्ति च
लोकने सार है जेन माननु मोक्षको. आ अर्था अध्ययनने अर्थाधिकार है
उद्देशने अर्थाधिकार आ प्रमाण है—

પ્રથમ ઉદ્દેશે-હિંસાસમારમ્ભાધિકારઃ પ્રથમ, યદર્થે હિંસાદયઃ સાવચવ્યાપારા વિધીયન્તે, તેવાં વિષયાણામધિકારો દ્વિતીયઃ, વિષયાર્થમેવ વિહરન્ન મુનિર્ભવતીતિ ચ તૃતીય ઇત્યધિકારત્રયં પ્રતિપાદ્યતે ।

દ્વિતીયે ચ-‘હિંસાદિતો વિષયાદિતોઽપ્રશસ્તૈકચર્યાતો વા વિરતો મુનિર્ભવતી’-તિ વર્ણિતમ્ ।

તૃતીયે-‘અપ વિરત એવ મુનિરપરિગ્રહો નિર્વિષ્ણકામભોગશ્ચ ભવતીતિ દર્શિતમ્ ।

ચતુર્થે-‘ચાઽગીતાર્થમુનેરેકાકિવિહરણે પ્રત્યવાયા ભવન્તીતિ કથિતમ્ ।

હસ અધ્યયન કે છઠ્ઠ ઉદ્દેશ હૈં, ડન મે-(૧) પ્રથમ ઉદ્દેશમેં પ્રથમ-હિંસાસમારમ્ભાધિકાર, દ્વિતીય-જિનકે લિયે હિંસા આદિ સાવચ વ્યાપાર કિયે જાતે હૈં ડન વિષયોં કા અધિકાર, તૃતીય-વિષયોં કે લિયે હી વિચરણ કરનેવાલા મુનિ નહીં હોતા હૈ, ડસકા અધિકાર, ડસ પ્રકાર તીન અધિકાર બતલાયે ગયે હૈં ।

(૨) દ્વિતીય ઉદ્દેશમેં યહ બતલાયા ગયા હૈ કિ-હિંસાદિ સે વિષયાદિ સે તથા અપ્રશસ્ત એકચર્યાસે નિવૃત્ત હી મુનિ હોતા હૈ ।

(૩) તૃતીય ઉદ્દેશમેં ડસ બાત કી વ્યાખ્યા કી ગઈ હૈ કિ-જો હિંસાદિ સે, વિષયાદિસે ઓર અપ્રશસ્ત એકચર્યાસે નિવૃત્ત હૈ વહી મુનિ હૈ, વહી અપરિગ્રહી હૈ ઓર વહી કામભોગોં સે વિરક્ત હૈ ।

(૪) ચતુર્થ ઉદ્દેશમેં અગીતાર્થ મુનિકો એકાકી હો કર વિચરના નહીં યાહિયે, ક્યોં કિ-ડસ પ્રકાર કે વિહાર મેં ડસે અનેક વિઘ્નવાધાઈ આતી હૈં, યહ વિષય બતલાયા ગયા હૈ ।

આ અધ્યયનના છ ઉદ્દેશ છે, તે ઉદ્દેશો પૈકી (૧) પ્રથમ ઉદ્દેશમા પહેલો-હિંસાસમારભાધિકાર, બીજો-જેને માટે હિંસા આદિ સાવચ વ્યાપારો કરવામા આવે છે તે વિષયોનો અધિકાર, ત્રીજો-વિષયોને માટે જ વિચરણ કરવાવાળો મુનિ નથી થતો-એનો અધિકાર, આ પ્રકારે ત્રણ અધિકારો કહેવામા આવેલા છે

(૨) બીજા ઉદ્દેશમા એ બતાવવામા આવ્યું છે કે હિંસાદિથી, વિષયાદિથી અને અપ્રશસ્ત એકચર્યાથી રહિત જ મુનિ થાય છે

(૩) ત્રીજા ઉદ્દેશમા એ વાતની વ્યાખ્યા બતાવવામા આવી છે કે જે હિંસાદિથી, વિષયાદિથી અને અપ્રશસ્ત એકચર્યાથી રહિત છે, તે જ મુનિ છે, તે જ અપરિગ્રહી છે અને તે જ કામભોગોથી વિરક્ત છે

(૪) ચોથા ઉદ્દેશમા આ ગીતાર્થ મુનિએ એકલવાયા (એકલવિહારી) જીવનમા રહીને વિચરવું ન જોઈએ, કારણ કે આવા પ્રકારના વિહારમા તેને ઘણા પ્રકારના વિઘ્નો આવે છે, આ વિષય બતાવવામા આવેલ છે

पञ्चमे च—इदोपमा' सर्वतोयुक्ता निःसङ्गा ज्ञानदर्शनचारित्र्यधारिणो विज्ञोत्तमिका
रहिताः संयमिनो मययुरिस्त्वामिहितम् ।

पठे च—कुदृष्टे रागद्वेषयास परित्यागा वर्णित ।

अनन्तरसूत्रसम्बन्धाय यथा—पूर्वसूत्रे 'साहिस्सामो नाण वीराणं सहियारणं'
इत्यादिना चारित्र्यग्रहणं कथित, चारित्र्यपरिपालनार्थमेव चेद्धारित्र्यवर्ता दोषा
वर्णनीया इति । चारित्र्यदापानेवाद्वाटयितुमादिमूत्रमाह—'आर्षंती' इत्यादि ।

(५) पंचम उद्देशमें यह बतलाया गया है कि—मुनिको हृदयके समान
होना चाहिये, मन बचन और काय—गुणियुक्त होना चाहिये, क्री आदि
के संगसे रहित होना चाहिये और सम्यग्दर्शन ज्ञान और चारित्र्यका
धारक होना चाहिये, मद्रायादिक दोषों से रहित होना चाहिये ।

(६) छठ उद्देशके अन्तर साधुको उन्मार्ग में गमनका और राग एवं
द्वेषका त्याग कर देना चाहिये, यह विषय बतलाया गया है ।

इस अध्ययनका अनन्तर सूत्रके साथ इस प्रकार सम्बन्ध है—पूर्व
सूत्रमें—'साहिस्सामो नाण वीराणं सहियारणं' इत्यादि सूत्रसे चारित्र्यका
ग्रहण करना प्रकट किया गया है । जब तक अचारिणी (असंयमी) के
दोष यहां नहीं बतलाये जायेंगे तब तक चारित्र्यका पालन नहीं हो
सकता; इस लिये अचारित्र्यवानके दोषों को प्रकट करने के लिये प्रथम
सूत्र कहते हैं—'आर्षंती' इत्यादि ।

(५) पाचम उद्देशम को अतावयमम आव्यु छे के मुनिने अहसमान
होवु लेछ को मन, बचन अने कथाना योग स्थिर राखवा लेछको, श्री आश्रित
सजधी इर रहेवु लेछ को अने सम्यग्दर्शन ज्ञान अने आश्रितने धारवु करवा
वाणो होवा लेछ को अशयादिक दोषाधी परे होवा लेछको

(६) छठ उद्देशनी अहर साधुने उन्मार्गमा विचरवानो त्याग अने जग
तथा द्वेषने त्याग करवो ते बिचर अतावयमम आव्यो छे

अथ अध्ययनने अनन्तर सूत्रनी साथे केवा प्रकारने सम्बन्ध छे—पूर्व
सूत्रमा 'साहिस्सामो नाण वीराणं सहियारणं' इत्यादि सूत्रधी आश्रितने अहङ्ग करवु
तेम अतावयमम आवेस छे अथा सुधी अचारिणी को देखे के अस वर्णनीय दोष अता
वयमम न आवे तथा सुधी आश्रितनु पालन अनो शकतु नथी आधी आश्रितना पालन
माटे अचारित्र्यवाना दोष प्रगट करवा सूत्रकार प्रथम अ सूत्र कहे छे—
"आर्षंती" इत्यादि

મૂલમ્—આવંતી કેયાવંતી લોયંસિ વિપ્પરામુસંતિ અદ્દાએ અણ-
દ્દાએ, એસુ ચેવ વિપ્પરામુસંતિ, ગુરૂ સે કામા, તઓ સે મારંતે,
જઓ સે મારંતે તઓ સે દૂરે, નેવ સો અંતે નેવ સો દૂરે ॥ સૂ૦ ૧ ॥

છાયા—યાવન્તઃ કિયન્તો લોકે વિપરામૃશન્તિ અર્થાય અનર્થાય, એતેષુ એવ
વિપરામૃશન્તિ, ગુરવસ્તસ્ય કામાઃ, તતઃ સ મારાન્તઃ, યતઃ સ મારાન્તસ્તતઃ સ
દૂરે, નૈવ સોઽન્તનૈવ દૂરે ॥ સૂ૦ ૧ ॥

ટીકા—‘યાવન્ત’—ઇત્યાદિ । લોકે=પશ્ચાસ્તિકાયરૂપે ચતુર્દશરજ્જ્વાત્મકે વા,
યદ્વા—ગૃહસ્થાન્યતીર્થિકે લોકે, યાવન્તઃ=યત્રમાણા અતીતાનાગતવર્તમાનાઃ, કિય-
ન્તઃ=યે કેઽપ્યસંયતા આરમ્ભજીવિનો મનુજાઃ પ્રાણિનો વા, તે—અર્થાય=પ્રયોજનાય

“લોયસિ” પચાસ્તિકાયરૂપ અથવા ચૌદહ રાજુપ્રમાણવાલે લોકમેં,
અથવા ગૃહસ્થ તથા અન્યતીર્થિકરૂપ લોકમેં “આવંતી કેયાવંતી” જિતને
કિતને ખી અસંયમી—આરમ્ભજીવી પ્રાણી હૈં વે “અદ્દાએ અણદ્દાએ”
કિસી પ્રયોજન યા વિના પ્રયોજનસે ત્રસ સ્થાવર જીવોંકા “વિપ્પરા-
મુસંતિ” અનેક પ્રકારસે ઉપમર્દન (ઘાત) કિયા કરતે હૈં ।

વિશેષાર્થ—યહ લોક-ધર્માસ્તિકાય અધર્માસ્તિકાય આકાશાસ્તિ-
કાય જીવાસ્તિકાય એવં પુદ્ગલાસ્તિકાય, ઇન પાંચ અસ્તિકાયરૂપ દ્રવ્યોંસે
સમન્વિત હૈં ઓર ચૌદહ રાજુ પ્રમાણવાલા હૈં । ઇસમેં જિતને ખી અસં-
યમી જીવ ભૂતકાલમેં હુએ હૈં, ભવિષ્યત્કાલમેં હોંગે ઓર વર્તમાનકાલમેં
હૈં, વે સબ ભૂતકાલમેં આરમ્ભજીવી યે, ભવિષ્યમેં આરમ્ભજીવી હોંગે
ઓર વર્તમાનમેં ખી આરમ્ભજીવી હૈં । આરમ્ભજીવી પ્રાણી પ્રયોજન યા

“લોયંસિ” પાચ અસ્તિકાયરૂપ અથવા ચૌદ રાજુ પ્રમાણવાળા લોકમા
અથવા ગૃહસ્થ તથા અન્યતીર્થિકરૂપ લોકમા “આવંતી કેયાવંતી” બેટલા
કેટલાક પણ અસંયમી અને આરભજીવી પ્રાણીયો છે તેઓ “અદ્દાએ અણદ્દાએ”
કોઈ પણ પ્રયોજન અગર તે પ્રયોજન વગર ત્રસ સ્થાવર જીવોના “વિપરામુસંતિ”
અનેક પ્રકારથી ઉપમર્દન-ઘાત કર્યા કરે છે

વિશેષાર્થ—આ લોક-ધર્માસ્તિકાય, અધર્માસ્તિકાય, આકાશાસ્તિકાય, જીવા
સ્તિકાય અને પુદ્ગલાસ્તિકાય, આ પાચ અસ્તિકાયરૂપ દ્રવ્યોથી સમન્વિત છે અને
ચૌદ રાજુ પ્રમાણવાળો છે તેની અદર બેટલા અસંયમી જીવો ભૂતકાળમા થયા છે,
ભવિષ્યકાળમા થશે અને વર્તમાનમા છે તે બધા ભૂતકાળમા આરભજીવી હતા,
ભવિષ્યમા આરભજીવી થશે અને વર્તમાનમા આરભજીવી છે આરભજીવી પ્રાણી

ધર્માર્થકામાધર્માય, પૃથગપિ ધર્માર્થ=દેવપ્રતિમા-દેવમન્દિર-નિમિત્તમ્, અર્થાથ
=કૃપ્યાધર્થ, કામાર્થ=વાસાદાધર્થ ચ પૃથિવીકાર્થ, કૃપ્યાદિસેવનાધર્થ બ્રહ્મકાય,
પાકાધર્થ તૈજસ્કાય, ગ્રીષ્મસન્તાપોપશમનાય તામ્રગ્ન્ટાદિના વાયુકાયમ્,
અર્થ વાતાધર્થ વનસ્પતિધર્થ, તત્ત્વદામિત્ત પ્રસકાર્ય ચ, દેવમનર્થાથ=
નિષ્પ્રયામનાય=સ્પર્શમિતિ ચાપદ્, કૌતુકચક્ષાત્પૃથિવ્યાદિકં સ્વપાપય પ્રસાદ
'વિપરામુશન્તિ' નિષિષ્ણવકારેણ પરામુશન્તિ=ઉપતાપયન્તિ-અનિષ્ણવકારાદિશ્લેષ
ઘાતયન્તીત્યર્થ, અર્થ ગપવ્રતેષ્વપિ 'મત્પ્રવ્રતે મુપાવાદિના વિપરામુશન્તી' -ત્યાદિ
વિના પ્રયોજનસે ચી પ્રસ સ્પાષર જીર્ણોક્તી હિંમાદિ કાર્યો મેં પ્રવૃત્તિશીલ
રહા કરતે હેં । ધર્મ અર્થ ઓર કામ, હન તીનો પુરુષાર્થો કી સિદ્ધિકે લિયે,
અથવા પૃથક્-ધર્માદિ ઇક ઇક ક લિયે તેસે પ્રાણિયોસે જીર્ણોક્તી હિંમા
અવશ્ય હોતી રહતી હે । દેવપ્રતિમા તથા દેવમન્દિર બનવાને, કૃપ્યાદિ કાર્ય
કરને કરાને ઓર મહલ-મકાન આદિકે બિનાને મેં પૃથિવીકાયિક જીર્ણો
ક્તી, કૃપિ આદિકે સેવનમેં અપ્કાયિક જીર્ણોક્તી, મોજમ આદિકે તૈયાર
કરને કરાને મેં તૈજસ્કાયિક જીર્ણોક્તી, ગ્રીષ્મજન્ય તાપકે ઉપશમન કરને
કરાનેમેં વાતા આદિસે વાયુકાયિકી, તથા શાક પાક આદિકે લિયે વનસ્પતિ
કાયિકી અર્થ પૃથિવી આદિકે આમિત પ્રસકાયિક જીર્ણોક્તી વિરાધના હોતી
હે । હસી પ્રકાર ચિમા પ્રયોજન ચી-સ્પર્શ હી કૌતુકચક્ષા પૃથિવ્યાદિક કો
પાવહે અથ કુદાલી આદિ ઝારા સ્પર્શનેસે, શિકાર આદિકે કરનેસે પૃથિવી
કાયિક આદિ સ્પાષર અર્થ પ્રસકાયિક જીર્ણોક્તી હિંમા હોતી હે ।

પ્રયોજન જગર કેઈ પણ પ્રકારના પ્રયોજન વચ્ચે વસ અને સ્થાવર જીવોની
હિંસાના કાર્યમાં પ્રવૃત્તિશીલ રહ્યા કરે છે. ધર્મ અર્થ અને કામ આ ત્રણે પુરુ
ષાર્થની સિદ્ધિને માટે અથવા પૃથક્-ધર્માદિના કેઈ એકેક કારણને માટે એવા
પ્રાણીઓની જીવોની હિંસા કરેર થતી રહે છે. દેવની પ્રતિમા બનાવવી, મંદિર
બનાવવું, એવીનું કામ કરવું કે કશવળુ તેમાં અને મહેલ-મકાન બનાવવામાં પૃથ્વી
કાયિક જીવોની એવી વગેરેના કામકાજમાં, અપ્કાયિક જીવોની સેવન આદિ તથા
કસ્યા કરાવવામાં તેજસ્કાયિક જીવોની અને અગ્નીમાં ઠડી હવાના ઉપયોગ માટે
પણ આદિથી વાયુકાયિક જીવોની તેમજ પાક આદિને માટે વન પતિકાયિક
જીવોની અને પૃથ્વી આદિના આમિત પ્રસકાયિક જીવોની હિંસા થાય છે.
તેવી રીતે કેઈ પણ જાતના કારણ વચ્ચે-કૌતુકચક્ષણ પૃથ્વી આદિને પાવડ
કારણી પ્રત્યાદિ દ્વારા જોડવાથી, શિકાર જેવાં કામો કરવાથી પૃથ્વીકાયિક આદિ
સ્થાવર તથા પ્રસકાયિક જીવોની હિંસા થાય છે.

યોજ્યમ્ । એતેષુ એવ=પરજીવનિકાયેષ્વેત્તત્તદુપગ્રાતકારિણઃ મશ્મવાદરપર્યાપ્ત-
કાપર્યાપ્તરૂપાન્ જન્તુન્નિહત્ય 'વિપરામૃશન્તિ' વિ=વિવિધપ્રકારેણ નાનાયોનિ-
ભાવત્વેન પરામૃશન્તિ=ઉત્પદ્યન્તે । યદ્વા-એતેષુ એવ તત્તજીવનિકાયગ્રાતપ્રાપ્તકર્મ-
મિસ્તેષ્વેવ જીવનિકાયેષુ જન્મ લ્લઙ્ગ્યા તેન તેન પ્રકારેણ વિપરામૃશન્તિ=વિ-
વિવિધ દુઃખં પરામૃશન્તિ=અનુભવન્તિ ।

ભાવાર્થ—અહિંસા વ્રતકે ન પાલનેસે અસયમી જીવ, ત્રમ એવ સ્થાવરકાયકી કિસી મી પ્રયોજનવશ હિંસા કરતે રહતે હૈ । વિના પ્રયો-
જન કે મી ઉનસે હિંસાકા પરિહાર નહીં હોતા, જૈસે—અપને પાસકી ઘામ-
દર્વા, આદિ ડગ્વાડના, મિટી મોદના આદિ, ઇમી પ્રકાર રસ્તે ચલતે કિસી
વૃક્ષ આદિકી ઢાલી તોડ લેના, લકડીસે કુત્તે આદિકો મારના, ઇત્યાદિ ।

ઈસી પ્રકાર જો સત્યવ્રત અચૌર્યવ્રત આદિ નહી પાલતે હૈ એસે
મૃપાવાદી ઔર ચૌરી આદિ પાપ કરનેવાલે પ્રાણી મી ત્રસ ઔર સ્થાવર
કી હિંસાસે વચે નહીં રહ સકતે, ઉન્હેં મી ત્રસ ઔર સ્થાવરકી હિંસાસે
હોનેવાલા પાપ લગતા હી રહતા હૈ, ઇસ પ્રકારકી યોજના ઝોપવ્રતોં મેં મી
કર લેની ચાહિયે ।

“ એતેષ્વેવ વિપરામૃશન્તિ ”—ઈસ પ્રકાર અસયમી જીવ ઉસ ૨
કાયકી વિરાધના યા વિરાધનાજન્ય પાપકર્મકે વન્ધસે ઉસ ૨ નિકાયકે
જીવોંમે ઉત્પન્ન હોતે હૈ ।

ભાવાર્થ—અહિંસાવ્રત ન પાળવાથી અસયમી જીવ ત્રમ અને સ્થાવરકાયના
જીવોની કોઈ પ્રયોજનાર્યે હિંસા કરતા રહે છે, કારણ વગર પણ તેમનાથી હિંસાનો
ત્યાગ થઈ શકતો નથી જેવા કે આમપામતુ ઘાસ-ધરો વગેરે ઉખાડવું, માટી
ખોદવી, આ ઉપરાંત રસ્તે ચાલતા ચાલના વૃક્ષ વગેરેની ડાળીઓ તોડવી,
લાકડીથી કુતંગ વગેરેને મારવા ઇત્યાદિ

આ પ્રકારે જે સત્યવ્રત, અચૌર્યવ્રત વગેરે પાળતા નથી એવા બુદ્ધ બોલા
અને ચૌરી આદિ પાપ કરવાવાળા પ્રાણી પણ ત્રમ અને સ્થાવરની હિંસાથી
બચી શકતા નથી, તેઓને પણ ત્રસ અને સ્થાવરની હિંસાથી થતું પાપ લાગ્યા
વગર રહેતું નથી આ પ્રકારની યોજના શેષવ્રતોમા પણ કરી લેવી જોઈએ

“ એતેષ્વેવ વિપરામૃશન્તિ ” આ પ્રકારે અસયમી જીવો તે તે કાયની વિરાધના-
જન્ય પાપકર્મના બંધથી તે તે કાયના જીવોમા ઉત્પન્ન થાય છે

विशेषार्थ—एकेन्द्रिय जीव सूक्ष्म और बाहरके मेदसे दो प्रकारके हैं। ये पर्याप्त और अपर्याप्त होते हैं। अपर्याप्त २ योग्य पर्याप्तियाँ जिन जीवोंकी पूर्ण हो जाती हैं ये पर्याप्त, और जिनकी पूर्ण नहीं होती ये अपर्याप्त कहलाते हैं। ये असंज्ञी ही होते हैं। इसी प्रकार द्वीन्द्रिय द्वीन्द्रिय चतुरिन्द्रिय—विकलत्रय जीव तथा संज्ञी पञ्चेन्द्रिय और असंज्ञी पञ्चेन्द्रिय जीव भी पर्याप्त और अपर्याप्त होते हैं। विकलेन्द्रिय तीन असंज्ञी ही होते हैं, इनके मन नहीं होता। इस प्रकार ये सानो प्रकारके जीव पर्याप्त और अपर्याप्तके मेदसे चौदह प्रकारके होते हैं। जो अमं यमी जीव किसी प्रयोजनवशा या बिना किसी प्रयोजनके इनकी विरा धना करता है यह इन्हीं जीवों में अनेक प्रकार की पर्याप्तों को धारण करता है। सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीवों की न किसी द्वारा घात होती है न इनके द्वारा किसीकी घात होती है, फिर भी मनकी वृष्परिणति से हिंसा होती है। इस कारण टीकाकारने जीवके चौदह मेदों में उनका यहां निर्देश किया है। अथवा—इन जीवोंकी जो जिस जिस रूपसे विरा धना करता है यह इन जीवों की विराधना से होनेवाले कर्मवृत्तके कारण इनही जीवनिष्कर्मों में जन्म धारण कर इसी इसी प्रकारसे अनेक दुःखों का अनुभव करता है।

विशेषार्थ—एकेन्द्रिय एव सूक्ष्म अने जाहना सेदधी के प्रकार के तेजो पर्याप्त अने अपर्याप्त के चतुष्टयाणी तेजो पर्याप्त के लोकोनी संपूर्ण भाव के ते पर्याप्त अने अनेगी पर्याप्त पुरी नहीं गयी ते अपर्याप्त कहेंवाय के आ लोको असंज्ञी होय के आ प्रकार के—एन्द्रिय एव, त्रय—एन्द्रिय एव आर—एन्द्रिय एव, आ त्रय विकलेन्द्रिय एवो, तथा संज्ञि—पञ्चेन्द्रिय अने असंज्ञि—पञ्चेन्द्रिय एव पञ्च पर्याप्त अने अपर्याप्त होय के विकलेन्द्रिय त्रय असंज्ञी व होय के तेने मन नहीं होतु आ रीते आ साते प्रकारना एव पर्याप्त अने अपर्याप्तना सेदधी योत प्रकार भाव के के असंज्ञी एवो कोष्ट पञ्च प्रयोजनवश अथवा ते प्रयोजन वगर तेनी विराधना करे के तेजो व लोकोमा अनेक प्रकारनी पर्याप्तोने धारण करे के सूक्ष्म एकेन्द्रिय लोकोनी न कोष्टधी घात भाव के अने त लोको कोष्ट पञ्च कोष्टनी घात वर्ध सकती नभी ते पञ्च मात्र मननी वृष्परिणतिधी हिंसा भाव के आ कारणे टीकाकारे एवनाचौ सेदोमां तेजोने अर्द्ध निर्देश करे के अथवा ते लोकोनी के के प्रकारे विराधना करे के तेजो ते लोकोनी विराधनाधी वनाश कर्मवृत्ते कारणे तेव लोकोनीमां व म धारण करी तेवा तेवा प्रकारे अनेक दुःखोने अनुभव करे के।

કિમર્થ સાવધવ્યાપારાન્ કરોતીત્યાહ ‘ગુરવ’ ઇત્યાદિ । તસ્ય=નરકનિગોદાદિકદુઃખલાનભિજ્ઞસ્ય પુંસઃ કામાઃ શબ્દાદિવિષયા ગુરવઃ=અનતિક્રમણીયા દુસ્ત્યજતયા લઘ્વયિતુમનર્હા ઇત્યર્થઃ, યો યસ્યાનતિક્રમણીયઃ સ તસ્ય ગુરુર્ભવતીતિ તાત્પર્યમ્, યતઃ શબ્દાદયો દુસ્ત્યજા અનસ્તતપ્રાપ્તયે પદ્કાઓપમર્દનપ્રવૃત્તઃ સ ગુરુકામઃ પાપ-મુષ્ણિનોતીતિ ભાવઃ । પાપોપચયાચ્ચ કિમિત્યાહ-‘તતઃ’ ઇત્યાદિ, તતઃ=પદ્જીવનિકાયઘાતાનન્તરં ગુરુકામાનન્તરં ચ સ=ગુરુકામી ‘મારાન્તઃ’ મરણં મારઃ=

જીવ ઇન સાવધ વ્યાપારોંકો ક્યોં કરતા હૈ ? હસકા ઉત્તરરૂપ “ગુરવસ્તસ્ય કામાઃ” યહ વાક્ય સૂત્રકાર કહતે હૈં । ઇસમેં વે યતલાતે હૈં કિ ઉસકી ઇચ્છાઈ પ્રબલ હૈં । હિંસાદિક સાવધ વ્યાપારોં કે કરને મેં ઉસે શબ્દાદિવિષયક ઇચ્છાઈ નિમિત્ત હોતી હૈં । ઇન ઇચ્છાઓંકે અધીન બના હુઆ સસારી જીવ સાવધ વ્યાપારોં કો કરતા હુઆ “નરકનિગોદાદિક કે દુઃખોં કો હમેં સહન કરના પડેગા” ઇસ પ્રકારકે ભયસે નિર્મુક્ત રહા કરતા હૈ । વાત મી સચ હૈ-જિન્હેં સાવધ વ્યાપારોંકે ફલ-સ્વરૂપ નરકનિગોદાદિક કે ભયકર દુઃખોંકે સહન કરનેકા કુછ મી વિચાર નહીં હૈ ણેસે અજ્ઞાની પ્રાણિયોંકી શબ્દાદિવિષયક ઇચ્છાઈ બલિષ્ઠ હોં તો ઇસ મેં આશ્ચર્યકી વાત હી કૌનસી હૈ ? । ઊન પ્રકારકી ઇચ્છાઓંકા અધીન જીવ ઇસ લિયે હોતા હૈ કિ વહ ઊન્હેં અજ્ઞાનસે દુસ્ત્યજ માન બેઠા હૈ । જિસકા છોડના જિસે અશક્ય હોતા હૈ વહ વિષય ઉસે મારી માલૂમ દેતા હૈ । અજ્ઞાની જીવ શબ્દાદિક વિષયોંકો દુસ્ત્યજ

જીવ આવા સાવધ વ્યાપાર શા માટે કરે છે ? તેના ઉત્તરમા “ગુરવસ્તસ્ય કામાઃ” આ વાક્ય સૂત્રકાર કહે છે એમા તેમણે બતાવ્યું છે કે એમની ઇચ્છાઓ પ્રબળ છે હિંસાદિક પાપ કામો કરવામા તેઓને શબ્દાદિવિષયક ઇચ્છાઓ નિમિત્ત બને છે આ ઇચ્છાઓને આધીન બનેલા સસારી જીવ સાવધ વ્યાપારો કરતા કરતા ‘નરક નિગોદાદિકના દુઃખ અમારે લોગવવા પડશે’ આવા પ્રકારના ભયથી નિર્મુક્ત રહ્યા કરે છે વાત પણ સાચી છે, જેઓને પાપાદિ વ્યાપારોના ફળસ્વરૂપ નરકનિગોદાદિકના ભયકર દુઃખો સહન કરવા પડશે એવો અજ્ઞાન નથી એવા અજ્ઞાની પ્રાણીઓની શબ્દાદિવિષયક ઇચ્છાઓ ભેરહાર હોય તો તેમા કોઈ આશ્ચર્યની વાત નથી આવી ઇચ્છાઓને આધીન થયેલા જીવો ‘આ તજી શકાય તેવું કાર્ય નથી’ એવું તે અજ્ઞાનથી માની બેઠા હોય છે જેવું છેડવું જેઓને માટે અશક્ય હોય છે તે વિષય તેઓને મનભારે કઠીન લાગતો હોય છે અજ્ઞાની શબ્દાદિક વિષયોને નહીં તબજાબેગ સમજે છે, એટલા માટે અસચમિત જીવી

समझते हैं, इस लिये असंयमित जीव बन वे उन ९ वैयक्तिक इच्छाओं की पूर्ति करनेके लिये पदकायके जीवों का उपमर्दन करते हुए पापों का उपार्जन और वर्धन करते रहते हैं। इस प्रवृत्ति से वे “मारान्त” जन्म मरण के चक्रसे नहीं छूटते हैं। “मरण-मारः-आयुषो विनाशः”। ‘मार’ शब्दका अर्थ आयुका अन्त-मरण है। वे जीव इसके भीतर ही रहते हैं, इससे परे नहीं होते हैं। परे होनेके साधनों से वे रिक्त-रहित हैं। जन्म-मरण के साधनों में ही जुटे हुए हैं। हिंसादिक पाप कर्मों से अथवा अपनी वैयक्तिक इच्छाओं के अनुसार प्रवृत्ति करनेसे संसार में किसी भी प्राणीका जन्म-मरणरूप बंधन नहीं छूटा है; न छूटेगा और न छूटना ही है। जन्म-मरणका अभाव उसी जीवको होता है कि जिसका भवान्तरोगप्राप्ति कर्म नष्ट हो चुका है। इस कर्म को नष्ट करनेके लिये इन्द्रियों पर विजय प्राप्त करनेकी एवं संयमित जीवनके आराधनकी आवश्यकता है। हमसे विपरीत प्रवृत्ति में यह कर्म सुस्तर पधता है, जो जीवको बारंबार जन्म-मरणके चक्रमें खालता रहता है “जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च” यह सिद्धांत है। जिसका जन्म है उसका मरण है जिसका मरण है उसका जन्म है। इसी समस्त अमि

जनी तेजो ते ते वैयक्तिक इच्छाओंकी पूर्ति करवा भाटे छ प्रकाशना लोकोनी हिंसा करे छ जने तेभी बहुत पाप उपार्जन करे छ जने तेमा बधारे करता रहे छ आवी प्रवृत्तिभी तेजो “मारान्तः जन्म मरणानां चक्रमासी लूटी शक्यता नभी” मरण-मारः=आयुषो विनाशः । मार शब्दको अर्थ आयुष्यने अन्त-मरण छ ते लोकोनी अन्तर रह छ जेनाभी लूटा पड़ी शक्यता नभी, छूटा बचाना साधनोभी ते पूछ कर छ ज म-मरणाना साधनो साथे ज सक्रियवेला रहे छ हिंसादिक पापप्रवृत्तिना कर्मोभी जववा पोतानी वैयक्तिक इच्छाओं अनुसार प्रवृत्ति करवाभी संसारमा कोटिपक्ष आवी जन्म-मरणाना बंधनभी लूटना नभी, न ता लूटी शक्यो, जने न लूटे छ ज म-मरणानो अभाव ते लोकोने ज साथ छ के जेना जवा-तराफप्राप्ति कर्मो नाश यथेवा होय छ ज कर्मोनि नाश करवा भाटे इन्द्रियों उपर विजय प्राप्त करवानी जने संयमित जीवननु आराधन करवानी आवश्यकता छ जनाभी विपरीत प्रवृत्तिमा ज कर्म श्रुतार अभाव छ जे लोकोने बारंबार ज म-मरणाना चक्रमा लक्ष जव छ “जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च” जे सिद्धांत छ जेना जन्म छ तेनु मरण छ जेनु मरण छ तेना ज म पक्ष छ ज जव अविभाजने ब्रह्ममा शायीने

આયુષો વિનાશસ્તસ્ય અન્તઃ=મૃત્યુ એવ વરીવર્તિ, મૃતો હિ પુનર્ભવાન્તરોપગ્રાહિકર્મ-
સદ્ભાવાદુત્પદ્યત એવ, જાતોઽપિ પુનર્ભવાન્તરકર્મસત્ત્વાન્નિયત એવેતિ, મસારે મજ્જ-
નોન્મજ્જનમાસાદયત્યેવેત્યર્થઃ । યદ્વા મારઃ=કર્મ મમારો યા, તમ્યાન્તર્વર્તી સમૂયો
જન્મમરણાદિક લભત એવેતિ, ઉક્ત ચ-

‘મા મારયતે યસ્માન્મમારિભૂતશ્ચ મારયતિ વાન્તઃ ।

અનુસમય મરણાદપિ, કર્મ ભવો યા ભવેન્મારઃ ॥ ” ઇતિ ।

પ્રાય કો હૃદયમેં રગ્વક્ર ટીકાકાર કહતે હૈં કિ—“ મૃતો હિ પુનર્ભવા-
ન્તરોપગ્રાહિકર્મસદ્ભાવાત્ ઉત્પદ્યત એવ, જાતોઽપિ પુનર્ભવાન્તરકર્મસત્ત્વાત્
નિયત એવ ” ।

ટીક હી હૈ, મૃત આત્માકી ભવાન્તરોપગ્રાહી કર્મ કે સદ્ભાવસે પુનઃ
ઉત્પત્તિ, ઔર ઉત્પન્ન હુઅ કા ઝમી કર્મકે સદ્ભાવસે મરણ હોતા હૈ । અથવા
—‘ માર ’ શબ્દકા અર્થ સામાન્ય કર્મ યા મસાર હૈ । અસયમી જીવ વૈષ-
યિક સુખ કે વશવર્તી હો કર કર્મોં કા આશ્રવ કરતે હૈ ઔર વારવાર
જન્મમરણજન્ય દુઃખોં કો છીલતે રહતે હૈ, કહામી હૈ—

“ માં મારયતે યસ્માન્મમારિભૂતશ્ચ મારયતિ વાન્તઃ ।

અનુસમય મરણાદપિ, કર્મ ભવો વા ભવેન્મારઃ ” ॥૧॥

માર શબ્દકી વ્યુત્પત્તિપ્રદર્શક ઇસ પદ્યસે યહી વાત ટીકાકારને
પ્રદર્શિત કી હૈ । ઇસમેં માર-શબ્દકા અર્થ કર્મ યા સંસાર વતલાયા હૈ ।
જો જિસકી હિંસા કરતા હૈ વહ ઇસકા વૈરી હોતા હૈ, વૈરભાવસે સંસારકા

ટીકાકાર કહે છે કે—“ મૃતો હિ પુનર્ભવાન્તરોપગ્રાહિ-કર્મસદ્ભાવાત્ ઉત્પદ્યતે એવ,
જાતોઽપિ પુનર્ભવાન્તરકર્મસત્ત્વાત્ નિયતે ” ।

હીક જ છે, મૃત આત્માની ભવાન્તરોપગ્રાહિ કર્મના સદ્ભાવથી ફરીથી
ઉત્પત્તિ, અને ઉત્પન્ન થયેલાનું તે જ કર્મના સદ્ભાવથી મરણ થાય છે અથવા
‘ માર ’ શબ્દનો અર્થ સામાન્ય કર્મ અગર સંસાર છે, અસયમી હોવો વૈષ-
યિક સુખોને વશ બની કર્મોના આશ્રવ કરે છે અને વારવાર જન્મ-મરણના
દુષ્ટોને લોગવતા રહે છે કહ્યું પણ છે—

“ મા મારયતે યસ્માન્મમારિભૂતશ્ચ મારયતિ વાન્તઃ ।

અનુસમય મરણાદપિ, કર્મ ભવો વા ભવેન્માર ॥ ”

ટીકાકારે એ જ માર શબ્દની વ્યુત્પત્તિપ્રદર્શક વાત આ પદ્યથી પ્રદર્શિત
કરી છે આમા ‘ માર ’ શબ્દનો અર્થ કર્મ અથવા સંસાર બતાવવામા આવેલ છે,

मारान्तर्भवतेनेनापि किं तस्येत्याह—‘यत्’ इत्यादि, यतो=यस्मात् सः=कामगुरुको
मारान्तः=गुह्यगुह्यमप्राप्तमान्तर्बर्त्ती भरणान्तर्बर्त्ती वा ततः=तस्माद् हेता सः दूरे
रत्नप्रपाततत्कार्यभूतमासाधदूरवर्त्ती भवतीत्यर्थः । यथा—सुखमिच्छन् हि कामान्
सेवते, तस्येवनाथ मारान्तर्भवते, मारान्तर्भवतेनाद् हि जन्मजरामरवरागशाफभ्याङ्गुलो
मोक्षमुवाह पत्र सिष्टतीति तात्पर्यम् । यथाज्यं मारान्तर्बर्त्ती तस्मात् सः=गुरुकामसेवी
नैव भवति—शब्दादिविषयसुखस्य मध्य नैव वर्त्तते, अद्यापि तत्स्पृहासमुच्छासेनानवाप्तेष्ट-
विषयस्य विषयसुखज्ञानयुक्तस्य तस्य तदुपस्थानुभवाभावमायत्वात्, नैव स दूरे=
तस्माद्विषयसुखादिरम्य दूरवर्त्ती नैव भवति, तदभिप्रायस्यापरित्यागादिति ।

वर्धन होता है और इस दृष्टिसे वे दोनों परस्पर हिंस्य-हिंसक बनते
रहते हैं ।

जो मारान्तर्बर्त्ती है अथवा वैषयिक इच्छाओं के पराधीन है वह
असयमी जीव रत्नत्रयरूप धर्मसे, अथवा उसके कार्यभूत मोक्षसे भी
दूरवर्त्ती है । यही बात सूत्रकारने “यत् स मारान्तस्तता स दूरे” इस
वाक्यसे प्रदर्शित की है । तात्पर्य यह है कि रत्नत्रयरूप धर्म अथवा
उसके कार्यभूत मोक्ष प्राप्त करनेके लिये वैषयिक इच्छाओं पर विजय
प्राप्त करना होता है । जब तक प्राणी इच्छाओं के अधीन बना रहता है
तब तक मुक्ति का मार्ग सदा उससे दूर रहता है । इच्छाओं का निरोध
मोक्षामिलायीके लिये इस लिये बतलाया है कि इस प्रकारकी प्रवृत्ति से
उसकी आत्मामें एक प्रकारकी अपूर्व शक्तिकी जागृति होती है, जो इसे
कर्मसय करनेमें विशेष सहायक होती है । भीक व्यक्ति कर्मों के साथ

वैषयिकी असाधु बधन बाध छाने आधी ते जन्ने परस्पर हिंस्य
जने हिंसक बनता रहे छे

ये मारान्तर्बर्त्ती छे अथवा वैषयिक इच्छाओंने आधीन छे ते असयमी
एव रत्नत्रयरूप धर्मभी अथवा तेना कार्यभूत मोक्षभी पलु हर ने दूर रहे छे
आ न पाव सूत्रकारे यथा स मारान्तस्तता स दूरे आ वाक्यभी प्रदर्शित करी छे
तात्पर्य जे छे हे—रत्नत्रयरूप धर्म अथवा तेना कार्यभूत मोक्ष प्राप्त करवा
भाटे वैषयिक इच्छाओं उपर विजय प्राप्त करवे जेधज्जे ज्यां मुधी प्राप्ती
धर्मज्जोने आधीन जनी रहे छे तया मुधी मुक्तिने मार्ग सदाने भाटे तेनाभी
दूर रहे छे इच्छाओंने विशेष मोक्षामिलायी भाटे ज्या कारखुभी जलायवाभा
आपेस छे हे—आवा प्रकारनी प्रवृत्तिभी तेना आत्माभां जेक प्रकारनी अपूर्व
शक्तिनी जागृति बाध छे जने ते कर्मक्षय करवायां विशेष सहायक जने छे

સંગ્રામ નહીં કર સકતે । જો ઇન્દ્રિયોં કે દાસ હૈં વે હી મુક્તિમાર્ગે મેં
 भीरु हूँ । आत्मामें जो समय २ पर विषयोंकी अप्राप्ति से अशान्तिरूप
 સતાપ હો જાતા હૈં ઉસકા વૈષયિક ઇચ્છાઓં કે દમન સે સર્વથા અભાવ
 હો જાતા હૈં । ઇસ અભાવકી પ્રકર્ષતા કી વૃદ્ધિ સે આત્મા મુક્તિમાર્ગકા
 સચ્ચા આરાધક બન જન્મ મરણકે દુઃખોં સે સદાકે લિયે છુટકારા પા
 જાતા હૈં । ઇસી લિયે સૂત્રકારને યહાં પર મુક્તિમાર્ગસે દૂર રહને મેં અસં-
 યમીકે લિયે ઇસે કારણ બતલાયા હૈં । અથવા-જીવ જવ ઇન્દ્રિયોં કે
 અધીન હોતા હૈં તમી તો વહ મારાન્તર્વર્તી હોતા હૈં । કમી મી ઉસકી
 ઇસ પ્રકારકી પ્રવૃત્તિ સે ભવોપગ્રાહી કર્મ કા, અથવા ઉસકે સંસાર કા
 અભાવ નહીં હોતા, પ્રત્યુત ઉસે ઉનકે અન્તર્વર્તી હી રહના પડતા હૈં, અતઃ
 મુક્તિકા માર્ગ ઔર મુક્તિ સદા ઉસસે દૂર રહતી હૈં ।

માવાર્થ—સંસારી જીવ સુખપ્રાપ્ત કરનેકી અભિલાષાસે વિષયોંકો
 ભોંગતા હૈં । ઉસસે વહ મારાન્તર્વર્તી હોતા હૈં । મારાન્તર્વર્તી હોનેસે વહ
 જન્મ, જરા, મરણ, રોગ ઔર શોકસે વ્યાકુલ હોતા રહતા હૈં ફિર
 ઉસે મોક્ષસુખકી પ્રાપ્તિ કૈસે હો સકતી હૈં ? ‘મોક્ષસુખકી પ્રાપ્તિકે લિયે
 રત્નત્રય ધર્મ કી આરાધના આવશ્યક હૈં । ઇસ આરાધના સે તો વહ

ભીરુ પ્રાણી કર્મોની સાથે લડી શકતો નથી જે ઇન્દ્રિયોનો દાસ છે તે જ મુક્તિ
 માર્ગમાં ભીરુ છે, આત્મામાં જે સમય સમય પર વિષયોની અપ્રાપ્તિથી અશાન્તિ-
 રૂપ સતાપ થઈ જાય છે તેનો વૈષયિક ઇચ્છાઓના દમનથી સર્વથા અભાવ
 થઈ જાય છે આ અભાવની પ્રકર્ષતાની વૃદ્ધિથી આત્મા મુક્તિમાર્ગનો સાચો
 આરાધક બની જન્મ મરણના દુખોથી સદાને માટે છુટકારો મેળવે છે તેટલા
 માટે સૂત્રકારે આ જગ્યેએ મુક્તિમાર્ગથી દૂર રહેવામાં અસંયમી જીવો માટે
 તેને કારણ બતાવેલ છે અથવા જ્યારે જીવ ઇન્દ્રિયોને આધીન થાય છે ત્યારે
 તે મારાન્તર્વર્તી થાય છે ક્યારેય પણ તેની આવા પ્રકારની પ્રવૃત્તિથી ભવોપગ્રાહી
 કર્મોનો અથવા તેને સંસારનો અભાવ થતો નથી, પરંતુ તેને તેના વશ રહેવું
 પડે છે, તેથી મુક્તિનો માર્ગ અને મુક્તિ સદા તેનાથી દૂર રહે છે

ભાવાર્થ —સંસારી જીવ સુખ પ્રાપ્ત કરવાની અભિલાષાથી વિષયનો લોકતા
 બને છે, એથી કરી તે મારાન્તર્વર્તી બની રહે છે મારાન્તર્વર્તી બનવાથી તે જન્મ,
 જરા, મરણ, રોગ અને શોકથી વ્યાકુળ થતો રહે છે તો કરી તેને મોક્ષસુખની
 પ્રાપ્તિ કેવી રીતે બને ? મોક્ષસુખની પ્રાપ્તિને માટે રત્નત્રય ધર્મની આરાધના
 વધી આવશ્યક છે આ આરાધનાથી તો તે હજી પણ વચિત બની રહેલ છે,

અમી તક 'મી યંચિત ધના હુઆ હૈ' અતઃ ણ્ય- 'નૈષ સોઽન્તર્નૈષ દુરે' અર્થાત—યદ્દ જીવ જિમ વજહસે મારાન્તર્વર્તી હૈ' ઇતી લિયે ગુરુ કામસેવી હૈ । જય એસી વસ્તુસ્થિતિ હૈ તો યદ્દ ગુરુકામસેવી અસંયમી જીવ શાસ્ત્રાદિકવિષયજન્ય સુખ્યેકિ મધ્યવર્તી તક 'મી નહીં' હૈ, ધર્યો કિ અમી તક 'મી વિષયજન્ય સુખ્યકા અનુભવ કરનેવાલા' ડસકા જ્ઞાન એક તરહસે અભાવરૂપ હી હૈ । મધ્યવર્તી તો તય વહ માના જાતા જય કિ વૈષયિક સુખ્યો કા અનુભવ કરતે ૨ વહ ડનકી તૃપ્તિરૂપ પૂર્ણતાકે અનુભવકે કુછ નિકટ આ જાતા । પૂર્ણતા કે નિકટ તક આયા હુઆ યદ્દ ઇસ લિયે નહીં કહા યા માના આ સકના કિ અમી તક ડસે ઇષ્ટવૈષયિક સુખ્યકિ 'મોગને' કી સૃષ્ટા કા સમુદ્ધાસ જો હો રહા હૈ । જય તક ડસે ઇષ્ટ વિષયકી પ્રાપ્તિ નહીં હોતી હૈ તય તક યદ્દ મહા આકુલિત રહા કરતા હૈ । આકુલતા મેં વૈષયિકતૃપ્તિજન્ય સુખ્યકી પ્રાપ્તિ 'મી' ડસે નહીં હોતી હૈ, અતઃ ડસકા જ્ઞાન ઇષ્ટ વિષયકી પ્રાપ્તિકે અભાવસે વૈષયિક સુખ્યાનુભવ સે ધ્યન્ય જેમા હી બના હુઆ રહતા હૈ । યદ્દ માની હુઈ પાત્ત હૈ કિ વિષયોસે તૃપ્તિ જીવોં કો કમી નહીં હોતી હૈ, એક કં યાદ એક વિષયકો 'મોગને' કી છાલસા પ્રતિષ્ઠાન ડત્પન્ન હોતી રહતી હૈ । જય યદ્દ હાલત હૈ તો ફિર ડસકો તૃપ્તિરૂપ વિષયમોગજન્ય સુખ્યકી પૂર્ણતા કેસે

માટે જ- 'નૈષ સોઽન્તર્નૈષ દુરે' અર્થાત—આ છવ એ માટે માન-તવર્તી છે તે માટે ગુરુકામસેવી છે અથા આ પ્રકારનાં વસ્તુસ્થિતિ છે તેા તે ગુરુકામ સેવા અસંયમી છવ શાસ્ત્રાદિકવિષયજન્ય સુખ્યેના મધ્યવર્તી સુધી પણ નથી કારણ કે હવુ સુધી વિષયજન્ય સુખ્યેના અનુભવ કરવાયાગુ તેનુ જ્ઞાન એક પ્રકારે અભાવરૂપ જ છે મધ્યવર્તી તો તેને ત્યારે માનવામા આવે કે અથા વૈષયિક સુખ્યેના અનુભવ કરતા કરતાં તે તેની તૃપ્તિરૂપ પૂર્ણતાના અનુભવની વરા નહીં આવે. પૂર્ણતાની નહીં આવેલ છે એમ તેને ન કહી શકાય કે માની શકાય, કારણ કે તેને હવુ સુધી ઇષ્ટ વૈષયિક સુખ્યેના ભોગવવાની સ્પૃહાના સમુદ્ધાસ રહે છે અથા સુધી તેને ઇષ્ટ વિષયકી પ્રાપ્તિ નથી થતી. ત્યાં સુધી તે પોતે મજા બાકુલ રહે છે બાકુલતામાં તેને વૈષયિકતૃપ્તિજન્ય સુખ્યની પ્રાપ્તિ પણ થતી નથી. આથી તેનુ જ્ઞાન ઇષ્ટ વિષયકી પ્રાપ્તિના અભાવથી વૈષયિક સુખ્યાનુભવથી શૂન્ય જેવું બની રહે છે આ સિદ્ધ મયેલી વાત છે કે વિષયેલાં છવેને તૃપ્તિ થી પણ થતી નથી, એક પછી એક વિષયને ભોગવવાની છાલસા ધણે ધણે ઉત્પન્ન થતી જ રહે છે અથા આ કાલત છે ત્યારે તેને તૃપ્તિથી વિષયમોગ

મિલ સકતી છે ? જબ હિસ પ્રકારકી પૂર્ણતાકા અનુભવ જીવકો નહીં હોતા હૈ તો વહ જીવ વિષયસુખોંકો ભોગતે ૨ અનેક મધ્યદેશ તક પ્રાપ્ત હો ચુકા હૈ, યહ કૈસે માના જા સકતા હૈ ? ક્યોં કિ વહ તો અમી તક મી અપને કો વિષયસુખોંકે ભોગને કા પ્રારમ્ભક હી માનતા હૈ, અતઃ ઉસકે જ્ઞાનમેં વૈષયિક તૃપ્તિકે અનુભવકા અભાવ સા હી બ્રલકતા રહતા હૈ । ઉસકા જ્ઞાન જબ તૃપ્તિ કી પૂર્ણતા સે હી સર્વથા વંચિત હો રહા હૈ તો વહ ઉસ તૃપ્તિ કે મધ્યતક પહુંચા હુઆ કૈસે માના જા સકતાં હૈ । ઉસમે તો અમી વૈષયિક સુખોંકો ભોગનેકી પ્રારમ્ભક દશાકા હી માન હો રહા હૈ । યહી વાત ટીકાકારને “અઘાપિ તત્સ્પૃહાસમુદ્ધાસેન અનવાપ્તેષ્ટવિષયસ્ય વિષયસુખજ્ઞાનયુક્તસ્ય તસ્ય તત્તૃપ્ત્યનુભવાભાવપ્રાયત્વાત્” ઇન પત્તિકોં મેં પ્રદર્શિત કી હૈ । અર્થાત્ અમી તક વિષયસુખોંકી ઇચ્છાકે સમુદ્ધાસ સે, ઇષ્ટ વિષયકી પ્રાપ્તિ સે રહિત વિષયસુખજન્ય જ્ઞાનસે યુક્ત ઉસ જીવકો વૈષયિક તૃપ્તિકે અનુભવ કી શૂન્યતા જૈસી હૈ, હિસ લિયે વહ વૈષયિક સુખકે મધ્યવર્તી નહીં હૈ । વહ ગુરુકામસેવી વિષયસુખસે વિરક્ત હો કર ઉનસે દૂર મી નહીં હોતા હૈ, ક્યોં કિ અમી તક મી જો ઉસકે ઉનકે સેવનકી અભિલાષા વની હુઈ હૈ ।

જન્ય સુખની પૂર્ણતા કેવી રીતે મળી શકે ? જ્યારે આ પ્રકારની પૂર્ણતાનો અનુભવ જીવને થતો નથી તો પછી તે જીવ વિષયસુખોને ભોગવતા ભોગવતા તેના મધ્ય ભાગ સુધી પહોંચી ચુકેલ છે એ કેમ માની શકાય ? કારણ કે તે તો હજી સુધી પોતાને વિષયસુખો ભોગવવાનો પ્રારંભક જ માને છે, માટે તેના જ્ઞાનમાં વૈષયિક તૃપ્તિના અનુભવનો અભાવ જ જોવામાં આવે છે એનું જ્ઞાન જ્યારે તૃપ્તિની પૂર્ણતાના અનુભવથી જ વચિત રહેલ છે ત્યારે એને તૃપ્તિના મધ્ય સુધી પહોંચેલ છે એવું કંઈ રીતે માનવામાં આવે, તેમાં તો હજી વૈષયિક અખો ભોગવવાની પ્રારંભક દશા ભાસી રહેલ છે આ વાત ટીકાકારે “અઘાપિ તત્સ્પૃહાસમુદ્ધાસેન અનવાપ્તેષ્ટવિષયસ્ય વિષયસુખજ્ઞાનયુક્તસ્ય તસ્ય તત્તૃપ્ત્યનુભવાભાવપ્રાયત્વાત્” આ પત્તિઓમાં પ્રદર્શિત કરેલ છે, અર્થાત્ હજી સુધી વૈષયિક સુખોની ઇચ્છાના ઉદ્ધાસથી ઇષ્ટ વિષયની પ્રાપ્તિથી રહિત વિષયસુખજન્ય જ્ઞાનથી યુક્ત તે જીવને વૈષયિક તૃપ્તિના અનુભવની ખામી દેખાઈ આવે છે, આ કારણે તે વૈષયિક સુખનો મધ્યવર્તી નથી, અને તે શુદ્ધકામસેવી વિષયસુખથી વિગ્રસ્ત બની તેનાથી દૂર પણ થઈ શકતો નથી, કારણ કે હજી તેના દિલમાં વિષયસેવનની અભિલાષા ભરી પડી છે

અથવા યથાપૂર્વકરણેન મિશ્રાન્યિકો ગુરુકામી સર્કિ કર્મણો મધ્યે વર્તતે વરિ
વેતિ શિષ્યનિજ્ઞાસાપામાહ—‘નૈવ’ત્યાદિ। સઃ નૈવ અન્તા=કર્મણો મધ્યે ન વર્તતે તસ્ય
મન્યિમદન કર્મમયાપપષેરથશ્યમ્માવિત્વાત્, નૈવ=નાપિ દૂરે-વેશ્વોનકાત્કોતી
કર્મસ્થિતિક્ત્વાત્ ।

અથવા—“ નૈવ સોડ્નતૈવ દૂરે ” હસકા યહ મી અર્થ હોતા હૈ—
અપૂર્વકરણ સે ઝિમને રાગદ્વેષરૂપી મન્યિ (ગાંઠ) કા મેદ કર દિયા હૈ
બહ અવિરતસમ્યગ્દષ્ટિ જીવ મી ગુરુકામસેવી હૈ ક્યોં કિ અમી તક
મી ડમક કિમી મી પ્રકારકા સયમ નહીં હૈ, અતા હસ અવસ્થામેં
શિષ્ય ગુરુદેવસે પ્રમ કરતા હૈ કિ ડસ સમ્યગ્દષ્ટિ જીવકો કર્મ ક મધ્ય
મેં સ્થિત માનના ચાહિયે યા કર્મસે બાહિર રહનેવાલા માનના ચાહિયે ! ।
હસ પ્રકારકી શિષ્યકી આદેશકા કા સમાધાન ડન પંક્તિયોં મેં સુત્રકારને
કિયા હૈ, વે કહતે હૈં—ડસે કર્મકે મધ્યવર્તી હસ લિયે નહીં માનના
ચાહિયે કિ ડમક મન્યિકા મેદ હો જુકા હૈ ઓર મન્યિમેદ હોનેસે
ડસકે કર્મોંકા ક્ષય આગે અવશ્યમાબી હૈ । મધ્યવર્તી તો બહ જય માના
જા સકતા યા કિ બહ જીવ યદિ ધર્મી રહના; પરન્તુ ણેસા તો હૈ નહીં,
ક્યોં કિ ડસકે કર્મોંકા ક્ષય નિયમસ હોગા । કર્મોં સે દૂર ડસે હસ
લિયે અમી નહીં માના જા સકતા હૈ કિ ડસકે કુઠ કમ અન્ત-કોડા
કોતીસાગરોપમ કર્મોં કી સ્થિતિકા સમ્માય હૈ ।

અથવા— નૈવ સોડ્નતૈવ દૂરે એના એ પલ્લ અથ યાવ છે કે—અપૂર્વ
કરણથી જેણે રાગદ્વેષરૂપી માઠને લેહી નામેલ છે તે અવિરતસમ્યગ્દષ્ટિ હવ
પલ્લ સુદ્ધામસેવી હૈ કારણ કે હવુ મુખી તેનામા કોઈપલ્લ પ્રકારનો સંકમ
નથી અમી આ અવસ્થામા શિષ્ય સુદ્ધેવથી પ્રમ કરે છે કે—અ સમ્યગ્દષ્ટિ
હવને કર્મના મધ્યમાં સ્થિત માનવો કે કર્મથી બહાર રહેવાવાળા માનવો
બેડમે ? આ પ્રકારની શિષ્યની આશાકાનું સમાધાન એ પદ્ધિઓમાં સૂત્રકારે
કરેલ છે ત કહે છે કે—તેને કર્મના મધ્યવર્તી બેટલા માટે નહિ માનવા બેડમે
કે તેની પ્રથિના લેલ યદિ મુકેલ છે અને પ્રથિલેલ યથાથી એના કર્મોનો ક્ષય
આગળ અવશ્ય થવાની છે મધ્યવર્તી તે એ ત્યારે મનાતા કે તે હવ ત્યા ને ત્યા
સ્થિર રહેનો પરન્તુ એવુ તા છેજ નહિ, કારણ કે તેના કર્મના ક્ષય નિયમથી
થવાનો જ કર્મથી દૂર તેને એ આનૃ નથી માનવામાં આવતો કે તેને ધોડાં
આજં અતઃકોડાકોડી આગરોપમ કર્મોની સ્થિતિના સકલાવ રહેલ છે

यदि वा लब्धचारित्रोऽपि सः नैव अन्तः=कर्मणः ससारम्य वा मध्ये न वर्तते द्वादशरूपायद्वर्तित्वात्, नैव च दूरे, उत्कर्षतो मोक्षगमनम्य सप्ताष्टमवग्रहणानतिक्रमणात् ।

यद्वा—य इमां द्वादशाङ्गीमर्थरूपेण यदा प्ररूपितवान् स किं તદા સસારસ્યાન્તર્વર્તિર્વાઃસીદિતિજમ્બૂસ્વામિપ્રશ્નયુત્તરયતિ—‘ નૈવે ’—ત્યાદિ । સ તદા નૈવ અન્તઃ=સંસારમધ્યે વર્તતે સ્મ, તદાનીં લીઘયાતિકર્મચતુષ્ટયત્વાત્, નાપિ દૂરે=તદાનીમપિ અઘાતિકર્મણા ચરમસમયાપેક્ષિતત્વાત્ ॥ મ૦ ૧ ॥

અથવા—લબ્ધચારિત્ર મી વહ સમ્યગ્દષ્ટિ જીવ કર્મ ઓર સસારકે મધ્યવર્તી નહીં હૈ, કયો કિ ઉસકે અનતાનુબધી આદિ ચારહ પ્રકારકી કપાયોં કા અભાવ હો ચુકા હૈ । મોક્ષસે દૂરવર્તી ઇમલિયે નહીં હૈ કિ વહ ઉત્કૃષ્ટ સે સાત આઠ ભવમે મુક્તિ કી પ્રાપ્તિ કર લેગા ।

અથવા—જિન્હોંને ઇસ દ્વાદશાંગરૂપ આગમકી અર્થરૂપસે પ્રરૂપણા કી હૈ હે ઉસ સમય સસાર કે અન્તર્વર્તી થે યા વહિર્વર્તી ? ઇસ પ્રકાર કે શ્રી જમ્બૂસ્વામીકે પ્રશ્નકા ઉત્તર શ્રીસુધર્માસ્વામી દેતે હુઅ કહતે હૈ— ઇસ દ્વાદશાંગરૂપ આગમકી અર્થરૂપસે પ્રરૂપણા કરનેવાલે તીર્થદ્વરાદિ પરમાત્મા ન તો મંસારકે મધ્યવર્તી થે ઓર ન સસાર સે દૂર હી થે, કયોં કિ ઉનકે ઉસ સમય ચાર ઘાતિયા કર્મોં કા અભાવ હો ચુકા થા, ઇમ જિયે હે સંસારકે અન્તર્વર્તી નહીં થે, ઓર વાકીકે ચાર અઘાતિયા કર્મોં કા સદ્ભાવ થા ઇસલિયે ઉસ સમય હે સસાર સે વહિર્વર્તી મી નહીં થે ॥ સૂ. ૦૧ ॥

અથવા—લબ્ધચારિત્ર પણુ તે સમ્યગ્દષ્ટિ જીવ કર્મ તેમજ સસારનો મધ્યવર્તી નથી, કેમકે તેને અનતાનુબધી આદિ ચાર પ્રકારના કપાયોનો અભાવ થઈ ચુકેલ છે મોક્ષથી દૂરવર્તી એ માટે નથી કે તે ઉત્કૃષ્ટથી સાત આઠ ભવમા મુક્તિની પ્રાપ્તિ મેળવી લેશે

અથવા—જેઓએ આ દ્વાદશાંગરૂપ આગમની અર્થરૂપથી પ્રરૂપણા કરેલ છે તેઓ તે સમયે સસારને અન્તર્વર્તી હતા કે બહિર્વર્તી ? આ પ્રકારના શ્રી જમ્બૂસ્વામીજીના પ્રશ્નનો ઉત્તર શ્રી સુધર્માસ્વામી આપતા કહે છે કે—આ દ્વાદશાંગરૂપ આગમની અર્થરૂપથી પ્રરૂપણા કરવાવાળા તીર્થદ્વરાદિ પરમાત્મા ન તો સસારના મધ્યવર્તી હતા તેમ સસારથી દૂર પણ ન હતા કેમકે તેમને તે વખતે ચાર ઘાતી કર્મોનો અભાવ થઈ ચુકેલ હતો તેથી તેઓ સસારના અન્તર્વર્તી ન હતા અને જાકીના ચાર અઘાતિયા કર્મોનો સદ્ભાવ હતો, આ કારણે તે સમયે તેઓ સસારથી બહિર્વર્તી પણ ન હતા (સૂ. ૦૧)

યથ પ્રાપ્તસમ્યક્ત્વ સંસારસાગરતીરણર્થીંસ કિં નિભિનોતિ? इति दर्शयितुमाह
- 'સે પાસહ' ઇત્યાદિ ।

મૂલ્ય-સે પાસહ ફુસિયામિય કુસમ્ગે પણુછ નિવડયં વા
પરિયં, પથ ઘાલસ્સ જીવિય મદસ્સ અવિયાણઝો, કૂરાહ ક
મ્માહ ઘાલે પકુલ્લમાણે તેણ વુલ્લેણ મૂહે વિપ્પરિયાસમુવેહ,
મોહેણ ગલ્લમ મરણાહ પહ, ઘરથ મોહે પુણો પુણો ॥ સુ. ૨ ॥

છાયા-સ પશ્યતિ પૂપદિવ કુશાગ્રે પ્રણુન્નં નિપતિતં વાતેરિતમ્, एव वास्सस्य
जीवितं मन्दस्याभिज्ञानतः, कूराणि कर्माणि वास मङ्कर्माणस्तेन दुःखेन मूढो
विपर्यासमुपैति, मोहेन गर्भे मरणाद्येति, यत्र मोहे पुनः पुनः ॥ सु. २ ॥

ટીકા-‘સ પહયનિ’ ઇત્યાદિ । મન્ન=સમ્યક્ત્વમર્હિન્ના પરિજ્ઞાત્સંસારાસારોડપ
નીતમિધ્યાત્વમનિકાઃ પ્રણુન્ને=સન્તતપૂર્ણપરપુરુષોપવયાત્ પ્રેરિતં વાતેરિતં=વાતેન=
વાયુના ફેરિત=કન્પિતં સહ કુશાગ્રે=વર્માગ્રે નિપતિતં નિન્નિપતમષિકં વા પતિતં
પૂપદિવ=ચિન્દુ યથા પશ્યતિ, તસ્માતિસ્તોકસમયમાત્રસ્થિતિક્ત્વાત્, एव=तयैव

जिस जीवको सम्यक्त्व प्राप्त हो चुका है ऐसा जीव नियम से इस
संसाररूपी सागरके तीरफर्ती ही माना गया है। इसकी विचारधारा कैसी
होती है ? इस विषयको प्रकट करनेके लिये सूचकार सूत्र कहते हैं—
‘से पासह’ इत्यादि ।

મિધ્યાત્વરૂપી જીવનિકા (પકવા) કે અભાવ સે પ્રાપ્ત હુપ સમ્યક્ત્વ
કે પ્રમાણ સે જિસને સંસારની અસારતા અણી તરફ સે જાન લી છે એસા
વહ સમ્યગ્દષ્ટિ જીવ અજ્ઞાની પ્રાણીકે જીવન કો દર્મ કી અનીપર પકી
હુઈ ઓસકી ચિન્દુકે સમાન જાનતા છે । જિમ પ્રકાર દર્મ કી અનીપર
ઠઠરી ઓસકી ચિન્દુ અતિ જાણુ હતી છે, જરા મા મી પબન કા હોંકર

જે જીવને સમ્યક્ત્વ પ્રાપ્ત થઈ ચુકે છે તે જીવને નિયમથી આ સંસાર
રૂપી સાગરનો વીરવર્તી માનવામાં આવે છે, તેની વિચારધારા કેવી હોય છે
જે નિયમને પ્રગટ કરવા માટે સૂચકાર કહે છે—“સે પાસહ” ઇત્યાદિ.

મિધ્યાત્વરૂપી જીવનિકા (પકવા) ના અભાવથી પ્રાપ્ત થયેલ સમ્યક્ત્વના
પ્રમાણથી જોઈ સંસારની અસારતા સારી રીતે બાંહેલી છે એવા તે સમ્યગ્દષ્ટિ
હવે અજ્ઞાની પ્રાણીના જીવનને હર્ષની અણી ઉપર પડેલા વાહનના બિંદુ સમાન
માને છે > પ્રકારે હર્ષની અણી ઉપર પડેલા વાહનના બિંદુ અતિ બેચેન હોય છે,

મન્દસ્ય=અલપજ્ઞસ્ય મૂઢસ્યેતિ યાવત્ અપ્રિજાનતઃ=નરકનિગોદાદિક રુદુકફલં
 સોપક્રમાયુર્વાડનવવુધ્યમાનસ્યાત એવં વાલમ્ય=દ્વિતાદ્વિતપ્રાપ્તિપરિહારાનભિજ્ઞસ્ય
 જીવિતં=જીવન સોપક્રમાયુર્વાડતિચચ્ચલ પઠ્યતિ=જાનાતિ । પરમાર્થાનભિજ્ઞઃ કિં
 કુર્યાદિત્યાહ-‘ક્રૂરાણી’-તિ ક્રૂરાણિ=ઘાતુકાનિ કર્માણિ ગલ્કર્ત્તનાદીનિ પ્રાણા
 તિપાતાદીન્યષ્ટાદશપ્રકારાણિ વા મનોવાકાયૈઃ પ્રકુર્વાણઃ=સમાચરન્ વાલઃ, તેન=
 પ્રાણાતિપાતાદિજનિતરુદુકફલોત્પાદકેન દુઃખેન=શારીરમાનસેન, દુઃસજનકેન
 કર્મણા વા વિવિધયોનિષુ ભ્રામં ભ્રામં મૂઢઃ=તત્તદ્વ્યોપગ્રાહિકર્મજન્યરુદુકફલાન-
 ઉસે ક્ષણમાત્રમે ભૂમિ પર ગિરા દેતા હૈ, વહ વહુત સમય તક વહાં
 સ્થિર નહી રહ સકતી, વહ તો વહુત હી થોડે સમય તક વહાં ઠહરતી
 હૈ । ઉસી પ્રકાર અજ્ઞાનીના કા જીવન ભી વાયુ કે તુલ્ય પૂર્વ ઓર અપર
 કાલ સમ્બન્ધી કર્મપુદ્ગલોસે સદા પ્રેરિત ચના રહતા હૈ । જ્યોં હી હવાકે
 હલકે ઢોંકે સે દર્ભ કે અગ્ર ભાગ પર સ્થિત ઓસવિન્દુકે સમાન આયુ-
 કર્મ કા અન્ત આ જાતા હૈ, યા કિસી શસ્ત્રઘાતાદિક કા નિમિત્ત મિલ
 જાતા હૈ તો હસે ભી વિનષ્ટ હોતે દેર નહી લગતી । યહ ભી અસ્થિર ઓર
 ક્ષણિક હૈ । અજ્ઞાની કે જીવનકો દર્ભ કી અની પર પડી હુઈ ઓસ કી
 વિન્દુકી ઉપમા હસ લિયે દી હૈ કિ જિસ પ્રકાર વહ અતિ ચચ્ચલ-અસ્થિર
 હૈ ઉસી પ્રકાર હસકા જીવન ભી, યાહે યહ કિસી ભી ગતિમેં રહે, સ્થિર
 નહીં હૈ । સર્વત્ર ક્ષણિકતા કા એકચ્છત્ર રાજ્ય છાયા હુઆ હૈ । યાહે યહ
 નરકગતિમેં રહે, યાહે નિગોદ મેં રહે, યાહે કહી ભી રહે, યહ સ્થિર નહીં ।

પવનનો જરા સરખો પણ અપાટો લાગતા તે ક્ષણમાત્રમા જમીન ઉપર
 ફેકાઈ જાય છે, તે ત્યાં લાગ્યા સમય સુધી સ્થિર રહી શકતું નથી, માત્ર થોડા
 સમય સુધી જ તે ત્યાં ટકે છે તે જ પ્રકારે અજ્ઞાનીનું જીવન પણ પવનસદૃશ
 પૂર્વ અને અપર-કાલ સમય સુધી કર્મપુદ્ગલોથી સદા ચચળ રહે છે, જ્યારે પવ-
 નના સાધારણ અપાટાથી ઢર્ઢની અણી ઉપર પડેલા ઝાકળના બિંદુની જેમ આયુ-
 કર્મનો અત આવી જાય છે, અથવા તો કોઈ શસ્ત્રઘાત આદિ નિમિત્ત મળી
 જાય છે ત્યારે તેનો પણ નાશ થતા વાર લાગતી નથી, આ પણ અસ્થિર અને
 ક્ષણિક છે અજ્ઞાનીના જીવનને ઢર્ઢની અણી ઉપર પડેલા ઝાકળબિંદુ સાથે ઉપમા
 એ માટે આપવામા આવેલ છે કે જે પ્રકારે એ અતિચચલ અને અસ્થિર છે
 એ જ પ્રકારે અજ્ઞાનીનું જીવન ગમે તે સ્થિતિમા હોય છતાં સ્થિર રહેતું નથી
 ક્ષણિકતાનું એકછત્ર રાજ્ય ચારે તરફ વ્યાપક છે, ગમે એ નરકગતિમા રહે
 અગર નિગોદમા રહે, ગમે તે સ્થળે રહે છતાં સ્થિર નથી

શાકુત—સમ્યગ્દષ્ટિ જીવ 'મી' અપની પૂર્ણપર્યાયોં મેં અનેક ગતિયોંમેં પરિભ્રમણ કરતે હેં, તથા જય તક ઉન્હેં મુક્તિ કા લાભ નહીં હુઆ તપ તક ઉનકા જીવન 'મી' તો હસ તરહસે અસ્થિર હી હૈ; ફિર યહા ચાલ જીવન કો હી કયોં અસ્થિર થનલાયા ?

સમાધાન—યથાપિ યહ શાકુત ઠીક હૈ, ફિર 'મી' યહાં પર જો અજ્ઞાની કે જીવન કો હી અસ્થિર થનલાયા હૈ ઉસકા ત્વાસ મતલબ હૈ, ઓર યહ યહ હૈ કિ અજ્ઞાની કા જીવન સમક્તિ કે અમાય કે કારણ સ્થિર નહોં હો સકતા, સમ્યગ્દષ્ટિ કા જીવન તો સમક્તિ કે સન્નાયકે કારણ સ્થિર હો જાતા હૈ। સમક્તિ કે હોને પર યદિ યહ અવદ્રાપુષ્ક હૈ તો નિયમસે યહ વૈમાનિક દેવોં મેં ઉત્પન્ન હોતા હૈ ઓર યહાં સે વ્યવ કર મહાબિદેહાદિક ક્ષેત્રમેં જન્મ લે કર મુક્તિ કા લાભ પ્રાપ્ત કરતા હૈ। હમ તરહસે દ્રવ્ય કી અપેક્ષા સે ઝમકા જીવન અસ્થિર નહીં હૈ, કિંતુ સ્થિર હી હૈ। પરંતુ અજ્ઞાની કા જીવન હમ તરહ કા ન હોનેસે ક્ષણિક-અસ્થિર હૈ। અજ્ઞાની નરકનિગોદાદિક કે કડુક ફલ કો જાનતા નહીં હૈ। અપની ક્ષણ ૨ મેં વ્યતીત હોતી હુઈ આપુ કા 'મી' ઉસે કુછ 'મી' કપાલ નહીં હોતા હૈ। જૈસા અસમક્તિ જીવ હોતા હૈ સમક્તિ જીવ વૈસા નહીં હોતા, યહ તો શાસ્ત્રાદિકોં કે પરિશીલન સે યા શુભોદિક કે નિમિત્ત સે

ચકા—અમ્યગ્દષ્ટિ હવ પલ પોતાની પૂર્વ પશોપામાં અનેક અતિવેર્ષાં પરિભ્રમણ કરે છે તથા જ્યાં મુખી તેને મુક્તિને લાભ નથી થયો ત્યાં મુખી તેનું હવન પણ તેવા પ્રકારે અસ્થિર છે ત્યારે અહિં બાલહવનને જ શા માટે અસ્થિર બતાવ્યું ?

સમાધાન—જો કે આ ચકા ઠીક છે છતાં પણ આ સ્થળે જો અજ્ઞાનીના હવનને અસ્થિર રૂપમાં બતાવેલ છે એનો ખ્યાલ મતલબ છે, અને તે જો છે કે અજ્ઞાનીનું હવન સમક્તિના અભાવના કારણે સ્થિર બની શકતું નથી, અમ્યગ્દષ્ટિનું હવન તો સમક્તિના સહભાવના કારણે સ્થિર બની જાય છે સમક્તિ થવાથી જો તે અવદ્રાપુષ્ક છે તો નિયમથી તે વૈમાનિક દેવોના ઉત્પત્તિ થાય છે અને ત્યાંથી વ્યતીત તે મહાસિદ્ધિદાદિક ક્ષેત્રમાં જન્મ લઈને મુક્તિને લાભ પ્રાપ્ત કરે છે આ પ્રકારે દ્રવ્યની અપેક્ષાથી તેનું હવન અસ્થિર નથી, બરફે સ્થિર જ છે પરંતુ અજ્ઞાનીનું હવન આ પ્રકારનું ન હોવાથી સ્થિક-અસ્થિર છે અજ્ઞાની નરક-નિગોદાદિકના કાવા ફળને બાવતો નથી, પોતાના કાલે કાલે વ્યતીત થતા આયુષ્યનું પણ તેને જ્ઞાન હોતું નથી, જેમ અસમક્તિ હવ હોય છે તેમ સમક્તિ હવ હોતો નથી તે વા શાસ્ત્રાદિકના પરિશીલનથી

નરકનિગોદાદિક કે દુઃખોં કા જાતા હોતા હૈ. ક્ષણ ૨ મેં વ્યતીત હોને-વાલી અપની આયુકી ણક ૨ ઘડી મી વ્યર્થ નહીં ગ્યોતા, સમક્તિ કે સદ્ભાવસે ડસકી સફલતા કરતા રહતા હૈ । ટમી સમસ્ત અભિપ્રાય કો હૃદયમે રચ્ય કર સૂત્રકાર ને “એવં ચાલસ્સ જીવિયં મદસ્સ અવિયા-ણઓ” યહ સૂત્રાંશ કહા હૈ । યાલકા વિશેષણ “મન્દ” કો જો લિગ્વા હૈ, ડસકા તાત્પર્ય યહી હૈ કિ જય વહ મન્દ નરકનિગોદાદિક કે કટુક ફલ કો અથવા ક્ષણ ૨ મેં વીતનેવાલી અપની આયુકો નહીં જાનતા હૈ તો ફિર વહ અપને હિત ઓર અહિત કી પ્રાપ્તિ એવ પરિહારકા જાના મી કૈસે હો સકતા હૈ ? । યહાં પર યહ શઙ્કા કોઈ કર સકતા હૈ કિ મન્દ પ્રાણી નરકનિગોદાદિક એવ અપની વ્યતીત હોતી હુઈ આયુ કો નહીં જાનતા હૈ, ડસલિયે વહ યહ મી નહીં સમજતા હૈ કિ મેરા હિત કિસમેં હૈ ઓર અહિત કિસમે ? પરન્તુ સમ્યગ્દષ્ટિ મી તો એમા હી હૈ તો ફિર વહ હિતપ્રાપ્તિ ઓર અહિતકે પરિહાર કરનેમેં સમર્થ કૈસે હુઆ ? સો એસી શઙ્કા કરના ઠીક નહીં, ક્યોં કિ યહ અમી વતલા દિયા ગયા હૈ કિ સમ્યગ્દષ્ટિ જીવ શાસ્ત્ર કે અનુશીલન સે અથવા ગુરુઆદિક કે ઉપદેશ કે નિમિત્તસે નરકનિગોદાદિક કે દુઃખોં કા તથા અપની વ્યતીત હોતી હુઈ આયુકા જાતા

અથવા ગુરુ આદિના નિમિત્તથી નરક-નિગોદાદિકના દુ ખોનો જાણકાર બને છે, અને ક્ષણે ક્ષણે ઘટતા જતા પોતાના આયુષ્યની એકેક ઘડી પણ તે વ્યર્થ જવા દેતો નથી, સમક્તિના સદ્ભાવથી એની સફળતા કરતો રહે છે આ સમસ્ત અભિપ્રાયને હૃદયમા ગંખી સૂત્રકારે “એવં ચાલસ્સ જીવિયં મદસ્સ અવિયાણઓ” આ સૂત્રાંશ કહેલ છે મન્દ આ વિશેષણ “ચાલ”ને ઉદ્દેશીને બે લખેલ છે એનો મતલબ એ છે કે જ્યારે તે મદપ્રાણી નરકનિગોદાદિકના કડવા ફળને અથવા તો ક્ષણે ક્ષણમા ઘટતી જતી પોતાની આયુષ્યને નથી સમજતો તો ફરી તે પોતાના હિત અને અહિતની પ્રાપ્તિ તેમજ પરિહારનો જાણકાર કઈ રીતે બની શકે ? આ સ્થળે કોઈ એવી શકા કરી શકે કે મદપ્રાણી નરક-નિગોદાદિકને અને પોતાના વ્યતીત થતા જતા આયુષ્યને જાણતો નથી, માટે તે આ પણ નથી સમજી શકતો કે મારું હિત અને અહિત શામા છે ? પરન્તુ સમ્યગ્દષ્ટિ જીવ પણ તો એવો જ છે, ત્યારે તે હિતની પ્રાપ્તિ અને અહિતનો પરિહાર કરવામા સમર્થ કેવી રીતે થાય છે ? એવી શકા કરવી ઠીક નથી, કારણ કે હમણા જ સમજાવવામા આવ્યું છે કે-સમ્યગ્દષ્ટિ જીવ શાસ્ત્રના અનુશીલનથી અથવા ગુરુ આદિકના ઉપદેશના નિમિત્તથી નરક-નિગોદાદિકના દુ ખોનો જાતા થાય છે અને પોતાના વ્યતીત થતા આયુષ્યનો પણ જાતા થાય છે આ માટે તે

होता है। इसीलिये तो यह “समयं गोपम मा पमायए” इस प्रसुके वाक्यानुसार प्रमाद में अपना एक भी क्षण व्यर्थ नहीं जाने देता। सावधान हो कर ही प्रत्येक क्रियाओं को करता है जिससे उसकी आयुका एक २ क्षण सफल बन। यह जानता है—यह जीवन क्षणमंगुर है, इसकी सफलता जैसे भी हो सके वैसे कर लेने में ही बुद्धिमान्नी है।

परमार्थसे अनभिज्ञ बने हुए वे पालजीव गलकर्तनादि जैसी घातक क्रियाओं अथवा अठारह प्रकारके पापस्थानकरूप प्राणातिपातादिकों को मन, वचन एवं कर्मा से आचरते हुए प्राणातिपातादिजनित और कटुक फलके उत्पादक शारीरिक और मानसिक दुःखोंसे, अथवा दुःखोंको वेनवाले कर्मों से अनेक योनियों में बारबार जन्म-मरण रूप परिभ्रमण करते रहते हैं।

भावार्थ—जिन्हें हित और अहित का कुछ भी मान नहीं होता है ऐसे अज्ञानी जीव भूत कार्यों को करने में जरा भी नहीं हिचकते। इन्हें इस बात का कुछ भी ख्याल नहीं होता कि इन कार्यों के करने का अन्तिम परिणाम क्या होगा?। मानसिक, वाचिक और कायिक प्रवृत्ति उनकी ऐसे ही अधम गलकर्तनादि (गर्वन कष्टना आदि) रूप कार्यों के करने में लालसावाली यमीरहती है, इससे वे ऐसे २ अछुमकर्मों का उपार्जन

“समयं गोपम मा पमायए” आ प्रसुना वाक्यानुसार प्रमादमा पितानु जेके पवु क्षण निरर्थक कया हेतो नथी सावधान भनीने करेके क्रियाको करे छे जेधी तेना आयुधने जेठेके क्षण पवु अक्षण भने, ते जखे छे हे—आ एवन क्षण भक्षर छे तेनी सक्षणवा केटवी भने तेटवी सक्षर करी बीवी ते बुद्धिमाननु भभ छे परमार्थधी अज्ञान जेवे जालएव गलकर्तनादि जेवी घातक क्रियाको भने अठार प्रकारना पापस्थानकरूप प्राणातिपातादिकीने मन वचन भने कथाधी आचरनेने प्राणातिपातादिजनित भने कटुकक्षोना उत्पादक शारीरिक तेमक मानसिक दुःखोधी अथवा दुःखने देवाजना कर्मोधी अनेक योनियेभां बारबार जन्म-मरणरूप परिभ्रमण करते रहे छे

भावार्थ—जेने हित भने अहितनु कछ पवु भान नथी जेवे अज्ञानी एव घातकी कार्य करवाभां कस पवु करतो नथी तेने जे घातने केछ जेवे भ्याव नथी भवतो हे आ कसतु अन्तिम परिणाम हेनु जावये, तेनी मानसिक वाचिक भने कायिक प्रवृत्ति अर्हिन कयावा आदि अधम कार्यो करवाभां लालसायुक्त भनी रहे छे जेधी ते आया अथवा अशुभ कर्मोनु उपार्जन भने वर्धन

और वर्धन करते हैं कि जिनका परिणाम भविष्यमें उन्हें महादुःख दायक होता है । नरकनिगोदादिरूप अनेक योनियों में चार २ भ्रमण कर वे वहाँकी अनन्त वेदनाओं को सहते २ अपने अमृत्य जीवन को बिलकुल नष्ट करते रहते हैं । अनेक प्रकार के शारीरिक एवं मानसिक दुःखोंकी प्राप्ति जीवोंको ऐसे ही कार्योंके फल स्वरूप होनी है ।

वे मृद घालजीव अनेक योनियो मे दुःखप्रद कर्म के कटुकफल से अनभिज्ञ होते हुए जिससे आत्मा का कल्याण होता है जो अनेक दुःखों का नाशक है और साक्षात् या परम्परारूप से जो उस जीव को मुक्तिमें ले जाता है ऐसे सुखजनक उस धर्मको दुःखरूप जानते हैं ।

भावार्थ—जिस प्रकार कामला (पीलिया) रोग से दूषितदृष्टिवाला प्राणी अन्य शुभ्र (सफेद) पदार्थों को भी पीतरूप से ग्रहण करता है—जानता है, ठीक उम्मी प्रकार जो जीव अनादि मिथ्यात्वकर्म की वासना से ओतप्रोत होते हैं वे प्राणी भी सुखदायी धर्म को दुःखदायी रूपसे जानते हैं । यह उनकी मलिन आत्मा का ही दोष है ।

अज्ञानसे अन्धे हुए वे प्राणी दुःखजनक साવચ વ્યાપારોં को अपने दुःखको दूर करने के लिये करते हैं ।

કરે છે કે જેનું પરિણામ ભવિષ્યમાં તેને મહાદુઃખદાયી થાય છે નરક-નિગોદાદિરૂપ અનેક યોનિયોમાં વારંવાર ભ્રમણ કરી તે ત્યાંની અનંત વેદનાઓ સહન કરી પોતાનું અમૃત્ય જીવનનો નાશ કરે છે, અનેક પ્રકારના શારીરિક અને માનસિક દુઃખોની પ્રાપ્તિ જીવોને એવા કાર્યોના ફળસ્વરૂપ જ થાય છે

તે મૃદુબાલજીવ અનેક યોનિયોમાં દુઃખપ્રદ કર્મોના કડવા ફળોનો અનભિજ્ઞ હોઈ જેનાથી આત્માનું કલ્યાણ થાય છે, જે અનેક દુઃખોનો નાશક છે અને સાક્ષાત્ અથવા પરંપરારૂપથી જે આ જીવને મુક્તિમાં લઈ જાય છે એવા સુખ-જનક તે ધર્મને દુઃખરૂપ જાણે છે

ભાવાર્થ—જે પ્રકારે કમળાના રોગથી દૂષિત દૃષ્ટિવાળા પ્રાણી ખીન્ન શુભ પદાર્થોને પણ પીળારૂપે જુએ છે, એવા પ્રકારે જે જીવ અનાદિ મિથ્યાત્વ કર્મની વાસનાથી ઓતપ્રોત હોય છે તે પ્રાણી પણ સુખદાયી ધર્મને દુઃખદાયી જાણે છે, તે તેના મલિન આત્માનો દોષ છે

અજ્ઞાનથી આધીનો બનેલો તે પ્રાણી દુઃખ આપવાવાળા સાવચ-પાપકારી વ્યાપારોનો પોતાના દુઃખને દૂર કરવા માટે ઉપયોગ કરે છે

મિદ્ધો વિપયોસેન્નૈપરીત્યં મુસનનકષમાર્દેર્દુસ્વનનકાદિરૂપમ્ ટપૈતિ—આપ્નોતિ,
મજ્ઞાનાન્પોદિ દુઃસ્વનનકષાયધ્યાપાર તદુપશ્ચમાય વિદધાતીત્યર્થઃ । અપિ ચ
મોહેન—તત્ત્વવિપયોસરૂપેભાવિવેકેન, અપ્રાન્તમૂતમોહસ્ય પ્રજ્ઞાદાદિમધ્યવર્તિનો રાગ-
દ્વેષયોરપિ પ્રજ્ઞં, તેન રાગેણ દ્વેષેણ યા, યદ્વા—મિધ્યાત્મકપાયવિપયામિલાપમયજ્ઞ
મોહનીયેન કર્મણા, ગર્ભ—જનનીજઠરનિભાસરૂપ, તેન ચ મરણાદિ પૃથિ—ગચ્છતિ ।
મરણાદીત્યભાવિપ્રજ્ઞાત્—

આચાર્ય—હે વહ નહીં જાનતે હૈં કિં જિસ પ્રકાર રક્ત સે દુષ્પિત
વસ્ત્રકી શુદ્ધિ રક્તસે મહીં હોતી હૈં ઊસી પ્રકાર સે સાવચ બ્યાપાર જો
સ્વયં દુઃસ્વરૂપ યા જીર્ણોં કો વુન્મદાવી હૈં, અભા ! ઊનકે કરને સે દુઃસ્વોં
કા ઉપશમ કૈસે હો સકજા હૈં । એસા ઘોષ ઊન્હૈં હો મીં કહાં સે; ક્યોં
કિં પે તો અજ્ઞાનસે અંચે જો હો રહે હૈં । ઇનકે વર્મજલ્મુ અછે હીં નિર્દોષ
હોં, પરન્તુ જિનસે અછે-કુરે કા ઘોષ હોતા હૈં ઇનકે ઊન જ્ઞાનજલ્મુઓં
પર અજ્ઞાન કા આચરણ પડા કુબા હૈં ।

તત્ત્વોં મૈં વિપરીતામિનિવેશકા કારણ જો અભિવેકરૂપ મોહ હૈં
અસે, અથવા રાગ ઓર દ્વેષસે, યા મિધ્યાત્મ-કષાય-વિપયામિલાપ-
સ્વરૂપ મોહનીય કર્મ સે હે પાલજીવ જનની કો જઠરમૈં રૂઢિરૂપ ગર્ભા
વસ્થા પર્થ મરણદશા કો પ્રાપ્ત કરતે હૈં । યદ્વા પર અન્તમૂત મોહ કો
પ્રજ્ઞસે ઊસકે આદિ ઓર મધ્યવર્તી રાગ ઓર દ્વેષ કા મીં પ્રજ્ઞ જુબા
હૈં । મરણમૈં શુદ્ધિ આદિપદસે—

શાયામ —તે જોમ નથી બાણુતો કે જેવી રીતે લોહીથી દુષિત ઘણેલા વસ્ત્રની
શુદ્ધિ લોહીથી બનવી નથી તેવી રીતે પ્રાપ્તકારી વ્યાપાર જે સ્વયં દુઃખરૂપ અને
છપને દુઃખદાયી છે તેને ઉપયોગ કરવાથી દુઃખાનુ નિવારણ શી રીતે થઈ
શકે એવો ઉપદેશ એને લાગે પણ કષાયથી, કારણ કે એ તેના અજ્ઞાનથી વ્યાપ
તો જ થઈ રહેલ છે એના અમથાનુ બધે નિર્વિધ છે પરંતુ જેનાથી બલા-પુરાનો
વ્યાધ યાજ ત જ્ઞાનચક્ષુઓ ઉપર અજ્ઞાનનો પડો પડેલો છે

તત્ત્વોમા વિપરીત આશંકનું કારણ જે અભિવેકરૂપ મોહ છે તેનાથી, અથવા
સત્ર અને દ્વેષથી અથવા મિધ્યાત્મ-કષાય-વિપયામિલાપ-સ્વરૂપ મોહનીય કર્મથી તે
પ્રાણજીવ માતાના ઉદરમા સ્થિતિરૂપ જર્ણાવસ્થા એવ મરણ દશાને પ્રાપ્ત થાય છે
આ સ્થાને અન્તમૂત મોહના પ્રકણથી તેને આદિ અને મધ્યવર્તી સત્ર અને દ્વેષનું
પણ પ્રકણ ઘણેલ છે મરણમાં શુદ્ધિત આદિ પદથી—

“ પુનરપિ જનન પુનરપિ મરણં, પુનરપિ કર્મોપાર્જનકરણમ્ ।

પુનરપિ નરકનિગોદનિપાતઃ, પુનરપિ જનનીજઠરે પાતઃ ॥૧૥” ઇતિ ।

પૂર્વ મરણં પુનર્ગર્ભગમનં, તતો જન્મ, તતઃ પાપવૃદ્ધિસ્તતો મૃત્યું હિંસાદિક્રૂર-કર્મવૃત્તિસ્તતઃ કર્મણો મરસ્તેન ચ નરકનિગોદાદિપાત ઇતિ મહ્જનોન્મજ્જનક્રમેણ ભૂયો ભૂયો ગર્ભસ્ય મરણાદેરેવ પ્રાપ્તિમ્નસ્ય ભવતીતિ તાત્પર્યમ્, અત એવ-અપ્ર-અસ્મિન્ મોહે=અજ્ઞાને મોહનીયે-મોહજન્યે ગર્ભજન્મજરામરણાદિકે કર્મભરે વા પુનઃ પુનઃ પરિભ્રમતિ, સ તેભ્યો ન વહિર્નિઃસર્તું પ્રભવતીતિ ભાવઃ ।

“ પુનરપિ જનન પુનરપિ મરણ, પુનરપિ કર્મોપાર્જનકરણમ્ ।

પુનરપિ નરકનિગોદનિપાતઃ, પુનરપિ જનનીજઠરે પાતઃ ॥”

હસ પદ્યોક્ત જન્મમરણાદિ કી પરમ્પરા કા ગ્રહણ કિયા ગયા હૈ । અર્થાત્—મરણ, પુનઃ ગર્ભમેં ગમન, ફિર જન્મ, ફિર પાપોં કા વર્ધન, ઉસસે હિંસાદિક ક્રૂર કર્મોંમેં પ્રવર્તન, ઉસસે ફિર કર્મોં કા ઉપાર્જન, પશ્ચાત્ પુનઃ નરકનિગોદાદિકમેં પતન; હસ પ્રકાર કી જન્મ મરણાદિ કી પરંપરાસે હસ બાલ અજ્ઞાની જીવ કા કમ્બી ભી છુટકારા નહીં હોતા હૈ । જિસ પ્રકાર સમુદ્રાદિ જલાશયમે પડા પ્રાણી ઉસીમેં ઉતરાતા (ઊપરઆતા) ઔર ઢૂલતા હૈ ઉસી પ્રકાર જીવ કો ભી વાર ૨ ગર્ભ, જન્મ ઔર મરણકી પ્રાપ્તિ હોતી રહતી હૈ । હસી આશય કી પુણ્ડિ સૂત્રકારને “અવ્ર મોહે પુનઃ પુનઃ” હસ સૂત્રાંશ સે કી હૈ ।

“ પુનરપિ જનનં પુનરપિ મરણ, પુનરપિ કર્મોપાર્જનકરણમ્ ।

પુનરપિ નરકનિગોદનિપાત, પુનરપિ જનનીજઠરે પાત ॥ ”

આ પદ્યોક્ત જન્મમરણાદિની પરંપરાનું શ્રદ્ધા કરેલ છે અર્થાત્—મરણ, પુનઃ ગર્ભમાં આવવું, ફરી જન્મ, ફરી પાપોનું વર્ધન, એથી હિંસાદિક ક્રૂર કર્મોમાં પ્રવર્તન, એથી ફરી કર્મોનું ઉપાર્જન, પછી પુનઃ નરકનિગોદાદિકમાં પતન, આ પ્રકારની જન્મમરણાદિ પરંપરાથી આ બાલ અજ્ઞાની જીવ કચારેય છુટકારો મેળવી શકતો નથી જે રીતે સમુદ્ર આદિ જળાશયોમાં પડેલો પ્રાણી એમાં જ ઉપર આવે છે અને ડુબે છે આ રીતે આ જીવને પણ વારંવાર ગર્ભ, જન્મ અને મરણની પ્રાપ્તિ થતી રહે છે આ આશયની પુણ્ડિ સૂત્રકારે “અવ્ર મોહે પુનઃ પુનઃ” એ સૂત્રાંશ દ્વારા કરી છે

भावार्थ—संसारमें राग, द्वेष, अज्ञान और मोह भादि मलिन भाव इस जीवके सबसे प्रबल शत्रु हैं। याद्य शत्रु तो इसके लिये एक ही भयमें दुःस्वभावी होते हैं; परन्तु ये मो इसे भय २ में अनन्त कष्टों को देते रहते हैं। इसके ज्ञानादि गुणोंके निधानको छूट कर इसे नरक निगोदादिका अधिकारी बनाते रहते हैं। यह इन कारणोंसे जन्म मरणादिकी परम्परा से कभी छुटकारा नहीं पा सकता है। जिस प्रकार असहाय प्राणी समुद्रादि जलाशयमें पड़ने पर वहीं डूबता और उतराता है, वह जिस प्रकार वहाँ से बाहर नहीं निकल पाता, अन्तमें बेचारेका वहाँ पर प्राणान्त हो जाता है। ठीक यही दशा इस अज्ञानी जीव की हो रही है। इस संसाररूपी समुद्रमें पड़ कर यह भी उसीमें डूबता रहता है और मरता रहता है। तप और संयमका प्रवर्ण प्राप्त किये बिना इसका इससे उद्धार नहीं हो सकता है, अतः मोक्षामित्वाधीका कर्त्तव्य है कि वह इस रागद्वेषादिरूप शत्रुओं पर विजय प्राप्त करे। तभी यह अज्ञान-मोह जन्य गर्भ, जन्म, मरणादिसे अथवा कर्मके भारसे रहित हो सकता है, अन्यथा—“अथ मोह पुन पुनः” इस मोहादिरूप मलिन भावोंमें ही इसका जन्मजन्मान्तर का समय व्यतीत होता रहेगा।

भावार्थः—संसारमा रागद्वेष अज्ञान अने मोह भादि मलिन भावो अलम्बा अभावो प्रबल शत्रु छि याद्य शत्रु तो तेने भाटे कोऊ अवनम दुःख दायी दाय छे परंतु आ तो अवेकअवमा अनन्त कष्टोने देता रहे छे तेना ज्ञानादि गुणोना अद्यस्ने बुद्धीने तेने नरक-निगोदादिना अधिकारी जन्मावे छे आ कारणोने कर्म जन्म-मरणवृत्तिनी परंपराभाषी छुटकारो अणवी शक्तो नथी नेवी सीते असहाय प्राणी समुद्र भादि जलाशयोभां पडवावी त्मां दुखे छेअने उपर आने छि ते त्मांकी नेम अकार-नीकणवा असमय होय छेअने अते तेना त्याग देहात दाय छे आवी अ दशा आवा अज्ञानी लोपोनी बती रहे छे आ आसारूपी समुद्रभां पडी ते आवा सीते तेभां दुखे छे अने भरे छि तप अने संयमने अकार अक्षय कर्म सिवाय तेना उद्धार कर्म शक्तो नथी आषी मोक्षामित्वाधीनु कर्त्तव्य छि के आवा रागद्वेषादिवेप शत्रुणो उपर विजय प्राप्त करे त्याग व ते ज्ञानमोक्षजन्य जल अ म मरणवृत्ति अथवा कर्मना कारणो रहित जनी शके छे अन्यथा “अथ मोह पुन पुनः” को मोहादिरूप मलिन विचारभां तेना जन्मजन्मान्तरां समय व्यतीत बतो रहेछे।

યદ્વા-અવ=સમારે તત્તદ્વતિષ્ઠ વસ્તુમ્ભવમાણસ્ય પુનઃ પુનઃ કર્મવન્ધનતેન માંસારિકદુઃખ, તેન મોહે=પૂર્વોક્તસ્વરૂપે સમુત્પન્નતે, ઈતિ ॥ સૂ. ૨ ॥

નતુ સમારપરિભ્રમણાભાવઃ મોહાભાવાત્, મ ચ વિશિષ્ટજ્ઞાનાવિર્ભાવાત્, સોઽપિ ચ મોહાભાવાત્, તત્ત્વાન્યોન્યાશ્રયો દુર્વારઃ, મોહાભાવાદિવિશિષ્ટજ્ઞાનાવિર્ભાવઃ, તસ્માન્ચ મોહાભાવઃ, एवं च यावन्न विशिष्टज्ञानाविर्भावो जातो न तामर्कमोपशान्तये पुरुषस्य प्रवृत्तिः स्यादित्याकाङ्क्षायामर्थसंगत्यादपि प्रवृत्तिर्भवतीति दर्शयति—‘संसय’ इत्यादि ।

“અવ મોહે પુનઃ પુનઃ” ઇસ વાક્યાંશકા ટીકાકાર ઇસ પ્રકારસે મી અર્થ કરતે હૈં—ઇસ સમારમેં ડન ૨ ગતિયોં મેં મટકનેવાલે ઇસ અજ્ઞાની જીવ કો પુનઃ પુનઃ કર્મવન્ધ, ડસસે માંસારિક દુઃખોં કી પ્રાપ્તિ, ડસસે પુનઃ મોહ મેં પતન, ઇસ પ્રકારકે ભ્રમણમેં પડા હી રહના પડતા હૈં । સૂ. ૨ ।

મોહકે અભાવ સે ઇસ જીવકા સંસારમેં પરિભ્રમણ નહીં હોતા હૈ, પરન્તુ જવ તક સમ્યગ્જ્ઞાન કા આવિર્ભાવ ઇસ જીવકે નહીં હોતા હૈ તવ તક મોહકા અભાવ નહીં હો સકતા હૈ, ઓર સમ્યગ્જ્ઞાન કા આવિર્ભાવ મી જવ તક મોહકા અભાવ નહીં હોતા હૈ તવ તક નહીં હો સકતા । ઇસ પ્રકાર તો યહાં પર અન્યોઽન્યાશ્રયદોષ દુર્વાર હોગા, ક્યો કિ મોહાભાવસે સમ્યગ્જ્ઞાનાવિર્ભાવ હોતા હૈ, ઓર સમ્યગ્જ્ઞાનાવિર્ભાવ સે મોહાભાવ, તવ તો જવ તક સમ્યગ્જ્ઞાનકા આવિર્ભાવ નહીં હુઆ હૈ તવ તક કર્મોપશમનકે લિયે પુરુષ કી પ્રવૃત્તિ નહીં હો સકતી । ઇસ પ્રકારકી

“અવ મોહે પુનઃ પુનઃ” આ વાક્યાશનો ટીકાકાર આ પ્રકારે પણ અર્થ કરે છે—આ સમારમા તે તે ગતિઓમા ભટકનાગ તે અજ્ઞાની જીવને પુન પુન કર્મબંધ, તેનાથી સાસારિક દુઃખોની પ્રાપ્તિ, પુનઃ મોહમા પતન, આવા પ્રકારના ભ્રમણમા જ પડ્યુ જ રહેલુ પડે છે ॥ સૂ. ૨ ॥

મોહના અભાવથી આ જીવનતુ સમારમા પરિભ્રમણ થતું નથી પરંતુ ન્યાસુધી સમ્યગ્જ્ઞાનનો આવિર્ભાવ આ જીવને થતો નથી ત્યાં સુધી મોહનો અભાવ થઈ શકતો નથી, અને સમ્યગ્જ્ઞાનનો આવિર્ભાવ પણ ન્યાસુધી મોહનો અભાવ નથી થતો ત્યાં સુધી થતો નથી આ પ્રકારે તો આ સ્થળે ‘અન્યોન્યાશ્રય’ દોષ અવશ્ય થશે, કેમ કે મોહના અભાવથી સમ્યગ્જ્ઞાનનો આવિર્ભાવ થાય છે, અને સમ્યગ્જ્ઞાનના આવિર્ભાવથી મોહનો અભાવ થાય છે ત્યારે તો ન્યાસુધી સમ્યગ્જ્ઞાનનો આવિર્ભાવ થતો નથી ત્યાં સુધી કર્મોપશમનને માટે પુરૂષની પ્રવૃત્તિ

સૂત્ર—સસય પરિયાણઞો સસારે પરિભ્રાણ મવદ્, સસય અપરિયાણઞો સસારે અપરિભ્રાણ મવદ્ ॥ સૂ. ૩ ॥

ઘાયા—સંશયે પરિજાનતઃ સંસારઃ પરિજ્ઞાતો મવતિ, સંશયમપરિજાનતઃ સંસારોઽપરિજ્ઞાતો મવતિ ॥ ૩ ॥

ટીકા—‘સંશય’—મિત્યાદિ સંશયમુમયકાન્નિષિપયકં જ્ઞાનમિત્યર્થઃ, પરિ જાનતઃ=મવદ્મુખ્યમાનસ્ય સંસારઃ=સંશયવિપયીયૂત પરિજ્ઞાતઃ=અપરિજ્ઞાયા સ્વરૂપેણ ફલત્વેન ચ જ્ઞાત સન્ પ્રત્યાસ્યાનપરિજ્ઞાયા પરિત્યક્તો મવતિ, તયૈષ સંશયમ્ અપરિ જાનતઃ સંસારોઽપરિજ્ઞાતઃ=અપ્રત્યાસ્યાનપરિજ્ઞાપોરવિપયો મવતિ । સ યાત્ર સંશ- વ્યાજ્ઞાત્ત હોને પર સૂત્રકાર “ અર્થમે સંશય હોનેસે મી પ્રવૃત્તિ હોતી હે ” હસ પ્રકાર ઉત્તરરૂપ સૂત્ર કહતે હૈ—“ સંસય ” હત્યાદિ ।

અમયકોટિ કો સ્પર્શ કરનેવાલે જ્ઞાનકા નામ સંશય હે । તાત્પર્ય યહ હે કિ—સામાન્ય ધર્મકા પ્રત્યક્ષ હોને પર ઔર વિશેષ ધર્મ કા અપ્રત્યક્ષ હોને પર હી સંશયજ્ઞાન હોતા હે, જૈસે—યહ સ્થાણુ હે યા પુરુષ ? યહાં પર પુરુષ ઔર સ્થાણુ કા સામાન્ય ધર્મ ડંબાઈ આદિ હે । વિશેષ ધર્મ પુરુષ ક—શિર, હાથ, પૈર આદિ હૈ, તથા સ્થાણુ કે બક્તતા કોટર આદિ હૈ । દેસનેવાલે કો અમયપદાર્થગત સામાન્ય ધર્મ પ્રત્યક્ષ હે ઔર તદ્વત વિશેષ ધર્મ અપ્રત્યક્ષ હૈ, તમી વસકા જ્ઞાન પરસ્પરવિરુદ્ધ અમય કોટિ કો સ્પર્શ કરતા હે, ઔર હસલિયે બહ જ્ઞાન સંશય—સ્વરૂપ હોતા હે । હસ પ્રકાર સંશયકે સ્વરૂપ કો જાનને વાલે વ્યક્તિ કે લિયે સંશયજ્ઞાન કા વિષયમૂત યહ સમાર પરિજ્ઞાત હોતા હે—અપરિજ્ઞાતારા સ્વરૂપ પર્વ

મઠ શકતી નથી આ પ્રકારની આશા કા મનાથી સૂત્રકાર “ અર્થમા સસય કોવાધી પશુ પ્રવૃત્તિ થાય છે ” આ પ્રકારે ઉત્તરરૂપ સૂત્ર કહે છે— સસય ” ઇત્યાદિ

ઉપર કોટિને સ્પર્શ કરવાપણ જ્ઞાનનું નામ સસય છે તાત્પર્ય હે— સામાન્ય ધર્મ પ્રત્યક્ષ હોય વિશેષ ધર્મ અપ્રત્યક્ષ હોય ત્યારે સસય જ્ઞાન થાય છે જેમ—આ સ્થાણુ છે ખગર પુરુષ ? આ જગ્યાએ પુરુષ અને સ્થાણુનો સામાન્ય ધર્મ ઉપાધિ આદિ છે વિશેષ ધર્મ પુરુષને માથુ હાથ અને પગ આદિ હિ જ્યારે સ્થાણુ ને વાકાપણુ અને પોલાપણુ આદિ છે જોનારને બન્ને પદાર્થોના સામાન્ય ધર્મ પ્રત્યક્ષ છે અને તદ્વત વિશેષ ધર્મ અપ્રત્યક્ષ છે ત્યારે જ તેનું જ્ઞાન પરસ્પરવિરુદ્ધ અનેક કોટિને સ્પર્શ કરે છે અને કોઈ જ તે જ્ઞાન સસયસ્વરૂપ થાય છે આ પ્રકારે સસયના સ્વરૂપને બાણનાર અજિત માટે સસયજ્ઞાનનો સિદ્ધાન્ત આ સસય પરિજ્ઞાત થાય છે—અ-પરિજ્ઞા

યોડર્થાનર્થોભયકોટિકવિચાર એવ ગૃહ્યતે, તત્ત્વાર્થો મોક્ષસ્તત્માધન ચ રત્નત્રયમ્ । મોક્ષે સશયસમ્ભવઃ, તસ્ય પરમપદત્વેન મરુઝ્યૈર્થિકૈરભ્યુપગમાત્ । મોક્ષસાધને તુ સંશયે સત્યપિ પ્રવૃત્તિર્ભવતિ, તત્સંશયસ્ય પ્રવૃત્ત્યદ્ભવત્ । તથાહિ—‘ચારિત્રં મોક્ષ-સાધનં ભવતિ ન વા ?’ इति संशये सति तन्निवारणार्थं सद्गुरुरूपदेशश्रवणे प्रवृत्ति-लोकે दृश्यते ।

एवमनर्थः संसारस्तत्कारणं च, तत्र संसारस्य तत्कारणस्य च संशय-फलसे जाना गया यह संसार प्रत्याख्यानपरिज्ञा से परित्यक्त होता है । इसी प्रकार संशय को नहीं जाननेवाले व्यक्तिके लिये यह संसार अपरिज्ञान होता है—ज और प्रत्याख्यान-परिज्ञा का विषयभूत नहीं होता है । यहां अर्थ और अनर्थ इन उभयकोटिका विचारस्वरूप ही संशय ग्रहण किया है । यहां अर्थ-शब्दसे मोक्ष और उसके साधनभूत रत्नत्रयका ग्रहण हुआ है । मोक्षमें संशय का अभाव है, क्योंकि उसे परमपदरूप से अन्यमतानुयायियोंने भी स्वीकार किया है, परन्तु मोक्षके कारण-साधन में संशय है, तो भी यहां प्रवृत्ति होती है, क्योंकि तद्विषयक संशय उसमें प्रवृत्तिका कारण होता है । जैसे—“ चारित्र्य मोक्षका साधन है या नहीं ” इस प्रकार चारित्र्यमें मोक्ष साधनताविषय संशय होने पर उसे दूर करनेके लिये सद्गुरुके उपदेश का आश्रय करने की लोकमें प्रवृत्ति देखी जाती है ।

इसी प्रकार अनर्थ अर्थात्—संसार और उसके कारण के विषय में

દ્વારા સ્વરૂપ એવ ક્ષણથી જ્ઞાત આ સંસાર પ્રત્યાખ્યાન-પરિજ્ઞાથી પરિચક્ત થાય છે આ પ્રકારે સંશયને નહિ બાણવાવાળી વ્યક્તિ માટે આ સંસાર અપરિજ્ઞાત થાય છે—જ-પરિજ્ઞા અને પ્રત્યાખ્યાન-પરિજ્ઞાનો વિષયભૂત થતો નથી, આ સ્થળે અર્થ અને અનર્થ આ ઉભયકોટિના વિચારસ્વરૂપ જ સંશય માનવામા આવ્યો છે આ સ્થળે ‘અર્થ’ શબ્દથી મોક્ષ અને તેના સાધનભૂત રત્નત્રયનું ગ્રહણ કરવામા આવેલ છે મોક્ષમા સંશયનો અભાવ છે, કારણ કે તેને પરમપદરૂપથી બીજા મતાનુયાયિઓએ પણ સ્વીકાર કરેલ છે, પરંતુ મોક્ષના કારણો-સાધનોમા સંશય છે, તો પણ પ્રવૃત્તિ થાય છે, કારણ કે તે વિષયનો સંશય તેમા પ્રવૃત્તિનું કારણ બને છે જેવી રીતે “ ચારિત્ર મોક્ષનું સાધન છે કે નહિ ? ” આ પ્રકારે ચારિત્રમા, મોક્ષ-સાધનવિષયક સંશય થતા તેને દૂર કરવા માટે સદ્ગુરુના ઉપદેશનો આશ્રય કરવાની લોકમા પ્રવૃત્તિ જોવામા આવે છે

આ જ પ્રકારે ‘અનર્થ’ અર્થાત્ સંસાર અને તેના કારણના વિષયમા સંશય પણ

વિષયસ્વ સતિ તતા નિવૃત્તિરશ્ય મનન્તિ, અનર્થસંશયસ્ય નિવૃત્ત્યક્ત્વાત્ । ‘સંશયં પરિજાનત’ ।’ ઇત્યનેન પરિજ્ઞાનવિષયીભૂતસ્ય સંશયસ્ય—અર્થોઽનર્થો યા વિષય, તપ્—અર્થવિષયકમદ્વયસ્યાનર્થવિષયકસંશયતો મદાત્ સંશયસ્ય પ્રવૃત્તિનિવૃત્તિરુપ ફલં મિશ્રમશ્વ મવતિ । વિષયસ્ય જ્ઞાનમદ્વનિયામકતયા સંશયપરિજ્ઞાને તદીયવિષય સંશય યી ડનકી નિવૃત્તિ કા કારણ હોતા હૈ, ક્યોં કિ સંસાર ઓર ડસકે કારણોં મેં સંશય હોને પર હી ડસ ઓર પ્રવૃત્તિ હોગી । પ્રવૃત્તિ સે ડનકે ઘાસ્તવિક સ્વરૂપ કા ઘોષ હોગા । ઘોષ હોને પર ડનસે નિવૃત્તિ હોગી । હસ પ્રકાર પરસ્પરારૂપસે ઘડ સંશય નિવૃત્તિકા કારણ ઘનતા હૈ । યહી યાગ “અવમનર્થઃ સંસારસ્તસ્કારણં ચ” ઇત્યાદિ વંત્તિયોં મેં ટીકા કારને સ્પષ્ટ કી હૈ । અનર્થવિષયક સંશયકે ડસકી (અનર્થ કી) નિવૃત્તિકા કારણ હોને સે, સંસાર ઓર ડસકે કારણોંકે વિષયમેં સંશય હોને પર ડનસે નિવૃત્તિ અવશ્ય હોની હૈ ।

“સંસય પરિયાણઝો” હસ વડસે સૂત્રકાર યહ પ્રકટ કરસે હૈં કિ જ્ઞાનકે વિષયમૂળ સંશય કે અર્થ ઓર અનર્થ, યે ડો વિષય હૈં । ઘઠાં અર્થ-વિષયક સંશય કા અનર્થવિષયક સંશય સે મેદ હોનેસે ડનકે પ્રવૃત્તિ રૂપ ઓર નિવૃત્તિરૂપ ફલ પરસ્પર મિશ્ર હી હૈં, ક્યોં કિ વિષયકે જ્ઞાન મેદકા નિયામક હોનેસે મંનાય કે વિષયમૂળ વડાયોંકા પરિજ્ઞાન અવશ્યમાશી હૈ ।

તેની નિવૃત્તિનુ કારણ અને છે કારણ કે સંસાર અને તેના કારણોમાં સંશય ધવાથી જ તે વરફ પ્રવૃત્તિ થતી ની પ્રવૃત્તિથી તેના વાસ્તવિક સ્વરૂપનો ઓધ ધશે. બાધ ધવાથી તેનાથી નિવૃત્તિ થશે આ પ્રકારે પરપરાકરણથી સંશય નિવૃત્તિનુ કારણ અને છે આ બાબ વ્યવમનશ્વ સંસારસ્તસ્કારણં ચ” ઈત્યાદિ પંચિજ્ઞામાં ટીકાકારે સ્પષ્ટ કરી છે અનર્થ-વિષયક સંશય (અનર્થની) નિવૃત્તિનુ કારણ યાવ છે માટે સંસાર અને તેના કારણોના વિષયમાં સંશય ધવાથી તેનાથી નિવૃત્તિ અવશ્ય યાવ છે

“સસયં પરિયાણઝા” આ પદથી સૂત્રકાર કોવું સમજાવે છે કે—જ્ઞાનના વિષયમૂળ સંશયના અર્થ અને અનર્થ કો જે વિષય છે એનામાં અર્થ-વિષયક સંશયનો અનર્થવિષયક સંશયથી ભેદ હોવાથી એની પ્રવૃત્તિ-નિવૃત્તિ રૂપ રૂપ પરસ્પર જુદું જ છે કેમકે વિષયજ્ઞાન ભેદનો નિયામક યાવ છે માટે સંશયનુ પરિજ્ઞાન હોવાથી સંશયના વિષયમૂળ પદાર્થનુ પરિજ્ઞાન અવશ્ય બની છે

સશયવતઃ સસારઃ પરિજ્ઞાતો ભવતિ, તત્પરિજ્ઞાનાન્ન સર્વવિરતિરિતિ તા નિર્દેષ્ટુ-
માહ—‘જે છે’ ઇત્યાદિ ।

મૂલમ્—જે છે એ સાગારિયં ન સેવઈ; કદ્દુ એવમવિયાળઓ
વિદ્યા મંદસ્સ વાલયા; લદ્ધા હુરત્થા પઢિલેહા એ આગમિત્તા
આળવિજ્ઞા આળાસેવળયા એ—તિવેમિ ॥ સૂ. ૪ ॥

છાયા—યશ્ચેકઃ સ સાગારિક ન સેવતે, કૃત્વા એવમવિજ્ઞાનતો દ્વિતીયા
મન્દસ્ય વાલતા, લબ્ધાનપ્યર્થાન્ પ્રત્યુપેક્ષ્યાઽઽગમ્યાઽઽજ્ઞાપયેદનાસેવનતયેતિ
બ્રવીમિ ॥ સૂ. ૪ ॥

સન્દેહ હોતા હૈ તો વહ ઉસ સન્દેહસે ઉસકા નિર્ણય કર વહાં સે નિવૃત્ત
હોતા હૈ, ઇસ લિયે વિશિષ્ટ જ્ઞાનકે અભાવમેં સંશય સે મી જીવકી જબ
પદાર્થ કે નિર્ણય કરને કી ઓર પ્રવૃત્તિ હોતી હૈ તો ડસ પ્રકારસે અન્યોન્યા-
શ્રય દોષ નહીં આતા હૈ, ક્યોં કિ મોહકે કારણભૂત સંસારાદિક પદાર્થોં
મેં ‘યે સુખદાયી હૈં અથવા નહીં?’ ઇસ પ્રકાર કે સન્દેહ કે નિર્ણયાર્થ ઉનમેં
પ્રવૃત્તિશીલ પુરુષ કે સન્દેહ દૂર હોતે હી વિરાગપરિણતિ હો જાયગી ।
ઇસ પરિણતિકા નામ હી મોહકા અભાવ હૈ, અતઃ સૂત્રકાર કા યહ કથન
કિ ‘સંશય કો નહીં જાનનેવાલે કે લિયે સસાર અપરિજ્ઞાત હૈ ઓર ઉસે
જાનનેવાલે કે લિયે વહ પરિજ્ઞાત હૈ’ ઠીક હી હૈ ॥ સૂ. ૩ ॥

સશયજ્ઞાનવાલે કો સંસાર પરિજ્ઞાત હોતા હૈ ઓર ઉસકે પરિજ્ઞાત
હોને પર ઉસે સર્વવિરતિ કા લાભ હોતા હૈ, અતઃ ઉસ વિરતિ કો સૂત્ર-
કાર કહતે હૈ—‘જે છે’ ઇત્યાદિ ।

પ્રકારે જ્યારે મોક્ષાર્થી જીવને તેમા સદેહ થાય છે તો તે એ મદેહથી તેના
નિર્ણય કરી ત્યાથી નિવૃત્ત થાય છે આ કારણે વિશિષ્ટ જ્ઞાનના અભાવમા સશયથી
પણ જ્યારે પદાર્થનો નિર્ણય કરવા તરફ જીવની પ્રવૃત્તિ થાય છે ત્યારે ‘અન્યો
ન્યાશ્રય’ દોષ આવતો નથી કારણ કે મોહના કારણભૂત સંસારાદિક પદાર્થોમા
‘એ સુખદાયી છે કે નહિ’ એવા પ્રકારના નિર્ણય માટે તેનામા પ્રવૃત્તિશીલ
પુરુષને સદેહ દૂર થતા જ વિરાગ-પરિણતિ થઈ જશે, આ પરિણતિનું નામ જ
મોહનો અભાવ છે, માટે સૂત્રકારનું આ કથન કે ‘સશયને નહિ જાણનારા માટે
સંસાર અપરિજ્ઞાત છે અને તેને જાણવાવાળા માટે તે પરિજ્ઞાત છે’ ઠીક જ છે ॥ સૂ. ૩ ॥

સશયજ્ઞાનવાળાને સંસાર પરિજ્ઞાત થાય છે અને સંસાર પરિજ્ઞાત થવાથી
તેને સર્વવિરતિનો લાભ થાય છે, માટે એ વિરતિને સૂત્રકાર કહે છે—‘જે છે’ ઇત્યાદિ

टीका—‘यच्छेक’ इत्यादि । यं कथितं छेकः चतुर परिज्ञातविषयकदु
विषाक इत्यर्थः, स सागारिकः मैथुनं वैयमानुपतैरमरूपं न सेवते न करोति मनोवा
कायैर्मैथुनपरायणा न मवतीत्यर्थः । यच्च मोहवशेन पुरुषवेदोदयात्मैथुनं सेवते स
कृत्वा विषाय गुर्वादिभिः पृष्टे सति एव मैथुनसेवनं, अभिमानतः अन्तर्मावित्तव्य
वैतया अविज्ञापयत गुरुषु चानिवेद्यतस्तद्वपद्मानस्येत्यर्थः मन्दस्य मन्दस्य म-
विदितमैथुनकदुकफलस्य द्वितीया मैथुनसेनानादपरा मृपावाद्दस्या, यद्वा-द्वितीया
कृतपापापनोदाय पुनरकरतयोत्पाय प्रायश्चित्तानावरणरूपा, बाह्या अज्ञानता
मवति, उक्तम्—

जो कोई चतुर है, अर्थात् विषयांके कदुक विषाक का ज्ञाता है,
वह वैय, अनुभ्य और निर्यञ्जों के मैथुन का मन, वचन और काय से
सेवन करने में परायण नहीं होता है । जो मोहके बलसे अथवा पुरुष
वेद के उदयसे एकान्तमें कामसेवन करता है और गुरु आदिक के पूछने
पर अपने कृत मैथुनको छिपाता है—नहीं प्रकट करता है, मैथुन के कदुक
फलको नहीं जाननेवाले उस अज्ञके मैथुनसेवन से एक तो चतुर्थव्रत,
‘मंगजन्य दोष छगता है, और पूछे जाने पर ‘मैंने मैथुन सेवन नहीं किया
है’ इस प्रकार छिपाने से मृपावादरूप द्वितीय पाप का भी वह पात्र होता
है । अथवा कृत पाप को दूर करने के लिये ‘मैं अब इस पाप का सेवन
नहीं करूँगा’ इस प्रकार के विचारसे युक्त होकर प्रायश्चित्त नहीं लेने से
अज्ञानता का प्रसंग आता है । कहा भी है—

ये केहि चतुर छे जेहो विषयोना क वा विषाकनो आवुहार छे ते वैय,
अनुभ्य जने तिर्षयेना मैथुनने मन, वचन जने कथाधी सेवन कइयाभा पसयसु
बेतो नथी, जे भेदना वराधी अथवा पुरुष-वेदना उदयधी ज्योत्सनां काम-सेवन
करे छे जने गुरु आदिना पुछवाधी पोते करैल मैथुन-पापने तेनाधी छुपावे छे-
प्रकट करैल नथी मैथुनना कदवां हुणने न आवुहार ते अज्ञानी लवने मैथुन
सेवनधी कोक तो अनुभ्य मत-काजजन्य दोष लागे छे जने कथारैतेने पुछवाभा आवे
छे त्पारे ते जे मैथुन सेवेल नथी, आ प्रकारे छुपावे छे तेथी मृपावादरूप
जीव पापने पात्र पावु ते लागे छे अथवा करैला पापने दूर करैल भाटे हुं कवे
आप पापनुं सेवन नछि कहूं आ प्रकारेना सकय करीने पवु जे तेने
भाटे प्रायश्चित्त जगीकार करैल नथी तो तेने अज्ञानताने प्रसंग आवे छे
असु पवु छे—

“ જે સ્વલુ વિસણ સેવડ, સેવિત્તા વા ણાલોણડ, પરેણ વા પુટ્ટો નિણ્હવડ, અહવા તં પરં સણ દોસેણ વા પાવિટ્ટયરેણ વા દોસેણ ઉવલ્લિપિજ્જડ ”-ઇતિ ।

છાયા—યઃ સ્વલુ વિષય સેવતે, સેવિત્તા વા નાલોચયતિ, પરેણ વા પૃષ્ઠો નિહુતે, અથવા ત પરં સ સ્વેન વા દોષેણ પાપિષ્ઠતરેણ વા દોષેણોપલિમ્પતિ, ઇતિ ।

કિમેતેનેત્યાહ—‘લઘ્વા’—નિત્યાદિ, લઘ્વાનપિ=પ્રાપ્તાનપિ સ્વાધીનાનિત્યર્થઃ; અર્થાન્=શબ્દાદિવિષયાન, અત્ર દ્વિતીયાર્થે પ્રથમાઽઽર્પત્વાત્ ।

યદ્વા ‘હુરત્થા’ ઇતિ દેશીમાપયા ‘વહિર્દ્વા’ તેન લઘ્વાન્=વિષયાન્ ચિતા-દ્વહિર્વિદધ્યાત્, અલઘ્વાથ મનસાઽપિ ન ચિન્તયેદિતિ ભાવઃ । પ્રત્યુપેદય=નરક નિગોદાદિદુઃસ્વજનકત્વેન પર્યાલોચ્ય, તાનેય પરત્રેહ ચ કટુરુફલપ્રદતયા આગમ્ય=

“ જે સ્વલુ વિસણ સેવડ, સેવિત્તા વા ણાલોણડ, પરેણ વા પુટ્ટો નિણ્હવડ, અહવા ત પર સણ વા દોસેણ પાવિટ્ટયરેણ વા દોસેણ ઉવલ્લિપિજ્જડ ” ઇતિ ।

જો વિષયસેવન કરતા હૈ; સેવન કરને પર ઉસકી આલોચના નહીં કરતા હૈ, દૂસરે—ગુર્વાદિકોં કે પૂછને પર ઉસે છિપાતા હૈ, વહ અપને પાપિષ્ઠતર (ગુરુતર) દોષ સે સ્વયં ઉપલિસ હોતા હૈ ।

હસ લિયે સૂત્રકાર કહતે હૈ કિ મોક્ષાભલાપી કા કર્તવ્ય હૈ કિ વહ પ્રાપ્ત ભી ઉન શબ્દાદિક વિષયોં કા યહ વિચાર કર ત્યાગ કરે કિ—ઇન કા વિપાક જીવ કો નરકનિગોદાદિકકે દુઃસ્વો કા જનક હૈ, તથા ઇનકે સેવનકર્તા, હસ લોક ઔર પરલોક, દોનોં લોકોં મે ભયંકર દુઃસ્વોં કો ભોગતે હૈ । જિસ પ્રકાર યહ સ્વય ઉનકા કટુક વિપાક જાન કર ઉનસે

“ જે સ્વલુ વિસણ સેવડ સેવિત્તા વા ણાલોણડ, પરેણ વા પુટ્ટો નિણ્હવડ, અહવા તં પરં સણ દોસેણ વા પાવિટ્ટયરેણ વા દોસેણ ઉવલ્લિપિજ્જડ ”-ઇતિ ।

જે વિષયનુ સેવન કરે છે, સેવન કરવા છતાં એની આલોચના કરતો નથી, બીજુ શુરૂ આદિના પુછવા છતાં છુપાવે છે તે ચોતાના પાપિષ્ઠ તર (ગુરુતર) દોષથી ચોતે ઉપલિસ થાય છે

આ કારણે સૂત્રકાર કહે છે કે—મોક્ષાર્થીજનનુ એ કર્તવ્ય છે કે તે પ્રાપ્ત પણ શબ્દાદિ વિષયોના આ પ્રકારે વિચાર કરી ત્યાગ કરે કે શબ્દાદિ વિષયોના વિપાક જીવને માટે નરક-નિગોદાદિક દુઃખોનું કારણ છે અને તેનું સેવન કરનાર આલોક અને પરલોકમાં ભય કરે હોય ભોગવે છે જે પ્રકારે તે ચોતે તેના કટુકા વિપાક જાણીને તેનાથી વિરક્ત થાય છે તે જ પ્રકારે તે બીજા

आत्मा मन्यान्-स्थाविरिक्तान् जनान् अनासेवनयया ' मैथुनमनासेवनीयम् ' इत्यादिरूपेण भाष्यापयेत्-तीर्थकराद्यामवधार्योपदिशत् । स्वयमपि तस्माद्विरमेदि त्यर्थाऽपि । इति प्रथमीत्यधिकारसमाप्त्यर्थः ॥ सू० ४ ॥

अन्यदप्याह—' पासह ' इत्यादि ।

मूकम्—पासह एगे रूपेसु गिद्धे परिणिज्जमाणे । इत्थं फासे पुणो पुणो, आवन्ती केयावन्ती लोयसि आरभजीवी, एएसु चेव आरभजीवी । इत्थंवि घाले परिपञ्चमाणे रमइ पावेहिं कम्मेहिं, अत्तरणे स्तरणति मज्जमाणे, इहमेगेसि एगचरिया भवइ । से घट्टकोहे बट्टमाणे बट्टमाये बट्टलोभे बट्टुरए बट्टुनडे बट्टुसडे बट्टु सकप्पे आसवसक्की पलिउच्छन्ने उट्टियवाए पवयमाणे, ' मा मे केइ अदक्खू ' अघ्नाणपमापदोसेण सयय मूढे भम्म नामि जाणइ, अहा पयामाणव । कम्मकोविआ जे अणुवरया अविज्जाए पलिमुक्खमाहु, आवहमेव अणुपरियट्ठति—त्तिथोमि ॥ सू० ५ ॥

छाया—पश्यत एकान् रूपेषु सुदान् परिणीयमानान् । अत्र स्पर्शान् पुन पुनः, यावन्तं कियन्तां ताके आरम्भगीणिन, पतेज्जेष आरम्भगीणिन । अत्रापि बावः परिपच्यमानो रमत पापेषु कर्मसु, अन्तरणं धग्णमिति मन्यमानः, इहैकेया मकचर्या भवति । ॥ बट्टुकाया बट्टुमाना बट्टुमायो बट्टुलामा बट्टुरमा (बट्टुरतो) बट्टुनगे बट्टुसठा बट्टुसकप्प आसवमक्तिः पम्भिताएप्पल्लस उत्पितवाइ भवदन्, ' मा मां केउप्पट्ठाम् ' अघ्नानपमाददापेण सततं मूढो धर्मं नाभिजानाति, मातां प्रजा मानव ! कर्मकोविदा यज्जुपरता अविद्यया परिमासमाहु, आपर्तमेवानुपरिवर्तन्ते, इति प्रथमि ॥ सू० १ ॥

विरत होता है उसी प्रकार दूसर जीवों को भी " ये मैथुनादि विषय सेवन करने योग्य नहीं हैं " इस प्रकार उनसे विरक्त होनेका उपदेश देता है । " इति प्रथमि " इस प्रकार यह विषय जैसा मैंने अगमान् के मुख्य से सुना है वैसा ही है जम्बू ! तुम से कहा है ॥ सू० ४ ॥

और भी कहत है—' पासह ' इत्यादि—

छायेने पण " मैथुनादि विषयो सेवन करना योग्य नहीं " आ प्रकारे तेनाधी विरक्त भवानो उपदेश आये " इति प्रथमि " आ प्रकारे आ विषय के प्रकारे मे अत्रवानना मुझेभी नाजान्छे ते प्रकारे न देखाऊँ ! तमने कहत छे ॥ सू० ४ ॥

श्रीधी पणु कहे छे— पासह इत्यादि ।

“ જે સ્વલુ વિસણ સેવઈ, સેવિત્તા વા ણાલોણ્ઠ, પરેણ વા પુઢો નિળ્હવઈ, અહવા તં પરં સણ દોસેણ વા પાવિઢ્યરેણ વા દોસેણ ઉવલિંપિજ્જઈ ”-ઈતિ ।

છાયા—યઃ સ્વલુ વિપયં સેવતે, સેવિત્વા વા નાલોચયતિ, પરેણ વા પૃષ્ઠો નિહુતે, અથવા તં પરં સ સ્વેન વા દોષેણ પાપિષ્ઠતરેણ વા દોષેણોપલિમ્પતિ, ઇતિ ।

ક્રિમેતેનેત્યાહ—‘લઘ્યા’-નિત્યાદિ, લઘ્યાનપિ=પ્રાપ્તાનપિ સ્વાધીનાનિત્યર્થઃ, અર્થાન્=શબ્દાદિવિષયાન્, અત્ર દ્વિતીયાર્થે પ્રથમાઽઽર્પત્વાત્ ।

યદ્વા ‘હુરત્યા’ ઇતિ દેશીમાપયા ‘વહિર્દ્વા’ તેન લઘ્યાન્=ત્રિષયાન્ ચિત્તા-દ્વહિર્વિદ્ય્યાત્, અલઘ્યાંશ્ચ મનસાઽપિ ન ચિન્તયેદિતિ માવઃ । પ્રત્યુપેક્ષ્ય=નરક નિગોદાદિદુઃસ્વજનકત્વેન પર્યાલોચ્ય, તાનેવ પરત્રેહ ચ કટુકફલપ્રદતયા આગમ્ય=

“ જે સ્વલુ વિસણ સેવઈ, સેવિત્તા વા ણાલોણ્ઠ, પરેણ વા પુઢો નિળ્હવઈ, અહવા ત પર સણ વા દોસેણ પાવિઢ્યરેણ વા દોસેણ ઉવલિંપિજ્જઈ ” ઇતિ ।

જો વિષયસેવન કરતા હૈ; સેવન કરને પર ઉસકી આલોચના નહીં કરતા હૈ, દૂસરે-ગુર્વાદિકોં કે પૂછને પર ઉસે છિપાતા હૈ, વહ અપને પાપિષ્ઠતર (ગુરુતર) દોષ સે સ્વયં ઉપલિસ હોતા હૈ ।

હસ લિયે સૂત્રકાર કહતે હૈ કિ મોક્ષાર્થભલાપી કા કર્તવ્ય હૈ કિ વહ પ્રાપ્ત મોં ઉન શબ્દાદિક વિષયોં કા યહ વિચાર કર ત્યાગ કરે કિ-ઇન કા વિપાક જીવ કો નરકનિગોદાદિકકે દુઃસ્વો કા જનક હૈ, તથા ઇનકે સેવનકર્તા, હસ લોક ઓર પરલોક, દોનોં લોકોં મેં ભયંકર દુઃસ્વોં કો મોગતે હૈ । જિસ પ્રકાર યહ સ્વય ઉનકા કટુક વિપાક જાન કર ઉનસે

“ જે સ્વલુ વિસણ સેવઈ સેવિત્તા વા ણાલોણ્ઠ, પરેણ વા પુઢો નિળ્હવઈ, અહવા તં પરં સણ દોસેણ વા પાવિઢ્યરેણ વા દોસેણ ઉવલિંપિજ્જઈ ”-ઈતિ ।

જે વિષયનુ સેવન કરે છે, સેવન કરવા છતાં એની આલોચના કરતો નથી, બીજુ ગુરુ આદિના પુછવા છતાં છુપાવે છે તે પોતાના પાપિષ્ઠ તર (ગુરુતર) દોષથી પોતે ઉપલિપ્ત થાય છે

આ કારણે સૂત્રકાર કહે છે કે-મોક્ષાર્થીજનનુ એ કર્તવ્ય છે કે તે પ્રાપ્ત પણ શબ્દાદિ વિષયોના આ પ્રકારે વિચાર કરી ત્યાગ કરે કે શબ્દાદિ વિષયોના વિપાક જીવને માટે નરક-નિગોદાદિક કુખોનું કારણ છે અને તેનુ સેવન કરનાર આલોક અને પરલોકમા ભયકર કુખો ભોગવે છે જે પ્રકારે તે પોતે તેના કડવા વિપાક બાણીને તેનાથી વિરક્ત થાય છે તે જ પ્રકારે તે બીજા

ज्ञात्वा मन्थान्=स्वाविरिक्तान् जनान् मनासेवनतया 'मैथुनमनासेवनीयम्'
इत्यादिरूपेण आश्वासयत्=तीर्थंकराद्यामवधार्योपदिशेत् । स्वयमपि तस्माद्विरमेदि
त्यर्थोऽपि । इति प्रथमीतीत्यधिकारसमाप्तिर्यः ॥ सू० ४ ॥

अन्यदप्याह—'पासह' इत्यादि ।

मूकम्—पासह एगे रूवेसु गिद्धे परिणिज्जमाने । इत्थ फासे
पुणो पुणो, आवन्ती केयावन्ती लोयसि आरमजीवी, एएसु
चेव आरमजीवी । इत्थवि घाले परिपक्षमाणे रमइ पावेहिं कम्मेहिं,
असरणे सरणति मल्लमाणे, इहमेगेसि एगवरिया भवइ । से
बहुकोहे बहुमाणे बहुमाये बहुलोमे बहुरए थहुनडे थहुसडे बहु
संकप्ये आसवसक्की पलिउच्छन्ने उट्टियवाय पवयमाणे, 'मा मे
केइ अदक्खू' अज्ञानपमायदोसेण सयय मूढे धम्म नामि
जाणइ, अहो पयामाणव ! कम्मकोविआ जे अणुवरया अविज्जाए
पलिमुक्खमाहु, आवहमेव अणुपरियट्ठति—त्तिघोमि ॥ सू० ५ ॥

छाया—यस्मै एकान् रूपेषु सुदान् परिणीयमानान् । अत्र स्पर्शान् पुन
पुनः, यावन्तं कियन्तो मीके आरम्भजीविनः, पतेज्जेष आरम्भजीविनः । अप्रापि
बाहः परिपच्यमानो रमत पापेषु कर्मसु, अजरणं शरणमिति मन्यमानः, इहैकेपा
मेक्कपा भवति । स बहुकाया बहुमानां बहुमायो बहुलामा बहुरमा (बहुरतो)
बहुनटो बहुशठा बहुसंकल्प आसवसक्तिः पन्तितावच्छम उत्पित्तचदं प्रबद्धं, 'मा
मां केऽप्युत्तमसु' अज्ञानप्रमादवापेण सतत मूढो धर्मं नामिजानाति, आतां प्रजा
मानव ! कर्मकोविदा येऽनुपरता अविद्यया परिमाधमाहु, आवहमेवानुपरिवर्तन्ते,
इति प्रथमि ॥ सू० ५ ॥

धिरत होता है उसी प्रकार दूसरे जीवों को भी "ये मैथुनादि विषय
सेवन करने योग्य नहीं हैं" इस प्रकार उनसे धिरत्त होनेका उपदेश
देता है । "इति प्रथमि" इस प्रकार यह विषय जैसा मैंने भगवान् के मुख
से सुना है वैसा ही है जम्बू ! तुम से कहा है ॥ सू० ४ ॥

और भी कहते हैं—'पासह' इत्यादि—

हृद्योने पण "मैथुनादि विषयो सेवन करना योग्य नहीं" का प्रकार देनाभी
निरस्त भवान् उपदेश आये इति प्रथमि" का प्रकार आ विषय के प्रकार
मे भगवान् मुझे भी ज्ञातवांछते प्रकार के दे जम्बू ! तमने कहेंगे ॥ सू० ४ ॥

श्रीभी पण कहेंगे—पासह इत्यादि

ટીકા—‘પદ્યત’ ઇત્યાદિ । હે મન્યજીવા ! યૂયં રૂપેણ=શુક્લાદિપુ ચક્ષુ-
રિન્દ્રિયપ્રત્યક્ષવિષયેણ, વહુવચનનિર્દેશેન શબ્દાદિપુ=ગન્દ-ગન્ધ-રસ-સ્પર્શેણ કટુક-

હે મન્ય ! દેવો યે કિતનેક સસારી જીવ, ચક્ષુ-ઇન્દ્રિયકે વિષ-
યભૂત શુક્લાદિ રૂપોં મેં, તથા અન્ય ઇન્દ્રિયોંકે વિષયભૂત ગન્દ, ગન્ધ,
રસ ઓર સ્પર્શરૂપ વિષયોં મેં કિ જિનકા સેવન ઇન જીવોં કો પરિ-
ણામમેં કટુક ફલ પ્રદાતા હોતા હૈં ઁનમેં કૈસે મૂર્ચ્છિત હો રહે હૈં ।
ઇન્દ્રિયોંકે વિષયોં મેં લુબ્ધ યે પ્રાણી ઁન ૨ વિષયોં કો પ્રાપ્ત કરને કી
ઓર જીતી હુઈ ઇન્દ્રિયોં દ્વારા વિષયોંકે સન્મુખ ઓર સંસારકે સન્મુખ
હોતે રહતે હૈં ।

ભાવાર્થ—ઇન્દ્રિયોં મેં આસક્ત પ્રાણી ઇન્દ્રિયોંકે વિષયોં મેં અધીન
બન કર ઁનકે સેવનજન્ય પરિણામ કા કુછ ખી વિચાર ન કરકે
નિરન્તર ઁન્હોં મેં આસક્ત હોતા રહતા હૈં । ઁસે ઇસ વાત કા ભાન
હી નહીં હોતા કિ ઇન વિષયોંકે સેવનસે ઇન્દ્રિયોંકી તૃપ્તિ નહીં
હોગી । વિષયાભિલાષા ઇન્દ્રિયોં કો અપને ૨ વિષય કી ઓર હી
અધિકાધિક રૂપમેં આકૃષ્ટ કરતી રહતી હૈં । ઇસ પરિણતિ સે વહ અપને
સંસાર કી વૃદ્ધિ હી કરતા હૈં । ઁક ૨ ઇન્દ્રિયકે વિષય કો સેવન કરને
વાલે પ્રાણિયોં કી વહ દુર્દશા અપને નયનોં સે નિહારતા હૈં ફિર ખી અપને
કો સુરક્ષિત માન રહા હૈં, યહી વિષયોંકે સેવન કી વલવત્તા હૈં । વહ

હે મન્ય ! જો તો ખરે, આ કેટલાક સસારી જીવો ચક્ષુ ઇન્દ્રિયના વિષ-
યભૂત શુક્લાદિ રૂપોમા તથા બીજા ઇન્દ્રિયોના વિષયભૂત શબ્દ, ગન્ધ, રસ, અને
સ્પર્શાદિક વિષયોમા કે જેણુ સેવન તે જીવોને પરિણામમા કટુક ફળ આપવા
વાળુ નિવડે છે એમા કેવા મૂર્ચ્છિત થઈ રહેલ છે ઇન્દ્રિયોના વિષયોમા લુબ્ધ તે
પ્રાણી તે તે વિષયોને પ્રાપ્ત કરવા તરફ ઢળતી ઇન્દ્રિયો દ્વારા વિષયોની સામે અને
સસારની તરફ ખેંચાઈ ગયેલ છે

ભાવાર્થ—ઇન્દ્રિયોમા આસક્ત પ્રાણી ઇન્દ્રિયોના વિષયોને આધીન બની
તેના સેવનના પરિણામનો કાંઈ પણ વિચાર કર્યા વગર હર-હ મેશ તેમા આસક્ત
બની રહે છે, તેને એ વાતનુ ભાન થતું નથી કે તેવા વિષયોના સેવનથી ઇન્દ્રિ-
યોની તૃપ્તિ થવાની નથી વિષયોની અભિલાષા ઇન્દ્રિયોને પોતાના વિષય તરફ
અધિકાધિક રૂપમા ખેંચતી રહે છે આ પરિણતિથી તે પોતાના સસારની વૃદ્ધિ
જ કરે છે એક એક ઇન્દ્રિયના વિષયનુ સેવન કરનાર પ્રાણીની દુર્દશા તે
પોતાની આખે જુઓ છે છતાં પણ પોતાને સુરક્ષિત માને છે, એ જ વિષયોના

તરબિપાકજનકેયુ એકાન્ત કાંધિત્વ મુદ્દાન્-મૂર્ચ્છિતાન્ પરિણીયમાનાન્-પરિ-સર્વથો
નીયમાનાન્-ઇન્દ્રિયૈર્વિપયસમ્મુલ્લે સંસારસમ્મુલ્લે પરમ્પ્ર નરકનિગોદાદિપુ યા પ્રાપ્ય
દેવ્યતા હૈ કિ (૧) સ્પર્શન-ઇન્દ્રિય કા મોઢી મત્ત ગજરાજ મ્મહે મેં ગિર કર
અપને પ્યારે જીવન કા નાશ કર દેતા હૈ, (૨) રમના-ઇન્દ્રિય કા કામી મત્સ્ય
કટિમેં લગે હુદ્દ માંસ કી અમિલાપા મેં પક કર અપન પ્રાણોં કો મ્લો દેતા
હૈ, (૩) ઘ્રાણ-ઇન્દ્રિય કા વચીમૂલ યના વિચારા મ્મર કાલકે ગાલમેં પક
જાતા હૈ। (૪) શ્ણુરિન્દ્રિય કા લોલુપી પર્વગ અપને પ્રાણોં કો દીપક કી લો મેં
પક કર નષ્ટ કર દેતા હૈ, (૫) કર્ણ-ઇન્દ્રિય કે વિપય કા લોમી મૃગ વચિકોં
ઠારા અપને મોઢે-માઢે જીવન કા ઉસ્મર્ગ કર દેતા હૈ। પરન્તુ યદ્ સપ
કુદ્ અપની આંખોં સે દેવ્યતે હુદ્દ મી પાંચોં ઇન્દ્રિયોં કે વિપયોં મેં મત્ત
હુદ્દા યદ્ પ્રાણી ફિર મી નહીં ચેતના, યહી ષઢી વિચિત્રતા હૈ। વિપ
યાસક જીવોં કી વિપયોં કી ઓર પ્રવૃત્તિ હોનેસે સંસારમેં ઉનકા પતન
તો હોતા હી હૈ, પરન્તુ વે પરમથમેં મી નરકનિગોદાદિકમેં જા કર
નિવાસ કરતે હૈ। યથાપિ “સંસારસમ્મુલ્લે” હમ પદસે હી નરક-નિગો
દાદિકમેં ઉનકા પતન મિદ્દ હોતા હૈ, ફિર મી “પરમ્પ્ર નરકનિગોદા-
દિપુ” યદ્ જો વાક્ય પૃથક્ રૂપસે દિયા હૈ ઉમકા અભિપ્રાય યદ્ હૈ
ફિ અજ્ઞાની જીવ અથવા ચાર્વાક (નાસ્તિક) જેસે મૌનિકવાદી પ્રત્યક્ષ

સેવનની બગવત્તા છે તે જુઓ છે કે-(૧) રમના-ઇન્દ્રિયમા મત્ત બનેલો ગજરાજ
જાદ્યમા પડી પોતાના ખ્યાલ જીવનનો નાશ કરી દે છે (૨) રમના-ઇન્દ્રિયનુ
લોલુપી માછલુ મલ (કાટા)મા લાનેલ માચની અભિલાષમા પડી પોતાના
પ્રાણ પ્રેમ જેસે છે (૩) ઘ્રાણ-ઇન્દ્રિયને વચામૂલ બનેલ ભમરો કાળમા ગાલમા
પડી બલ છે (૪) શ્ણુરિન્દ્રિયનો લાલુપ પતંગીધો શીપકશિખામા પડી
પોતાના પ્રાણ ન્યોપાસર કરી દે છે (૫) કર્ણ-ઇન્દ્રિયના વિપયનો લોમી મૃગ
ગ્રિકારકાર પોતાના ભોગ જીવનનો નાશ વહેરી લે છે પરન્તુ આ બધું પોતાની
સચી આખે બેતો થકો પણ પાંચો ઇન્દ્રિયોના વિપયોમા મત્ત બનેલ આ માનવ પ્રાણી
ચેતતો નથી આજ મહાન વિચિત્રતા છે વિપયાસક જીવોની વિપયો તરફ પ્રવૃત્તિ
હોવાને લઈ સંસારમા તેનું પતન થતું જ રહે છે પરન્તુ પરમવર્મા પણ તેને નરક-
નિગોદાદિકમા નિવાસ કરવો પડે છે. બે કે ‘સંસારસમ્મુલ્લે’ આ પદથી જ નરક-
નિગોદાદિકમા તેનું પતન મિદ્દ થાય છે તે પણ “પરમ્પ્ર નરકનિગોદાદિપુ” આ જે
વાક્ય પૃથક્ રૂપે આપેલ છે તેનો અભિપ્રાય બે છે કે અજ્ઞાની જીવ અથવા
ચાર્વાક (નાસ્તિક) જેવા મૌનિકવાદી પ્રવચ્ચ દૂષ્યમાન આ મનુષ્ય અને તિથ્ય

માણાન્, અસ્મિન્નપિ લોકે મહામોહાન્ પારદારિકાદીન્ આક્રોગવધવન્ધનપ્રહરણાદિ-
ભિર્દુઃખૈર્વાહ્યમાનાન્, અથવા—વાહ્યરતિપુ સંસક્તાન્, વધ્યસ્થાને વધાર્થં પરિણીયમાનાન્,
યદ્વા બુધ્યમાનાન્ રાગદ્વેષવદ્ધાન્ વિપયસ્રોતોભિસ્તત્ર તત્ર પરિણીયમાનાન્, અથવા
દૃશ્યમાન ઇસ મનુષ્ય ઓર તિર્યચ્ચગતિકો હી સસાર સમજ્ઞ રહે હૈં ઓર
इनके दुःखों को ही दुःख मान रहे हैं, परन्तु हमें यह समझाना है कि
तुम्हारी मान्यता से भी अधिक संसार और दुःखराशि है । अपने हाथ
से सबको साढेનીન हाथ સમજના जिस प्रकार गलत है उसी प्रकार
अपनी मान्यतानुसार ही ससार एवं दुःख समझना भी गलत है । यहां
पर दुःखों का वर्णन चल रहा है, अतः उन्हीं की प्रधानता प्रकट करने
के लिये नरकनिगोदादिक गतियों का यहां पर निर्देश किया गया है ।
नरकों के दुःखों से भी बढ़कर निगोद गति के दुःख होते हैं, जिन्हें
વિષયાસક્ત જીવ પ્રાપ્ત કરતે હૈં—સહન કરતે હૈં ।

इस लोक मे भी परदार-आसक्त महामोही जीव आक्रोश, वध,
वन्धन, और प्रहरणादि—(शस्त्रादि)—जन्य दुःखों को तो प्राप्त करते हैं,
साथमें उन्हें फांसी भी लटकना पड़ता है ।

अथवा—जानकारभी विषयों में आसक्त प्राणी राग और द्वेष से बद्ध
हो कर विषयस्रोतोंद्वारा उनर विषयों की ओर झुकते रहते हैं । अथवा—वे

ગતિને જ સમાર સમજે છે અને એના હુ ખોને જ હુ.ખ માને છે, પરંતુ
અમારૂં વક્તવ્ય એવું છે કે તેમની માન્યતાથી પણ અધિક સસાર તથા
દુઃખરાશિ છે પોતાના હાથથી જધાને સાડાત્રણ (૩૧) હાથ સમજવા, એ જે રીતે ભૂલ-
ભર્યું છે તેવા પ્રકારે પોતાની માન્યતાનુસાર જ સસાર અને હુ ખ સમજવા પણ
ભૂલ ભરેલ છે, આ સ્થળે દુ ખોનું વર્ણન ચાલે છે માટે તેની પ્રધાનતા પ્રગટ
કરવા નરકનિગોદાદિક ગતિઓનો આ જગ્યાએ નિર્દેશ કરેલ છે નરકોના
દુ ખાથી પણ વધારે નિગોદગતિના હુ ખા છે જેને વિષયાસક્ત જીવ પ્રાપ્ત કરે
છે—સહન કરે છે

આ લોકમા પણ પરસ્ત્રી-આસક્ત જેવા મહામોહી જીવ હુ ખ, વધ, બંધન
અને શસ્ત્રાદિજન્ય હુ ખોને તો પ્રાપ્ત કરે જ છે તેમ જ તેને ફાંસી પર પણ
લટકવું પડે છે

અથવા જાણકાર પણ વિષયોમા આસક્ત પ્રાણી રાગ અને દ્વેષથી જ ધાઈને
વિષયસ્રોતોદ્વારા તે તે વિષયોની તરફ ખેંચાતો રહે છે અથવા તે વિષયએવનકર્મો

કર્મણા સંસારસમુદ્રે પરિણીયમાનાન્ પશ્યતઃપ્રેસાન્ધમ્ । તે ચ વિપયવિપમૂર્ષિષ્ઠતા
 ક્ષિમાસાદ્યન્તીત્યાહ—‘અગ્રે’-ત્યાદિ, અગ્ર=હ સસારે इन्द्रियलोलुपाः स्पर्शान्-विप
 यासेवनजन्यदुःखानि पुन पुनः समन्त इत्यर्थः, आरम्भे वा प्रवर्तते । के नमन्ते ?
 इत्याह—‘याचन्त’ इत्यादि, श्लोके=सावधव्यापारप्रवृत्ते गृहस्थलोक याचन्त
 कियन्तः आरम्भनीयिनः=सावधव्यापारपरायणा गृहस्था नरकनिगोदादौ नीति पूर्वो
 क्तानि दुःखान्पनुमयेयुः । ये च गृहस्थाभिता द्रव्यभिज्ञिनस्तपि दुःखभाजो भव
 न्तीत्याह—‘एतेष्वेव’-त्यादि, एतेष्वेव=सावधव्यापारतत्परं गृहस्थेष्वेव, आर
 म्भनीयिनः=आरम्भेन=असंयमन जीवितुं शीघ्रं यथा त आरम्भजीविन =सवार्थ

વિપયસેવન-કર્મી દ્વારા હસ સસારમમુદ્રમે ધકેલ દિયે જાતે હે । વિપયોમે
 મૂર્ષિષ્ઠત પ્રાણી કયા પ્રાપ્ત કરતે હે ? હમ વિપયકો પ્રકર કરને કે લિયે
 સુત્રકાર કહતે હે—‘અગ્રે’-ત્યાદિ, વિપયલંપટ માનવ હસ સંસારમે વિપય
 સેવનજન્ય દુઃખોકો પારંપાર પ્રાપ્ત કરતે રહતે હે, અથવા આરંભાદિકોમે
 પ્રવૃત્તિ કરતે રહતે હે । ગૃહસ્થ-જીવન, યિમા સાવધ વ્યાપારોમે પ્રવૃત્તિ
 કિયે પણ મહી સક્તા, હમ લિયે સુત્રકાર કહતે હે કિ સાવધ વ્યાપારોમે
 પ્રવૃત્તિશાલી ગૃહસ્થજન હોતે હે, અતઃ હનમે જિતને મી આરંભજીવી-
 સાવધ વ્યાપારોકો કરનેમે તમે કુપ ગૃહસ્થજન હે કે પૂર્વોક્ત નરક
 નિગોદાદિકો કે દુઃખોકા અનુભવ કરનેપાલે હોતે હે । તયા ગૃહસ્થો કે
 આમિત જો મી દ્રવ્યલિંગી માધુ હોતે હે કે મી દુઃખોકો પ્રાપ્ત કરતે હે
 યહ વાત “એતેષ્વેવ આરમ્ભજીવિન” હસ સુત્રાણ સે પ્રતિપાદિત કિયા
 હે । આરંભ-અસંયમ સે જીનેકા જિનકા સ્વભાવ હોતા હે કે આરંભ-

દ્વારા આ સંસારસમુદ્રમા ધકેલવામા આવે છે વિપયેમા મુગ્ધ બનેલ પ્રાણી
 શું પ્રાપ્ત કરે છે ? આ વિપયને પ્રગટ કરવા માટે સુત્રકાર કહે છે—અગ્ર
 ઈત્યાદિ વિપય-સંપન્નમનુષ્ય આ સંસારમા વિપય-સેવન-જન્ય દુઃખને વાર
 વાર પ્રાપ્ત કરતો રહે છે અથવા આરંભ આદિમા પ્રવૃત્તિ કરતો રહે છે ગૃહસ્થ-
 જીવન નગર સાવધ વ્યાપારેમા પ્રવૃત્તિ કરે ત્યાહતું નથી, આ માટે સુત્રકાર
 કહે છે કે—સાવધ વ્યાપારેમા પ્રવૃત્તિશાળી ગૃહસ્થ માણસો હોય છે મોટે આમા
 નેટલા પશુ આરંભજીવી સાવધ વ્યાપાર કરવામાં આવેલ ગૃહસ્થ માણસો છે
 તેઓ પૂર્વજા નરક-નિગોદાદિના દુઃખોના અનુભવ કરવાવાળા હોય છે તેમજ
 ગૃહસ્થોના આમિત કે દ્રવ્યલિંગી માધુ હોય છે તેઓ પશુ કુખોને પ્રાપ્ત કરે
 છે આ વાત “એતેષ્વેવ આરમ્ભજીવિન” આ સુત્રાશયી પ્રતિપાદિત કરવામાં
 આવેલ છે આરંભ-અસંયમથી જીવવાનો જેનો સ્વભાવ છે એ આરંભજીવી છે

સ્વેન સાક નીચમાનગૃહસ્થૈઃ સમ્પાદિતેનાધાકર્માદિદોષદૂષિતેનાશનેનોપજીવિનો
દણ્ડિશાક્યાદયો ગૃહસ્થનિશ્રયા વિહારિણોઽવસન્નપાર્શ્વસ્થાદયો વા મુનિવેષધારિણો
દ્રવ્યલિહ્ગિનો વા પઢ્જીવનિકાયોપમર્દકાઃ સમુત્પદ્યન્તે ।

યદ્વા—એતેષ્વેવ=પઢ્જીવનિકાયેષ્વેવ આરમ્ભજીવિનો જાયન્તે । યથ સમ્ય-
ગ્દર્શનાદિકમુપલભ્યાપિ વિપરીતપરિણતેઃ સાફલ્યમનવાપ્ય ચારિત્રાન્તરાયોદયા-
ત્પુનરપિ સાવધાનુષ્ઠાયાી ભવતીતિ દર્શયતિ—

‘અત્રાપી’—ત્યાદિ, અત્રાપિ=આર્હતસયમાભ્યુપગમેઽપિ બાલઃ=અવિદિતતત્ક-
રુકુલઃ પરિપચ્યમાન=વિપયતુળ્ળયા પરિપીડ્યમાનઃ, યદ્વા ‘પરિતપ્યમાનઃ’
જીવી હૈં । સાવધ વ્યાપાર મેં તત્પર ઇન ગૃહસ્થોં મેં હી ચે ષઢ્જીવનિ-
કાય કે ઉપમર્દક આરંભજીવી, અર્થાત્—સેવાકે લિયે અપને સાથ જો
ગૃહસ્થોં કો રખતે હૈં તથા અનેકે દ્વારા નિર્માપિત ઓર આધાકર્માદિ દોષોં
સે દૂષિત આહાર સે જો જીતે હૈં એસે દણ્ડિશાક્યાદિ સાધુ, અથવા
ગૃહસ્થોં કી નિશ્રા મેં વિહાર કરનેવાલે અવસન્ન-પાસત્યાદિક, અથવા-
મુનિવેષધારી દ્રવ્યલિહ્ગી સાધુ ઉત્પન્ન હોતે હૈં । અથવા—ચે આરમ્ભ-
જીવી દણ્ડિશાક્યાદિક ષઢ્જીવનિકાયોં મેં હી ઉત્પન્ન હોતે હૈં ।
જો સમ્યગ્દર્શનાદિકકો પ્રાપ્ત કર કે બી અપની વિપરીત પરિણતિ
સે ઉસકી સફલતા કો ન પા કર પશ્ચાત્ ચારિત્ર-અન્તરાય (ચારિત્ર-
મોહનીય) કે ઉદય સે પુનરપિ સાવધ વ્યાપારોં કો કરનેવાલા હોતા હૈં,
ઉસકો “અત્રાપિ બાલઃ પરિપચ્યમાનો રમતે પાપેષુ કર્મસુ અશરણં
શરણમિતિ મન્યમાનઃ” હસ સૂત્રાંશ સે સૂત્રકાર પ્રદર્શિત કરતે હૈં કિ-

સાવધ વ્યાપારમા તત્પર આ ગૃહસ્થોમા જ ષઢ્જીવનિકાયના ઉપમર્દક
આરભજીવી, અર્થાત્ એવા માટે પોતાની સાથે જે ગૃહસ્થોને રાખે છે તથા
એના દ્વારા નિર્માપિત અને આધાકર્માદિક દોષથી દૂષિત આહારથી જે જીવે છે
એવા ઠડી શાક્યાદિ સાધુ અથવા ગૃહસ્થોની નિશ્રામા વિહાર કરવાવાળા અવ-
સન્ન-પાસત્યાદિક અથવા મુનિવેષધારી દ્રવ્યલિહ્ગી સાધુ ઉત્પન્ન થાય છે અથવા—
આ આરભજીવી ઠડી, શાક્યાદિ ષઢ્જીવનિકાયોમા જ ઉત્પન્ન થાય છે

જે સમ્યગ્દર્શનાદિકને પ્રાપ્ત કરીને પણ પોતાની વિપરીત પરિણતિથી
તેની સફળતાને પ્રાપ્ત ન કરતા પાછળથી ચારિત્રાતરાય (ચારિત્રમોહનીય)
ના ઉદયથી પુન સાવધ વ્યાપારના કરવાવાળા બને છે સૂત્રકાર—“અત્રાપિ બાલઃ
પરિપચ્યમાનો રમતે પાપેષુ કર્મસુ અશરણં મે શરણમિતિ મન્યમાનઃ” આ સૂત્રાશથી
તેવા જીવોનુ પ્રદર્શન કરે છે કે—દીક્ષાને અગીકાર કરીને પણ જે સાવધ

શિત્ચાયા; પરિતપ્યમાન=શ્લેષાપાપાવનિવ્યાધિગમે શ્વેદવિયોગે યા તદ્વ્યાકુલતયા
 સર્વતોડન્તર્મદિર્વા તપ્યમાન; એવમ્ અશરણ=પચનપાચનાદિસાધધારણમથ શરણ=
 મેયસ્કરમસ્તીતિ મન્યમાન;=બુધ્યમાનો વિષયસ્પૃહામવનિકાતિરોહિતસમ્પર્કન
 સન્ તથૈવાસકો મશતીત્યર્થ; પાપેષુ=પાપજનકષુ કર્મધુ=સાવધવ્યાપારેષુ રમતે=
 ક્રીડતિ । ‘ પાપેર્હિ કર્મર્હિ ’ इत्यप्रार्थत्वात्सप्तम्यर्थे તૃતીયા । સાવધવ્યાપારવર્તા
 ગૃહસ્થાદીનાં કા કયા? કેચિન્મુનયોડપિ વિષયવિપદ્ધર્મિતાન્તઃકરણા મનાધાર
 માધરન્તીત્યાહ—‘ હૈ ’-ત્યાદિ, હૈ=નિનિશ્ચાસને; એકેર્પા=શિષ્યિકર્મણાં કુશ્લીલ-
 પાર્શ્વસ્થાદીનામ્ ‘ એકવર્ણા ’-અર્થ ચર્યતે યા વર્ણા, એકસ્ય વર્ણા એકવર્ણા-
 વીક્ષા સ્વીકાર કરકે મીજો સાવધ વ્યાપાર કે કટુક પરિણામ સે અપ
 રિચિત્ત હૈ ઔર વિષયતૃષ્ણા સે સર્વ પ્રકાર પીડિત્ત હૈ, અથવા-શ્વેદની
 અપ્રાપ્તિ ઔર અનિષ્ટકે સમ્પર્કમે, યા શ્વેદ કે વિયોગ હોનેપર જો અત્યંત
 વ્યાકુલ હોને સે સર્વ પ્રકાર સે અન્દર-બાહર સન્તપ્ત હો રહા હૈ, તથા
 અશરણ કો હી અર્થાત્-પચનપાચનાદિકરૂપ સાવધ વ્યાપારોં કો હી ‘ યે
 શરણ-મેયસ્કર હૈ ’ એમા માન રહા હૈ, વહ વિષયરૂપી જવનિકા (પદ્ધતી) સે
 તિરોહિત સમક્તિવાલા હો કર ઊન સાવધ વ્યાપારોં મેં હી આનકચિત્ત
 હોતા હૈ, ઔર ઊન્હીં પાપજનક કાર્યોં—સાવધ વ્યાપારોં મેં ક્રીડા કરતા
 રહતા હૈ—આનંદ માનતા રહતા હૈ । અરે સાવધ વ્યાપારમેં લલલીન
 ગૃહસ્થોં કો તો કયા હી કયા કહની? પરન્તુ એસે મી કઈ મુનિ હોતે હૈ
 જો વિષયરૂપો વિષયસે ધૂર્ણિત-ઉદ્ધ્રાન્ત અન્તાકરણ બન અનાધાર સેવન
 કરતે હુપ લજાતે નહીં હૈ । યહી વાત “ હૈ એકેપામ્ એકવર્ણા મવતિ ”

વ્યાપારમા કહવા પરિણામથી અપરિચિત્ત છે અને વિષયતૃષ્ણથી સર્વ પ્રકારે
 પીડિત છે અથવા શ્વેદની અપ્રાપ્તિ અને અનિષ્ટના સંપર્કથી, અગર કદિને
 વિશેષ મવાથી જે અત્યંત વ્યાકુલ બનીને સર્વ પ્રકારથી બાહર અને બહાર
 સતપ્ત અને છે અને અશરણને જ અર્થાત્ પચન-પાચનાદિકરૂપ સાવધ વ્યા
 પારને જ આ શરણ-મેયસ્કર-છે એમ માને છે તે વિષયરૂપી જવનિકા (પદ્ધતી)થી
 તિરોહિત સમક્તિવાળા બનીને તેવા સાવધ વ્યાપારેમા જ લલલીન બને અને
 તેવાં જ પાપજનક કાર્યોં-સાવધ વ્યાપારેમા રમ્યા-પર્યા રહે છે-આનંદ માનવા
 રહે છે. અરે ! સાવધ વ્યાપારમા તદ્દીન બુદ્ધિશ્રેણી તો વાત જ ક્યાં કરતી ?
 પરંતુ એવા પણ કેટલાક દુષ્ણિતી મુનિઓ હોય છે કે જે વિષયરૂપી વિષયી
 ઉદ્ધ્રાન્તચિત્ત બનીને અનાધારનું સેવન કરવામાં લાગતા નથી. આ વાત ‘ હૈ એકેપામ્
 એકવર્ણા મવતિ ’ આ સૂત્રાથી સૂચકાર કહે છે—

एकाकिविहरणं भवति । एकचर्या प्रशस्ताप्रशस्ताभ्यां द्विधा, माजपि पुनर्द्रव्यभाव-
भेदात्प्रत्येकं द्विविधा । द्रव्यतः प्रशस्ता स्थविरकल्पिकस्य प्रतिमाप्रतिपन्नस्य श्रद्धा-
द्यष्टगुणसम्पन्नस्य वा भवति, तदुक्तं स्थानाङ्गे—

“अद्वहिं ठाणेहिं सपन्ने अणगारे अरिहड एगळविहारपडिमं उपसंपज्जित्ताणं
विहरित्तए, तंजहा—‘सद्धी पुरिसजाए (१), मन्चे पुरिमजाण (२), मेहावी
पुरिसजाए (३), बहुस्सुए पुरिसजाए (४), सत्तिम (५), अप्पहिगरणे (६),
धित्तिमं (७), वीरियसपन्ने (८) । (ठा. ८ सू. १)

इस सूत्रांश से सूत्रकार कहते हैं—इस जिनशासनमें शिथिल कर्मवाले
कुशील पासत्थादिकों की एकचर्या होती है—एकाकी विहार होता है ।
आचरण करना या जो आचरित की जाती है वह चर्या है । एक की चर्या
एकचर्या है । यह प्रशस्त और अप्रशस्त रूप से दो प्रकार की है । प्रशस्त
और अप्रशस्त चर्या के भी द्रव्य और भावसे दो दो भेद हैं । बारह प्रकार
की मुनिप्रतिमा को धारण करनेवाले, अथवा श्रद्धा आदि आठ गुण
विशिष्ट स्थविरकल्पी साधुकी चर्या द्रव्यसे प्रशस्त चर्या है ।

स्थानाङ्गमें यही विषय ‘अद्वहिं ठाणेहिं’ इत्यादि सूत्र से कहा है ।
उसका अर्थ यह है—“आठ स्थानों से सम्पन्न अनगार एकाकिविहारप्रतिमा
को धारण कर विहार करनेलायक है । वे आठ स्थान ये हैं—(१) श्रद्धी
पुरुषजात, (२) सत्य पुरुषजात, (३) मेधावी पुरुषजात, (४) बहुश्रुत
पुरुषजात, (५) शक्तिमान्, (६) अल्पाधिकरणवाला, (७) धृतिमान्, और
(८) वीर्यसम्पन्न” [ठा. ८ सू. १]

આ છનશાસનમા શિથિલ કર્મવાળા કુશીલ પાસત્થાદિકોની એકચર્યા થાય
છે—કુશીલ પાસત્થાદિકો એકલા વિહાર કરે છે આચરણ કરવું અગર જેનું
આચરણ કરવામા આવે છે તે ચર્યા છે એકની ચર્યા એકચર્યા છે આ પ્રશસ્ત
અને અપ્રશસ્ત રૂપથી બે પ્રકારની છે પ્રશસ્ત અને અપ્રશસ્ત ચર્યાના પણ દ્રવ્ય
અને ભાવથી બે ભેદ છે ૧૨—બાર પ્રકારની મુનિપ્રતિમાને ધારણ કરવાવાળા
અથવા શ્રદ્ધા આદિ આઠ ગુણ સહિત સ્થવિરકલ્પી સાધુની ચર્યા દ્રવ્યથી
પ્રશસ્ત ચર્યા છે સ્થાનાગમા એ જ વિષય ‘અદ્વહિં ઠાણેહિં’ ઇત્યાદિસૂત્રથી કહ્યો છે

“આઠ સ્થાનોથી સ પન્ન અણુગાર એકાકિવિહારપ્રતિમાને ધારણ કરી વિહાર
કરવાને લાયક છે એ આઠ સ્થાન આ છે—(૧) શ્રદ્ધી પુરુષજાત, (૨) સત્ય
પુરુષજાત, (૩) મેધાવી પુરુષજાત, (૪) બહુશ્રુત પુરુષજાત, (૫) શક્તિમાન,
(૬) અલ્પાધિકરણવાળા, (૭) ધૃતિમાન, (૮) વીર્યસપન્ન” (ઠા ૮ સૂ ૧)

છાયા—અપ્પમિ સ્યાનૈ સંપન્નોઽનગારોઽર્હતિ એકાકિષિહારમ્પતિમામુપસપ્પ
ચિર્ત્તુ, તથા—અદિ પુરુષજાત (૧), સત્યં પુરુષમાર્તં (૨), મેષાધિ પુરુષજાતં (૩),
વહુમુતં પુરુષનાતમ્ (૪), શક્તિમત્ (૫), અલ્પાભિકરણમ્ (૬), ઘૃતિમત્ (૭), ચીર્ય
સમ્પન્નમ્ (૮), ઇતિ ।

માવતા પ્રશસ્તા ણ્કચયા રાગદ્વેપરહિતસ્ય મવતિ, માવતોઽપ્પશ્તૈકચર્યા ન
મવતિ, સા ધ રાગદ્વેપસચ્ચન સ્યાત્, માવસ્વચ્ચર્યાયાં રાગદ્વેપાસચ્ચમ્, તયોરમ
ચ્ચ વામશસ્તાયા ચમાચાત્ । દ્રવ્યતાઽપ્પશ્તૈકચર્યા ચ ગૃહસ્યાપાત્પિકાદીનામવ
સમ્પાર્શ્વસ્વાદીનાં નિયિલર્મ્મણામનુપદવસ્યમાણકોપાષ્ટદોષવર્તાં મવતિ । પ્રકૃતે

રાગદ્વેપરહિત માધુકી ચર્યા માવસે પ્રશસ્ત ચર્યા છે । જિસકા
માવ અપ્રશસ્ત છે વહુ એકચર્યા (એકાકિષિહારિતા) નહીં કર સક્કા,
ચર્યાં ફિ ઉમકી ણ્કચર્યા રાગદ્વેપકે સઢાવ સે હોતી છે । માવમેદ્વાલી
એકચર્યા મેં રાગ આર દ્વેપકા સઢાવ નહીં હોતા છે, ઇસ લિયે ઇનકે
અમસ્વ મેં અપ્રશસ્તના નહીં અત્તી છે । તાત્પર્ય ઘટ છે ફિ અપ્રશસ્ત—એક
ચર્યા મેં “માવસે અપ્રશસ્ત એકચર્યા” ઘટ મેદ્ નહીં ઘનિત હોના છે, ચર્યાં
ફિ માવો મેં અપ્રશસ્તના રાગ દ્વેપકે સઢાવ સે હી આતી છે । જહા રાગ
દ્વેપકે અમાવસે એકચર્યા હોતી છે વહુ માવ સે પ્રશસ્ત એકચર્યા છે ।
રાગ દ્વેપ કે નિમિત્તા કો હે કર જહાં એકચર્યા છે વહુ માવસે એકચર્યા નહીં
છે; ફિન્તુ અપ્રશસ્ત એકચર્યા હી છે । દ્રવ્યસ અપ્રશસ્ત એકચર્યા ગૃહમ્પો,
પાર્શ્વટિયોં ગ્વ માધુમમાચારી સે શિધિલ પામત્પાદિકાં તથા અનુપદ વહુ
જાનેવાલે મોપાદિક આઠ દોષ થાલોં ક હોતી છે । પ્રકૃત (પ્રકરણ) મેં

રાગદ્વેપરહિત માધુકી ચર્યા માવસે પ્રશસ્ત ચર્યા છે એનો આવ અપ્રશસ્ત
છે તે એકચર્યા (એકાકિષિહારિતા) નથી કરી શકો, કારણ કે તેની
એકચર્યા રાગદ્વેપના અભાવથી થાય છે. આવમેદ્વાલી એકચર્યામા રાગ અને
દ્વેપનો તફાવત બનવા નથી જો આગે તેના અપ્રશસ્તમાં અપ્રશસ્તના આવતી
નથી. તાત્પર્ય એ છે કે અપ્રશસ્ત એકચર્યામા આવથી અપ્રશસ્ત એકચર્યા
એ એક જ એવો નથી કારણ કે આવમા અપ્રશસ્તના રાગદ્વેપના તફાવ
તથી જ આવે છે. જ્યાં રાગદ્વેપના અભાવથી એકચર્યા થાય છે તે
આવથી પ્રશસ્ત એકચર્યા છે. રાગદ્વેપના નિમિત્તને લગતે જ્યાં એકચર્યા છે તે
આવથી એકચર્યા નથી પરંતુ અપ્રશસ્ત એકચર્યા જ છે. દ્રવ્યથી અપ્રશસ્ત એકચર્યા
મુદસ્થા ૫.૫૨ીએ અને માધુમાચારીથી શિધિલ પામત્પાદિક નથી અનુપદ
દોષવાળાં અપ્રશસ્તના કીયાદિક આઠ દોષથી મુક્ત ને આવ છે. પ્રકૃત (પ્રકરણ) મા

ચાપ્રશસ્તૈરુચર્યાયા એવ પ્રસદ્ગ્ન ઇતિ વોચ્યમ્ । અપ્રશસ્તૈરુચર્યાચારી કીદૃશો ભવતી-
ત્યાહ—‘સ વહુક્રોધઃ’ ઇત્યાદિ, સઃ=વિષયમુગ્ધલોભોઽપ્રશસ્તૈરુચર્યાચારી
મુનિઃ વહુક્રોધઃ—વહવઃ ક્રોધા ક્રોપા યસ્ય સ વહુક્રોધઃ—અધિકક્રોપવાન, વહુ-
માનઃ=અતીવાભિમાની, વહુમાયઃ=કુલ્કુચાદિભિરનલ્પમાયામાન, સર્વમિદમાદા-
રાદ્યર્થ વિદ્યતે, અત એવ વહુલોભઃ, અત એવ વહુરજાઃ=અધિકપાપી, યદ્વા—‘વહુરત’
અપ્રશસ્ત એકચર્યાં કા હી પ્રમદ્ગ્ન હૈ, અતઃ ઇમ પ્રકરણ મેં અપ્રશસ્ત
એકચર્યાં કા હી કથન સમઘ્નનાં ચાહિયે । ઇમ અપ્રશસ્ત એકચર્યાંવાલા
વ્યક્તિ કેસા હોતા હૈ ? ઇમકે લિયે સૂત્રકાર “સ વહુક્રોધઃ” ઇત્યાદિ
પદોં સે ઉમકા વિવરણ કરતે હૈ—વિષયમુગ્ધલોભી વહ અપ્રશસ્ત
એકચર્યાંચારી મુનિ વહુત ક્રોધી હોતા હૈ । વહુત હૈ ક્રોધ જિસકે વહ
વહુક્રોધ હૈ । યદ્વાં પર “વહવઃ ક્રોધાઃ” જેસા જો વહુવચન કા પ્રયોગ
કિયા હૈ, વહ ક્રોધ કી અનેક જાનિયોં કા પ્રદર્શક હૈ । જઘન્ય મધ્યમ
ઉત્કૃષ્ટ ભેદસે ક્રોધ ત્રીન પ્રકાર કા હોતા હૈ । વિષયમુગ્ધલોભી
અપ્રશસ્ત એકચર્યાંચારી મુનિકે ક્રોધ કા ઉત્કૃષ્ટ પ્રકાર હોતા હૈ । અથવા
યહ અલ્પક્રોધી નહીં હોતા, કિન્તુ વહુત ક્રોધી હોતા હૈ । ઇસ વિવક્ષા
મેં ભી ક્રોધકે ત્રીન પ્રકાર હોતે હૈ—અલ્પ ક્રોધ, મધ્યમક્રોધ ઓર વહુ
ક્રોધ । યદ્વાં પર ત્રીસરે પ્રકાર કે ક્રોધકા હી ગ્રહણ કિયા ગયા હૈ । ઇસી
પ્રકાર—માન, માયા ઓર લોભાદિકોં મેં ભી સમઘ્ન લેના ચાહિયે । વહ
વહુતમાની હોતા હૈ, વહુત માયાવાલા હોતા હૈ, વહુત લોભી હોતા હૈ ।

અપ્રશસ્ત એકચર્યાનાં પ્રસંગ જ છે માટે આ પ્રકરણમા અપ્રશસ્ત એકચર્યાનું
જ કથન સમજવું જોઈ એ આ અપ્રશસ્ત એકચર્યાવાળી વ્યક્તિ કેવી હોય છે ? તેને
માટે સૂત્રકાર “સ વહુક્રોધ” ઇત્યાદિ પદોથી તેનું વિવરણ કરે છે—વિષયમુગ્ધ
લોભી તે અપ્રશસ્ત—એકચર્યાચારી મુનિ ઘણો ક્રોધી હોય છે ઘણો ક્રોધ છે જેને
તે વહુક્રોધ છે આ જગ્યાએ “વહવઃ ક્રોધા” એવો જે બહુવચનનો પ્રયોગ
કરેલ છે તે ક્રોધની અનેક જાતીઓનું પ્રદર્શક છે જઘન્ય, મધ્યમ અને ઉત્કૃષ્ટના
લેહથી ક્રોધ ત્રણ પ્રકારનો હોય છે વિષય—મુગ્ધ—લોભી અપ્રશસ્ત એકચર્યાચારી
મુનિને ક્રોધનો ઉત્કૃષ્ટ પ્રકાર થાય છે અથવા તે અલ્પક્રોધી નથી હોતો, પરંતુ ઘણો ક્રોધી
હોય છે આ પ્રકારમા પણ ક્રોધના ત્રણ પ્રકાર છે, અલ્પ ક્રોધ, મધ્યમ ક્રોધ, અને
બહુ ક્રોધ આ સ્થળે ત્રીજા પ્રકારના ક્રોધનો જ ગ્રહણ કરવામા આવેલ છે
એ જ પ્રકારે માન, માયા અને લોભ આદિમા પણ સમજી લેવું જોઈ એ—તે ઘણો
માની હોય છે, બહુ માયાવાળો હોય છે, ઘણો લોભી હોય છે ઘણો લોભી થવાનું

ઈતિજ્ઞાયા; મહુરતાઃ—આરમ્ભાન્નિસસક્તા; મહુનન્—મોહાય નન્ ઇવ મહુન્ વેપાન્
વિદ્વાતિ, તથા—મનસિલ્કર્ષી મનસિઝ્ઞનટી મનસિત્ શિસી મનસિષ મુન્ઠી મૂત્વા
તમ તમ સમ્માનાદિસમાસાદનાય વિવિધવપશારી સિદ્ધતીત્યાશ્રયઃ । તથા મહુઘઠ
મહુમિઃ પ્રકારેઃ શ્રાઠમયુક્તઃ, કિંચ મહુસકલ્પઃ—મહુન્—પૂર્ણા સત્કારમાહારાદિકં
ચ સત્ત્વ સંસ્કલ્પયતિ—માર્ષયતીતિ મહુસંસ્કલ્પઃ, પુનઃ સ કીદશો મમતીત્યાદ—આસવ
મહુલોભી હોનેકા કારણ યદ્દે કિં યદ્દે યહી સમસતા હૈ કિં યદ્દે સઘ
કુષ્ઠ જ્ઞાને કે લિયે હી હૈ । હસ પ્રકાર સે યદ્દે જ્ઞાન યસ્તુઓં કે સમ્પ્રદ કરને
મેં અધિક લોલુપી હોતા હૈ—અધિક પાપી હોતા હૈ । અપમા—મહુરત હોના
હૈ—આરંભ—સમારંભાદિકોં મેં આસવ રહતા હૈ । જિસ પ્રકાર અન્ય
પ્રાણિયોંકો મોહિત કરને કે લિયે નટ અનેક પ્રકારકે વેપોંકો ઘરતા હૈ
વસી પ્રકાર યદ્દે મી અન્ય જીવોંકો અપને કપર મુગ્ધ કરને કે લિયે
અનેક પ્રકાર કે વેપોંકો ઘારણ કરતા હૈ—કમી અપની ઢાઢી કે બાલોં
કો મદા હેતા હૈ, કમી અપને શિરકી જટાઓંકો મદા હેતા હૈ, કમી
શિલા રમ્બતા હૈ, કમી બાલોંકા મિલ્કુલ મુળ્હન કરા હેતા હૈ । હસ
પ્રકાર કે અનેક વેપોંકો ઘર ૨ કર માન—સમ્માન આદિ પ્રાપ્ત કરને કા
યદ્દે સદા અમિલાપી હોતા હૈ । હસી વૃદ્ધિતિ સે યદ્દે હસ પ્રકાર કે વેપોં
કો સમય ૨ ઘરતા રહતા હૈ । યદ્દે મહુઘઠ હોતા હૈ, અર્પાત્—અનેક
પ્રકારોંસે અપની શક્તિ કા ઉપયોગ કરતા હૈ । યદ્દે મહુસકલ્પી મી
હોતા હૈ—રાત્રિ દિન યદ્દે યદ્દે વિચાર કિયા કરતા હૈ કિં મેરી પ્રતિષ્ઠા

કારણ એ છે કે તે એવું મમ ? છે કે ના બધું જાણ માટે જ છે આ રીતે તે
જાણ વસ્તુઓને સમજ કરવાના અધિક લોભુપી બને છે માટે બહુશ્ચ—અધિક
પાપી હોય છે અથવા બહુરત હોય છે—આરભસમારભાદિકોમાં આસવ રહે છે
બહુન કાચ છે—જે પ્રકારે બીજા પ્રાણીઓને મોહિત કરવા માટે ન અનેક પ્રકારના
વેપોં ધારણ કરે છે તેવી રીતે આ પણ બીજા જીવોને પોતાની તરફ મુગ્ધ કરવા
માટે અનેક પ્રકારના વેપોં ધારણ કરે છે—ક્યારેક એ પોતાની શરીરના વાળ
વધારે છે, ક્યારેક પોતાના શિશ્ની જટાને વધારે છે ક્યારેક માથામા બોટલી
રાખે છે અને ક્યારેક માથાને ઓકળ સંપાદ બનાવી દે છે આ રીતે અનેક
પ્રકારના વેપોં ધારણ કરીને માન—સ માનાદિ પ્રાપ્ત કરવા સદા અમિલાપી રહે
છે આ જ વૃદ્ધિતિથી એ સમય સમય પર જવા પ્રકારના વેપોં ધારણ કરે છે
તે બહુશ્ચ કાચ છે એટલે—અનેક પ્રકારથી પોતાની શક્તિનો ઉપયોગ કરે
છે તે બહુસકલ્પી પણ કાચ છે—રાત્રિ દિવસ તે એવો વિચાર કરે છે કે મારી

त्यादि, आस्रवसक्तिः=आस्रवेषु प्राणातिपातादिषु मक्तिः=सङ्गो यस्यास्ति स आस्रवसक्तिः=हिंसादिष्वभिसङ्गवान्, एव पलितावच्छन्नः=पलितेन=आरम्भसमारम्भादिकर्मणा अवच्छन्नः=अवच्छन्धः-युक्त इत्यर्थः, अपि च उत्थितवादम्=उत्थितः=रत्नत्रयसमाराधनाय समुद्यतस्तस्य वाद इव वादस्त लोकावश्चनार्थं प्रयत्नः, 'अहमपि भगवदुपदिष्टस्यमाचरणार्थं शासनोद्भासनाय च तत्परोऽस्मी'-त्येव ब्रुवनं प्रतिपिद्धामप्येकाकिविहरणादिकामनुतिष्ठतीति भावः । स सावधव्यापारमाचरंश्चेतस्येव कैसे बढे, कैसे लोग मेरा सत्कार करे, किस विधि से मुझे उत्तम २ आहारादिक सामग्री का लाभ हो । यह आस्रवसक्ती-कर्मों के आस्रव के कारणभूत प्राणातिपातादिक कार्यों में आसक्तिवाला होता है । यह पलितावच्छन्न होता है । आरम्भ-समारम्भादिक कर्मों का नाम पलित है । उससे युक्त होना सो पलितावच्छन्न है । यह उत्थितवाद का कथन करनेवाला होता है । रत्नत्रय की आराधना करने के लिये उद्यत होने का नाम उत्थित है । लोकों की वचना के लिये इसका कहना सो उत्थितवाद है । इस उत्थितवाद को यह अपने में इस प्रकार से प्रकट करता है कि 'मैं भी भगवत्प्रतिपादित संयम की आराधना करने के लिये, और उस उस स्थान पर जिनशासन की प्रभावना के लिये कटिबद्ध हूँ' । तात्पर्य यह है कि-इस प्रकार यह आगमनिषिद्ध एकाकिविहार करनेरूप मार्ग का पथिक होता हुआ भी भगवत्प्रतिपादित संयममार्ग के आराधक, और जिनशासन के प्रभावकरूप से अपनी ख्याति करता है । सावध

प्रतिष्ठा डेवी रीते वधे, डेवी रीते लोको भाइ सन्मान करे, क्या कार्यथी भने उत्तम उत्तम आहारादि सामग्रीनो लाभ भणे ? ते आ आस्रवसक्ति डोय छे-कर्मोना आस्रवना कारणभूत प्राणातिपातादिक कार्योंमा आसक्ति धरावनार भने छे ते पलितावच्छन्न डोय छे, आरम्भसमारम्भादिक कर्मोनु नाम पलित थाय छे तेनाथी युक्त थयु ते पलितावच्छन्न छे उत्थितवादनु कथन करनार भने छे, रत्नत्रयनी आराधना करवा भाटे उद्यत थयु तेनु नाम उत्थित छे, लोकोंने छेतरवा भाटे ओनो लाव भतावयो ओ उत्थितवाद छे, आ उत्थितवादनो ते पोतानामा ओवा प्रकारे प्रकट करे छे के 'हूँ पणु भगवत्प्रतिपादित संयमनी आराधना करवा भाटे भने ते ते स्थान पर जिनशासननी प्रभावना भाटे कटिबद्ध छु' तात्पर्य ओ छे के-आ प्रकारे ते आगमनिषिद्ध एकाकिविहार करवाइय मार्गनो अनुगामी होवा छता पणु भगवत्प्रतिपादित संयममार्गना आराधक भने जिन शासनना प्रभावकरूपथी पोतानी ख्याति करे छे सावध व्यापारो करवा छता

ચિન્તયતિ 'મા મા'—મિત્યાદિ, કેડપિ=અથે માં પ્રાણાતિપાતાદિકારિણ પ્રચ્છન્ના ધર્મવિધાયિનમ્ મઢીયન અજ્ઞાનપ્રમાદ્દોષેણ, અજ્ઞાનં ચ પ્રમાદશ્ચાજ્ઞાનપ્રમાદૌ, તયો દોષમ્ભેન, 'અયં શુભપાપમકાર્યં કરોતિ' इति मा अत्राशुः=નો પશ્યન્તુ=નો જાનન્તિવત્સર્યઃ ।

યદ્વા—'અજ્ઞાનપ્રમાદ્દોષેણ' इति पदं 'मूढः' इत्यनेनापि मध्यमणिन्यायेन सम्बध्यते, अत्राज्ञानप्रज्ञेन दर्शनमोहनीयं च दृश्यते, ततो दर्शनमोहनीयेन चारित्रमाह नीयनं च मूढः=परमार्थानभिज्ञः सन् धर्म=भुतचारित्रप्रमक्षण स्वीयधर्म=येन सक्रम कर्मक्षयो भवति तं नामिजानाति=नाचबुध्यते । एतेषां का दशा भवति' इत्याह— 'आर्त्ता' इत्यादि, हे मानव ! हे भव्य ! सदुपदर्शास्वात्मन्य, आर्त्ता=विषयक पापै पीडिताः प्रमा=य=कर्पेण जायन्त=चतुर्गतिषु कर्मणा समुत्पद्यन्त इति प्रमा=व्यापारो को करता हुआ भी यह अपने मनमें इस प्रकार से उस समय विचार करता है कि इस प्राणानिपानादिक अकार्य तथा गुणरूप से पाप करनेवाले मुझे और कोई न देख ले । इस प्रकार प्रमाद और अज्ञानके दोष से वह नहीं करने योग्य शुभ पापों को करता है ।

અથવા—“અજ્ઞાનપ્રમાદ્દોષેણ સતતં મૂઢઃ” इस प्रकार से भी मध्यमणिन्याय से “अज्ञानप्रमाददोषेण” इस पदका सम्बन्ध “मूढ” पद के साथ करने से यह अर्थ होता है कि—यह दर्शनमोहनीय एवं चारित्रमोहनीय के उदय से निरन्तर परमार्थ से अनभिज्ञ हो कर समस्त कर्मोंका क्षय करनवाले भुतचारित्ररूप अपने आत्मधर्म को नहीं जानता है। ऐसे व्यक्तियों की दशाका विग्रण करते हुए सूत्रकार कहते हैं— “आर्त्ताः” इत्यादि, हे भव्य ! विषयकपापों से पीडित ऐसी प्रजा—

પણ જો પાતાના મનમાં તે વખતે એવા પ્રકારનો વિચાર કરે છે કે ‘આના પ્રાણાતિપાતાદિક અકાર્ય તથા ગુણરૂપથી યાપ કરનારાના અને કોઈ એઈ ન જાય ? આવી રીતે પ્રમાદ અને અજ્ઞાનના દોષથી તે નહિ કરવા યોગ્ય શુભ પાપો કરે છે

અથવા—‘અજ્ઞાનપ્રમાદ્દોષેણ સતતં મૂઢઃ’ આ પ્રકારે પણ મધ્યમણિ ન્યાયથી અજ્ઞાનપ્રમાદ્દોષેણ આ પદનો સુબધ ‘મૂઢ’ પદની સાથે કરવાથી એવો અર્થ થાય છે કે તે દર્શનમોહનીય અને ચારિત્રમોહનીયના ઉદયથી નિરન્તર પરમાર્થથી અનભિજ્ઞ બની સમસ્ત કર્મોના શય કરનારાના અતઃચરિત્રરૂપ પેતાના આત્મધર્મને ભણતો નથી આવી અધિઓની ક્રિયાનુ વળન કરવા સુતકાર કહે છે— “આર્ત્તા” —ઈત્યાદિ, દે ભવ્ય ! વિષયકપાપોથી પીડિત એવી પ્રજા—પ્રાણી, કર્મકંબિદ—

પ્રાણિનઃ, કર્મકોવિદાઃ-કર્મણિ=આરમ્ભસમારમ્ભાદૌ કોવિદા=દક્ષાસ્તત્પરા इत्यर्थः, ન તુ ધર્માચરણે, યે ચ અનુપરતાઃ=સાવધવ્યાપારેભ્યોऽપરાદ્મુખાઃ, અવિદ્યા=રત્નત્રયં વિદ્યા, તદ્વિપરીતા અવિદ્યા, તયા પરિમોક્ષ પરિ=સર્વતો મોક્ષમ્=આત્મનઃ કર્માપનયનમ્, આહુઃ=કથયન્તિ । તે ધર્માનભિજ્ઞાઃ કર્મબન્ધકોવિદાશ્ચ વિષયવ્યાલ-વિષકવલિતાઃ, આવર્ત=ભાવાવર્ત સસારમેવ અનુપરિવર્તન્તે-અનન્તભવજનક કર્મ સમુપાર્જ્ય તત્રૈવ મુહુર્મુહુર્ભ્રામ્યન્તીત્યર્થઃ, ચારિત્રદોષેષુ ક્રોધાદ્યાધિક્યેન ચૈકચર્યા-

-પ્રાણી કર્મકોવિદ=આરમ્ભ સમારમ્ભ આદિ કર્મોં મેં નિપુણ હોતી હૈ, ધર્મ મેં નહીં । “પ્રકર્ષેણ જાયન્તે इति प्रजाः” इस व्युत्पत्ति के अनुसार समुपार्जित કર્મોં કે ઉદય સે જો બાર બાર ચતુર્ગતિરૂપ સંસાર મેં જન્મ ધારણ કરતે હૈં ઉનકા નામ પ્રજા-પ્રાણી હૈં ।

“યે અનુપરતા અવિદ્યા પરિમોક્ષમાહુઃ” જો સાવધ વ્યાપારોં સે અપરાદ્મુખ હૈં વે ‘અવિદ્યા સે હી સર્વ પ્રકાર સે મુક્તિ હોતી હૈ’ એસા કહતે હૈં । રત્નત્રયકા નામ વિદ્યા હૈ । ઇસ સે જો વિપરીત હૈ વહ અવિદ્યા હૈ । ધર્મ સે અનભિજ્ઞ ઓર કર્મબન્ધ મેં કોવિદ પ્રાણી વિષયરૂપી સર્પ કે વિષ સે કવલિત હો ભાવાવર્તરૂપ સંસાર મેં હી અનુપરિવર્તન કરતે રહતે હૈં-અનન્તભવજનક કર્મોં કા આસ્રવ ઓર બન્ધ કર કે ઉસી સસારમેં બારંબાર જન્મ-મરણ કરતે રહતે હૈં । ચારિત્ર કે દોષોં મેં ક્રોધાદિક કી અધિકતા સે એકચર્યારૂપ દોષ કી પ્રધાનતા હૈ । ઇસસે સાવધ-વ્યાપારોં કા આચરણ હોતા હૈ । ઇસ આચરણ સે વિરતિ કા અભાવ ઓર ઉસસે ઉસમેં મુનિત્વ કા અભાવ હોતા હૈ । મુનિધર્મ કા પાલક ન હોને સે વહ

આરભ મમાઝ ભાદિકર્મોના નિપુણ હોય છે, ધર્મના નહિ “પ્રકર્ષેણ જાયન્તે इति प्रजाः” આ વ્યુત્પત્તિ અનુસાર સમુપાર્જિત કર્મોના ઉદયથી જે વારવાર ચતુર્ગતિરૂપ સમારમા જન્મ ધારણ કરે છે તેનું નામ પ્રજા-પ્રાણી છે

“યે અનુપરતા અવિદ્યા પરિમોક્ષમાહુઃ” જે સાવધ વ્યાપારોથી અનિવૃત્ત છે તે ‘અવિદ્યાથી જ સર્વ પ્રકારની મુક્તિ થાય છે’ તેવું કહે છે રત્નત્રયનું નામ વિદ્યા છે, આનાથી જે વિપરીત તે અવિદ્યા છે ધર્મથી અનભિજ્ઞ અને કર્મ બધમા કોવિદ પ્રાણી વિષયરૂપી સર્પના વિષથી કવલિત થઈ ભાવાવર્તરૂપ સસારમા અનુપરિવર્તન કરતો રહે છે અનતભવજનક કર્મોનો આસ્રવ અને બધ કરીને આ સસારમા વારવાર જન્મ-મરણ કરતો રહે છે ચારિત્રના દોષોમા ક્રોધાદિકની અધિકતાથી એકચર્યારૂપ દોષની પ્રધાનતા છે એનાથી સાવધવ્યાપારોનું આચરણ થાય છે આ આચરણથી વિરતિનો અભાવ અને તેનાથી તેનામા મુનિત્વનો

દોષસ્ય પ્રાપ્તાન્યાસ્તાપચ્ચાપારાચરણેન ચિરતેરમાવાદમુનિઃ સમ્ ચિરકાલં જન્મ
મરણં કુર્વન્તીતિ માણઃ । ઇતિ પ્રવીમીત્યસ્યાર્થં પૂર્વપત્ ।

॥ પચ્ચમાધ્યયનસ્ય પ્રથમોદ્દેશઃ સમાપ્તઃ ॥ ૫-૧ ॥

પ્રાણી ચિરકાલ્પક જન્મ-મરણ કરતા રહતા છે । “ ઇતિ પ્રવીમિ ” જન
પર્વોક્ત અર્થ પહેલે કી તરહ છે ॥ સૂ ૦ ૫ ॥

॥ પાંચવે અધ્યયન કા પ્રથમ ઉદ્દેશ સમાપ્ત ॥ ૫-૧ ॥

ત્વમે અસાવ આવે છે મુનિધર્મનું પાલન ન થવાથી તે પ્રાણી ચિરકાલ સુધી
જન્મ મરણ કરતો રહે છે ઇતિ પ્રવીમિ' આ પરોને અર્થ પહેલાની માફક છે
પાંચમા અધ્યયનનો પહેલો ઉદ્દેશ સમાપ્ત ॥ ૫-૧ ॥



પાંચમાધ્યયનસ્ય દ્વિતીય ઉદ્દેશઃ ।

અભિહિતઃ પ્રથમોદ્દેશઃ સામ્પ્રતં દ્વિતીયઃ પ્રારમ્ભ્યતે । અસ્ય ચાયમનન્તરોદ્દેશ-
સમ્બન્ધઃ, પૂર્વોદ્દેશે એકાકી-વિહરણશીલઃ સાવધવ્યાપારાસક્તતયા ‘અસંયતઃ’ इत्य-
ભિહિતમ્ । અત્ર ચ યથા સંયતઃ સ્યાત્તથા પ્રતિપાદ્યતે—

અથ હિંસાદિસાવધવ્યાપારાન્નિવૃત્ત એવ મુનિર્ભવતીતિ દર્શયતિ—‘આવતી’ इत्यादि ।

મૂલમ્—આવંતી કેયાવંતી લોએ અણારંભજીવિણો તેસુ । એત્થો-
વરણ તં ઝોસમાણે અયં સંધીતિ અદક્ખૂ, જે ઇમસ્સ વિગ્ગહસ્સ
અયં રવ્વણેત્તિ અન્નેસી । એસ મગ્ગે આરિણ્હિં પવેઙ્ગે । ઉટ્ઠિણ નો
પમાયણ, જાણિત્તુ દુક્ખં પત્તેયં સાયં । પુઢોહંદા ઇહ માણવા,
પુઢો દુક્ખં પવેઙ્ગયં । સે અવિહિંસમાણે અણવયમાણે પુદ્ધો ફાસે
વિપણુન્નણ ॥ સૂ૦ ૧ ॥

॥ પાંચવેં અધ્યયનકા દૂસરા ઉદ્દેશ ॥

પ્રથમ ઉદ્દેશ કહા જા ચુકા હૈ । અબ દ્વિતીય ઉદ્દેશ કા પ્રારમ્ભ કરતે
હૈ । ઇસ ઉદ્દેશ કા અનન્તર ઉદ્દેશ કે સાથ સમ્બન્ધ ઇસ પ્રકાર સે હૈ—
પ્રથમ ઉદ્દેશ મેં “ જો એકાકી વિહાર કરતા હૈ વહ સાવધ વ્યાપારમેં આસક્ત
હોને કે કારણ વિરતિવિહીન હૈ, જો વિરતિ સે વિહીન હૈ વહ મુનિ નહીં
હૈ ” યહ પ્રકટ કિયા હૈ, યહાં પર જીવ કે મુનિપના જિસ રીતિ સે
આસક્તા હૈ વહી રીતિ પ્રતિપાદિત કી જાતી હૈ । અથવા ‘હિંસાદિક
સાવધ વ્યાપારોસે નિવૃત્ત હી મુનિ હોતા હૈ’ યહ વાત દિશ્વલાઈજાતી હૈ—
“ આવંતી કેયાવંતી ” इत्यादि

પાંચમા અધ્યયનનો બીજો ઉદ્દેશ.

પ્રથમ ઉદ્દેશ ઠહેવાઈ ગયો છે, હવે બીજા ઉદ્દેશનો પ્રારંભ થાય છે આ
ઉદ્દેશનો અનન્તર ઉદ્દેશની સાથે સંબંધ આ પ્રકારે છે — પ્રથમ ઉદ્દેશમાં
“ જે એકાકી વિહાર કરે છે તે સાવધ વ્યાપારમાં આસક્ત હોવાને કારણે વિરતિ
વગરના છે, તે મુનિ નથી ” એમ પ્રગટ કરેલ છે આ સ્થળે જીવને મુનિપણુ
જે રીતિથી આવે છે તે જ રીતિ ઠહેવામાં આવે છે અથવા ‘હિંસાદિક સાવધ
વ્યાપારથી નિવૃત્ત જ મુનિ હોય છે’ એ વાત દેખાડવામાં આવે છે—
‘ આવંતી કેયાવતી ’ इत्यादि

छाया—यावन्तः कियन्तो लोके अनारम्भजीविनस्तेषु । अपोपरतस्तज्ज्ञोपपन्न
अयं सन्धिरिति श्रद्धाभीतः, योज्य विग्रहस्यायं सण इत्यनेपी । एष मार्ग आर्यैः
प्रवेदितः । उत्पितो नो प्रमादयत्, इत्या दुःखं मत्पेकं सातम् । पूयचक्रन्दा इह
मानवाः, पूयग दुःखं प्रवेदितम् । सोऽभिहिन्नपन्नदन् स्पृष्टः स्पर्शान्
विमणोदमेत ॥ सू० १ ॥

टीका—‘यावन्तः’ इत्यादि । लोके=मनुष्यलोके यावन्तः कियन्तश्च तेषु=
पृथ्वीवर्तिकायेषु अनारम्भजीविनः—आरम्भः=सावध्याचरण, तद्विपरीतस्तत्पनारम्भः
तेन जीर्णितुं शीले यथा तं अनारम्भजीविनाः संयमिनाः, यद्वेन्द्रियविषयकपायेषु
मत्तया आरम्भजीविनस्तद्विज्ञा अनारम्भजीविनो मुनयः सन्ति । ते हि स्वनिमित्त
पचनपाचनाविसावधव्यापारतत्परगृहस्थाञ्जरीरयात्रामाश्रनिर्वाहार्थमश्ननादि सु
शीला निरवधानुष्ठानमवृत्ताः सन्ता नखिनीदम्भमुमेव निर्लेपा मवन्तीति

इस मनुष्यलोक में कितनेक मनुष्य अनारम्भजीवी हैं । सावध
व्यापारों में प्रवृत्ति का नाम आरम्भ है । इससे विपरीत का नाम अना
रम्भ है । इससे जीने का जिनका स्वभाव है वे अनारम्भजीवी हैं । अनार
म्भजीवी संयमी होते हैं ।

अथवा—इन्द्रिय विषय एवं कषायों में जिनकी प्रवृत्ति है वे आरम्भ-
जीवी हैं, उनसे भिन्न मुनिजन ही अनारम्भजीवी हैं । अपने निमित्त
पचन-पाचनादि सावध व्यापारों में तत्पर गृहस्थजन से शरीरयात्रामात्र
के निर्वाहार्थ आहारादि लेकर निरवध-निर्दोष अनुष्ठान में प्रवृत्तिशील
होने के कारण ये मुनि पानीसे कमलपत्र की तरह निर्लेप होते हैं । इससे
यह निष्कर्ष निकलता है कि जो सावध व्यापारों में प्रवृत्तिशील हैं वे पूर्ण
संयमाचरण से बाहर हैं, और जो इस हिसाबिक आरम्भ से निवृत्त हैं वे

आ मनुष्य लोकमा देहलाक मनुष्य अनारभलुपी छे सावध व्यापारोमां
प्रवृत्तिनु नाम आरभ छे तेनाभी विपरीतनु नाम अनारभ छे तेनाभी जेने
लुकाये स्वभाव छेय ते अनारभलुपी छे अनारभलुपी सबभी छेय
छे अथवा इन्द्रिय विषय अने कषायोमा जेनी प्रवृत्ति छे ते आरभलुपी छे
तेनाभी जिन मुनिजन अ अनारभलुपी छे पोताना निमित्त पचनपाचनादि
सावध व्यापारोमा तत्पर अक्षमजनभी शरीरयात्रामात्रना निर्वाह भारे आका
सदि लयने निरवध-निर्दोष अनुष्ठानमा प्रवृत्तिशील कोनाने हास्ते पावुभी
अमगपन्नभी भाइक निर्लेप कोय छे आभी ओ सावध निमित्त छे तेने सावध
व्यापारोमा प्रवृत्तिशील छे त पूछ सधम आचरणभी जकार छे अने जे आना

તાત્પર્યમ્ । एवं तर्हि किमेतेनेत्याह—अत्रेत्यादि, अत्र=इह जगति उपरतः= हिंसाधारम्भाद् निवृत्तः, यद्वा-अत्र=वीतरागोपदिष्टे धर्मे तत्परः सन् उपरतः= सावधव्यापारनिवृत्त सः तत्=षड्जीवनिकायोपमर्दनात् समापतितं कर्म क्षोषयन्= क्षपयन् मुनिर्भवति । केनाशयेनात्रोपरतः ? इत्याह—‘अयं’मित्यादि, अयं=प्रत्यक्ष-

હી મુનિ હૈં-પૂર્ણસંયમાચરણમેં લવલીન હૈં । પૂર્ણસંયમાચરણ મેં તત્પરતા હી વીતરાગોપદિષ્ટ ધર્મારાધન મેં પૂર્ણતત્પરતા હૈ, ક્યોં કિ હસકે હુએ વિના વીતરાગોપદિષ્ટ ધર્મ કી પૂર્ણ આરાધકતા જીવો મેં નહીં આ સકતી । જબ તક પૂર્ણ ધર્મારાધકતા નહીં પ્રાપ્ત હો જાતી તબ તક કર્મોં કે વિનાશ કરને કા માર્ગ મી જીવોં કો પ્રાપ્ત નહીં હોતા; અતઃ કર્મોં કો નાશ કરને કે લિયે સચ્ચે મુનિ હોનેકી આવશ્યકતા હૈ । इन सब विचारों को हृदय में रख कर सूत्रकार “अत्रोपरतः तं क्षोषयन्” इस सूत्रांश का कथन करते हैं । इसमें वे बतलाते हैं कि इस संसार में जो हिंसादिक आरम्भ कार्यों से निवृत्त-पराङ्मुख हो चुका है, अर्थात् सावध व्यापारों से जिसने अपने आप को हटा लिया है, या वीतरागप्रसुદ્રारा प्रतिपादित धर्म में तत्पर हो कर जो सावध व्यापार से निवृत्त है, वह जीव षड्जीवनिकाय के उपमर्दन से आस्रवित કર્મોં કા વિનાશ કરતા હુઆ મુનિ હોતા હૈ । इस आशय से वह षड्जीवनिकाय के हिंसादिक पापकर्मों से विरत होता है कि मुझे यह सन्धि मिली है, अर्थात्-यह महादुर्लभ नरपर्याय मुझे

હિંસાદિક આરભથી નિવૃત્ત છે તે જ મુનિ છે-પૂર્ણ સંયમ આચરણુમા તલીન છે પૂર્ણ સંયમ આચરણુમા તત્પરતા જ વીતરાગોપદિષ્ટ ધર્મ આરાધનમા પૂર્ણ તત્પરતા છે, કારણકે એના વગર વીતરાગોપદિષ્ટ ધર્મની પૂર્ણ આરાધકતા જીવોમા આવતી નથી જ્યાં સુધી પૂર્ણ ધર્મઆરાધકતા નથી પ્રાપ્ત થતી ત્યાં સુધી કર્મોનો વિનાશ કરવાનો માર્ગ પણ જીવોને પ્રાપ્ત થતો નથી માટે કર્મોનો નાશ કરવાને માટે સાચા મુનિ બનવાની આવશ્યકતા છે આ બધા વિચારોને હૃદયમા રાખીને સૂત્રકાર “અત્રોપરત ત ક્ષોષયન્” આ સૂત્રનો અર્થ કરે છે તેમા તે બતાવે છે કે જે હિંસાદિક આરભ કાર્યોથી નિવૃત્ત થઈ ચુકેલ છે અર્થાત્ સાવધ વ્યાપારોથી જોણે પોતે પોતાની બાતને હઠાવી લીધેલ છે અને વીતરાગપ્રસુદ્રારા પ્રતિપાદિત ધર્મમા જે પોતાને તત્પર કરે છે તે જીવ ષડ્જીવનિકાયના ઉપમર્દનથી આસ્રવિત કર્મોનો વિનાશ કરીને મુનિ બને છે આ આશયથી તે ષડ્જીવનિકાયના હિંસાદિક પાપકર્મોથી વિરક્ત થાય છે, કે મને આ સન્ધિ મળેલ છે,

નિર્દિષ્ટઃ સન્ધિઃ=મનુષ્યજન્મા ડર્યક્ષત્ર-શોમનકુસોત્પત્તિ-સકલપૂર્ણેન્દ્રિયનિર્ભૂતિ
 મદ્દા-સંભેગાદિપ્રાપ્તિમ્મક્ષણ* કર્મક્ષણાવસરાઃ, યદ્વા-શુભાધ્યવસાયસન્ધાનસ્વરૂપાઽ-
 સ્તિ, इति यः अद्रासीत्=દ્રષ્ટવાન, एतादृशो મુનિ* સ્થળમપિ ન પદ્મવિષમમાદપરાયમા
 મવદિત્યાશ્રયા । કલ્પ ન પ્રમત્ત સ્યાત્ ? इत्याह-‘जे इमस्स’ इत्यादि । य उपपन्नधतस्यो
 મુનિ અસ્ય=ઔદારિકસ્ય વિગ્રહસ્ય=શરીરસ્ય, तैजस कार्मणं च शरीरमौदारिकान्त
 ગતમેવતિ જ્ઞેયમ્, अयं=વિષયમાન સ્થળ=સત્રકાલસંયમકર્મક્ષણપણભેગિરૂપાઽવસરાઽ-
 સ્તિ, इत्य-वेपी-इति=एवमन्वेष्टुं शौक्मस्येत्य-वेपी-क्षणगवेक्ष्यपरायमा मवति ।

મિલી છે । હસ મેં મી આર્યક્ષેત્ર ઉત્તમ કુલ મેં મેરી ઉત્પત્તિ હુઈ છે । સકલ
 હન્દ્રિયોંની પૂર્ણ રચના, મદ્દા સંભેગાદિક સદ્ગુણોંની ઉપલબ્ધિ મુક્તે
 હુઈ છે । યદી તો કર્મક્ષય કરમે કા અવસર છે । અથવા મેરી આત્મા કા
 યદી નિજ સ્વરૂપ છે કિ મેં સદા શુભ અધ્યવસાયોં કા સંધાન કરતા
 રહ । હસ પ્રકાર જો અપની ઓર નિહારતા છે-અપને નિજ સ્વરૂપ કા
 વિચાર કરતા રહતા છે યહ ણક ક્ષણ મી પાંચ પ્રકાર કે પ્રમાદોં કા
 સેવન નહીં કરતા । હસ પ્રકાર કા મુનિ કૌન હોતા છે ? હસ પર કહતે
 છે-‘ જે હમસ્સ’ इत्यादि । जो तत्त्वज्ञ मुनि हैं वे सदा इस प्रकार का
 વિચાર કરે કિ યે જો ઔદારિક શરીર (તૈજસ ઔર કાર્મણ શરીરોં
 કા હસો ઔદારિક શરીર મેં અન્નર્માય કર લિયા છે) મુક્તે પ્રાપ્ત
 હુઆ છે ઉત્તકા યહ ક્ષણ-ક્ષેત્ર કાલ સંયમ કર્મક્ષણપણભેગિરૂપ અવસર
 છે; હસ પ્રકાર જો અન્વેષી-ક્ષણગવેષણ મેં પરાયણ હોતા છે યહ સદા

એટલે મને આ મહાદુર્લભ નરપર્યાય મળેલ છે તેમા પશુ અર્ધક્ષેત્ર ઉત્તમ
 કુળમા મારી ઉત્પત્તિ થઈ છે સદા હન્દ્રિયોંની પૂર્ણ રચના મદ્દા અવેગાદિક
 સદ્ગુણોંની ઉપલબ્ધિ મને થયેલ છે હવે તો કર્મક્ષય કરવાનો અવસર છે અને
 માત્ર અદ્ભુતોંને જ નિજ સ્વરૂપ છે કે હું સદા શુભ અધ્યવસાયોંને સંધાન
 કરતો રહું આ પ્રકારે જો પોતાની તથા નિકાળો છે, પોતાના નિજ સ્વરૂપને
 વિચાર કરે છે તે એક ક્ષણ પશુ યાવ પ્રકારના પ્રમાદોંનું સેવન કરતો નથી

આવા પ્રકારનો મુનિ કોણ હોય છે ? આ પ્રકારની શિષ્યની શકાનું
 શ્રામધાન કરવા માટે સૂત્રકાર કહે છે- જે હમસ્સ इत्यादि તત્ત્વજ્ઞ મુનિ છે તે
 સદા એવા પ્રકારનો વિચાર કરે છે-જે આ ઔદારિક શરીર અને પ્રાપ્ત થયેલ છે તેના
 આ સવ-ક્ષેત્ર કાલ સયમ કર્મક્ષણપણભેગિરૂપ અવસર છે આ પ્રકારે ? અન્વેષી-

एतत्कथनस्य स्वरूपलिपितत्वनिरासायाह—‘ एष ’ इत्यादि, एषः=पूर्वोक्तो वक्ष्यमाणो वा मार्गः=सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्ररूपो मोक्षमार्गः, आर्यः=तीर्थङ्करगणधरैः प्रवेदितः=सदेवमनुजपरिषदि कथितः। तेषां वचनमेवाह—उत्थितः=गृहादीनि परित्यज्य सन्धिमासाद्य रत्नत्रयाराधनाय समुद्युक्तः सन् नो प्रमादयेत्—क्षणमपि पञ्चविंशं प्रमादं नैव कुर्यादित्यर्थः । आत्मोपम्येनान्येषामपि हिंसादीनि नैव विद्व्यादित्याह—ज्ञात्वेत्यादि, प्रत्येकः=प्रत्येकप्राणिना दुःखः=शारीरमानसिक दुःखजनक कर्म वा, तथा सातः=मुखं च ज्ञात्वा=मुद्ध्वा उत्थितो नो प्रमादयेदिति पूर्वण प्रमादरहित होता है ।

भावार्थ—જો તત્ત્વજ્ઞ મુનિ હોતા હૈ, વહ યહી સદા વિચાર કરતા હૈ કિ મુજે એસા કોઈ સા મી સમય પ્રાપ્ત નહીં હૈ જિસે મૈ પ્રમાદ સેવન મૈં વ્યતીત કર સકૂ । હાં ! યદિ કોઈ સમય અવશિષ્ટ હોતા તો મૈં ઉસે પ્રમાદસેવન મૈં વ્યતીત કર દેતા, પરંતુ ઇસ પ્રાપ્ત ઔદારિક શરીર કા એક ૨ ક્ષણ મી ક્ષેત્ર કાલ સંયમ કર્મક્ષપણશ્રેણિરૂપ હૈ । ઇસ પ્રકાર જો એક ૨ ક્ષણકી મી સદા સાવધાની રાખતે હૈં વે કમી પ્રમાદવશ પતિત નહીં બન સકતે । યહ પૂર્વોક્ત કથન અથવા આગે જહા જાનેવાલા વિષય મૈંને અપની કલ્પના સે નહીં કહા હૈં કિન્તુ યહ સમ્યગ્-દર્શન જ્ઞાન ચારિત્ર સ્વરૂપ માર્ગ તીર્થઢ્ઢર ઔર ગણધરાદિક મહાપુરુષોં ને દેવસહિત મનુષ્યોં કી પરિષદા મે કહા હૈં । ઉન્હીં કે વચનોં કો સૂત્રકાર કહતે હૈં—“ઉઢ્ઢિય નો પમાયણ ” ઇતિ । જો ઘર આદિ કો છોડ કર, સંધિકો પ્રાપ્ત કર,

ક્ષણગવેષણમા પરાયણ થાય છે તે સદા પ્રમાદરહિત બને છે

ભાવાર્થ—શિષ્યની પૂર્વોક્ત શકાતુ આ સ્થળે સૂત્રકારે સમાધાન કરેલ છે તે કહે છે કે—જે તત્ત્વજ્ઞ મુનિ હોય છે તે સદા એવો વિચાર કરે છે કે—મને એવો કોઈ પણ સમય પ્રાપ્ત થયો નથી જેને હું પ્રમાદસેવનમાં વ્યતીત કરી શકું, કદાચ કોઈ સમય અવશિષ્ટ હોત તો હું તેને પ્રમાદ સેવનમાં વ્યતીત કરી દેત, પરંતુ આ પ્રાપ્ત થયેલ ઔદારિક શરીરની એક એક ક્ષણ પણ ક્ષેત્ર કાલ સંયમ કર્મક્ષપણ શ્રેણીરૂપ છે, આ પ્રકારે જે એક એક ક્ષણની પણ સદા સાવધાની રાખે છે તે કદાપિ પ્રમાદવશ બની શકતા નથી આ પૂર્વોક્ત કથન અથવા આગળ કહેવામાં આવનાર વિષય મેં મારી પોતાની કદપનાથી કહેલ નથી પરંતુ સમ્યગ્દર્શન-જ્ઞાન-ચારિત્ર-સ્વરૂપ માર્ગ તીર્થંકર અને ગણધર આદિ મહાપુરુષોએ દેવસહિત મનુષ્યોની પરિષદામાં કહેલ છે એમના જ વચનોને સૂત્રકાર કહે છે કે—“ઉઢ્ઢિય નો પમાયણ ” જે ઘર વગેરે છોડીને અવસર

સમ્મપા । સર્વેપાં પ્રાણિનાં સુસંમમિલપનીયં, દુઃસ્વં ચ પરિહરનીયં મમ્મતીત્પાસોપ્પ
 કત્થાપિ દુઃસ્વં નોત્પાદયેદિત્પાશ્ચયઃ । સર્વેપાં મન્તુનાં દુઃસનનકાધ્યવસાયોઽપિ
 મિમ્મો મમ્મતીતિ દર્શયતિ-‘પૂષગિ’-ત્વાદિ, ૬૨=મનુષ્યલોકે સંદિલ્લોકે ષા, માનવાઃ=
 મનુષ્યાઃ પૂષકચન્દાઃ=પૂયમ્ મિન્નં છન્દાઃ=અમિપ્રાયો યર્પા તે પૂયમ્છન્દા=મિમ્મ
 ચયો મમ્મન્તિ, યથા સીરપાન કચ્છિત્પુલાકરોતિ કચ્છિધ્વ દુઃસ્વાકરોતીત્પાદિ, ઉપેવ
 રત્નપ્રયોં કી આરાધના કે લિપે કટિવદ્ધ હૈં બહ અપના એક ક્ષણ મી
 પચ્ચિધ્વ પ્રમાદ કે સેવન મેં વ્યતીત ન કરે । સમસ્ત જીવોં કો અપને સમાન
 માન કર કમી મી ઝનકી હિંસા આદિ ન કરે । પ્રત્યેક પ્રાણી કે હારી
 રિક માનસિક દુઃસ્વોં કો, તથા ઝનકે કારણમૂલ કર્મોં કો, તથા સુસ્વ કો
 જાનકર ઉત્પિત વ્યક્તિ કમી મી પ્રમત્ત ન બને । તાત્પર્યં યહ કિ-
 સમસ્ત પ્રાણિયોં કો સુસ્વ અમિલવળીય હૈં ઓર દુઃસ્વ પરિહરનીય
 હૈં, એસા મિચાર કર કિસી મી પ્રાણી કો કુલ્લિત ન કરે ।

સંસાર કે સમસ્ત પ્રાણિયોં કે દુઃસ્વજનક અમિપ્રાય મી ફક્તે ન
 હો કર મિમ્મ ૨ હી હોતે હૈં, અતા સુચકાર “પુલો” ક્ત્વાદિ પદમે ફસી
 પાત કો પ્રદર્શિત કરતે હુણ કહતે હૈં કિ ફસ મનુષ્ય લોક અપવા સંસિ
 લોક મેં ઝિત્તને મી મનુષ્ય ઓર સંસિ પ્રાણી હૈં કે સચ મિમ્મ ૨ અમિપ્રા
 યસંપન્ન હૈં । જૈસે સીરપાન કિસી કો સુસ્વદાયી હોતા હૈં ઓર કિસી કો
 દુઃસ્વદાયી હોતા હૈં, ઝસી પ્રકાર જો ઉપાય આદિ કિસી જીવ કો સુસ્વ
 પ્રદ હોતા હૈં વહી ઉપાયાદિ અન્ય જીવ કે લિપે દુઃસ્વપ્રદ મી હોતા હૈં । યહ લો

મગ્ગવીને રત્નત્રયની આરાધના માટે વત્તપ છે તે પોતાની બેક પલ્લુ લલ્લુ પાચ
 પ્રકારના પ્રમાદના સેવનમા બ્બતીત ન કરે સમસ્ત જીવોને પોતાના અમાન ગણીને
 કોઈ વખત પલ્લુ તેની કિંસા આદિ ન કરે. પ્રત્યેક પ્રાણીના ગ્રાસિક માન
 સિક ક્રૂખાને તથા તેના કારણમૂલ ક્રોધેને તથા સુખને બાણીને ઉત્પિત બ્બતિત
 કોઈ વખત પલ્લુ પ્રમત્ત ન બને. તાત્પર્યં બેકે-સમસ્ત પ્રાણીઓને સુખ અભિ
 લષણીય છે અને દુઃખ પરિહરણીય છે એવું સમજીને કોઈ પલ્લુ પ્રાણીને
 ક્રૂખી ન કરે.

સંસારના સમસ્ત પ્રાણીઓના ફાળબનકે અભિપ્રાય પલ્લુ બેક પ્રકારના
 ન હેત્વ-સિત્ત સિત્ત પ્રકારના હોય છે માટે સુચકાર “પુલો” ક્ત્વાદિ.
 પદમી આ વાતને સમજાવીને કહે છે કે-આ મનુષ્યલોક તથા સંસિલોકમાં
 જેટલા પલ્લુ મનુષ્ય અને સંસિ-પ્રાણી છે તે જમા સિત્ત સિત્ત અભિપ્રાય
 લપન્ન છે એવી રીતે ખીલ્લુ સેવન કોઈને સુખદાયી હોય છે અને
 કોઈને દુઃખદાયી હોય છે એવા પ્રકારે જે ઉપાય વગેરે કોઈ જીવને
 સુખદાયી હોય છે તે જ ઉપાય આદિ અન્ય જીવને માટે દુઃખદાયી હોય છે.

યદેવ કસ્યચિત્સુખાય ભવતિ તદેવ પરસ્ય દુઃસ્વાય ચેતિ ' ભિન્નરુચિર્હિલોકઃ ' ઇતિ લોકોક્તેરિતિ । યદ્વા-પૃથક્છન્દાઃ=પૃથક્સકલ્પાઃ-અગણિતાભિપ્રાયાઃ-ઇતિ યાવત્, માનવા इत्युपलक्षणादन्येषામपि સજ્ઞિનાં પૃથક્છન્દત્વેન ગ્રહણ જ્ઞેયમ્ । યત એવ પ્રાણિનઃ પૃથક્છન્દાસ્તસ્માદુપાદેય કર્માપિ પૃથક્, કર્મજનિતં દુઃસ્વમપિ પૃથગેવ, કારણભેદસ્ય કાર્યભેદનિયામકત્વાત્, એતદેવ-કથયતિ ' પૃથગિ ' -ત્યાદિ, સર્વેષાં જન્તૂનાં દુઃસ્વ પૃથક્=ભિન્નરૂપ પ્રવેદિતમ્ । એતત્સર્વમાલોચ્યાનારમ્ભજીવી કિં વિદધ્યાદિતિ દર્શયતિ-' સ ' ઇત્યાદિ । સઃ નિર્વિલજીવસુખદુઃસ્વપરિજ્ઞાતા કોક્તિ હૈ કિ "ભિન્નરુચિર્હિલોક " લોગોં કી રુચિ ભિન્ન ભિન્ન હુઆ કરતી હૈ । અથવા-"પૃથક્છન્દા ઇહ માનવાઃ " ઇસકા અભિપ્રાય યહ ભી હૈ કિ મનુષ્ય ઔર અન્ય સંજી પ્રાણી જિતને ભી હૈં ઉન સવકે છન્દ-સકલ્પ અભિપ્રાય પૃથક્-અગણિત હૈં । સંસાર મેં જિતને ભી સંજી પ્રાણી હૈં વે સવ અપની અપની અપેક્ષા અગણિત અભિપ્રાય વિશિષ્ટ હૈં । માનવ-શબ્દ ઉપલક્ષણ હૈ, ઇસસે અન્ય સંજી પ્રાણિયોં કા ભી યહાં ગ્રહણ હો જાતા હૈ । જવ યહ માના ગયા હૈ કિ પ્રાણિયોં કે સંકલ્પ ભિન્ન ૨ યા અગણિત હૈં તો યહ ભી ઇસસે સિદ્ધ હોતા હૈ કિ ઉનકે કર્તવ્ય કર્મ તથા કર્મજનક દુઃસ્વ ભી ભિન્ન ૨ યા અગણિત હૈં, ક્યોં કિ કારણોં મેં જવ ભેદ હૈ તવ ઉસકે કાર્યોં મેં ભી ભેદ માનના પડતા હૈ, અતઃ યહ નિશ્ચિત હોતા હૈ કિ સમસ્ત જીવોં કા દુઃસ્વ પૃથક્-ભિન્ન ૨ રૂપમેં હૈ । ઇસ સવ કા વિચાર કર અનારંભજીવી કયા કરે ? ઇસકી પ્રરૂપણા સૂત્રકાર " સોઅર્હિસમાણે અણવયમાણે " ઇસ

આ પ્રકાગ્ની લોક કહેવત છે કે-ભિન્નરુચિર્હિલોક ' લોકોની રૂચી ભિન્ન ભિન્ન પ્રકારની રહ્યા કરે છે, અથવા-"પૃથક્છન્દા ઇહ માનવા " તેનો અભિપ્રાય એ છે કે મનુષ્યમાત્ર અને અન્ય સજી-પ્રાણી બેટલા છે તે બધાના છન્દ — સકલ્પ અભિપ્રાય અલગ અલગ છે સંસારમા બેટલા પણ સજી-પ્રાણી છે તે બધા પોતપોતાની અપેક્ષા અગણિત અભિપ્રાય ધરાવનાર છે માનવગણ, ઉપલક્ષણ છે જેનાથી બીજા સજીપ્રાણીઓતુ પણ આ સ્થળે સમાવેા યદ ગ્રહે છે ત્યારે આ માની લેવાયુ છે કે પ્રાણીઓના સમસ્ત સકલ્પ ભિન્ન ભિન્ન અને અગણિત છે તો આથી પણ એ સિદ્ધ થાય છે કે તેતુ કર્તવ્ય કર્મ તથા કર્મજનક દુઃસ્વ પણ ભિન્ન ભિન્ન અને અગણિત છે, કેમ કે કારણોમા ત્યારે ભેદ છે ત્યારે એમના કાર્યોમા પણ ભેદ માનવો પડે છે આથી એ નિશ્ચિત થાય છે કે સમસ્ત જીવોના હુખો પણ ભિન્ન ભિન્ન રૂપના છે આ બધાનો વિચાર કરી આરભણવી જવ શુ કરે ? આ અગે " સોઅર્હિસમાણે

मन्तुन् भविषिन्-चि=भिविषैरुपायैरिषिन्=अभिराधयन्, अपि च अनपमदन्-
अपमदति=मुपासदति य साऽपमदन्, यश्च न साहसः सः अनपमदन्=सत्यवादी, उप
सत्साधन्येषामपि अदत्तादानादिप्रदानां ग्रहणं, तन-परधनान्यनाहदत्, मधुनमना-
सूयांशसे करते हैं-जब वह अनारम्भजीवी अपने आप को इतना
तयार कर लेता है कि जिससे वह अन्य समस्त प्राणियों के सुख और
दुःख का भली भाँति ज्ञाता हो जाता है, जब वह किसी भी प्राणी की
हिंसा नहीं करता है, और न ऐसा कोई उपाय भी करता है कि जिससे
अन्य प्राणियों को कष्ट पहुँचे। वह अपनी दैनिकियों को तथा अपनी
प्रवृत्ति को इतनी सुरक्षित रखता है कि उसमें किसी भी प्राणी को छेदा
मात्र भी दुःख का अनुभव उसकी ओर से नहीं होने पाता है। झूठ
नहीं बोलता, परक घनादिकका अपहरण नहीं करता, कुशील के सेवन
से सर्वथा पर रहता है और परिग्रह का भी वह बिल्कुल परित्याग कर
देता है। इस प्रकार उसकी जब अच्छी तरह संतपारी हो जाती है तब
वह वास्तविक मुनिपदकी शोभावाला होता है। सूत्रस्थ “अणवपमाणे”
पद अन्य अदत्तादानादिक वस्तुओं का उपलक्षक है। तात्पर्य यह कि-
हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील और परिग्रह का सर्वथा परिचर्जन
करने से ही ममुच्य मुनिपदको शोभावाला होता है। इन हिंसादि के त्याग
से वास्तविक रूपमें पंच महाव्रतों का वह सम्पन्ना आराधक होता है।

अणवपमाणे " आ सूत्रणी प्रपञ्चु कृत्य सूत्रकार कहे छे के अन्धारे के अनन्तर
भल्लूनी पेटानां जानने कोटली कहे तेमर कही बे छे के कोनाथी ते अन्य
समस्त प्राणीजान्य सुख अने दुःखनो चारी रीते बाधुकार जनी जय छे जने
कोछ पञ्च प्राणीनी को दिसा कृत्यो नथी तेमज मनभा कोये विचार सरणो
अपना हेतो नथी के कोथी कोछ प्राणीजाने कष्ट पड़ेथि, ते पेटाना दैनिक अजने
तथा प्रवृत्तिने कोटली सुरक्षित राखे छे के कोथी कोछ पञ्च प्राणीने बैधमात्र पञ्च
दुःखना अनुभव कोना तरहथी जवा न पड़े, लुके नथी ग्राह्यतो पारका धननी
भारी नथी कृत्यो कुशीलसेवनथी को सदा सर्वथा दूर रह छे परिग्रहको ते
सर्वथा परित्याग कही के छे आ प्रकार कोनी स पूज्य वैधारी कष्ट जय छे तयारे
ते वास्तविक मुनिपदने शोभावनार अने छे सूत्रस्थ “अणवपमाणे” पद छे के
वीर्य अदत्तादानादिक वस्तुने उपलक्षक छे तात्पर्य को के-दिसा, लुके भारी
कुशील अने परिग्रहनु सर्वथा परिचर्जन करवाकी व अनुभव मुनिपदने शोभा
वनार अने छे आदिसादिना त्यागी वास्तविक रूपमा पंच महाव्रतने को सदा
आसक्त अने छे

સેવમાનઃ, પરિગ્રહ ચ વર્જયન્ મુનિર્ભવતિ । અપરં તસ્ય કાર્યમુપદિશતિ-‘સ્પૃષ્ટઃ’
 इत्यादि, स पञ्चमहाव्रतनिर्वाहपरायणः स्पृष्टः=परीषहोपसर्गैरालिङ्गितः स्पर्शान्
 शीतोष्णादिरूपान् , स्पर्शग्रहणस्योपलक्षणत्वादन्यानपि शब्द-रूप-रसादीन् विप्रणो-
 दयेत्-वि=विशेषेण विविधोपायैर्वा प्र=प्रकर्षेण जीवितस्य क्षणदृष्टनष्टतादिसमा-
 लोचनेन नोदयेत्=प्रेरयेत्-शब्दादिविषयालाभेन स्वात्मान नावमन्येतेत्यर्थः । मनो-

मुनिजन के अन्य कार्यों को प्रकट करने के लिये सूत्रकार “पुट्टो फासे
 विपणुन्नए” इस सूत्रांश से उनका दिग्दर्शन कराते हुए कहते हैं कि पांच
 महाव्रतों के निर्वाह करने में तत्पर वह मुनि परीषह और उपसर्गों से सम-
 न्वित होता हुआ भी शीतोष्णादिरूप स्पर्श तथा अन्य-शब्द, रूप और रसा-
 दिक विषय कि जिनका यहां पर “स्पर्श” इस उपलक्षणरूप पदसे ग्रहण
 हुआ है उन का सम्बन्ध विशेष रीति से, अथवा त्रिविध उपायों द्वारा
 अपनी आत्मा से हटा देवे। “विप्रणोदयेत्” इस क्रिया में “प्र” शब्द
 इस बात का समर्थन करता है कि इन विषयादिकरूप स्पर्शों से संबंध
 विच्छेद करनेके लिये मुनि को इस बातका विचार करना चाहिये कि
 यह मेरा जीवन अत्यल्प है, कल के भरोसे पर मुझे नहीं रहना चाहिये,
 जो कुछ करना है उसे आज ही अब ही कर डालना चाहिये, क्या पता
 कल आवे या न आवे, इस प्रकार जीवनमें क्षणदृष्टनष्टतादिकी समा-
 लोचनासे इन स्पर्शादिक विषयों के सम्बन्ध से आत्मा स्वयं सचेत हो
 कर रहित हो जाता है, फिर उनकी अप्राप्तिमें आकुलता नहीं होती

मुनिजनના અન્ય કાર્યોને પ્રગટ કરવા માટે સૂત્રકાર “પુટ્ટો ફાસે
 વિપણુન્નએ” આ સૂત્રદ્વારા સમજાવતા કહે છે કે-પાંચ મહા વ્રતોથી નિર્વાહ
 કરવામાં તત્પર એવા મુનિ પરીષદ અને ઉપસર્ગોમાં લાગ લેનાર અને
 શીતોષ્ણાદિરૂપ, સ્પર્શ તથા અન્ય શબ્દ, રૂપ, ગંધ અને રસાદિક વિષયો કે
 જેનો અહિં “સ્પર્શ” આ ઉપલક્ષણરૂપ પદથી સ્વીકાર કરાયો છે તે સંબંધ
 વિશેષ રીતિથી, અથવા વિવિધ ઉપાયોથી પોતાના આત્માથી દૂર કરે “વિપ્રણો
 દયેત્” આ ક્રિયામાં “પ્ર” શબ્દ એ વાતનું સમર્થન કરે છે કે આ વિષયા
 દિક સ્પર્શોના સંબંધ વિચ્છેદ કરવા માટે મુનિએ આ વાતનો વિચાર કરવો
 જોઈએ કે ‘મારું આ જીવન અત્યંત અલ્પ છે કાલના ભરોસે મારે ન રહેવું
 જોઈએ જે કાંઈ કરવું છે તે આજે જ અને અત્યારે જ કરવું જોઈએ કાલ થશે
 કે કેમ એનો ભરોસો શું ?’ આ પ્રકારે ક્ષણ જીવન અને તેના નાશની મનમાં સમા
 લોચના કરી આ સ્પર્શાદિક વિષયોના સંબંધથી, આત્મા સ્વયં સચેત
 બનીને અલિપ્ત બની જાય છે પછી એને અપ્રાપ્તિમાં આકુલતા થતી નથી તેમ

શ્રદ્ધાદીનધિગમ્ય તપુ રાગમમનાજ્ઞાન્ માપ્ય તેપુ ચ દ્વેષ શાપનયન્ મધ્યસ્થભાવેન તેપુ પરમાનો મુનિર્મયતીતિ મુપ્રતાસ્પર્યમ્ ॥ મૂ. ૧ ॥

તાદૃશમુનેર્ધનાત્પવર્ષયતિ-‘પસ’ ઇત્યાદિ ।

સૂત્ર-પસ સમિયાપરિયાપ ત્રિયાહિષ, જે અસત્તા પાવેહિં કસ્મેહિં, ઉદાહુ તે આર્યંકા ફુસતિ, ઇતિ ઉદાહુ ધીરે તે ફાસે પુહો અહિયાસહ । મે પુઠિંવપેય પચ્છાપેય મેઊરધન્મ વિદ્ધ સળધન્મ અધુવ અણિદ્ય અસાસય ચયાવચ્ચદ્ય વિપ્પરિણામ ધન્મ પાસહ એયં રુવસધિ ॥ સૂ. ૨ ॥

છાયા—એવ શ્રમિતાપર્યાયો બ્યાસ્પાવ, ‘યેઽસત્તા’ પાપેપુ કર્મસુ, ઉદાહ તાન્ માતઙ્કા સ્પૃહન્તિ, ઇતિ ઉદાહુર્ધીરસ્તાન્ સ્પૃષ્ટાઽપ્યાસવત્ । સ પૂર્વમપ્યતત્ પશ્ચાદ્ પ્યેતદ્ મિદુરપર્મ વિધ્વંસનપર્મમધુષમન્તિપ્યમશાશ્વત ચયાપચયિકં વિપરિણામપર્મ પશ્યતૈતં રૂપસન્ધિમ્ ॥ સૂ. ૨ ॥

ટીકા—‘પવ’ ઇત્યાદિ, એવ=પરીપદ્યપ્રણાદકઃ શ્રમિતાપર્યાય -શ્રમેઽસ્તિ અસ્મતિ શ્રમી=શ્રમવાન્, તસ્ય માય શ્રમિતા, તયા પર્યાયધારિશ્ચાર્યં યસ્ય સ શ્રમિ-
ઞ્ચૌર ન આત્મગ્લાનિ હીં જગતી હૈ । હસ સૂત્રકા ભાષાર્યં યહ હૈ—“મનોઙ્ક શાન્દાવિક વિપર્યોં કી પ્રાપ્તિ મેં રાગ, ઓર અમનોઙ્ક-અરુચિકર કી પ્રાપ્તિ મેં દ્વેષકો દૂર કર મુનિકા કર્મણ્ય હૈ કિં બહ ઉતમેં મધ્યસ્થભાવસે કર્તન કરે । તબ હીં બહ સચ્ચા ત્યાગી-મુનિ હો સક્તા હૈ ॥ સૂ. ૧ ॥

હસ પ્રકાર કે મુનિયોં ક ગુણોંક પ્રવર્ણન સૂત્રકાર કરતે હે—‘પસ’ ઇત્યાદિ ।

જો પરીપદ્ય કા ઝીતનેવાલા હોતા હૈ બહી શમિતા-પર્યાયવાલા હોતા હૈ । શમ જિસક હોતા હૈ બહ શમી-શમવાન્ હૈ । શમી કા ‘માય શમિતા

આત્મજ્ઞાની પણ બામતી નથી. આ સૂત્રનો ભાષાર્ય આ છે—કે મનોઙ્ક શાન્દાવિક વિપર્યોની પ્રાપ્તિમાં રાગ અને અમનોઙ્ક-અરુચિકરની પ્રાપ્તિમાં દ્વેષને દૂર કરવા એ મુનિનું કર્તવ્ય છે કે-તે મધ્યસ્થભાવથી વર્તન કરે ત્યારે જ તે આધિ ત્યાગી બેટશે મુનિ બને છે ॥ સૂ. ૧ ॥

આ પ્રકારે મુનિજ્ઞાના શુદ્ધિનું વર્ણન કરતા સૂત્રકાર કહે છે—‘પસ’ ઇત્યાદિ.

જે પરિપદ્યને છત્તવાળો બને છે તે જ શમિતા-પર્યાયવાળો બને છે. શમ નેને શય છે એ જ શમી - શમવાન્ છે, શમિની ભાવ શમિતા છે. શમિતાથી

તાપર્યાયઃ, વ્યધિકરણવહુગ્રીહિઃ । યદ્વા-સમ્યક્પર્યાય ઇતિ-ઢાયાઃ ‘સમ્યક્પર્યાયઃ =સમ્યક્=પ્રશસ્તઃ પર્યાયો યસ્ય સ સમ્યક્પર્યાયઃ=પ્રશસ્તચારિત્રવાન વ્યાખ્યાતઃ-વિ=વિવિધપ્રકારેણ આખ્યાતઃ=સ્થિતઃ । પરીપદોપમર્ગાપનોદકમ્ય અસાતાવેદનીયકર્મોદયાદ્રોગસમુદયે તસ્યૈવ તત્ત્વજ્ઞનીલતામાહ—‘યેઽસક્તાઃ’ ઇત્યાદિ, યે=અનિર્દિષ્ટનામાનઃ પાપેષુ=પાપજનકેષુ ચારિત્રમોહનીયેષુ વા ર્મગુ અસક્તાઃ=અનિર્ભરા, યદ્વા--પાપેષુ કર્મગુ હિંસાદિષુ અસક્તા =અપ્રવૃટ્તાઃ મન્તિ, મૃલે ચાર્પત્વાત્સમ્યક્યર્થતૃતીયા; ઉદાહ=કદાચિત્ત્વાન પાપકર્મસ્વમક્તાન મુનોન આતઙ્કાઃ=શીઘ્રપ્રાણઘાતિનઃ શૂલાદયો રોગવિશેષાઃ સ્પૃશન્તિ=આક્રામ્યન્તિ-અભિમત્તીત્યર્થઃ, એવ ચેત્કિમેતે-હૈ । ઝમિતા સે ચારિત્રકા ગ્રહણ જિસકે હોતા હૈ વહ ઝમિતાપર્યાયિવાલા હૈ । વહ વિવિધ પ્રકારસે કહા ગયા હૈ । અથવા-“ સમિયાપરિયાણ ” ડસકી સસ્કૃત ઢાયા “ સમ્યક્પર્યાયઃ ” ખી હોતી હૈ । સમ્યક્ કા અર્થ પ્રશસ્ત, પર્યાય કા અર્થ ચારિત્ર હૈ । પ્રશસ્ત હૈ ચારિત્ર જિમકા વહ સમ્યક્પર્યાયવાલા-પ્રશસ્તચારિત્રવાલા વિવિધ પ્રકાર સે કહા હૈ । અર્થાત્-પરીપદો કા જીતનેવાલા સમતાભાવ સે ચારિત્ર કા ગ્રહણ કરનેવાલા અથવા-પ્રશસ્તચારિત્રવાલા કહા ગયા હૈ ।

પરીપદ્ધ અને ઉપમર્ગો કો જીતનેવાલે સાધુ કે અસાતાવેદનીય કર્મ કે ઉદય સે રોગસમુદય આને પર ડસે ડનકો સહન હી કરના ચાહિયે, યહ વાત મત્રકાર “ જે અસક્તા ” ઇત્યાદિ સૂત્રાંશ સે પ્રકટ કરતે હૈ । જો સાધુ પાપજનક કર્મો મે અથવા ચારિત્રમોહનીય કર્મ મે અનાસક્ત હૈ ડન્હે કદાચિત્ શીઘ્ર પ્રાણઘાતક શૂલાદિક રોગવિશેષો કા સામના ખી

જે ચારિત્ર ગ્રહણ કરે છે તે ઝમિતા-પર્યાયવાળો બને છે
“ સમિયાપરિયાણ ” આની સસ્કૃત ઢાયા “ સમ્યક્પર્યાય ” પણ થાય છે સમ્યક્નો અર્થ પ્રશસ્ત, પર્યાયનો અર્થ ચારિત્ર છે જેનુ ચારિત્ર મહાન છે-વખાણુવા જેલુ છે તે સમ્યક્પર્યાયવાળા-પ્રશસ્તચારિત્રવાળા વિવિધ પ્રકારે ઢહેવાય છે, અર્થાત્-પરીપદોને છતનાર અને સમતાભાવથી ચારિત્રનુ ગ્રહણ કરનાર અથવા-પ્રશસ્ત ચારિત્રવાળા ઢહેવાય છે

પરીપદ્ધ અને ઉપમર્ગોને છતનાર સાધુને અસાતા-વેદનીય કર્મના ઉદયથી રોગનો ઉપદ્રવ આવે તો ઝને તેણે મહન કરવો જોઇજો આ વાત સૂત્રકાર “ જે અસક્તા ” ઇત્યાદિ સૂત્રોથી પ્રગટ કરે છે - જે સાધુ પાપજનક કર્મોમા અથવા ચારિત્રમોહનીય કર્મોમા અનાસક્ત છે તેને કદાચ શીઘ્ર પ્રાણઘાતક શૂલાદિક રોગ

नेत्याह—‘इती’—त्यादि, इति=एतत् भक्ष्यमाणम्—उदाहृतम्=कथितवन्तस्तीर्थेभ्यश्चरण
 परादय, किन्माहुरित्याह ‘धीर’—इत्यादि—शून्याविरागविशेषे स्पृष्टः=अभिभूतः धीर
 =तत्सहने भैयवान् सन् तान् स्पृष्टान्=रागविशेषोत्पन्नाः वदना अव्यासयेत्=
 महत्—नाद्विजेतस्यैव । चारित्र्यमोहनीयकर्मण्य ध्यापयन् चारित्र्यं ममते, वेदनी
 योदयन च केवलित्वाऽपि रागा अभिमनन्ति, तत्तथैव रागै स्पृष्टा मनास्तानि न
 कुर्यादित्याशय । किं वैतदपि वतसि परिचितस्य वदनां सहेतेत्याह—‘म’ इत्यादि,
 सः=रागैरभिभूतः चिन्तयत्-यत्-एतत् अमातावेदनीयविषयकमनितं दुःखं पूर्वमपि
 करना पड़ना है—उन पर माणघातक शूलादि रोगविशेष आक्रमण करते
 हैं । ऐसे मुनियों के लिये तीर्थेभ्यश्चरणे या गणधरादिक महर्षियोंने
 यह (भक्ष्यमाण) बात कही है । क्या कही है ? हम जिज्ञासा का ‘धीरे’
 इत्यादि द्वारा समाधान करते हुए सूत्रकार कहते हैं “किं वह धीर—धीर
 साधु शूलादिक रोग विशेषों से आक्रान्त होता हुआ भी उन शूलादिक
 जनित वेदनाओंको सहै, उनसे उद्भिन्नचित्त न बने । चारित्र्यमोहनीय
 कर्म के ध्यापयणसे जीव चारित्र्यकी प्राप्ति करता है । वेदनीय कर्म के
 उदय से अनेक प्रकार की वदनाएँ उत्पन्न होती हैं, अतएव केवलियों तक
 को भी रोगों का सामना करना पड़ता है । वे भी जब वेदनीय के उदय
 से रोगों से आक्रान्त हो जाते हैं, तो साधारण मुनियों की तो बात ही
 क्या है ? हम लिये ऐसी परिस्थिति में मुनिको कभी भी आत्मग्लानि
 नहीं करनी चाहिये । हमारे—अपने मनमें यह भी बिचार कर वेदनाओं
 को सहम करना चाहिये कि मैं इस समय जो रोगादिकों से अभिमूत

नजेशेना आत्मना करवे पडे छे—जेना उपर आशुभातक शूलादिक रोग जेकड़ी
 आक्रमण करे छे जेवा मुनिभेने भाटे तीर्थेभ्यश्चरणे तेमभ गजुधरादिक मह
 षिंकोजे आ बात कही छे शु कहु छे ? आ एतासानुसारसारदास समाधान कएता
 सूत्रकार कहे छे के—अ धीर धीर साधु शूलादिक रोगभी आक्रमण कीया कएता
 शूलादिक वेदनाआ अहे, जेनाभी जे उद्भिन्नचित्त न जने । आदिभेभेकनीय कर्मना
 ध्यापयणभी एव आदिनी प्राप्ति करे ॥ वेदनीय कर्मना उदयभी अनेक प्रकारनी
 वेदनाको उत्पन्न पाव ॥ केवलिभेने पणु रोजेना आत्मना करवे पडे छे तेको
 पणु क्यार वेदनीयना उदयभा रोजेभी शिखर जव ॥ ते पछी साधारण मुनि
 भेनी तो बात न सी करवी ? भाटे आनी परिस्थितिआ मुनिजे कही पणु आत्म
 ग्लानी करवी जेके नही जाणु पोछना मनमा जेवा पणु विचार करी वेद
 नाजेने अहेवी जेके के दुःख आ समय के रोग आदिभी चिह्नित छु जे जवा

મયૈવ સહનીયમ્, एतत्=एतदेव दुःखं पश्चादपि वर्तमानकालानन्तरं वार्द्धक्यादावपि मयैव सखं स्यात्, तीर्थङ्करादीनामपि तत्सम्भवादित्यवधार्य स्वात्मानं नात्रमानयेत्, उक्तंच—

હો રહા હું, સો યહ સચ અસાતાવેદનીય-કર્મજનિત વિલાસ હૈ । હસ જીવ કે સાથ હસકા સમ્બન્ધ પહિલે સે લગા આ રહા હૈ । યહ અબી નવીન તો બધા નહીં હૈ । તવ જો કર્મ વધા હૈ ઉસકા ઉદય તો આવેગા હી । ઉસકે ઉદયમે खेदखिन्न होना उस कर्म के नवीन बंध की दृढता का कारण है, समता से उसके फल को भोगना निर्जरा का हेतु है, अतः इसका उदयजन्य दुःख पूर्व में भी मैंने ही भोगा है और आगे भी वृद्धावस्था आदि में वही दुःख मुझे ही भोगना पड़ेगा । अरे ! मेरी तो यहां पर क्या गिनती है ? दुःख यह समझ कर मुझे थोड़े ही छोड़ देगा कि 'यह साधु है' । अरे ! मेरे जैसों की क्या बात ? तीर्थंकरादिकों को भी तो कष्टों की संभावना रहती है ।

માવાર્થ—દુઃખોં કે આને પર દુઃખિત પ્રાણી જવ અપને સમક્ષ અન્ય દૂસરે વ્યક્તિયોં કે દુઃખોં કા વિચાર કરતા હૈ, તો ઉસે આગત દુઃખોં કો સહને મેં પ્રોત્સાહન મિલતા હૈ, યહી વાત યહાં પર ટીકાકાર ને પ્રકટ કી હૈ, તીર્થંકરાદિક જૈસે મહાપુરુષોં કા ઉસકે સમક્ષ ઉસ અવસ્થા મેં આદર્શ ઉપસ્થિત કિયા હૈ, જિસસે વહ દુઃખોં કે સહને મેં

અસાતા-વેદનીય કર્મોનો વિષાક છે આ જીવનની સાથે તેનો સબધ પહેલાથી લાગેલો છે, આ આજે નવીન તો બધાયેલ નથી, ત્યારે જે કર્મ બધાયેલ છે તેનો ઉદય આવવાનો જ, આ ઉદયમા અકળામણ અનુભવવી તે કર્મનો નવા બધનુ બધન બાધવા સમાન છે સમતાથી તેના ફળને ભોગવવુ તે નિર્જરાનો હેતુ છે, એટલે તેના ઉદયજન્ય હુ બં પૂર્વમા પણ મે ભોવવ્યા છે અને આગળ પણ વૃદ્ધાવસ્થા આદિમા પણ હુ બં મારે ભોગવવુ પડશે અરે ! મારી તો શુ ગણતરી છે હુ બં એવુ સમજીને મને નહીં છોડી દે કે 'એ સાધુ છે' તીર્થંકરાદિકને પણ કષ્ટની સંભાવના રહે છે

ભાવાર્થ—હુ બંના આવવાથી હુ ખિત પ્રાણી પોતાની સામે બીજી વ્યક્તિ-ઓના હુ બંને વિચાર કરે છે તો તેને આગળ આવતા હુ બંને સહન કરવામા પ્રોત્સાહન મળે છે આ વાતને ટીકાકારે અહિં પ્રગટ કરેલ છે તીર્થંકરાદિક જેવા મહાપુરુષાંના તેની સામે તેવી અવસ્થામા આદર્શ ઉપસ્થિત કરેલ છે જેથી તે હુ બં સહન કરવામા લીલો-પોચો ન બની બીજા ચારિત્રની પ્રાપ્તિ અન્ય કર્મોના

“સ્વકૃતપરિણતાનાં, પુર્નયાનો વિપાક, પુનરપિ સહનીયો નાન્યથા તે વિમોક્ષ” ।
 इति मनसि विचार्य प्राप्तदुःखं समस्तं, समपरिणतिमावाप्तस्मत्त सयतैस्तत् ॥१॥” इति
 मलिनपरिणामी न बन सके । चारिषकी प्राप्ति अन्य कर्म के क्षयोप
 शमाधिक का कार्य है और दुःखों का आना अन्य अन्य दूसरे कर्म के
 उदय का कार्य है । एक के क्षयोपशम में अन्य का भी क्षयोपशम हो
 जायगा यह तो कोई नियम नहीं है । अतः चारिषाराधन करनेवालों
 को कष्टों का सामना न करना पड़े यह मान्यता कैसे युक्तियुक्त हो सकती
 है । इसलिये कष्टों को भोगते समय आत्मा में समताभाव धारण
 करना ही श्रेयस्कर मार्ग है । आत्मग्लानि करना कर्मपथकी दृढ़ता का
 कारण बनता है; इसलिये मोक्षार्थीजनका यह कर्तव्य है कि वह बीर्योद्भास-
 शाली बन उनका सदा सामना करनेमें कटिबद्ध रहे । कहा भी है—

“स्वकृतपरिणतानां पुर्नयानां विपाक,

पुनरपि सहनीयो नान्यथा ते विमोक्षः ।

इति मनसि विचार्य प्राप्तदुःखं समस्तं,

समपरिणतिमावाप्तस्मत्त सयतैस्तत्” ॥१॥ इति,

इम प्रकार दुःखों क आने पर साधुजनका उनके सहन करने का
 यह विचार परम पवित्र है । वे यह सोच कर दुःखों को सहन करें कि
 मेरे कर्मों की निर्जरा का यही सुन्दर अवसर है ।

क्षયોપશમાદિકુ કામ ॥ અને દુઃખેનુ આવવુ બીજા કમીના ઉદયનુ કારણ છે.

એકના ક્ષયોપશમમા બીજાનુ પણ ક્ષયોપશમ બની રહે છે એવો તે કોઈ નિયમ
 નથી માટે આ ચારિત્રનુ આરાધન કરવાવાળાને કષ્ટોનો આમને ન કરવો પડે
 એ માન્યતા કેવી રીતે બાબતેસતી થઈ શકે ? માટે કષ્ટોને સોમવતી સમજ
 આત્મામાં સમતાભાવ ધારણ કરવો એ શ્રેયસ્કર માર્ગ છે, આત્મગ્લ્યાનિ કરવી એ
 કમ બધનની દૃઢતાનુ કારણ બને છે જેથી મોક્ષાર્થી બનવુ એ કલ્પ છે કે તે
 મક્કમ બની તેને સદા સામનો કરવામા કળિબદ્ધ રહે । કહ્યું પણ છે—

સ્વકૃતપરિણતાનાં પુર્નયાનાં વિપાક પુનરપિ સહનીયો નાન્યથા તે વિમોક્ષ” ।

इति मनसि विचार्य प्राप्तदुःखं समस्तं समपरिणतिमावाप्तस्मत्त सयतैस्तत् ॥१॥ इति

આ પ્રકારના દુઃખે આવવાથી સાધુજનને તેને પ્રહન કરવાને તેવો વિચાર
 પરમ પવિત્ર છે તે એવુ વિચારીદુઃખાને સહન કરે કે મારા કમીની નિર્જરાને
 આ સુંદરમા સુંદર અવસર છે

પરમાવસરોડયં કર્મનિર્જરાયા ઇતિ ક્ષમેત વેદનામિતિ તાત્પર્યમ્ । કિંચ-ઉદં શરીરં રસાયનાદિસેવનેન સમુપજાતોપચયમપિ પાર્થિવામકુમ્ભવદન્તઃસારશૂન્યં ક્ષણદૃષ્ટનષ્ટમસ્તીત્યાહ-‘મિદુરધર્મ’-મિત્યાદિ,-મિદુરધર્મ=મિદુરઃ ક્ષણમઙ્ગુરો ધર્મઃ સ્વભાવો યસ્ય તત્ મિદુરધર્મ=વિનશનશીલ શરીરમ્, ઔદારિકસ્ય સુપોપિતસ્યાપિ

તથા—રસાયનાદિકે સેવન સે હસ શરીરમેં પુષ્ટિ આતી હૈ તો ખી જિસ પ્રકાર મિટ્ટી કા કચ્છા ઘટ ખીતર મેં સારરહિત હોતા હૈ—પાની કે છીટે લગતે હી જૈસે વહ દેખતેર નષ્ટ હો જાતા હૈ, ઉસી પ્રકાર સે હસ શરીર કી ખી યહી પરિસ્થિતિ હૈ । વેદના આદિ બલવાન આયુઃ ક્ષયકે કારણો કે આ જાને પર સચ રસાયનાદિ અકિશ્ચિત્કર (રોગ હટાને મેં અસમર્થ) હો જાતે હૈં ઓર યહ શરીર ખી દેખતેર નષ્ટ હો જાતા હૈ, અપના કિયા-કરાયા સચ નિષ્ફલ હો જાતા હૈ । મુનિકો એસા વિચાર કર વેદનાઓં કે સહને મેં કાયરતા નહીં લાની ચાહિયે । ડસ પ્રકાર ઉસકે ઉત્સાહ-વર્ધનાર્થ સૂત્રકાર “ મિડુરધર્મમ્ વિદ્વંસણધર્મમ્ ” ઇત્યાદિ પદોં સે શરીર કા સ્વભાવ પ્રદર્શિત કરતે હૈ । ક્ષણમંજુર જિસકા સ્વભાવ હૈ વહ મિદુરધર્મ હૈ । યહ ઔદારિક શરીર વિનશનશીલ હૈ । અચ્છી તરહ સે પોષિત કરને પર ખી યહ અપને સ્વભાવ કો નહીં છોડતા હૈ । કદાચિત્ વેદનીય કા ઉદય હો જાતા હૈ તચ શીઘ્ર હસકે અંગ-ઉપાંગોં મેં અનેક પ્રકાર કે પરિવર્તન હોતે દેખે જાતે હૈ । હસીકી પુષ્ટિ ટીકાકાર—

ફરી—અર્થાત્ રસાયણાદિકના સેવનથી શરીરમા પુષ્ટિ આવે છે તે પછી જે પ્રકારે માટીનો કાચો ઘડો અદૃશ્ય સાગરહિત હોય છે, તેને પાણીનો થોડો માત્ર સ્પર્શ થતા ભેત-ભેતામા તે ગળી જઈ નાશ પામે છે, એ જ રીતે આ ગરીરની પણ તેવી જ સ્થિતિ છે વેદના આદિ બલવાન આયુ ક્ષયના કારણે ઉપસ્થિત બનતા બધા રસાયનાદિક અકિશ્ચિત્કર (રોગને નિર્મૂળ કરવામા અસમર્થ) બની બંધ છે, અને આ શરીરનો ભેત-ભેતામા નાશ થઈ બંધ છે, અને ઈચ્છુ કરાવ્યું બધું નિષ્ફળ બની બંધ છે મુનિએ આવો વિચાર કરી રોગની વેદના મહન કરવામા ડોઝ પ્રકારની કાયરતા બતાવવી ન ભેઈએ આ કારણે એમનામા ઉત્સાહ દઢ બનાવવા સૂત્રકાર “ મિડુરધર્મમ્ વિદ્વંસણધર્મમ્ ” ઇત્યાદિ પદોથી શરીરનો સ્વભાવ કેવો છે તેનું વર્ણન કરે છે—ક્ષણભ્રમુ એનો સ્વભાવ છે, એ મિદુરધર્મ છે મુદુર દેખાતો માનવદેહ વિનાશ માટે જ અર્થથી છે ગમે તેવું લાલન-પાલન કરે છતાં એ પોતાનો સ્વભાવ ડાંડતો નથી કોઈ વખત વેદનીયનો ઉદય થાય છે ત્યારે તેના અંગઉપાંગોમા શીઘ્ર અનેક પ્રકારનું

લમિત્યર્થઃ, एवम्-अधुवम्=अनिश्चितस्थितिकं चञ्चलस्वभावत्वात्, अनित्यम्-तच्चा-
प्रच्युतानुत्पन्नस्थिरायोघनस्वभावं नित्यं, न नित्यम्-अनित्यम्=अस्थायिस्वभावम्,

भी हस्त-पादादिक अंगविशेष में उपघात-चोट आदि के लगने पर इस का अधःपात हो जाता है । जिस प्रकार जीर्ण-शीर्ण पत्तों का अधःपतन होता रहता है, ठीक यही दशा इस शरीर की होती रहती है । मर्मस्थानों में या हस्त-पादादिकों (हाथ-पग) में विशेष चोट लगने से मृत्यु हो जाती है, यह अनुभवसिद्ध बात है, इसलिये इसे अधुव भी कहा है । इसके रहने की कोई निश्चित स्थिति नहीं है । यद्यपि शास्त्रों में औदारिक शरीर की स्थिति उत्कृष्ट और जघन्य रीति से प्रदर्शित की गई है; परंतु उतनी ही स्थिति इसके उदय में आवेगी यह तो कोई निश्चित बात नहीं । अकाल में भी इसका पतन होता देखा जाता है । क्यों कि इसका स्वभाव ही चंचल है, स्थिर नहीं, अतः इस अपेक्षा से यह अनित्य है । यद्यपि द्रव्यदृष्टि से किसी भी वस्तु का समूल नाश नहीं होता है, तो भी पर्यायदृष्टि से प्रत्येक पदार्थ परिणामनशील है । जो वस्तु अपने स्वरूप से अप्रच्युत अनुत्पन्न स्थिर और अयोघन स्वभाववाली होती है उसका नाम नित्य है । इस प्रकार की नित्यता से जो रहित है, वह अनित्य है । इस शरीर में इस प्रकारकी नित्यता नहीं है, क्यों कि यह पूरण-गलन-

ઈત્યાદિ કોઈ ભાગ ઉપર ચોટ આદિ લાગી જતા તેના અધ પાત થઈ જાય છે જેવી રીતે આડ ઉપરના છુર્ણ પાટડાને હવાનો આધારણ સ્પર્શ લાગતા જ તે ખરી પડે છે, ઠીક આવી દશા આ શરીરની થતી રહે છે મર્મ સ્થાનોમા અને હાથ પગોમા વિશેષ ચોટ લાગવાથી મૃત્યુ થાય છે, એ અનુભવસિદ્ધ વાત છે આ કારણે એને અસ્થિર કહેવામા આવે છે તેને ગ્રહેવાની કોઈ નિશ્ચિત સ્થિતિ નથી તો પણ શાસ્ત્રોમા ઔદાગિક શરીરની સ્થિતિ ઉત્કૃષ્ટ અને જઘન્ય રીતિથી પ્રદર્શિત કરેલ છે, પરંતુ એટલી જ સ્થિતિ તેના ઉદયમા આવશે એવી તો કોઈ નિશ્ચિત વાત નથી. અકાલમા પણ તેનું પતન થવું અમલવ નથી, કારણ કે તેનો સ્વભાવ ચચલ જ છે-સ્થિર નથી, એથી આ અપેક્ષાએ આ અનિત્ય છે, પરંતુ દ્રવ્ય-દૃષ્ટિથી કોઈ પણ વસ્તુનો સમુજો નાશ થતો નથી તો પણ પર્યાયદૃષ્ટિથી પ્રત્યેક પદાર્થ પરિણમનશીલ છે, જે વસ્તુ પોતાના સ્વરૂપથી અપ્રચ્યુત અનુત્પન્ન સ્થિર અને અયોગન સ્વભાવવાળી હોય છે તેનું નામ નિત્ય છે, આવા પ્રકારની નિત્યતાથી જે રહિત છે તે અનિત્ય છે આ શરીરમા એવા પ્રકારની નિત્યતા છે નહિ, કારણ કે તે પૂરણ-ગળન-

अशाश्वतम्-अश्वत्-सर्वदा मयं शाश्वतं, न शाश्वतम्-अशाश्वत-नित्यावस्थान-
रहितम्, यथं चयापचयिकम्-इष्टाहाराद्युपयोगादौदारिककायवर्गणापरमाणुनाष्ट
पचयाचय, तद्विकृताऽपचय, चयापचयश्च चयापचयौ, तावत्स्यस्यति चयापच-
यिकं-वृद्धिस्तयम्भावम्; अत एव विपरिणामधर्मं वि-विधितैर् गर्भकोमारयोवनवा
र्धकादिरूपैः परिणाम-दुग्धस्य दधियदन्यथाभावो विपरिणाम, मणव धर्म स्वभावा
स्वभाववाला है। इसलिये यह प्रच्युत उत्पन्न और अस्थिर है। जिस
प्रकार कूटस्थ नित्य में कोई भी जान का परिणामन इष्टिपथ नहीं होता
है उस प्रकार का कूटस्थ नित्य अयोधनस्वरूप यह शरीर नहीं है,
इसलिये यह अनित्य है-अस्थायिस्वभाववाला है। जो निरन्तर रह
उमका नाम शाश्वत है, जो शाश्वत नहीं है उसका नाम अशाश्वत है।
यह शरीर अशाश्वत इसलिये है कि इसका अवस्थान नित्य नहीं है।
इसी प्रकार यह शरीर चय और अपचय विनिष्ट है-इष्ट आहारादिक
क उपयोग-सेवन से औदारिक कायवर्गणा के परमाणुओं की वृद्धि से
इसमें चयस्वभावता, और इससे विपरीत आहारादिक क उपयोग से
अपचयस्वभावता सिद्ध है। चय और अपचय में वृद्ध समास है।
चय और अपचय से जो पुत्त हो-अर्थात् चय और अपचय जिस में हो
वह चयापचयिक है। वृद्धिस्तयस्वभावस्वरूप यह शरीर है। समयानुसार
घटती-वदती शरीर में होती हुई प्रत्यक्ष प्रतीत होती है, इसीलिये
यह विपरिणामधर्मवाला है। जिस प्रकार दूध का परिणाम दही-आदि

स्वभाववाला है आ आखे त प्रच्युत उत्पन्न और अस्थिर है के प्रकार
कूटस्थ नित्यता का पक्ष जातु परिणाम जेवना आगत नहीं त प्रकार
अयोधनस्वरूप आ शरीर नहीं भाते आ अनित्य छ-अस्थायी स्वभाववाला
है के निरन्तर रहे तेनु नाम शाश्वत छ न शाश्वत नहीं तेनु नाम अशा-
श्वत छ आ शरीर अशाश्वत जेटला भाटे छ के जेनी अपचय नित्य नहीं.
आ प्रकार अत शरीर चय और अपचय-विनिष्ट छ धरत अवधारितिकता उप
योग-सेवन-की औदारिककायवर्गणा परमाणुज्यानी वृद्धिथी तेम चय-स्वभावता-
और जेवनी विपरीत अवधारितिकता उपयोगधी अपचय-स्वभावता सिद्ध छ
चय और अपचयमा सामस्यो स्वभाव छ चय और अपचय जेमा दोम त
चयापचयिक छ वृद्धि-चय-स्वभाववाला आ शरीर छ समयानुसार घट-वध
शरीरमा चय छ तेम प्रत्यक्ष जेभाई आवे छ आ आखे त विपरिणामधर्म
वालो छ जेम दुधनु परिणाम दही आदि अवस्थाधर्म आम छ तेवी रीते आ

યસ્ય તદ્વિપરિણામધર્મમ્ એકસ્મિન્નેવ જન્મનિ વિવિધાવસ્થાવિશેષૈરનેકવિધ-
પરિણામસ્વભાવં શરીરં વર્તેતેऽતોઃ હે મુનયઃ ! યૂયમ્ એતંરૂપસન્ધિમ્=ભિદુરાદિસ્વ-
ભાવં શરીરં સુકુલજન્મબોધિલાભાધવસર ચ પश्यत=પ્રેક્ષધ્વ જાનીતેત્યર્થો વા, તેન
શરીરે મમત્વં વિઘાય તપઃસંયમાદેઃ સાફલ્ય વિધેયમિતિ ભાવઃ ॥ સૂ. ૨ ॥

ભિદુરધર્માદિસ્વરૂપં શરીરં વિલોકયતો યદ્ભવેત્તદ્દર્શયતિ-‘સમુપ્પેહ’-‘ઇત્યાદિ’ ।

**મૂલમ્—સમુપ્પેહમાણસ્સ ઇક્કાયયણરયસ્સ ઇહ વિપ્પમુક્કસ્સ
નત્થિ મગ્ગે વિરયસ્સ—ત્તિબેમિ ॥ સૂ. ૩ ॥**

છાયા—સમુપ્પેક્ષમાણસ્યૈકાયતનરતસ્યેહ વિપ્રમુક્તસ્ય નાસ્તિ માર્ગો વિરત-
સ્યેતિ બ્રવીમિ ॥ સૂ. ૩ ॥

અવસ્થારૂપ હોતા હૈં ઉસી પ્રકાર ઇસ શરીર કે પરિણામસ્વરૂપ ગર્ભ-
કૌમાર (બાલ્ય અવસ્થા) ઓર યૌવન એવ વૃદ્ધ અવસ્થાનં હૈં । ઇસ પ્રકાર
એક હી જન્મ મેં ઇન અનેક અવસ્થાવિશેષો સે ઇસ શરીર કા ભિન્ન ૨
રૂપ મેં પરિણમન હોતા હુઆ દેખા જાતા હૈં । ઇસલિયે હે મુનિયોં !
રૂપસન્ધિ અર્થાત્ ભિદુરાદિસ્વભાવવાલા રૂપ=શરીર કો એવં ઉત્તમકુલ
મેં ઉત્પત્તિ તથા બોધિલાભ આદિ પ્રાપ્ત કરને કી સંધિ=અવસર કો દેખો ।
ઇસકા અભિપ્રાય યહ હૈં કિ-શારીરિકમમતા છોડ કર તપ સંયમ
આદિ કા આરાધન કર જીવન કો સફલ બનાઓ ॥ સૂ. ૨ ॥

ઇન પૂર્વોક્ત વિશેષણોં સે વિશિષ્ટ શરીર કો સમજનેવાલે મુમુક્ષુજન
કો જો લાભ હોતા હૈં, સૂત્રકાર ઉસે પ્રકટ કરતે હૈં-‘સમુપ્પેહ’-‘ઇત્યાદિ’ ।

શરીરતુ પરિણામ-સ્વરૂપ ગર્ભ યાદ્યાવસ્થા અને યૌવન તેમજ વૃદ્ધ
અવસ્થાઓ છે- આ રીતે એક જ જન્મમા જુદી જુદી અનેક અવસ્થા ઉપલબ્ધ
આ શરીરના ભિન્ન ભિન્ન રૂપમા પરિણમે છે જે સમયાતુક્રલ દેખાઈ આવે છે
આ કારણે હે મુનિઓ ! રૂપસન્ધિ અર્થાત્ ભિદુરાદિસ્વભાવવાળું રૂપ, શરીરની
ઉત્તમ કુળમા ઉત્પત્તિ, લાભ આદિ પ્રાપ્ત કરવાની સંધિ-અવસરને જુઓ.
આને અભિપ્રાય એ છે કે શારીરિક મમતાને છોડીને તપ સંયમ આદિતુ
આરાધન કરી જીવનને સફલ બનાવો ॥ સૂ. ૨ ॥

આ પૂર્વોક્ત વિશેષણોથી વિશિષ્ટ શરીરને સમજવાવાળા મોક્ષાર્થી જનને
જે લાભ થાય છે તેને મૂત્રકાં પ્રગટ કરે છે- “સમુપ્પેહ” ઇત્યાદિ

नीका—‘समुत्प्रेक्षमाणस्य’—त्यावि। समुत्प्रेक्षमाणस्य—सम्पत्—सम्पत् उत्प्रेक्षमाणस्य=पश्यतः—मिदुरादिघर्मात्मकं शरीरमित्यर्थं निम्नित्यस्य इत्यर्थः, एकायतनरतस्य=सकलसावधम्यापारेभ्य आत्मा भावस्यते यस्मिन्, निष्णाचरण वा यत्नवान् विधीयते इत्यायतनं=रत्नत्रयम्, एकम्=सजातीयद्वितीयपरहितम् भावतनम् एकायतने, तस्मिन् रतः=तत्पर=एकायतनस्तस्तस्य=रत्नत्रयममाराधनपरायणस्य

जिसे यह दृढ़ प्रतीति हो चुकी है कि पौष्टलिक होने से यह शरीर मिदुरादिघर्मात्मक है, इससे आत्मकन्याण का मार्ग सावा जा सकता है, अतः इसकी उपयोगिता अवश्य कर लेनी चाहिये, नहान तो न बालूम कप इसका पतन हो जावे और मैं यों ही संसार में परिध्रमण करता रहूँ। इस प्रकार की पवित्र भावना के बधावर्ती हो कर जो सकल सावध व्यापारों से निवृत्त होते रहते हैं वरत्नत्रयरूप निज आत्मस्वभाव में रत बनते हैं। तथा संसार, शरीर एवं मोगों से सर्वथा छोड़ी हुई कौयली से सप की तरह जो अलिप्त रहते हैं, अपनी प्रवृत्ति को रातदिन बैराग्य की भावना रूपी पुटसे निर्मल बनाते रहते हैं, ऐसे विरत मुनि का नरकनिगोदादिक में गमन नहीं होता है। इन्हीं समस्त अभिप्रायों को चित्त में धारण कर सूत्रकार ने ‘समुत्प्रेक्षमाणस्य’ इस सूत्र का अवतरण किया है। ये कहते हैं—‘समुत्प्रेक्षमाणस्य’ यह शरीर मिदुरादिघर्मात्मक है इस प्रकार से इस शरीरका अच्छी तरह से जिसे निष्पक्ष हो चुका है, वार इसीलिये जो “एकायतनरतस्य” एकायतनत्वस्वरूप रत्नत्रय में रत बना हुआ है—सकल

लेनाधी आधी १६ मात्रा का मुद्रा छ के पौष्टलिक होनाथा आ शरीर मिदुरादिघर्मात्मक छ केनाधी आधमककथावने मान साधी मुद्रा छ के टक् केने उपभाग १२३था ३री लेवा केने के न आवे कथारे केनु पतन था वय, आ नमाराभा दु आव रीत परिवर्तन करता न रहु केवा प्रकास्ती पवित्र भावनाने वरा यर्ध २१ तक सावध व्यापारथा निवृत्त होने छ त रत्नत्रय उप पतन आ नरकभावना रत होने छ अपने समार शरीर तथा केनेधी यर्ध १० उतारेली कावणीथा तथा दूर रह छ ते रीत अलिप्त रूपी पानानी प्रवृत्तिने नकोसत्र बैराग्यनी भावनाप्रथा पु धी निमग बनाना रहे छ केवा विरत मुनिनु नरक-निगोदादिकमा नमन वनु नथा आ अथवा अभिप्रायाने द्विभा भाग्य ३री सूत्रकारे समुत्प्रेक्षमाणस्य आ सूत्रनु अपतन्यु करे छ त केछ छ के—समुत्प्रेक्षमाणस्य आ शरीर मिदुरादिघर्मात्मक छ आ प्रकारथा आ शरीरने शरीरी दीते केने अनुभव यर्ध नथा छ अपने तेधी व के “एकायतनरतस्य”-

યસ્ય તદ્વિપરિણામધર્મમ્ એકસ્મિન્નેવ જન્મનિ વિવિધાવસ્થાવિશેષૈરનેકવિધ-
પરિણામસ્વભાવં શરીરં વર્તેતેऽતોઃ હે મુનયઃ ! યૂયમ્ એતં રૂપસન્ધિમ્=ભિદુરાદિસ્વ-
ભાવં શરીરં સુકુલજન્મબોધિલાભાઘવસર ચ પश्यत=પ્રેક્ષધ્વ જાનીતેત્યર્થો વા, તેન
શરીરે મમત્વં વિહાય તપઃસંયમાદેઃ સાફલ્ય વિધેયમિતિ ભાવઃ ॥ સૂ. ૨ ॥

ભિદુરધર્માદિસ્વરૂપં શરીરં વિલોકયતો યદ્ભવેત્તદર્શયતિ-‘સમુપ્પેહ’-ઇત્યાદિ ।

મૂલમ્-સમુપ્પેહમાણસ્સ ઇક્કાયયણરયસ્સ ઇહ વિપ્પમુક્કસ્સ
નત્થિ મગ્ગે વિરયસ્સ-ત્તિબેમિ ॥ સૂ. ૩ ॥

છાયા—સમુપ્પેક્ષમાણસ્યૈકાયતનરતસ્યેહ વિપ્રમુક્તસ્ય નાસ્તિ માર્ગો વિરત-
સ્યેતિ વ્રવીમિ ॥ સૂ. ૩ ॥

અવસ્થારૂપ હોતા હૈં ઉસી પ્રકાર ઇસ શરીર કે પરિણામસ્વરૂપ ગર્ભ-
કૌમાર (ઘાલ્ય અવસ્થા) ઓર યૌવન એવ વૃદ્ધ અવસ્થાળ હૈં । ઇસ પ્રકાર
એક હી જન્મ મેં ઇન અનેક અવસ્થાવિશેષો સે ઇસ શરીર કા ભિન્ન ૨
રૂપ મેં પરિણમન હોતા હુઆ દેખા જાતા હૈં । ઇસલિયે હે મુનિયો !
રૂપસન્ધિ અર્થાત્ ભિદુરાદિસ્વભાવવાલા રૂપ=શરીર કો એવં ઉત્તમકુલ
મેં ઉત્પત્તિ તથા બોધિલાભ આદિ પ્રાપ્ત કરને કી સંધિ=અવસર કો દેખો ।
ઇસકા અભિપ્રાય યહ હૈં કિ-શારીરિકમમતા છોડ કર તપ સંયમ
આદિ કા આરાધન કર જીવન કો સફલ બનાઓ ॥ સૂ. ૨ ॥

ઇન પૂર્વોક્ત વિશેષણો સે વિશિષ્ટ શરીર કો સમજનેવાલે મુમુક્ષુજન
કો જો લાભ હોતા હૈં, મૂઝકાર ઉસે પ્રકટ કરતે હૈં-‘સમુપ્પેહ’-ઇત્યાદિ ।

શરીરતુ પરિણામ-સ્વરૂપ ગર્ભા યાત્યાવસ્થા અને યૌવન તેમજ વૃદ્ધ
અવસ્થાઓ છે- આ રીતે એક જ જન્મમા ગુઠી ગુઠી અનેક અવસ્થા ઉપલબ્ધ
આ શરીરના ભિન્ન ભિન્ન રૂપમા પરિણમે છે જે સમયાનુકૂલ દેખાઇ આવે છે.
આ કારણે હે મુનિઓ ! રૂપસન્ધિ અર્થાત્ ભિદુરાદિસ્વભાવવાળું રૂપ, શરીરની
ઉત્તમ કુળમા ઉત્પત્તિ, લાભ આદિ પ્રાપ્ત કરવાની સંધિ-અવસરને ગુઓ
આને અભિપ્રાય એ છે કે શારીરિક મમતાને છોડીને તપ સંયમ આદિતુ
આરાધન કરી જીવનને સફલ બનાવો ॥ સૂ. ૨ ॥

આ પૂર્વોક્ત વિશેષણોથી વિશિષ્ટ શરીરને સમજવાવાળા મોક્ષાધી° જનને
જે લાભ થાય છે તેને મૂઝકા° પ્રગટ કરે છે- “ સમુપ્પેહ ” ઇત્યાદિ

સાવધવ્યાપારચિરતો મુનિર્મમતીસ્યમિધાયાધુના તદ્વિપરીતાચારમાચરન્ પરિગ્ર
હવાનિતિ દર્શયિતુમાઃ—‘આચંતી’ ઇત્યાદિ ।

મૂમ્—આવતી કેયાવતી લોગસિ પરિગ્રહાવતી, સે અપ્પ
વા અટ્ટં વા અણુ વા થૂલવા ચિત્તમતવા અચિત્તમત વા, યસુ
એવ પરિગ્રહાવતી, યયમેવ યગેસિં મહાઅય મયઈ, લોગચિત્ત
અ ણ ઉવેહાપ, યણ સગે અધિયાણઆ ॥ સૂ. ૪ ॥

છાયા—પાવન્ત કિયન્તો લોક પરિગ્રહવન્ત, તદ્વર્પ વા વહુ વા અણુ વા
મ્યૂમ્ વા ચિત્તવદ્વા અચિત્તવદ્વા, યત્તપુ એવ પરિગ્રહવન્ત । યત્તજ્ઞ પકેપાં મદામયં
મવતિ, લોકચિત્ત અ અન્યસ્યેત્યેતાન્ સજ્ઞાનવિજ્ઞાનત ॥ સૂ. ૪ ॥

તીકા—ગાવન્ત ’ ઇત્યાદિ, લોક=મનુષ્યલોક પાવન્ત=કિયન્ત પરિ
ગ્રહવન્ત=પરિગ્રહો યેપામસિ તે પરિગ્રહવન્ત=પરિગ્રહવત્પરા મયયુ । યમ્યદ્રવ્યસ્ય
પરિગ્રહસ્તદ્ દ્રવ્યમ્ અન્ય=સ્તાર્ક=મૂન્યત કપર્દિકાદિકં, પ્રમાણતોડકૃત્વાદિકં,
ઈસલિય ઉમ્મકા વહ માર્ગ નહીં હૈ । યહ કથન મૈનેઅપની બુદ્ધિસે કમિપત
કર નહીં કહા હૈ; પરતુ જૈસા મૈન અગવાનના કે મુમ્મ સે સુના હૈ વહ મય વૈસા
તુમસે કહા હૈ—ઈસ પ્રકાર સુધર્મસ્વામીને જમ્મસ્વામીસે કહા ॥ સૂ. ૩ ॥

‘માવચ વ્યાપારાં સે ચિરત મુનિ જોતા હૈ’ ઇસ વાતનો કઠ કર અવ
‘જો ઇસસે વિપરીત અપની પ્રવૃત્તિ કરતા હૈ વહ પરિગ્રહી હૈ’ ઇસ વિષય
નો પ્રકર કરનકે લિય સૂત્રકાર કહતે હૈ—‘આચંતી’ ઇત્યાદિ ।

ઈસ મનુષ્ય લોક મૈં કિત્તનેક માનવ પરિગ્રહશાલી હૈ । યહ
પરિગ્રહીત દ્રવ્ય, જાહે અમ્પ હો; જાહે બહુત હો, પરિગ્રહ જાહ અણુરૂપ
મૈં હો; જાહે સ્પૂલરૂપ મૈં હો; જાહે સચિત્ત હો; જાહે અચિત્ત હો; જનમેસે

મનુ નથી આ કાપણે તેમનો તે માત્ર નથી. આ કથન મેં પોતાની બુદ્ધિથી કહ્યેલું
નથી, પરતુ આ મેં ભગવાનના સુજેથી સાંભળ્યું છે એ બધું તમને કહ્યું છે.
આ પ્રકારે સુધર્મ સ્વામીએ જમ્મ સ્વામીને કહ્યું ॥ સૂ. ૩ ॥

સાવધ વ્યાપારથી ચિરત મુનિ જોય છે, આ વાત કહીને કહે એ જોનાથી
વિપરીત પોતાની પ્રવૃત્તિ કરે છે તે પરિગ્રહી છે આ વિષયને પ્રગટ કરવા
માટે સૂત્રકાર કહે છે—‘આચંતી’ ઇત્યાદિ

આ મનુષ્યસૈકર્મા કેટલાક માણસો પરિગ્રહી છે—પરિગ્રહ જેને છે તે,
પરિગ્રહીત દ્રવ્ય બસે જોડું જોય, બસે વધારે જોય બસે અણુરૂપ જોય,
બસે સ્પૂલરૂપ જોય, બસે અચિત્તરૂપ જોય, બસે અચિત્ત જોય, આમાંથી કઈ

इह=शरीरे जन्मनि ससारे वा विप्रमुक्तस्य-परिग्रहममत्वादिरहितत्वेन वि=विविध-
प्रकारैः प्रकर्षेण च मुक्तस्य-वैराग्यभावनया शरीराद्यनुरागरहितस्य, विरतस्य=
सावद्यव्यापाररहितस्य मुनेः मार्गः=नरकनिगोदादिगत्यागतिरूपः पन्थाः नास्ति=
न विद्यते । विरतस्य मुनेः कर्मणः शरीरस्य चासत्त्वान्न नरकादिगतिषु गमनं भव-
त्यतस्तस्य स मार्गो नास्तीत्याशयः । उति ब्रवीमि=न मया स्वमत्या प्रोक्तम्,
यद्भगवत्सकाशान्मया श्रुतं तत् सर्वं त्वा ब्रवीमि=कथयामि ॥ सू० ३ ॥

सावद्य व्यापारों से निवृत्त किया जाता है आत्मा जिसकी स्थिति में, अथवा
निपुण आचरण में यत्नवाला किया जाता है आत्मा जिसके द्वारा उसका
नाम आयतन है, वह रत्नत्रयस्वरूप है, यह आत्मा का निजधर्म है । इसके
साथ दिया गया “ एक ” विशेषण यह चतलाता है कि इसकी जोड़का
और कोई पदार्थ इस दुनिया में नहीं है । यह एक-असहाय-सर्वोत्कृष्ट धर्म
है । एकायतन में जो रत्न-लवलीन है, अर्थात् रत्नत्रय की अच्छी तरह
से आराधना करने में तत्पर है वह एकायतनरत्न है । तथा “ इह ”
शरीर, जन्म अथवा ससार में “ विप्रमुक्तस्य ” परिग्रह एवं ममत्वादि
से रहित होनेसे जो “ वि ” विविध प्रकारों से और “ प्र ” प्रकर्ष से
“ मुक्तस्य ” वैराग्यभावना से शरीरादिक के अनुराग से रहित है
ऐसे सावद्य व्यापारों से रहित मुनि का मार्ग-नरकनिगोदादिक का गति-
आगतिरूप मार्ग नहीं होता है, कारण कि विरत मुनि के तज्जातीय कर्म
एव शरीर का असत्त्व होने से नरकादि गतियों में गमन नहीं होता है ।

એકાયતનસ્વરૂપ રત્નત્રયમા રત્ન બનેલા છે બધા આવધ વ્યાપારોથી નિવૃત્ત કરાય છે
આત્મા જેની સ્થિતિમા, અથવા નિપુણ આચરણમા યત્નવાળો બનાવી દેવામા આવે
છે આત્મા જેનાથી તેનું નામ આયતન છે તે રત્નત્રયસ્વરૂપ છે આ આત્માના
નિજધર્મ છે તેની માથે આપવામા આવેલ “ એક ” વિશેષણ એ બતાવે
છે કે તેની બેડનો કોઈ પદાર્થ દુનિયામા છે જ નહિ તે એક અસહાય સર્વો
ત્કૃષ્ટ ધર્મ છે એકાયતનમા જે તત્પર છે અર્થાત્ રત્નત્રયની સારી રીતે આરા
ધના કરવામા તત્પર છે તે એકાયતનરત્ન છે તથા “ ઇહ ” શરીર, જન્મ
અથવા સસારમા “ વિપ્રમુક્તસ્ય ” પરિગ્રહ મમત્વાદિથી રહિત હોવાથી તે
“ વિ ” વિવિધ પ્રકારથી “ પ્ર ” પ્રકર્ષથી “ મુક્તસ્ય ” વૈરાગ્ય ભાવનાથી શરીરાદિ
પ્રત્યેની મમતાથી ગ્રહિત છે એવા સાવધ વ્યાપારોથી રહિત મુનિનો માર્ગ-નરક
નિગોદાદિના ગતિ-આગતિરૂપ માર્ગ-હોતો નથી, કારણ કે વિરત-મુનિના તજ્જા
તીય કર્મ અથવા શરીરમા આવક્રતપણું ન હોવાથી નરકાદિ ગતિઓમા તેનું ગમન

પરિગ્રહિણો મથન્તિ, તદેવાહ—એતેષ્વિત્પાદિ, એતેષુ ચૈવ—પરજીવનિકાચેઽન્ય
 વદુસ્થૂમમપ્ચાદિષુ ચૈવ પ્રાણિન પરિગ્રહન્તઃ—મમત્વવન્તો જાયન્તે। ય કોઽપિ
 ચિરતોઽપિરતો વાઽપ્યાદિવસ્તુજાતેન પરિગ્રહવાન્ મથતિ, તત્તથ પચ્ચ—મહાપતેષ્વેક-
 વ્રતચિરાધનાત સર્વવ્રતનિરાધકા મથતિ, અનિવારિતાન્નસ્ત્વાદિતિ માવ। એતેષાં
 પરિગ્રહાપ્તસ્તેષિનામપરિગ્રહામિમાનિનાં શરીરમનયાંચૈવત્યાહ—‘પતદેવે’ત્યાદિ।

ગ્રહણ સે જીવ પરિગ્રહી હોતે હૈં। હન પરજીવનિકાચરૂપ અસ્થ, વદુ, સ્થૂલ ઔર લઘુરૂપ પરિગ્રહમેં મૂર્છાશાલી હોને સે જીવ મમત્વપરિણામી હોતે હૈં। જો કોઈ અચિરત પ્રાણી અપને કો ચિરતરૂપ સે ઘોષિત કરતા હુઆ મી ‘મમેદ’—માથસે અસ્થ પરિગ્રહરૂપ વસ્તુ કા મી ગ્રહણ કરતા હૈં વહ પરિગ્રહી હી હૈં। હસી પ્રકાર સે પંચમહાવ્રતોમેં સે જો એક મી વ્રતકી ચિરાધના કરતા હૈં વહ અપને મમત્વ વ્રતોકા ચિરાધક હોતા હૈં। કહીં કિસી એક કાંચા મેં મી જિમકે અપરાધ કા મક્કાચ હુઆ હૈં ઉમકે મમત્વ અઞ્જો મેં મી અપરાધીપના આતા હૈં; ક્યોં કિ યેસી હાલતમેં ઉત્તકે આલ્મવ કા વાર વંદ નહીં હોના। ઉત્તર ગુણો મેં અતિચાર મી પેમા હી હોતા હૈં યદિ મૂલગુણો કા વિધ્વંસક ન હો।

ગાઠા—અન્વાદિવસ્તુરૂપ પરિગ્રહ કે ગ્રહણ સે યદિ પરિગ્રહવસ્તુ માની જાવે તો કિર જો અન્વાદિરૂપ પરિગ્રહકા સેવન કરતે હુગ મી અપને કો અપરિગ્રહી કહતે હૈં ઉનકે આહાર યથ શરીરાદિક મી

આ બધાના ગ્રહણથી અથવા કોઈ કોઈના ગ્રહણથી છપ પરિગ્રહી બને છે
 આ પરજીવનિકાચરૂપ અસ્થ, બદુ સ્થા તેમજ લઘુરૂપ પરિગ્રહમા મૂર્છાશાળી
 હોવાથી છપ મમત્વપરિણામી બને છે એ કાંઈ અચિરત પ્રાણી પોતાને
 ચિરતરૂપથી ભહેર કરી મથેહ—આપથી અપરિગ્રહરૂપ વસ્તુ પણ ગ્રહણ
 કરે તો તે પરિગ્રહી જ છે. આ પ્રકારે પાચ મહાપતમાંના એક મતની વિરા
 થના કરે છે તે પોતાના સમસ્ત જીવોના ચિરતરૂપ બને છે કયાંક કોઈ એક
 અશમા પણ જેનામા અપરાધનો સહભાવ થયો પછી તેના સમસ્ત અશિમા
 અપરાધીપત્તુ આપી બાવ D કેમકે એવી હાલતમાં એના આશ્રયતા દાર
 બંધ નથી થતાં. એ મૂળગુણોના વિધ્વંસક નહિ હોય તો ઉત્તરગુણોમાં પણ
 અતિચાર એમજ હાથ છે

શ.કા.—અપ્યાદિવસ્તુરૂપ પરિગ્રહના ગ્રહણથી જો પરિગ્રહવસ્તુ માન
 વામા આવે તો પછી અપ્યાદિરૂપ પરિગ્રહનું સેવન કરવા છતાં પોતાને અપરિ-
 ગ્રહી કહે એના આકાર અને શરીરાદિક પણ અનર્થના કારણ બનશે? આ

વહુ=અધિક વા-મૂલ્યતો રત્નાદિકં, પ્રમાણતઃ કાષ્ઠાદિકમ્; અણુ વા-મૂલ્યતો-લઘુત્વનાદિક, પ્રમાણતો વજ્રાદિક, સ્થૂલં વા-મૂલ્યેન પ્રમાણેન ચ ગજાદિકમ્ । તાનિ ચ દ્રવ્યભાવભેદેન દ્વિવિધાનિ बोध्यानि; तथा हि-किञ्चिद् वस्तु द्रव्यतोऽल्पं न भावतः-वज्रादिमणिः, अपर च भावतोऽल्पं न द्रव्यतः-एरण्डकाष्ठादिकम्, अन्यच्च द्रव्यतो भावतोऽप्यल्पं कपर्दादिकम्; उभयतो बहु स्थूल च गोशीर्षक-गिचन्दनादिकम् । यद्वा-परिग्रहश्चतुर्विधो द्रव्यक्षेत्रकालभावभेदात् । एतच्च सर्वं चित्तवद् वा अचित्तवद् वा, उपलक्षणान्मिश्रस्यापि ग्रहणम् । सर्वेषामेतेषा योगेन कुछ भी जिसके पास है वह परिग्रही है । यह परिग्रह ही अविरतियों और विरतियों को महान् भयस्वरूप होता है । इस प्रकार इस लोकवित्त को समझ कर जो इससे विरत हैं उनके परिग्रहजन्य भय नहीं होता है । परिग्रह में अल्पता और अधिकता मूल्य की एवं प्रमाण की अपेक्षा से बतलाई गई है । मूल्यकी अपेक्षा जिसके पास एक कोड़ी-मात्र अल्प परिग्रह है अर्थात् इतना भी जिसके परिग्रह है कि जिसकी कीमत एक कोड़ी है वह भी परिग्रही है । प्रमाण की अपेक्षा-अर्कतूलादि (आककी रूई) मात्र भी जिसके परिग्रह है वह भी उसमें ममत्वभावविशिष्ट होने से परिग्रहयुक्त है । इसीप्रकार मूल्यकी अपेक्षा रत्नादिक, प्रमाणकी अपेक्षा काष्ठादिक बहुत परिग्रह हैं । मूल्यकी अपेक्षा लघु-अणु तृणादिक, प्रमाण की अपेक्षा वज्रादिक, मूल्य और प्रमाण से स्थूल हाथी घोड़े आदि परिग्रह हैं । सचित्त और अचित्त परिग्रहके ग्रहणसे मिश्र परिग्रहका भी यहां ग्रहण हुआ है । इन समस्त के ग्रहण से अथवा कुछ २ के

પણ જેની પાસે છે તેને પરિગ્રહી કહે છે આ પરિગ્રહ જ અવિરતિયો અને વિરતિ યોને મહાભયસ્વરૂપ છે આ પ્રકારે આ લોક પરિગ્રહને સમજીને જે તેનાથી વિરત છે તેને પરિગ્રહજન્ય ભય હોતો નથી પરિગ્રહમા અદ્યપતા અને અધિકતા મૂલ્યની અને પ્રમાણની અપેક્ષાથી બતાવવામા આવી છે કિંમતની અપેક્ષા જેની પાસે એક કોડી માત્ર અદ્યપ પરિગ્રહ છે અર્થાત્ એટલો પણ પરિગ્રહ છે કે જેની કિંમત એક કોડી છે તે પણ પરિગ્રહી છે પ્રમાણની અપેક્ષા આકડાનુ ૩ માત્ર પણ જેને પરિગ્રહ છે તે પણ તેનામા મમત્વભાવવિશિષ્ટ હોવાથી પરિગ્રહયુક્ત છે તેવી રીતે મૂલ્યની અપેક્ષા રત્નાદિક, પ્રમાણની અપેક્ષા કાષ્ઠ આદિક ઘણેજ પરિગ્રહ છે મૂલ્યની અપેક્ષા લઘુ-અણુ-તૃણાદિક, પ્રમાણની અપેક્ષા વજ્રાદિક, મૂલ્ય અને પ્રમાણથી સ્થૂલ હાથી ઘોડા આદિ પરિગ્રહ છે સચિત્ત અને અચિત્ત પરિગ્રહના ગ્રહણથી મિશ્ર પરિગ્રહનો પણ અહિ ગ્રહણ થયેલ છે

સજ્જાયા અમસ્વહ્લોકનિન્યસ્ત્વેન મિનશાસનમ્પવોત્પાદનાપ્ય સ્વપરયોર્મહામયકારિ
મયતિ । મગવતાડપિ સંયમ સજ્જાયાઃ પ્રાથમ્યમભિહિતં, તથાદિ “સજ્જા-વ્યા-સંજ
મ-ય-મચેર” ઇત્યાદિ । યસ્માત્પરિગ્રહાડનયૌય મયતીત્યત્ત ઉપદિશતિ ‘લોકવિષ્’ મિ
ત્યાદિ । વિરલો દ્યુનિ શ્લોકવિષ્ લોકસ્ય=અસંયત્લોકસ્ય વિષ્=ધનમ્ અસ્વાધિરૂપમ્,
પદ્મા-‘લોકવૃક્ષ’ મિતિષ્ઠાયા, તેન-શ્લોકસ્ય હૃતમાધરજમ્=આહાર-મય-મૈથુન-
પરિગ્રહસંસ્કારમ્ મયતે મયાય મયતીતિ, ચ=પુન, સહુ=વાક્યામ્હાર ઉત્પેસ્ય=
હાત્મા હપરિગ્રયા, પ્રત્યાસ્થાનપરિગ્રયા પરિગ્રેત્ । તાદૃશ્યસ્ય યસ્ત્યાદવાદ-
‘પતાન્’ ઇત્યાદિ । પતાન્-પૂર્વોક્તાન મગાન્=દ્રવ્યપરિગ્રહસમ્બન્ધાન્ અવિજાનતઃ
=અવિદ્યતઃ-પરિગ્રહસમ્બન્ધરહિતસ્ય દ્યુનેઃ પરિગ્રહોત્પન્નં મહામયં ન મયતિાનુ=૪૥

इसलिये ऐसी हालत में उनका शरीर सज्जारहित होने से लोक
निर्वाका पात्र होता है, इससे जिनशासनकी अवलोकना होती है; इस
लिये उनका वह शरीर स्व-पर के लिये महामयकारी होता है। संयममें
मगवान्ने “सज्जा-व्या-संजम-य-मचैर” इत्यादिवाक्यानुसार सज्जाके
लिये प्रथम स्थान दिया है। जिस कारण से परिग्रह अनर्थकारी बतलाया
गया है इसी लिये सूत्रकार कहते हैं-‘लोकविष’-मित्यादि। असंयतलोकका
धन, अथवा-असंयत लोककी आहार, भय, मैथुन और, परिग्रह-संस्कार
लोकवृक्ष (‘लोकविष’ की ‘लोकविष’ या ‘लोकवृक्ष’ संस्कृतशब्दाया होती
है) उन्हें बड़े भारी भयके लिये होता है। सूत्र में “अलु” शब्द वाक्या
संस्कार में प्रयुक्त हुआ है। इसलिये मोक्षार्थी जन लोकविष अथवा लोक-
वृक्ष को महामयकारी उपरिग्रा से जानकर प्रत्यास्थानपरिग्रा से
उसका परित्याग करे। परिग्रह के परिवर्जन से त्यागी के जो लाभ होता
है उसे सूत्रकार “पतान् संगान् अविजानत” इस सूत्रांश से कहते हैं।

હાલતમાં તેનું શરીર સજ્જારહિત હોવાથી લોકનિર્વાકને પાત્ર બને છે. તેનાથી
જનશાસનની અવલોકના થાય છે માટે તેનું તે શરીર સ્વ અને પરને માટે
મહાભયકારી બને છે. સંયમમાં મગવાને “સજ્જા-વ્યા-સંજમ-ય-મચેર” ઇત્યાદિ
વાક્ય અનુસાર લોકને માટે પ્રથમ સ્થાન આપેલ છે જે કારણથી પરિગ્રહ
અનર્થકારી બતાવેલ છે તેને માટે સૂત્રકાર કહે છે-‘લોકવિષ’-ઇત્યાદિ. અસંયત
લોકનું ધન અથવા અસંયત લોકના આહાર ભય, મૈથુન અને પરિગ્રહ સહારૂપ લોકવૃક્ષ
તેના માટે ભારે ભયજનક હોય છે આ માટે મોક્ષાર્થી જન લોકવિષ અથવા લોકવૃક્ષને
મહાભયકારી ઇ-પરિગ્રાથી બાધીને પ્રત્યાસ્થાન-પરિગ્રાથી તેનો ત્યાગ કરે પરિ-
ગ્રહના પરિવર્જનથી ત્યાગીને જે લાભ થાય છે તેને સૂત્રકાર પતાન્ સંગાન્
અવિજાનત આ સૂત્રથી કહે છે કે આ દ્રવ્ય-પરિગ્રહની આમે પતાને સંયમ

એકેષા=કેષાચિદ્ વિસ્તાનામવિસ્તાનાં વા પરિગ્રહિણામ્ એતદેવ શરીરં મહાભયં=કારણે કાર્યોપચારાત્પ્રાણાતિપાતાદિકરણેન નરકનિગોદાદિકદુકફલરૂપમહાભયજનકત્વાન્મહાભયમેવ ભવતિ ।

યદ્વા—યથા—પાણિપુટભોજિના શરીરાહારાદેરન્યસ્યાપ્યલ્પસ્ય પાત્રવસ્ત્રાદેરસન્વાદ્ ગૃહસ્થસન્નિ ચાધઃકર્માદિદોષદુષ્ટમાહારાદિકમશ્રતા હિ મહતા કર્મવન્ધેન પોષણાચ્છરીરં મહાભયદેતુત્વાન્મહાભયં, તથા તચ્છરીર ગુહ્યસ્થાનેડનાચ્છાદનેન અનર્થકે લિયે હોંગે ? હસ શંકાકા સમાધાન કરને કે લિયે સૂત્રકાર “ એતદેવ એકેષાં મહાભયં ભવતિ ” હસ સૂત્રાંશ કા કથન કરતે હૈં । વે કહતે હૈં—ચાહે ચિરતિસપન્ન હો, ચાહે ડસસે રહિત અવ્રતી હો ડસકે અલ્પાદિરૂપ પરિગ્રહ કી સત્તા મેં મી ‘ મમેદં ’—ભાવસે અવશ્ય પરિગ્રહપના હૈ । યહ પરિગ્રહવત્તા હી ડનકે લિયે નરકનિગોદાદિક કે ભયંકર ફલરૂપ મહાભય કા કારણ હોને સે મહાભયસ્વરૂપ હોતા હૈ ।

અથવા—પરિગ્રહયુક્ત પ્રાણિયોં કે “ એતદેવ ” યહ શરીર ઓર આહારાદિક મહાભયસ્વરૂપ હૈં, જૈસે—જો પાણિપુટ (કરપાત્ર) મેં ભોજન કરનેવાલે હૈં, જિનકે પાસ પાત્ર ઓર વસ્ત્રાદિક કુછ મી નહીં હૈં; પરન્તુ વે ગૃહસ્થોં કે યહાં આધાકર્માદિક દોષોંસે દૂષિત આહારાદિક કે લેને સે મહાન્ કર્મોં કા વધ કરનેવાલે હોતે હૈં, હસસે ડનકા શરીરાદિક ડન્હેં મહાભય કા હેતુ હોને સે મહાભયસ્વરૂપ હૈં । તથા—ડનકા શરીર, વસ્ત્ર સે રહિત હોને સે ગુહ્યસ્થાન નિરાવરણ રહતાહૈં,

શ કાતુ સમાધાન કરવા માટે સૂત્રકાર “ એતદેવ એકેષા મહાભયં ભવતિ ” આ સૂત્રનુ કથન કરે છે તે કહે છે કે—ભલે ચિરતિસપન્ન હોય આહે એનાથી રહિત અવ્રતી હોય છતાં અલ્પાદિરૂપ પરિગ્રહની સત્તામાં પણ મમેદભાવથી અવશ્ય પરિગ્રહપણું છે આ પરિગ્રહવત્તા જ એને માટે નરકનિગોદાદિકના ભય કર ડગરૂપ મહાભયનુ ડરણ હોવાથી મહાભયસ્વરૂપ બને છે. અથવા—પરિગ્રહયુક્ત પ્રાણીએને “ એતદેવ ” શરીર તેમજ આહારાદિક મહાભય સ્વરૂપ છે જેમકે—જે પાણિપુટ (કરપાત્ર) થી જ ભોજન કરવાવાળા છે, જેની પાસે પાત્ર તેમજ વસ્ત્રાદિક કાંઈ પણ નથી પરંતુ જે ગૃહસ્થોને ત્યાં આધાકર્માદિક દોષોથી દૂષિત આહારાદિક લેવાથી મહાન્ કર્મોના વધ કરવાવાળા હોય છે આથી તેના શરીરાદિક તેને મહાભયનો હેતુ હોવાથી મહાભયસ્વરૂપ છે તથા તેનું શરીર વસ્ત્રથી રહિત હોવાથી ગુપ્ત અંગ ખુલ્લું રહે છે, આ કારણે એવી

हेतुह्यन्तीः शिष्याणां प्रापितमित्यर्थः । इति=एवं ज्ञात्वा=विचार्य हे पुरुष ! नहे मय्य ! परमचक्षुः=परम-ज्ञानं तपः संयमो वा चक्षुः=नेत्रं यस्य स परमचक्षुः= से पुष्टि की है । यद्वा-इसी मार्गद्वारा उन्होंने अपने शिष्यों को ज्ञाना दिकों की प्राप्ति कराई है ।

भावार्थ—यह राजमार्ग है कि परिग्रह के त्याग किये बिना साधु को अपने कर्तव्य पथ में सज्जी आरामकता की जागृति नहीं हो सकती है । कारण कि इसके सद्भाव में सदा आत्मा में आकुलता रहती है । आकुलता में स्वधर्मापन हो नहीं सकता । परिग्रह के सद्भाव में ही सावधप्रवृत्ति एवं अनेक अनर्थों की परपरा पड़ती है । परिग्रह के त्याग से आत्मा में अपूर्व ज्ञाति और स्वरमणता आती है । अतः यही मार्ग सर्वोत्तम है । इस मार्ग का जो पथिक है वही सच्चे रूप में अपने कर्तव्य पथ का निभानेवाला और सम्पददर्शनादिकरूप मोक्षमार्गका अनुयायी है । इसी मार्गद्वारा तीर्थङ्करादिक प्रत्यक्षज्ञानियों ने अपने श्येय की प्राप्ति की है और अपन शिष्यों को भी इसी मार्गक अनुसरण करने का उप देषा दिया है । हेतु और दृष्टान्तों से इसी मार्ग की उन्होंने पुष्टि की है ।

“इति ज्ञात्वा” इसलिये हे मय्य पुरुष ! ऐसा समझ कर इसी मार्ग पर चल कर तुम ज्ञान मयया संयम या तपरूपी चक्षुओं की प्राप्ति

નિમિત્તે યુક્તિ અને દ્રષ્ટાંતથી સમજાવેલ છે તમજ આ માત્ર જાણ તેઓએ પોતાના શિષ્યોને જ્ઞાતાદિકની પ્રાપ્તિ કરાવી છે

ભાવાર્થ — આ રાજમાર્ગ છે કે પરિગ્રહને ત્યાગ કર્યા વગર સાધુને પોતાના કર્તવ્ય પથમાં આવી આરામકતાની ભાગ્યવી મળી શકતી નથી કારણ કે પરિગ્રહના સદ્ભાવમાં આત્માની સદા આકુલતા રહે છે આકુલતામાં ખમત આરામન નથી થઈ શકતું પરિગ્રહના સદ્ભાવમાં જ સાવધ પ્રવૃત્તિ તેમજ અનર્થોની પરપરા પડે છે પરિગ્રહના ત્યાગથી આત્મામાં અપૂર્વ જ્ઞાતિ તેમજ સ્વરમણતા આવે છે આ માત્ર જ સર્વોત્તમ છે આ માત્રની જ પથિક છે તે જ જ્ઞાના રૂપમાં પોતાના કર્તવ્યપથને નિભાવનાર તેમજ સમ્પદદર્શનાદિકરૂપ ગોક્ષમાર્ગને અનુયાયી છે આ જ માત્ર દ્વારા તીર્થંકરતદિક પ્રત્યક્ષજ્ઞાનિઓએ પોતાના શ્યેયની પ્રાપ્તિ કરી છે અને પોતાના શિષ્યોને પણ આ જ માર્ગનું અનુસરણ કરવાનો ઉપદેશ આપેલ છે હેતુ અને દ્રષ્ટાંતોથી આ માર્ગને તેમજ સ્વીકાર કર્યો છે

“इति ज्ञात्वा” એટલા માટે હે મય્ય પુરુષ ! આ સમજીને આ જ મા । ઉપર આવી તમે જાન અથવા સંયમ અથવા તપરૂપી ચક્ષુઓની પ્રાપ્તિ કરી શકો—

અપિ ચાન્યદપ્યાહ—‘સે સુપદિબુદ્ધં’ ઇત્યાદિ ।

મૂલમ—સે સુપદિબુદ્ધં સૂવણીયંતિ નચ્ચા પુરિસા ! પરમ-
ચક્ષુ વિપરક્કમા । એસુ ચેવ વંભચેરં તિવેમિ । સે સુયં ચ મે,
અજ્ઞતથયં ચ મે, વંધપમુક્ખો અજ્ઞતથેવ । એતથ વિરેઅણગારે
દીહરાયં તિતિક્ખણ । પમત્તે વહિયા પાસ, અપ્પમત્તો પરિવ્વણ ।
એણં મોણં સમ્મં અણુવાસિજ્જાસિ—તિવેમિ ॥ સૂ૦ ૫ ॥

છાયા—તસ્ય સુપતિબુદ્ધ મૂપનીતમિતિ જ્ઞાત્વા પુરુષ ! પરમચક્ષુર્વિપરાક્રમસ્વ ।
એતેષુ ચૈવ વ્રહ્મચર્યમિતિ વ્રવીમિ । તત્તશ્રુત ચ મયાઽધ્યાત્મક ચ મે વન્ધપ્રમોક્ષોઽ
ધ્યાત્મે એવ । અત્ર વિરતોઽનગારો દીર્ઘરાત્રં તિતિક્ષેત । પ્રમત્તાન્ વદિઃ પશ્ય, અપ્ર-
મત્તઃ પરિવ્રજેત્ । એતન્મૌનં સમ્યક્ અનુવાસયેઃ, ઇતિ વ્રવીમિ ॥ મૂ૦ ૫ ॥

ટીકા—‘તસ્યે-’ત્યાદિ, તસ્ય=પરિગ્રહરહિતસ્ય, સુપતિબુદ્ધં=સુ=શોભન પ્રતિ-
બુદ્ધં=જાગરિતં, મૂપનીતં=શોભન દર્શિતં જ્ઞાનાદિકત્રિક સુદૃષ્ટિકૈઃ પ્રત્યક્ષજ્ઞાનિમિઃ
હસ દ્રવ્ય પરિગ્રહ કે સાથ અપના સંબંધ નહીં રાખનેવાલે અર્થાત્ પરિગ્રહ કે
સંબંધ સે રહિત મુનિકો પરિગ્રહજન્ય મહાભય નહીં હોતા હૈ ॥ સૂ૦ ૪ ॥

ઔર મી બાત સૂત્રકાર પ્રકટ કરતે હૈ—‘સે સુપદિબુદ્ધં’ ઇત્યાદિ ।

જો મનુષ્ય પરિગ્રહ સે રહિત હૈં ડનકા હી અપને માર્ગ મેં સચ્ચા
જાગરણ હૈ ઔર ડનકે હી જ્ઞાનાદિકત્રિક નિર્દોષ હૈં, અથવા—ડનકા
અપને કર્તવ્યપથ મેં જો જાગરણ હૈ વહ સૂપનીત હૈ—તીર્થંકરાદિક પ્રત્યક્ષ-
જ્ઞાનિયો ને અચ્છી તરહ સે પ્રકટ કિયા હૈ, ઔર હસી માર્ગ કી ડન્હોં ને
અપને શિષ્યોં કો જ્ઞાનાદિકત્રય કી પ્રાપ્તિકે નિમિત્ત યુક્તિ ઔર દૃષ્ટાન્ત

નહિ રાખવાવાળા અર્થાત્ પરિગ્રહના સંબંધથી રહિત મુનિને પરિગ્રહજન્ય મહા-
ભય હોતો નથી ॥ સૂ૦ ૪ ॥

કરી એક ખીલ પથુ વાત સૂત્રકાર પ્રગટ કરે છે—“સે સુપદિબુદ્ધં” ઇત્યાદિ

જે મનુષ્ય પરિગ્રહથી ગ્રહિત છે તેનું જ પોતાના માર્ગમાં સાચું બગરણ
છે, અને તેના જ્ઞાન આદિ નિર્દોષ છે, અથવા તેનું પોતાના કર્તવ્યપથમાં જે
બગરણ છે તે સૂપનીત છે—તીર્થંકરાદિક પ્રત્યક્ષ જ્ઞાનીઓએ સારી રીતે
પ્રગટ કરેલ છે, અને તે માર્ગ તેમણે પોતાના શિષ્યોને જ્ઞાનાદિકત્રયની પ્રાપ્તિ

इति=अधिकारस्मात्तौ; प्रवीमि=कथितं वक्ष्यमाणं वा अभिदधामि । एतत् सर्वं
मगक्षुपदेष्टादेव मया ज्ञातमित्येवाह—‘तदित्यादि’ । यन्मया प्रोक्तं वक्ष्यमाणं
वा तत् सर्वं मया भूत तीर्थङ्करसंज्ञात्, तथा तत्सर्वमध्यात्मकम्—आत्मनि इत्य-
ध्यात्मे तदेवाध्यात्मकं मे=मयान्तःकरणस्थितं, किं तत्सर्वमिति जिज्ञासायाभाह—
‘यन्मे’ इत्यादि, अध्यात्मे एव=ब्रह्मचर्ये एव व्यवस्थितस्य बन्धप्रमोक्ष=बन्धात्-
कर्मबन्धात् प्रमोक्षो भवति ।

यद्वा—‘बन्धप्रमोक्षौ’ इतिच्छाया, तदा बन्धा=ज्ञानावरणीयाद्यष्टविध
कर्मसम्बन्धा, प्रमोक्ष तस्मात्पृथग्भवेन च बन्धप्रमोक्षौ, उभानपि अध्यात्मे एव=

“इति प्रवीमि”—इति पद अधिकार की समासिक सूचक है, अर्थात्
इस वदेषा में यहां तक अथवा इस सूत्रमें जो कहा है और आगे
भी जो कुछ कहता हूं वह मैंने भगवान् के उपदेश से ही जाना है । इसी
लिये सूत्रकार ने “तच्छ सुतं मया” यह कहा है । यह कथित अथवा
आगे प्रतिपाद्य समस्त विषय जिसे मैं तीर्थङ्कर प्रभु से सुना है वह मेरी
आत्मा में—अन्तःकरणमें स्थित है । उन्होंने यह कहा है कि—“अध्यात्मे
एव” ब्रह्मचर्य में व्यवस्थित साधु की ही बन्धसे मुक्ति होती है—
अर्थात् वह जीव प्रकृतिबन्ध, स्थितिबन्ध, अनुमागबन्ध और प्रवेश
बन्ध—इन चार प्रकार के कर्मबन्ध से रहित होता है । सो यही ज्ञान मैंने
भी यहां पर कही है ।

अथवा—“बन्धप्रमोक्षौ” की “बन्धप्रमोक्षौ” यह भी संस्कृत
छाया होती है । ज्ञानावरणीयादिक आठ प्रकारके कर्मोंका सम्मिश्र
तो बन्ध है और उससे आत्मा का पृथक् होना प्रमोक्ष है । ये दोनों

इति प्रवीमि ” इति पद अधिकारणी अभ्यसितु सूचक है अर्थात् आ
उद्देशभां जहाँ सुभी अथवा आ सूत्रभा ने बहुत से अने आगण पक्ष ने अर्ध
अर्ध धुं ते पक्ष में अजगन्ना उपदेशभी व आयेक से आगे सूत्रकार “तत्
भूत व मया ” आ कहैल से आ कहैल अथवा आगण ने कहेपामां आपरी ते
समस्त विषय, नेने में तीर्थंकर प्रभुभी साजगु ॥ ते भारा आत्मभा-
अतःकरणं स्थित से तेमये के बहुत से है “अध्यात्मे एव” ब्रह्मचर्यमा
व्यवस्थित साधुनी व पक्षभी मुक्ति प्राप्त से अर्थात् के एव प्रकृतिबन्ध,
स्थितिबन्ध, अनुमागबन्ध अने प्रवेशबन्ध, आया चार प्रकारना कर्मबन्धभी
स्थित अने से ते व वात में पक्ष अस्ति कही से

अथवा बन्धप्रमोक्षौ ” नी बन्धप्रमोक्षौ ” आ पक्ष संस्कृत छाया अने से
पक्ष ज्ञानावरणीयादिक आठ प्रकारना अभिना अलभ पक्ष से तेनाभी अभ्यनु

મોક્ષેકદર્શનઃ સન્ ત્રિપરાક્રમસ્વ=સયમે જ્ઞાનાવરણીયાદ્યપ્તિવિધર્મક્ષણનિરવધાનુ-
 ણાનસ્ય તપસશ્ચાચરણેન વિ=વિશેષેણ પરાક્રમસ્વ=પરાક્રમ કૃણ્વ, તપોવીરો
 ધર્મવીરશ્ચ ભવેત્યર્થઃ, કિમર્થ સંયમે પરાક્રમોપદેશઃ? ઇત્યત આદ્ય—‘એતેષુ’
 ઇત્યાદિ, એતેષુ ચૈવ=પરિગ્રહાગ્રહપરાદ્મુખેષ્વેવ વસ્તુતો બ્રહ્મચર્ય્યં મૈથુનનિવૃત્ત્યા-
 દિનવવિધરૂપં વિદ્યતે નેતરેષુ સપરિગ્રહેષુ, તેષુ નવવિધબ્રહ્મચર્ય્યગુપ્ત્યસમ્ભવાત્ ।
 યદ્વા—એતેષુ=પૈજીવનિકાયેષુ તદુપમર્દનચિરતિરૂપસયમાચરણમેવ બ્રહ્મચર્ય્યં, નાન્યત્ ।

કર સકતે હો—મુક્તિ માર્ગ કે દર્શક બન સકતે હો । જવ અપરિગ્રહતા
 તુમ્હે પ્રાપ્ત હો જાયમી, તવ હી તુમ જ્ઞાનાવરણીયાદિક અષ્ટ પ્રકાર કે
 કર્મોં કો સમુન્મૂલન કરનેવાલે નિરવધ અનુષ્ઠાનરૂપ તપ કી આરા-
 ધનામેં વિશેષ પરાક્રમ કરોગે ઓર ઇસ તરહ સેતુમ તપવીર ઓર ધર્મ-
 વીર બન સકોગે । સયમ અથવા તપ મે પરાક્રમશાલી હોને કા ઉપદેશ
 ઇસીલિયે દિયા જાતા હૈ કિ જો પરિગ્રહ કે ગ્રહણમે પરાદ્મુખ હૈ ઉન
 મેં હી વસ્તુતઃ નૌ પ્રકાર કે મૈથુન કી નિવૃત્તિરૂપ બ્રહ્મચર્ય્યવ્રતકી સમ્યક્
 રીતિસે રક્ષકતા આતી હૈ, અન્યોં મેં નહી; કારણ કિ વે પરિગ્રહકે ગ્રહણ
 કરને મેં આસક્ત હોનેસે નૌ પ્રકાર સે ઉસ બ્રહ્મચર્ય્યકી રક્ષા નહીં કર
 સકતે હૈ । અથવા—“એતેષુ ચૈવ બ્રહ્મચર્ય્યમ્”—ઇસ વાક્ય કા યહ મી
 અર્થ હોતા હૈ, કિ ઇન પૈજીવનિકાયોં કે ઘાત કરનેકી વિરતિરૂપ જો
 સંયમ હૈ ઇસકા આચરણ કરના હી બ્રહ્મચર્ય્ય હૈ, અન્ય બ્રહ્મચર્ય્ય નહીં હૈ ।

મુક્તિ માર્ગના દર્શક બની શકશે ન્યાયે આ અપરિગ્રહતા તમે પ્રાપ્ત કરી
 શકશે ત્યારે જ તમે જ્ઞાનાવરણીયાદિક આઠ પ્રકારના કર્મોના નાશ કરવાવાળા
 નિરવધ અનુષ્ઠાનરૂપ તપની આરાધનામા વિશેષ પગક્રમ કરશો, અને આવી રીતે
 તમે તપવીર અને ધર્મવીર બની શકશો સયમ અને તપમા પગક્રમશાળી
 હોવાનો ઉપદેશ એ માટે આપવામા આવેલ છે કે જે પરિગ્રહના ગ્રહણમા
 પરાદ્મુખ છે તેમનામા ખરી રીતે નવ પ્રકારના મૈથુનની નિવૃત્તિરૂપ બ્રહ્મચર્ય્ય
 વ્રતની સમ્યક્ રીતિથી રક્ષકતા આવે છે, બીજામા નહી. કારણ કે તેઓ પરિ-
 ગ્રહના ગ્રહણ કરવામા આસક્ત હોવાથી નવ પ્રકારના તેવા બ્રહ્મચર્ય્યની રક્ષા
 કરી શકતા નથી, અને “એતેષુ ચૈવ બ્રહ્મચર્ય્યમ્” આ વાક્યનો એ પણ અર્થ
 થાય છે કે પૈજીવનિકાયોની ઘાત કરવાની વિગતિરૂપ જે સયમ છે તેનું આચરણ
 કરવું એ જ બ્રહ્મચર્ય્ય છે, બીજું બ્રહ્મચર્ય્ય નથી

एतत् मौनं-मगधदावेदित चारित्रं हे शिष्य ! त्वं समनुवासय -सम्=सम्पर्क=पूर्वोक्त
यथार्थरूपेण अनुवासयः=परिपालय । इति ब्रवीमीत्यस्यार्थस्तुक्त एव ॥ सू० ५ ॥

॥ इति पञ्चमाध्ययनस्य द्वितीय उद्देशः समाप्तः ॥ ५-२ ॥

यह मुनिसंघी कर्तव्य-चारित्र्य भगवान्‌से कहा है, सो हे शिष्य ! पूर्व में
प्रतिपादित यथार्थरूप से तुम इसका पालन करो ! “इति ब्रवीमि” इस
प्रकार श्री सुधर्मा स्वामी ने श्री जम्भूस्वामी से कहा ॥

॥ पंचम अध्ययन का द्वितीय उद्देश समाप्त ५-२ ॥

अत्यन्तशील मनी = परिजनेत् ” अत्र-आ-आजगती दीक्षाने वाली प्रकारे पालन करे
आ मुनिसंघी कर्तव्य को-हे चारित्र्य भगवाने कहल छे, भाटे छे शिष्य । पहुँचा
कहेवाला आवेस अर्थ इपसी तमे तेनु पालन करे । इति ब्रवीमि = आ प्रकारे
श्री सुधर्मा स्वामीने श्री जम्भूस्वामीने कह्यो ।

पञ्चमा अध्ययननो जीको उद्देश समाप्त ॥ ५-२ ॥



આત્મન્યેવ સ્તઃ, રાગદ્વેષયોરાત્મન્યેવ સદ્ભાવાત્ । અપિ ચ-અત્ર=આરમ્ભપરિગ્રહે અપ્રશસ્તાધ્યાત્મે વા વિરતઃ=ઉપરતઃ, અનગારઃ=મુનિઃ દીર્ઘરાત્ર=યાવજ્જીવં પરિગ્રહાસત્ત્વાદ્ યત્ ક્ષુત્પિપાસાદિકમ્ આતન્કાદિક વા સમાપતેત્ તત્સર્વં નિતિભેત્=સહેત । અન્યમપ્યુપદેશમાહ-‘પ્રમત્તાન્’-इत्यादि, પ્રમત્તાન્=અસંયતાન્ આરમ્ભપરિગૃહીતાન્ કુલિङ्गिनः परतीर्थिकान् बहिः=ભગવદ્ભાષારૂપાદ્ ધર્માદ્વહિર્ભૂતાન્ પશ્ય । અતો ભગવદ્ભાષાવર્તી મુનિઃ અપ્રમત્તઃ=સંયમાનુપાલનાર્થં પ્રયત્નવાન્, યદ્વા-અપ્રમત્તઃ=પશ્ચવિધપ્રમાદરહિતઃ સન્ પરિવ્રજેત્=પ્રવ્રજ્યા પરિપાલયેત્-વિહરેદિત્યર્થઃ । કિંચ-બંધ ઔર પ્રમોક્ષ “અધ્યાત્મે ઇવ” આત્મા મેં હી હૈં । ક્યોં કિ રાગ ઔર દ્વેષ આત્મા મેં હી હોતે હૈં । જહાં વધ હૈ વહી મુક્તિ હૈ । તથા-આરમ્ભ ઔર પરિગ્રહ મેં અથવા અપ્રશસ્ત અધ્યાત્મ-રાગદ્વેષ વિશિષ્ટ આત્મામેં જો લીન નહીં હૈ-उनसे विरक्त है, उस मुनिको दीर्घरात्र=જીવનપર્યન્ત પરિગ્રહ કે અસત્ત્વ સે જો ક્ષુધા તૃષ્ણા આદિ પરીષદ્ અથવા કિસી મી પ્રકાર કા રોગ ઉપદ્રવ આવે તો ઁન સબ કા ઁસે સહન કરના ચાહિયે । તથા જો અસંયત હૈં, આરમ્ભ-પરિગ્રહમેં આસક્ત હૈં, દ્રવ્યલિङ्गी હૈં એસે પાસત્થાદિકોં ઔર પરતીર્થિકોં કો વીતરાગ પ્રભુકી આજ્ઞારૂપ ધર્મમાર્ગસે બાહર સમઘનના ચાહિયે । જો વીતરાગ પ્રભુકી આજ્ઞાનુસાર પ્રવૃત્તિ કરનેવાલે હૈં ઔર સંયમમાર્ગકી પરિપાલના કરનેમેં પ્રયત્નશીલ હૈં વે અનગાર મુનિ હૈં । इसलिये भगवान्की आज्ञावर्ती मुनि अप्रमत्त होकर अपने संयम के पालन करनेके लिये प्रयत्नशील बन “परिव्रजेत्” प्रव्रज्या-भागवती दीक्षा का भले प्रकार पालन करे ।

પૃથક્ થયુ તેનુ નામ પ્રમોક્ષ છે આ બન્ને બધ અને પ્રમોક્ષ “અધ્યાત્મે ઇવ” આત્મામા જ છે, કારણ કે રાગ અને દ્વેષ આત્મામા જ હોય છે, ન્ત્યા બધ છે ત્યા મોક્ષ છે તથા આરભ અને પરિગ્રહમા અથવા અપ્રશસ્ત અધ્યાત્મ-રાગ દ્વેષવિશિષ્ટ આત્મા-મા જે લીન નથી એટલે તેનાથી વિરક્ત છે તે મુનિને દીર્ઘરાત્ર-જીવનપર્યન્ત પરિગ્રહના અસત્ત્વથી જે ક્ષુધા તૃષ્ણા આદિ પરીષદ્ અથવા કોઈ પણ પ્રકારના રોગનો ઉપદ્રવ આવે તો એ બધાને સહન કરવુ જોઈએ તથા જે અસંયત છે, આરભ પરિગ્રહમા આસક્ત છે, દ્રવ્યલિંગી છે, એવા પાસત્થાદિક અને પરતીર્થિકોને વીતરાગ પ્રભુની આજ્ઞારૂપ ધર્મમાર્ગથી બહાર સમજવા જોઈએ જે વીતરાગ પ્રભુની આજ્ઞા-અનુસાર પ્રવૃત્તિ કરવાવાળા છે, અપ્રમત્ત છે, અને સંયમ માર્ગની પરિપાલના કરવામા પ્રયત્નશીલ છે તે અનગાર-મુનિ છે આ કારણે ભગવાનના આજ્ઞાવર્તી મુનિ અપ્રમત્ત બનીને પોતાના સંયમનુ પાલન કરવા માટે

एतत् मौने-भगवदावेदितं चाग्निं हे शिष्य ! त्वं समनुवासयः-सम्-सम्यक्-पूर्वोक्त
ययार्थरूपेण अनुवासयः-परिपालय । इति ब्रवीमीत्यस्यार्थस्तुक्त एव ॥ सू० ५ ॥

॥ इति पञ्चमाध्ययनस्य द्वितीय उद्देशः समाप्तः ॥ ५-२ ॥

यह मुनिसंघर्षी कर्तव्य-चारित्र्य भगवान् ने कहा है, तू हे शिष्य ! पूर्व में
प्रतिपादित ययार्थरूप से तू इसका पालन करो ! “इति ब्रवीमि” इस
प्रकार श्री सुधर्मास्वामी ने श्री जम्भूस्वामी से कहा ॥

॥ पंचम अध्यायन का द्वितीय उद्देश समाप्त ५-२ ॥

अथलगील जनी “परिज्जेत्” अथलगा-आजवती बीलाने लली प्रहारे चलन करे
आ मुनिसंघर्षी कर्तव्य कोटले चारित्र्य भगवाने कहेल छे भाटे हे शिष्य । पहेलां
कहेवाभां आवेल ययार्थ रूपर्षी तमे तेनु पालन करे । इति ब्रवीमि ” आ प्रहारे
श्री सुधर्मा स्वामीने श्री जम्भूस्वामीने कहेल ।

पांचमा अध्यायनने लीले उद्देश समाप्त ॥ ५-२ ॥



અથ પચ્ચમાધ્યયનસ્ય તૃતીય ઉદ્દેશઃ ।

ઉક્તો દ્વિતીયોદ્દેશોઽધુના તૃતીયઃ સમારમ્યતે । એપ ચાનન્તરોદ્દેશેન સમ્બન્ધઃ, પૂર્વત્ર ચાવિરતિમાન અલ્પાદિદ્રવ્યૈઃ પરિગ્રહવાન્ ભવતીત્યુપદર્શિતમ્ । અત્ર ચ મુનેઃ પરિગ્રહપ્રતિપક્ષભૂતોઽપરિગ્રહો વ્યાખ્યાતવ્યો યેન મુનિત્વં ન વ્યાહન્યેતેતિ ।

મુનેઃ પરિગ્રહપ્રતિષેધં પ્રદર્શયતિ—‘આવંતી’ ઇત્યાદિ ।

મૂલમ્—આવંતી કેયાવંતી લોચંસિ અપરિગ્ગહાવંતી એસુ ચેવ અપરિગ્ગહાવંતી, સોચ્ચા વર્ઙ મેહાવી પંડિયાણ નિસામિયા સમિયાએ ધમ્મે આરિએહિં પવેઙ્ગે જહિત્થ મએ સંધી ઙ્ગોસિએ એવમન્નત્થ સંધી દુઙ્ગોસએ ભવઙ્ગે, તમ્હા વેમિ નો નિહાણિજ્જ વીરિયં ॥ સૂ. ૧ ॥

છાયા—યાવન્તઃ કિયન્તો લોકેઽપરિગ્રહવન્ત એતેપુ ચૈવાપરિગ્રહવન્તઃ, શ્રુત્વા વાચં મેધાવી પંડિતાનાં નિશમ્ય સમતયા ધર્મ આર્યૈઃ પ્રવેદિતો યથાઙ્ગ મયા સન્ધિ-શ્લેષિત એવમન્યત્ર સન્ધિદુર્શ્લેષિતો ભવતિ, તસ્માદ્બ્રવીમિ નો નિહન્યાદ્વીર્યમ્ ॥૧॥

પાંચવે અધ્યયનકા ત્રીસરા ઉદ્દેશ ।

દ્વિતીય ઉદ્દેશકા કથન હો ઝુકા । અવ તૃતીય ઉદ્દેશકા પ્રારમ્ભ હોતા હૈ । ઇસકા સંબંધ અનતર ઉદ્દેશ કે સાથ ઇસ પ્રકારસે હૈ—દ્વિતીય ઉદ્દેશ મેં યહ પ્રકટ કિયા હૈ કિ અવિરતિસમ્પન્નપ્રાણી અલ્પ આદિ વસ્તુઓં સે સમ્બન્ધિત હોને પર પરિગ્રહી હોતા હૈ । ઇસ ઉદ્દેશ મેં ઇસકે પ્રતિપક્ષ-ભૂત અપરિગ્રહવાદકા સિદ્ધાન્ત પ્રતિપાદિત કરના હૈ, ક્યોં કિ નિષ્પરિ-ગ્રહતા સે હી મુનિમેં મુનિતા આતી હૈ, અન્યથા નહીં ! ઇસલિયે સર્વપ્રથમ મુનિકે પરિગ્રહ કા પ્રતિષેધ કરને કે લિયે કહતે હૈ “આવંતી” ઇત્યાદિ ।

પાચમા અધ્યયનનો ત્રીજો ઉદ્દેશ

બીજા ઉદ્દેશતુ વક્તાવ્ય પૂર થયુ, હવે ત્રીજો ઉદ્દેશ શરૂ થાય છે જેનો સળધ અનતર ઉદ્દેશની સાથે આ પ્રકારે છે—બીજા ઉદ્દેશમા એમ કહેવામા આવેલ છે કે અવિરતિસમ્પન્ન પ્રાણી અલ્પ આદિ વસ્તુઓથી સળધિત હોવાથી પરિગ્રહી બને છે આ ઉદ્દેશમા તેના પ્રતિપક્ષભૂત અપરિગ્રહવાદનો સિદ્ધાન્ત સમજાવે છે, કારણ કે નિષ્પરિગ્રહતાથી જ મુનિમા મુનિતા આવે છે, બીજાથી નહિ એટલા માટે સર્વ પ્રથમ મુનિને પરિગ્રહનો પ્રતિષેધ કરવાને કહે છે—“આવંતી” ઇત્યાદિ.

ટીકા—‘યાવન્ત’ ઇત્યાદિ, લોકે=મનુષ્યલોકે યાવન્તઃ કિયન્ત=યાપ ત્યમાણા કેવન અપરિગ્રહન્ત=અત્યસ્પૂલાદિદ્રવ્યપરિગ્રહિતાઃ મુનયો મચન્તિ, તે સર્વે સંયમિનો હિ પરેષુ વૈષ=અત્યસ્પૂલાદિવૈષ વસ્તુપુ મમત્વામાનાઽપ્ અપરિગ્રહન્તઃ= નિવ્યરિગ્રહાઃ અનગારા ઉચ્યન્તે ।

इस मनुष्यलोक में कितनेक अल्प और स्पूल द्रव्य परिग्रहसे रहित मुनि होते हैं । वे समस्त संयमी इन अल्प स्पूलादि द्रव्यों में ममत्वरहित होने से अपरिग्रही कहे जाते हैं ।

‘માવાર્થ’—“ અત્યસ્પૂલાદિક દ્રવ્યોં કે પરિગ્રહસે રહિત કિતનેક મુનિ હૈ” ઇસ કથનસે કોઈ યહ ન સમજા સેવે કિ ઔર ખી કોઈ મુનિ અત્ય સ્પૂલાદિ દ્રવ્યબાલે ખી હોતે હૈંગે । સૂત્રકાર કા અભિપ્રાય યહ હૈ કિ સંસાર મેં જિતને ખી પ્રાણી હૈં વે સબ પ્રાણ પરિગ્રહાશીન હૈં । ઇસ પરિ ગ્રહકા વિવેચન અત્યસ્પૂલાદિક કે ભેદસે ત્રિતીય ઉદ્દેશ કે બૌધે સૂત્ર મેં કિયા જા ચુકા હૈ । સમસ્ત પ્રાણિયોં મેં વિરહે હી મુનિ હોતે હૈં ઔર વે પરિગ્રહ કે ત્યાગી હી હોતે હૈં । અથવા—સૂત્રકાર કો યહાં પર મુનિધર્મ કા પ્રતિપાદન કરના અમીષ્ટ હૈ । દ્રવ્યલિંગી પાસત્પાદિક ખી નામ સે મુનિસંજ્ઞાબાલે હૈં । વર્ણિતશાક્યાદિક ખી લોકમેં ત્યાગી મુનિ કહલાતે હૈં, પરન્તુ ઇનમેં વાસ્તવિક મુનિપના નહીં હૈ । ક્યોં કિ જો પરિગ્રહ સે રિક્ત હોતે હૈં વે હી વાસ્તવિક મુનિ માને ગયે હૈં । યથાપિ ઇન પાસત્પા

આ મનુષ્ય લોકમાં કેટલાક અત્ય અને સ્પૂલ દ્રવ્યપરિગ્રહથી રહિત મુનિઓ હોય છે તે સર્વવિસ્ત સુખથી જાણા અત્ય સ્પૂલાદિ દ્રવ્યોના મમત્વરહિત હોવાથી અપરિગ્રહી કહેવાય છે

બાવાર્થ:—“ અત્ય સ્પૂલાદિ દ્રવ્યોના પરિગ્રહથી રહિત કેટલાક મુનિ હોય છે ” આ કથનમાં કોઈ એમ ન સમજા લે કે બીજા કોઈ મુનિ અત્ય સ્પૂલાદિ દ્રવ્યવાળા કરી સૂત્રકારનો અવિગ્રહ્ય એ છે કે—સંસારમાં જેટલા પ્રાણી છે તે સમજા થઈ કરી પરિગ્રહને જામીન છે આ પરિગ્રહનું વિવેચન અત્ય સ્પૂલાદિ કયા લેદથી બીજા ઉદ્દેશના બોધા સૂત્રમાં કહેવામાં આવેલ છે સમસ્ત પ્રાણી જોમાં વિરહા જ મુનિ બને છે અને તે પરિગ્રહના ત્યાગી જ હોય છે જાણવા સૂત્રકાર આ સ્થળે મુનિધર્મનું પ્રતિપાદન કરતું ઉચિત સમજે છે દ્રવ્યલિંગી પાસત્પાદિક પણ નામથી મુનિજ્ઞાવાળા છે હાં શાક્યાદિક પણ લોકમાં ત્યાગી—મુનિ કહેવાય છે પરંતુ તેઓમાં વાસ્તવિક મુનિપણુ નથી, કારણ કે વે પરિગ્રહથી દૂર રહે છે તે જ વાસ્તવિકપણે મુનિ માની શકાય એ કે જાણા વાસત્પાદિકમાં પણ બાક

પરિગ્રહઃ પરિવર્જનીય ઇતિ કથ જાનાતીત્યાહ-શ્રુત્વેત્યાદિ, મેધાવી=સાધુ-મર્યાદાજ્ઞાનકુશલઃ પણિતાનાં=તીર્થંકરગણધરાદીના “ વર્ત ” વાચં=પરિગ્રહજનિતનરક-નિગોદાદિપરિભ્રમણકકદુરુફલસ્વરૂપાં વાણીં શ્રુત્વા=સમાકર્ણ્ય, અત્ર ‘ વર્ત ’ ઇતિ મૂલે દ્વિતીયાર્થે પ્રથમાઽઽર્પત્વાત્; એવં નિશમ્ય ભગવદ્વચનમેવ ધર્મ ઇત્યવધાર્ય સચિ-ત્તાચિત્તમિશ્રપરિગ્રહપરિત્યાગાન્નિષ્પરિગ્રહો ભવતીતિ સમ્બન્ધઃ । સ ચ ધર્મઃ ક્રીડશો ભવતીત્યાહ—‘ સમતયે ’-ત્યાદિ, ધર્મઃ=તીર્થંકરાદિપ્રદિષ્ટઃ ‘ સમનયા ’ સમસ્ય ભાવઃ સમતા તયા-શત્રુમિત્રેષુ તુલ્યસ્વભાવેન વર્તનરૂપો ધર્મ આર્યઃ=તીર્થકૃદ્ભિઃ પ્રવે-દિકોં મેં ભી વાહ્યરૂપ સે મુનિની આકૃતિ વગૈરહ હોતી હૈ; પરન્તુ હિસ આકૃતિમાત્ર સે મુનિતા ઉનમેં નહીં માની ગઈ હૈ, મમેદં (મમત્વ) ભાવ કા અલ્પસ્થૂલાદિક દ્રવ્યોં મે પરિત્યાગ હી વાસ્તવિક મુનિપને કા દ્યોતક માના ગયા હૈ । હિસલિયે મુનિ હોકર ભી સવ મુનિ નહીં હૈ । કિન્તુ પરિગ્રહ કે પરિત્યાગી હી મુનિ હૈં ।

“ પરિગ્રહ છોડને યોગ્ય હૈ ” યહ મુનિજન કૈસે જાનતે હૈં ? હિસકે પ્રત્યુત્તર મેં સૂત્રકાર કહતે હૈં કિ—“ જો પરિગ્રહી હોતા હૈ વહ નરક-નિગોદાદિગતિયોં મેં પરિભ્રમણરૂપ કદુક ફલકો પ્રાપ્ત કરતા હૈ ” હિસ પ્રકાર તીર્થંકર ગણધર આદિ વિશિષ્ટ જ્ઞાનિયોં કી વાત સુન કર સાધુ કી મર્યાદા કે જ્ઞાનમેં કુશલ અર્થાત્-મેધાવી સાધુ યહ જાન લેતે હૈં કિ પરિગ્રહ છોડને યોગ્ય હૈ । તવ વે મુનિજન સચિત્ત અચિત્ત ઔર મિશ્ર પરિગ્રહકે ત્યાગસે નિષ્પગ્રહી હોતે હૈં । તીર્થંકરાદિદ્વારા પ્રતિપાદિત ધર્મ કૈસા હોતા હૈ ? હેસી શિષ્યકી જિજ્ઞાસા કે સમાધાનાર્થ સૂત્રકાર કહતે હૈ—

રૂપથી મુનિની આકૃતિ વગેરે હોય છે પરંતુ એ આકૃતિ પરથી મુનિપણુ તેમ-નામા માનવામા આવતુ નથી મમત્વભાવનો અલ્પસ્થૂલાદિક દ્રવ્યોમા પરિત્યાગ જે વાસ્તવિક મુનિપણુનો દ્યોતક માનવામા આવેલ છે માટે મુનિ બનીને પણ એવા મુનિ નથી, પરંતુ પરિગ્રહના પરિત્યાગી જે મુનિ છે

‘ પરિગ્રહ છોડવા યોગ્ય છે ’-તે મુનિજન કેવી રીતે બાણુ છે ? તેના પ્રત્યુ-ત્તરમા સૂત્રકાર કહે છે કે જે પરિગ્રહી છે, તે નરક-નિગોદાદિ ગતિઓમા પરિ-ભ્રમણરૂપ કડવા ફળને પ્રાપ્ત કરે છે, આવા પ્રકારની તીર્થંકર ગણધર આદિ વિશિષ્ટ જ્ઞાનીઓની વાણી સાંભળીને સાધુની મર્યાદાના જ્ઞાનમા કુશલ મેધાવી મુનિ બાણી લે છે કે પરિગ્રહ છોડવા યોગ્ય છે, ત્યારે તે મુનિજન સચિત્ત અચિત્ત અને મિશ્ર પરિગ્રહના ત્યાગથી નિષ્પરિગ્રહી થાય છે તીર્થંકરાદિદ્વારા સમજાવેલ ધર્મ કેવો હોય છે ? એવી શિષ્યની જિજ્ઞાસાનુ સમાધાન કરવા માટે સૂત્રકાર કહે છે-તીર્થંકરાદિએ જે ધર્મનો ઉપદેશ આપ્યો છે, તે ધર્મ એ છે કે શત્રુ અને

दितः—कथितः, स्तुतिनिन्दादिषु सर्वत्र समभाववर्ती निष्परिग्रहो मुनिर्मयति, उक्तम्—

“जे बंदणेण बाहुं आलिंपइ, वासिणा वा तच्छेति ।

सधुणइ जा य णिंदति, महेसिणा तत्थ समभावो” ॥ १ ॥ इति ।

छाया—यश्चन्दनेन बाहुमुपलिम्पति, वास्या वा तक्ष्णोति ।

संस्तौति यश्च निन्दति महर्षेस्तत्र समभावः ॥ १ ॥ इति ।

तीर्थङ्करादिने जिस धर्मका उपदेश दिया है वह धर्म यही है कि शत्रु और मित्र में मुनिजन समभावी रहें । शत्रु-मित्र में समभावसे वर्तने वाला मुनि ही निष्परिग्रही होता है ।

भावार्थ—शत्रु मित्र में राग द्वेष रखनेवाले में निष्परिग्रहता नहीं आ सकती, कारण कि परिग्रह का छक्षण मूर्च्छा-ममत्व-भाव बतलाया गया है । राग होना ही ममत्वभाव है, अथवा ममत्वभावका कार्य राग है । कार्य के सङ्गाथ में कारण का सङ्गाथ माना ही जाता है । अतः राग के सङ्गाथ में मच्छिन्नादिपरिग्रहता रागीमें आती है । इस हेतु निष्परिग्रह होनेके लिये शत्रु-मित्रमें समभावसे प्रवर्तन करने रूप धर्मका उपदेश तीर्थङ्करादिक आर्य पुरुषों न दिया है ।

कहा भी है—

“जे बंदणेण बाहुं आलिंपइ वासिणा वा तच्छेति ।

संघुणइ जो य णिंदति, महेसिणो तत्थ समभावो” ॥ १ ॥ इति—

मित्रभा मुनिजन समभावी रहे. शत्रु-मित्रभा समभावधी वर्तवावाण मुनि व निष्परिग्रही होय छे

भावार्थ—शत्रु-मित्रभा रागद्वेष प्रभववाणभा निष्परिग्रहिता आवती नथी, कारण छे परिग्रहेय लक्षण ममत्वभाव जतावेय छे, राग द्वेष ओ ममत्वभाव छि ममत्वभावतु कार्य राग छि भावना सङ्गाथभा कारणने सङ्गाथ भावनाभा आवे छि भाटे रागभा सङ्गाथभा समित्तादिपरिग्रहिता रागीभा आवे छि अतः शत्रु निष्परिग्रह होवाने भाटे शत्रु-मित्रभा समभावधी प्रवतन कारणतः धर्मने उपदेश तीर्थङ्करादिक आर्य पुरुषोको कहेय छे कहु पय छे—

जे बंदणेण बाहुं आलिंपइ वासिणा वा तच्छेति ।

सधुणइ जो य णिंदति महेसिणो तत्थ समभावो ॥ १ ॥ इति.

યદ્વા-‘આરિણ્દિ’ ઇતિ મૂલે સપ્તમ્યર્થે તૃતીયા, તેનાઽઽર્યેષ્વિતિચ્છાયા; આર્યેષુ=દેશભાષાચારિત્રાર્યેષુ, ઉપલક્ષણાદનાર્યેષુ ચ ધર્મઃ વીતરાગેણ સમ- તયા=સમભાવેન પ્રવેદિતઃ-સફલજીવોપકારાય સદગતયા પ્રવર્તકત્વાત્તેષામ્, “જહા પુણ્ણસ્સ કત્થઈ તહા તુચ્છસ્સ કત્થઈ” ઇત્યાદિવચનાત્, અથવા- ‘સમિયાણ’ ઇતિ મૂલસ્ય શમિતયેતિચ્છાયા, તતશ્ચ ‘શમિતયા શમી=ઇન્દ્રિયનો-

उनका यह कथन है कि चाहे कोई भुजाओं में चंदनका लेप करे अथवा तलवार या कुल्हाड़ी से काटे, कोई उनकी स्तुति करे या निंदा करे, तो भी महर्षि वहां पर समभाववाले ही होते हैं।

अथवा—मूल सूत्र में “आरिण्हि” ऐसा पद है। जिसकी संस्कृत-छाया-पहिले “आर्यैः” ऐसी की है। परन्तु जब “आरिण्हि” इस पद में सप्तमी विभक्ति के अर्थ में तृतीया विभक्ति मानेंगे तब इसकी छाया “आर्येषु” होगी। उस अवस्था में ऐसा इसका अर्थ होगा कि देशार्थ, भाषार्थ और चारित्र्यार्थों में तथा उपलक्षण से अनार्यों में भी वीतरागप्रभुने समभावसे धर्मका उपदेश दिया है। क्योंकि वीतराग प्रभुकी प्रवृत्ति समस्त जीवोंपर उपकार करने के लिये एकसी होती है। “जहा पुण्णस्स कत्थइ तहा तुच्छस्स कत्थइ” ऐसा आगमका वचन है।

‘समियाण’ इस मूल पदकी संस्कृत-छाया ‘शमितीया’ होती है। इन्द्रिय और मनका जो निग्रह करता है वह शमी है, शमीका भाव

આનો ભાવ છે કે ભલે કોઈ બુબ્બઓમા ચદનનો લેપ કરે અથવા તલવાર અથવા કુહાડીથી તેને કાપે, કોઈ એની સ્તુતિ કરે અથવા નિંદા કરે, તો પણ મહર્ષિ આમા સમભાવ દાખવનાર જ રહે છે

અથવા—મૂળ સૂત્રમા “આરિણ્દિ” એવો પદ છે. જેની સંસ્કૃત છાયા પહેલા “આર્યૈઃ” એમ કરી છે

પરંતુ જ્યારે ‘આરિણ્દિ’ આ પદમા સપ્તમી વિભક્તિના અર્થમા તૃતીયા વિભક્તિ માનવામા આવશે, ત્યારે તેની છાયા “આર્યેષુ” એવી થશે આવી અવસ્થામા આવે એનો અર્થ થશે કે—દેશાર્થ, ભાષાર્થ અને ચારિત્ર્યાર્થોમા, તથા ઉપલક્ષણથી અનાર્યોમા પણ વીતરાગ પ્રભુએ સમભાવથી ધર્મનો ઉપદેશ આપ્યો છે કારણ કે વીતરાગ પ્રભુની પ્રવૃત્તિ સમસ્ત જીવો ઉપર ઉપકાર કરવા માટે એકધારી હોય છે આગમનુ વચન છે કે—“જહા પુણ્ણસ્સ કત્થઈ તહા તુચ્છસ્સ કત્થઈ”

“સમિયાણ” આ મૂલની સંસ્કૃત છાયા “શમિતયા” થાય છે ઇન્દ્રિય અને મન ઉપર જે કાબુ મેળવે છે એ શમી છે, શમીનો ભાવ શમિતા છે.

ઇન્દ્રિયોપસમી, તસ્ય માનઃ શમિતા તથા આર્યોઃ=તીર્થદ્વારે ધર્મઃ પ્રવેદિતઃ, મગધાન્ મિ
ધ્યાદિપ્રત્યુપદેશસ્ય હેયતામુપદર્શયતિ 'અહિત્ય' ઇત્યાદિઃ અન્ન-અભિમર્શનશાસનો
ક્તે રત્નત્રયાત્મકે મોક્ષમાર્ગે મયા ધાતિકર્મ મોક્ષતુકામેન યથા=યેન પ્રકારેણ સન્ધિઃ=
સન્ધાનં સંધિ' કર્મપરમ્પરા, સન્ધીયતે શાસન્ધિઃ=જ્ઞાનાવરણીયાદિકર્મસન્તતિઃ, સ
કૃત્સ્નો ઘોષિતાઃ=અપનોતો દૂરીકૃતાઃ, એવં=તથા અન્નપન્ન-કુતીર્થિકપ્રતિપાદિત
શાસને સન્ધિઃ=પૂર્વોક્તો દુર્મ્મોષિતઃ=દુઃસેનાપનીવોઽપનેતુમશ્ચક્ય ઇત્યર્થઃ, અથતિ,
દોષરાહિત્યન વીતરાગપ્રતિપાદિત એવ મોક્ષમાર્ગ સાધીમાક્તુ સર્વસમારમ્મશીઘ્રેન
સંવિષ્મોહિના રાગદ્વેષાદ્યશક્તા પરેજ પ્રતિપાદિતો માર્ગો મોક્ષાય મવતીત્યભિપ્રાયઃ,
શમિતા હૈ । શમિતા સે આર્ય તીર્થદ્વારાદિકો ન ધર્મની પ્રરૂપણા કી હૈ
-એસા સમસના બાહિયે ।

વીતરાગ સે અન્ન અવીતરાગ મિધ્યાદિષ્ટિકા ઉપદેશ હેય હૈ-છોક્રને
યોગ્ય હૈ-હસ વાત કો પ્રદર્શિત કરમે કે લિયે સ્વયં મગધાન્ કહતે હૈ-
'અહિત્ય' ઇત્યાદિ । હસ આર્હત-શાસનમે પ્રતિપાદિત રત્નત્રયાત્મક મોક્ષ-
માર્ગમે ધાતિકર્મો કો નાશ કરનેકી કામનાવાલે મૈને જિસ પ્રકાર સે
કર્મપરપરા-જ્ઞાનાવરણીયાદિક કર્મો કી સન્તતિ સમ્પૂર્ણરૂપસે દૂર કી
હૈ હસ તરહ સે બહ કર્મપરમ્પરારૂપ સંવિક્ષા અન્નપન્ન-મિધ્યાદિષ્ટિયો દ્વારા
પ્રતિપાદિત સિદ્ધાન્તમે દુર્મ્મોષિત-અપનયન-દૂર કરના અશક્ય હૈ ।
અર્થાત્ મિધ્યાદિષ્ટિયો કે સિદ્ધાન્ત કે મહારે યહ કર્મપરમ્પરા નષ્ટ નહીં
હો સક્તી હૈ । અભિપ્રાય હસકા યહી હોતા હૈ કિ દોષરહિત હોને સે
વીતરાગ દ્વારા પ્રતિપાદિત હી મોક્ષમાર્ગ સર્વોત્કૃષ્ટ હૈ, સર્વસમારમ્મ-

શમિતાથી આર્ય તીર્થદ્વારાદિકો ન ધર્મની પ્રરૂપણા કરી છે એમ સમજવું જોઈએ

વીતરાગથી અન્ન અવીતરાગ-મિધ્યાદિષ્ટિના ઉપદેશ બીજાજ નથી-છોક્રના
યોગ્ય છે-આ વાત સ્પષ્ટ કરતાં સ્વયં મગધાન્ કહે છે કે- 'અહિત્ય' ઇત્યાદિ
આ આર્હત શાસનમા પ્રતિપાદિત રત્નત્રયાત્મક મોક્ષમાર્ગમા ધાતિકર્મોના નાશ
કરવાની કામનાવાળા મે જે પ્રકારથી કર્મપરપરા-જ્ઞાનાવરણીયાદિક કર્મોની સતતિ
અર્થ દ્વયથી દૂર કરેલ છે તે રીતે એ કર્મપરપરારૂપ સંધીના અન્નપન્ન-મિધ્યા
દિષ્ટિઓદ્દાસ પ્રતિપાદિત સિદ્ધાન્તમા દુર્મ્મોષિત-દૂર કરવું અશક્ય છે. અર્થાત્ મિધ્યા
દિષ્ટિઓના સિદ્ધાન્તને સકારે અર્થ કર્મપરપરા દૂર થઈ શકનાર નથી. અભિપ્રાય આનો
એ છે કે-દોષરહિત થવાથી વીતરાગદ્વારા પ્રતિપાદિત જ મોક્ષમાર્ગ સર્વોત્કૃષ્ટ છે

તસ્માત્કારણાત્ વ્રવીમિ=કથયામિ, યત એતદાર્હતે માર્ગે સમ્યગ્વ્યવસ્થિતેન મયા કર્માપનીતમ્ તતો વ્રવીમિ અન્યોઽપિ સયતો વીર્યસયમાચરણે તપસિ વા સામર્થ્ય નો નિહન્યાત્=નો ગોપયેત્ અનિગૂહિતવલ્લીર્યેણ મુનિના ભાવ્યમિતિ ભાવ, ઇતિ સુધર્મા સ્વામી સ્વશિષ્યાય વીરપ્રોક્તં વ્રવીતીત્યાગયઃ ॥ સૂ૦ ૧ ॥

અપિ ચ સ કથમ્ભૂતો ભવેત્? ઇત્યાહ-‘ જે પુવ્વુટ્ટાઈ ’ ઇત્યાદિ ।

મૂલમ્—જે પુવ્વુટ્ટાઈ નો પચ્છાનિવાઈ, જે પુવ્વુટ્ટાઈ પચ્છા-નિવાઈ, જે નો પુવ્વુટ્ટાઈ નો પચ્છાનિવાઈ, સેઽવિ તારિસણ સિયા, જે પરિન્નાય લોગમણુસિસયા ॥ સૂ૦ ૨ ॥

છાયા—યઃ પૂર્વોત્થાયી નો પશ્ચાન્નિપાતી, યઃ પૂર્વોત્થાયી પશ્ચાન્નિપાતી, યો નો પૂર્વોત્થાયી નો પશ્ચાન્નિપાતી, સોઽપિ તાદૃશઃ સ્યાત્, યે પરિજ્ઞાય લોકમન્વાશ્રિતાઃ ॥ સૂ૦ ૨ ॥

સ્વભાવવાલે સચિત્તભોજન કરનેવાલે ઓર રાગ એવં દ્રેષમેં આગ્રહવાલે અન્ય મિથ્યાદૃષ્ટિ અવીતરાગ દ્વારા પ્રતિપાદિત માર્ગ મોક્ષપ્રાપ્તિ કે લિયે યોગ્ય નહીં હૈ । ઇસી કારણ સે મૈ કહતા હૂં કિ ઇસ આર્હત માર્ગમેં અચ્છી તરહ સે રહતે હુએ મૈને કર્મોંકા નાશ કિયા હૈ, તો ઓર અન્ય સંયતોં સે મી મેરા યહી કહના હૈ કિ વે મી સયમ કે આચરણ મેં અથવા તપકી આરાધનામેં અપની શક્તિ કો નહીં છુપાવેં । જો અપને બલ ઓર વીર્ય કો છુપાતા હૈ વહ સન્ના મુનિ નહીં હૈ । ઇસ હેતુ સન્ને મુનિ હોને કે લિયે અપને બલ વીર્ય કો નહીં છુપાના ચાહિયે, તમી જા કર વહ સન્ના મુનિ હો સકતા હૈ । ઇસ પ્રકાર સુધર્માસ્વામીજી વીર ભગવાનદ્વારા પ્રતિપાદિત સિદ્ધાન્તકો અપને શિષ્ય જમ્બૂસ્વામીકે પ્રતિ કહ રહે હૈ ॥ સૂ૦ ૧ ॥

સર્વસમાર ભસ્વભાવવાળા અને સચિત્ત ભોજન કરવાવાળા તેમજ રાગ અને દ્રેષમા આગ્રહ રાખવાવાળા અન્ય મિથ્યાદૃષ્ટિ અવીતરાગદ્વારા પ્રતિપાદિત માર્ગ મોક્ષ પ્રાપ્તિ માટે યોગ્ય નથી, આ કારણે હું કહું છું કે આ આર્હત માર્ગમા રહીને મે કર્મોનો નાશ કરેલ છે, અન્યને પણ મારૂ આ કહેવું છે કે તેઓ પણ સયમના આચરણમા અથવા તપની આરાધનામા પોતાની શક્તિને ન છુપાવે બે પોતાનું બળ અને વીર્ય છુપાવે છે એ સાચો મુનિ નથી આથી સાચા મુનિ થવા માટે પોતાના બળ વીર્યને ન છુપાવવું જોઈએ આથી જ એ સાચો મુનિ બની શકશે આ પ્રમાણે સુધર્માસ્વામીએ વીર ભગવાન પાસેથી જાણેલ સિદ્ધાન્ત પોતાના શિષ્ય જમ્બૂસ્વામીને કહેલ છે ॥ સૂ૦ ૧ ॥

ટીકા—‘ય’ इत्यादि, य=विचारितसंसारसारो धर्मावृत्तानपरायणः पूर्वोत्पायी पूर्व-चारित्रग्रहणावसरे चारित्राचरणेनोत्पातुं शीलं यस्य स पूर्वोत्पायी, नोपप्राप्तिपाती-पश्चात्-चारित्रग्रहणानन्तरं निपतितुं शीलं यस्य नास्ति स नो-पप्राप्तिपाती भवति । सिंहवभिष्कान्तः सिंह इव एकान्तविहरणशीलः गणधरादि इत्य , इति प्रथमो मङ्गः, स चात्युत्तमः ।

तथा—मुनिजनको कैसा होना चाहिये ? इस बात को प्रकट करने के लिये कहते हैं—“ जे पुण्युद्वाइ ” इत्यादि ।

‘पूर्व—चारित्रग्रहणावसरे चारित्राचरणेन उत्पातुं शीलं यस्य स पूर्वोत्पायी’—चारित्र ग्रहण करने के अवसर में चारित्र के आचरण से अपनी वृद्धि करने का जिसका स्वभाव है वह पूर्वोत्पायी है । अपौर-चारित्र को अंगीकार कर के जो अपने चारित्रमय आचरण से अपने जीवनकी उत्पत्ति करता है उसका नाम पूर्वोत्पायी है । वह पूर्वोत्पायी “नोपप्राप्तिपाती” चारित्र ग्रहण के अनन्तर अपने गृहीत चारित्र से कभी पतित नहीं होता है क्योंकि इसका स्वभाव गृहीत चारित्र से निपतनशील नहीं होता है, प्रत्युत इसके परिणाम चारित्र ग्रहण के अवसरसे लगा कर सदा वर्धमान रहते हैं । इसीलिये वह पश्चात्ति-पाती नहीं होता है । सिंह की तरह एकान्त विहरणशील होने से यह गणधरादि के समान माना गया है । यह प्रथम मंग है । इस मंगबाला मुनि अति उत्तम है ।

હરી—મુનિજને કેવું થવું જોઈએ ? આ વાતને પ્રકટ કરવા કહે છે—“ જો પુણ્યુદ્વાઈ ” ઇત્યાદિ.

‘पूर्व—चारित्र-ग्रहणावसरे चारित्राचरणेन उत्पातुं शीलं यस्य स पूर्वोत्पायी’—चारित्र ग्रहण करवाना समये चारित्र आचरणથી પોતાની વૃદ્ધિ કરવાનો જેનો સ્વભાવ છે તે ‘पूर्वोत्पायी’ છે એટલે—ચારિત્રનો આગીકાર કરી એ પાતાના ચારિત્રમય આચરણથી પોતાના જીવનની ઉત્પત્તિ કરે છે એનું નામ ‘पूर्वोत्पायी’ છે એ ‘पूर्वोत्પાથી’ “ નો પશ્ચાત્તિપાતી ” ચારિત્ર ગ્રહણ કરી પછી એટલે જેનો સ્વીકાર કરેલ છે એનાથી અલિપ્ત થતો નથી. કેમ કે જેનો સ્વભાવ ગ્રહણ કરેલા ચારિત્રના પાલનમાં જૂઠા જ મક્કમ બનેલો હોય છે એથી એ ચારિત્ર ગ્રહણ કરી પછીથી ઉત્તરેતર એમાં જ રત બની રહે છે આથી તે “ પશ્ચાત્તિપાતી ” થતો નથી. સિંહની માફક એ એકાંત વિહરણથી જ હોવાથી તેને ગણધરાદિ સમાન માનવામાં આવેલ છે આ પ્રથમ મંગ છે, આ મંગ વાળા મુનિ અતિ ઉત્તમ છે

દ્વિતીયમ્ભમાહ—‘ય’ ઇત્યાદિ, યઃ કશ્ચિત્ પૂર્વોત્થાયી ચારિત્રં ગૃહીત્વા પશ્ચાન્નિપાતી=ચારિત્રાન્તરાયોદયાત્ પશ્ચાન્નિપતનશીલઃ । આચારાત્પતિતઃ શૈલકઃ, લિઙ્ગાત્પતિતો નન્દિષેણકુમારઃ, દર્શનતઃ પતિતો જમાલિઃ, આચારતો લિઙ્ગતશ્ચ પતિતઃ પશ્ચાત્કૃતઃ, કશ્ચિન્નિમિરપિપતિતો ભવતીત્યભિપ્રાયઃ, અયં ચ દ્વિતીયો મ્ભઃ ।

યો નો પૂર્વોત્થાયી પશ્ચાન્નિપાતી—ઇતિ તૃતીયમ્ભક્ત્યાભાવાદપ્રતિપાદનં મૂલે, ઉત્તિષ્ઠતો હિ નિપાતો જાયતે, ઉત્થાનપ્રતિષેધે ચ કુતસ્તરા નિપાતચિન્તેતિ બોધ્યમ્ ।

જો પૂર્વોત્થાયી તો હૈ; પરન્તુ ચારિત્ર ગ્રહણ કર કે મી જો અપને ગૃહીત ચારિત્ર સે, પીછે ચારિત્ર-અન્તરાય કે ઉદય સે નિપતનશીલ હૈ-વહ ‘પૂર્વોત્થાયી પશ્ચાન્નિપાતી’ એસા દ્વિતીય મંગ હૈ । જૈસે આચાર સે પતિત શૈલક રાજક્રષિ હુએ, લિઙ્ગ સે પતિત નન્દિષેણ હુએ, દર્શન સે પતિત જમાલિ હુએ । આચાર ઓર લિઙ્ગ ઇન દોનોં સે પતિત પશ્ચાત્કૃત હૈ; જૈસે કળ્ડરીકાદિ । કોઈ ૨ આચાર, લિઙ્ગ ઓર દર્શન ઇન તીનોં સે મી પતિત હુએ હૈ ।

જો પૂર્વોત્થાયી તો નહીં હૈ પરન્તુ પશ્ચાન્નિપાતી હૈ । યહ તૃતીય મંગ હૈ । પરન્તુ ઇસ મંગકી સંભાવના હી નહીં હો સકતી હૈ; કારણ કિ જો પૂર્વોત્થાયી હોગા ડસી મેં નિપાત કા વિચાર લાગૂ હોતા હૈ । જબ વહાં ઉત્થાન કા હી પ્રતિષેધ હૈ તો ફિર નિપાત કી વિચારણા વહાં કૈસે હો સકતી હૈ ? અર્થાત્-ચારિત્ર જિસને ગ્રહણ કિયા હૈ ડસી મેં પીછે યહ ઉત્થાનશીલ હૈ યા અનુત્થાનશીલ હૈ—ઇસ પ્રકાર કા વિચાર કિયા જા

જે પૂર્વોત્થાયી તો છે પરંતુ ચારિત્ર ગ્રહણ કરવા પછી પોતે ગ્રહણ કરેલ ચારિત્રથી આગળ વધી શકતો નથી અને અન્તરાયના ઉદયના કારણે નિપતન શીલ છે-તે “પૂર્વોત્થાયી પશ્ચાન્નિપાતી” એમ દ્વિતીય લગ છે, જેમ કે આચારથી પતિત શૈલક રાજક્રષિ થયા, લિંગથી પતિત નન્દિષેણ થયા, દર્શનથી પતિત જમાલી થયા, આચાર અને લિંગ, આ બન્નેથી પતિત પશ્ચાત્કૃત છે, જેમ-કળ્ડરીક આદિ કોઈ કોઈ આચાર, લિઙ્ગ અને દર્શન આ ત્રણેથી પણ પતિત થયેલ છે

જે પૂર્વોત્થાયી તો નથી પરંતુ પશ્ચાન્નિપાતી છે આ તૃતીય લગ છે પરંતુ આ લગની સંભાવના જ નથી, કારણ કે જે પૂર્વોત્થાયી હોય છે એમા જ નિપાતનો વિચાર લાગુ થાય છે બ્યારે ત્યા ઉત્થાનનો જ પ્રતિષેધ છે ત્યા પછી નિપાત અને અનિપાતની વિચારણા જ કઈ રીતે થઈ શકે ? અર્થાત્-ચારિત્ર જેણે જ લગ કરેલ છે તેના વિષયમા જ એ આગળ વધી ગયેલ છે કે

चतुर्थमाह—यः गृहस्थस्तस्य नोपूर्वोत्पायी विरतेरसम्भावात्, अत एव नो-
पमाभिपाती, उचिष्ठत एव निपातो नानुचिष्ठतो मक्तीत्याश्रयः । सोऽपि=दण्डि
शाक्यादिरपि साहस्र.=चतुर्थमङ्गान्तर्गतः सावधानपरतया नोपूर्वोत्पायी, यत एव
नोपूर्वोत्पायी तत एव नापमाभिपाती, गृहस्थसदृशः स्यात्, उभयोरप्यसदृशत्वात्
द्वारत्वात् । यऽप्यसमारम्भिणस्तेऽपि साहस्रा एवेत्याह—‘येऽपी’त्यादि, येऽपि

सकता है । परन्तु जब मूलमें ही यह बीज उसके पास नहीं है तब उस
विषय को लेकर उत्थान और पतन का विचार कैसे हो सकता है ?
इसीलिये सूत्रकारने सूत्रमें इस तृतीय अंगका प्रतिपादन नहीं किया है ।

जो गृहस्थ के समान हैं, वे न पूर्वोत्पायी हैं और न पश्चात्तिपाती
हैं । पूर्वोत्पायी इसलिये नहीं हैं कि उनमें चारित्र्यका सम्भाव नहीं है, और
इसीलिये वे पश्चात्तिपाती भी नहीं हैं । चारित्र्य के सम्भावबाले में ही
पश्चात्तिपातित्व संभवित होता है, इसके अभावबाले में नहीं । ऐसे
दण्डिशाक्यादिक हैं । ये चतुर्थमङ्ग के अन्तर्गत ही हैं । कारण कि ये
सावध व्यापारों में प्रवृत्तिशील होते हैं; अतः इनका आचार सावध
विशिष्ट होने से इनमें विरति नहीं है । विरति के अभाव
से ये पूर्वोत्पायी नहीं हैं । जब ये पूर्वोत्पायी नहीं हैं तो पश्चात्तिपाती
भी नहीं हैं । अतः ये गृहस्थ ही हैं । क्यों कि जिस प्रकार गृहस्थजन
कर्मों के आसक्त के द्वार से असंयुत होते हैं, अर्थात् अविरति आदि

जटली पड़ेले छे जेवो विचार करवाने रहे छे परंतु जेना भूगर्भां व जेनी
पड़ेले जे बीज नथी त्हां छेत्थान जने पतनने विचार व छेदीते छे शके
आ व करवे सूत्रकारे सूत्रभां आ तृतीय अंगने स्वीकार करेले नथी ।

जे गृहस्थनी रीते रहेवाण्णा छे ते न तो पूर्वोत्पायी छे ते न तो पश्चा-
त्तिपाती छे पूर्वोत्पायी आ भट्टे नथी ते जेभने व्याप्तिने अनुभाव नथी आ
व करवे पश्चात्-निपाती पञ्च नथी । व्याप्तिअनुभाववाण्णां व पश्चात्-निपा-
तिव संभवित होय छे ज्जाना अनुभाववाण्णां नथी । जेवा वही शाक्यादिक
छे जे चतुर्थमङ्गना अन्तर्गत होय छे करवु ते जे सावध व्यापारमां प्रवृत्ति-
शील रहेला होय छे जेठले जेभने आचार सावधविशिष्ट होवाथी जेनाभा
विरतिरूपता नथी विरतिरूपतां अनुभावथी जे पूर्वोत्पायी नथी । ज्यारे जे
पूर्वोत्पायी व नथी तो पश्चात्तिपाती पञ्च नथी, जाथी जे गृहस्थ व छे, करवु ते
गृहस्थजन जेभने अनुभावना द्वारा असंयुत होय छे । अर्थात्

દ્રવ્યલિંગિનો દણ્ડિશાક્યાદયઃ લોકમ્=અવિરતલોકં પરિજ્ઞાય=દ્વિવિધપરિજ્ઞયા જ્ઞાત્વા પરિહૃત્ય ચ પુનસ્તમેવ લોકં સાવધવ્યાપારિણમ્ અન્વાશ્રિતાઃ=તાદૃશલોક-સ્યેવાનુસરણ કૃતવન્તઃ । પચનપાચનાદિવ્યાપારેભ્યઃ પૂર્વમુપરમ્ય પશ્ચાચારિત્રાન્તરાયો દયાત્પુનરપિ તમેવ સમારમ્ભવન્ત લોકમનુસરન્તઃ પાચનાનુમોદનામ્યા ગૃહસ્થસદ્દશા એવ ભવન્તીત્યાશયઃ ॥ સૂ. ૨ ॥

કર્મોં કે આનેકે દ્વાર હૈં, ગૃહસ્થજનકા કર્મોં કે આગમન કા યહ દ્વાર બંદ નહીં હોતા હૈ ઉસી પ્રકાર અવિરતિ આદિ સે યુક્ત હોને કે કારણ સે દણ્ડિ-શાક્યાદિકોં કે બી કર્મોં કે આગમનકે દ્વાર खुले હી રહતે હૈં । યે કર્મોં કે આસ્રવ સે રહિત ઉસ અવસ્થા મેં નહીં હો સકતે હૈં । ઇસી તરહ જો અસમાર બી તો હૈં, પરન્તુ પચન-પાચનાદિ કાર્યોં કી અનુમોદનાદિ કરતે હૈં વે બી ગૃહસ્થતુલ્ય હી હૈં, ઓર ચતુર્થ ભંગમેં ઉનકા અંતર્ભાવ હોતા હૈ, યહ સૂત્રકાર પ્રકટ કરતે હૈં-દ્રવ્યલિંગી મુનિ દણ્ડિશાક્યાદિક વગેરહ જ્ઞપરિ-જ્ઞાસે અવિરત લોક કો જાનકર ઓર પ્રત્યાખ્યાન પરિજ્ઞાસે ઉસકા પરિહાર કર ફિર ઉસી સાવધ વ્યાપારી લોકકા જો અનુસરણ કરતે દેખે જાતે હૈં, અર્થાત્-યે પ્રથમ પચન-પાચનાદિ વ્યાપારોંસે અપને કો નિવૃત્ત કરકે બી પશ્ચાત્ ચારિત્ર-અન્તરાયકે ઉદયસે ઉસી સમારમ્ભશીલ લોકકા અનુસરણ કરતે હુએ પાચન ઓર અનુમોદન સે ગૃહસ્થતુલ્ય હી હો જાતે હૈં ॥ સૂ. ૨ ॥

અવિરતિ આદિ કર્મોંને આવવાનુ એ દ્વાર છે ગૃહસ્થજનને કર્મોંના આગમનનુ આ દ્વાર બંધ થતું નથી એ પ્રકારે અવિરતિ આદિથી યુક્ત હોવાના કારણથી દંડી શાક્યાદિકોંને પણ કર્મોંના આગમનના દ્વાર ખુલ્લા જ રહે છે એ કર્મોંના આસ્રવથી રહિત તે અવસ્થામાં બની શકતા નથી આ રીતે એ અસમાર ભી તો છે, પરન્તુ પચન-પાચનાદિ કાર્યોંની અનુમોદના કરે છે, એ પણ ગૃહસ્થતુલ્ય જ છે આથી ચતુર્થ ભંગમાં એમનો સમાવેશ થાય છે આમ સૂત્રકાર પ્રગટ કરે છે. આથી દ્રવ્યલિંગી મુનિ દંડી-શાક્યાદિકે વિગેરે જ્ઞ-પરિજ્ઞાથી અવિરત લોકોંને જાણીને અને પ્રત્યાખ્યાન-પરિજ્ઞાથી તેનો પરિહાર કરીને ફરી-તે સાવધ વ્યાપારી લોકોંનુ જ તે અનુસરણ કરતા દેખવામાં આવે છે, અર્થાત્-તે પચન પાચ-નાદિષ્ટ વ્યાપારોંથી પોતે નિવૃત્ત હોવા છતાં પણ પાછળથી ચારિત્ર-અન્તરાયના ઉદયથી તે સમારમ્ભશીલ લોકનુ અનુસરણ કરતા કરતા પાચન અને અનુમો-દનથી ગૃહસ્થતુલ્ય બની રહે છે ॥ સૂ. ૨ ॥

સર્વમિદ ન મયા સ્વબુદ્ધ્યા પ્રોક્તમિત્યા—‘પર્ય’ રૂપ્યાદિ ।

મૂલ્—પર્ય નિયાય મુણિણા પવેદ્ય, હહ આણાકસી પઠિપ અણિહે, પુઞ્વાવરરાય જયમાણે, સયા સીલ સપેહાપ સુણિયા ભવે અકામે અદ્ધામે, હમેણ ચેવ જુઝ્ઝાહિ, કિં તે જુઝ્ઝેણ વજ્ઝઓ ॥ સૂં ૩ ॥

છાયા—પરશસ્ત્રાસ્ત્રા મુનિના પ્રવેદિતમ્, શ્વાઽઽઽકાક્ષી પઞ્ચિતોઽસ્તિહઃ, પૃ વાંપરરાત્રં યતમાન, સદા શીઘ્રં સંપેક્ષ્ય ક્રુત્વા પ્રવેદકામોઽદ્ધમ્, અમેન ચૈવ બુધ્ધ્યમ્, કિંતે પુદ્ધેન શાશ્વતઃ ॥ મૂં ૩ ॥

ટીકા—‘પર્ય’—વિત્યાદિ, મુનિના = તીર્થંકુરેણ પરત્ = પૂર્વોક્તમ્ ઉત્થા-નનિપતનાદિકં વક્ષ્યમાણં ચા શસ્ત્રા=વિમત્સકેવળાન્નાકેન શુશ્રૂઞ્મા પ્રવેદિતમ્=મમિશિતમ્ ।

યહ સત્ત મૈને અપની બુદ્ધિસે નહીં કહા હૈ—એસા કહતે હૈ—‘પર્ય’ રૂપ્યાદિ તીર્થંકુર ભગવાને યહ પૂર્વોક્ત ઉત્થાન નિપતનાદિક અથવા વક્ષ્યમાણ વિષય અપને નિર્મલ કેવલજ્ઞાનરૂપી આલોક સે જાન કર હી કહા હૈ ।

માર્વાર્ય—સૂત્રકાર પૂર્વોક્ત કથન મેં અથવા આગે કહે જાનેવાળે વિષયમેં અપની કલ્પના સે કથનકા નિષ્પન્ન કરતે હુપ ઉત્તમેં લે તીર્થંકુર-ગ્રણીતતા પ્રકટ કરતે હૈ । યહ હસલિયે પ્રકટ કી ગઈ હૈ ફિ “વક્તુઃ પ્રામાણ્યસ્ય વક્ષસિ પ્રામાણ્ય” વક્તા કી પ્રમાણતા સે હી વક્તનમેં પ્રમાણતા બાતી હૈ । અન્યથા રખ્યા-પુરુષાદિક (મટકસે ફિરતે બજારુ) કી તરહ ઉત્તમેં અપ્રમાણતા હોનેસે યહ અમાન્ય હો જાતા હૈ ।

આ અધ્યય મે મારી શુદ્ધિથી કહેલ નથી જોમ કહે છે—“પર્ય” રૂપ્યાદિ તીર્થંકુર ભગવાને આ પૂર્વોક્ત ઉત્થાન નિપતનાદિક અને વક્ષ્યમાણ વિષય પોતાના નિમળ કેવલજ્ઞાનરૂપી આલોકથી બહુને કહુ છે

અર્થાથ—સૂત્રકાર પૂર્વોક્ત કથનમાં અને આગળ કહેવાતા વિષયમાં પોતાની કલ્પનાથી કથનનો નિષેધ કરીને તેમાં તે તીર્થંકુર પ્રણીતતા પ્રગટ કરે છે. આ જો માટે પ્રગટ કરેલ છે કે “વક્તુઃ પ્રામાણ્યસ્ય વક્ષસિ પ્રામાણ્ય” જોટલે વક્તાની પ્રમાણતાથી જ વક્તનમાં પ્રમાણતા આવે છે તે સિવાય રખ્યા પુરુષાદિક (સટકતા રૂપતા બાદરૂ)ની માફક તેમાં અપ્રમાણતા હોવાથી તે અમાન્ય બની જાય છે

તદેવાહ-‘હ્રે’-ત્યાદિ. હ્રે=અસ્મિન્ મૌનીન્દ્રપ્રવચને વ્યવસ્થિતઃ સન્
 “આજ્ઞાકાઢ્ક્ષી” આજ્ઞા=તીર્થકૃદુપદેશમાકાઢ્ક્ષિતું શીલ યસ્યાસ્તિ સ આજ્ઞાઽઽકાઢ્ક્ષી
 =અર્હચ્છાસનોક્તાનુષ્ઠાયી, અસ્તિહઃ=માતાપિત્રાદૌ શબ્દાદિવિષયે શરીરાદૌ વા
 સ્નેહવર્જિતઃ પણ્ડિતઃ=તીર્થઢ્ક્રારાજ્ઞાપરિજ્ઞાનકુશલઃ પાપમીરુર્ભવતિ, માતાપિતૃપુત્રકલ-
 ત્રાદિસ્નેહવર્જિત શકટરક્ષાર્થમક્ષે તૈલદાનવદેહસ્થિત્યર્થમેવાહારમશ્નન્ રાગદ્વેપશૂન્ય-
 સ્તીર્થઢ્ક્રારાજ્ઞારાધકો મુનિઃ પણ્ડિતો ભવતીતિ તાત્પર્યમ્ । અપિ ચ-‘પૂર્વે’ત્યાદિ, પૂર્વા-

“હ્રેત્યાદિ” પદોં સે તીર્થઢ્ક્રાર-પ્રણીત વક્ષ્યમાણ વિષયકો પ્રકટ
 કરતે હુણ સૂત્રકાર કહતે હૈં—ઈસ મૌનીન્દ્ર (વીતરાગ) પ્રવચનમેં વ્યવ-
 સ્થિત મુનિ કો તીર્થઢ્ક્રાર ભગવાને જો કુછ મી મુનિધર્મકે વિષયમેં
 અપને ઉપદેશમેં કહા હૈ ઉસકા અનુષ્ઠાન કરના ચાહિયે । “આજ્ઞા-
 તીર્થકૃદુપદેશમ્ આકાઢ્ક્ષિતું શીલં યસ્યાસ્તિ સ આજ્ઞાકાઢ્ક્ષી” ક્યોં કિ યહ
 આજ્ઞાકાઢ્ક્ષી હૈ—તીર્થઢ્ક્રાર ભગવાનકે ઉપદેશકી આકાઢ્ક્ષા (વાંછા) કરને
 કા જિસકા સ્વભાવ હોતા હૈ વહી આજ્ઞાકાઢ્ક્ષી હૈ । અર્થાત્ જો જિસકે
 શાસનમેં રહતા હૈ વહ ઉસકે શાસનોક્ત નિયમોં કા અનુષ્ઠાયક હોતા
 હૈ । સ્વેચ્છાનુસાર પ્રવૃત્તિ કરનેવાલા જિસ પ્રકાર ઉસ શાસન સે બહિર્ભૂત
 સમજા જાતા હૈ ઉસી પ્રકાર જિનપ્રણીત મુનિશાસનકો છોડકર અપની
 ઇચ્છાનુસાર ચલનેવાલા મુનિ મી શાસનસે બહિર્ભૂત હોતા હુઆ
 આજ્ઞાકાઢ્ક્ષી (આજ્ઞા-આરાધક) નહીં માના જાતા હૈ ।

આજ્ઞાકાઢ્ક્ષી હોને કે લિયે ઉસે મુનિધર્મકે ઇન નિયમોં કા પાલન
 આવશ્યક હૈ—અસ્તિહઃ—અપને માતા ઓર પિતા આદિમેં, શબ્દાદિક

“હ્રે” ઇત્યાદિ પદોર્થી તીર્થ કરે કહેલ વક્ષ્યમાણ વિષયને પ્રગટ કરતા
 સૂત્રકાર કહે છે—આ વીતરાગ પ્રવચનમા વ્યવસ્થિત મુનિને તીર્થ કર ભગવાને જે
 કાઈ પણ મુનિધર્મના વિષયમા પોતાના ઉપદેશમા કહ્યું છે તેનું અનુષ્ઠાન કરવું
 જેઠવ્યે કારણ કે તે “આજ્ઞાકાઢ્ક્ષી—આજ્ઞાકાઢ્ક્ષી” આજ્ઞાને અનુસરનાર છે
 તીર્થ કર ભગવાનના ઉપદેશની આકાઢ્ક્ષા કરવાનો જેનો સ્વભાવ છે તે આજ્ઞાકાઢ્ક્ષી છે
 અર્થાત્ જે જેના શાસનમા રહે છે તે તેના શાસનધર્મને પાલક બને છે સ્વેચ્છાનુસાર
 પ્રવૃત્તિ કરવાવાળા જે પ્રકારે તે શાસનથી વિમુખ ગણવામા આવે છે તે પ્રકારે
 જનપ્રણીત મુનિશાસનથી વિમુખ પોતાની ઇચ્છાનુસાર ચાલવાવાળા મુનિ પણ
 શાસનથી બહિર્ભૂત બનીને આજ્ઞાના આરાધક બનતા નથી

આજ્ઞાકાઢ્ક્ષી થવા માટે તેણે મુનિધર્મના એવા નિયમોનું પાલન કરવું
 આવશ્યક છે—અસ્તિહઃ—પોતાના માતા પિતા આદિમા, શબ્દાદિક વિષયોમા, અને

विषयो में, अथवा शरीरादिकों में स्नेह-ममता-रहित होना । पण्डितः-
तीर्थङ्कर प्रभुकी आज्ञा समझने में कुशलमति होना ।

भावार्थः—नियमों का अच्छी तरह से परिशीलन करनेवाला और
उनका द्रव्य, क्षेत्र कालादि की व्यवस्था के अनुसार पालन करनेवाला
व्यक्ति जिस प्रकार अन्नभक्ष्याद्यु न हो कर अपने प्रत्येक कार्यको उप
योगपूर्वक करता है और तद्वज्रस्य सुफल से लोक में प्रशंसनीय एवं
कुशलमति माना जाता है उसी प्रकार से जो मुनि धर्म के प्रत्येक निय
मोंका अच्छी तरहसे परिशीलन कर द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावसे व्यवस्था
नुसार उनका पालन करता है—उनका उचित रीतिसे हार्दिक लगन से
सेवन करता है वह मेधावी मुनि कभी भी अपने कर्तव्यपथ से विच
लित नहीं होता है, और मुनिधर्मपालनजन्य कर्मों की अनन्तगुणी
निर्जरारूप सुफल से शोभित होता हुआ क्रमशः मुक्तिक्रम लाभ करता
है । इसलिये आवश्यकता है कि मुनिजन मौनीन्द्र (धीतराग) प्रवचनमें
स्थित हो कर उसके प्रत्येक नियमों और उपनियमों के सच्चे ज्ञाता
पने । मुनिधर्म में दक्ष मुनि पापभीरु होता है । मत्ता-पितादिकमें स्नेह
रहित मुनि शकट-गाड़ीकी रक्षा के लिये अक्ष (धुरी) में तैलदान की
तरह देहकी स्थिति के निमित्त ही बिना किसी राग-द्वेषके आहार करता
हुआ तीर्थङ्कर प्रभुकी आज्ञा का पालन वन मुनिधर्मका सच्चा
परायण होता है ।

शरीर आदिकमा स्नेह ममता रहित भवु पण्डित—अर्थात् तीर्थङ्कर प्रभुकी आज्ञाका
कुशलता प्राप्त करनी।

भावार्थः—निधमोने सारी रीते पाणपावाणी करने तेने द्रव्य क्षेत्र काल
आदिकी व्यवस्था अनुसार पालन करवावाणी व्यक्ति कोणी रीते अन्नभक्ष्याद्यु न
जानीने पोताना प्रत्येक कार्यने उपयोगपूर्वक करे छे करने तेधी लोकमा
प्रशंसनीय तेमज कुशल मत्ता छे आ व रीते के मुनिधर्मना प्रत्येक निधमोने
सारी रीते कुशलतापूर्वक पाणे ॥ द्रव्य क्षेत्र काल अने भावसे व्यवस्थानुसार
पालन करे छे तेनो मेधावी मुनि केहो पणु वजते पोताना कर्तव्य-व्यवधी
रहित वते नधी अने मुनि धर्मपालनजन्य कर्मोनी अनन्तगुणी निरर्शरूप
सुखधी शोभित जानीने कर्मधी मुक्तिने लाभ करे छे आ कार्यके आचरण छे के मुनि
जन नीतराग प्रवचनमा स्थित जानीने तेना प्रत्येक निधमो अने उपनिधमोने
साचा आचरण अने मुनिधर्ममा दक्ष मुनि पापभीरु की छे भवतापित्तदिकमा
स्नेहरहित मुनि आदिक भवता पुराता तेहनी भाइ के देहनी स्थिति भाटे व

“મહાવ્રતસમાધાનં, તથૈવેન્દ્રિયસંવરઃ ।

ત્રિદણ્ડવિરતિત્વં ચ, કષાયાણાં ચ નિગ્રહઃ” ॥ ૧ ॥

તત્ત્વ શીલમિતિ બ્રુવે” તત્ર ક્ષણમપિ નો પ્રમાદયેદિતિ ભાવઃ । શીલવતો ગુણમાહ-શ્રુત્વેત્યાદિ, યઃ શ્રુત્વા=શીલપરિજ્ઞાન તદનુપાલનફલં તદ્વિપરીત કર્તૃણા નરકનિગોદાદિપરિભ્રમણં ચ ગુરુસકાશાદાગમાદ્વાઽઽકર્ણ્ય, અકામઃ=ઇચ્છાદિ-ધના કરે । ૧ મહાવ્રતોં કે સાધનભૂત ૩ ગુસિકા પાલન ઓર પાંચ ઇન્દ્રિય ઓર ઇક મનકા દમન કરના, કષાયોં કા નિગ્રહ કરના યે સવ વાતેં શીલ કે હી અન્તર્ગત હેં । મુનિજન કો “શીલ કા પાલન કરના ચાહિયે” ઇસ કી વક્તવ્યતામેં ઇન સમસ્ત વાતો કા અવશ્ય પાલન ઉચિત હૈ । ઇન સવકા પાલન મુનિધર્મ સે સંબધ રખતા હૈ । કહા મી હૈ—

“મહાવ્રતસમાધાનં, તથૈવેન્દ્રિયસંવરઃ ।

ત્રિદણ્ડવિરતિત્વં ચ, કષાયાણાં ચ નિગ્રહઃ” ॥ ૧ ॥

અર્થાત્—મહાવ્રતાદિકોં કા આરાધન શીલરૂપ સે કહા ગયા હૈ, ઇસા સમક્ષ કર ઇનકે પાલનેમેં ઇક ક્ષણ મી પ્રમાદ નહીં કરના ચાહિયે ।

‘શ્રુત્વા’-ઇત્યાદિ પદોંદ્વારા શીલવાનકે ગુણકો સૂત્રકાર કહતે હેં—

જો મુનિ શીલકે પરિજ્ઞાન, ઇવં ડસકે પાલનજન્ય ફલકો તથા શીલકે સેવન સે રહિત માનવોં કે નરકનિગોદાદિમેં પરિભ્રમણકો ગુરુ સે અથવા આગમ સે સુન કર ઇચ્છાદિકામસે રહિત હો જાતા હૈ વહ

આધારભૂત ત્રણ ગુસિતુ પાલન અને પાંચ ઇન્દ્રિય અને ઓક મનનુદમન કરવુ, કષાયોના નિગ્રહ કરવો એ સધળી વાતો શીલની અન્તર્ગત છે “મુનિજનને શીલનુ પાલન કરવુ જોઈએ” આ પ્રકારની રીતોમા આ સધળી વાતોડુ અવશ્ય પાલન કરવુ જોઈએ આ બધાનુ પાલન મુનિધર્મ સાથે સબધ રાખે છે કહ્યુ પણ છે—

“મહાવ્રતસમાધાનં, તથૈવેન્દ્રિયસંવરઃ ।

ત્રિદણ્ડ-વિરતિત્વં ચ, કષાયાણાં ચ નિગ્રહઃ” ॥ ૧ ॥

અર્થાત્ મહાવ્રતાદિકોનુ આરાધન શીલરૂપથી કહેલ છે, જેવુ સમજીને તેના પાલનમા ઓક ક્ષણનો પણ પ્રમાદ કરવો જોઈએ નહી

શીલવાનના ગુણને સૂત્રકાર કહે છે—‘શ્રુત્વા’ ઇત્યાદિ

જે મુનિ શીલના પરિજ્ઞાનને, અને તેના પાલનજન્ય ફળને, તથા શીલના સેવનથી રહિત માનવના નરકનિગોદાદિમા પરિભ્રમણને ગુરુ અને આગમથી સાધળીને ઇચ્છાદિ કામથી રહિત બની બચ છે તે માયા, ક્રોધ અને વૃષ્ણથી

कामवर्जित, एवम् अश्लक्ष्णः=अविद्यमाना श्लक्ष्णा=माया क्रोधस्तृष्णा वाजस्य सोऽश्लक्ष्णो मवेत् कामश्लक्ष्णयानिपेषेन मोहनीयादयोऽपि निपिष्यते; तन्निपेषा-
देन शीलसम्पन्नो मवेन्नान्यथस्यभिप्राय, अयमथ सार—धर्मभक्षणानन्तरं कामश्लक्ष्णादिरहितो मवेदिति प्रतिपादनेनाचरगुणानां ग्रहणसुपलक्षणत्वेन मूकगुणग्रहणं च सिद्धम् । तद्वर्धार्हिमादिमहाव्रतधारी मवेदिति ।

ननु चानिद्वयस्वीर्यस्य शीलशालिना मवदुपदशानुष्ठापिनो मम साम्मतमपि न निस्त्रिभुवनापनया जाताऽस्तस्तदुपायं मूर्खं ब्रूहि यन शीघ्रं सकलकर्मसंशयो मवेत् ।

क्रोध, माया अथवा तृष्णा से भी रहित हो जाता है । काम और अंक्षा—माया, क्रोध, अथवा तृष्णाके निपेक्ष से मोहनीय के उदयका भी वहा निपेक्ष हुआ समझना चाहिये, क्यों कि उसके निपेक्षसे ही वह शीलसंपन्न होता है; अन्यथा नहीं ।

भावार्थ—धर्मभक्षण के बाद “काम और अंक्षा से वह रहित होवे” इस प्रकार के प्रतिपादन से उत्तरगुणोंका ग्रहण सिद्ध हो जाता है, साथ में उपलक्षण से मूल गुणोंका भी । इस से यह बात सिद्ध होती है कि वह अहिंसादिक—महाव्रतधारी होवे । “अणेण खेव जुज्झाहि किं ते जुज्जेण पम्भजो” इस शेष सूत्राश का सुलभाना करने के लिये टीकाकार हमका मर्म यों कहते हैं—शिष्य गुरुदेवसे अरज करता है—“मैं अपने पल और वीर्यको नहीं छिपा कर शील के अनुष्ठानमें प्रवृत्त होना हुआ आपके उपदेशानुसार प्रवृत्ति कर रहा हूँ, फिर भी मेरे समस्त कर्मोंका विनाश अभी तक भी नहीं हुआ, अतः उसका उपाय आप कहें कि जिससे मेरे समस्त कर्म शीघ्र नष्ट हो जायें, मुझे आपके वचनों में पूर्ण विश्वास है,

यसु स्वीत यद्य नय छि काम, भावा क्रोध अने तृष्णाया निपेक्षणी मोहनीयता कहेने। यसु त्या निपेक्ष कथे। समस्तना मोहज्जे, शरण के तेना निपेक्षणी छ शीलसंपन्न अने छि जीवन्भी नहीं, तात्पर्य के—धमना अपजु पछी “काम अने भावाधी पर अने आप्रकास्या प्रतिपादनधी उत्तरगुणानु अजु सिद्ध बाय छि आये। आथ उपलक्षणधी भूतगुणने। यसु अदुज बाय छि आभी के पत्त सिद्ध बाय छे अहिंसादिक—महाव्रतधारी अने।

“अणेण खेव जुज्झाहि किं ते जुज्जेण पम्भजो आ येव सुवाचने। पुत्तसे कस्या भागे टीकाकार आने। अथ आ प्रकार है छे—

शिष्य गुरुने अरज करे छे—“माई पानानु अज अने वीचने नहि। पुचावीने शीलना अनुष्ठानभा प्रवृत्ति कहेते तु आपना उपदेश अनुसार प्रवृत्ति करे छु। उता भक्त समस्त कर्मना विनाश दनु मुभी यथे नभी, भागे आप केने। उपाय अने जनाये के जेगी भाक्त समस्त कर्म शीघ्र नाश पड़े, अने आफन

પરરાત્ર=રાત્રે: પૂર્વાપરૌ ભાગૌ પૂર્વાપરરાત્ર, પૂર્વરાત્રસ્ય યામદ્વયાત્મકસ્ય મધ્યે પ્રથમો યામઃ, એવમપરરાત્રસ્ય પશ્ચિમો યામઃ, તત્ર પ્રહરદ્વયે જાગરિતઃ સન્ યતમાનઃ=પ્રતિક્રમણસ્વાધ્યાયધ્યાનાદિકમનુતિષ્ઠન્, ઉપલક્ષણાન્મધ્યવર્તિન્યા રાત્રે-ર્યામદ્વયે યથાવિધિ જ્ઞાનઃ, રાત્રીં યત્નકથનેન દિનેડપિ તત્કથન સ્પષ્ટમેવ । શક્તિસત્ત્વે સ્થવિરકલ્પિકા મધ્યવર્તિયામમધ્યેડપિ જાગ્રતિ । જિનકલ્પિકાશ્ચૈકં પ્રહર સ્વપન્તિ, સપ્તસુ પ્રહરેષુ જાગ્રતિ । એવં નિષ્ક્રમણપ્રવેશાદૌ મુનિર્દિવસે ચક્ષુર્વિ

પૂર્વાપરરાત્રં યતમાનઃ—રાત્રિ કે પૂર્વ ઓર અપર ભાગોં કા નામ પૂર્વાપરરાત્ર હૈ । રાત્રિ કે ૪ પ્રહર હોતે હૈ । એક પ્રહર રાત્રિ કે ચૌથે હિસ્સે કો કહતે હૈ । પૂર્વરાત્ર કે દો પ્રહરોં મેં સે પ્રથમ પ્રહર મેં, પશ્ચિમ-રાત્ર કે દો પ્રહરોં મેં સે અન્તિમ પ્રહર મેં (અર્થાત્ રાત્રિકે ૪ પ્રહરોં મેં સે પહેલે ચૌથે પ્રહરોં મેં) જાગ્રત રહ કર પ્રતિક્રમણ, સ્વાધ્યાય ઓર ધ્યાના-દિક કરના । બાકી કે દૂસરે તીસરે પ્રહરોં મેં યથાવિધિ નિદ્રા લેના । “યતમાનઃ” પદસે દિન મેં ભી યથાવિધિ સ્વાધ્યાયાદિક કા કરના સ્પષ્ટ સૂચિત હોતા હૈ । જવ રાત્રિ મેં ભી પ્રતિક્રમણાદિકકી વિધિ પ્રકટ કી ગઈ હૈ તો દિન મેં ભી યથાવસર સ્વાધ્યાય કરના યહ વાત સ્વતઃ સ્પષ્ટ હૈ । શક્તિ કે સદ્ભાવ મેં સ્થવિરકલ્પી મુનિ રાત્રિકે મધ્યવર્તી દો પ્રહરોં મેં ભી જાગ-રિત રહતે હૈ । જિનકલ્પી સાધુ એક પ્રહર હી નિદ્રા લેતે હૈ । બાકી દિન-રાત કે પ્રહરોં મેં જાગતે રહતે હૈ । ઇસીતરહ નિષ્ક્રમણ-પ્રવેશાદિક મેં

કોઈ પણ રાગ-દ્વેષ વગર આહાર ગ્રહણ કરીને તીર્થ કર ભગવાનની આજ્ઞાના પાલક બની મુનિધર્મના સાચા આશયક બને છે

પૂર્વાપરરાત્રં યતમાન—રાત્રીના પૂર્વ અને અપર ભાગનુ નામ પૂર્વાપર રાત્ર છે, રાત્રીના ચાર પ્રહર છે, એક પ્રહરને રાત્રીના ચોથો ભાગ કહે છે પૂર્વ રાત્રના બે પ્રહરમાથી પ્રથમ પ્રહરમા, પશ્ચિમ રાતના બે પ્રહરમાથી અતિમ પ્રહરમા (અર્થાત્-રાત્રીના ચાર પ્રહરમાથી પહેલા ચોથા પ્રહરમા) ભગૃત રહીને પ્રતિક્રમણ, સ્વાધ્યાય તેમજ ધ્યાનાદિક કરવુ બાકીના બીજા અને ત્રીજા પ્રહરમા યથાવિધિ નિદ્રા લેવી “યતમાનઃ” પદથી દિવસે પણ યથાવિધિ સ્વાધ્યાયાદિક કરવુ તેવુ સ્પષ્ટ સૂચિત થાય છે જ્યારે રાત્રીમા પણ પ્રતિક્રમણાદિકની વિધિ આપેલ છે, તો દિવસમા પણ યથાવસર સ્વાધ્યાય કરવુ, એ વાત સાવ સ્પષ્ટ છે શક્તિના સદ્ભાવમા સ્થવિરકલ્પી મુનિ રાત્રીના મધ્યવર્તી બે પ્રહરમા પણ ભગૃત રહે છે, જનકલ્પી સાધુ એક પ્રહર જ નિદ્રા લે છે, બાકી દિન-રાતના પ્રહરમા ભગૃતા રહે છે આ પ્રમાણે નિષ્ક્રમણ-પ્રવેશાદિકમા મુનિ દિવસે

પણેપિ યત્નં વિદપાતિ કિં પુનરપશ્યુર્વિપયરામાવિત્પાલયઃ । પતદેવ પ્રકૃયતિ-
'મદા શીલ'—મિત્યાદિ, સદા=સર્વકાલ શીલમ્=મહાવ્રતસાધનમૂલ શુસિત્રયં સકલેન્દ્રિયદમનં કપાયનિગ્રહં શા
પા, અથવા શીલે=યજ્ઞમહાવ્રતસાધનમૂલ શુસિત્રયં સકલેન્દ્રિયદમનં કપાયનિગ્રહં શા
સંપ્રેક્ષ્ય=દ્રાવ્ય તમઃ યાવજ્જીવમનુપાલયત્ । ઉક્તમ્—

મુનિ દિન મેં મી દેશ્વ—માલ કર સમિતિપૂર્વક પ્રવૃત્તિ કરતા હૈ । દિનમેં
મી જબ હઠ યતનાપૂર્વક અપની પ્રત્યેક ક્રિયાઓંકો કરતા હૈ તો રાત્રિ મેં
મી કિ જિસમેં અધુરિન્દ્રિય કા બિપય કોઈ મી પદાર્થ સ્પષ્ટ રૂપસે નહીં
હોતા હૈ, ઉસે અપને પ્રત્યેક પ્રવૃત્તિ મેં યતના રખની હી બાહિયે । અતઃ
રાત્રિ મેં બિહારાદિ નહીં કરના યહવાન મી સ્વન સિદ્ધ હો જાતી હૈ ।
"સદા શીલં સપ્રેક્ષ્ય મૃત્વા મવેશ્વકામોઽશ્વજ્ઞ" —સર્વકાલ ૧૮ હજાર
શીલોં કે મેદોં કા, યા ચારિત્ર કા અથવા પાંચ મહાવ્રતોં કે સાધનમૂલ
શુસિત્રય, સકલેન્દ્રિયોંકા દમન ઓર કપાયોં કા નિગ્રહરૂપ શીલકા અઠ્ઠી
તરહ જ્ઞાતા થન ઉસકા યાવજ્જીવન પાલન કર । શુનકે નિકટ શીલકે
પાલને કા ઓર ઉસકે નહીં પાલને કા પરિણામ જ્ઞાનકર વૈપયિક દૃષ્ટાંતોં
સે રહિત હોકર માયા, તૃષ્ણા અથવા ક્રોધ સે રહિત હોવે ।

માવાર્થ—૧૮ હજાર શીલ ક મેદ જો આગમોં મેં પ્રકૃ કિયે ગયે
હૈ, મુનિકા કર્તવ્ય હૈ કિ ઉનકા ખલી પ્રકાર પાલન કરે । ૧
મહાવ્રત, ૬ સમિતિ ઓર ૩ શુસિ, હમ ૧૩ પ્રકાર કે ચારિત્ર કી આરા-

પણુ બાણી બોધને સમિતિપૂર્વક પ્રવૃત્તિ કરે છે ત્રિવિધે પણ બાણી તે યતના
પૂર્વક પોતાની પ્રત્યેક ક્રિયાઓ કરે છે તાસત્રીયા પણ કે એમા અધુરિન્દ્રિયને
વિષય કોઈ પણ પદાર્થ સ્પષ્ટ રૂપથી ચેતા નથી તેને પોતાની પ્રત્યેક પ્રવૃત્તિમાં
યતના સખવા બોધવે. એવે શત્રીમાં વિહાર આદિ ન કરવા બે વાત બાણી
સ્પષ્ટ રીતે ચિદ થાય છે

"સદા શીલં સપ્રેક્ષ્ય મૃત્વા મવેશ્વકામોઽશ્વજ્ઞ" —સર્વકાલ ૧૮ હજાર
શીલોના બેદને, અથવા ચારિત્રના અને પાંચ મહાવ્રતોના સાધનમૂલ શુસિત્રય, સકલ
ઇન્દ્રિયોનુ દમન અને કપાયોના નિગ્રહરૂપ શીલના આરી રીતે પાતા બની તેનુ
અઠ્ઠી પદ્ધન્ત પાલન કરવુ અર્હની પાસેથી શીલના પાલનના અને નહિ
પાળવાના પરિણામને બાણીને વૈપયિક ઇચ્છાઓથી રહિત બની માયા, તૃષ્ણા અને
ક્રોધથી રહિત થવુ

ભાષા — ૧૮ હજાર શીલના બેદ જે આગમોમાં પ્રગટ કરાયા છે તે માટે
મુનિનુ કર્તવ્ય છે કે તેનુ આરી રીતે પાલન કરે. યાજ્ઞ મહાવ્રત, યાજ્ઞ સમિતિ,
અને પણ શુસિ, એવા ત્રે પ્રકરના ચારિત્રની આરાધના કરે. યાજ્ઞ મહાવ્રતોના

“મહાવ્રતસમાધાનં, તથૈવેન્દ્રિયસંવરઃ ।

ત્રિદણ્ડવિરતિત્વં ચ, કપાયાણા ચ નિગ્રહઃ” ॥ ૧ ॥

તત્ત્વ શીલમિતિ શ્રુતે” તત્ર ક્ષણમપિ નો પ્રમાદયેદિતિ ભાવઃ । શીલવતો ગુણમાદ્ય-શ્રુત્વેત્યાદિ, યઃ શ્રુત્વા=શીલપરિજ્ઞાન તદ્વનુપાલનફલં તદ્વિપરીત-કર્તૃણા નરકનિગોદાદિપરિભ્રમણં ચ ગુરુપ્રકાશાદાગમાદ્વાડકર્ણ્ય, અક્રામઃ=ઇચ્છાદિ-ધના કરે । ૧ મહાવ્રતોં કે માધનમૃત ઃ ગુપ્તિકા પાલન ઓર પાંચ ઇન્દ્રિય ઓર ંક મનકા દમન કરના, કપાયોં કા નિગ્રહ કરના યે સવ ચાતોં શીલ કે હી અન્તર્ગત હૈ । મુનિજન કો “શીલ કા પાલન કરના ચાહિયે” ઇસ કી વક્તવ્યતામૈં ઇન સમસ્ત ચાતોં કા અવશ્ય પાલન ઉચિત હૈ । ઇન સવકા પાલન મુનિધર્મ સે સવધ રગ્વતા હૈ । કહા ખી હૈ—

“મહાવ્રતસમાધાન, તથૈવેન્દ્રિયસવરઃ ।

ત્રિદણ્ડવિરતિત્વં ચ, કપાયાણાં ચ નિગ્રહઃ” ॥ ૧ ॥

અર્થાત્—મહાવ્રતાદિકોં કા આરાધન શીલરૂપ સે કહા ગયા હૈ, ંસા સમક્ષ કર ઇનકે પાલનેમૈં ંક ક્ષણ ખી પ્રમાદ નહીં કરના ચાહિયે ।

‘શ્રુત્વા’-ઇત્યાદિ પદોંઢારા શીલવાનકે ગુણકો સૂત્રકાર કહતે હૈ—

જો મુનિ શીલકે પરિજ્ઞાન, ંવ ઁસકે પાલનજન્ય ફલકો તથા શીલકે સેવન સે રહિત માનવો કે નરકનિગોદાદિમે પરિભ્રમણ કો ગુરુ સે અથવા આગમ સે સુન કર ઇચ્છાદિકામસે રહિત હો જાતા હૈ વહ

આધારભૂત ત્રણુ ગુપ્તિનુ પાલન અને પાંચ ઇન્દ્રિય અને ંક મનનુ દમન કરવુ, કપાયોનો નિગ્રહ કરવો ં સધળી વાતો શીલની અન્તર્ગત છે “મુનિજનને શીલનુ પાલન કરવુ જોઈ ં” આ પ્રકારની રીતોમા આ સધળી વાતોનુ અવશ્ય પાલન કરવુ જોઈ ં આ બધાનુ પાલન મુનિધર્મ આથે સબધ ગથે છે કહ્યુ પણ છે—

“મહાવ્રતસમાધાન, તથૈવેન્દ્રિયસંવરઃ ।

ત્રિદણ્ડ-વિરતિત્વં ચ, કપાયાણા ચ નિગ્રહઃ” ॥ ૧ ॥

અર્થાત્ મહાવ્રતાદિકોનુ આરાધન શીલરૂપથી કહેલ છે, ંવુ સમજને તેના પાલનમા ંક ક્ષણનો પણ પ્રમાદ કરવો જોઈ ં નહીં

શીલવાનના ગુણને સૂત્રકાર કહે છે—‘શ્રુત્વા’ ઇત્યાદિ

ં મુનિ શીલના પરિજ્ઞાનને, અને તેના પાલનજન્ય ફળને, તથા શીલના સેવનથી રહિત માનવના નરકનિગોદાદિમા પરિભ્રમણને ગુરુ અને આગમથી સાલળીને ઇચ્છાદિ કામથી રહિત બની જાય છે તે માયા, ક્રોધ અને તૃષ્ણાથી

કામવર્જિતઃ, એમ્ અશ્વઠ્ઠાઃ=અવિદ્યમાના શ્વઠ્ઠા=માયા ક્રોધસ્તુષ્ણા નાજ્સ્ય સોશ્વઠ્ઠો મવત્ કામશ્વઠ્ઠયોનિપેષેન મોહનીયોદયોઽપિ નિપિષ્પત્તૈઃ તન્નિપેષા-
વેષ ક્ષીલ્સત્ત્વમ્મો મવત્સાન્યવેત્સ્યમિપ્રાયઃ, અપમમ સારઃ—ધર્મભ્રષ્ટાનન્તરં કામશ્વ-
ઠ્ઠાદિરહિતા મવેદિતિ પ્રતિપાદનેનાચરણાનાં ગ્રહણમુપલક્ષણત્વેન મૂક્ષુમ્મગ્રહણં ચ
સિદ્ધમ્ । તત્ત્વચારિસાદિમહાવ્રતધારી મવેદિતિ ।

નતુ ચાનિદ્રતલ્પસ્વીર્યસ્ય ક્ષીલ્સઠ્ઠાશ્લિના મવદુપદેશાનુષ્ઠાયિનો મમ સામ્મતમપિ
ન નિલિલ્લકર્માપનયા જાતાઽતસ્તદુપાયં મદ્મં બ્રૂહિ યેન ક્ષીઘ સકલકર્મસયો મવેત્ ।

ક્રોધ, માયા અથવા તુષ્ણા સે સી રહિત હો જાતા હૈ । કામ ઓર ક્રોધા
—માયા, ક્રોધ, અથવા તુષ્ણાકે નિપેષ સે મોહનીય કે ઉદયકા
સી વહાં નિપેષ હુઆ સમક્ષના ચાહિયે, કયોં કિ ઉસકે નિપેષસે હી
વહ શીલસંપન્ન હોતા હૈ; અન્યથા નહીં ।

માવાર્થ—ધર્મભ્રષ્ટાનન્તરં કામ ઓર ક્રોધા સે વહ રહિત હોવે ”
હસ પ્રકાર કે પ્રતિપાદન સે ઉચ્ચરણોંકા ગ્રહણ સિદ્ધ હો જાતા હૈ, સાધ
મેં ઉપલક્ષણ સે મૂલ ગુણોંકા સી । હસ સે યહ યાત સિદ્ધ હોતી હૈ કિ વહ
અહિંસાદિક—મહાવ્રતધારી હોવે । “અણેણ વેવ જુક્ષાહિ કિં તે જુક્ષેણ
વક્ષમ્મો ” હસ શોષ સ્વગ્રાણ કા તુલાસા કરને કે લિપે ટીકાકાર હમકા
અર્થ યોં કરતે હૈ—શિષ્યશુરુદેવસે અરજ કરતા હૈ—“મેં અપને ધલ ઓર
ધીર્યકો નહીં ઠિપા કર ક્ષીલ કે અનુષ્ઠાનમેં પ્રવૃત્ત હોતા હુવા આપકે
ઉપદેશાનુસાર પ્રવૃત્તિ કર રહા હું, ફિર સી મેરે સમસ્ત કર્મોંકા વિનાશ
અસી તક સી નહીં હુઆ, અતઃ ઉમકા ઉપાય આપ કહૈં કિ જિમસે મેર
સમસ્ત કર્મ ક્ષીઘ નષ્ટ હો જાવે, મુક્તે આપકે વચનોં મેં પૂર્ણ વિશ્વાસ હૈ,

પણ ક્ષીલ વધ વધ છે કામ માયા ક્રોધ અને તુષ્ણાના નિપેષથી મોહનીયના
ઉદયને પણ ત્યાં નિપેષ થશે. સમ ત્યાં બેઠાજી, કારણ કે તેના નિપેષથી
જ શીલસંપન્ન અને છે બીજાથી નહીં, વાતપણ કે—ધર્મના અપણ પડી ” કામ
અને માયાથી જરૂર અને ” આગ્રહારના પ્રતિપાદનથી ઉચ્ચરણોંકા મદ્મં સિદ્ધ
યાવ છે સાથે સાથે ઉપલક્ષણથી મૂલગુણોના પણ મદ્મં થાય છે આથી જો
યાવ સિદ્ધ થાય છે અહિંસાદિક—મહાવ્રતધારી અને.

“અણેણ વેવ જુક્ષાહિ કિં તે જુક્ષેણ વક્ષમ્મો આ શોષ સ્વગ્રાણે જુક્ષાસો
કરમા માટે ટીકાકાર આનો અર્થ આ પ્રકારે કરે છે—

શિષ્ય જુક્ષે અરજ કરે છે—“મારૂં પોતાનું બળ અને વીર્યને નદિ છુપાવીને
શીલના અનુષ્ઠાનમાં પ્રવૃત્તિ કરતો છું આપના ઉપદેશ અનુસાર પ્રવૃત્તિ કરું છું
છતાં માત્ર સમસ્ત કર્મોના વિનાશ વળુ મુખી થયો નથી માટે આપ જોના
ઉપાય અને જાતોના કે જેથી માત્ર સમસ્ત કર્મ શીઘ્ર નાશ પામે, અને આપના

ભવદ્વાકયેન ચાહ સિંહેનાપિ યોદ્ધું સમર્થોઽસ્મિ કર્મક્ષયાર્થનિષ્ક્રાન્તસ્ય ન કિમ-
પ્યશક્યમસ્તીતિ તદુપાયો વક્તવ્યઃ? ઇતિ ષુષ્ટવન્તં શિષ્ય ગુરુરાહ—‘અનેને’ ત્યાદિ,
અનેન ચૈવ=ઔદારિકગરીરદ્વારા જ્ઞાનાવરણીયાદિકર્મશત્રુણા સહ રત્નત્રયારાધનપ-
તાકાગ્રહણાય મુક્તયે વા પ્રાણપરિત્યાગેનાપિ ત્વં યુધ્યસ્વ=કર્મરિપું પરાજયસ્વ, વાહ્યત
=આત્મનો વહિસ્થિતેન સિંહાદિના સહ તે=તવ યુદ્ધેન=મગ્રામેણ ક્રિમ્=નૃયેત્યર્થઃ,
કર્મશત્રુવિજયાદેવતવ સકલકર્માપનયો ભાવીત્યવગાર્ય તત્રૈવ યતસ્વેતિ હૃદયમ્॥મુ.૩॥

મૈ આપકી આજ્ઞા સે સિંહ કે સાથ મી યુદ્ધ કરનેમે સમર્થ હું, હે ગુરુ-
દેવ ! મૈ તો કર્મો કે નાશ કરને કે લિયે હી ઘરસે નિકલા હુ, મેરે લિયે
અશક્ય કામ કુછ મી નહીં હૈ, ઇમલિયે કર્મક્ષય જિતના . જત્ત્વી સે
જત્ત્વી હો સકે આપ ંસા ઉપાય શીઘ્ર કહેં ” ઇસ પ્રકાર પૂછનેવાલે
શિષ્યજન કે પ્રતિ ગુરુદેવ કહતે હૈ—હે શિષ્ય ! તુમ ઇમ ઔદારિક
શરીર સે હી જ્ઞાનાવરણીયાદિ કર્મશત્રુઓં કે સાથ રત્નત્રય કી આરા-
ધનારૂપ પતાકાકો ગ્રહણ કરને કે લિયે, અથવા મુક્તિ પાને કે લિયે પ્રાણ-
પણ સે (પ્રાણોં કી પરવાહ કિયે વિના) યુદ્ધ કરો, કર્મશત્રુઓં પર
વિજય પ્રાપ્ત કરો, અપને સે વાહ્ય સિંહાદિક કે સાથ યુદ્ધ કરને સે તુમ્હે
ક્યા લાભ હો સકતા હૈ? મોહનીય કર્મકે જીતને સે હી તુમ્હારે સમસ્ત
કર્મોં કા વિનાશ હો જાયગા, ંસા નિશ્ચય કર ઉસકે હી સાથ યુદ્ધ કરને
કા પ્રયત્ન કરો ॥સૂ.૩॥

વયનોમા સ પૂર્ણ વિશ્વાસ છે આપની આજ્ઞાથી હું સિંહની સાથે પણ યુદ્ધ
કરવા સમર્થ છું હે ગુરુદેવ ! હું તો કર્મોનો નાશ કરવા માટે જ ઘેરથી નીકળ્યો
છું મારે માટે અશક્ય એવું કોઈ કામ નથી આ માટે મારા કર્મોનો જલ્દીમા
જલ્દી ક્ષય થાય એવો ઉપાય તાત્કાલિક બતાવો ” આ પ્રકારે ગુરુ પાસે પૂછનારા
શિષ્યજનને ગુરુદેવ કહે છે કે—હે શિષ્ય ! તુ આ ઔદારિક શરીરથી જ જ્ઞાના-
વરણીયાદિક કર્મશત્રુઓની સાથ રત્નત્રયની આરાધનારૂપ પતાકાને ગ્રહણ કરવા
માટે અથવા મુક્તિ મેળવવા પ્રાણ પણ (પ્રાણની પરવા કર્યા વગર) યુદ્ધ કર—કર્મ
શત્રુઓ ઉપર વિજય પ્રાપ્ત કર, બાહરના—તારાથી દૂર એવા સિંહાદિકની સાથે યુદ્ધ
કરવાથી તને કયો લાભ મળવાનો છે? મોહનીય કર્મને જીતવાથી જ તારા
સમસ્ત કર્મોનો વિનાશ થશે, એવો નિશ્ચય કરી એની સાથે યુદ્ધ કરવાનો પ્રયત્ન
કર મોહનીયના વિનાશથી તારા શેષ કર્મોનો તાત્કાલિક નાશ થઈ જશે ॥ સૂ. ૩ ॥

दुष्पारससारपारावारं मञ्जता जनस्य तर्तुमिदं सुसाधनमनेकमवेषु प्राप्तुमशक्यमिति दर्शयति—‘ जुद्धारिह ’ इत्यादि ।

मूलम्—जुद्धारिह म्वल्ल दुल्लह, जह्तिथ कुसलेहिं परिष्ठावि वेगे भासिप, चुप द्दु वाले गरुमाइसु रज्जह, अस्सि चेय पवुच्चइ, रुवसि वा छणसि वा, से द्दु एगे सविद्धपदे मुणी अन्नहा लोगमुवे हमाणे, इय कम्म परिणणाय सब्वसो से न हिंसइ, सजमइ, नो पग व्वमइ, उवेहमाणो पत्तेय साय, वण्णापसी नारभेकवण सव्वलोप एगप्पमुहे विदिसप्पइत्ते निविण्णचारी अरए पयासु ॥ सू० ४ ॥

छाया—युद्धार्हं मल्ल दुर्लभं, यथाऽत्र कुशैः परिष्ठाविषेको भाषितः, च्युता इ वायो गमादिषु रम्यते; अस्मिन्मैतृशोच्यते, रूपं वा क्षणे वा, न इ सविद्धपवा मुनिः, अन्यथा शोकमुत्प्रेषमाणः, इति कर्म परिहाय सर्वतः न न विनस्ति, संयमयति, नो मग्नमते, उत्प्रेषमाण मत्येकं मातं, वणदिशी नारमते क्वचन सर्वं शोक एकममुनो विदिक्यतीर्णो निविण्णचारी अरतः मज्जासु ॥ सू० ४ ॥

टीका—‘ युद्धार्ह ’—मित्यादि, इत्यौदारिकशरीरयुद्धार्ह—परीपदादिभिः सह भाक्सवामपाग्यं गल्ल=अवधारणे तस्य दुर्लभमित्यनेन सम्पन्वस्तन दुर्लभं मल्ल=

दुष्पार इमं संसाररूपी समुद्र में परिध्रमण करनेवाले प्राणी के लिये यह सुसाधन अनेक अवों में भी दुर्लभ है—इस बात को सूत्रकार प्रदर्शित करते हैं—“ जुद्धारिह ” इत्यादि ।

मनुष्यों के शरीर को औदारिक शरीर कहते हैं । इस औदारिक शरीर से ही समस्त कर्मों का नाश होता है । यद्यपि औदारिक शरीर तिर्यक् और मनुष्यों का होता है तो भी तिर्यक् के औदारिक शरीर की यहाँ विषयता नहीं है । कर्मों के क्षय का कारण होने से मनुष्य के ही औदारिक शरीर की विषयता है । इसलिये सूत्रकार कहते हैं कि

इ धार आ ल साक्षी सज्जमां पस्सिमवु कस्याण्य म्माणी मा? आ सुसाधन अनेक जणोमां पणु इत्थं ए—आ वातने सूत्रकार प्रदर्शित करे छे—“ जुद्धारिह ” इत्यादि ।

मनुष्यता शरीरने औदारिक शरीर कह छे आ औदारिक (मनुष्य शरीर) भी न समस्त कर्मोने नाश माय छे औदारिक शरीर निर्विक्रम अने मनुष्योनु माय छे परन्तु निवर्तन औदारिक शरीरनी विषयता अर्द्धि नहीं. मनुष्यता न औदारिक शरीर कर्मोना क्षयन कारण होवाभी कोनी विवक्षित छे सूत्रकार कर

દુર્લભમેવ=દુઃખેનૈવ લભ્યમ્ કર્મયુદ્ધાર્હમનુષ્યશરીરલાભેન તવ સર્વકર્મક્ષયોઽવશ્ય શીઘ્રમેવ ભાવીતિ શિષ્યકૃતપૂર્વપ્રશ્નસ્યોત્તરમભિહિતમ્ । કશ્ચન મરુદેવીવત્ તેનૈવ ભવેન કર્મક્ષયમાસાદયતિ, કશ્ચિચ્ચ સુબાહુકુમારવત્સપ્તાષ્ટભૈઃ, અપરઃ કશ્ચિદ્ દેશોનાર્ધપુદ્ગલપરાવર્તેનેતિ, તેન કિમાયાતમિત્યાહ—‘યથે’—ત્યાદિ, યથા=યેન

યહ મનુષ્ય કા ઔદારિક શરીર પરિષદાદિકોં કે સાથ ભાવયુદ્ધ કે યોગ્ય હૈ, યહ શરીર હી ઉનસે યુદ્ધ કર સકતા હૈ, અન્ય વૈક્રિયાદિક નહીં ! ઇસ શરીર કી પ્રાપ્તિ દુર્લભ હૈ, બડે પુણ્યાનુબંધી પુણ્યસે હી યહ મનુષ્ય તન મિલતા હૈ । ઇસલિયે શિષ્ય કો આશ્વાસન દેતે હુઅ ગુરુ મહારાજ કહતે હૈં કિ “કર્મયુદ્ધાર્હમનુષ્યશરીરલાભેન તવ સર્વકર્મ-ક્ષયોઽવશ્ય શીઘ્રમેવ ભાવીતિ” તુમ ઘબરાઓ નહીં, યદિ હમારે વચના-નુસાર તુમ પ્રવૃત્તિશીલ રહોગે તો વિશ્વાસ રખો ઇસ પ્રાપ્તિ હુઅ શરીર સે તુમ કર્મોં કા શીઘ્ર વિનાશ કર સકોગે, કારણ કિ કર્મોં કે સાથ યુદ્ધ કરને યોગ્ય યહ ઔદારિક શરીર તુમ્હેં પ્રાપ્તિ હુઆ હૈ । ઇસ પ્રકાર પહિલે શિષ્યદ્વારા કિયે ગયે પ્રશ્ન કા યહ ઉત્તરરૂપ સમાધાન હૈ । ઇસ શરીરદ્વારા કોઈ ૨ જીવ મરુદેવી જૈસે ડસી ભવસે કર્મક્ષય કર દેતે હૈં । કોઈ ૨ સુબાહુકુમાર કી તરહ સાત આઠ ભવ મેં, ઔર કોઈ ૨ દેશોન અર્ધ-પુદ્ગલપરાવર્તન કાલમેં કર્મોં કે ક્ષપક હોતે હૈં । ઇસલિયે જિસ પ્રકારસે

છે—મનુષ્યનુ આ ઔદારિક શરીર પરીપહાદિકોની સાથે યુદ્ધ કરવા યોગ્ય છે આ શરીર જ એની સાથે યુદ્ધ કરી શકે છે, અન્ય વૈક્રિયાદિક શરીર નહિ ! આ શરીરની પ્રાપ્તિ દુર્લભ છે — મહા પુણ્યાનુબંધી જ આ મહાભૂત્ય મનુષ્ય દેહ પ્રાપ્ત થાય છે

આ માટે શિષ્યને આશ્વાસન આપતા ગુરુ મહારાજ કહે છે કે—“કર્મયુદ્ધાર્હ મનુષ્યશરીરલાભેન તવ સર્વકર્મક્ષયોઽવશ્ય શીઘ્રમેવ ભાવીતિ” તમે ગભરાઓ નહિ અમારા વચન અનુસાર તમે પ્રવૃત્તિશીલ રહેશો તો વિશ્વાસ રાખો આ પ્રાપ્તિ થયેલ શરીરથી તમે કર્મોંનો શીઘ્ર વિનાશ કરી શકશો, કારણ કે કર્મોંની સાથે યુદ્ધ કરવાને માટે ઔદારિક શરીર તમાને પ્રાપ્ત થયેલ છે આ પ્રકારે પહેલા શિષ્યદ્વારા કરાયેલા પ્રશ્નનો આ ઉત્તરરૂપ સમાધાન છે આ શરીરદ્વારા કોઈ કોઈ જીવ મરુદેવી જેવા આ ભવમા જ કર્મલય કરી દે છે કોઈ કોઈ સુબાહુકુમારની માફક માત્ર આઠ ભવમા, કોઈ કોઈ દેશોન અર્ધ-પુદ્ગલપરાવર્તનકાળમા કર્મોંનો ક્ષપક થાય

પ્રકારેમ અપ્ર=અમ્મિન્ સંસારે કુશલૈઃ=માનકુશલૈઃ=નીર્યંકરગણધરાવિકૈઃ પરિજ્ઞા
વિવેકઃ=પરિજ્ઞાપાઃ=પ્રત્યાખ્યાનમેવેન ટિવિધાયા વિવેક=દ્રવ્યતો માનતમ
ચિત્તારા માપિતઃ=કથિતઃ, તપ દ્રવ્યતો વિવેક કમ્પ્રપુત્રમિધાર્મા સ્વચ્છરીસ્ય
સાસારતયા ચિન્તનમ્ માનતો વિવેકા મમત્વચર્જનમ્, તપઃસંયમાભ્યાં કર્મનિર્જરા મમ-
તીતિ વિવેકો જાયતે । પરિજ્ઞામદમયાહ—યમ પૂર્વોત્થાયી ચારિત્રાન્તરાયોદયાહ
પદ્માભિપાતી સ વ્યુતઃ=ધર્મત્ મનુષ્યજન્મતો યા પતિતઃ પરિભ્રજ્જ્ઞ ઇત્યર્થ , કુ=
વિતર્કે; શાસઃ=ધમપતનનનિતનરકનિગોદાદિધ્રમણપતીકારણાનક્રમાન્નિક્સ ગર્મા

ઈમ સંસારમે કુશલ નીર્યંકરાદિ ધરા પરિજ્ઞાવિવેક કહા ગયા છે । ડસ
ક અનુસાર પ્રવૃત્તિ કરનેવાલા મુનિ ડસી મલ સે યા પરપરા રુપ સે કુષ્ઠક
મલો મેં કર્મો કય બિનાશ કર મુક્તિ કા લાભ પ્રાપ્ત કરતા છે । પરિજ્ઞા
દો પ્રકાર કી કહી છે । ૧ જ્ઞપરિજ્ઞા ૨ પ્રત્યાખ્યાનપરિજ્ઞા । પરિજ્ઞા કય
વિવેક મી દ્રવ્ય ઓર માલસે દો પ્રકારકા છે । સ્ત્રી, પુત્ર, મિત્ર ઓર
અપને શરીર કા અસારતારુપ સે ચિન્તન કરના દ્રવ્યવિવેક છે । મમત્વ
કા ત્યાગ કરના યહ માલવિવેક છે । અર્થાત્—‘તપ ઓર સયમ સે કર્મોંકી
નિર્જરા હોતી છે ’ ઇમ પ્રકાર કા વિવેક ઉત્પન્ન હોના માલવિવેક છે ।
“કુણ કુ વાલે ગમ્માહસુ રમ્મહ ” યહાં સુત્રકાર—પરિજ્ઞા કે મેદોં કો કહતે
છે—જો પૂર્વોત્થાયી છે, પરન્તુ ચારિત્રાન્તરાય કે વદય સે પદ્માભિપાતી
છે વહ વ્યુત છે—ધર્મ સે અથવા મનુષ્યજન્મસે પતિત છે—ભ્રજ્જ્ઞ છે । “કુ”
વિતર્ક મેં છે । ધર્મસે પતિત હોનેપર મેરા ધ્રમણ નરકનિગોદાદિક ગતિયોં

છે . આ માટે જે પ્રકારથી આ સંસારમાં કુશલ તીર્થ કથાવિદ્યાથી પરિજ્ઞાવિવેક
કહેવાયેલ છે તે અનુસાર પ્રવૃત્તિ કરવાવાળા મુનિ તે જ ભવમાં અથવા
પરપણ રૂપમાં શોધક ભવોમાં કર્મોના વિનાશ કરી મુક્તિનો લાભ મેળવે છે
પરિજ્ઞા જે પ્રકારની કહી છે ૧ જ્ઞ-પરિજ્ઞા, ૨ પ્રત્યાખ્યાન-પરિજ્ઞા પરિજ્ઞાનો
વિવેક પણ દ્રવ્ય અને જ્ઞાનથી બે પ્રકારનો છે સ્ત્રી, પુત્ર, મિત્ર અને પોતાના શરીરની
અસાસ્તા રૂપથી ચિન્તાન કરતું દ્રવ્ય-વિવેક છે મમત્વનો ત્યાગ કરનાં માલવિવેક છે
તપ અને સત્યમદ્વારા કર્મોની નિર્જરા થાય છે—આ પ્રકારનો વિવેક ઉત્પન્ન થવાં જાય
વિવેક છે ” “કુણ કુ વાલે ગમ્માહસુ રમ્મહ ” અર્થ સુત્રકાર પરિજ્ઞાના મેદોં કહે છે
જે પૂર્વોત્થાયી છે પરન્તુ ચારિત્રાન્તરાયથી પદ્માભિપાતી છે તે વ્યુત છે—ધર્મથી
અથવા મનુષ્યજન્મથી પતિત છે—ભ્રજ્જ્ઞ છે “કુ” શબ્દ વિતર્કમાં છે ધર્મથી
પતિત થવાથી આઈ ધ્રમણ નરક નિગોદાદિક અતિભેદમાં થયો, આ પ્રકારનું

દિષુ=ગર્ભાદિજન્યદુઃસ્વવિશેષેષુ, આદિપદેન જન્મ-કૌમાર-યૌવન-જરા-મરણ-નરક-નિગોદાદિરૂપદુઃસ્વેષુ, યદ્વા-ગર્ભાદિષુ=દેહવિકલ્પેષુ સંસારવિકલ્પેષુ વા રજ્યતે=આસક્તો ભવતિ તત્રૈવ પચ્યતે દદ્યતે ચેત્યર્થઃ । યદ્વા ‘રજ્જઈ’ इत्यस्य ‘रीयते’

में होगा—इस प्रकार के तत्प्रतीकार स्वरूप ज्ञान से जो रहित है वह बाल है । बाल जीव गर्भादिकों (गर्भादिजन्य दुःस्वविशेषों) में आसक्त होता है । वहीं पर पचता रहता है वहीं पर तड़पता रहता है । “गर्भादि” के आदि पद से जन्म, कुमार, यौवन, जरा, मरण, नरक और निगोदादिक के दुःस्वों का ग्रहण हुआ है इन दुःस्वों में अथवा शरीरके विकल्पों या संसारविकल्पों में आसक्त बना है । यद्वा—“रज्जई” इसकी छाया “रीयते” भी होती है । जिसका यह भाव है कि बालजीव गर्भादिकों में बारंबार जन्म मरण धारण करता रहता है ।

भावार्थ—परिज्ञા के भेदों को प्रकट करने के लिये सूत्रकार कहते हैं कि जो चारित्र को ले कर भी पश्चात् चारित्रान्तराय के उदय से उससे पतित हो जाते हैं वे बालजीव हैं उनका छुटकारा इस संसार से नहीं होता—नरकनिगोदादिकके कष्टोंका और जन्म, बाल्यादिक अवस्था जन्य अनेक कष्टों का उन्हें समय २ पर सामना करना पड़ता है । चारित्र जैसी सुन्दर

તત્પ્રતીકાર સ્વરૂપ જ્ઞાનથી જે રહિત છે તે બાલ છે બાલ જીવ ગર્ભાદિક (ગર્ભાદિજન્ય દુઃસ્વ વિશેષો) મા આસક્ત હોય છે અર્થાત્ તડપતો રહે છે “ગર્ભાદિ”ના આદિ પદથી જન્મ, કુમાર, યૌવન, વૃદ્ધાવસ્થા, મરણ, નરક અને નિગોદાદિકના દુઃખોનું ગ્રહણ થયેલ છે આ દુઃખોમાં અથવા શરીરના વિકલ્પોમાં અથવા સંસારવિકલ્પોમાં જ વાળ-જીવ આસક્ત બની રહે છે અથવા—“રજ્જઈ” એની છાયા “રીયતે” પણ બને છે જેનો આ અર્થ છે કે—બાળ-જીવ ગર્ભાદિકમાં વારંવાર જન્મ મરણના ફેરા કરતો રહે છે

ભાવાર્થ—પરિજ્ઞાના ભેદને પ્રગટ કરવા માટે સૂત્રકાર કહે છે કે—ચારિત્ર ગ્રહણ કરવા છતાં પણ આગ્રિઅન્તરાયના ઉદયથી જે પતિત બની નાથ છે એ બાલજીવ છે એનો છુટકારો આ સંસારથી થતો નથી નરક નિગોદાદિકના તેમજ જન્મ, બાલ્યાવસ્થા આદિના અનેક દુઃખોનો એણે સમય સમય પર સામનો કરવો પડે છે ચારિત્ર જેવી સુધર વસ્તુ હાથમાં આવવા છતાં જે તેને

इतिष्ठाया; तेन गर्मादिषु रीयते=गच्छति । कुत्रेति कथितमिति प्रभे गुरुराह—
 'अस्मि'मित्यादि, अस्मिन्=आर्हतप्रवचने, एतत्=पूर्वकथितं वक्ष्यमाणं च प्रोच्यते
 =प्रकर्षेण कथ्यते तीर्थकरणधरै, वक्ष्यमाणमाह—'रूपे'—इत्यादि, रूप=रूप
 वद्विषय, वा=ग्रहणात् शब्दादौ गृह्य, 'क्षणे' सन्न=सन्न =हिंसा तत्र, वा=शब्दा
 दन्तसर्वोपादौ, प्रवृत्तिं विदधाति । अत्र रूपग्रहणेन विषयपु रूपस्य प्रधानतया, एष
 मास्त्रेषु हिंसायाः प्राधान्येन च तयोर्ग्रहणादन्वेषामपि शब्दादीनामास्त्राणां च ग्रहणं
 भवति । रूपवद्विषयस्याभावात् प्रमात्परिभ्रष्टो गर्मादौ रज्यते । इदमत्र प्रोच्यते इत्य
 नेन सम्बन्धः यथैतद्विपरीताचारधारी स कीदृशा भवतीत्याह—'स' इत्यादि,
 कस्तु हायमें आ जाने पर जो उसे प्रोवेता है वह मनुष्य जन्म के लाभसे
 वंचित हो जाता है और उसे निर्यञ्चादि गतिमें परिभ्रमण करना पड़ता है ।

इसलियે इस આર્હત પ્રવચનમેં જીવોં કો સમજાને કે લિયે હી યહ
 પૂર્વોક્ત કથન તથા આગે કહા જાનેલાલા વિષય પ્રતિપાદિત કિયા હૈ ।
 વક્ષ્યમાણ વિષયમેં સૂત્રકાર યહી કહ રહે હૈ કિ મગધાન્ તીર્થકર ગણ
 ધરાદિક કા યહ આલેષા હૈ કિ જો મનુષ્ય યા મુનિ રૂપયુક્ત વિષયોં મેં
 ઔર શબ્દાદિક પદાર્થોં મેં ગૃહ્ય થના હુઆ હૈ વહ, હિંસા મેં ઔર શોષ
 શૂઠ, ચોરી આદિકોં મેં પ્રવૃત્તિશીલ હૈ । યહાં વિષયોં મેં રૂપ કી પ્રધાનતા
 હોને સે રૂપ કે ગ્રહણસે શબ્દાદિકોં કા, આસ્ત્રયોં મેં હિંસા કી પ્રધાનતા
 હોને સે ઉમકે ગ્રહણસે અન્ય શૂઠ, ચોરી આદિ અન્ય આસ્ત્રયોં
 કા ગ્રહણ હો જાતા હૈ ઇમ પ્રકાર "અસ્મિન્નૈતન્ પ્રોચ્યતે" યહાં તક
 ઇન પદોં કા સંબંધ હૈ । જો પૂર્વોક્ત સે વિપરીત અપની પ્રવૃત્તિ રખતા હૈ

એજા બેસે છે તે મનુષ્ય જે મના લાભથી વંચિત જે બની બધ છે અને તેણે
 તિર્થજ આદિ ગતિમા પરિભ્રમણ કરવું પડે છે

આ માટે આ આદ્યત પ્રવચનમાં છબોને સુમબલવા માટે આ પૂર્વોક્ત
 કથન અને આગળ કહેવામાં આવનાર વિષય પ્રતિપાદિત થયો છે વક્ષ્યમાણ
 વિષયમા સૂત્રકાર જેમ કહે છે કે—મગધાન્ તીર્થકર અણધરાકિને આ આલેષ
 છે કે, જે મનુષ્ય અથવા મુનિ રૂપયુક્ત વિષયોમા અને શબ્દાદિક પદાર્થોમા
 ભુજ્ય બનેલ છે તે, હિંસા તેમજ ચોરી, ગ્રહ આદિમાં પ્રવૃત્તિશીલ છે આદિ
 વિષયોમાં રૂપની પ્રધાનતા હોવાથી રૂપના પ્રવૃજ્યથી શબ્દાદિકોના, આસ્ત્રયોમાં
 હિંસાની પ્રધાનતા હોવાથી હિંસાના પ્રવૃજ્યથી ચોરની ચોરી ગ્રહ આદિ
 અન્ય આસ્ત્રયોના પ્રવૃજ્ય થઈ બધ છે આ પ્રકારે "અસ્મિન્નૈતન્ પ્રોચ્યતે" આદિ
 સુધી આ પઠોને સંબંધ છે જે પૂર્વોક્તથી વિપરીત પાતાની પ્રવૃત્તિ રાખે છે

સઃ=ગર્ભાદિપ્રાપ્તિનિદાનવિષયકષાયાભિષ્વજ્ઞાનવાન્ ધર્માદપતિત આસ્રવનિવૃત્તઃ, હુરવધારણે, તેન સ એવ નાન્યઃ મુનિઃ=સયતઃ, સંવિદ્વપથઃ=અભ્યસ્તરત્નત્રયો મુનિર્ભવેત્, અપિ ચ અન્યથા ભિન્નપ્રકારેણ લોક=વિષયકષાયમધ્યમધ્યાસીનં હિંસા-દિપરાયણમસયતલોકમ્, ઉત્પ્રેક્ષમાણઃ=બુદ્ધ્યમાનઃ, તતઃ કિમિત્યાહ-‘ઈતી’-ત્યાદિ,

વહ કૈસા હોતા હૈ? હસકે સમાધાનાર્થ સૂત્રકાર “સ હુ સંવિદ્વપથો મુનિઃ” હસ શેષાંશકા કથન કરતે હૈ-ગર્ભાદિકકી પ્રાપ્તિકે કારણભૂત જો વિષયકષાય હૈં ડનમેં જો અનભિલાષી હૈ, જો યહ સમગ્ર ચુકા હૈ હસ જીવકા ગર્ભાદિક મેં પતન વિષયકષાયોં કે સેવન સે હી હોતા હૈ વહ ધર્મ સે અપતિત હોતા હુઆ કર્માસ્રવોં સે જુદા રહતા હૈ । યહાં “હુ” અવધારણ અર્થ મેં હૈ । હસસે યહ અભિપ્રાય નિકલતા હૈ, કિ જો વિષયા-દિકસે નિવૃત્ત હૈ વહી ધર્મ સે અપતિત ઓર આસ્રવોં સે રહિત હૈ, અન્ય નહીં; વહી વાસ્તવિક મુનિ હૈ, અન્ય નહીં; વહી સંવિદ્વપથ હૈ—અભ્યસ્ત રત્નત્રયવાલા હૈ ઓર અભ્યસ્ત રત્નત્રયવાલા હી સચ્ચા મુનિ હો સકતા હૈ, અન્ય નહીં; યહી મુનિરત્ન અસંયત લોકકો વિષયકષાયોંકે મધ્યમેં પડા હુઆ જાનકર તથા હિંસાદિક પાપોં સે અનિવૃત્ત સમગ્ર કર ડસસે નિવૃત્ત હો મન, વચન ઓર કાય સે પ્રાણિયોં કી હિંસા સે નિવૃત્ત હો જાતા હૈ, ડસરો કો હી હસ કાર્ય મેં પ્રવૃત્ત નહીં કરતા હૈ ઓર ન હસ કાર્ય મેં લગે હુણ વ્યક્તિયોં કી વહ અનુમોદના હી કરતા હૈ, ક્યોં

એ કેવો હોય છે ? આના સમાધાનમા સૂત્રકાર “સે હુ સંવિદ્વપથો મુણી” આ શેષાંશનુ કથન કરતા ડહે છે કે—ગર્ભાદિકની પ્રાપ્તિના કારણરૂપ જે વિષય કષાય છે એમા જે અભિલાષ વગરનો બની આ સમગ્ર ચુકેલ છે કે આ જીવનુ વિષયાદિકના સેવનથી જ ગર્ભાદિકમા પતન થતુ રહે છે અને એ ધર્મથી પતિત ન બનતા કર્માસ્રવોથી બુદ્ધે રહે છે અહિં “હુ” શબ્દ અવધારણુ અર્થમા છે આથી એ અભિપ્રાય નિકળે છે કે જે વિષયાદિકથી નિવૃત્ત છે એ ધર્મથી અપતિત અને આસ્રવોથી રહિત છે, બીજા નહિ એ જ વાસ્તવિક મુનિ છે, બીજા નહિ એ જ સાચા પથ ઉપર છે અભ્યસ્ત-રત્નત્રયવાળા છે અભ્યસ્ત-રત્નત્રયવાળા જ સાચા મુનિ બની રાકે છે, બીજા નહિ આવા મુનિરત્ન અસંયત લોકોને વિષયકષાયોના મધ્યમા પડેલા બેઈ અને હિંસાદિક પાપોથી અનિવૃત્ત બેઈને એનાથી નિવૃત્ત થઈ મન, વચન અને કાયાથી પ્રાણીઓની હિંસાથી નિવૃત્ત બની બંધ છે અને બીજાઓને આવા કાર્યોથી રોકે છે, કેમ કે એ બધે

इति=पूर्वोक्तकारणैः यत् पटं कर्म=ज्ञानावरणीयादिकं तत्कारणं च सावयव्यापाररूपं सर्वज्ञ=सर्वप्रकारेण परिज्ञाय=द्विविधपरिज्ञया ज्ञात्वा परिहृत्य च सः=कर्मपरिष्ठापी न हिनस्ति=मनोवाक्यमयागौ प्राणिना न हन्ति, उपमसणात् घातयति, नानुमोयतीत्यर्थोऽपि। अपि च किं करोतीत्याह-सयममयति-पचनपाचनादिनवकोटिभ्यः स्वात्मानं निर्वर्तयति। यद्वा-सयममयति=साम्प्रदन्निषं सयमं कराति, किन्तु नाप्रत्यमते=न पाटुर्पे विदधाति-‘किं संयमक्रियया प्रतिषेधनादिक्रियया च’ इत्यादि रूपमौद्धस्य नाचरति। उपमसणतया स न म्रुष्यति, नापि जातिकुम्भादिमानमाचरति किं यह जानता है कि हिंसादिक पापों से अथवा पूर्वोक्त कारणों से जीवों के ज्ञानावरणीयादिक कर्मों का यन्त्र होता है, इसलिये ज्ञानावरणीयादिक कर्मों को तथा उनके कारणरूप सावयव व्यापारों को यह नसी प्रकार ज-परिज्ञासे जान कर प्रत्याख्यान परिज्ञा से उनका त्याग करता है। इस प्रकार वह कर्मपरिज्ञापी मुनि मन, वचन और काय से तथा कृत कारित और अनुमोदनसे उन सयक परिस्वार्गी होता है। तथा-पचनपाचनादिकसे अपने आपको नवकोटिसे विशुद्ध रखता है, अथवा १७ प्रकार के संयम का आचरण करता है, इतने पर भी उसके अन्तःकरणमें मानकी मात्रा भी नहीं आती है, अथवा-संयम जिया या प्रतिषेधनादि जिया के आचरण से क्या हो सकता है ? इस प्रकार की यह पृष्टता नहीं करता है। उपलक्षण से यह यह बात भी जानी जाती है कि यह मुनि इतना मय कुछ करता हुआ भी न कभी प्रोच करता है और न कुलादिक का गर्व ही करता है, न कहीं लुभाना है और न किसी की

उ है-द्विआदिक पापेभी अथवा भूयोक्त आरक्षेभी लुभेने ज्ञानावरणीयादिक कर्मेभ्यः अथ घात उ आ भावे ज्ञानावरणीयादिक कर्मेभ्यः तथा ज्ञेया आरक्षेभ्यः अपथ व्यापारिने ज्ञे आरी रीते स-परिज्ञाभी ज्ञेया प्रत्याख्यान-परिज्ञाभी ज्ञेया त्याग करे ॥ अ प्रकार अ कर्मपरिज्ञापी मुनि मन, वचन अने कायाभी तेमय हृत, करित अने अनुमोदनभी अ ज्ञेयाने त्याग करनार दीय उ तेमय पचन पाचनादिकभी पोतापी जतने नव कोटिभी विशुद्ध राजे उ अथवा १७ अतर प्रकारता संयमनु आचरण करे उ आभ उय ज्ञेया द्विआ मानेने वेशमात्र भाव जगते नही अथवा संयमद्विष अथवा प्रतिषेधनादि द्विआ आचरणभी गुं य री शके उ आपी प्रहता पण ताता ननभां ज्ञानी नरी उपलक्षणभी ज्ञेयता पण मानवामा आपी उ क ही मुनि आननुं करण उता पण न तो कथाइ दीय करे उ के न ता ज्ञानि अने कृग अरिना अच करे उ न तो कथां

ન લુપ્ત્યતિ, ન પ્રતારણા કરોતિ, ઇત્યાદ્યપિ જ્ઞેયમ્, અસંયમપરાયણોઽકર્તવ્યાચરણે
 મનાગપિ ન ત્રપત ઇત્યાશયઃ । મુનિઃ ક્ષિમવધાર્ય પ્રગલ્ભાદિક ન વિદધીતેત્યાદ્—
 'ઉત્પ્રેક્ષમાણ' ઇત્યાદિ, પ્રત્યેકમ્=પ્રત્યેકસ્ય પ્રાણિનઃ સાત=મુગ્ધમસાતં ચ ઉત્પ્રે-
 પ્રતારણા (ટગના) હી કરતા હૈ । પરન્તુ જો અસંયમસેવી હૈ—અસંયમ મેં
 પરાયણ હૈ, વે ઇન અકર્તવ્યોં કે કરને મેં જરા ખી મકોચ નહીં કરતે હૈ ।
 મુનિજન ધૃષ્ટતા આદિ જો નહીં કરતે હૈં ઉસકા કારણ ગ્રહ હૈ કિ વે
 વિચારતે હૈં કિ હસ સસારમેં પ્રત્યેક પ્રાણી સુખાભિલાષી હૈ ।

ભાવાર્થ:—ઉદ્ધતતા કે કરનેસે જીવો કો સંકલેશ હોતા હૈ, સંકલેશ
 દુઃખ કા એક પ્રકાર હૈ । મુનિજન એસા કોઈ સા ખી વ્યવહાર નહીં કર
 સકતે હૈ જો અન્ય જીવોં કો દુઃખકારક હો । ઉનકી સદા યહી ધારણા
 હોતી હૈ કિ દુનિયાં કે જિતને ખી જીવ હૈં વે સવ મેરે તુલ્ય સુખાભિ-
 લાષી હૈં । જિસ પ્રકાર અપ્રતિકૂલ આચરણ સે મુદ્ધે કષ્ટ કા અનુભવ
 હોતા હૈ ઉસી પ્રકાર સે મેરે ખી અનિષ્ટ આચરણ સે ઇન્હેં કષ્ટ કા અનુ-
 ભવ હોગા, અતઃ વહ સમસ્ત જીવોં મેં આત્મોપમતા (આત્મતુલ્યતા)
 માનતા હૈ । ઇસલિયે વહ કિસી ખી પ્રાણી કા સ્વપ્ન મેં ખી ઘાત કરને
 કા વિચાર તક નહીં કરતા હૈ । જો અન્ય જીવોં કે ઘાત કરને તક કે વિ-
 ચાર કો નિન્દિત સમઘ્નતા હૈ વહ ખલા—દૂસરોં કે લિયે ઉસ અનિષ્ટ

લોભાય છે, અથવા ન તો કોઈને ઠગે છે, પરંતુ જે અસંયમસેવી છે—અસં-
 યમમા પરાયણ છે તેવો આવો અકર્તવ્યો કરવામા જરા પણ સંકોચ કરતો
 નથી મુનિજન ધૃષ્ટતા આદિ નથી કરતા તેનું કારણ એ છે કે તેઓ એ વિચાર
 રતા હોય છે કે આ સસારના પ્રત્યેક પ્રાણી સુખાભિલાષી છે

ભાવાર્થ — ઉદ્ધતતા કરવાથી જીવોને સંકલેશ થાય છે, સંકલેશ એ
 દુખનો એક પ્રકાર છે, મુનિજન આવો કોઈ પણ વ્યવહાર કરી શકતા નથી
 કે જે અન્ય જીવોને દુખગારક હોય એની સદા એક જ ધારણા રહે છે કે
 દુનિયાના જેટલા પણ જીવ છે એ બધા માગ સમાન સુખાભિલાષી છે જે પ્રકારે,
 અપ્રતિકૂલ આચરણથી મને દુખને અનુભવ થાય છે, આ જ પ્રકારે મારા અનિષ્ટ
 આચરણથી એમને પણ કષ્ટ થવાનું એટલે તે નમસ્ત જીવોમા આત્મોપમતા
 (આત્મતુલ્યતા) માનતા હોય છે આ કાણે તેઓ કોઈ પણ પ્રાણીનો સ્વપ્નમા
 પણ ઘાત કરવાનો વિચાર સરળોએ કરતા નથી જે અન્ય જીવોને ઘાત કર-
 વાના વિચારને નિન્દિત સમજે છે એવા ખીલજોને આવી અનિષ્ટ ક્રિયા કરવામા

क्रिया करने में प्रयत्न होने की प्रेरणा या उपदेश भी कैसे दे सकता है। जब यह बात है तो फिर जीवों का घात करनेवाले प्राणियों के कृत्यों की यह अनुमोदना भी नहीं कर सकता है। इसीलिए यह हिंसादिक पापों से नयकोटि से निवृत्त होता है। यह बात “उत्प्रेक्षमाणः प्रत्येकं मातम्” इस सूत्रांशसे प्वनिग होनी है। अथवा इसका यह भी आशय निकलता है कि मुनि प्रत्येक मसारी जीवों के सुख और दुःख जानते हैं, अर्थात् जिन जीवों का जितना सुख और दुःख उदयमें होगा-उतना उन्हें भोगना ही पड़गा, उनके उसमें न तो कोई कमी करनेवाला है और न कोई घृद्धि करनेवाला है-इस प्रकार से ये समस्त जीवों के सुख और दुःख के ज्ञाता हैं, तो भी वे ऐसा समझ कर अपनी प्रवृत्ति को स्वच्छन्द नहीं बनाते। वे ऐसा विचार नहीं करते हैं कि मेरी अच्छी प्रवृत्तिसे किसी भी जीव के सुख दुःखमें परिवर्तन तो हो नहीं सकता फिर क्या जरूरत है कि मैं अपनी प्रवृत्ति को सपमित्र रमूं, सुख दुःख का भोग प्रत्येक जीवों के कर्माधीन है, मैं अपनी शुभ प्रवृत्तिसे किसी भी जीव के कर्मोदय को थोड़े ही गलत सकता हूँ। इस प्रकार का विचार करना मुनिजन के लिये योग्य नहीं है ऐसा वे जानते हैं। यद्यपि कोई भी जीव किसी भी जीव के कर्मोदय को गलत नहीं सकता है। जिस

પ્રવૃત્તિ થવાની પ્રેરણા કે ઉપદેશ પણ કેડી રહે છે શકે ? અહીં આવી જાન
છે તો પછી હવેના ધ્યાન કરનાવાળા પ્રાણીઓના દૃષ્ટિએની તે અનુમોદના પણ
કરી શકતા નથી એટલા માટે તબા દિઆદિક પાપામાં નવકારીથી નિવૃત્ત
થાય છે આ જાન ક્ષેત્રમાજ પ્રત્યક્ સાક્ષ્ય આ સૂચકમાં જ્ઞાનિન ધાવ છે
નયના જોના જે પણ અથ નિકળે છે કે મુનિ પ્રત્યેક મગ્રાસં જ્ઞાના મુખ
જાને દુઃખ લાગે છે અથાત્ જ હવાના જેવા મુખ જાને દુઃખ જાને ઉદય
અવશે એટલું જોવા જોગવર્તુ / પછી તને ન કાર્ય જોવા કરી
શકે છે ન કાર્ય જમાતે શકે છે આ પ્રકારથી તબા અમમ્મ જ્ઞાના મુખ જાને
દુઃખના લાગુકાર જોય છે તો પણ તેઓ જે યનજને પાંચાની પ્રજ્ઞિને
સ્વચ્છેદી બતાવવા નથી તબા જોવા પણ વિચાર કરના નથી કે આસં માધી
પ્રજ્ઞિથી કે પણ હવના મુખ જુઝમા પરિવનન કાર્ય શકનું નથી તો પછી દુઃ
ખાની પ્રજ્ઞિને જાવા કામામા મું કરવા લગાડે ? મુખ દુઃખનું આગવતુ જે પ્રત્યેક
જ્ઞાને કામાપીન છે દુઃખાસી આ । પ્રજ્ઞિથી કાર્ય પણ જ્ઞાને કષ્ટે જ ધાવેજ
દાગી શકે જુ ? આ પ્રકારેની તિ ઠાર કરવા મુનિજન આવા નથી તેનું ન લાગે છે
જે કે કા પણ જ્ઞાન કાર્ય પણ જ્ઞાન કષ્ટારથને દાગી શકના નથી જે જ્ઞાન જે

ક્ષમાળઃ=જાનાનઃ, પ્રગલ્ભાદિકં ન વિદયીત । અત્ર આત્મૌપમ્યેન પર ન દ્વિત્યાત્ર
 યાતયેન્નાનુમોદયેદિત્યર્થોઽપિ વ્યક્તિતઃ । ક્વચિચ્ચાન્યસ્ય મુખદુઃખે અન્યસ્યાપિ
 ભવતઃ, યથા-પુત્રફલત્રાદિમુખદુઃખાભ્યા પિતૃ-પત્યાદેઃ મુખદુઃખે જાયેતે, પરન્તુ
 તત્ર પુત્રકલત્રયોઃ શારીરે માનસે અપિ મુખદુઃખે, અપરસ્ય ચ માનસે એવ મુખદુઃખે
 ઇતિ વિવેકઃ ।

જીવ કે જો હોનહાર હૈ વહ હો કર હી રહેગા, ઇસમેં થોડા સા
 મી સંદેહ નહીં, હમારે અનેકે પ્રતિ શુભ કરને સે અનેકા શુભ
 નહીં હો સકતા હૈ, યહ નિશ્ચિત સિદ્ધાન્ત હૈ । તો મી મુનિજન
 સવ જીવોં પ્રતિ શુભ પ્રવૃત્તિ હી કરતે હૈ, કિસી મી જીવમાત્રકે પ્રતિ
 કષ્ટકારક પ્રવૃત્તિ નહીં કરતે હૈ । ઉસકા કારણ યહી હૈ કિ વે સમસ્ત
 જીવોં કો અપને સમાન દેખતે હૈ, જાનતે હૈ । વે યહ અછ્છી તરહસે અનુ-
 ભવ કરતે હૈં કિ જિમ પ્રકાર હમેં દુમરોં કી અશુભ પ્રવૃત્તિ સે કષ્ટ
 હોતા હૈ ઉસી પ્રકાર હમારી અશુભ પ્રવૃત્તિ સે મી દુસરે જીવોં કો કષ્ટ
 હોગા । વસ યહી સોચ સમજ કર વે અપને આચાર વિચાર કો પવિત્ર
 ઓર દુસરોં કો હિતકારી હો એસા હી કરતે હૈં । યહ માના કિ વે દુસરોં
 કે કર્મોં કો ટાલ નહી સકતે, પરન્તુ ઇતના તો કર સકતે હૈં કિ અનેક
 અશુભ મેં નિમિત્ત ન બન કર અશુભ કર્મોં પાર્જન સે વચ સકતે હૈં ।
 ઇસીલિયે મુનિ સમસ્ત જીવોં કો અપને સમાન જાન કર અનેકી ન સ્વયં
 હિંસા કરતે હૈ, ન દુસરોં સે કરાતે હૈ ઓર ન હિંસા કરનેવાલે કી
 અનુમોદના હી કરતે હૈ ।

થનાર હોય છે તે થઈને જ ગ્હે છે, આમા થોડા પણ સન્દેહ નથી માગ એના
 પ્રત્યે શુભ કરવાના પ્રયાસથી પણ એનું શુભ થઈ શકવાનું નથી આ નિશ્ચિત
 સિદ્ધાન્ત છે, તો પણ મુનિજન આ યથા જીવો તરફ શુભ પ્રવૃત્તિ જ કરે છે
 કોઈ પણ જીવમાત્ર તરફ કષ્ટકારક પ્રવૃત્તિ કરતા નથી એનું કારણ એ છે કે
 તેઓ સમસ્ત જીવોને પોતાની માફક જ જુએ છે-જાણે છે, તેઓ સારી રીતે
 અનુભવ કરે છે કે જે પ્રકારે જીવજાતોની અશુભ પ્રવૃત્તિથી મને દુઃખ થાય છે
 એ જ રીતે મારી અશુભ પ્રવૃત્તિથી જીવને દુઃખ થશે, આ મમજી વિચારી
 તેઓ પોતાના આચાર-વિચારો પવિત્ર તથા જીવજાતોને હિતકારી અને તેમ જ
 કરે છે એ માને છે કે તેઓ જીવના કર્મોને ટાળી શકતા નથી, પરંતુ એટલું
 તો કરી શકે છે કે તેના અશુભ કર્મો પાર્જનથી જાતી થકે છે આ માટે મુનિ
 સમસ્ત જીવોને પોતાના સમાન જાણી એની ન પોતે હિંસા કરે છે ન જીવજાતી
 કરાવે છે કે ન તો હિંસા કરવાવાળાને અનુમોદન આપે છે

અધિજ્ઞાનપ્રમ્ય મુખદુઃસ્વે પરણ તદિપરીતરૂપજાનુભૂયતે, યયા શત્રુમદ્યતેઃ
મુલેનાડપરો દુઃસ્વે, દુઃસ્વેન ચ મુલમનુમયતિ, તત્રાપિ ત્રૈકલ્ય ક્ષારીરે માનસે અપિ,
પરસ્ય માનસે પવતિ દ્વયમ્ ।

મધ્યસ્થમાત્મ્યસ્ય પરમાણિમુલેન મુલ્લ દુઃસ્વેન ચ દુઃસ્વે જાયતે “સમઃ
શત્રૌ ચ મિત્રે ચ” ઇત્યગ્રોક્તત્વાદિતિ તત્ત્વમ્, તેન કિં પ્રકૃતે ? ઇત્યાદ—
'વર્ણાદેશી'—ત્યાગિ, સર્વગ્રોકે=ઉર્ધ્વાગ્રિગ્રોકે વર્ણાદેશી=વર્ણ્યતે=પ્રશ્નસ્યતે ચેન
સ વર્ણ=સાધુકારસ્વમાદપ્તુ શીર્ષં યસ્ય સ વર્ણાદેશી=યસ્ય કીર્ત્યમિલાપી, યદા

સંસારી જીવોમાં જે પ્રવૃત્તિ દેહી જાતી છે તે એ અપને સ્વજનકો
જે પદાર્થોની પ્રાપ્તિ હોને તે અપને સુખી તથા અપ્રાપ્તિ હોને તે દુઃખી
માનતે છે; જેસે પુત્ર કલત્રાદિકો કે શારીરિક પદ માનસિક સુખદુઃસ્વ
માં સુખી દુઃખી બુઝા કરતે છે । કહીં ઇસસે બિપરીત સી પ્રવૃત્તિ દેહી
જાતી છે; જેસે—શત્રુકે સુખી હોન પર કિસીનો માનસિક કષ્ટ હોના છે
ઔર ઇસકે દુઃખિત હોને સે ઇસે માનસિક સુખ હોના છે । પરંતુ જો
માધ્યસ્થપ્રવૃત્તિસંપન્ન હોતે છે ઇન્ને સમસ્ત પ્રાણિયોનો જાહેર બહુ અપના
હિત હો જાહેર બહુ શત્રુ હો ઇસે—સુખી દેખ કર સુખ હોના છે ઔર ઇસકે
દુઃખ સં ઇન્ને દુઃખ હોના છે, ઇનમાં પક્ષપાત કી વૃત્તિ નહીં હોતી છે ।
ક્યોં કિ “સમ શત્રૌ ચ મિત્રે ચ” સમભાવી સદા શત્રુ ઔર મિત્રમાં
સમભાવ રાખતે છે । ઇનસે પ્રસ્તુત પ્રકરણમાં જે જ્ઞાન આઈ કિ મુનિ
જન જો સદા સમભાવી હોતે છે એ સમસ્ત લોક—ઉર્ધ્વ, મધ્ય ઔર
અધઃલોક માં વર્ણાદેશી હોતે છે । યદા કીર્તિ, સ્વપર—કલ્યાણ તથા

સંસારી જીવોમાં આ પ્રવૃત્તિ દેખાઈ આવે છે કે તેમાં પોતાના સ્વજનને
જે પદાર્થોની પ્રાપ્તિ થવામાં પોતાને મુખી તથા અપ્રાપ્તિ થવામાં દુઃખી માને
છે એમ કે પુત્ર કલત્રાદિના શારીરિક અને માનસિક મુખ દુઃખમાં મુખી દુઃખી
બન્યા કરે । ઇત્થ મધ્યે જ્ઞાનાથી વિપરીત પ્રવૃત્તિ પણ દેખવામાં આવે છે,
જેમકે શત્રુના મુખી થવાથી ઇત્થને માનસિક કષ્ટ થાય છે અને તેના દુઃખી
થવાથી તેને માનસિક મુખ થાય છે પરંતુ એ માધ્યસ્થપ્રવૃત્તિસંપન્ન છે તેને
સમસ્ત પ્રાણીઓને—સદા તે પોતાનો શત્રુ હોવા કે હિતેષુ હોવા બોલે—મુખી
દેખી મુખ થાય છે અને તેના દુઃખી દુઃખ થાય છે તેનામાં પક્ષપાતની
કંઈ કોટી નથી; કારણકે “સમ શત્રૌ ચ મિત્રે ચ —સમભાવી સદા શત્રુ અને
મિત્રમાં સમભાવ રાખે છે જ્ઞાની આશુ પ્રકરણમાં આ વાત આવી કે મુનિજન સદા સમ
ભાવી હોવા છે તે સમસ્ત લોક—ઉર્ધ્વ મધ્ય અને અધઃ લોકમાં વર્ણાદેશી હોવા છે થય,

“ एता हसन्ति च रुदन्ति च चित्तहेतो-विश्वासयन्ति च नर न च विश्वसन्ति ।
तस्मान्नरेण कुलशीलसमन्वितेन, नार्यः श्मशानघटिका इव वर्जनीयाः ॥ १ ॥
आनन्दयन्ति रमयन्ति विडम्बयन्ति, निर्भत्सयन्ति रमयन्ति विपादयन्ति ।
एताः प्रविश्य सदय हृदयं नराणा, किं नाम वामनयना न समाचरन्ति ” ॥ २ ॥ इति ।

“ एता હસન્તિ ચ રુદન્તિ ચ ચિત્તહેતોઃ,
વિશ્વાસયન્તિ ચ નર ન ચ વિશ્વસન્તિ ।
તસ્માન્નરેણ કુલ-શીલસમન્વિતેન,
નાર્યઃ સ્મશાનઘટિકા ઇવ વર્જનીયાઃ ॥ ૧ ॥
આનન્દયન્તિ મદયન્તિ વિડમ્બયન્તિ,
નિર્ભત્સયન્તિ રમયન્તિ વિપાદયન્તિ ।
એતાઃ પ્રવિશ્ય સદય હૃદયં નરાણાં,
કિં નામ વામનયના ન સમાચરન્તિ ” ॥ ૨ ॥

ये धनके लिये हसती और रोती रहती हैं । दूसरो को विश्वास करा देती हैं पर स्वयं दूसरों का विश्वास नहीं करतीं । इसलिये कुलीन पुरुषों का कर्तव्य है कि वे इनका श्मशानके घटके समान परिहार कर दें ।

ये पुरुषों के चित्तमें प्रवेश कर उसे कभी आनन्दित करती है तो कभी उसे मद्‌मत्त बना देती हैं । कभी उसकी नाना प्रकारसे विडम्बना करती हैं, तो कभी बिचारे का अपमान करती हैं । कभी उससे रमती हैं तो कभी कभी उसे विषादयुक्त कर देती हैं । ऐसी कौनसी क्रियाएं बचती हैं जो ये न करती हों ।

“ एता हसन्ति च रुदन्ति च चित्तहेतो, विश्वासयन्ति च नर न च विश्वसन्ति ।
तस्मान्नरेण कुलशीलसमन्वितेन, नार्यः श्मशानघटिका इव वर्जनीयाः ” ॥ १ ॥
“ आनन्दयन्ति मदयन्ति विडम्बयन्ति, निर्भत्सयन्ति रमयन्ति विपादयन्ति ।
एताः प्रविश्य सदय हृदयं नराणा, किं नाम वामनयना न समाचरन्ति ” ॥ २ ॥

એ ધનને માટે હસતી અને રોતી રહે છે બીજાને પોતાનો વિશ્વાસ કરાવી દે છે પરંતુ પોતે બીજાનો વિશ્વાસ કરતી નથી આ માટે કુલીન પુરુષોનું એ કર્તવ્ય છે કે તેઓ એનો શ્મશાનની ઘટીની માફક પરિહાર કરી દે એ પુરુષોના ચિત્તમાં પ્રવેશ કરી ક્યારેક આનન્દિત બનાવે છે તો ક્યારેક મદોન્મત બનાવી દે છે ક્યારેક એની નાના પ્રકારે મસ્કરી કરે છે તો ક્યારેક બીચારાનું અપમાન કરે છે ક્યારેક આડે છે તો ક્યારેક ખિન્ન બનાવી દે છે એવી કોઈ ક્રિયા નથી કે જે એ ન કરતી હોય.

एतादृशः कंचन=कमपि प्राणादिपातादिसावधव्यापार नारमते=न कुर्वते,
वर्णादेशीत्यादिसकमविशेषणैर्मुनेः सकलाचारपरिशीलनशीलमवगम्यत इति
इदम् ॥ सू० ४ ॥

या पुनरतादृशं स कीदृशो भवतीति दर्शयति—‘से वसुम’ इत्यादि ।

મૂલમ્—સે વસુમ સર્વ સમગ્રાગયપદ્ધાનેણ અપ્પાણેણ અકરણિજ્ઞ
પાવકમ્મ ત નો અણ્ણેસી, જ સમ્મતિ પાસહ ત મોણતિ પાસહ, જ
મોણંતિ પાસહ તં સમ્મતિ પાસહ, ન હમ સક સિદ્ધિલેહિ અદિહ્જમા
ળેહિ યુણાસાપહિં વકસમાયારેહિં પમત્તેહિં અગારમાવસત્તેહિં, મુણી
મોણ સમાયાપ ધુણે કમ્મસરરિગ, પત લૂહ સેવતિ વીરા સમ્મત્ત
દંસિણો, પસ ઓહંતરે મુણી તિણ્ણે મુત્તે ચિરપ વિયાહિપ
તિવેમિ ॥ સૂ. ૫ ॥

જાયા—સ વસુમાન સર્વસમન્વાગતપદ્ધાનેનાત્મનાઽકરણીયં પાપં કર્મં તન્મો અન્વેષી,
યસ્તમ્યકુ પદ્યત તન્મોનમિતિ પદ્યત, યન્મોન પદ્યત તસ્તમ્યગિતિ પદ્યત; નૈત
અન્યં શિષિષૈરાદ્વર્પમાપૈર્ધુનામ્વાસૈર્વક્સમાચારૈ પ્રમત્તૈરગારમાનસમ્મિ, મુનિમોનં
સમાદાય ધુનીયાત્ કર્મજરીરક, પ્રાન્તં સ્વં સેવતે વીરાઃ સમ્યક્ષદ્ધિન, એપ
મોષન્તરા મુનિઃ, તોળોં મુક્કા નિરતો વ્યાખ્યાત इति ब्रवीमि ॥ सू० ५ ॥

इस प्रकारके इन समस्त विशेषणोंवाले वे मुनिजन “नारमते कंचन” कोई भी सावध व्यापार नहीं करते हैं । इन वर्णादेशी आदि समस्त विशेषणों से मुनिमें अपने सकल आचारों की परिशीलनशीलनता जामी जाती है ॥सू० ४॥

जो मुनि ऐसा होता है वह कैसा होता है ?—इस बात को कहते हैं
‘से वसुम’ इत्यादि—

આ પૂર્વેકત પ્રકારનાં સમસ્ત વિશેષણવાળાં એ મુનિજન “નારમતે કચન”
કોઈપણ સાવધ વ્યાપાર કરતા નથી. વર્ણાદેશી આદિ સમસ્ત વિશેષણોથી
મુનિજનની સકલ વ્યાખ્યાત પરિશીલનતા બાકી રહ્યા છે

એ મુનિ આવા હોય છે તે કેવા હોય છે ? આ વાતમા સુતદત્ત કહે છે
— સે વસુમે ઇત્યાદિ.

વર્ણઃ=શુભં તદાદેશી=સ્વપરફલ્યાણાભિલાષી, અથવા-‘વર્ણાદેશી’ વર્ણઃ શરીરકાન્તિઃ, તદાદેશી=તદભિકાઙ્ક્ષી, અપિ ચ મઃ ‘ઁ’ એકપ્રમુખઃ ‘ઁ’ એકમ્મિન મોક્ષે મંયમેવા પ્રગતં મુખ યસ્ય વા એકપ્રમુખઃ=મોક્ષે તત્કારણે ચ નિવેશિતાન્તઃકરણ, એવ વિદિક્ષપ્રતીર્ણઃ=મોક્ષ-તત્સાધનાભિમુખી પ્રવૃત્તિર્દિક્ષ, તદ્વિપરીતા વિદિક્ષ સાવચાચરણ-રૂપા સસારાભિમુખી પ્રવૃત્તિઃ તા પ્રતીર્ણઃ પ્ર=પ્રકરણેણ તીર્ણઃ=રાગદ્વેષમલકાગાધ-

શરીરકાન્તિકી ડચ્છા રગ્વનેવાલે કો વર્ણાદેશી કહતે હૈં । અર્થાત-સમસ્ત જીવોં કો અપને સમાન મંમજ્ઞને કી કામનાવાલા વર્ણાદેશી હૈં । મુનિજન સમસ્ત જીવો કો આત્મસદૃશ જાનતે હૈં । તથા મુનિજન-‘એગ્ગપ્પમુહે’ એકપ્રમુખ હોતે હૈં, એક કેવલ મોક્ષમેં યા મોક્ષકે કારણ સયમમેં उनका अन्तःकरण लगा हुआ रहता है । वे विदिक्षप्रतीर्ण होते हैं, મોક્ષ અથવા उनके સાધનો કી ઓર ઝુકી હુઈ પ્રવૃત્તિકા નામ દિક્ હૈં ઉમસે વિપરીત પ્રવૃત્તિ વિદિક્ષ હૈં, સાવચ આચરણરૂપ સસારાભિમુખી વિદિક્ષપ્રવૃત્તિ કો જિન્હોને અચ્છી તરહસે પાર કર દિયા હૈં, છોડ દિયા હૈં, રાગદ્વેષ જિસકે મલ હૈં એસે અગાધ સસારરૂપી પારાવારસે જો પાર હો ચુકે હૈં વે વિદિક્ષપ્રતીર્ણ હૈં । બાહિરી પદાર્થ પુત્ર-કલત્રાદિકો મેં જવં આમ્યન્તર મે ક્રોધાદિકોં મેં ઉન્હેં સદા નિર્વેદ (વૈરાગ્ય) હોતા હૈં । મુનિજન એસા હી અપના આચાર વિચાર રગ્વતે હૈં કિ જિસસે સમાગચ્છ્યા કે સ્ત્રીપુત્રાદિકોં મેં મમતા ન હો સકે તથા ક્રોધાદિક કે કારણ ઉપસિયત હોને પર

છીર્તિ, સ્વપર ફલ્યાણુ તથા શરીર કાન્તિની ઇચ્છા અભવાવાળાને વર્ણાદેશી કહે છે, અર્થાત્ - સમસ્ત જીવોને પોતાના સમાન સમજવાની કામનાવાળા વર્ણાદેશી છે મુનિજન સમસ્ત જીવોને એક આત્મારૂપ માને છે અને મુનિજન “એગ્ગપ્પમુહે” એકપ્રમુખ હોય છે એક કેવળ મોક્ષમા અથવા મોક્ષના કારણ સયમમા તેનું અંતઃકરણ લાગ્યું રહે છે, તેઓ વિદિક્ષપ્રતીર્ણ હોય છે મોક્ષ અથવા તેના સાધનોની તરફ ઢળેલી પ્રવૃત્તિનું નામ દિક્ષ છે, એનાથી વિપરીત પ્રવૃત્તિ વિદિક્ષ છે સાવચ આચરણરૂપ સસારાભિમુખી વિદિક્ષપ્રવૃત્તિને જેને ભલીભાતિ પોતે પાર કરેલ છે-છોડી દીધી છે રાગદ્વેષ જેના મૂળ છે એવા અગાધ સસારરૂપી માગરને જેઓ તરી ચૂક્યા છે તેઓ વિદિક્ષપ્રતીર્ણ છે બાહ્ય પદાર્થ પુત્ર કલત્રાદિકમા તેમજ આલ્સ્યન્તરમા ક્રોધાદિકમા જેમને મહા વૈરાગ્ય થાય છે મુનિજન એવા જ પોતાના આચાર વિચાર ગણે છે કે જેનાથી સસાર અવસ્થાના સ્ત્રી પુત્રાદિકમા મમતા ન થઈ શકે તેમ જ ક્રોધાદિકના

સંસારપારાધારીર્ણ, एवं 'निर्विण्णाचारी' निर्विण्णः निर्वेदा बाधे पुत्र-
 म्मात्रौ माम्पन्तर बाधायै च तिरस्कार, परित्याग इत्यर्थ, तद्वान्=निर्विण्णः=
 पश्चात्पन्तरामिष्यद्विरहित, तस्य चार=आचरणमनुष्ठानमिति यावत्, सोऽस्याम्नीति
 निर्विण्णाचारी=तीर्थकरणघराद्युपनिष्ठागार्जुणापी, किञ्च 'प्रजासु अरत'
 प्रजायन्त इति प्रजाः=जीवास्तासु अरत=अनासक्त समारम्भनिवृत्त इत्यर्थः, तत्र
 ममत्वविरजिता वा, यद्वा-प्रकर्षेण जनयन्ति पुत्रादिकं यास्ता प्रजा यापितस्तासु
 अरता अनासक्त, स्त्रियो हि पुरुषं स्वामर्कं नानामकारण नर्तयन्ति, उक्तञ्च—

મી ઉન્ને કોષી ન હોના પડે । કસ પ્રકાર બાહ્ય ઔર અન્તરગ પરિગ્રહસે
 રહિત આચરણ ફનકા હોતા હૈ, ફમીકા નામ નિર્વિણ્ણાચારી હૈ । અર્થાત્
 તીર્થકૂર ણ્ધ ગણધરાદિકોનિ જિમ પ્રકાર સે મુનિમાર્ગકા ઉપદેશ દિયા
 હૈ વસીકે અનુસાર લે ઉસ માર્ગકે અનુષ્ઠાયક હોતે હૈ । “પ્રજાસુ અરત ”
 પ્રજા શબ્દકા અર્થ જો પૈદા હોતે હૈ તેસે જીલ હૈ । ઉનમૈ અરત-અનાસક્ત
 મુનિજન હોતે હૈ, તેમા સમારંભ લે નહીં કરતે કિ જિસસે જીલોંકા
 અકલ્યાણ, યા ઘાનાદિક હો । જીલોં મેં મમત્વરહિત હોમા મી પ્રજામૈ
 અરત હોના હૈ । અથવા પુત્રાદિકોં કો ઉત્પન્ન કરનેલાસી સ્ત્રિયોંકા નામ
 મી પ્રજા હૈ । મુનિજન સ્ત્રીધર્મ મેં આમત્કિસે રિત્ત હોતે હૈ, કારણ કિ
 લે જાનતે હૈ કિ સ્ત્રિયા અપને મેં આમત્ક પુત્ર્ય કો અનેક પ્રકાર કે નાચ
 નલામી હૈ, કહા મી હૈ—

કાશ્વ ઉપસ્થિત થવા પડુ તેને કોષી ન થવુ પડે. આ પ્રકારે બાહ્ય અને
 અન્તરગ પરિગ્રહથી રહિત આચરણ તેમજ કાચ છે જાનું જ નામ નિર્વિણ્ણાચારી
 છે અર્થાત્—તીર્થકૂર અને ગણધરાદિકોને ૭ પ્રકારથી મુનિમાર્ગના ઉપદેશ
 આપે છે જે અનુસાર તે નાચ પર ચાલનારા તેઓ કાચ છે. “પ્રજાસુ અરત”
 પ્રજા શબ્દનો અર્થ ૭ પૈદા થાય છે જેવા જે છુલ ને છે જેમા અરત-અનાયસ્કત
 મુનિજન કોચ છે જેવા સમારંભ જે નથી કરતા કે જેનાથી છુલોનું અકલ્યાણ
 થાય અથવા ઘાત આદિ કોચ. છુલોમા મમત્વરહિત રહેવુ જે પડુ પ્રજામા અરત
 થવુ છે. અથવા પુત્રાદિકોને ઉત્પન્ન કરવાવાળી સ્ત્રીઓનું નામ પડુ પ્રજા છે
 મુનિજન સ્ત્રીધર્મની આચરણથી વિરક્ત કાચ છે. કાશ્વ કે તેઓ બાણવા કોચ
 છે કે સ્ત્રીઓ પાતાનામા આસક્ત થનાર પુત્રને અનેક પ્રકારના નાચ નલાવે છે
 કહ્યું પડુ છે.

“ एता हसन्ति च रुदन्ति च वित्तेहेतो-विश्वासयन्ति च नर न च विश्वसन्ति ।
तस्मान्नरेण कुलशीलसमन्वितेन, नार्यः श्मशानघटिका इव वर्जनीयाः ॥ १ ॥
आनन्दयन्ति रमयन्ति विडम्बयन्ति, निर्भत्सयन्ति रमयन्ति विपादयन्ति ।
एताः प्रविश्य सदय हृदय नराणा, किं नाम वामनयना न समाचरन्ति ” ॥ २ ॥ इति ।

“ एતા હસન્તિ ચ રુદન્તિ ચ વિત્તહેતોઃ,
વિશ્વાસયન્તિ ચ નર ન ચ વિશ્વસન્તિ ।
તસ્માન્નરેણ કુલ-શીલસમન્વિતેન,
નાર્યઃ સ્મશાનઘટિકા ઇવ વર્જનીયાઃ ॥ ૧ ॥
આનન્દયન્તિ મદયન્તિ વિડમ્બયન્તિ,
નિર્ભત્સયન્તિ રમયન્તિ વિપાદયન્તિ ।
એતાઃ પ્રવિશ્ય સદય હૃદયં નરાણાં,
કિં નામ વામનયના ન સમાચરન્તિ ” ॥ ૨ ॥

ये धनके लिये हसती और रोती रहती हैं । दूसरो को विश्वास करा देती हैं पर स्वय दूसरों का विश्वास नहीं करतीं । इसलिये कुलीन पुरुषों का कर्तव्य है कि वे इनका श्मशानके घटके समान परिहार कर दें ।

ये पुरुषों के चित्तमें प्रवेश कर उसे कभी आनन्दित करती है तो कभी उसे मद्दोन्मत्त बना देती हैं । कभी उसकी नाना प्रकारसे विडम्बना करती हैं, तो कभी विचारे का अपमान करती हैं । कभी उससे रमती हैं तो कभी कभी उसे विपादयुक्त कर देती है । ऐसी कौनसी क्रियाएं बचती हैं जो ये न करती हों ।

“ एता हसन्ति च रुदन्ति च वित्तेहेतो, विश्वासयन्ति च नर न च विश्वसन्ति ।
तस्मान्नरेण कुलशीलसमन्वितेन, नार्यः श्मशानघटिका इव वर्जनीयाः ” ॥ १ ॥
“ आनन्दयन्ति मदयन्ति विडम्बयन्ति, निर्भत्सयन्ति रमयन्ति विपादयन्ति ।
एताः प्रविश्य सदय हृदय नराणा, किं नाम वामनयना न समाचरन्ति ” ॥ २ ॥

એ ધનને માટે હસતી અને રોતી રહે છે બીજાને પોતાનો વિશ્વાસ કરાવી દે છે પરંતુ પોતે બીજાને વિશ્વાસ કરતી નથી આ માટે કુલીન પુરુષોનું એ કર્તવ્ય છે કે તેઓ એનો શ્મશાનની ઘટીની માફક પરિહાર કરી દે એ પુરુષોના ચિત્તમા પ્રવેશ કરી ક્યારેક આનંદિત બનાવે છે તો ક્યારેક મદોન્મત બનાવી દે છે ક્યારેક એની નાના પ્રકારે મશ્કરી કરે છે તો ક્યારેક બીચારાનું અપમાન કરે છે ક્યારેક રમાડે છે તો ક્યારેક બિંમ્લ બનાવી દે છે એવી કોઈ ક્રિયા નથી કે જે એ ન કરતી હોય.

एतादृशं कंचन—कमपि प्राणातिपातादिसावधव्यापार नारमते=न कुरुते,
बर्णादेशीत्यादिसकलविशेषणैर्मुनेः सकलाचारपरिशीलनशीलस्त्वमवगम्यत इति
इदम् ॥ सू० ४ ॥

यः पुनरतादृशं स कीदृशा भवतीति वर्णयति—‘से वसुमं’ इत्यादि ।

मूकम्—से वसुमं सन्ध समन्नागयपद्माणेण अप्याणंण अकरणिज्ज
पावकम्म त नो अझेसी, ज सम्मति पासह त मोणति पासह, ज
मोणति पासह तं सम्मति पासह, न इम सक सिडिलेहि अदिज्जमा
णेहि गुणासापहिं वकसमायारेहिं पमत्तेहिं अगारमावसत्तेहिं, मुणी
मोणं समायाए धुणे कम्मसररिण, पंत वूह सेवति वीरा सम्मत्त
दसिणो, एत ओहंतरे मुणी तिण्णे मुत्ते विरए वियाहिए
त्तिवेमि ॥ सू० ५ ॥

छाया—स वसुमान् सर्वसमन्वागतप्रदानेनात्मनाऽकरणीयं पापं कर्म तन्नो भवेत्पी,
प्लसन्त्यङ्क पश्यत तन्मौनमिति पश्यत, यन्मौनं पश्यत तत्सम्पत्तिमिति पश्यत; नैत-
त्कर्म्यं त्रिविधैरादर्शमाणैर्गुणात्मनैर्वक्रममाचारैः प्रमत्तैरगारमावसद्भिः, मुनिमौनं
समादाय धुनीयात् कर्मसरीरकं, प्रान्तं रूपं सेवन्ते वीराः सम्यक्तदर्शिनः, एष
भोक्तारो मुनिः, तीर्थो मुक्ता विरतो व्याख्यात इति व्रवीमि ॥ सू० ५ ॥

इस प्रकारके इन समस्त विशेषणोंवाले वे मुनिजन “नारमते कंचन” कोई भी सावध व्यापार नहीं करते हैं । इन बर्णादेशी आदि
समस्त विशेषणों से मुनि में अपने सकल आचारों की परिशीलन
शीलनता जानी जाती है ॥ सू० ४ ॥

जो मुनि ऐसा होता है वह कैसा होता है ?—इस बात को कहते हैं
‘से वसुमं’ इत्यादि—

अप पूर्वोक्त प्रकारनी समस्त विशेषणवाणा ओ मुनिजन “नारमते कंचन”
अपिपि सावध व्यापार कस्ता नही. बर्णा देशी आदि समस्त विशेषणोधी
मुनिजननी सकल आचारना परिशीलनता बाणी सकाय छे

वे मुनि आपा कोय छे वे देना कोय छे ? अप पातमा सूत्रकार कहे छे

— से वसुमं इत्यादि.

ટીકા—‘સ વસુમાન’-ઇત્યાદિ, વસુ=દ્રવ્ય ભાવતઃ સયમરૂપ, તદસ્યા-સ્તીતિ વસુમાન=તપઃ સયમાદિમાન નિવૃત્તપચનપાચનાદિસાવચવ્યાપાર ઇત્યર્થઃ, સ મુનિઃ સર્વસમન્વાગતપ્રજ્ઞાનેન સમ્=સમ્યક્ અનુ=સામ્યાદાગત=પ્રાપ્ત=સમન્વાગતં સર્વં ચ તત્સમન્વાગત સર્વસમન્વાગતં, તાદૃશ પ્રજ્ઞાન પદાર્થસાર્થાધિર્ભાવકમાચાર્ય-પરમ્પરાડગતં યસ્ય સ સર્વસમન્વાગતપ્રજ્ઞાનસ્તેન સર્વસમન્વાગતપ્રજ્ઞાનેન-તાદૃશ-

વસુ શબ્દકા અર્થ દ્રવ્ય હૈ । દ્રવ્ય દો પ્રકાર કા હૈ । ૧-દ્રવ્યદ્રવ્ય (બાહ્ય દ્રવ્ય), ૨-ભાવદ્રવ્ય । દ્રવ્યદ્રવ્ય હિરણ્ય સુવર્ણ ધનાદિક હૈ । તપ સયમાદિરૂપ ભાવદ્રવ્ય હૈ । યહ ભાવદ્રવ્ય જિનકે હોતા હૈ વે વસુમાન કહે જાતે હૈ । મુનિજન ભાવદ્રવ્યવાલે હી હોતે હૈ । તપ ઓર સયમરૂપ હી દ્રવ્ય ઇનકે પાસ રહતા હૈ । ઇસ દ્રવ્યકા અસ્તિત્વ હી પચનપાચનાદિરૂપ સાવચ વ્યાપારકી નિવૃત્તિ સ્વરૂપ હૈ-અર્થાત્ જહાં યે દ્રવ્ય હૈ વહાં પર સાવચવ્યાપાર નહીં હોતા હૈ । એસા વહ વસુમાન મુનિ સર્વસમન્વાગત-વિજ્ઞાનયુક્ત આત્મા સે યહ સમજકર કિ પાપકર્મ અકરણીય હૈ ઉસે નહીં ગવેષતા હૈ-અભિલાષા નહીં કરતા હૈ । “સર્વસમન્વાગત” ઇસ પદમે સર્વ, સમ્, અનુ, આગત એસે ચાર શબ્દ હૈ । સમ્ શબ્દકા અર્થ-સમ્યક્, અનુ શબ્દકા અર્થ-સામ્યભાવસે, આગતકા અર્થ હૈ-પ્રાપ્ત હુઆ, અર્થાત્ નિર્દોષ સમતાભાવસે પ્રાપ્ત હુઆ, સર્વ પદકે સાથ સમન્વાગતકા કર્મ-ધારય સમાસ હુઆ હૈ । સર્વ સમસ્ત જો સમન્વાગત વહ સર્વસમન્વાગત હૈ । સર્વસમન્વાગત પ્રજ્ઞાન હૈ જિસે વહ સર્વસમન્વાગતપ્રજ્ઞાન હૈ ।

વસુ શબ્દનો અર્થ દ્રવ્ય છે દ્રવ્ય બે પ્રકારનું હોય છે ૧ બાહ્યદ્રવ્ય, ૨ ભાવદ્રવ્ય બાહ્ય દ્રવ્ય હીરા, મોતી, સુવર્ણ અને ધન આદિ છે, અને ભાવદ્રવ્ય તપ, સયમ આદિ હોય છે આ ભાવદ્રવ્ય જેની પાસે હોય છે તે વસુમાન કહેવાય છે મુનિજન ભાવ દ્રવ્યવાળા જ હોય છે, તપ અને સયમરૂપી દ્રવ્ય જ તેમની પાસે હોય છે આ દ્રવ્યનું અસ્તિત્વ જ પચન-પાચનાદિરૂપ સાવચ વ્યાપારની નિવૃત્તિ સ્વરૂપ છે અર્થાત્—જ્યાં આ દ્રવ્ય છે ત્યાં સાવચ વ્યાપાર હોતો નથી એવા એ વસુમાન મુનિ સર્વસમન્વાગતવિજ્ઞાન યુક્ત આત્માથી એ સમજીને કે પાપકર્મ અકરણીય છે એને નથી ગવેષતો, એની અભિલાષા નથી કરતો “સર્વસમન્વાગત” આ પદમાં સર્વ, સમ્, અનુ, આગત એવા ચાર શબ્દો છે સમ્ શબ્દનો અર્થ - સમ્યક્, અનુ શબ્દનો અર્થ - સામ્યભાવ આગતનો અર્થ પ્રાપ્ત યવુ અર્થાત્ નિર્દોષ સમતા ભાવથી પ્રાપ્ત યવુ તે સમન્વાગત છે, સર્વ પદની સાથે સમન્વાગતનો કર્મધારય સમાસ થયો છે સર્વ સમસ્ત જે સમન્વાગત તે સર્વસમન્વાગત છે

रूपपरिगतन आत्मना अकरणीयं=विषातुमयोग्य यत् पापं=पापजनकं कर्म प्राप्तादि-
पातादिकर्त्तृ तत् पापं कर्म ना अन्वेषी तत् अन्वेष्युं=गवेषयितुं क्षीम यस्य सोऽन्वेषी
ना भवेत्, परिधातपरमार्थेनात्मना पापकर्म ना विधेयमित्याश्रयः । पापकर्मपरि-
त्यागन सम्यग्ज्ञानं, तेन च पापकर्मपरित्याग इति दर्शयति—

‘यत्सम्यग्नि’-स्यादि-हे शिष्या ! ययं यत् सम्यक्=सम्यग्ज्ञानं सम्यक्त्व
वा इति पश्यत ” तन्मौनं=मुनेः कर्म मौनं=सयमाचरणमस्ति; इति पश्यत, एवं

भाषार्थ—समताभाष से मुनिजन जितना भी सम्यग्ज्ञान प्राप्त
करते हैं वह सर्वसमन्वागतप्रज्ञान है । अथवा गुरुपरंपरा से जो ज्ञान
प्राप्त होता आ रहा है वह भी सर्वसमन्वागतप्रज्ञान है । छठवें गुणस्था-
नवर्ती मुनिको इस गुणस्थानमें जितना ज्ञान होना चाहिय उसकी
अपेक्षा से ही उस ज्ञान में सर्व विरोधणकी मार्थकता समझनी चाहिये,
पदार्थों के स्वरूपका आविर्भावक तथा आचार्यपरंपरा से आगत यह
सर्वसमन्वागतज्ञान जिस आत्मा में होता है वह सर्वसमन्वागतप्रज्ञान
आत्मा है ।

इस ज्ञानविशिष्ट आत्मा से मुनिजन यह जानते हैं कि पाप-पाप
जनक प्राणानिपातादिरूप कर्म करनेके अपयोग्य हैं । इसलिये वे उनके
अन्वेषी-गवेषणा करनेक स्वाभाववासे नहीं होते हैं-अर्थात् पापगवेषी
नहीं होते हैं । तात्पर्य यह है कि मुनिजनों की आत्मा परमार्थकी ज्ञाता
है; अतः वे उस आत्मा से पापकर्म विधेय (करने योग्य) नहीं है-
ऐसा समझते हैं ।

“यत् सम्यक् पश्यत तमौनमिति पश्यत, यन्मौनं पश्यत तत्स

भाषार्थ—समता भाषणी मुनिजन नेटसु पञ्च सम्भू स्थान प्राप्त करे
छे ते सर्वसमन्वागतप्रज्ञान छे अथवा सुष्ठु पञ्चस्थी ज्ञान प्राप्त भवुं
आयु छे जे पञ्च नवसमन्वागतप्रज्ञान छे छह अणुस्थानवर्ती मुनिने
आ गुणस्थानमा नेटसु ज्ञान भवुं जेधको जेनी अपेक्षाधी ज को ज्ञानमा
सर्व विशेषणनी प्राप्त कता समझवी जेधको. पदार्थोंना स्वरूपना अपिर्भावक
तथा आत्मा परपञ्चस्थी आगत आ सर्वसमन्वागत ज्ञान ज आत्मा प्रगटे
छे ते नवसमन्वागतप्रज्ञान आत्मा छे आ ज्ञानविशिष्ट आत्माधी मुनिजन जे
बुद्धि छे छे पाप-पापजनक प्राणानिपातादिरूप कर्म करवा भोज्य नहीं आ
भावे ते जेना अ वेपी-गवेषणा करवाना स्वाभाववाज्य यता नहीं. अर्थात् पाप
गवेषी जनता नव. मुनिजनना आत्मा परमार्थनो ज्ञाता छे आधी जे
आत्माद्वारा पापकर्म करवाभोज्य नहीं जेन जे समझे छे

યન્મૌનમિતિ પશ્યત તત્સમ્યગિતિ પશ્યત, ઉભયોરેકત્વમિત્યભિવ્યञ्જનાયોભયત્રા-
પ્યુદેશ્યવિધેયયોર્વિપર્યાસેન કથનમિતિ વોધ્યમ્, જ્ઞાનસ્ય ફલં વિરતિઃ સમ્યક્ત્વા-
ભિવ્યञ્જનં ચ, કૈરેતત્સમાચરિતુ ન શક્યત ઇત્યાહ—‘ નૈતચ્છક્ય ’—મિત્યાદિ ।
શિથિલૈઃ=મન્દપરિણામત્વાદ્ ઈપદ્વીયૈઃ સંયમે તપસિ વા ધૃતિદૃઢતાવર્જિતૈરવસન્ન-
મ્યગિતિ પશ્યત ”—પાપકર્મકે પરિત્યાગ સે સમ્યગ્જ્ઞાન, ઉસસે પાપકર્મ
કા પરિત્યાગ હોતા હૈ, યહ વાત ઇસ સૂત્રાંશ સે સૂત્રકાર પ્રકટ કરતે
હુએ કહતે હૈ—

હે શિષ્યવૃન્દ ! તુમ જિસે સમ્યગ્જ્ઞાન સમજતે હો વહ મુનિકા કર્મ
-સંયમાચરણરૂપ હૈ ઓર જો મુનિકા કર્મ હૈ વહ સમ્યગ્જ્ઞાન હૈ—એસા
સમજો । ઇન દોનોં મેં એકતા હૈ ઇસ વાતકો પ્રકટ કરનેકે લિયે દોનોં
જગહ ઇન દોનો ઉદેશ્ય ઓર વિધેયોંકા વિપર્યાસ—હેરફેર સે કથન કિયા
ગયા હૈ—એસા સમજના ચાહિયે । જ્ઞાનકા ફલ વિરતિ ઓર સમ્યક્ત્વ કા
અભિવ્યંજન—પ્રકટ કરના—હૈ ।

ભાવાર્થ—પ્રથમ કથનમેં સમ્યગ્જ્ઞાન ઉદેશ્ય ઓર મૌન—મુનિકર્મ—
સંયમાચરણ વિધેય હૈ, ઢિતીય કથનમેં મુનિકર્મ ઉદેશ્ય ઓર સમ્યગ્જ્ઞાન
વિધેય હૈ । ચારિત્રકા નિર્માણ કરના ઓર સમ્યક્ત્વકા પ્રાદુર્ભાવ કરના
યે ઉસ જ્ઞાનકે ફલ હૈ ।

નૈતચ્છક્યમિત્યાદિ—યહ સમ્યગ્જ્ઞાનરૂપ મુનિ—કર્મ શિથિલ
આદ્ર્યમાણ, ગુણાસ્વાદી, વક્ત્રસમાચારવાલે, પ્રમત્ત, ગૃહસ્થ પુરુષોં

“ યત્ સમ્યક્ પશ્યત તન્મૌનમિતિ પશ્યત, યન્મૌનં પશ્યત તત્સમ્યગિતિ પશ્યત । ”

પાપકર્મના પરિત્યાગથી સમ્યગ્જ્ઞાન, એનાથી પાપકર્મનો પરિત્યાગ થાય
છે આ વાત આ સૂત્રાંશથી સૂત્રકાર પ્રગટ કરતા કહે છે—

હે શિષ્યવૃન્દ ! તમે જેને સમ્યગ્જ્ઞાન સમજો છો તે મુનિના કર્મ—સંય
માચરણરૂપ છે અને જે મુનિનું કર્મ છે તે સમ્યગ્જ્ઞાન છે એમ સમજો આ
બન્નેમા એકતા છે આ વાત પ્રગટ કરવા માટે બન્ને સ્થળે બન્ને ઉદેશ્ય અને
વિધેયોના વિપર્યાસ—હેરફેરથી કથન કરેલ છે—એમ સમજવું જોઈએ જ્ઞાનનું
ફળ વિરતિ અને સમ્યક્ત્વનું અભિવ્યંજન—પ્રગટ કરવું તે છે

ભાવાર્થ—પ્રથમ કથનમા સમ્યગ્જ્ઞાન ઉદેશ્ય અને મૌન—મુનિકર્મ—સંયમા-
ચરણ વિધેય, બીજા કથનમા મુનિકર્મ ઉદેશ્ય અને સમ્યગ્જ્ઞાન વિધેય છે ચારિ-
ત્રનું નિર્માણ કરવું અને સમ્યક્ત્વનો પ્રાદુર્ભાવ કરવો તે એ જ્ઞાનનું ફળ છે

નૈતચ્છક્યમિત્યાદિ—આ સમ્યગ્જ્ઞાનરૂપ મુનિકર્મ શિથિલ, આદ્ર્યમાણ,
ગુણાસ્વાદિ, વક્ત્રસમાચારવાળા, પ્રમત્ત, ગૃહસ્થ પુરુષોથી સમાચરિત બની શકાતું

પાર્શ્વસ્વાદિમિઃ આદ્યર્પમાણૈઃ=પુત્રાદિપિતૃવ્યક્ત્રોમ્યા અર્દ્રીક્રિયમાણૈઃ; અર્ધરં ચ ગુણાસ્પતૈઃ
 ગુણેષુ=શબ્દાદિપુ આસ્વાદ=અમિકચિર્યેષાં તે ગુણામ્પ્રાદાસ્તૈઃ, એવં ધ્રુવસમાચારૈઃ-
 વક્ત્ર=કુટિલઃ સમાચારઃ=અનુષ્ઠાનં નર્તનમિતિ ચા યેષાં તે વક્ત્રસમાચારાસ્તૈઃ-
 માયાનિકૃતિમદ્મિઃ, કિચ્ચ પ્રમતૈઃ=નિદ્રાવિષજનિષપ્રમાદશક્તિઃ 'અગારમાશસન્નિઃ,
 અગારં=ગૃહમ્ 'આવસન્નિઃ' -આ=સમન્તાત્તિસૃદ્ધયા વસન્નિઃ-ગૃહાસિમિઃ,
 एतादृशैः પુરુષૈરેતત્સમ્યગ્જ્ઞાનરૂપમૌનાનુષ્ઠાનં વિષાતું ન શક્યં મયસિ । કેનેદ્ મૌના
 નુષ્ઠાનં કર્તું શક્યમિત્યાદ- 'મુનિઃ' ઇત્યાદિ । મુનિઃ=શિષિલાવિપૂર્વોક્તવિશે-
 પયર્જનિતઃ સંયમી મૌને-સર્વસાધ્યવ્યાપારપરિત્યાગરૂપં મુનિમાશ સમાદાય=સમ્ય

સે નહીં સમાચારિત હો સકળા હૈ । જો શિષિલ હૈ-મન્દપરિણામી
 હોનેસે કમજોર-સંયમ યા તપ આરાધનમેં ધૈર્ય તથા દૃઢતા સે રહિત હૈ
 એસે અવસર પાર્શ્વસ્થ-આદિકોં સે, પુત્રાદિકોં મેં જિનકે મમત્વ પરિણામ
 જાગ્રત હૈ અતઃપચ વસ્તસે જિનકા અંતઃકરણ યોજા-અતિશય મુગ્ધ બના
 હુઆ હૈ એસે આર્દ્રીક્રિયમાણ-અત્યન્તમોહી માનવોંસે, શબ્દાદિક વિષયોં
 મેં જિનકી કચિ લલલીન હૈ, એ ગુણસ્વાદી હૈ તેસે ગુણસ્વાદિયોં સે, વક્ત્ર-
 સમાચારવાલોં-જિનકા અનુષ્ઠાન અથવા કર્મન કુટિલ હૈ એસે માયાવી
 મનુષ્યોં સે, નિદ્રાદિક પંચપ્રમાદ સેવન કરનેવાલોં સે, ઓર જો ગૃહમેં
 અત્યન્ત ગૃહતા સે રહતે હૈ તેસે ગૃહવાસી ગૃહસ્થોં સે કમી યી યદ્ મુનિ-
 કર્મ સેવિત નહીં હો સકળા હૈ । હમ મૌનકો કૌન આચર સકળા હૈ ? હસકે
 લિયે " મુનિર્મૌનં સમાદાય ધુનીયાત્ કર્મશરીરકમ્ " સૂત્રકાર યદ્ કહતે
 હૈ અર્થાત્-ઉપર્યુક્ત હમ શિષિલાદિક વિશેષણોંસે જો રહિત હૈ તેસે સંયમી
 મનુષ્ય હી સર્વસાધ્યવ્યાપાર કા પરિત્યાગરૂપ મુનિમાશ-મૌન કા અચ્છી

નથી ને શિષિલ છે-મન્દપરિણામી હોવાથી કમજોર-સંયમ યા તપ આરાધ
 નાના ધૈર્ય તેમજ દૃઢતાથી સજિત છે એવા અવસર પાર્શ્વસ્થ-આદિકોથી પુત્ર
 દિકામા જેનું મમત્વ પરિણામ જામત છે માટે તેનાથી જેનું અન્તઃકરણ કૌંબલજેનું-
 અતિમુગ્ધ મુગ્ધ બનેલું છે એવા આર્દ્રીક્રિયમાણ-અત્યન્ત મોહી માનવાથી, શબ્દાદિક
 વિષયોમા જેની રૂપી લલલીન છે તે ગુણસ્વાદી છે એવા ગુણસ્વાદીઆથી, વક્ત્ર
 સમાચારવાળા-જેનું અનુષ્ઠાન જાને વગન કુટિલ છે એવા માયાવી મનુષ્યોથી
 નિદ્રાદિક પાંચ પ્રમાદ સેવન કરવાવાળાઓ, જાને ને ઘરમાં બધી આસક્તિથી રહે
 છે એવા ઘરવાસી ગૃહસ્થાથી આપેલ પણ આ મુનિ-કર્મ સેવિત યદ્ શકતું
 નથી આ મૌનને કોણ આચરી શકે છે ? આ માટે મુનિર્મૌનં " ઇત્યાદિ
 સૂત્રકાર કહે છે અર્થાત્-ઉપર મુજબના એ શિષિલાદિક વિશેષણોથી ને સજિત છે
 એવા સંયમી મનુષ્ય જ સર્વ સાધ્ય વ્યાપારના પરિત્યાગરૂપ મુનિમાશ-મૌનને સાચા

મૃદ્ધીત્વા કર્મગરીરક=કાર્મણ ગરીરમુપલક્ષણાદૌદારિકમપિ યુનીયાન્=કમ્પયેત્
કર્માણિ દ્રીકુર્યાદિત્યર્થઃ, 'પ્રનનપ્રકારમેવાહ—'પ્રાન્ત' મિત્યાદિ, સમ્યક્ત્વદર્શિનઃ
સમત્વદર્શિનો વા વીરાઃ=કર્મવિદારણકુગલાઃ પ્રાન્તં=નિસ્માર પુરાણકુલત્યાદિક
પર્યુપિત વલ્લચનાદિનિપન્ન તક્રમિશ્રિતમન્નાદિક વા રુક્ષં=ઘૃતાદિકૃતિવર્જિ-
તમ્ અશન તદપિ વિગતાદ્ધારધ્રમં સેવન્તે=મુજ્જતે, સ ક્રીદ્શો ભવતી ? ત્યાહ 'એપઃ=
પ્રાન્તરુક્ષાહારી મુનિઃ=સંયમી ઓઘન્તરો ભવતિ, સ એપ તીર્ણો વિમુક્તો વિરતો

તરહ ગ્રહણ કરકે કર્મગરીર—કાર્મણગરીર, એવ ઉપલક્ષણ સે ડસ ઔદા-
ગિક ગરીર કા ખી કમ્પન—વિનાશ કર દેતે હૈ । વિનાશપ્રકારકો સ્ત્ર-
કાર—“ પ્રાન્ત રુક્ષ સેવન્તે વીરાઃ સમ્યક્ત્વદર્શિનઃ ” ડસ સ્ત્રાંગ મે પ્રકટ
કરતે હૈ—સમ્યક્ત્વ અથવા સમત્વ કો દેગ્વનેકા જિનકા સ્વભાવ હૈ વે
સમ્યક્ત્વદર્શી હૈ, ગેસે મનુષ્ય હી કર્મોં કે વિનાશ કરને મેં કુગલ હોતે
હૈ, ડસલિયે વે વીર કહલાતે હૈ । યે વીર પ્રાન્ત—નિઃમાર પુરાની કુલથી
આદિકા, પર્યુપિત—શીતલ વલ્લ—બાલચના આદિસે તૈયાર હુઆ, અથવા
છાછ આદિસે મિશ્રિત બાલચના આદિકા, તથા રુક્ષ—ઘૃતાદિક વિકૃતિસે
રહિત ગેસે ભોજનકા અગાર ધૂમાદિ દોષોં સે રહિત હોને પર હી સેવન
કરતે હૈ આહારરૂપમેં ગ્રહણ કરતે હૈ । પ્રાન્ત એવ રુક્ષ આહાર લેનેવાલે યે
મુનિજન ઓઘન્તર હોતે હૈ । ભાવ ઓઘરૂપ સંમાર સે પાર હો જાતે હૈ ।
“ તીર્ણો મુક્તો વિરતો વ્યાખ્યાનઃ ” ડસલિયે યે ઓઘન્તર મુનિ તીર્ણ
મુક્ત ઔર વિરત તીર્થઙ્કર પ્રસુઢારા કહે ગયે હૈ ।

રીતે ગ્રહણ કરી કર્મગરીર—કાર્મણગરીર એવ ઉપલક્ષણથી આ ઔદાગિક ગરીરનો
પણુ વિનાશ કરી દે છે વિનાશના પ્રકારને સ્ત્રકાર “ પ્રાન્ત રુક્ષ ” ઇત્યાદિ
સ્ત્રાશયી પ્રગટ કરે છે સમ્યક્ત્વ અથવા સમત્વ એવાનો એનો સ્વભાવ છે
તેઓ સમ્યક્ત્વદર્શી છે એવા મનુષ્ય જ કર્મોનો વિનાશ કરવામા કુશળ હોય
છે માટે તે વીર કહેવાય છે એ વીર પ્રાન્ત નિ સાગ પુરાની કુળથી આદિના,
પર્યુપિત—શીતલ બલ્લ—બાલચણા આદિથી તૈયાર થયેલ અથવા છાસ આદિથી
મિશ્રિત બાલચણા આદિ, તથા રુક્ષ—ઘૃતાદિક વિકૃતિથી રહિત એવા ભોજનના
અગાર ધૂમાદિક દોષોથી રહિત હોવાથી તે સેવન કરે છે—આહારરૂપમા ગ્રહણ
કરે છે ડલ આહાર લેવાવાળા આ મુનિજન ઓઘન્તર બને છે, ભાવ ઓઘ
રૂપ સનારથી પાગ થઈ બધ છે “ તીર્ણો મુક્તો વિરતો વ્યાખ્યાન ” આ માટે
એ ઓઘન્તર મુનિ તીર્ણ, મુક્ત અને વિરત તીર્થંકર પ્રસુઢારા કહેવાયા છે

मयतीति व्याख्याता—तीर्थकुट्टिः कथितः, सकलसमासमभिमितो रागद्वेषरहितो
मुनिर्निर्वन्मपि मुक्त एव धातिकर्मसमुष्टयाभावादित्याश्रया । इति प्रवीमि—इत्य
स्मार्यस्तुक्त एव ॥ सू० ५ ॥

॥ पञ्चमाध्ययनस्य तृतीय उद्देशः समाप्तः ॥ ५-३ ॥

भावार्थ—सफल समासमौ से रहित, राग और द्वेषसे वर्जित मुनि
पार धातिया कर्मों के अभाव से जीते हुए भी मुक्त ही है । “ इति
प्रवीमि ” इन पदों का अर्थ पहिले कहा जा चुका है ॥

॥ पंचम अध्यायनका तृतीय उद्देश समाप्त ॥ ५-३ ॥

भावार्थ—सकल समासबोधी रहित राग अने द्वेषभी बलवत् मुनि पार
धातिया कर्मोंना अभावभी लभता होवा छया पक्ष से मुक्त अ छे “ इति प्रवीमि ”
आ पदोने अर्थ आगण कहेवाछ अथो छे

पाँचवा अध्यायनको तीसरे उद्देश समाप्त ॥ ५-३ ॥



અથ પञ્ચમાધ્યયનસ્ય ચતુર્થ ઉદ્દેશઃ ।

ગતસ્તૂતીયોદ્દેશ ઇદાનીં તુરીયઃ પ્રારમ્ભ્યતે । પૂર્વત્ર પરિગ્રહવતો દોષમુદ્ઘાઘ્ય તન્નિરાસેનૈવ વિરત સયમી ભરતીતિ વર્ણિતમ્ । અત્રાવ્યક્તસ્યૈકચરસ્ય મુનિત્વ પ્રણશ્યતીતિ પ્રદર્શનાય તસ્ય પ્રત્યવાયાઃ પ્રતિપાદનીયાઃ સન્તીતિ સમ્પતિ તસ્ય દોષોદ્ઘાવનાયાહ—‘ ગામાણુ ’ ઇત્યાદિ ।

મૂલમ્—ગામાણુગામં દૂઢજ્જમાણસ્સ દુઢજાયં દુપ્પરવ્વકંતં
ભવઙ્ઞ અવિચત્તસ્સ ભિક્ખુણો ॥ સૂ૦ ૧ ॥

છાયા—ગ્રામાણુગ્રામં દ્રવતો (વિહરતઃ) દુર્યાતં દુપ્પરાક્રાન્ત ભવત્યવ્યક્તસ્ય ભિક્ષોઃ ॥ મુ૦ ૧ ॥

‘ ગ્રામાણુગ્રામ ’ મિત્યાદિ, ‘ ગ્રામાણુગ્રામં ’ ગ્રસતિ બુદ્ધ્યાદિગુણ યઃ સ

॥ પાંચવેં અધ્યયનકા ચતુર્થ ઉદ્દેશ ॥

તૃતીય ઉદ્દેશકા વર્ણન કિયા અવ ચતુર્થ ઉદ્દેશકા સૂત્રકાર વર્ણન કરતે હેં ।

પૂર્વ ઉદ્દેશમેં પરિગ્રહીકે દોષોંકા કથન કર યહ ચતલાયા ગયા હૈં કિ પરિગ્રહકે ત્યાગસે હી વ્રતી સયમી હોતા હૈં । ઇસ ઉદ્દેશમેં અવ્યક્ત-અનભિજ્ઞ એકલવિહારી સે મુનિપના નહીં સધ સકતા હૈં—ઇસ વિષયકો દિશ્વાનેકે લિયે ઉસકે પ્રત્યવાય-વિઘ્નસમૂહ પ્રતિપાદનીય-કથન કરનેકે યોગ્ય હેં । ઇસલિયે સૂત્રકાર સર્વપ્રથમ ઉસકે દોષોંકે પ્રકટ કરનેકે લિયે કહતે હેં “ ગામાણુ૦ ” ઇત્યાદિ—

બુદ્ધિ આદિ ગુણોંકા જો ગ્રાસ કરતા હૈં—અર્થાત્ બુદ્ધ્યાદિક ગુણ

પાંચમા અધ્યયનનો ચોથો ઉદ્દેશ

ત્રીજા ઉદ્દેશનુ વર્ણન કર્યું, હવે સૂત્રકાર ચોથા ઉદ્દેશનુ વર્ણન કરે છે

પૂર્વ ઉદ્દેશમા પરિગ્રહીના દોષોનુ વર્ણન કરી એ બતાવવામા આવ્યું છે કે પરિગ્રહના ત્યાગથી જ વ્રતી સયમી બને છે આ ઉદ્દેશમા અવ્યક્ત-અનભિજ્ઞ એકલવિહારીથી મુનિપણું સધાઈ શકતુ નથી—આ વિષય સમજાવવા માટે એના પ્રત્યવાય-વિઘ્નસમૂહ પ્રતિપાદનીય-કથન કરવા યોગ્ય છે આ માટે સૂત્રકાર સર્વ પ્રથમ તેના દોષોને પ્રગટ કરવા માટે કહે છે “ ગામાણુ૦ ” ઇત્યાદિ—

બુદ્ધિ આદિ ગુણોનો જે નાશ કરે છે અર્થાત્ બુદ્ધિ આદિના ગુણ ન્યા

ગ્રામસ્તસ્માદગ્રામાદ્ અનુ=અથાદિતરો ગ્રામો ગ્રામાનુગ્રામ, યતથલતિ સ ગ્રામસ્તન્નિષ્ઠો ગમ્યમાનોન્નુગ્રામસ્ત દ્રવત =અકર્ચયા વિહરત-અવ્યક્તસ્ય=મુતેનાત્વસ્યયા યોમયેન વા વાસ્ત્વ મિષ્ઠાઃ=મિષ્ઠાશીમ્સ્ય મુતે દુર્યાતં-દુષ્ટ ગમનં, તસ્ય વિહરણં નિન્યમિ-સ્પર્ધા, દુષ્ટરાક્રાન્તં=દુષ્ટં પરાક્રાન્તં=પરાક્રમણ તસ્ય પરાક્રમણસ્ફોરણં નિન્યં મવતિ, અવ્યક્તસ્યેકર્ચયા પારિભાન્તરાયોદયેન વ્રહ્મચર્યસ્ત્વલ્લનાદરણ્યમ્માવાત્ ।

જહા પર નિયામ કરને સે પ્રાયઃ શિથિલ હોતે હૈં ઉસકા નામ ગ્રામ હૈં । ઉસસે હસરા ગમ્યમાન ગ્રામ-જહાં જાયા જાતા હૈં-બહ અનુગ્રામ હૈં । એક વર્ષા સે-એકાકી ગ્રામાનુગ્રામ વિહાર કરનેવાલે, જો આગમ સે અવ્યક્ત અનમિષ્ઠ હૈં, યા વયસે અવ્યક્ત હૈં, અથવા આગમ વય દોનોસે અવ્યક્ત હૈં, ઉસ મુનિકા વિહાર નિષ્ઠ હૈં । એકાકી વિહાર કરનેકા ઉસકા પરાક્રમ નિંદા યોગ્ય હૈં-પ્રશંસનીય નહીં હૈં-આગમાનુકૂલ નહીં હૈં । કારણ કિ હસ પ્રકારકે મુનિકો ઉસ એકાકી વિહારમેં ચારિત્ર અન્તરાયકે ઉદયસે વ્રહ્મચર્ય વ્રતકી સ્વલ્લના અવહયમાષી હૈં ।

માર્થ—આગમાદિ સે જો અવ્યક્ત હૈં એસે મુનિકા એકાકી ગ્રામા નુગ્રામ વિહાર કરનાં ઉચિત નહીં હૈં । જો મુનિજન એકાકી વિહાર કરને કે અપને પરાક્રમકી પ્રશંસા કરતે હૈં । ઉનકા હસ પ્રકારકા કથન નિષ્ઠ હૈં । કારણ કિ મુતાદિ સે અવ્યક્ત મુનિકા બહ એકાકી વિહાર ઉસકે વ્રહ્મચર્યવ્રતકી ક્ષતિકા કારણ અવહય થન જાતા હૈં ।

નિવાસ કરવાથી ખરેખર શિથિલ બને છે એવું નામ ગ્રામ છે એનાથી બીડું અમ્યમાન ગ્રામ-અથા વચાય છે તે અનુગ્રામ છે એકવર્ષાથી એકાકી ગ્રામાનુગ્રામ વિહાર કરવાવાળા જે આગમથી અવ્યક્ત-અનમિષ્ઠ છે એવવા ઉંમરથી અવ્યક્ત છે એવવા આગમ અને વય બન્નેથી અવ્યક્ત છે એવા મુનિને વિહાર નિષ્ઠ છે એકાકી વિહાર કરવાનું તેનું પરાક્રમ નિંદા યોગ્ય છે-પ્રશંસનીય નથી-આગમ અનુકૂળ નથી કારણ કે આ પ્રકારના મુનિના તેવા એકાકી વિહારથી ચારિત્ર અવલંબના ઉદયથી વ્રહ્મચર્ય વ્રતની સ્વલ્લના નિર્મિત બની રહે છે

માર્થ—આગમથી જે અવ્યક્ત છે એવા મુનિને એકાકી ગ્રામાનુગ્રામ વિહાર કરવો ઉચિત નથી ? મુનિજન એકાકી વિહાર કરીને પાતાના પરાક્રમની પ્રશંસા કરે છે તેનું જાના પ્રકારનું કથન નિષ્ઠ છે કારણ કે મુતાદિથી અવ્યક્ત મુનિને તે એકાકી વિહાર તેના વ્રહ્મચર્ય વ્રતની ક્ષતિ (નાશ)નું કારણ બની જાય છે

વ્યક્તાવ્યક્તભેદેન મુનિર્દ્વિવિધ, તત્ર ચતુર્ભંગી યથા-શ્રુતેનાવ્યક્તો વયસાપ્ય-વ્યક્તઃ (૧) શ્રુતેનાવ્યક્તો વયસા વ્યક્તઃ (૨) શ્રુતેન વ્યક્તો વયસા ચાવ્યક્તઃ (૩) શ્રુતેન વ્યક્તો વયસાપિ વ્યક્તઃ (૪) ।

તત્ર શ્રુતેન વયસા ચાવ્યક્તઃ-શ્રુતેનાવ્યક્તઃ=આગમાનભિજ્ઞઃ, વયસા ચાવ્યક્તોડલ્પવયસ્કઃ અષ્ટવર્ષાદારમ્ય પશ્ચર્વિંશતિવર્ષપર્યન્તઃ, એવં ચોભયથાડપ્યવ્યક્તસ્ય સંયમાત્મવિરાધનયોઃ સમ્ભવાન્નૈકચર્યા કલ્પતે, એપ પ્રથમો ભંગઃ (૧) ।

શ્રુતેનાવ્યક્તસ્ય વયસા ચ વ્યક્તસ્યાપિ સા ન કલ્પતે, શ્રુતસ્યાનવગમેનોભય-વિરાધનાસમ્ભવાત્ ઇતિ દ્વિતીયો ભંગઃ (૨) ।

વ્યક્ત ઔર અવ્યક્ત કે ભેદસે મુનિ દો પ્રકારકે હૈં । યહાં પર યહ ચતુર્ભંગી બનતી હૈ, જૈસે-(૧) જો શ્રુતસે ભી અવ્યક્ત હૈ ઔર વયસે ભી અવ્યક્ત હૈ, (૨) શ્રુતસે અવ્યક્ત હૈ, વયસે વ્યક્ત હૈ, (૩) શ્રુતસે જો વ્યક્ત હૈ, વયસે અવ્યક્ત હૈ, (૪) શ્રુતસે ભી વ્યક્ત હૈ ઔર વયસે ભી વ્યક્ત હૈ ।

इनमें “श्रुत और वयसे अव्यक्त है” इस प्रथम भंगका खुलासा अर्थ इस प्रकार है, श्रुतसे अव्यक्तका मतलब आगमानभिज्ञसे है-जो आगमका ज्ञाता नहीं है। वयसे अव्यक्तका अर्थ अल्पवयस्कसे है। आठ वर्षसे लेकर २५ वर्ष तकका साधु अल्पवयस्क माना गया है। इस तरह दोनों प्रकारसे जो अव्यक्त है उसके संयमकी और आत्माकी विराधना सम्भवित है। इससे एकाकी विहार इसका कल्पित नहीं है। यह प्रथम भंग है ।

શ્રુતસે અવ્યક્ત ઔર વયસે વ્યક્ત મુનિકી ભી એકચર્યા કલ્પ્ય નહીં

વ્યક્ત અને અવ્યક્તના લેહથી મુનિ બે પ્રકારના છે અહિયા એ ચતુર્ભંગી બને છે જેમ (૧) જે શ્રુતથી પણ અવ્યક્ત છે, અને વયથી પણ અવ્યક્ત છે (૨) શ્રુતથી અવ્યક્ત છે, વયથી વ્યક્ત છે, (૩) શ્રુતથી જે વ્યક્ત છે વયથી અવ્યક્ત છે, (૪) શ્રુતથી પણ વ્યક્ત છે અને વયથી પણ વ્યક્ત છે

આમા “શ્રુત અને વયથી અવ્યક્ત છે” આ પ્રથમ ભંગનો ખુલાસો આ પ્રકારે છે. શ્રુતથી અવ્યક્તનો મતલબ જે આગમનો જ્ઞાતા નથી વયથી નાની ઉમરનો છે આઠ વર્ષથી માડી ૨૫ વર્ષ સુધીનો સાધુ અલ્પ વયસ્ક માનવામા આવેલ છે, આ રીતે બન્ને પ્રકારથી જે અવ્યક્ત છે તેના સંયમની અને આત્માની વિરાધના સભવિત છે એથી એકાકી વિહાર તેના કલ્પ નથી. આ પ્રથમ ભંગ છે શ્રુતથી અવ્યક્ત અને વયથી વ્યક્ત મુનિની પણ એકચર્યા કલ્પિત

મુતેન વ્યક્તસ્ય વયસા ધ્યાન્યક્તસ્યાપિ સા ન કલ્પયે; અન્યવયમ્સ્ય સ્વ માવનાપત્યાદિના સકલજનતોપદાસ્યાપ્રત્યાત્ । પરિપદોપસર્ગાદિસદનાસમ્મવાચ ।
 એવ તૃતીયો મઙ્ગઃ (૩) ।

ઉમયયા વ્યક્તાનામદૃશ્યસમ્પન્નાના પ્રતિમાપ્રતિપન્નાનાં સ્થવિરકલ્પિકાનાં
 વા કારણવશાદેકધર્યા કલ્પયત । કારણમાયે ચ તપામપિ પ્રતિપિદૈકધર્યા, અદૃશ્યા -
 અદ્વા-સત્ય-મેધા-વહુમુતત્વ-અત્ય-અલેશિત્વ-પ્રતિ-વીર્યાત્મકા સ્થાનાદ્વાદમસ્થાનો
 હૈ । કારણ કિ શાસ્ત્ર-આગમસે અનભિજ્ઞ હોને કે કારણ વસકે ઉમય-
 સયમ ઓર આત્માકી વિરાધના સંભવિત હૈ । યહ ત્રિતીય મંગ હૈ ।

મુતસે વ્યક્ત ઓર વયસે અવ્યક્ત મુનિકી મી એકધર્યા કલ્પિત
 નહીં હૈ । કારણ કિ અવ્યવયસ્ક હોનેસે યહ મુનિ સ્વાભાવિક અપલ્લતા
 કી વજહસે સકલ જનતા કી હંસીકા પાવ્ત હો જાતા હૈ । તથા વહ પરી
 પદ ઓર ઉપસર્ગાદિકકો મી સદન નહીં કર સકતા હૈ । યહ તૃતીય મંગ હૈ ।

જો મુનિ દોનો પ્રકારસે વ્યક્ત હૈ ઓર આઠ ગુણોસે સપન્ન હૈં ડનકે
 લિયે, ઓર જો પ્રતિમાઓંકે ધારક હૈં ડનકે લિયે, તથા જો સ્થવિરકલ્પી
 હૈં કારણવશ ડનકે લિયે એકધર્યા કલ્પિત હૈ, પરન્તુ કારણ કે અમાયમેં
 સ્થવિરકલ્પીકી એકધર્યા પ્રતિપિદ્ધ હૈ । અદ્વા, સત્ય, મેધા, વહુમુતત્વ,
 શક્તિ, અલેશિત્વ, પ્રતિ ઓર વીર્ય ચ ૮ આઠ ગુણ સ્થાનાદ્વાકે આઠવેં
 સ્થાન મેં કહે હુણ હૈં । એકધર્યા મેં શુસિ સમિતિ આદિ જો સાધુ કે ગુણ
 હૈં ડનમેં દોપમાહુસ્ય કી સમાવના રહતી હૈ, જૈસે કિ પૂર્વોક્ત પરિસ્થિતિ

નથી કારણ કે શાસ્ત્ર-આગમથી જનકિશ કોવાથી તેના જન્મે સયમ અને
 અધ્યાત્મની વિરાધના સંભવિત છે આ બીજો ભાગ છે

મુતથી વ્યક્ત અને વયથી અવ્યક્ત મુનિની પણ એકધર્યા કલ્પિત નથી.
 કારણ કે નાની ઉમર કોવાથી તે મુનિ સ્વાભાવિક અપલ્લતાના કારણે સકળ
 જનતાની હાંસીને પાત્ર જની બાધ છે તથા જે અલિપ્ત અને ઉપસર્ગાદિકને પણ
 સકળ કરી શકેતા નથી આ ત્રીજો ભાગ છે

જે મુનિ જન્મે પ્રકારથી વ્યક્ત છે અને આઠ ગુણોથી સપન્ન છે તેના માટે
 અને જે પ્રતિમાઓના ધારક છે તેના માટે તથા જે સ્થવિરકલ્પી ॥ કારણવશ તેના
 માટે એકધર્યા કલ્પિત છે પરન્તુ કારણના અભાવમાં સ્થવિરકલ્પીને એકધર્યા
 પ્રતિપિદ્ધ છે. અદ્વા, સત્ય, મેધા, વહુમુતત્વ, શક્તિ, અલેશિત્વ, પ્રતિ અને
 વીર્ય આઠ ગુણ સ્થાનાજના આઠમા સ્થાનમાં કહેલ છે એકધર્યામાં, શુસિ સમિતિ
 આદિ જે સાધુના ગુણ છે તેમાં દોષ અને અધ્યાત્મની સંભાવના રહે છે તે પણ

સન્તઃ કુપ્યન્તિ=ક્રુધ્યન્તિ, અત્ર મુનિવાચકશબ્દં વિહાય માનવશબ્દેન કથનમેકાકિ-
વિહારિણો નિન્દાસ્પદત્વમ્વચનાર્થમ્; ભાષન્તે ચાહમનેન કથમપમાનિતઃ; इत्यादि ।

यद्वैवं कथयन्ति-किं परेऽप्यनुचिताचारचारिणो न सन्ति यदस्मानेवाधिक्षिप-
न्ति भवन्त इत्यादि ब्रुवन्तः संतप्यन्ते । अथवा-वचसाऽप्युक्ता एते व्यर्थजीविनः
कुक्षिम्भरा भवन्ति-इत्यादिवाक्यैरभिहिताः कुप्यन्ति, अपि-शब्दो मित्रक्रमस्तेन
कुप्यन्तीत्यनेनान्वयस्ततः अभिशपन्ति वा । कथं पुनरिमे नरकनिगोदादिपातजन-

में मुनि शब्दका प्रयोग न कर सामान्य मानव शब्दका प्रयोग किया है उससे यह सूचित होता है कि एकाकी विहार करनेवाला साधु निन्दा का पात्र है । एकाकी विहार करनेवाले साधुको जब कोई गृहस्थ-जन समझाता है तो उससे अपना अपमान समझते हैं और कहते हैं कि मैं इससे क्यों अपमानित किया जाता हूं, इस बातको विचार कर वे उस समझानेवाले पर कुपित हो उठते हैं । अथवा अपने को समझानेवाले गृहस्थजनसे वे यह कह दिया करते हैं कि इस प्रकार के अनुचित आचारका आचरण करनेवाले क्या और दूसरे नहीं हैं जो आप हमारा ही तिरस्कार कर रहे हैं, हमें ही समझा रहे हैं, इस प्रकार से भी वे संतप्त हो उठते हैं । अथवा इनका जीवन ही व्यर्थ है ये तो अपने उदर निर्वाह के लिये ही साधु हुए हैं ” इस प्रकार के वचनमात्रसे कहे जाने पर भी ये उन पर क्रोधित हो उठते हैं । “अपि” शब्द मित्र-क्रमवाला है “कुप्यन्ति” इस क्रियाके साथ उसका संबध होने से कुप्यन्ति अपि ” क्रोध भी करते हैं और “अभिशापन्ति” शाप भी देते

સામાન્ય માનવ શબ્દનો પ્રયોગ કરેલ છે એથી એ સૂચિત થાય છે કે એકાકી વિહાર કરવાવાળા સાધુ નિંદાને પાત્ર છે એકાકી વિહાર કરવાવાળા સાધુને બે કોઈ ગૃહસ્થજન સમજાવે છે તો તેનાથી તે પોતાનું અપમાન સમજે છે અને કહે છે કે આ શા માટે મારો અપમાન કરે છે આ વાતનો વિચાર કરીને તે સમજાવવા-વાળા ઉપર ક્રોધિત બને છે, અથવા તેને સમજાવનાર ગૃહસ્થજનને તે એવું સભળાવે છે કે આવા પ્રકારના અનુચિત આચારનું આચરણ કરવાવાળા શુ કોઈ બીજા નથી ? જે આપ અમારો જ તિરસ્કાર કરતા રહો છો અમને જ સમજાવો છો આ પ્રકારથી પણ તે સંતપ્ત બને છે અથવા ‘એમનું જીવન વ્યર્થ છે, એ તો પોતાના ઉદર નિર્વાહ માટે જ સાધુ થયેલ છે’-આ પ્રકારના વચન માત્ર કહેતા જ તે ક્રોધિત બની જાય છે ‘અપિ’ શબ્દ ભિન્નક્રમવાળો છે “કુપ્યન્તિ” આ ક્રિયાની સાથે તેનો સંબધ હોવાથી “કુપ્યન્તિ અપિ” ક્રોધ પણ કરે છે અને “અભિશપન્તિ” શ્રાપ પણ દે છે નરકનિગોદાદિ ગતિઓમા

કઠોપકારિણા મવન્તીત્યાહ—‘ઉક્ષતમાન’ ઇત્યાદિ ‘ઉક્ષતમાનમ્’ ઉક્ષતો માનો ગર્વો यस્ય સઠન્નવમાનઃ જાત્યાદિમાનસમ્પન્નઃ નરઃ—મનુષ્યા મહતા મોહેન—મવસ-
કપાપોદયેન મુદ્ધતિ—વિવેકરહિતો મવતિ ।

તતસ્તસ્ય કિં મવતીત્યાહ—‘સંવાષા’ ઇત્યાદિ । અજ્ઞાનતઃ—પ્રકચર્યાનનિત-
કુગતિફલમવુપ્યમાનસ્ય, અપદયત—અજ્ઞાનાન્વત્વેન તપઃસંપમારાધનશ્ચિત્સુલ્પ-
મયેષમાયસ્ય તસ્ય વદ્યઃ—અધિકા સંવાષા સંવાષયન્તિ યાસ્તા સંવાષાઃ—
વેદના પરીપહોપસર્ગજન્યા ધૂયો ધૂયઃ પુનઃ પુનઃ દુરતિક્રમા—દુઃસેન લઙ્ઘનીયા
હે । નરકનિગોદાદિ ગતિયોર્મે ઝીલકા પતન કરાનેવાલે ક્રોધકે ઘશીભૂત
કયો હોતે હે ? ઇત્યક લિપે સુત્રકાર “ઉક્ષતમાનમ્ નરો મહતા મોહેન
મુદ્ધતિ” કહતે હે અર્થાત્—જિસે ઉક્ષત માન હોતા હૈ, જાત્યાદિ મદસે
જો સંપન્ન હોતા હૈ, એમા મનુષ્ય વહે ખારી મોહસે—પ્રબલ કપાયસે
વિવેકરહિત હો જાતા હૈ । વિવેકસે ઘિહીન હોને પર વહ ‘સાધુમાનવ
પ્રકચર્યાસે કુગતિરૂપ ફલકી પ્રાપ્તિ કરતા હૈ’—ઇસ સિદ્ધાન્તસે અનભિજ્ઞ
હો જાતા હૈ ઓર સાધર્મ્યસે વહ મી નહીં માલુમ રહતા હૈ કિ તપ
ઓર સંયમ કી આરાધનાસે શિષ્ય—સુલ્પરૂપ ફલકી પ્રાપ્તિ હોતી હૈ । ઇસ
અપની મનમાની હાલતમેં વસે પરીપહ ઓર ઉપસર્ગજન્ય અનેક વેદનાઓકા
પુન પુનઃ અયંકત સામના કરના પડતા હૈ । અર્થાત્ એસે પ્રકલ્પિહારી
પરીપહ ઉપસર્ગજન્ય એસી ૨ વેદનાઓકા જાલમેં ફેસ જાતે હેં કિ જિનસે
રક્ષણ પાના ડનેં વહુત ખારી હો જાતા હૈ । ઇસલિપે શિષ્યજનોં કી ઇન વેદ

સ્વપત્ત પતન કરવાવાળા ક્રોધને વશીભૂત કેમ બને છે ? જાને ખાટે સૂત્રકાર
જ્ઞાત—ઈત્યાદિ કહે છે એવો હે જેને ઉક્ષત માન થાય છે જાતિ જાદિના મહત્તી
કે સપત્ત હોય છે એવો મનુષ્ય વહુ ખારી મોહધો—પ્રબલ કપાયન્યા ઉદયધી
વિવેકરહિત બની જાય છે વિવેક વગરના બનવાથી તે સાધુ—માનવ એકલચર્યાથી
કુગતિરૂપ ફળની પ્રાપ્તિ કરે છે—આ સિદ્ધાન્તથી અનભિજ્ઞ બની જાય છે સાધો-
સાધ તેને એ પક્ષ માલુમ નથી રહેતું કે તપ અને સત્યમની આરાધનાથી શિવ-
સુખરૂપ ફળની પ્રાપ્તિ થાય છે આ પોતાની મનમાની હાલતમાં પરિવ્ર-
જને ઉપસર્ગજન્ય અનેક વેદનાઓનો તેણે વારવાર જાણ કર સામનો કરવો પડે
છે અર્થાત્—આવા એકલવિહારી પરિવ્રજ ઉપસર્ગજન્ય એવી એવી વેદનાઓની
બળમાં ફસી જાય છે કે જેનાથી રક્ષણ મેળવવું વહુ અઘરૂ બની જાય છે જ્યા
ઠાણે શિષ્યજનોની આ વેદનાઓથી સદા રક્ષણ બની રહે આ અભિપ્રાયથી

ક્તા વિજ્ઞેયાઃ, એકચર્યાયાં સમિતિગુપ્ત્યાદિસાધુગુણેષુ દોષવાહુલ્યસમ્ભવાત્, તથાહિ મુનેરેકાકિનો વિહરતઃ સ્ત્રી-કુક્કુર-પરતીર્થિકકૃતપરામવાવિશુદ્ધમિક્ષાઘશનદોષ-નિકરો જાગર્તિ । રોગાઘવસ્થાયાં વૈયાટૃત્યાઘસમ્ભવેનાત્મસંયમવિરાધનાયાશ્ચ સમ્ભવઃ, રાગ-દ્વેષાદિવશેનૈકાકી વિચરન્ સુખકામી મુનિઃ સાગરતરંગવ્યાકુલો બહિર્નિર્ગતો મીન इव નશ્યતિ ।

ગચ્છગતસ્ય મુનેર્વહુગુણાધિગમો જાયતે, તથાહિ-સામાચાર્યાઃ સમ્યક્પાલન, શ્રુતાધ્યયનાદિના જ્ઞાનાદ્યુપાર્જનં, તન્નિશ્રયાઽન્યેષાં ગચ્છગતવાલવૃદ્ધાદીનાં સમ્યગ્-નિર્વાહઃ, સંયમે સીદતા સ્થિરીકરણાદિના જિનપ્રવચનપ્રભાવકૃત્વાત્સ્વપરતારક્ત્વ ચ ભવતીતિ ભાવ ॥ સૂ૦૧ ॥

પૂર્વોક્તમેવાર્થ પ્રકટયતિ—‘વયસા વિ’ इत्यादि ।

સંપન્ન કોઈ મુનિ એકાકી વિહાર કરતે સમય સ્ત્રી, કુક્કુર, પરતીર્થિક-જનદ્વારા પરામવિત હો સકતા હૈ । તથા અવિશુદ્ધ-અકલ્પિત મિક્ષા-દિક સે પ્રાપ્ત ભોજનકે ગ્રહણ કરનેસે આહાર સબંધી દોષોસે ભી વહ નહીં વચ્ચ સકતા હૈ । યદિ કશી કિસી રોગાદિકકા આક્રમણ ઇસકે ઉપર હો જાતા હૈ તો ઇસી દશા મેં ઇસકી કોઈ દૂસરા સજાતીય મુનિ ન હોનેસે વૈયાટૃત્તિ ભી ઠીક ર નહીં હો સકતી હૈ, ઇસી અવસ્થામેં વહ અપની આત્મા ઇવં સંયમકા વિરાધક ભી હો સકતા હૈ । રાગદ્વેષાદિકે વશસે અંકેલા વિહાર કરતા હુઆ સુખામિલાષી મુનિ સમુદ્રકી તરંગસે વ્યાકુલ હોકર ઇસ બાહિર નિકલે હુઅ મત્સ્યકી તરહ નષ્ટ હો જાતા હૈ ।

અપને સમુદાય-ગચ્છમે રહનેવાલે મુનિકે લિયે અનેક ગુણોંકા લાભ હોતા હૈ, જૈસે—મુનિસામાચારીકા અચ્છી તરહસે પાલન હોતા હૈ ।

કોઈ પૂર્વોક્ત પરિસ્થિતિ સંપન્ન મુનિ એકાકી વિહાર કરતી વખતે સ્ત્રી, કૂતરા, પરતીર્થિક જન વિગેરે દ્વારા પરામવિત થઈ શકે છે તથા અકલ્પિત-અવિશુદ્ધ મિક્ષા-દિકથી પ્રાપ્ત ભોજનનું ગ્રહણ કરવાથી આહાર-સબંધી દોષોથી પણ તે બચી શકતો નથી, જે કોઈ વખત કોઈ રોગાદિકનું આક્રમણ બન્યારે તેના ઉપર થાય તો એવી દશામાં તેની કોઈ બીજા સજાતીય મુનિ ન હોવાથી સારવાર પણ ઠીક ઠીક બની શકતી નથી આવી અવસ્થામાં તે પોતાના આત્મા તેમજ સંયમનો વિરાધક પણ બને છે રાગદ્વેષ આદિના વશથી એકલા વિહાર કરનાર સુખામિલાષી મુનિ સમુદ્રના તરંગથી વ્યાકુળ બનીને તેમથી બહાર નીકળેલા માછલા માફક વિનાશ પામે છે

પોતાના સમુદાય-ગચ્છમાં રહેવાવાળા મુનિ માટે અનેક શુભોના લાભ થાય

मूल्म्—वयसा वि पग बुद्ध्या कुप्यति माणवा, उन्नयमाणे
य नरे महया मोहेण मुञ्जइ सचाहा वहवे भुज्जो भुज्जो वुरइ
कमा अजाणओ अपासओ, एय ते मा हाउ, एय कुसलस्स दसण,
तदिद्वीए तम्मुरीए तप्पुरकारे, तस्सङ्गी तस्सिवेसणे, जय विहारी
चिचनिवाई पयनिउम्माई पलिघाहिरे पासिय पाणे गच्छिज्जासू०२।

छाया—वयसाऽप्येक उक्ता कुप्यन्ति मानवाः, उन्नतमानस नरो महता
मोहेन मुह्यति, संवाधा बहवो भूयो भूयो दुरतिक्रमा अज्ञानतोऽपश्यत, एतत्ते मा
मपदु, एतत्कुसलस्य दर्शनम्, तद्बुद्ध्या तन्मुक्त्या तत्पुरस्कारः, तस्सङ्गी तस्सिवेसनेः,
यत्तमानविहारी चित्तनिपाती पयिनिर्घ्यायी पर्यवम्मा इष्टा प्राप्तिनो गच्छेद् ॥ सू०२॥

टीका—‘वयसे’त्यादि, एके=केचन मानवाः तपःसयमाचरणविरताः
एकाकिविहारिणःमाधव, गृहस्थादिभिर्वचसाऽपि=शिक्षावचनेनापि उक्ताः=कथिता
शास्त्रादिक के अध्ययनसे ज्ञानादिकका उपार्जन होता है। उसकी निम्ना
से गच्छमें रहनेवाले अन्य पाल वृद्ध मुनिजनोंका अच्छी रीतिसे निषाह
होता है। संयममें शिक्षित बने हुए अन्य मुनिजनोंको उसमें स्थिर करने
आदिसे वह जिनप्रवचनका प्रभावक होता है, हमसे उसमें स्व और
परकी तारकता भी आती है ॥ सू०१॥

सूत्रकार “वयसा वि” इत्यादि सूत्रद्वारा पूर्वोक्त अर्थका ही
प्रदर्शन करते हैं।

मन्त्रे तप और संयमके आचरणसे रहित कितनेक एकाकी विहार
करनेवाले मानव-साधु गृहस्थजनों के ऊपर उनके द्वारा शिक्षावचनोंसे
समझाये जाने पर क्रोध करते हैं। यहाँ सूत्रकारने जो साधुजन के अर्थ

छे केम के मुनिआभावाहीनु सारी रीते पावन बाध छे शास्त्रादिना अभ्यसनधी
ज्ञानादिकनु उपान्न बाध छे तेना आभारे जम्भमा रहेवावाणा अन्य पाण वृद्ध
मुनिजनोना सारी रीते निर्वाह बाध छे संयममा शिक्षित जनेवा अन्य मुनि
जनोने तेमा स्थिर जनाववा आदिभी ते लुप्तप्रवचनोना प्रभावक जने छे
तेनाधी तेनामा स्व जने पन्नी तारकता पखु आवे छे ॥ सू. १॥

सूत्रकार वयसावि इत्यादि सूत्रद्वारा पूर्वोक्त अर्थनु प्रदर्शन करे छे
आत्मा तप जने संयमना आचरणधी रहित केटलाक जेकाही विहार कस्यावाणा
मानव-साधु वृद्धस्थजनोनी ऊपर तेजोना द्वारा शिक्षावचनोधी समझखु अपावा
अप करे छे आदि सूत्रकार के साधुजनना अर्थमा मुनि शब्दना प्रयोजन करी

સન્તઃ કુપ્યન્તિ=ક્રુધ્યન્તિ, અત્ર મુનિવાચકશબ્દં વિહાય માનવશબ્દેન કથનમેકાકિ-
વિહારિણો નિન્દાસ્પદત્વમ્ભવનાર્થમ્; ભાષ્યન્ટે ચાહમનેન કથમપમાનિતઃ; ઇત્યાદિ ।

યદ્યેવ કથયન્તિ-કિં પરેઽપ્યનુચિતાચારચારિણો ન સન્તિ યદસ્માનેવાધિક્ષિપ-
ન્તિ ભવન્ત ઇત્યાદિ વ્રુવન્તઃ સંતપ્યન્તે । અથવા-વચસાઽપ્યુક્તા એતે વ્યર્થજીવિનઃ
કુક્ષિમ્ભરા ભવન્તિ-ઇત્યાદિવાક્યૈરભિહિતાઃ કુપ્યન્તિ, અપિ-શબ્દો ભિન્નક્રમસ્તેન
કુપ્યન્તીત્યનેનાન્વયસ્તતઃ અભિશપન્તિ વા । કથં પુનરિમે નરકનિગોદાદિપાતજન-

મેં મુનિ શબ્દકા પ્રયોગ ન કર સામાન્ય માનવ શબ્દકા પ્રયોગ કિયા
હૈ ઉસસે યહ સૂચિત હોતા હૈ કિ એકાકી વિહાર કરનેવાલા સાધુ નિન્દા
કા પાત્ર હૈ । એકાકી વિહાર કરનેવાલે સાધુકો જય કોઈ ગૃહસ્થ-
જન સમજાતા હૈ તો ઉસસે અપના અપમાન સમજાતે હૈં ઓર કહતે હૈં
કિ મૈ ઇસસે ક્યોં અપમાનિત કિયા જાતા હું, ઇસ વાતકો વિચાર કર
વે ઉસ સમજાનેવાલે પર ક્રુપિત હો ઉઠતે હૈ । અથવા અપને કો સમ-
જાનેવાલે ગૃહસ્થજનસે વે યહ કહ દિયા કરતે હૈં કિ ઇસ પ્રકાર કે અનુ-
ચિત આચારકા આચરણ કરનેવાલે ક્યા ઓર દુસરે નહીં હૈં જો આપ
હમારા હી તિરસ્કાર કર રહે હૈં, હમેં હી સમજા રહે હૈં, ઇસ પ્રકાર સે મી
વે સંતપ્ત હો ઉઠતે હૈં । અથવા ઇનકા જીવન હી વ્યર્થ હૈ વે તો અપને
ઉદર નિર્વાહ કે લિયે હી સાધુ હુએ હૈ ” ઇસ પ્રકાર કે વચનમાત્રસે કહે
જાને પર મી વે ઉન પર ક્રોધિત હો ઉઠતે હૈં । “અપિ” શબ્દ ભિન્ન-
ક્રમવાલા હૈ “કુપ્યન્તિ” ઇસ ક્રિયાકે સાથ ઉસકા સબધ હોનેસે
કુપ્યન્તિ અપિ ” ક્રોધ મી કરતે હૈં ઓર “અભિશપન્તિ” શાપ મી દેતે

સામાન્ય માનવશબ્દનો પ્રયોગ કરેલ છે એથી એ સૂચિત થાય છે કે એકાકી વિહાર
કરવાવાળા સાધુ નિંદાને પાત્ર છે એકાકી વિહાર કરવાવાળા સાધુને જે કોઈ
ગૃહસ્થજન સમજાવે છે તો તેનાથી તે પોતાનું અપમાન સમજે છે અને કહે છે
કે આ શા માટે મારો અપમાન કરે છે. આ વાતનો વિચાર કરીને તે સમજાવવા-
વાળા ઉપર ક્રોધિત બને છે, અથવા તેને સમજાવનાર ગૃહસ્થજનને તે એવું સહ
જાવે છે કે આવા પ્રકારના અનુચિત આચારનું આચરણ કરવાવાળા શું કોઈ બીજા
નથી ? જે આપ અમારો જ તિરસ્કાર કરતા રહી છે અમને જ સમજાવો છો
આ પ્રકારથી પણ તે સતપ્ત બને છે અથવા ‘એમનું જીવન વ્યર્થ છે, એ
તો પોતાના ઉદર નિર્વાહ માટે જ સાધુ થયેલ છે’-આ પ્રકારના વચન માત્ર
કહેતા જ તે ક્રોધિત બની જાય છે ‘અપિ’ શબ્દ ભિન્નક્રમવાળો છે
“કુપ્યન્તિ” આ ક્રિયાની સાથ તેનો સબધ હોવાથી “કુપ્યન્તિઅપિ” ક્રોધ
પણ કરે છે અને “અભિશપન્તિ” શ્રાપ પણ દે છે નરકનિગોદાદિ ગતિઓમા

कक्रोषकारिणो भवन्तीत्याह—‘उन्नतमान’ इत्यादि ‘उन्नतमानश्च’ उन्नतो मानो गर्वो यस्य स उन्नतमानः जात्यादिमानसम्पन्नः नरः—मनुष्यो महता मोहेन—प्रयत्न-कषायोदयेन मुह्यति—विवेकरहितो भवति ।

ततस्तस्य किं भवतीत्याह—‘संघापा’ इत्यादि । अत्रान्तः—एकपर्यामनित-कुगतिफलमनुभवमानस्य, अपश्यत्—अज्ञानान्धरवेण तपःसंयमाराधनशिवसुखफल-ममेष्टमावस्य तस्य बहयाः—अधिका संघापा संघापयन्ति यास्ताः संघापाः—वेदनाः परीषदोपसर्गजन्याः श्रूयो श्रूयः पुनः पुनः दुरतिक्रमाः—दुःखेन सङ्घनीयाः हैं । नरकनिगोदादि गतिर्योर्मि जीवका पतन करानेवाले क्रोधके बशीभूत कर्पो होते हैं ? इसके लिये सूत्रकार “उन्नतमानश्च नरो महता मोहेन मुह्यति” कहते हैं अर्थात्—जिसे उन्नत मान होता है, जात्यादि मदसे जो संपन्न होता है, ऐसा मनुष्य बड़े भारी मोहसे—प्रयत्न कषायसे विवेकरहित हो जाता है । विवेकसे विहीन होने पर वह ‘साधुमानश्च एकपर्यासे कुगतिरूप फलकी प्राप्ति करता है’—इस सिद्धान्तसे अनभिज्ञ हो जाता है और माथमें उसे यह भी नहीं मालूम रहता है कि तप और संयम की आराधनासे शिव-सुखरूप फलकी प्राप्ति होती है । इस अपनी मनमानी ह्वालातमें उसे परीषद् और उपसर्गजन्य अनेक वेदनाओंका पुनः पुनः भयंकर सामना करना पड़ता है । अर्थात् ऐसे एकलबिहारी परीषद् उपसर्गजन्य ऐसी २ वेदनाओंके जालमें फँस जाते हैं कि जिनसे रक्षण पाना उन्हें बहुत भारी हो जाता है । इसलिये शिष्यजनों की इन वेद-

एवमु पतन कषयावागा क्रोधने बशीभूत कर्म जने छे ? जाने भाटे सूत्रकार उन्नत—इत्यादि कहे छे जो/वे के जेने उन्नत मान भाय छे अति आदिना महती के संपन्न होय छे जेवो मनुष्य बड़ा भारी मोहयो—अण्ड कषायना उदयशी विवेकरहित जनी जाय छे विवेक वगैरना जनवाधी ते साधु—अनव जेकपर्यासी कुगतिरूप इजनी प्राप्ति करे छे—आ सिद्धांतशी अनभिज्ञ जनी जाय छे साधो-आय तेने जे पक्ष माहुरम नहीं रहैतु के तप जने संयमनी आराधनाशी शिव-सुखरूप इजनी प्राप्ति जाय छे आ पोतानी मनमानी कलहतमा परिषद् जने उपसर्गजन्य अनेक वेदनाजोने तेखे बारबार बध कर आभने करी पड़े छे अर्थात्—आवा जेकलबिहारी परिषद् उपसर्गजन्य जेनी जेनी वेद । जेनी जलभां इसी जाय छे के जेनाशी रक्षय भिजवतु यक्षुं आइ जनी जाय छे आ हास्ते शिष्यजोनी आ वेदनाजोनी बड़ा रक्षय जनी रहै आ अभिप्रायशी

भवन्ति, सर्वमुपपाद्य शिष्य प्राह-‘एत’दित्यादि । हे शिष्य ! ते=तव एकाकि-
विहारपीडाया दुर्लङ्घनीयत्वमजानतोऽपश्यतो गुर्वाज्ञापरिज्ञापालकस्य च एतत्=पूर्वो-
क्तवाधाया दुरतिक्रमणीयत्वं मा भवतु । त्वया कदाऽप्येकचर्याप्रतिपन्नेन न भवि-
तव्यमित्युपदेशः । सुधर्मास्वामी प्राह—‘कुशलस्ये’त्यादि, कुशलस्य=भगवतो
महावीरस्य एतत्=पूर्वकथित दर्शन गुरुसन्निहितमधिवसतो गुणा एकाकिविहारिणो
दोषाश्च भवन्तीत्यादिरूपोऽभिप्रायोऽस्ति ।

નાઓંસે સદા રક્ષણ બના રહે હસ અભિપ્રાયસે સૂત્રકાર કહતે હૈં કિ-“एतत्ते
मा भवतु ” हे शिष्य ! तुम कभी भी एकाकी विहार करनेवाले मत बनना,
नहीं तो तुम्हें भी परीषद् और उपसर्गादिकोंसे उद्भूत अनेक प्राणान्तकारी
कष्टोंका सामना करना पड़ेगा । तुम इन कष्टों से अनभिज्ञ हो, तुम क्या
जानो कि एकाकी विहार करनेसे कैसे २ कष्टों और उपद्रवोंको झेलना
पड़ता है, हे शिष्य ! तुम गुरुकी आज्ञाके पालक हो, इसलिये तुम
से हमारा यही कहना है कि तुम कभी भी एकाकी विहारी न होना । ऐसे
वर्तन से ही तुम पूर्वोक्त बाधाओंसे सदासुरक्षित रहोगे । श्रीसुधर्मा
स्वामी कहते हैं, कुशल उपदेशक भगवान महावीरका यह पूर्वकथित दर्शन
-अर्थात् सिद्धान्त है । इसका अभिप्राय यह है कि गुरुके निकट रहने-
वाले शिष्योंको अनेक प्रकारसे लाभ होता है, तथा इससे विपरीत-
एकाकी विहार करनेवालों में अनेक दोष उत्पन्न होते हैं ।

સૂત્રકાર કહે છે કે—“ एतत्ते मा भवतु ” હે શિષ્ય ! તમે કદાપિ પણ એકાકી
વિહાર કરવાવાળા બનશો નહિ, નહિ તો તમારે પણ પરીષદ અને ઉપસર્ગા
દિકોથી ઉત્પન્ન અનેક પ્રાણાતકારી કષ્ટોનો સામનો કરવો પડશે તમે આ
કષ્ટના બાણુકાર ન હોવાથી તમોને શુ ખબર પડે કે એકાકી વિહાર કરવાથી
કઈ કઈ બાતના દુ.ખો અને ઉપદ્રવો ભોગવવા પડે છે હે શિષ્ય ! તમે
ગુરૂની આજ્ઞાના પાલક છો આ કારણે તમને મારૂ એ કહેવાનુ છે કે તમે કદિ
પણ એકલવિહારી બનશો નહિ આવા વર્તનથી જ તમે પૂર્વોક્ત ઉપદ્રવોથી
સદા સુરક્ષિત રહેશો, શ્રી સુધર્માસ્વામી કહે છે કુશળ ઉપદેશક ભગવાન મહાવીરનુ
આ પૂર્વકથિત દર્શન એટલે સિદ્ધાંત છે આનો અભિપ્રાય એ છે કે-ગુરૂની પાસે
રહેવાવાળા શિષ્યોને અનેક પ્રકારનો લાભ થાય છે અને તેનાથી વિપરીત એકાકી
વિહાર કરવાવાળામા અનેક દોષ ઉત્પન્ન થાય છે

एकधरस्य दोषानभिधाय सम्प्रति गुरुनिकटस्थितस्य मुने* कर्तव्यं दर्शयति—
'तद्दृष्टये' स्यादि । 'तत्संज्ञी' सज्ञानं संज्ञा तस्य=गुरोः संज्ञा उत्संज्ञा, सा
अस्यास्तीति तत्संज्ञी गुरोरिज्जित-चेष्टितश्च, तन्निवेशनः=गुरुकुलनिवासी, 'तत्पुर
स्कार' तस्य=गुरोः पुरस्कारः=विनयवैयाहृत्पादिनिखिलकार्यकरणेऽग्रेसरो मुनिः,
'तद्दृष्टया' तस्य=गुरोर्दृष्टिर्मिमायस्तया ।

यद्वा—'तद्दृष्टया' तस्मिन्=निरपघानुष्ठाने दृष्टिस्तया । 'तन्मुक्त्या'
तेन=गुरुणा कथिता मुक्ति*—सर्वविषयविरतिस्तु मुक्तिस्तया विचरेत् । सर्वदा गुरु-

एकाकी विहार करनेवालों के दोषोंका कथन कर अब सूचकार गुरुके
निकट बसनेवाले मुनिक कर्तव्योंको बतलाते हैं —

तद्दृष्टया इत्यादि—गुरुकी संज्ञा जिम्मे के है वह तत्संज्ञी है अर्थात्
गुरुके अभिप्रायों एवं चेष्टाओंको जो जाननेवाला है । जो तन्निवेशन—
गुरुका निवेशनवाला—गुरुकुलमें रहनेवाला है । तत्पुरस्कार—गुरुकी विनय
वैयापृप्ति आदि समस्त कार्यों के करनेमें जो अग्रेसर रहता है ऐसा मुनि
गुरुके अभिप्रायसे अथवा निरवय अनुष्ठानमें दृष्टिसे और तन्मुक्ति—
गुरुसे प्रतिपादित सर्वविषयविरतिरूप मुक्तिसे विचरण करे ।

भाषार्थ—गुरुसमीप में वर्तमान शिष्य ही उनकी आज्ञानुसार
संयमकी आराधनाशील बन कर सम्यग्ज्ञानादिकके लाभसे युक्त होता
है; अन्य एकलविहारी नहीं । गुरुजनके निकट निवास करनेवाला शिष्य
फलमानविहारी—फलनाको करते हुए विहार करनेका स्वभाववाला होता
है । जिसनिपाती—गुरुकी रुचिसे बलमके स्वभाववाला—आचार्य महा

એકાકી વિકાર કરવાવાળાના ઢોપેણુ કથન કરી હવે સૂચકાર ગુરુની નિકટ
વસવાળાના મુનિના કર્તવ્યોને બતાવે છે

તદ્દૃષ્ટયા ઇત્યાદિ. ગુરુની સંજ્ઞા જેને છે તે વત્સંજ્ઞી છે અર્થાત્ ગુરુના
અભિપ્રાયો અને ચેષ્ટાઓને જે બાધુનવાળા છે જે તનિવેશન-ગુરુકુલમાં રહેવાવાળા છે
ગુરુનો વિનય વૈયાપૃત્તિ આદિ સમસ્ત કાર્યો કરવામાં જે અગ્રેસર રહે, છે એવા
મુનિ ગુરુના અભિપ્રાયથી બળવા નિસ્વબ બનુપ્પામાં દૃષ્ટિથી અને ત મુક્તિ-ગુરુએ
પ્રતિપાદિત સર્વવિષયવિરતિરૂપ મુક્તિથી વિચરણ કરે.

ભાવાર્થ—ગુરુસમીપ રહેનાર શિષ્ય જ તેની આજ્ઞાનુસાર સંયમનો
આરાધનાશીલ બનીને સમ્યગ્જ્ઞાનાદિકના લાભથી મુક્ત બને છે પણ એકલ-
વિકારી નહીં, ગુરુજનની નિકટ નિવાસ કરનાર શિષ્ય બલમજો કરતા કરતા
વિકાર કરવાના સ્વભાવવાળો બને છે

પવેશનપાર્શ્વપરિવર્તનાદિકમપિ મુનીના યથાવિધિ કરણીયત્વેન વોધ્યમ્ । તત્રોપવેશનં ગુરોરગ્રે ઉત્કટાસનાદિનાડવસ્થાનમ્ , ચિરાવસ્થાનાક્ષમત્વે પૃથિવીપ્રત્યુપેક્ષણ-પરિમાર્જનપૂર્વક કુક્કુટાચરણોદાહરણેનાવયવસંકોચપ્રસારાદિકં કુર્વન મયૂરવજી-વોપમર્દનશક્તિ એકપાર્શ્વસ્થાયી મુક્તોઽપિ જાગ્રદિવ પ્રમાર્જનપૂર્વકપાર્શ્વપરિવર્તન-વિધાયી વિહરેત્ । एवं च सदा सर्वथाऽप्रमत्तो मुनिः सकला क्रिया विदधीतेति

અપને આચાર્ય કે આદેશકા પાલન કરનેવાલા હો, તથા યત્નપૂર્વક પ્રત્યેક ગમનાગમનાદિક એવ હસ્તપ્રસારણાદિક ક્રિયાઓંકા કર્તા હો । યત્નસે પ્રવૃત્તિશીલ સાધુ સકલ સાવચવ્યાપારોંસે રહિત હોતા હૈ ।

ચે સૂત્રસ્થ વિશેષણ મુનિયોંકી અન્ય ઉપવેશન-વૈઠના, શયન-સોના તથા પાર્શ્વપરિવર્તન-કરવટ ચદલના આદિ ક્રિયાઓંકે ઉપલક્ષક હૈ । મુનિજનોંકો ચે ક્રિયાળં મી યથાવિધિ હી કરના ચાહિયે-એસા સમઘ્નના ચાહિયે । ગુરુકે આગે ઉત્કટાદિક આસનસે વૈઠના ઉપવેશન હૈ । ઇસ આસનસે યદિ વહ વહુત સમય તક ન વૈઠ સકે તો પૃથિવીકો-વૈઠનેકે સ્થાનકો દેખભાલ કર ઓર રજોહરણ સે ઉસે પરિમાર્જિત કર કુક્કુટા ચરણકે ઉદાહરણસે શારીરિક અવયવોંકી સકોચ અથવા વિસ્તાર-પસારના આદિ ક્રિયાકો કરતા હુઆ વહ મયૂરકી તરહ જીવોંકી વિરાધનાસે ડરતા હુઆ એક કરવટસે સોયા હુઆ હોને પર મી જગે હુએ કી તરહ દૂસરી કરવટ લેનેકે સ્થાન કો રજોહરણાદિકસે પ્રમાર્જન-પૂજ કર ફિર કરવટ લેવે । અપ્રમત્ત મુનિ હસી પ્રકાર નિરન્તર અપની સમસ્ત ક્રિયાઓંકો કરે ।

જે પોતાના આચાર્યના આદેશનુ પાલન કરનાર હોય તથા યત્નપૂર્વક પ્રત્યેક ગમનાગમનાદિક અને હસ્તપ્રસારણાદિ ક્રિયાઓના કરવાવાળા હોય યત્નથી પ્રવૃત્તિશીલ સાધુ સકલસાવધ વ્યાપારથી રહિત હોય છે

આ સૂત્રમા મુનિઓની અન્ય ક્રિયાઓ કે જેમનુ તેમણે યથાવિધિ પાલન કરવાનુ હોય છે તે બતાવવામા આવેલ છે ઉપવેશન-ખેસવુ, શયન-સુવુ તથા પાર્શ્વપરિવર્તન-પડખુ બદલવુ આ ક્રિયાઓ મુનિજનોએ યથાવિધિ કરવી નેઈએ ગુરૂની સામે ઉકડૂ-આદિ આસનથી ખેસવુ નેઈએ એ આસનથી જો તે વધારે સમય ખેસી ન શકે તો પૃથ્વીપર-ખેસવાના સ્થાનને રૂડી રીતે નેઈ રળેહરણથી સાફ કરી શારીરિક અવયવોની કુકડાની માફક સકોચ અથવા વિસ્તાર ઇત્યાદિ અર્થાત્ પ્રસારવા આદિ ક્રિયાઓ નિયમસર કરતો થકો મોરની માફક જીવોની વિરાધનાથીડરતો રહે એક પડખે સુતેલ હોય અને બીજુ પડખુ ફેરવતા સચેત બની

मात्र । अप्रमादपूर्वक—सकलकायकारिणोऽन्तरायोदयात् यद्भवेष्वश्रयति—‘एकदे’—
 त्यादि, एकदा=कदाचित्, ‘गुणसमितस्य’ गुणेन=मुनिगुणेन अप्रमादविना
 समितः=सयुक्तो गुणसमितस्तस्य, रीयमाणस्य=सम्यग्गच्छत पूर्वोक्ताभिक्रमणादि
 विश्लेषणविशिष्टस्य मुनेः ‘कायसंस्पर्श’ कायस्य=शरीरस्य संस्पर्शः=कायस्य
 संस्पर्शम् समनुशीर्षाः=संमाप्ताः सम्पातिमाद्य एके=केचन प्राणाः=दीन्द्रियादयः
 अपटारन्ति=म्रियन्ते । अत्र मरणरूपपश्चिमावस्थाया ग्रहणात् पूर्वावस्थाया अपि
 ग्रहणं भवति; तथाहि—केचन इस्ताद्याप्तातेन संपात्यन्ते, अपरे म्रियन्ति, अन्ये
 परितप्यन्ते । अत्र च कर्मबन्धस्य वैविध्यं वर्तते, तथावा शैलेष्टीमुपगतस्य पाश्याघ-

अप्रमादपूर्वक अपनी सकल क्रियाओंको करनेवाले मुनिजनके
 अन्तरायके उदयसे जो हो जाता है उसे सूत्रकार “एकदा गुणसमि
 तस्य” इत्यादि सूत्रांशसे प्रकट करते हैं । मुनिगुण-अप्रमादसे युक्त उस
 मुनिके कदाचित् चलते समयमें, अर्थात्-जाते उठते बैठते समयमें या
 शरीरिक स्पर्शको प्राप्तकर दीन्द्रियादिक जीव विराचित हो जाते हैं अथवा
 यहां पर मरणरूप पश्चिम-अन्तिम अवस्थाके ग्रहणसे उससे पूर्व अवस्था
 का भी ग्रहण होता है, इससे यह बात इतनी और समझ लेना
 चाहिये कि कोई २ कुन्धादिक जीव उसके इस्तादिकके आघातसे
 विराचित हो जाते हैं, कोई कोई म्रान हो जाते हैं और कोई कोई
 संताप पाते हैं ।

यहां पर कर्मबन्धकी विविधता है, जैसे—शैलेष्टी अवस्थासंपन्नके

श्लेष्टरक्षादिकधी जे स्थान पुछने पछु भइले आरीते मुनिजे निरन्तर पातानी
 भधी क्रियाजो करी जेधजे

प्रमादरहित पातानी भधी क्रियाजो करना मुनिजनने कहै कहै वज्रत
 अन्तरायना उदयधी जे समय छे ते सूत्रकार “एकदा गुणसमितस्य” इत्यादि
 सूत्रांशधी प्रकट करे छे—मुनिगुण अप्रमादधी युक्त जेवा मुनिना कदाच
 समये अर्थात् आपत्ता-वर्ता उठता भेसताना समये शारीरिक स्पर्श प्राप्त
 करी दीन्द्रियादिक एव विराचित जनी जस छे अथवा अर्द्ध पर मरणरूप
 पश्चिम-अन्तिम अवस्थाना ग्रहणधी जेने जेनी पून अवस्थान पद ग्रहण पाव
 छे आधी जे पात समल बेनी जेधजे छे कहै कहै कुन्धादिक एवेनी तेना
 इस्तादिकना अठवाधी विराधना भध जस छे कहै कहै एव ज्ञान भध जस
 छे कहै कहै संताप करे छे

अर्द्धिवां कम भजननी विविधता छे जेम् छे—शैलेष्टी-अवस्था-संपन्नना

સમીપે વર્તમાનસ્તદાજ્ઞાનુસારી સંયમી સમ્યગ્જ્ઞાનાદિક લભતે નૈકાક્રિયવિહારીતિ
 હૃદયમ્, સ ચ કીદૃશો ભવેદિત્યાહ—‘યતમાનવિહારી’—ત્યાદિ । યતમાનવિહારી
 યતમાનઃ=યતના કુર્વાણ. સન્ વિહર્તુ શીલં યસ્ય સ યતમાનવિહારી, અપિ ચ
 ‘ચિત્તનિપાતી’ ચિત્ત ગુરોરભિરુચિસ્તેન નિપતિતું શીલં યસ્ય સ ચિત્તનિપાતી=
 આચાર્યામિપ્રયાનુગમનશીલઃ, एवं च ‘पथिनिर्ध्यायी’ कुत्रापि निर्गतस्य गुरोः
 પન્થાનં=માર્ગ નિર્ધ્યાતું શીલં યસ્ય સ પથિનિર્ધ્યાયી=ગુરુમાર્ગાનુગામી, ઉપલક્ષણ
 શય્યાદિપ્રલોકી ચાહારગવેપીત્યાદેરપિ बोध्यम् । अन्यच्च—‘पर्यबाह्यः’ परि=सर्वत
 આચાર્યસ્યાગ્રતઃ પૃષ્ઠતઃ સ્થિત્વા અવાહ્યઃ=અદૂરવર્તી ગુરોરવગ્રહાવસ્થાયી, प्राणान्=
 एकेन्द्रियादिजीवान् दृष्ट्वा=वीक्ष्य तदुपमर्दनं परिहरन् गच्छेत्=गुर्वाज्ञायां विचरेत्॥२॥

રાજકે અભિપ્રાય અનુસાર પ્રવૃત્તિશીલ હોતા હૈ । પથિનિર્ધ્યાયી—કહી
 મી બાહર ગયે હુએ ગુરુ મહારાજ કે ધ્યાન—અવલોકન કરનેકે શીલવાલા—
 उनके आगमनकी प्रतीक्षावाला—गुरुके मार्गपर चलनेवाला, ઉપલક્ષણસે
 उनकी शय्या—आसन आदि का निरीक्षण करनेवाला, उनके लिये आहा-
 रादिककी गवेषणा करनेवाला इत्यादि बातोंका भी संग्रह कर लेना
 चाहिये । तथा—पर्यबाह्यः—आचार्य महाराजके आगे और पीछे स्थित हो
 कर भी जो दूरवर्ती न हो—गुरुप्रदत्त नियमादिकोंका पालक हो अर्थात्
 गुरुदेव जो भी पचक्काण देवें उसे प्रसन्नचित्तसे ग्रहण करनेवाला हो ।
 ऐसा मुनि ही एकेन्द्रियादिक जीवों को आत्मौपम्येन देखकर—जान कर
 उनके उपमर्दनसे विरक्त हो गुरुकी आज्ञामें रहनेयोग्य है । उनकी
 आज्ञानुसार अपनी प्रत्येक चर्चा करनेवाला मुनि ही उनके निकट
 रह सकता है ॥ सू० २ ॥

શુરૂની રૂચિથી આલવાના સ્વભાવવાળા આચાર્ય મહારાજના અભિપ્રાય
 અનુસાર પ્રવૃત્તિશીલ બને છે કેાઈ પણ સ્થળે બહાર ગયેલા શુરૂના આગમનનું
 ધ્યાન, અવલોકન કરવાની વૃત્તિવાળા તેના આગમનની પ્રતીક્ષાવાળા, શુરૂના માર્ગ
 પર આલવાવાળા, ઉપલક્ષણથી તેની શૈયા—આસન આદિનું નિરીક્ષણ કરવાવાળા
 શુરૂ માટે આહારાદિકની ગવેષણા કરવાવાળા ઇત્યાદિ વાતોનેા પણ સંગ્રહ કરી
 લેવો જોઈએ. તથા પર્યબાહ્યઃ—આચાર્ય મહારાજની આગળ અને પાછળ સ્થિત
 બનીને પણ દૂરવર્તી ન હોય અને શુરૂ—પ્રદત્ત—નિયમાદિકોના પાલક હોય અર્થાત્
 શુરૂદેવ જે પણ પચ્ચઆણુ દે તેને પ્રસન્નચિત્તથી ગ્રહણ કરવાવાળા હોય એવા મુનિ
 જ એકેન્દ્રિયાદિક જીવોને આત્મૌપમ્યથી દેખીને—અર્થાત્ આત્મસમાન બાણીને તેના
 ઉપમર્દનથી વિરક્ત હોય શુરૂની આજ્ઞામા રહેવાયોગ્ય હોય છે એમની આજ્ઞાનુસાર
 પોતાની પ્રત્યેક ચર્ચા કરવાવાળા મુનિ જ તેમની સમીપ રહી શકે છે. ॥ સૂ૦ ૨ ॥

अपि चान्यदपि दर्शयति—‘ स अभिक्कममाणे ’ इत्यादि ।

मूलम्—से अभिक्कममाणे पडिक्कममाणे सकुचमाणे पसारमाणे विणिवट्टमाणे सपल्लिमज्जमाणे, एगया गुणसमियस्स रीयओ कायसफास समणुच्चिन्ना एगतिया पाणा उदायति, इहलोगवे यणविज्जावट्ठिय ज आउट्ठीकय कम्म त परिन्नाय विवेगमेइ, एव से अप्पमाएण विवेगं किट्ठइ वेयवी ॥ सू० ३ ॥

छाया—सोऽभिक्रामन् प्रतिक्रामन् संकुचन् प्रसारयन् विनिवर्तमान संपरिभ्रमन्, एकदा शुभसमित्तस्य रीयमाणस्य कार्यसंस्पर्शमनुचीर्णा एके प्राप्तिनोऽप्यब्रान्ति, इहलोकवेदनवेद्यापत्तितं यद् आउट्ठीकृतं कर्म तत्परिष्ठाप विवेकमेति, एवं तस्याभमादेन विवेकं कीर्तयति वेदयित् ॥ सू० ३ ॥

टीका—‘ सोऽभिक्राम ’ इत्यादि, सः=पूर्वोक्त आचार्यदेवकारी मुनिः, ‘ अभिक्रामन् ’=अभि=साम्यमुख्येन क्रामन्=भ्रमन्, प्रतिक्रामन्=प्रत्यागच्छन्, संकुचन्=पाणिपादस्त्रीनां संकोचं कुर्वन् प्रसारयन्=तानेव संकुचितानवयवान् विस्तारयन्, विनिवर्तमानः=सकलसाधनक्रियाभ्यो वि=विशेष्ये निवर्तमानः=परिवर्तमानः संपरिभ्रमन्=सं=सम्यक्तया परि=सर्वतःभ्रमन्=प्राप्याद्यवयवान् वेदन्यासस्यान च रजोहरणादिना परिशोधयन् शुक्कुल संवसत् । एतेषां विशेषणानामुपसङ्गमत्तयो

इसी विषयसे लगती हुई और भी बात कहते हैं “ से अभिक्कमाणे ” इत्यादि ।

पूर्वोक्त रीतिसे आचार्यके आदेशका पालन करनेवाला मुनि जाते समय, आते समय, हस्त और पादादिकों के फैलाते एवं उनका संकोच करते समय सकल-साधन क्रियाओं से अच्छी तरह रहित होता हुआ तथा हस्त-पादादिक अवयवोंका एवं अपने खठने बैठने आदिके स्थानका रजोहरणादिकसे परिमार्जन करता हुआ शुक्कुलमें रहनेके लायक होता है । अर्थात्-शुक्कुलमें निवास यही मुनि कर सकता है जो

आ विषयने सजती गीला पणु नाव के छे छे “ से अभिक्कममाणे ” इत्यादि.

पूर्वोक्त रीतिसे आचार्यना आदेशनु पालन करवावाणा मुनि जबाना समये आववाणा समये काय जाने पत्र श्लेषता जाने जेने सकोच करता समये सकल साधन क्रियाओंकी सारी रीते रहित गनी तेमज काय पत्र आदि अवयवोंनु जाने पीताना मिसवा ठकवाना स्थाननु रजोहरणादिककी परिमार्जन करता शुद्ध गुणमा रहेवाने लायक जाने छे अर्थात्-शुक्कुलमें निवास ते मुनि करी शके छे

પવેશનપાર્શ્વપરિવર્તનાદિકમપિ મુનીના યથાવિધિ કરણીયત્વેન વોઘ્યમ્ । તત્રોપવેશનં ગુરોરગ્રે ઉત્કટાસનાદિનાડવસ્થાનમ્ , ચિરાવસ્થાનાક્ષમત્વે પૃથિવીપ્રત્યુપેક્ષણ-પરિમાર્જનપૂર્વકં કુક્કુટાચરણોદાહરણેનાવ્યવસંકોચપ્રસારાદિકં કુર્વન્ મયૂરવજ્રી-વોપમર્દનશક્તિ એકપાર્શ્વસ્થાયી મુપ્તોડપિ જાગ્રદિવ પ્રમાર્જનપૂર્વકપાર્શ્વપરિવર્તન-વિધાયી વિહરેત્ । એવ ચ સદા સર્વથાડપ્રમત્તો મુનિઃ સકલાં ક્રિયાં વિદ્રધીતેતિ

અપને આચાર્ય કે આદેશકા પાલન કરનેવાલા હો, તથા યત્નપૂર્વક પ્રત્યેક ગમનાગમનાદિક એવ હસ્તપ્રસારણાદિક ક્રિયાઓંકા કર્તા હો । યત્નસે પ્રવૃત્તિશીલ સાધુ સકલ સાવધવ્યાપારોંસે રહિત હોતા હૈ ।

યે સૂત્રસ્થ વિશેષણ મુનિયોંકી અન્ય ઉપવેશન-વૈઠના, શયન-સોના તથા પાર્શ્વપરિવર્તન-કરવટ વદલના આદિ ક્રિયાઓંકે ઉપલક્ષક હૈ । મુનિજનોંકો યે ક્રિયાં મી યથાવિધિ હી કરના યાહિયે-એસા સમઝના યાહિયે । ગુરુકે આગે ઉત્કટાદિક આસનસે વૈઠના ઉપવેશન હૈ । ઇસ આસનસે યદિ વહ વહુત સમય તક ન વૈઠ સકે તો પૃથિવીકો-વૈઠનેકે સ્થાનકો દેખમાલ કર ઓર રજોહરણ સે ડસે પરિમાર્જિત કર કુક્કુટાચરણકે ઉદાહરણસે શારીરિક અવયવોંકી સંકોચ અથવા વિસ્તાર-પ્રસારના આદિ ક્રિયાકો કરતા હુઆ વહ મયૂરકી તરહ જીવોંકી વિરાધનાસે ડરતા હુઆ એક કરવટસે સોયા હુઆ હોને પર મી જગે હુએ કી તરહ દૂસરી કરવટ લેનેકે સ્થાન કો રજોહરણાદિકસે પ્રમાર્જન-પૂજ કર ફિર કરવટ લેવે । અપ્રમત્ત મુનિ ઇસી પ્રકાર નિરન્તર અપની સમસ્ત ક્રિયાઓંકો કરે ।

જે પોતાના આચાર્યના આદેશનુ પાલન કરનાર હોય તથા યત્નપૂર્વક પ્રત્યેક ગમનાગમનાદિક અને હસ્તપ્રસારણાદિ ક્રિયાઓના કરવાવાળા હોય યત્નથી પ્રવૃત્તિશીલ સાધુ સકલસાવધ વ્યાપારોથી રહિત હોય છે

આ સૂત્રમા મુનિઓની અન્ય ક્રિયાઓ કે જેમનુ તેમણે યથાવિધિ પાલન કરવાનુ હોય છે તે બતાવવામા આવેલ છે ઉપવેશન-એસવુ, શયન-સુવુ તથા પાર્શ્વપરિવર્તન-પડખુ બદલવુ આ ક્રિયાઓ મુનિઓનોએ યથાવિધિ કરવી જોઈએ ગુરૂની સામે ઉકડૂ-આદિ આસનથી એસવુ જોઈએ એ આસનથી જો તે વધારે સમય જોસી ન શકે તો પૃથ્વીપર-એસવાના સ્થાનને રૂડી રીતે જોઈ રજોહરણથી સાફ કરી શારીરિક અવયવોની કુકડાની માફક સંકોચ અથવા વિસ્તાર ઇલાદિ અર્થાત્ પ્રસારવા આદિ ક્રિયાઓ નિયમસર કરતો થકો મોરની માફક જીવોની વિરાધનાથી ડરતો રહે. એક પડખે સુતેલ હોય અને બીજુ પડખુ ફેરવતા સચેત બની

માવઃ। અપ્રમાદપૂર્વક-સકલકાર્યકારિણોઽન્તરાયોદયાત્ યદ્વત્તથશ્ચયતિ-‘પ્રકલ્પે’-
ત્યાદિ, પ્રકલ્પા-કલ્પાવિત્, ‘ગુણસમિતસ્ય’ ગુણેન=મુનિગુણેન અપ્રમાદાદિના
સમિતઃ=સંયુતો ગુણસમિતરત્તસ્ય, રીયમાનસ્ય=સમ્યગ્ગચ્છત પૂર્ણોક્તાભિક્રમખ્યાદિ
વિશ્લેષણવિશિષ્ટસ્ય મુનેઃ ‘કાયસંસ્પર્શ’ કાયસ્ય=શરીરસ્ય સંસ્પર્શ=કાયસસ્ય
સ્પર્શસ્ત્મ સમન્વૃત્તીર્વા-સમાપ્તાઃ સમ્પાતિમાદય એકે=કેચન પ્રાણાઃ=ક્રીન્દ્રિયાદયઃ
અપ્રદાયન્તિ=મ્રિયન્તે । અથ મરણરૂપપશ્ચિમાવસ્થાયા પ્રવ્રણાત પૂર્વાવસ્થાયા અપિ
પ્રવ્રણં મનતિ; તથાહિ-કેચન હસ્તાધાયાતેન સંપાત્યન્તે, અપરે સ્માયન્તિ, અન્યે
પરિતપ્યન્તે । અથ ચ કર્મબન્ધસ્ય વૈવિધ્યં વર્તતે, તથાવા શૈલેષ્ટીમુપગતસ્ય પાપ્યાધ-

અપ્રમાદપૂર્વક અપની સકલ ક્રિયાઓનો કરનેવાલે મુનિજનને
અન્તરાયને ઉદયસે જો હો જાતા હૈં ઉસે સૂચકાર “પ્રકલ્પા ગુણસમિ
તસ્ય” હત્યાદિ સૂચાંશસે પ્રકટ કરતે હૈં । મુનિગુણ-અપ્રમાદસે યુક્ત હસ
મુનિકે કલ્પાવિત્ બલતે સમયમેં, અર્થાત્-જાતે ઉઠતે બેઠતે સમયમેં શા-
રીરિક સ્પર્શનો પ્રાસકર ક્રીન્દ્રિયાવિક જીવ વિરાખિત હો જાતે હૈં અથવા
પહાં પર મરણરૂપ પશ્ચિમ-અન્તિમ અવસ્થાકે પ્રવ્રણસે ડમસે પૂર્વ અવસ્થા
કા મી પ્રવ્રણ હોતા હૈ, હસસે પહ બાલ હતની ઔર સમસ્ત કેના
બાહિયે કિ કોઈ ૨ કુન્ધ્યાવિક જીવ ઉસકે હસ્તાવિકકે આઘાતસે
વિરાખિત હો જાતે હૈં, કોઈ કોઈ મ્હાન હો જાતે હૈં ઔર કોઈ કોઈ
સંતાપ પાતે હૈં ।

યહાં પર કર્મબન્ધની વિવિધતા હૈ, જેસે-શૈલેષ્ટી અવસ્થાસંપન્નકે
સ્નેહશ્વાદિભીં જો સ્થાન પુલ્લને પહાણુ બઠલે, આ રીતે મુનિકે નિરન્તર પોતાની
બધી ક્રિયાઓ કરવી બેઠજો.

પ્રમાદરહિત પોતાની બધી ક્રિયાઓ કરનાર મુનિજનને ઠોઠ ઠોઠ વખત
અન્તરાયના ઉદયથી જો થાય છે તે સૂચકાર “પ્રકલ્પા ગુણસમિતસ્ય” ઇત્યાદિ
સૂચાસથી પ્રગટ કરે છે-મુનિગુણ અપ્રમાદથી યુક્ત જોવા મુનિના કાશ્ય બાલતા
સમયે અર્થાત્ આવર્તા-જર્તા ઉઠર્તા બેસતાના સમયે શારીરિક સ્પર્શ પ્રાપ્ત
કરી ક્રીન્દ્રિયાવિક હવ વિરાખિત બની જાય છે અથવા અર્ધ પર મરણરૂપ
પશ્ચિમ-અન્તિમ અવસ્થાના પ્રકલ્પથી જોને જોની પૂર્વ અવસ્થાત્ ૧જી પ્રકલ્પ થાય
છે આથી જો વાત સમજી લેવી બેઠજો કે ઠોઠ ઠોઠ કુન્ધ્યાવિક હવેાની તેના
હસ્તાવિકના આઘાતથી વિરાખના થઈ જાય છે ઠોઠ ઠોઠ હવ આન થઈ જાય
છે ઠોઠ ઠોઠ સંતાપ કરે છે

અર્ધિયાં કર્મબન્ધની વિવિધતા છે જેમ કે-શૈલેષ્ટી-અવસ્થા-સંપન્નના

પાવયવસંસ્પર્શાત્ પ્રાપ્ત્યુપપાતાદી મધન્યત ઉત્કૃષ્ટતથા કર્મવન્ધઃ પૂર્વોક્ત પથ
વિશેષિતતરઃ । અર્થ કર્મવન્ધસ્તસ્મિન્નૈવ મથે છીયત્ત્વમિતિ સૂત્રેણ દર્શયતિ—‘ઈદં’—
‘ઈત્યાદિ’—પ્રતેયાં યત્ કર્મ સદિદ્દલોકવેદનવેદ્યાપતિમ્—ઈદં=અસ્મિન્નેવ સ્લોકે=મથે
વેદનં=મોગઃ દ્વિલોકવેદનમ્, તથા-વેદ્યમ્—મકરણાનુરોધાત્ પ્રતિકૂલવેદનીયં દુઃસમ્
=ઈદંલોકવેદનવેદ્યમ્ તથા આપતિર્ત્વં=તત્કારણત્વેન સમાયાસમ્=ઈદંલોકવેદનવેદ્યા
પતિતં ધર્તમાનમશીયમોગાનુબન્ધિ મથતીત્યર્થઃ । આકુટીકૃતકર્મણિ યત્કર્મણ્યં તદ્
દર્શયતિ—‘જં’ ઇત્યાદિ, મુનિ યત્કર્મ આકુટીકૃતમ્ આકુટીકૃતપ્રામાણ્યેન ઇચ્છયે
ત્યર્થઃ, કૃત=ચિરિતં કર્મ આકુટીકૃતમ્, પ્રાણિધાતન સતિચ્છયા કાયસંઘટ્ટનાદિના
થ જાતં યત્કર્મ જ્ઞાનાવરણીયાદિ તજ્જનકં વા પ્રાણાતિપાતાદિકપકર્મ તદ્ સર્વં
પરિણાય=રૂપરિણયા જ્ઞાતા પ્રત્યાભ્યાસપરિણયા પરિણય ચ વિભેકં=રૂપપ્રકારપ્રા
પચિચાન્યતમપ્રશ્નરૂપં ચદ્વા વિભેકં પુણ્યમાય પુનરકરણરૂપમ્ એતિ=પ્રાપ્નોતિ, આકુ
ટીકૃતકર્મણાડપિ તપસા છદ્ધેન પુનર્વતારોપણેન તથા ધોરતરતપ સંયમવૈયાહૃત્યાદિ
સમારાધનેન ચ તસ્મિન્નેવ મથે કર્મવન્ધાવનયન મથતીતિ માથ । વિભેકમાન
મુનિસ્તથા સમાચરતિ યેન કર્મવન્ધો ન મથતીતિ તાત્પર્યમ્ ।

ઔર ઉત્કૃષ્ટ પૂર્વોક્ત સ્થિતિબાલા હોતા હૈ । પરંતુ અપ્રમત્ત મુનિસે પ્રમત્ત
મુનિકે વિશેષતર હોતા હૈ । હસ કર્મવન્ધકા હમી મથમેં ક્ષય હો
સક્તા હૈ । હસીકો સૂત્રસે દિશ્વલાતે હૈ—‘ઈદં’ ઇત્યાદિ—

હનકા જો પૂર્વોક્ત કર્મવન્ધ હૈ, યહ હલ્લોકવેદનવેદ્યાપતિત હૈ ।
અર્થાત્—હમી મથમેં મોગમેં આકર નષ્ટ હોનબાલા હોતા હૈ । આકુટિકા
સે કિયે ગયે કર્મમેં કયા કરના ચાહિયે, યહ ‘જં’ ઇત્યાદિસે દિશ્વલાતે હૈ ।
પ્રાણિધાતસે, પ્રાણિધાતકી ઇચ્છાસે તથા કાયસંઘટ્ટન આદિસે જો જ્ઞાના
વરણીયાદિ કર્મ ઉત્પન્ન હુપ તથા ઉનકે જનક પ્રાણાતિપાતાદિ કર્મ ઉત્પન્ન
હુપ તથા ઉનકે જનક પ્રાણાતિપાતાદિ કર્મ આચરિત હુપ, ઉનકો રૂપરિ

અથ તેા જેથી જેના કમલ ધ અવન્ધ અને ઉત્કૃષ્ટ પૂર્વોક્ત સ્થિતિવાળા અને
છે પરંતુ અપ્રમત્ત મુનિ કરતાં પ્રમત્ત મુનિને વિશેષતર કમલ ધ વાય છે
આ કર્મવન્ધને આ જ કાવમા કલ મર્ધ શકે છે અને સુમથી બતાવેલ છે.
‘ઈદં’ ઇત્યાદિ

આને એ પૂર્વોક્ત કર્મવન્ધ છે તે ઇદંલોકવેદનવેદ્યા-પતિત છે અર્થાત્
આ જ કાવમા કોમલવા અને નષ્ટ થવાવાળો કાય છે આકુટિકાથી કસયેલા
કર્મ મા શુ કરતું બોધ્યે આ “જં” ઇત્યાદિથી બતાવેલું છે—પ્રાણિધાતથી
પ્રાણિધાતની ઇચ્છાથી, તથા કાયસંઘટ્ટન વગેરેથી એ જ્ઞાનવરણીયાદિ કર્મ ઉત્પન્ન

કર્મવિવેકમાહ—‘એવમિત્યાદિ, વેદવિત્ત્વ મ્યમમયપરસમયજ્ઞતીર્થક્રો ગણધર શ્વર્તદશધરો વા એવં=પૂર્વોક્તપ્રકારેણ વશ્યમાણપ્રકારેણ વા અપ્રમાદેન=પ્રમાદવર્જનેન દશપ્રકારપ્રાયશ્ચિત્તેષુ કસ્યચન સમ્યગાચરણેનેત્યર્થઃ, તસ્ય કર્મણો વિવેક પૃથગ્ભાવમભાવં વા કીર્તયતિ=ઋથયતિ ॥ મુ. ૩ ॥

જ્ઞાસે જાનકર ઔર પ્રત્યાખ્યાન પરિજ્ઞાસે પરિહાર કર મુનિ વિવેકકો અર્થાત્ દશવિધ પ્રાયશ્ચિત્તોમેં કિસી ણકકો ગ્રહણ કરકે અથવા પૂર્વોક્ત આચરણ ફિર કમી ન કરના, ઇસ પ્રકાર વિવેકકો પ્રાપ્ત કરતા હૈ ।

જાન વૃદ્ધ કર જિન્હોને પ્રાણિઘાત આદિ કિયા, ણેસે મુનિકા મી કર્મબન્ધ તપસે, હેદસે, દુહારા દીક્ષા દેનેસે તથા ઘોરતર તપ સયમ વેચાવચ્ચ આદિકે સમારાધનસે ઉસી ભવમે નષ્ટ હો જાના હૈ । સમીકા તાત્પર્ય યહ હૈ કિ વિવેકવાન મુનિકો વૈસા આચરણ કરના ચાહિયે, જિસસે કર્મબન્ધ ન હો, પ્રાણિયોં કી હિંસાસે, ડચ્છાસે ઔર શારીરિક સંયદન આદિસે ઉત્પન્ન હુઆ જો જ્ઞાનાવરણીયાદિક કર્મ હૈ, અથવા ઇસ કર્મકા ઉત્પાદક જો પ્રાણાતિપાતાદિકરૂપ કર્મ હૈ, ડન સવકા જ્ઞપરિજ્ઞાસે જાન કર ઔર પ્રત્યાખ્યાન પરિજ્ઞાસે પરિત્યાગ કર દશ પ્રકારકે પ્રાયશ્ચિત્તોમેં સે એક પ્રાયશ્ચિત્તરૂપ જો વિવેક નામકા પ્રાયશ્ચિત્ત હૈ ડસકા જો પાલન કરતા હૈ વહ વિવેકવાન હૈ । અથવા-વિવેક શબ્દકા અર્થ-પૃથગ્ભાવ મી હૈ । પૃથગ્ભાવકા અર્થ હૈ-જિસ કાર્યકા ત્યાગ કર દિયા હૈ ડસકા

થાય તથા તેના જનક પ્રાણાતિપાતાદિ કર્મ આચરિત અને તેને જ-પરિજ્ઞાથી વિચારી અને પ્રત્યાખ્યાન પરિજ્ઞાથી પરિહાર કરી મુનિ વિવેકને અર્થાત્ દશવિધ પ્રાયશ્ચિત્તમાના કોઈ એકને ગ્રહણ કરી અથવા પૂર્વોક્ત આચરણ કરી કદિ ન કરવાનું આ પ્રકારના વિવેકને પ્રાપ્ત કરે છે

સમજવા છતાં જોણે પ્રાણઘાત ઇત્યાદિ કર્યું એવા મુનિના કર્મબન્ધ, તપથી, હેદથી, ખીણ વખત દીક્ષા દેવાથી તથા ઘોરતર તપ, સયમ, વેચાવચ્ચ આદિના સમારાધનથી એ જ ભવમા નાશ પામે છે આનુ તાત્પર્ય એ છે કે વિવેકવાન મુનિએ એવું આચરણ કરવું જોઈએ જેથી કર્મબન્ધ ન થાય પ્રાણીઓની હિંસાથી, પ્રાણિઘાતની ઇચ્છાથી અને શારીરિક સંયદન આદિથી ઉત્પન્ન થયેલ જે જ્ઞાનાવરણીયાદિક કર્મ છે અથવા આ કર્મના ઉત્પાદક જે પ્રાણાતિપાતાદિકરૂપ કર્મ છે, એ બધાને જ-પરિજ્ઞાથી ભણી અને પ્રત્યાખ્યાન પરિજ્ઞાથી પરિત્યાગ કરી દસ પ્રકારના પ્રાયશ્ચિત્તમાથી એક પ્રાયશ્ચિત્તરૂપ જે વિવેક નામનું પ્રાયશ્ચિત્ત છે એનું જે પાલન કરે છે તે વિવેકવાન છે અથવા વિવેક શબ્દનો અર્થ-પૃથગ્ભાવ પણ છે “પૃથગ્ભાવ”નો અર્થ છે-જે કાર્યનો ત્યાગ કર્યો છે તે ફરીથી ન કરવું

કીદશ પુનરપમાદી મયતીતિ દર્શયતિ 'સે પમૂયદસી' રૂપાદિ ।

મૂલ્મ—સે પમૂયદસી પમૂયપરિભ્રાણે ઉત્તસતે સમિય સહિય
સયાજય દદ્દટ્ટુ ધિપ્પદિવેણ્ઠ અપ્પાણ—કિમેસ જણો કરિસ્સહ,
પસ સે પરમારામો જાઓ લોગસિ ફરથીઓ, મુણિણો હુ યય પ
ધેહયં, ઉચ્ચાહિજમાણે ગામધમ્મેહિં, અવિ નિચ્ચલાસય, અવિ
ઓમોયરિય કુજ્ઞા, અવિ ઉદ્દ ઠાણ ઠાહજ્ઞા, અવિ ગામાણુ
ગામ દૂહજ્ઞા, અવિ આહારં વુર્હિહિદિજ્ઞા, અવિ ચય રૂપીસુ
મણ, પુઠ્ઠવ દંઢા પચ્છા ફાસા પુઠ્ઠવ ફાસા પચ્છા દંઢા, રૂચ્ચેય
કલ્હાસગકરા મયતિ, પઢિલેહાય આગમિત્તા આણવિજ્ઞા અણા
સેવણાય ત્તિવેમિ, સે નો કાહિય નો પાસણિય નો મામય ણો
કયકિરિય વહ્ઠુત્તે અજ્ઞપ્પસવુદે પરિવજ્ઞય સયા પાવ, યય
મોણ સમણુવાસિજ્ઞાસિ—ત્તિવેમિ ॥ સૂ. ૪ ॥

જાયા—સ પ્રમૂતદર્શી પ્રમૂતપરિભ્રાણ ઉપશાન્ત સમિતઃ સરિતઃ સદા યતઃ રૂપા વિ
પતિવેદયત્યાત્માને—કિમય યન કરિપ્યતિ, યય ત્તય પરમારામો જાઓ છાકે સ્થિયા,
મુનિના હુ યત્તયવેદિતય, ઉચ્ચાધ્યમાનો ગ્રામધર્મઃ, અપિ નિર્વિલાસકઃ, અપ્યવમૌઠ્યી
હૃયાદ, અપ્યુર્ધ્વ સ્થાને તિષ્ઠેત્, અપિ ગ્રામાનુગ્રામં દ્રવત્, અપ્યાહારં વ્યવચિન્ધાત્,
અપિ ત્યજેત્ સ્ત્રીપુ મનઃ, પૂર્વ દંષ્ટા પશ્યાત્સ્પર્શઃ પૂર્વ સ્પર્શઃ પશ્યાદ્દંષ્ટાઃ,
ફિર નહીં કરના । હમ ચિલેક પ્રાસ મુનિ અપની પ્રવૃત્તિ હમ પ્રકારકી
રસ્વતા હૈ કિ જિસસે ઠસે નવીન કર્મના થય નહીં હોતા હૈ । હસ પ્રકાર
સ્વ—પર સિદ્ધાન્તવેદી તીર્થંકર, ગણપર, અથવા ચતુર્વિંશત્પૂર્વકે પાઠી મુત
કેવલી મગધામ પૂર્વોક્ત પ્રકારસે અથવા અધ્યમાણ પ્રકારસે યહી કહતે
હૈ કિ જો મુનિ દશ પ્રકારકે પ્રાયશ્ચિત્તકા મી સમ્યક્ રીતિસે સેવન
કરતા હૈ યહ અપને કર્મોકે અમાયકા—હનૈ અપની આત્માસે મિત્ર કરને
કા કર્તા હોતા હૈ ॥ સૂ. ૩ ॥

અ વિવેક પ્રાસ મુનિ પોતાની પ્રવૃત્તિ જોવા પ્રકારની યજે છે કે જેથી જોને
નવીન કર્મના અ થયો નથી. આ રીતે સ્વ—પર શિદ્ધાન્તવેદી તીર્થંકર અથ
પર અને ચતુર્વિંશત્પૂર્વના પાઠી મુતકેવલી મગધામ પૂર્વોક્ત પ્રકારથી અને વશ્યમાય
પ્રકારથી જો જ કહે છે કે જે મુનિ દશ પ્રકારના પ્રાયશ્ચિત્તમાંથી કેઈ જોક પ્રાય
શ્ચિત્તનુ પથ સમ્યક્ રીતિથી સેવન કરે છે તે પોતાના કર્મના અભાવને જોટશે
તેને પોતાના આત્માથી બુદ્ધ કરવાનો કર્તા અને છે. ॥ સૂ. ૩ ॥

इत्येते कलहासङ्गकरा भवन्ति; प्रत्युपेक्ष्याऽऽगम्याऽऽज्ञापयेदनासेवनयेति ब्रवीमि,
स नो कथकः नो प्राश्निकः नो कृतक्रियो वाग्गुप्तोऽध्यात्मसदृतः परिवर्जयेत् सदा
पापम्, एतन्मौनं समनुवासयेदिति ब्रवीमि ॥ मृ० ४ ॥

टीका—‘स प्रभूतदर्शी’ त्यादि, सः=संयमी ‘प्रभूतदर्शी’ प्रभूत=भूत-
भविष्यद्वर्तमानकालीनं प्रमादविषयकं द्रष्टुं शील यस्य स प्रभूतदर्शी—उपार्जितकर्मणः
कालत्रयेऽप्यवश्योपभोग्यत्वेन दर्शनशील इत्यर्थः, किंच ‘प्रभूतपरिज्ञानः’ प्रभूत=
प्रचुरं परिज्ञानं प्राणिपरिपालनोपायस्य ससारापवर्गहेतोश्च सम्यग्ज्ञान यस्य स
प्रभूतपरिज्ञानः—हेयोपादेयपरिज्ञानकुशलः, किंच उपशान्तः=इन्द्रियनोऽन्द्रियोप-
शमेन कपायोपशमेन च शान्तिमुपयातः, समितः=ईर्यादिपञ्चसमितिभिः संयुक्तः,
यद्वा—‘समितः’ सम्=सम्यग् रत्नत्रयम्—इतः=प्राप्तः । सहितः=ज्ञानादि-

मुनि किस प्रकार અપ્રમાદી હોતા હૈ, હસ વાતકો કહતે હૈ “ સે
પમ્બૂદસી ” ઇત્યાદિ—

भूत, भविष्यत् और वर्तमानकाल सम्बन्धी प्रमादके विषयको देखने
का जिसका स्वभाव होता है वह प्रभूतदर्शी है—अर्थात्—उपार्जित कर्म
कालत्रयमें भी अन्यथा नहीं होता है, उसका फल अवश्य भोगना पड़ता
है—इस प्रकारकी निस्संदेह दृष्टिसे युक्त है, प्रभूतज्ञानी है—अर्थात्—प्राणि
गणकी रक्षाके उपाय, ससार एव अपवर्गके कारणों का जिसे सम्यक्ज्ञान
है, हेय और उपादेय तत्त्वका जिसे वास्तविक भान है, वह प्रभूतज्ञानी है।
जो उपशान्त है, इन्द्रिय और नोइन्द्रिय—मनके उपशम तथा कपाय के
उपशमसे जो शान्तिको प्राप्त हो चुका है, ईर्या आदिक पांच समितियों
से जो युक्त है, अथवा—सम्—सम्यक् रत्नत्रयकी जिसे प्राप्ति है, सहित—

કેવા પ્રકારનો મુનિ અપ્રમાદી હોય છે આ વાતને ઝહે છે “ સે પમ્બૂદસી ” ઇત્યાદિ

ભૂત ભવિષ્ય અને વર્તમાનકાળ સંબંધી પ્રમાદના વિષયને દેખવાનો જેને
સ્વભાવ છે તે પ્રભૂતદર્શી છે અર્થાત્ ઉપાર્જિત કર્મ કાલત્રયના પણ નિષ્કળ
બનતુ નથી તેથી તેનુ જ્ઞાન અવશ્ય ભોગવનુ પડે છે આ પ્રકારની અસદ્દિગ્ધ
દૃષ્ટિથી યુક્ત છે પ્રભૂતજ્ઞાની છે—પ્રાણિગણની રક્ષાનો ઉપાય, સ સાર અને મોક્ષના
કારણોનુ જેને સમ્યક્ જ્ઞાન છે, હેય અને ઉપાદેય તત્ત્વનુ જેને વાસ્તવિક ભાન છે
તે પ્રભૂતજ્ઞાની છે જે ઉપશાન્ત છે—ઇન્દ્રિય અને નોઇન્દ્રિય—મનના ઉપશમથી
તથા કપાયના ઉપશમથી જે શાન્તિને પ્રાપ્ત કરી શકેલ છે, ઇર્યા આદિક પાંચ
સમિતિઓથી જે યુક્ત છે, અથવા સમ્—સમ્યક્ રત્નત્રયની જેને પ્રાપ્તિ છે, જ્ઞાના

પચાચારે સંપન્ન, एवं 'सदायत' सदा=सर्वदा यत.=यतनावान् प्रमादरहितः ।
एतादृश मुनिर्गुस्तमीपस्थितः कर्मणोऽपनयनं करोति ।

तस्य योपिदादिपरीपहोपनिपाते यद्विधेयं तदर्थयति—'दृष्ट्वा'—इत्यादि,
पूर्वोक्तविशेषणविशिष्टाः प्रमादबर्जिता मुनिः आत्मानं=स्वं दृष्ट्वा उपसर्गविधान-तत्परं
स्त्रीजन विमतिवदयति=समालोचयति, किं समालोचयतीत्याह—'किमेव' इत्यादि,
एव स्त्रीजनः=स्त्रीजनः प्रमादकारं किं करिष्यति? न किमपीत्यर्थः, यद्वा—रोगामिम
बादौ एव स्त्रीजनो मम तस्यामयस्यायां न श्रमणाय वा श्रमणाय वा
स्यत्तुः किं करिष्यति=न किमपीत्यर्थः । स्वीकृतपञ्चमहाप्रतस्य विमलकुलस्य

જ્ઞાનાદિક પાંચ આચારો સે જો સંપન્ન હૈ, તથા સદા જો યતનાવાન હૈ,
પ્રમાદરહિત હૈ, એસા મુનિ શુરુએ સમીપ રહ કર કર્મોંકા નાશ કરતા હૈ ।

इम मुनिके स्त्री आदि द्वारा परीपह तथा उपसर्ग उपस्थित किये
जाने पर इसे जो विधेय है, वह 'सूत्रकार "दृष्ट्वा-इत्यादि" पदोंद्वारा
स्पष्ट करते हैं—वे कहते हैं कि इन पूर्वोक्त विशेषणोंसे युक्त एवं अग्र
मादी वह मुनि जब इसके उपर स्त्री आदिकों के द्वारा उपसर्ग आदि
किये जाते हैं—अथवा उपसर्ग करने में तत्पर यह जब उन्हें देखता है, तो
विचारता है कि यह स्त्री मेरा क्या अपकार करेगी, कुछ भी नहीं ।
अथवा जिस समय मेरे कोई रोग बगैरहका उपद्रव होगा उस अवस्था
में भी यह उस रोगसे न मुझे बचा सकती है और न मुझे कोई सहारा
ही दे सकती है । मैं पंचमहाप्रतों का घारी हूँ । मैं इस मुनिकुलका तिल-

દિક પાંચ આચારથી જે સક્રિય છે તથા જે યતનાવાન છે—પ્રમાદરહિત છે
એવો મુનિ શુરુઆ સમીપ સ્ત્રીને કર્મોંના નાશ કરે છે

સ્ત્રી આદિ દ્વારા પરીપહ તથા ઉપસર્ગ થતા, આ મુનિનું જે કર્તવ્ય
છે તેને સૂત્રકાર દ્રષ્ટ્વા-इत्यादि પદોદ્વાસ સ્પષ્ટ કરે છે તે કહે
છે કે—આવા પૂર્વોક્ત વિશેષણોથી સુક્ત બને આપ્રમાદી તે મુનિ જ્યારે તેના
ઉપર સ્ત્રી વિગેરે આદિ દ્વારા ઉપસર્ગ વગેરે કરવામા આવે છે અથવા ઉપસર્ગ
કરવામા તત્પર તે જ્યારે તેને જોએ છે, તો તે વિચારે છે કે આ સ્ત્રીજન માથે
શું અપકાર કરશે? કાંઈ પણ નહીં. અને જે સમય મને રોગ વગેરેનો ઉપદ્રવ
થશે એ અવસ્થામાં પણ તે સ્ત્રી એ રોગથી બચાવી શકશે નહિ અને મને
સાથ પણ આપી શકશે નહિ. હું પાવ-મહાનવધારી છું, હું આ મુનિકુલનો તિલ-

ભૂતસ્ય તિરસ્કૃતવિષયસુખસ્પૃહસ્યાવધૂતજીવનમનોરથસ્ય મમ કિમેષ સ્ત્રીજનઃ
કરિષ્યતીતિ સતતં સમાલોચયતીત્યર્થઃ । એપઃ=સ્ત્રીજનસ્તુ તસ્ય પ્રમાદિનઃ પરમારામઃ
પરમાનન્દસ્થાન જાતોઽસ્તિ, કિન્તુ ન મમાપ્રમાદિનઃ, યતો હિ સ્ત્રિયઃ=નાર્યઃ લોકે
=વિષયિલોકે મોહોત્પાદિન્યો ભવન્તિ, ન સંયતલોકે ।

एतत्कथनं न स्वमतिकल्पितमिति दर्शयति—‘मुनिने’ इत्यादि, एतत्=सर्व
पूर्वोक्त वक्ष्यमाणमुपदेशवचनं च ‘हु’ अवधारणे, मुनिना=तीर्थङ्करादिना प्रवेदित
=द्वादशविधपर्पदि प्ररूपितम् ।

કમૂત હું । વૈષયિક સ્પૃહાકા મૈં અન્તકર ચુકા હું, અપને જીવનકે પહિલે
અત્રત અવસ્થાકે સમસ્ત મનોરથોં કો ત્યાગ ચુકા હું, મૈં જબ ઇસ પરિ-
સ્થિતિમેં ઉપસ્થિત હું તો અબ ઇસ સ્ત્રીદ્વારા કૃત ઉપસર્ગોંકી મૈં અપેક્ષા
હી કયા કરૂ । ઇસમેં કયા શક્તિ હૈ જો મુઝે લાખ ઉપસર્ગ કરને પર મી
અપને પથસે વિચલિત કર સકે ? હાં ! યહ તો ઉન્હેં હી હર તરહસે અપને
લક્ષ્યસે બ્રષ્ટ કર સકતી હૈ જો પ્રમાદમય આનંદકે ઇચ્છુક હૈ—પ્રમાદી
હૈ, મુઝ અપ્રમાદી કો નહીં । ક્યોં કિ સ્ત્રિયોંકા વશ વિષયીલોકમેં કાર્ય
કારી હોતા હૈ, સયમીલોકમેં નહીં ।

इस कथनमें स्वमतिकी कल्पनाका निषेध करते हुए सूत्रकार कहते
हैं “मुनिना” इत्यादि । यह समस्त पूर्वोक्त कथन तथा आगे और
भी जो कुछ कहा जानेवाला है वह सब तीर्थङ्कर गणधरादि द्वारा ही
उपदिष्ट है । यहां “हु” शब्द अवधारण अर्थमे है । उन्होंने यह सब

ભૂત છુ, વૈષયિક સ્પૃહાનેા મે ત્યાગ કરેલ છે — પોતાના જીવનના પહેલાના
અત્રત અવસ્થાના સમસ્ત મનોરથોના ત્યાગ કરી ચુક્યો છુ, હું ન્યારે આ
પરિસ્થિતિમા ઉપસ્થિત છુ તો હવે આ સ્ત્રીજનદ્વારા અપાતા ઉપસર્ગોની હું
અપેક્ષા કેમ સખી શકુ ? તેનામા શુ શક્તિ છે જે મને લાખ ઉપસર્ગ કવવા
છતા પણ મારા પોતાના પદથી વિચલિત કરી શકે ? હા ! એ તો એને જ
લક્ષ્યથી બ્રષ્ટ કરી શકે છે કે જે પ્રમાદમય આનંદનો ઇચ્છિનાર — પ્રમાદી છે મારા
જેવા અપ્રમાદીને નહીં કેમ કે સ્ત્રીઓને વશ વિષયી લોકો જ બનતા હોય છે
સયમી એને વશ બનતા નથી

આ વાતમા સ્વમતિની કલ્પનાનેા નિષેધ કરીને સૂત્રકાર કહે છે “મુનિના”
ઇત્યાદિ આ આશુએ પૂર્વોક્ત કથન અને હવે પછી કહેવામા આવનાર કથન
આ બધુ તીર્થક ગણધર આદિ દ્વારા જ ઉપદિષ્ટ છે અહિં “હુ” શબ્દ

तमेव वाच्यमाणोपदेशमाह—‘उद्वाध्यमान’ इत्यादि, हे शिष्य ! यदि मुनि
‘ग्रामधर्मैः’ ग्रामाणाम्=इन्द्रियोसमूहानां धर्माः=स्वमानाः=ग्रामधर्मैरतैर्ग्रामधर्मै
स्वस्वविषयसमासकस्वभावैः ‘उद्वाध्यमानः’ उद्=प्राबल्येन वाध्यमान=परिपी
क्यमानो मवेचदा निर्बलाशक्त ‘निर्बलं=प्रणीतरसयस्वरहितपुराणकुस्त्यादिकम्
भस्मस्तकमिभितं यल्लक्षणकादिनिष्पादितपर्युषितकरपट्टिकादिकं वा अभाति=सुकृते
यः स निर्बलाशक्तः, नीरसाशमेन ग्रामधर्मस्यावश्योपक्रमसम्भवात्, ‘अपि’ शब्दः
सम्मादनायाम् । निर्बलाशमेऽपि यदि न मोहोपशमस्तत किं कुर्यादित्याह—‘अप्य
मौर्दव्य’=मित्यादि, जीवनयात्रानिर्वाहय केवम् अवमौर्दव्यम्=कनोदरिक्तपो

विषय १२ प्रकारकी परिषद् में प्रतिपादित किया है। वाच्यमाण विषयको
स्पष्ट करनेके लिये सूत्रकार कहते हैं “उद्वाध्यमान” इत्यादि। हे
शिष्य ! यदि कदाचित् मुनि ग्रामधर्म-अपने २ विषयों में समासक्त
स्वभाववाली इन्द्रियोंसे-मबलरूपसे वाधित किया जाय तो उस समय
उसे चाहिये कि वह निर्बल-इन्द्रियों को उत्तेजित नहीं करनेवाले रस
यस्वरहित ऐसे पुरानी कुलपी आदि भक्षक तथा लव्हीछाछसे मिश्रित
वाल्लवणा आदिसे निष्पादित ऐसे पर्युषित (ठण्डावासी) करपट्टिका
(रोटी) आदिका भोजन करे। नीरस भोजनके करनेसे ग्राम धर्मका
अवश्य ही उपशमन होता है। “अपि” शब्द संभावना में है। नीरस
भोजन करने पर भी यदि ग्रामधर्मका उपशमन न हो-मोहकी शांति न
हो तो क्या क्या करे ? इस प्रकारकी आशंका का समाधान करनेके
निमित्त सूत्रकार “अप्यमौर्दव्य कुर्यात्” कहते हैं। जीवनयात्राके

अवधारण अत्र मा हे तेजोमे आ समणे विषय १२ प्रकारकी परिषद् में
प्रतिपादित है। हे वाच्यमाण विषयने रूपसे कथा भाटे सूत्रकार है।
“उद्वाध्यमान” इत्यादि हे शिष्य ! कदाचित् मुनि ग्रामधर्म-पोतपोताना
विषयों में समासक्त स्वभाववाली इन्द्रियोंकी प्रवण रति आधित कथाभा आये
तो मे समणे तेजो मेहमे हे ते निजण इन्द्रियोने उत्तेजित नहीं
करवावाण रसयस्वरहित जेवा पुरातन कण्ठी आदि भस्मन्तु तथा आटी छत्रापी
मिश्रित वाल्लवणा नजेरेपी निष्पादित जेवा कड़ी-वासी घटपी आदिनु कोचन
करे, नीरस कोचन करवापी जे ग्रामधर्मनु उपशम न वने-मोहनी शान्ति न थाय
तो शु शु करे ? आ प्रहास्ती शकानु समाधान करवा निमित्त सूत्रकार “अप्य
मौर्दव्य कुर्यात्” है। अर्थात्-जीवनयात्राया निर्वाह भाटे आधुवन जेवी दालतमां

હસ્તજિહ્વાચ્છેદાદિરૂપા દળ્ડવિશેષા જાયન્તે । અન્યદપ્યાહ—‘સ્ત્યેત’ इत्यादि, इति=पूर्वोक्तदण्डस्पर्शादिप्राप्त्या एते=स्त्रीसङ्गसम्भवाः कामाः कलहाऽऽसङ्गका भवन्ति । स्त्रीहेतोर्वह्नां नृपादीना युद्धादिना विनाशस्य सर्वजनवेद्यत्वात् । यद्वा-स्त्रीनिमित्तं क्रोध-रागयोः सङ्गावस्य सर्वजनप्रसिद्धत्वात् । उपलक्षणान्मान-मायादिकारकत्वमपि बोध्यम् । ततः किं विधेयमित्याह—प्रत्युपेक्ष्येत्यादि, प्रत्युपेक्ष्य=स्त्रीप्रसङ्गस्य सर्वथाऽत्र परत्र च दण्डस्पर्शादिकारकत्वं कलहाऽऽसङ्गकार-कत्वमपि विचार्य व्यागम्य=तत्सर्वं बुद्ध्वा अनासेवनया=तदासेवनपरिवर्जनेन स्वात्मानं परं वा आज्ञापयेत्=तत्त्यागे नियोजयेत् इति भगवद्वाक्यमनुसृत्य तदा-

इस लोकमें हाथ, जीभ आदिका छेदन आदि स्वरूप अनेक-दण्ड-विशेष कामियों को सहना पड़ता है । इस प्रकार पूर्वोक्त दण्ड और स्पर्श आदिकी प्राप्तिसे स्त्रीप्रसङ्गसे समुद्भूत ये काम कलहके आसंगके उत्पन्न करनेवाले होते हैं । यह बात सर्वजन को मालूम ही है कि स्त्रीके निमित्तसे परस्पर अनेक राजाओं में युद्ध छिड़े हैं और वे उनके विनाश के हेतु हुए हैं ।

अथवा-स्त्रीप्राप्तिके लिये क्रोध और रागका सङ्गाव भी प्राणियोंमें सर्व-जन प्रसिद्ध ही है । उपलक्षणसे यह बात भी समझ लेनी चाहिये कि वे स्त्रीसङ्गसे उत्पन्न काम, मान और माया आदि कषायोंके भी उत्पादक होते हैं । इसलिये इस स्त्रीप्रसङ्गको इस लोक और परलोकमें सर्व प्रकारसे दण्ड एवं स्पर्श आदिका करनेवाला तथा कलहके आसङ्गका उत्पादक विचार कर और इस सबको जानकर मुनिको चाहिये कि वह अपनी आत्माको उसके सेवन करनेके सर्वथा त्यागसे युक्त करे, तथा परको

સહન કરવા પડે છે આ પ્રકારે પૂર્વોક્ત દ હ સ્પર્શ આદિની પ્રાપ્તિથી સ્ત્રીપ્રસંગથી ઉત્પન્ન આ કામ, કલહના આસંગને ઉત્પન્ન કરનાર બને છે આ વાત સર્વ જનને માલુમ છે સ્ત્રીના નિમિત્તથી પરસ્પર અનેક રાજાઓમા યુદ્ધ થયા છે અને તેઓ એના વિનાશના હેતુ બન્યા છે અથવા સ્ત્રી પ્રાપ્તિ માટે ક્રોધ અને રાગનો સદ્ભાવ પણ પ્રાણીઓમા સર્વજનપ્રસિદ્ધ છે ઉપલક્ષણથી આ વાત પણ સમજી લેવી જોઈએ કે સ્ત્રીસંગથી કામ માન અને માયા ઇત્યાદિ કષાયો પણ ઉદ્ભવે છે. આ માટે આ સ્ત્રીપ્રસંગને આ લોક અને પરલોકમા સર્વ પ્રકારથી દ હ અને સ્પર્શ આદિના કરવાવાળા તેમજ કલહના આસંગનો ઉત્પાદક છે એવો વિચાર કરી આ બધાને જાણીને મુનિએ જોઈએ કે પોતાના આત્માને તેના

સદ્દા દુ'સ્કરા' કસદાઃસસક્રરાથેતિ તસ્યરિહારં ચ સર્વં કયમામિ। બન્યદપિ પરિત્યાગસાધનમાહ 'સ' રૂપાદિ, સઃ=સ્રોસક્રમનિતનરકનિગોદાવિકદુકપ્તસામિ-
ક્ત્વેન ઉપરિહારી મુનિર્નો કયકઃ સ્ત્રીણાં જાતિકુલનેપધ્યશૃંગારાદિકમાકારકો ન મથેદ્રહસિ તસ્યે ધર્માદિકમપિ ન કથયેદિતિ માયઃ। એવં નો પ્રાથ્મિકઃ પ્રર્ષં કરોતીતિ પ્રાથ્મિકઃ=ચિત્ત્યં ન કિમપિ પૃષ્ઠેષુ, તથા દ્વિ-કીદશસ્તે પતિઃ? ત્વાં સમ્માનયતિ ન વા? કથં ત્વં સિન્નવ પ્રતિમાસિ? ત્વ કા સન્તતિઃ પુત્રો વા પુત્રી? પરિણીતા પુત્રી ન વા? કસ્મૈ વૃષ્ટા? વાસ્યસિ ન વા? સ કીદશઃ? પાર્મિકો ધનિ-

મી ઉસકે સેવનકા સર્વથા ત્યાગ કરાવે। હસ પ્રકાર મગધાનકે વચન અનુસાર સ્ત્રીપ્રસંગકો કુલપ્રવદ એવં કલહાસંગકારક જામ કર મૈને યે સ્વ હસકે પરિત્યાગ કા પ્રકાર કહા હૈ। મુનિકો હતના ઔર મી કરના બાહિયે કિ બહ કમી મી ઉસકી જાતિકી, ઉસકે કુલકી, ઉસકે વેવ-નૃપાકી તથા શૃંગાર આવિકી ચર્ચા નહીં કરે ઔર ન ઉસકે હિપ પક્ષતમે ધર્માદિક કા ઉપદેશ હી દે। ન સ્ત્રીસે હસકે વિષયકી કોઈ બાત કરે અર્થાત્-“તુમ્હારા પતિ કેસા હૈ? તુમ્હારા બહ આદર કરતા હૈ યા નહીં? આજ તુમ રદાસ સી ક્યોં માલૂમ દેતી હો? તુમ્હારે ક્યા સંતાન હૈ પુત્ર હૈ યા પુત્રી? તુમને પુત્રીકા વિચાહ કર દિયા હૈ કિ નહીં? પદિ કર દિયા હૈ તો કિમકે સાથ કિયા હૈ? યદિ નહીં કિયા હૈ તો ક્યોં નહીં કિયા? તુમ્હારા જમાઈ કેસા હૈ-વર્માત્મા હૈ? ધનિક હૈ? યા નહીં?” રૂપાદિ રૂપસે પૂછનેસે મુનિકો અપને ચારિત્રમે રૂપણ

સેવનથી સદા રૂપ સખે અને બીજાઓને પણ એના ત્યાગ માગે દોષે અને સર્વથા એને ત્યાગ કરાવે. આ પ્રકારે કામવાનના વચન અનુસાર સ્ત્રી-પ્રસંગને કુલપ્રવદ એવં કલહ આસંગકારક બાહીને એ જાના પરિત્યાગને પ્રકાર કહેલ છે મુનિકે એટલું જો પણ કરવું એઈએ કે તે કથાએ તેની જાતિની, એના કુળની તેમજ શૃંગારાદિકની ચર્ચા ન કરે અને તેને એકાન્તમાં સ્ત્રી ધર્માદિક ઉપદેશ પણ ન આપે. તેમજ સ્ત્રી સાથે તેના વિષયની કોઈ વાત ન કરે. અર્થાત્-તમારો પતિ કેવો છે? તમારો એ આદર કરે છે કે નહિ? જાને તમે ઉદાસ કેમ કેળાવ છે? તમારે શું સંતાન છે, પુત્ર છે કે પુત્રી? તમે પુત્રીના વિચાહ કરી રીધો છે કે નહિ? ક્યોં છે તો કેની સાથે ક્યોં છે? નથી ક્યોં તો કેમ નથી ક્યોં? તમારો જમાઈ અને તેનું કુટુંબ કેમ છે? ખર્માત્મા છે? ધનિક છે? કે કેમ. ઉત્પાદિ રીતે પુછવાથી મુનિને પોતાના ચારિત્રમાં રૂપણ આવે છે

વિશેષં કુર્યાત્, તતોડપીન્દ્રિયગ્રામાણામનુપશમે ઝર્ધ્વં સ્થાન તિષ્ઠેત્=વાહુ ઝર્ધ્વીકૃત્ય કાયોત્સર્ગેણ શીતોષ્ણાદિરૂપામાતાપનાં કુર્યાદિત્યર્થઃ । રાત્રીં દિવસેડપિ ચૈકદ્વિત્રિ-તુર્યામક્રમેણ તત્ર તિષ્ઠેદિત્યાશયઃ, તેનાપ્યનુપશમે ‘ગ્રામાનુગ્રામ’ ગ્રામો યતો વિહરતિ, અનુગ્રામો યત્ર વિહરતિ તં=ગ્રામાનુગ્રામ ગ્રામાદ્ગ્રામાન્તર દ્રવેત્=વિહરેત્-તદા ન તત્ર તિષ્ઠેત્, એવં કરણેડપ્યનુપશમે આહારમપિ વ્યુન્નિઙ્ઘ્યાત્ । કિંવહુના યેન કે-નોપાયેન મરણમપિ કુર્યાત્ કિન્તુ સ્ત્રીષુ મનો ન નિદધ્યાત્ । તદેવાહ-“અવિ ચપ્ ઇત્થીસુ મણં ” અપિ ત્યજેત્ સ્ત્રીષુ મનઃ, સ્ત્રીવિપયે ગતં મનો નિવારયેત્ । ન તત્ર મનો નિદધ્યાદિત્યર્થઃ । સ્ત્રીસંજ્ઞિના યદ્ ભવતિ તદાહ-‘પૂર્વ’મિત્યાદિ, પૂર્વ=

નિર્વાહ કે લિયે સાધુજન એસી હાલતમેં ઝનોદરી-ભૂખસે કમ અત્પ આહાર લેવે । યહ વાહ્યતપ હૈ । ઇતના કરને પર ખી યદિ ગ્રામધર્મકી શાંતિ ન હો તો એસી પરિસ્થિતિમેં “ ઝર્ધ્વં સ્થાન તિષ્ઠેત્ ” હાર્યોકો ઝંચા કરકે કાયોત્સર્ગપૂર્વક શીત ઓર ડળ્ણાદિરૂપ આતાપનયોગ ધારણ કરે । રાત્રિમેં ખી એક દો ત્રીન ઓર ચાર પ્રહર ક્રમસે કાયોત્સર્ગ કરે । ઇતને પર ખી ગ્રામધર્મ શાન્ત ન હો તો ગ્રામાનુગ્રામ વિચરણ કરે । જહાં ઠહરા હુઆ હૈ વહ ગ્રામ, જહાં જાના હોતા હૈ વહ અનુગ્રામ હૈ । ડસ સમય વહાં ન ઠહરે । ફિર ખી ગ્રામધર્મ શાંત ન હો તો એસી દગામેં આહાર કા ત્યાગ કર દેવે ।

અધિક કયા કહા જાય, જિસ ઉપાયસે વૈવયિક અભિલાષા ઉત્પન્ન ન હો સકે, મોહકા ઉપશમન હો એસા હી ઉપાય કરતે રહના चाहिये । પરન્તુ સ્ત્રિયોં કી ઓર મનકો નહીં લગાના चाहिये । સ્ત્રીસંગ કરનેવાલોં કે

ઉનોદરી-ભૂખથી ઓછો અત્પ આહાર લે આ બાહ્ય તપ છે આટલું કરવા છતાં પણ જો ગ્રામધર્મની શાન્તિ ન થાય તો એવી પરિસ્થિતિમા “ ઝર્ધ્વં સ્થાન તિષ્ઠેત્ ” હોયોને ઉચા કરી કાયોત્સર્ગપૂર્વક શીતળ અને ગરમીરૂપ આતાપન યોગ ધારણ કરે રાત્રિના તથા દિવસના પણ એક જો ત્રણ અને ચાર પ્રહર ક્રમથી કાયોત્સર્ગ કરે આટલું કરવા છતાં પણ જો ગ્રામધર્મ શાન્ત ન બને તો ગામેગામ વિચરતા રહે ન્યા પોતે રોકાયેલ છે તે ગ્રામ છે ન્યા જલુ છે તે અનુગ્રામ છે ત્યાં એ રોકાય નહિ છતાં પણ જો ગ્રામધર્મ શાન્ત ન થાય તો એવી હશામા આહારનો ત્યાગ કરી દે વધુ શુ કહેવાતુ હોય । જે ઉપાયથી વૈવયિક અભિલાષા ઉત્પન્ન ન થાય-મોહતુ ઉપ-શમ બને એવોજ ઉપાય કરતા રહેવુ જોઈએ પરંતુ સ્ત્રીઓ તરફ મનને લાગવા દેવુ ન જોઈએ. સ્ત્રીસંગ કરવાવાળા માટે જે હુ ખો ભોગવવા પડે છે સૂત્રકાં

सद्भासपूर्व दण्डा'—तदासद्भास्य चिरसुपुष्पीकरणायार्थार्जनतत्परस्य कृप्यादिसामय-
व्यापारपरस्य तिरस्कृतभुत्विपासादेरप्यत्र लोके दुःखविशेषरूपा, पश्चात्—उप-
मागानन्तरं स्वर्गाः—तदासंयतनमन्यकर्मविपाकेन नरकादियातनाकारका दुःखविशेषा
भवन्ति, यद्वा—पूर्वं तत्प्राप्तये दण्डाः—यष्ट्यादिप्रहाररूपाः पश्चात्—तदनन्तरं राम-
दण्डादिननितावयवादिच्छन्नसमुत्पन्नदुःखविशेषाः, एवं पृथ स्पर्शाः—आग्नेया
दिना स्पर्शाः—आपातसुम्नविशेषाः पश्चात् दण्डाः—परम मरकपातादिरूपा इह च
लिये जिन कर्णों को भोगना पड़ता है सूत्रकार उनका वर्णन “पृथदण्डा”
इत्यादि पदोंसे करते हैं—श्रीसगको चिरकाल तक पुरिपुष्ट करनेके
लिये कामीजन अर्थके उपार्जन करनेमें तत्पर होते हैं—अर्थ समझहील
होते हैं—कृपी आदि सायव्यव्यापारों में लगते हैं। मूष्य प्याम आदिकी
वाषाणं सहन करते हैं। मतलय—सायव्य व्यापारजन्य और भूय प्याम
आदि जन्य अनेक “दण्ड” दुःखविशेषोंको ये भोगते हैं। पश्चात्—श्री
सेवन से उत्पन्न कर्मक विपाकसे नरकादिकों की यातनाप्रदायक दुःख
विशेषोंका उन्हें सामना करना पड़ता है।

अथवा—प्रथम श्रीप्राप्तिके लिये लकड़ी आदिके अनक प्रहाररूप
दण्डोंको और पीछे राजाकी तरफसे दण्डरूपमें प्राप्त अवयव आदिका
जो छदन है उस जन्य अनेक कष्ट कामियोंको भोगना पड़ता है। इसी
प्रकार प्रथम श्री आदिके आलिङ्गनसे “स्पर्शा” आपानसुम्नविशेष-
काम्यनिक आनंद, पश्चात् परमयमें नरकादि गतियोंमें गमनरूप त्वं

जेनु पर्वन “पृथदण्डा” छत्यादि पदोंकी वृत्ति है श्रीजनने लांभा अभव
मुभी परिपुष्ट इत्या भा? कामीजन धन भोगवयाभा तत्पर रहे छे—अथ स भक्षणीव
बने छे जेवी आदि आपव व्यापारोभा लांजे छे भूय तरस आदिनी
विटनलुको भजन वृत्ति भतउल आपवव्यापारजन्य अने भूय तरस आदि
जन्य अने “दण्ड” दुःख वगैरेने को भाजवे छे यही श्रीसेवनधी उत्पन्न
कमना विपाकभा नरकादिकोनी शान्तप्राप्त दुःखविशेषाने तेले अभवे इत्यो पदे
छे अने प्रथम श्रीप्राप्ति भा? लांभीको तेमव तेन गेवा जीव प्रपारे तेमव
पाउगधी शान्तना तरसभा इ इधमा भगनार ल धन क्षारागार छत्यादि अने
प्रकारन दुःख कामीको कोभव पडे छे अथ प्रकारे प्रथम श्री आदिनां आति
भनधी “स्पर्शा” इत्यनिक आनंद अने यही परमवम नरकादिभतिभेमा
भभनप को कोभा दाथ, एव वगैरेनु छेन गेवा अने इ इ कामीको

વિશેષં કુર્યાત્, તતોડપીન્દ્રિયગ્રામાણામનુપશમે ઝર્ધ્વં સ્થાન તિષ્ઠેત્=વાહ ઝર્ધ્વીકૃત્ય કાયોત્સર્ગેણ શીતોષ્ણાદિરૂપામાતાપનાં કુર્યાદિત્યર્થઃ । રાત્રો દિવસેડપિ ચૈકદ્વિત્રિવ-તુર્યામક્રમેણ તત્ર તિષ્ઠેદિત્યાગયઃ, તેનાપ્યનુપશમે ‘ગ્રામાનુગ્રામ’ ગ્રામો યતો વિહરતિ, અનુગ્રામો યત્ર વિહરતિ ત=ગ્રામાનુગ્રામ ગ્રામાદ્ગ્રામાન્તર દ્રવેત્=વિહરેત્-તદા ન તત્ર તિષ્ઠેત્, એવં કરણેડપ્યનુપશમે આહારમપિ વ્યુન્નિહ્ન્યાત્ । કિંવહુના યેન કે-નોપાયેન મરણમપિ કુર્યાત્ કિન્તુ સ્ત્રીષુ મનો ન નિદધ્યાત્ । તદેવાહ-“અવિ ચણ્ ઇત્થીસુ મણ ” અપિ ત્યજેત્ સ્ત્રીષુ મનઃ, સ્ત્રીવિપયે ગતં મનો નિવારયેત્ । ન તત્ર મનો નિદધ્યાદિત્યર્થઃ । સ્ત્રીસંજ્ઞિનાં યદ્ ભવતિ તદાહ-‘પૂર્વ’મિત્યાદિ, પૂર્વ=

નિર્વાહ કે લિયે સાધુજન એસી હાલતમેં ઝનોદરી-ભૂલ્લસે કમ અલ્પ આહાર લેવે । યહ વાહ્યતપ હૈ । ઇતના કરને પર ભી યદિ ગ્રામધર્મકી શાંતિ ન હો તો એસી પરિસ્થિતિમેં “ઝર્ધ્વં સ્થાન તિષ્ઠેત્” હાથોંકો ઝ્વા કરકે કાયોત્સર્ગપૂર્વક શીત ઔર ઉષ્ણાદિરૂપ આનાપનયોગ ધારણ કરે । રાત્રિમેં ભી એક દો ત્રીન ઔર ચાર પ્રહર ક્રમસે કાયોત્સર્ગ કરે । ઇતને પર ભી ગ્રામધર્મ શાન્ત ન હો તો ગ્રામાનુગ્રામ વિચરણ કરે । જહાં ઠહરા હુઆ હૈ વહ ગ્રામ, જહાં જાના હોતા હૈ વહ અનુગ્રામ હૈ । ઉસ સમય વહાં ન ઠહરે । ફિર ભી ગ્રામધર્મ શાંત ન હો તો એસી દગામેં આહાર કા ત્યાગ કર દેવે ।

અધિક કયા કહા જાય, જિસ ઉપાયસે વૈષયિક અભિલાષા ઉત્પન્ન ન હો સકે, મોહકા ઉપશમન હો એસા હી ઉપાય કરતે રહના ચાહિયે । પરન્તુ સ્ત્રિયોં કી ઓર મનકો નહી લગાના ચાહિયે । સ્ત્રીસંગ કરનેવાલોં કે

ઉનોદરી-ભૂપથી ઓછો અલ્પ આહાર લે આ બાહ્ય તપ છે આટલુ કરવા છતાં પણ જો ગ્રામધર્મની શાન્તિ ન થાય તો એવી પરિસ્થિતિમા “ઝર્ધ્વં સ્થાન તિષ્ઠેત્” હાથેને ઉત્થા કરી કાયોત્સર્ગપૂર્વક શીતળ અને ગરમીરૂપ આતાપન યોગ ધારણ કરે રાત્રિના તથા દિવસના પણ એક જો ત્રણ અને ચાર પ્રહર ક્રમથી કાયોત્સર્ગ કરે આટલુ કરવા છતાં પણ જો ગ્રામધર્મ શાન્ત ન બને તો ગામેગામ વિચરતા રહે બધા પોતે રોકાયેલ છે તેગ્રામ છે બધા જવુ છે તે અનુગ્રામ છે ત્યાં એ રોકાય નહિ છતાં પણ જો ગ્રામધર્મ શાન્ત ન થાય તો એવી દશામા આહારનો ત્યાગ કરી દે વધુ શુ કહેવાનુ હોય ! જે ઉપાયથી વૈષયિક અભિલાષા ઉત્પન્ન ન થાય-મોહનુ ઉપ-શમ બને એવોજ ઉપાય કરતા રહેવુ જોઈએ પરંતુ સ્ત્રીઓ તરફ મનને લાગવા દેવુ ન જોઈએ સ્ત્રીસંગ કરવાવાળા માટે જે હુ ખો ભોગવવા પડે છે સૂત્રકાર

સદ્ગા દુઃસ્વપ્ના કમહાઽઽસજ્જકરાથેતિ તત્પરિહારં ચ સર્વં કથયामિ। અન્યદપિ પરિત્યાગસાધનમાહ 'સ' ઇત્યાદિ, સઃ=સ્ત્રીસજ્જનિતનરકનિગોદાદિકદુઃકલ્યાણમિ
 ઇત્યેન તત્પરિહારી મુનિર્નો કથકઃ સ્ત્રીભાં જાતિકુસનેપધ્યશૃંગારાદિકયાકારકો ન
 મથેદ્રહસિ સત્યે ધર્માદિકમપિ ન કથયેદિતિ માનં। એવં નો પ્રાશ્નિકઃ પ્રશ્નં
 કરોતીતિ પ્રાશ્નિકઃ=ચિત્ત્યં ન કિમપિ પૂછેત્, તથા હિ=કીદૃષ્ટસ્તે પતિઃ? ત્વાં
 સમ્માનયતિ ન વા? કથં ત્વં સિન્નેન પ્રતિમાસિ? સઘ કા સન્તતિ? પુત્રો વા પુત્રી?
 પરિજીતા પુત્રી ન વા? કસ્મૈ વૃથા? યાસ્યસિ ન વા? સ કીદૃશઃ? ધાર્મિકો ધનિ-
 મી વસકે સેવનકા સર્વથા ત્યાગ કરાથે। હસ પ્રકાર મગધાનકે વચ્ચન
 અનુસાર સ્ત્રીપ્રસંગકો દુઃસ્વપ્નદ્વ એવં કલહાસંગકારક જાનકર મૈને વે મય
 વસકે પરિત્યાગ કા પ્રકાર કહા હૈ। મુનિકો હતના ઔરમી કરના
 બાહિયે કિ સહ કમી મી વસકી જાતિકી, વસકે કુલકી, વસકે
 વેપ-મૂયાકી તથા શૃંગાર આદિકી ચર્ચા નહીં કરે ઔરન વસકે લિપ
 પકાન્તમેં ધર્માદિક કા ઉપદેશ હી દે। ન સ્ત્રીસે વસકે ચિપયકી કોઈ
 વાત કરે અર્થાત્—“તુમ્હારા પતિ કેસા હૈ? તુમ્હારા વહ આદર કરતા હૈ
 યા નહીં? આજ તુમ ઉવાસ સી ક્યોં માલુમ લેતી હો? તુમ્હારે ક્યા
 સંતાન હૈ પુત્ર હૈ યા પુત્રી? તુમને પુત્રોકા વિવાહ કર દિયા હૈ કિ નહીં?
 યદિ કર દિયા હૈ તો કિસકે સાથ કિયા હૈ? યદિ નહીં કિયા હૈ તો
 ક્યોં નહીં કિયા? તુમ્હારા જમાઈ કેસા હૈ—ધર્માત્મા હૈ? ધનિક
 હૈ? યા નહીં?” ઇત્યાદિ રૂપસે પૂછનેસે મુનિકો અપને ચારિત્રમેં દૂષણ

સેવનમી સદા દૂર રાખે. અને બીજાઓને પણ એના ત્યાગ માર્ગે દોરે. અને
 સર્વથા એને ત્યાગ કરાવે. આ પ્રકારે ભગવાનના વચ્ચન અનુસાર સ્ત્રી-પ્રસંગને
 દુઃસ્વપ્ન એવં કલહ આગ્રજકારક બાધીને એ આત્મા પરિત્યાગને પ્રકાર કહેલ
 છે. મુનિકે એવું કહે પણ કલ્પ બેધ બે કે તે કથારથ તેની જાતિની, એના
 કુળની તેમજ સૂત્રાસહિતની ચર્ચા ન કરે. અને તેને એકાન્તમા કદી ધર્માદિક
 ઉપદેશ પણ ન આપે. તેમજ સ્ત્રી સાથે તેના વિષયની કંઈ વાત ન કરે. અર્થાત્—
 તમારો પતિ કેવો? તમારો એ આદર કરે છે કે નહિ? આજે તમે ઉવાસ
 કેમ લેખાવ છે? તમારે શું સંતાન છે પુત્ર છે કે પુત્રી? તમે પુત્રીને વિવાહ
 કરી દીધો છે કે નહિ? ક્યો છે તે કોની સાથે ક્યો છે? નથી ક્યો તે કેમ
 નથી ક્યો? તમારો જમાઈ અને તેનું કુટુંબ કેમ છે? ધર્માત્મા છે? ધનિક
 છે? કે કેમ. ઈત્યાદિ રીતે પુછવાથી મુનિને પાતાના ચારિત્રમા દૂષણ આવે છે

હસ્તજિહ્વાચ્છેદાદિરૂપા દળ્ડવિશેષા જાયન્તે । અન્યદપ્યાહ—‘ઠ્ઠ્યેત’ ઇત્યાદિ,
 ઇતિ=પૂર્વોક્તદળ્ડસ્પર્શાદિપ્રાપ્ત્યા एते=સ્ત્રીસદ્ગત્સમ્ભવાઃ કામાઃ કલહાઽઽસદ્ગત્કારા
 ભવન્તિ । સ્ત્રીહેતોર્વહ્નાં તૃષાદીનાં યુદ્ધાદિના વિનાશસ્ય સર્વજનવેદ્યત્વાત્ । યદ્વા-
 સ્ત્રીનિમિત્તં ક્રોધ-રાગયોઃ સદ્ભાવસ્ય સર્વજનપ્રસિદ્ધત્વાત્ । ઉપલક્ષણાન્માન-
 માયાદિકારકત્વમપિ વોધ્યમ્ । તતઃ કિં વિધેયમિત્યાહ-પ્રત્યુપેક્ષ્યેત્યાદિ,
 પ્રત્યુપેક્ષ્ય=સ્ત્રીપ્રસદ્ગતસ્ય સર્વથાઽત્ર પરત્ર ચ દળ્ડસ્પર્શાદિકારકત્વ કલહાઽઽસદ્ગત્કાર-
 કત્વમપિ વિચાર્ય આગમ્ય=તત્સર્વં બુદ્ધ્વા અનાસેવનયા=તદાસેવનપરિવર્જનેન
 સ્વાત્માન પરં વા આજ્ઞાપયેત્=તત્ત્યાગે નિયોજયેત્ ઇતિ ભગવદ્વાક્યમનુસૃત્ય તદા-

इस लोकमें हाथ, जीभ आदिका छेदन आदि स्वरूप अनेक-दण्ड-
 विशेष कामियों को सहना पड़ता है । इस प्रकार पूर्वोक्त दण्ड और
 स्पर्श आदिकी प्राप्तिसे स्त्रीप्रसगसे समुद्भूत ये काम कलहके आसंगके
 उत्पन्न करनेवाले होते हैं । यह बात सर्वजन को मालूम ही है कि स्त्रीके
 निमित्तसे परस्पर अनेक राजाओं में युद्ध छिड़े हैं और वे उनके विनाश
 के हेतु हुए हैं ।

अथवा-स्त्रीप्राप्तिके लिये क्रोध और रागका सद्भाव भी प्राणियोंमें सर्व-
 जन प्रसिद्ध ही है । उपलक्षणसे यह बात भी समझ लेनी चाहिये कि वे
 स्त्रीसंगसे उत्पन्न काम, मान और माया आदि कषायोंके भी उत्पादक होते
 हैं । इसलिये इस स्त्रीप्रसगको इस लोक और परलोकमें सर्व प्रकारसे
 दण्ड एवं स्पर्श आदिका करनेवाला तथा कलहके आसगका उत्पादक
 विचार कर और इस सबको जानकर मुनिको चाहिये कि वह अपनी
 आत्माको उसके सेवन करनेके सर्वथा त्यागसे युक्त करे, तथा परको

સહન કરવા પડે છે આ પ્રકારે પૂર્વોક્ત દડ સ્પર્શ આદિની પ્રાપ્તિથી સ્ત્રીપ્રસગથી
 ઉત્પન્ન આ કામ, કલહના આસગને ઉત્પન્ન કરનાર બને છે આ વાત સર્વ
 જનને માલુમ છે સ્ત્રીના નિમિત્તથી પરસ્પર અનેક રાજાઓમા યુદ્ધ થયાં છે અને
 તેઓ એના વિનાશના હેતુ બન્યા છે અથવા સ્ત્રી પ્રાપ્તિ માટે ક્રોધ અને રાગના સદ્ભાવ
 પણ પ્રાણીઓમા સર્વજનપ્રસિદ્ધ છે ઉપલક્ષણથી આ વાત પણ સમજી લેવી જોઈએ
 કે સ્ત્રીસગથી કામ માન અને માયા ઇત્યાદિ કષાયો પણ ઉદ્ભવે છે
 આ માટે આ સ્ત્રીપ્રસગને આ લોક અને પરલોકમા સર્વ પ્રકારથી દડ અને
 સ્પર્શ આદિના કરવાવાળા તેમજ કલહના આસગને ઉત્પાદક છે એવો
 વિચાર કરી આ બધાને જાણીને મુનિએ જોઈએ કે પોતાના આત્માને તેના

सद्वा दुःखकरा' कलहाऽऽसङ्गकरायेति तत्परिहारं च सर्वं कथयामि। अन्यदपि
परित्यागसाधनमाह 'स' इत्यादि, सः=सोसङ्गजनितनरकनिगोदादिकदुःखकलामि
इत्वेन उत्परिहारी मुनिर्नो कथञ्च स्त्रीणां जातिकुलमेवप्यशृङ्गारादिकयाकारको न
मवेद्रहसि तस्यै घर्मादिकमपि न कथयेदिति भाषा। एवं नो प्राभिक्य प्रभं
करोतीति प्राभिक्य=स्त्रिय न किमपि पृच्छेत्, तथा हि-कीदृशस्ते पतिः? त्वां
सम्मानयति न वा? कथं त्वं स्त्रि-मेष प्रतिमासि? तव का सन्तति? पुत्रो वा पुत्री?
परिणीता पुत्री न वा? कस्मै वत्ता? दास्यसि न वा? स कीदृशः? पार्मिको पनि

भी उसके सेवनका सर्वथा त्याग करावे। इस प्रकार भगवानके बचन
अनुसार स्त्रीप्रसंगको दुःस्वप्नद पदं कलहासंगकारक जान कर मैंने ये सब
उसके परित्याग का प्रकार कहा है। मुनिको इतना और भी करना
चाहिये कि वह कभी भी उसकी जातिकी, उसके कुलकी, उसके
बेप-भूपाकी तथा शृङ्गार आदिकी चर्चा नहीं करे और न उसके लिए
पकान्तमें घर्मादिक का उपदेश ही दे। न स्त्रीसे उसके बिपयकी कोई
बात कर अधीत-"तुम्हारा पति कैसा है? तुम्हारा वह आदर करता है
या नहीं? आज तुम उदास सी क्यों माझूम देती हो? तुम्हारे क्या
संतान है पुत्र है या पुत्री? तुमने पुत्रोका विवाह कर दिया है कि नहीं?
यदि कर दिया है तो किमके माय किया है? यदि नहीं किया है तो
क्यों नहीं किया? तुम्हारा जमाई कैसा है-घर्मात्मा है? धनिक
है? या नहीं?" इत्यादि रूपसे पूछनेसे मुनिको अपने चारित्र्यमें रूपण

सेवनभी सदा दूर रखे, अने भीअन्वेषने पक्ष जेना त्याग भावे' होइ, अने
सर्वथा जेने त्याग कसवे, आ प्रकारे भगवानना वचन अनुसार स्त्री-प्रसंग अने
दुःस्वप्नद जेव कलह आसङ्गकारक आधीने में आना परित्यागने प्रकार कहेल
छे, मुनिके जेटल जे पक्ष कश्नु जेधज्जे के ते आदेश तेनी अतिनी जेना
कुननी तेमज्ज भुगाराइइकी अर्थ न करे, अने तेने जेना-तमां करी प्रमादिक
उपदेश पक्ष न आये, तेमज्ज स्त्री आये तेना बिपयनी कोण बात न करे, अर्थात्—
तमाथे पति केवा छे? तमाथे जे आदर करे छे के नहि? आने तमे उदास
केम होजाय छे? तमाथे भुं सतान छे पुत्र छे के पुत्री? तमे पुत्रीने विवाह
करी दीया छे के नहि? कथो छे तो कानी आये कथो छे? नथी कथो तो केम
नथी कथो? तमाथे जमाई अने तेनु कटुण केम छे? धर्मात्मा छे? धनिक
छे? के केम अन्वेषि रीते पुछवाथी मुनिने पावाना चारित्रमा द्रव्य अने छे

કથાસ્તિ ન વા ? इत्यादिवाक्यैः प्रश्नकरणे चारित्रदोषः सम्भवतीति नैवं कदाचि-
दपि प्रश्नं कुर्यादिति भावः। अन्यच्च नो मामकः=संसारावस्थापरिणीतायामपि तस्यां
न ममत्वं कुर्यात् किं पुनरन्यस्याम् । एवं नो कृतक्रियः - कृता=विहिता क्रिया=
स्त्रीसङ्गप्राप्त्यर्थमङ्गोपाङ्गादिवेष्टारूपा येन स कृतक्रियो न भवेत् । अनेन काय-
योगो निरुध्यते । एवं वाग्गुप्तः वाचा गुप्तो वाग्गुप्तः=वाचंयमः, स्त्रिया सह रहसि
वार्तालापादिकं न कुर्यादित्यर्थः, किञ्च-अध्यात्मसंवृतः-आत्मनि=अन्तःकरणे
इत्यध्यात्म तेन संवृतः=संवरयुक्त निवृत्त इत्यर्थः, अनेन मनोनिरोधो दर्शितः,

આતા હૈ । इसलिये ऐसे प्रश्न मुनिजनको स्त्रियोंसे करनेका निषेध है ।

इसी तरह मुनिको चाहिये कि यह अपनी संसारदशामें विवाही
हुई स्त्रीमें भी ममत्व न रखे-करे । जब उसे निज स्त्रीमें भी ममत्व करने
के त्यागका आदेश है तो फिर भला ! वह अन्य स्त्रीमें ममत्व भी कैसे
कर सकता है, अर्थात्-नहीं कर सकता । मुनिको कृतक्रिय भी नहीं
होना चाहिये-स्त्रीप्रसंगकी प्राप्तिके निमित्त उसे अंग और उपाङ्गादिककी
वेष्टाका सर्वथा त्यागी होना चाहिये । इस कथनसे उसे काययोगके
निरोध करनेका आदेश दिया गया है । अर्थात् इस प्रकारकी प्रवृत्तिसे
काययोगका निरोध होता है । मुनिको वाग्गुप्त-वाचंयम होना चाहिये,
एकान्तमें स्त्रीके साथ वार्तालाप आदि नहीं करना चाहिये । इससे वच-
नयोगका निरोध होता है । इसी प्रकार मुनिको अध्यात्मसंवृत होना
चाहिये-मनोयोगका निरोध करना चाहिये । इस प्रकारसे अपनी प्रवृत्ति

આ માટે આવા પ્રશ્નો સ્ત્રીઓ સાથે કરવા મુનિજન માટે નિષેધ છે એ જ પ્રકારે
મુનિજને જોઈએ કે તે પોતાની સંસારી દશામાં વિવાહિત થયેલી
સ્ત્રીમાં પણ મમત્વ ન રાખે. બીજાં તેને પોતાની સ્ત્રીથી પણ મમત્વ ન રાખ
વાનો આદેશ છે ત્યારે બીજી સ્ત્રીઓમાં તે મમત્વ કઈ રીતે કરી શકે ?
અર્થાત્ નહિ કરી શકે મુનિએ કૃતક્રિય પણ ન બનવું જોઈએ સ્ત્રીપ્રસંગની
પ્રાપ્તિના નિમિત્ત તેને અંગ તેમજ ઉપાંગાદિકની યેષ્ટાના ત્યાગી બનવું જોઈએ
આ કથનથી તેને કાયયોગના નિરોધ કરવાનો આદેશ અપાયેલ છે અર્થાત્ આ
પ્રકારની પ્રવૃત્તિથી કાયયોગનો નિરોધ થાય છે મુનિએ વાગ્ગુપ્ત-વાચયમ
બનવું જોઈએ. એકાત્મ સ્ત્રીની સાથે વાર્તાલાપાદિ નહિ કરવો જોઈએ આનાથી
વચનયોગનો નિરોધ થાય છે આ રીતે મુનિએ અધ્યાત્મસંવૃત બનવું જોઈએ,
એટલે મનોયોગનો નિરોધક બનવું જોઈએ આ પ્રકારની પોતાની પ્રવૃત્તિ રાખનાર

पतारन सन मुनि सदा=मर्वकाय पाप=ग्रीसद्वजनिनं दुष्टन पापजननं कम वा
 मैयुनादिकं पयिप्रयत्, उपलक्षण प्राणानिपातादिपरिस्पागम्यापि। उपमररमाह-
 'पत' दिव्यादि-पतन्=उद्वाराभमनो यदुक्तं सन् गर्व "मीन" =मुन-संयतम्या 'प'
 मीनसं संयतं समनुवासायन्=परिषास्यन् इति। प्रतीतीत्यर्थम्युक्तं एव ॥ सु० ४॥

॥ पक्षमाध्ययनस्य शत्रुर्धेदोऽसमाप्त ॥ ५-४ ॥

गमनयाग मुनि सदा श्रीप्रमगजनित दुष्टन अथवा पापजननं मैयुना
 दिक् कर्मस निवृत्ता होता है। प्राणानिपातादिष पापकर्मका भी पा
 उपलक्षक है, इससे निवृत्ता होनसे मुनि हिंसादिष पापकर्मों म भी
 निवृत्ता हो जाता है ऐसा समझ लेना चाहिये। इस प्रकारका उपमंहा
 कृत हूय मृग्यकार कहते हैं कि मुनि इस मीन-संयतका मग पापन
 कर। "प्रसीमि" इस पदका अर्थ पछिछे कह ही दिया गया है ॥

पाशये अण्ययनका श्राधा उदरा समाप्त ॥ ५-४ ॥

मुनि सदा श्रीप्रममयी जनन दुष्टन अने पापजननं मैयुनादि कम था निवृत्त
 था ॥ प्रजातिपातदि पापकर्मना पतु के उपाय ॥ ४ ॥ अन्तर्धी निवृत्त
 यद्यपी मुनि हिंसादि पापकर्मों पतु निवृत्त अनी अथ ॥ ४ ॥ अथ
 अमल उवा अर्थ अने आ प्रारे उपाय ॥ ४ ॥ अथ मृग्यकार ॥ ४ ॥ ४ ॥ मुनि आ
 मीन-संयतनु उद्य पापन है। प्रसीमि" आ पदका अर्थ अथ अमा ॥ ४ ॥
 देवाभा अथ ॥ ४ ॥

पांशुभा अण्ययननो श्राधा उदरा समाप्त ॥ ५-४ ॥



પર્વમાધ્યયનસ્ય પશ્ચમ ઉદ્દેશઃ ।

ગતશ્ચતુર્થ ઉદ્દેશોઽધુના પશ્ચમ સમારમ્બ્યતે । એપ ચાનન્તરસમ્બન્ધઃ - પૂર્વોદ્દેશે ચ એકચરસ્યાવ્યક્તસ્ય બહવોઽપાયા જાયન્તે તત્પરિહારાય જ્ઞાનાદિપ્રાપ્તયે ચ હ્રદસદૃશસ્ય પશ્ચાચારસેવિન આચાર્યસ્ય સમીપે વસતા કાયવાહ્મનોગુપ્તિમતા સ્વ્યાદિ-સન્નરહિતેન શિષ્યેણ વિચરણીયમિત્યાચારઃ પ્રદર્શિત । સ એવાત્રાચારો લોકે સાર

પાંચવે અધ્યયનકા પાંચવાં ઉદ્દેશ ।

ચતુર્થ ઉદ્દેશ સમાપ્ત હુઆ, અવ પંચમ ઉદ્દેશકા પ્રારંભ હોતા હૈ । હસ ઉદ્દેશકા ચતુર્થ ઉદ્દેશકે સાથ સંબંધ હૈ ઓર વહ હસ પ્રકારસે હૈ, ચતુર્થ ઉદ્દેશમે સૂત્રકારને યહ પ્રદર્શિત કિયા હૈ કિ જો એકચર્યા કરને-વાલે અવ્યક્ત મુનિ હૈં ઉન્હેં હસ ચર્યામેં અનેક દોષ લગતે હૈં, હસલિયે હન દોષોંકે પરિહારકે લિયે તથા જ્ઞાનાદિક ગુણોંકી પ્રાપ્તિકે હેતુ મુનિકો ચાહિયે કિ વહ દ્રહ તુલ્ય એવં પચ આચારોંમેં નિરત અપને આચાર્ય ગુરુ-દેવકી નિશ્રામેં હી રહેં । મનોગુપ્તિ, વચનગુપ્તિ એવં કાયગુપ્તિકા પાલન કરે । સ્ત્રી આદિકે પ્રસંગસે સદા દૂર રહેં । આચાર્ય ગુરુદેવકી છત્રચ્છાયા કે સહારે હી વિહાર કરે । એસા હી મુનિકા આચાર હૈ । ઓર યહી લોકમેં સારભૂત-ઉત્તમ માના ગયા હૈ । હસી આચારકા મોક્ષકે સારથી-ભૂત તીર્થઙ્કર આદિકોંને સેવન કિયા હૈ । અતઃ હસી આચારકા સૂત્ર-

પાચમા અધ્યયનનો પાચમો ઉદ્દેશ

ચોથો ઉદ્દેશ સમાપ્ત થયો હવે પાચમા ઉદ્દેશનો પ્રારંભ થાય છે. આ ઉદ્દેશનો ચોથા ઉદ્દેશ સાથે સંબંધ છે અને તે એ પ્રકારે કે-ચોથા ઉદ્દેશમા સૂત્રકારે આ રજુ કરેલ છે જે એકચર્યા કરવાવાળા અવ્યક્ત મુનિ છે, એને એ ચર્યામા અનેક દોષ લાગે છે આથી આ દોષોના નિવારણ માટે તેમજ જ્ઞાનાદિક ગુણોની પ્રાપ્તિના હેતુથી મુનિએ દ્રહતુલ્ય એટલે પાચ આચારોમા નિરત પોતાના આચાર્ય ગુરુદેવની છાયામા જ રહેવું જોઈએ મનોગુપ્તિ વચન-ગુપ્તિ અને કાયગુપ્તિનું પાલન કરે, સ્ત્રી આદિના પ્રસંગથી સદા દૂર રહે, આચાર્ય ગુરુદેવની છત્રછાયાના નેસરાય વિહાર કરે એવો જ મુનિનો આચાર છે અને એ જ લોકમા સારભૂત-ઉત્તમ માનવામા આવેલ છે આ આચારનું મોક્ષના સારથી એવા તીર્થંકરાદિકોએ સેવન કર્યું છે એટલે આ જ આચારનું સૂત્ર-

મૂતો નિર્વાજસારયિમિસ્તીર્થકૃદ્ધિ સેષિત્ત્વ ઇતિ સ ઇમામ પ્રતિપાદયિત્વોઽસ્તિ ।

સમ્પતિ દૃષ્ટાન્તેનાઽઽન્વારસ્ય સારસ્વત્ક્રમાયાહ—‘સે બેમિ’ ઇત્યાદિ ।

મૂસ્મ—સે બેમિ તં જહા—અવિ હરપ્પદિપુણે સમસિ મોમે ચિઠ્ઠદ્ ડયસસરપ્પ સારસ્વત્ક્રમાણે, સે ચિઠ્ઠદ્ સોયમઝ્જગપ્પ સે પાસ સઠ્ઠઓ ગુત્તે, પાસ લોપ્પ મહેસિણો જે ય પછાણમતા પબુદ્ધા અરમોબરયા સમ્મમેયતિ પાસહ, કાલસ્સ કક્ષાપ્પ પરિ ધ્વયતિ તિબેમિ ॥ સૂ. ૧ ॥

જાણા—તદ્ બ્રવીમિ તથા—અપિ પ્રદઃ પ્રતિપૂર્ણઃ સમે મૌમે સ્થિતિ ઉપશાન્તરજાઃ સમારક્ષન્, સ તિષ્ઠતિ સ્ત્રોતોમધ્યગતરત્ત્વ પશ્ય સર્વતો ગુપ્તઃ, પશ્ય લોકે મહર્ષયો ય ય મજ્ઞાનવન્તાઃ મજ્ઞુદા આરમ્મોપરતાઃ સમ્યગેતદિતિ પશ્યત, કાલસ્ય કાઢ્યા પરીવ્રજન્તિ ઇતિ બ્રવીમિ ॥ સૂ. ૧ ॥

ટીકા—‘તદ્ બ્રવીમિ’ ઇત્યાદિ, અર્થ યાદ્યગુણગણસમુદિત આચાર્યો મહેતાદ્યં તીર્થસ્નાનયા તત્સર્વં બ્રવીમિ—સ્વાં કથયમિ, તથેવ પ્રતિપાદયિતુમાહ—‘તથાપિ’—ત્યાદિ, તથા—આક્યપ્રતિપાદનાર્થમ્, અપિ શબ્દો મજ્ઞવતુષ્ટયસગ્રાહકઃ । પ્રતિપૂર્ણઃ—સ્વપ્નપ્રતે’ સાર્વકાલિકપુણ્યાદિમિરન્તધરજન્મન્તુમિથ સમન્તાત્પૂર્ણં સોમિતો વા, ક્યાર તસે પ્રતિપાદન યોગ્ય સમસકર હસ ઉદેશ્યમે પ્રતિપાદન કરતે હૈં । સર્વ પ્રથમ વે દૃષ્ટાન્તસે આચાર્યમે સારમૂતતા પ્રદર્શિત કરનેકે લિપે કહતે હૈં “સે બેમિ” ઇત્યાદિ—

શિષ્ય કો લક્ષ્યકર સૂત્રકાર કહતે હૈં કિ હે શિષ્ય ! આચાર્ય મહા રાજ કૈસે ૨ ગુણોસે યુક્ત હોતે હૈં, મૈં તુમ્હેં યહ કહતા હૂં । યહાં આચાર્ય મહારાજકો જો જાણાણયકી લપમા વી ગઈ હૈં તસકા મતલબ યહ હૈ—ખિસ પ્રકાર—સમ મૂમિમાગમે સ્થિત જાણાણય કમી છુજ્ક—યાનીસે રિક્ત નહીં હોતા હૈ, ન કમી બહ બિઠ્ઠલિકો હી પ્રાપ્ત કરતા હૈ, સદા પાનીસે

કારે પ્રતિપાદન મેલ્ય સમલ આ ઉદેશ્યમાં પ્રતિપાદન કરું છે સદુ પ્રથમ દષ્ટાન્તથી આચાર્યમાં સાસ્ત્રીયતા પ્રદર્શિત કરવાનું કહે છે ‘સે બેમિ’ ઇત્યાદિ.

શિષ્યને લક્ષ્યથી દુ જનાવી સૂત્રકાર કહે છે કે કે શિષ્ય ! આચાર્ય મહારાજ કેવા કેવા ગુણોથી યુક્ત હોય છે તે હું તમને સમજાવું છું. આદિ આચાર્ય મહારાજને જાણાણયની ઉપમા આપવામાં આવી છે એને મતલબ આ છે કે એ પ્રકારે—સમમૂમિ આગમાં સ્થિત જાણાણય કોઈ વખત પાણી બિનાનું હોવું નથી તેમ ન તો કહી તે બિઠ્ઠલિને પ્રાપ્ત કરે છે. અહા અર્થે આ અર્થથી

‘ઉપશાન્તરજા:’=ઉપશાન્ત=નષ્ટ રજો ધૂલિર્યત્ર સ ઉપશાન્તરજા:, યતો વર્ષતો જલાદિપ્રપાતે જલં રજસઃ સમ્પર્કાત્પલપ વર્ષાપિગમે ચ રજસોઽપગમાચ્છરતાદા-વતિનિર્મલં જાયતે । સમારક્ષન્=અન્તઃસ્થિતજલજન્તન સમ્યક્ પરિપાલયન્ । દ્વઃ=અગાધજલાગય:, સમે=ઉચ્ચાવચરહિતે-મૌમે=ભૂમે:=પૃથિવ્યા અય મૌમો-ભૂભાગસ્તસ્મિન્ સમે ભૂભાગે યથા તિષ્ઠતિ કદાચિદપિ ન શુષ્યતિ નાપિ વૈકલ્યમુ-પગચ્છતિ, તથૈવાચાર્યોઽપિ દ્વદવત્ અનુપ્રદર્શ્યમાનમ્નૃચતુષ્ટયાન્તર્ગતપ્રથમમ્નૃાવસ્થિતો જ્ઞાનાદિસમન્વિતઃ પદત્રિંશદ્ગુણભૂષિતઃ પચ્ચાચાર્યુક્તોઽષ્ટવિધસમ્પત્તિશાલી ભવેત્, તાશ્ચાષ્ટસપદો યથા—

લવાલવ ભરા રહતા હૈ, સમસ્ત ઋતુઓંકે પત્ર પુષ્પાદિકોં ઓર જલચર જન્તુઓંસે વહ ચારોં ઓરસે વ્યાસ-પૂર્ણ રહા કરતા હૈ, શોભિત રહતા હૈ, તથા ઉપશાન્તરજ હોતા હૈ-ધૂલિ આદિ જિસમે ઉપશાન્ત રહતી હૈ, યદ્યપિ વર્ષાઋતુમેં વૃષ્ટિકે હોને પર જલ ધૂલિકે સમ્પર્કસે કલુષિત હો જાતા હૈ તો મી વર્ષાકે નષ્ટ હોને પર ધૂલિકે અપગમ હોનેસે શરદકાલ મેં વહી જલ અત્યત નિર્મલ હો જાતા હૈ । તથા અપને મીતર રહે હુ! જલચર જીવોંકા વહ સદા પાલક હૈ । ઇસી પ્રકાર જ્ઞાનાદિ યુક્ત, છત્તીસ ગુણોંસે વિભૂષિત તથા પચ આચાર વિશિષ્ટ આચાર્ય મી નીચે કહે ગયે-નિમ્નલિખિત ચાર મંગોંમેંસે ૧ પ્રથમ મંગમેં સમ્મિલિત હોનેસે જલાગય કે તુલ્ય માને ગયે હૈ । તથા આઠ પ્રકારકી સંપદાઓંસે મી સુશોભિત હોતે હૈ । વે આઠ પ્રકાર કી સપદાયોં ચે હૈ—

ભરેલુ રહે છે અધી ઋતુઓમા પુષ્પ પાદકા અને જળચર જતુઓથી ચારે તરફ એ હર્થુ ભર્થુ રહે છે-શોભી રહે છે અને સદા શાન્તિ આપનાર રહે છે ધૂળ વગેરે તેનામા પડી શાન્ત અને છે વર્ષાઋતુમા વૃષ્ટિના કારણે જળ ધૂળના સપર્કથી ડહોળુ અને છે પરતુ વર્ષાકાળ બાદ ધૂળ નીચે ઝેસી જવાથી શરદકાળમા એ જળ અત્યંત નિર્મળ બની જાય છે અને પોતાનામા રહેલા જળચર દેવોનુ સદા પાલન કરે છે એ પ્રકારે જ્ઞાનાદિયુક્ત, છત્રીસગુણભૂષિત અને પાચ આચાર વિશિષ્ટ આચાર્ય પણ નીચે જણાવવામા આવેલ ચાર ભગોમાથી પહેલા ભગમા સમ્મિલિત હોવાથી જળાશય તુલ્ય માન્યા ગયા છે તેમજ આઠ પ્રકારની સપદાઓથી પણ એ સુશોભિત હોય છે તે આઠ પ્રકારની સપદાઓ-આચાર, શ્રુત, શરીર, વચન, વાચના, મતિ, પ્રયોગમતિ અને સમૃદ્ધપરિજ્ઞા છે

“ આચાર સુઝ સરીરે, થયણે ચાયણ મઈ પમોગમઈ ।

પસ સુસંપયા સલ્હ, અઢમિયા સંગહપરિષા ॥ ”

છાયા—આચાર મુત શરીર વચન વાચના મતિઃ પ્રયોગમતિઃ । પતાઃ
સુસમ્પદઃ સલ્હ અઢમી સંગ્રહપરિષા ॥ ” રૂપિ । નિર્મલજ્ઞાનાદિમિ પ્રતિ
પૂર્ણઃ, ઉપશાન્તરજા—ઉપશાન્તમોહનીયઃ સમારણન—પદ્મજીવનિકાય ચતુર્વિધ
સહ ગચ્છગતસાધુન મ્વાત્માનં ચ સમ્પદ રણન સમે મૌમે—સ્ત્રીપશુપન્થકાદિપરિ
પરિતે શોમને સ્થાને સ્થિતિ । અત્ર દ્વદોષમાનેન દ્વદાદેશચતુર્વિધતયાઽઽચાર્યોઽપિ
વાદ્ય એ મવતિ, તત્ર ચતુર્મઙ્ગી યયા—

(૧) એકઃ મીઠાસીતોદામ્બાહદ્રદિવત્પરિગમ્સ્તોતા પર્યાગસ્સ્ત્રોતામ ।

“ આચાર સુઝ સરીરે થયણે ચાયણ મઈ પમોગમઈ । પસ સુસંપયા
સલ્હ અઢમિયા સંગહપરિષા ” ॥ આચાર, મુત, શરીર, વચન, વાચના,
મતિ, પ્રયોગમતિ, ઔર સંગ્રહપરિષા । (૬ મુ સ્ક અ ૪)

નિર્મલ જ્ઞાનાદિકોસે પ્રતિપૂર્ણ હોતે હે । મોહનીયકર્મકે ઉપશામન
સે યે ઉપશાન્તરજ હોતે હે । પદ્મજીવનિકાય, ચતુર્વિધસંધ તયા ગચ્છમે
રહનેવાલે સાધુઓકે પર્વ અપમી આત્માકે અચ્છી રીતિસે રક્ષક હોતે હે ।
સ્ત્રી, પશુ, પન્થક—નપુંસક આદિસે વર્જિત સ્થાનમે યે રહતે હે; હસતિયે
જલાશાયકે સમસ્ત વિશેષણ હમમે અટિત હોતે હે । દ્વ—જલાશાયકી
ઉપમા દેનેસે યહ વાત જ્ઞાન હોતી હે કિ જિસ પ્રકાર જલાશાય ચાર પ્રકાર
રકે હોતે હે, વસી પ્રકાર આચાર્યની ચાર તરફકે હોતે હે । યહ ચતુ—
પ્રકારતા હમ ચતુર્મઙ્ગીસે જાની જાતી હે । જૈસે—

(૧) કોઈ એક આચાર્ય, સીતા સીતોદા મવીક પ્રવાહકા દ્વ કિ જિસસે
દૂસરા પ્રવાહ નિકલતા હે ઔર બાહરસે દૂસરા પ્રવાહ ની જિસમે આકર

નિમળ જ્ઞાનાદિકોષી તે પ્રતિપૂર્ણ છે મોહનીય કર્મના ઉપશામનથી તે
ઉપશાન્તરજ હોય છે પદ્મજીવનિકાય ચતુર્વિધસંધ તયા ગચ્છમા રહેવાવાળા સાધુઓના
અને પાતાના આત્માના સારી રીતે રક્ષક હોય છે સ્ત્રી, પશુ નપુંસક અદિકી વર્ણવ
સ્થાનમાં જે રહે છે આમાં જળાશયના સમસ્ત વિશેષણ તેમનામાં બધેસલા છે
દ્વ—જળાશયની ઉપમા દેવાથી આ વાત બાણી શકાય છે કે જેવી રીતે જળાશય
ચાર પ્રકારનાં હોય છે એ જ રીતે આચાર્ય પણ ચાર પ્રકારના હોય છે તે ચાર
પ્રકાર ચાર બજથી બાણી શકાય છે જેમ (૧) કોઈ એક આચાર્ય સીતા
સીતોદા નદીના પ્રવાહની તરફ—જેમાંથી બીજે પ્રવાહ કુટતો હોય છે અને બહાર

(૨) દ્વિતીયો હિ પદ્મહ્રદાદિવત્પરિગલત્સ્રોતા નો પર્યાગલત્સ્રોતાઃ ।

(૩) તૃતીયો લવણસમુદ્રવદ્ નો પરિગલત્સ્રોતા પર્યાગલત્સ્રોતાઃ ।

(૪) ચતુર્થો મનુષ્યલોકવાદ્યસમુદ્રવદ્નોપરિગલત્સ્રોતા નો પર્યાગલત્સ્રોતાશ્ચેતિ ।

પ્રથમભક્ષાન્તર્ગત આચાર્યઃ શાસ્ત્રમધીતેઽધ્યાપયતિ ચ જલસ્ય પ્રવેશ-નિર્ગમ-
વત્ જ્ઞાનપ્રદાનાદાનયોઃ સમ્ભવાત્, સ ચાયં સ્થવિરકલ્પકઃ । દ્વિતીયભદ્રસ્થસ્તીર્થઙ્ક-
રાદિસ્તસ્ય નિર્ગમસ્થાનીયાર્થાગમસદ્ભાવાત્, કપાયોદયાસમ્ભવેન પ્રવેશસ્થાનીય-
મિલતા હૈ વૈસે હોતે હૈં ।

(૨) દૂસરે કોઈ એક આચાર્ય પદ્મહ્રદ આદિકે સમાન હોતે હૈં કિ જિસસે
પ્રવાહ તો નિકલતા હૈ, પરંતુ દૂસરા પ્રવાહ જિસમેં આકર નહીં મિલતા હૈ ।

(૩) તૃતીય કોઈ એક આચાર્ય લવણસમુદ્રકે તુલ્ય હોતે હૈં કિ જિસસે
ઔર કોઈ દૂસરા પ્રવાહ તો નહીં નિકલતા હૈ પરંતુ જિસમેં દૂસરા પ્રવાહ
આકર મિલતા હૈ ।

(૪) ચતુર્થ-કોઈ ૨ એસે બી આચાર્ય હોતે હૈ જો મનુષ્યલોકસે
બાહર રહે હુએ સમુદ્રકી તરહ ન ઉસસે દૂસરા કોઈ પ્રવાહ નિકલતા હૈ
ઔર ન જિસમેં ઔર કોઈ પ્રવાહ હી આકર મિલતા હૈ ।

इनमेंसे प्रथम भंगके अन्तर्गत आचार्य शास्त्र पढ़ते हैं और अन्यको
पढ़ाते हैं । जलके आनेजानेकी तरह इनमें ज्ञानका आदान-प्रदान होता
रहता है । इस भंगके अन्तर्गत आचार्य स्थविरकल्पी होते हैं । दूसरे भंग
के अन्तर्गत तीर्थङ्करादि होते हैं । क्यों कि इनसे जलप्रवाहके निर्गमके

રથી બીજો પ્રવાહ પણ એમા આવીને મળતો હોય છે (૨) બીજા કોઈ એક
આચાર્ય પદ્મહ્રદ આદિ સમાન-જેમાથી પ્રવાહ નિકળે છે પરંતુ બીજો પ્રવાહ
આવી તેમા મળી શકતો નથી તેવા-હોય છે. (૩) કોઈ એક આચાર્ય ખારા
સાગર જેવા જેમાથી કોઈ પ્રવાહ તો નીકળતો નથી પરંતુ જેનામા બીજા
પ્રવાહો આવી મળે છે આવા હોય છે (૪) કોઈ કોઈ એવા પણ આચાર્ય હોય
છે જે મનુષ્ય લોકથી બહાર એવા સમુદ્રની પેઠે ન એમાથી બીજો કોઈ પ્રવાહ
નિકળે છે અને ન તો એમા કોઈ પ્રવાહ આવીને મળતો હોય છે આમા પ્રથમ
ભગના અન્તર્ગત આચાર્ય શાસ્ત્ર શીખે છે અને શીખડાવે છે જળના આવવા
જવાની માફક તેમનામા જ્ઞાનનું આવવું-જવું બનતું રહે છે આ ભગના
અન્તર્ગત આચાર્ય સ્થવિરકલ્પી હોય છે બીજા ભગના અન્તર્ગત તીર્થ કરાદિ
હોય છે કારણ કે તેમનાથી જળપ્રવાહના નિર્ગમ સમાન અર્થરૂપથી આગમનું

મુતાધ્યયનાદેરસાધાત્, તપઃસંયમાદિના કર્મક્ષયણં મુક્તિર્નાયતે તેનાપિ ચ નિર્ગમસ્થાનીયત્વ સિદ્ધિર્ણયતિ, ધ્યાતિર્કર્મક્ષયણ નૂતનકર્મણામાગમનાસમ્મતેન પ્રવેશ-
સ્થામાપ્તાત્ । તૃતીયમરૂપતિતા ઊચ્ચનાદધિવૃત્ત્યા યાયામન્દિકઃ । તયા દિ-ઉદકા-
ઈંકરેસ્તા યાવતા કાલેન શુષ્પતિતત આરમ્ભ પશ્ચરાત્રિન્દિવસસળઃ કાલો 'છન્દ'
શ્મ્દેનાપ્ર યુજ્યતે, છન્દમનતિક્રમ્ય યયામન્દં, તેન ધરતીયિ યાયામન્દિક ઉત્કપરિમિ
તકાલવિશ્લેષાધારીત્યર્થે, સ ચાત્કુષ્ઠતઃ ઇકસ્થાને પશ્ચરાત્રિન્દિવં યાવત્પિષ્ઠતિ,
સામાન અર્થરૂપસે આગમકા નિર્ગમ હોતા હૈ । કપાયકે ઉદયકી અસં
ભવતા હોનેસે इनमें असप्रवाहके प्रवेश के तुल्य घूमरोंसे मुक्तके अध्य-
यन आदिके प्रवेशका संभव नहीं होता है । तप और संयमादिकद्वारा
कर्मका अभाव स्वतः हो जाता है, इससे भी इनमें निर्गमस्थानीयता
सिद्ध होती है । ध्यातियाकर्मेंके क्षयसे नूतन कर्मोंके आगमनकी असंभ-
वतासे वहां पर उनके प्रवेशका अभाव है । तृतीय भगवती लघणोदधि
के तुल्य यायालन्दिक साधु हैं । जितने समयमें गीछे हाथकी रस्सा शुष्क
होती है इतने समयसे लगाकर पांच रात और दिनके समयका नाम यहाँ
छन्द माना गया है । इस छन्दकालका उल्लंघन नहीं करना ययालन्द है ।
इस कालके अनुसार जो चलता है—अपनी चर्चा करमेबाला है वह याया
लन्दिक साधु हैं । यह साधु उत्कृष्ट रीतिसे एक जगह पांच रातदिन तक
ठहर सकता है । इस ययालन्दकालको पांच मुनियोंका समुदायरूप गण

નિર્ગમ થાય છે ક્રમાવધા ઉદયની અસંભવતા હોવાથી તેમનામાં જળ પ્રવાહના
પ્રવેશતુલ્ય બીજાઓથી મુક્ત અને અધ્યયન આદિનો પ્રવેશનો સંભવ નથી હોતો,
તપ અને સંયમ આદિ દ્વારા કર્મોના અભાવ સ્વતઃ જની શકે છે આથી તેમ
નામાં નિઃકર્મસ્થાનીયતા સિદ્ધ અને છે, ધ્યાતિયા કર્મોના ક્ષયથી નવા કર્મોના
આગમનની અસંભવતાથી એમનામાં એના પ્રવેશનો અભાવ છે ત્રીજા ભગ-
વતુલ્લ લઘણુસમુદ્રતુલ્ય યાયાલન્દિક સાધુ છે જેટલા સમયમાં બીના હાથની
રેખા શુષ્ક હોય છે જેટલા સમયથી લગાડી પાંચ રાત અને દિવસના સમયનું
નામ આદિ છન્દ માન્યુ છે આ છન્દ કાળનું ઉલ્લંઘન નહિ કરવું તે યયાલન્દ છે
આ કાળને અનુસાર જે ચાલે છે—પોતાની ચર્ચા કરવાવાળા છે તે યયાલન્દિક સાધુ
છે આ સાધુ ઉત્કૃષ્ટ રીતે પાંચ રાત દિવસ સુધી એક જાગમાં સ્થી શકે છે આ

પશ્ચમુનિસભ્યકો ગણો મરતિ, મ એવ ગણોઽમુ કલ્પં પ્રતિપ્યતે, એતે પ્રાયો જિન-
કલ્પિકલ્પકલ્પ પરિપાલ્યન્તિ, અયં ચાચાર્યાદેઃ શ્રુતાદિકઃ શૃક્ષાતિ કિન્તુ ન કસ્મૈ-
ચિત્ પ્રદદાતિ, અત એવ લવણોદધિસાદૃશ્ય પ્રવેશમત્ત્વેઽપિ નિર્ગમાસત્ત્વાત્ । ચતુર્થ-
ભગ્નસ્થઃ પ્રત્યેકબુદ્ધઃ, સ ચ ન કસ્મૈ ચિદ્ દદાતિ નાપિ પ્રતિશૃક્ષાતિ મનુષ્યક્ષેત્ર-
દિર્વિર્તિસમુદ્રવત્ પ્રવેશ-નિર્ગમોભયાભાવાત્ ।

તસ્ય પ્રથમભગ્નસ્થસ્થવિરકલ્પિકસ્ય શ્રુતદાનગ્રહણસમ્ભવેન સ્વરૂપમાહ—‘સ’
इत्यादि, हे शिष्य ! सोतोमध्यगतः प्रवेशनिर्गमप्रवाहान्तर्वर्ती स इदो यथा चाक्षो-
ही पालता है । ये मुनि जिनकल्पी के तुल्य आचारका पालन करते हैं ।
यह गण आचार्य आदिसे श्रुत आदिका अध्ययन तो करता है, परन्तु
अन्यके लिये वह उसे प्रदान नहीं करता है । इसीलिये इसको लवणोदधि
के तुल्य कहा है । क्योंकि कि इसमें ज्ञानादिकका प्रवेश होनेपर भी फिर
उससे उसका बाहिर निकलना-अन्यके लिये उसका प्रदान करना
नहीं होता है ।

चतुर्थ भगके अन्तर्भूत प्रत्येक बुद्ध है । वे न किसीसे ज्ञानादिकको
ग्रहण करते हैं और न किसीके लिये उसका प्रदान ही करते हैं । मनु-
ष्यक्षेत्रके बाहर रहे हुए समुद्रकी तरह उनमें प्रवेश और निर्गम दोनोंका
सर्वथा अभाव रहता है ।

પ્રથમ ભગકે અન્તર્ગત સ્થવિરકલ્પીકે શ્રુતકે આદાનપ્રદાનકા સમ્ભવ
હોનેસે સૂત્રકાર ઉસકે સ્વરૂપકો પ્રકટ કરતે હૈ—“સ” इत्यादि—वे शिष्य

यथा लवणं कल्पने पात्रं मुनिभ्योना समुदायश्च गणु पाणे छे आ मुनि जिनकल्पीनी
तुल्य आचारतु पालन करे छे आ गणु आचार्य आदिथी श्रुत आदिनु अध्ययन तो
करे छे, परंतु भीजने भाटे ते तेनु प्रदान करता नथी आ भाटे तेभने लवण-
सागरनी तुल्य गण्या छे कारण के तेमा ज्ञानादिकनो प्रवेश होवा छता यणु
तेमाथी બહાર નીકળતુ —અન્યને માટે તેનુ પ્રદાન થતુ નથી

ચોથા ભગના અન્તર્ભૂત પ્રત્યેક બુદ્ધ છે એ ન તો કોઈનાથી જ્ઞાનાદિકે
ગ્રહણ કરે છે ન કોઈને એ તેનુ પ્રદાન કરે છે મનુષ્યક્ષેત્રથી બહાર રહેતા
સમુદ્રની તરફ એનામા પ્રવેશ અને નિર્ગમ બન્નેનો સર્વથા અભાવ રહે છે

પ્રથમ ભગના અન્તર્ગત સ્થવિરકલ્પીમા શ્રુતના આવવા-જવાનો સભવ
હોવાથી સૂત્રકાર એના સ્વરૂપને પ્રગટ કરે છે “સ” इत्यादि એ શિષ્યને

મ્યસ્તયૈવ સ્તુ=આચાર્યઃ સર્વતઃ=સર્વપ્રકારેણ ઇન્દ્રિયનોન્દ્રિયોપશ્મરૂપયા ગુપ્તયા
ગુપ્તિસ્તુતીતિ પદયામાચાર્યેશ્વાન્યડપિ મુનયસ્તાદ્દશગુણસમ્પન્ના મયન્તીતિ નિર્દિષ્ઠતિ
—‘પદય’ સ્પાદિ, મહર્ષયઃ=મહાન્તથ તં શ્રુતયા મહર્ષયા મહાસયમિનઃ । પિચ્છ તે કં
શ્રુતોપમા મહામુનયાઃ । ય ચ પ્રજ્ઞાનવન્તઃ—અર્પણેણ જ્ઞાયતે પુણ્યતેડમેનેદં ચેતિ પ્રજ્ઞાનં,
પરસ્ય સ્વસ્ય ચામ્ભોકાદિવદ્વમાસકસ્વાત્ પ્રજ્ઞાનમ્=આગમસ્તદેપામસ્તીતિ પ્રજ્ઞાનવન્તઃ
=આગમતત્ત્વપરિજ્ઞાનકુશલા ।

કો સચોષિત કરતે હુપ કહતે હે કિ હે શિષ્ય ! જિસ પ્રકાર પ્રવાહકે
મધ્યવર્તી—જિમસે દુસરા પ્રવાહ નિકલતા હૈ ઓર જિસમેં દુસરા પ્રવાહ
આકર મિલતા હૈ એસા દ્વ અક્ષોમ્ય હોતા હૈ ઁસી પ્રકાર ઘડ આચાર્ય
મી સર્વ પ્રકારસે ઇન્દ્રિય ઓર નોન્દ્રિયોકિ ઉપશ્મરૂપ ગુપ્તિસે સદા
રક્ષિત રહા કરતે હૈ । આચાર્યકે સમાન અન્ય મુનિજન મી જો ઇસી
પ્રકારકે ગુણોસે સમ્પન્ન હોતે હૈ ઁન્હેં ઇસી ઁગકે અન્તર્ગત હી સમજના
ચાહિયે । ઇસી વાતકો “પદયે” સ્પાદિ સુપ્રાંશસે પ્રકટ કરતે હૈ—
પિચિષ્ટ સંયમકા જો આરાધન કરતે હૈ ચે મહર્ષિ કહલાતે હૈ । યે મહર્ષિ
શ્રુતકે તુલ્ય હોતે હૈ । યે પ્રજ્ઞાનસંપન્ન હોતે હૈ । પ્રજ્ઞાન શબ્દકા અર્થ
યહાં આગમ હૈ । કયોં કિ પ્રકાશ આવિકી તરહ ઇસીકે દ્વારા સ્વ ઓર
પરકા વર્ણાય—રીતિસે બોધ હોતા હૈ । યહ આગમ જિનકે હોતા હૈ—અર્થાત્
જો ઇસ આગમ તત્ત્વકે જ્ઞાતા હોતે હૈ ચે પ્રજ્ઞાનવાન્ હૈ ।

અભિધન કરીને કહે છે કે-હે શિષ્ય ! જેમ પ્રવાહની વચ્ચા રહેલા દ્વ કે
જેમથી બીજે પ્રવાહ નીકળે છે અને જેમ બીજે પ્રવાહ આવીને મળે છે અક્ષોમ્ય
હોય છે તેજ રીતે જે આચાર્ય પણ સ્વ પ્રકાશથી ઇન્દ્રિય અને નેન્દ્રિયના ઉપ-
શ્મરૂપ ગુપ્તિથી સદા રક્ષિત રહ્યા કરે છે । આચાર્યની સમાન બીજા મુનિજન
પણ જે આ પ્રકાશના સુધાથી સંપન્ન હોય તે બધાના જાગના અન્તર્ગતજ સમજવા-
ના વાતને “પદય” ઇત્યાદિ સુપ્રાંશથી પ્રકટ કરે છે—વિશિષ્ટ સંયમત્વ જે
આરાધન કરે છે તે મહર્ષિ કહેવાય છે । જે મહર્ષિ હોના અભન હોય છે,
જે પ્રજ્ઞાનસંપન્ન હોય છે પ્રજ્ઞાન શબ્દનો અર્થ અર્થ આગમ છે કેમ કે પ્રકાશ
આદિની માફક જેમના દ્વારા સ્વ અને પરનો વચ્ચાર્થ રીતથી બોધ થાય છે
આ આગમ જેનામાં હોય છે । અર્થાત્ જે આગમ તત્ત્વના અણુકાર છે તે
પ્રજ્ઞાનવાન્ છે

કેચિત્તાદૃશા અપિ મુનયો વોવ્યાર્યસ્ય દુરવગાહિત્વેન ચ ક્વચિદ્ હેતુદા-
હરણાદીના સમ્યગ્જ્ઞાનાસમ્ભવાત્સશેરતે ન સમ્યક્ત્વમાપ્નુવન્તીતિ તન્નિરાસાયાદ-
' પ્રવુદ્ધાઃ ' ઇત્યાદિ, પ્રવુદ્ધાઃ=પ્રકર્ષેણ વુદ્ધાઃ=તીર્થંકરાજાનુસારેણ સમ્યક્પરિણી-
લિતતત્ત્વાઃ, તાદૃશા અપિ કર્મણો ગુરુત્યાદિ સાવધાચરણાન્નોપરમેરન્ તદ્વદ્ધુડાસાયાહ

શબ્દા—પ્રજ્ઞાનસમ્પન્ન મુનિ ભી વોધ્ય—સમજાને યોગ્ય પદાર્થ જવ દુર-
વગાહ હોતા હૈ—વડી મુશ્કિલસે જાનનેમ્ આતા હૈ, યા કહીં ૨ પર હેતુ
ઉદાહરણાદિકકે સ્વરૂપકા વાસ્તવિક ખાન ઉન્હેં નહીં હોતા હૈ, ઉસ પદાર્થ
કે સ્વરૂપમ્ સદેહશીલ હો જાતે હૈ તેસી હાલતમ્ તો વે સમકિત કે લાભ
સે હી વંચિત રહતે હોંગે ?

સમાધાન—યહ વાત નહીં હૈ । ઇસીકા સ્પષ્ટીકરણ સૂત્રકારને “પ્રવુદ્ધા”
ઇસ પદસે કિયા હૈ । વોધ્ય અર્થ દુરવગાહ હોને પર ભી યા હેતુ ઓર
ઉદાહરણાદિક કા સમ્યગ્ પરિજ્ઞાન ન હોને પર ભી વે ઉસ પદાર્થમ્
સંદેહશીલ નહીં હોતે હૈ । ક્યોં કિ યે તીર્થંકર ભગવાનકી આજ્ઞાકે અનુ-
સાર હી અપની પ્રવૃત્તિ રખતે હૈ । જો વાત સમજામ્ નહીં આતી હૈ,
ઉસ પર યે અવિશ્વાસી નહીં હોતે હૈ । ઉનકી આજ્ઞાકે માફિક હી યે
તત્ત્વોંકા પરિશીલન કરતે હૈ । ઉન પર સદા દૃઢ વિશ્વાસ રખતે હૈ ।
ઇસીકા નામ સમકિત હૈ ।

શબ્દા — પ્રજ્ઞાનસમ્પન્ન મુનિ પણ, બોધ્ય—સમજવો યોગ્ય પદાર્થ ન્યારે
દૂર હોય છે અને ઘણી મુશ્કેલીથી જાણવામા આવે છે અથવા કયાંક કયાંક
હેતુ ઉદાહરણાદિકના સ્વરૂપનુ વાસ્તવિક જ્ઞાન તેને હોતું નથી એ સમય એ
પદાર્થના સ્વરૂપમાં સંદેહશીલ અને છે, એવી હાલતમા તેઓ સમકિતના લાભથી
વચિત રહેતા હશે ?

ઉત્તર—આ વાત નથી, આનુ સ્પષ્ટીકરણ સૂત્રકારે “ પ્રવુદ્ધા ” આ પદથી
કહેલ છે બોધ્ય અર્થ છેટ હોવા છતાં પણ અથવા હેતુ અને ઉદાહરણનું
સમ્યગ્ પરિજ્ઞાન ન હોવાથી પણ તેઓ એ પદાર્થમા સંદેહશીલ બનતા નથી,
કારણ કે તેઓ તીર્થંકર ભગવાનની આજ્ઞા અનુસાર જ પોતાની પ્રવૃત્તિ કરે છે
જે વાત સમજવામા નથી આવતી એના પર એ અવિશ્વાસી નથી બનતા તેમની
આજ્ઞાની માફક જ તેઓ તત્ત્વોનું પરિશીલન કરે છે એના પર સદા દૃઢ વિશ્વાસ
રાખે છે. તેનું નામ જ સમકિત છે

—‘આરમ્ભે’ત્યાદિ, આરમ્ભોપરતાઃ આરમ્ભેભ્યઃ=પચન-પાચનાવિસાધવ્યાપારેભ્યઃ
 ઉપરતા=વિરતાઃ સ્પષ્ટકારમ્મા મનન્તિ, एतत्=यत्पूर्वमुक्तं मया बह्यमाणं वा एत
 त्सर्वं सम्यक्=समीचीनमस्तीति यूयं पश्यत । बह्यमाणमेवाह—‘कालस्ये’त્યાदि,
 ये पूर्वोक्ता महर्षयः कालस्य=समाधिमरणस्य कालक्षया=स्पृहया परिभ्रमन्ति=रत्न-
 प्रयत्ने मोक्षमार्गे सर्वत उद्यमयन्ति । आचार्या मुनयो वा निर्मया अभ्योभ्या इदोपमा
 सन्तो विचरन्तीत्याश्रयः । ‘इति’—अधिकारसमाप्ता, यवीमीत्यस्यार्थस्तुक्त एवा॥ १॥

શાક્ત—પેસે હોને પર ખી કર્મકી દુર્નિષ્ઠારતાસે યદિ યે સાધય
 વ્યાપારોં કે આચરણસે નિવૃત્ત ન હોંતો હસકા કયા ઉત્તર હૈ ?

સમાધાન—યહ શાક્ત ઠીક નહીં હૈ, કારણ કિ યે પચનપાચનાવિરુપ
 સાવધ વ્યાપારોંસે સદા ચિરકત હી રહતે હૈં । માના કિ કર્મોંકા ઉદય
 દુર્નિષ્ઠાર હૈ, તો ખી યે પચનપાચનાવિરુપ સાવધ વ્યાપારોંમેં કષ્ટગત
 પ્રાણ હોને પર ખી પ્રવૃત્તિશીલ નહીં હોતે હૈં—હમ કથનપર આપકો વિશ્વાસ
 રખના ચાહિયં । યે પૂર્વોક્ત મહર્ષિજન સમાધિમરણરુપ કાલકી ચાહના
 સે તપા આગે ખી જો વિષય કહા જાનેવાલા હૈ ઉમ પર યહ સત્ય હૈ,
 પેમા માન કર રત્નપ્રયરુપ મુક્તિકે માર્ગમેં મર્થ પ્રકારસે ઉદયમગ્નીલ
 રહતે હૈં ।

માવાર્થ —આચાર્ય અથવા મુનિજન મોક્ષમાર્ગમેં નિર્મય ઓર અ
 સોગ્ય હો કર વિચરણ કરતે હૈં હસી લિયે પૂર્વોક્ત પ્રકારસે હન્નેં દ્રવ્યકી
 ઉપમા કી ગઈ હૈ । સૂત્રસ્થ કિનિ શબ્દ અધિકારકે સમાપ્તિ ક મૂલનાર્થ હૈ ।

શકા.—આમ હોવા છતાં પણ કમના હોયોને લઈ કયા સાવધ
 પાશના આચરણથી નિવૃત્ત ન થાય તો આને કયો ઉત્તર છે ?

ઉત્તર—આ શકા ઠીક નથી કારણ કે એ પચનપાચન આદિ આવધ
 આચરણથી સદા ચિરકત રહે છે કમોના ઉદયનુ કારણ નિવારી શકાતું નથી
 તો પણ એ પચન પાચનાવિરુપ આવધ વ્યાપારોમા પ્રવળ જ્વાળી ઉગરી જડી
 મુખી પણ પ્રવૃત્તિશીલ થતા નથી. આ કથન ઉપર વિશ્વાસ રાખવો એકજો.
 આ પૂર્વોક્ત મહર્ષિ જન મુખાસિ મરણરુપ કાળની આક્રમણથી તથા આગળ પણ એ
 વિષય કહેવામાં આવનાર છે એ રીતે આ મત્ત છે એમ માની રત્નપ્રયરુપ મુક્તિ
 માર્ગમાં મુલ પ્રકારે ઉપગમીલ રહે છે

માવાર્થ —આવાય અથવા મુનિજન મોક્ષમાર્ગમા નિર્મય અને ઇચ્છા
 વગરના બની વિચરણ કરે છે આથી જ પૂર્વોક્ત પ્રકારથી એમને દહની ઉપમા

આચાર્યાધિકારમભિધાય શિષ્યકર્તવ્યમધુના દર્શયતિ-‘વિનિગિચ્છ’ ઇત્યાદિ
 મૂલમ્-વિતિગિચ્છસમાવન્નેણં અપ્પાણેણં નો લહ્હ સમાહિં,
 સિયા વેગે અણુગચ્છંતિ અસિયા વેગે અનુગચ્છંતિ,અણુગચ્છમાણેહિં
 અણુગચ્છમાણે કહં ન નિવિવ્જ્જે ॥ સૂ. ૨ ॥

છાયા—વિચિકિત્સાસમાપન્નેનાઽઽત્મના ન લભતે સમાધિં, સિતા વૈકેઽનુ-
 ગચ્છન્ત્યસિતા વૈકેઽનુગચ્છન્તિ, અનુગચ્છદ્ધિરનનુગચ્છન્ કથં ન નિવિઘેત ॥મ્ર૦૨॥

ટીકા—‘વિચિકિત્સે’ત્યાદિ, ‘મુનિઃ’ વિચિકિત્સાસમાપન્નેન-વિચિકિત્સા
 =શક્તિ તા સમાપન્નઃ=સમ્=સમ્યગ્દેશતઃ સર્વતથાપન્નઃ=પ્રાપ્તઃ=વિચિકિત્સાસમાપન્નસ્તેન
 આત્મના સમાધિમ્=અન્તઃકરણશાન્તિ ન લભતે=ન પ્રાપ્નોતિ, સંશયાત્માનો હિ મોહની-

“બ્રવીમિ” પદકા અર્થ પહિલે કહી ઉદ્દેશોમે પ્રકટ ક્રિયા જા ચુકા હૈ ॥મ્ર૦૧॥

આચાર્ય મહારાજ કા અધિકાર કહ કર અવ સૂત્રકાર શિષ્યજનકે
 કર્તવ્યકા કથન કરતે હૈ-“વિતિગિચ્છ” ઇત્યાદિ ।

મુનિકો જિનેન્દ્ર ઉપદિષ્ટ તત્ત્વમેં શક્તાશીલ નહીં હોના चाहिये, क्यों
 कि शकावृत्ति रखनेसे चित्तमें शांति नहीं आ सकती है । इसी बातको
 सूत्रकार प्रदर्शित करते हैं । विचिकित्सा शब्दका अर्थ संशय है । यह
 संशय मुनिके चित्त में किसी भी तत्त्वमें चाहे देशरूपसे हो चाहे सर्वरूपसे
 हो तो वह उसके चित्तमें कभी चैन नहीं लेने देता है ।

क्यों कि संशयका स्वभाव भी इसी प्रकारका है, जो उदित होने
 पर आत्माको इतस्तनः परस्पर विरुद्ध अनेक विषयोंकी ओर दौड़ाता

આપવામા આવી છે સૂત્રસ્થ ઇતિ શબ્દ અધિકારની અમાપ્તિની સૂચનારૂપ છે

“બ્રવીમિ” પદનો અર્થ પહેલા ઘણા ઉદ્દેશોમા પ્રગટ કરવામા આવી
 ગએલ છે ॥ સૂ. ૧ ॥

આચાર્ય મહારાજના અધિકારને કહી સૂત્રકાર હવે શિષ્યજનના કર્તવ્યનું
 વર્ણન કરે છે “વિતિગિચ્છ” ઇત્યાદિ

મુનિએ જિનેન્દ્ર ઉપદિષ્ટ તત્ત્વમા શકાશીલ બનવું ન જોઈએ કેમ કે
 શકિતવૃત્તિ રાખવાથી ચિત્તમા શાન્તિ આવી શકતી નથી આજ વાત સૂત્રકાર
 પ્રગટ કરે છે વિચિકિત્સા શબ્દનો અર્થ સંશય છે આ સંશય મુનિના ચિત્તમા
 કોઈપણ તત્ત્વમા ચાહે દેશરૂપમા હોય ચાહે સર્વરૂપથી હોય સંશય તેના ચિત્તને
 ક્યારેય ચેન લેવા દે નહિ કેમ કે સંશયનો સ્વભાવ એ પ્રકારનો હોય છે કે તેના
 ઉદય થતા આત્માને-ઇતસ્તત્ પરસ્પર વિરુદ્ધ અનેક વિષયોની તરફ દોર્યા કરે

ક્લિસાયા ન સમ્ભવઃ, સ એવ દેશકાલસામાવગ્યવહિતસ્તુ સશયવિપયો ભવતિ । દેશતો વિપ્રકૃષ્ટમેર્વાદિવિપયે, કાલતો વિપ્રકૃષ્ટેઋષભદેવાદી, સ્વભાવતો વિપ્રકૃષ્ટે પરમાણ્વાદિવિપયે ચ સન્દેહો જાયતે । સંશયાત્મા ગુરુણોપદિષ્ટોઽપિ સમ્યક્ત્વરૂપા વોધિં ન કદાપિ પ્રાપ્નોતીત્યાલોચ્ય પૂર્વોક્તવિપયે મુનિઃ કદાચિદપિ સંશયં ન કુર્યાદિત્યાશયઃ ।

જિસ પદાર્થકા બોધ અનાયાસસે હોતા હૈ, ઉસમેં भी સંદેહકે લિયે જગહ નહીં હૈ; પરન્તુ યહી સુખાધિગમ પદાર્થ જવ સ્વભાવ, દેશ ઓર કાલસે વિપ્રકૃષ્ટ (દૂર) હો જાતા હૈ તવ ઇસમેં भी સંદેહશીલ પ્રાણિયોંકો સંદેહ હોને લગતા હૈ । દેશસે વિપ્રકૃષ્ટ મેઋ આદિ પદાર્થ હૈ, કાલસે વિપ્રકૃષ્ટ ઋષભદેવાદિ તીર્થદૂર હૈ । સ્વભાવ અપેક્ષા દૂરવર્તી પરમાણુ આદિ પદાર્થ હૈ । ઇનમેં અજ-સંદેહશીલ વ્યક્તિયોંકો સંદેહ હોનેમેં કોઈ આશ્ચર્ય જૈસી વાત નહીં હૈ । સંશયાત્મા વ્યક્તિ ગુરુકે દ્વારા ઉપદિષ્ટ હોનેપર भी સમ્યક્ત્વરૂપ બોધિકે લાભસે વંચિત બના રહતા હૈ । ગુરુદેવ ઉસે હર તરહસે પ્રત્યેક પદાર્થકા સ્વરૂપ અચ્છી રીતિસે સમજાતે भी હૈ તો भी ઉનકે ઉપર ઉસકી સન્ધી શ્રદ્ધા સજગ નહીં હોતી હૈ, ઇસ પ્રકાર વિચાર કરકે મુનિકા કર્તવ્ય હૈ કિ વહ વીતરાગ પ્રભુ દ્વારા પ્રતિપાદિત ધર્મ અધર્માદિ દ્રવ્યોંમેં તથા તપ ઓર સયમાદિક આત્મહિત સાધક વિષયોંમેં સંદેહ કમી भी ન કરે ।

પદાર્થનો બોધ અનાયાસે થાય છે તેમા પણ સંદેહને માટે સ્થાન નથી, પરંતુ આ સુખાધિગમ પદાર્થ ત્યારે સ્વભાવ, દેશ અને કાળથી દૂર થાય છે ત્યારે આમા પણ સંદેહશીલ પ્રાણીઓને સંદેહ થવા લાગે છે દેશથી દૂર મેઋ આદિ પદાર્થ છે અને કાળથી દૂર ઋષભાદિ તીર્થકર છે સ્વભાવ અપેક્ષા દૂર વર્તી પરમાણુ આદિ પદાર્થ છે આમા સંદેહશીલ વ્યક્તિઓને સંદેહ થવામા કોઈ આશ્ચર્ય જેવી વાત નથી સંશય આત્મા વ્યક્તિ કે જેને ગુરુદ્વારા ઉપદેશ મળ્યો હોય છે છતાં પણ સમ્યક્ત્વરૂપ બોધિના લાભથી વચ્ચિત રહે છે ગુરુદેવ તેને હરેક પ્રકારે પ્રત્યેક પદાર્થનું સ્વરૂપ સારી રીતે સમજાવે છે તો પણ તેના ઉપર સારી શ્રદ્ધા નળગતી નથી આ પ્રકારે વિચાર કરીને મુનિનું કર્તવ્ય છે કે તે વીતરાગ પ્રભુદ્વારા પ્રતિપાદિત ધર્મ અધર્માદિ દ્રવ્યોમા તથા તપ અને સયમાદિક આત્મહિત સાધક વિષયોમા સંદેહ કદી પણ ન કરે

કિત્સાયા ન સમ્ભવઃ, સ એવ દેશકાલસ્ત્વભાવવ્યવહિતસ્તુ સશયવિષયો ભવતિ । દેશતો વિપ્રકૃષ્ટમેર્વાદિવિષયે, કાલતો વિપ્રકૃષ્ટે ઋષભદેવાદૌ, સ્વભાવતો વિપ્રકૃષ્ટે પરમાણ્વાદિવિષયે ચ સન્દેહો જાયતે । સશયાત્મા ગુરુણોપદિષ્ટોઽપિ સમ્યક્ત્વરૂપાં બોધિં ન કદાપિ પ્રાપ્નોતીત્યાલોચ્ય પૂર્વોક્તવિષયે મુનિઃ કદાચિદપિ સંશયં ન કુર્યાદિત્યાશયઃ ।

જિસ પદાર્થકા બોધ અનાયાસસે હોતા હૈ, ઉસમ્નેં ભી સદેહકે લિયે જગહ નહીં હૈ; પરન્તુ યહી સુખાધિગમ પદાર્થ જબ સ્વભાવ, દેશ ઓર કાલસે વિપ્રકૃષ્ટ (દૂર) હો જાતા હૈ તબ હસમ્નેં ભી સદેહશીલ પ્રાણિયોંકો સંદેહ હોને લગતા હૈ । દેશસે વિપ્રકૃષ્ટ મેરુ આદિ પદાર્થ હૈં, કાલસે વિપ્રકૃષ્ટ ઋષભદેવાદિ તીર્થદૂર હૈં । સ્વભાવ અપેક્ષા દૂરવર્તી પરમાણુ આદિ પદાર્થ હૈં । इनमें अज्ञ-सदेहशील व्यक्तियोंको सदेह होनेमें कोई आश्चर्य जैसी बात नहीं है । सशयात्मा व्यक्ति गुरुके द्वारा उपदिष्ट होनेपर भी सम्यक्त्वरूप बोधिके लाभसे वंचित बना रहता है । गुरुदेव उसे हर तरहसे प्रत्येक पदार्थका स्वरूप अच्छी रीतिसे समझाते भी हैं तो भी उनके ऊपर उसकी सच्ची श्रद्धा सजग नहीं होती है, इस प्रकार विचार करके मुनिका कर्तव्य है कि वह वीतराग प्रभु द्वारा प्रतिपादित धर्म अधर्मादि द्रव्यों में तथा तप और संयमादिक आत्महित साधक विषयोंमें सदेह कभी भी न करे ।

પદાર્થના બોધ અનાયાસે થાય છે તેમા પણ સ દેહને માટે સ્થાન નથી, પરંતુ આ સુખાધિગમ પદાર્થ જ્યારે સ્વભાવ, દેશ અને કાળથી દૂર થાય છે ત્યારે આમા પણ સ દેહશીલ પ્રાણીઓને સ દેહ થવા લાગે છે દેશથી દૂર મેરુ આદિ પદાર્થ છે અને કાળથી દૂર ઋષભાદિ તીર્થકર છે સ્વભાવ અપેક્ષા દૂર વર્તી પરમાણુ આદિ પદાર્થ છે આમા સ દેહશીલ વ્યક્તિઓને સ દેહ થવામા કોઈ આશ્ચર્ય જેવી વાત નથી સશય આત્મા વ્યક્તિ કે જેને ગુરુદ્વારા ઉપદેશ મળ્યો હોય છે છતાં પણ સમ્યક્ત્વરૂપ બોધિના લાભથી વચિત રહે છે ગુરુદેવ તેને હરેક પ્રકારે પ્રત્યેક પદાર્થનું સ્વરૂપ સારી રીતે સમજાવે છે તો પણ તેના ઉપર સાચી શ્રદ્ધા જાગતી નથી આ પ્રકારે વિચાર કરીને મુનિનું કર્તવ્ય છે કે તે વીતરાગ પ્રભુદ્વારા પ્રતિપાદિત ધર્મ અધર્માદિ દ્રવ્યોમા તથા તપ અને સંયમાદિક આત્મહિત સાધક વિષયોમા સદેહ કદી પણ ન કરે

યદ્વા—‘ચિત્તિગિચ્છ’ત્વસ્ય ‘ચિદ્વજ્જુગુપ્સા’ ઇતિચ્છાયા । તન ચિદ્
જ્જુગુપ્સાસમાપન્નેન ચિદ્વાર્તા=મુનોનાં પરિવ્રાવસંસારાસારભાવાનાં જુગુપ્સા=મનદ્વરઃ
ચિદ્વજ્જુગુપ્સા=સ્નાનાચક્રરણેન ગામ્રસ્ય મહોપદસત્ત્વદુર્ગંથસ્વાદિકમ્પનેન સાપૂનાં
નિન્દા વાં સમાપન્નેન=સંપ્રાપ્તન=અનગારવિરસ્કારપરાયણેન આત્મના=અન્તઃકરણેન
પરતૈર્થિકઃ સમાર્પિ=રત્નપ્રયરૂપ ન સમતે ।

કથમ સમાર્પિ સમતઃ ? ઇતિ પ્રશ્ને ત વર્ણયતિ—‘સિતા’ ઇત્યાદિ, એક=કથન
લઘુકર્માણઃ સિતાઃ સ્વપ્નાદિવિષયાનુરાગણ પુષ્પાદિસ્તદ્દન ષ ષદ્વા અપિ સંસારિ
ણા, ‘વા’ દ્વયોઽપ્રાપ્યર્થકઃ, અનુગચ્છન્તિ લઘુકર્મતાષીધકુરગભપરાદિમરૂપિ

અથવા—“ચિત્તિગિચ્છ” ઇસકી સંસ્કૃત છાયા “ચિદ્વજ્જુગુપ્સા”
પેસી મી હોતી હૈ । ઇસકા યદ્ અર્થ હોતા હૈ ફિ ચિદ્વાન મુનિ ફિ
જિન્દગી નહે પ્રકારસ માસારિક પ્રત્યેક પદાર્થકા યાસ્તચિક સ્વરૂપ જાન
લિયા હૈ, જો સંસારકી અસાગતાસે ઋચ્છી તરફસે પરિચિત હો પુકે હૈ
પેસે મુનિક નિન્દા, ઘુણા આદિ કરનેયાહે અન્યમતી જન નીચ ગોધ્રાદિ
કક પંથક હોતે હૈ ઓર રત્નપ્રયરૂપ સમાર્પિકી પ્રાસિક છામસે સદા
વચિત પને રહતે હૈ ।

રત્નપ્રયરૂપ સમાર્પિકે પ્રાપક (પ્રાપ્ત કરનવાળે) કૌન જીવ હોતે
હૈ, ઇસે પ્રકટ કરનકે લિય ટીકાકાર “સિતા” ઇત્યાદિ સૂચનાશકી
બ્યાખ્યા કરતે હૈ, કોઈ એક લઘુકર્મી સંસારી જીવ યદ્યપિ શબ્દાદિક
વિષયોકે અનુરાગસે અથવા પુષ્પાદિકોકે સ્નેહસે ઝનમે મોહિત પને રહતે
હૈ—ઝનકે મમત્યમે કસે રહતે હૈ, તો મી લઘુકર્મી—કર્મ અલ્પ
હોનેસે તાર્પકુર આર ગણધરાદિ પ્રવક્તા ઉપદેશકા અનુસરણ કરતે હૈ ।

અથવા—“ચિત્તિગિચ્છ” એવી વસ્તુ છે છાયા ચિદ્વજ્જુગુપ્સા પદ્ય થાય
છે. એને અર્થ એવો થાય છે કે ચિદ્વાન મુનિઆકે એવો સંસારની બંધાસાથી
સારી રીતે પરિચિત બની જાય છે, એવો એ સારી રીતે સાંસારિક પ્રત્યેક પદ્ય-
કર્મનુ યાસ્તચિક સ્વરૂપ બાળી લીધું છે તેઓની નિંદા ધુણા કરવાવાળા અન્યમતી
નીચ ગોધ્રાદિકના બધક થાય છે અને રત્નપ્રયરૂપ સમાર્પિકની પ્રાસિક છામથી તે
સદા વચિત બની રહે છે.

રત્નપ્રયરૂપ સમાર્પિકે પ્રાપ્ત કરવાવાળા કેવા લુપ્ત હોય છે—આ પ્રગટ કરવા
માટે ટીકાકાર “સિતા” ઇત્યાદિ સૂચનાની બ્યાખ્યા કરે છે કે એક લઘુકર્મી
સંસારી લુપ્ત એ કે શબ્દાદિક વિષયોના અનુસરણથી અને પુષ્પાદિકોના સ્નેહથી
તેમાં મોહિત બની રહે છે તેના મમત્યમાં ફસી રહે છે તો પદ્ય લઘુકર્મી
—કર્મ અલ્પ—હોવાથી તે ટીકાકાર અને અનુપ્રસાદિ એ કહેલ ઉપદેશનુ

તમુપદેશમનુસરન્તિ । एवं वा=अथवा एके=संशयवर्जिता असिता:=विषय-पुत्र-
दाराद्यनुरागैरवद्धा अनगारा अनुगच्छन्ति, अत्र वा शब्दः पक्षान्तरद्योतकः ।

આચાર્યમાર્ગાનુગામિનઃ પુરુષસ્ય ભવતિ સમ્યક્તાધિગમ ઇત્યાહ—‘અનુગ-
ચ્છદ્ધિ’ રિત્યાદિ, અનુગચ્છદ્ધિઃ=આચાર્યપ્રતિપાદિતોપદેશાનુગામિભિઃ સિતૈરસિતૈર્વા
પ્રેરિતઃ સઃ અનુગચ્છન્=સાવધાચારચારિણમનનુસરન્ સાવધવ્યાપારમકુર્વન્નિત્યર્થઃ,
કથં ન નિર્વિદ્યેત=સર્વવિષયવિરતિરૂપવૈરાગ્ય કથં ન પ્રાપ્નુયાત્? અપિ તુ પ્રાપ્નુયાદેવ ।

इसी तरह जो कोई एक सशयविहीन होते हैं वे असित-पंचेन्द्रियों के
विषयों एवं पुत्र पत्नीके अनुराग से विमुख हो कर अनगार अवस्था-
संपन्न होते हैं और तीर्थङ्करादिप्रणीत उपदेशके अनुसार अपनी प्रवृत्ति
चालू रखते हैं । यहां सूत्रस्थ “वा” शब्द दूसरे पक्षका द्योतक है ।

જો આચાર્યકે બતાવે હુણ માર્ગકે અનુસાર પ્રવૃત્તિ કરતે હૈં ઉન્હેં
સમ્યક્ત્વકા લાભ હોતા હૈ—હસ વાતકો “અનુગચ્છદ્ધિઃ” ઇત્યાદિ સૂત્રાંશ
દ્વારા સૂત્રકાર પ્રકટ કરતે હૈં । ચાહે સિત હૈં, ચાહે અસિત હૈં, જો આચા-
ર્યદ્વારા પ્રદત્ત ઉપદેશકે અનુરૂપ ચલતે હૈં, ઉન્હેં રત્નત્રયરૂપ સમાધિકા
લાભ હોતા હૈં ઓર इनके द्वारा उस ओर प्रवृत्ति करनेके लिये प्रेरित
કિયા ગયા અન્ય-દૂસરા વ્યક્તિ મી, જો સાવધ વ્યાપારમેં પ્રવૃત્તિશીલ
વ્યક્તિયોં કા ન અનુસરણ કરતા હૈં ઓર ન ઉસે સ્વયં મી કરતા હૈં,
સર્વ વિષયોંકી વિરતિરૂપ વૈરાગ્યકો ધારણ ક્યોં નહીં કર સકતા હૈં?
અર્થાત્ અવશ્ય ધારણ કર સકતા હૈં । આચાર્યપ્રદર્શિત માર્ગ પર ચલ-

અનુસરણ કરે છે, એ જ રીતે જે કોઈ એક સશયવિહીન હોય છે તે પચેન્દ્રિ-
યોના વિષયો અને પુત્ર અને પત્નિના અનુરાગથી વિમુખ બની અણગાર
અવસ્થા-સંપન્ન બને છે અને તીર્થંકરાદિપ્રણીત ઉપદેશ-અનુસાર પોતાની પ્રવૃત્તિ
ચાલુ રાખે છે

આચાર્યે જતાવેલ માર્ગ અનુસાર જે પ્રવૃત્તિ કરે છે એને સમ્યક્ત્વનો
લાભ થાય છે આ વાતને “અનુગચ્છદ્ધિ” ઇત્યાદિ સૂત્રદ્વારા સૂત્રકાર પ્રગટ
કરે છે. આચાર્યદ્વારા આપેલા ઉપદેશને અનુરૂપ ચાલે છે તેને રત્નત્રયરૂપ
સમાધિનો લાભ થાય છે અને તેના દ્વારા એ તરફ પ્રવૃત્તિ કરવા માટે પ્રેરિત
ઝરાયેલ બીજી વ્યક્તિ પણ જે સાવધ વ્યાપારમા પ્રવૃત્તિશીલ વ્યક્તિઓનું અનુ-
સરણ કરતા નથી અને પોતે પણ ડરતા નથી, તે સર્વ વિષયોની વિરતિરૂપ
વૈરાગ્યને ધારણ કેમ કરી શકતા નથી? અર્થાત્-અવશ્ય ધારણ કરી શકે છે.

આચાર્યમાગૌનુયાયી શુદ્ધાકાદ્વાદિક્ષમિધ્યાત્વં નિશ્ચય સમ્યક્ત્વં પ્રાપ્નુયાદેવત્યર્થઃ॥

યદ્વા—અનુગચ્છન્નિ=આચાર્યોક્ત જ્ઞાનસિદ્ધિ કૈશ્ચિત્ત્વમરીતિપાછનનિપયે
ષાપદિષ્ટા મુનિ, જ્ઞાનઅનુદયાદ્બુદ્ધિમાન્થેન ચ અનુગચ્છન્ મનસ્પનવધારયન્ ક્ષયં
ન નિર્વિષેત; અપિ તુ નિર્વિષેત=પદ્માચાર્ય પ્રાપ્નુયાદેવત્યર્થઃ । પ્રાપ્તિર્નિર્વેદશ્ચ ચતસિ
પરિચિન્તયતિ યદ્દશમમધ્યાઽસ્મિ, ન સયમો મ વર્તેતે । અતઃ એવ સમ્યાહપદિષ્ટમપિ
કર્તું ન શ્ચન્યમિત્યાદિ । એવંવિષયશ્ચાષાપમતિપન્નં સિત્તમસિદ્ધં વાઽઽચાર્ય આશ્વા-
નેવાલા પ્રાણી શક્ત, કાંક્ષા આદિરૂપ મિધ્યાત્વ કા વમન કર-ઉસે છોડ
કર સમ્યક્સ્થકો પ્રાપ્ત કર હી છેતા હૈ ।

અથવા—આચાર્યપ્રતિપાદિત સિદ્ધાન્ત કો જાનનેવાલે કિત્તનેક
મનુષ્યો યા મુનિયોશ્ચારા સંયમકી રીતિકે પાલનેકે વિષયમેં ઉપદિષ્ટ
મુનિ જ્ઞાનકે અનુદયસે અથવા બુદ્ધિકી મંદતાસે આચાર્ય પ્રતિપાદિત
સિદ્ધાન્તકા પદાવલ પાલક ન હોનેસે કયા સ્થિત નહીં હોતા હૈ ? અર્થાત્
અવદ્ય સ્થિત હોતા હૈ ।

આચાર્ય—પ્રેરિત હોને પર મી જય યહ યથાચત્ સંયમ અથવા તપકા
આરાધક નહીં હો પાતા હૈ ઉસ સમય હસે એક પ્રકારકી આત્મગ્થાનિ
હોતી હૈ । ઉસ અવસ્થામેં યહ વિચારતા હૈ કિ મેં અભવ્ય દુ, સંયમકા
પાલક મેં નહીં હો સક્તા; યહી કારણ હૈ કિ યહ વિષય મુક્તે પાર ૨ સમ
જ્ઞાયા જાતા હૈ, આચાર્ય મુક્તે સમજાનેમેં જરા સી મી કરકસર નહીં
રક્ષતે હૈ ફિર મી મેં યથાચત્ રીતિસે ઠનકે કહ પ્રનુસાર ચલનમેં અસ-

આચાર્યે સૂત્રવેદ્ય ભાગ ઉપર બાલવાવાળા પ્રાણી શકા, અજાણ આદિરૂપ મિધ્યા
ત્વને દૂર કરી-જેને ઇચ્છી સમ્યક્ત્વને પ્રાપ્ત કરી લે છે.

અથવા—આચાર્ય પ્રતિપાદિત સિદ્ધાન્તને બાલવાવાળા કેટલાક મનુષ્યો અને
મુનિઓદ્વારા કથમની રીતના પાલનના સ્થિતિમાં ઉપદિષ્ટ મુનિ જ્ઞાનના અનુદયથી
અને બુદ્ધિની મંદતાથી આચાર્ય પ્રતિપાદિત સિદ્ધાન્તનો યથાવત્ પાલક ન હોવાથી
તું ખિત નથી યતો ? અર્થાત્ અવસ્થા ખિત થાય છે

આવાર્થ—પ્રેરિત હોવા છતાં પણ આચાર્યે તે યથાચત્ સંયમ અને તપને
આરાધક બની શકતો નથી ત્યારે તેને એક પ્રકારની આત્મગ્થાનિ થાય છે આ
અવસ્થામાં એ વિચારે છે કે તું અભવ્ય હું સંયમનો પાલક તું બની શકતો
નથી, એ જ કારણ છે કે આ વિષય અને વારંવાર નમસ્કરવામાં આવે છે, આચાર્ય
અને સમજાવવામાં જરા પણ ક્વચર સખતા નથી છતાં પણ તું યથાચત્ રીતથી

સયતિ-મો ભવ્ય ! નિર્વેદ મા ગમઃ, સમ્યક્ત્વપ્રાપ્ત્યા ભવ્યસ્ત્વં, તત્પ્રાપ્તિશ્ચ ગ્રન્થિભેદેન, ગ્રન્થિભેદશ્ચ ભવ્યસ્યૈવ જાયતે, અભવ્યસ્ય ‘નાહં ભવ્ય’ ઇત્યાદિબુદ્ધેરપ્યનુદયાત્-
 ઇતિ વિચાર્ય ત્વં મા ધિપીદેતિ તાત્પર્યમ્ ॥ મૃ૦ ૨ ॥

एष च त्रिषयविरतिरूपो निर्वेदो द्वादशकषायक्षयोपशमाद्यन्यतमस्य सत्त्वे
 जायते, स त्वयाऽधिगतस्तर्हि तव दर्शन-चारित्रमोहनीययोः क्षयोपशमप्राप्तौ साम्प्रतं

મર્થ હી વના રહતા હૂ । ડસ પ્રકાર પશ્ચાત્તાપકો કરનેવાલે સિતજન
 અથવા અસિત જનકો આચાર્ય આશ્વાસન દેતે હુણ કહતે હૈં કિ “હે
 ભવ્ય ! તૂ ઉદાસ ન વન-આત્મગ્લાનિ મન કર । તૂ ભવ્ય હૈં, તુજે સમ-
 કિતકા લાભ હુઆ હૈં, સમકિતકા લાભ ગ્રન્થિભેદસે હી હોતા હૈં,
 ગ્રન્થિભેદ તો ભવ્યકો હી હોતા હૈં, અભવ્યકો નહીં અભવ્યકે
 તો “મૈં અભવ્ય હૂ ” ણેસા રુયાલ તક ભી નહીં હોતા હૈં ” । ણેસા વિચાર
 કર તુમ ખેદવિન્ન મત હો ॥ સૂ૦ ૨ ॥

यह विषयोंसे विरतिरूप निर्वेद १२ कषायोंके क्षयोपशममेंसे
 किसी एकके सत्त्व होने पर होता है। वह विषयविरतिरूप निर्वेद यदि
 तुझे प्राप्त हो चुका है तो तुझे दर्शनमोहनीय एव चारित्रमोहनीयके क्ष-
 योपशमकी प्राप्ति हो चुकने पर भी इस समय ज्ञानावरणीय कर्मका
 सद्भाव होनेसे ही प्रतिपादित तत्त्वार्थमे सकल वस्तुके बोधक ज्ञानकी

તેમના કહેવા સુજળ ચાલવામા અસમર્થ જ બની રહુ છુ આ પ્રકારનો પશ્ચા-
 તાપ કરવાવાળા સિતજન અને અસિતજનને આચાર્ય આશ્વાસન આપીને કહે
 છે કે “હે ભવ્ય ! તુ ઉદાસ બની આત્મગ્લાનિ ન કર તુ ભવ્ય છે, તને સમકિ-
 તનો લાભ થયો છે, સમકિતનો અધિભેદથી જ થાય છે, ગ્રન્થિભેદ તો ભવ્યને
 જ થાય છે, અભવ્યને નહિ અભવ્યને તો “હું અભવ્ય છુ ” એવો આલ
 પણુ નથી આવતો ” એવો વિચાર કરી તમે નિરાશ ન બનો ॥ સૂ૦૨ ॥

આ વિષયોથી વિરતિરૂપ નિર્વેદ ૧૨ કષાયોના ક્ષયોપશમમાથી કેઈ
 એકનો સત્ત્વ હોવાથી બને છે તે વિષયવિરતિરૂપ નિર્વેદ જે તને પ્રાપ્ત થઈ
 ચૂક્યું છે તો તને દર્શનમોહનીય અને ચારિત્રમોહનીયના ક્ષયોપશમની પ્રાપ્તિ
 થઈ જવા છતાં પણ આ સમય જ્ઞાનાવરણીય કર્મનો સદ્ભાવ હોવાથી જ પ્રતિ-
 પાદિત તત્ત્વાર્થમા સકલ વસ્તુના બોધક જ્ઞાનની પ્રાપ્તિ થયેલ નથી માટે તમે

જ્ઞાનાવરણીયસચ્ચાત્પ્રતિપાદિતેઽપિ તત્ત્વાર્થે સ્વસ્ત્યસ્તુનો ન જ્ઞાનં મયતિ, તદધિગમાર્થે
જિનોક્તવચનમ્બદ્ધાનર્થ સમ્યક્ષમ્યક્સમ્બનોયમિતિ વર્ણયતિ-‘તમેવ’ ઇત્યાદિ।

મૂલ્ય-તમેવ સચ્ચ નીસંકજ જિણેર્હિં પવેદ્ય ॥ સૂ. ૩ ॥

છાયા-તદવ સત્ય નિઃશઙ્કં યજ્ઞિને પ્રવેદિતમ્ ॥ સૂ. ૩ ॥

ટીકા-‘તદેવે’ત્યાદિ, યત્ પર્માપર્માકાસ-કાસ-પુદ્ગલાદિકં જિનેઃ
હીતરાગે પ્રવેદિત દ્રાવણપર્યંદિ પ્રસ્પૃષિતં, તદેવ વસ્તુમાતં સત્ય-વાસ્તવિકમ્,
પદ્ધત્કારામાન્યતૈર્વિકાદિપ્રસ્પૃષિતમ્, કિંચ નિઃશઙ્કં મગધદમિહિતેષુ પરમમૂલ્યમ્
પ્રાપ્તિ નહીં હુઈ હૈ, સો તુમ વસ અધિગમ-જ્ઞાનની પ્રાપ્તિકે લિયે જિન
પ્રતિપાદિત વચનોર્મે અજ્ઞાનરૂપ સમ્યક્ષમ્યક્ અવલમ્બન કરો। હસી
વાતકો સૂત્રકાર પ્રદર્શિત કરતે હૈ-‘તમેવ’ ઇત્યાદિ।

જિસ ધર્મદ્રવ્ય, અધર્મદ્રવ્ય, આકાશદ્રવ્ય, કાલદ્રવ્ય ઓર પુદ્ગલદ્રવ્ય
કા વર્ણન હીતરાગપ્રસુમે ૧૨ પ્રકારની સમામે કિયા હૈ, વહી ‘મગધ-
પ્રસ્પૃષિત દ્રવ્ય વાસ્તવિક-સત્ય હૈ। સૂત્રમે ‘પદ’ પદ અન્યતીર્થિકપ્રસ્પૃ-
ષિત તત્ત્વ વાસ્તવિક નહીં હૈ હસ વાતકા બોધક હૈ। નિઃશંક શબ્દ વહ
પ્રકટ કરતા હૈ કિ ‘મગધાનને જિન સૂક્ષ્મ, અન્તરિત તથા દૂર રહે હુપ
પદાર્થોની પ્રસ્પૃષ્ણાની હૈ ઓર જો કેવલ શાસ્ત્રોંસે હી જાને જાતે હૈ એસે
પરમાણુ આદિ પદાર્થોંમે “યે હૈ વા નહીં હૈ” હસ પ્રકારકે સંવેદકા નામ
શંકા હૈ-એસી શંકા જિનમેં નહીં હૈ વ નિઃશંક હૈ।

તે અધિગમ-જ્ઞાનની પ્રાપ્તિ માટે છનપ્રતિપાદિત વચનોમા અજ્ઞાનરૂપ સમ્યક્ષત્વનું
અવલમ્બન કરો આ વાતને સૂત્રકાર સમજાવે છે. “તમેવ” ઇત્યાદિ.

હીતરાગ પ્રસુમે ૧૨ પ્રકારની સમાઓમા ધર્મદ્રવ્ય, અધર્મદ્રવ્ય, આકા-
શદ્રવ્ય, કાલદ્રવ્ય અને પુદ્ગલદ્રવ્યનું જે વર્ણન કરેલ છે તે અનવત્-પ્રસ્પૃષિત
દ્રવ્ય વાસ્તવિક સત્ય છે. સૂત્રમા “પદ” પદ અન્ય તીર્થિકપ્રસ્પૃષિત તત્ત્વ
વાસ્તવિક નથી. આ વાતનો બોધક છે નિઃશંક શબ્દ જે પ્રગટ કરે છે કે
અજ્ઞાને જે સૂક્ષ્મ અન્તરિત તથા દૂર રહેલા પદાર્થોની પ્રસ્પૃષ્ણા કરી છે અને
જે કેવળ શાસ્ત્રોથી જ જાણી શકાય છે એવા પરમાણુ આદિ પદાર્થોમાં “આ
છે કે નથી” આ પ્રકારના સંવેદનું નામ શંકા છે. આવી શંકા જેનામાં નથી
જે નિઃશંક છે

શાસ્ત્રમાત્રજ્ઞેયેષુ પરમાણ્વાદિષુ ચાર્થેષુ અસ્તિ ના નાસ્તિ इत्येवमाकारः
सन्देहः शङ्का सा निर्गता=अपगता यस्मात् तन्निःशङ्क=सशयरहितमस्ति स्वसमय-
परसमयपरिज्ञाकुशलाचार्याणामप्राप्त्या देश-काल-स्वभावविप्रकृष्टेषु सूक्ष्माती-
न्द्रियपदार्थसार्येषु तत्साधकहेतुदृष्टान्ताद्यभावाच्च ज्ञानावरणीयोदयेन सम्यग्ज्ञाना-
सत्त्वेऽपि जिनप्रवचने सशयादिरहितेन भाव्यमित्याशयः । अतस्तथ्यभूतार्थप्रति-
पादके वीतरागवचने श्रद्धा कार्या । उक्तञ्च—

“ वीतरागा हि सर्वज्ञा, मिथ्या न ब्रुवते क्वचित् ।

यस्मात्तस्माद्वचस्तेषा, तथ्य भूतार्थदर्शनम् ॥ १ ॥ इति ॥

ભાવાર્થ—સ્વસમય ઔર પરસમયકે જ્ઞાતા આચાર્યોંકી અપ્રાપ્તિસે
દેશ, કાલ ઔર સ્વભાવ વિપ્રકૃષ્ટ ણેસે સૂક્ષ્મ, અતીન્દ્રિય પદાર્થોં મેં ઉનકે
સાધક હેતુ દૃષ્ટાન્તોંકે અભાવસે તથા જ્ઞાનાવરણીય કર્મકે ઉદયસે સમ્ય-
ગ્જ્ઞાન છદ્મસ્ય જીવોંકે નહીં હો સકતા હૈ તો બી મુનિયોંકો જિનપ્રવ-
ચનમેં સંશયરહિત હી હોના ચાહિયે । કબી ઉનકે વિષયમેં સશય નહીં
કરેં । કારણ કિ તથ્ય (સત્ય) ઔર ભૂતાર્થ (વિદ્યમાન) પ્રતિપાદક
હી વીતરાગ પ્રભુકે વચન હોતે હૈં । ઇસલિયે ઉનમે શ્રદ્ધા હી કરણીય
હૈ । કહા બી હૈ—

વીતરાગા હિ સર્વજ્ઞા મિથ્યા ન બ્રુવતે ક્વચિત્ ।

યસ્માત્તસ્માદ્વચસ્તેષાં તથ્યં ભૂતાર્થદર્શકમ્ ॥ ૧ ॥

વીતરાગ હી સર્વજ્ઞ હોતે હૈ । વે કહી પર બી કિસી બી અવસ્થામેં

ભાવાર્થ—સ્વ સમય અને પર સમયના જ્ઞાતા આચાર્યોની અપ્રાપ્તિથી
દેશકાળ અને સ્વભાવ વિપ્રકૃષ્ટ એવા સૂક્ષ્મ, અતીન્દ્રિય પદાર્થોમા એના સાધક
હેતુ દૃષ્ટાન્તોના અભાવથી અને જ્ઞાનાવરણીય કર્મના ઉદયથી સમ્યગ્જ્ઞાન છદ્મસ્ય
જીવોને થતો નથી તો પણ મુનિયોએ જીન પ્રવચનમા સશય રહિત રહેવું
જોઈએ કદી એમના વિષયમા સશય ન કરે કારણ કે સત્ય અને વિદ્યમાન
પ્રતિપાદક જ વીતરાગ પ્રભુના વચન બને છે આ માટે એમા શ્રદ્ધા જ
સાધવી જોઈએ કહ્યું પણ છે—

વીતરાગા હિ સર્વજ્ઞા મિથ્યા ન બ્રુવતે ક્વચિત્ ।

યસ્માત્તસ્માદ્ વચસ્તેષા તથ્યં ભૂતાર્થદર્શકમ્ ॥ ૧ ॥

વીતરાગ જ સર્વજ્ઞ હોય છે, એ કોઈ પણ સ્થળે કોઈ પણ અવસ્થામા ।

ર્કિં ગૃહસ્થસ્યેવ શક્તા મધ્યસ્થુત ગૃહીતવારિશ્ચ સ્ય મુનેરપીત્યાશ્ચક્રાયામિવમુષ્ણસ્-
તમયોરપિ શક્તા મોહનીયોદયમાશ્ચર્યેન ભવતિ, તત્પ્રાશસ્ત્યસ્યોભયત્ર સંમત્તાત્ ॥૬૦૩॥

સંશ્ચયો હિ પ્રશ્નમિતુમિચ્છેર્ભવતિ તમ મદ્વિષારણીય તવાહ—‘સદ્વિશ્વસ્ત’ इत्यादि।

મૂલ્ય—સદ્વિશ્વસ્ત ણ સમણુશ્વસ્ત સપબ્ધયમાણસ્ત સમિયતિ

મદ્વમાણસ્ત યગયા સમિયા હોઝ (૧), સમિયંતિ મદ્વમાણસ્ત
યગયા અસમિયા હોઝ (૨), અસમિયતિ મદ્વમાણસ્ત યગયા સમિયા
હોઝ (૩), અસમિયતિ મદ્વમાણસ્ત યગયા અસમિયા હોઝ (૪),
સમિયતિ મદ્વમાણસ્ત સમિયા વા અસમિયા વા સમિયા હોઝ
ઉવેહાપ (૫), અસમિયતિ મદ્વમાણસ્ત સમિયા વા અસમિયા
વા અસમિયા હોઝ ઉવેહાપ (૬), ઉવેહમાણો અણુવેહમાણ વ્યયા
ઉવેહાહિ સમિયાપ, ઇચ્છેવ તરથ સધી જ્ઞોસિઓ ભવઙ, સે
ઉદ્વિયસ્ત ઠિયસ્ત ગઙ સમણુપાસહ, પરથવિ વાલ્કમાવે અપ્પાણ
નો ઉવદંસિજ્જા ॥ સૂ૦ ૪ ॥

ઘાપા—અર્થિન સ્વલ્લ સમનુશ્વસ્ય સંપ્રવચ્ચતઃ સમ્પન્નિતિ મન્યમાનસ્યૈકદ્વા
સમ્પર્ મશ્વિ (૧), સમ્પન્નિતિ મન્યમાનસ્યૈકદ્વા અસમ્પર્ મશ્વિ (૨), અસમ્પ-
ન્નિતિ મન્યમાનસ્યૈકદ્વા સમ્પર્ મશ્વિ (૩), અસમ્પન્નિતિ મન્યમાનસ્યૈકદ્વા અસમ્પર્
મિધ્યામાષણ નહીં કરતે હૈં । इसलिये उनके वचन ही तथ्य और मूलार्थ
—प्रतिपादक होते हैं ।

શક્ત—જ્યા શક્ત ગૃહસ્થોકે હી હોતી હૈ અથવા સંયમીજનોકે મીં

સત્તર—શક્ત વોનોકે હોતી હૈ, કારણ કિ શક્તકા કારણ મોહનીય
કર્મકે ઉદયકી પ્રપક્તા હૈ । यह कर्म दोनोंक सम्बन्धित है ॥ ૬ ॥

જો વીક્ષા ગ્રહણ કરનેકા અમિલાપી હૈ ઇસકે શક્તા હોતી હૈ । इस
विषयमें जो विचारणीय बात है वह सूत्रकार कहते हैं “सद्विश्वस्त” इत्यादि।

મિધ્યા ભાષણ કરતા નથી, જાણી તેમનુ વચન જ સત્ય બને વિદ્યમાન-
પ્રતિપાદક બને છે

શક—શક શુ ચક્રસ્થાને જ થાય છે કે સચમી બનેને પણ થાય છે?

ઉત્તર—શક બનેને થાય છે, શકાનુ કારણ મોહનીય કર્મના ઉદયનો
પ્રબળતા છે આ કર્મ બનેનેમાં સંબંધિત છે

એ શિક્ષા શકણ કરવાના અભિલાષી છે તેને શક થાય ॥ આ વિષયમાં
એ વિચારવાની વાત છે તે સૂત્રકાર કહે છે— ‘સદ્વિશ્વસ્ત’ इत्यादि.

ભવતિ (૪), સમ્યગિતિ મન્યમાનસ્ય સમ્યગ્ વા અસમ્યગ્ વા સમ્યગ્ ભવત્યુત્પેક્ષયા (૫), અસમ્યગિતિ મન્યમાનસ્યૈકદા સમ્યગ્ વા અસમ્યગ્ ભવત્યુત્પેક્ષયા (૬) । ઉત્પ્રેક્ષમાણોઽનુત્પ્રેક્ષમાણં વ્રૂયાદુત્પ્રેક્ષસ્વ સમ્યક્તયા, इत्येवं तत्र सन्धिर्ज्ञोपितो भवति, तस्योत्थितस्य गतिं समनुपश्यत, अत्रापि बालभावे आत्मानं नोपदर्शयेत् ॥सू० ४॥

ટીકા—‘શ્રદ્ધિન’ इत्यादि-श्रद्धिनः=श्रद्धावतः, श्रद्धा-हि वीतरागस्य गुरोश्च वचने विश्वासः मा यस्यास्ति स श्रद्धी तस्य श्रद्धिनः=आर्हतमार्गाऽऽस्थावतः समनुज्ञस्य मोक्षमार्गविहारिभिर्धुनिभिर्भावितस्य सयमार्हस्य सप्रव्रजतः=वैराग्येण प्रव्रज्यां स्वीकुर्याणस्य जीवादिस्वरूपे संशयो यदि भवेत्तदा तदेव सत्यं निःशङ्क यज्जिनैः प्रवेदितम् इत्यादि सस्यगुणदेशेन तत्र प्रवृत्तस्य प्रवृद्धकण्डकस्योत्तरसमये सस्यक्त्वस्याविक्य साम्य न्यूनत्वमभावो वा जायेतेत्याशयः । तादृशीमेव विचित्रा-

વીતરાગ વચનોંમેં વિશ્વાસકા હોના શ્રદ્ધા હૈ । હસ શ્રદ્ધાવિશિષ્ટ વ્યક્તિકા નામ શ્રદ્ધી હૈ । મોક્ષમાર્ગમેં વિચરણ કરનેવાલે ધુનિયોંકે દ્વારા સંયમકે યોગ્ય બનાયે ગયે-સંયમ ધારણ કરનેકી ઓર પ્રવૃત્ત કિયે કા નામ સમનુજ્ઞ હૈ । સંયમકો ધારણ જિસને કર લિયા હૈ-અર્થાત્ વૈરાગ્ય-પૂર્વક ભાગવતી દીક્ષા જિસને સ્વીકૃત કર લી હૈ વહ સંપ્રવ્રજત્ હૈ । એસે વ્યક્તિકો યદિ કદાચિત્ જીવાદિક તત્ત્વોંકે સ્વરૂપમેં સંદેહ હો જાતા હૈ તો વહ હસ અટલ શ્રદ્ધા પર કિ “ જિનેન્દ્રદેવને જો કુછ કહા હૈ વહી સત્ય નિઃશંક તત્ત્વ હૈ ” અપની સંદેહશીલ પ્રવૃત્તિકા ડન્મૂલન કર દેતા હૈ । હસસે વહ ઉત્તરકાલમેં સમકિતકે લાભકી અધિકતા કી પ્રાપ્તિ કર લેતા હૈ । અથવા જીવાદિક તત્ત્વોંમેં સંદેહશીલ હોને પર મિથ્યાત્વ

વીતરાગ વચનોમા વિશ્વાસ હોયો એ જ શ્રદ્ધા છે આ શ્રદ્ધાવિશિષ્ટ વ્યક્તિનુ નામ શ્રદ્ધી છે મોક્ષમાર્ગમા વિચરણ કરવાવાળા ધુનિયોદ્વારા સયમને યોગ્ય બનાવેલા-સયમ ધારણ કરવાની તરફ પ્રવૃત્ત બનેલનુ નામ સમનુજ્ઞ છે સયમ જેણે ધારણ કરી લીધેલ છે અર્થાત્ વૈરાગ્યપૂર્વક ભાગવતી દીક્ષા જેણે સ્વીકારી છે તે સંપ્રવ્રજત્ છે આવી વ્યક્તિને કદાચિત્ જીવાદિક તત્ત્વોના સ્વરૂપમા સંદેહ થઈ જાય છે તો તે આ અટલ શ્રદ્ધાપર કે “ જિનેન્દ્રદેવે જે કંઈ કહ્યું છે એ નિઃશંક સત્ય તત્ત્વ છે ” પોતાની સંદેહશીલ પ્રવૃત્તિને દૂર કરે છે, આથી તે ઉત્તરકાળમા સમકિતના લાભને અધિકતાથી પ્રાપ્ત કરી લે છે અને

सम्परिणतिं दर्शयति 'सम्यग्' इत्यादि-तस्य शङ्कारहितस्य=पूर्वोक्तशिवपणविशिष्टस्य
सम्यगिति=जिनप्रपेदिततत्त्वमेव सम्यग् इति=एवं मन्यमानस्य=अवबुध्यमानस्य एक
दा=पद्यात्समये सम्यग् भवति सशयामायेन जिनोक्तते शङ्कापुत्पादासम्भवात् ॥१॥

तस्य रोपयन्तु धर्मात् पूर्व सम्यगिति मन्यमानस्य एकदा=उदुघरकाळे
परवीर्यरुद्राद्यपरिशीलनेन प्रत्यस्थविनिर्मितैकान्तनिश्चयनयप्रतिपादकान्यायलो
प्रकृतिके उदयमें यह समफित लाभसे यचित हो जाता है । यदि उत्तर
कालमें समफित प्राप्तिकी अधिकता उसे न हो तो समफितका लाभ जितने
रूपमें उसे पूर्ण अवस्थामें हुआ है उसी रूपमें पना रहता है, अथवा
उसकी अपेक्षा न्यून भी हो जाता है ।

भाषार्थ—आत्मा उपशम समफितको पा कर अन्तर्मुहूर्तकालके बाद
नियमसे या तो समफितके अभावसे मिथ्यात्वदशासम्पन्न हो जायगा
या क्षायोपशमिक समफितपाला हो जायेगा । क्षायोपशमिकसे वृद्धि कर
यही आगे क्षायिकसम्पन्नहृष्टि हो जाता है । इस प्रकारकी विगिन्न
आत्मपरिणतिका प्रदर्शन कराते हुए सूत्रकार कहते हैं कि जिनप्रपन्नमें
शंकारहित हो कर प्रवृत्तिशील उस प्राणीको उस समय "जिनोक्ततस्य
ही सत्य है" इस प्रकारके चिन्त्याससे समफितका लाभ होता है; कारण
कि समफितको नहीं होने देनेवाले जो बाधादिक दोष हैं वे उस समय
उस आत्मासे दूधक हो जाते हैं । "सम्यगिति मन्यमानस्यैकदा अस
म्यग् भवति" जिनप्रपन्नमें अद्यासम्पन्न उसी मानयका ज्ञान जो पहिले

एवादि तत्त्वोभा सन्देहशील होवायी मिथ्यात्वप्रवृत्तिना ददवभा ते समहित-
वागधी वंचित जने ऐ कथ्य उत्तराणभा समहित आतिनी अप्रित्ति जेने
न भजे ते समहित वाग केटवा रूपभा जेने पूर्व अवस्थाभा भज्ये ऐ के
इपभा जन्मे हडे ऐ अथवा जेनी अपेक्षा जोड़ी यथं जय ऐ

भाषार्थ—आत्मा उपशम-समफितना द्वारे अन्तरमुहूर्त पाडी नियमयी
अथवा समफितना जलावयी मिथ्यात्वदशासपत्ता जनी जये अथवा क्षायोपशमिक
समफितपणा यथं जये क्षायोपशमिकधी आगज वभी ते क्षायिकसम्पन्नहृष्टि यथं जय
ऐ अय प्रकासी विगिन्न आत्मपरिणतिनु प्रदर्शन करवत्वा सूत्रकार हडे ऐ के
एनपन्नभा य शंकारहित रही प्रवृत्तिशील जे प्राणीने जे समय "जिनोक्ततस्य
ज सत्य ऐ" अय प्रकाशना विद्यासधी समफितने वाग जाय ऐ । कारण के
समफितने शंकावाण्य के य शंकि हाथ ऐ ते जे समय जेना आत्माधी द्वर
यथं जय ऐ । (१) "सम्यगिति मन्यमानस्यैकदा असम्यग् भवति" एन
प्रपन्नभा अद्यासपत्ता जे आनयनु जयने के पदेवा समहित रूपभा जनु

કનેન ચ વ્યામોહિતમતેર્મિથ્યાત્વપરિગૃહીતતયા હેત્વાભાસદૃષ્ટાન્તાભાસાદીન્ રાગ-
દ્વેપાદિના હેતુદૃષ્ટાન્તાનભિજાનતઃ સમ્યક્ત્વચ્ચિતાન્તઃકરણમ્ય વિપરીતશ્રદ્ધાસમુત્થા-
નાનન્તરખ્ અસમ્યગ્ ભવતિ, જિનોક્તં યત્ સમ્યક્ તત્તસ્યાઽસમ્યગિતિ ચેતસિપ્રતિ-
ભાતિ સ્યાદ્વાદસિદ્ધાન્તરહસ્યવિસ્મૃતત્વાત્ । આક્ષિપતિ ચાનેકાન્તવાદમ્, તથા હિ
યત્સત્ ન તદસત્ યચ્ચાસત્તત્કયમપિ ન સદ્ અપિતુમર્હતિ, એવ યન્નિત્યં ન તદનિત્યં

સમકિતરૂપમેં થા ઉત્તરકાલમેં પરતીર્થિક શાસ્ત્રોંકે પરિશીલનસે અથવા
છદ્ધાસ્થજનોંને જિન ગ્રન્થોંમેં એકાન્તરૂપસે નિશ્ચયનયકા વર્ણન કિયા હૈ
ઉન ગ્રન્થોંકે અવલોકન સે મતિમેં વ્યામોહ ઉત્પન્ન હો જાનેકે કારણ
હેત્વાભાસ એવં દૃષ્ટાન્તાભાસોંકોં ખી સચ્ચે હેતુ ઓર સચ્ચે દૃષ્ટાન્તરૂપ
માન લેતા હૈ । જિસસે વહ મિથ્યાત્વસે યુક્ત હો જાનેકે કારણ સમકિત
સે વચિત અન્તઃકરણવાલા હો જાતા હૈ । કયોં કિ ડસકે હૃદયમેં વિપરીત
શ્રદ્ધાકા નિવાસ હોતા હૈ । ઇસ કારણ યહ સ્યાદ્વાદ સિદ્ધાન્તકે રહસ્યકોં
ખૂલ જાનેસે ફિર જિનોક્ત સમ્યક્ તત્ત્વોંકોં ખી અસમ્યક્રૂપસે માનને
લગ જાતા હૈ, અનેકાન્તવાદકા ફિર તો વહ ખડન કરને લગ જાતા હૈ,
અચનાક હી કહ ઉઠતા હૈ કિ વાહરે ! સ્યાદ્વાદ સિદ્ધાન્ત ! તૂ તો એક
વિલક્ષણ હી સિદ્ધાન્ત હૈ સત્ અસત્, નિત્ય અનિત્ય આદિ અનેક પર-
સ્પરવિરોધી ધર્મોંકોં જો તૂ એક હી જગહ સ્વીકાર કરતા હૈ, ભલા !
યહ ખી કોઈ વાત હૈ । અરે ! જો સત્ હોગા વહ અસત્ નહીં હોગા ઓર

ઉત્તર કાળમા ખીજા ધર્મના શાસ્ત્રોના સાબળવાથી અથવા તેા ધુતારા
માણસોા કે જેણે જીન ગ્રંથોમા એકાન્ત રૂપથી નિશ્ચયનયનુ વર્ણન કર્યું છે
એવા ગ્રંથોના અવલોકનથી મતિમા ભ્રમણા ઉત્પન્ન થઈ જવાના કારણે હેત્વા-
ભાસ અને દૃષ્ટાન્તાભાસોને પણ સાચા હેતુરૂપ અને સાચા દૃષ્ટાન્તરૂપ માની
લે છે, આથી તે મિથ્યાત્વથી યુક્ત બની જવાના કારણે સમકિતથી વચિત
અત કરણવાળો બની નાય છે કેમકે એના હૃદયમા વિપરીત શ્રદ્ધાનો નિવાસ
થવા પામ્યો હોય છે આ કારણે એ સ્યાદ્વાદસિદ્ધાંતના રહસ્યને ભૂલી જવાથી
જિનોક્ત સમ્યક્ત્વોને પણ અસમ્યક્રૂપથી માનવા લાગી નાય છે અનેકા-
ન્તવાદને પછી તેા એ ખડન કરવા માડે છે, અચાનક જ કહી ઉઠે છે કે વાહરે !
સ્યાદ્વાદ સિદ્ધાંત ! તુ તો એક વિલક્ષણ જ સિદ્ધાંત છે સત્ અસત્, નિત્ય
અનિત્ય આદિ અનેક પરસ્પર વિરોધી ધર્મોના જે તું એક જ સાથે સ્વીકાર
કરે છે, ભલા આ પણ કોઈ વાત છે, અરે ! જે સત્ છે તે અસત્ ન થઈ શકે

યજ્ઞાનિત્યં ન તદ્વિત્યં મથિતુમર્હતિ, વિરુદ્ધયાર્થયોરકપ્રાનસ્થાન જગતિ વિરોધ
 एष विसृज्य गच्छेत्, तेन न युक्तोऽयमनेकान्तवादः, एकस्मिन् बहुधर्मसाधकइतो-
 स्तात्पर्यान्तस्य व्यासम्भवात् ॥ २ ॥

કસ્ય ચિન્મેતદૈપરીત્યમાહ-‘અસમ્યગિ’ત્યાદિ-મિધ્યાત્વાનુષન્ધિન કસ્ય
 चित् अस्तम्यकू-‘पौत्रनिकाः सुम्भू’ इत्यादि वीतरागोक्तं सर्वं न साधीय इति
 જો અસત્ હોગા-ઘહ સત્ નહીં હોગા । इसी प्रकार जो वस्तु नित्य है
 वह अनित्य कैसे हो सकती है और जो अनित्य होगी वह नित्य कैसे
 हो सकती है । यदि परस्पर विरुद्ध धर्मोंका भी एकत्र अभिस्थान माना
 जायगा तो फिर जगतमें विरोध नामक कोई वस्तु ही नहीं रहेगी, समस्त
 वस्तुओं में परस्पर संकरता ही हो जायगी, परन्तु ऐसा तो है नहीं; अतः
 अनेकान्तवाद सिद्धान्त युक्तियुक्त सिद्धान्त नहीं है तथा ऐसा कोई हेतु
 या इष्टान्त भी नहीं है कि जिसके फलपर एकही वस्तुमें परस्पर विरोधी
 धर्मोंकी सत्ता साधी जा सके २ । “असम्यगिति मन्यमानस्यैकदा सम्यग्
 भवति” मिथ्यात्वका अनुबन्ध जिसकी आत्मा में लगा हुआ है ऐसा
 मनुष्य वीतरागप्रतिपादित तत्त्वको पहिले असम्यक् समझता है, मिथ्यात्व
 के आवेशमें वह विचारता है कि जैनसिद्धान्तमें शब्द को जो पुद्गल
 की पर्याय माना गया है वह ठीक नहीं है, इसी प्रकार आत्माको व्या-
 पक न मानकर उसे जो स्वदेह प्रमाण माना है सो यह भी मान्यता

જાને અસત્ સત્ થઈ શકે નહિ. આ પ્રકારે જે વસ્તુ નિત્ય છે તે અનિત્ય થઈ
 રીતે થઈ શકે અને જે અનિત્ય હોય તે નિત્ય કેમ થઈ શકે એ પરસ્પર
 વિરુદ્ધ ધર્મોને પણ એકત્ર અવસ્થાન માનવામાં આવે તો પછી જગતમાં વિરોધ
 નામની કોઈ વસ્તુ જ નહીં રહે-સમસ્ત વસ્તુઓમાં પરસ્પર એકવા જ બની
 જવાની; પરંતુ આવું તો નથી આથી જે અનેકાન્તવાદ યુક્તિયુક્ત સિદ્ધાન્ત
 નથી તેમ જોવા કોઈ હેતુ કે હયાત પણ નથી કે જેના ભેર ઉપર એક જ
 વસ્તુમાં પરસ્પર વિરોધી ધર્મોની સત્તા એકરૂપ બની શકે (૨) અસમ્યગિતિ મન્ય-
 માનસ્યૈકદા સમ્યગ્ ભવતિ” મિથ્યાત્વના અનુબંધ જેમના આત્મામાં લાગેલ
 છે એવા મનુષ્ય વીતરાગ પ્રતિપાદિત તત્ત્વને અસમ્યક્ સમજે છે. મિથ્યાત્વના
 આવેશમાં જે વિચારે છે કે જૈન સિદ્ધાન્તમાં શબ્દને જે પુદ્ગલની પર્યાય
 માનવામાં આવેલ છે તે સાચું નથી” આજ પ્રકારે આત્માને વ્યાપક ન માની
 જોને સ્વદેહ પ્રમાણ માનેલ છે એ માન્યતા પણ ઉચિત નથી, ઇત્યાદિ રૂપથી

=એવં મન્યમાનસ્ય મિથ્યાત્વોદયમાવલ્યેનાડનર્થક વહુ વિપ્રલપતસ્તસ્ય એકદા= કદાચિત્ પરિણામવૈચિત્ર્યાન્મિથ્યાત્વોપશમેન આચાર્યોપદેશાત્સમ્યક્ત્વનિશ્ચયેન ચ સંશયાદિકે દૂરીભૂતે સતિ યજ્ઞિનોક્તં તત્ત્વં તત્સમ્યગિતિ ભવતિ। સંશયાપનયસ્તસ્ય કથમિતિ ચેચ્છૃણુ, એવં યદિ શબ્દો ન પૌદ્ગલિકો ભવેત્તર્હિ તદ્વિહિતાવનુગ્રહોપવાતૌ યુક્તિરુચિત નહીં હૈ—ઇત્યાદિરૂપમે વહ આત્મા વીતરાગ પ્રતિપાદિત તત્ત્વમે અસમ્યક્પના દેશ્વતા હૈ। ઇસ પ્રકાર ડસકી માન્યતાકા કારણ પ્રવલ મિથ્યાત્વકા ડદય હૈ। ઇસકી પ્રવલતામે વહ ઔર ખી અનેક અનર્થક માન્યતાઔકી કલ્પનાકો સમ્યક્ માના કરતા હૈ, જગત્કો ઈશ્વરકર્તૃક માનનેકા ખી યહી કારણ હૈ। ઇસ પ્રકાર ડસકે મિથ્યાત્વકી વાસનાસે પ્રસુકથિત માર્ગ—ઉલ્ટા—અયથાર્થ પ્રતિભાસિત હોતા હૈ। પરન્તુ જવ ડસકી નિષ્પક્ષ આચાર્યાદિક કે સમ્યગ્ ઉપદેશસે અથવા પરિણામકી વિચિત્રતા સે યા મિથ્યાત્વકે ઉપશમસે આલે રુલતી હૈ, તત્ત્વકા વાસ્તવિક માન- નિશ્ચય ડસે હોતા હૈ તો ડસકી પૂર્વમાન્યતા મેં સહસા પરિવર્તન હો જાતા હૈ, સશય દૂર હોતે હી ફિર ડસે યહી નિશ્ચય હોતા હૈ કિ જો વીતરાગને તત્ત્વોકે સ્વરૂપકા પ્રતિપાદન કિયા હૈ વહી વાસ્તવિક હૈ। શબ્દ આકાશ કા ગુણ ન હોકર પુદ્ગલકી હી ઁક પર્યાય હૈ, યદિ વહ પૌદ્ગલિક ન હોતા તો ડસકે દ્વારા જો કર્ણ—ઇન્દ્રિયકા ઉપઘાત દેશ્વનેમેં આતા હૈ વહ આકા- શકે અમૂર્તિક હોને પર ડસકે ગુણ કો ખી અમૂર્તિક હોનેસે કૈસે હો

તે આત્મા વીતરાગ પ્રતિપાદિત તત્ત્વમા અસમ્યક્પણુ જુએ છે આ પ્રકારની ઁની માન્યતાનુ કારણ પ્રબલ મિથ્યાત્વનો ઉદય છે ઁની પ્રબળતામા ઁ ખીણ પણુ અનેક અનર્થક માન્યતાઁની કલ્પનાને સમ્યક્ માન્યા કરે છે જગતને ઈશ્વર કર્તૃક માનવાનુ પણુ આ કારણ છે આ પ્રકારે ઁને મિથ્યાત્વની વાસ- નાથી પ્રણ કથિત માર્ગ ઉલ્ટો—અયથાર્થ પ્રતિભાસિત બને છે પરન્તુ ન્યારે ઁની નિષ્પક્ષ આચાર્યાદિકના સમ્યગ્ ઉપદેશથી અથવા પરિણામની વિચિત્રતાથી અથવા મિથ્યાત્વના ઉપશમથી આખો ખુલે છે—તત્ત્વનુ વાસ્તવિક લાન ઁને થવા પામે છે ત્યારે ઁની પૂર્વ માન્યતામા સહસા પરિવર્તન થઈ જાય છે સશય દૂર થતા જ ફરી ઁને ઁ નિશ્ચય બધાઈ જાય છે કે વીતરાગે તત્ત્વોના સ્વરૂ પને જે રીતે કહેલ છે તે જ વાસ્તવિક છે શબ્દ આકાશના ગુણ નથી પણુ પુદ્ગલની જ ઁકે પર્યાય છે કદાચ ઁ પૌદ્ગલિક ન હોત તો ઁના દ્વારા કર્ણ ઇન્દ્રિયનો જે ઉપઘાત જોવામા આવે છે તે આકાશ અમૂર્તિક હોવાથી ઁના

કર્મેન્દ્રિયસ્ય ન સ્યાદાત્મ, અમૂર્તસ્વાદ્ ગગનન્દ, ન ચાર્ય તપેત્યાદિ ન્યાયાવતારેષ
તસ્ય શાપકતકૌપનયો જાયતે ॥ ૩ ॥

મિથ્યાસ્વપ્નાસનાવાસિતાન્તઃકરણસ્પર્શતજ્ઞાસનાપરિણીલકસ્ય કસ્ય ચિદ્ અ-
સમ્યક્=સ્વાદ્વાદતત્ત્વ ન શ્વોમનં કથમેકનૈવ સમયન પરમાણુઃ સપ્તમપૃથિવીતસ્ત
સમુત્પાય શ્લોકાન્તં યાવદ્ગ્રખ્યતિ ? इति=एषं मन्यमानस्य कुतर्कव्यवहितस्य एकदा=
कुतर्कनिरुपसरात्पसर असम्यग् भवति । इत्थं हि कुतर्कोऽज्ञाप्तिर्यास्त विवदन्ते=यद्
સકતા હૈ? इसी प्रकार अनुग्रह भी जो शब्दसे उसका होता है वह भी
नहीं हो सकता । मला! अमूर्तिक आकाशसे भी कहीं अनुग्रह और
उपघात होते हैं। अत अनुग्रह और उपघातकारक होनेसे शब्द मूर्तिक
ही है । इस प्रकारसे वह युक्तिवादके पलपर अपने पूर्ववाचक तकका
अपनयन कर (छोड़) देता है, इसलिये उसका वही ज्ञान सम्यक् ज्ञान
हो जाता है ३ ।

“असम्यगिति मन्यमानस्यैकदा असम्यक् भवति” मिथ्यात्वकी
वासनासे जिसका अन्तःकरण वासित हो जाता है तथा जिनेन्द्र प्रति
पादित सिद्धान्तका जिसने परिणीलन भी नहीं किया है उसे मनुष्यके
चित्तमें “स्वादादतत्त्व सुन्दर नहीं है” इस प्रकारका असम्यक्
उद्भूत होता है। उस कारणसे वह स्वादाद-सिद्धान्त-प्रतिपादित कथन
को असम्यक् मानता है और कहता है कि जो जिनशास्त्रमें यह लिखा
है कि एक पुत्रलका परमाणु एक समयमें १४ राज् प्रमाण गमन करता

પુત્રને પણ અમૂર્તિક હોવાથી કઇ રીતે થઇ શકે? એ પ્રકારે અનુગ્રહ પણ એ
શબ્દથી જોવા થાય છે એ પણ ન થઈ શકે જાણી અમૂર્તિક આકાશથી પણ
કદી અનુગ્રહ બને ઉપધાત થઈ શકે? અનુગ્રહ બને ઉપધાતકારક હોવાથી
શબ્દ મૂર્તિક જ છે આ પ્રકારથી તે સુચિતવાદના બળ ઉપર પોતાના પૂર્વવાચક
વાકને ઊઠી દે છે આથી એનું એ જ્ઞાન સમ્યક્ બની જાય છે (૩)

असम्यगिति मन्यमानस्यैकदा असम्यक् भवति” मिथ्यात्वની વાસનાથી
એનું અન્તાકરણ વાસનાવાણુ બને છે તથા જીનેન્દ્ર પ્રતિપાદિત
સિદ્ધાન્તને એણે પરિણીલન પણ કર્યું નથી, એવા મનુષ્યના ચિત્તમાં
સ્વાદાદ તત્ત્વ બૈરાગર નથી ” આ પ્રકારનો અસમ્યક્ ઉદ્ભૂત થાય છે એ
કારણથી એ સ્વાદાદ સિદ્ધાન્ત પ્રતિપાદિત કથનને અસમ્યક્ માને છે બને કહે
છે કે આ શાસ્ત્રમાં એવું લખ્યું છે કે એક પુત્રગણના પરમાણુ એક સમયમાં

દર્શરજ્જુસ્વરૂપલોકસ્ય પ્રથમચરમાકાશપ્રદેશયોર્યોગપદ્યસમ્બન્ધાત્ પરમાણોસ્તાવ-
ત્પ્રમાણત્વં દુર્વારમેવ જાયેત, લોકાન્તદ્વયગતપ્રદેશયોર્થૈક્યમાપદ્યેત ઇત્યાદિયુક્તિભિ-
સ્તસ્યાસમ્યક્ત્વમિતિ, પરન્તુ તે દેવાના પ્રિયા અનવગાહિતવીતરાગાગમા ન જાનન્તિ
યથા વિસ્રસાપરિણામેન પરમાણોરાશુગતિકતતૈકમમયેનાસદ્બોધ્યપ્રદેશાતિક્રમણ
ભવતીતિ ॥ ૪ ॥

હૈ સો યહ વાત સમજમે નહીં આતી હૈ, કારણ કિ એક સમયમેં હી
સસમ નરકસે ઉઠ કર કૈસે લોકકે અન્તતક વહ જા સકતા હૈ । ઇસ
પ્રકારકી માન્યતાવાલેકા જ્ઞાન કુતર્કસે યુક્ત હોતા હૈ, ઓર ઇસ હી
કુતર્કકે બલપર ઇસ પૂર્વોક્ત માન્યતાકા નિષેધ કરતા હૈ । નિષેધમેં વહ
યહ કુયુક્તિ દેતા હૈ કિ એક હી સમયમે જવ પરમાણુ ચૌદહ રાજૂ ગમન
કરતા હૈ તો ઉસકા લોકકે આદિ ઓર અંતકે પ્રદેશકે સાથ યુગપત્
સબધ હોને પર પરમાણુમેં ભી ચૌદહ-રાજૂ-પ્રમાણતા આ જાયગી । અન્યથા
યુગપત્ આદિ અંતકે પ્રદેશકે સાથ ઉસકા સબધ નહી હો સકતા હૈ;
તથા ઉસકા યુગપત્ સબંધ માનને પર લોકકે આદિ અંત પ્રદેશોંકી ભી
એકતા આવેગી । એસા કહનેવાલે અજ્ઞાની વીતરાગોપદિષ્ટ આગમકે જ્ઞાતા
ન હોનેસે ઇસ વાતકો નહીં સમજાતે હૈં કિ સ્વાભાવિક પરિણામસે એક
પરમાણુ શીઘ્ર ગતિવાલા હોનેસે એક સમયમે અસંખ્યાન પ્રદેશોકા ઉલ્લં-
ઘન કર જાતા હૈ ૪।

૧૪ રાજૂપ્રમાણુ ગમન કરે છે તેથી આ વાત સમજમા બેસતી નથી કારણ કે
એક સમયમા જ સસમ નરકથી ઉઠી કઈ રીતે લોકના અન્ત સુધી એ પહોંચી
શકે આ પ્રકારની માન્યતાવાળા જ્ઞાન કુતર્કથી ભરેલા હોય છે, અને એ જ
કુતર્કના બળ ઉપર તેઓ આ પૂર્વોક્ત માન્યતાનો નિષેધ કરે છે નિષેધમા તે
એવી કુયુક્તિ રજુ કરે છે કે એક જ સમયમા બ્યારે પરમાણુ ૧૪ રાજૂ ફરી
શકે છે તો તેનો લોકના આદિ અને અન્તના પ્રદેશની સાથે યુગપત્ સબધ
હોવાથી પરમાણુમા પણ ૧૪ રાજૂ પ્રમાણુતા આવી જાય આ સિવાય યુગપત્
આદિ અન્તના પ્રદેશની સાથે એનો સબધ હોઈ શકે નહીં અને જો એનો
યુગપત્ સબધ માનવામા આવે તો લોકના આદિ અત પ્રદેશોની પણ એકતા
આવવાની, આવું કહેવાવાળા અજ્ઞાની વીતરાગના ઉપદેશલ આગમથી બાણકાર
ન હોવાથી આ વાતને સમજી શકતા નથી કે સ્વાભાવિક પરિણામથી એક પરમાણુ
ત્વરિત ગતિવાળા હોવાથી એક સમયમા અસંખ્ય પ્રદેશોનું ઉલ્લંઘન કરી શકે છે (૪)

પરમાર્થપ્રકટનપૂર્વકં મજ્ઞાનુપસંહરમાહ—‘સમ્યગિ’ત્યાદિ, સમ્યગિત્યેષ મન્યમા-
નસ્ય સદ્વાદિધર્મિતસ્ય સમ્યગ્ ઉપાદેયં વસ્તુપાદેયત્વેનૈવ જ્ઞાનસઃ, યત્ સર્વજ્ઞોપદિ-
પ્તસ્ત્રેન સમ્યક્ યથાસર્વજ્ઞોપદિપ્તરેનાસમ્યક્ સર્વદ્રવ્યમપિ તસ્ય ઉત્પેક્ષયાન્નયામિમા
યસમાલોચનયા સમ્યક્સ્વપરિગૃહીતયા સમ્યગ્ મથતિ ॥ ૫ ॥

પૂર્વવૈપરીત્યેનાહ—‘અસમ્ય’ગિત્યાદિ અસમ્યગિતિ મન્યમાનસ્ય સ્પાઘ્રાદન-
યોક્ત્રમીષાનીવાદિતત્ત્વ યદપિ સમ્યગેષ તથાડ્યસમ્યગિતિ જ્ઞાનતરુલ્લસ્યસ્પાર્શ

“સમ્યગિતિ મન્યમાનસ્ય સમ્યક્ વા અસમ્યક્ વા સમ્યક્ મથતિ ઉત્પેક્ષયા ” ઉપાદેય વસ્તુકો ઉપાદેયસ્વરૂપે ઓર હેય વસ્તુકો હેયરૂપે માનનેવાલે તથા જ્ઞાત વિષયકો નિર્ણાકરૂપે માનને ઓર જાનનેવાલે સમ્યગ્દષ્ટિકા જ્ઞાન સમ્યક્ હોતા હૈ । “સર્વજ્ઞકે દ્વારા કથિત વિષય સમ્યક્ ઓર અસર્વજ્ઞદ્વારા પ્રતિપાદિત વિષય અસમ્યક્ હૈ ” હસ પ્રકાર હન ઢોનોં જાતોંકા સમ્યક્નયકી અપેક્ષાસે વિચાર કરનેવાલે સમ્યગ્દષ્ટિ મનુષ્યકા જ્ઞાન સજા હી માના ગયા હૈ ૫ । “અસમ્યગિતિ મન્યમાનસ્ય સમ્યગ્ વા અસમ્યગ્ વા સમ્યગ્મથતિ ઉત્પેક્ષયા ” સ્પાઘ્રાદનયકી અપેક્ષા સે હી જીવ ઓર અજીવાદિ તત્ત્વોંકા સ્વરૂપ કહા ગયા હૈ, હસલિયે વસ સ્વરૂપ વિશિષ્ટ વે જીવાદિક તત્ત્વ સમ્યક્ હી હૈ, પરંતુ છદ્મત્ત્વોંકી દષ્ટિમેં યહ નયવિચારણા ઠીક ૧ સમજમેં નહીં આ સકનેકે કારણ ઓર કપરી રૂપે હી વસ્તુકો જાનનેકે કારણસે ડનકા જ્ઞાન અધૂરા રહતા હૈ, અતઃ

“સમ્યગિતિ મન્યમાનસ્ય સમ્યક્ વા અસમ્યક્ વા સમ્યક્ મથતિ ઉત્પેક્ષયા ” ઉપાદેય વસ્તુને ઉપાદેય રૂપથી જાને હેવ વસ્તુને હેયરૂપથી માનવાવાળા તથા જ્ઞાત વિષયને નિર્ણાકરૂપથી માનવા જાને જાણવાવાળા સમ્યગ્દષ્ટિનું જ્ઞાન સમ્યક્ હોય છે । સર્વજ્ઞ તરફથી કહેવામાં આવેલ વિષય સમ્યક્ જાને અસર્વજ્ઞ દ્વારા પ્રતિપાદિત વિષય અસમ્યક્ છે । આ પ્રકારે આ જાને વાતોનો સમ્યક્નયની અપેક્ષાથી વિચાર કરવાવાળા સમ્યગ્દષ્ટિ મનુષ્યનું જ્ઞાન સાચું જ માન્યું જાય છે । (૫) “અસમ્યગિતિ મન્યમાનસ્ય સમ્યક્ વા અસમ્યક્ અસમ્યક્ મથતિ ઉત્પેક્ષયા-” સ્પાઘ્રાદનયની અપેક્ષાથી જ જાણ જાને જાણવાદિ ઉત્તરોત્તર સ્વરૂપ કહેવામાં આવેલ છે । આ માટે જે સ્વરૂપવિશિષ્ટ વે જાણકિ વત્ત સમ્યક્ જ છે પરંતુ છદ્મ સ્થોની દષ્ટિમાં આ તથ્ય વિચારણા ઠીક ઠીક સમજવામાં નહિ આવવાના કારણે તેનું જ્ઞાન અધૂરું રહે છે । એટલે વે વસ્તુના વાસ્તવિક સ્વરૂપથી અનિશ્ચિત જાની

દર્શિત્વેન યત્ સમ્યગ્ વા અસમ્યગ્ વા સર્વં તસ્ય ઉત્પ્રેક્ષયા=અસમ્યક્પર્યાલોચનયાઽ-
પરિશુદ્ધાધ્યવસાયત્વેન ચ મિથ્યાત્વપરિગૃહીતતયા અસમ્યગ્ ભવતિ, યથૈવ સંશયાદિઃ
પૂર્વમઙ્કુરિતસ્તયૈવ ફલિત ઇત્યર્થઃ ॥ ૬ ॥

ઇત્યં સમ્યગ્ઉત્પ્રેક્ષાપરઃ પરોપદેશદાને સમર્થો ભવતીત્યાહ—‘ઉત્પ્રેક્ષમાણ’
ઇત્યાદિ-ઉત્પ્રેક્ષમાણઃ=જિનશાસનપરિફર્મિતબુદ્ધિતયા સઠ્ઠલહેયોપાદેયપદાર્થસાર્થા-
વગતિપૂર્વકં સમ્યગ્સમ્યક્ ચ સતત સમાલોચયન્ અનુત્પ્રેક્ષમાણં લોકાનુગમનશીલં
વે વસ્તુકે વાસ્તવિક સ્વરૂપસે અનભિજ્ઞ ચન એકાન્ત-મત-પ્રતિપાદિત
વસ્તુકે અયથાર્થ સ્વરૂપકો યથાર્થ-સમ્યક્ ઔર યથાર્થ સ્વરૂપકો અસમ્યક્
માન વૈઠતે હૈં । ઇસલિયે યથાર્થ સ્વરૂપ જાનનેવાલો કી દૃષ્ટિમૈં યહ ઉનકી
માન્યતા અયથાર્થરૂપ હી હૈં; ક્યોં કિ જૈસી પ્રતીતિ હોતી હૈં વૈસા હી જ્ઞાન
હનૈં હોતા હૈં । અસમ્યક્ પ્રતીતિકા કારણ અસમ્યક્ પર્યાલોચના યા અપ-
રિશુદ્ધ અધ્યવસાય હૈં । ઇસકા ખી કારણ નિશકરૂપસે ભાનકા અભાવ
હૈં । ઇસલિયે જિસ રૂપસે સંશયાદિક હનૈં વસ્તુકે વિષયમૈં ઉત્પન્ન હોતે
હૈં ઉસી રૂપસે વે વહાં ફલિત ખી હોતે હૈં ૬ ।

ઇસ પ્રકાર વાસ્તવિક વસ્તુતત્ત્વમૈં યથાર્થ અયથાર્થપનેકા કારણ સમજ
કર જો ઇસ વિષયકા વિચાર કરનેમૈં ચતુર હૈં વે પરકો ઇસ વિષયકી
દૃઢતા સંપાદનાર્થ સમજાતે હૈં કિ હે ભવ્ય ! ‘ઉત્પ્રેક્ષમાણોઽનુત્પ્રેક્ષમાણં
બ્રૂયાદુત્પ્રેક્ષસ્વ સમ્યક્તયા’ મૈંને ઇસ પદાર્થકી અઢ્ઢી તરહસે પર્યાલોચના
કર લી હૈં—જિનશાસનમૈં જિસ તત્ત્વકા વર્ણન જિસરૂપસે કિયા ગયા હૈં

એકાન્તમત-પ્રતિપાદિત વસ્તુના અયથાર્થ સ્વરૂપને યથાર્થ-સમ્યક્ અને યથાર્થ
સ્વરૂપને અસમ્યક્ માની યેઠા છે આ માટે યથાર્થ સ્વરૂપનાં બહુવાણાની દૃષ્ટિમા
આ તેની માન્યતા અયથાર્થ રૂપ જ છે કેમ કે જેવી પ્રતીતિ થાય છે તેવું
જ્ઞાન તેને થાય છે અસમ્યક્ પ્રતીતિનું કારણ અસમ્યક્ પર્યાલોચના અને અપ
રિશુદ્ધ અધ્યવસાય છે આનું પણ કારણ નિશકરૂપથી જાનને અભાવ છે
આ માટે જે રૂપથી તેને સંશયાદિક વિષય વસ્તુમા ઉત્પન્ન થાય છે, એવા રૂપમા
તેનું જ્ઞાન મળે છે (૬)

આ પ્રકારે વાસ્તવિક વસ્તુતત્ત્વમા યથાર્થ અયથાર્થનું કારણ સમજીને જે
આ વિષયનો વિચાર કરવામા ચતુર છે તે બીજાને આ વિષયની દૃઢતા સંપાદન
માટે સમજાવે છે કે હે ભવ્ય ! “ઉત્પ્રેક્ષમાણો”—ઇત્યાદિ

એ આ પૂઠાર્થની સારી રીતે પર્યાલોચના કરેલ છે જીનશાસનમા જે તત્ત્વનું

સમ્યગસમ્યગાદિસમાસોષનારહિત સન્નયિતમર્તિ જનં ધૂપાત્=કમ્પપત્ હે=મમ્પ ! સમ્યક્તયા=માર્ગતથાસનોક્કરીત્યા સમમાબનયા ઋવેસસ્વ=સમાસોષય પક્ષપાતરા-રિત્યેન જીવાનીનાવિતત્ત્વમાર્ગતથાસનાર્થ સાધીયાડય વા પરતૈર્પિકાન્નાનિવમિતિ નેમે નિમીર્ય સ્થાન્તઃકરણે તર્ષ્વ વિમાચયત્સર્પઃ ।

યદ્વા 'ઉત્પ્રેક્ષમાણ' -ઉત્=માત્રત્વેન મેક્ષમાણ' સંપમે સમુદ્યોગપરઃ, અનુ બહ અસદિગ્ધ હૈ, ઉસમેં સન્દેહકે લિપે યોદ્ધાસા મી સ્થાન નહોં હૈ । ઇતન તત્ત્વ હૈય હૈ, ઇતને ઉપાદેય હૈ, ઇતને શ્રેય હૈ । ચીતરાગ પ્રતિપાદિત વસ્તુસ્વરૂપ હી યથાર્થ હૈ; અન્ય છદ્ધસ્થ કષ્ટિત નહીં । હસ પ્રકાર જિન શાસનસે પરિકર્મિત બુદ્ધિ,હોનસે હૈય ઓર ઉપાદેય પદાર્પોંકી અથગતિ પૂર્વક ઉનમેં સમ્યક્ અસમ્યક્પનેકી સમાસોષના કરનેપાલા ચિદ્વાન્ મુનિ જન, લોકાનુગમનશીલ તથા સમ્યક્ અસમ્યક્કી આલોષનાસે રહિત પેસે સંચાલિત મતિવાલે જનકે પ્રતિ સંપોષનાર્થ કહતે હૈં કિ હૈ મમ્પ ! કમ સે કમ તું આંસોંકો મોંષકર અપને ચિત્તમેં પક્ષપાતસે રહિત હોકર ઇતના તો ચિચાર કર કિ જિસ પ્રકારસે વસ્તુસ્વરૂપકા પ્રતિપાદન જિન મગધાનને કિયા હૈ બહ ઠીક હૈ યા પરતીર્પિકાજમોંનિ જિસ વસ્તુતત્ત્વકા પ્રતિપાદન કિયા હૈ બહ ઠીક હૈ ।

અથવા—જો સંયમકે પરિપાલન કરનેમેં પૂર્ણ વ્યયોગશીલ હૈં હૈ ઉસમેં અનુસ્તાહિત કુપ અથવા સંદેહશીલ કુપ મનુષ્યકો સમજાવેં કિ

વધુન જેવા રૂપમા અપેક્ષ છે તે અસદિગ્ધ છે, તેમાં સ રેકં કરવાતુ બરા પક્ષ સ્થાન નહીં આટલું તત્ત્વ હેમ છે આટલાં ઉપાદેય છે આટલાં શ્રેય છે વીતરાગ પ્રતિપાદિત વસ્તુસ્વરૂપ જ વચ્ચા છે, બીજા છદ્ધસ્થથી પ્રતિપાદિત વસ્તુસ્વરૂપ વચ્ચાર્થ નહીં આ પ્રકારે લગચાલમા પરિકર્મિત બુદ્ધિ હોવાથી હેમ અને ઉપાદેય પદાર્થોની અવગતિપૂર્વક તેમા સમ્યક્-અસમ્યક્પણની સમા લોચના કરવાવાળા વિદ્વાન મુનિજન, લોકાનુગમનશીલ અને સમ્યક્ અસમ્યક્ની અલોચનાથી સ્ફિત જેવા સચામ મતિવળા માણસને સંબોધન કરી કહે છે કે હે અમ્પ ! તું તારી આંખોને બંધ કરીને પક્ષપાતરહિત ચર્ચ મનમાં થોડો તે તિચાર કર કે જે પ્રકારે વસ્તુસ્વરૂપતુ પ્રતિપાદન લગ બગવાને કરેલ છે તે ઠીક છે કે પરધર્મીઓએ જે વસ્તુતત્ત્વતુ પ્રતિપાદન કરેલ છે તે ઠીક છે ?

અથવા—જે સચમતુ પરિપાલન કરવામાં પૂણુ ઉદ્યોગશીલ છે તેઓ આંખથી ઉત્સાહ વગરના બનેલા અથવા સ રેકં વૃત્તિવાળા બન્યા હોય જેવા

લેક્ષમાણ=તત્રોદયમરહિતં સંશયારૂઢ જન દ્વયાન્, સમ્યક્ત્વે=સયમે ઉત્પેક્ષસ્વ=સમુ-
દ્યોગં વિધેદ્દિ-તત્ર પરાક્રમસ્વેત્યર્થઃ, કિમાશ્રિત્યેદમુક્તમિત્યાદિ-‘ ઇત્યેવ ’મિત્યાદિ,
ઇત્યેવ=પૂર્વવર્ણિતરૂપેણ તત્ર=સંયમે સન્ધિઃ=જ્ઞાનાવરણીયાદિકર્મણાં પરમ્પરા
શોષિતઃ=ક્ષપિતઃ-દૂરીકૃતો મતિઃ ।

- તાદૃશોત્પેક્ષણશીલસ્ય યદ્ભવતિ તદાદિ-‘ તસ્યે ’ત્યાદિ, હે શિષ્યાઃ ! તસ્ય=
શ્રદ્ધાવતઃ ઉત્પિતસ્ય પ્રવ્રજિતુમુદ્યતસ્ય સમ્યક્ત્વે સંશયરહિતસ્ય સ્થિતસ્ય=આચાર્ય-
સ્પાદેશે તદન્તિકે ચ વર્તમાનસ્ય ગતિ=તદાચરણરૂપાં પદ્ધતિં યૂય સમનુપશ્યત
=સમ્યક્ પ્રેક્ષન્વમ્, પૂર્વોક્તસ્ય શ્રદ્ધાવતઃ સર્વજનપ્રશંસાપાત્રત્વ જ્ઞાને દર્શને ચ દૃઢત્વ
હે ભવ્ય ! તુ ઇસ સયમકી પરિપાલનાનિમિત્ત પૂર્ણ પ્રયત્નશીલ રહ ।
ક્યોં કિ ઇસ સયમકી આરાધનામે હી જ્ઞાનાવરણીયાદિક દ્રવ્ય-ભાવ-
કર્મોંકી પરપરા કે નાશ કરનેકી શક્તિ રહી હુઈ હૈ । ઇસ પ્રકાર પ્રયત્ન-
શીલ વ્યક્તિકે લાભ કો પ્રકટ કરનેકે લિયે સૂત્રકાર “ તસ્યોત્પિતસ્ય
ગતિં સમનુપશ્યત ” કહતે હૈ । ડસ શ્રદ્ધાસમ્પન્ન એવ ભાગવતી દીક્ષા ગ્રહણ
કરનેકે લિયે ઉદ્યમશીલ મનુષ્યકો યદ્દ એક વડા ભારી લાભ હોતા હૈ
કિ જવ વદ્દ શઙ્કારહિત હોકર આચાર્યકે નિકટ વસતા યા ડનકી આજ્ઞા
મેં રહતા હુઆ સંયમકી આરાધના કરનેમેં તહીંન હોતા હૈ તવ ડસે સમ્ય-
ક્ત્વકે પરિજ્ઞાનપૂર્વક રત્નત્રયકી આરાધનાસે મુક્તિકા લાભ હોતા હૈ । ઇસ
પ્રકાર શિષ્યોકો સમ્બોધન કરતે હુએ સૂત્રકાર કહતે હૈ કિ દેખો; શ્રદ્ધા-
સમ્પન્ન વ્યક્તિ સર્વજનકી પ્રશંસાકા પાત્ર બન કર, જ્ઞાન ઓર દર્શનમેં
દૃઢતાકી પ્રાપ્તિસે ચારિત્રમેં નિશ્ચલતા ધારણ કરતા હુઆ રત્નત્રયકી

મનુષ્યને સમજાવે કે હે ભવ્ય ! તુ આ સયમને પાળવામા પૂર્ણપણે પ્રયત્ન-
શીલ રહે, કેમ કે આ સયમની આરાધનામા જ્ઞાનાવરણીયાદિક દ્રવ્યલાભ
કર્મોંની પરપરાને નાશ કરવાની શક્તિ છે આવા પ્રયત્નશીલ વ્યક્તિના
લાભને પ્રગટ કરતા સૂત્રકાર “ તસ્યોત્પિતસ્ય ગતિં સમનુપશ્યત ” કહે છે—આવા
શ્રદ્ધાસપન્ન અને ભાગવતી દીક્ષા અર્હણ કરવામા ઉદ્યમશીલ મનુષ્યને આ એક
મોટો લાભ થાય છે કે જ્યારે તે શકારહિત બની આચાર્યની પાસે રહી અથવા
એમની આજ્ઞામા રહી સયમની આરાધના કરવામા તહીંન બને છે ત્યારે તેને
સમ્યક્ત્વના પરિજ્ઞાનપૂર્વક રત્નત્રયની આરાધનાથી મુક્તિનો લાભ થાય છે, આ
પ્રકારે શિષ્યોને સમ્બોધન કરતા સૂત્રકાર કહે છે કે જુઓ શ્રદ્ધાસપન્ન વ્યક્તિ
સર્વજનની પ્રશંસાને પાત્ર બની જ્ઞાન અને દર્શનમા દૃઢતાની પ્રાપ્તિથી ચારિત્રમા

ધારિષે નિશ્ચયત્વં સમ્યક્ષયપરિહાનપૂર્વકરત્નત્રયારાધનન માસાધિગમ્ય મયતીતિ
સમ્યક્ પદ્યતેતિ સાત્પર્યમ્ ।

પદ્મા-તસ્ય=સંયમોધોગયત્ અસ્થિતસ્ય તદુચાગ સતતં જાગ્રત ગતિ=મોક્ષ-
પ્રાપ્તિરૂપો તસ્તાધિક્ષં રત્નત્રયસમારાધનરૂપાં વા તથા સ્થિતસ્ય સયમસમુદ્યોગ
વૈપરીત્યન વર્તમાનસ્ય સામયક્યાપારનિરતસ્ય વૃષ્ટિશામ્યાયે ગતિ=તદાધરણરૂપાં
પદ્ધતિ સર્વજનનિન્દારૂપો નરક-નિગોવાદિગમનં ચ સમનુપવ્યત=સમ્યગ્ વિચારય
ન્નમ્, ઉત્તર્યોર્ગતિ સમવસાર્યં સંયમ તપસિ ચ પરાક્રમશ્ચમિત્યર્થઃ । સંયમસમુદ્યોગ
વર્નિતસ્થાપમા ગતિર્મયતીતિ કિં તેન પ્રકૃતે સમાપાતયિત્યાદ-‘અત્રાપીતિ ।
અમ સયમાનુદ્યોગરૂપ વાલમાહે-વાલસ્ય-અધિદિત-સંપમાનાચરણજનિતનરક-

આરાધનાસે મોક્ષકા પાત્ર બન જાતા હૈ । જો સયમમેં ઉદ્યોગશાલી હૈ,
પરં ઉસ ઉદ્યોગમેં જો નિરન્તર જાણતિસમ્પન્ન હૈ તેસે મનુષ્યકો મુક્તિકા
લાભ યા મોક્ષપ્રાપ્તિકે કારણભૂત રત્નત્રયકી આરાધનાકી પ્રાપ્તિ હોતી હૈ;
પરન્તુ જો હસસે વિપરીત-વૃદ્ધાસંપન્ન હૈ તેસે વૃષ્ટિશામ્યાવિકોકી હસ
લોકમેં નિંદા હોતી હૈ ઓર પરલોકમેં ઉન્હૈ નરકનિગોવાદિકકી ગતિ પ્રાપ્ત
હોતી હૈ । હસ પ્રકાર વિચારકર હૈ શિષ્યો । તુમ સંયમ તપમેં સદા પ્રયત્ન
શીલ રહો ! હસ કથનસે યહ પ્રકૃતમેં વાત સિદ્ધ હોતી હૈ કિજો સયમમેં
સમીચીન ઉદ્યોગસે રિક્ત હૈં ઉનકી અધમ ગતિ હોતી હૈ, ઓર જો ઉસમેં
ઉદ્યોગવાલે હૈં ઉનકી ઉર્ધ્વગતિ-ઉત્તમ ગતિ હોતી હૈ । હસલિયે “અત્રાપિ
વાલમાહે અત્માર્ન મોપદર્શયેત્” હસ સંયમકે અનુદ્યોગરૂપ વાલમાવમેં કિ
જિસમેં સંયમકે અનાચરણજન્ય નરકનિગોવાદિકગતિયોકિ કહુક કહુક

નિર્ભજતા કારણ કરી રત્નત્રયની આરાધનાથી મોક્ષને પાત્ર બની બધા ઉ ને
સુખમાં ઉદ્યોગશાલી છે અને જો ઉદ્યોગમાં ને નિરન્તર અવ્યવસ્થિત પત્ત છે એવા
મનુષ્યને મુક્તિવના લાભ અથવા મોક્ષપ્રાપ્તિના કારણરૂપ રત્નત્રયની આરાધનાની
પ્રાપ્તિ થાય છે પરંતુ જે એનાથી વિપરીતવૃદ્ધાસંપન્ન છે-સામય આપરમાં
મુલેલ છે એવા વૃષ્ટિશામ્યાદિકોની આ લોકમાં નિંદા થાય છે અને
પરલોકમાં તેને નરકનિગોવાદિકની ગતિ પ્રાપ્ત થાય છે. આ રીતે બન્નેની
ગતિના નિર્ધાર કરી હૈ શિષ્યો ! તમે સુખ અને તપમાં સદા પ્રયત્નશીલ રહો.
આ કથનથી જો વાત સિદ્ધ થાય છે કે જે સયમના પાલનમાં શિષ્યલક્ષ્ણ બતાવે
છે તેની અધમ ગતિ થાય છે અને જે એના પાલનમાં ઉદ્યોગશીલ રહે છે તે
ઉર્ધ્વ (ઉત્તમ) ગતિ પ્રાપ્ત કરે છે. આ માટે “અત્રાપિ વાલમાહે અત્માર્ન મો-
પદર્શયેત્” આ સુધમના અનુદ્યોગરૂપ વાલમાવમાં કે જેમા સુધમ અનાચરણજન્ય

નિગોદાદિકદુરુપલસ્ય ભાવઃ=અભિપ્રાયઃ આચરણમિત્યર્થઃ ચાલભાવસ્તસ્મિન્
કુમાર્ગપ્રવૃત્તલોકાચરિત્ત્વમિત્યર્થઃ । આત્માન=સર્વશ્રેયઃસ્થાન નિજ નોપદર્શયેત્=
નોપસ્થાપયેત્-ન તત્ર સ્વાત્માન પાતયેદિત્યર્થઃ । યથા કેચિત્ ' નિત્યત્વાદમૃ-
ત્ત્વાચ નાસ્ત્યાત્મનઃ પ્રાણાતિપાતઃદિર્ગગનસ્યેવેતિ પ્રતિપાદયન્તિ ચાલભાવમાચરન્તિ
ચ તથા મુનયો ન કુર્યુરિત્યાશયઃ । અપિશબ્દોઽન્ન મિત્રક્રમસ્તેન અવાલભાવે
સ્વાત્માનમુપદર્શયેદિત્યર્થઃ ॥ મૂ० ૪ ॥

આત્મનો હનન ન ભવતીતિ મત્વા પ્રાણિહનનાદી પ્રવૃત્તં પુરુષ તસ્માન્નિવર્તયિતુ
હન્યમાનસ્ય હન્તુચ્ચૈક્યમાપાદયન્નાહ-‘ તુમસિ ’ ઇત્યાદિ ।

મૂલમ્-તુમંસિ નામ સચ્ચેવ જં હંતવ્વંતિ મન્નસિ, તુમંસિ
નામ સચ્ચેવ જં અજ્જાવેયવ્વંતિ મન્નસિ, તુમંસિ નામ સચ્ચેવ જં
પરિયાવેયવ્વંતિ મન્નસિ, એવં જં પરિચિત્તવ્વંતિ મન્નસિ, જં ઉદ્ધ-
માન નહીં હોતા હૈ, કુમાર્ગપ્રવૃત્ત લોકોંકે દ્વારા સેવિત એસે આચરણમેં સર્વ
કલ્યાણકે પાત્રસ્વરૂપ અપની આત્માકો સંલગ્ન ન કરો, ઉસ આચારમેં
અપની આત્માકા પતન ન કરો । સારાંશ ડસકા યહ હૈ કિ જૈસે કોઈ
અન્યમતિ-‘ આકાશકી તરહ નિત્ય ઓર અમૃત્ત્વ હોનેસે જીવકા ઘાત
નહીં હોતા હૈ ’ ડસ પ્રકાર માનતે હૈ ઓર ચાલભાવકા આચરણ કરતે હૈ,
ઉસ પ્રકાર સાધુકો નહીં કરના ચાહિયે ॥ સૂ० ૪ ॥

આત્માકા હનન નહીં હોતા હૈ એસા સમજકર જો પ્રાણિયોંકે હિંસા-
દિક કાર્યમેં પ્રવૃત્ત હૈં ઉન પુરુષોંકી ઉસ કાર્યસે નિવૃત્તિ કરાનેકે લિયે
તથા હન્યમાન ઓર હન્તામેં એકતા હૈ ડસ વાતકો પ્રકટ કરાનેકે લિયે
સૂત્રકાર કહતે હૈ-‘ તુમસિ ’ ઇત્યાદિ ।

નરકનિગોદાદિ ગતિઓના કડવા ડળનુ ભાન હોતુ નથી, કુમાર્ગ પ્રવૃત્ત લોકોથી
સેવિત એવા આચરણમા સર્વકલ્યાણના પાત્રસ્વરૂપ પોતાના આત્માને ન જવા
દે-એ આચારથી પોતાના આત્માનુ પતન ન કરો સારાશ આને એ છે કે-

જેમ કોઈ અન્ય મતિ ‘ આકાશની માફક નિત્ય અને અમૃત્ત્વ હોવાથી
આત્મા (જીવ)ની ઘાત થતી નથી ’ આ પ્રકારે માને છે, અને બાળભાવનુ આચરણ
કરે છે, આ રીતે મુનિએ કરવુ જોઈએ નહિ ॥ સૂ० ૪ ॥

આત્મા હણાઈ શકતો નથી, એવુ સમજીને જે પ્રાણીઓના હિંસાદિ કાર્યમા
પ્રવૃત્ત છે એવા પુરુષોની એ કાર્યથી નિવૃત્તિ કરાવવા માટે ‘ હન્યમાન અને હન્તામા
એકતા છે, આ વાત પ્રગટ કરતા સૂત્રકાર કહે છે-“ તુમંસિ ” ઇત્યાદિ -

वेयव्वति मद्दसि, अजुषेय पडिबुद्धजीवी, तम्हान हन्ता नवि
घायय, अणुसवेयणमप्पाणेण ज हतव्व नाभिपत्थय ॥ सू० ५॥

छाया—स्वमसि नाम स एव यं हन्त्यमिति मन्यसे, स्वमसि नाम स एव
यमाप्तापयितव्यमिति मन्यसे, त्वमसि नाम स एव यं परित्तापयितव्यमिति मन्यसे,
एवं यं परिहृयितव्यमिति मन्यसे, यम् अप्प्रावयितव्यमिति मन्यसे, ऋजुवैतत्पत्ति-
बुद्धजीवी, तस्मात् हन्ता नापि घातयत्, अनुसवदनमात्मना यद् हन्त्यं
नाभिप्रायेयत् ॥ सू० ५ ॥

टीका—‘स्वमसी’ स्यादि—स्वं यं प्राणिन इत्यर्थः—दण्डकशा—दस्त्रादिभिर्हि
सनीयम् इति—एवं मन्यसं—मानासि स एव प्राणी स्वमसि सच्छास्त्रमनभेदनादि
समानलक्ष्यत्वात्, नामेति सम्भावनायाम्; इदमत्र तत्त्वम्—इननेन मगनदमूर्त्तस्या
त्मनो हिंसा न भवति किन्तु शरीरस्यैव, तच्च शरीरं जीवस्याभयभूतमतीवप्रिय

सूत्रकार इस्सरोका घात करनेवालोंको उपदेश देते हुए कहते हैं
कि तुम जिनको मारनेयोग्य—दण्ड—बाणुक शस्त्र आदिकोंसे यह मारने
लायक है, ऐसा समझते हो वहीं तुम हो; क्यों कि उसमें और तुममें
कोई अंतर नहीं है। शस्त्रकारनि जीवका छक्षण चेतना घतछाया है।
यह छक्षण ऐसा कोईसा भी जीव नहीं है कि जिसमें न पाया जाता
हो। अतः इस जीवके सामान्य छक्षणसे युक्त होनेसे समस्त जीव छक्ष-
णकी अपेक्षासे एक हैं।

भावार्थ—यद्यपि आत्मा अमूर्त है, जो अमूर्त होता है उसका
आकाशकी तरह इनन—विनाश—घात नहीं हो सकता है, घात मूर्त
शरीरका ही होता है। परन्तु फिर भी जो हिंसा मानी जाती है उसका
कारण यह है कि हिंसकद्वारा जीव उसका आभयभूत शरीरसे वियुक्त कर

सूत्रकार जीवानी घात करनेवालोंने उपदेश आपत्ता कहते हैं कि तमि केने
भास्वा योअ—दण्ड, बाणुक शस्त्र वगैरेशी के भास्वालायक है जेवुं समझे के
के तमि के, केम है केनामा जने तमाशमां कोर् अन्तर नथी. शस्त्रकारिजे
एवम दक्षयु चेतना नतावेस है आ दक्षयु केवो कोर् पयु एव नथी के
केनामा न कोम जेथी आ एवना सामान्य दक्षयुथी नाथी है केसमस्त एव
दक्षयुनी अपेक्षाथी जेके है

भावार्थ—आत्मा अमूर्त है के अमूर्त कोष है तेने आकाशनी भास्व
कना—विनाश—घात नथी थर्क सकेतो. घात मूर्त शरीरने न भाव है,
एतां पयु तेमा हिंसा भानवामा आवे है तेवुं कारण जे है के हिंसा करनेपर

મતસ્તચ્છરીરાત્તસ્ય વિયોજનમેવ હિંસા, તથાહિ—

“પચ્ચેન્દ્રિયાણિ ત્રિવિધં બલં ચ,

ઉચ્છ્વાસ-નિઃશ્વાસમથાન્યદાયુઃ ।

પ્રાણા દશૈતે ભગવદ્ધિરુક્તા,—

સ્તેષાં વિયોગીકરણં તુ હિંસા ॥ ૧ ॥

इति वचनात् । किञ्च जीवस्य सर्वथा नामूर्तत्वादिसमधिगमो यतो गगनस्येव हननादिरूपविकारो नापद्येत किन्तु स कथञ्चिन्मूर्तोऽपि शरीराधिष्ठितत्वादिति तस्य

दिया जाता है । इस क्रियाका नाम हिंसा है । क्यों कि जीवका आश्रयभूत होनेसे वह शरीर उसे अत्यन्त प्रिय था, हिंसक उसे अपने हिंसारूप कर्मद्वारा विनष्ट कर दिया । हिंसाका लक्षण भी यही किया है ।

શ્લોક-પચ્ચેન્દ્રિયાણિ ત્રિવિધં બલં ચ, ઉચ્છ્વાસ-નિઃશ્વાસમથાન્યદાયુઃ ।

પ્રાણા દશૈતે ભગવદ્ધિરુક્તા,—સ્તેષાં વિયોગીકરણં તુ હિંસા ॥૧॥

અર્થ—પાંચ ઇન્દ્રિય, ત્રણ બલ, ઉચ્છ્વાસ નિશ્વાસ ઓર આયુ इन ૧૦ પ્રાણોંકા વિયોગ કરના હિંસા હૈ ।

दूसरी बात यह है—कि आत्मा सर्वथा अमूर्त भी नहीं है, क्यों कि कर्मबन्धकी अपेक्षा वह कथंचित् मूर्त माना गया है । सर्वथा अमूर्त मानने पर ही गगनादिककी तरह उसमें हननादिरूप विकार

દ્રારા આશ્રયભૂત શરીરથી જીવને વિયુક્ત કરી દેવામા આવે છે આ ક્રિયાનુ નામ હિંસા છે, કેમ કે જીવના આશ્રયભૂત હોવાથી જે શરીર તેને અત્યંત પ્રિય હતુ, હિંસક પોતાના હિંસારૂપ કર્મદ્વારા તેના નાશ કરી નાખ્યો હિંસાનુ લક્ષણ પણ આમ કહેલ છે

“પચ્ચેન્દ્રિયાણિ ત્રિવિધં બલં ચ,

ઉચ્છ્વાસનિશ્વાસમથાન્યદાયુઃ ।

પ્રાણા દશૈતે ભગવદ્ધિરુક્તા,—

સ્તેષાં વિયોગીકરણં તુ હિંસા ॥ ૧ ॥ ”

અર્થ—પાંચ ઇન્દ્રિય, ત્રણ બળ, ઉચ્છ્વાસ, નિશ્વાસ અને આયુષ્ય આ દસ પ્રાણોને વિયોગ કરવો તે હિંસા છે બીજી વાત એ છે કે આત્મા સર્વથા અમૂર્ત પણ નથી, કેમ કે કર્મબંધની અપેક્ષા તે કથંચિત્ મૂર્ત મનાયેલ છે સદા અમૂર્ત માનવાથી ગગનાદિકની માફક તેમા હનનાદિરૂપ વિકાર થઇ શકતો નથી, પરંતુ એવી માન્યતા એકાન્ત રૂપથી જૈન ધર્મની નથી, જ્યારે

इननादिकमुपपद्यत एव । एवं सर्वभैवात्मोपम्यं विभाषनीयमिति दर्शयति—‘स्वमसी’
 स्यादि—त्वं यं=मीनम् आह्लापयितव्यम्=दुष्करानमिमतकार्ये नियोजनीयमिति मन्यसे
 त्वं स एवासि । एवमपरेष्वपि योज्यम् । तत्र परितापयितव्यं=शारीर-मानस-
 पीडया उपतापयितव्यं परिग्रहीतव्यं=स्वायचीकरणीयम् । अप्रानयितव्यं प्राणैर्म्य-
 नहीं हो सकता है । परंतु ऐसी मान्यता एकान्तरूपसे जैनधर्मकी नहीं
 है । जब वह शरीरमें अभिष्टित प्रत्यक्षरूपसे प्रतीत होता है तो फिर
 उसके बिघात होने पर उसका भी बिघात माना जाता है । इसी प्रकार
 आत्मोपमता सर्वत्र-वक्ष्यमाण पदोंके अर्थके साथ भी समन्वित कर
 लेनी चाहिये; यही बात “स्वमसि नाम स एव यमाह्लापयितव्यमिति
 मन्यसे” इत्यादि पदोंमें प्रकट की गई है—तुम जिस दुष्कर एवं अन-
 मिमत कार्यमें अन्य जीवोंको “ये वहां नियुक्त करनेयोग्य हैं” ऐसा
 समझकर नियुक्त करते हो सो ऐसा व्यवहार तुम्हारा उन जीवोंके
 साथ नहीं है, किन्तु यह व्यवहार तुम स्वयं अपने ही साथ करते हो
 ऐसा समझना चाहिये; क्यों कि उनमें और तुममें जीवके सामान्य लक्षण
 की अपेक्षा कोई अंतर नहीं है । इसी प्रकार जिन जीवोंको तुम शारी-
 रिक एवं मानसिक पीडा पहुंचाने योग्य मानकर उन्हें उस तरहकी पीडा
 पहुंचाते हो, प्राणोंसे उन्हें नियुक्त करते हो, परिग्रहण योग्य मानकर
 तुम जिन जीवोंका दास-दासी आदिरूपमें परिग्रह करते हो, यह सब

ये शरीरमां अभिष्टित प्रत्यक्ष रूपशी प्रतीत बाध से तो पक्षी जेने बिघात
 कयाभी तेना पक्षु बिघात भानी बेवायछे आ प्रभारे आत्मोपमता सर्वत्र-वक्ष्यमाण
 पदोना अर्थनी साथे पक्षु समन्वित करी देवी जेहंजे आ वात “तुमसि”
 इत्यादि । पदोमां प्रकट करेव छे तमे के दुष्कर जेवां अनमिमत कार्यमां
 अन्य लवोने “आ त्मा नियुक्त करवा योग्य छे” जेनुं समझने नियुक्त करे।
 छे, जेवां व्यवहार तमाथे जे लवोनी साथे नही; परंतु आ व्यवहार तमे इठव
 पावानी के साथे करे छे, जेमे समझतुं जेहंजे केमके जेनदमां जने तमा
 तमा लवसामान्यलक्षणुनी अपेक्षा केहं अंतर नही. आ रीते के लवोने
 तमे शारीरिक जने मानसिक पीडा पहुंचाववा योग्य भानीने जेने जेवी जवनी
 पीडा पहुंचाववे छे, प्रभोधी तेने छुटा पाववा योग्य भानीने तमे तेने प्रभोधी
 नियुक्त करे। छे परिग्रहण योग्य भानीने तमे के लवोनु दास-दासी आदि
 रूपमां परिग्रह करे छे आ सबणो व्यवहार तमाथे ते लवो साथेने बिबित

પરોપયિતવ્યમિતિ, एतानि च वाक्यानि हिंसाविशेषप्रतिपादकान्येव सन्ति । स्वस्य
 इननाज्ञापनपरितापनपरिग्रहापद्रावणादिकार्यकारिण कंचिद्विलोक्य यथा दुःखं
 जायते तथैवापरस्यापि; इननादिकारी चेत्त्वं भवेत्तदाऽऽत्मौपम्येन तत्तत्कार्यादौ
 दुःखानि भवन्तीत्यालोच्य कस्य चिन्न इननादौ प्रवर्तितव्यमित्याशयः । एतदा-

વ્યવહાર તુમ્હારા ડન જીવોંકે સાથ ડચિત નહીં હૈ; ક્યોં કિ જિસ પ્રકાર
 અપની હિંસા કરનેવાલેકો દેશ્વકર તુમ્હેં દુઃશ્વ હોતા હૈ, અપનેકો અનુ-
 ચિત ંવં દુષ્કર કાર્યમેં નિયુક્ત કરાનેવાલેકો જાનકર જૈસે તુમ્હેં કષ્ટ
 કા અનુભવ હોતા હૈ, અપનેકો પરિતાપ પદ્ધુચાને યોગ્ય જાનનેવાલે વ્યક્તિ
 કો દેશ્વકર જૈસે સ્વયકો સંતાપ હોતા હૈ, અપનેકો દાસ-દાસીરૂપમેં
 સમજ્ઞનેવાલેકે પ્રતિ જૈસે તુમ્હેં તિરસ્કાર જાગ્રત હોતા હૈ ંર જૈસે અપને
 કો પ્રાણોંસે વિયુક્ત કરનેયોગ્ય માનનેવાલોંકે ડપર તુમ્હેં ક્રોધ હોતા હૈ
 ડસી પ્રકાર યદિ તુમ ંી હસ પ્રકારકા વ્યવહાર દૂસરોંકે પ્રતિ કરતે હો તો
 તુમ્હારા યહ વ્યવહાર આત્મોપમતાસે તુમ્હેં સ્વયં દુઃશ્વપ્રદ હોગા । કારણ કિ
 હિંસનીય, આજ્ઞાપનીય, પરિતાપનીય, પરિગ્રહણીય ંર અપદ્રાવણીય તુમ
 સ્વયં હો જાતે હો । અતઃ અન્યકો ડસ ૨ વ્યવહાર કે યોગ્ય માનના હી સ્વય
 અપનેકો ડસ ૨ વ્યવહારકે યોગ્ય માનના હૈ । યે પૂર્વોક્ત સમસ્ત વાક્ય
 હિંસાકે પ્રકારોંકે હી પ્રતિપાદક હૈં ંસા સમજ્ઞના ચાહિયો । અતઃ આત્મજ્ઞાની
 મુનિકા કર્તવ્ય હૈ કિ વહ કંમી ંી કિસી ંી જીવકે હિંસાદિક કાર્યોમેં

નથી. જે રીતે તમારી હિંસા કરવાવાળાને બોધને જેટલુ હુ ખ તમને થાય છે,
 યોતાને અનુચિત એવા દુષ્કર કાર્યમા નિયુક્ત કરનારને સામે બોધ જેમ તમને
 હુ ખનો અનુભવ થાય છે, તમને પરિતાપ પહોચાડનાર વ્યક્તિને બાણી જે રીતે
 તમોને સંતાપ થાય છે, તમને દાસ-દાસી રૂપે સમજનાર તરફ જેવો તમને તિર-
 સ્કાર બાગૃત થાય છે અને જેમ તમને પ્રાણુથી વિયુક્ત કરવા યોગ્ય માનવાવાળા
 ડપર તમને ક્રોધ થાય છે, આજ રીતે તમે પણ આવા પ્રકારનો વ્યવહાર બીજા-
 ંના તરફ કરો તો તમારો આ વ્યવહાર આત્મોપમતાથી તમને હુ ખદાયક
 થશે, કારણ કે હિંસનીય, આજ્ઞાપનીય, પરિતાપનીય, પરિગ્રહણીય, અને અપદ્રાવણીય
 તમે સ્વય બની બાવ છો । માટે બીજાને તેને વ્યવહારને યોગ્ય માનવુ તે સ્વય યોતાને
 જ તે તે વ્યવહારને યોગ્ય માનવા બરોબર છે આ પૂર્વોક્ત સમસ્ત વાક્ય હિંસાના
 પ્રકારોનુ જ પ્રતિપાદક છે, એવુ સમજવુ બોધએ એથી આત્મજ્ઞાની મુનિનુ કર્તવ્ય

અવેનૈવ સ એવ ત્વમસીતિ સર્વપ્રેક્ષ્યપ્રતિપાદનમિતિ તથાનિષ્ટપ્રાપ્તૌ યથા દુઃસં
માયતે તૈયેવાન્યસ્યતિ સમ્યક્ સમાલોચયતિ માયઃ । ઉપલક્ષ્યમતન્ન્યાપાદાદીના-
મપિ । હન્તુ-હન્યમાનયોરૈક્યકથનન કિમાપાતમિત્યાહ-‘ખજુ’રિત્યાદિ-પક્ષ-
ત્પ્રતિષુદ્ધબીજી-પતસ્ય-હન્તુ-હનનીયૈક્યસ્ય યત્પ્રતિષુદ્ધમ્યપિવોષઃ પરિદ્વાને તદ્
પત્પ્રતિષુદ્ધમ્ તેન બીજિતું શીર્ષં યસ્ય સ પક્ષપ્રતિષુદ્ધબીજી હનનાદિભ્યાપારનિ-
હત્તથ ખજુઃ-સરસઃ-પ્રાણ્યાઃ આત્મસમસકલપ્રાણિગજદુઃસદર્શી મયતિ । તતઃ કિમિ

પ્રવૃત્તિ ન કરે । હસી આશાયસે સૂચકારને “સ એવ ત્વમસિ” હસ વાક્યસે
સર્વથ હન્યમાન-હન્તા આદિમેં પક્ષતાકા કથન કિયા હૈ । જિસ પ્રકાર
અનિષ્ટકી પ્રાપ્તિમેં તુનેં દુઃખ હોતા હૈ ઁસી પ્રકાર મન્યક સાથ કૃત યહ
અનિષ્ટ બ્યવહાર હનેં ખી દુઃખપ્રદ હોતા હૈ, હસ પ્રકાર મોક્ષામિલાબી
મુનિકો સદા વિચાર કરતે રહના ચાહિયે, યહી સૂચકારકા આશાય હૈ ।
“ત્વમસિ નામ સ એવ ય હન્તમ્યમિતિ મન્યસે ” યહ સૂત્રાંશ સૂચાવાદ
આદિકા ઉપલક્ષક હૈ । હન્તા ઔર હન્યમાનમેં જો પક્ષતાકા કથન કિયા
હૈ ઁસકા યહ અમિપ્રાય હૈ-જો પત્પ્રતિષુદ્ધબીજી હૈ-હન્તા ઔર હન્ય
માનમેં પક્ષતાકા પ્રતિવોષસે હી જિસકા જીનેકા સ્વમાય હૈ, અર્થાત્ દૂસ
રૈકિ ધાતાદિક બ્યાપારસે નિવૃત્ત જિસકા જીવન હૈ વેસા ખજુ જીવ અપને
તુલ્ય સમસ્ત જીવૈકો માનકર ઁનક દુઃખકા વર્ણી હોતા હૈ । હસસે ઁસે
હસ વાતકા વોષ હોતા રહતા હૈ કિ જિસ પ્રકાર મેરી હિંસા હોને પર મુક્ષે

છે કે તે કિ પક્ષ કોષધિયુ લખની કિ સાના કાર્યમા પ્રવૃત્તિ ન કરે. આ અવસથથી
સૂચકારે “ સ એવ ત્વમસિ ” આ વાક્યથી સર્વત્ર હન્યમાન-હન્તા બાકિમાં કોઈકાનું
કથન કરેલ છે એ પ્રકારે અનિષ્ટની પ્રાપ્તિથી તમોને દુઃખ થાય છે એ જ
પ્રકારે અન્યની તાલે અનિષ્ટ બ્યવહાર જોને પક્ષ દુઃખપ્રદ થતો હોય છે. આ
વાતનો મોક્ષામિલાબી મુનિકો સદા વિચાર કરતા રહેવું જોઈએ, અવો સૂચકારનો
આશય છે. ત્વમસિ નામ સ એવ ય હન્તમ્યમિતિ મન્યસે ” આ સૂત્રાંશ સૂચાવાદ બાકિનું
ઉપલક્ષક છે હન્તા અને હન્યમાનના બે કોઈકાનું કથન કરેલ છે એનો અર્થ અભિ-
પ્રાય છે કે એ એતદ્વતિષુદ્ધલની છે-હન્તા અને હન્યમાનમા કોઈકાના પ્રતિ-
વોષથી જ એનો લખવાનો સ્વભાવ છે અર્થાત્ બીજાના ધાતાદિક બ્યાપારથી
નિવૃત્ત બેમતુ લખત છે એવા હયાવાન લખ પાતાની તુલ્ય સમસ્ત લખોને
માની એના દુઃખમાં સહકારી બને છે. બીજી જોને એ વાતનું જ્ઞાન થતું રહે
છે કે એ પ્રકારે મારી કિ સા થવાથી અને દુઃખ થાય એ જ પ્રકારે અન્ય

ત્યાહ—‘તસ્મા’દિત્યાદિ-યસ્માદ્ હન્યમાનસ્ય દુઃખ સ્વાત્મન ઇવ જાયતે તસ્માત્
 કારણાત્ સ્વૌપમ્યેન ન હન્તા પરપ્રાણિપ્રાણવિરાધકોન મવેત્, તથૈવ નાપિ ઘાતયેત્,
 અપિ શબ્દાદ્ ધ્વન્તં નાનુમોદયેદિતિ। અપિ ચ આત્મના યદિતરસ્ય અનુ=પશ્ચાત્
 સંવેદનમ્=અનુભાવનમ્-મોહનીયોદયેન યદ્ હનનાદિના દુઃખમુત્પાદિતં તત્પાશ્ચાદા-
 ત્મનાઽનુભવનીયં ભવતિ, इत्यवधार्य यं कंचिद् हन्तव्यमिति मन्यमानस्तं नाभिप्राथ-
 येत्=કદાચિદપિ હન્તવ્યતયા નેચ્છેત્, કસ્યચિદપિ ઘાત મનસાઽપિ નો કામયેત,
 કિંપુનઃ કાયેન વચસેતિ હૃદયમ્ ॥ સૂ. ૫ ॥

દુઃખ હોતા હૈં ઉસી પ્રકાર અન્ય પ્રાણીકોં ભીં હિંસા હોતે સમય દુઃખ હોતા હૈં।
 હસલિયે સ્વાત્મોપમતાકે ધ્યાનસે પરપ્રાણીકે પ્રાણોંકા વિરાધક કમીં ભીં
 મુનિજનકોં નહીં હોના ચાહિયે । જિસ પ્રકાર યહ સ્વયં હિંસાસે વિરક્ત
 હોતા હૈં, ઉસી પ્રકાર ઉસસે વહ અન્ય જનકોં ભીં નિવૃત્ત કરાતા હૈં ।
 “અપિ ” શબ્દસે હિંસામેં પ્રવૃત્ત અન્યજન કી વહ અનુમોદના ભીં નહીં
 કરતા હૈં યહ બોધ હોતા હૈં । “અનુસંવેદનમાત્મના યદ્ હન્તવ્ય પ્રાર્થયેત્”
 અનુ શબ્દકા અર્થ પશ્ચાત્ ઔર સવેદન શબ્દકા અર્થ અનુભાવન હૈં ।
 મોહનીય કર્મકે ઉદયસે જો હનનાદિક વ્યાપારોંદ્વારા અન્ય જીવોંકોં દુઃખ
 પહુચાયા જાતા હૈં વહ દુઃખ પશ્ચાત્-પીછેમારનેવાલોંકે દ્વારા ભોગનેયોગ્ય
 હોતા હૈં, એસા વિચાર કર-નિશ્ચય કર “ યહ હન્તવ્ય હૈં ” હસ પ્રકારકી
 પરિણતિસે કમીં ભીં કિસીં ભીં જીવકોં મારનેયોગ્ય નહીં સમક્ષના
 ચાહિયે । જવ મનસે ભીં હસ પ્રકારકી ઘાત કરનેરૂપ પરિણતિકે ચિન્તન

પ્રાણીઓને પણ હિંસા થતે સમયે દુઃખ થાય છે આ માટે સ્વ આત્માના
 પ્રમાણના ધ્યાનથી બીજા પ્રાણીના પ્રાણના નાશકર્તા મુનિજને કદી પણ ન બનવું
 જોઈએ જે રીતે જે પોતાના મનથી જ હિંસાથી વિરક્ત થાય છે, તેવી જ રીતે
 બીજાને પણ હિંસાથી નિવૃત્ત બનાવે છે

“અપિ ” શબ્દથી હિંસામાં પ્રવૃત્ત બીજા માણસને પણ એ અનુમોદન
 આપતા નથી, એવો અર્થ થાય છે “અનુસંવેદન” ઇત્યાદિ । અનુ શબ્દનો અર્થ
 પશ્ચાત્ અને સંવેદન શબ્દનો અર્થ અનુભાવન છે મોહનીય કર્મના ઉદયથી
 જે જીવ હિંસાદિક વ્યાપારોદ્વારા બીજા જીવોને જેવું દુઃખ પહોંચાડે છે તેવું
 દુઃખ પાછળથી મારનારાઓ પોતે જ ભોગવે છે, એવો વિચાર કરી-નિશ્ચય
 કરી “ આ હન્તવ્ય છે ” આ પ્રકારની પરિણતિથી કદી પણ જીવને મારવા યોગ્ય
 સમજવું ન જોઈએ. બ્યારે મનમાં પણ આ પ્રકારનો ઘાત કરવારૂપ વિચારનું

આત્મનાડુનું સંવેદન કૃતમિત્થમિરિતં, તથા સંવેદનસ્ય મુક્ત-દુઃસ્વરૂપતયા કમ્પાદ-
-ગૌતમાનુયાયિનેવાત્મનો ગુણભૂતેન વિશેષગુણેન જ્ઞાનન મયોડયથા વામદ્ એવા પ્ર
શિષ્યમક્ષે મુખર્માસ્વામી પ્રાર-‘જે આયા’ રૂપાદિ ।

મુલ્-જે આયા સે વિજ્ઞાયા, જે વિજ્ઞાયા સે આયા જેણ
વિયાણદ્ સે આયા, ત પદ્મચ્ચ પદિસસ્વાય, યસ આયાવાઈ
સમિયાય પરિયાય વિયાહિયે તિથેમિ ॥ સૂ. ૬ ॥

તત્કલા વિચાર મુનિજન યા સામાન્ય જનક લિપ નિપિદ્દ હૈ તો કાચ
ઝીર વચનસે તો રૂપ પ્રકારકી પરિણતિકા નિવેષ સ્પષ્ટ રૂપ હો જાતા
હૈ । મુનિજનકે લિપે સર્વથા મન, વચન ઝીર કાચસે પરજીવોંકો દિસા
આદિકા સર્વથા ત્યાગ કરના વાહિયે યહી રૂપના ભાવાર્થ હૈ ॥ સૂ. ૦ ॥

“આત્માકો રૂસરે જીવોંકો દિસા આદિ નહીં કરના વાહિય; કયોં
કિ દિસાજન્ય પાપકર્મકા ફલ ઉસે ભોગના પડતા હૈ એસા નિશ્ચય કર
વહ સર્વથા દિસા આદિકા ત્યાગ કરે ” એસા જો આપને કહા હૈ સો રૂપ
પ્રકારકા નિશ્ચય આત્મા જ્ઞાનસે રૂપ કરતા હૈ । તથા હમ પૂછતે હૈ કિ જિસ
પ્રકાર કળાદ ઝીર ગૌતમકે અનુયાયિયોંનિ આત્માસે જ્ઞાનગુણકો મયથા
મિત્ર માના હૈ, ઉસી પ્રકાર કયા આત્માસે જ્ઞાન ગુણકા સર્વથા મેદ યા
અમેદ આપ મી માનતે હૈ ? રૂપ પ્રકાર જન્મસ્વામીક પ્રશ્નકા ઉત્તર વતે
રૂપ મીસુખર્માસ્વામી મહારાજ કહતે હૈ—“જે આયા” રૂપાદિ—

વિવત્ત કસ્થુ મુનિજન અને સામાન્ય જનને નાદે નિપિદ્દ છે તે
કાચ અને વચનથી તે આ પ્રકારની પરિણતિને નિવેષ સ્પષ્ટ રૂપ બની બધ
છે મુનિજનને માટે સદા મન વચન અને કાચથી પરજીવોંની દિસા આદિનો
સર્વથા ત્યાગ છે—જે આના ભાવાર્થ છે ॥ સૂ. ૫ ॥

“આત્માએ જીવના જીવોંની દિસા આદિ ન કરવું એઈએ; કેમ કે દિસા
જન્ય પાપકર્મનું રૂપ એણે ભોગવવું પડે છે એવા નિશ્ચય કરી તે દિસા
આદિનો ત્યાગ કરે” એવું આપે કહ્યું છે પણ આ પ્રકારની નિશ્ચય તે આત્મા
જાનથી જ કરે ॥ ત્યારે અમે આપને આ પૂછીએ છીએ કે જે પ્રકારે કલ્યાણ
અને જીવમન અનુયાયીઓએ આત્માથી જ્ઞાન ગુણને સર્વથા મિત્ર માને છે
જે પ્રકારે આપ પણ શું આત્માથી જ્ઞાન ગુણને સર્વથા મેદ યા અમેદ માને
છે ? આ પ્રકારના જન્મસ્વામીના પ્રશ્નને ઉત્તર રેતા મી મુખર્માસ્વામી
મહારાજ કહે છે—‘જે આયા’ રૂપાદિ.

છાયા—ય આત્મા સ વિજ્ઞાતા, યો વિજ્ઞાતા સ આત્મા, યેન વિજ્ઞાનાતિ સ આત્મા, ત પ્રતીત્ય પ્રતિસંખ્યાયતે, એષ આત્મવાદી સમ્યક્પર્યાયો વ્યાહત્ત્વ ઇતિ બ્રવીમિ ॥ સૂ. ૬ ॥

ટીકા—‘ય આત્મે’ત્યાદિ—ય આત્મા=નિત્ય ઉપયોગલક્ષણો જીવઃ સ વિજ્ઞાતા=વિજ્ઞાનકર્તાઽપિ સ એવ પ્રખ્યાતઃ, ન પુનરાત્મનઃ પદાર્થસાર્થબોધક જ્ઞાન પૃથક્કુઃ યો વિજ્ઞાતા=પદાર્થપરિચ્છેદક ઉપયોગઃ સ એવ આત્મા=જીવ ઉપયોગલક્ષણઃ, ઉપયોગસ્ય ચ જ્ઞાનસ્વરૂપત્વેન જ્ઞાનાત્મનોરભેદસિદ્ધિરિત્યર્થઃ ।

નિત્ય ઔર ઉપયોગલક્ષણવાલા જીવ હી આત્મા હૈ ઔર વહી વિજ્ઞાન ક્રિયાકા કર્તા હૈ । ઇસ આત્માસે પદાર્થોકા બોધક જ્ઞાનગુણ સર્વથા ભિન્ન નહીં હૈ । ઇસી પ્રકાર જો પદાર્થપરિચ્છેદક ઉપયોગ હૈ વહી આત્મા હૈ, ક્યોં કિ આત્મા સ્વય ઉપયોગલક્ષણવાલા હૈ । યહ ઉપયોગ હી-જ્ઞાનસ્વરૂપ હૈ । ઇસલિયે જ્ઞાન ઔર આત્મામે અભેદ હૈ ।

ભાવાર્થ—શિષ્યને જો યહ પ્રશ્ન કિયા થા કિ આત્માસે જ્ઞાનગુણ સર્વથા ભિન્ન હૈ ક્યા ? ઇસકા ઉત્તર સૂત્રકારને યહાં દિયા હૈ, બે કહતે હૈં કિ આત્મા ઔર જ્ઞાનગુણમેં પરસ્પરમેં સર્વથા ભેદ નહીં હૈ, ક્યોં કિ આત્મા કા લક્ષણ ઉપયોગ હૈ, ઔર યહ ઉપયોગ ત્રિકાલમેં બી આત્માસે સર્વથા ભિન્ન નહીં હોતા હૈ, ઇસી પ્રકાર ઉપયોગ સ્વરૂપસે પરિણત હી આત્મા હૈ । ઉપયોગ દો પ્રકારકા હૈ—૧ જ્ઞાનોપયોગ, ઔર દૂસરા દર્શનોપયોગ । દર્શનોપયોગમેં પદાર્થકા સામાન્ય પ્રતિભાસ હોતા હૈ, જ્ઞાનોપયોગમેં પદાર્થ

નિત્ય અને ઉપયોગલક્ષણવાળા એવ જ આત્મા છે અને એ જ વિજ્ઞાન ક્રિયાના કર્તા છે આ આત્માથી પદાર્થોનું બોધક જ્ઞાનગુણ સર્વથા ભિન્ન નથી, આમ જ પદાર્થ-પરિચ્છેદક ઉપયોગ છે એ જ આત્મા છે, કેમકે આત્મા સ્વય ઉપયોગલક્ષણવાળો છે આ ઉપયોગ જ જ્ઞાનસ્વરૂપ છે આ માટે જ્ઞાન અને આત્મામા અભેદ છે

ભાવાર્થ—શિષ્યે જે એવો પ્રશ્ન કર્યો હતો કે આત્માથી જ્ઞાનગુણ સર્વથા ભિન્ન છે ? એનો ઉત્તર સૂત્રકારે આહિ આપેલ છે, એ કહે છે કે આત્મા અને જ્ઞાનગુણમા પરસ્પરમા સર્વથા ભેદ નથી, કેમકે આત્માનું લક્ષણ ઉપયોગ છે, અને એ ઉપયોગ ત્રણ કાળમા પણ આત્માથી સર્વથા ભિન્ન થઈ શકતો નથી આ રીતે ઉપયોગસ્વરૂપથી પરિણત જ આત્મા છે ઉપયોગ બે પ્રકારનો છે, (૧) જ્ઞાનોપયોગ, (૨) દર્શનોપયોગ દર્શનોપયોગમા પદાર્થનો સામાન્ય પ્રતિભાસ થાય

તત્ત્વનામેદ્ પ્રતિપાદનેન સૌગતમતપ્રવચ્ચસ્તં દિ-જ્ઞાનાત્મનોરૈક્યં પ્રતિપાદ્યન્તીતિ
વેશ, અમેદો દિ-યથા-‘ નીલો ઘટ ’ ઇત્યાદૌ નીલઘટયોરેકપ્ર સ્થિતા
પપિ ન તયોરૈક્યમપિ તુ નીલઘટયોરમેદ ઇયં । અન્યથા-નીલગુણનાશો ઘટનાશ-
પ્રસન્નસ્ય દુર્વારત્વં સમાપયેત્ । તયૈવ પ્રકૃતે જ્ઞાનાત્મનોરમેદન તદ્વર્મયોરેકપ્ર સ્થિતા
અપિ તયોર્જ્ઞાનાત્મનોરૈક્યમપિ ત્વમેદ પ્વેત્યદોષાત્ ।

જા નિમ્ન ૨ રૂપસે વિશેષ ઘોષ હોતા હૈ । ઁસા કોઈ સા મી ક્ષણ નહીં હૈ
જબ આત્મા અપને હસ સ્વભાવસે રહિત હો તથા યહ સ્વભાવ આત્માકો
છોડ કર નિરાધાર કહીં પ્રતીત હોતા હો । આત્મા હી તત્ત્વરૂપ
યોગસ્વરૂપ પરિણમિત હોતા રહતા હૈ । હસસે યહ વાત પ્રતીતિકોટિમેં
સ્થિર હોતી હૈ કિ આત્માસે જ્ઞાનગુણ ઓર જ્ઞાનગુણસે આત્મા સ્વતન્ત્ર-
નિમ્ન નહીં હૈ ।

શક્ત—જ્ઞાન ઓર આત્માકા અમેદ માનનેપર અપસિદ્ધાન્ત નામક
નિમ્નસ્થાન આતા હૈ; ક્યોં કિ યહ માન્યતા જૈન સિદ્ધાન્તકી માન્યતા પુષ્ટ
ન કર ડહીં સૌગત (બૌદ્ધ) માન્યતાકા હી સમર્થન કરતી હૈ । યહ જ્ઞાન
ઓર આત્માકા અમેદ યાદ બૌદ્ધોંકા હૈ ન કિ જૈનિયોંકા ।

ઉત્તર—જિસ પ્રકાર “ નીલો ઘટ : ” “ નીલા ઘટ ” હસ વાક્યમેં
નીલ ઓર ઘટ હન ઘોંનોંકી ઁકપ્ર સ્થિતિ હોનેપર મી હન ઘોંનોં મેં
ઁકતા નહીં માની જાતી હૈ, કિન્તુ અમેદ હી માના જાતા હૈ । અન્યથા
ઘોંનોંમેં ઁકતા માનને પર નીલગુણકે નાશ હોને પર ઘટકે નાશકા મી

જે જ્ઞાનોપયોગમાં પદ્ધતિના બિલ બિલ રૂપથી વિશેષ ઘોષ થાય છે એવી
કોઈ પણ ક્ષણ નથી હોતી કે આત્મા યોગના આ સ્વભાવથી સ્થિત બને, આ
સ્વભાવ આત્માને છેડી શકતો નથી આત્માથી જ્ઞાનગુણ બને જ્ઞાનગુણથી આત્મા
સ્વતન્ત્ર-બુદ્ધ નથી.

શક્ત—જ્ઞાન બને આત્માને અલેક માનવાથી અપસિદ્ધાન્ત નામક નિમ્ન
સ્થાન આવે છે, કેમ કે આ માન્યતા જૈન સિદ્ધાન્તની માન્યતાથી વિરૂદ્ધ બૌદ્ધ
માન્યતાનુ સમર્થન કરે છે જ્ઞાન બને આત્માને અલેકવાદ બોલોને છે,
જેનોને નથી.

ઉત્તર—જે પ્રકારે “ નીલો ઘટ : ” “ નીલા ઘટ : ” આ વાક્યમાં નીલ બને
પ આ બન્નેની એકત્ર સ્થિતિ હોવા છતાં પણ આ બન્નેમા એકતા મનાતી
નથી; પણ અલેક જ માનવામાં આવે છે અન્યથા-બન્નેમા એકતા માનવાથી

પ્રસંગ હોગા उसी प्रकार प्रकृतमें ज्ञान और आत्मामे भी एकता नहीं है किन्तु अभेद ही है, इस प्रकार पूर्वोक्त दोष नहीं आता है ।

भावार्थ—शङ्काकारने जो ज्ञान और आत्माके अभेदमें बौद्धवादका समर्थन करना प्रकट किया है उसका यहां पर प्रत्युत्तर दिया गया है—एकतामें और अभेदमें अन्तर है । बौद्ध सिद्धान्त आत्मामें अभेद नहीं मानता है किन्तु वह दोनोंमें एकता मानता है । इससे ज्ञानकी अथवा आत्माकी स्वतन्त्र सत्ता सिद्ध नहीं होती है, किन्तु दोनोंमें एकता ही सिद्ध होती है । इस एकतामें या तो आत्माहीका अस्तित्व सिद्ध होता है या ज्ञानका । दोनोंका नहीं । अभेद पक्षमें ऐसा नहीं है । वहां पर “नीलो घटः” की तरह अभेद होने पर भी दोनोंकी सत्ताका विलोप नहीं होता है । गुण और गुणीमें एकता मानने पर गुण गुणीका स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं बनता है । गुण गुणीरूप और गुणी गुणरूपमें परिवर्तित हो जाते हैं । परन्तु अभेद पक्षमें यह बात नहीं आती, दोनोंकी स्वतन्त्र स्वरूपसे सत्ता रहती है—इस पक्षमें इतना होता है कि गुण गुणीको छोड़कर और गुणी गुणको छोड़ कर परस्पर निरपेक्षरूपमें नहीं रहते हैं; किन्तु परस्पर सापेक्षरूपमें ही इनकी वृत्ति बनी रहती है । नील और घट

નીલગુણનો નાશ થવાથી ઘટના નાશનો પણ પ્રસંગ બને આ જ રીતે પ્રકૃતમા જ્ઞાન અને આત્મામા પણ એકતા નથી છતાં અભેદ છે, આ પ્રકારે પૂર્વોક્ત દોષ આવતો નથી

ભાવાર્થ—શંકાકારે જે જ્ઞાન અને આત્માના અભેદમા બૌદ્ધવાદનું સમર્થન પ્રગટ કરેલ છે તેનો આ સ્થળે પ્રત્યુત્તર અપાયેલ છે એકતામા અને અભેદમા અંતર છે બૌદ્ધ સિદ્ધાંત જ્ઞાન અને આત્મામા અભેદ નથી માનતો, પરંતુ તે બંનેમા એકતા માને છે એનાથી જ્ઞાનની અને આત્માની સ્વતંત્ર સત્તા સિદ્ધ થતી નથી પરંતુ બંનેમા એકતા જ સિદ્ધ થાય છે આ એકતામા યા તો આત્માનું અસ્તિત્વ સિદ્ધ થાય છે યા તો જ્ઞાનનું બંનેનું નહિ અભેદ પક્ષમા એવું નથી, ત્યાં “નીલો ઘટ”ની માફક અભેદ હોવા છતાં પણ બંનેની સત્તાનો વિલોપ થતો નથી, ગુણ અને ગુણીમા એકતા માનવાથી ગુણ ગુણીનું સ્વતંત્ર અસ્તિત્વ બંનતું નથી ગુણ ગુણીરૂપ અને ગુણી ગુણરૂપમા પરિવર્તિત બને છે, પરંતુ અભેદ પક્ષમા આ વાત આવતો નથી, બંનેની સ્વતંત્ર સ્વરૂપથી સત્તા રહે છે આ પક્ષમા એટલું હોય છે કે ગુણ ગુણીને છોડીને અને ગુણી ગુણને છોડીને પરસ્પર નિરપેક્ષ રૂપમા રહેતા નથી, પરંતુ પરસ્પર—સાપેક્ષ—

ન ચ નીલનાશ ઘટોઽપિ મીલાત્મના નષ્ટ ઇવેતિ દૃષ્ટાન્તાસિદ્ધિરિતિ સામ્યમ્ ;
 इन दोनोंमें परस्परमें एकता नहीं है किन्तु अमेव सम्बन्ध ही है। ऐसा
 नहीं है कि नीलस्वरूप घट और घट स्वरूप मील है। किन्तु घटको छोड़
 कर नीलकी और नीलको छोड़कर घटकी स्वतन्त्र सत्ता नहीं है। यदि
 इन दोनोंकी एकता मानी जावे तो नीलके नाश होने पर घटका नाश
 होना चाहिये। परन्तु ऐसा नहीं होता है।

शङ्का—नीलके नाश होने पर नीलात्मना घटका भी तो नाश हो
 जाता है—इसलिये दृष्टान्तकी असिद्धि है।

मावर्ण्य—यह जो अभी कहा गया है कि नील और घटकी एकता
 मानने पर नीलस्वरूप कं नष्ट होने पर घटका भी नाश होना चाहिये,
 परन्तु ऐसा नहीं होता—अतः दोनोंमें एकता न मान कर अमेव ही
 मानना चाहिये, इस पर प्रतिवादीका यह आक्षेप है कि नीलके नाश
 होने पर नीलस्वरूपसे घटका भी नाश हो जाता है इसलिये यह दृष्टान्त
 सिद्ध नहीं है; किन्तु असिद्ध ही है। दृष्टान्त बादी और प्रतिवादी दोनों
 को सिद्ध हुआ करता है; इसीलिये दृष्टान्तके बलसे बादी अपने
 साम्यकी सिद्धि करता है। असिद्ध दृष्टान्तसे नहीं।

રૂપમા એમની પ્રવૃત્તિ બની રહે છે નીલ અને ઘટ બા બન્નેમાં પરસ્પરમાં
 એકતા નથી, પરંતુ અસેદ સબંધ જ છે એવું નથી કે નીલ સ્વરૂપ ઘટ અને
 ઘટ સ્વરૂપ નીલ છે પરંતુ ઘટને એકીને નીલની અને નીલને એકીને ઘટની
 સ્વતંત્ર સત્તા નથી. એ બા બન્નેની એકતા માનવામાં આવે તો નીલના નાશથી
 ઘટનો પણ નાશ થવો એકજો, પરંતુ એવું બનતું નથી.

શંકા—નીલનો નાશ થવાથી નીલાત્મના ઘટનો પણ નાશ થઈ જાય છે
 આ માટે દૃષ્ટાન્તની અસિદ્ધિ છે.

આવાર્ણ્ય—અર્થ કે કહેવાયું છે કે નીલ અને ઘટની એકતા માનવાથી
 નીલ સ્વરૂપનો નાશ થવાથી ઘટનો પણ નાશ થવો એકજો. પરંતુ એવું બનતું
 નથી માટે બન્નેમાં એકતા ન માનીને અસેદ જ માનવા એકજો. આ ઉપર
 પ્રતિવાદીનો એ આક્ષેપ છે કે નીલનો નાશ થવાથી નીલ સ્વરૂપથી ઘટનો પણ
 નાશ થાય છે આ કારણે આ દૃષ્ટાન્ત સિદ્ધ નથી; પરંતુ અસિદ્ધ જ છે. સિદ્ધ દૃષ્ટા-
 ન્તજ વાદી અને પ્રતિવાદી બન્નેને માન્ય કીધો છે; માટે જ દૃષ્ટાન્તના બળથી વાદી
 પિતાના સામ્યની સિદ્ધિ કરે છે. અસિદ્ધ દૃષ્ટાન્તથી નહીં.

अनेकान्तवादिनामस्माकं मतेन पदार्थस्यानन्तधर्मात्मकतयैकधर्मविनाशोऽप्यन्यधर्म-
सत्त्वान्नष्ट इति व्यवहारासम्भवेन दृष्टान्तस्य सिद्धेः । तथैव दार्ष्टान्तिकेऽपि
ज्ञानविशेषस्य नाशोऽपि नात्मनो नाशस्तस्यापरामूर्तत्वासंख्येयमादेशिकत्वाऽगुरुल-
घुत्वादिधर्माणां सत्त्वेन नष्ट आत्मेति व्यवहारासम्भवात्कुत्राप्यनुपपत्तिर्नास्ति
किमधिकेनेत्यलम् ।

उत्तर—ऐसा नहीं कहना चाहिये । क्यों कि दृष्टान्त सिद्ध ही है
असिद्ध नहीं है । हम अनेकान्तवादी जैन स्याद्वाद सिद्धान्तानुसार प्रत्येक
पदार्थको अनन्त धर्मात्मक मानते हैं । इसलिये किसी एक विवक्षित धर्म
का विनाश होने पर भी उसमें अन्य धर्मोंका सद्भाव होनेसे विवक्षित
रूपके नष्ट होने पर भी वह सर्वथा नष्ट हो गया ऐसी मान्यता घटित
नहीं हो सकती है । अतः दृष्टान्त सिद्ध ही है असिद्ध नहीं । इसी प्रकार
दार्ष्टान्तिक (आत्मा और ज्ञान)में भी ज्ञान विशेष (विवक्षित घट आदि
ज्ञान)के नाश-परिवर्तन होनेपर भी आत्मा का नाश नहीं होता है; क्यों
कि आत्मामें अन्य अमूर्तत्व, असंख्यात प्रदेशित्व और अगुरुलघुत्व आदि
अनेक धर्मोंका अस्तित्व रहता है । इसलिये विवक्षित धर्मके अभावमें
आत्मा नष्ट हो गई ऐसा व्यवहार वहां संभवित नहीं हो सकता । अतः
इस कथनमें कोई भी विरोध नहीं है । अधिक क्या कहा जाय ।

ઉત્તર—એવું ન કહેવું જોઈએ, કેમ કે દૃષ્ટાન્ત સિદ્ધ જ છે અસિદ્ધ નથી
અમે અનેકાન્તવાદી જોનો સ્યાદ્વાદ—સિદ્ધાન્ત અનુસાર પ્રત્યેક પદાર્થને અનન્ત ધર્મા-
ત્મક માનીએ છીએ આ કારણે કોઈ એક વિવક્ષિત ધર્મનો વિનાશ થવા છતાં
પણ એનામાં અન્ય ધર્મોનો સદ્ભાવ હોવાથી વિવક્ષિત રૂપથી નષ્ટ થવા છતાં
પણ એનો સર્વથા નાશ થઈ ગયો એ માન્યતા બરોબર નથી આથી દૃષ્ટાન્ત
સિદ્ધ જ છે અસિદ્ધ નથી આ રીતે દાર્ષ્ટાન્તિક—આત્મા અને જ્ઞાન—માં પણ જ્ઞાન વિશેષ
ઘટ આદિ જ્ઞાન—માં નાશ—પરિવર્તન થવા છતાં પણ આત્માનો નાશ થતો નથી, કેમ
કે આત્મામાં બીજા અમૂર્તત્વ, અસંખ્યાત પ્રદેશિત્વ અને અગુરુલઘુત્વ આદિ અનેક
ધર્મોનું અસ્તિત્વ રહે છે. આથી વિવક્ષિત ધર્મના અભાવથી આત્માનો નાશ થઈ
ગયો એ કહેવું સંભવિત નથી, એટલે આ કથનમાં કોઈ પણ વિરોધ નથી.
વધુ શું કહ્યું બાપ,

ज्ञानात्मनोरभेदसुपपाद्य करणभूतेन ज्ञानेनाभेदप्रतिपादनायाह—‘येने’त्यादि,
यन=मस्यादिना ज्ञानेन करणभूतेन क्रियारूपेण वा पदार्थं विजानाति=विश्लेषे-
षेण सामान्यविश्लेषादिरूपेणेत्यर्थः, जानाति=ज्ञानविषयीकरोति सः=कारणभूतः
क्रियाभूतो वा आत्मा, आत्मना परिणामित्वात्, अत एव ‘स्व आत्मानमात्मना
जानातीत्यादावकस्यापि कथञ्चित् भेदमादाय तथा प्रतीतिः कर्तुं-कर्म-करण-
क्रियादीनामैक्यादुपपद्यते ।

ज्ञान और आत्माका अभेद कह कर करणभूत ज्ञानके साथ भी
आत्माका अभेद है—इस बातको प्रतिपादन करनेके मिमिक्षा सूत्रकार कहते
हैं—“येन विजानाति स आत्मा” कि जिस मति आदि करणभूत
अथवा क्रियारूप ज्ञानसे आत्मा पदार्थोंको सामान्य और विशेष आदि
रूपसे जानता है उस करणरूप या क्रियारूपमें वह आत्मा ही परिणत
हुमा है । क्यों कि आत्माका स्वभाव परिणमनशील है, कूटस्थ नित्य
नहीं । अतः आत्मा ही उस करणज्ञान अथवा जाननेरूप क्रियासे परिणत
हुमा है । “स्व आत्मानम् आत्मना जानाति”—आत्मा आत्माको आत्मासे
जानता है—इस वाक्यप्रयोगमें एक आत्मा ही कथञ्चित् भेददृष्टिको
अपेक्षासे कर्ता, कर्म, क्रिया और करणरूपसे परिणत होता है, आत्मा
कर्ता, आत्मानं कर्म, आत्मना करण और जानाति यह क्रिया है । यहाँ
आत्मा ही एक पदार्थ कथञ्चित् भेदकी अपेक्षासे जानात्कारक रूपमें परि-
णत होता हुआ प्रकट किया गया है । ऐसा होने पर भी आत्मारूप
पदार्थमें अनेकता-परस्परमें कर्ता कर्म आदिमें भिन्नता सिद्ध नहीं होती है ।

ज्ञान अने आत्मानो अभेद कही करणभूत ज्ञानकी साथ आत्मानो अभेद
हे अ वातने प्रतिपादन कर्ता सूत्रकार कहे छे के “ येन विजानाति स आत्मा ”
के मति आदि करणभूत अथवा क्रियारूप ज्ञानकी आत्मना पदार्थोने सामान्य अने
विशेष आदि रूपकी बाबु छे ते करणरूप अथवा क्रियारूपमा ते आत्मा वा परिणत
अबेद छे के मते आत्मानो स्वभाव परिणमनशील छे, कूटस्थ नित्य नहीं भावे आत्मा
जे वा करण ज्ञान अने वाद्यवाह्य क्रियाकी परिणत अबेद छे “ स्व आत्मानम्
आत्मना जानाति ” आत्मा आत्माने आत्माकी बाबु छे, अ वाक्यप्रयोगमा
जे आत्मा वा कहेला सेददृष्टिनी अपेक्षाकी कर्ता, कर्म क्रिया अने करणरूपकी
परिणत अने छे आत्मा कर्ता आत्मानम् कर्म आत्मना करण अने जानाति
अ क्रिया छे आदि आत्मा वा जे पदार्थ कहेलासेला सेदनी अपेक्षाकी नाना

નનુ મુનિસ્તપસા કર્મ ધુનોતીત્યાદૌ કર્તૃ-કર્મ-કરણ-ક્રિયાણાં ભેદસ્યાઽઽપા-
મરસાધારણતયા કથમૈકયાભિધાનમિતિ चेन्न—आत्मनस्तु परिणामित्वेन कर्म-
करण-क्रियारूपेणापि परिणामादेकत्वस्य सौलभ्यात्, कर्तृ-कर्म-करण-क्रियाणा-

“મુનિસ્તપસા કર્મ ધુનોતિ ” ઇસ વાક્યમેં કર્તા, કર્મ, કરણ
और क्रियामें परस्पर भिन्नता साधारण से साधारण प्राणी तकको भी
प्रतीत होती है? फिर आप कर्ता, कर्म आदि कारको में परस्परमें अभि-
न्नता कैसे कहते हैं, सो ऐसा नहीं कहना चाहिये, क्यों कि हमारा तो
सिर्फ इतना ही कहना है कि परिणामी होनेसे एक ही आत्म पदार्थ
कर्ता, कर्म, करण और क्रियारूपमें परिणत होता देखा जाता
है, हम यह तो कहते नहीं हैं कि अभेदमें ही कर्ता-करणादि रूपकी
प्रतीति होती है ! यह प्रतीति तो अभेदमें भी होती है और भेदमें भी
होती है । “ आत्मा ज्ञानसे आत्माको जानता है “ यहां पर अभेद है
इसमें भी कर्तादि रूपकी प्रतीति होती है । “ मुनि तपसे कर्मको नष्ट
करता है ” यहां पर भेदमें कर्ता कर्म आदिकी प्रतीति होती है, और
करणरूप ज्ञानसे आत्माका अभेद संबंध है ऐसा मानना चाहिये ।
कर्ता, कर्म, करण और क्रियाओंकी प्रतीति अभेदमें भी कथंचित् भेद
विवक्षाके वशसे बन जाती है । इस व्यवहारमें कोई विरोध नहीं है

પ્રકારના રૂપમા પરિણત થતો બતાવવામા આવેલ છે આવું હોવા છતાં પણ
આત્મારૂપ પદાર્થમા અનેકતા-પરસ્પરમા કર્તા કર્મ આદિમા ભિન્નતા-સિદ્ધ થતી નથી

“મુનિસ્તપસા કર્મ ધુનોતિ ” આ વાક્યમા કર્તા, કર્મ, કરણ અને ક્રિયામા
પરસ્પર ભિન્નતા સાધારણમા સાધારણ પ્રાણીને પણ પ્રતીત થાય છે તો આ
કર્તા કર્મ આદિમા પરસ્પર અભિન્નતા કેમ કહેવાય છે, તેમ કહેવું ન જોઈએ.
કેમ કે અમારૂં તો ફક્ત એટલું જ કહેવું છે કે પરિણામી હોવાથી એકજ આત્મા
પદાર્થ કર્તા, કર્મ, કરણ અને ક્રિયારૂપથી પરિણત થતો જોવામા આવે છે.
અમા તો એમ કહેતા નથી કે અલેક્ષમા જ કર્તા કરણાદિરૂપની પ્રતીતિ થાય
છે આ પ્રતીતિ અલેક્ષમા પણ થાય છે અને લેક્ષમા પણ થાય છે આત્મા જ્ઞાનથી
આત્માને જાણે છે ” આ સ્થળે અલેક્ષ છે, એમા પણ કર્તા આદિ રૂપની પ્રતીતિ થાય
છે “ મુનિ તપથી કર્મને નષ્ટ કરે છે ” આદિ લેક્ષમા કર્તા કર્મ આદિની પ્રતીતિ
થાય છે, અને કરણરૂપ જ્ઞાનથી આત્માનો અલેક્ષ સંબંધ છે એવું માનવું
જોઈએ કર્તા, કર્મ, કરણ અને ક્રિયાઓની પ્રતીતિ અલેક્ષમા પણ કોઈ રીતે
લેક્ષ વિવક્ષાના વશથી બની રહે છે આ વ્યવહારમા કોઈ વિરોધ નથી, અને એથી

मैत्रेयेऽपि कर्म विवृण्वन्माहाय तथा व्यवहारः । उक्तञ्च—

“ भूतिर्येषां क्रिया सैव, कारकं सैव बोध्यते । ” इति ।

प्रकृते ज्ञानात्मनोरेकत्वे किमापावमित्याह—‘तमित्यादि’—तं ज्ञानस्वरूप

और इसलिये इस प्रकारका व्यवहार होता है । कहा भी है ।

“ भूतिर्येषां क्रिया सैव कारकं सैव बोध्यते । ” इति ।

शङ्क—प्रकृतमें ज्ञान और आत्माका अमेद संबंध मानने से आप क्या सिद्ध करना चाहते हैं ?

उत्तर—तमित्यादि—ज्ञान स्वरूप आत्माकी प्रतीतिसे उसी स्वरूपसे आत्माका कथन किया जाता है ।

भाषार्थ—ज्ञान और आत्माका अमेद मानने पर यह लाभ होता है कि आत्मा ज्ञानस्वरूप सिद्ध होता है । अन्यथा आत्मामें जडत्वका प्रसंग होगा; क्योंकि कि मेद संबंधमें आत्मा अज्ञस्वभाव ठहरता है । समवायादि संबंध से आत्मामें ज्ञानका संबंध मान लेने पर भी उसमें जडत्व धर्म नहीं आ सकता; कारण कि समवाय एक और निष्प होनेसे ज्ञानका संबंध आत्मासे ही करायेगा, अन्य आकाशादिकक साथ नहीं; इसमें कोई नियामक तर्क नहीं है । अतः अमेद पक्षमें आत्मामें तत्त्व रूपताकी सिद्धि होती है यह एक बड़ा भारी लाभ है । दूसरे—ज्ञान और

आ प्रकारने व्यवहार होय छे । कहुँ पण छे— भूतिर्येषां क्रिया सैव कारक सैव बोध्यते ” इत्यादि

शङ्का—वस्तुतया ज्ञान अने आत्माने असेही संबंध मानवाची आप सु सिद्ध करवा माये छे ।

उत्तर—तमित्यादि—ज्ञानस्वरूप आत्मानी प्रतीतिशी जे व स्वरूपमा आत्मानु कथन कहेवाया आवे छे ।

भाषार्थ—ज्ञान अने आत्माने असेही संबंध मानवाची आ लाभ करय छे हे आत्मा ज्ञानस्वरूप सिद्ध बाय छे जे सिवाय आत्माका वस्तुतया प्रकृत अने, हेम के लेख संबंधमा आत्मा अज्ञस्वभाव करे छे समवायादि संबंधमा आत्माका ज्ञानने संबंध मानी लेवाची पण कोर्मा तत्व धर्म आपी शकते नही । कारण के समवाय जेक अने निष्प होवाची ज्ञानने संबंध आत्माशी व करीये, अन्य आकाशादिनी साथे नही । आभा केहूँ नियामक तर्क नही । आभी असेही पक्षमा आत्माका तत्त्व रूपताकी सिद्धि बाय छे आ जेक धर्मो भयो बाय छे पीछे

નનુ મુનિસ્તપસા કર્મ ધુનોતીત્યાદૌ કર્તૃ-કર્મ-કરણ-ક્રિયાણાં ભેદસ્યાઽઽપા-
મરસાધારણતયા કથમૈક્યાભિધાનમિતિ ચેન્ન—આત્મનસ્તુ પરિણામિત્વેન કર્મ-
કરણ-ક્રિયારૂપેણાપિ પરિણામાદેકત્વસ્ય સૌભ્યાત્, કર્તૃ-કર્મ-કરણ-ક્રિયાણા-

“મુનિસ્તપસા કર્મ ધુનોતિ” આ વાક્યમાં કર્તા, કર્મ, કરણ
और क्रियामें परस्पर भिन्नता साधारण से साधारण प्राणी तकको भी
प्रतीत होती है? फिर आप कर्ता, कर्म आदि कारकों में परस्परमें अभि-
न्नता कैसे कहते हैं, सो ऐसा नहीं कहना चाहिये, क्यों कि हमारा तो
सिर्फ इतना ही कहना है कि परिणामी होनेसे एक ही आत्म पदार्थ
कर्ता, कर्म, करण और क्रियारूपमें परिणत होता देखा जाता
है, हम यह तो कहते नहीं हैं कि अभेदमें ही कर्ता-करणादि रूपकी
प्रतीति होती है ! यह प्रतीति तो अभेदमें भी होती है और भेदमें भी
होती है। “आत्मा ज्ञानसे आत्माको जानता है” यहां पर अभेद है
इसमें भी कर्तादि रूपकी प्रतीति होती है। “मुनि तपसे कर्मको नष्ट
करता है” यहां पर भेदमें कर्ता कर्म आदिकी प्रतीति होती है, और
करणरूप ज्ञानसे आत्माका अभेद सबध है ऐसा मानना चाहिये।
कर्ता, कर्म, करण और क्रियाओंकी प्रतीति अभेदमें भी कथंचित् भेद
विवक्षाके वशसे बन जाती है। इस व्यवहारमें कोई विरोध नहीं है

પ્રકારના રૂપમા પરિણુત થતો બતાવવામા આવેલ છે આલુ હોવા છતાં પણ
આત્મારૂપ પદાર્થમા અનેકતા-પરસ્પરમા કર્તા કર્મ આદિમા ભિન્નતા-સિદ્ધ થતી નથી.

“મુનિસ્તપસા કર્મ ધુનોતિ” આ વાક્યમા કર્તા, કર્મ, કરણ અને ક્રિયામા
પરસ્પર ભિન્નતા સાધારણમા સાધારણ પ્રાણીને પણ પ્રતીત થાય છે તો આ
કર્તા કર્મ આદિમા પરસ્પર અભિન્નતા કેમ કહેવા છો, તેમ કહેવું ન જોઈએ.
કેમ કે અમારૂં તો ફક્ત એટલું જ કહેવું છે કે પરિણામી હોવાથી એકજ આત્મા
પદાર્થ કર્તા, કર્મ, કરણ અને ક્રિયારૂપથી પરિણુત થતો જોવામા આવે છે.
અમે તો એમ કહેતા નથી કે અભેદમા જ કર્તા કરણાદિરૂપની પ્રતીતિ થાય
છે આ પ્રતીતિ અભેદમા પણ થાય છે અને ભેદમા પણ થાય છે આત્મા જ્ઞાનથી
આત્માને જાણે છે” આ સ્થળે અભેદ છે, એમા પણ કર્તા આદિ રૂપની પ્રતીતિ થાય
છે “મુનિ તપથી કર્મને નષ્ટ કરે છે” અહિં ભેદમા કર્તા કર્મ આદિની પ્રતીતિ
થાય છે, અને કરણરૂપ જ્ઞાનથી આત્માનો અભેદ સબધ છે એવું માનવું
જોઈએ કર્તા, કર્મ, કરણ અને ક્રિયાઓની પ્રતીતિ અભેદમા પણ કોઈ રીતે
ભેદ વિવક્ષાના વશથી બની રહે છે આ વ્યવહારમા કોઈ વિરોધ નથી, અને એથી

આત્માકે અમેવ સમ્બન્ધમેં યહ શમિતાપર્યાયલા-ઉપશાન્તકપાય
લાલા હોતા હૈ । પેસા તીર્થકૂર પ્રશુને કહા હૈ ।

આવાર્થ—જ્ઞાન ઓર આત્માકા અમેવ સમ્બન્ધ હૈ જબ હસ પ્રકારકી
પ્રતીતિ હોગી તમી તો જાકર મનુષ્ય ઠસ અપની નિર્મલ જ્ઞાન અવસ્થા
કો, ઓ કપાયોને મલિન કર રહી હૈ । પ્રાપ્ત કરનેકે લિયે, ડન કપાયોં કો
દમન કરનેકે લિયે યા ડનહેં ઉપશમિત કરનેકે લિયે પ્રયત્નશીલ બનેગા ।
નહીં તો મૂલમેં અજ્ઞ હોનેસે ડન કપાયોંકો દમન કરને યા ઉપશમિત
કરનેકા ઉપાયોંકા ઘોષ ડસે કેસે હી સકેગા । હસલિયે આત્મા ઓર
જ્ઞાનમેં અમેવ હી માનના એવસ્કર હૈ । મેવ નહીં । “હિતિ પ્રવીમિ ” હન
પદોંકા અર્થ પહિલે હી કહા જા ચુકા હૈ ॥

॥ પંચમ અધ્યયનકા પંચમ ઉદ્દેશ સમાપ્ત ॥ ૫-૫ ॥

આત્માના અલેક સ અર્થમાં આ શમિતાપર્યાયલા-ઉપશાન્તકપાયલા બને છે
એવુ તીર્થકૂર પ્રશુને કહુ છે.

આવાર્થ—જ્ઞાન અને આત્માનો અલેક સ અર્થ છે જ્યારે આ પ્રકારની
પ્રતીતિ થશે ત્યારે મનુષ્ય પોતાના નિર્મળ જ્ઞાનની અવસ્થાઓને, કપાયોંને
કે મલિન કરી રહી છે, પ્રાપ્ત કરવા માટે તે તે કપાયોંનું દમન કરવા માટે
અથવા તેઓને ઉપશમિત કરવા માટે પ્રયત્નશીલ બનશે. નહિ તો
મૂલમાં અજ્ઞ હોવાથી જે કપાયોંનું દમન અને ઉપશમિત કરવાના ઉપાયોં
બ્રાહ્મ એને કેવી રીતે થશે આ માટે આત્મા અને જ્ઞાનમાં અલેક માનવો એવસ્કર
છે એક નહિ. “હિતિ પ્રવીમિ” આ પદનો અર્થ અગાઉ કહેવાયેલ છે.

પાંચમા અધ્યયનનો પાંચમો ઉદ્દેશ સમાપ્ત ॥ ૫-૫ ॥

માત્માન પ્રતીત્ય=અવલમ્બ્ય પ્રતિસંખ્યાયતે=તે નૈવાત્મના કથ્યતે। જ્ઞાનાત્મનોરેકત્વ-
સ્વીકર્તા ક ગુણમાસાદયતીત્યાદ્ ‘एष’ इत्यादि-एषः=आत्मवादी ज्ञानात्मैकत्व-
वादी ‘सम्यक्पर्यायः’ समीचा=सम्यग्भावेन पर्यायः संयमाचरणं यस्येति स
सम्यक्पर्यायः-सम्यग्गनगाराचारचारी,

यद्वा—‘शमितापर्याय’ इतिच्छाया। शमितापर्यायः=शमोऽस्यास्तीति
शमी तस्य भावः शमिता तया पर्यायो यस्य स शमितापर्यायः=उपशान्तकपायः
व्याख्यातः=तीर्थकृद्भिः कथितः ॥ मृ० ६ ॥ इति ब्रवीमि ’-इत्यस्यार्थस्तूक्त एव।

॥ पञ्चमाध्ययनस्य पञ्चम उद्देशः समाप्तः ॥ ५-५ ॥



આત્માકા અભેદ સંબધ માનનેવાલા આત્મવાદી સમ્યગ્ભાવસે સંયમ-
મુનિયોંકે આચારકા આચરણ કરનેવાલા હોતા હૈ । હસ કથનમેં સાંખ્ય-
મતકા રૂપડન કિયા હૈ । સાંખ્યસિદ્ધાન્તમેં જ્ઞાન પ્રકૃતિકા ધર્મ માના
ગયા હૈ, આત્માકો કમલપત્રકી તરહ નિર્લેપ વતલાયા હૈ, અતઃ મુનિયોં
કે સમ્યક્ આચારકે આચરણ કરનેકા બોધ પ્રકૃતિકો હી હોગા, આત્માકો
નહીં । ફિર આત્માકો હસ પ્રકાર કે કષ્ટોંમેં પડનેસે લાભ હી ક્યા હૈ ?
પ્રકૃતિકે સંબધ વિચ્છેદ હોતે હી જ્ઞાનકે અભાવમેં આત્મા અજ્ઞ બન જાને
સે જડસ્વરૂપ હો જાયગા । પરન્તુ એસા તો હૈ નહીં; ક્યોં કિ સ્વાનુભવસે
આત્મા સ્વરૂપસે ચેતન હૈ ઔર હસીલિયે વહ અપની મલિન પરિણતિકો
છોડનેકે લિયે મુનિયોંકે નિર્મલ આચારકા પાલનકે લિયે પ્રયત્નશીલ
હોતા હૈ । અથવા “સમિયાણ પરિયાણ”કી સંસ્કૃત છાયા “શમિતાપર્યાયઃ”
મી હોતી હૈ, તવ હસ પ્રકારસે અર્થકી સગતિ હોતી હૈ કિ જ્ઞાન ઔર

જ્ઞાન અને આત્માનો અલેદ સંબધ માનવાવાળા આત્મવાદી સમ્યગ્ભાવથી
સંયમ-મુનિયોના આચારનુ આચરણ કરવાવાળા અને છે, આ વાતમા સાંખ્ય-
મતનુ ખડન કરેલ છે સાંખ્ય-સિદ્ધાન્તમા જ્ઞાન પ્રકૃતિનો ધર્મ માનેલ છે
આત્માને તો કમલપત્રની માફક નિર્લેપ બતાવેલ છે આથી મુનિયોના સમ્યક્
આચારનુ આચરણ કરવાનો બોધ પ્રકૃતિને જ છે આત્માને નહી. પછી આત્માને
આ પ્રકારના દુ ખોમા પડવાથી લાભ શુ છે પ્રકૃતિનો સંબધ વિચ્છેદ થવાથી
જ્ઞાનના અભાવમા આત્મા અજ્ઞ થઈ જવાથી જડસ્વરૂપ બની જશે પરતુ
એવુ તો છે નહિ, કેમ કે સ્વાનુભવથી આત્મા સ્વરૂપથી ચેતન છે અને એ માટે
એ પોતાની મલિન પરિણતિને છોડવા માટે મુનિઓના નિર્મલ આચારનુ પાલન
કરવા માટે પ્રયત્નશીલ અને છે અથવા “સમિયાણ પરિયાણ”ની સંસ્કૃત છાયા
શમિતાપર્યાય પણ હોય છે, તો આ પ્રકારે અર્થની સગતિ થાય છે કે જ્ઞાન અને

આત્માને અમેદ સમ્યક્ષમેં યહ શમિતાપર્યાયલા-ઉપશાન્તકપાય-
લા હોતા હૈ । પેસા તીર્થકુર પ્રશુને કહા હૈ ।

માર્થ—જ્ઞાન ઓર આત્માના અમેદ સમ્યક્ષમેં હૈ જલ્દી પ્રકારની
પ્રતીતિ હોગી તમી તો આકર મનુષ્ય ડસ અપની નિર્મલ જ્ઞાન અવસ્થા
કો, જો કપાયોને મલિન કર રહી હૈ; પ્રાપ્ત કરનેકે લિયે, ડન કપાયો કો
દમન કરનેકે લિયે યા ડનેં ઉપશમિત કરનેકે લિયે પ્રયત્નશીલ બનેગા ।
નહી તો મૂલમેં અજ્ઞ હોનેસે ડન કપાયોકો દમન કરને યા ઉપશમિત
કરનેકા ઉપાયોકા ઘોષ ડસે કેસે હી સકેગા । હસલિયે આત્મા ઓર
જ્ઞાનમેં અમેદ હી માનના એવસ્કર હૈ । મેદ નહીં । “હિતિ પ્રતીમિ ” હન
પદોકા અર્થ પહિલે હી કહા જા ચુકા હૈ ॥

॥ પંચમ અધ્યયનકા પંચમ ઉદ્દેશ સમાપ્ત ॥ ૫-૫ ॥

આત્માના અમેદ સમ્યક્ષમેં જા શમિતાપર્યાયલા-ઉપશાન્તકપાયલા ડને છે
એવુ તીર્થકુર પ્રશુને કહુ છે.

માર્થ—જ્ઞાન અને આત્માને અમેદ સમ્યક્ષમેં હૈ જલ્દી જા પ્રકારની
પ્રતીતિ થશે ત્યારે મનુષ્ય પોતાના નિર્મલ જ્ઞાનની અવસ્થાએને, કપાયોએ
કે મલિન કરી રહી છે, પ્રાપ્ત કરવા માટે તે તે કપાયોનું દમન કરવા માટે
અથવા તેઓને ઉપશમિત કરવા માટે પ્રયત્નશીલ બનશે નહિ તો
મૂલમાં અજ્ઞ હોવાથી એ કપાયોનું દમન અને ઉપશમિત કરવાના ઉપાયને
ઘોષ એને કેવી રીતે થશે જા માટે આત્મા અને જ્ઞાનમાં અમેદ માનવો એવસ્કર
છે એક નહિ. “હિતિ પ્રતીમિ ” જા પડનો અર્થ અમાઉ કહેવાયેલ છે.

પંચમ અધ્યયનને પંચમે ઉદ્દેશ સમાપ્ત ॥ ૫-૫ ॥

। અથ પશ્ચમાધ્યયનસ્ય ષષ્ઠ ઉદ્દેશઃ ।

ગતઃ પશ્ચમોદ્દેશ ઇદાનીં ષષ્ઠઃ પ્રારમ્ભ્યતે । અસ્ય ચ પૂર્વોદ્દેશેન સહાયમભિસમ્બન્ધઃ । પૂર્વત્ર હ્રદસદશ આચાર્યો ભવેદિતિ કથિતમ્ । અત્રોદ્દેશે—‘તાદૃશાચાર્યસંસર્ગત આચાર્યશુશ્રૂષણરતેન મુનિના ત્રિષષ્ટ્યધિકત્રિશતપાષણ્ડિકમતાનાં ગૃહસ્થાનાં

॥ પાંચવે અધ્યયનકા છટ્ટા ઉદ્દેશ ॥

પચમ ઉદ્દેશકા વ્યાખ્યાન હો ચુકા, અબ્બ હસ સમય છટ્ટે ઉદ્દેશકા વ્યાખ્યાન પ્રારંભ હોતા હૈ । હસ ઉદ્દેશકા પૂર્વ ઉદ્દેશકે સાથ સમ્બન્ધ હૈ ઓર વહ હસ પ્રકાર હૈ—પૂર્વ પંચમ ઉદ્દેશમેં આચાર્ય મહારાજકો હ્રદ (દ્રહ) કી ઉપમા દી હૈ । ઉસ હ્રદ ઉપમિત આચાર્યકે પાસ શિષ્યકો રહના ચાહિયે, યહ્ બી અચ્છી તરહ ખુલાસા કિયા જા ચુકા હૈ । ઉનકે નિકટ નિવાસ કરનેસે શિષ્ય કિસ ૨ સંસર્ગસે પરે રહતા હૈ હસ ઘાતકા હસ ઉદ્દેશમેં પ્રદર્શન કરના સૂત્રકારકો અભીષ્ટ હૈ; અતઃ સર્વ પ્રથમ યહાં હસ વિષયકા વિવેચન કરનેકેલિયે સૂત્રકાર, હસ અભિપ્રાયસે પ્રેરિત હો કિ હ્રદોપમિત આચાર્યકે સંસર્ગસે ઉનકી સેવા વૈયાવૃત્તિ કરનેમેં રત ચિત્તવાલા સાધુ ૩૬૩ પાષણ્ડિયોંકે મતકે સંસર્ગસે, ગૃહસ્થોંકે અધિક સમ્પર્કસે ંવં પરતીર્થિકોંકે સંગસે પૃથક્કૂ હો જાતા હૈ, “અણાણાણ ંગે” હ્ત્યાદિ સૂત્ર

પાંચમા અધ્યયનનો છટો ઉદ્દેશ

પાંચમો ઉદ્દેશ કહેવાઈ ચૂક્યો છે, હવે છટો ઉદ્દેશનો પ્રારંભ થાય છે આ ઉદ્દેશનો પૂર્વ ઉદ્દેશ સાથે સંબંધ છે, અને તે એ પ્રકારે છે કે—પૂર્વ પાંચમા ઉદ્દેશમા ગુરૂ મહારાજને હૃદની ઉપમા દેવામા આવી છે હૃદ ઉપમિત આચાર્ય મહારાજની પાસે શિષ્યે રહેવું જોઈએ એનો પણ સારી રીતે ખુલાસો કરવામા આવ્યો છે એમની પાસે રહેવાથી શિષ્ય કયા કયા સંસર્ગથી દૂર રહે છે એ વાતનુ સ્પષ્ટીકરણ આ ઉદ્દેશમા સૂત્રકારને કરવું ઈષ્ટ છે, માટે સહુ પ્રથમ અહીં આ વિષયનુ વિવેચન કરવા માટે સૂત્રકાર હ્રદોપમિત આચાર્યના સંસર્ગથી તેની સેવા વૈયાવૃત્તિ કરવામા રતચિત્તવાળાસાધુ ૩૬૩ પાષણ્ડીઓના મતના સંસર્ગથી અને પરતિર્થીઓના સંગથી નિરાળો બને છે આ અભિપ્રાયથી પ્રેરિત બની “અણાણાણ ંગે” હ્ત્યાદિ સૂત્રનો પ્રારંભ કરે છે. આમા એ સર્વ પ્રથમ

પરતીર્થિકાનાં ચ સંસ્મારપરિત્યાગો વિધેયઃ' ઇતિ પ્રતિપાદયિષ્યતે । તપ્રાદૌ પાપ
ષ્ટિકમાર્ગપરિત્યાગમેષ દર્શયતિ—'અમાણાપ' ઇત્યાદિ—

મૂર્ચ્મ—અણાણાપ પગે સોવદ્વાળા આણાપ પગે નિરુધદ્વાળા,
પય તે મા હોડ, પય કુસલસ્સ દસળ, સહિદ્વીપ તન્મુચીપ
તપ્પુરકારે તસ્સદ્વી તસ્મિથેસળે ॥ સૂ. ૧ ॥

છાયા—અનાદ્યાયમેકે સોપસ્થાના આદ્યાયમેકે નિરુપસ્થાનાઃ, એત્થે મા
મ્મદ્, પત્તસ્કન્ધસ્સ્ય દર્શનમ્, તદ્દૃષ્ટા તન્મુચ્યા તત્પુસ્કારસ્તત્સંઘી ઇમિથેશ્વનઃ ॥ સૂ. ૧ ॥

ટીકા—અનાદ્યાયા 'મિત્યાદિ—એકે=કેચન સદસદ્વિવેકવિકલા ઇન્દ્રિય
વિપક્ષાશ્વદાઃ, અનાદ્યાયાં=તીર્થકુરાનુપવિષ્ટ સ્વચ્છન્દમાર્ગે 'સોપસ્થાનાઃ' સહ
ઉપસ્થાનેન=સંયમામાસોપોમેન યે સ્થિતાસ્તે સોપસ્થાનાઃ=સાવધાપરણમ્મદ્વાઃ
ઘીતરાગાપવિદ્ધર્મરહિતાઃ સન્તિ, યે હિ—'ચમપિ સંયમિન' ઇતિ સર્ગર્થ વદન્તો
શ્લોકાન્ત્ વચ્ચવન્તીત્યર્થઃ ॥ કિન્તુ એકે=કેચન નિન્દિતમાર્ગાનુગામિતયા કૃપિતાન્તઃ—

કા મારન્નમ કરતે હું । હસમેં યે સર્વ પ્રથમ ૩૬૩ પાસપિઠ્યોકિ માર્ગકે
પરિત્યાગ કરનેકા ઉપદેશ લેતે હું—

કોઈ એક સત્ અને અસત્કે વિવેકસે વિકલ હુપ પ્રાણી ઇન્દ્રિયોકિ
વિપયરૂપી પાશસે બદ્ધ હો કર તીર્થકુરદ્વારા અનુપવિષ્ટ સ્વચ્છન્દમાર્ગમે
પ્રવૃત્તિ કર સંયમામાસકે આરાધનકે પ્રયત્નમે ઉચમશીલ રહતે હું । સ્વ-
ચ્છન્દ—પ્રવૃત્તિ—વિશિષ્ટ હોનેસે પેસે ઝીવ સાવધ આચારી હોતે હું અને
હસીલિયે યે ઘીતરાગદ્વારા ઉપવિષ્ટ માર્ગસે યહિમ્ત માને જાતે હું । યે
સંયમામાસી ઝીવ "હમ મી સંયમી હું" હસ પ્રકાર ગર્વ કરકે સંયમી
હોનેકા લોગોકે સમક્ષ માથ પ્રગટ કરતે હું અને મોઢેમાઢે પ્રાણિયોકે
અપને જાસમેં ફસાતે રહતે હું । કોઈ એક પેસે મી હું જો તીર્થકુર પ્રશુકી

૩૬૩ પાપ ધીએના આર્થને પસ્તિયાન કરવાને ઉપદેશ આપે છે

કોઈ એક સત્ અને અસત્કા વિવેકથી વિકલ અને પ્રાણી ઇન્દ્રિયોના
વિપક્ષરૂપી પાશથી બંધાયેને તીર્થકુરદ્વારા પ્રતિપાદિત થયેલા રથે પ્રવૃત્તિ કરી
સંયમામાસના આરાધનને પ્રયત્ન કરવામાં ઉચમશીલ રહે છે સ્વચ્છન્દ—પ્રવૃત્તિ—
વિશિષ્ટ હોવાથી એવો હવ સાવધ આચારી અને ॥ અને એથી એ હવ વીત
રાગદ્વાસ ઉપવિષ્ટ માર્ગથી દૂર રહે છે એવા, સંયમામાસી (સંયમિની)
હવ "અમે પણ સંયમી છીએ" આ પ્રકારનો ગર્વ કરીને સંયમી
હોવાનો લોકો સમક્ષ માથ પ્રગટ કરે છે, અને બોળાબોળા માણસોને પેતાની
બળમાં ફસાવતા રહે છે. કોઈ એવા પણ હીમ છે કે જે તીર્થકુર પ્રશુની આસાનું

કરણાઃ પ્રમાદિનઃ, આજ્ઞાયાં=ભગવદુક્તમોક્ષમાર્ગે નિરુપસ્થાનાઃ=નિર્ગતમુપસ્થાનમુ-
દ્યોગો યેષાં તે નિરુપસ્થાના વીતરાગપ્રરુપિતાચારચરણવર્જિતાઃ સન્તિ। એતત્=પૂર્વોક્તં

આજ્ઞાકી આરાધના કરનેકે ઉદ્યોગસે હી રહિત હૈં । એસે જીવ નિન્દિત માર્ગકે અનુસરણ કરનેવાલે હોનેકી વજહસે દૂષિત અન્તઃકરણવાલે એવં પ્રમાદશીલ રહ્યા કરતે હૈં । યે ભગવત્કથિત મોક્ષમાર્ગમેં નિરુદ્ધમી હોતે હૈં । ભગવાનને જિસ આચારકે પાલન કરનેકા ઉપદેશ દિયા હૈ વે ઇસ આચારકે પાલન કરનેમેં વે વિમુક્ષ રહ્યા કરતે હૈં ।

ભાવાર્થ—સંસારમેં કિતનેક એસે મનુષ્ય હૈં જો તીર્થઙ્કર અપ્રતિપા-
દિત માર્ગમેં ઉદ્યોગ કરતે રહતે હૈં । સ્વેચ્છાનુસાર અપની નિર્ગલ પ્રવૃત્તિ
બનાયે હુએ હૈં । સમજાયે જાને પર ભી એસે જીવ આત્મકલ્યાણકે માર્ગ
કી તરફ ઋજુ નહીં હોતે । કુદ્ધ એસે ભી જીવ હૈં જો પ્રભુપ્રતિપાદિત માર્ગમેં
ઉદ્યમસે વર્જિત હૈં ।

પ્રથમ કોટિકે જીવ લોકોંકો પ્રતારણા કરને (ઠગને)કે નિમિત્ત
દ્રવ્યલિંગી સાધુકા વેષ પહિનકર અપનેકો વાસ્તવિક સંયમી ઘોષિત કરતે
હૈં, તબ દૂસરી કોટિકે મનુષ્ય મૂલમેં હી તીર્થઙ્કર ભગવાનકી આજ્ઞાકે
આરાધક નહીં હોતે હૈં । યદિ ઉન્હેં સમજાયા જાય તો યે સમજ સકતે
હૈં ઓર યથાર્થ આચારકી ઓર ઋજુ હો સકતે હૈં, શિષ્યકો સંબોધિત
કરતે હુએ સૂત્રકાર આશીર્વાદ વચનરૂપમેં ડસસે કહતે હૈં કિ હે શિષ્ય !

આરાધન કરવામા ઉદ્યોગરહિત છે આવા મનુષ્ય નિન્દિતમાર્ગનુ અનુસરણ કર-
વાવાળા હોવાને કારણે દૂષિત અતઃકરણવાળા અને પ્રમાદશીલ રહ્યા કરે છે. એવા
જીવે ભગવત્કથિત મોક્ષમાર્ગમા નિરુદ્ધમી હોય છે ભગવાને જે આચારનુ પાલન
કરવાનો ઉપદેશ આપ્યો છે એ આચારનુ પાલન કરવાથી વિમુખ રહ્યા કરે છે

ભાવાર્થ—સંસારમા કેટલાક એવા મનુષ્ય છે જે તીર્થંકર અપ્રતિપાદિત
માર્ગમા ઉદ્યોગશીલ રહે છે અને સ્વેચ્છાનુસાર પોતાની ભિન્ન પ્રવૃત્તિ કાર્યે
બંધ છે, અને સમજાવવામાં પાછા આવ્યા મનુષ્યે આત્મકલ્યાણના માર્ગ તરફ
વળતા નથી. કોઈ એવા પણ જીવ છે જે પ્રભુપ્રતિપાદિત માર્ગમા ઉદ્યમથી દૂર છે
પ્રથમ કોટિના જીવ લોકોને ઠગવા નિમિત્તે દ્રવ્યલિંગી સાધુનો વેશ પહેરી
પોતાને સાચા સચમી બહેર કરે છે એનાથી ખીજી કોટિના જીવ મૂળમા જ
તીર્થંકર ભગવાનની આજ્ઞાના આરાધક નથી હોતા, એમને જે સમજાવવામા
આવે તો સમજી શકે છે અને યથાર્થ આચારની તરફ એ વળી શકે છે શિષ્યને
સંબોધન કરતા સૂત્રકાર આશીર્વાદ વચનરૂપમા એમને કહે છે કે હે શિષ્ય !

નિન્દિતમાર્ગાચરણં શ્રેયોમાર્ગાનાચરણં ચૈતદ્વયં તે=તવ શુભાશ્વાનુયાયિના, મા મન્વતુ । તામ્યાં નરક-નિગોદાદિતુર્ગતિરવશ્મમાયિનીત્પવધાર્ય તતો નિવર્તિત-અમિત્યાશ્રયઃ । એતસ્ય સ્વમતિકલ્પિતત્વં પરિહર્ષમાહ-‘એત’ દિત્યાદિ-એતત્=પૂર્વોક્ત કુમાર્ગાચરણં સન્નાગસ્ત્ત્વનં ચ તુર્ગતિનિવાનમિતિ કુશ્વલસ્ય=સર્વશ્વસ્ય વર્ધનમ્=અમિમતમ્ આશ્રય इत्यर्थः ।

યદા—પૂર્વોક્તવૈપરીત્યન એતત્ અનાજ્ઞાર્યા નિરુપસ્થાનત્વમાજ્ઞાર્યા ચ સોપસ્થાનત્વમિત્યુભય કુશ્વલસ્ય વર્ધનમસ્તિ ।

“એતસે મા મન્વતુ” એ પૂર્વોક્ત પ્રથમ કોટિવાણેકા નિન્દિત આચરણ ઔર દ્વિતીય કોટિવાણેકા શ્રેયોમાર્ગકા અનાચરણ યદ્ દોનો પ્રકારકી પ્રવૃત્તિ શુભાશ્વકે અનુસાર પ્રવૃત્તિશીલ તુજામેં નહીં હોવે । ક્યોં કિ હસ પ્રકારકી પ્રવૃત્તિસે જીશ નરક નિગોદાદિકકં દુઃસૌંકા અવશ્ય યો ગનેલા હોતા હૈ, હસ પ્રકાર અપની આત્મામેં હદ્દ શિશ્વાસસમ્પન્ન થન હસ વુષ્પ્રવૃત્તિસે સદા અપની રક્ષા કર-ઝસ ઓરસે અપને કો સદા યથાતા રહ । હે જન્મ્ ! સર્વજ્ઞ મગવાન્ની યહી આજ્ઞા હૈ । યદ્ મેં અપની બુદ્ધિસે નહીં કહતા હુ । “એતત્કુશલસ્ય વર્ધનમ્” હસ સૂત્રાંશકા યદ્ મી માથ હોતા હૈ કિ પૂર્વે મેં જો યદ્ કહા હૈ કિ અનાજ્ઞામેં સોપસ્થાનતા ઔર આજ્ઞામેં નિરુપસ્થાનતા તુજામેં નહીં હોવે-સો હન દોનોસે વિપરીત તુ અપની પ્રવૃત્તિ થના, અર્થાત્-અનાજ્ઞામેં નિરુપમી ઔર આજ્ઞામેં સોધમી થન-યહી સર્વજ્ઞકી આજ્ઞા હૈ, અથવા-અનાજ્ઞામેં સોપસ્થાનતા ઔર આજ્ઞા

એતસે મા મન્વતુ આ પૂર્વોક્ત પ્રથમ કોટિવાણાનુ નિન્દિત આચરણ અને બીજી કોટિવાણાનુ શ્રેયમાર્ગમાં અનાચરણ આ બન્ને પ્રકારની પ્રવૃત્તિ બુદ્ધિવાચકના અનુસાર પ્રવૃત્તિશીલ વાશમાં ન બને; કેમ કે આ પ્રકારની પ્રવૃત્તિથી એ નરકનિગોદાદિકના દુઃખોને લોગવનાર અવશ્ય બને છે. આ પ્રકારે પોતાના આત્મામાં હૃદયશિશ્વાસપક્ષ બની ખસળ પ્રવૃત્તિથી સદા તારી રક્ષા કર એ વરદશી શ્રદ્ધા પોતાની બાવને બચાવ દે જમ્મુ ! સવજ્ઞ ભગવાનની આ આજ્ઞા છે. આ હું મારી બુદ્ધિથી કહેતો નથી. “એતત્કુશલસ્ય વર્ધનમ્” આ સૂત્રાંશને એ પણ ભાવાર્થ થાય છે કે પૂર્વે જે કહેવામાં આવ્યું છે કે અનાજ્ઞામાં સોપસ્થાનતા અને આજ્ઞામાં નિરુપસ્થાનતા વાશમાં ન થાય, માટે આવા રોપેથી વિપરીત હુ તારી પ્રવૃત્તિ બચાવ અર્થાત્ અનાજ્ઞામાં નિરુપમી અને આજ્ઞામાં સોધમી બન. એવી સવજ્ઞની આજ્ઞા છે. અથવા-અનાજ્ઞામાં

અથવા—પૂર્વોક્તમેતદ્વયં પ્રિઠાય નિરન્તરં ગુરુકુલનિવાસિના ત્વયા ભાવ્યમ્, એતત્=શિષ્યં પ્રત્યુપદેશત્ત્વચન કુશલસ્ય દર્શનમ્ । એતસ્યૈવાર્થસ્ય પ્રકટનાયાહ—‘તદ્દૃષ્ટ્યે’ત્યાદિ—‘તદ્દૃષ્ટ્યા તન્મુક્ત્યા તત્પુરસ્કારસ્તત્સંગી તન્નિવેશનઃ’ ઇત્યાદેવ્યાં-સ્તદિદ્વિતાકારપરિણતસ્તજ્ઞાનોપયુક્તો મુનિર્નિત્ય ગુરુકુલવાસી ભવેદિત્યર્થઃ । કુમાર્ગાઽસેવન સન્માર્ગાઽસેવન ચ કલ્યાણમાર્ગવિઘાતક ભવતીતિ તયોર્ગુરુસમીપાવ-મે નિરુપસ્થાનતાકો છોડ કર હે શિષ્ય ! ત્ નિરન્તર ગુરુકુલના નિવાસી વન—ઇસ પ્રકાર શિષ્યકો સમજાવનાકે લિયે સૂત્રકારને સર્વજ્ઞકે આજ્ઞાવચન કા યહ પ્રદર્શન કિયા હૈ—“ તદ્દૃષ્ટ્યા તન્મુક્ત્યા તત્પુરસ્કારસ્તત્સંગી તન્નિવેશનઃ ” । ઇસી અર્થ કો પુષ્ટ યા પ્રકટન કરનેકે લિયે સૂત્રકારકે ઇન પદોં કા વ્યાખ્યાન ટીકાકારને પહિલે ઇસી અધ્યયનકે ચતુર્ય ઉદ્દેશકે દૂસરે સૂત્રમેં કર દિયા હૈ । ઇસકા ભાવાર્થ યહી હૈ કિ આચાર્યકી નિશ્રામેં રહ-નેવાલા, ડનકે કહે અનુસાર અપની દૈનિક ચર્યાકા આચરણ કરનેવાલા ઔર ડનકે ઇગિત—આકારકા જ્ઞાતા એસા શિષ્ય જ્ઞાન, ધ્યાન ઔર અધ્ય-યનમેં નિરત રહતા હુઆ ગુરુકુલમે નિવાસકે યોગ્ય હોતા હૈ । કુમાર્ગકા આસેવન ઔર સન્માર્ગકા અનાસેવન કરના યે દોનોં વાતે કલ્યાણમાર્ગકી નિરોધક યા વિઘાતક માની ગઈ હૈ, ઇસલિયે જો શિષ્ય ગુરુકુલમેં નિવાસ કરેગા—ગુરુકી નિશ્રામેં યા ડનકે સમીપ રહેગા ડસકે પાસ ઇસ પ્રકારકી પ્રવૃત્તિ નહીં હો સકતી ! ઇસલિયે શિષ્યકો ગુરુકુલનિવાસી વનનેકી

સોપસ્થાનતા અને આજ્ઞામા નિરુપસ્થાનતાને છોડીને હે શિષ્ય ! તુ નિરતર ગુરુ-કુળનેા નિવાસી બન આ પ્રકારે શિષ્યને સમજાવવા માટે સૂત્રકારે સર્વજ્ઞની આજ્ઞાના વચનને પ્રદર્શિત કરેલ છે—“ તદ્દૃષ્ટ્યા ” ઇત્યાદિ । એ જ અર્થની પુષ્ટિ અને પ્રગટ કરવા માટે સૂત્રકારના આ પદોનુ વ્યાખ્યાન ટીકાકારે પહેલા આ જ અધ્યયનના ચોથા ઉદ્દેશના બીજા સૂત્રમા કરેલ છે એનો ભાવાર્થ એ છે કે આચાર્યની નિશ્રામા રહેવાવાળા એમના કહ્યા અનુસાર પોતાની દૈનિક ચર્યાનું આચરણ કરવાવાળા અને એમના ભાવને બાંધવાવાળા એવા શિષ્ય જ્ઞાન, ધ્યાન અને અધ્યયનમા નિરત રહીને ગુરુકુળમા નિવાસને યોગ્ય બને છે કુમાર્ગનું આસેવન અને સન્માર્ગનું અનાસેવન કરવું એ બન્ને વાતો કલ્યાણ માર્ગની નિરોધક અને વિઘાતક માની ગઈ છે આ કારણે જે શિષ્ય ગુરુકુળમા નિવાસ કરશે, ગુરુની નિશ્રામા અને તેની સમીપ રહેશે એની પાસે આવા પ્રકારની પ્રવૃત્તિ બનતી નથી. આ કારણે શિષ્યને ગુરુકુળ નિવાસી બનાવવા તરફ સૂત્ર-

स्वानेन न कदाऽप्यस्तरसम्भन इति भावः ॥ सू० १ ॥

वाच्यः कं गुणमासादयतीत्याह—‘अमिमूय’ इत्यादि—

सूम्भ—अमिमूय अदक्त्तु अणमिमूय पम् निरालम्बणयाप
जे सह अवहिमणे, पवापण पवाय जाणिज्जा, सह समझयाप
परवागरणेण अस्सेसिं वा अतिप सुच्चा ॥ सू० २ ॥

छाया—अमिमूयाश्राप्तीदनमिमूयः प्रभुनिरालम्बनवाया यो महान् अवहि
मैनाः, प्रवादेन प्रवादं जानीयात्, सह सम्भत्या परध्याकरणेनान्वेषां वाऽन्तिके
भुत्वा ॥ सू० २ ॥

टीका—‘अमिमूये’ स्यादि—य ‘तदृष्टया’—इत्यादि—विशेषणविशिष्टो
मुनिः, अमिमूय=परीपरीतसर्गं यातिर्कर्मचतुष्टयं वा पराक्षित्य, अनमिमूय=अनु-
कूल=प्रतिकूलोपसर्गोण परतीर्थिकैर्वा न पराभूतः सन् अश्राप्तीत्=जिनोक्तत्वमीप्सि-
वान्, स निरालम्बनवाया=पूर्व=पश्चात्संयोगत्वात्वागेन निराधारताया प्रभुः=समर्थः,

और सूत्रकारका स्वास प्रेरणात्मक यह भावेषा है ॥ सू० २ ॥

इस प्रकारका शिष्य कौनसे गुणका भाजन होता है, इस बातको
प्रकट करनेके लिये सूत्रकार कहते हैं “अमिमूय” इत्यादि ।

जो मुनि “तदृष्टया तन्मुक्त्या” इत्यादि पूर्वोक्त सूत्रांश प्रतिपादित
विशेषणों से युक्त होता है तथा परिपक्व और उपसर्गों को या कर्मचतु-
ष्टयको जीतकर जो उनसे अभ्यास पराक्रमवाला होता है, अनुकूल
प्रतिकूल उपसर्गों अथवा परतीर्थिकोंसे अजेय होता हुआ जिनेन्द्रद्वारा
प्रतिपादित वस्तुस्वरूपका जो विचारक होता है, वह पूर्वसंयोग और
पश्चात्संयोगका परित्यागी हो कर किसीके भी अवलम्बन-सहायकी
अपेक्षा नहीं रखता है । इस संसारमें माता, पिता, पुत्र, स्त्री और मित्र

अस्तेना आ मुच्य प्रेरणात्मक आदेश छे.

आ प्रभारने शिष्य केवा सुबुने धारक होय छे आ वातने प्रकट करवा
भाटे सूत्रकार कहे छे “अमिमूय” उल्थाहि ।

जे मुनि “तदृष्टया तन्मुक्त्या” इत्यादि पूर्वोक्त सूत्रांश प्रतिपादित विशे-
षणयो युक्त होय छे तथा परिपक्व अने उपसर्गोने अथवा आर पातिया कर्मने
लपतीने जे तेनाथी अभ्यासक पराक्रमवाण्य थाय छे अनुकूल प्रतिकूल उपसर्गो
अने परतीर्थिकोथी बिजयी जनीने जनेन्द्रकास प्रतिपादित वस्तुस्वरूपना जे
विचारक होय छे ते पूर्वसंयोगना परित्यागी जनीने होयना यज् जोशीवाण्य
रहेथनी अपेक्षा सजते नथी.

આલમ્બનનપેક્ષી સ્વતીત્યર્થ । અત્ર સસારે માતા-પિતૃ-પુત્ર-કલત્ર-મિત્રાદય આલમ્બનભૂતાઃ સન્તીતિ યદાપાતતઃ પ્રતિભાતિ ન તુ વાસ્તવિક, તૈસ્લાણ-ગરણાસ-મ્ભવાત્તે નાઽઽલમ્બનભૂતાઃ, તત્સમ્બન્ધસ્ય મોહાદિજનકત્વેન કુગતિદેતુત્વાત્ । એવ યો વિભાવયતિ સ સંયમાદૃતે ન કિમપ્યાલમ્બનમભિલપતીતિ ભાવઃ । ક^૧તાદૃશઃ ? इति प्रश्ने प्राह-‘यो महान्’-नित्यादि-य.=रत्नत्रयसमाराधकः महान्=महापुरुषो लघुकर्मा अवहिर्मनाः=वहिः=तीर्थङ्करोपदेशादन्यत्र न विद्यते मनः=चित्तं यस्य सोऽवहिर्मनाः=वीतरागाज्ञानुयायी परिहृतपरतैर्थिकमतो भवति । स एव च प्रवादेन-प्रकृष्टेन वादेन=पूर्वाचार्यपारम्परिकोपदेशेन प्रवादं=वीतरागवचन जानीयात्=ज्ञानविषयीकुर्यात्-समालोचयेदित्यर्थः ।

આદિ અવલમ્બનભૂત પદાર્થ ઝપરસે હી મોહી જીવકો માલૂમ પડતે હૈં, વિવેકદૃષ્ટિસે દેખને પર તો યે ચિલકુલ નિઃસ્સાર હી હૈં, ઇનસે કિસી ભી પ્રકારસે કિસી ભી જીવકી ન તો રક્ષા હી હો સકતી હૈં ઓર ન યે કિસીકે લિયે ત્રાણશરણરૂપ હી હૈં । ઇનકે સાથ જનનીજનકત્વાદિરૂપ સંબંધ મોહકા જનક હોનેસે ઇસ જીવકો કુગતિમૈં હી પહુંચાનેકા એક માત્ર કારણ બનતા હૈં ” ઇસ પ્રકાર જો વિચારતા હૈં વહ સંયમકે સિવાય કિસી ભી વસ્તુકો અપના અવલમ્બનભૂત નહીં સમજતા હૈં ।

ऐसा कौन मनुष्य हो सकता है ? इस प्रश्नका उत्तररूप समाधान करते हुए सूत्रकार कहते हैं कि “यो महान् अवहिर्मनाः प्रवादेन प्रवादं जानीयात्” जो रत्नत्रयकी आराधनासे महान्-लघुकर्मी बना है तथा तीर्थङ्करके उपदेशके सिवाय जिसका चित्त अन्यतीर्थिकोंके उपदेशमें

આ સસારમા માતા, પિતા, પુત્ર, સ્ત્રી અને મિત્ર આદિ અવલમ્બનભૂત પદાર્થ ઉપરથીજ મોહ પમાડનારા હોવને માલુમ પડે છે, વિવેક દૃષ્ટિથી જોવાથી તો આ બધા તદ્દન નિઃસ્સાર જ છે એઓથી કોઈ પણ પ્રકારે કોઈ પણ હોવની ન તો રક્ષા થઈ શકે છે કે ન તો તે કોઈ ને માટે ત્રાણ શરણરૂપ છે એમની સાથે જનની-જનક ઇત્યાદિ રૂપ સંબંધ મોહના કારણ હોવાથી આ હોવને કુગતીમા પહોંચાડવાના કારણભૂત બને છે આ પ્રવાદે જે વિચારે છે તે સંયમના સિવાય કોઈ પણ વસ્તુને પોતાને અવલમ્બનભૂત માનતા નથી

એવો કયો મનુષ્ય હોઈ શકે છે ? આવા પ્રશ્નના ઉત્તરરૂપ સમાધાન કરતા સૂત્રકાર કહે છે “યો મહાન્ અવહિર્મના ” ઇત્યાદિ જે રત્નત્રયની આરાધનાથી મહાન્-લઘુકર્મી બન્યા છે તથા તીર્થંકરના ઉપદેશ સિવાય જેનું ચિત્ત

પદ્મા—‘અવહિર્મના’ નાનાધિપલૌકિકસિદ્ધિર્ધનેનાપિ સર્વદ્રોપદશાત્ પરિઃ=
પૃથગ્મૂલે પરમસેન વિષયે મનો યસ્ય સ્તથા । તામ્ સિદ્ધય ઇન્દ્રમાલકસદૃશ્ય એવેતિ
સલ્ગન નહીં હોતા હૈ પેસા ઘીતરાગકે મતજ્ઞા પથિક એ અન્ય પદાન્ત
ધારિયોંકિ સિદ્ધાન્તકી ઓર નહીં જુજનેવાલા મનુષ્ય પૂર્વ આચાર્ય પરમ્પરા
સે આગત ઉપદેશદ્વારા ઘીતરાગકે ઘનનકા, સંશય-ધિર્પર્યય આદિ લોપોં
સે રહિત હી ધિચાર કરનેવાલા હો સકતા હૈ ।

માર્થ—પેસા કૌન મનુષ્ય હો સકતા હૈ ? હસ પ્રશ્નકા સમાધાન
પહાં પર સુચકારને કિયા હૈ । લે કહતે હૈં કિ પેસા ઘી મનુષ્ય હો સકતા
હૈ કિ જિસને સમ્યગ્દર્શનાદિકકી આરાધનાસે અપને જીવનકો કર્મકે
મારસે છુટુ પના લિયા હૈ, અર્થાત્—જો આસન્નસસારી હૈ, તથા જિસકે
ચિત્તમેં ઘીતરાગ ધર્મકે સિધાય અન્ય ધર્મકે પ્રતિ ધાર્મિક માનનાસે થોડી
સી મી મદ્દા નહીં હૈ; ક્યોં કિ ઘીતરાગ ધર્મકો હી ઘહ અપના સય કુછ
સમજતા હૈ તથા પૂર્વ આચાર્ય પરંપરાકે અનુસાર પ્રવાહરૂપસે ચલે આયે
ઉપદેશસે હી જો ઘીતરાગકે ઘનનકા મદ્દાલુ પના હૈ, જો ઘહ અચ્છી
તરહસે સમાજ જુજા હૈ કિ ઘીતરામઘનન સંશય ધિર્પર્યય એ અનધ્ય-
યસાય આદિ લોપોંસે રહિત હૈં, ઘહી ઇત્કૂપ્તસયમી હૈ ।

અર્થ—“અવહિર્મના” હસ પદકા અર્થ હસ પ્રકારસે મી હોતા
બીધ ધમવાળાના ઉપદેશમાં લાગતું નથી એવા વીતરાગનો અનુગામી અને
એકાન્તવાદીઓના સિદ્ધાન્તની તરફ નહિ જુકવાવાળા મનુષ્ય પૂર્વ-આચાર્ય
પરંપરાથી આવેલ ઉપદેશદ્વારા વીતરાગના વચનમાં, સંશય-ધિર્પર્યય આદિ લોપોંથી
રહિત ચિત્તાર કસવાળા થઈ શકે છે

માર્થ—એવો કયો મનુષ્ય હોઈ શકે છે ? આ પ્રશ્ન સમાધાન અદિ
સુત્રારે કરેલ છે એ કહે છે કે એવો એ જ મનુષ્ય હોઈ શકે છે કે જે
સમ્યગ્દર્શનાદિકની આરાધનાથી પોતાના જીવનને કર્મના ભારથી છુટુ બનાવી દીધેલ
છે. અર્થાત્ જે આસન્નસસારી-હજીરમાં છે તથા જેના ચિત્તમાં વીતરાગ ધર્મ સિધાય
અન્ય ધર્મ તરફ ધાર્મિક ભાવનાથી થોડી માત્ર યજુ મદ્દા નથી કેમ કે વીત
રાગ ધર્મને જ એ પોતાનું સર્વસ્વ મુખે છે તથા પૂર્વ-આચાર્ય-પરંપરાઅનુ-
સાર પ્રવાહરૂપથી આત્મા આજ્ઞા ઉપદેશથી જે વીતરાગના વચનોનો મદ્દાનું બનેલ
છે અને એ સારી રીતે સમજી જોઈ છે કે વીતરાગ વચન સંશય ધિર્પર્યય અને
અનધ્યયસાય આદિ લોપોંથી રહિત છે. એ જ ઉત્કૂપ્ત-તથમી છે

અર્થ—“અવહિર્મના” આ પદનો અર્થ આ પ્રકારથી પણ થાય છે કે

વિચાર્ય પ્રવાદેન=ભગવદ્વચનેન પ્રવાદં=ત્રિપષ્ટ્યધિકત્રિશતપરતૈર્થિકમતં જાનીયાત્=અનાસેવ્યતયા બુદ્ધચેત, મિથ્યાત્વવિલસિતતયા જ્ઞાત્વા પરીક્ષ્ય ચ તેષા મત ખણ્ડયે-
દિત્પર્યઃ । તે ચ પરતૈર્થિકપ્રવાદાઃ પરસ્પરવિરુદ્ધાર્થા નૈકૃત પર્યવસિતાર્થાસ્તદ્યથા-

હૈં કિં પૂર્વોક્ત વહ જીવ અન્ય મતમેં અનેક પ્રકાર કી સિદ્ધિયોં કો દેખતા હૈં, તો ખી ઉસકા ચિત્ત ઉસ ઓર નહીં ઝુકતા હૈં । કારણ કિં વહ સમજ્ઞતા હૈં કિં અનેક પ્રકારકી ઉન ૨ સિદ્ધિયોં સે વિશિષ્ટ વે સિદ્ધ ઇન્દ્રજાલિયોં જૈસે હી હૈં । ઇસ પ્રકાર વિચાર કર વહ વીતરાગ પ્રભુકે વચનોંકે સહારેસે ૨૬૨ પાલ્લવિયોંકે મતકો અનાસેવ્ય-સેવન કરનેકે અયોગ્ય હી માનતા હૈં-યે સવ મિથ્યાત્વકે હી વિલાસ હૈં, ઇનસે આત્મિક શાંતિલાભ નહીં હો સકતા હૈં એસા જાનકર ઓર ઉન્હેં અપની બુદ્ધિ-રૂપી તર્કણાકી કસૌટી પર કસ કર ગ્રાહ્યકોટિમેં પરિગણિત નહીં કરતા હૈં । ઇનસે અન્ય મોલેભાલે જીવોંકા ભવિષ્યમેં અહિત ન હો જાય ઇસ વિચારસે ઉનમેં વહ પ્રમાણતા કા ખી ખણ્ડન કરતા હૈં । વહ જાનતા હૈં કિં ઇન મતોંમેં પ્રતિપાદિત વિષય પરસ્પરમેં વિરુદ્ધ અર્થકી પ્રરૂપણા કરતા હૈં, જો કુછ વિષય ઇનમેં લિખા ગયા હૈં વહ ઠીક નહીં હૈં, કારણ કિં જિસ વિષયકો એક સ્થાન પર હેય વતાયા હૈં ઉસી વિષયકો દૂસરી જગહ ઉપાદેય બતલાયા ગયા હૈં । હમ દેખતે હૈં કિં વેદ જો એક સનાતન સિદ્ધાંત કા ઉનકી માન્યતાનુસાર સવસે પુરાના ઓર પ્રમાણિક ગ્રન્થ હૈં ઉસમેં

પૂર્વોક્ત તે જીવ અન્ય મતમા અનેક પ્રકારની સિદ્ધિઓને દેખે છે તે। પણ તેનું ચિત્ત તે તરફ લાગતું નથી કારણ કે તે સમજે છે કે અનેક પ્રકારની તેવી તેવી સિદ્ધિઓથી યુક્ત તે સિદ્ધ ઇન્દ્રજાલિક માફક છે આ પ્રકારનો વિચાર કરી એ વીતરાગ પ્રભુના વચનોના આધારથી ઉદ્ભવ પામી શકે તેના મતને સેવન કરવાને અયોગ્ય માને છે આ બધું મિથ્યાત્વનો જ વિલાસ છે એનાથી આત્મિક શાંતિનો લાભ મળી શકતો નથી, એવું બાણી અને એને પોતાની બુદ્ધિરૂપી તર્કની કસોટી પર કસીને ગ્રહણ કરવા લાયક માનતો નથી એનાથી બીજા ભોળાભાળા માણસોનું અહિત ભવિષ્યમા ન બને એ વિચારથી આવા માણસો સમક્ષ તેના વિચારોનું એ ખડન કરતો રહે છે એ બાણે છે કે આવા મતોમા પ્રતિપાદિત વિષય પરસ્પરમા વિરુદ્ધ અર્થની પ્રરૂપણા કરે છે જે કોઈ વિષય એમા લખેલ છે તે બરાબર નથી કારણ કે જે વિષયને એક સ્થળે લેય બતાવેલ છે ત્યારે એ જ વિષયને બીજે સ્થળે ઉપાદેય બતાવેલ છે વેદ જે સનાતન સિદ્ધાંતમા એમની માન્યતા અનુસાર સહુથી પુરાતન અને પ્રમાણિત ગ્રંથ છે

પ્રથમ તાવદ્વેદ એ “મા હિંસ્યાત્ સર્વાં ભૂતાનિ” હિંસેકપ્રામિષાપાડ્ડપરત્ર ચ
“અગ્નિષોમીયં પશુમાલમેત” રૂતિ ચિદ્વાર્થપ્રતિપાદકત્વાદમમાનમ્ ।

અર્થે સંસારસ્વેશ્વરો નિમિત્તકારણં ચક્તીતિ વૈશેષિકાસ્તેપામપિ સમાનમાદ-
પિતૃજાતયો પુત્રોર્માગ્યવૈપચ્યન મુસદુઃસ્વાદેર્વૈચિત્ર્યવર્ષનાષેડ્ડપ્યન્તતઃ પ્રાક્તન્મમા
મુમર્ક્યફલરૂપમદ્દષ્ટં સ્વીકૃયોણાઃ પ્રૃષ્ટવ્યાઃ, યદિ ચ મવગ્નિરીશ્વરસ્ય નિમિત્તકારણતા

પરિણે “મા હિંસ્યાત્ સર્વાં ભૂતાનિ” હિંસા શાક્યસે હિંસા કરનેક
નિષેધ ક્રિયા છે, ફિર રૂમરી જગદ્ “અગ્નિષોમીયં પશુમાલમેત” હિંસ
મન્ત્રપદ્ધતે અગ્નિષોમ યજ્ઞ કરનેક લિયે પશુકે મારનેકા વિધાન ક્રિયા
છે, હિંસ પ્રકારસે પરસ્પરમેં ચિદ્વા અર્થકી પ્રતિપાદકતા ઉત્તમેં મરી પડી
છે । અિસમેં હિંસ પ્રકારકે પરસ્પર વિરોધી કપન દેશ્વમેં આતા
છે, ઓર જહાં યુક્તિસે મી વિરોધી તત્ત્વોકા પ્રરૂપણ હુઆ છે, મલા !
ચહ વેદ પ્રમાણતા કી કોવિમેં કેસે આ સકતા છે ? હિંસ પ્રકાર વૈશેષિક
સિદ્ધાન્તકાર હિંસ જગત્કા કર્તા “અક રૂશ્વર છે” એસા માનતે છે । પરન્તુ
અય ઉનસે ચહ પ્રશ્ન ક્રિયા આતા છે કિ અક હી માતા પિતાસે ઉત્પન્ન હુવ
પુરુષોમેં મુક્ત દુઃસ્વ આવિકી ચિચિત્રતા ક્યો દેશ્વી જાતી છે ? પરમાત્માકે
દ્વારા ઉત્પન્ન ક્રિયે ગયે હન ઝીવોમેં ચહ વિષમતા ક્યો ? હિંસકા જે સમા-
ધાન કરતે હુવ કહતે છે કિ હિંસ વિષમતાકા કારણ ઉનકે ભાગ્યકી

એમા પ્રથમ “મા હિંસ્યાત્ સર્વાં ભૂતાનિ” આ વાક્યથી હિંસા કરવાને નિષેધ
કરવામા આવેલ છે હરી બીજે સ્થળે “અગ્નિષોમીયં પશુમાલમેત” આ મન્ત્ર
પદ્ધતી અગ્નિષોમ યજ્ઞ કરવા માટે પશુને મારવાનું વિધાન કરેલ છે. આ રીતે
અનેક સ્થળોમા આ પ્રકારથી પરસ્પર વિરૂદ્ધ અર્થની પ્રતિપાદકતા એમાં ભરી
પડી છે એમા આ પ્રકારના પરસ્પરના વિરોધી કપન એવામા આવે છે અને
મુક્તિથી પણ વિરોધી તરનોનું પ્રરૂપણ કરાયેલ છે તેવે પ્રમાણતાની કોટીમા
કય રીતે આવી શકે ? એ જ રીતે વૈશેષિક સિદ્ધાન્તકાર આ જગતના કર્તા
“એક રૂશ્વર છે” એમ માને છે પરન્તુ જ્યારે એમને આ પ્રશ્ન કરવામાં આવે
કે એક માતામાં ઉત્પન્ન થયેલ પુરુષોમા મુખ દુઃખ ઉત્પાદિતી ચિચિત્રતા કેમ
દેખાય છે ? પરમાત્માએ જ ઉત્પન્ન કરેલ આ ભવોમા આવી વિષમતા કેમ ? આનું
સમાધાન કરતા એ કહે છે કે આ વિષમતાનું કારણ એના ભાગ્યની વિષમતા
છે તેવે જે રીતના શુભ અને અશુભ કર્મો કર્યા છે એ અનુસાર તેને મુખ

બ્રુવદ્ધિરન્ટેડપિ ચાડદ્દષ્ટવિશેષઃ સ્વીક્રિયત એવ, તર્હિં ઈશ્વરસ્ય કારણતા વિનૈવાડદ્દષ્ટે-
નૈવ સર્વં સેત્સ્યતિ, અદ્દષ્ટ તુ શુભાશુભકર્મફલરૂપમેવ કિમીશ્વરસ્ય કર્તૃત્વદુરાગ્ર-
હેણેત્યલમ્ ।

કાપિલાસ્તુ—‘પ્રકૃતિરેવ કર્ત્રી પુરુષસ્તુ પ્રતિક્ષેત્ર [શરીર] વર્તી નિર્ગુણો-
વિષમતા હૈં, ઉન્હોને જૈસા કુછ શુભ ઓર અશુભરૂપ અદ્દષ્ટ કમાયા હૈ
ઉસીકે અનુસાર વે સુખદુઃખ આદિકો ભોગા કરતે હૈ । ડસમે ઈશ્વરકી
ક્યા અપેક્ષા હૈ? જવ વે ડસ પ્રકારકા ઉત્તર દેતે હૈ તવ હમ ઉનસે પૂછતે
હૈ કિ જવ તુમ ડસ જગતકા નિમિત્તકારણ ઈશ્વરકો કલ્પિત કરતે હો
તો ફિર સુખદુઃખાદિકકી વિચિત્રતાકા કારણ અદ્દષ્ટકી કલ્પના ક્યોં
કરતે હો । ક્યોં અદ્દષ્ટકો સુખદુઃખાદિકકા કારણ માનતે હો? ડસ
પ્રકારકી માન્યતામેં ઈશ્વરમે સર્વશક્તિમત્તાકા અભાવ આતા હૈ, ક્યો કિ
ઈશ્વરકી અપેક્ષા અધિક શક્તિશાલી પદાર્થ ઁક અદ્દષ્ટ આપકે કથના-
નુસાર સિદ્ધ હોતા હૈ, ઈસલિયે જવ અદ્દષ્ટ હી સબકે ભાગ્યકા વિધાતા
હૈ તો ફિર ઈશ્વરકો વીચમેં ડાલકર ક્યોં ઉસકી ઈશ્વરતા પર કલંક લગાતે
હો । જિસે અદ્દષ્ટ માના ગયા હૈ, ઉસે હી જૈન સિદ્ધાન્તકી પરિભાષા
મેં કર્મકા ફલ સુખ દુઃખ કહા ગયા હૈ, ઈસલિયે ઈસ દુરા-
ગ્રહકો છોડકર વાસ્તવિક વસ્તુસ્થિતિકા વિચારક બનો । ઈસ પૂર્વોક્ત
કથનસે વૈશેષિક સિદ્ધાન્તમેં પરસ્પર વિરુદ્ધાર્થપ્રરૂપકતા પ્રકટ કી ગઈ હૈ ।

હુ.ખ આદિ ભોગવવા પડે છે આમા ઈશ્વરની શી અપેક્ષા છે, જ્યારે તે આ
પ્રકારનો ઉત્તર દે છે ત્યારે અમે તેને પૂછીએ છીએ કે જ્યારે તમે આ જગ-
તનુ નિમિત્ત કારણ ઈશ્વરને માનો છો તો પછી સુખ દુઃખ ઈત્યાદિની વિશિ
ત્રતાનુ કારણ અદ્દષ્ટની કલ્પના કેમ કરો છો? અદ્દષ્ટને કેમ સુખ દુઃખનુ કારણ
માનો છો? આ પ્રકારની માન્યતામા ઈશ્વરમા સર્વશક્તિમત્તાનો અભાવ આવે છે,
કેમકે ઈશ્વરની અપેક્ષા અધિક શક્તિવાળા પદાર્થ એક અદ્દષ્ટ આપના કથનાનુ
સાર સિદ્ધ હોય છે, આ માટે જ્યારે અદ્દષ્ટ જ સહુના ભાગ્યનો વિધાતા છે તો
પછી ઈશ્વરને વચમા નાખીને એની ઈશ્વરતા ઉપર કલંક કેમ લગાડો છો જેને
અદ્દષ્ટ માનવામા આવેલ છે એને જ જૈન સિદ્ધાન્તની પરિભાષામા કર્મનુ ફળ
સુખ દુઃખ કહેવાયેલ છે, આ માટે એ દુરાગ્રહને છોડી વાસ્તવિક વસ્તુસ્થિતિના
વિચારક બનો આ પૂર્વોક્ત કથનથી વૈશેષિક સિદ્ધાન્તમા પરસ્પર-વિરુદ્ધાર્થ-પ્રરૂપકતા
પ્રકટ કરવામા આવેલ છે

સાખ્ય સિદ્ધાન્તની પણ આવી જ દશા છે, એમણે પ્રકૃતિ અને પુરુષ આ

યહાં પર યહ શક્તી કી જાવે કિ જૈનસિદ્ધાન્તકારોને જિનહેં કર્મ માના હૈ વે ભી તો અચેતન હૈ, ઊન અચેતનો મેં સુખદુઃખાદિરૂપ ફલકે પ્રતિ પ્રવર્તકતા દેખી જાતી હૈ, ઊસી પ્રકાર પ્રકૃતિમે ભી પ્રવર્તકતા માનનેમે ક્યા હાનિ હૈ ? ઇમ પ્રકાર દૃષ્ટાન્તકી અસંભવતા બતલાકર જો ઇસ કથન કો અપ્રમાણ બતલાયા ગયા હૈ વહ ઠીક નહો હૈ; સો સાંખ્યોંકા ણેસા કહના જૈનસિદ્ધાન્તકે પ્રતિકૂલ હૈ । જૈનસિદ્ધાન્તકારોને કાર્મણવર્ગણારૂપ દ્રવ્યમેં જીવકી રાગાદિક પરિણતિકે નિમિત્તકો લેકર કર્મરૂપસે પરિણમન માના હૈ, કાર્મણવર્ગણાઓ કા પરિણમન (કર્મરૂપ હોના) વિના નિમિત્ત કે નહીં હોતા । અતઃ જવ ઇનમે અશુદ્ધજીવકે વિભાવભાવોં કો લેકર કર્મરૂપસે પરિણમન હોતા હૈ તમી યે સુખદુઃખાદિકરૂપ ફલકે પ્રતિ પ્રવર્તક માને ગયે હૈ । સાંખ્યસિદ્ધાન્તકે અન્દર પ્રકૃતિમેં ઇસ તરહસે પ્રવર્તકતા નહીં માની ગઈ હૈ, કયોં કિ આત્મા સ્વયં નિર્ગુણ એવ અકર્તા માના ગયા હૈ । પ્રકૃતિકો ઇસ પ્રકાર વિભાવપરિણતિસે અધિષ્ઠિત હો કર યદિ કાર્યકી કરનેવાલી માના જાવે તો ફિર ઊસે જો “મૂલપ્રકૃતિ-રવિકૃતિઃ” કારણરૂપ હી માના ગયા હૈ સો યહ માન્યતા ઠીક નહીં માની જા સકતી, કારણ કિ ઇસ પ્રકારકી માન્યતામેં ઊસમેં વિકૃતિ આનેસે વહ કાર્યરૂપ કિસી અપેક્ષાસે માની જાવેગી । વિશેષ જિજ્ઞાસુઓંકો યહ વિષય ન્યાયગ્રન્થોસે દેખ લેના ચાહિયે ।

સિદ્ધાન્તકારોએ જેને કર્મ માનેલ છે એ પણ અચેતન જ છે, એ અચેતનમા સુખ દુઃખાદિ ક્ષણ તરફ પ્રવર્તકતા જોવામા આવે છે, એ જ રીતે પ્રકૃતિમા પણ માનવામા કયુ નુકસાન છે ? આ રીતે દૃષ્ટાન્તની અસંભવતા બતાવીને આ કથનને અપ્રમાણિત કહેલ છે તે બરાબર નથી, આમ સાંખ્યોનુ કહેવુ જૈન સિદ્ધાન્તથી વિરુદ્ધ છે જૈન સિદ્ધાન્તકારોએ કાર્મણવર્ગણારૂપ દ્રવ્યમા જીવની રાગાદિક પરિણતિન્ય નિમિત્તને લઈને કર્મરૂપથી પરિણમન માનેલ છે કાર્મણવર્ગણોનુ પરિણમન (કર્મરૂપ થવુ) કોઈ નિમિત્ત સિવાય થતુ નથી આવી જ્યારે આમા અશુદ્ધ જીવના વિભાવભાવોને લઈ કર્મરૂપથી પરિણમન થાય છે ત્યારે એ સુખ દુઃખના ક્ષણ તરફ પ્રવર્તક માનવામા આવેલ છે સાંખ્ય સિદ્ધાન્તમા પ્રકૃતિમા આ પ્રકારથી પ્રવર્તકતા માનવામા આવી નથી, કેમ કે આત્મા સ્વયં નિર્ગુણ અકર્તા માનવામા આવેલ છે પ્રકૃતિને આ રીતે વિભાવપરિણતિથી અધિષ્ઠિત થઈ કામ કરવાવાળી માનવામા આવે તો પછી એને જે “મૂલપ્રકૃતિરવિકૃતિ” કારણરૂપજ માનવામા આવેલ છે આ માન્યતા બરાબર થઈ શકે નહિ કારણ કે આ પ્રકારની માન્યતાથી એનામા વિકૃતિ આવવાથી કોઈ અપેક્ષાથી એને પણ કાર્યરૂપ માનવામા આવશે વધુ જાણસા ધરાવનારે આ વિષય ન્યાયગ્રન્થોમા જોઈ લેવો જોઈએ

નિમિત્તકારણં સમવાયિ [ઉપાદાન] કારણં વાસ્તીત્યગ્નીકુર્પન્તાઽવિધાવિભ્રમં સ્પષ્ટ
સ્પષ્ટમાતં શુક્તીં રજતપદ્મં દ્રવ્યમિદમ્ [આગપિતમ્] નદં રજતમિતિ
વિધાપદર્શનાદધિષ્ઠાનમાત્રાવસ્તુત્વા યથા, તથૈવ 'નદં નાનાઽસ્તિ કિંચિન્નેત્યાદિ વિસ્ત-
પદર્શનાદધિષ્ઠાનમાત્રાવસ્તુમદ્વૈત વ્રજ સિધ્યતિ' इत्यादि मुक्तो वदान्तिनः मष्टव्या

इसी प्रकार वेदान्तियोंका कथन भी परस्परविरुद्धार्थ प्ररूपक है। यह
इस प्रकारसे है—“य इति जगत्स्वरूप प्रपञ्चका निमित्तकारणं एव सम-
वायि (उपादान) कारणं एक ईश्वर को मानते हैं। घट-पट-मठ-दाक
और कट (चटाई) आदि जो अनेक वस्तुरूप प्रपञ्च प्रतिभासित होता है
वह सब अविद्या-माया रूप विभ्रमसे मालूम पड़ता है, जैसे-शुक्ति
(सीप)में रजतका ज्ञान होता है। शुक्तिमें जिस प्रकार रजतका आरोप
होता है, उसी प्रकार एक ब्रह्ममें इस जगत्का आरोप होता है। उत्तर
कालमें जिस प्रकार “यह रजत नहीं है” इस प्रकार बाधक प्रत्यय
होता है और इससे सिर्फ अविष्टानमात्र-शक्ति अवशिष्ट बची रहती
है, उसी प्रकार इस संसारमें प्रत्यक्ष इदृशमान य नाना पदार्थ कुछ नहीं
हैं, किन्तु अविद्या-माया विभ्रमसे अनकरूप प्रतिभासित होते हैं, वास्त-
विक नहीं हैं। वास्तविक तो एक ब्रह्म ही है। इस प्रकार उत्तरकालीन
बाधक प्रत्ययसे एक अविष्टानमात्र रूप अद्वैत ब्रह्मकी ही सिद्धि होती
है” इस प्रकारका यह वदान्तियोंका कथन भी ठीक नहीं है। कारण कि

આ રીતે વેદાન્તવાદીઓનું કથન પણ રસ્ત પર વિરોધ બતાવનાર છે તે
આ પ્રકારે છે તેઓ આ જગતરૂપ પ્રપન્નું નિમિત્તકારણુ અને ઉપાદાનકારણુ
એક ઉત્તરને માને છે ઘટ-પટ-મઠ યાકટ અને કટ (નાદઈ) ઇત્યાદિ જે
અનેક વસ્તુરૂપ પ્રપન્ન પ્રતિભાસિત હોય છે આ બધું અવિદ્યા-માયારૂપ વિજ્ર
મથી દેખાય છે જેમ સીપમા રજતનું જ્ઞાન હોય છે સીપમા જેમ રજતને
આરોપ થાય છે આ જ પ્રકારે એક બ્રહ્મમા આ જગતને આરોપ થાય છે
ઉત્તર કાળમા જે રીતે આ જગત નથી આ પ્રકારે બાધક પ્રત્યય (જ્ઞાન)
હોય છે અને આથી ફક્ત અવિષ્ઠાન માત્ર સીપ અવશિષ્ટ બની રહે છે આ
રીતે આ સંસારમાં પ્રત્યક્ષ દેખાતા વિવિધ પદાર્થો કાઈ નથી પણ અવિદ્યા-માયાના
વિજ્રમમાં અનેક રૂપ દેખાય છે વાસ્તવિકમા નથી; વાસ્તવિક તો એક બ્રહ્મ જ છે.
આ રીતે ઉત્તરકાલીન બાધક પ્રત્યયથી (જ્ઞાનથી) એક અવિષ્ઠાનરૂપ અદ્વૈત બ્રહ્મની જ
સિદ્ધિ હોય છે.” આ પ્રકારનું વેદાન્તિઓનું એ કથન પણ ઠીક નથી; કારણ કે એક જ

યદ્ એકસ્ય સમવાયિ [ઉપાદાન] કારણ-નિમિત્તકારણયોર્લોકે ક્વાપ્યર્શનેન દૃષ્ટાન્તાસમ્ભવાત્ પ્રત્યક્ષદૃષ્ટસ્ય જગતઃ સામાન્યેન શબ્દપ્રમાણેન વાયાસમ્ભવાच्च ન યુક્તિયુક્ત ભવન્મતમિતિ ।

તથા સૌગતા:—‘યત્ સન્ તત્ ક્ષણિકસર્પસ્ય ચ નિરન્વય એવ નાશ ઇતિ કથયન્તિ। યસ્માદુપાદાનકારણાદ્ યદુપાદેય જાયતે તસ્યોપાદેયસ્ય તથૈવોપાદાને નાશો ભવતિ, યથા-ઘટ પ્રત્યુપાદાનકારણ મૃત્પિણ્ડઃ, અતો ઘટસ્ય તત્રૈવ નાશો ભવતિ, તેન ઘટ-
 એક હી વ્રહ્મ નિમિત્ત ઓર ઉપાદાન કારણ નહીં બન સકતા હૈ। હાં-યદિ કોઈ એસા દૃષ્ટાન્ત મિલતા કિ જો નિમિત્ત ઓર ઉપાદાન કારણ હોતા તો યહ માન્યતા ઠીક માની જા સકતી, પરન્તુ એસા કોઈ દૃષ્ટાન્ત હી નહીં દિખતા। અતઃ યહ એક કલ્પના માત્ર હૈ, વાસ્તવિક નહીં। દૂસરે પ્રત્યક્ષ સે સ્પષ્ટ પ્રતિભાસિત હોનેવાલે જગતમે સામાન્ય શબ્દ પ્રમાણ (આગમ-પ્રમાણ) સે વાધા મી કલ્પિત નહીં હો સકની હૈ। ઇસલિયે વેદાન્તમત યુક્તિયુક્ત નહીં માના જા સકતા।

બૌદ્ધસિદ્ધાન્ત મી યુક્તિયુક્ત નહીં હૈ, ક્યો કિ વે ‘યત્સત્ તત્સર્વ ક્ષણિક’ કહતે હૈ। અર્થાત્-જો સત્ (પદાર્થ) હૈં વે સર્વ ક્ષણિક નિરન્વય નાશશીલ હૈં। પરન્તુ ઇસ ક્ષણિકવાદમે ઉપાદાન-ઉપાદેય-ભાવ સિદ્ધ નહીં હોનેસે કાર્યકારણ ભાવકી સિદ્ધિ નહીં હો સકતી હૈ। જિસ ઉપાદાન કરણ સે જો ઉપાદેયરૂપ કાર્ય હોતા હૈં ઉસ કાર્યકા ઉસી ઉપાદાનરૂપ કારણમેં નાશ હોતા હૈં। જૈસે ઘટકે પ્રતિ ઉપાદાનકારણ મૃત્પિણ્ડ હૈં ઓર ઉસ ઘટકા ઉસીમેં હી વિનાશ હોતા હૈં। ઇસ અપેક્ષા ઘટ ઓર મૃત્પિણ્ડ

બ્રહ્મ નિમિત્ત અને ઉપાદાન કારણ થઈ શકે નહિ કહાય કોઈ એવુ દૃષ્ટાત અપાત કે જે નિમિત્ત અને ઉપાદાન કારણ હોત તો આ માન્યતા ઠીક માની જાત પરન્તુ એવુ કોઈ દૃષ્ટાત દેખાતુ નથી આથી એ કલ્પના માત્ર છે, વાસ્તવિક નથી બીજુ પ્રત્યક્ષથી સ્પષ્ટ દેખાતા આ જગતમા સામાન્ય શબ્દ પ્રમાણથી કલ્પના પણ થઈ શકતી નથી આ કારણે વેદાન્ત મત માનવાયોગ્ય મનાતો નથી બૌદ્ધ સિદ્ધાંત પણ માનવા યોગ્ય નથી, કેમ કે તે “યત્સત્ તત્સર્વ ક્ષણિક” જે જે પદાર્થ છે તે બધા ક્ષણિક નિરન્વય નાશશીલ છે એમ કહે છે, પરન્તુ આ ક્ષણિકવાદમા ઉપાદાનઉપાદેયભાવ સિદ્ધ નહિ હોવાથી કાર્યકારણ ભાવની સિદ્ધિ થઈ શકતી નથી જે ઉપાદાનરૂપ કારણથી જે ઉપાદેયરૂપ કાર્ય થાય છે આ કાર્યનો એ ઉપાદાનરૂપ કારણમા નાશ થાય છે, જેમ ઘડા પ્રતિ ઉપાદાનકારણ માટીનો પિંડ છે અને એ ઘડાનો એમા જ વિનાશ થાય છે આ રીતે ઘડાનો અને માટીપિંડનો

પ્રતિષ્ઠયોર્નિયતઃ કાર્યકારણભાષઃ સિદ્ધયતિ । નિરન્વયનાશાત્મીકારે ઘટસ્ય કુપ્ર
નાશઃ સ્યાદ્ યન નાશાભય ઉપાદાનં સ્યાદિતિ નિયતકાર્યકારણભાષાસિદ્ધ્યા ન
સમીચીનં ઠન્યતમિતિ-ઇત્યાદિયુક્તિમિઃ પરવાદં નિરસ્ય મુનિના સર્વજ્ઞોપદેશે
પરિવશ્યમિતિ હૃદયમ્ ।

કર્મ પ્રવાદ જાનીયાવિત્યાદ-‘સદે’ સ્યાદિ-સહસમ્મત્યા-સજ્ઞાત્મના યા સંગતા
મતિઃ સા સહસમ્મતિ-પરોપદશ્ચ-નિરપેક્ષા જ્ઞાતિસ્મરણપ્રતિમાદિકરૂપા મતિસ્તયા
જાનીયાત્ । યદ્યેવં નાશગચ્છત્ તથા પરમ્યાકરણન-પરસ્ય=તીર્થકુદાદિમ્યાકરણં
પદાર્થસાર્થસ્ય યથાર્થસ્વરૂપમરૂપ્યં સત્પરમ્યાકરણ યેન પરમ્યાકરણેન આર્જતામયેન
જાનીયાત્, તેનાપ્યનધિગમ્ય અન્યેષામાશાર્પાદીનામ્ અન્તિક્કે=સમીપે મુત્વા=
તદુપદેશમાકર્મ્યં વસ્તુતત્ત્વં જાનીયાત્ ॥ મૃં ૨ ॥

કા પરસ્પરમે-કાર્યકારણભાષ નિયત સિદ્ધ હોતા હૈ । પરન્તુ જય પદાર્થકા
નિરન્વય ચિનાશ જ્ઞાન લિપ્યા જાયગા તથ ઘટકા કહ્યાં પર નાશ જોગા ।
નાશ નિરાશ્રય જોગા, ઉપાદાનકે આશ્રય નહીં । હમ પ્રકાર ઉપાદાન
ઔર ઉપાદેયભાષ ન ધનનેસે પરસ્પરમે નિયમિત કાર્યકારણ ભાષકી
સિદ્ધિ નહીં હો સક્તી હૈ । અત્ત યદ્ મત્ત ખી ઠીક નહીં હૈ ।

કહનેકા અભિપ્રાય કેવલ્ હતના હી હૈ કિં હત્યાવિ યુક્તિયોસે પર
મત્તકા નિરાકરણ કર વિજ્ઞાન મુનિકો સર્વજ્ઞ પ્રમુકે ઉપદેશમેં હી મદા
નિરત-અદ્વાલુ રહના આહિયે ।

“સહસમત્યા પરમ્યાકરણેન અન્યેષાં વાઙ્મનિકે મુત્વા” હમ પ્રકાર
અપની જ્ઞાતિસ્મરણ-પ્રતિમાદિકરૂપ મુદ્ધિ યા તીર્થકુદ-પ્રમુકખિત્ત આગ
મસે મુનિ હન પરમતોકા સમ્યક્ જ્ઞાતા વને । યદિ કદાચિત્ પેસા

પરસ્પર કાર્યકારણથી મેળ સિદ્ધ થાય છે પરંતુ એ પદાર્થને નિરન્વય વિનશ્ર માની
લેવામા આવે તો પ્રજ્ઞા નાશ ક્યા થાય ? આ રીતે ઉપાદાન અને ઉપાદેય કાર્ય
ન બનવાથી પરસ્પરમાં નિયમિત કાર્યકારણ કાવની જિદ્ધિ નથી થઈ શકતી.
આથી આ મત યજ્ઞ બરાબર નથી.

કહેવાનુ તાત્પર્ય માત્ર એટલું જ છે કે અનેક મુદ્ધિજોથી ખીજ મતનુ
નિસકરણ કરી વિજ્ઞાન મુનિકે સર્વજ્ઞ પ્રમુકા ઉપદેશમાં જ સદા અદ્વાલુ
રહેનુ એમ છે.

“સહસમત્યા પરમ્યાકરણમ અન્યેષાં વાઙ્મનિક મુત્વા” આ પ્રકારે પોતાની
જ્ઞાતિસ્મરણ-પ્રતિમાદિકરૂપ મુદ્ધિથી અને તીર્થકુદ પ્રમુકે કહેલ આશ્રમથી મુનિ

જાત્વા કિં કર્તવ્યમિતિ દર્શયતિ-નિર્દેશ ' રૂત્યાદિ—

મૂલમ્—નિર્દેશં નાઙ્વદેજ્જા મેહાવી સુપહિલેહિયા સઠ્વઓ સઠ્વયાણ સમ્મમેવ સમભિજાણિયા, ઇહ આરામં પરિણાય અહ્લીણગુત્તે પરિવ્વણ, નિઢિયઢી વીરે આગમેણ સયા પરક્કમે-જ્જાસિ ત્તિવેમિ ॥ સૂ૦ ૩ ॥

છાયા—નિર્દેશ નાતિવર્તેત મેધામી સુપ્રત્યુપેક્ષ્ય સર્વતઃ સર્વાત્મના સમ્યગેવ સમભિજ્ઞાય, ડહાડ્ડરામ પરિજ્ઞાયાડ્ડલીનગ્ગઃ પરિવ્રજેત્, નિષ્ઠિતાર્થી વીર આગમેન સદા પરાક્રમેથા ઇતિ વ્રવીમિ ॥ સૂ૦ ૩ ॥

ટીકા—‘ નિર્દેશ ’મિત્યાદિ—મેધામી=આચાર્યમર્યાદાનુગમનશીલો નિર્દેશં=વીતરાગોપદેશ સર્વાત્મના=ઉત્સર્ગાપવાદરૂપેણ, યદ્વા—આમ્યન્તરવાહ્યરૂપેણ સર્વતઃ=સર્વપ્રકારેણ દ્રવ્યક્ષેત્રકાલભાવરૂપેણેત્યર્થઃ, મુપ્રત્યુપેક્ષ્ય=મિથ્યાદૃષ્ટિવાદ ભગવ-દ્વાદં ચ ઢેયોપાદેયત્વેન સમ્યક્ સમાલોચ્ય સમ્યગેવ=સમ્યક્તયા યથાવસ્થિતરૂપેણ સ્વમત પરમત ચ સમભિજ્ઞાય પ્રમાણનયેજ્ઞાત્વા નાતિવર્તેત-ભગવદાજ્ઞા નાતિક્રમેત-નોહ્લહ્વયેદિત્યર્થઃ, ઉપલક્ષણાત્ પરવાદ ચ નિરાકુર્યાદિતિ । અપિ ચ ઇહ=અત્ર જિન-યોગ ન મિલે તો આચાર્યાદિક ગુરુઓંકે નિકટ વસ કર ઉનકે ઉપદેશ શ્રવણસે વાસ્તવિક વસ્તુ-તત્ત્વકા જાયક વને ।

વસ્તુ તત્ત્વ યા પરપ્રવાદકો જાન કર ફિર કયા કરના ચાહિયે? ઇસ કે સમાધાનાર્થ સૂત્રકાર કહતે હૈં “ નિર્દેશ ” રૂત્યાદિ ।

જો મુનિજન બુદ્ધિશાલી હૈં, અર્થાત્ અપને ધર્મગુરુઓંકી મર્યાદાકે રક્ષક હૈં, ઉનકે નિર્દિષ્ટ માર્ગાનુસાર અપની પ્રવૃત્તિ કરતે હૈં, સ્વમનઃ-કલ્પિત પ્રવૃત્તિ નહીં કરતે । વે વીતરાગ પ્રભુકે ઉપદેશકા અનેક માર્ગસે વિચાર કર કમી મી ઉસસે ચિરુદ્ધ પ્રવૃત્તિ, યા ઉસકા ઉલ્લંઘન નહીં કરતે । વીતરાગ પ્રભુકા ઉપદેશ અનેક નયોંકી અપેક્ષાસે પ્રવર્તિત હુઆ હૈં ઇસા

આ પરમતોના સ પૂર્ણ જ્ઞાતા બને. પરતુ કદાચ એવો યોગ ન મળે તો આચાર્ય આદિ ગુરુઓની પાસે રહી એમના ઉપદેશ શ્રવણથી વાસ્તવિક વસ્તુતત્ત્વના બાણીકાર બને વસ્તુતત્ત્વ અને પરમતને બાણી પછી શુ કરવુ બેઠએ ? એના સમા-ધાનમા સૂત્રકાર કહે છે “ નિર્દેશ ” ઇત્યાદિ ।

જે મુનિજન બુદ્ધિશાળી છે એટલે પોતાના ધર્મગુરુઓની મર્યાદાના રક્ષક છે—એમણે ઉપદેશલ માર્ગ અનુસાર પોતાની પ્રવૃત્તિ કરે છે, સ્વમન કલ્પિત પ્રવૃત્તિ કરતા નથી તે વીતરાગ પ્રભુના ઉપદેશને અનેક માર્ગથી વિચાર કરી ડરી પણ એનાથી વિરુદ્ધ પ્રવૃત્તિ અથવા એનુ ઉલ્લંઘન નથી કરતા વીતરાગ પ્રભુનો ઉપદેશ સિદ્ધ છે એવો વિચાર કરી તે કદી પણ એના આગમમા શકા

विचार कर वे भी उनके आगममें शंकाशील नहीं होते हैं—उसमें परस्पर विरुद्धार्थप्रस्तुतकर्माकी शंका नहीं करते हैं। वे यह अच्छी तरहसे समझ लेते हैं कि भगवान् वीतराग प्रभुके वचन ही निर्दोष होनेसे उपादेय हैं और सदोष होनेसे मिथ्यादृष्टियोंके वचन हेय हैं। क्यों कि पदार्थोंका जैसा स्वरूप है वह वीतरागप्रभुप्रतिपादित आगमसे साक्षात् प्राप्त होता है। कारण कि उसमें ही पदार्थोंका यथार्थस्वरूप प्रतिपादित हुआ है अन्य मिथ्यादृष्टियोंके आगममें नहीं, कारण कि उसमें उनका यथावस्थित स्वरूप प्रतिपादित नहीं हुआ है, इनमें एकान्तवादकी ही प्ररूपणा है, जो प्रत्यक्ष और अनुमानसे बाधित है। पदार्थोंका स्वरूप अनेकान्तकी प्ररूपणा से ही वास्तविक ज्ञान होता है, और वही अनेकान्तता पदार्थोंमें प्रत्यक्षादि प्रमाणोंसे ज्ञान होती है। इस अनेकान्तताका परिज्ञान पदार्थों में प्रमाण और नयोंसे होता है। वस्तुके अंदर रहे हुए अनंत घर्मोंमें से किसी एक घर्मको मुख्यकर शेष घर्मोंकी अविवक्षासे उन्हें गौणकर वस्तुस्वरूपका प्रतिपादन करना नय है। अनंतघर्मोंमें एक वस्तुका कथन प्रमाण ही इस प्रकार पदार्थोंमें अनेकान्तता ही सिद्ध होती है।

शङ्का—नयवाक्यसे जो पदार्थोंके स्वरूपका प्रतिपादन किया जाता है वह भी तो एकान्तवाक्य है; फिर इसमें प्रमाणरूपता कैसे मानी जा सकती है ?

शील जनता नहीं—जोभा परस्पर विरोधीपक्षानी शङ्का नहीं करता। जो आरी रीते समझे हैं वे भगवान् वीतराग प्रभुना वचन निर्दोष तेमवर आधस्ता-योभ्य होवाधी मिथ्यादृष्टिमाना वचन नहयभा छे; केम के पदार्थोंनु केनु स्वरूप छे ते वीतराग प्रभुजे समन्वयेव आगमभी लखी शङ्का छे कारण के जोभा व पदार्थोंनु यथार्थ स्वरूप समन्वयेव छे वीरव मिथ्यादृष्टिमाना आगमभा नहीं कारण के जोभा केनु साधु स्वरूप सिद्ध स्वीकारनु नहीं जोभाभा जोकान्तवादनी व प्ररूपणा छे के प्रत्यक्ष अने अनुमानधी जामित छे पदार्थोंनु स्वरूप अनेकान्तानी प्ररूपणाभा व वास्तविक लखी शङ्का छे अने जो व अनेकान्तता पदार्थोंभा प्रत्यक्षादि प्रमाणोंभी नात याव छे आ अनेकान्ततानु परिज्ञान पदार्थोंभा नभाषु अने नयोधी याव छे वस्तुनी अंदर रहेवा अनंत घर्मोंभाधी केछे जोक घर्मने मुख्य नही वीरव घर्मोंनी अविवक्षा करी केने नीव समझ वस्तुस्वरूपनु प्रतिपादन करनु नय छे अनंत घर्मोंमेंक वस्तुनु कथन प्रमाण छे आ प्रकार पदार्थोंभा अनेकान्तता व सिद्ध याव छे

शङ्का—नयवाक्यधी ? पदार्थोंना स्वरूपनु प्रतिपादन करयभा आवे छे आ पक्ष जोकान्तवादका छे, पछी आने नभाषुपत्ता कछे रीते मानी शङ्का ?

ઉત્તર—યહ આશંકા ઠીક નહીં છે, ક્યોં કિ જહાં પર વિવક્ષિત ધર્મકી હી પ્રધાનતા કી જાવે ઓર વાકી અન્ય ધર્મોંકા તિરસ્કાર કર દિયા જાવે વહાં પર હી ંકાન્તતા આતી છે. નયવાક્યમેં સર્વથા ંકાન્ત-પ્રતિપાદકતા નહીં છે. યદ્યપિ નય અપને દ્વારા ગૃહીત ધર્મકા હી પ્રતિપાદન કરતા હેં, પરન્તુ વહ વસ્તુગત અનેક ધર્મોંકા તિરસ્કાર નહીં કરતા છે, કિન્તુ ંકી ઓર વહ ગજનિમીલિકા ધારણ કર લેતા છે. ંસ પ્રકાર નયવાક્યમેં દુર્નયતારૂપ સર્વથા ંકાન્તપ્રતિપાદકતા નહીં આતી છે.

શંકા—ંસ પ્રકારકે કથનસે નયવાક્યમે જવ પ્રમાણતા આતી છે તો ંસે પ્રમાણવાક્યસે ભિન્ન ક્યોં માનના ચાહિયે? ંસકા સમાવેશ પ્રમાણવાક્યમેં ક્યો નહીં કર લિયા જાવે?

ઉત્તર—શંકા ઠીક નહીં છે, ક્યોં કિ જિસ પ્રકાર સમુદ્રકા ંક બિન્દુ અસમુદ્ર ંવં સમુદ્ર નહીં હો સકતા છે; કિન્તુ સમુદ્રકા ંક દેશ કહા જાતા છે, ંસી પ્રકાર નય વાક્ય ભી પ્રમાણકા ંક દેશ માના ગયા છે, વહ ન પ્રમાણ છે ઓર ન અપ્રમાણ. ંસ પ્રકાર વહ જીવાદિક પદાર્થોં મેં યા વીતરાગપ્રતિપાદિત આગમમેં ઉત્સર્ગ ઓર અપવાદ માર્ગસે પ્રમાણ નયોંકે દ્વારા યથાર્થપ્રતિપાદકતા જાનકર ંસે ંપાદેયકોટિમેં

ઉત્તર—આ આશંકા બ્યાજળી નથી, કેમ કે બ્યા વિવક્ષિત ધર્મની જ પ્રધાનતા માનવામા આવે અને બાકીના બીજા ધર્મોનો તિરસ્કાર કરવામા આવે ત્યા જ ંકાન્તતા આવે છે નયવાક્યમા સપૂર્ણ ંકાન્તપ્રતિપાદકતા નથી. યદ્યપિ નય પોતાદ્વારા ગૃહીત ધર્મને જ પ્રતિપાદિત કરે છે, પરતુ ં વસ્તુગત અનેક ધર્મોનો તિરસ્કાર કરતો નથી. પરતુ ંની તરફ તે નમભાવ ધારણ કરે છે, આ રીતે નયવાક્યમા દુર્નયતા-સર્વથા-બ્યાન્ત-પ્રતિપાદકતા આવતી નથી.

શંકા—આ પ્રકારના કથનથી નયવાક્યમા બ્યારે પ્રમાણતા આવે છે તો ંને પ્રમાણ વાક્યથી ભિન્ન કેમ માનવું બોધે? ંનો સમાવેશ પ્રમાણવાક્યમા કેમ નથી કરતો?

ઉત્તર—શંકા બરોબર નથી, કેમ કે બે રીતે સમુદ્રતુ ંક ટીપું અસમુદ્ર અને સમુદ્ર બની શકતું નથી, પરતુ સમુદ્રનો ંક દેશ કહેવાય છે, ં જ રીતે નયવાક્ય પણ પ્રમાણનો ંક દેશ માનવામા આવેલ છે ં પ્રમાણ પણ નથી તેમ અપ્રમાણ પણ નથી આ રીતે બ્યાદિક પદાર્થોંમા અને વીતરાગ પ્રતિપાદિત આગમમા ઉત્સર્ગ અને અપવાદ માર્ગથી પ્રમાણ નયો દ્વારા યથાર્થ-પ્રતિપાદકતા બધી તેને ંપાદેયકોટિમા અને ભિચ્યાદિષ્ટિઓના સિદ્ધાંતોને હેય

જાતને સ્ત્રોતે માણીનાશ્વત્તા—માણીના—મા—સર્વત્સપ્તસિ સંયમ ગુરુપદશ પરસ-
મયનિરાકરણે ચ સ્ત્રીના—તત્પરઃ શ્વત્તા—કર્મક્ત્ સપતેન્દ્રિયનોદ્દિયથ સ્ત્ર ' નિષ્ઠિ
વાર્ધી' નિષ્ઠિય—સકલકર્મસંયમરૂપસ્વાન્મોક્ષ સાધ્ય—પ્રયોજનમસ્યાસ્તીતિ
સ નિષ્ઠિતાર્થી—મોક્ષામિષ્ઠાપી વીરઃ—કર્મવિદારણનિપુણ ' આરામમ્ ' આ—
ઔર મિષ્ઠિયાર્થિયોકે સિદ્ધાન્તકો હેયકોટિમે સ્થાપિત કર વીતરાગ કે
માર્ગમે નિઃશંક થન આચાર્યકે નિર્વિષ્ટ માર્ગમે યથાર્થ પ્રવૃત્તિશીલ હોતા હૈ ।

“સર્વતઃ સર્વાસ્મના” ઇન દો પદોકા યદ્ મી અર્થ હોતા હૈ કિ
આખ્યન્તર એવં વાચ્યરૂપસે તથા દ્રવ્ય, ક્ષેત્ર, કાલ ઔર નામકો ઠેકર
વદ્ મેવાધી મુનિ વીતરાગકથિત ઉપદેશરૂપ આગમકા વિચાર કરનવાલા
હોતા હૈ । ઇસલિયે જો વસ્તુ જિસ દ્રવ્ય ક્ષેત્રાદિક કી અપેક્ષાસે હેય હોતી
હૈ વહી વસ્તુ અન્ય દ્રવ્ય ક્ષેત્રાદિકકી અપેક્ષાસે ઉપાદેય મી હો જાસી હૈ ।

ઇસ પ્રકાર ઇસ જિનજામનરૂપી લોક, તપ, મયમ, ગુરુકે ઉપદેશકે
પાલન કરને ઔર પરસમયક નિરાકરણ કરનેમે સર્વ પ્રકારસે કટિબદ્ધ
વદ્ મુનિ કચ્છપકી તરફ અપની ઇન્દ્રિયો એવં નોદ્દિય (મન) કા
સંચરણ કરતા હુઆ સમસ્ત કર્મોકા ક્ષયસ્વરૂપ—મોક્ષ—પ્રયોજનવાલા
હોતા હૈ । ઇસ પ્રયોજનકા સાધન જો સયમ હૈ ઉસમે ફિર ઇસકી નિર
વથ પ્રવૃત્તિ હોતી હૈ; કારણ કિ મુક્તિકા લાભ વિના કર્મોકે ક્ષય હુપ
નહી હોતા હૈ । કર્મોકા ક્ષય મી વિના સંયમકી આરાધના કિયે હોતા

કોટિમાં ઝણી વીતરાગના આગમ નિઃશંક બની આચાર્ય મુખ્યવે તે માર્ગમાં
તે વધાર્ય પ્રવૃત્તિશીલ બને છે.

“સર્વતઃ સર્વાસ્મના” આ બે પદોને કો પદ્ય અર્થ થાય છે કે આખ્યન્તર બને
જાણ દ્રવ્યથી તથા દ્રવ્ય, ક્ષેત્ર, કાલ અને નામને લઈ કો મેવાધી મુનિ વીતરાગે કહેલ
ઉપદેશરૂપ આગમનો વિચાર કરવાવાળો હોય છે. આ માર્ગે જે વસ્તુ જે દ્રવ્ય—ક્ષેત્ર
કિંમી અપેક્ષાથી હેય હોય છે તે જ વસ્તુ બીલ્લ દ્રવ્ય—ક્ષેત્રાદિકની અપેક્ષાથી
ઉપાદેય પદ્ય બની જાય છે.

આ પ્રકારે આ જિનજામનરૂપી લોક તપ સયમ, ગુરુના ઉપદેશનું પાલન
અને પરસમયનું નિરાકરણ કરવામાં મુર્ખ પ્રકારથી કટિબદ્ધ જેવા મુનિ કાચબાની
માફક પિતાની ઇન્દ્રિયો અને મનનું સંચરણ કરીને મુખ્યત્વે કર્મોના ક્ષયસ્વરૂપ—મોક્ષ
પ્રયોજનવાળો બને છે. આ પ્રયોજનનું સાધન જે સયમ છે તેમાં તેની નિરવથ પ્રવૃત્તિ
બને છે કારણ કે મુક્તિકા લાભ કર્મોક્ષય વિના થતો નથી. કર્મોને ક્ષય પદ્ય સયમની
આસપના વચર થતો નથી. સયમનો કાલ થવાથી જ આગમ પિતાના નિજ

સમન્તાદ્ રમયત્યાત્માન સ્વસ્વરૂપે યઃ સ આરામઃ સંયમસ્ત પરિજ્ઞાય=જ્ઞપરિજ્ઞયા જ્ઞાત્વા આસેવનપરિજ્ઞયાઽઽસેવ્ય ચ પરિવ્રજેત્=નિરવધાચરણે વિહરેત્ । હે શિષ્ય ! ત્વ સદા=સર્વસ્મિન્ કાલે આગમેન=વીતરાગોપદેશેન આચાર્યોપદેશેન ચ પરાક્રમેથાઃ= સયમે પરાક્રમ કુરુ । ‘ ઇતિ ’ ઇત્યધિકારસમાપ્તૌ ‘ વ્રવીમિ ’ ઇતિ પૂર્વવત્ ॥ સૂ૦ ૩ ॥

કથ મુહુર્મુહુરુપદિશ્યત ઇત્યાહ—‘ ઉડ્ઢ ’ ઇત્યાદિ—

મૂલમ્—ઉડ્ઢં સોયા અહો સોયા, તિરિયં સોયા વિયાહિયા ।
 ણ્ણ સોયા વિઅક્રવાયા, જેહિં સંગંતિ પાસહ ॥ સૂ૦ ૪ ॥

હાયા—ઊર્ધ્વ સ્ત્રોતાસિ અધઃ સ્ત્રોતાસિ, તિર્યક્ સ્ત્રોતાસિ વ્યાહતાનિ । એતાનિ સ્ત્રોતાસ્યપ્યાહ્યાતાનિ, ચૈઃ સન્નમિતિ પદ્યત ॥ સૂ૦ ૪ ॥

ટીકા—‘ ઊર્ધ્વ ’ મિત્યાદિ—ઊર્ધ્વમ્=ઊર્ધ્વલોકે સ્વર્ગાદૌ સ્ત્રોતાસિ=આસ્રવ- દ્વારાણિ મિથ્યાત્વાવિરત્યાદીનિ વર્તન્તે તત્રાપિ દેવસમ્બન્ધિ કામભોગસેવનાત્, નહીં હૈ । સંયમકે લાભ હોને પર હી આત્મા અપને નિજ સ્વસ્વરૂપમેં રમણ કરતા હૈ, સ્વસ્વરૂપમેં રમણતા હી તો સયમ હૈ ।

હસ પ્રકારસે વહ જ્ઞ પરિજ્ઞાસે જાન કર ઓર આસેવન પરિજ્ઞાસે ઉસકા સેવન કરતા હૈ, નિરવધ આચરણ કરનેમેં પ્રવૃત્તિઝીલ બન સદા ઉસી ઓર મગ્ન રહતા હૈ । હમ પ્રકારકે ઉપદેશસે સૂત્રકાર શિષ્યજનકો સમજાતે હુગ્ કહતે હૈં કિ હે શિષ્ય ! તુમ મી સદા—સર્વકાલ વીતરાગ પ્રભુકે ઉપદેશ યા આચાર્ય મહારાજકે ઉપદેશસે સયમ પાલનેકી ઓર પરાક્રમશાલી બનો । સૂત્રસ્થ ‘ ઇતિ ’ શબ્દ અધિકારકી સમાપ્તિકા સૂચક હૈ । ‘ વ્રવીમિ ’ પદકા વ્યાખ્યાન પહિલે કઈ સ્થાનોંપર લિખા જા ચુકા હૈ ॥ સૂ૦ ૩ ॥

બારંબાર સંયમમેં પ્રવૃત્તિ કરનેકા ઉપદેશ ક્યોં દિયા જાતા હૈ ? હસ કા સમાધાન કરને નિમિત્ત સૂત્રકાર કહતે હૈં—‘ ઉડ્ઢં સોયા ’ ઇત્યાદિ ।

સ્વરૂપમા રમણુ કરે છે સ્વસ્વરૂપમા રમણુતા એ જ સયમ છે આ પ્રકારે તે જ- પરિજ્ઞાથી જાણીને અને આસેવન પરિજ્ઞાથી તેનું સેવન કરે છે, અને નિરવધ આચરણ કરવામા પ્રવૃત્તિશીલ બની સદા તે તરફ મગ્ન રહે છે આ પ્રકારના ઉપદેશથી સૂત્રકાર શિષ્યજનને સમજાવતા કહે છે કે હે શિષ્ય ! તમે પણ સદા સર્વકાળ વીતરાગ પ્રભુના ઉપદેશ અને આચાર્ય મહારાજના ઉપદેશથી સયમ પાલનની તરફ પરાક્રમશાળી બનો સૂત્રસ્થ હિતિ શબ્દ અધિકારની સમાપ્તિનો સૂચક છે “ વ્રવીમિ ” આ પદનું વ્યાખ્યાન આગળ કેટલાક સ્થાનોમા કહેવાઈ ગયા છે (સૂ૦ ૩)

બારંબાર સયમમા પ્રવૃત્તિ કરવાનો ઉપદેશ કેમ આપવામા આવે છે આનું સમાધાન કરવા નિમિત્તે સૂત્રકાર કહે છે “ ઉડ્ઢં સોયા ” ઇત્યાદિ ।

અષ્ઠ=અષોષ્ઠાક સ્ત્રોતાંસિ=ભાસનદ્વારાણિ મયનપતિસુત્તાસવનાત્, તિર્યક્લોકેષ્ઠ
મનુષ્યસાકે સ્ત્રોતાંસિ તિર્યક્મનુષ્યમ્યન્તરવિષયમુલ્લસેવનાન્ બ્યાહતાનિ કથિતાનિ ।

ઉર્ધ્વ, અષ્ઠ, ઓર તિર્યગ્ (મધ્ય) ઇન તીનો લોકોમેં કર્મોક આને
ક અનેક દ્વાર-કારણ શાસ્ત્રોમેં પ્રતિપાદિત કિયે ગયે હેં । સામાન્યતયા-
મિધ્યાત્વ, અવિરતિ, કપાલ, પ્રમાદ ઓર યોગ યે કર્મપદ્ધતે કારણ
હોતે હેં । પ્રત્યક ગતિમેં અથવા ઇન તીન લોકમેં યેસા કોઈ મા મી સ્થાન
નહી હે કિ જહાં પર જીવ કર્મોક પદ્ધતે રહિત હો । યદ્યપિના આલ્મ
નકે નહી હોતા હે, અલ જો કારણ પદ્ધતે હેં યે હી આલ્મકે સમજના
ચાહિય । સ્વર્ગ આદિ મેં ઇન કારણોકે અતિરિક્ત ની કર્માલ્મકે ઓર
ની કઈ કારણ હેં । યદ્યપિ ઇન કારણકલાપોકા સમાવદા પૂર્વોક્ત કારણ-
કલાપોમેં હી હો જાતા હે, ફિર ની યહાં પર જો વ્યગતિ મયંધી વિષય
સુલ્લોકા સેવન ડનકે આલ્મકા કારણ કલલાયા ગયા હે વહ ણિધ્ય
જનોકો વિદોષ રીતિસે સમજાનક લિય હી કહા ગયા હે । ઇસી પ્રકાર
અષોલોક પદ્ધ તિર્યગ્લોકમેં ની યહી વાત સમજના ચાહિયે । અષોલોક
મેં નરકગતિમેં નપુંસકલિંગકા ઉદય હોનેસે વહાં પર જીવો-નાર
કિયોકો વૈષયિક સુલ્લોકા આસેવનઅન્ય કર્મોકા આલ્મકાકેસે હો મકતા
હે ? યહ આદાકા યદ્યપિ હો સકતી હે, તો મી ઇસ આદાકાકા સમાધાન
યહી હે કિ નપુંસક વેદકે ઉદયમેં વાહ્યરૂપ મેં વૈષયિક સુલ્લો-રતિસમ્બંધી

ઉર્ધ્વ, અષ્ઠ અને તિર્યગ્ આ ત્રણે લોકમા કર્મોને આવવાના અનેક દ્વાર
-કારણ શાસ્ત્રમા જણાવેલ છે । સામાન્ય રીતે-મિધ્યાત્વ, અવિરતિ, કપાલ
પ્રમાદ અને યોગ આ કર્મોનંધના કારણ બને છે । પ્રત્યેક ગતિમાં અથવા આ ત્રણ
લોકમાં જોતું કાંઈ પણ સ્થાન નથી કે જ્યાં છવ્ઠ કર્મોના બંધથી રક્તિ હોય. બંધ
આશ્રય સિવા બનતો નથી, માટે જે કારણ બંધ માટે છે તે જ કારણ આશ્રયનું
સમજવું. સ્વન આદિમાં આ કારણોમાં અતિરિક્ત પણ કર્મોનંધના બીજા પણ કેટ
લાંક કારણો છે; અથવા આ કારણ-કલાપોના સમાવેશ પૂર્વેક્ત કારણ-કલાપોમાં
જ થઈ જાય છે છતાં પણ અદિ જે દેવગતિસંબંધી વિષયમુખોનાં સેવન,
જોના આશ્રયનું કારણ બતાવેલ છે તે શિશ્યજનોને વિશેષરીતિમાં સમજાવવા
માટે જ કહેલ છે આ જ પ્રકારે બધીલોક અને તિર્યગ્લોકમાં પણ આ વાત
મુખજવી જોઈએ. બધીલોકમાં નરક ગતિમાં નપુંસક લિંગના ઉદય હોવાથી તે
જ્યાંએ છવ્ઠ-નારકલિંગના વૈષયિક સુખાંતુ આસેવનજન્ય કર્મોના આશ્રય કઈ રીતે
થઈ શકે ? આ આદાકા જો કે થઈ શકે છે તો પણ આ આદાકાનું સમા
ધાન જો છે કે નપુંસક વેદના ઉદયમા વાહ્યરૂપમા વૈષયિક સુખો-રતિ સંબંધી

યદ્વા-પ્રજ્ઞાપકાપેક્ષયા ઊર્ધ્વં સ્રોતાંસિ-ગિરિશિખરપ્રાગ્ભારનિતમ્બપ્રપાતોદકા-
દીનિ, અધોઽપિ-ગર્તનદીતટકન્દરાદીનિ, તિર્યગપિ ઉદ્યાનપરિપત્પ્રાસાદાદીનિ
સ્રોતાસિ જન્તૂના વિપયોપભોગાસ્પદાનિ વ્યાહતાનિ=વ્યાખ્યાતાનિ । एतानि=
લોકત્રયવર્તીનિ કર્માસ્રવદ્વારાણિ નદીસ્રોતાસીવ સ્રોતાસિ આખ્યાતાનિ=કથિતાનિ,
આનદોકા અનુભવ ભલે હી ન હો, પરન્તુ ઇસ વેદકે ઉદયમેં વહુત ભયકર
માનસિક કામપીડા હોતી હૈ, ઉસીસે જીવ કર્મોંકા આસ્રવ કિયા કરતા
હૈ, તથા મિથ્યાત્વ આદિ કારણ તો વહાં સ્પષ્ટ હૈ હી ।

દૂસરે-ઇસ અધોલોકમેં ભવનપતિયોંકા નિવાસસ્થાન હૈ, વહાં વિષ-
યોંકા સેવન ભવનપતિ આદિ કિયા કરતે હૈ । ઇસ અપેક્ષાસે અધોલોક
મી કર્માસ્રવકે કારણસે રહિત નહીં હૈ । તિર્યગ્લોક-મધ્યલોકમે મી યહી
અવસ્થા હૈ, યહાં પર મી મનુષ્યગતિ સંવધી, તિર્યગ્ગતિ સમ્બન્ધી ઓર
વ્યન્તરદેવ સમ્બન્ધી વિષય સુખોંકા સેવન કર્મોંકે આસ્રવકા કારણ
સ્પષ્ટ રૂપ હૈ ।

અથવા પ્રજ્ઞાપકકી અપેક્ષાસે-ઉર્ધ્વસ્રોત, ગિરિશિખર આદિ સ્થિત
પ્રપાતજલ હૈ, અધઃસ્રોત-ગહ્વા, નદીતટ, કન્દરા આદિ હૈ, તિર્યક્સ્રોત-
ઉદ્યાન પરિપત્ પ્રાસાદ આદિ હૈ । યે સર્વ વૈષયિક સુખોંકે સ્થાનમ્ભૂત હૈ,
જીવ ઇન સ્થાનોમેં વૈષયિક સુખ સેવન કરતે હૈ તો જિસ પ્રકાર નદી

આન હોનો અનુભવ ભલે ન હોય પરંતુ આ વેદના ઉદયમા ખૂબ જ ભય કર માનસિક
કામપીડા થાય છે આથી જીવ કર્મોંનો આસ્રવ કર્યા કરે છે તથા મિથ્યાત્વ
આદિ કારણ તો ત્યા સ્પષ્ટ છે જ

ખાંજી આ અધોલોકમા ભવનપતિયોંનુ નિવાસસ્થાન છે ત્યા વિષયોંનુ
સેવન ભવનપતિ આદિ કરે છે, આ અપેક્ષાથી અધોલોક પણ કર્માસ્રવના કારણથી
રહિત નથી તિર્યગ્લોક-મધ્યલોકમા પણ એવી જ અવસ્થા છે ત્યા પણ મનુષ્ય
ગતિ સંવધી, તિર્યગ્ગતિ સંવધી અને વ્યન્તરદેવ સંવધી વિષયસુખોના સેવન
કર્મોના આશ્રવનુ કારણ સ્પષ્ટ રૂપથી છે

અને પ્રજ્ઞાપકની અપેક્ષાથી-ઉર્ધ્વસ્રોત-ગિરિશિખર આદિ સ્થિત પ્રપાતજળ
આદિ છે, અધઃસ્રોત-ખાડો, નદીતટ, કન્દરા આદિ છે, અને તિર્યક્સ્રોત-
ઉદ્યાન, પરિપત્, પ્રાસાદ આદિ છે આ સઘળા વૈષયિક સુખોના સ્થાન છે
જીવ આ સ્થાનોમા વૈષયિક સુખ સેવન કરે છે જે પ્રકારે નહી આદિ જગ્યા

પાપાપાદાનકારભેદિપિપક્ષમોક્ષનૈસ્તૈર્થ પૂર્ણૈતે સર્ગ-પ્રભુતાનાં સમાસર્તિક કર્મા
મિષ્ટાં વા પશ્યત-પૂય પ્રેક્ષ્યમ્' इति हेतार्यस्मादमिष्यद्वात् सोतांसि मयन्ति तस्मा
दागमोक्तसंयममार्गे संपत्तः=सर्वात्मना पराक्रमया इति पूर्वेण सम्बन्धः ॥ सू० ४ ॥

આદિ જસાદાયોમેં બલકે આનેકે કારણમૂલ જ્યોત જુમા કરતે હૈં उसी प्रकार ये सब श्री कर्मोंके आनेके ज्योत-द्वार हैं ।

इन तीन प्रकारके द्वारोंसे कि जिनसे उन २ लोकोंमें रहे हुए जीवों को नवीन कर्मोंका प्रतिसमय आस्रव होता रहता है—इस जीवकी आसक्ति होती रहती है, अथवा इन तीन प्रकारके कर्मोंके आस्रवके कारणोंद्वारा आगत कर्मोंसे इस जीवका सम्पर्क होता रहता है; इसलिये शिष्योंको समझाते हुए सूत्रकार कहते हैं कि जब यह बात स्पष्ट है तो हे शिष्य! तुम ऐसा प्रयत्न करो कि जिससे तुम्हारा इन स्थानोंसे सम्पर्क न हो । इनसे संपर्क छुड़ानेका एक मात्र कारण आगममें प्रतिपादित संयममार्ग का आराधन ही है; इसलिये उस संयमकी आराधना करनेके लिये तुम सदा सर्वप्रकारसे कष्टिष्ठ रहो ।

‘माधार्थ—‘ वारवार संयममें प्रवृत्ति करानेका उपदेश क्यों दिया जाता है ? ’ इस प्रकारके प्रश्नका समाधान इस सूत्रद्वारा किया गया है और वह संक्षिप्तमें यही क्लृप्ताया गया है कि संयम ही कर्मोंके आस्रव का निरोधक है, अतः उसमें ही प्रवृत्ति करनी चाहिये; इसीलिये ही

શયેભાં પાણીને આવવાના કારણમૂલ ઝરણ થયા કરે ॥ જાળી રીતે જે સમગ્ર પણી ધર્મને આવવાનાં દ્વાર છે

આવા ત્રણ પ્રકારનાં દ્વારોથી કે જેનાથી ત તે લોકોમાં સ્ત્રેલા છવેને નવીન કર્મોને પ્રતિસમય આસ્રવ થતો સ્ત્રે છે—તે છવની અસક્તિ થવી સ્ત્રે છે, અથવા આ ત્રણ પ્રકારનાં કર્મોના આસ્રવના કારણદ્વારા જાનવ કર્મોથી આ છવને સંબંધ થઈ શક્યા છે આ કારણે શિષ્યોને તમબળતાં સૂત્રકાર સ્ત્રે છે કે જ્યારે આ વાત સ્પષ્ટ છે તો કે શિષ્ય! તમે જોવો પ્રયત્ન કરો કે તેથી તમારા આવા સ્થાનોમાં સંપર્ક ન થાય, જાનાથી સંપર્ક બેઠાવાનું એક માત્ર કારણ આગમમાં પ્રતિપાદિત-સંયમનું આરાધન જ છે આ માટે સંયમની આરાધના કરવા સાફ તમે સદા સર્વ પ્રકારથી કટિબદ્ધ રહો.

આવાથ — વારવાર સંયમમાં પ્રવૃત્તિ કરાવવાનો ઉપદેશ કેમ આપવામાં આવે છે ? આ પ્રકારના પ્રશ્નનું પ્રમાણન આ સૂત્રદ્વારા કરેલ છે. જાને ત નક્ષિત્તમાં જે જ અસ્રવવામાં આવ્યું છે કે સંયમ જ કર્મોના આસ્રવને નિરો

અન્યમપ્યુપદેશમાહ—‘ આવટ્ટ ’ ઇત્યાદિ—

મૂલમ્—આવટ્ટં તુ પેહાણે એતથ વિરમિજ્જ વેયવી, વિણંતુ સોયં નિક્ખમ્મ એસમહં અકમ્મા જાણં પાસં પડિલેહાણે નાવ-
કંઘં ઇહ આગં ગં પગિન્નાય અચ્ચેં જાંમરણસ્સ વટ્ટમગ્ગં
વક્ખાયરણે ॥ સૂ. ૫ ॥

છાયા—આવર્તે તુ પ્રેક્ષ્યાત્ર વિરમેદ્વેદવિત્, વિનેતુ સ્તોતો નિક્કમ્ય એપ મહાન
અકર્મા જાનાતિ પશ્યતિ પ્રત્યુપેક્ષ્ય નાવકાક્ષતીઠાઽઽગતિં ગતિં પરિજ્ઞાય અત્યેતિ
જાતિમરણસ્ય વર્તમાર્ગં ત્ર્યાહ્યાતરતઃ ॥ મ. ૫ ॥

ટીકા—‘ આવર્ત ’ મિત્યાદિ—અત્ર=ઇહ જિનશાસને લોકે વા, વેદવિત્=
વીતરાગપ્રણીતાઽઽગમજ્ઞઃ, આવર્ત=મિથ્યાત્વાવિરત્યાદિરૂપ ભાવાવર્ત, તુ-શબ્દેન

અસમે પ્રવૃત્તિ કરનેકા ચાર વાર ઉપદેશ દિયા જાતા હૈ । લોકમેં એસા
કોઈ સા ભી સ્થાન નહીં હૈ કિ જહાં રહ કર જીવ કર્મોંકે આસ્રવસે
રહિત હો સકે । ઉર્ધ્વલોક, મધ્યલોક ઓર અધોલોક યે સવ હી સ્થાન
કર્મોંકે આસ્રવકે કારણોંસે ભરે પડે હૈ । અતઃ એક સયમરૂપ હી માર્ગ એસા હૈ
જો કર્મોંકે આસ્રવકો રોકતા હૈ । ઇસલિયે ડસીમેં પ્રવૃત્તિ કરની ચાહિયે ।

ઇસી વિષય સે લગતી હુઈ ઓર ભી વાત સૂત્રકાર કહતે હૈ—
“ આવટ્ટ ” ઇત્યાદિ ।

જો મનુષ્ય ઇસ લોકમે અથવા ઇસ પર્યાય મેં વીતરાગપ્રણીત આગમ
કા જ્ઞાના હૈ ડસકા કર્તવ્ય હૈ કિ વહ મિથ્યાત્વ અવિરતિ આદિરૂપ જો
ભાવ આવર્તે હૈ ડનસે, તથા “ તુ ” ઇસ શબ્દસે ગૃહીત શબ્દાદિક વિષ-

યક છે માટે તેમા જ પ્રવૃત્તિ કરવી જોઈએ આ માટે જ એવી પ્રવૃત્તિ કરવાનો
ઉપદેશ વારવાર આપવામા આવે છે લોકમા એવુ કોઈ પણ સ્થાન નથી કે
ન્યા રહીને જીવ કર્મોના આસ્રવથી રહિત બની શકે ઉર્ધ્વલોક, મધ્યલોક અને
અધોલોકમા સઘળા સ્થાન કર્મોના આશ્રવના કારણથી ભરેલા છે આથી એક
સયમરૂપ માર્ગ એવો છે જે કર્મોના આશ્રવને રોકે છે આ માટે એમા પ્રવૃત્તિ
કરવી જોઈએ

આ વિષયને લગતી બીજી એક વાત પણ સૂત્રકાર કહે છે “ આવટ્ટ ” ઇત્યાદિ
જે મનુષ્ય આ લોકમા અથવા આ પર્યાયમા વીતરાગ પ્રણીત આગમનો
જ્ઞાતા છે, તેનુ કર્તવ્ય છે કે તે મિથ્યાત્વ અવિરતિ આદિરૂપ જે ભાવ આવર્ત છે
તેનાથી, તથા “ તુ ” આ શબ્દથી ગૃહીત શબ્દાદિક વિષયથી આવર્તોથી, અથવા

અર્થાવિષયપાપર્ત્ત કર્મપાપર્ત્ત વા પ્રેક્ષ્ય=પર્યાલોચ્ય વિરમત્=આસપ્તધારેભ્યો
નિર્વર્તેત, તેવાં પ્રતિરોધે કુર્યાદિત્યર્થઃ । કિં તેન પ્રતિરોધેનેત્યાહ-‘ વિનેતુ ’ મિત્યાદિ ।
યઃ સ્તોતઃ=કર્મણામાસ્રવદ્વારં વિનેતુમ્=અપનેતુ=પૂરીકર્તુ નિશ્ક્રમ્ય=પ્રવ્રમ્ય યપા=અર્પ
પ્રત્યક્ષમૂતા, મહાન=ઉદારચરિતા મહાપુરુષઃ ‘ અકર્મા ’ ન વિધતે કર્મ ધાતિસ્મ્યં
યસ્ય સોઽકર્મા સ્તીણપાતિકર્મા અતઃ એવ જાનાતિ સામાન્યરૂપેણ સ્તતઃ પદ્યતિ=

ચરુપી આપસૌસે, અથવા કર્મપાપરૂપ આપસૌસે વિચારપૂર્વક અવશ્ય ૨
ચિરસ્ત યન । સંસારમેં મિથ્યાત્વ અચિરતિ આવિ યે સય કર્મોં કે આસ્રવ
કે કારણ પત્તસાયે ગયે હેં । इनके द्वारा ही जीव नवीन २ कर्मोंका
आस्रव और बंध किया करता है । इन आस्रवों के कारणोंको रोकनेके
लिये सबसे मुख्य कर्तव्य है कि बीतरागप्रणीत आगमका ज्ञाता यनै ।
इस प्रकारक ज्ञातृत्वभावसे जीव यह भलीभांति समझ सकता है कि
इस संसारमें रहानेका अथवा दार्ष्टादिक विषयकपापोंमें फंसानेका प्रधान
कारण मिथ्यात्व और अचिरति परिणाम हैं । इस प्रकार जब वह इन
आपसौका प्रतिरोध करनेका दृढ़संकल्पी हो जाता है तब वह नियमसे
इन आपसौकी निरोधिका जिनबीक्षाको अंगीकार कर अपने मार्गको
प्रशस्त बनाता हुआ आगे २ के गुणस्थानों पर बढ़ कर उदारचरित
महत्त्मा पुरुषोंकी अणिमें परिगणित होने लगता है । एक समय ऐसा
भी आता है कि वह परिणामोंकी अत्यन्त निर्मलताके प्रभावसे घातिया
कर्मोंका विनाशक यन अनन्त वर्धन और अनन्त ज्ञानका धारक केवल-
-

કર્મજાહેરૂપી આપર્તોથી વિચારપૂર્વક અવશ્ય અવશ્ય વિરમત બને. સંસારમા મિથ્યાત્વ
અચિરતિ આદિ કે સજ્જાં કર્મોના આસ્રવના કારણ બતાવેલ છે એના દ્વારા જ
છવ નવીન નવીન કર્મોના આસ્રવ બને બધ કર્મો કરે છે આ આસ્રવોના
કારણોને શિક્ષા માટે પહેલું જો કર્તવ્ય છે કે વીતરાગપ્રણીત આગમને જાણ
કર બને. આ પ્રકારના જ્ઞાનના આવશી છવ સારી પેઠે જો સમજી શકે છે
કે આ સંસારમા અશમાનવાનુ અને શબ્દાદિક વિષય કાષાયમા દેશ્યવવાનુ પ્રકરન
કારણ મિથ્યાત્વ અને અચિરતિ પ્રવિણામ છે આ પ્રકારે અથારે જો અથવા
આવરજોના પ્રતિશબ્દ કરવાનો દૃઢસંકલ્પો બને છે ત્યારે તે નિશ્ચયથી જો
આવરજોના નિશાધક છનવીશાનો અંગીકાર કરી પાતાનો માર્ગ મોકળો બનાવી
આમળ ને અમળ વધવા શુભસ્થાનો પર ચઢી ઉદારચરિત મહાત્મા પુરુષોની
એકીમા પરિઅલ્પિત બને છે એક સમય એવો પણ આવે છે કે પરિણામોની
અત્યંત નિર્મળતાના પ્રભાવથી તે ધાતીયા કર્મોના વિનાશક બની અનન્ત જ્ઞાન

વિશેષરૂપેનાવબુદ્ધ્યતે, સામાન્યજ્ઞાનપૂર્વકમેવ વિશેષજ્ઞાનં જાયતે, ન હિ સામાન્યરૂપેના-
જ્ઞાતો ઘટો નીલાદિઘટસ્વરૂપં યુક્તિસહસ્રેણાપિ વોધયિતું શક્નોતિ । એતેન ચોપ-
યોગક્રમો દર્શિતઃ । સ ઇષોઽકર્મા કિં વિદધ્યાદિત્યાહ-‘પ્રત્યુપેક્ષ્યે’ત્યાદિ-સ
વિદિતપરમાર્થઃ સમ્યગ્ વિચાર્ય નાવકાક્ષતિ=વીતરાગત્વાન્ન કિમપીચ્છતિ ।

પરમાત્માકે પદસે વિભૂષિત હો જાતા હૈ । સૂત્રસ્થ-“ જાનાતિ પદ્યતિ ”
યે દો ક્રિયાપદ ઇસ વાતકી સૂચનાપરક હૈં કિ પરમાત્મા પહિલે, પદાર્થોંકા
સામાન્યરૂપસે અવલોકન કરતે હૈં પશ્ચાત્ ઉન્હોં પદાર્થોં કો વિશેષરૂપસે
જાનતે હૈં । યહ માની હુઈ વાત હૈ કિ સામાન્યજ્ઞાનપૂર્વક હી વિશેષ જ્ઞાન
હુઆ કરતા હૈ । એસા નહીં હૈ કિ સામાન્ય જ્ઞાનકે અભાવમેં વિશેષ જ્ઞાન
હો જાય । જબ તક પદાર્થોંકા સામાન્ય જ્ઞાન નહીં હોગા તબ તક વિશેષ
જ્ઞાન નહીં હો સકતા, ઘટ જબ તક સામાન્ય રૂપસે અજ્ઞાત બના રહેગા
તબ તક ઉસકા નીલાદિ ઘટ ઇસ પ્રકારકે વિશેષરૂપ સે જ્ઞાન હો નહીં
સકતા । એસી કોઈં બી યુક્તિ નહીં હૈં જો સામાન્યરૂપસે અજ્ઞાત પદાર્થકા
વિશેષરૂપસે બી જ્ઞાન હો જાનેકી સાધિકા હો । ઇસ કથનસે પરમાત્માકે
બી દર્શનઉપયોગ ઓર જ્ઞાનઉપયોગ યે દોનોં ક્રમિક હૈં યહ વાત પ્રદ-
ર્શિત હોતી હૈ । પરમાત્મા વિદિતપરમાર્થ હોને સે તથા કૃતકૃત્ય હોનેસે
નિસ્પૃહ પ્રવૃત્તિશાલી રહતે હૈં । ઉન્કે કિસીં બી વસ્તુકી ચાહના નહીં હોતી ।
ચાહના-ઈચ્છા યહ મોહકા એક ભેદ હૈ, મોહકે સર્વથા અભાવ હો જાનેસે

અને અનન્ત દર્શનના ધારક કેવલી પરમાત્માના પદ્ધતી વિભૂષિત બની જાય છે
સૂત્રસ્થ “ જાનાતિ પદ્યતિ ” આ બે ક્રિયાપદ આ વાતની સૂચના કરે છે
કે પરમાત્મા પ્રથમ પદાર્થોને સામાન્ય રૂપથી અવલોકન કરે છે પછી તે પદાર્થોને
વિશેષ રૂપથી જાણે છે આ માનેલી વાત છે કે સામાન્યજ્ઞાનપૂર્વક જ
વિશેષજ્ઞાન થતુ રહે છે એમ નથી કે સામાન્ય જ્ઞાનના અભાવમા વિશેષ જ્ઞાન
પ્રાપ્ત થાય જ્યાં સુધી પદાર્થોનું સામાન્ય જ્ઞાન થશે નહીં ત્યાં સુધી વિશેષ
જ્ઞાન થઈ શકવાનુ નથી ઘટ જ્યાં સુધી સામાન્યરૂપથી અજ્ઞાત બની રહેશે
ત્યાં સુધી નીલ આદિ ઘટ આ પ્રકારનું વિશેષ રૂપનું જ્ઞાન થઈ શકતુ નથી
એવી કોઈ પણ યુક્તિ નથી જે સામાન્યરૂપથી અજ્ઞાત પદાર્થના વિશેષરૂપથી
પણ જ્ઞાન થઈ જવામા સાધક બને આ કથનથી પરમાત્માના દર્શનનો ઉપયોગ
અને જ્ઞાનનો ઉપયોગ આ બન્ને ક્રમિક છે આ વાત પ્રદર્શિત થાય છે પરમાત્મા
વિદિતપરમાર્થ થવાથી તથા કૃતકૃત્ય થવાથી નિસ્પૃહ-પ્રવૃત્તિશાળી રહે છે એને
કોઈ પણ વસ્તુની ચાહના થતી નથી, ચાહના-ઈચ્છા એ મોહનો એક ભેદ છે.

અપિ ચ સ ઇવ 'વ્યાસ્યાતરતઃ' ચિન્નિવિષમકારેણ પ્રધાનપુરુષાર્પત્વેનાસ્થ
મૂઞ્ઞાર્થતદુભયરથેન તથા સંયમાચરણેન ચ આસ્યાતઃ=કથિતાં વ્યામ્યાતો મોક્ષસ્તપ્ર
રતઃ=ત્વધિગમ્યતત્પર, આસ્યન્તિતૈકાન્તિકામ્યાવાધયિત્વસુસ્થાપિક્ષ્ણાનર્થનાદિ
યુક્તિત્વં, ૧૬ મનુષ્યલાકે સ્થિત સન્ મન્તૂનામ્ આગતિં ચતુર્વિધાં ગતિં પચ-
વિધા તત્માપોગ્યક્રમ ના પરિશ્ચાય-દ્વિવિધપરિશ્ચયાઙ્ઙાત્વા પરિહૃત્ય ચ 'આતિમરણસ્ય'
દૃષ્ટાકા મી વહાં પર અમાષ હો જાતા હૈ । અત વીતરાગ હોને સે લે
દૃષ્ટાસે સર્વથા પરે હી રહા કરતે હૈ । યે વ્યાસ્યાતરત હોતે હૈ । વ્યાસ્યાત
શબ્દકા અર્થ મોક્ષ હૈ । કયોં કિ ઘડી પ્રધાન પુરુષાર્પરૂપસે કહા ગયા હૈ ।
ઉસી મોક્ષ પુરુષાર્પકો પ્રતિપાદન કરને ઇવ ઉસકી પ્રાપ્તિકે નિમિત્ત હી
પ્રમુખે સૂત્ર, અર્થ ઔર મૂઞ્ઞાર્થ હસ રૂપસે આગમકી પ્રરૂપણા કી હૈ, તથા
હસીકે નિમિત્ત તપ ઔર સંયમકે આચરણ કરનેકા ઉપદેશ હૈ । ઉસમેં
યે રત રહતે હૈ ।

માર્ગ—કર્મોંકે સર્વથા અમાષસે હોનેવાલી, પરમશુદ્ધ દશાકા
નામ હી મુક્તિ હૈ ઔર યહ અવસ્થા વાપારહિતસુસ્થવિશિષ્ટ હૈ, ક્ષાયિક
જ્ઞાન ઔર ક્ષાયિક વર્ણનકા સવા હસમેં પ્રકાશ રહતા હૈ, યેસી મુક્ત
અવસ્થાસે પરમાત્મા મુક્ત હોતે હૈ । પરમાત્મદશા હી મુક્તિદશા હૈ, ઉનસે
મિત્ત વહ અવસ્થા નહીં હૈ યે પરમાત્મા જીવન્મુક્ત અવસ્થામેં સંસારમેં
રહતે હુપ મી સમસ્ત સસારી જીવોંકી ચતુર્વિધ આગતિ ઔર પાંચ પ્રકારકી
ગતિ અથવા ઉસકે ઉપાર્જન યોગ્ય કર્મોંકો દ્વિવિધ પરિજ્ઞાસે જાનકર ઔર

મોક્ષને સર્વથા અમાષ થવાથી ઉત્પન્નને પણ ત્યાં અમાષ થઈ જાય છે આથી
વીતરાગ હોવાથી તે ઉત્પન્નથી સર્વથા દૂર થ રહ્યા કરે છે એ વ્યાસ્યાતરત (મોક્ષમાર્ગ)
બને છે વ્યાસ્યાત શબ્દનો અર્થ મોક્ષ છે કેમ કે એ પ્રધાન-પુરુષાર્થ-રૂપથી
કહેવાયેલ છે એ મોક્ષ પુરુષાર્થને પ્રતિપાદન કરવા અને તેની પ્રાપ્તિ નિમિત્ત
પ્રમુખે સૂત્ર, અર્થ અને સત્ત્વ એ રૂપથી આગમની પ્રરૂપણા કરેલ છે અને આને
નિમિત્ત તપ અને સ્વચ્છમ્ આચરણ કરવાનો ઉપદેશ છે આમાં એ રત રહે ॥

માર્ગ—કર્મોંના સર્વથા અમાષથી થવાવાળી પરમશુદ્ધ દશાનું નામ જ
મુક્તિ છે, અને જા અવસ્થા વાપારહિત-સુખ-વિશિષ્ટ છે, ક્ષાયિક જ્ઞાન અને
ક્ષાયિક દર્શનનો સહ આમાં પ્રકાશ રહે છે પરમાત્મા આથી મુક્ત અવસ્થાથી મુક્ત
બને છે પરમાત્મદશા જ મુક્તવસ્થા છે કોનાથી ક્ષિપ્ત એ અવસ્થા નથી, જ
પરમાત્મા હવ મુક્ત અવસ્થામાં સંસારમાં રહેવા છતાં પણ સમસ્ત સસારી
જીવોંની ચતુર્વિધ આગતિ અને પાંચ પ્રકારની ગતિ અથવા કોના ઉપાર્જનનો અ

જાતિશ્ચ=જન્મ ચ મરણ ચ-જાતિમરણ તસ્ય, વર્તમાર્ગે ગત્યાગતિરૂપપરિભ્રમણમાર્ગે વિકલ્પિતસંસારેષ્ટવિયોગાનિષ્ટસયોગ-દારિદ્ર્ય - દૌર્ભાગ્ય-શારીર-માનસાદ્યનેક-દુઃસ્વાત્મક સસારસ્રોતસ્તન્નિદાન કર્મ વા અત્યેતિ=અતિક્રામતિ ઉલ્હટ્વયતીત્યર્થઃ, વાહ્મનસયોરવિષયો લોકાગ્રે શાશ્વતઃ સિદ્ધો ભવતીતિ ભાવઃ ॥ સૂ. ૫ ॥

તસ્ય સ્વરૂપં દર્શયતિ-‘ સન્વે ’ ઇત્યાદિ—

અહીં છોડકર હસ સંસારસ્રોતસે કિ જો જન્મ ઓર મરણકા સ્થાન હૈ, તથા જિસમેં ઇષ્ટવિયોગ ઓર અનિષ્ટ યોગ વના રહતા હૈ, દરિદ્રતાકા જહાં નિવાસ રહતા હૈ, દુર્ભાગ્ય પાપ જહાં પર અપના પ્રભાવ જમાવે હુવે પડા હૈ, શારીરિક ંથ માનસિક આદિ દુઃસ્વેંકી પરમ્પરા હસ જીવનકો જહાં પીસતી રહતી હૈ, હન સર્વ સે પરે હો જાતે હૈં. જવ તક અઘાતિયા કર્મેંકા ઉદય અનેકે રહતા હૈ તવ તક યદ્યપિ વે સસારમેં રહતે હૈં; પરન્તુ ફિર ખી વે ઉસ સંસારકી પરપરાવર્ધક કર્મેંકે ઉપાર્જન સે રહિત હી રહતે હૈં. ઘાતિયા કર્મેંકે સર્વથા પ્રક્ષય હો જાને સે વે ફિર સે સંસારકી પ્રાપ્તિ કરાને વાલે કર્મેંકે ચક્કરમેં નહીં પડતે હૈં. અઘાતિયા કર્મેંકે વિનિષ્ટ હોતે હી મુક્તિસ્થાનમેં જા વિરાજતે હૈં. યહ સ્થાન લોકકે અગ્રભાગમેં સ્થિત હૈ ઉસસે આગે ધર્માસ્કાય કા અભાવ હોને સે વે વહીંપર ઠહર જાતે હૈં. હસી અવસ્થાકા નામ સિદ્ધ દશા હૈ. યહ સંસારી જીવોંકે વચન કે અગોચર ઓર મનસે ખી વિચારમેં નહીં આ સકે એસી હૈ ॥ સૂ. ૫ ॥

હસી અવસ્થાકે સ્વરૂપકો સૂત્રકાર કહતે હૈં—“ સન્વે સરા ” ઇત્યાદિ ।

કર્મેને વિવિધ પરિણાથી બાધી અને એને પ્રત્યાખ્યાન પરિણાથી છોડી આ સસાર-સ્રોતથી કે જે જન્મ અને મરણનું સ્થાન છે, અને જેમા ઇષ્ટવિયોગ અને અનિષ્ટ સયોગ થતો રહે છે, દરિદ્રતાનો ન્યા નિવાસ રહે છે, દુર્ભાગ્ય પાપ ન્યા પોતાનો પ્રભાવ જમાવી બેઠા છે, શારીરિક અને માનસિક આદિ દુઃખોની પરપરા ન્યા આ જીવનને પીસતી રહે છે, આ સર્વથી દૂર થઈ બચે છે ન્યા સુધી અઘાતિયા કર્મનો ઉદય એને રહે છે ત્યા સુધી કદાચ તે સસારમા રહે છતાં પણ તે સસારના પર-પરાવર્ધક કર્મોના ઉપાર્જનથી રહિત જ રહે છે ઘાતિયા કર્મોના સર્વથા ક્ષય થઈ જવાથી એ ફરી સસારની પ્રાપ્તિ કરાવવાવાળા કર્મોના ચક્કરમા પડતા નથી અઘાતિયા કર્મોના વિનિષ્ટ થવાથી મુક્તિ સ્થાનમા જઈ વિરાજમાન બને છે આ સ્થાન લોકના અગ્ર ભાગમા સ્થિત છે એથી આગળ ધર્માસ્તિકાયનો અભાવ હોવાથી તે ત્યા દોકાઈ બચે છે આ અવસ્થાનું નામ સિદ્ધદશા છે આ સસારી જીવોના વચનથી અગોચર અને મનથી પણ વિચારમા ન આવી શકે એવી છે (સૂ. ૫) આ અવસ્થાના સ્વરૂપને સૂત્રકાર કહે છે—“ સન્વે સરા ” ઇત્યાદિ ।

मूष्म—सर्वे सरा नियहति, तर्क्ता तस्य न विज्जह, मर्द्द
तस्य न गाहिया, ओष अप्पइहाणस्स खेयस्से । सेन दीहे, न इस्स,
न वहे, न तंसे, न चउरसे, न पडिमडले, न किण्हे, न नीले, न लोहिण,
न हालिहे, न सुक्खिहे, न सुरभिगधे, न दुरभिगधे, न तिप्पे, न
कहुण, न कसाण, न अणिले, न कण्णखडे, न मउण, न गरुण, न
लहुण, न सीण, न उण्हे, न निस्से, न लुक्खे, न काऊ, न रुहे, न सगे,
न इत्थी, न पुरिसे, न अन्नहा, परिस्से, सस्से, उवमा न विज्जण,
अरुवी सत्ता । अपयस्स पय नत्थि ॥ सू० ६॥

छाया—सर्वे स्वरा निषर्तन्ते, तर्को यत्र न विद्यते, मतिस्तत्र न ग्राहिका
भोषा अप्रतिष्ठानस्य खेदः ॥ स न दीर्घो, न इत्थो, न वृद्धो, न अप्सो, न चतुरस्रो,
न परिमण्डला, न कुण्डो, न नीला, न लोहिता, न शरिद्रो, न धुक्को, न सुरभिगन्धो,
न दुरभिगन्धो, न तिक्तो, न कडुका, न कपापो, नान्धो, न मधुरो, न कर्कशा, न
युद्धा, न युद्धा, न छद्मा, न शीतो, नोष्णो न स्निग्धो, न रसा, न कापोठा, न
रुद्धो, न सङ्गो, न स्त्री, न पुष्पा, नान्यथा, परिज्ञा, संज्ञा, उपमा न विद्यते, अरुपिणी
सत्ता । अपयस्य पयं नास्ति ॥ सू० ६ ॥

टीका—‘सर्वे’ इत्यादि—यत्र सिद्धावस्थायां सर्वे—निरवस्थायाः स्वराः—ध्वनयो
निरवर्तन्ते—मतिपाद्य प्रतिपाद्यकसम्बन्धा न घटन्ते, शब्दादिस्वियामिधय सति बाध्य-
बाधकमावसम्बन्धविषयस्यावश्यम्भावात् । न च तस्यामवस्थायां शब्दादयः प्रवृत्ति-
निमित्ततत्त्वपक्षमन्त इत्याशयः । न तत्र सर्वस्यावसरोऽपीत्याह—‘तर्क’ इत्यादि—

सिद्धदशाका वर्णन करते हुए सूत्रकार कहते हैं कि इस सिद्ध दशामें
समस्त स्वर—ध्वनियां प्रतिपाद्यप्रतिपाद्यरूप संवधसे पर रहती हैं ।
अर्थात्—इस सिद्ध अवस्थाका पूर्ण—स्वरूप—वर्णन किसी भी शब्दद्वारा
नहीं हो सकता है । जो पदार्थ शब्दादिक का विषयभूत हुआ करता है
वही पर बाध्यबाधकभाव संवधकी घटना घटित होती है, सिद्धदशा
जो शब्दके अगोचर है उसमें फिर बाध्यबाधकभाव संवध घटित भी

सिद्धदशानु बन्धन करता सूत्रकार कहते हैं कि जो सिद्धदशामें समस्त स्वरो-
ध्वनीका प्रतिपाद्य प्रतिपाद्यरूप संवध नहीं रहने के कारण—जो सिद्ध अवस्थाना पूर्ण
स्वरूपानु वर्णन के लिये शब्दकोशका यह शक्ति नहीं, वे पदार्थ शब्दादिक का विषयभूत
व्यापक है जो तत्त्वावस्थाका—भाव—संवध नहीं घटित होता है सिद्धदशा में
शब्दकी अवस्था है जो भाषा पदार्थ बाध्यबाधकभाव संवध घटित पक्ष के लिये
शब्द पद अवस्था पद शब्दकी प्रवृत्तिनिमित्त घटनरूप किया है अतः पद

અપિ ચ તર્કઃ=ઝહાપોહઃ પદાર્થવિશેષાધ્યવસાય इत्यर्थः ‘एव चेद् एव भवेद्’ इत्याकारकः कल्पनाविशेषो न विद्यते, शब्दादिविषयस्यावसर एव तर्कस्यावसरो भवति तदभावे कुतस्तर्कसम्भवः, एव चेद् एवं स्यादित्युभयत्रापि शब्दविषयस्यै-

કૈસે હોી સકતા હૈ। ઘટ અર્થમેં ઘટ શબ્દકી પ્રવૃત્તિકા નિમિત્ત ઘટનરુપ ક્રિયા હૈ, અતઃ ઘટ શબ્દ ઘટ અર્થકા પ્રતિપાદક હોનેસે उनमें परस्पर वाच्यवाचकसंबंध सुघटित हो जाता है। इस प्रकार इस दशामें प्रवृत्ति के निमित्तभूत शब्दादिक उपलब्ध नहीं होते; कारण कि जो भी शब्द वहां पर प्रवृत्त होंगे वे उससे संपूर्ण धर्मका-स्वरूपका युगपत् प्रतिपादन नहीं कर सकते हैं। ध्वनियां क्रમिक होती हैं, और क्रम २ से ही वस्तु के स्वरूपका प्रतिपादन करती हैं। जिस स्वरूपका प्रतिपादन उनके द्वारा होता है वही स्वरूप उसका नहीं है, वह तो उसका प्रतिपाद्य विषय एकदेश पड़ता है, उतने स्वरूपमात्र तो वह वस्तु है नहीं, अतः अनंत-धर्मात्मक होनेसे उसका एकधर्ममुखेन सम्पूर्ण रूपसे कथन शब्दादि द्वारा हो नहीं सकता। प्रमाणसे हो जावेगा? तो इस प्रकारकी आशङ्का उत्तर यही है कि प्रमाण स्वानुभवगम्य है, वह वचनसे नहीं कहा जा सकता है, जो वचनसे कहा जाता है वह नयका विषय पड़ता है। इस अपेक्षासे यहां पर सिद्धदशाको अवाच्य कहा है। वैसे तो सिद्ध अवस्थाके स्वरूपका वर्णन शास्त्रकारोंने जितना भी हो सका है किया ही है; परन्तु यहां पर जो उसे अवक्तव्य कहा है उसका भाव सिर्फ

શબ્દ ઘટ અર્થના પ્રતિપાદક હોવાથી એનામા પરસ્પર વાચ્યવાચક સંબંધ સુઘટિત બને છે આ પ્રકારે આ દશામા પ્રવૃત્તિના નિમિત્તભૂત શબ્દાદિક ઉપલબ્ધ નથી બનતા કારણ કે જે પણ શબ્દ ત્યા પ્રવૃત્ત હોય તે એના સંપૂર્ણ ધર્મના સ્વરૂપનુ યુગપત્ (એકીસાથે) પ્રતિપાદન કરી શકતા નથી ધ્વનીયો ક્રમ વાર થાય છે અને ક્રમ ક્રમથી વસ્તુના સ્વરૂપનુ પ્રતિપાદન કરે છે જે સ્વરૂપનુ પ્રતિપાદન એના દ્વારા થાય છે એ જ આ સ્વરૂપ એનુ નથી હોતુ, એ તો એના પ્રતિપાદ્ય વિષય એકદેશ પડે છે તાવત્સ્વરૂપ માત્ર તો એ વસ્તુ નથી, આથી અનંત ધર્માત્મક હોવાથી એનુ સંપૂર્ણ રૂપથી કથન એક ધર્મવડે શબ્દાદિદ્વારા થઈ શકતુ નથી પ્રમાણથી થઈ જશે?—આ પ્રકારની આશંકાનો ઉત્તર આ છે કે પ્રમાણનુ કથન સ્વાનુભવગમ્ય છે, એ વચનથી કહેવાઈ શકતુ નથી જે વચનથી કહ્યુ જાય છે તે નયરૂપ બને છે આ અપેક્ષાથી અહિં સિદ્ધદશાને અવાચ્ય કહેલ છે એમ તો સિદ્ધ અવસ્થાના સ્વરૂપનુ વર્ણન શાસ્ત્રકારોથી જેટલુ પણ બન્યુ છે, તે કરેલ છે પરંતુ અહીં તેને અવ્યક્ત

इतना ही है कि पदार्थका वास्तविक समस्त स्वरूप शब्दोंद्वारा प्रतिपा-
दित हो ही नहीं सकता ! जितना स्वरूप केवलियोंने अपने केवलज्ञानसे
पदार्थका जाना है उससे अनन्तवें भागकी उन्होंने अपनी ध्वनि
द्वारा परीपदाके बीचमें प्ररूपणा की है जितन अंशकी प्ररूपणा की है
उससे अनन्तवें भागकी धारणा गणधरोके ज्ञानमें हुई है । जितनी धा-
रणा हुई है उससे भी अनन्तवें भागकी उन्होंने रचना की है । इस
अपेक्षासे श्री सिद्ध अवस्थाके समस्त स्वरूपका वर्णन शब्दोंद्वारा नहीं
हो सकता ! इसीलिये उस सिद्ध वक्षामें तर्कको भी स्थान नहीं है ।
तर्क शब्दका अर्थ ऊहापोह है । ऊहापोह उसीमें होता है जो शब्दका
विषय होता है । शब्दके अविषयमूलमें तर्क नहीं होता । इसी स्थाल से
टीकाकारका यह कथन कि “ पदार्थविशेषाध्यवसायः ” पदार्थविशेषका
अध्यवसाय स्वरूप तर्क वहां नहीं होता सर्वथा मत्प है । यदि यह विषय
ऐसा है तो ऐसा होगा ” इस प्रकारका कल्पनाविशेष वही पर होता है
जो शब्दका विषयमूल होता है । यह “ एवं चेत् एवं भवेत् ” कल्पना-
विशेष स्वयं शब्दमय है, और यही तर्कका आकार है, अतः इस प्रकार
के तर्ककी प्रवृत्ति उस अवस्थामें नहीं होती कारण कि “ एवं चेत् एवं
स्यात् ” इन दोनों जगहों में शब्दविषय-पदार्थका ही अवलम्बन होता

हेतु छ कोना भाव इतु कोटोत्तु छ के पदार्थना वास्तविक समस्त स्वरूप
शब्दोंद्वारा प्रतिपादित नहीं हो न शके केवलियोंने पदार्थना केवलज्ञानसे
पदार्थना के स्वरूप अवहेल छ कोना अनन्तभा भागनी जेमले पदार्थना द्विव्यध्वनि
द्वारा तथा वक्ष्य प्ररूपणा करी छ कोटोत्तु अशनी प्ररूपणा करी छ कोनाभी अनन्तभा
भागनी धारणा अवधरोना ज्ञानभा यह छ कोटोत्तु धारणा यह छ कोभी अनन्तभा
भागनी जेमले रचना करी छ आ अपेक्षाभी पल सिद्ध अवस्थानु समस्त
इतनु वर्धन शब्दोंद्वारा नहीं भई शक्तु आ धारणे के सिद्धवक्षामें तर्कने
स्थान नहीं तर्क शब्दने अर्थ ऊहापोह याव छ ऊहापोह कोमां होय छ
के शब्दना विषय होय छ शब्दना अविषय मूलभा तर्क नहीं होतो आ धारणे
टीकाकारनु के कथन छ के पदार्थविशेषोऽध्यवसायः पदार्थविशेषना अध्व
पञ्चाथ स्वरूप तर्क त्या भतो नहीं के सर्वथा सत्य छ आ विषय कोयो छ तो
जोम करे, आ प्रकारने कल्पनाविशेष के रूपे भाव छ के शब्दने विषय
मूल होय छ आ “ एवं चेत् एवं भवेत् ” कल्पनाविशेष स्वयं शब्दमय छ
अने के व तर्कने आकार छ आभी आ प्रकारना तर्कनी प्रवृत्ति के अवस्थामें
नहीं भती. कारण के- एवं चेत् एवं स्यात् आ जन्ने वक्ष्यको शब्दविषय-

વાવલમ્બનાત્, મૂલે 'તક્કા' इत्यत्र प्राकृतत्वात् स्त्रीत्वम् । तर्काभावे हेतुमाह
 -'मति' रित्यादि-तत्र सिद्धावस्थाया 'मतिः' मननं मतिः=मनोव्यापारः
 पदार्थचिन्तनरूपा, सा चौत्पत्तिक्यादिभेदाच्चतुर्विधा; न ग्राहिका=नानुभावयित्री,

है । इसी विषयको विशेष रीतिसे स्पष्ट करनेके लिये सूत्रकार-"मति-
 स्तत्र न ग्राहिका" कहते हैं । मतिः-मननं मति-विचार करनेका नाम
 मति है । यह मतिरूप मानसिक व्यापार कि जिसमें पदार्थोंके चिन्तनके
 प्रति मानसिक धारा दौड़ती रहती है तथा जिसके औत्पत्तिकी आदि
 ४ चार भेद हैं, उस सिद्ध दशाका अनुभव करनेवाला नहीं हो सकता ।
 क्योंकि उस दशामें संकल्पविकल्परूप कल्पनामात्रके लिये अवसर
 ही नहीं है । जो कर्मोंसे युक्त-लिस हैं, ऐसी आत्माओंको मुक्तिकालाभ
 नहीं होता-इस बातको बतानेके निमित्त सूत्रकार "ओज अप्रतिष्ठा-
 नस्य खेदज्ञः" कहते हैं । जो सकल कर्मोंके मलसे रहित हो चुके हैं
 वे ही आत्मा मोक्षसुखका अनुभव करनेवाले होते हैं, अर्थात् कर्म-
 मलीमस आत्मा, उस मुखसे सदा वंचित ही रहा करते हैं । अप्रति-
 ष्ठान शब्दका अर्थ मोक्ष है । क्योंकि औदारिक आदि शरीरोंका अथवा
 कर्मोंका सद्भाव इस अवस्थामें नहीं रहता है । इस मोक्षका कि जो
 अव्याबाधसुखस्वरूप है कर्मोंसे मलिन आत्मा अनुभव भी

પદાર્થનુ જ અવલમ્બન થાય છે આ વિષયને વિશેષ રીતથી સ્પષ્ટ કરવા માટે
 સૂત્રકાર-"મતિસ્તત્ર ન ગ્રાહિકા" કહે છે મતિઃ-મનન મતિઃ-વિચાર કરવાનું
 નામ મતિ છે-આ મતિરૂપ માનસિક વ્યાપાર કે જેમા પદાર્થોના ચિન્તનન
 તરફ માનસિક ધારા દોડતી રહે છે તથા જેના ઔત્પત્તિકી આદિ ચાર
 ભેદ છે એ મિદ્ધદશાનો અનુભવ કરવાવાળી બની શકતી નથી, કેમ કે તેવી
 દશામા સંકલ્પવિકલ્પરૂપ કલ્પનામાત્રનો પણ અવસર નથી જે કર્મોથી યુક્ત
 છે તેવા આત્માઓને મુક્તિનો લાભ થતો નથી-આ વાત બતાવવા નિમિત્ત
 સૂત્રકાર "ઓજ" ઇત્યાદિ કહે છે જે સકલ કર્મના ભળથી રહિત બનેલ
 છે એવા આત્માઓ મોક્ષ સુખનો અનુભવ કરનાર હોય છે અર્થાત્-કર્મના
 ભળથી બધાએલ આત્માઓ એ સુખથી સદા વચિત જ રહ્યા કરે છે અપ્રતિ
 ષ્ઠાન શબ્દનો અર્થ મોક્ષ છે કેમ કે ઔદારિક આદિ શરીરોનો અને કર્મોનો
 સદ્ભાવ એ અવસ્થામા રહેતો નથી આ મોક્ષ કે જે અવ્યાબાધ-સુખ-સ્વરૂપ
 છે તેનો અનુભવ કર્મોથી મલિન આત્માઓ કઈ રીતે કરી શકે, અવ્યાબાધ-

તપ સંકલ્પ - વિકલ્પ - કલ્પનામાત્રસ્યાનવસરાત્ । કર્મસમન્વિતસ્ય મોક્ષગમનં
 ન મયતીતિ દર્શયતિ—‘ઓજ’ ઇતિ । ઓજઃ=ઓજોરૂપઃ સક્લકર્મમસરહિતત્વેન
 ય્યોતિઃસ્વરૂપઃ, અપિ ચ અપતિષ્ઠાનસ્ય ન વિષયે પ્રતિષ્ઠાનમૈવારિ
 કાદિશરીરસ્ય કર્મણાં ચા અવસ્થિતિર્થપ્ર સાંપ્રતિષ્ઠાનો મોક્ષસ્વસ્ય મોક્ષમુલ
 સ્વેત્પર્યઃ, સેવશ્ચ=અનુમાણકા, તપ મિમલજ્ઞાનસમ્પ્રાપ્તાત્ । અથ સેવશ્ચન્દેનાંનુમ-
 વરૂપાંઽર્થો યુજ્યતે । કિંચ તદા મ દીર્ઘો=લમ્બા ન, ઇત્થો=ધામના ન, વૃષઃ=વર્ણ
 આકારો ન, ઇન્દ્ર=ચિક્રોજો ન, ચતુસ્રઃ=ચતુષ્કોણો ન, પરિમણ્ડલઃ=સંસ્થાનવિશે-
 પવાન ન, ઉપલક્ષણાત્ સક્લસંસ્થાનવર્મિતઃ ; एतच्च परिमाणमवलम्ब्य प्रोक्तम्,
 अथ वर्णमाभित्य कथयति—‘ન કુણ્વ’ ઇત્યાદિ—કુણો ન, નીલો ન, સોદિતઃ=રક્તો
 ન, હારિદ્રઃ=પીતો ન, શુક્રઃ=શ્વતો ન; ગન્ધમાભિત્યોચ્યતે ‘ન સુરમી’ ત્યાદિ—
 कैसे कर सकते हैं । अव्याप्य सत्स्वरूप मोक्षका अनुमय विना निर्मल
 જ્ઞાનકે નહીં હો સકતા । મંમારી આત્માઓ—મલિન જીવોકે ઇસ નિર્મલ
 ષોષકી પ્રકટતા હૈ હી નહીં । ઇસકી પ્રકટતા તો વન્હીકે હોતી હૈ જો કર્મ-
 મલ—કલંકસે નિર્મુક્ત હો ચુકે હૈ । સેવશ્ચ—શબ્દ ઘટક સેવકા અર્થ યહાંપર
 પ્રકરણસે અનુમલ રૂપ ગ્રહણ કિયા ગયા હૈ । વસ મુક્તિ અવસ્થામેં રહને
 ચાલા આત્મા ન દીર્ઘ—વિસ્તૃત હોતા હૈ, ન લમ્બા હોતા હૈ, ન ઇત્થ-
 ણોટા હોતા હૈ, ન ગોલ હોતા હૈ, ન ચિક્રોણ હોતા હૈ—ન ચતુષ્કોણ હોતા
 હૈ ન પરિમણ્ડલ—ગોલ આકારખાલા હોતા હૈ, ઉપલક્ષણસે ઓર
 મી જિતને આકાર હોતે હૈ उन आकारवाला भी नहीं होता है ।
 યહ આકાર વિષયકે અભાયકા કથન પરિમાણકો છે કર કિયા હૈ ।
 અથ વર્ણકો છેકર કથન કરતે હુણ સુગ્રહાર કહત હૈ—कि मुक्तिमें रहा
 હુમા આત્મા ન કાલા હોતા હૈ, ન નીલા હોતા હૈ, ન છાલ હોતા હૈ, ન

મુખરૂપ મોક્ષનો અનુભવ નિમજ્જ જ્ઞાન વિના થતો નથી. સચ્ચારી આત્માઓ—
 મલિન હોવાને આ નિર્મળ મોક્ષની પ્રગટતા છે જ નહિ. આની પ્રગટતા તો એને
 જ થાય છે જે કર્મમળકલંકથી નિર્મુક્ત થયા છે એકરા શબ્દમાં સ્થિત એક શબ્દનો
 અર્થ અહિં પ્રકરણથી અનુભવરૂપ પ્રકણ કહેલ છે એવી મુક્તિ અવસ્થામાં
 સ્થેવાવાળા આત્મા ન દીર્ઘ—વિસ્તૃત હોય છે ન લાંબા હોય છે ન નાનકા હોય છે,
 ન ગોળ હોય છે ન ચિક્રોણ હોય છે ન ચતુષ્કોણ હોય છે ન પરિમણ ગોટલે
 ઓળાકાશ્વાત્રા હોય છે ઉપલક્ષણથી નેટલા પણ બીજા આકાર હોય છે તે આકાશ્વાળા
 પણ નથી. આ આકાશ-વિષયના આભાસનુ કથન પરિણામને લઈ કહેલ છે હવે પણ
 આશ્રયે સુગ્રહાર કહે છે કે મુક્તિમાં સ્થેલ આ મા ન કળ્યા કીય છે ન લીલા હોય
 છે ન છાલ હોય છે ન પીળા હોય છે અને ન તો સ્વેદ હોય છે ત્યાં નિશુદ્ધ આત્મા

સુરભિગન્ધ:=સુગન્ધવાન ન, દુરભિગન્ધ:=દુર્ગન્ધવાન ન; રસમાશ્રિત્ય કથ્યતે ' ન
તિક્ત ' ઇત્યાદિ-તિક્ત:=મરીચાદિવત્ ન, કટુકો નિમ્બાદિવદ્ ન, કષાય:-હરીત-
ક્યાદિવદ્ ન, આમ્લ:=અમ્લિકાવદ્ ન, મધુરો ન; સ્પર્શ નિષેધયતિ-ન કર્કશ
ઇત્યાદિ-કર્કશ:=કઠિનો ન, મૃદુ:=કોમલો ન, લઘુર્ન ગુર્ન, શીતો ન, ઉષ્ણો
ન, સ્નિગ્ધ:=ચિક્કણો ન, રુક્ષ:=રસરહિતોઽપિ ન, કાપોત:=કાપોતલેશ્યાયુક્તો ન,
મધ્યગ્રહણાદાયન્તગ્રહણમ્, તેન સકલલેશ્યારહિત ઇત્યર્થ, યદ્વા-કાય:=કાયવાન ન,

ન પીલા હોતા હૈ, ઓર ન સફેદ હી હોતા હૈ । વહાં પર વિશુદ્ધ આત્મા
ન અચ્છી ગધવાલા હોતા હૈ, ન દુર્ગંધવાલા હોતા હૈ, ન મિર્ચ આદિકી
તરહ તિક્ત રસવાલા હોતા હૈ, નિમ્બ-નીમ આદિકી તરહ ન કટુક રસ
વાલા હોતા હૈ, હરડ આદિકી તરહ ન કષાય રસવાલા હોતા હૈ, ઇમલી
આદિકી તરહ ન આમ્લ રસવાલા હોતા હૈ ઓર ન શકરકી તરહ મીઠે
રસવાલા હી હોતા હૈ । ઇસી તરહ વહાં ન કઠોર સ્પર્શ હોતા હૈ, ન કોમલ
સ્પર્શ હોતા હૈ, ન લઘુ સ્પર્શ હોતા હૈ, ન ભારી સ્પર્શ હોતા હૈ, ન શીત
સ્પર્શ હોતા હૈ, ન ઉષ્ણ સ્પર્શ હોતા હૈ, ન સ્નિગ્ધ સ્પર્શ હોતા હૈ, ન
ચિકના સ્પર્શ હોતા હૈ ઓર ન રુક્ષ સ્પર્શ હોતા હૈ । કાપોતલેશ્યા ઓ
વહાં નહીં હોતી હૈ । લેશ્યાઓંમેં કાપોતલેશ્યા યહ મધ્યમેં આઈ હૈ, ઇસ
કે ગ્રહણ સે આદિ ઓર અન્તકી લેશ્યાઓંકા ઓ ગ્રહણ હો જાતા હૈ ।
ઇસલિયે યહ સમજના ચાહિયે કિ વહાંપર છઓં લેશ્યાઓંકા સદ્ભાવ નહીં
હૈ । વહાં ઔદારિક આદિ પાંચ શરીરોંમેં સે કિસી ઓ શરીરકા સદ્ભાવ ન

ન સારી સુગંધવાળા હોય છે, ન દુર્ગંધવાળા હોય છે, મરચા ઇત્યાદિની માફક ન
તીખા રસવાળા હોય છે, લીમડા વિ ની માફક ન કડવા રસવાળા હોય છે, હરડે
ઇત્યાદિની માફક ન કષાયરસવાળા હોય છે, આમલી ઇત્યાદિની માફક ન ખાટા
રસવાળા હોય છે અને સાકરની માફક ન તો મીઠા રસવાળા હોય છે આજ
રીતે ત્યા ન કઠોર સ્પર્શ હોય છે, ન કોમળ સ્પર્શ હોય છે, ન લઘુ સ્પર્શ
હોય છે, ન ભારી સ્પર્શ હોય છે, ન શીતળ સ્પર્શ હોય છે, ન ઉષ્ણ સ્પર્શ
હોય છે, ન સ્નિગ્ધ સ્પર્શ હોય છે, ન ચીકણો સ્પર્શ હોય છે, અને ન તો
લુપ્તો સ્પર્શ હોય છે કાપોતલેશ્યા પણ ત્યા નથી થતી લેશ્યાઓમા કાપોતલેશ્યા
મધ્યમા આવેલ હોવાથી એના ગ્રહણથી આદિ અને અન્તની લેશ્યાઓનુ પણ
ગ્રહણ થાય છે જેથી એ સમજવું જોઈએ કે એ સ્થળે છએ લેશ્યાઓનો
સદ્ભાવ નથી એ ઔદારિક આદિ પાંચ શરીરમાથી કોઈ પણ શરીરનો સદ્-
ભાવ ન હોવાથી તેઓ અકાય અને છે કર્મરૂપી બીજનો સર્વથા પ્રક્ષય થઇ

न सः, रोहति=पुनः-युनः प्रादुर्भूषतीति सः=उत्पत्तिमान् न, कर्मबीजाङ्कुरस्य सर्वथा दग्धत्वात्, अत एव न 'सङ्गः'=सङ्गोऽस्यास्तीति सङ्गः=संयोगवान् न, सर्वसङ्गरहित इत्यर्थः । न स्त्री, न पुरुषः, नान्यथा-स्त्रीपुरुषत्वमावाप्तपुंसकोऽपि नेत्यर्थः । निषेधवाक्यैरेव वाङ्मनसयोरगाचरतया केनापि रूपेण वस्तुमशक्य इति प्रतिपादितम् ।

होन से बे अफाय होते हैं । कर्मरूपी बीजके सर्वथा प्रक्षय हो जानेसे बे फिर मुक्तिसे इस संसारमें पीछ लौट कर नहीं आते हैं । जब उन्हें पुनः संसार दशा ही नहीं होती है तो इससे यह भी स्पष्ट सिद्ध है कि बे किसी भी प्रकारके संयोगसे लिप्त भी नहीं होते हैं । उस अवस्थामें समस्त संयोगका उनके अभाव रहता है । उनके न स्त्रीलिंगका, न पुरुषलिंगका, और न स्त्री पुरुषके अभावस्वरूप नपुंसक लिंगका ही सद्भाव होता है, बे अलिप्त होते हैं । यहां पर रूपादिक पौत्रलिक धर्मोंके निषेध से यह बात जानी जाती है कि बे किस रूपमें हैं यह हम छद्मस्य न वचन से कह सकते हैं और न मनसे ही विचार सकते हैं । उनका स्वरूप छद्मस्य जीबोंके मन और वचनके अगोचर है । जब यह बात है तो हम किसी भी स्वरूपसे उन्हें नहीं कह सकते हैं । बाणी और मन ये दोनों ही वस्तुएँ पौत्रलिक हैं, पौत्रलिकोंसे अपौत्रलिकका न पूर्णरूपसे वर्णन ही हो सकता है और न स्पष्टरूपसे विचार ही हो सकता है । शुद्ध स्वरूपको

ज्याभी ते भुक्तिधी आ ससारमा हेरी पाछ आवता नधी. ज्याहे तेजोने हेरी ससारया नधी धती तेा जेभी जे रूप छे ते जेजो हेत पव प्रकल्प सधोजधी लिप्त धता नधा ते अवस्थाभां समस्त सधोजने विधेज रहे छे तेने न स्त्रीलिंगने, न पुरुषलिंगने आने न स्त्री पुरुषनअभाव स्वरूप नपुंसक लिंगने सद्भाव जने छे तेजो अलिप्त होय छे आ स्वये रूपादिक पौत्रलिक धर्मोना निषेधधी जे बात जबाब छे ते तेजो ज्या रूपभां छे ते, जमे छद्मस्य छीजे भाटे वचनधी न कह्यो शक्तीजे आने न तेा मनधी विचारो शक्तीजे. जेनां स्वरूप छद्मस्य लोवना मन जने वचनभां अगोचर छे ज्याहे आ बात छे तेा जमे केत पव स्वरूपधी जेने जेजधी शकता नधी वावरी जने मन जन्ने वस्तुजो पौत्रलिक छे पौत्रलिकोधी अपौत्रलिकोनु पूव रूपधी वस्तु न बध शक्तु नधी आने न तेा स्पष्टरूपधी विचार पव धर्म शक्ते छे शुद्ध स्वरूपने जबाब भाटे शुद्ध अनुभव जे काम जाये छे ओटले जेनु वावरीधी वर्जन जने

સુરભિગન્ધ:=સુગન્ધવાન ન, દુરભિગન્ધ:=દુર્ગન્ધવાન ન; રસમાશ્રિત્ય કથ્યતે ' ન તિક્ત ' ઇત્યાદિ-તિક્ત:=મરીચાદિવત્ ન, કટુકો નિમ્બાદિવદ્ ન, કષાયઃ-હરીત-ક્યાદિવદ્ ન, આમ્લઃ=અમ્લિકાવદ્ ન, મધુરો ન; સ્પર્શ નિષેધયતિ-ન કર્કશ ' ઇત્યાદિ-કર્કશ:=કઠિનો ન, મૃદુઃ=કોમલો ન, લઘુર્ન. ગુરુર્ન, શીતો ન, ઉષ્ણો ન, સ્નિગ્ધઃ=ચિક્કણો ન, રુક્ષઃ=રસરહિતોઽપિ ન, કાપોતઃ=કાપોતલેશ્યાયુક્તો ન, મધ્યગ્રહણાદાઘન્તગ્રહણમ્, તેન સકલલેશ્યારહિત ઇત્યર્થઃ, યદ્વા-કાયઃ=કાયવાન ન,

ન પીલા હોતા હૈ, ઓર ન સપેદ હી હોતા હૈ । વહાં પર વિશુદ્ધ આત્મા ન અચ્છી ગંધવાલા હોતા હૈ, ન દુર્ગંધવાલા હોતા હૈ, ન મિર્ચ આદિકી તરહ તિક્ત રસવાલા હોતા હૈ, નિમ્બ-નીમ આદિકી તરહ ન કટુક રસ વાલા હોતા હૈ, હરડ આદિકી તરહ ન કષાય રસવાલા હોતા હૈ, હમલી આદિકી તરહ ન આમ્લ રસવાલા હોતા હૈ ઓર ન શકરકી તરહ મીઠે રસવાલા હી હોતા હૈ । ઇસી તરહ વહાં ન કઠોર સ્પર્શ હોતા હૈ, ન કોમલ સ્પર્શ હોતા હૈ, ન લઘુ સ્પર્શ હોતા હૈ, ન ભારી સ્પર્શ હોતા હૈ, ન શીત સ્પર્શ હોતા હૈ, ન ઉષ્ણ સ્પર્શ હોતા હૈ, ન સ્નિગ્ધ સ્પર્શ હોતા હૈ, ન ચિકના સ્પર્શ હોતા હૈ ઓર ન રુક્ષ સ્પર્શ હોતા હૈ । કાપોતલેશ્યા ભી વહાં નહીં હોતી હૈ । લેશ્યાઓંમેં કાપોતલેશ્યા યહ મધ્યમેં આઈ હૈ, હસ કે ગ્રહણ સે આદિ ઓર અન્તકી લેશ્યાઓંકા ભી ગ્રહણ હો જાતા હૈ । હસલિયે યહ સમજના ચાહિયે કિ વહાંપર છઓં લેશ્યાઓંકા સદ્ભાવ નહીં હૈ । વહાં ઔદારિક આદિ પાંચ શરીરોંમેં સે કિસી ભી શરીરકા સદ્ભાવ ન

ન સારી સુગંધવાળા હોય છે, ન દુર્ગંધવાળા હોય છે, મરચા ઇત્યાદિની માફક ન તીખા રસવાળા હોય છે, લીમડા વિ ની માફક ન કડવા રસવાળા હોય છે, હરડે ઇત્યાદિની માફક ન કષાયરસવાળા હોય છે, આમલી ઇત્યાદિની માફક ન ખાટા રસવાળા હોય છે અને સાકરની માફક ન તો મીઠા રસવાળા હોય છે આજ રીતે ત્યા ન કઠોર સ્પર્શ હોય છે, ન કોમળ સ્પર્શ હોય છે, ન લઘુ સ્પર્શ હોય છે, ન ભારી સ્પર્શ હોય છે, ન શીતળ સ્પર્શ હોય છે, ન ઉષ્ણ સ્પર્શ હોય છે, ન સ્નિગ્ધ સ્પર્શ હોય છે, ન ચીકણો સ્પર્શ હોય છે, અને ન તો લુપ્તો સ્પર્શ હોય છે કાપોતલેશ્યા પણ ત્યા નથી થતી લેશ્યાઓમા કાપોતલેશ્યા મધ્યમા આવેલ હોવાથી એના ગ્રહણથી આદિ અને અન્તની લેશ્યાઓનુ પણ ગ્રહણ થાય છે જેથી એ સમજવું જોઈએ કે એ સ્થળે છએ લેશ્યાઓનો સદ્ભાવ નથી. એ ઔદારિક આદિ પાંચ શરીરોમાથી કોઈ પણ શરીરનો સદ્ભાવ ન હોવાથી તેઓ અકાય બને છે કર્મરૂપી બીજનો સર્વથા પ્રક્ષય થઈ

विषये। सिद्धस्वरूपं न कनाप्युपमातुं शक्यतः । तस्य कीदृशी सचेत्याह—‘अरूपिणी’—त्यादि—तस्य युक्तात्मन सत्ता=सत्ताय सा अरूपिणी=कनापि रूपेण वस्तुम-

उत्तर—कहना तो ठीक है, परन्तु उनके आगे यदि हमें कोई उपमा दृष्टिपथ होती तो हम उसके द्वारा उनका वर्णन भी कर देते। परन्तु उनके आगे तो उपमा ही अस्त है, उनकी उपमा उनमें ही है। अतः ‘उपमा तत्र न विद्यते’ किसी भी पदार्थकी उपमासे हम उनके स्वरूपका कथन नहीं कर सकते हैं। व अनुपमेय हैं।

शङ्क—उनकी सत्ता कैसी है—उनका अस्तित्वका किसी भी रूपसे वर्णन हो सकता है?

उत्तर—“अरूपिणी सत्ता” उनकी सत्ता अरूपिणी है, अतः उनके अस्तित्वका वर्णन किसी भी रूपसे नहीं हो सकता है। किसी भी रूप से जिसका कथन न हो सके उसका नाम “अरूपिणी” है। पहिले यह प्रकट ही किया जा चुका है कि सिद्धदशा रूप, रस, गंध और स्पर्शादिसे रहित है। तथा द्रव्य, दीर्घत्वादिक धर्म उसमें सम्मिलित नहीं होते हैं। ये सब पुद्गलके धर्म हैं। पुद्गल ही मूर्त्तिक है, पाकी द्रव्य अमूर्त्तिक हैं। मात्मा भी कर्मवचकी दशामें यद्यपि मूर्त्तिक माना गया है, परन्तु अपने निजस्वरूप अथवा मिट अवस्थाकी अपेक्षा से वह अमूर्त्तिक ही

उत्तर—कहेतु तो ठीक है, परन्तु जेनी आगण कदाच नभने कोउ उपमा दृष्टिपथ भात ता अने जेनु पखुन पखु कर्त हेत, पखु जेनी आगण तो उपमानो व अभाव छे जेमनी उपमा जेमनाभा व छे जेटवे उपमा तत्र न विद्यते” कोउ पखु पदावनी उपमाधी अने तेमना स्वरूपतु कथन कर्त शक्य नथी. जे उपमाधी पर छे

शङ्क—जेमनी सत्ता केली छे—जेमना अस्तित्वतु कोउ रूपधी वर्णन कथ शक छे।

उत्तर—“अरूपिणी सत्ता” जेमना सत्ता अरूपी छे जेमना अस्तित्वतु पखुन कोउ पखु रूपधी कथ शक नकि कोउ पखु प्रकट हेतु वर्णन न कथ शक तेतु नाम ‘अरूपिणी’ छे पदेवा अ कहु छे क—सिद्ध दशा रूप, रस, गंध अने स्पर्शादिधी रहित छे तथा द्रव्य दीर्घत्वादिक धर्म जेमा सम्मिलित भेतो नथी. आ तथा पुद्गलतया धम छे पुद्गल व भूतिक छे नील द्रव्य अमूर्त्तिक छे आत्मा पखु कर्मवचनी दशामें भूतिक मानवाना आवे छे परन्तु पोताना निजस्वरूप अथवा सिद्ध अवस्थानी अपेक्षाधी अमूर्त्तिक व छे. जेटवे अमूर्त्तिक आत्मानु द्रव्यत्व आदि

કિન્તુ પરિજ્ઞાન=સકલાત્મપ્રદેશોઃ સકલવસ્તુતત્ત્વમ્ જ્ઞાતા, एवं 'संज्ञः' सं=સમ્યક્ જાનાતિ=પરિચીતિ સંજ્ઞા=અનન્તજ્ઞાન-દર્શનાદિસમન્વિત્વમ્ इत्यर्थः, તત્ત્વરૂપ-મુખમયાઽપિ જ્ઞાતુમશક્યમિત્યાહ—‘उपमे’त्यादि-उपमानम्=उपमा=सादृश्य न तत्र जाननेके लिये शुद्ध अनुभव ही काम देता है। अतः जिसका वाणीसे वर्णन और मनसे विचार तक भी नहीं हो सकता है उसका कथन भी कैसे किया जा सकता है यह स्वयं एक अनुभवगम्य बात है।

वे सिद्ध भगवान् केवलज्ञानके आवारक (ढक्कन) ज्ञानावरणीय कर्मके सर्वथा विनाश हो जानेसे विशुद्ध समस्त आत्मप्रदेशों के द्वारा सकल वस्तुतत्त्वके ज्ञाता हैं, इससे उनका ज्ञान अनन्त है यह बात स्पष्ट हो जाती है। क्योंकि कि अनन्त पदार्थोंको विषय करनेवाला ज्ञान अनन्त हुए बिना नहीं रह सकता, तथा अनन्तज्ञानके हुए बिना उन अनन्त पदार्थोंका हस्तामलकवत् साक्षात्कार भी नहीं हो सकता। ज्ञानके पहिले दर्शन होता है, बिना दर्शनके ज्ञानका सद्भाव नहीं माना गया है, इस लिये जब उनके ज्ञानमें अनन्तता है तो इससे यह भी युक्तियुक्त है कि उनका दर्शन भी अनन्त है। इसी बातका बोधन “संज्ञ” इस पदसे सूत्रकारने किया है।

શરૂઆત—જિસ પ્રકાર સાંસારિક પદાર્થોંકા વર્ણન કિસી પદાર્થકી ઉપમા દેકર કરનેમેં આતા હૈ, ઉસી પ્રકારસે સિદ્ધોંકા વર્ણન બી આપ હમેં ઉપમા દે કર સમજા દીજિયે ?

મનથી વિચાર પણ થતો નથી એવું કથન પણ કેમ કરી શકાય, આ સ્વયં એક અનુભવગમ્ય વાત છે

આ સિદ્ધ ભગવાન કેવળજ્ઞાનના ઢાકણરૂપ જ્ઞાનાવરણીય કર્મને સદા વિનાશ થવાથી વિશુદ્ધ સમસ્ત આત્મપ્રદેશો દ્વારા સકલ વસ્તુતત્ત્વના જ્ઞાતા છે, આથી તેનું જ્ઞાન અનન્ત છે, આ વાત સ્પષ્ટ છે કેમકે અનન્ત પદાર્થોંના વિષય કરવાવાળા જ્ઞાન અનન્ત થયા વગર રહેતું નથી, અને અનન્ત જ્ઞાન થયા વિના એ અનન્ત પદાર્થોંના હસ્તામલકવત્ સાક્ષાત્કાર પણ થઈ શકતો નથી જ્ઞાનના પહેલાં દર્શન થાય છે, દર્શન વગર જ્ઞાનનો સદ્ભાવ માનવામાં આવતો નથી આ માટે જ્યારે એના જ્ઞાનમાં અનન્તતા છે તો આથી એ પણ યુક્તિયુક્ત છે કે તેનું દર્શન પણ અનન્ત છે આ વાતનું બોધન “સંજ્ઞ” આ પદથી સૂત્રકારે કરેલ છે

શરૂઆત — જે પ્રકારે સાંસારિક પદાર્થોંનું વર્ણન કોઈ પદાર્થની ઉપમા આપીને કરવામાં આવે છે, એજ પ્રકારથી સિદ્ધોંનું વર્ણન પણ એમોંને ઉપમા આપી સમજાવો?

તદેવ પ્રકૃત્યન્નુપસહરતિ—‘સ ન’ ઇત્યાદિ—

યદ્વા—‘ન લીધે’ ઇત્યાદિના શબ્દાદિવિશેષો નિરાકૃત પુનસ્તત્સામાન્ય નિરાકરણાયાદિ—‘સે ન’ ઇત્યાદિ।

મૂળમ્—સે ન સદે ન રૂઘે ન ગધે ન રસે ન ફાસે રૂઘ્વેવ તિવેમિ ॥ સૂ. ૭ ॥

છાયા—સ ન સ્મ્યો ન રૂપં ન ગન્ધો ન રસો ન સ્પર્શ ઇત્યેવમિતિ વ્રષીમિ । સૂ. ૭ ॥

ટીકા—‘સ ન’ ઇત્યાદિ—સ મુક્તાત્મા ન સ્મ્યસ્વરૂપઃ, ન રૂપાત્મકઃ, ન

પ્રકાન્ત રૂપસે નહીં સમજના યાદિયે । અન્યથા જે સર્વથા અવક્તવ્ય હોને સે અવક્તવ્ય હસ શબ્દકે દ્વારા મી નહીં કહે જા સર્કેંગે, તથા રૂપ રસ ગંધાદિકા નિષેધ મી યહાં નહીં હો સકગા । તથા ફનકે અભાષાત્મક—“રૂપાદિ રહિત હે” ઇત્યાકારક—બોધકે જે ગ્રાહ્ય મી નહીં હોંગે । હસ લિયે યહ સય કથન સિદ્ધ સ્વરૂપકી પૂર્ણ વૃણાકા બાષ્વક કોઈ શબ્દ નહીં હે ફતને હી મેં ચરિતાર્થ સમજના યાદિયે ॥ સૂ. ૬ ॥

ફસી પૂર્વોક્ત વિષયકો પુના પ્રકટ કરતે હુપ સૂત્રકાર હસકા “સે ન” ઇત્યાદિ સૂત્રદ્વારા ઉપસહાર કરત હે અથવા—“ન લીધે” ઇત્યાદિ પદો દ્વારા હસ અવસ્થામે લીધેલ્લાવિ—વિશેષ—ધર્મવાચક વિશેષ શબ્દોની વિષયતાકા હી નિષેધ ક્રિયા ગયા હે, સામાન્ય રૂપસે શબ્દાત્મકતાદિકા નિષેધ નહીં ક્રિયા હે; સો “સે ન” ઇત્યાદિ સૂત્રદ્વારા સામાન્યરૂપસે શબ્દાત્મકતાદિકા યહાં નિષેધ કરતે હુપ સૂત્રકાર કહતે હે—

યદ્ મુક્ત આત્મા ન શબ્દસ્વરૂપ હે, ન રૂપસ્વરૂપ હે, ન ગંધસ્વરૂપ

અ કથન કોઈ કોટાન્ત રૂપથી સમજવુ ન બોધે એ અન્યથા જે લગીયા અવક્તવ્ય કોવાથી અવક્તવ્ય આ શબ્દથી પણ કહી શકાય નહિ તેમ રૂપ રસ, ગંધ ઇત્યાદિને નિષેધ પણ ત્યાં થઈ શકે નહિ તથા એના અભાષાત્મક—રૂપાદિ સ્થિત છે એવા બોધથી પણ એ ખાદ્ય નહિ યામ આ માટે વિદ્યુત્પરૂપની પૂર્ણ વૃણાને વાચક કોઈ શબ્દ નથી—જે/લામાં જ આ બધા કથન ચરિતાર્થ સાર્થક સમજવુ બોધે (સૂ. ૬)

એ પૂર્વોક્ત વિષયને પુના પ્રકટ કરતાં સૂત્રકાર એનો “સે ન” ઇત્યાદિ સૂત્ર દ્વારા ઉપસહાર કરે છે અથવા—“ન લીધે” ઇત્યાદિ પદોથી જે અવસ્થામા લીધેલ્લાવિ—વિશેષ—ધર્મવાચક વિશેષશબ્દોની વિસ્થાનો જ નિષેધ કરવામાં આવ્યો છે. સામાન્યરૂપથી શબ્દાત્મકતા આદિનો નિષેધ નથી કયો, માટે “સ ન” ઇત્યાદિ સૂત્રથી સામાન્ય રૂપથી શબ્દાત્મકતા આદિનો ત્યાં નિષેધ કરતા સૂત્રકાર કહે છે—

એ મુક્ત આત્મા ન શબ્દસ્વરૂપ છે ન તો રૂપસ્વરૂપ છે, ન ગંધસ્વરૂપ

શક્યા, તત્ર દીર્ઘત્વાદિ સમ્બંધિપયાઽપ્રતિપાદનાત્; અપિ ચ-અપદસ્ય=ન વિદ્યતે પદ સ્થાનમવસ્થાનવિશેષો यस્ય સોઽપદસ્તસ્ય, પદ-પદ્યતે=વૃદ્ધ્યતે યેનાર્થસ્તત્પદં =તદ્વાચકઃ શબ્દઃ, તન્નાસ્તિ । યઃ કશ્ચિદભિધાતું યોગ્યો ભવતિ સ સર્વ એવ શબ્દાદિવિપપયાભિધાનેન વક્તુ શક્યો, ન ચાય તથેતિ તાત્પર્યમ્ ॥ મૂ.૬ ॥

હૈ। અતઃ અમૂર્ત્તિક આત્માકા હ્રસ્વત્વાદિક રૂપ ન હોનેસે અનેક દ્વારા અનેક અસ્તિત્વકા વર્ણન હો ભી કૈસે સકતા હૈ? અથવા “અરૂપિણી” હસ શબ્દકે દ્વારા મુક્ત આત્માકી સત્તા રૂપરહિત હી વર્ણિત હુઈ હૈ, તો ભી તદવિનાભાવી રસ, ગદ્ય ઓર સ્પર્શકા ભી રૂપકે નિષેધ સે નિષેધ હુઆ હી સમજના ચાહિયે ।

“અપદસ્ય પદં નાસ્તિ” જિસકા કોઈ પદ-સ્થાન અથવા અવસ્થાન વિશેષ નહીં હૈ વહ અપદ હૈ । જિસકે દ્વારા અર્થકા વોધ હોતા હૈ વહ પદ હૈ । અપદકા વાચક કોઈ પદ-શબ્દ નહીં હોતા હૈ । જો કહનેકે યોગ્ય હોતા હૈ વહી કહા જા સકતા હૈ । ઘટાદિક પદાર્થ ઘટાદિ શબ્દદ્વારા અનેક લિયે પ્રતિપાદિત હોતે હૈ કિ વે અનેક શબ્દોદ્વારા કહે જાને યોગ્ય હોતે હૈ । વાચ્યવાચકભાવ યા પ્રતિપાદ્યપ્રતિપાદક ભાવસંબંધ અનેક યોગ્ય પદાર્થોમે હી હુઆ કરતા હૈ, અન્યત્ર નહીં । સિદ્ધદશા અપદ હૈ, અતઃ અનેક વર્ણન કરનેવાલા કોઈ ભી પદ નહીં હૈ । વિશેષ-યહ સવ કથન આત્માકે શુદ્ધ સ્વરૂપકી દૃષ્ટિસે નિશ્ચયનયકે અભિપ્રાયકો લે કર હી કિયા ગયા સમજના ચાહિયે । અનેક વાચક કોઈ શબ્દ નહીં હૈ ઇત્યાદિ કથન સર્વથા

રૂપ ન હોવાથી એની મારફત એના અસ્તિત્વનુ વર્ણન પણ કઈ રીતે થઈ શકે? અથવા “અરૂપિણી” આ શબ્દ દ્વારા મુક્ત આત્માની સત્તા, રૂપરહિત જ કહેવામાં આવી છે, તો પણ તેની સાથે જ રહેનાર રસ, ગદ્ય અને સ્પર્શનો પણ રૂપના નિષેધથી નિષેધ થયો જ સમજવો જોઈએ

“અપદસ્ય પદં નાસ્તિ” જેનું કોઈ પદ-સ્થાન અથવા અવસ્થાન વિશેષ નથી એ અપદ છે જેના દ્વારા અર્થનો યોગ થાય છે એ પદ છે અપદનો વાચક કોઈ પદ-શબ્દ નથી જે કહેવા યોગ્ય હોય છે એ જ કહેવાય છે ઘટાદિક પદાર્થ ઘટાદિ શબ્દથી આ માટે પ્રતિપાદિત હોય છે કે તે એ શબ્દો દ્વારા કહેવાને યોગ્ય હોય છે વાચ્યવાચકભાવ અથવા પ્રતિપાદ્યપ્રતિપાદક ભાવ સમઘ પોતાના યોગ્ય પદાર્થોમાં જ હોય છે, અન્યમાં નહિ સિદ્ધદશા અપદ છે, આથી એનું વર્ણન કરનાર કોઈ પદ નથી વિશેષ-આ બધું આત્માના વિશુદ્ધ રૂપની દૃષ્ટિથી નિશ્ચય નયનો અભિપ્રાય લઈને કહેવાયું છે, એમ સમજવું જોઈએ. એનો વાચક કોઈ શબ્દ નથી

હસ અધ્યયનના ઉપસંહાર પદ્યસે કરતે હૈ—‘અસ્મિન્નધ્યયને’ હત્યાદિ ।

(૧) પહેલે ઉદ્દેશમે—પ્રાણિયોની હિંસા કરનેવાલા, વિપયેકિ લિયે સાવધ ક્રિયાઓમે પ્રવૃત્તિ કરનેવાલા મુનિ નહીં હૈ । તથા વિપયેકિ લિયે હી વિચરણ કરનેવાલા ઔર ઉનમે લલલીન ચિત્ત યના કુઆ મી મુનિ ધર્મસે રહિત હૈ । (૨) ધ્રીતીય ઉદ્દેશમે—હિંસાદિ પાપસ્થાનોસે નિવૃત્ત હી મુનિ હોતા હૈ । (૩) તૃતીય ઉદ્દેશમે—જો પરિગ્રહસે ચિરત હૈ ઔર કામ મોગોસે રહિત હૈ ઘહી ચિરક્ત મુનિ હૈ । (૪) ચતુર્થ ઉદ્દેશમે—અગીતાર્થ મુનિકો પકાકી હોકર બિહાર નહીં કરના ચાહિયે, ક્યોંકિ હસ પ્રકારકે બિહારમે ઉસે અનેક બિધ્નયાચાર આતી હૈ । (૫) પંચમ ઉદ્દેશમે—મુનિકો દ્રહકે સમાન હોના ચાહિયે । મન, વચન ઔર કાયગુણસે યુક્ત હોના ચાહિયે । સ્ત્રી આધિકે ભગસે રહિત હોના ચાહિયે । સમ્યગ્દર્શન ઔર ચારિત્રકે ધારક હોના ચાહિયે—સંશયાદિક દોષવર્જિત હોના ચાહિયે । (૬) છઠે ઉદ્દેશમે—ઉન્માર્ગમે જાનકા ઔર રાગ પદ્ધતિ દેપકા સાધુકો ત્યાગ કર દેના ચાહિયે ।

પદ આચારાક્ષસૂત્રકે લોકસાર નામકે પાંચવે અધ્યયનની આચાર ચિન્તામણિ—ટીકાકા હિન્દી-ભાષાનુવાદ સંપૂર્ણ ॥ ૭ ॥

આ અધ્યયનના ઉપસંહાર પદ્યથી કરવામાં આવે છે ‘અસ્મિન્નધ્યયને’ હત્યાદિ

(૧) પહેલા ઉદ્દેશમાં—પ્રાણીઓની હિંસા કરવાવાળા અને વિષયોને માટે સાવધ ક્રિયાઓમાં પ્રવૃત્તિ કરવાવાળાને મુનિ ન કહેવાય. તેમજ વિષયોને માટેજ વિચરતુ કરવાવાળા અને એમાં લલલીન ચિત્ત થયેલા પણ મુનિ ધર્મથી રહિત છે. (૨) બીજા ઉદ્દેશમાં—હિંસાદિ પાપસ્થાનોથી નિવૃત્ત જ મુનિ કહે છે. (૩) ત્રીજા ઉદ્દેશમાં—જો પરિગ્રહથી વિરત છે અને કામલોભોથી રહિત છે એ જ વિરક્ત મુનિ છે. (૪) ચોથા ઉદ્દેશમાં—અગીતાર્થ મુનિકે એમકો વધ વિકાર કરવો ન એઈએ, કેમ કે આ પ્રકારના વિકારથી એને અનેક બિધો આવે છે. (૫) પાંચમા ઉદ્દેશમાં—મુનિકે દ્રહ (સરાવર)ની સમાન થવું એઈએ. મન, વચન અને કાયાથી વિરક્ત બનવું એઈએ જી આદિના સંગથી દૂર રહેવું એઈએ. સમ્યગ્દર્શન—જ્ઞાન અને આદિના ધારક બનવું એઈએ. સશય આદિ દોષોથી રહિત થવું એઈએ. (૬) છઠા ઉદ્દેશમાં—ઉન્માર્ગમન, રાગ અને દેષને ત્યાગ કરી દેવો એઈએ.

આ આચારાક્ષસૂત્રના લોકસાર નામના પાંચમા અધ્યયનની આચાર-ચિન્તામણિ—ટીકાનો ગુજરાતી અનુવાદ સંપૂર્ણ ॥ ૫ ॥

ગન્ધાત્મકઃ, ન રસસ્વરૂપઃ, ન સ્પર્શસ્વરૂપ, इत्येवं पूर्वोक्तस्वरूपेण स न शब्दादि-
सामान्यरूपो नापि तद्विशेषरूपः, शब्दादिप्रवृत्तिनिमित्ताभावादेव केनापि प्रकारेण
वक्तुं न शक्य इति भावः । ‘इति ब्रवीमि’त्यस्यार्थस्तु प्रथमाध्ययनोक्तरीत्याऽ-
वगन्तव्यः ॥ सू० ७ ॥

अध्ययनविषयोपसंहारः—

अस्मिन्नध्ययने च भोगविषयासक्त्यै ब्रजन्નો मुनि,
हिंसादित्यजको निवृत्ताविषयासङ्गो मुनिः सम्मतः ।
निर्विण्णोऽप्यपरिग्रहो मुनिरभावेकाकिनो दुष्कृत-

માચાર્યા હૃદસન્નિભાશ્ચ પરમત્યાગશ્ચ સંવર્ણિતઃ ॥ ૧ ॥

॥ इतिश्री-विश्वविख्यात-जगद्गुरु-प्रसिद्धवाचक-पञ्चदशभाषाकलितललित-
कलापालापक-प्रविशुद्गद्यपद्यनैकग्रन्थनिर्मापक-वादिमानमर्दक-शाहू-
छत्रपति-कोल्हापुरराजप्रदत्त-“ जैनशास्त्राचार्य ”-पदभूषित-
कोल्हापुरराजगुरु-बालब्रह्मचारि-जैनाचार्य-जैनधर्मदिवाकर
पूज्य-श्रीघासीलाल-व्रतिविरचितायाम् आचाराङ्गसूत्र-
स्याऽऽचारचिन्तामणिटीकायां लोकसाराख्यं पञ्चम-
मध्ययन संपूर्णम् ॥ ५ ॥

है, न रसस्वरूप है और न स्पर्शस्वरूप है । इस प्रकार वह न शब्द
सामान्यस्वरूप है और न रूप, रस और गंध आदि सामान्य स्वरूप है ।
जहां सामान्य धर्मका ही अभाव है वहां तद्विशेष इस्वआदि विशेष-
शब्दविषयता तथा नील, शुक्ल आदि विशेषरूपता कैसे आ सकती
है? अर्थात् नहीं आ सकती । इसलिये सामान्य और विशेष रूपसे
शब्द आदि की प्रवृत्तिके निमित्तका अभाव होनेसे ही वह मुक्तदशा
किसी भी प्रकारसे कथन करनेमें नहीं आती है । “इति ब्रवीमि” इन
पदोंका अर्थ प्रथम अध्ययनमें उक्त रीतिके अनुसार जान लेना चाहिये।सू० ७

છે, ન રસસ્વરૂપ છે, અને ન તોસ્પર્શસ્વરૂપ છે આ પ્રકારે ન શબ્દ સામાન્ય
સ્વરૂપ છે, અને ન રૂપ, રસ તથા ગંધ આદિ સામાન્ય સ્વરૂપ છે ન્યા સામાન્ય
ધર્મનો જ અભાવ છે ત્યા આગળ હસ્વ આદિ વિશેષશબ્દવિષયતા તથા નીલ,
શુદ્ધ આદિ વિશેષરૂપતા કઈ રીતે આવી શકે ? અર્થાત્ આવી શકતી નથી આ
મોટું સામાન્ય અને વિશેષ રૂપથી શબ્દ આદિની પ્રવૃત્તિના નિમિત્તનો અભાવ
હોવાથી જ એ મુક્તદશા કોઈ પણ પ્રકારે કહી શકાતી નથી “इति ब्रवीमि”
આનો અર્થ પ્રથમ અધ્યયનના એ ડહા પ્રમાણે બાણી લેવો જોઈએ (સૂ० ૭)

પૂર્ત ત્રિવિધં દ્રવ્યમાશમદાત્ । તત્ર દ્રવ્યપૂર્ત નક્ષત્રાપ્રાદિ, માશપૂતમદૃવિધં
કર્મ । ઉક્ત્ય—

“ જહ મલમલિણં વત્સ્ય, સારવચ્ચેણ નિમ્મલં મવહ ।

તહ સંજમન તપસા, કર્મમલં મવહ માશપુર્ય ” ॥ ૧ ॥

છાયા—પયા મલ્મલિનં પશ્ય, સારદ્રવ્યેણ નિર્મલ મપતિ ।

તયા સંજમન તપસા, કર્મમલં મવતિ માશપૂતમ્ ॥ ૧ ॥

અત્ર માશપૂતનાધિકારઃ । અસ્મિન્નધ્યયન પદ્ધતિસ્તે સન્તિ, તત્ર પ્રથમોદ્દેશે
સ્વજનસૂત્રમ્, ટિટીય કર્મણાં, તૃતીય—ઉપકરણશરીરમત્સ્યસ્ય, ચતુર્થે ગૌરવપ્રપસ્ય,
પચમ ચોપસંગમાનાપમાનાનાં ચિપુનન પ્રતિપાદયિષ્યત । તત્ર સ્વજનસૂત્રપરિત્યાગ-

પૂત, દ્રવ્ય ઓર માશકે મેવસે વો પ્રકારકા હૈ । વસ્ત્ર ઓર પાત્રાદિક
દ્રવ્ય પૂત હૈ । અદૃવિધકર્મ માશ પૂત હૈ । કહા મો હૈ—

‘ જહ મલમલિણં વત્સ્ય ’ રસ્યાદિ—

જેસે મલસે મલિન છુઆ વસ્ત્ર, ક્ષાર દ્રવ્ય—સોડા સાબુન આદિસે સાફ
કિયા જાતા હૈ उसी प्रकार माशस्वरूप कर्मरूपी मैल भी आत्मासे संयम
और तपद्वारा धोया—साफ किया जाता है ।

યહાં પર માશપૂતના અધિકાર હૈ । હસકે ૫ ઉદ્દેશ હૈ—૧ પ્રથમ ઉદ્દેશ
મેં સ્વજનકે સંગકા, ઘિતીય ઉદ્દેશમેં કર્મોકા, તૃતીય ઉદ્દેશમેં ઉપકરણ
ઔર શરીરકે મત્સ્યકા, ચતુર્થ ઉદ્દેશમેં ત્રીન ગૌરવોકા, ઔર પંચમ ઉદ્દેશમેં
ઉપસર્ગો વચ માન ઔર અપમાનકા પૂનન પ્રતિપાદિત કિયા હૈ । इनमें
सर्व प्रथम सूत्रकार स्वजनोके साथ संगके परित्यागका बोधक प्रथम

પૂત ૬૦૪ અને ભાવના લેકથી મિ પ્રકાશનુ છે વસ્ત્ર અને પાત્રાદિક ૬૦૫
પૂત છે અદૃવિધ કર્મ ભાવપૂત છે ૬૦૬ પશુ છે— જહ મલમલિણ વત્સ્ય ” રસ્યાદિ,
જેમ મળથી ગદુ અનેલ વસ્ત્ર ક્ષારદ્રવ્ય—સોડા સાબુ વગેરેથી સાફ કર
વામાં આવે છે જે જે રીતે ભાવસ્વરૂપ કર્મરૂપી મેલને પશુ આત્માથી સંયમ
અને તપ દ્વારા ધોવા—સાફ કરવામાં આવે છે.

અહીં ભાવપૂતનો અધિકાર છે આના પાંચ ઉદ્દેશ છે પ્રથમ ઉદ્દેશમાં
સ્વજનના સંગનુ ધીવ્ય ઉદ્દેશમાં કર્મોનુ ત્રીવ્ય ઉદ્દેશમાં ઉપકરણ અને શરી
રના મત્સ્યનુ ચોથા ઉદ્દેશમાં ત્રણ ગૌરવનુ અને પાંચમા ઉદ્દેશમાં ઉપસર્ગો
અને મન તથા અપમાનનુ પૂનન પ્રતિપાદન કરેલ છે અર્થમાં સર્વ પ્રથમ સૂત્રકાર
સ્વજનોના સંગની પરિત્યાગ કરવો એટલેજે આ સમભાવના માટે પ્રથમ ઉદ્દેશનો માર્ગ
કરે છે. આમાં સદુ પ્રથમ સૂત્રકારનો બતાવે છે કે જે પદાર્થો કે સ્વરૂપથી અપાસ્થિત

॥ अथ षष्ठाध्ययनस्य प्रथम उद्देशः॥

उक्त पञ्चमाध्ययन, तत्र लोकासाररूपसयमस्य मोक्षस्य च स्वरूप निगदितं, तयो. प्राप्तिर्हि मातापित्रादिसगपरित्यागेन कर्मधूननेन च विना न भवतीत्युभय बोधयितुमिदं धूताख्यमध्ययन प्रोच्यते—

धूयते—अपनीयत इति धूत-मातापित्रादिसगः अष्टविध कर्म च । तद् धूत-नार्हतया प्रतिपाद्यते यत्राध्ययने तदपि धूत निगद्यते ।

छट्टा अध्ययनका प्रथम उद्देश ।

पांचवां अध्ययन कहा जा चुका है । उसके अन्दर लोकमें सारभूत संयम और मोक्षका स्वरूप कहा गया है । संयम और मुक्तिकी प्राप्ति माता पिता आदि स्वजनोके साथ ममत्वका त्याग और कर्मोका विनाश किये विना नहीं होती है, इस कारण इन दोनों विषयोंको समझानेके लिये इस धूताख्यान का प्रारम्भ किया जाता है ।

मुमुक्षुजनो द्वारा जो दूर-परिवर्जित किया जाय वह धूत है । वह धूत माता पिता आदिका सग और अष्टविधकर्मस्वरूप है । क्यों कि मुमुक्षुओं द्वारा इनका ही परित्याग किया जाता है । इस अध्ययनमें इन दोनों विषयोंको धूतन-परित्यागके योग्य प्रतिपादित किया गया है । इसलिये इस अध्ययनका नाम भी “ धूत ” हो गया है ।

छठा अध्ययनका प्रथम उद्देश.

पाचमो अध्ययन कडेवाध गयो છે, એ अध्यયનમા લોકમા સારભૂત સયમ અને મોક્ષનુ સ્વરૂપ કહેવામા આવેલ છે સયમ અને મુક્તિની પ્રાપ્તિ, માતા પિતા આદિ સ્વજનોના મમત્વનો ત્યાગ, કર્મોનો વિનાશ કર્યા વગર થઈ શકતો નથી આ કારણે આ બંને વિષયો સમજાવવા માટે આ ધૂતાખ્યાન અધ્યયનનો પ્રારંભ કરવામા આવે છે.

મુમુક્ષુજનો દ્વારા જે દૂર-પરિવર્જિત કરવામા આવે તે ધૂત છે એ ધૂત માતા પિતા ધત્યાદિનો સગ અને અષ્ટવિધકર્મસ્વરૂપ છે, કેમ કે મુમુક્ષુઓ દ્વારા એનો પરિત્યાગ કરવામા આવે છે આ અધ્યયનમા આ બંને વિષયોને ધૂતન-પરિત્યાગને યોગ્ય પ્રતિપાદિત કરવામા આવેલ છે. આ માટે આ અધ્યયનનુ નામ પણ “ ધૂત ” થઈ ગયુ છે

ધર્મ વદન્તીતિ જ્ઞાન્યાઃ, યથૈવેશપિકા ઉલ્લુકમાવન પદાર્થાનામાવિર્માવનં મન્યન્તે, તથા સમીધાનમ્, ધર્મનિરૂપણં મનુષ્યમન્તરેણ ન સંભવતિ, છોડપિ યદિ ધાર્મિકર્મ ક્ષયે સતિ નિરાવરણદ્વાનાડઙ્ગિર્માવેન સર્વજ્ઞતાપ્તપલમત । પર્વમૂત સર્વજ્ઞ સ્વયં કૃતાર્થોડપિ પ્રાપ્તિર્ના હિતાય દ્વાદશવિધપર્પદિ ધર્મ નિરૂપયતીત્યુપપદ્યતે । ક્ય નુ નામ તીર્થકૂરકે સિવાય ધર્મકા ઉપદેશ અન્ય છદ્મસ્થજન નહીં કર સકતે હૈ ક્યોં કિં વે આત્મા ઓર સસારકે સ્વરૂપક વાસ્તવિક જ્ઞાતા નહીં હોતે હૈ ।

માવાર્થ—તીર્થકૂર હી ધર્મોપદેશક હોતે હૈ, ક્યોં કિં વે સર્વજ્ઞ હૈ । અત તીર્થકૂરપ્રણીત મુત્સચારિત્રરૂપ ધર્મ હી સચ્ચા હૈ; અન્ય છદ્મસ્થજન પ્રણીત નહીં ! જ્ઞાન્ય લોગ જો યહ કહતે હૈ કિં કુલ્પવાદિક ધર્મકા નિરૂપણ કરતે હૈ । તથા અજ્ઞાની વૈશેષિક જો યહ કહતે હૈ કિં પદાર્થોકા આવિર્માવન ઉલ્લુકમાવસે હી હોતા હૈ, સો ડનકી યહ માન્યતા ઠીક નહીં હૈ; ક્યોં કિં ધર્મકા નિરૂપણ ડમ મનુષ્યકે વિના સંભવિત નહીં હોતા હૈ કિં જિસને ધાર્મિકા કર્મોંક અમાવસે કેવલજ્ઞાનકી પ્રાપ્તિ સે સર્વજ્ઞતા પ્રાપ્ત ન કર સી હો । ધાર્મિકા કર્મોંક વિનાયાસે કેવલજ્ઞાન કી વદ્મૂતિ હોતી હૈ ઓર હસીકી ઉપલબ્ધિકા નામ સર્વજ્ઞતા હૈ । જો સર્વજ્ઞ હોતે હૈ વે કૃતાર્થ હોતે હૈ, ડનકી પ્રત્યેક જ્ઞાપૈં નષ્ટ હો જાતી હૈ, સંસારમેં કોઈ બી યેસા પદાર્થ નહીં હોતા હૈ જિસકી ડન્હૈં બાહ્યા હો । કૃતકૃત્ય હોને પર બી વે મન્ય જીયોંકિ પુણ્યકે ઉદય યથ યોગોંકે સન્નાય

ઉપદેશ બીજા છદ્મસ્થજન કરી શકતા નથી, કેમ કે જે આત્મા તથા સસારના સ્વરૂપના વાસ્તવિક ભણુકાર નથી હોતા

જ્ઞાન્યાઃ—તીર્થકૂર જ ધર્મોપદેશક હોય છે; કેમ કે જે સર્વજ્ઞ છે એટલે તીર્થકૂર પ્રણીત મુત્—આચારિત્રરૂપ ધર્મ જ સાચો છે, બીજા છદ્મસ્થજન પ્રણીત નહિા શાક્યલોક જે કોણ કહે છે કે કુલ્પવાદિક ધર્મનું નિરૂપણ કરે છે તથા અજ્ઞાની વૈશેષિક જે કોણ કહે છે કે પદાર્થોના આવિર્ભાવન ઉલ્લુકમાવશી જ થાય છે એમની બધા માન્યતા બરાબર નથી, કેમ કે ધર્મનું નિરૂપણ એવા મનુષ્યના વચર સંભવિત બનતું નથી કે એણે ધાર્મિકા કર્મોના બાબતથી કેવલજ્ઞાનની પ્રાપ્તિથી સર્વજ્ઞતા પ્રાપ્ત કરી ન હોય. ધાર્મિકા કર્મોના વિનાયાથી કેવલજ્ઞાનની વદ્મૂતિ થાય છે અને એની ઉપલબ્ધિનું નામ સર્વજ્ઞતા છે જે સર્વજ્ઞ બને છે તે કૃતાર્થ હોય છે. એમની પ્રત્યેક જ્ઞાતાઓ નાજ થઈ ગઈ હોય છે સસારમાં કોઈ પણ એવો પદાર્થ નથી દેખાતો એની એમને બાહ્યા હોય. કૃતકૃત્ય હોવા છતાં પણ તેઓ અન્ય એવાને પુરસ્કાન ઉદય અને મોએના સદ્ભાવથી

વોધકઃ પ્રથમોદેશઃ પ્રારમ્ભ્યતે । તત્ત્વાદો યથાઽપસ્થિતસકલપદાર્થતત્ત્વજ્ઞા નરા એવા-
નુપમં ધર્મમુપદેષ્ટુમર્હન્તીતિ વોધયિતુમાહ—‘ઓવુજ્જમાણે ’ ઇત્યાદિ ।

મૂલમ્—ઓવુજ્જમાણે ઇહ માણવેસુ અઘ્ખાતિ સે ણરો જસ્સિ-
માઓ જાતીઓ સવ્વઓ સુપડિલેહિયાઓ ભવંતિ, અઘ્ખાઇ સે
પાણમણેલિસં ॥ સૂ૦ ૧ ॥

છાયા—અવબુધ્યમાનઃ ઇહ માણવેષુ આઘ્યાતિ સ નરઃ । યસ્યેમા જાતયઃ
સર્વતઃ મુપતિલેખિતા ભવન્તિ, આઘ્યાતિ સ જ્ઞાનમનીદશમ્ ॥ મુ૦ ૧ ॥

ટીકા—ઇહ=અસ્મિન્ લોકે માણવેષુ=મનુષ્યેષુ યઃ અવબુધ્યમાનઃ=નિરાવરણ-
જ્ઞાનસદ્ભાવાદાત્મનઃ સસારસ્ય ચ યથાર્થસ્વરૂપ સમ્યગ્જ્ઞાનન્ અસ્તિ, સ નરઃ=
અઘાતિરૂમ્ચતુષ્ટયસદ્ભાવાદ્ મનુષ્યદેહાપસ્થિતઃ સન્ અનીદશમ્=અનુપમમ્-પ્રશસ્ય-
તમ્-સમ્યગિતિ યાવત્, જ્ઞાનમ્=શ્રુતચારિત્રધર્મમ્, અત્ર જ્ઞાનમિત્યનેન જ્ઞાનં જ્ઞાન-
કાર્યં ચ ઉપલક્ષ્યતે; આઘ્યાતિ=મનુષ્યેભ્યો વદતીત્યર્થઃ । તીર્થઙ્કરા એવ સર્વજ્ઞાઃ
ભવન્તિ, અતસ્તદુક્તઃ શ્રુતચારિત્રધર્મ એવ સમ્યગિતિ ભાવઃ । યત્તુ કુહ્યાદયોઽપિ

ઉદ્દેશકા પ્રારમ્ભ કરતે હૈ । ઉનમે સવસે પહિલે સૂત્રકાર યહ વતલાતે હૈ
કિ જો પદાર્થ જિસ સ્વરૂપસે અવસ્થિત હૈં ઉન સકલ પદાર્થોં કો ઉસી
સ્વરૂપસે જાનનેવાલે મનુષ્ય હી અનુપમ ધર્મકે કથન કરનેકે યોગ્ય હો
સકતે હૈ । ઈસી વાતકો સમજાનેકે લિયે સૂત્રકાર કહતે હૈ—
“ઓવુજ્જમાણે ” ઇત્યાદિ ।

હસ ચરાચર સંસારમેં જિન મનુષ્યોંકો નિરાવરણજ્ઞાનકી પ્રાપ્તિ હો
ચુકી હૈ ઓર ઈસીસે જો આત્મા એવં સસારકે વાસ્તવિક સ્વરૂપકે જ્ઞાતા
હુએ હૈં, વે મનુષ્ય અઘાતિયા કર્મોંકે સદ્ભાવસે મનુષ્ય શરીરમેં સ્થિત હો
કર હી સમ્યક્ જ્ઞાન ઓર ઉપલક્ષણસે ઉસકે કાર્યસ્વરૂપ અનુપમ સન્નિ-
શ્રુતચારિત્રરૂપ ધર્મકે ઉપદેષ્ટા અન્ય સંસારી જીવોંકે લિયે હોતે હૈં ।

છે તે સકલ પદાર્થોને તે સ્વરૂપથી જાણવાવાળા મનુષ્ય જ અનુપમ ધર્મનું
કથન કરવા યોગ્ય તની શકે છે આ વાત સમજાવવા માટે સૂત્રકાર કહે છે—

“ ઓવુજ્જમાણે ” ઇત્યાદિ

આ ચરાચર સંસારમા જે મનુષ્યોને નિરાવરણ જ્ઞાનની પ્રાપ્તિ થઈ ચૂકી
છે અને એનાથી જે આત્મા તથા સંસારના વાસ્તવિક સ્વરૂપના જાણકાર બનેલ
છે તે મનુષ્ય અઘાતિયા કર્મોના સદ્ભાવથી મનુષ્યશરીરમા સ્થિત થવા છતાં
સમ્યક્જ્ઞાન અને ઉપલક્ષણથી એના કાર્યસ્વરૂપ અનુપમ—સાચા શ્રુતચારિત્રરૂપ
ધર્મના ઉપદેશક અન્ય સંસારી જીવો માટે થાય છે તીર્થંકરના સિવાય ધર્મનો

કેવલી ભુતકેવલી ચ ખનીશ્વરમ્=અનુપમં-સમ્યક્ પ્રવક્તા, જ્ઞાન=ભુતચારિત્રમ્
માસ્માતિ । તીર્થંકુરવ્યંચતુર્વશપૂર્વધરોષિ સર્વોષમં ધર્મમુપવિશતીત્યર્થઃ । મૂં ૧ ॥

સ તીર્થંકુર કથ્યંમૂતાન્ મનુષ્યાન્નુપવિશતીતિ જિજ્ઞાસાયામાહ-‘સે કિદ્દહ’
ત્યાદિ ।

મૂલ્ય-સે કિદ્દહ તેસિં સમુદ્ધિયાણ નિષિલ્લત્તદહાણ સમા
દિયાણ પદ્ધાણમતાણ હહ મુત્તિમગ્ગ, ય્વમપિ ય્ગે મહાવીરા
વિપ્પરિક્કમતિ, પાસહ ય્ગે વિસાયમાણે અણત્તપણ્ણે ॥ સૂં ૨ ॥

છાયા-સ કીર્તયતિ ત્વણં સમુત્પિતાનાં નિસિલ્લદ્ધાનાં સમાહિતાનાં પ્રજ્ઞાન-
વતામ્ હહ મુક્તિમાર્ગમ્, ય્વમપિ એકે મહાવીરા વિપરાક્રમન્તે, યદ્યત્ત એકમ્
વિપીદતઃ અન્યપ્રમજ્ઞાન્ ॥ સૂં ૨ ॥

તીર્થ-સ તીર્થંકુરગણધરાદિઃ, હહ=અસ્મિન્ મનુષ્યલોક સમુત્પિતાનાં-
પરમાચરણાર્થમુદ્ધતાનાં, નિસિલ્લદ્ધાનાં=પાણિર્વિસાનિદ્ધાનાં, સમાહિતાનામ્=અન્ય

માધાર્થ-યહ પહિણે જો કહા હે કિ તીર્થંકુર પ્રમુ ધર્મકા ઉપદેશ
વેતે હે? યા કોઈ અન્ય મી?; સો હસ શિષ્યકી આશાહુકા યહ ઉત્તર હે
હસમેં યહ પતલાયા ગયા હે કિ તીર્થંકુરકે અતિરિક્ત કેવલી ઔર ભુત
કેવલી-ચતુર્વશ પૂર્વધર મી સર્વોત્તમ હસ ભુતચારિત્રરૂપ ધર્મકા મધ્ય
જીવોંકો ઉપદેશ વેતે હે ॥ સૂં ૧ ॥

હે તીર્થંકુર કિસ પ્રકારકે મનુષ્યોંકો ધર્મકા ઉપદેશ વેતે હે-હસ
પ્રકારકી જિજ્ઞાસાકે હોને પર સૂત્રકાર કહતે હે-“સે કિદ્દહ” ત્યાદિ।

હે તીર્થંકુર મગવાન્ અથવા ગણધરાદિ હસ મનુષ્ય લોકમેં એસે જીવોં
કો સમ્યગ્દર્શન, સમ્યક્ જ્ઞાન ઔર સમ્યક્ ચારિત્રરૂપ મુક્તિકે માર્ગ
(ધર્મ)કા ઉપદેશ વેતે હે જો ધર્મકે આચરણ કરનેકે લિયે ઉચિત્ત હે,

શાબાર્થ-આ પહેલાં જે કહ્યું છે કે તીર્થંકુર પ્રમુ ધર્મને ઉપદેશ આપે
છે? અથવા બીજા પણ? આ પૂર્વોક્ત શિષ્યની આશા કાને આ ઉત્તર છે આમાં જે
જવાબુ છે કે તીર્થંકુર શિવાય કેવલી અને ભુતકેવલી-ચતુર્વશ પૂર્વધર પણ સર્વુષ
રીતે ભુતચારિત્રરૂપ ધર્મને જાણ લેવાને ઉપદેશ આપે છે

જે-તીર્થંકુર મનુષ્યોને કયા પ્રકારના ધર્મને ઉપદેશ આપે છે, આ પ્રકાર
ની જિજ્ઞાસા હોવાથી સૂત્રકાર કહે છે- ‘સે કિદ્દહ’ ત્યાદિ

જે તીર્થંકુર મગવાન અથવા ગણધરાદિકે જેવ આ મનુષ્ય લોકમાં જેવા
લેવાને સમ્યક્ દર્શન સમ્યક્ જ્ઞાન અને સમ્યક્ ચારિત્રરૂપ મુક્તિમાર્ગ (ધર્મ)
ને ઉપદેશ આપે છે જે ધર્મનું આચરણ કરવા માટે ઉત્સુક હોય ॥ માણી

જડસ્વરૂપઃ કુડ્યાદિઃ જ્ઞાનાવરણીયાઅષ્ટવિધકર્મપાશવદ્વસ્તિર્યક્ પ્રાણી ચ સર્વજ્ઞીત-
રાગસમરુક્ષતા પ્રાપ્તુર્મર્હતિ, યોગ્યધર્મનિરૂપણ કર્તુ પ્રમત્તિ ? ।

નનુ કિં તીર્થંકર એવ ધર્મમાલ્યાતિ ? ક્ષિપ્રુતાન્યોડપિ ? ઇતિ શિષ્યજિજ્ઞાસા-
યામાહ—‘યસ્યેમા’ ઇત્યાદિ । યસ્ય=કેવલિનઃ શ્રુતકેવલિનશ્ચડમા પ્રત્યક્ષભૂતાઃ
જાતય એકેન્દ્રિયાદિજાતયઃ સર્વતઃ=સર્વપ્રકારઃ સૂક્ષ્મમાદરપર્યાપ્તાપર્યાપ્તરૂપઃ સુપ્ર-
તિલેખિતાઃ=અજ્ઞાનસશયવિપર્યાસનિરાકરણેન યવાર્થતો જ્ઞાતા મત્તિ, સ નરઃ
સે સમવસરણ મે પ્રાણિયોકો હિતાવહ ઉપદેશ દેતે હ—ધર્મકી પ્રરૂપણા
કરતે હૈ । જવ ધર્મકી પ્રરૂપણા કરના સર્વજકે આધીન હૈ તવ યહ કૌન
સચેતન પ્રાણી માન સકતા હૈ કિ જડ સ્વભાવ-અચેતન કુડ્યાદિક
(મિત્તિ આદિ) તથા અષ્ટવિધ કર્મરૂપી પાશસે જકડા હુઆ તિર્યચ્ચ
પ્રાણી સર્વજ્ઞકી સમકક્ષતાકો પાનેકે લાયક હો સકતા હૈ ? અર્થાત્-
ઉસસે યોગ્ય ધર્મકી પ્રરૂપણા હો સકતી હૈ ? યા વહ યોગ્ય ધર્મકી પ્રરૂપણા
કરનેકે લિયે શક્તિશાલી હો સકતા હૈ ? કદાપિ નહી ।

તીર્થંકર પ્રશ્ન હી ધર્મકી દેશના દેતે હૈ યા ઓર ખી કોઈ દેતા હૈ ?
હસ પ્રકાર શિષ્યકી શઙ્કાકે નિવારણાર્થ “યસ્યેમાઃ” ઇત્યાદિ સૂત્રાંશકી
પ્રરૂપણા કરતે હુઅ સૂત્રકાર કહતે હૈ કિ કેવલી ઓર શ્રુતકેવલી ખી
ધર્મકી પ્રરૂપણા કરતે હૈ । ક્યોં કિ ઉનકે નિર્દોષ-સશય, વિપર્યય ઓર
અનધ્યવસાયરહિત જ્ઞાનસે વે પ્રત્યક્ષભૂત એકેન્દ્રિયાદિક જાતિયાં સૂક્ષ્મ,
બાદર, પર્યાપ્ત ઓર અપર્યાપ્તરૂપસે ખલીખાંતિ જાને હુઅ હોતે હૈ ।

સમવસરણમા પ્રાણીયોને હિતાવહ ઉપદેશ આપે છે—ધર્મની પ્રરૂપણા કરે છે
ન્યારે ધર્મની પ્રરૂપણા કરવી સર્વજ્ઞને આધીન છે ત્યારે એવો કયો સચેતન
પ્રાણી માની શકે છે કે જડસ્વભાવ અચેતન કુડ્યાદિક (ભીત આદિ) તથા
અષ્ટવિધકર્મરૂપી પાસથી જકડાયેલા તિર્યચ પ્રાણી સર્વજ્ઞની સમકક્ષતાને મેળ-
વવા લાયક ખની શકે છે ? અર્થાત્—એનાથી યોગ્ય ધર્મની પ્રરૂપણા થઈ શકે છે ?
અથવા તે યોગ્ય ધર્મની પ્રરૂપણા કરવા માટે શક્તિશાળી ખની શકે છે ?
કદાપિ નહિ (કોઈ કાળે નહિ)

તીર્થંકર પ્રશ્ન જ ધર્મની દેશના આપે છે—અથવા ખીજા પણ કોઈ આપે
છે ? આ પ્રકારની શિષ્યની શકાના નિવારણાર્થ “યસ્યેમા” ઇત્યાદિ સૂત્રાંશની
પ્રરૂપણા કરતા સૂત્રકાર કહે છે કે કેવલી અને શ્રુતકેવલી પણ ધર્મની પ્રરૂપણા
કરે છે, કેમ કે નિર્દોષ-સશય, વિપર્યય અને અનધ્યવસાય રહિત જ્ઞાનથી એ
પ્રત્યક્ષભૂત એકેન્દ્રિયાદિક જાતિઓને સૂક્ષ્મ, બાદર, પર્યાપ્ત અને અપર્યાપ્તરૂપથી
સારી રીતે જાણતા હોય છે

પાસપિતુમમત્તુચાન્ પશ્યતઃ—અવલોક્યતેત્સર્પઃ ॥ સૂં ૨ ॥

કિંચ—‘ સે વમિ ’ ઇત્યાદિ ।

મૂલ્મ—સે વેમિ, સે જહાનામપ કુમ્મે હરપ વિણિવિટ્ઠવિસે પચ્છપ્પલાસે ઉમ્મગ્ગ સે નો લહ્હ ॥ સૂં ૩ ॥

છાયા—સ પ્રવીમિ, તથયાનામકઃ કુર્મો હ્રદે વિનિવિટ્ઠવિસઃ પલાશ્મચ્છમઃ ઉન્માર્ગી સ ન સમત ॥ સૂં ૩ ॥

ટીકા—સ’=મગ્ગન્નુસ્તાદ્વગતતત્ત્વઃ અઈ પ્રવીમિ=અનાસ્મપ્રજ્ઞસ્ય દષ્ટાન્તં ક્ષયયામિ । તથયા નામક’=કથિત્ કુર્મઃ=કચ્છપ’, હ્રદે=જલાશય વિનિવિટ્ઠવિસઃ=સમાસક્રમનાઃ, અપિ ચ પલાશ્મચ્છમઃ=મૂલસૈવાલ્મલ્લિનીપથૈરાચ્છાદિતઃ । સૂત્રે તુ પ્રાકૃતતાત્ મચ્છમચ્છમ્સ્ય ધ્યસ્યયન પૂર્વનિપાત । ઉન્માર્ગમ્=કર્ણમાર્ગ-જલાદ્ વર્ણિર્લેષં ન સમતે, તથા સા=અનાસ્મપ્રજ્ઞઃ ઉન્માર્ગમ્=કર્ણમાર્ગ-મોક્ષમાર્ગ ન સમત ઇત્યર્થઃ । યયા જલાશયસમાસક્રતાન્નસૈવાલ્મલ્લિનીપથાચ્છાદિતસ્વાશ્ચ કચ્છપો હ્રદ્ એવ તિવ્રદિ ન જલાદ્વર્ણિર્લેષં માન્નોતિ, તથાજ્નાસ્મપ્રજ્ઞ’ સસારમહાદે

જો શિથિલ હૈ—વસ તરફ જિનકો પ્રવૃત્તિ નહીં હૈ, એસે વેસે જાતે હૈ ॥ ૨ ॥

તથા—“ સે વમિ ” ઇત્યાદિ ।

સૂત્રકાર કહતે હૈં કિં મેં અનાસ્મપ્રજ્ઞકા દષ્ટાન્ત કહતા હું । જિસ પ્રકાર મહાદે (દ્રહ) આદિ જલાશયમેં રહતા હુઆ કચ્છપ વસમેં રહે હુપ જલ સૌચાલ ઔર કમલપત્રોસે ઢકા રહને પર જલસે બાહર હોકર-તટ નહીં પાતા હૈ, વસી પ્રકાર જા અનાસ્મપ્રજ્ઞ હૈં વહ મીં જય તક સંસાર સે બાહર નહીં હોતા તથ તક મુક્તિકે માર્ગકો પ્રાપ્ત નહીં કરતા હૈં ।

ભાવાર્થ—જેસે જલાશયમેં રહા હુઆ કચ્છપ કિં જિસકી માવના વસસે બાહર નિકલનકી નહીં હૈ, પ્રત્યુત વસીમેં રહનેકે લિપે જિસકા

નથી, એવા દેખાય છે (સૂ. ૨)

તથા—“ સે વમિ ’ ઇત્યાદિ ।

સૂત્રકાર કહે છે કે હું જ્ઞાત્મપ્રજ્ઞનું દષ્ટાન્ત કહું છું. જે સીતે મહાદેવ (દ્રહ) આદિ જ્ઞાતશયમાં રહેવાર કાચબો તેમાં રહેલા જળા, સેવાળ અને કમળપત્રોથી ઢાંકેલા રહેવાથી બહાર નીકળી કિનારો મેળવી શકતો નથી એવ પ્રકારે જે જ્ઞાત્મપ્રજ્ઞ છે એ પણ જ્યાં મુખી સત્ત્વારથી બહાર નથી ચલે તેમાં મુખિતના માર્ગને મેળવી શકતો નથી.

ભાવાર્થ—જેવી સીતે જ્ઞાતશયમાં રહેલા કાચબો કે જેની શાપના બહાર નિકળવાની નથી પણ તેમાં રહેવાને માટે જેનું મન આસક્ત છે અને તેમાં

મનસા પ્રજ્ઞાનવતા=હેયોપાદેયબુદ્ધિમતા મનુષ્યાણાં મુક્તિમાર્ગ=સમ્યગ્દર્શનજ્ઞાનચારિત્રરૂપ કીર્તયતિ=કથયતિ । एवं भगवता गणधरादिना वा मोक्षमार्गे प्रतियोधिते सति एके केचिद् महावीराः कर्मरिपून् विनाशयितुं सयमरणाङ्गणे विपराक्रमन्ते=વિશેષેणाત્મનઃ શક્તિ પ્રકટીકુર્વન્તિ । एकान्=કાશ્વિત્ મોહવિવશાન્ કાતરાન્ અન્યત્રપ્રજ્ઞાન્=ભગવદ્દેશનેતરવિષયસલ્ગ્નોપયોગાન્ અતएव-વિપીદતઃ=પ્રિયવિયોગા-પ્રિયસંયોગેષ્વિતાનવાસિપ્રભૃતિભિઃ પીડ્યમાનાન્ પશ્યત, યદ્વા-‘અણત્તપન્ને’ इत्यस्य -‘અનાત્મપ્રજ્ઞાન્’ इतिच्छाया । आत्मने हिता प्रज्ञा-आत्मप्रज्ञा अविद्यमानाऽऽत्म-प्रज्ञा येषां ते अनात्मप्रज्ञा, तान् विपीदतः=સયમારાધને શ્લથીમવતઃ-સયમં પ્રાણિયોંકી હિંસાકા જિન્હોને પરિત્યાગ કર દિયા હૈ, अपने धर्मकर्मके आचरणमें ही जिनका मन तल्लीन रहता है, और जो हेय और उपादेयकी बुद्धिसे समन्वित है । इस प्रकार भगवान् वा गणधरादिकोंके द्वारा मुक्तिका मार्ग समझाये जाने पर भी कोई एक मनुष्य कर्मरूपी शत्रुओंको परास्त करनेके लिये संयमरूपी युद्वांगणमें विशेषरूपसे अपनी शक्ति प्रगट करते हैं, कोई एक मोहसे कातर बने हुए अन्यत्र-स्त्री पुत्र आदि सांसारिक पर पदार्थोंमें-जो भगवान्की देशनासे बाह्य-भिन्न विषय हैं उनमें-फँसे रहते हैं और निरन्तर इष्ट-प्रिय-वियोग और अनिष्ट-सयोग तथा अभिलषितकी अप्राप्ति आदिसे पीडित होते देखे जाते हैं । “अणत्तपन्ने” इसकी संस्कृत छाया “अनात्मप्रज्ञान्” भी है । इसका अर्थ होता है, कि जो आत्मप्रज्ञावाले नहीं हैं-अर्थात् आत्माकी हितकारक बुद्धिसे जो शून्य हैं, अतएव सयमके पालनके लिये

ઓની હિંમનો જેમણે પરિત્યાગ કરેલ છે, પોતાના ધર્મકર્મના આચરણમા જેનુ મન તલ્લીન રહે છે, અને જે હેય અને ઉપાદેયની બુદ્ધિથી સમન્વિત (યુક્ત) છે આ પ્રકારે ભગવાન અથવા ગણધરાદિકોદ્ધારા મુક્તિનો માર્ગ સમજાવવામા આવ્યા છતા પણ કોઈ એક મનુષ્ય કર્મરૂપી શત્રુઓને પરાસ્ત કરવામા સયમરૂપી યુદ્ધભૂમિમા વિશેષરૂપથી પોતાની શક્તિ પ્રગટ કરે છે કોઈ એક મોહપાસમા બધાઈને સ્ત્રી પુત્ર આદિ સાંસારિક પદાર્થો કે જે ભગવાનની દેશનાથી બાહ્ય-ભિન્ન વિષય છે એમા ફસાઈ રહે છે અને નિરન્તર ઇષ્ટ-પ્રિય-વિયોગ તથા અનિષ્ટ સયોગ અને અભિલષિત અપ્રાપ્તિરૂપ પીડાઓથી પીડિત થતા દેખાય છે “અણત્તપન્ને” આની સંસ્કૃત છાયા “અનાત્મપ્રજ્ઞાન્” પણ છે આનો અર્થ એ થાય છે કે જે આત્મપ્રજ્ઞાવાળા નથી અર્થાત્ આત્માની હિતકારક બુદ્ધિથી જે શૂન્ય છે, અતएव સયમના પાળવામા જે શિથિલ છે-એ તરફ જેની પ્રવૃત્તિ

कीयधीनां प्रवेशयोर्ध्वप्रदेशे बभूवुःप्रचारं धमे । ततोऽसौ शरषन्त्रिकया शुक्लीकृते
बहुतरतारकासमंकृते गगनतलं विधोतमानं पूर्णचन्द्रमलाकयत् । तदपलोका-
मनं चातीव प्रमुदितस्य तस्य मनसि निचारः समुदपद्यत, यदि मदीययान्मया एषत्
स्मांसद्वयमदृष्टपूर्वं पश्यन्ति ततः शोभनं मयदित्येतद्विधायकं यन्धूनामं वेपणार्थमितथे
तत्र यन्धूनाम् । संभाष्य च निजान् परिवारान् पुनरपि तत् विवरं मार्गयितुं सर्वतः
पर्यटति स्म । जलाशयस्य तस्य निस्तीर्णतया तदुदकमाधुर्याच्च पुनरसौ तद् विवरं
न खेमे । तद्वा संसारद्वन्द्वे जीवकच्छपः कर्मजैवालविषयादि मनुष्यार्थक्षेपसुक-

एक कछुवा घूमता २ वहाँ पर आ निकला। उसने उस शैवालके विवरमें
अपनी ग्रीवाको निकाल कर ऊपरको देखना प्रारंभ किया तो क्या
देखता है कि शरदकालीन चन्द्रिका-ज्योत्स्नासे शुभ्र एवं अनेक तारोंसे
प्रकाशित आकाशमें पूर्ण चन्द्रमण्डल चमक रहा है। उसे देखकर वह
चित्तमें अत्यन्त प्रसन्न हुआ और विचारने लगा-कि अहा! यह कितना
सुरम्य दृश्य है। यदि मेरे समस्त कण्डुजन इस अदृष्ट पूर्व स्वर्गं जैसे
सुन्दर प्रदेशको देखे तो बहुत भयान हो। ऐसा निश्चय कर वह अपने
कण्डुओंकी भोजनमें वहाँसे निकला और इधर उधर घूम २ कर उनकी
तपास करन लगा। जब वे सब उसे मिल गये तो वह उन्हें साथ छे
कर उस विवरकी ओर चला, परन्तु यह जलाशय अधिक विस्तृत
और अधिक पानीसे पूर्ण भरा हुआ था, इसलिये उसे वह विवर फिर
न मिल सका। इसी प्रकार यह अनात्मप्रज्ञ जीवरूपी कछुआ भी इस
संसाररूप्य द्वन्द्वमें पड़ा हुआ है और कर्मरूपी शैवालक विवरसे

हमी उपर नेवा भांडसु तो गुंलुमे छे के शरदकालीन चन्द्रिका-ज्योत्स्नाधी
शुभ्र अने अनेक तारोंकी प्रकाशित आकाश के नेवा पूवु चन्द्रमण्डल चमक
रह्य छे ते नेछ भनभा अत्यन्त पुरी उपल अने विचारना लाग्ये के अह।
हेतु सुख्य हस्य छे के भास समस्त कण्डुजन अदृष्ट पूर्व स्वर्गं ७वा
सुन्दर प्रदेशने लुमे तो पछु साईं भाव. नेवा निश्चय करी ते पिताना समु
धमनी रोषभा नीकलो अने आये अनजो हरी नेनी तपास करे भांडसु,
अधारे जभा तेने भगी अध त्साहे ते के जभाने साथभां लछ छिदनी
तरे आये, परंतु जलाशय पून मोर्दु जर्तु अने जलभी पूरेपूरे नरेव कर्तु
आधी नेने के छिद हरी भगी शकु नही आ ज रीते अनन्तमप्रज्ञ लवइपी
धम्ये पवु असाइपी अहभा पडेव छे अने कर्मरूपी शैवालका विवरसे

વિષયનિવિષ્ટચિત્તત્વાત્ કર્મપટલાચ્છાદિતત્વાન્ન તત્રૈવ નિમજ્જન્ અવતિષ્ઠતે, ન તુ મોક્ષમાર્ગ પ્રાપ્નોતીતિ ભાવઃ ।

યદ્વા-ઉન્માર્ગમ્-ઉર્ધ્વમાર્ગં વિવરરૂપં ન લભતે । અયં ભાવઃ-કથિન્મહાહદઃ શૈવાલાચ્છાદિતો વિવિધજલચરાશ્રય આસીત્ । તત્રૈકદા તત્તટસ્થજમ્બૂદ્વૃક્ષસ્ય સુપક્વ ફલમેક શૈવાલોપરિ નિપપાત, યેન શૈવાલમધ્યે કચ્છપગ્રીવામાત્રપ્રમાણ વિવરં સજાતમ્ । અથ નિજયૂથપરિશ્રષ્ટઃ કથિત્ત કચ્છપો ભ્રામ્યન્ શૈવાલમધ્યગતે વિવરે સ્વ-

ચિત્ત આસક્ત હૈ ઓર જો ઉસમેં રહનેસે હી જલ, શૈવાલ, કમલિનીકે પત્રોસે લિપટા રહતા હૈ, કમી મી વહ હદ (દ્રહ)સે વાહર નહીં હોતા, પ્રત્યુત ઉસીમેં મગ્ન રહતા હૈ, ઉસી પ્રકાર જો અનાત્મપ્રજ્ઞ હૈં વે સસાર રૂપી મહાહદમેં વિષયોમેં આસક્ત તથા કર્મપટલસે આવૃત્ત હોનેકે કારણ ઢૂબતે ઉતરાતે રહતે હૈં ઓર મુક્તિકે માર્ગસે સદા વચિત બને રહતે હૈં ।

અથવા-ઉન્માર્ગ શબ્દકા અર્થ વિવર (છિદ્ર) રૂપ ઉર્ધ્વમાર્ગ હૈ । મહાહદકે કચ્છપકી, તરહ અનાત્મપ્રજ્ઞ જીવ હસ માર્ગકો નહીં પાતે હૈં । જૈસે કોઈ એક મહાહદ થા । ઉસમેં વહુત ઝયાદા શૈવાલ-કાઈ છાઈ હુઈ થી । ઉસમેં અનેક જલજન્તુ રહતે થે । ઉસકે તટ પર એક જામુનકા વૃક્ષ મી થા, જો પકે હુએ ફલોસે લદાલદ ભરા હુવા થા । ઉસમેંસે એક જામુન ટૂટ કર ઉસ મહાહદકી શૈવાલ પર જા ગિરા । ઉસકે ગિરનેસે ઉસ શૈવાલપટલમેં કચ્છપકી ગરદન પ્રમાણ જિતના એક છિદ્ર હો ગયા । હસકે કુછ સમય બાદ અપને સમુદાય-સાધિયોસે વિયુક્ત હુઆ કોઈ

રહેવાથી જે જળ, સેવાળ, કમળપત્રોથી લપટાઈ રહે છે, ક્યારેય તે જળાશયથી બહાર નથી નીકળતો, પણ તેમાજ મગ્ન રહે છે એ જ રીતે જે અનાત્મપ્રજ્ઞ છે, તે સસારરૂપી મહાહદમા વિષયોમા આસક્ત તથા કર્મથી ઘેરાયેલ હોવાને કારણે કુબલો-અથડાતો રહે છે અને મુક્તિના માર્ગથી સદા વચિત બને છે

અથવા-ઉન્માર્ગ શબ્દનો અર્થ વિવર (છિદ્ર) રૂપ ઉર્ધ્વમાર્ગ છે મહાહદના કાચબાની માફક અનાત્મપ્રજ્ઞ જીવ એ માર્ગને મેળવી શકતા નથી જેમ કોઈ એક મોટું જળાશય હતું એમા ઘણો જ સેવાળ-કીચડ બમેલ હતો એમા અનેક જળ-જ તુઓ રહેતા હતા એના કિનારે એક બાબુનુ ઝાડ હતું જે પાકેલા ફળોથી લચ્યુ પચ્યુ હતું તેમાથી એક બાબુ જળાશયમા સેવાળ ઉપર જઈ પડ્યું એના પડવાથી બમેલા સેવાળમા કાચબાની ડોક આવી શકે એવું છિદ્ર પડ્યું આના થોડા સમય બાદ પોતાના સાથી સમુદાયથી છુટો પડેલ એક કાચબો ત્યા આવી પહોંચ્યો તેણે તે સેવાળના છિદ્રની અંદર પોતાની ડોક

टीका=इय=यथा मल्लकाः=दूसाः समिधैः=स्पर्शक्रीय स्थानं न त्यजन्ति=कर्म परतन्त्रतया स्यादपरत्पमासाद्य नापसरन्ति। एषम्=अनेन प्रकारेण एके=अनात्मप्रज्ञाः, अनेककपपु=उच्चायवेपु कुलपु=उग्रमोगादिपु श्वाकादिपु च जाताः, रूपेपु=रूपादि विषयपु सक्ताः=वृद्धिमापन्ताः कस्य=सदुःखं स्तनन्ति=विलपन्ति, तथाहि-
“ क्षिमिदमचिन्तितमसदृष्टमनिष्टमतिकष्टमनुपमं दुःखम् । सहसैवोपनर्त मे, नैरपि कस्येव सत्त्वस्य ” ॥ १ ॥ इति ।

जैसे वृक्ष स्वावरनामकर्मके उदयकी परतन्त्रतासे स्वावरपर्यायकी प्राप्तिसे अपने स्थानको नहीं छोड़ते हैं इसी प्रकार जो अनात्मप्रज्ञ जीव हैं वे भी उग्रमोगादि उच्च एवं चण्डाल आदि नीच कुलोंमें उत्पन्न होकर रूपादिक एवं इन्द्रियोंके विषयोंमें अत्यन्त गूढ़ हो बुरी तरह चिह्नाते हैं—कहते हैं कि जिस प्रकार नारकी अभिन्तित असदृश अनुपम अनिष्ट और अतिकष्टप्रद दुःखोंको सहसा भोगते रहते हैं उसी प्रकार मेरी भी यही हालत है । इस प्रकारके ये दुःख मेरे ऊपर कहाँसे आ कर दूट पड़े ।

दुःखोंको भोगते हुए भी वे अनात्मप्रज्ञ जीव इनके मूलकारण कर्मोंसे बियुक्त नहीं होते हैं। यदि ऐसा ही होता कि जिन कर्मोंके उदय में जिनका फल भोग लिया जाय वेसे कर्म यदि नष्ट हो जाते या उनसे उनका छुटकारा हो जाता तो यह बात मानी जा सकती थी कि उन

जो वे वृक्ष स्वावरनामकर्मना उदयनी परतन्त्रताकी स्वावरपर्याय के जेमां जेक स्थलकी जीव स्थलमां अवर अवस्ती किया घटी नहीं अववा ते पोते ज्वां छे ते स्थलेशी इक्ष्वाभा पोतातु स्थान छोडी शकतु नहीं, आ प्रकारे जे अनात्मप्रज्ञ एव ॥ जे पक्ष उग्रमोगादि ज्वां अने ब्रह्म आदि नीच कुलोंमां उत्पन्न भईने इषादिक पाय इन्द्रियोना विषयोमा अत्यन्त भुञ्ज जनी भक्षण रीते दुजते रहै छे कहे छे के जे प्रकारे नारकी अभिन्तित असदृश अनुपम अनिष्ट अतिकष्टप्रद दुःखोंने बोजव्या करे छे, जे व सीते भारी पक्ष जे व ब्रह्म ॥ आ प्रकारनां जे दुःख भारा उपर कहाँनी आवीतुटी पज्यां

दुःखोंने बोजवता पक्ष जे अनात्मप्रज्ञ एव जेनां भूणकारण कर्मोंकी छुटते नहीं ब्रह्म जेनु छोट के जे कर्मोंना उदयमां जेनु इण बोजवनी देवामां आवे जेवां कर्म ब्रह्म नाश पाये अववा जेनाकी तेना छुटकारे भई अव ते जे बात मानी शकत के जे कर्मोंकी तेनी भुक्ति भई गयी, परतु जेव

લોત્પત્તિસમ્યક્ત્વપર્યન્તરૂપ વ્યોમતલં પ્રાપ્ય મોહનશાત્ સ્વજનચિન્તયા ભોગચિન્તયા
વા તતઃ પરાવૃત્તઃ સન્ પુનઃ સસારમહાહ્લદ એવ પર્યટતિ ન તુ મોક્ષમાર્ગં લભતે ।
તસ્માદ્ ભવશતસહસ્રદુર્લભં કર્મવિવરભૂત સમ્યક્ત્વં લઘ્વા નૈવ તત્ર પ્રમાદઃ
કાર્યં ઇતિ ॥ સૂ૦ ૩ ॥

અનાત્મપ્રજ્ઞાનામન્યમપિ દૃષ્ટાન્તમાહ—‘ભંજગા’ ઇત્યાદિ ।

મૂલમ્—ભંજગા ઇવ સંનિવેસં ણો ચયંતિ, એવં એગે અણેગ-
રૂવેહિં કુલેહિં જાયા, રૂવેહિં સત્તા કલુણં થયંતિ, ણિદાણતો
તે ણ લભંતિ મોક્ષવં ॥ સૂ૦ ૪ ॥

છાયા—મજ્જકા ઇવ સન્નિવેશ નો ત્યજન્તિ, એવમેકેડનેકરૂપેષુ જાતાઃ, રૂપેષુ
સક્તાઃ કરુણં સ્તનન્તિ, નિદાનતસ્તે ન લભન્તે મોક્ષમ્ ॥ સૂ૦ ૪ ॥

મનુષ્યપર્યાય, આર્યક્ષેત્ર, સુકુલમેં જન્મ ઓર સમ્યક્ત્વકા લાભરૂપ વ્યો-
મતલ (આકાશ) કી પ્રાપ્તિ કર મોહકે વશસે અપને સગે સમ્બન્ધિયોં
કી એવ ભોગોંકી ચિંતામેં ફેસ કર ડન સવ પ્રાપ્ત હુએ શુભ અવસરોંકો
વ્યર્થ ગવાં દેતા હૈ, ઓર સંસારરૂપી મહાહ્લદમેં હી પરિભ્રમણ કરતા રહતા
હૈ । વહાંસે વહ અપને ઉદ્ધારકે માર્ગકી ઓર નહીં વઢતા હૈ—મોક્ષકે
માર્ગકો નહી પાતા હૈ । ઇસલિયે સૂત્રકાર શિક્ષા દેતે, હૈં કિ—હે શિષ્યજન !
સમ્યક્ત્વકો કિ જિસકી પ્રાપ્તિ ઇસ જીવકો હજારોં ભવોંમેં મી દુર્લભ
હૈ ઓર જો કર્મોંકા વિવરભૂત હૈ, ડસે પ્રાપ્ત કર ફિર ડસકી રક્ષા કરને
મેં પ્રમાદ કરના ડચિત નહી હૈ ॥ સૂ૦ ૩ ॥

અનાત્મપ્રજ્ઞોંકે ડપર ઓર મી દૃષ્ટાન્ત સૂત્રકાર પ્રકટ કરતે હૈ—
‘ભંજગા ઇવ’ ઇત્યાદિ—

મનુષ્યપર્યાય, આર્યક્ષેત્ર, સુકુળમા જન્મ અને સમ્યક્ત્વના લાભરૂપ વ્યોમતળ
(આકાશ)ની પ્રાપ્તિ કરી મોહના વશ થઈ પોતાના સગા—સખ ધીઓની અને
ભોગોની ચિંતામાં ફસાઈ એને પ્રાપ્ત થયેલા બધા સુઅવસરને વ્યર્થ ગુમાવી દે
છે અને સંસારરૂપી મહાહ્લદમાં જ પરિભ્રમણ કરતો રહે છે એમાથી એ
પોતાના ઉદ્ધારના માર્ગની તરફ વધી શકતો નથી, મોક્ષના માર્ગને મેળવી
શકતો નથી માટે સૂત્રકાર શિક્ષા દે છે કે હે શિષ્યજન ! સમ્યક્ત્વ કે જેની
પ્રાપ્તિ હજારો ભવમાં પણ આ જીવને દુર્લભ છે અને જે કર્મના વિવરભૂત છે,
એને પ્રાપ્ત કરી તેની રક્ષા કરવામાં પ્રમાદ કરવો ડચિત નથી (સૂ૦ ૩)

અનાત્મપ્રજ્ઞો અજેળીજી દૃષ્ટાન્ત સૂત્રકાર પ્રકટ કરે છે—‘ભંજગા ઇવ’ ઇત્યાદિ.

અનાસ્મપ્રજ્ઞાનાં તેષુ તેષુ કુલેષુ જન્મ કસ્મૈ પ્રયોજનાય મણતી ? તિ મિજ્ઞા-
યાયામાર—‘અહૈ’ત્યાદિ ।

મૂચ્ચ—અહ પાસ તેર્હિ કુલેર્હિ આયત્તાય જાયા ॥સૂ૦૫॥

જાયા—અય પશ્ય તેષુ કુલેષુ આત્મસ્થાય જાતાઃ ॥ સૂ૦ ૫ ॥

ટીકા—અય હે શિષ્ય ! ત્વ પશ્ય, અનાસ્મપ્રજ્ઞાસ્તેષુ=તથાશયેષુ કુલેષુ આત્મ
સ્થાય=આરમ્ભકૃતકર્મવિપાકાનુમયાય જાતા =જન્મ પ્રાપ્તાઃ નાનાશિષ્યદુર્દશાપક્ષા મવ
ન્તિ, મતાઃ મુતપારિષ્કર્મપ્રમાણપનમય એયસ્કરમિતિ ॥ સૂ૦૫ ॥

ચિયુક્ત હોતે હુપ મી, મધુચિન્તુકી પ્રાપ્તિ કરનેકે લિયે લોલુપી પન હુપ
મનુષ્યકી તરહ, અત્ય સુસ્થ ખીર વુરન્ત વુ સોસે પરિપૂર્ણ ગૃહસ્થમાયકો
નહીં છોડતે હૈ ઓર વુ:સોસે વુન્વિત હોતે રહતે હૈ તો મી સમસ્ત
વુન્વોકી પરમ્પરાકા પ્રધાન કારણ જો કર્મચન્દ્ર હૈ વસસે ચિયુક્ત
નહીં હોતે હૈ ॥ સૂ૦ ૪ ॥

અનાસ્મપ્રજ્ઞોકા ઇન ૨ કુલોર્મૈ જન્મ કિસ પ્રયોજનકે લિયે હોતા હૈ
હસ પ્રકારકી જિજ્ઞાસામૈ સૂત્રકાર કહતે હૈ—“અહ પાસ” ત્યાદિ ।

સૂત્રકાર પૂર્વોક્ત જિજ્ઞાસાકા સમાધાન કરને નિમિત્ત શિષ્યજનસે
કહતે હૈ કિ હૈ શિષ્ય ! અનાસ્મપ્રજ્ઞોકા જો ઉચ્ચ મીચ કુલોર્મૈ જન્મ
હોતા હૈ અહ ઉનકે દ્વારા પૂર્વમૈ લિયે ગયે કર્મોર્મૈકે વિપાકકે અનુમય કરને
કે લિયે હોતા હૈ । કર્મોર્મૈકે જે કઠિનતર વિપાકોર્મૈકો મોગસે હુપ અનેક
પ્રકારકી વુર્વશાઓસે ગૃહીત હોત રહતે હૈ । હસલિયે જન વુ:સોસે
છુટકારા પાનકા હલાજ પક ગાહી હૈ કિ મુતપારિષ્કર્મ ધર્મકા આરાધન

પદી જવા કયા પશુ, મધુચિન્તુની પ્રાપ્તિ કરવા લેણુસ અનેલા મનુષ્યની માફક
જાણ મુખ અને અમચિત્ત હુ ખોથી પરિપૂર્ણ ગૃહસ્થમાયને છેડતો નથી અને
હુખોથી દુર્વચિત્ત થતો રહે છે તો પશુ સમસ્ત હુખોની પરમ્પરાનું કારણ જે
કર્મોર્મૈક છે એનાથી છૂટો થઈ શકતો નથી. (સૂ. ૪)

અનાસ્મપ્રજ્ઞાનેષુ તે તે કુળોર્મૈ જન્મ કયા પ્રયોજનથી થાય છે ? આ
પ્રકારની લજ્જાશામાં સૂત્રકાર કહે છે. “અહ પાસ” ત્યાદિ ।

સૂત્રકાર પૂર્વોક્ત લજ્જાશાનું સમાધાન કરવા નિમિત્તે શિષ્યજનથી કહે છે
કે હે શિષ્ય ! અનાસ્મપ્રજ્ઞાનેષુ જે ઉચ્ચ નીચ કુળોર્મૈ જન્મ થાય છે તે એના
દ્વારા પૂર્વનાં કર્મોર્મૈકાં કર્મોના વિપાકના અનુભવ કરવા માટે થાય છે
કર્મોર્મૈક જે કઠિનતર વિપાકોને મોગવતાં જે અનેક પ્રકારની દુર્દશાઓથી ઘેરાઈ
થાય છે આ માટે જે હુખોથી છુટકારો મેળવવાનો ઇલાજ એક જ છે જે

ફિન્તુ તે=અનાત્મપ્રજ્ઞાઃ નિદાનતઃ=દુઃખસ્ય મૂલકારણતઃ-કર્મત ઇત્યર્થઃ, મોક્ષમ્=વિયોગ ન લભન્તે, તપઃસયમાનાસેન નેન કર્મવન્માપગમ ન પ્રાપ્નુન્તીત્યર્થઃ।

અય ભાવઃ-યયા વૃક્ષાઃ શીતવાતાતપચ્છેદનભેદનશાખાકર્ષણમોટનભજ્જનાદિ-નાનાધિષોપદ્રવાન્ સહમાના અપિ સ્થાવરનામકર્મોદયાત્સ્વસ્થાનતો મિયુક્તા ન ન ભવન્તિ, તથા-અનાત્મપ્રજ્ઞાસ્તનયનિતાભિસ્તિરસ્કૃતા અપિ પિવિધાધિવ્યાધિપ-રિગ્રસ્તા અપિ, રાજપુરુષતસ્કરાદિભિઃ સર્વસ્માપહરણપુરસ્સર લુપ્તિતા અપિ, માતાપિતૃપુત્રકલત્રાદિભિર્વિયુક્તા અપિ, 'મધુવિન્દુ' ન્યાયેનાલ્પસુખદુરન્તદુઃખપરિ-પૂરિતગૃહસ્થભાવમપરિત્યજન્તઃ સકરુણ મિલપન્તિ, ફિન્તુ સકલદુઃખાનુપગ્નિવ-ન્ધનકર્મવન્ધતો વિયુક્તા નૈવ ભવન્તીતિ ॥ સ્વ૦ ૪ ॥

કર્મોસે ઉસકી મુક્તિ હો ચુકી, પરન્તુ એસા તો હોતા નહીં હૈ; ક્યોં કિ ફલ ભોગનેસે કર્મોંકા સર્વથા વિનાશ નહીં હોતા હૈ, પ્રત્યુત્તતપ ઓર સયમ કી આરાધનાસે હી જીવ કર્મોંસે છુટકારા-મુક્તિ પાતા હૈ । અનાત્મપ્રજ્ઞ મુક્તિકે કારણોસે પરે રહતે હૈ । મોક્ષકે સાધનોકા સેવન-આચરણ નહીં કરતે, અતઃ કર્મવન્ધસે રહિત બી નહીં હો સકતે હૈ ।

ભાવાર્થ—જિસ પ્રકાર વૃક્ષ, શીત, વાયુ, ધૂપ, છેદન, ભેદન, શાખા કા સેવના, ઉસકા મોડના ઓર કાટના આદિ અનેક પ્રકારકે ઉપદ્રવોં કો સહતે રહતે હૈ, તો બી સ્થાવરનામકર્મકે ઉદયસે વે અપને ગૃહીત સ્થાન સે જુદા નહીં હો સકતે હૈ । હસી પ્રકાર અનાત્મપ્રજ્ઞ જીવ બી પુત્ર-સ્ત્રી આદિકોંસે તિરસ્કૃત હોતે હુએ બી અનેક પ્રકારકી આધિવ્યાધિયોંકો ફેલતે હુએ બી રાજપુરુષ એવં ચોર આદિકે દ્વારા સર્વસ્વહરણપૂર્વક લૂટે ગયે હોને પર બી, ઓર તો કયા, માતા, પિતા, પુત્ર ઓર સ્ત્રી આદિકોંસે

તો બનતુ નથી, કેમ કે ક્ષણ ભોગવવાથી કર્મોંનો સર્વથા વિનાશ થતો નથી, તપ અને સયમની આરાધનાથી જ જીવ કર્મોંથી મુક્તિ મેળવે છે અનાત્મપ્રજ્ઞ મુક્તિના કારણથી દૂર રહે છે મોક્ષના સાધનોનું સેવન-આચરણ કરતા નથી માટે કર્મબન્ધોથી રહિત પણ થતા નથી

ભાવાર્થ—જે પ્રકારે વૃક્ષ, શીત, વાયુ, ધૂપ, છેદન, ભેદન, ડાળને ખેચવું કે તેને તોડવી, મરડવી આદિ પ્રકારના ઉપદ્રવોંને સહ્યા કરે છે, તો પણ સ્થાવર નામકર્મના ઉદયથી પોતાના સ્થાન ઉપરથી હટી શકતુ નથી આ જ રીતે અનાત્મપ્રજ્ઞ જીવ પણ પુત્ર-સ્ત્રી ઇત્યાદિથી તિરસ્કૃત થતો હોવા છતાં, અનેક પ્રકારની આધિ-વ્યાધિઓમા રીખાતો, રાજપુરુષ અને ચોર વગેરેથી સર્વસ્વ હુંટાર્થ જવા છતાં પણ, માતા, પિતા, પુત્ર અને સ્ત્રી ઇત્યાદિથી અલગ

स्या मनुभवन्ति प्राणिनः । तद् यथा-कर्मविपाकोदयात् कश्चित् गण्डी=गण्डमा
सारोगयुक्तः, अथवा-कश्चित् कुण्डी=कुण्डरोगी, तथा-कश्चित्-राजासी=राजयस्म
भान्=सयरागाक्रान्तः, तथा कश्चित् अपस्मारिकः=अपस्माररोगयुक्तः-मृगीरोगी,
तथा कस्यचित्-कायत्वम्=अक्षिरोगः, तथा-कस्यचित् सिम्भिर्य=जडता, तथा
कस्यचित् कुम्भित्व=गर्भापानयोपात् एकवरणे ह्रस्वता एकपाशौ न्यूनता वा-
हीनाङ्गत्वम्, तथा कस्यचित् कुञ्जत्व=मातापितृशोभितशुद्धरोषेण गर्भस्थानस्थाया
वृत्त्यपमानः कुम्भरोगः । तथा-हे शिष्य ! त्वं कश्चित्-उदरिण=उदररोगिण पश्य ।
तथा-कश्चित्-शूनिक=शोफरोगयुक्तं पश्य, तथा-कश्चित्-गुणिक=गुणरोगयुक्तं पश्य ।
तथा-त्रासिन=मस्मररोगिण पश्य । तथा-वेपर्क=कम्परोगयुक्तं पश्य । तथा-
पीठसर्पिक=पीठसर्परोगिण-इन्तर्गृहीतकाष्ठन संसरणशीलं पद्मगुविशेषं पश्य ।
तथा-क्षीपविक=इस्तिपदरोगयुक्तं पश्य, तथा-मधुमर्दिन=मधुमेहरोगयुक्तं पश्य ।

इन पूर्वोक्त गाथाओंमें सूत्रकारन प्रकट किया है । वे कहते हैं-कोई जाय कर्म
के विपाकसे १ गण्डमासा रोगसे पीडित रहता है, कोई २ कुण्डी होता
है, कोई ३ राजयस्मासे-क्षयरोगसे कुम्भी होता है, कोई ४ अपस्मार-
मृगीरोगसे अक्रान्त रहता है, कोई ५ काणा होता है, किसीमें ६ जडता होती
है । किसीके ७ कुण्डिता-हीनाङ्गता होती है-गर्भापानके दोषसे एक पैरमें या
एक हाथमें न्यूनताका नाम हीनाङ्गता है । कोई ८ कुचडा होता है । माता
पिताके शोणित शुक्र दोषसे गर्भकी अवस्थामें यह रोग उत्पन्न होता है ।
कोई पेटके ९ रोगी है, कोई १० गुणे है, किसीके ११ सूजमरोग है, किसी
को मस्मक १२ व्याधि है, किसीको १३ कंपरोग है, कोईके १४ पीठ
सर्पका रोग है, इस रोगके रोगी काष्ठकी चिरेया बनवा कर उनके सहारे
से चला करते हैं, वे एक तरफके पंगु कहलाते हैं । किसीके १५ क्षीपव
रोग होता है । इस रोगमें रोगीका पैर हाथीके पैर जैसा स्थूल हो

कर प्रकट करे। यह है कोष्ठ एव कर्मना विपाकभी जगदमासा रोगभी पीडित रहे
है कोष्ठ कोठना बोज जने है कोष्ठ राजयस्मा-क्षयरोगभी कुम्भी नाम है
कोष्ठ अपस्मार-मृगी रोगभी आकट कर है कोष्ठ काष्ठो जने है कोष्ठमा जडता
कोय है कोष्ठना अज कपाजोभा ज्ञानी कोय है कोष्ठ कुण्डल कोय है कोष्ठ
पेटना रोगी कोय है कोष्ठ गुणे कोय है कोष्ठने शोक्र (सोजना) राज कोय
है कोष्ठने मस्मक व्याधि कोय है कोष्ठने कम्परोग कोय है कोष्ठने पीठसर्पना
रोग कोय है कोष्ठ रोगना रोगी लाकडानी बोटीना आभार बाधे है कोष्ठने
प्रकट पांजना कडेवाय है कोष्ठने क्षीपजाना रोग नाम है कोष्ठने मधु

સ્વકૃતકર્મોદયાદ્ વિવિધરોગાદિક ગ્રાન્તુવન્તીત્યાહ-‘ ગંડી ’ इत्यादि ।

મૂલમ્-ગંડી અહવા કુટ્ટા, રાયંસી અવમારિયં ।

કાણિયં ઝિમિયં ચેવ, કુણિયં યુજ્ઞિયં તહા ॥ ૧ ॥

ઉદરિં ચ પાસ મૂયં ચ, સૂણિયં ચ ગિલાસિણિં ।

વેવયં પીઠસર્પિં ચ, સિલિવયં મહુમેહિણિં ॥ ૨ ॥

સોલસ ઇષ રોગા, અઘ્વાયા અણુપુઘ્વસો ।

અહ ણં ફુસંતિ આયંકા, ફાસા ય અસમંજસા ॥ ૩ ॥

મરણં તેસિં સંપેહાષ, ઉવવાયં ચવણં ચ નચ્ચા ।

પરિપાગં ચ સંપેહાષ, તં સુણેહજહા તહા ॥ ૪ ॥ સૂ. ૬ ॥

છાયા-ગંડી અથવા કુષ્ઠી, રાજાસી અપસ્મારિકાઃ ।

કાણત્વં ઝિમ્મિય ચૈવ, કુણિત્વ કુઘ્જત્વ તથા ॥ ૧ ॥

ઉદારિણ ચ પશ્ય મૂકં ચ, શૂનિક ચ ગ્રાસિનમ્ ।

વેપકં પીઠસર્પિણ ચ, શ્લીપદિન્ મધુમેહિનમ્ ॥ ૨ ॥

પોઢશૈતે રોગા આઘ્યાતા અનુપૂર્વશઃ ।

અથ તં સ્પૃશન્તિ આતઙ્કાઃ, સ્પર્શાશ્વાસમંજસાઃ ॥ ૩ ॥

મરણં તેષા સંપ્રેક્ષ્ય, ઉપપાત ચ્યવન ચ જ્ઞાત્વા ।

પરિપાક ચ સંપ્રેક્ષ્ય, તચ્છૃણુત યથા તથા ॥ ૪ ॥ સૂ. ૬ ॥

ટીકા-સફલદુઃખનિદાનસ્ય કર્મણઃ સદ્ભાવે કર્મણો વૈચિત્ર્યાદનેફરૂપા અવ-

ક્રિયા જાય; કારણ કિ જગતમે જીવોંકા કલ્યાણ કરનેવાલી યહી

એક વસ્તુ હૈ ॥ સૂ. ૫ ॥

અપને કિયે હુએ કર્મોંકે ઉદયસે જીવ અનેક પ્રકારકે રોગાદિકોંકો ભોગતે હૈ, ઇસે પ્રકટ કરનેકે લિયે સૂત્રકાર કહતે હૈ-“ગંડી” इत्यादि ।

કર્મ સકલ દુઃખકે કારણ હૈ । ઇસીલિયે ડનકે વિચિત્ર ઉદયમેં જીવ અનેક પ્રકારકી અવસ્થાઓંકા અનુભવ કરતે હૈ । ઇસી વિષયકો

શ્રુતચારિત્રરૂપ ધર્મનુ આરાધન કરે, કારણ કે જગતમા હવેનુ કલ્યાણ કરનાર આ એક જ વસ્તુ છે (સૂ. ૫)

પોતાના કરેલા કર્મોના ઉદયથી હવે અનેક પ્રકારના રોગાદિકને ભોગવે છે આને પ્રકટ કરવા માટે સૂત્રકાર કહે છે “ ગંડી ” इत्यादि ।

કર્મ સકળ હુ અનુ કારણ છે આ માટે એના વિચિત્ર ઉદયમા હવે અનેક પ્રકારની અવસ્થાઓના અનુભવ કરે છે આ વિષયને પૂર્વોક્ત ગાથાઓમા સૂત્ર

न्ति, तेषां=गृहाऽऽसक्तमनसामसमञ्जसरोगैः क्लेशितानां मरणं स्प्रेष्टव्यं=पर्याप्तोच्य
उपपत्तं च्यवनं च द्वानां ज्ञाता, तथा परिपाकं=मिथ्यात्वाभिरत्यादिभित्तानाम
बाधोपरकाङ्क्षमुदयावलिङ्गमविष्टानां कर्मणां शरीरमानसदुःस्वरूपं फलं स्प्रेष्टव्यं=
विचार्य सङ्कसदुःस्वमूले कर्म सङ्गच्छन्तु तपः समयमे प्रयतितव्यमित्यर्थः । मोः शिष्याः!
तद्=कर्मणां फलं यथा भवति तथा मया वक्ष्यमाणं शृणुत ॥ सू० ६ ॥

संसारिणो विविधे कर्मविपाकमनुमपन्तीति दर्शयितुमाह—‘सन्ति पाणा’ इत्यादि।

से ही निमित्तका कयन समझना चाहिये। कर्मोंका उदय आभ्यन्तर
निमित्त है और यह निमित्त तो प्रत्येक रोगोंमें साधारण कारण पड़ता
ही है। उन असमंजस रोगोंसे गृहस्थाभिमर्श मग्न हुए जीवों—गृहस्थोंका
मरण देख कर तथा देखोंका भी उपपास—जन्म और क्यवन—मरण जान
कर, एवं मिथ्यात्व, अघिरति आदि कारणकलापसे उत्पन्न—बन्धवशाको
मास और अघाघा कालको छोड़कर उदयावलिमें प्रविष्ट ऐसे कर्मोंका
शारीरिक एवं मानसिक दुःस्वरूप फल अच्छी तरह विचार कर सकल
दुःखोंके मूल कारण इन कर्मोंको नाश करनेके लिये तप और संयममें
प्रयत्न करना चाहिये। शिष्योंको संबोधन करते हुए सूत्रकार कहते हैं
कि हे शिष्यजन ! इन कर्मोंका फल जिस प्रकार होता है उस प्रकार मैं
और कहता हूँ, सो तुम सुनो ॥ सू० ६ ॥

ससारी जन कर्मोंके विपाकको भोगते हैं—इसी बातको समझानेके
लिये सूत्रकार कहते हैं—“सन्ति पाणा” इत्यादि।

४ निमित्त अने निमित्ततु कथं समञ्जसु लोभजे कर्मिणो वैदध आभ्यन्तर
निमित्त छे, ते निमित्त तो प्रत्येक शिष्योभां साधारणु कस्य छे अथ जसम वस
शिष्योभां बुद्धिबलमभ्यासमन रहेवा लोभजे—बुद्धिबलु भवतु देणी तथा देवोने पण
उपपात—जन्म अने क्यवन—भरतु कस्य, मिथ्यात्व अविरति आदि कस्य कलापभी
उपपन्न जपदशाने प्राप्त अने ज्ञानाभावाजने छेदीने उदयावलीमा प्रविष्ट केवा
कर्मिण्य, शारीरिक अने मानसिक दुःखरूप इन सारी सीते विचार करी सकल
दुःखोना मूल कारण आ कर्मिणो नाश करना भाटे, तप अने संयमभां प्रयत्न
करवे लोभजे शिष्योने संबोधन कस्ता सूत्रकार कहे छे हे हे शिष्यजन ! आ
कर्मिण्य इन के प्रकारभी पाव छे के प्रकार हरीभी वधु तमिने कहुं छुं, ते
तमि संभवो (सू० ६)

ससारी जन कर्मोंका विपाकने बोधवे छे आ पात समञ्जववा सूत्रप्र
कहे छे सन्ति पाणा” इत्यादि—

एते षोडश रोगाः अनुपूर्वशः=अनुक्रमेण आख्याताः=रूथिताः । अथ=अनन्तरम् आतङ्काः=शीघ्र जीवितहारिणः शूलदयो व्याधिविशेषाः, स्पर्शाश्च गाढप्रहारादि-जनिताः दुःखविशेषाः असमञ्जसाः=क्रम-यौगपद्य-निमित्ता-निमित्तोत्पन्नाः स्पृ-
जाता है, किसीके १६ मधुमेह हो जाता है, इस रोगके रोगीकी पेशाब शहद जैसे रगकी होती है और उसमें कीड़ियां लगने लगती हैं। ये १६ रोग जो यहां यथाक्रमसे बतलाये गये हैं, ये सब अशुभ कर्मोंके उदयके फल विशेष हैं। कर्मोंके उदयमें जीवोंकी और भी क्या २ अवस्थाएँ होती हैं इन्हें “अथ ते स्पृशन्ति” इत्यादि श्लोकसे प्रकट करते हैं। कोई २ ऐसे भी रोग होते हैं कि जिनमें जीवनका शीघ्र ही अन्त हो जाता है; जैसे उदरशूल वगैरह। गाढ प्रहार आदिसे उत्पन्न हुए दुःखोंका नाम स्पर्श है। जिन रोगोंमें निमित्त चाहे क्रमसे मिले चाहे अक्रम-एकसाथ मिले, अथवा क्रम और अक्रमसे वे न भी मिलें; ऐसे क्रमिक और अक्रमिक निमित्त और अनिमित्तोंसे जो रोग उत्पन्न होते हैं उनका नाम असमंजस है। ये भी अशुभोदयसे ही जीवोंके होते हैं।

शङ्का—अशुभोदय ही उन रोगोंकी उत्पत्तिका निमित्त है, फिर अनिमित्तसे भी असमंजस रोगोंकी उत्पत्तिका कथन आपका ग्राह्य कैसे माना जा सकता है ?

उत्तर—यहां बाह्य कारणोंकी उपस्थिति और अनुपस्थितिकी अपेक्षा

પ્રમેહ થઈ જાય છે, આ સોળ રોગ જે યથાક્રમથી અહીં બતાવ્યા છે આ બધા અશુભ કર્મોના ઉદયના ફળ છે કર્મોના ઉદયમા જીવોની બીજી પણ શુ શુ અવસ્થાઓ બને છે એને “અથ તે સ્પૃશન્તિ” ઇત્યાદિ શ્લોકથી પ્રગટ કરે છે કોઈ કોઈ એવો રોગ હોય છે કે જેનાથી જીવનનો તરત જ અન્ત આવી જાય છે, જેમકે ઉદરશૂળ વગેરે ગાઢ પ્રહાર આદિથી ઉત્પન્ન થયેલ હુ ખોતું નામ સ્પર્શ છે જે રોગોમા નિમિત્ત ચાહે ક્રમથી મળે અથવા અક્રમથી. એ ન પણ મળે એવા ક્રમિક અને અક્રમિક નિમિત્ત અને અનિમિત્તથી જે રોગ ઉત્પન્ન થાય છે તેનું નામ અસમજસ છે આ પણ અશુભ ઉદયથી જ જીવોને થાય છે

શ કા —અશુભોદય જ તે રોગોની ઉત્પત્તિનું નિમિત્ત છે પણ અનિમિત્તથી પણ અસમજસ રોગોની ઉત્પત્તિનું આપનું કથન ગ્રાહ્ય કેમ માનવામા આવે ?

ઉત્તર—અહીં બાહ્ય કારણોની ઉપસ્થિતિ અને અનુપસ્થિતિની અપેક્ષાથી

किञ्च—‘सति पाणा’ इत्यादि ।

मूक्य—सति पाणा वासगा, रसगा, उदण, उदयचरा, आ
गासगामिणो पाणा पाणे किलसति ॥ सू० ८ ॥

छाया—सन्ति प्राणा वासगाः, रसगाः, उदके, उदकचराः, आकाशगामिनः
प्राणा प्राणिनः क्लेशयन्ति ॥ सू० ८ ॥

टीका—वासगाः=धृक्करणसमर्था द्वीन्द्रियादयः तथा रसगाः=तिक्तकटुकादि
रसवेदकाः सठिघ्न इत्यर्थाः, तथा-उदके=अप्याय स्थिता अप्कायिका इत्यर्थाः, तथा
-उदकचराः=जलचरा मत्स्यकच्छपादयः, अथ स्थलचराः सर्पादयः पक्षिष्वपि
केचन जलाभितस्वाजलचरा उच्यन्तः । तथा-आकाशगामिनः=पक्षिष्वपि, इत्येते
प्राणाः=प्राणिनः सन्ति । ते सर्वेऽपि प्राणाः=प्राणिनः, प्राणान्=अप्यरान् जीवान्
क्लेशयन्ति-आहाराण्यै वेषावेष्टाद्वा पीडयन्ति ॥ सू० ८ ॥

रसना—इन्द्रियके सङ्गावसे शब्द करनेमें समर्थ ऐसे द्वीन्द्रियादिक
जीव, तथा तिक्त-कटुकादिक रसोंका अनुभवन करनेवाले संज्ञी जीव,
पानी आदि कायमें स्थित अप्कायिक जीव—मछली कछुवा आदि जल-
चर जीव, सर्प पक्षी बगैरह स्थलचर जीव और आकाशमें उड़नेवाले
पक्षी आदि नभचर जीव ये सब प्राणी आहारादिकके निमित्त, वृत्तरे
जीवोंको क्लेशित करते हैं तथा वेषके आवेष्टासे उन्हें पीडा भी
पहुँचाने हैं ।

भावार्थ—द्वीन्द्रियसे लेकर संज्ञी असंज्ञी पञ्चेन्द्रिय पर्यन्त समस्त
जलचरादिक जीव परस्परमें एक वृत्तरेको आहारादिकके निमित्तसे

पीटानी कट्फना नही, परंतु आ जलचरा वचन छे जेवु समस्त प्राण वचने
पर तमे निमित्त सजे (सू. ७)

रसना इन्द्रियना सङ्गावसी शब्द करवाभां समर्थ जेवा द्वीन्द्रियदिक
एव तथा तिक्त कटुके आदि रसेना अनुभव करवावाण सही एव प्राणीभां
रसेना अप्कायिक एव—मछला कछुवा वजेर जलचर एव, सर्प पक्षी
वजेर स्थलचर एव अने आकाशभां उड़नासं पक्षी आदि नभचर एव आ
प्राणी आहारादिकना निमित्तभी जीव एवने क्लेशित करे छे तथा वेषना
आवेष्टाभी जेभने पीडा पणु पहुँचावे छे

भावार्थ—द्वीन्द्रियधी जगानी सही असही पञ्चेन्द्रिय पर्यंत समस्त
जलचरादिक एव परस्परभां कोक नीवने आहारादिकना निमित्तभी अन्यथा वेषादिकना

મૂલમ્—સંતિ પાળા અંધા તમસિ વિયાહિયા, તમેવ સંઈ
અસંઈ અઈઅચ્ચ ઉચ્ચાવયપાસે પડિસંવેણ્ઠિ, બુદ્ધેહિં એયં પવેણ્ઠિ ॥૭॥

છાયા—સન્તિ પ્રાણા અન્ધાસ્તમસિ વ્યાખ્યાતા, તામેવ સકૃત્ અસકૃત્ અતિ
ગત્ય ઉચ્ચાવચાન્ સ્પર્શાન્ પ્રતિસંવેદયન્તિ, બુદ્ધૈરેતત્પ્રવેદિતમ્ ॥ સૂ. ૭ ॥

ટીકા—યે પ્રાણા=પ્રાણિનઃ તમસિ=દ્રવ્યાન્ધકારે નરકાદૌ ભાવાન્ધકારે મિ-
થ્યાત્વાદૌ વા સન્તિ=વિદ્યન્તે તે અન્ધા:=હેયોપાદેયવિવેકરહિતાઃ વ્યાખ્યાતા=
કથિતાસ્તીર્થઙ્કરૈઃ । કિંચ—તામેવાવસ્થા ગણ્ડકુષ્ઠાદિરોગજનિતામેકેન્દ્રિયાદિજાતિ-
પ્રાપ્તિરૂપાં વા, સકૃદ્=એકવારમ્ અસકૃત્=અનેકવારં વા અતિગત્ય=અનુભૂય તત્-
ઉચ્ચાવચાન્=તીવ્રમન્દાન્ સ્પર્શાન્=દુઃસ્વવિશેષાન્ પ્રતિસંવેદયન્તિ=અનુભવન્તિ, ઉક્તે
વક્ષ્યમાણે ચ વિષયે શ્રદ્ધોત્પાદનાય સુધર્મા સ્વામી જમ્બૂસ્વામિન પ્રત્યાહ—બુદ્ધૈરિત્યા-
દિ । એતદ્ બુદ્ધૈઃ=સર્વજ્ઞેસ્તીર્થઙ્કરૈઃ પ્રવેદિતમ્=પ્રવોદિતં તસ્માદેતન્મમ વચનં શ્રદ્ધે-
યમિતિ ભાવઃ ॥ સૂ. ૭ ॥

જો પ્રાણી દ્રવ્ય અન્ધકારરૂપ નરકાદિ ગતિયોંમેં એવ ભાવ-અન્ધકાર-
રૂપ મિથ્યાત્વ આદિમેં વર્તમાન હૈં વે દ્રવ્યરૂપસે સૂક્ષ્મતે હોતે હુએ મી હેય
ઔર ઉપાદેયકે વિવેકસે રહિત હોનેસે ભાવરૂપસે અંધે હી હૈં એસા
તીર્થઙ્કરોંકા કહના હૈ । એસે હી જીવ ગણ્ડકુષ્ઠાદિ રોગોંસે વિશિષ્ટ
અવસ્થા એવં એકેન્દ્રિયાદિક જાતિકી પ્રાપ્તિરૂપ પર્યાયકો બારબાર યા એક
બાર ભોગકર તીવ્ર ઔર મન્દ દુઃસ્વવિશેષોંકો ભોગા કરતે હૈં । કહે ગયે
અથવા આગે કહે જાનેવાલે વિષયમેં વિશ્વાસ ઉત્પન્ન કરનેકે લિયે શ્રી
સુધર્માસ્વામી શ્રી જમ્બૂસ્વામીકે પ્રતિ કહતે હૈં કિ યે જો કુછ મૈંને કહા
હૈ, અથવા આગે મી જો કુછ કહા જાયગા વહ મેરી નિજી કલ્પના નહીં
હૈ, કિન્તુ યહ સર્વજ્ઞકે વચન હૈ, એસા સમજકર મેરે વચનોં પર તુમ
વિશ્વાસ રહો ॥ સૂ. ૭ ॥

જે પ્રાણી દ્રવ્ય અધકારરૂપ નરકાદિ ગતિયોમા, ભાવ અધકારરૂપ મિથ્યાત્વ
આદિમા વર્તમાન છે તે દ્રવ્યરૂપથી દેખતા હોવા છતાં પણ હેય અને ઉપાદેયના
વિવેકથી રહિત હોવાથી ભાવરૂપથી આધળા જ છે, એવું તીર્થકરોનું કહેવું છે
એવા જ ગ. ૩, કુષ્ઠાદિ રોગોના ભોગ બની અને એકેન્દ્રિયાદિક ભતિની
પ્રાપ્તિરૂપ પર્યાયને એકવાર અથવા વારવાર ભોગવી તીવ્ર અને મદ દુઃખ ઇત્યા
દિને ભોગવે છે કહેવાઈ ગયેલ અથવા આગળ કહેવામા આવનાર વિષયમાં
વિશ્વાસ ઉત્પન્ન કરવા માટે શ્રી સુધર્માસ્વામી શ્રી જમ્બૂસ્વામીને કહે છે કે આ
જે કાઈ મે કયું છે અને આગળ પણ જે કાંઈ કહેવામા આવશે એ મારી

संसारिणां क्यमीदृशी दशा भवतीति जिज्ञासायामाह 'सत्ता कामेहि' इत्यादि ।

मूळम्—सत्ता कामेहि माणवा अवलेण वह्ण गच्छति सरीरेण पमगुरेण ॥ सू० १० ॥

छाया—सत्ताः कामेषु मानवाः अवलाय पपं गच्छन्ति शरीराय पमगुराय ॥ १० ॥

टीका—मानवाः=मनुष्याः कामेषु=विषयमोगेषु सत्ताः=अवसरका सन्ति, अतः पमगुराय=अणमगुराय अणमगुरापरिणामितया स्वत एव प्रतिक्षणविनाशिने अवसाय=निःसाराय शरीराय=औदारिकशरीराय-शरीरपुष्ट्यर्थमिति भावः । वन्ध=

कमी मनुष्यगतिके दुःखोंसे । इन कर्मोंके सदासे आधीन रहनेवाले मेरी क्या दशा होगी ? ऐसा चिन्तारूप महामय प्रत्येक सचेतन प्राणीके हृदयमें बना ही रहता है ; अतः अनेक प्रकारके दुरन्त नयोंसे घिरे हुए ये अनन्त संसारी जीव हैं, और इसी कर्मोदयके बंधसे ये बिचारें रात दिन अनन्त कष्टोंका भी सामना करते रहते हैं ॥ सू० ० ॥

संसारी जीवोंकी ऐसी दशा क्यों होगी ? इस प्रकारकी जिज्ञासाके समाधाननिमित्त सूत्रकार कहते हैं—“सत्ता कामेहि” इत्यादि ।

अवतरणरूप शास्त्रका समाधान करते हुए सूत्रकार कहते हैं कि काममोगोंमें मग्न होनेसे मनुष्यको थोड़ा भी अवकाश प्राप्त नहीं है, अतः उन काम-मोगोंका साधनभूत इस औदारिक शरीरकी पुष्टिके निमित्त वे अनुचित उपायोंका भी आचरण करते रहते हैं । नरकमिगो आदिकके अनन्त दुःखोंकी कारणभूत अन्य प्राणियोंकी हिंसा करते हुए भी ये अवकाशते नहीं हैं । इन्हें स्वप्नमें भी यह बिचार नहीं आता कि जय

आवा क्रमेण सदा अधीन रहेनाह भारी शुद्धता कहीं केवो चिन्ताद्वयी भडा। कम प्रत्येक सचेतन प्राणीका दुःखमार्ग अन्यो रहे छे आवा अनेक प्रकारना निकट कथोधी बेशुद्ध अनन्त संसारी एव छे क्रोडकना वसधी अजिवाश रात दिन अनन्त कष्टोना सामना करता रहे छे (सू १)

संसारी एवेकी आवी दशा केम काम छे अ प्रकारनी लस्यस्यना समाधाननिमित्त सूत्रकार कहे छे. 'सत्ता कामेहि' इत्यादि—

अवतरणरूप शास्त्र समाधान करता सूत्रकार कहे छे छे काममोगेभा भव कोवाधी मनुष्यने कोये पक्ष अवकाश भजते नही. काममोगेना साधनभूत अ औदारिक शरीरनी पुष्टिना कारणे जे अनुचित उपयोनु पक्ष अवतरण करता रहे छे नरकमिगोआदिकनी अनन्त दुःखोना कारण पक्ष अन्य प्राणीकोनी हिंसा करवाभा पक्ष जे अवकाश नही. जेभने स्वप्नभा

પુનરપિ સંસારિણા દશાં દર્શયિતુમાહ—‘ પાસ લોએ ’ ઇત્યાદિ ।

મૂલમ્—પાસ લોએ મહાભયે, વહુદુઃસ્વા હુ જંતવો ॥સૂ૦૯॥

છાયા—પશ્ય લોકે મહદ્ભયં, વહુદુઃસ્વા હુ જન્તવ ॥ સૂ૦ ૯ ॥

ટોકા—હે શિષ્ય ! લોકે=ચતુર્દશરજ્જ્વાત્મકે જગતિ મહદ્ભયં=જ્ઞાનાવરણીયાદિ-કર્મોદયવશાત્ પ્રાણિનામનાદિકાલતો વિવિધં દુરન્તં ભયં પશ્ય । હુ=યતઃ જન્તવઃ પ્રાણિનઃ, વહુદુઃસ્વા=કર્મોદયવશાત્ વિવિધાનન્તદુઃસ્વાઃ સન્તિ ॥ સૂ૦૯ ॥

અથવા દ્વેષાદિકકે આવેશસે પીડિત કિયા કરતે હૈં । કોઈ ૨ પક્ષી મી જો જલકે હી આશ્રિત રહેતે હૈં જલચર માને ગયે હૈં ॥સૂ૦૮॥

પુનરપિ સંસારી જીવોંકી દશાકો પ્રકટ કરનેકે લિયે સૂત્રકાર કહતે હૈં—“ પાસ લોએ ” ઇત્યાદિ ।

શિષ્યકો સબોધન કરતે હુએ સૂત્રકાર કહ રહે હૈં કિ હે શિષ્ય ! તુમ દેખો, ઇસ સંસારમેં જીવોંકો થોડી સી મી શાંતિ નહીં હૈં । ઉનકે પીછે અનેક પ્રકારકે ભય લગે હુએ હૈં । અનેક શારીરિક એવં માનસિક કષ્ટોંસે વે રાતદિન વ્યથિત હો રહે હૈં ।

યહ લોક ૧૪ રાજૂ પ્રમાણ હૈં । ઇસમેં જિતને મી જીવ હૈં વે અનાદિ કાલસે જ્ઞાનાવરણીય આદિ કર્મોંકે ઉદયકે વશમેં પડે હુએ હૈં । ઇસ કારણ વે ભયસહિત હૈં । ક્યોં કિ પરતન્ત્રતામેં સ્વતન્ત્રતાકા અભાવ હોને સે સદા ભય હી ભય બના રહતા હૈં । કમી યે નરકનિગોદાદિકકી કથાઓં કો સુન કર ઉસસે ભયમીત હોતે હૈં, કમી તિર્યચ્ચગતિકે દુઃસ્વોંસે, તો

આવેશથી પીડિત કર્યા કરે છે કોઈ કોઈ પક્ષી પણ જે જળના જે આશ્રિત છે એને જળચર માનવામા આવેલ છે (સૂ૦ ૮)

સંસારી જીવોની દશાને પ્રગટ કરવા માટે ફરીથી સૂત્રકાર કહે છે— “ પાસ લોએ ” ઇત્યાદિ—

શિષ્યને સબોધન કરતા સૂત્રકાર કહે છે કે હે શિષ્ય ! જુઓ, આ સંસારમા જીવોને થોડી પણ શાંતિ નથી એની પાછળ અનેક પ્રકારના ભય લાગ્યા રહે છે શારીરિક અને માનસિક કષ્ટોથી એ રાતદિવસ અકળાતા રહે છે

આ લોક ૧૪ રાજૂપ્રમાણ છે, આમા જેટલા પણ જીવ છે એ અનાદિ-કાળથી જ્ઞાનાવરણીય આદિકર્મોના ઉદયના વશમા પડ્યા છે આ કારણે એ ભયમા છે કારણ કે પરતન્ત્રતામા સ્વતન્ત્રતાનો અભાવ હોવાથી સદા કાળ ભયજ ભય બન્યો રહે છે, ક્યારેક એ નરકનિગોદાદિકની કથાઓ સાંભળી એનાથી ભયભીત બને છે, ક્યારેક તિર્યચ ગતિના દુઃખોથી, તો ક્યારેક મનુષ્યગતિના દુઃખોથી

ભાષાર્થ—શરીરમાં જ્યાં કોઈ વિશેષ વ્યાધિ હો જાય છે, ઓર ઉપાય કરતે હુપ 'મી' જય સસકી શાંતિ નહીં હોતી હૈ તો રોગીકે ચિત્તમાં અનેકો પ્રકારકે સંકલ્પ-ચિન્તલ્પ ઉઠને લગતે હૈ । इन सकल्पचिन्तल्योके मध्यमें पड़ा हुआ यह रोगी कभी अपने अपाय की चिन्तासे प्रसित होता है, कभी इन इष्ट पदार्थोंका वियोग मुझसे हो जायेगा इस प्रकार की दुर्भावनासे व्याकुल होता है, हाया! अब क्या करूं? कहाँ जाऊँ? ये दुःख अब नहीं सह जाते, मर जाऊँ तो बहुत अच्छा-इत्यादि रूपसे सोचता हुआ आत्मरौद्र ध्यानको च्याता है । इस स्थितिमें पड़े हुए उस जीवको जो 'मी' कोई उपाय बतलाता है वह उन उपायोंको भी करनेके लिये कटिपट्ट हो जाता है । वेहसे जीवका अत्यन्त ममत्त्व होनेसे वेह की पीडासे यह रोगीको मिटानेके लिये अनेकानेक हिंसाजन्य कार्य करता है । कर्तव्य क्या है, अकर्तव्य क्या है इस प्रकारकी निर्णय पुष्टि गुमा बैठता है । इस हालतमें यदि कोई उससे यह कह देता है कि अनुक्त पशुकी बलि देनेसे यह रोग दान्न हो जाता है तो वह उस जीवकी 'मी' हिंसा करनेसे नहीं बृत्ता है । शरीरकी पुष्टिके निमित्त 'मी' इसी प्रकारसे अज्ञानी मनुष्य अन्य जीवोंकी हिंसा करनेमें चूणा नहीं करता ॥सू० ११॥

ભાષાર્થ—શરીરમાં જ્યાં કોઈ વિશેષ વ્યાધિ થઈ જાય છે અને ઉપાય કરવા છતાં પણ જ્યારે એની શાંતિ થતી નથી ત્યારે રોગીના ચિત્તમાં અનેક પ્રકારના સંકલ્પ-ચિન્તલ્પ ઉઠવા લાગે છે આ સંકલ્પ-ચિન્તલ્પોના કુદ્વિભાગમાં પડેલાં એ રોગી જ્યારેક પોતાના અપાયની ચિન્તાથી ઘેરાઈ જાય છે ત્યારેક આ બધાને છોડીને મારે જતું પડે-આ પ્રકારની દુર્ભાવનાથી વ્યાકુળ બને છે હાયા! હવે શું કરું? ક્યાં જઈશું? આ દુઃખ હવે સહિવારું નથી મરી જઈ તો મારું સાઈ આ રીતે બાલતા આવડું શૈર ધ્યાનમાં પડી જાય છે આ સ્થિતિમાં પડેલાં એ જીવને એ કોઈ પણ ઉપાય બતાવવામાં આવે તો તે એ ઉપાયોના કરવામાં કટિબદ્ધ બને ॥ દેહથી જીવતું અત્યંત મમત્વ હોવાથી દેહની પીડાથી એ રોગીને મટા વા અનેકાનેક હિંસાજન્ય કાર્ય કરે છે કર્તવ્ય શું છે? અને અકર્તવ્ય શું? એનો નિર્ણય કરવાની વિવેકબુદ્ધિ શુભાવી બેસે છે આ હાલતમાં કોઈ એને બોલુ કહે કે અનુક્રમ પશુનું બલિદાન દેવાથી આ રોગ મટી જાય તો તે એ જીવની પણ હિંસા કરવાનું ચુકેતા નથી. શરીરની પુષ્ટિને માત્રે અજ્ઞાની જીવ આ પ્રકારે જાન્ય જીવોની હિંસા કરવામાં મૂળા કરતા નથી (સૂ. ૧૧)

નરકનિગોદાધનન્તદુઃસ્વહેતુભૂતાં પ્રાણિર્હિંસાં તજ્જનિતકર્મવન્ધં ચ ગચ્છન્તિ=પ્રાપ્નુ-
વન્તિ-કુર્વન્તીત્યર્થઃ । સૂત્રે ચતુર્થ્યર્થે તૃતીયાઽઽર્પત્વાત્ ॥ સૂ૦ ૧૦ ॥

કિન્ચ—‘ અદૃ ’ ઇત્યાદિ ।

મૂલમ્—અદૃ સે વહુદુઃસ્વે, ઇતિ વાલે પકુઠ્વતિ ।

એતે રોગે વહૂ ણચ્ચા, આઊરા પરિતાવણ ॥ સૂ૦ ૧૧ ॥

છાયા—આર્તઃ સ વહુદુ સ્વ, ઇતિ વાલઃ પ્રકુરુતે ।

પ્રતાન્ રોગાન્ વહૂન્ જ્ઞાત્વા આતુરાઃ પરિતાપયન્તિ ॥ સૂ૦ ૧૧ ॥

ટીકા—આર્તઃ=આર્તરૌદ્રધ્યાનવર્તી, અત એવ વહુદુઃસ્વઃ=શરીરમાનસવિવિધ-
દુઃસ્વાક્રાન્ત સ વાલઃ=અજ્ઞાની-કર્તવ્યાકર્તવ્યમૂઢઃ ઇતિ=પ્રતાદૃશં કર્મ ઇતિ=એવમ્
ઉક્તવિધં પ્રાણિવધ વા પ્રકુરુતે । પ્રતાન્=ઉક્તરૂપાન્ વહૂન્=વહુવિધાન્ પોડશપ્રકારાન્
રોગાન્=જ્ઞાત્વા પ્રાપ્ય આતુરાઃ=રોગપીડિતાઃ પરિતાપયન્તિ=વ્યાધિપ્રશમનાર્થ શરીર-
પુષ્ટ્યર્થે ચ એકેન્દ્રિયાદિપ્રાણિગણમુપમર્દયન્તિ ॥ સૂ૦ ૧૧ ॥

સાંસારિક પ્રત્યેક પદાર્થ પરિણમનશીલ હૈં તો યહ મેરા શરીર મી ડસી
પ્રકારકા હોનેસે ક્ષણ ૨ મેં સ્વતઃ ગલ રહા હૈં । યહ સ્વયં તો નિઃસાર હૈં,
પર ઇસસે સાર પ્રાપ્ત કિયા જા સકતા હૈં ॥ સૂ૦ ૧૦ ॥

શારીરિક એવ માનસિક અનેક રોગોંસે આક્રાન્ત વહ અજ્ઞાની પ્રાણી
કર્તવ્યાકર્તવ્યકે જ્ઞાનસે વિમૂઢ હુઆ આર્ત ઓર રૌદ્રધ્યાનકે વશવર્તી
બન પ્રાણિહિંસા જૈસે અનર્થોંકે કરનેમેં કુછ મી આગે પીછે કા વિચાર
નહીં કરતા । કળ્થમાલ, કુષ્ઠ આદિ ૧૬ પ્રકારકે રોગોંસે જબ એસે પ્રાણી
અત્યન્ત પીડિત હોતે હૈં તબ વે અપની ડસ ૨ વ્યાધિકે પ્રશમનાર્થ અથવા
શરીરકી પુષ્ટ્યર્થ એકેન્દ્રિયાદિ પ્રાણિયોંકી હિંસા કરને લગ જાતે હૈં ।

પણ એ વિચાર નથી આવતો કે ન્યારે સ સારી પ્રત્યેક પદાર્થ પરિણમનશીલ
છે તો માફ આ શરીર પણ એવાજ પ્રકારનું હોવાથી ક્ષણ ક્ષણમા પોતે ગળી રહ્યું
છે આ પોતે તો નિઃસાર છે છતાં એનાથી પણ સાર પ્રાપ્ત કરી શકાય છે (સૂ૦ ૧૦)

શારીરિક અને માનસિક અનેક રોગોથી અકળાતો એ અજ્ઞાની પ્રાણી
કર્તવ્યાકર્તવ્યના જ્ઞાનથી વિમૂઢ બની આર્ત અને રૌદ્ર ધ્યાનને વશવર્તી બની
પ્રાણિહિંસા જેવા અનર્થો કરવામા કાંઈ પણ આગળ-પાછળનો વિચાર કરતો
નથી કષ્ટમાળ, કોઠ, ઇત્યાદિ ૧૬ પ્રકારના રોગોથી ન્યારે એ અત્યંત પીડિત
બને છે ત્યારે એ પોતાની એ વ્યાધિના પ્રશમન માટે અથવા શરીરની
પુષ્ટિ અર્થે એકેન્દ્રિયાદિ પ્રાણીઓની હિંસા કરવા લાગી બંધ છે

પ્રાપ્યુપમર્દનં મહામય-અન્નમરણાદિમહામયહેતુત્વાત્ । અથઃ કઞ્ચન=કમપ્યેકેન્દ્રિયાદિકં પ્રાપ્તિનં નાતિપાતયત્-ન પ્રાણેશ્વ્યા વ્યપરોપયત્ । એકસ્મિન્પ્રાપ્તિ પ્રાપ્તિનિશ્ચયમાને જ્ઞાનાવરણીયાદિકં કર્મ વ્યપરે, તત્ત્વાનન્તસસારાય સમ્પદ્યત્ । તસ્માદ્પ્રાપ્યુપમર્દનં મહામયમ્ ॥ ૧૨ ॥

મરણાદિરૂપ મહામયકે વેનેમેં કારણરૂપ હોતા હૈ । અથવા કારણમેં કાર્યકે ઉપચારસે મહામયકા કારણ હોનસે યહ હિંસાકર્મ સ્વયં મહામયરૂપ હૈ । હસલિયે આત્મહિતૈવીકા કર્મવ્ય હૈ કિ યહ કિસી મી એકેન્દ્રિય જીવ તકકી મી હિંસા ન કરે-ઝહેં અપને પ્યારે પ્રાણોસે ચિયુક્ત ન કરે । ક્યોં કિ એક મી પ્રાણીકા કિયા ગયા ઉપમર્દન કસાકો જ્ઞાનાવરણીયાદિક આઠ કર્મોકા વ્યવ કરાનેવાલા હોતા હૈ । કર્મવંશસે જીવ અનંત સંસારી બનતા હૈ । હસલિયે યહ કર્મ મહામયસ્વરૂપ હૈ ।

માર્થ—અશુભાદયસે જીવોંકો વ્યાધિયાં હોતી હૈ । જીવહિંસાયુક્ત ચિકિત્સાચિધિસે મી ઝન વ્યાધિયોંકા બિનાશ નહીં હોતા હૈ । અશુભોદયકી શાંતિસે વ્યાધિયોંકા બિનાશ સ્વયમેવ હો જાતા હૈ । ચિકિત્સા જઙ્મૂલસે રોગકા નાશ નહીં કરતી હૈ, કિંતુ ઝસ રોગકો દયા દતી હૈ યહ યાત આજકલક વિદ્યાન મી સ્વીકાર કરને લગે હૈ । ફિર હિંસામય ચિકિત્સાસે વ્યાધિયાંકા બિનાશ માનના યાતુકા-રતસે તેલ નિકાલનકી યાત માનન જેતી હૈ । હસ વિધિસે જીવ નવીન કર્મોંકા વ્યવ કરતા હૈ આર રાત્રિન નીરોગ અવસ્થા પ્રાપ્તિકે સ્થાનમેં મર્યકર

કે આ કર્મને કરનાર છવ જ મ અને મરણરૂપ મહામયને શ્રેયવનાર બને છે. આત્મહિતેશ્વરુ એ કર્મ આ છે કે તે કોઈ પણ એકેન્દ્રિય છવની પણ દિશા ન કરે-એને પોતાના પ્રણવી નિયુક્ત ન કરે; કેમ કે એક પણ પ્રણવી કરવામાં આવેલ ઉપમર્દન, કરનારને જ્ઞાનાવરણીય અદિ કર્મને બંધ કરનાર બને છે કર્મ બંધથી છવ અનંત સત્તારી બને છે આ માટે આ દિશાકર્મ મહામયસ્વરૂપ છે.

માર્થ—અશુભના ઉદયથી છવને પ્રાપ્તિએ શાત્રુ પડે છે ચિકિત્સા સિધિ કે જેમાં અન્ય છવેનુ ઉપમર્દન કરવામા આવે છતા અગ્ની ચિકિત્સા શ્રેયને નાશ કરી શકતી નથી. અશુભોદયની શાંતિથી વ્યાધિઓને વિનાશ આપમેળે થઈ જાય છે શેનના શમન માટે દયાની ઉપયોગિતા સ્વીકાર્ય છે છવ દિશા નહીં દિશાયાગી ચિકિત્સાથી વ્યાધિઓને વિનાશ માનવા એ રતીમાંથી તેલ કઢવા જેવી વાત છે આ સિધિથી છવ નવીન કર્મોંના બંધ આપે છે અને નિશ્ચયી અવસ્થા પ્રાપ્ત કરવાને મદદે જવકર અસાધ્ય શેયોનો શ્રેયવનાર બને

આચાર્યઃ શિષ્યમુપદિશતિ—‘ નાલં ’ इत्यादि ।

મૂલમ્—નાલં પાસ અલં તવેણ્હિં, ઇયં પાસ મુળી ।

મહાભયં નાઙ્વાઙ્ગ કંચણં ॥ સૂ૦ ૧૨ ॥

છાયા—નાલં પશ્ય, અલં તવ ઇતૈઃ । એતત્પશ્ય મુને ! મહદ્ભયં નાતિપત-
યેત્કશ્ચન ॥ ૧૨ ॥

ટીકા—હે મુને ! ‘પશ્ય=વિમલધિયાઽવલોકય યથા નાલં=કર્મોદયજનિત-
રોગાન્ નિર્વર્તયિતું ચિકિત્સાવિધયો ન સમર્થાઃ સન્તિ, તસ્માત્ તવ=હેયોપાદેય-
વિવેકવતઃ ઇમિઃ=કર્મબન્ધકારણૈશ્ચિકિત્સાવિધિભિઃ અલં=પર્યાપ્તમ્ । કિશ્ચ—એતત્=

“ નાલ ” इत्यादि सूत्रद्वारा आचार्य महाराज शिष्यको उपदेश
देते हुए कहते हैं—

મુનિકો લક્ષ્યકર સૂત્રકાર કહતે હૈ કિ હે મુને ! નિર્મલ બુદ્ધિસે તુમ
ઇસ વાતકા વિચાર અવશ્ય ૨ કરો કિ જો ભી રોગ હોતે હૈ વે સવ ઇસ
જીવકે અશુભ કર્મોદયસે હોતે હૈ, ઉન્હેં દૂર કરનેકી સામર્થ્ય કિસીમેં
નહીં હૈ, જવ તક અશુભકા ઉદય બના રહેગા તવ તક ચિકિત્સા હોને
પર ભી ઉનકી શાંતિ નહીં હોગી, ઇસલિયે કર્મોદયસે ઉત્પન્ન હુએ ઇન
દેહાશ્રિત રોગોંકો હટાનેકે લિયે કોઈ ભી ચિકિત્સાવિધિ સમર્થ નહીં
હૈ । જવ યહ વાત સિદ્ધાન્તસિદ્ધ હૈ, તો ફિર ચિકિત્સાનિમિત્ત
અન્ય પ્રાણિયોંકી હિંસા કરને જૈસી ચિકિત્સાવિધિ, જો કેવલ કર્મ-
બન્ધકા હી કારણ હૈ; ક્યોં કિયા જાય ! તથા અન્ય પ્રાણિયોંકી કી ગર્હ
હિંસા સ્વપ્નમેં ભી શાંતિ નહીં દે સકતી હૈ, કિન્તુ યહ મહાભયપ્રદ હી
હોતી હૈ । કારણ કિ ઇસ કર્મકે કર્તા જીવકો યહ કર્મ જન્મ ઔર

“નાલ” इत्यादि सूत्रद्वारा आचार्य महाराज शिष्यने उपदेश आपता कहे थे—

મુનિની સામે લક્ષ રાખી સૂત્રકાર કહે છે કે હે મુનિ ! નિર્મળ બુદ્ધિથી
તમે આ વાતનો અવશ્ય વિચાર કરો કે જે પણ રોગ થાય છે એ બધા જીવના
અશુભકર્મોદયથી જ થાય છે, એને દૂર કરવાનું સામર્થ્ય કોઈનામાં નથી જ્યા
સુધી અશુભનો ઉદય રહે છે ત્યા સુધી સારવાર છતાં પણ એને શાંતિ થતી
નથી એટલે કર્મોદયથી ઉત્પન્ન થયેલ આ દેહાશ્રિત રોગોને દૂર કરવામાં
કોઈ પણ ચિકિત્સાવિધિ સમર્થ બનતી નથી જ્યારે આ વાત સિદ્ધાન્તથી દઢ
સાબીત થયેલ છે તો પછી ચિકિત્સાનિમિત્ત બીજા પ્રાણીઓની હિંસા કરવામાં
આવે તો તે કર્મબળનું જ કારણ છે આ રીતે કરવામાં આવતી પ્રાણહિંસા
સ્વપ્નમાં પણ શાંતિ લેવા દેતી નથી, અને તે મહાભયપ્રદ પણ બને છે કારણ

प्रतिज्ञात्मवर्माह—‘इह खलु’ इत्यादि। इह=अस्मिन् मनुष्यलोके प्राणिनः मात्मतया
 अनादिकास्तो जीवकर्मणोः सम्बन्धादारम्भकृतकर्मपरिणत्या तेषु तेषु=विविधेषु
 स्वस्वकर्मोदयमापितेषु उग्रमोगादिदृष्टयेषु तथाकादिषु नीचेषु च कुलेषु अभिप्रेक्ष्य
 शुक्रशोणितसंयोगादिक्रमेण अभिसंभूताः जननीगर्भे कललान्त्सर्वा प्राप्ताः, अभिसं-

ओ विषय आगे कहा जानेवाला है यह बड़ी मुश्किलसे समझनेमें आवे
 ऐसा है; इसलिये शिष्योंके चित्तको उस विषयकी ओर सावधान करते
 हुए वे शिष्यजनोंसे कहते हैं कि हे शिष्यों! तुम सावधानचित्त हो
 कर ही इस विषयको सुनना; अन्यथा—अप्रचित्त होओगे तो कुछ भी
 समझमें नहीं आवेगा। यहांसे बड़ी प्रस्तुत विषय कहा जाता है—

इस मनुष्यलोकमें समस्त प्राणी कर्मोंके सम्बन्धसे परतन्त्र हो रहे
 हैं। यह जीव और कर्मोंका सम्बन्ध आजका नहीं है किन्तु अनादिकाल
 का है। इस सम्बन्धके कारण ही जीव कर्मोंके बिपाकोदयसे उन २
 गतियोंकी प्राप्तिके कारणमूल कर्मोंके उदय आने पर उग्रमोगादि विविध
 उत्सम कुलोंमें एवं बण्डाल आदि नीच कुलोंमें मातापिताके शोणित
 शुक्र आदिके संयोगक्रमसे उत्पन्न होते हैं। संक्षेपसे उत्पत्तिका क्रम इस
 प्रकार है—सर्वप्रथम जीव माताके गर्भमें “कलल” अवस्थामें रहता
 है। इसके बाद क्रमसे अनेक अवस्थाओंको पारण कर फिर वह पेशी
 अवस्थासम्पन्न होता है। अंग-उपांगोंकी तथा स्नायु एवं शिरके पालोंकी

हठेवाમાં આવનાર છે તે ખૂબ ચુરકેલીથી સમજવામાં આવે તેવો છે. આ માટે
 શિષ્યોના ચિત્તને એ વિષય તરફ સાવધાન કરવા સૂચનાર શિષ્યજનોને કહે છે
 કે હે શિષ્યો! તમે સાવધાનચિત્તથી આ વિષયને સાંભળજો. એ બ્યવચિત્ત
 બનશે. તે આજળ કંઈ પણ સમજવામાં નહિ આવે. અર્થથી એ વિષય કહેવો
 શક્ય થાય છે

આ મનુષ્યલોકમાં બધા પ્રાણી કર્મના સળધથી પરત્ર થઈ રહ્યાં છે.
 આ જીવ અને કર્મનો સળધ અલગનો નથી; પરંતુ અનિદિ કાળનો છે. આ સળ
 ધના કારણથી જીવ કર્મોના વિષાકના ઉદયથી એ એ અતિયોની પ્રાપ્તિના કારણ
 મૂલ કર્મોના ઉદય આવવાથી ઉચ્ચ લોચ અર્થે વિશિષ્ટ ઉત્તમ પુણ્યોમાં અથવા
 અડાળ વિજેરે નીચ કુલોમાં માતા પિતાના શોણિતશુક્ર વજેરેના સંયોગક્રમથી
 ઉત્પન્ન થાય છે. કુકર્મો ઉત્પત્તિનો ક્રમ આ પ્રકારનો છે. સર્વપ્રથમ જીવ
 માતાના ગર્ભમાં “કલલ” અવસ્થામાં રહે છે એ પછી કર્મથી અનેક અવસ્થાઓ
 પામવા કરી કરી તે પેશી અવસ્થા પ્રાપ્ત કરે છે. અંગ ઉપાંગો તથા સ્નાયુ

મૂલમ—આયાણ મો! સસ્સૂસ મો! ધૂયવાયં પવેયઙ્સસામિ, ઇહ खलु अत्तत्ताए तेहिं तेहिं कुलेहिं अभिसेएण अभिसंभूया अभिसंजाया अभिनिव्वुडा अभिसंवुड्ढा अभिसंवुद्धा अभिणि-
क्खंता अणुपुव्वेण महામુણી ॥ સૂ૦ ૧૩ ॥

છાયા—આજાનીહિ મો: ! શુશ્રૂષસ્વ મો ! ધૂતવાદં પ્રવેદયિષ્યામિ, ઇહ खलु આત્મતયા તેષુ તેષુ કુલેષુ અભિષેકેણ અભિસંભૂતાઃ, અભિસજાતાઃ, અભિનિર્વૃતાઃ, અભિસવૃદ્ધા, અભિસંવુદ્ધાઃ અભિનિષ્ક્રાન્તાઃ, અનુપૂર્વેણ મહામુનયઃ ॥ ૧૩ ॥

ટોકા—મોઃ શિષ્ય ! યદહં ધૂતવાદં=ધૂતમ્=અષ્ટવિધકર્મધૂનનં તસ્ય વાદો ધૂત-
વાદસ્તં પ્રવેદયિષ્યામિ તદ્ આજાનીહિ=અવધારય, તથા મોઃ ! શુશ્રૂષસ્વ=શ્રોતુમિ-
ચ્છાં કુરુ। ‘ મોઃ ’ ઇત્યસ્ય પુનરુચ્ચારણં વક્ષ્યમાણાર્થસ્ય દુરધિગમત્વેન શિષ્યાઽવ-
ધાનાર્થ, તથા ચ—‘ સાવધાનેન ભવતા ભાવ્યમ્ ’ ઇત્યભિપ્રાયોઽવગમ્યતે ।

અસાધ્ય રોગોંકા આધાર બન જાતા હૈ । ઇસલિયે જો વ્યાધિયોંકે આધાર
બનના નહીં યાહતે હૈં વે તપ ઓર સંયમદ્વારા ઇનકે મૂલ કારણોંકા
વિનાશ કરનેકે લિયે અગ્રેસર બનેં । કિસી જીવકી દેવી દેવતાકો બલિ
દેનેસે યા કિસીકે માંસ આદિકે યાનેસે વ્યાધિયોંકી ક્ષીણતા હોગી ઇસ
અન્ધશ્રદ્ધારૂપ પાપકા પરિત્યાગ કરે ॥ સૂ૦ ૧૨ ॥

વક્ષ્યમાણ ધૂતવાદકો હૃદયમેં ધારણ-શ્રવણ આદિ કરનેકે નિમિત્ત
શિષ્યકો પ્રેરિત કરતે હુએ સૂત્રકાર કહતે હૈ—“ આયાણ મો ” ! ઇત્યાદિ ।

હે શિષ્ય ! મેં જિસ અષ્ટવિધ કર્મોંકે નાશકે વાદ-કથનકો કહૂંગા
તુમ ઉસે હૃદયમેં ધારણ કરો । યદિ ધારણ ન હો સકે તો ઉસે સદા
સુનનેકી ઇચ્છા કરતે રહો । સૂત્રમેં દો વાર જો “ મો મો ” શબ્દકા
પ્રયોગ હુઆ હૈ, ઉસસે સૂત્રકારકા યહ અભિપ્રાય માલૂમ હોતા હૈ કિ

છે આ માટે જે આવા ભય કર રોગોથી બચવા તપ અને સયમના પથે વળે
છે અને કોઈ દેવી દેવતાને કોઈ જીવતુ બલિદાન દેવામા પાપ સમજે છે
આવે જીવ અસાધ્ય વ્યાધિથી બચે છે (સૂ૦ ૧૨)

વક્ષ્યમાણ ધૂતવાદને હૃદયમા ધારણ શ્રવણ આદિ કરવા માટે શિષ્યને પ્રેરિત
કરતા સૂત્રકાર કહે છે “ આયાણ મો ” ઇત્યાદિ ।

હે શિષ્ય ! હું જે આઠ પ્રકારના કર્મોના નાશ પછીની વાત તમોને કહું
છું તમે એને હૃદયમા ધારણ કરો જે ધારણ ન થઈ શકે તો એને સાભળ
વાની ઇચ્છા હમેશા કરતા રહો । સૂત્રમા જે વખત જે “ મો મો ” શબ્દને
પ્રયોગ થયો છે, આથી સૂત્રકારનો એ અભિપ્રાય થાય છે કે જે વિષય આગળ

મૂળમ—ત પરિક્રમત પરિદેવમાણા મા ણે ચયહિ ક્ય તે
ચયતિ । છદોવર્ણીયા અગ્નિાવવક્ત્રા અક્ષદકારી જળગા રુષતિ ।
અ તારિસે મુળી નો આહ તરપ, જળગા જેળ વિપ્પજઢા । સૂ૦૧૪ ।

ઢાયા—તે પરાક્રમન્ત પરિદેવમાનાઃ ‘ મા અસ્માન્ સ્પજ ’ ઈતિ તે વદન્તિ ।
છન્દોપનીતા અધ્યુપપન્ના આક્રન્દકારિણો જનકા સ્વન્તિ । અ તારણો મુનિર્ના ઓષં
વરતિ જનકા યેન વિપ્રસ્પક્તા ॥ સૂ૦૧૪ ॥

સાધુ પયત્તકી અવસ્થાઓંકા ધારક બનતા કૃષ્ણ મહામુનિ હો જાતા હૈ ।

માધાથ—કપાય સહિત હોનેસે જીવ કર્મોંકે યોગ્ય પુણ્ય પરમાણુઓં
કા જો ગ્રહણ કરતા હૈ ઈસીકા નામ યાથ હૈ । ઈસ યાથશાસે સમસ્ત
સસારી જીવ પરતન્ત્ર હો રહે હૈં ઔર તત્ત્વગુણિપ્રાપક કર્મોંવ્યસે લે ઉચ્ચ
નીચાદિ કુલોંમેં માતા પિતાકે રજ ઔર લીયંકે સમ્યકસે ગમી અસ્થા-
સમ્યક્ થન કર કરમ ૨ સે અપને ૨ સમયાનુસાર વ્યવસ્થા હોતે રહતે હૈં ।
કૈશાવાદિ અવસ્થા બાદ ધર્મઅવળ યોગ્ય અવસ્થાલાલે જય લે હોતે હૈં તય
ધર્મકયાકે અવળસે પુણ્યપાપક સ્વરૂપકે જ્ઞાતા હોકર યોધિયીજકી
પ્રાપ્તિસે ગૃહીત ધર્મકી સફલતા નિમિત્ત જૈનેશ્વરી લીક્ષા ધારણ કર
આચારાંગ આદિ મુશ્કોંકા અભ્યાસ કરતે હુપ અપને પારિશ્રમકી વજ્જલતા
કી વૃદ્ધિ કરનમેં સાવધાન રહતે હૈં । જિનકલ્પી સાધુકી અવસ્થાપયન્ત
મધ્યકી જિતની મી સાધુઓંકી અવસ્થા હૈં ઉન સયકા આરાધન કરતે
હુપ લે મહામુનિયોંકી કોટિમેં આ ચિરાજતે હૈં ॥ સૂ૦૧૩ ॥

ગીતાથ પરિક્ષારવિમુદ્ધિઃ જોષ્ઠીવિદ્યારી, પ્રતિભાધારી અને હનકરથી સાધુ
મુખીની અવસ્થાને ધારક બની મહામુનિ થઈ બચ છે

માધાથ—કપાયસહિત લેવાથી હવ કરોને ચોગ્ય પુણ્ય પરમાણુઓં
મહત્વ હરે છે આનુ નામ બધ છે આ બધદશાથી સમસ્ત સસારી હવ પર-
તન્ત્ર થઈ શક્યા છે અને તે તે જતિને આપનાર કૌશીલ્યથી ત ઉચ્ચ નીચ આદિ મુજોંમા
માતા પિતાના ૨/ અને લીર્જના સબધથી અર્જાવસ્થાન પલ બની, કરે કરે
પાતપોતાના સમયાનુસાર જન્મ લે છે જાત્યઆદિ અવસ્થા બાદ ધર્મઅવળ ચોગ્ય
અવસ્થાલાલે જ્યારે તે થાય છે ત્યારે ધર્મકથાના અવળથી પુણ્ય પાપના સ્વરૂ-
પનો બાજુ ૨ બની યોધિયીજની પ્રાપ્તિથી શરીર ધર્મની સફળતાહુપ
જૈનેશ્વરી લીક્ષા ધારણ કરી આચારાંગ આદિ સુચોગ્ય અભ્યાસ કરતા પોતાના
ચાલિત્રની ઉચ્ચવચ્ચતાની વૃદ્ધિ કરવામા સાવધાન રહે છે હનકરથી સાધુની અવસ્થા
પર્યન્ત વચ્ચેની લેટલી પણ સાધુઓની અવસ્થાઓં છે જે સદુત્ત અવસ્થાન
કરતા કરતા તે મહામુનિઓની કથાએ પડેલ છે (પ ૧૩)

જ્ઞાતાઃ=કલલાનન્તર યાવત્પેશ્યવસ્થાં પ્રાપ્તાઃ, અભિનિર્વૃતાઃ=તતઃ સાક્ષોપાદ્વસ્નાયુ-
શિરોરોમાદીના ક્રમેણાભિનિર્વર્ત્તનેન ગર્ભપૂર્ણાવસ્થા પ્રાપ્તા, તતો ગર્ભાન્નિઃસૃતાઃસન્ત
અભિસવૃદ્ધાઃ=શૈશવાદિક્રમેણ વૃદ્ધિપ્રાપ્ય ધર્મશ્રવણયોગ્યાવસ્થા સમાપન્નાઃ, તતઃ
અભિસવૃદ્ધાઃ=ધર્મકથાદિકં નિમિત્તમાસાદ્યોપલબ્ધપુણ્યપાપસ્વરૂપાદિતયા बोधिबीज
પ્રાપ્તાઃ, તતઃ અભિનિષ્ક્રાન્તાઃ=ગૃહસ્થભાવાન્નિર્ગતાઃ-પ્રવ્રજ્યા પ્રાપ્તા इत्यर्थः, અનુ-
પૂર્વેણ=અનુક્રમેણ આચારાદ્વાદિદ્વાદશાંગગણિપિટકાભ્યાસતદર્થભાવનોપવૃત્તિચરણ-
કરણપરિણામતયોપાધ્યાયગીતાર્થ-પરિહારવિશુદ્ધિકૈકાકિવિહારિ-પ્રતિમાધારિ-
જિનકલ્પિકાવસ્થાપર્યવસાનક્રમેણ મહામુનયો ભવન્તિ ॥ સૂ. ૧૩ ॥

ક્રમ ૨ સે જવ પૂર્ણ રચના હો જાતી હૈ, તવ ગર્ભકી વહ પૂર્ણ અવસ્થા
કહલાતી હૈ। इस पूर्ण अवस्था के व्यतीत होते ही जीव वहांसे बाहर
निकलता है। शैशव-बालपन आदिके क्रमसे जब उसकी वृद्धि होने
लगती है तो एक समय ऐसा भी आ जाता है कि जब यह धर्मश्रवण
के योग्य अवस्थाको प्राप्त होता है। धर्मकथाके सुननेसे पुण्य और पापके
स्वरूपसे यह भलीभांति परिचित हो जाता है और बोधिवीजको पाता
है। बोधिवीजकी प्राप्ति होनेसे यह गृहस्थभावसे निर्गत हो जाता
है-जैनेश्वरी दीक्षाको अंगीकार करता है, क्रम २ से आचारांग आदि
द्वादशांग गणिपिटकका अभ्यास करता है, अथवा उनके अभ्यास करने
की भावना रखता है। इस भावनासे वह अपने करणसत्तरी और चर-
णसत्तरीके परिणामोंकी वृद्धि करता रहता है। इससे क्रमशः उपाध्याय,
गीतार्थ, परिहारविशुद्धिक, एकाकीविहारी, प्रतिमाधारी और जिनकल्पी

અને માથાના વાળની કંમે કંમે જ્યારે પૂર્ણ રચના થઈ જાય છે ત્યારે ગર્ભની
પૂર્ણ અવસ્થા પછી જીવ ત્યાથી બહાર નીકળે છે શૈશવ-બાળપણ ઇત્યાદિ
ક્રમથી જ્યારે એની વૃદ્ધિ થવા લાગે છે, આમા એક સમય એવો પણ આવી
જાય છે કે જ્યારે તે ધર્મશ્રવણને યોગ્ય અવસ્થાને પ્રાપ્ત થાય છે ધર્મકથા
સાંભળવાથી થનાર પુણ્ય અને પાપના સ્વરૂપથી એ સારી રીતે પરિચિત થઈ જાય
છે, અને બોધિબીજને પામે છે બોધિબીજની પ્રાપ્તિ થવાથી એ ગૃહસ્થસ્વભા-
વથી નિર્ગત બની જાય છે, જૈનેશ્વરી દીક્ષાનો અંગીકાર કરે છે કંમે કંમે
આચારાંગ ઇત્યાદિ દ્વાદશાંગ ગણિપિટકનો અભ્યાસ કરે છે, અથવા એનો અભ્યાસ
કરવાની ભાવના રાખે છે આ ભાવનાથી એ પોતાના કરણસત્તરી અને ચરણ
સત્તરીના પરિણામોની વૃદ્ધિ કરતો રહે છે અને આગળ વધતા ઉપાધ્યાય,

મમિસમ્મુદસ્ય કર્તવ્યમાહ—‘સરણ’ ઇત્યાદિ ।

મધ્યમ—સરણ સત્ય નો સમેટ, કહ નુ નામ સે તત્થ રમટ્ ?
પયં નાણં સયા સમણુવાસિબ્બાસિ—તિથેમિ ॥ સૂ૦ ૧૫ ॥

જાયા—ઘરણં તથ નો સમેતિ, કય નુ નામ સ તત્થ રમતે ? પત્તદ જ્ઞાનં સદા
સમ્મણુવાસયે, ઇતિ વ્રવીમિ । સૂ૦ ૧૫ ॥

ટીકા—તથ=તસ્મિન્નપસરં દીક્ષાગ્રહણકાલે સઃ=મમિસમ્મુદાઃ પ્રવ્રજ્યાં પ્રવીઢુ
કામો વૈરામ્યવાનં વિભવન્તમપિ માતાપિત્રાદિકં ઘરણં નો સમેતિ નાપગચ્છતિ ।
સંસારસ્વરૂપસમપિગમસંજ્ઞાસતીવ્રથરથૈરામ્યમાવનામાવિતાત્મતયા માતાપિત્રાદિ
કુતાઽઞ્ચન્દનમવાગ્મય્ય સંપમમાર્ગમારોઢુ મદ્વત્તા મચ્છતીતિ ભાષા । પત્તદ્વથ સ્પષ્ટ

ગૃહવાસસે વિમુક્ત જનકે કર્તવ્યોનો સૂત્રકાર કહતે છે—“સરણ”
ઇત્યાદિ ।

ઇમ સૂત્રમે સૂત્રકાર યદ્ કહ રહે છે કિ જય મનુષ્ય મુનિવીક્ષા
ધારણ કરનેકે સન્નુસ હોતા હૈ, વૈરાગ્યસે ડસકા હૃદય ભરા હુઝા હોતા
હૈ તથ ડસ સમય બદ્ પૂર્વોક્તરૂપસે વિલાપ કરતે હુપ માતા પિતા આદિ
કી વાતોં મેં જરા મી નહીં છલજાતા; કારણ કિ ડસે યદ્ વાત મલી
ભાંતિ જ્ઞાત હો જુકી હૈ કિ મુક્તે મૃત્યુસે છુડાનેમેં પે સમર્પ નહીં હો સક્તે
હૈ, ક્યોં કિ પે સ્વયં જી ડસકે આધીન પને હુપ હૈ । કર્મોંકે ફલકો
મોગતે સમય કૌન પેસા સંસારમેં હૈ જો મુક્તે સહારા દે સકે ?
પહાં ધર્મકે સિવાય મેરા રક્ષક કોઈ નહીં હૈ । મંસારી સ્વયં
બપને ૨ કર્મોંકે ઉદયસે ઘસત હો રહ હૈ, ઇનમેં કૌન કિસકા રક્ષક
હો સક્તા હૈ । સપકો અપને કર્મ મોગને પકતે હૈ । યદિ કોઈ નિષ્કારણ

ગૃહવાસથી વિમુક્ત જનનાસ્તા કર્તવ્યોને સૂત્રકાર કહે ॥ ‘સરણ’ ઇત્યાદિ.
આ સૂત્રમાં સૂત્રકાર જો કહે છે કે જ્યારે મનુષ્ય મુનિવીક્ષા ધારણ
કર્યા થોમ્મ અને છે વૈરાગ્યથી જોનું હૃદય બાજબેનું કોય છે ત્યારે જો સમય
તે પૂર્વોક્તરૂપથી વિલાપ કરતા માતા પિતા વગેરેની વાતોમા જન પવ્વ બલ
થાતો નથી; કારણ કે જો વાત સારી રીતે જો બધી જુકયો હોય છે કે મને
મુનુપ મુખમાંથી બ્રહ્મવચના આ બધાં અસમર્થ છે; કેમ કે તેઓ પોતે જ
જોને આધીન અને છે કર્મના ફળને મોગવતી વળતે સંસારમા જોનું કોણ
છે કે મને આધારરૂપ અને. ધર્મના સિવાય મારું કોઈ રક્ષક નથી.
સંસારી પોતે જ પોતપોતાના કર્મોના ઉદયથી દુખી થઈ રહ્યા ॥
જનમા કોણ કોણ રક્ષક બની શકે ? બધાને પોતાના કર્મનાં ફળ ભોગવવા
૩૫

ટીકા=તમ્=અભિસંબુદ્ધં ગૃહવાસમિતુલ્યં, પરાક્રમમાણં=મહામુનિનિપેષિતં પ-
ન્થાનમારોહન્ત, તે=માતાપિતૃતનયમાર્યાદયઃ વદન્તિ-‘અસ્માન્ મા ત્યજ’ ઇતિ
ફિશ્ચ-છન્દોપનીતાઃ ત્વદભિપ્રાયાનુવર્તિનઃ, અધ્યુપપન્નાઃ=ત્વદનુગામિનઃ વયં સ્મઃ,
તસ્માદેવભૂતાનસ્માન્ પરિત્યજ્ય કિં વ્રજસિ ?, इत्येवमाक्रन्दकारिणः=સશોક
વિલપન્તઃ જનકાઃ માતાપિત્રાદયો રુદન્તિ ।

કિં ચૈવ તે વદન્તિ-અ તાદૃશો મુનિરિત્યાદિ ।

येन पापण्डिवश्चितेन मुग्धेन जनकाः=मातापित्रादयः विप्रत्यक्ताः=सर्वथा
परित्यक्ताः तादृशः अ=न मुनिर्भवति । अत्र-‘अ’ इति स्वरप्रतिरूपकमव्यय
निषेधार्थं वर्तते । नो=न च ओयं=ससारसागरप्रवाह तरति ॥ सू० १४ ॥

जिसने संसार, शरीर, और भोगोंका वास्तविक स्वरूप जानकर
गृहवाससे विरक्ति धारण की है, और जो महामुनियोंद्वारा सेवित मार्गका
अवलम्बन करनेके लिये उद्यत हो रहा है ऐसे मुमुक्षुजनको देखकर उसके
माता पिता, पुत्र स्त्री वगैरह स्वजन उससे कहते हैं कि “ मा अस्मान्-
त्यज ” तुम हमें मत छोड़ो; कारण कि हम सब तुम्हारी इच्छानुसार
प्रवृत्ति करनेवाले एवं तुम्हारे पीछे २ चलनेवाले हैं, तो फिर इस प्रकार
से वर्तन करनेवाले हम सबको छोड़कर तुम क्यों जा रहे हो ? इस प्रकार
सशोक विलाप करते हुए माता पिता आदि सम्बन्धजन रोते हैं और
कहते हैं कि यह वास्तविक मुनि नहीं है, पाण्डिओं से ठगाये गये इस
भोलेभाले ने अपने मातापितादिकको सर्वथा व्यर्थ ही छोड़ दिये हैं,
तथा यह संसाररूपी समुद्रके प्रवाहको भी नहीं तैर सकता है ॥सू० १४॥

જેણે સંસાર, શરીર અને ભોગોનું વાસ્તવિક સ્વરૂપ જાણી લઈ ગૃહવાસથી
વિરક્તિ ધારણ કરી છે, અને જે મહામુનિઓદ્વારા સેવિત માર્ગનું અવલમ્બન
કરવામા ઉદ્યમશીલ રહે છે એવા મોક્ષાભિલાષી જનને જોઈ એના માતા પિતા,
પુત્ર સ્ત્રી વગેરે સ્વજન એને કહે છે કે “મા અસ્માન્ ત્યજ” તમે અમોને છોડો
નહીં, કારણ કે અમો બધા તમારી ઇચ્છા અનુસાર પ્રવૃત્તિ કરનારા અને તમારી
પાછળ પાછળ ચાલવાવાળા છીએ છતાં પણ તમે અમો બધાને છોડી કેમ જઈ
રહ્યા છો ? આ પ્રકારનો શોક વિલાપ કરતા માતા પિતા ઇત્યાદિ સબંધીજનો
રૂએ છે અને કહે છે કે એ વાસ્તવિક મુનિ નથી, પાપણ્ડીઓથી છેતરાયેલ
આ ભોળાભાળાએ પોતાના માતા પિતા વગેરેને સમજ્યા વગર સર્વથા છોડી
દીધા છે, અને આ સંસારરૂપી સમુદ્રના પ્રવાહને પણ તરી શકતો નથી (સૂ૦ ૧૪)

स्यादिति माव । उपसर्गश्चाह—‘एतद्विज्ञान’—मित्यादि । एतत्—अष्टविधकर्मभूतन
विषयकपूतवादात्क द्वानं—जीवकर्मणारनादिसम्बन्धात्स्वकृतकर्मपरिणत्या पृथिव्या
विपरजीविकायाम् पुन पुनरन्तानन्तजन्ममरणदु सौधमनुभूय प्रबलपुण्योदयन
मनुष्यमवार्थश्रुत्कुलमन्मादिकमुपलभ्य धर्मप्रवणयोभ्यावस्थायां वचमान कथञ्चिद्
धर्मकपादिक निमित्तमासाद्याभिगतजीवाजीवस्वरूप उपलब्धपुण्यपाप आत्मसंस्व-
भोगोके वास्तविक स्वरूपके ज्ञाता हैं उन्हें यहस्थवास भी प्रिय
नहीं होता है ।

“एतद्विज्ञानं सदा समनुवासयेः—इति ब्रवीमि ।”—

इस प्रकारका उपसंहार करते हुए सूत्रकार शिष्यसे कहते हैं कि
इस घूतवादमें अष्टविध कर्मोंके विनाश करनेका जो विषय आया है
और साथमें जा यह बतलाया गया है कि जीव और कर्मोंका संबंध
अनाविकालका है, तथा तत्तद्गतिप्रापक कृतकर्मके उदयसे जीव पृथिवीका-
यिक आदि पर्यायोंमें उत्पन्न होता है, एवं वहां बारबार अनन्तानंत जन्म
मरणके दु भवोंके मारको बहान करता हुआ वह कोई प्रपन्न पुण्यक उदय
से मनुष्यभव, आर्यक्षेत्र, सुकुलमें जन्म आदि सामग्रीकी प्राप्तिसे धर्मके
अवधारणयोग्य अवस्थासम्पन्न बन, कथंचित् धर्मकथा आदिके निमित्त
को पाकर, जीव और अजीवादि पदार्थोंके स्वरूपका ज्ञाता बन पुण्य और
पापके यथार्थस्वरूपसे परिचित हो, आसन्न, वंश, संवर और निर्जराके
कारणोंमें कुशलमति होता हुआ मोक्षमार्ग पर आसन्न हो कर क्रमसे महा
मुनि होता है, इस प्रकार यह सय विषय प्रतिपादित हुआ है; सो ह शिष्य !

“एतद्विज्ञानं सदा समनुवासयेः—इति ब्रवीमि । ”

आ प्रकरणेन उपसंहार इत्या सूत्रकार शिष्यने कहे छे के आ पूतवादमां
आष्टविध कर्मोना विनाश इत्याने ने विषय आवेछ छे जने आये ने जेभ
जताववामां आञ्चु छे के एव जने कर्मोना सजध अन्यादिकाजने छे जने
ते ते जतिआपवावाग इत्ये कर्मना उदयभी एव पृथिवीकायिक आदि पर्यायोभा
उत्पन्न याव छे जने तथा बारबार अनन्तानंत जन्ममरणना दुःखेने बार
सदन इत्यां केछ प्रजग पुण्यना उदयभी मनुष्यभाव आर्यक्षेत्र, सुकुलमा जन्म
आदि सामग्रीनी प्राप्तिभी धर्मने अवलु करवा योज्य अवस्थासंपन्न जनी,
कथंचित् धर्मकथा आदिना निमित्तने पाभीने, एव जने अलगादि पदार्थेना
स्पर्धने जता जनी पुण्य जने पापने यथार्थ स्वरूपी परिचित जनी आसन्न,
वंश, संवर आ निर्जरा इत्याभा दुःख जनीने, मोक्षमार्गेना आसन्न यजने,

યતિ—‘કથં નુ નામ’ इत्यादि । स=तीव्रवैराग्यवान् तत्र=तस्मिन् गृह्वासे नररूपे मोक्षद्वारगलाभूते कथं नु नाम रमते=अनुरागं कुर्यात् ? किन्तु न स तत्रासक्तो भवितुमर्हति । यतः कारागारवासरूपोऽयं गृहवासो न कस्याप्यभिसंबुद्धस्य प्रियः बंधु है—रक्षक है—तो वह एक आराधित धर्म ही है; अतः उसका ही सहारा लेना मुझे उत्तम है । इस प्रकार ससारके स्वरूपके विचारसे उसके हृदयमें तीव्रतर वैराग्यभावकी जागृति होती है । इसका ही यह परिणाम होता है कि जो वह स्वार्थवश रोते चिढ़ाते दृष्ट भी अपने माता पिताकी तरफ थोड़ीसी भी ममत्वदृष्टिसे नहीं निहारता है और सहसा उनसे विरक्त बन संयम मार्गपर आरुढ़ होनेके लिये कटिबद्ध हो जाता है । इसी बातको “कथं नु नाम तत्र रमते” इस पंक्तिमें खुलासा किया है । ठीक ही है, अरे ! जिसकी आत्मामें तीव्रतर वैराग्यका वास हो चुका है, जो इस संसारको अशरण और असार समझ चुका है, भला ! वह संसारके पथिकोंको शरण और साररूप मान भी कैसे सकता है । उसे तो गृहवास नरकतुल्य और मोक्षद्वारका अर्गलास्वरूप ही प्रतिभासित होता है । यही कारण है जो वह उसमें आसक्त नहीं होता ।

भावार्थ—कोई भी प्रतिबुद्ध—समझदार मनुष्य जैसे कारागारमें रहना पसंद नहीं करता है, ठीक इसी प्रकारसे जो ससार, शरीर और

પડે છે આમા કોઈ નિષ્કારણ બન્ધુ હોય—રક્ષક હોય તો તે એક આરાધિત ધર્મ જ છે આથી એના જ આશ્રય લેવો મારા માટે ઉત્તમ છે આ પ્રકારે સ સારના સ્વરૂપના વિચારથી એના હૃદયમા વૈરાગ્યભાવની તીવ્રતર જાગૃતિ થાય છે એના પરિણામરૂપ રોતા ચિદલાતા પોતાના માતા પિતા વગેરેની સ્વાર્થવશતા તરફ એ જરાસરખી પણ મમત્વદૃષ્ટિથી જોતો નથી, અને એનાથી તદ્દન વિરક્ત બની સયમ માર્ગ ઉપર આરુઢ થવા એ મક્કમ બની જાય છે આ વાતનો “કથં નુ નામ તત્ર રમતે” આ પંક્તિમા ખુલાસો કરેલ છે ઠીક છે અરે ! જેના આત્મામાં વૈરાગ્યનો તીવ્રતર વાસ થઈ ચુક્યો છે, આ સ સારને જે અશરણ અને અસાર સમજી ચુકેલ છે એવો વિરક્ત જન સ્વજનોના સ્વાર્થવશ આકેદને કેમ વશ બની શકે ? એને તો ગૃહવાસ નરકતુલ્ય અને મોક્ષદ્વારમા બાધકજ જણાતુ હોય છે, આથી તે એનામા આસક્ત નથી બનેતો

ભાવાર્થ—કોઈ પણ પ્રતિબુદ્ધ—સમજૂ મનુષ્ય જેમ જેલખાનામા રહેવાનું પસંદ કરતો નથી આ જ રીતે જે સ સાર, શરીર અને લોગોના સાચા સ્વરૂપને જાણી ગયેલ છે એને ગૃહસ્થવાસ પ્રિય લાગતો નથી.

स्यादिति साव' । उपसहरमाह—'एतद्वृत्तान्'—मित्यादि । एतत्=अष्टविधकर्मधूनन विषयकवृत्तवाचोक्त ज्ञान=जीवकर्मणोरनादिसम्बन्धात्स्फुटकर्मपरिणत्या पृथिव्या दिपृथ्वीवर्तिकायपु पुनः पुनस्तन्तानन्तजन्ममरणदुःखोद्यमनुभूय मयलपुण्योदयेन मनुष्यमर्षार्थसुकुलजन्मादिकसुपलम्ब पर्यधक्षणयोग्यावस्थायां बधमानः कथञ्चिद् पमक्यादिकं निमित्तमासाद्यामिगतजीवाजीवस्वरूप उपलम्बपुण्यपाप आस्रवसंघ-
मोर्गोक वास्तविक स्वरूपके ज्ञाता है उन्हें गृहस्थवास भी प्रिय नहीं होता है ।

“एतद्वृत्तान् सदा समनुवासयेः—इति ब्रवीमि ।”—

इस प्रकरणका उपसंहार करते हुए सूत्रकार शिष्यसे कहते हैं कि इस वृत्तवादमें अष्टविध कर्मोंके विनाश करनेका जो विषय आया है और साथमें जा यह बतलाया गया है कि जीव और कर्मोंका संबंध अनाविकालका है, तथा तत्तद्वृत्तिप्रापक कृतकर्मके उदयसे जीव पृथिवीका-
यिक आदि पर्यायोंमें उत्पन्न होता है, एव वहां पारपार अनन्तानंत जन्म मरणके दुःखोंके भारको वहन करता हुआ यह कोई प्रबल पुण्यके उदय से मनुष्यभव, आर्षक्षेत्र, सुकुलमें जन्म आदि सामग्रीकी प्राप्तिसे धर्मके भ्रमण करनेयोग्य अवस्थासम्पन्न धन, कर्षस्ति धर्मकथा आदिके निमित्त को पाकर, जीव और अजीवादि पदार्थोंके स्वरूपका ज्ञान धन पुण्य और पापके यथार्थस्वरूपसे परिचित हो, आस्रव, बंध, संघर और निर्जराके कारणोंमें कुशलमति होता हुआ मोक्षमार्ग पर आख्य हो कर क्लमसं महा मुनि होता है, इस प्रकार यह सब विषय प्रतिपादित हुआ है; सो इ शिष्य !

“एतद्वृत्तान् सदा समनुवासयेः—इति ब्रवीमि । ”

आ प्रहरणने उपसंहार करवा सूत्रकार शिष्यने कहे छे के आ वृत्तवादां आष्टविध कर्मेना विनाश करवाने के विषय आवेछ छे अने साथे के जेभ अतावपानां आबु छे के एव अने कर्मोना सजस्र अनादिकागने छे अने ते ते जतिआप्तावागा करेस कर्मोना उदयधी एव पृथिवीकायिक आदि पर्यायोभां उत्पन्न भाव छे अने त्या पारपार अनन्तानंत जन्ममरणना दृ जेने भार सहन करवा के प्रमग पुण्यना उदयधी मनुष्यभाव आर्षक्षेत्र, सुकुलभां जन्म आदि सामग्रीनी प्राप्तिभी धर्मने भ्रमण करवा योग्य अवस्थासंपन्न अनी, कर्षस्ति धर्मकथा आदिना निमित्तने पार्थीने, एव अने अलप्यदि पदार्थोना स्वरूपने ज्ञात अनी पुण्य अने पापने यथार्थ स्वरूपधी परिचित अनी आस्रव, बंध, संघर आ निर्जरा करवावेना प्रथग अनीने, मोक्षमार्गभा आख्य धर्मने,

રનિર્જરાવન્ધાધિકરણકુશલ. સન્ મોક્ષમાર્ગારૂઢઃ ક્રમેણ મહામુનિર્ભવતીત્યેવરૂપં
સમ્યગવવોધં સદા=નિરન્તર સમનુવાસયેઃ=સ્વાત્મનિ ત્વં સમ્યગનુભાવયેઃ । ઇતિ
બ્રવીમિ । વ્યાખ્યા પૂર્વવત્ ॥ સૂ૦ ૧૫ ॥

॥ ઇતિ ષષ્ઠાધ્યયનસ્ય પ્રથમ ઉદ્દેશઃ સમાપ્તઃ ॥ ૬-૧ ॥

તુમ્હસ વિષયકો ભલીભાંતિ અપને હૃદયમેં ચિન્તવન કરતે રહો ।
“ઇતિ બ્રવીમિ ” ઇન પદોંકા વ્યાખ્યાન પૂર્વમેં કહા હી જા ચુકા હૈ ।

ભાવાર્થ—તીવ્રવૈરાગ્યસમ્પન્ન આત્મા અપને સંબંધીજનદ્વારા પ્રદર્શિત
કિયે ગયે મમતાભરે અનુનયવિનયકો લક્ષ્યમેં ન દે કર અપને દૃઢ અધ્ય-
વસિત કાર્યકી પૂર્તિ કરનેમેં હી તહ્લીનમતિ હોતા હૈ । સંસારકે કોઈ મી
પદાર્થ ઉસે ફિર લુભા નહીં સકતે । ઘર ઉસે લુભા નહીં સકતા,
વહ તો ઉસે કારાગાર જૈસા માલૂમ હોને લગતા હૈ । સમસ્ત સમ્બન્ધીજન
સ્વાર્થી એવં અશરણ ઉસે પ્રતિભાસિત હોને લગતે હૈ । એક આરાધિત
ધર્મકો હી વહ અપના રક્ષક ઓર સહાયી માનતા હૈ । હસીકી આરાધના
મેં વહ સબ કુછ અપના વિસર્જિત કર દેતા હૈ । સાધારણ મુનિ અવસ્થા
સે લે કર જિનકલ્પી સાધુ અવસ્થાતક કી ક્રિયાઓંકી આરાધના કરતા
હુઆ વહ ભાગ્યશાલી મહામુનિ કી કોટિમેં આ જાતા હૈ ॥સૂ૦ ૧૫॥

॥ છઠ્ઠા અધ્યયનકા પહલા ઉદ્દેશ સમાપ્ત ॥ ૬-૧ ॥

કમે કમે મહામુનિ બને છે આ પ્રકારે આ સધળો વિષય પ્રતિપાદિત થયો છે,
માટે હે શિષ્ય ! તમે આ વિષયનુ સારી રીતે પોતાના હૃદયમા ચિન્તવન કરતા
રહો “ ઇતિ બ્રવીમિ ” આ પદોનુ વ્યાખ્યાન પૂર્વમા (અગાઉ) કહેવાઈ ગયુ છે

ભાવાર્થ—તીવ્ર-વૈરાગ્ય-સ પન્ન આત્મા પોતાના સ બંધી જનદ્વારા કહેવામા
આવેલા મમતાભર્યા-અનુનય વિનયને લક્ષમા ન લેતા પોતાના દૃઢ અધ્યવસિત
કાર્યની પૂર્તિ કરવામા જ તદલીન બને છે સ સારના કોઈ પણ પદાર્થ એને પછી
લોભાવી તેના લક્ષથી દૂર કરી શકતો નથી ઘર એને લોભાવી નથી શકતુ
ઘર તો એને જેલખાના જેવુ લાગે છે સધળા સ બંધી જન સ્વાર્થી એને
અશરણુ છે તેવો તેને લાસ થાય છે એક આરાધિત ધર્મને જ તે પોતાનો
રક્ષક એને સહાયક માને છે એની આરાધનામા તે પોતાનુ બધુ ન્યોછાવર કરી
દે છે, સાધારણુ મુનિ અવસ્થાથી માડી જનકદ્વપી સાધુ અવસ્થા સુધીની ક્રિયા
ઓની આરાધના કરતા તે ભાગ્યશાળી મહામુનિની કોટીમા જઈએસે છે.(સૂ૦ ૧૫)

છઠ્ઠા અધ્યયનનો પહેલો ઉદ્દેશ સમાપ્ત ॥ ૬-૧ ॥

। अथ षष्ठाध्ययनस्य द्वितीय उद्देश ।

इहानन्तरादेशके मातापित्रादिस्वजनसङ्गतिधूननं निगदितं, तच्च कर्मविधूतं विना न सफलं स्यात्, अतस्तदर्थं द्वितीयादेशकं कथयति । तत्रादौ यं गृहीतवा रिभाः पश्चात् प्रबलमोहोदयात् आचारं परित्यजन्ति तेषां संसारपरिभ्रमणाद् विभ्रामा न भवतीति तान् बाधयितुमाह—‘आउर’ इत्यादि ।

मूकम्—आउर लोगमायाप अइत्ता पुण्यसजोग हिस्सा उवसम वसित्ता धंभचेरसि, वसु अणुवसु वा जाणित्तु धम्म जहा तहा, अहेगे तमचाइ कुसीला, वरथ पडिग्गह कबल पायपुछण विउसिज, अणुपुण्णेण अणहियासमाणा परीसह दुरहियासप ।

॥ छद्वा अध्ययनका दूसरा उद्देश ॥

इस अध्ययनके प्रथम उद्देशमें माता, पिता आदि स्वजनोके संवध का परित्याग प्रकट किया गया है । परन्तु यह परित्याग कर्मोंके बिनाश के बिना सफल नहीं हो सकता है । इसलिये उन कर्मोंके बिनाशके निमित्त इस द्वितीय उद्देशका कथन सूत्रकार प्रारम्भ करते हैं । उसमें सर्वप्रथम वे इस बातका निरूपण करते हैं कि जिसने चारित्रकी प्राप्ति तो कर ली है, परन्तु प्रबल चारित्रमोहनीयके उदयसे उस गृहीत चारित्रका परित्याग भी कर दिया है, तो इससे उसका संसारके परिभ्रमणसे विभ्राम हो जाता होगा, सो यह बात नहीं है; इसी विषयको उसे समझानेके लिये सूत्रकार कहते हैं—“आउर” इत्यादि ।

छद्वा अध्ययनको पीछे उद्देश

आ अध्ययनका प्रथम उद्देशमा माता-पिता वजेरे स्वजनोना साधेना संवधने परित्याग प्रकट कसयेछे छे परन्तु जे परित्याग कर्मोना बिनाश वगर सफल जनी सकतो नथी । आ माटे कर्मोना बिनाशने माटे आ पीछे उद्देशना कथनना सूत्रकार प्रारंभ करे छे जेमा सङ्ग प्रथम ते जे वास्तु निह पज्ज करे छे ते जेहे चारित्रिनी प्राप्ति तो करी बीभी छे, परन्तु प्रबल चारित्रमोहनीयना उदयसे जे गृहीत चारित्रो परित्याग पज्ज करी दीये छे ते आभी जेना संसारना परिभ्रमणने विभ्राम भणी व्यव ॥ आ बात नथी ! आ विषयने समझववा माटे सूत्रकार कहे छे “आउर” इत्यादि ।

કામે મમાયમાણસ્સ ઇચ્છાણિં વા મુહુત્તેણ વા અપરિમાણાએભેણ
 એવંસે અંતરાયણ્હિં કામેહિં આકેવલિણ્હિં અવતિન્ના ચેણાસૂ૦૧॥

છાયા—આતુરં લોકમાદાય ત્યક્ત્વા પૂર્વસયોગં હિત્વા ઉપશમં ઉપિત્વા બ્રહ્મ-
 ચર્યે, વસવઃ અનુવસવો વા જ્ઞાત્વા ધર્મં યથા તથા, અથૈકે તમ્ અશક્નુવન્તિ કુશીલાઃ,
 વત્તં પતદ્ગ્રહં કમ્બલં પાદપોચ્છન વ્યુત્સૃજ્ય અનુપૂર્વેણ અનધિસહમાના પરીપહાન
 દુરધિસહાન કામાન મમાયમાનસ્ય ઇદાનીં મુહુર્તેન વા અપરિમાણાય ભેદઃ । એવ
 સ આન્તરાયિકૈઃ કામૈઃ આકેવલિકૈઃ અવતીર્ણાઃ ચૈતે ॥ ૧ ॥

ટીકા—લોકં=ષડ્જીવનિકાયમ્, આતુર=કલેશિતમ્, આદાય=બુદ્ધિયા ગૃ-
 હીત્વા અવબુદ્ધ્યેતિયાવત્, તથા=પૂર્વસયોગ=માતાપિતૃપુત્રકલત્રાદિસમ્બન્ધં ત્યક્ત્વા,
 તથા=ઉપશમ=વિરતિં, હિત્વા=પ્રાપ્ય, તથા બ્રહ્મચર્યે ઉપિત્વા=સ્થિત્વાઽપિ વસવઃ=
 સાધવઃ, અનુવસવઃ=ષષ્ટ્યાઃ પ્રતિમાયા આરમ્ભ્ય યાવદેકાદશપ્રતિમાધારિણઃ શ્રાવ-
 કા વા યથા તથાઽવસ્થિત ધર્મ=શ્રુતચારિત્રાખ્ય જ્ઞાત્વાઽપિ, અથ=અનન્તરમ્, એકે=
 કેચિત્ મોહોદયાત્ કુશીલાઃ સાવધાનુષ્ઠાનપ્રવૃત્તાઃ સન્તઃ, ત=ધર્મ પાલયિતું અ-
 ન શક્નુવન્તિ, અતસ્તે દુરધિસહાન અનધિસહમાનાઃ વત્તં પતદ્ગ્રહં=પાત્ર કમ્બલં પાદ-

ષડ્જીવનિકાયસ્વરૂપ ઇસ લોકકો કલેશિત અપની બુદ્ધિસે જાન-
 કર, તથા માતા, પિતા, પુત્ર, કલત્ર આદિ રૂપ પૂર્વસંયોગકા પરિત્યાગ
 કર, ઉપશમરૂપ વિરતિકો પ્રાપ્ત કર, ઔર બ્રહ્મચર્યવ્રતકા પાલન કર સાધુ
 જન, અથવા શ્રાવકકી છટ્ટી પ્રતિમાસે લે કર ૧૧ વીં પ્રતિમા તકકા આચાર
 પાલન કરનેવાલે ગૃહસ્થજન, જિસ સ્વરૂપસે શ્રુતચારિત્રરૂપ ધર્મકી સ્થિતિ
 હૈ ઉસ રૂપસે ઉસે જાન કર મી મોહકે ઉદયસે વાદમેં કઈ એક કુશીલ-
 સાવધ અનુષ્ઠાનમેં પ્રવૃત્તિ કરનેવાલે હો જાતે હૈ, ઔર ઉસ શ્રુતચારિત્રરૂપ
 ધર્મકે પાલન કરનેમેં સર્વથા અક્ષમ બન ઉસસે બ્રષ્ટ હો જાતે હૈ । પરિ-

ષડ્જીવનિકાયસ્વરૂપ આ લોકને પોતાની બુદ્ધિથી કલેશિત બાણી, માતા,
 પિતા, પુત્ર અને કુટુંબીજનોના પૂર્વસંયોગનો પરિત્યાગ કરી, ઉપશમરૂપ વિર-
 તિને પ્રાપ્ત કરી, બ્રહ્મચર્યવ્રતનું પાલન કરવા ઉપરાંત સાધુજન અથવા શ્રાવકની
 છટ્ટી પ્રતિમાથી લઈ ૧૧મી પ્રતિમા સુધીનું આચાર પાલન કરવાવાળા ગૃહસ્થ
 જન જે સ્વરૂપની શ્રુતચારિત્રરૂપ ધર્મની સ્થિતિ છે એ રૂપથી એને બાણીને પણ,
 મોહના ઉદયથી કોઈએક સાવધાનુષ્ઠાનમાં પ્રવૃત્તિ કરવાવાળા બની જાય છે અને
 શ્રુતચારિત્રરૂપ ધર્મનું પાલન કરવામાં સર્વથા અક્ષમ થઈ બ્રષ્ટ થઈ જાય
 છે. પરિષ્કોના સહેવામાં અસમર્થ બનીને વસ્ત્ર, પાત્ર, કમ્બલ અને પાદત્રોછન

મોચ્છનં=રજોહરણં ચ ચ્યુત્સૂચ્ય=મમસ્વમાધ્યાત્મ્યસ્વા અનુપૂર્વેણ=અનુક્રમેણ ચારિત્રં
પરિત્યજન્તિ । ‘અનુક્રમેણ’ इत्यनेनेदमुक्तं भवति—कुशीलेषु केचित् पेश्वभिरति,
કેચિત્ સમ્યક્સ્વમાપ્રમાથિત્ય તિષ્ઠન્તિ, કેચિન્ન તતોઽપિ પરિશ્રદ્ય મિધ્યાત્મમુપગ
ચ્છન્તીતિ । વિષયમોગાય ધર્મં ત્યક્તવતાં પાપોદયફલમાહ—‘કામાન્’ इत्यादि
कामान्=सुखादिविषयाश्च ममायमानस्य=ममत्वविषयीकृतानां तस्य इदानीं=प्रव्रज्या
પરિત્યાગાનન્તરમેષ-મોગપ્રાપ્તિસમનન્તરમેષ ષા મુદ્ધુર્તેન ષા=અન્તમુદ્ધુર્તેન ષા, इदमुप-
लक्षणं तन-कम्बरीकवदहोरात्रं ततोऽप्यधिकेन कालेन वा लग्नमवगुरादस्मान्छरी
પહેકે સહનેમેં અસમય બને છૂપ લે લક્ષ, પાત્ર, કમ્બલ ઓર પાદમોચ્છન
-રજોહરણકા, ધર્મની ઓર કષિકે અમાવસે, પરિત્યાગ કર ક્રમશઃ
ચારિત્રકા પાલન કરના છોડ દેતે હિં । “અનુક્રમ” પદસે યહ માત્ર
માલુમ્ હોતી હૈ-કિ કુશીલોં મેં કોઈ ૨ પેશ્વભિરતિકા ઓર કોઈપદ
ચતુર્થ ગુણસ્થાનકા પાલન કરતે હિં ઓર કોઈ પેસે મી હોતે હિં જો ડસ
ચતુર્થ ગુણસ્થાન તકકા મી પરિત્યાગ કર પ્રથમ મિધ્યાત્મ ગુણસ્થાનવર્તી
હો જાતે હિં ।

વિષયમોગોકે નિમિત્ત ધર્મકા પરિત્યાગ કરનેચાલોકે પાપોકે ઉદય
ફલકો પ્રકટ કરનકે લિયે સૂત્રકાર “કામાન્” इत्यादि सूत्रांश कहते
હૈ । લે હસમેં પ્રકટ કરતે હૈ કિ શબ્દાદિક વિષયોકો મમત્વકા વિષય
કરનેચાલે ડસ પરિત્યક્તચારિત્રચાલે મનુષ્યકા, પ્રવ્રજ્યાકે ત્યાગકે
અનન્તર અથવા મોગપ્રાપ્તિકે બાદ, યા પદ અન્તર્મુદ્ધર્તકાલમેં, ઉપલક્ષણ
સે કંઢરીકની તરફ અહોરાત્ર-પદવિનરાતમેં, અથવા હસસે મી અધિક

—स्नेहश्चने भर्त्तव्यं तश्च इन्दीया अभाषने क्षण्ये त्याग करी चास्त्रिनु
પાલન કરવાનું છોડી દે છે “અનુક્રમ” પદથી જો વાત માલુમ પડે છે કે કુશીલોમાં
કેઈ કેઈ રેશવિશતિનું અને કેઈ ધોષા શુદ્ધસ્થાનનું પાલન કરે છે અને કેઈ જોવા
પણ કોય છે કે જે ધોષા શુદ્ધસ્થાનનો પણ પરિત્યાગ કરીને મિધ્યાત્મ શુદ્ધસ્થાન
વર્તી બની જાય છે

વિષયસોગોને નિમિત્ત ધર્મના પરિત્યાગ કરવાનાજાના પાપના ઉદયના હવ
પ્રગટ કરવા માટે સૂત્રકાર “કામાન્” इत्यादि सूत्रांश कहें છે તેઓ જોમાં પ્રગટ
કરે છે કે શબ્દાદિક વિષયોમાં અસહિત કરવાવાળા ચારિત્ર છેલ્લાર તે મનુષ્યને,
પ્રવ્રજ્યાના ત્યાગ બાદ, અથવા મોગ પ્રાપ્તિ પછી, અથવા જોકે અન્તર્મુદ્ધર્ત કાળમાં,
ઉપલક્ષણથી કંઢરીકની માફક જોકે દિનરાતમાં, અથવા તેનાથી પણ અધિક

કામે મમાયમાણસ્સ ઇયાણિં વા મુહુત્તેણ વા અપરિમાણાએભેણ
 એવંસે અંતરાયણિં કામેહિં આકેવલિણિં અવતિન્ના ચેણાસૂ૦૧૥

છાયા—આતુર લોકમાદાય ત્યક્ત્વા પૂર્વસયોગં હિત્વા ઉપશમ ઉપિત્વા વ્રત્ત-
 ચર્યે, વસવઃ, અનુવસવો વા જ્ઞાત્વા ધર્મં યથા તથા, અયૈકે તમ્ અશક્નુવન્તિ કુશીલાઃ,
 વસ્ત્રં પતદ્ગ્રહં કમ્બલં પાદપ્રોચ્છન વ્યુત્સૃજ્ય અનુપૂર્વેણ અનધિસહમાના પરીપદાન
 દુરધિસહાન્ કામાન્ મમાયમાણસ્ય ઇદાની મુહુર્તેન વા અપરિમાણાય ભેદઃ । એવં
 સ આન્તરાયિકૈઃ કામૈઃ આકેવલિકૈઃ અવતીર્ણાઃ ચૈતે ॥ ૧ ॥

ટીકા—લોકં=પદ્મજીવનિકાયમ્, આતુર=ક્લેશિતમ્, આદાય=બુદ્ધ્યા ગૃ-
 હીત્વા અવબુદ્ધ્યેતિયાવત્, તથા=પૂર્વસયોગ=માતાપિતૃપુત્રકલત્રાદિસમ્યન્થ ત્યક્ત્વા,
 તથા=ઉપશમ=વિરતિં, હિત્વા=પ્રાપ્ય, તથા વ્રત્તચર્યે ઉપિત્વા=સ્થિત્વાઽપિ વસવઃ=
 સાધવઃ, અનુવસવઃ=પશુચાઃ પ્રતિમાયા આરમ્ભ યાવદેકાદશપ્રતિમાધારિણઃ શ્રાવ-
 કા વા યથા તથાઽવસ્થિત ધર્મ=શ્રુતચારિત્રાણ્ય જ્ઞાતાઽપિ, અથ=અનન્તરમ્, એકે=
 કેચિત્ મોહોદયાત્ કુશીલાઃ સાવધાનુષ્ઠાનપ્રવૃત્તાઃ સન્તઃ, ત=ધર્મ પાલયિતુ અ-
 ન શક્નુવન્તિ, અતસ્તે દુરધિસહાન્ અનધિસહમાનાઃ વસ્ત્રં પતદ્ગ્રહં=પાત્રં કમ્બલ પાદ-

પદ્મજીવનિકાયસ્વરૂપ્ત્વમ્ આ લોકકો ક્લેશિત અપની બુદ્ધિસે જાન-
 કર, તથા માતા, પિતા, પુત્ર, કલત્ર આદિ રૂપ પૂર્વસયોગકા પરિત્યાગ
 કર, ઉપશમરૂપ વિરતિકો પ્રાપ્ત કર, ઔર વ્રત્તચર્યવ્રતકા પાલન કર સાધુ
 જન, અથવા શ્રાવકકી છટ્ટી પ્રતિમાસે લે કર ૧૧ વી પ્રતિમા તકકા આચાર
 પાલન કરનેવાલે ગૃહસ્થજન, જિસ સ્વરૂપસે શ્રુતચારિત્રરૂપ ધર્મકી સ્થિતિ
 હૈ ઉસ રૂપસે ઉસે જાન કર મી મોહકે ઉદયસે બાદમે કઈ એક કુશીલ-
 સાવચ અનુષ્ઠાનમે પ્રવૃત્તિ કરનેવાલે હો જાતે હૈ, ઔર ઉસ શ્રુતચારિત્રરૂપ
 ધર્મકે પાલન કરનેમે સર્વથા અક્ષમ બન ઉસસે ભ્રષ્ટ હો જાતે હૈ । પરિ-

પદ્મજીવનિકાયસ્વરૂપ્ત્વમ્ આ લોકકો ક્લેશિત અપની બુદ્ધિસે જાન-
 કર, તથા માતા, પિતા, પુત્ર અને કુટુંબીજનોના પૂર્વસયોગનો પરિત્યાગ કરી, ઉપશમરૂપ વિર-
 તિને પ્રાપ્ત કરી, બ્રહ્મચર્યવ્રતનું પાલન કરવા ઉપરાંત સાધુજન અથવા શ્રાવકની
 છટ્ટી પ્રતિમાથી લઈ ૧૧મી પ્રતિમા સુધીનું આચાર પાલન કરવાવાળા ગૃહસ્થ
 જન જે સ્વરૂપની શ્રુતચારિત્રરૂપ ધર્મની સ્થિતિ છે એ રૂપથી એને જાણીને પણ,
 મોહના ઉદયથી કોઈએક સાવધાનુષ્ઠાનમાં પ્રવૃત્તિ કરવાવાળા બની જાય છે અને
 શ્રુતચારિત્રરૂપ ધર્મનું પાલન કરવામાં સર્વથા અક્ષમ થઈ ભ્રષ્ટ થઈ જાય
 છે. પરિહોના સહેવામાં અસમર્થ બનીને વસ્ત્ર, પાત્ર, કમ્બલ અને પાદપ્રોચ્છન

પ્રોચ્છન=રજોહરણ થ શ્યુત્સુજ્ય=મમરુપ્યમાશાયસ્વા અનુપૂર્વેષ=અનુક્રમેષ ચારિષં
 પરિસ્પનન્તિ । 'અનુક્રમેણ' રસ્યનેનેદશુક્ત મથતિ-કુચીછેપુ કેચિત્ વેદ્યવિરતિ,
 કેચિત્ સમ્યક્ત્વમાશ્રમાથિત્ય તિષ્ઠન્તિ, કેચિત્ તતોડપિ પરિશ્રમ્ય મિધ્યાત્મપગ-
 ણ્યન્તીતિ । વિષયમોગાય ધર્મ સ્પષ્ટવર્તા વાપોવયક્ષ્ણમાદ—'કામાન્' રત્યાદિ
 કામાન્=શબ્દાદિવિષયાન્ મમાયમાનસ્ય=મમત્વવિષયીકુર્વાણસ્ય ઇવાની=મમજ્ઞ્યા
 પરિત્યાગાનન્તરમેષ=મોગપ્રાપ્તિસમનન્તરમેષ વા મુદુર્ષેન વા=અન્તમુદુર્ષેન વા, રદમુપ-
 લક્ષણ ઘેન=કમ્હરીકવદ્દોરાત્ર તતોડ્યપિકેન કાલેન વા સખમદ્ગુરાદસ્માશ્ચરો
 પદ્ધતિ સહનેમેં અસમથ ધને દુષ્ટ વે ચક્ષ, પાત્ર, કમ્બલ ઓર પાદપ્રોચ્છન
 -રજોહરણકા, ધમકી ઓર રુચિકે અમાયસે, પરિત્યાગ કર ક્રમશઃ
 ચારિત્રકા પાલન કરના છોડ દેતે હિં । "અનુક્રમ" પદસે યદ યાત
 માલુમ હોતી હૈ-કિ કુચીછોં મેં કોઈ ૨ વેદ્યવિરતિકા ઓર કોઈએક
 ચતુર્થ ગુણસ્થાનકા પાલન કરતે હિં ઓર કોઈ એસે મી હોતે હિં જો ઇસ
 ચતુર્થ ગુણસ્થાન તમકા મી પરિત્યાગ કર પ્રથમ મિધ્યાત્મ ગુણસ્થાનવર્તી
 હો જાતે હિં ।

વિષયમોગોકિ નિમિત્ત ધમકા પરિત્યાગ કરનેચાલોકે પાપોકે ઉદય
 ફલકો પ્રકટ કરનેકે લિપ સુત્રકાર "કામાન્" રત્યાદિ સુત્રાંશ કહતે
 હે । જે હસમેં પ્રકટ કરતે હે કિ શાસ્ત્રાદિક વિષયોંકો મમત્વકા વિષય
 કરનેચાલે ઇસ પરિત્યક્તચારિત્રચાલે મનુષ્યકા, પ્રવ્રજ્યાકે ત્યાગકે
 અનન્તર અથવા મોગપ્રાપ્તિકે વાદ, વા પદ અન્તર્મુહર્તકાલમેં, ઉપલક્ષણ
 સે કમ્હરીકકી તરફ અદોરાત્ર-પદવિનરત્તમેં, અથવા હસસે મી અધિક

—સ્નેહરુપે, ધર્મના તરફ રૂપીના અભાવને કારણે ત્યાગ કરી આશ્રિત
 પાલન કરવાનું છે. "અનુક્રમ" પદથી એ વાત માલુમ પડે છે કે કુચીછોમાં
 કેઈ કેઈ વેદ્યવિરતિનું અને કેઈ શાસ્ત્રાદિક ગુણસ્થાનનું પાલન કરે છે, અને કેઈ એવા
 પદ્ય હોય છે કે જે શાસ્ત્રાદિક ગુણસ્થાનનો પણ પરિત્યાગ કરીને મિધ્યાત્મ ગુણસ્થાન
 વર્તી જતી હોય છે.

વિષયભોગોને નિમિત્ત ધર્મના પરિત્યાગ કરવાનાં પાપના ઉદયના રૂપ
 પ્રકટ કરવા માટે સુત્રકાર "કામાન્" રત્યાદિ સુત્રાંશ કહે છે તેઓ એમાં પ્રકટ
 કરે છે કે શાસ્ત્રાદિક વિષયોમાં આસક્તિ કરવાનાં આશ્રિત છેત્તાર તે મનુષ્યનો,
 પ્રવ્રજ્યાના ત્યાગ બાદ, અથવા ભોગ પ્રાપ્તિ પછી, અથવા એક અન્તર્મુહર્ત કાળમાં
 ઉપલબ્ધથી કમ્હરીકની આદેક એક દિનશતમાં, અથવા તેનાથી પણ અધિક

રાત્પૃથગ્ભૂતસ્ય તસ્ય પથ્વાત્કૃતસ્ય—‘પછાકઢા’ ઇતિ પ્રસિદ્ધસ્ય અપરિમાણાય
=અપરિમિતકાલ યાવત્ ભેદઃ=મનુષ્યશરીરસ્યાન્તર-વ્યવધાન ભવતિ, ધર્માત્પરિભ્રમ્ય
મૃતસ્ય નરકકિમ્ગોદાધનન્તદુઃસ્વમનુભવતોઽનન્તકાલેનાપિ પુનર્મનુષ્યશરીર ધુર્લભં
ભવતિ, વથં પુન્સ્તરયાર્યક્ષેત્રસુકુલજન્મવોધિવીજાદિસામગ્ર્યાઃ સમ્ભવ ? ઇતિ ભાવઃ।

एतदेवोपसंहरन्नाह—‘एव’ मित्यादि । एवम्=अनया रीत्या सः=भोगार्थी
पथात्कृतः एते=तदितरे ये भोगाभिलाषिणो वर्तन्ते एतेऽपि च, आन्तरायिकैः=

સમયમેં ઇસ ક્ષણભગુર શરીરસે જવ વિયોગ હોતા હૈ, તો ફિર પીછે
ઉસકે લિયે ઇસ ધુર્લભ મનુષ્ય જન્મકી પ્રાપ્તિ હોનેમેં સમયકા કોઈ પ્રમાણ
નિશ્ચિત નહીં હૈ । છોડી હુઈ ઉસ પર્યાયકી પુનરપિ પ્રાપ્તિ હોનેકે લિયે
વિરહકાલ અપરિમિત હૈ—ફિરસે મનુષ્યપર્યાય પ્રાપ્તિ હોનેકે લિયે ભવોંકી
કોઈ ગણના નહીં હૈ—ઉસકી પુનઃ પ્રાપ્તિકે લિયે અપરિમિત અન્તર-વ્યધાન-
પડ જાતા હૈ । ગૃહીતચારિત્રધર્મસે ભ્રષ્ટ વનકર મરે હુए ઉસ અધમ મનુષ્યકી
ઉત્પત્તિ નરકનિગોદાદિકોમેં હોતી હૈ ઓર વહ વહાંકી અપાર—અનન્ત
દુઃસ્વરાશિકા અનુભવ કરતા રહતા હૈ । અનન્તકાલ તક ખી ઉસકે
લિયે મનુષ્યભવકી પુનઃ પ્રાપ્તિ હોના ધુર્લભ હો જાતી હૈ । જવ યહ વાત
હૈ તો ફિર યહ તો સિદ્ધ હી હૈ કિ ઉસકે લિયે આર્યક્ષેત્ર, સુકુલમેં જન્મ,
બોધિવીજકા લાભ ઇત્યાદિ સમસ્ત સામગ્રિયોંકી પ્રાપ્તિકી સંભવતા કૈસે
હો સકતી હૈ !

इसीका उपसंहार करते हुए सूत्रकार कहते हैं कि—इस रीतिसे वह
भोगार्थी तथा इससे अतिरिक्त और भी जो भोगाभिलाषी है ये सब,

સમયમા આ ક્ષણભગુર શરીરથી ન્યારે વિયોગ થાય છે ત્યાર પછી એના માટે
આ ધુર્લભ મનુષ્ય જીવનની પ્રાપ્તિ હોવામા સમયનુ કોઈ પ્રમાણ નિશ્ચિત નથી
છોડેલ એ પર્યાયની ફરીથી પ્રાપ્તિ થવા માટે વિરહકાળ અપરિમિત છે—ફરીથી
મનુષ્યપર્યાય પ્રાપ્ત કરવા માટે ભવોની કોઈ ગણના નથી—એની ફરી પ્રાપ્તિ
માટે અપરિમિત અન્તર (વ્યવધાન) થઈ જાય છે ગૃહીત ચારિત્રધર્મથી ભ્રષ્ટ બની
મરનાર એ અધમ મનુષ્યની ઉત્પત્તિ નરકનિગોદાદિમા થાય છે અને એ ત્યાની
અપાર—અનન્ત દુઃખરાશિનો અનુભવ કરતો રહે છે અનન્તકાળ સુધી પણ એને
માટે મનુષ્યભવની પ્રાપ્તિ ધુર્લભ બની જાય છે ન્યારે આ વાત છે તો પછી
એ તો સિદ્ધ જ છે કે તેને માટે આર્યક્ષેત્ર, સુકુળમા જન્મ, બોધિબીજને લાભ
ઈત્યાદિ સમસ્ત સામગ્રીઓની પ્રાપ્તિની સંભવતા પણ કેમ થઈ શકે ? કોઈ
કાળે થઈ શકે નહિ આનો ઉપસહાર કરતા સૂત્રકાર કહે છે કે આ રીતથી
તે ભોગાર્થી તથા આનાથી અતિરિક્ત એવા પણ જે ભોગાભિલાષી છે

અન્તરાયપદ્મહસ્તવાદુઃસ્વમયૈઃ આકેષલિકૈઃ, કેષસમ્=અસપ્ત સમ્પૂર્ણમિતિ યાવત્, ન કેવલમકેવલં તત્ર મથા આકેષલિકા=અસંપૂર્ણાસૈ=મોગેષ્ઠા પૂરયિતુમસમે'કામૈઃ =શબ્દાદિવિષયૈઃ અત્રાઃ સન્તાઃ મનુષ્યશરીરવ્યવધાનં પ્રાપ્નુવન્તિ ॥ મૂં ૧ ॥

અન્તરાયપદ્મહ હોનેસે વાસ્વમય પદ્ય અસપૂર્ણ હન શબ્દાદિવિષયપરુપ કામોસે અત્રુષ હોતે છુપ મનુષ્ય શરીરની પુનઃ પ્રાસિકેકાલકો વ્યવધાન (અન્તર) સહિત કરવેતે હૈ, આકેષલિક શબ્દના અર્થ અસંપૂર્ણ હૈ ઓર વહ હમ પ્રકારસે કિ અર્થ-સંપૂર્ણકા નામ કેવલ હૈ, જો કેવલ નહીં વહ અકેષલ હૈ । ડસમેં જો હો વહ આકેષલિક હૈ । કામોકો અસંપૂર્ણ હસલિયે ક્તસાપા ગયા હૈ કિ યે 'મોગોકી હચ્છાકી પૂર્તિ કરનમેં અસ મર્ય હૈ । જ્યોં જ્યોં હનકા લાભ હોતા હૈ ત્યાં ત્યોં જીયકી હચ્છાપેં હનૈં અધિકાધિકરૂપસે 'મોગનેકે લિયે વધતી જાતી હૈ ।

ભાવાર્થ—જો મનુષ્ય હમ પદ્મજીવનિકાવરૂપ છોકરો કહેશિત સમજકર ડસકા પરિસ્થાગ કરવેતે હૈ, તથા માતાપિતા આદિ સંવર્ધીજનોં સે 'મી વિમુક્ષ વન કર ચારિત્રધર્મની આરાધના કરનેમેં લઘલીન હો જાતે હૈ—ચારિત્રકે પાલનસે સમ્બધ રખનેપાલી જિતની 'મી પ્રશ્નપર્ય આદિક પાલને જેસી અન્ય ક્રિયાપેં હૈ ડન સવકા 'મી યે અચ્છી તરહસે પાલન કરતે હૈ, પરન્તુ ફિર 'મી મોહકી પ્રવલ્તાસે યે ડસ ગૃહીત ચારિત્ર સે બ્રષ્ટ વનકર મિધ્યાત્મી તક હો જાતે હૈ ઓર મુનિચિન્હોંકા સર્વથા

જો બધા અન્તરાયપદ્મહ હોવાથી હુ ખમય અને અસપૂર્ણ આ શબ્દાદિ વિષ-
અર્થ કામોથી અત્રુષ થતાં થતાં મનુષ્ય શરીરની પુનઃ પ્રાસિકાકાગને વ્યવધાન
(અન્તર) સહિત કરી દે છે આકેષલિક શબ્દના અર્થ અસપૂર્ણ છે અને તે
આ પ્રકારે છે અપદ્મ સપૂર્ણ નામ કેવલ છે જે કેવલ તથી જો અકેવલ છે.
ઓમા જે હોય તે આકેષલિક છે કામોને અસપૂર્ણ જો નાજે જતાવેલ છે કે
તે સોચેની કમ્મજની તુસિ કરવામાં અસમર્થ છે જેમ જેમ સો ાને લાલ થાય
છે તેમતેમ છબી કમ્મજો અને અધિકારિક રૂપી ભોગવવા માટે વધતી જાય છે

ભાવાર્થ—જે મનુષ્ય પદ્મજીવનિકાવરૂપ હોકને કલેશરૂપ સમજને તેને
પરિસ્થાગ કરી દે છે તથા માતા પિતા અને પોતાના સખધીજનોથી પણ
વિમુખ જાતીને ચારિત્રધર્મની આરાધના કરવામાં તલલીન થઈ જાય છે.
ચારિત્રના પાલનથી સખધ સખવાવાળી જેટલી પણ પ્રશ્નપર્ય આદિ પાળવા
ગેથી અન્ય ક્રિયાઓ છે જે બધાનુ પણ તે સારી રીતે પાલન કરે છે છતાં
પણ મોહની પ્રવળતાથી જો શ્રદ્ધ છૂટેલા ચારિત્રથી બ્રષ્ટ બની મિધ્યાત્મી બની
જાય છે અને મુનિચિન્હોનો સર્વથા પરિસ્થાગ કરી વિષયસોગાની આકાંક્ષામાં

યસ્તુ આસન્નમોક્ષતયા કથંચિત્ કુતશ્ચિત્ ચારિત્ર પ્રાપ્ય લઘુકર્મતયા પ્રવર્ધમાન-
પરિણામો ભવતિ, સ સિદ્ધિપદં પ્રાપ્નોતીતિ વોધયિતુમાહ-‘અહેગે’ ઇત્યાદિ ।

મૂલમ્-અહેગે ધમ્મમાયાય આયાણપ્પભિઙ્ગ સુપણિહિણ ચરે
અપ્પલીયમાણે દઢેસવ્વં ગિદ્ધિં પરિણાય, એસ પણે મહામુણી ॥ સૂ. ૦૨ ॥

છાયા--અથેકો ધર્મમાદાય આદાનપ્રમૃતિ સુપ્રણિહિતશ્ચરેત્ અપ્રલીયમાનઃ દઢઃ
સર્વા ગૃદ્ધિં પરિજ્ઞાય, એપ પ્રણતો મહામુનિઃ ॥ સૂ. ૨ ॥

ટીકા--અથ=અનન્તરમ્, એકઃ=કથિદાત્માર્થી ધર્મ=શ્રુતચારિત્રાલ્પ્યમ્,
પરિત્યાગ કર, વિષયભોગોંકી ચાહનામેં ફેસ, ઉનકા સેવન કરતે હુએ
અપને અતિદુર્લભ મનુષ્યજન્મકો વ્યર્થ નષ્ટ કર, નરકનિગોદાદિક
ગતિયોંકે અનંત કષ્ટોંકો ભોગતે રહતે હૈં । એસે જીવોંકો ફિરસે માનવ
જન્મ કવ કૈસે પ્રાપ્ત હોગા ॥ સૂ. ૧ ॥

આસન્નમધ્ય હોનેસે મોક્ષકી પ્રાપ્તિ જિન્હેં નિકટ સમયમેં હોનેવાલી
હૈ વે કિસી મી તરહસે કહીંસે મી ચારિત્રધર્મકી પ્રાપ્તિ કર લઘુકર્મવાલે
હોનેકી વજહસે ચારિત્રધર્મકી પાલનામેં વર્ધિતપરિણામવાલે હોતે હૈં
ઔર સિદ્ધિપદકો પ્રાપ્ત કર લેતે હૈં-ઇસ વાતકો સમજાનેકે લિયે સૂત્રકાર
કહતે હૈં “અહેગે ” ઇત્યાદિ ।

‘અથ’ શબ્દકો અર્થ અનન્તર હૈ । જિસકા તાત્પર્ય હૈ કિ જો ચારિત્ર-
ધર્મકો પ્રાપ્ત કર કિસી કારણવશ ઉસકા પરિત્યાગ કર દેતે હૈં ઉનકી
વ્યા દુર્દશા હોતી હૈ સો તો પ્રકટ કર દી ગઈ હૈ । અવ જો ચારિત્રકો
યાવજજીવન પાલતે હૈં ઉનકે વિષયમેં યહાં કહા જાતા હૈ—

ફસી તેનુ સેવન કરે છે, અને પોતાના અતિદુર્લભ એવા મનુષ્ય જન્મને વ્યર્થ
નષ્ટ કરી નરકનિગોદાદિ ગતિઓના અનંત કષ્ટોને ભોગવતો રહે છે એવા છોવોને
ફરીથી માનવ જન્મ ક્યારે કેમ પ્રાપ્ત થશે (સૂ. ૦૧)

આસન્નમધ્ય હોવાથી મોક્ષની પ્રાપ્તિ જેને નિકટ સમયમાં થવાવાળી છે,
એ કોઈ પણ રીતથી કયાયથી પણ ચારિત્રધર્મની પ્રાપ્તિ કરી, લઘુકર્મવાળા હોવાને
કારણે ચારિત્રધર્મને પાળવામાં વર્ધિતપરિણામવાળા હોય છે, અને સિદ્ધિપદને
પ્રાપ્ત કરી લે છે આ વાત સમજાવવા માટે સૂત્રકાર કહે છે “અહેગે ” ઇત્યાદિ

અથ શબ્દનો અર્થ અનન્તર છે, જેનું તાત્પર્ય એ છે કે જે ચારિત્ર
ધર્મને પ્રાપ્ત કરી કોઈ કારણવશ તેનો પરિત્યાગ કરી દે છે, એની શું દુર્દશા
થાય છે?, એ તો પ્રગટ કરી દેવામાં આવી છે હવે જે ચારિત્રને યાવજજીવન
પાળે છે તેના વિષયમાં અહિં કહેવામાં આવે છે.

आदाय=गृहीत्वा, आदानमपुति=भुतचारित्र्यमग्रहणकालादारभ्य, सुमणिहितः=सावधानः परीपदसहनशीलः अग्रणीयमानः=कामभोगेषु न प्रलीयमानः-अनासक्तः, अतएव-इह=गृहीततपःसंयमानुष्ठानप्रतिज्ञायामविचलितचित्तः सर्वां गृहि=विषयभोगेच्छां परिज्ञाय=अपरिज्ञायानन्तदुःस्वकारणत्वन विज्ञाय प्रत्याख्यानपरिज्ञाय तां दूरत एव परिहृत्य परतः=मग्नदुपविष्टं परमं समाचरेदित्यर्थः । एषः=चारित्र्यमादाय सर्वगृहिमायपरित्यागी महाभुनिः=महापुरुष एव यतः=कर्मभूतमे सम्यक् प्रवृत्ता भवति न तु तदन्यः कातर इति ॥ सू० २ ॥

अपरं च—‘अइअच्च’ इत्यादि ।

जो कोई आरम्भाधी भुतचारित्र्यरूप धर्मको प्राप्त कर उसकी प्राप्तिके समयसे लेकर जीवनपर्यन्त परीपद और उपसर्गोंके सहन करने में सावधान रहते हैं—परीपद उपसर्ग आने पर चारित्र्यसे विचलितचित्त नहीं होते हैं तथा कामभोगोंमें जो सदा बाँधरहित होते हैं, एवं जो इह गृहीत तप और संयमके अनुष्ठान करनेकी प्रतिज्ञामें अविचलितचित्त होते हैं, ऐसे बंधनीय भुनि समस्त विषयभोगोंकी इच्छाओंको अनन्त दुःखोंका कारणरूप अपरिज्ञासे जानकर और प्रत्याख्यानपरिज्ञासे उनका दूर ही से परित्याग कर, भीतरागकथित निर्मल चारित्र्यकी आराधना करते हैं । चारित्र्यको प्राप्त कर समस्त विषयमें गृहिमायके परित्यागी वे ही महाभुनि हैं, और वे ही कर्मोंकी रज हटाने-उखानेमें अच्छी तरह प्रवृत्त होते हैं; इनके सिवाय अन्य-दूसरे कातर नहीं । ॥ सू. २॥

तथा ‘अइअच्च’ इत्यादि—

वे जो आरम्भाधी भुतचारित्र्य धर्मने प्राप्त करी तेनी प्रतिज्ञा सम यही भाँझने जीवनपर्यन्त परित्यक्त करने उपसर्ग सहन करवायां सावधान रहे छे परित्यक्त उपसर्ग आववाधी चारित्र्यी विचलितचित्त नहीं भवा, तथा कामभोगी के सदा बाँध-रहित जाने छे जेवा के इत्यापुष्ट अक्षय करेव उप करने समयत अनुष्ठान करवाणी प्रतिज्ञाया अविचलितचित्त होवाधी जेवा बंधनीय भुनि जाने के समस्त विषयभोगोंने तथा धर्मभोगोंने अनन्त दुःखोंका कारणरूप अपरिज्ञाधी अक्षी जाने जाने प्रत्याख्यान परिज्ञाधी तेना छेधी के परित्याग करी वीतलगकथित निर्मल चारित्र्यनी अतस्त्वन्व करे छे चारित्र्य प्राप्त करी समस्त विषयोंमें बुद्धिध्यानने परिज्ञाधी के छे जे के भुनि छे जाने जे के कर्मोंनी रज दूर करवायां उखानायां सारी शीते प्रवृत्त होव छे. जेवा जियाय अ-व-जीव कातर नाहि. (सू. २)

तथा ‘अइअच्च’ इत्यादि ।

યરતુ આસન્નમોક્ષતયા કથંચિત્ કુતશ્ચિત્ ચારિત્ર પ્રાપ્ય લઘુકર્મતયા પ્રવર્ધમાન-
પરિણામો ભવતિ, સ સિદ્ધિપદં પ્રાપ્નોતીતિ વોધયિતુમાહ--‘અહેગે’ ઇત્યાદિ ।

મૂલમ્--અહેગે ધર્મમાયાય આયાણપ્પભિઙ્ગ સુપણિહિણ ચરે
અપ્પલીયમાણે દદેસઢ્ઠવં ગિદ્ધિં પરિણાય, ઇસ પળણ મહામુણી ॥ સૂ. ૦૨ ॥

છાયા--અથેકો ધર્મમાદાય આદાનપ્રમૃતિ સુપણિહિતશ્ચરેત્ અપ્પલીયમાનઃ દદઃ
સર્વાં ગૃદ્ધિં પરિજ્ઞાય, ઇષ પ્રણતો મહામુનિઃ ॥ સૂ. ૨ ॥

ટીકા--અથ=અનન્તરમ્, એકઃ=કશ્ચિદાત્માર્થી ધર્મ=શ્રુતચારિત્રાલ્પમ્

પરિત્યાગ કર, વિષયભોગોંકી ચાહનામેં પૈસ, ડનકા સેવન કરતે
અપને અતિદુર્લભ મનુષ્યજન્મકો વ્યર્થ નષ્ટ કર, નરકનિગોદાદિ
ગતિયોંકે અનત કષ્ટોંકો ભોગતે રહતે હૈં । એસે જીવોંકો ફિરસે આ
જન્મ કવ કૈસે પ્રાપ્ત હોગા ॥ સૂ. ૧ ॥

આસન્નભવ્ય હોનેસે મોક્ષકી પ્રાપ્તિ જિનહૈં નિકટ સમયમેં હોને
હૈં વે કિસી ‘મી’ તરહસે કહીંસે મી ચારિત્રધર્મકી પ્રાપ્તિ કર લઘુકર્મ
હોનેકી વજહસે ચારિત્રધર્મકી પાલનામેં વર્ધિતપરિણામવાલે
ઔર સિદ્ધિપદકો પ્રાપ્ત કર લેતે હૈં--ઇસ વાતકો સમજાનેકે લિયે
કહતે હૈં “અહેગે” ઇત્યાદિ ।

‘અથ’ શબ્દકો અર્થ અનન્તર હૈં । જિસકા તાત્પર્ય હૈં કિ જો
ધર્મકો પ્રાપ્ત કર કિસી કારણવશ ડસકા પરિત્યાગ કર દેતે
વયા દુર્દશા હોતી હૈં સો તો પ્રકટ કર દી ગઈ હૈં । અવ જો
યાવડ જીવન પાલતે હૈં ડનકે વિષયમેં યહાં કહા જાતા હૈં--

ફ્રસી તેનુ સેવન કરે છે, અને પોતાના અતિદુર્લભ એવા મનુષ્ય જન્મ
નષ્ટ કરી નરકનિગોદાદિ ગતિઓના અનત કષ્ટોને ભોગવતો રહે છે એ
ફ્રીથી માનવ જન્મ ક્યારે કેમ પ્રાપ્ત થશે. (સૂ. ૦૧)

આસન્નભવ્ય હોવાથી મોક્ષની પ્રાપ્તિ જેને નિકટ સમયમાં થ
એ કેાઈ પણ રીતથી કયાયથી પણ ચારિત્રધર્મની પ્રાપ્તિ કરી, લઘુકર્મ
કારણે ચારિત્રધર્મને પાળવામાં વર્ધિતપરિણામવાળા હોય છે, અને
પ્રાપ્ત કરી લે છે આ વાત સમજાવવા માટે સૂત્રકાર કહે છે “અ

અથ શબ્દનો અર્થ અનન્તર છે, જેનુ તાત્પર્ય એ છે કે
ધર્મને પ્રાપ્ત કરી કેાઈ કારણવશ તેનો પરિત્યાગ કરી દે છે, એ
થાય છે?, એ તો પ્રગટ કરી દેવામાં આવી છે. હવે જે ચારિત્ર
પાળે છે તેના વિષયમાં અહિં કહેવામાં આવે છે.

अवमोदरिकाया वर्तमानस्य परीपइसनमाह—‘से आकुहे’ इत्यादि।

मूलम्—से आकुहे वा हृष वा लुचिष वा पलिय पकथ अतुवा पकथ असहेहिं सहफासेहिं, इय सखाए पगयरे अन्नयरे अभिन्नाय तिसिक्खमाणे परिउयए । जे य हिरीजे य अहिरीमाणा ॥ सू० ४ ॥

छाया—स आकुष्टा वा हतो वा लुञ्जितो वा पश्चितं प्रकथ्य अथवा प्रकथ्य अतथ्यैः कृष्यस्पर्शैः, इति संख्याय एकतरान् अन्यतरान् अभिन्नाय तितिसमाणः परिव्रजेत् । ये च ह्रीरूपाः ये च अहीमनसः ॥ मू० ४ ॥

टीका—सः=अवमोदरिका यदा केनचिद्भर्मानभिज्ञेन पलितं=पूर्वकृतं जुष्ट-
पितं कर्म प्रकथ्य=‘मो प्रव्रजित ! पूर्वं काण्डहारादिकर्म कृत्वा प्रव्रजितवेष कि-
मिदानीं माहृपदं पृच्छः’ इत्यादिवाक्यैर्विनिन्य, अथवा अतथ्यैः=अज्ञाने
संसर्गते=अनुचितैः कृष्यस्पर्शैः=‘त्वं चौरः पारदारिकः’ इत्यादिसम्बन्धैः, तथा
ही मानना चाहिय । अर्थात् पर्युपित आहार भी ऊनोदररूपसे ही लेता
है, भरपेट नहीं ॥ सू. ३ ॥

अल्प-आहारी-अवस्थामें भी परीपइ और उपसर्गों को वैसे सहन
करना चाहिय, इसे सूत्रकार कहते हैं—“से आकुहे इत्यादि ।

यह अवमोदरिकाश्रमती साधु यदि किसी धर्मानभिज्ञ व्यक्ति के द्वारा
इस प्रकारसे कहा जाय कि हे प्रव्रजित ! तुम तो पहिले लकड़ियां
बन्ना करते थे, अब कबसे साधु बन गये हो ? साधुका वेप पहिन कर
क्या इस समय हमें उपदेवा दे रहे हो ? हम तुम्हारे जैसे हीनकुलका
उपदेश नहीं सुनना चाहते ! अथवा इस प्रकारके अनुचित वाक्योंसे
यदि कोई उसकी निंदा करे कि तुम तो परदारलंपट हो, चोर हो, या

बासी) आकार ले ॥ अथवा ऊनोदर-अल्प-आहारी थाय से पर्युपित आका-
रने पण अल्प आकार के मानये कोठको, अर्थात् आकार पण ऊनोदरपथी के
दे से, पेट खरीने नहीं (सू. ३)

अल्प-आहारी अवस्थामें पण पर्युपित होने उपसर्गों को वैसे सहन करवा
कोठको, माने सूत्रकार कहे से से आकुहे इत्यादि ।

जे अवमोदरिकाश्रमती साधुने कही कोठ धर्मानभिज्ञ व्यक्तिनी भारइत
आ प्रकारणी कहेवाय के के प्रव्रजित । तरे तो पहेली लकड़ें बेचता कता,
आहारी साधु जनी जथा छे ? साधुने वेश पहरेरी शु आ समथ जमने उप-
देश आपी पक्षा छे ? जमे तमात जेथा कलका कुणया भाणुसने उपदेश खीलणवा
नधी छुम्छता । अथवा आ प्रकारनां अनुजित वाक्योणी केठ कोमनी निंदा करे के
तरे तो अवलिभासी छे, चोर छे, अथवा केठ = कोना काय करे, पन करे,

મૂલમ્—અહ અચ સવ્વઓ સંગં ણ મહં અત્થિત્તિ ઇય એગો
અહં, અસ્સિંસ જયમાણે ઇત્થ વિરણ અણગારે, સવ્વઓ મુંડે રીયંતે,
જે અચેલે પરિવુસિણ સંચિક્કલ્લ ઓમોયરિયાણ ॥ સૂ. ૩ ॥

છાયા—અતિગત્ય સર્વતઃ સદ્ગં ન મમ અસ્તિ, ઇતિ એકોઽહમસ્મિન્ યતમાનઃ
અત્ર વિરતઃ અનગારઃ, સર્વતો મુણ્ડઃ રીયમાણઃ, યઃ અચેલઃ પર્યુષિતઃ સંતિષ્ઠતે
અવમોદરિકાયામ્ ॥ સૂ. ૩ ॥

ટીકા—મમ નાસ્તિ કિંચિદ્, ઇતિ=અતઃ અહમેક એવાસ્મીતિ ભાવનાભાવિતઃ
સર્વતઃ=સર્વથા સદ્ગં=માતાપિત્રાદિસમ્બન્ધમ્ અતિગત્ય=અતિક્રમ્ય અસ્મિન્ આચારે
યતમાનઃ—યતના કુર્વન્, અત્ર=વિષયભોગે વિરતઃ—સર્વથા નિવૃત્તઃ, અતએવ અનગારઃ=
પ્રવ્રજિતઃ, સર્વતોમુણ્ડઃ=દ્રવ્યતઃ કેશલુશ્વનેન ભાવતો રાગદ્વેષરાહિત્યેન મુણ્ડ,
રીયમાણઃ—સયમાનુષ્ઠાને વિહરન્ યઃ અચેલ =અલ્પચેલઃ—જિનકલ્પિકો વા, પર્યુષિતઃ
=પર્યુષિતાહારી, અવમોદરિકાયા=ન્યૂનોદરતાયાં સંતિષ્ઠતે=વર્તતે, તદપિ પર્યુષિતાશ-
નં નોદરપૂરણેન કિંત્વવમોદરિકયેતિ ભાવઃ। સ મહામુનિરિતિ પૂર્વેણ સમ્બન્ધઃ ॥સૂ. ૩॥

“એગોહં” મેં એક હૂં, મેરા સસારમેં કોઈ નહીં હૈ, મેં અકિશ્ચન હૂં—
હસ પ્રકારકી ભાવનાસે जिसका मन वशमें किया हुआ है, और इसी
भावनासे ओतप्रोत बन जो मातापिता—आदिके सम्बन्धसे रहित बना
हुआ है, ऐसा वह महामुनि अपने गृहीतचारित्रकी आराधनामें सम्हाल
रखता हुआ, विषयभोगोसे सर्वथा विरक्त होता है। मुनिदीक्षासे सुशो-
भित वह मुनिरत्न सर्व प्रकारसे मुण्ड—द्रव्यसे केशोंके लुश्वन करनेसे
एवं भावसे राग—द्वेषसे रहित होनेसे—होता है। सयमके अनुष्ठानमें
विचरण करता हुआ वह अचेल—अल्पवस्त्रवाला होता है, अथवा जिन-
कल्पी बनता है। पर्युषित (ठण्डा—वासी) आहार भी अल्प आहारमें

“એગોહં” હું એક છું, મારૂં સસારમા કોઈ નથી હું અકિશ્ચન છું.
આ પ્રકારની ભાવનાથી જેણે પોતાનું મન વશ કરેલ છે, અને એવી ભાવ-
નાથી ઓતપ્રોત બની જે માતા, પિતા આદિના સબંધથી રહિત બનેલ છે, એવા
એ મહામુનિ પોતે ગૃહસ્થ કરેલ ચારિત્રની આરાધનામા સભાળ રાખતા વિષય-
ભોગોથી સર્વથા વિવ્રક્ત બને છે, મુનિદીક્ષાથી સુશોભિત એ મુનિરત્ન સર્વ
પ્રકારથી સુણ્ડ, દ્રવ્યથી કેશલોચન કરવાથી (વાળનું જે ચવાથી) અને ભાવથી
રાગ—દ્વેષથી રહિત થવાથી બને છે સયમના અનુષ્ઠાનમા વિચરણ કરનાર એ
અચેલ—અલ્પ વસ્ત્રવાળા બને છે, અથવા છનકલ્પી થાય છે પર્યુષિત (ઠંડા

રૂપાન્વીતોપ્યાદ્યસ્તાન્ દ્વિવિધાનપિ પરીપદાન્ સમમાચેન તિવિષ્ણમાણઃ પરિ
એવિતિ સમ્યન્વ ॥ સૂ. ૪ ॥

મૂચ્ચ—પિચ્છા સઘ્વં વિસુચિય ફાસે સમિયદસણે ॥ સૂ. ૫ ॥

છાયા—સ્પક્ષ્વા સઘ્વં વિસોવસિકાં સૂક્ષ્મ સમિતદર્શનઃ ॥ સૂ. ૫ ॥

ટીકા—પિચ્છ—‘પિચ્છા’ રૂપાદિ । સમિતદર્શનઃ—સમ્યગ્ દર્શન—ગતં પ્રાપ્તં
દર્શનં यस્ય સ સમિતદર્શન—સમ્યગ્દષ્ટિરિત્યર્થઃ । સઘ્વં વિસોવસિકાં—પરીપદ-
પ્રયુક્તં દુષ્કિન્તનં સ્પક્ષ્વા સૂક્ષ્મ—સઘ્વં પરીપદાન્ અપિસરેવ ॥ સૂ. ૫ ॥

મૂચ્ચ—પપ મો ! નગિણા વુચ્ચા જે લોગસિ અણાગમન-
ધમ્મિણો ॥ સૂ. ૬ ॥

છાયા—પપે મો ! નમ્મા ઠક્કા પે છોકેડનાગમનધર્મિયઃ ॥ સૂ. ૬ ॥

ટીકા—‘પપ મો’ રૂપાદિ । મો’ શિષ્યાઃ । પે અનાયમનધર્મિયઃ—અપ
ત્યામનચ્છીલા—માદતપ્તિદ્વામારપારબધીસ્ત્યાદ્ પુનર્ગૃહ્યત્યાગતું નેચ્છતીત્યર્થઃ,
અપ પરીપદૈઃ કલ્પજારૂપ હૈ ઔર ઝો ચીત ડણ આદિ અલ્પજારૂપ હૈ, इन
दोनो परीपदों को भी उसे सममाचसे युक्त होकर ही सहन करना चाहिये,
तभी कमीका नाश होगा ॥ સૂ. ૪ ॥

—અચ્છી તરહ અપથા અણ્ણા પ્રાપ્ત હૈ દર્શન જિસે વસકા
નામ સમિતદર્શન—સમ્યગ્દષ્ટિ હૈ । અહ પરીપદપ્રયુક્ત દુષ્કિન્તનકા ત્યાગ
કર સમસ્ત પરીપદોંકો સહે । પરીપદોંકો સહતે સમય કમી મી આર્સ
રોગ્રૂપ પરિણામ મહી કરના આહિયે, શાંતિ ઔર સમતાસે ઉન્હે
સહના આહિયે ॥ સૂ. ૫ ॥

શિષ્યોંકો સમ્બોધિત કરતે કુપ સૂચકાર કહતે હૈં કિ હૈ શિષ્યો !
જો અમાગમનધર્મી હૈં—ચાહીતમુનિવ્રતપારણરૂપ પ્રતિજ્ઞાકે નારકો
સહન કરનેકે સ્વમાચનાકે હોનેકી વજાહસે જો પીછે છોડ કર ઘર મહી

પરિપદોને પણ સમજાવથી યુક્ત થઈ જોયે સહન કરવા જોઈએ ત્યારે જ કથેના
નાશ થશે (સૂ ૪)

આર્સ રીતે પ્રાપ્ત છે દર્શન એને તેજુ નામ સમિતદર્શન જોડશે અમ્યગ્દષ્ટિ
છે. તે પરિપદપ્રયુક્ત અણમ ચિન્તનને ત્યાગ કરી સવળા પરિપદોને સહે. તે
પરિપદોને સહન કરતી સમય કદી પણ તેને આત્મ રોગરૂપ પરિક્રમ નહિ
કરતું જોઈએ, શાંતિ અને સમતાથી તેને સહયુ જોઈએ. (સૂ ૫)

શિષ્યોને સંબોધના કરતાં સૂચકાર કહે છે કે હે શિષ્યો ! જે અનાયમન-
ધર્મી છે—પારણ કરેલ મુનિવ્રતરૂપ પ્રતિજ્ઞાના આપને વહન કરવાનો સ્વભાવવાળો

કરચરણચ્છેદન-ભેદન-મોટનાદિરૂપે: સ્પર્શૈશ્વ પ્રકૃત્ય=કદર્થીકૃત્ય આક્રુષ્ટ: =આશ્લિષ્ઠ:
 વા=અથવા હત: =યદ્દિમુષ્ટ્યાદિભિસ્તાહિત: લુશ્ચિતો વા=કેશાકર્ષણેન નચ્ચાઘાતેન ચ
 વ્યાકુલીકૃત: સન્નિતિ=‘મમ પૂર્વકૃતકર્મફલમેતત્’ ઇત્યેવ સંખ્યાય=પર્યાલોચ્ય
 એકતરાન્=ઉક્તરૂપાન્ પ્રતિકૂલપરીપહાન્ અથવા અન્યતરાન્=તદ્વિન્નાનનુકૂલ પરિપ-
 હાન્=સત્કારપુરસ્કારાદિરૂપાનપિ અભિજ્ઞાય=મોક્ષમાર્ગપ્રતિબન્ધકા એતે ઇતિ વિચાર્ય
 તિતિક્ષમાણ: =ઉભયાનપિ પરીપહાન્ સમભાવેન સહમાન: પરિવ્રજેત્=વિહરેત્ ।
 પ્રકારાન્તરેણાપિ પરીપહદ્વૈવિધ્ય દર્શયતિ-‘યે ચે’ત્યાદિ । યે ચ પરીપહા: હી-
 રૂપા: =લજ્જારૂપા: -અચેલરૂપા યાચનાદિરૂપા વા, તથા યે ચ અહીમનસ: =અલજ્જા-

કોઈ “ઉસકા હાથ કાટે, પૈર છેદે, ગર્દન પકડ કર મરોડ દેવે”-ઇસ પ્રકારસે ઉસે દુઃખિત કરે, લકડી, મૂંઠ આદિસે કોઈ યદિ ઉસે તાહિત કરે, બાલોંકો પકડ કર યદિ કોઈ ઉસે ઘસીડે, અથવા લોંચે, તો ભી ઉસ સાધુકો યહી વિચારના ચાહિયે કિ “મમ પૂર્વકૃત કર્મફલમેતત્” યે સબ ઉપસર્ગ મેરે પૂર્વકૃત કર્મોંકે હી ફલ હૈ । ઇનમેં ઇનકા કુછ ભી અપરાધ નહીં । ઇસ પ્રકારસે જબ ઉસકે ઉપર યે પૂર્વોક્ત વાતેં પ્રતિકૂલ-પરીપહકે રૂપમેં આતી હૈ, અથવા સત્કાર, પુરસ્કાર આદિ અનુકૂલ પરી-પહરૂપમેં આતી હૈ તો ઉસ સમય ઉસે યહી વિચારકર કિ યે સબ “મોક્ષ માર્ગકી પ્રતિબન્ધકા હૈ” ઉન્હેં ખુશીસે સહના ચાહિયે । ચાહે અનુકૂલ પરીપહ હોં, ચાહે પ્રતિકૂલ પરીપહ હોં, ચાહે કોઈ ઉપસર્ગ કરે, અથવા સત્કાર કરે, સબ અવસ્થાઓંમેં મુનિયોંકો સમભાવ રાખના ચાહિયે । ઇસી પ્રકાર જો અચેલરૂપ-(અલ્પ વસ્ત્ર-સામાન્ય વસ્ત્ર)-અથવા યાચનાદિ,

ગરદન પકડી મરડી નાળે” આ પ્રકારે એને હુ ખિત કરે, લાકડી કે હાથથી માર મારે, વાળ પકડીને કોઈ ઢસરડે, અથવા લોચે, તો પણ સાધુએ વિચારવુ જોઈએ કે “મમ પૂર્વકૃતકર્મફલમે તત્”—આ ઉપસર્ગ મારા પૂર્વકૃત કર્મોના ફલ સ્વરૂપ છે આમાં તેનો કોઈ અપરાધ નથી આ રીતે જ્યારે એના ઉપર એ પૂર્વોક્ત વાતો પ્રતિકૂળ પરિપહના રૂપમાં આવે છે, અથવા સત્કાર, પુરસ્કાર આદિ અનુકૂળ પરિપહરૂપમાં આવે છે તો એ સમય એણે એ વિચાર કરીને કે આ બધી વાતો “મોક્ષમાર્ગની પ્રતિબંધિકા છે” તેને ખુશીથી સહી લેવુ જોઈએ ભલે અનુકૂળ પરિપહ હોય, ચાહે પ્રતિકૂળ પરિપહ હોય, ચાહે કોઈ ઉપસર્ગ કરે કે સત્કાર કરે બધી અવસ્થાઓમાં મુનિઓએ સમભાવ રાખવો જોઈએ આ રીતે જો અચેલરૂપ (અલ્પ વસ્ત્ર-સામાન્ય વસ્ત્ર) અથવા યાચનાદિરૂપ પરિપહ જો લજ્જારૂપ છે અને શીત, ઉષ્ણ આદિ અલજ્જારૂપ છે આ બંને

મૂમ્મ—ઈત્યોવરણ તદ્દોસમાણે આયાણિજ્જપરિજ્ઞાયપરિયા
પણ વિગિચ્છ ॥ સૂ૦ ૮ ॥

છાયા—અષોપરતઃ સદ્દોપયન્ આદાનીયં પરિજ્ઞાયપર્યાયેષ વિવેચયતિ ॥૮॥
ટીકા—‘ઈત્યોવરણ’ ઇત્યાદિ । અન્ન=અસ્મિન્ કર્મપૂનનોપાયે સંયમે, ઉપ
રતઃ=ઉપ=સામીપ્યન રતા સસન્નઃ સન્, સદ્=અપ્દર્શિષ કર્મ ધોપયન્=સપયન્
ધર્મે ચરેદિત્યર્થઃ । અત આદાનીયં=કર્મ પરિજ્ઞાય મૂમ્મોષરપ્રકૃતિમેવેન જ્ઞાત્વા પર્યા
યેષ=અમણધર્મારાધમેન ચિત્તચયતિ=પૂયક્ કરોતિ=સપયતીત્યર્થ ॥ સૂ૦ ૮ ॥
સકલકર્મપૂનનશ્ચમં યદ્વાહં તપસ્તદધિકૃત્પાદ—‘ઈદ્દ પગેસિ’ ઇત્યાદિ ।

યદ્ ઉત્કૃષ્ટ ધર્મકા ઉપદેશ મનુષ્યોંકે લિયે હી કહા ગયા હૈ ।
આવાર્થ—યદ્ ઉત્કૃષ્ટ ધર્મકા ઉપદેશ મનુષ્યોંકે લિયે હી હૈ એસા
જો કહા જાતા હૈ, ઉસકા કારણ મનુષ્યોંમિં હી સમ્પૂર્ણ રૂપસે ધર્મારાધન
કરનેકી યોગ્યતા રહી હુઈ હૈ, અન્યોંમિં નહીં । અત ઉન્હોંકે નિમિત્ત
ધર્મકા ઉપદેશ હૈ, અન્ય પ્રાણી ખી ઇસસે આત્મદિત્ત કર સકતે હૈ ॥સૂ૦ ૭॥
કર્મકે બિનાશ કરનેમ્ ઉપાયસ્વરૂપ ઇસ સંયમમ્ લવલીન બુદ્ધા
મુનિ અષ્ટવિધ કર્મકા બિનાશ કરતા હુઆ ધર્મકી આરાધના કરે; ક્યોં
કિ મૂલ ઓર ઉત્તર પ્રકૃતિકે મેવસે કર્મકા પરિજ્ઞાન કર અમણધર્મકી
આરાધના કરનેસે મનુષ્ય ઉન કર્મોંકા ક્ષય કરતા હૈ ॥સૂ૦ ૮॥
સમસ્ત કર્મોંકે બિનાશ કરનેમ્ સમર્થ જો યાચ્ય તપ હૈ ઉસકી
અપેક્ષાસે સુવ્રકાર કહતે હૈ—‘ઈદ્દ પગેસિ’ ઇત્યાદિ ।

વાધી માસ દ્વાસ અગ્રીકૃત ધર્મનુ સ્વારી રીતે પાલન કરે; કેમકે આ ઉત્કૃષ્ટ-ધર્મની
ઉપદેશ મનુષ્યોંને માટે જ છે

આવાર્થ— આ ઉત્કૃષ્ટ ધર્મની ઉપદેશ મનુષ્યોં માટે જ છે ’ એમ જે
કહેવામાં આવે છે એનું કારણ મનુષ્યોંમાં જ ન પૂર્ણ રૂપથી ધર્મારાધન કરવાની
યોગ્યતા રહેલી છે અન્યમાં નહીં । આથી એમના નિમિત્ત ધર્મને ઉપદેશ છે, અન્ય
પ્રાણી પણ આનાથી આત્મદિત્ત કરી શકે છે (સૂ૦ ૭)

કર્મની બિનાશ કરવાના ઉપાયસ્વરૂપ જે સ્વચમમા લવલીન બનેલ મુનિ,
અષ્ટવિધ કર્મની બિનાશ કરતાં ધર્મની આરાધના કરે. કેમ કે મૂળ અને ઉત્તર
પ્રકૃતિના સેદથી કર્મનું પરિજ્ઞાન કરી અમણધર્મની આરાધના કરવાથી મનુષ્ય
એના કર્મની ધૂલ કરે છે (સૂ ૮)

સમસ્ત કર્મોંની બિનાશ કરવામાં સમર્થ જે યાચ્યતપ છે એની અપેક્ષાથી
સુવ્રકાર કહે છે ‘ઈદ્દ પગેસિ’ ઇત્યાદિ.

एते=परीषदसहिष्णवः नग्ना =भावनग्ना -अकिंचनाः निर्ग्रन्थाः उक्ताः=तीर्थङ्करैः
कथिताः ॥ सू० ६ ॥

मूलम्—आणाए मामगं धम्मं, एस उत्तरवाए इह माणवाणं
वियाहिण ॥ सू० ७ ॥

छाया-आज्ञया मामक धर्मम्, एष उत्तरवादः इह मानवेभ्यो व्याख्यातः। ७।
टीका—‘आणाए’ इत्यादि। आज्ञया=ममोपदेशेन मामकं=मदीय मयाऽङ्गी-
कृतं धर्मं सम्यगनुपालयेत् इत्येवमुक्तं भगवता। एष उत्तरवादः=उत्कृष्टोपदेशः
इह=मनुष्यलोके मानवेभ्यो व्याख्यातः, इह मनुष्यार्थमेतद्वचनमुक्तं तेषामेव
सम्पूर्णधर्मांशराधनयोग्यतासद्भावात् ॥ सू० ७ ॥

आते हैं वे ये परीषद्‌होंको सहन करनेके स्वभाववाले भावनग्न-अकिंचन
निर्ग्रन्थ साधु तीर्थङ्करों द्वारा कहे गये हैं।

भावार्थ—परीषद्‌होंके जीतनेमें जो अपनी शक्तिका पराक्रम प्रकट
करते हैं और उनसे अनुद्विग्न बन कर जो “कार्य वा साधयामि
शरीरं वा पातयामि”—अपने गृहीत मुनिव्रतरूप कार्यकी सफलतार्थ सर्व
प्रकारके सुखों को सर्वथा त्याग चुके हैं और अपनी प्रतिज्ञाके निर्वाहार्थ
परीषद्‌होंसे अडोल बन कर उनका सामना करते हैं—कभी भी घर नहीं
आते हैं, वे ही सच्चे भावसाधु हैं; ऐसा तीर्थङ्करोंका आदेश है ॥सू० ६॥

मनुष्यों में ही सपूर्ण श्रुतचारित्ररूप धर्मके आराधन करनेकी योग्यता
का सद्भाव है, इसलिये मैंने उनके लिये ही यह वचन कहा है कि वे मेरे
कहनेसे मेरे द्वारा अङ्गीकृत धर्मका अच्छी तरह पालन करे, क्यों कि

હોવાના કારણે જે ઘેર પાછા નથી ફરતા, તે એ પરિષદોને સહન કરવાના સ્વભાવ
વાળા ભાવનગ્ન-અકિંચન નિર્ગ્રન્થ સાધુ તીર્થકરોથી કહેવાયા છે.

ભાવાર્થ—પરિષદોને જીતવામાં જે પોતાની શક્તિનું પરાક્રમ પ્રગટ કરે
છે અને એથી અનુદ્વિગ્ન બની જે “કાર્ય વા સાધયમિ શરીર વા પાતયમિ”—
પોતે ધારણ કરેલા મુનિવ્રતરૂપ કાર્યની સફળતા માટે સર્વ પ્રકારના સુખોનો જે
સર્વથા ત્યાગ કરી ચૂક્યા છે, અને પોતાની પ્રતિજ્ઞા પૂર્ણ કરવા પરિષદોથી અડોલ
બની તેનો જે સામનો કરે છે—કદી પણ ઘર તરફ નજર સરખીએ કરતા
નથી, એજ સાચા-ભાવસાધુ છે—એવો તીર્થકરોનો આદેશ છે (સૂ૦ ૬)

માણસોમાં જ સપૂર્ણ શ્રુતચારિત્રરૂપ ધર્મનું આરાધન કરવાની યોગ્યતાનો
સદ્ભાવ છે, આ માટે મેં એમને માટે જ આ વચન કહેલ છે કે તેઓ મારા કહે-

મૂમ્—ઈથોવરણ તજ્ઞોસમાણે આયાણિજ્જપરિણાયપરિયા
પણ વિગિચહ ॥ સૂ૦ ૮ ॥

છાયા—અગ્રોપરતઃ સર્વજ્ઞોપયન્ આવાનીયં પરિણાયપર્માયજ વિવેચયતિ ॥૮॥
ટીકા—‘ઈથોવરણ’ ઇત્યાદિ । અથ=અસ્મિન્ કર્મધૂનનોપાયે સયમે, ઉપ
રત્=ઉપ=સામીપ્યેન રત્ સંસન્નઃ સન્, તથા=અષ્ટવિધં કર્મ જ્ઞોપયન્=સપયન્
પર્મં ચરેદિત્યર્થઃ । અતઃ આવાનીયં=કર્મ પરિણાય મૂલોત્પત્તિકૃતિમદનશ્ચાત્મા પર્મા
યેજ=અમણધર્મારાધનેન વિવેચયતિ=પૂરક ક્રોતિ=સપયતીત્યર્થઃ ॥ સૂ૦ ૮ ॥
સકલકર્મધૂનનસમે યદ્વાજ્ઞ ઉપસ્તદધિકૃત્યાહ—‘ઈહ પગેસિ’ ઇત્યાદિ ।

યહ ઉત્કૃષ્ટ ધર્મકા ઉપદેશ મનુષ્યોંકે લિયે હી કહા ગયા હૈ ।
‘માર્થ—યહ ઉત્કૃષ્ટ ધર્મકા ઉપદેશ મનુષ્યોંક લિયે હી હૈ પેસા
જો કહા જાતા હૈ, ઉસકા કારણ મનુષ્યોંમિં હી સમ્પૂર્ણ રૂપસે ધર્મારાધન
કરનેકી યોગ્યતા રહી હુઈ હૈ અન્યોંમિં નહીં । અતઃ ઉન્હોંક નિમિત્ત
ધર્મકા ઉપદેશ હૈ, અન્ય પ્રાણી સીં હસસે આત્મહિત કર સકતે હૈ ॥સૂ૦ ૭॥
કર્મકે બિનાશ કરનેમેં ઉપાયસ્વરૂપ હસ સંયમમેં લક્ષ્મીન હુઆ
મુનિ અષ્ટવિધ કર્મકા બિનાશ કરતા હુઆ ધર્મકી આરાધના કરે; ક્યોં
કિ મૂલ ઔર ઉત્તર પ્રકૃતિકે મેવસે કર્મકા પરિજ્ઞાન કર અમણધર્મકી
આરાધના કરનેસે મનુષ્ય ઉન કર્મોંકા ક્ષય કરતા હૈ ॥સૂ૦ ૮॥
સમસ્ત કર્મોંકે બિનાશ કરનેમેં સમર્થ જો પાછા તપ હૈ ઉસકી
અપેક્ષાસે સૂત્રકાર કહતે હૈ—“ઈહ પગેસિ” ઇત્યાદિ ।

વાધી મારા કાશ અગ્રીકૃત ધર્મજુ આવી રીતે પાલન કરે, કેમકે આ ઉત્કૃષ્ટ-ધર્મને
ઉપદેશ મનુષ્યોંને માટે જ છે

આર્થ— આ ઉત્કૃષ્ટ ધર્મને ઉપદેશ મનુષ્યોં માટે જ છે’ એમ જે
કહેવામા આવે છે એનું કારણ મનુષ્યોંમા જ સ્વપૂર્ણ રૂપથી ધર્મારાધન કરવાની
યોગ્યતા રહેલી છે અન્યમાં નહીં આથી એમના નિમિત્ત ધર્મને ઉપદેશ છે, અન્ય
પ્રાણી પણ આનાથી આત્મહિત કરી શકે છે (સૂ૦ ૭)

કર્મને બિનાશ કરવાના ઉપાયસ્વરૂપ એ સુવર્ણનાં લક્ષ્મીન બનેલ મુનિ,
અષ્ટવિધ કર્મોંને બિનાશ કરતાં ધર્મની આરાધના કરે કેમ કે મૂલ અને ઉત્તર
પ્રકૃતિના સેવથી કર્મજુ પરિજ્ઞાન કરી અમણધર્મની આરાધના કરવાથી મનુષ્ય
એના કર્મોંને ક્ષય કરે છે. (સૂ ૮)

સમસ્ત કર્મોંને બિનાશ કરવામા સમર્થ જે જાણતાપ ॥ એની અપેક્ષાથી
સૂત્રકાર કહે છે ઇહ પગેસિ ઇત્યાદિ.

મૂલમ્—ઇહ એગેસિં એગચરિયા હોઇ, તત્થિયરા ઇયરોહિં
કુલોહિં સુદ્ધેસણાણ સઠ્ઠેસણાણ સે મેહાવી પરિવ્વણ. સુવ્ઠિં
અદુવા દુવ્ઠિં અદુવા તત્થ ભેરવા પાણા પાણે કિલેસંતિ, તે ફાસે
પુઠ્ઠો ધીરે અહિયાસિજ્ઞાસિ ત્તિવેમિ ॥ સૂ. ૧ ॥

છાયા—ઇહ એકેષામેકચર્યા ભવતિ, તત્રેતરાદિતરેષુ કુલેષુ શુદ્ધૈષણયા સર્વૈષ-
ણયા સ મેધાવી પરિવ્રજેત્ । સુરભિ અથવા દુરભિ અથવા તત્ર ભૈરવાઃ પ્રાણાઃ પ્રા-
ણાન્ કલેશયન્તિ, તાન્ સ્પર્શાન્ સ્પૃષ્ટો ધીરઃ અધિસહસ્વ ઇતિ વ્રવીમિ ॥ સૂ. ૧ ॥

ટીકા—ઇહ=અસ્મિન્ જિનશાસને, એકેપાં=કેષાંચિત્ શિથિલીકૃતકર્મવન્ધનાં
એકચર્યાં=એકાકિવિહરણપ્રતિમા ભવતિ । તત્ર ચાનેકરૂપા અભિગ્રહવિશેષાઃ
ભવન્તિ, અતઃ પ્રામૃતિકાદોષમધિકૃત્યાહ—તત્રેત્યાદિ । તત્ર તસ્મિન્ એકાકિવિહારે
સ=કર્મધૂનનાર્થમુદ્યતઃ, મેધાવી=સાધુમર્યાદાવ્યવસ્થિતઃ, ઇતરાદિતરેષુ=અજ્ઞાતેષુ
અન્તપ્રાન્તેષુ વા કુલેષુ શુદ્ધૈષણયા-શઙ્કાદિદશૈષણાદોષરહિતેનાશનાદિના સર્વૈષ-
ણયા=આહારાદ્યુદ્ગમોત્પાદનગ્રાસૈષણારૂપા યા સર્વૈષણા તયા, પરિશુદ્ધેન વિધિના કર્મ
ધૂનનોપાયે સંયમે પરિવ્રજેત્=વિહરેત્, તથા સુરભિ=સિંહકેશરમોદકાદિક દુરભિ=

જિનકે કર્મોંકા બન્ધ શિથિલ હો ગયા હૈ એસે મુનિરાજોંકી એક-
ચર્યા હોતી હૈ, ઇસ ચર્યામૈં ઉનકે અનેક પ્રકારકે અભિગ્રહવિશેષ હોતે
હૈં । પ્રામૃતિકા દોષકો લેકર સૂત્રકાર કહતે હૈં કિ ઉસ એકાકિવિહારમૈં
કર્મોંકે વિનાશ કરનેમૈં ઉદ્યત એવં સાધુમર્યાદામૈં વ્યવસ્થિત વહ મેધાવી
મુનિ અજ્ઞાત અથવા અન્તપ્રાન્ત કુલોંમૈં શુદ્ધ-એષણા-શઙ્કાદિક દશ એષણા
કે દોષોંસે રહિત આહારાદિકસે ઔર સર્વએષણા-આહારાદિકકે ઉદ્ગમ,
ઉત્પાદન એવં ગ્રાસ એષણાસે પરિશુદ્ધ વિધિસે કર્મોંકે વિનાશક સંયમ
મૈં લવલીન રહતા હુઆ વિહાર કરે, ઔર સુરભિ-સિંહકેશરમોદક
વગેરહ, ઔર દુરભિ-બલ્લચણા આદિસે નિષ્પન્ન પર્યુષિત અમ્લ-

જેમના કર્મનો બંધ શિથિલ થઈ ગયેલ છે એવા મુનિરાજોની એકચર્યા
થાય છે આ ચર્યામાં એ એક પ્રકારને અહિવિશેષ હોય છે પ્રામૃતિકા
દોષ લઈને કહે છે કે રમા ક નાશ કરવામાં તત્પર, અને
સાધુમર્યાદામાં વ્યવસ્થિત મુનિ થવા અન્તપ્રાન્ત કુળોમાં
શુદ્ધ શકાદિક દોષો રાદિકથી અને સર્વ એષણા
-આ ઉદ્ગમ ૧ આ પરિશુદ્ધ ક્રમેનો
વિના યમ વિહ સુરભિ રમોદક
વગેરે કિ રથી પર્યુષિ છાશ

वृक्षशकादिनिष्पन्नं पर्युषितमभ्रमस्तक्रादिमिथितं वा प्राप्य परिममेत्-रागद्वेष
रहितो विहरेत् । आकाशविधिमनतिक्रम्य यथात्म्यं प्रवृत्तामश्वस्तगन्धमुक्तमाहारादि
कमङ्गारपूमादिमण्डलापपरिधनैर्नपूर्वकं सुखीतेषु भान् , तथा श्लोकम्—

“पश्चिमाहं सखिहिताणं छेवमायाह संजय ।

सुगंधं वा दुर्गंधं वा, सम्यं मुजे न छद्मप ॥ १ ॥ (दश वै० अ० ५ उ० २)

अथवा—भोः शिष्य ! एकाकिविहारे श्मशानादीं भ्रमणाः=मयङ्करा प्राप्याः
पिशाचादयः प्राणान्=मन्यान् प्राणिनां, यथा प्राणान्=तव प्राणान् क्लेशयन्ति-उप

तक्र (खानी छाछ) आदिसे मिश्रित अभ्रको राग-द्वेष रहित भोगे ।
आकाशक विधिके अनुसार जो भी निर्दोष आहार उसे प्राप्त हो चाहे
वह प्रशस्तगन्धयुक्त हो, चाहे अप्रशस्त गन्धवाला हो, उस आहारको
वह अङ्गार घूमादिमण्डल दोषसे परिचर्जित भोगे । कहा भी है—

“पश्चिमाहं सखिहिताणं, छेवमायाह संजय ।

सुगंधं वा दुर्गंधं वा, सम्यं मुजे न छद्मप ॥” (वृक्ष अ ५ उ २ गा १)

अथवा—एकाकीविहार करनेवाले शिष्यको शिक्षा देते हुए व्रजकार
कहते हैं कि हे शिष्य ! जब तुम एकाकीविहारमें हो, और कदाचित्
श्मशान आदिमें ध्याननिमित्त रहना पड़े, तो उस वृक्षमें यदि वहाँ
रहनेवाले मयङ्कर पिशाचादिक प्राणी कि जिनका स्वभाव ही दूसर प्राणियों
को कष्ट पहुंचानेका होता है तुम्हें भी क्लेशित करें-कष्ट-उपसर्ग
पहुँचावें तो तुम उन कष्टोंसे घबराना नहीं, प्रस्युत धीरवीरकी तरह

आदिभी मिश्रित भजने, राज-द्वेष रहित भोजने आलोच्यनिधि अनुसार वे
पक्ष निर्दोष आहार देने प्रारंभ करें, अच्छे ते प्रशस्त भोजनका दोष, अच्छे भ्रम
रहित भोजनका दोष ते आहारने ते आहार भूमादिमण्डल दोषोंकी छेद
भोजने, इष्ट पक्ष छे—

‘ पश्चिमाहं सखिहिताणं, छेवमायाह संजय ।

सुगंधं वा दुर्गंधं वा, सम्यं मुजे न छद्मप ॥” (दश वै० अ० ५ उ० २ गा० १)

अथवा—एकाकी विहार करनेवाला शिष्यने समभवत्तं सूत्रकार कहे छे छे
छे शिष्य । कहा है तथे एकाकीविहारमां को, अने कदाचित् श्मशान आदिमां
ध्यान निमित्त रहने पड़े तो तेची वृक्षमां कदाच ते वृक्षको रहेवाला भ्रम
हर पिशाच आदि प्राणी के अने स्वभाव पीछे प्राणीअने कष्ट पहुँचा
वाने छे, तमने पक्ष क्लेश आपे-उपसर्ग पड़ोआडे तो तथे तेच कष्टोभी-

તાપયન્તિ । ત્વં તુ તૈઃ કલેશૈઃ સ્પૃષ્ટઃ, ધીરઃ=અક્ષોભ્યઃ સન્ તાન્ સ્પર્શન્=દુઃસ્વ-
શેષાન્ અધિસદ્સ્વ-इति ब्रवीमि, अस्य व्याख्या पूर्ववत् ॥ सू० ९ ॥

॥ षष्ठाव्ययनस्य द्वितीय उद्देशः समाप्तः ॥ ६-२ ॥

उन कष्टोंको अधुबधचित्त बन शांतिभावसे सहन करना । “इति ब्रवीमि” इन पदोंकी पहिले जैसी ही व्याख्या समझ लेनी चाहिये ।

भावार्थ—एकाकिविहार करनेवाले साधु वे ही हो सकते हैं जो जितेन्द्रिय होते हैं और उपसर्ग एव परीषहोंसे जो कभी भी विचलित-चित्त नहीं होते हैं । इनके अनेक प्रकारके नियम होते हैं । ये ऐसी कोई भी प्रवृत्ति नहीं करते कि जिससे साधुमर्यादाका भङ्ग हो । आहार के लिये जब ये निकलते हैं तब चाहे अन्तप्रान्त हो, कैसा भी क्यों न हो, जहां भी इन्हें शङ्कादिक दश एषणाके दोषोंसे रहित आहार मिल जायगा अथवा सर्वेषणासे जो परिशुद्ध होगा, कल्प समझ कर ये उसे ले लेंगे । वह चाहे सिंहकेशरमोदकादिक हो चाहे, बल्लचणकादिक से बना और अम्लतक्रादिकसे मिश्रित हो, उसमें इन्हें कोई भी जातका पक्षपात नहीं होता है । आहारके विषयमें इनकी यही शुद्धदृष्टि रहती है कि कुछ भी मिलेपर उसे शास्त्रविधिके अनुसार ही ग्रहण करें ।

ગભરાતા નહીં, પણ ધીર વીરની રીતે તેવા કષ્ટોને ક્ષોભવિના શાંતિભાવથી સહન કરો “इति ब्रवीमि” આ પદોની પહેલાની માફકજ વ્યાખ્યા સમજવી જોઈએ

ભાવાર્થ—એકાકીવિહાર કરવાવાળા માધુ એ જ હોય છે જે છતેન્દ્રિય હોય છે, ઉપસર્ગ અને પરિષદોથી જે કદિ પણ વિચલિતચિત્ત થતા નથી. એમના અનેક પ્રકારના નિયમો હોય છે, તેઓ એવી કોઈ પણ પ્રવૃત્તિ નથી કરતા કે જેનાથી સાધુમર્યાદાનો ભંગ થાય આહારને માટે જ્યારે તે નીકળે છે ત્યારે ભલે અન્તપ્રાન્ત હોય, ગમે તેવું કેમ ન હોય, જ્યાં પણ તેને શકા-
દિક એષણાના દોષોથી રહિત આહાર મળી જાય અથવા સર્વેષણાથી જે પરિશુદ્ધ હોય તેને કલ્પ સમજીને તે લઈ લે એ ભલે સિંહકેશરમોદકાદિક હોય આદિ બલ્લચણકાદિકથી બનેલ અને ખાટી છાશ આદિથી મિશ્રિત હોય તેમા તેને કોઈ પણ ભતનો પક્ષપાત થતો નથી, આહારના વિષયમા તેની આવી શુદ્ધ નજર રહે છે કે કોઈ પણ મળે, પણ તેને શાસ્ત્રવિધિ અનુસાર જ ગ્રહણ કરીશ.

शिष्योंको सम्बोधन करते हुए सूत्रकार अन्तमें कहते हैं कि इस एकाक्षिविहारमें साधुको अनेक प्रकारकी आपत्तिविपत्तियोंका सामना करना पड़ता है । कभी २ तो यहाँ तक भी मौका आ जाता है कि दमघान आदिमें पहुँचने पर साधुके उपर भयंकर पिशाच्यदि प्राणियों का उपसर्ग होता है; परन्तु वह धीरवीर साधु उनसे कभी भी घबरता नहीं है और सहर्ष उन परीषद्-उपसर्गोंको जीतकर अपने संयमकी रक्षा करता है ॥ सू० ९ ॥

छद्वा अभ्यसनका दूसरा उद्देश समाप्त ॥ ६-२ ॥

शिष्योंने सम्बोधन कर्त्ता सूत्रकार कहे थे कि आ एकाक्षिविहारमां साधुने अनेक प्रकारकी आपत्ति-विपत्तिने सामना कर्त्तव्य पड़े छे कथारेक कथारेक तो केवे पक्ष प्रसंग आवे छे कि दमघान आदिमा पहुँचतवा साधुना उपरभव कर पिशाच्यदि प्राणीकेना उपसर्ग बाध छे परन्तु ते धीरवीर साधु केनाभी डार्क बभत बलशता नही, जने सहर्ष केवा पस्विक उपसर्गने छुटीने पोतान्ना संयमनी रक्षा करे छे

छद्वा अभ्यसनको जीव्ते उद्देश समाप्त ॥ ६-२ ॥



। અથ ષષ્ઠાધ્યયનસ્ય તૃતીય ઉદ્દેશઃ ।

इहानन्तरद्वितीयोद्देशके कर्मधूननं सोपाय प्रदर्शितम् । तच्चोपकरणशरीरम-
मत्वविधूननं विना न संभवतीत्यतस्तद्वोधयितुं तृतीयमुद्देशकं कथयति, तत्रादौ
मुनिमर्यादामाह—‘ एयं खु ’ इत्यादि ।

मूलम्—एयं खु मुणी आयाणं सयासुअक्खायधम्ममे विहूयकप्पे
णिज्झोसइत्ता ॥ सू० १ ॥

छाया—एतत्खलु मुनिरादानं सदा स्वाख्यातधर्मः विधूतकल्पः
निर्ज्ञोष्य ॥ सू० १ ॥

टीका—सदा=सर्वदा स्वाख्यातधर्मः—सु=मुष्ठु—सम्यक्प्रकारेण आख्यातः=
भगवता प्ररूपितः ममत्वत्यागरूपो धर्म एव धर्म यस्य स स्वाख्यातधर्मः, तथा—

છટ્ટા અધ્યયનકા ત્રીસરા ઉદ્દેશ ।

इस अध्ययनके द्वितीय उद्देशमें कर्मोंका क्षय उपायसहित प्रदर्शित
किया जा चुका है । कर्मोंका क्षय भी जब तक उपकरण और शरीरमें
ममत्वका अभाव नहीं होगा तब तक नहीं हो सकता है, इसलिये उसे
समझानेके लिये इस तृतीय उद्देशका सूत्रकार कथन करते हैं । उसमें
सर्वप्रथम वे मुनिकी मर्यादा कहते हैं—‘ एय खु ’ इत्यादि ।

सर्वदा जिसके हृदयमें भगवत्प्ररूपित ममत्वत्यागरूप धर्म विद्य-
मान है, जो यह समझता है कि ममत्वत्याग ही सच्चा धर्म है, अर्थात्—
जिनप्रवचनमें कथित प्रतिज्ञाके भारको वहन करनेमें जो शक्तिसम्पन्न

છટ્ટા અધ્યયનનો ત્રીજો ઉદ્દેશ

આ અધ્યયનના ત્રીજા ઉદ્દેશમાં કર્મોના ક્ષય ઉપાયસહિત પ્રદર્શિત કરવામાં
આવેલ છે કર્મોના ક્ષય પણ બધા સુધી ઉપકરણ અને શરીરમાં મમત્વનો
અભાવ નહિ થાય ત્યા સુધી થઈ શકતો નથી આ માટે એ સમજાવવા આ
ત્રીજો ઉદ્દેશ સૂત્રકાર કહે છે એમાં સર્વપ્રથમ એ મુનિની મર્યાદા કહે છે.
“ એયં खु ” ઇત્યાદિ

સદાય જેના હૃદયમાં ભગવત્પ્રરૂપિત મમત્વત્યાગરૂપ ધર્મ વિદ્યમાન છે.
જે એ સમજે છે કે મમત્વત્યાગજ સાચો ધર્મ છે, અર્થાત્—જનપ્રવચનમાં કહેલ
પ્રતિજ્ઞાના ભારને વહન કરવામાં જે શક્તિસમ્પન્ન છે, તથા વિધૂતકલ્પ—સારી

વિપ્રતક્ત્યઃ—વિપ્રતઃ=સમ્યક્ સ્પૃષ્ટઃ કત્યા=આચારો યનસ વિપ્રતક્ત્યા=જ્ઞાના-
ચારાદિપરિપાલકો મુનિઃ एतत्=પૂર્વોક્ત વક્ત્યમાર્થં યા આદાર્ન=કર્મોપાદાનં
ધર્મોપકરણાદિરિક્તં વક્ત્તાદિકં નિર્મોળ્યધર્મનિરત્યા—અસ્વીકૃત્યેત્યર્થઃ,
વિશરતિ ॥ સૂ. ૧ ॥

કિઙ્—‘જે અચેલે’ ઇત્યાદિ ।

મૂલ્ય—જે અચેલે પરિવુસિપ્પ, તસ્સ ણ મિક્કલુસ્સ નો ધર્વં
ભવહ—પરિજુણ્ણે મે વરથે, વરથ જાહસ્સામિ, સુત્ત જાહસ્સામિ,
સુહં જાહસ્સામિ, સધિસ્સામિ, સીવિસ્સામિ, ઉક્કસિસ્સામિ,
બુક્કસિસ્સામિ, પરિહિસ્સામિ, પાઠણિસ્સામિ ॥ સૂ. ૨ ॥

ઢાયા—યોઽવેલઃ પર્યુપિતસ્તસ્ય સઙ્ગ મિત્તોનોં ઇધં મવતિ—પરિનીર્ણં મે
સ્થં, વઙ્ગં યાચિષ્યે, સુત્રં યાચિષ્યે, મૂર્ધ્ની યાચિષ્યે, સપાસ્યામિ, સેવિષ્યામિ,
ઉત્કર્ષયિષ્યામિ, બ્યુત્કર્ષયિષ્યામિ, પરિપાષ્યામિ, માતરિષ્યામિ ॥ સૂ. ૨ ॥

હૈ, તથા વિપ્રતક્ત્ય—અચ્છી તરહસે જિસને કત્યકા સ્પર્શ કિયા હૈ—
જ્ઞાનાચાર આદિ આચારકા જો પાલક હૈ, પેસા મુનિ પૂર્વોક્ત તથા આગે
કહે જાનેવાલે ધર્મોપકરણકે સિધાય અન્ય વક્ત્તાદિકકા ત્યાગ કર મુનિ
ધર્મમેં વિચરણ કરતા હૈ ।

આચાર્ય—જો યહ સમજાતા હૈ કિ મમત્વત્યાગસ્ય ધર્મ હી કિ જિસ
કી પ્રસ્પ્પણા ઓર પાલના તીર્થપૂરાવિ દેવોને કી હૈ યહી ધર્મ હૈ, તથા જો
જ્ઞાનાચારાદિકકા ‘મહીન્નાંતિ પાલન કરનેમેં સાધધાન રહતા હૈ ઓર
ધર્મોપકરણકે સિધાય અન્ય વક્ત્તાદિક પરિગ્રહરૂપ હોનેસે કમોંકિ
વપાર્જન કરાનેવાલે હૈ પેસા વિચાર કર જો ડનકા ત્યાગ કરતા હૈ, યહી
સત્ત્વા મુનિ હૈ ॥ સૂ. ૨ ॥

રીતે જેલે કપનો સ્પર્શ કરેલ છે ત્યાગ—આદિ આચારના જે પાલક છે એવા
મુનિ પૂર્વોક્ત તથા કહે યહી કહેવામાં આવનાર ધર્મોપકરણના સિધાય અન્ય
વક્ત્તાદિકનો ત્યાગ કરી મુનિધર્મમાં વિચરણ કરતા હોય છે.

આચાર્ય—જે જો સમજે છે કે મમત્વત્યાગરૂપ ધર્મ જ કે જેની પ્રત્તિ
પણા અને પાલના તીર્થોંકરણિક દેવોએ કરી છે એ જ ધર્મ છે. તથા જે
જ્ઞાનાચારાદિકનું સારી રીતે પાલન કરવામાં સાધધાન રહે છે તે જો સમજીને કે ધર્મો
પકરણના સિધાય અન્ય વક્ત્તાદિક પરિગ્રહરૂપ હોવાથી કર્મોનુવપાર્જન કરનાવાળા
છે. એવા વિચાર કરી જે તેનો ત્યાગ કરે છે, એ જ સાચા મુનિ છે. (સૂ. ૨)

ટીકા—યઃ સાધુઃ, અચેલઃ=અલ્પવસ્ત્રઃ, અત્રાલ્પાર્થે નચ્ચ, યથાડયમજ્ઞ ઇત્યત્ર સ્વલ્પજ્ઞાનવાનિત્યર્થો ભવતિ; તથા—પર્યુપિતઃ=સયમે કર્મધૂનનોપાયે વ્યવસ્થિતઃ, તસ્ય ભિક્ષોઃ એવ=વક્ષ્યમાણ ન ભવતિ=ન કલ્પતે, યથા પરિજીર્ણે મે વસ્ત્રમ્, इदं मम शरीरत्राणाय न भविष्यतीति वस्त्रं याचिष्य इति, પૂર્વગૃહીતવસ્ત્રસ્ય જીર્ણતયા સ્ફાટિતતયા ચ શીતપીડિતસ્ય મમાનેન શરીરત્રાણાસંભવાત્ નવીન વસ્ત્રં યાચિષ્ય

તથા—‘જે અચેલે’ ઇત્યાદિ ।

‘અચેલે’—યહાંપર અલ્પ-અર્થવાચક નજૂકા પ્રયોગ હુઆ હૈ; જૈસે ‘અજ્ઞ’ હસમેં હોતા હૈ । યહ અજ્ઞ શબ્દકા જિસ પ્રકાર સર્વથા જ્ઞાનકા અભાવ પ્રતિ-પાદિત નહીં કરતા હૈ; કિન્તુ જ્ઞાનમેં અલ્પતા પ્રદર્શિત કરતા હૈ, ઠીક ઇસી પ્રકારસે ‘અચેલ’ યહ શબ્દ મી વસ્ત્રકે સર્વથા અભાવકા પ્રદર્શન નહીં કરતા કિન્તુ હસમેં અલ્પતા હી બતલાતા હૈ । એસે—જો અચેલ-અલ્પ વસ્ત્રવાળા હૈ, તથા કર્મોંકે વિનાશક ઉપાયમેં જિસકી સ્થિતિ હૈ, હસ સાધુકે ચિત્ત મેં યહ કલ્પના નહીં ઉઠતી હૈ અર્થાત્ હસે હસ પ્રકારકી કલ્પના કરના ઉચિત નહીં હૈ કિ મેરા યહ વસ્ત્ર જીર્ણ પુરાના હો ગયા હૈ અબ હસસે મેરે શરીરકી રક્ષા નહીં હો સકેગી; અતઃ કોઈ દૂસરા વસ્ત્ર કહીં કિસી સે ચલકર યાચ લૂંગા । મતલબ યહ કિ મેરા પહિલેકા જો યહ વસ્ત્ર હૈ વહ હસ સમય જીર્ણ ઓર ફટા હુવા હોનેસે શીતપીડિત મેરે શરીરકી રક્ષા કરનેમેં સર્વથા અસમર્થ હૈ અતઃ નવીન વસ્ત્રકે વિના મિલે મેરે

તથા “જે અચેલે” ઇત્યાદિ ।

અચેલે—અહીં અલ્પ અર્થ વાચક નજૂનો પ્રયોગ થયો છે—જેમ “અજ્ઞ” આમા થાય છે આ અજ્ઞ શબ્દ જે પ્રકારે સર્વથા જ્ઞાનનો અભાવ પ્રતિપાદિત નથી કરતો, પરંતુ જ્ઞાનમા અલ્પતા પ્રદર્શિત કરે છે, ઠીક એ પ્રકારથી ‘અચેલ’ આ શબ્દ પણ વસ્ત્રના સર્વથા અભાવનું પ્રદર્શન નથી કરતો, પરંતુ એમા અલ્પતા જ બતાવે છે એવા જે અચેલ-અલ્પવસ્ત્રવાળા છે, તથા કર્મોના વિનાશક ઉપાયમા જેની સ્થિતિ છે, એવા સાધુના ચિત્તમા એ કલ્પના નથી ઉઠતી, અર્થાત્ એણે એ પ્રકારની કલ્પના કરવી ઉચિત નથી કે મારું આ વસ્ત્ર જીર્ણ-જુનું થઈ ગયું છે, હવે આનાથી મારા શરીરની રક્ષા થઈ શકવાની નથી બીજું કોઈ વસ્ત્ર કોઈ જગ્યાએ કોઈની પાસેથી માગી લઈશ મતલબ—મારી પાસે પહેલાનું જે આ વસ્ત્ર છે તે આ સમયે જીર્ણ થવાથી ફાટી ગયેલ છે, અને ઠીકમા મારા શરીરની રક્ષા કરવામા તદ્દન અસમર્થ છે આથી નવીન વસ્ત્ર વગર મારા શરીરનું ઠીકથી રક્ષણ થવું અસંભવ છે આ માટે નવું વસ્ત્ર

इत्यर्थः । सूत्रं=तन्तुं याचिष्यं, सूचीं याचिष्ये, संघास्यामि=मूषसूष्यौ लम्ब्या जीर्ण
पक्षस्य रन्ध्रं संघास्यामीत्यर्थः । तथा स्फाटितं सेविष्यामि । तथा=सत्कर्मपिष्यामि
=अपरवक्ष्यत्यर्थं योमयित्वा नर्षयिष्यामि, लघुवस्त्रं पिश्यालं करिष्यामीत्यर्थः । तथा
प्युत्कर्षयिष्यामि=स्फाटितमार्गं भोटयित्वाऽपनेष्यामि तथा परिधास्यामि=पक्ष कृते
सति पद्मादिदं धीर्गैर्नक्तं परिधानवस्त्रं करिष्यामि । तथा=माधरिष्यामि=प्रावरणं
'चादर' इति मापाप्रसिद्धं करिष्यामि ।

शरीरकाशीलसे घ्राण (रक्षा) होना असम्भव है । इसलिये नवीन वस्त्र
मिल जाय तो ठीक ! जब तक यह नहीं मिलता है—तब तक जैसे पने
इस फटे पुराने वस्त्रसे ही काम निकाल लूंगा; परन्तु ऐसे तो ये काममें
आवेगा नहीं, अतः यदि कहींसे सुई और धोरा मिल जाय तो उससे
इसे सी लूंगा, जहां २ यह फट चुका है—जोड़ लूंगा, इसमें जितने छेद हो
चुके हैं उन्हें भर लूंगा, नहीं तो कौन इतना परिश्रम कर, जो भाग
विलकुल फट चुका है उसे इससे निकाल दूंगा और दूसरा टुकड़ा जोड़
लूंगा, इससे यह फटा पुराना टुकड़ा पहिलेकी अपेक्षा कुछ पक्का भी
हो जायगा । इससे मेरे दोनों काम निकल जायेंगे, पहिरने टाईममें पहिर
लिया करूंगा और ओढ़नेके समयमें ओढ़ भी लिया करूंगा, अर्थात्
इसकी चादर बना लूंगा । इस प्रकारके संकल्प विकल्परूप आत्मध्यानसे
मुनिके शुभ अध्यवसाय नहीं होता है । शुभ अध्यवसाय उत्पन्न हुए
बिना परंपरारूपसे कर्मोंका क्षय भी नहीं हो सकता, अतः कर्मोंके क्षय
के लिये उद्यत हुए मुनिको आर्चध्यानका सबया परित्याग कर देना

भण्डी जब तो छिडे परन्तु क्या मुधी को न भणे त्यां मुधी जमे तेम आ
हाटेव नुन्य वस्त्रधी न बलावी लक्ष्य, परन्तु हाटेव कावतम्य तो को कामभां
आवी छडे तेम नभी, आधी को कर्मावधी सोय होय भण्डी जब तो जेनाधी
जेने सीवी लडे क्या क्या को हाटयु छे त्यां जेवी लडे जने क्या छिड
पण्य छे जेने बरी लडे नछि तो कोणु आटवी परिग्रम करे के बाज नील
डल हाटी जयेव छे जेने कावी नाण्य जीने दुकरे जेवी लक्ष्य आधी को
हाटेव नुने दुकरे पछेवां करवां भोगे घरे जने जेवी भाषा जने काम धर्ध जये
पछेव्यान्य लक्ष्य पछेरी लक्ष्य जने जोववाना समये जोवी पणु लक्ष्य आ
प्रकारना स कल्प-विकल्पइय आर्चध्यानधी मुनिने शुभ अध्यवसाय भयो नधी, शुभ
अध्यवसाय उत्पन्न भया बिना परंपरइण्य कर्मोना क्षय पणु धर्ध छडेव नभी
आधी कर्मोना क्षयने भाटे उद्यत जनेव मुनिके आर्चध्याननो अनर्थ त्याज

एयरूपार्तध्यानेन शुभाध्यवसायो नोत्पद्यते, तस्मात् कर्मधूननार्थमुद्यतेन मुनिनाऽऽर्तध्यान परिवर्जनीयम्, अवसरे यद् भवेत्तद् भविष्यतीति चिन्तयेदिति भावः ॥ सू० २ ॥

तस्याऽचेलस्य साधोर्जीर्णवस्त्रविषयकमार्तध्यान यदि नापि भवेत्, किन्तु चाहिये और ऐसा विचार करना चाहिये कि जिस समय जो होनेवाला होगा सो होगा ।

भावार्थ—चाहे અલ્પવસ્ત્રવાલે હો, ચાહે વહુ વસ્ત્રવાલે હો; જો પરપદાર્થો મેં મોહી હું, ઉનકે હી યે પૂર્વોક્ત રૂપસે કલ્પનાઈ ઉઠા કરતી હું । યદિ મુનિકે મી યે ઇસી તરહસે ઉઠતી હું તો વહુ સચ્ચા મુનિ નહીં હૈ । મુનિકે ઇસ પ્રકારકી કલ્પનાઓંકા જાગરણ આર્તધ્યાનકા કારણ માના ગયા હૈ, જો શુભ પરિણામોંકી પ્રાપ્તિમેં પ્રતિબંધક હોતા હૈ । અતઃ મુનિ-યોકો તો ઇસ પ્રકારકી કલ્પના ઉઠની હી નહીં ચાહિયે—ઉન્હેં તો યહી વિચાર ચાહિયે કિ જો જિસ સમયમેં હોના હૈ વહી હોગા, મુઝે ઇસકી ચિન્તા નહીં કરની ચાહિયે, ચિન્તાસે કમોંકા હી બંધ હોગા, ન કિ ઉનકા ધૂનન । તાત્પર્ય યહ હૈ કિ વસ્ત્ર પુરાના હો જાય તો ઉસકી ચિન્તા ન કરે, ઔર કવ સીઝગા ઇસ પ્રકાર આર્તધ્યાન ન કરે ॥સૂ૦ ૨॥

મહે હી ઉસ અચેલ સાધુકે લિયે ફટે-પુરાને-વસ્ત્ર-વિષયક આર્ત-કરવો જોઈએ અને એવો વિચાર કરવો જોઈએ કે જે સમયે થવાનુ છે તે થઈને જ રહેશે

ભાવાર્થ—ચાહે અલ્પવસ્ત્રવાળા હોય, ચાહે બહુવસ્ત્રવાળા હોય, જે પર-પદાર્થોમા મોહી છે એને જ એ પૂર્વોક્તરૂપથી કલ્પનાઓ ઉઠ્યા કરે છે મુનિના મનમા પણ જે આવી કલ્પના ઉઠે તો એ સાચો મુનિ નથી મુનિમા આ પ્રકારની કલ્પનાઓ જાગવી એ આર્તધ્યાનના કારણરૂપ માનવામા આવેલ છે જે શુભ પરિણામોની પ્રાપ્તિમા બાધારૂપ અને છે આથી મુનિઓમા તો આ પ્રકારની કલ્પનાઓ ઉઠવી જ ન જોઈએ એણે તો એવો જ વિચાર રાખવો જોઈએ કે જે સમયે જે બનવાનુ છે તે બનવાનુ જ છે. મારે એની ચિન્તા શા માટે કરવી જોઈએ ચિન્તાથી તો કર્મનો બંધ થાય છે, એનો નાશ નહિ તાત્પર્ય એ છે કે વસ્ત્ર ભલે જુનુ થઈ જાય એની એ ચિન્તા ન કરે, અને ક્યારે સીવીશુ આ પ્રકારથી આર્તધ્યાન ન કરે (સૂ૦ ૨)

એ એચેલ સાધુને માટે કાટેલ જુના વસ્ત્રો વિષે ભલે આર્તધ્યાન ન હોય

વસ્યમાણપરીપહાયામવશ્ય સમ્ભવ્યમિતિ તત્ર તસ્ય યત્ કર્તવ્યમ્ તદાહ—‘અબુધા તત્થ’ ઇત્યાદિ ।

મૂલ્કમ્—અબુધા તત્થ પરક્રમત મુઝ્જો અચેલ તણફાસા ફુસતિ, સીયફાસા ફુસંતિ, તેઝફાસા ફુસતિ, દસમસગફાસા ફુસતિ । પગયરે અણ્ણયરે વિરુવરુવે ફાસે અહિયાસેતિ અચેલે લાઘવ આગમમાણે, તવે સે અભિસમણ્ણાગય ભવહાસુ ૦ ૩ ॥

છાયા—અથવા તત્ર પરાક્રમમાર્ણ ધૂયોજ્વેલ્લ તુણસ્પર્શાઃ સૃજન્તિ, શ્રીતસ્પર્શાઃ સૃજન્તિ તેજાસ્પર્શાઃ સૃજન્તિ, વંશમણ્ણકસ્પર્શાઃ સૃજન્તિ । પક્કરત્તાન્ મન્યતરત્તાન્ વિરુપ્પાન્ સ્પર્શાન્ અપ્પાસે અવેલ્લો લાઘવમ્ આગમયન્, તપસ્તસ્ય અભિ-સમન્વાગતં ભવતિ ॥ મૂ ૦ ૩ ॥

ટીકા—અથવા તત્ર—અત્યવશ્યતાવસ્થાયાં પરાક્રમમાણ=કર્મપૂતનાપાય સયમ સમુપ-
જ્ઞાનં અવેલ્લમ્=મત્પક્ષં સાધુ વચ્ચિત્ત્વ ગ્રામાદી ત્વક્ષમાવશ્યામાનાત્ તુણ્ણાયિનં,
ધ્યાન ન હો તો ‘મી’યે વશ્યમાણ પરીપહતો અવશ્ય હો સકતો હું । અનેક
હોનેપર જો અનેક કર્તવ્ય્ય છે, હવે સુધ્ધકાર કહાસે છે—“અબુધા તત્થ” ઇત્યાદિ ।

અથવા—અત્ય વશ્ય ધારણ કરનેકી અવસ્થામે અચ્છી તરહસે ઉપુક્ક
અર્થાત્ સયમકી રક્ષા અધિક વશ્યોકે ધારણ કરનેસે નહીં હો સક્તી છે
ઔર જહાં સયમકી રક્ષા હી નહીં છે જહાં કર્મોકા ક્ષય ‘મી’ નહીં હો
સક્તો છે—ઇસ ખાવનાસે પ્રેરિત વહ સાધુ કર્મવિનાશક સયમમે સદા
ઉચ્ચોગશાલી બના રહતા છે ઔર ઇસીલિયે વહ અત્ય વશ્ય—ધોલે વશ્યોસે
અપના કામ ચલાતા છે, તો ‘મી’ યેસે સાધુકો કિસી ગ્રામાદિકમે શારી-
રિક રક્ષાકે ધોગ્ય વશ્યોકા અમાવ હોનેસે કયાચિત્ ઘાસપર ‘મી’ શાયન
કરના પડતા છે, ઇસ અવસ્થામે કઠોર તુણસ્પર્શોસે ઉત્પન્ન કુઃખ્મચિત્તોયો
તો પણ એ વશ્યમાણ પરિપહ તો અપશ્ય થાય છે, તે કયા તેણે એ કર્તવ્ય્ય છે
તેને સુત્રકાર કહે છે “અબુધા તત્થ” ઇત્યાદિ.

અથવા અત્ય વશ્ય ધારણ કરવાની અવસ્થામાં સાચી રીતે ઉપુક્ત કોરલે
સયમની રક્ષા પણ વશ્ય ધારણ કરવાથી થઈ શકતી નથી, અને જ્યાં સયમની
રક્ષા નથી ત્યાં કર્મને ક્ષય પણ થઈ શકતો નથી, આ જાણનાથી પ્રેરિત તે
સાધુ કર્મવિનાશક સયમમાં સદા ઉચ્ચોગશાળી બની રહે છે અને એ નાદે તે
અત્ય વશ્ય—મોઝાં વશ્યોથી પોતાનું કામ ચલાવે છે, તે પણ એવા સાધુને કોઈ
આમદમાં શારીરિક રક્ષા—મોગ્ય વશ્યને અભાવ હોવાથી કોઈ વખતે ધ્યાન ઉપર

તૃણસ્પર્શાઃ=પરુષતૃણસ્પર્શજનિતદુઃસ્વવિશેષાઃ કદાચિત્ સ્પૃશન્તિ=પીડયન્તિ, તથા શીતસ્પર્શાઃ=શીતપરીપહા સ્પૃશન્તિ । તથા-તેજઃસ્પર્શાઃ=ઉષ્ણપરિપહાઃ સ્પૃશન્તિ, તથા દંશમશકાસ્પર્શા સ્પૃશન્તિ । एषु परिपहेषु ये एकतरे=एकरूपाः, -प्रतिकूला एव दंशमशकादयः, तथा-ये अन्यतरे=उभयविधा -अनुकूलप्रतिकूलरूपाः=शीतोष्णादयः; यथा ये शीतस्पर्शाः हेमन्ते प्रतिकूलास्त एव ग्रीष्मेऽनुकूलाः, तथा य उष्णस्पर्शाः ग्रीष्मे प्रतिकूलास्त एव हेमन्तेऽनुकूला इत्येवमनुकूलप्रतिकूलरूपाः शीतस्पर्शाः उष्ण-स्पर्शाश्च भवन्ति, अतएव विरूपरूपाः=अनेकरूपाः स्पर्शाः-परिपहरूपास्तृणादि-स्पर्शाः प्रादुर्भवन्ति, तान् अचेलः=अल्पवस्त्रः साधुः अधिसहते । स किमुद्दिश्य परिपहान् अधिसहते? इति जिज्ञासायामाह-लाघवमागमयन्निति । लाघवम्=द्रव्यतो

का उसे सामना करना पड़ता है-उन दुःखोंको सहता है । शीतस्पर्श-परीषह भी वह सहता है । डांस मच्छर आदि जन्य वेदनाओंको भी सहन करता है । इन परीषहोंमें कोई २ परीषह प्रतिकूल ही हैं, तथा कोई अनुकूलप्रतिकूल उभयरूप हैं । जैसे-दशमशकादिक प्रतिकूल ही हैं । तथा शीत उष्ण वगैरह अनुकूल प्रतिकूल दोनों रूप हैं । जो शीतस्पर्श हेमन्त ऋतुमें प्रतिकूल मालूम देते हैं वे ही ग्रीष्मऋतुमें अनुकूल लगने लगते हैं । इसी प्रकार जो उष्ण स्पर्श ग्रीष्ममें प्रतिकूल लगते हैं वे ही हेमन्तमें अनुकूल जचते हैं । इसी अपेक्षा ये शीत-उष्ण स्पर्श विरूप-रूप-अनेक रूप बताये गये हैं । इन अनेकरूप स्पर्शोंको और परीषहरूप तृणादिस्पर्शोंको वह अचेल साधु सहन करता है । किस विचारसे वह इन परीषहोंको सहता है ? इस प्रकारकी जिज्ञासा होने पर सूत्रकार

પણ મુખ પડે છે આ સ્થિતિમા કઠોર ધાસના સ્પર્શથી ઉત્પન્ન હુ ખોનો તેને સામનો કરવો પડે છે-એ આવા દુઃખોને સહે છે શીતસ્પર્શ પરીપહ પણ સહે છે ડાસ, મચ્છર આદિજન્ય વેદનાઓને પણ સહન કરે છે આ પરીપહોમા કોઈ કોઈ પરીપહ પ્રતિકૂળ જ હોય છે, અને કોઈ કોઈ અનુકૂળ પ્રતિકૂળ ઉભયરૂપ હોય છે જેમ દશ મશકાદિ પરીપહ પ્રતિકૂળ જ છે અને શીત ઉષ્ણ આદિ પરીપહ અનુકૂળ પ્રતિકૂળ ઉભયરૂપ છે જે શીતસ્પર્શ હેમન્તઋતુમા પ્રતિકૂળ માલુમ પડે છે તે જ ગ્રીષ્મ ઋતુમા અનુકૂળ લાગે છે એ જ રીતે ઉષ્ણ સ્પર્શ ગ્રીષ્મ ઋતુમા પ્રતિકૂળ લાગે છે તે જ હેમન્તમા અનુકૂળ લાગે છે આ અપેક્ષાથી શીત-ઉષ્ણ સ્પર્શ વિરૂપરૂપ-અનેકરૂપ બતાવવામા આવેલ છે આ અનેકરૂપ સ્પર્શોને અને પરિપહરૂપ તૃણાદિસ્પર્શોને એ અચેલ સાધુ સહન કરે છે કયા વિચારથી એ આવા દુખો સહે છે ? આ પ્રગટની ઇચ્છામા હોવાથી સૂત્રકાર કહે છે કે-“લાઘવં આગમયન્”-એ સાધુ વસ્ત્રાદિકોના લાઘવ-સંલેપ

भाषतथा तत्र द्रव्यतो-धर्मोपकरणवस्त्रादिलाघवं, भाषतस्तु-ज्ञानावरणीयाद्यष्टविकर्म
साधयन्, आगमयन्-नयन्, यद्वा-अवगमयन्-मोक्षार्थिनो मम वस्त्रादिलाघवं
कर्मसाधवं चावश्यं करणीयमित्येवं चिन्तयन्-इति यावत्; परिपहाणां सहनमेव
मम कर्मधूननोपाय इति कृत्वा तान् सर्वांन् परीपहान् अभिसहति इति भावः ।

तस्य-उपकरणलाघवन कर्मसाधय कर्मलाघवेन चोपकरणसाधयं निर्वृत्त्या
तृणादिस्पर्शान् अभिसहमानस्य तपः-कायकलशरूपतया बाह्यं तपः, अग्नि
समन्वागत-मोक्षाम्निमुख्येन सम्पगाचरितं भवति ॥ सू० ३ ॥

कहते हैं कि “लाघवं आगमयन्” वह साधु वस्त्रादिकोंका लाघव-
संक्षेप करानेका अभिलाषी है-अर्थात् द्रव्य और भावके भेदसे लाघव
दो प्रकारका है-धर्मके उपकरणभूत वस्त्रादिकोंकी लघुता-अल्पता द्रव्य
लाघव है और ज्ञानावरणीयादि अष्ट कर्मोंकी लघुता भावलाघव है ।
इन दोनोंको वह मुनि लाघव (इलक्षण) की ओर ले जा रहा है ।
“आगमयन्”की जगह “अवगमयन्” यह भी पाठान्तर है, इससे यह
भाव निकलता है कि उसका मद्वा यही विचार रहता है कि मैं मोक्षका
अभिलाषी हूँ, मेरे पास सब वस्तुओंकी अल्पता ही होनी चाहिये और
मुझे कर्मोंका लाघव अवश्य करना चाहिये। इसी विचारसे वह परीपहोंको
सहता है, क्योंकि इनका सहना ही मेरे पास कर्मोंके क्षय करनेका उपाय है।

साधुक उपकरण क लाघवसे कर्मोंका लाघव और कर्मोंके लाघव
से उपकरणका लाघव जानकर, तृणादि स्पर्शजन्य कष्टोंको सहन करने
वाले उस साधुका तृणादि स्पर्शजन्यकष्ट तपः-कायकलेश नामक पाद्यतप
है और वह उसका निर्जरा समस्तकार अच्छी तरहसे सहन करता है। सू० ३।

कश्चाने अभिलाषी ते-अर्थात् द्रव्य जने भाव ना खेदभी लाघव ते
प्रकारे ते-धर्मना उपकरणभूत वस्त्र आदिनी लघुता द्रव्य लाघव ते जने ज्ञाना
वरणीयादि अष्ट कर्मोंनी लघुता भावलाघव ते आ ज-नेने जे लाघवनी तरह
लक्ष्य जे “आगमयन्”ने स्थाने “अवगमयन्” आ पद्य पाद्य-न्तर ते आभी
जे भाव निकले ते के जेने सदा जे विचार रहे ते के कुं मोक्षने अभिलाषी हूँ,
मारी पास वस्तुनी सदा अल्पता ज रहैवी जेई जे, जने भारे कर्मोंनु लाघव
अवश्य करवुं जेई जे केम के हाजोने भुद्धेवाभी आठ कर्मोंना क्षय भाव ते

उपकरणना लाघवभी कर्मोंनु लाघव जने कर्मोंना लाघवभी उपकरणनु लाघव
अर्थात् तृणादिस्पर्शजन्य कष्टोंने सहन्यरते साधुनु तृणादिस्पर्शजन्य कष्ट तपः-कायकलेश
नामक पाद्यतप ते जने जे तेने निज ज समस्त आरी रते सहन करे ते। (सू० ३)

एतच्च न मया स्वबुद्ध्या परिकल्प्य कथ्यते; किन्तु भगवदुक्तानुसारेण
त्याह—‘जहेय’ इत्यादि ।

मूलम्—जहेयं भगवया पवेइयं तमेव अभिसमिच्चा सव्व-
ओ सव्वत्ताए संमत्तमेव समभिजाणिज्जा, एवं तेसिं महावीराणं
चिररायं पुव्वाइं वासाणि रीयमाणाणं दवियाणं पास अहिया-
सियं ॥ सू० ४ ॥

છાયા--યથૈતદ્ ભગવતા પ્રવેદિત તદેવાભિસમેત્ય સર્વતઃ સર્વાત્મતયા
સમ્યક્ત્વમેવ સમભિજાનીયાત્ । एवं તેपा महावीराणा चिररात्र पूर्वाणि वर्षाणि
रीयमाणाना द्रविकान् पश्य अध्यासितम् ॥ सू० ४ ॥

टीका—एतद्=उक्तं वक्ष्यमाणं च यथा=येन प्रकारेण भगवता प्रवेदितं=प्ररूपेण
बोधितम्, अतः तदेव उपकरणादिलाघवम्, सर्वतः=द्रव्यक्षेत्रकालभावतः, तत्र द्रव्यतः
—आहारोपकरणादौ, क्षेत्रतः—सर्वत्र ग्रामादौ, कालतः—अहर्निशम् दुर्भिक्षकादौ वा,

यह मैं अपनी बुद्धिकी कल्पनासे नहीं कहता हूं, किन्तु भगवान्‌के
कहे अनुसार ही कहता हूं; इस बातको प्रकट करनेके लिये श्रीसुधर्मास्वामी
श्रीजम्भूस्वामीसे कहते हैं—“जहेयं” इत्यादि ।

भगवान्‌ने यह पूर्वोक्त अथवा वक्ष्यमाण उपकरणादिलाघवरूप
विषय जिस प्रकारसे कहा है—समझાया है, वही द्रव्य, क्षेत्र, काल और
भावसे जानकर, मुनि उसमें दत्तावधान बन, शुभअध्यवसायरूप सम्य-
क्त्वका ही मोक्षकी सन्मुखतासे चिन्तवन करे। आहार एवं उपकरणादि-
कोंमें जो लाघव किया जाता है वह द्रव्यकी अपेक्षा लाघव है । मैं इतने
ही ग्रामोंमें विहार करूंगा, इतनेमें नहीं—इस प्रकार जो ग्रामादिकोंमें

આ હું મારી બુદ્ધિની કલ્પનાથી નથી કહેતો, પરંતુ ભગવાનના કહેવા
અનુસાર જ કહું છું આ વાતને પ્રગટ કરવા માટે શ્રી સુધર્માસ્વામી શ્રી જમ્બૂ-
સ્વામીને કહે છે—“જહેય” ઇત્યાદિ

ભગવાને આ પૂર્વોક્ત અથવા વક્ષ્યમાણ ઉપકરણાદિલાઘવરૂપ વિષય જે
પ્રકારે કહેલ છે—સમજાવેલ છે, તેને દ્રવ્ય, ક્ષેત્ર, કાળ અને ભાવથી જાણીને
મુનિ તેમાં એકાગ્ર બની શુભ અધ્યવસાયરૂપ સમ્યક્ત્વનો જ મોક્ષની સન્મુખતા
માટે ચિન્તવન કરે આહાર અને વસ્ત્રો આદિમાં જે લાઘવ કરવામાં આવે છે
તે દ્રવ્યની અપેક્ષા લાઘવ છે હું એટલા જ ગ્રામાદિકોમાં વિહાર કરીશ, એટલામાં
નહિ—આ પ્રકારે જે ગ્રામાદિકોમાં લાઘવ કરવામાં આવે છે તે ક્ષેત્રની

માપતાં માયાસારિત્યેન યમિસમસ્ય=જાત્યા સર્વાત્મતયા=અન્યમનસા સમ્યક્ત્વમેવ
=શુમાખ્યક્ષાપયવ સમભિજાનીયાત્=સમ્યગ્મોક્ષામિદુસ્ત્યેન જાનીયાત્, ચિન્તયેદિ
ત્યયં'। અયં માવઃ-જિનકલ્પિક એકચક્ષુષારિયં સ્યવિરક્ત્યિકં ન હીસ્મેત્।
એકમેકચક્ષુષારકો દ્વિચક્ષુષારકમ્, દ્વિચક્ષુષિયચ્ચારકમ્। તથા ચાતુર્માસિકક્ષપ
કક્ષિમાસક્ષપકમ્, ત્રિમાસિકા દ્વિમાસિકમ્, ત્રિમાસિક એકમાસિકમ્, એકમા-
સિકોઽર્ધમાસિકમ્, અર્ધમાસિકક્ષપક એકાન્તરક્ષપકમ્, એકાન્તરક્ષપક
એકમક્તમાજિનં ન હીક્ષયત્, યથા અયં ન માદસ્ય, કિન્તુ દુષ્કરતપાસંયમારાધનકાતર'
इत्यादिक्य दुष्पणिधान न कुर्यात्। किमपिकेनौ जिनकल्पिकं प्रतिमाप्रतिपन्नो वा
लाघव क्रिया जाता है वह क्षेत्रकी अपेक्षा लाघव है। इस ग्राममें मैं एक
रात दिन रहूंगा, अथवा दुर्भिक्षकालादिकमें रहूंगा, सब समयमें नहीं,
यह कालकी अपेक्षा लाघव है। मायाधाररहित होना यह भावकी
अपेक्षा लाघव है। तात्पर्य इसका यह है-जिनकल्पी साधु, एक चक्षु
धारण करनेवालेका, एक चक्षुधारी द्विचक्षुधारणकरनेवालेका, द्वि
चक्षुधारी तीनचक्षुधारणकरनेवालेका, तथा चातुर्मासिकक्षपक, त्रिमा
सिक क्षपकका, द्विमासिक क्षपक त्रिमासिक क्षपकका, द्विमासिकक्षपक
एकमासिक क्षपकका, एकमासिक क्षपक अर्धमासिक क्षपकका, अर्धमा
सासिकक्षपक एकान्तर क्षपकका, और एकान्तरक्षपक एकमक्तभोजीका,
कभी भी तिरस्कार न करे। यह मेरा जैसा नहीं है; किन्तु दुष्कर तप
और सयमकी आराधना करनेमें कायर है-इत्यादि-रूपसे उनकी भव-
छेड़ना न करे, और न अनावरकी दृष्टिसे देखे। इस विषयमें ज्यादा

અપેક્ષા લાગવ છે આ ગ્રામમાં હું એક રાત દિવન રહીશ. અથવા
દુર્ભિક્ષ કાલાદિકમાં રહીશ, જ્યાં સમય સુધી નહિ. આ કાળની અપેક્ષા લાગવ
[] માયાથી રહિત રહેવું એ ભાવની અપેક્ષા લાગવ છે તાત્પર્ય એવું એ છે
કે છનકલ્પી સાધુ એક વચ્ચે ખાણ કરવાવાળાનું અને એક વચ્ચેથી બે વચ્ચે
ખાણ કરવાવાળાનું એ વચ્ચેથી ત્રણ વચ્ચે ખાણ કરવાવાળાનું તથા ચાતુર્માસિક
ક્ષપક ત્રિમાસિક ક્ષપકનું ત્રિમાસિક ક્ષપક બે માસિક ક્ષપકનું બે માસિક ક્ષપક
એક માસિક ક્ષપકનું એક માસિક ક્ષપક અર્ધમાસિક ક્ષપકનું અર્ધમાસિક
ક્ષપક એકાન્તર ક્ષપકનું અને એકાન્તર ક્ષપક એકલકલભાજીનો કહી પણ
તિરસ્કાર ન કરે-એ માસલેવા નથી; પરંતુ દુષ્કર તપ અને તંબની આરાધના
કરનામાં કાચર છે-ઇત્યાદિ રૂપથી એની અવહેલના ન કરે અને ન તે બનાવની
દૃષ્ટિથી જુએ. આ વિષયમાં વધુ શું કહેવું. છનકલ્પી સાધુઓ અને પદિમાધારી

કદાચિત્ સ્વકલ્પેન પડપિ માસાન્ ભિક્ષા ન લભતે ચેત્તથાઽપ્યસૌ સમભાવમાલમ્બ્ય વિભાવયતિ-સર્વે ચૈતે સ્વસ્વકર્મક્ષપણાર્થં યથાવિધિપ્રવૃત્તાઃ ધૃતિસહનનવલસ્યામાદિકારણવશાદ્ વિસદ્દશકલ્પા જિનાજ્ઞાયામેવ વર્તન્ત ઇતિ। એતચ્ચ વાહુભ્યાં સમુદ્તરણવદસમ્ભવ નાસ્તિ, ચિરમન્યૈર્વહુભિસ્તીર્થદ્વરગણધરૈઃ સમારાધિતત્વાદિતિ દર્શયિતુમાહ-‘એવમ્’ ઇત્યાદિ। એવમ્=ઉક્તવિધિના તેષામ્=અચલેતયા તૃણસ્પર્શાદિ કમધિસહમાનાના મહાવીરાણા=કર્મવિદારણશૂરાણા ચિરરાત્ર=પ્રભૂતકાલં યાવજ્જીવમિત્યર્થઃ, તદેવ સ્પષ્ટીકરોતિ-પૂર્વાણિ વર્ષાણિ ચ રીયમાણાના=સયમમાર્ગે ગચ્છતા,

કયા કહા જાય? જિનકલ્પી હો, અથવા પડિમાધારી હો, કદાચિત્ વહ યદિ અપને કલ્પસે છહ માસ તક ભી ભિક્ષા નહીં પાતા હૈ તો ભી સમતા-ભાવકા અવલમ્બન કર વિચારતા હૈ કિ યે સમસ્ત મુનિજન શાસ્ત્રવિધિ કે અનુસાર અપને ૨ કર્મોંકે ક્ષપણ કરનેકે લિયે પ્રવૃત્ત હૈ, ધૈર્ય, સંહનન, વલકી સ્થિરતા આદિ કારણકે વશસે વિસદ્દશ કલ્પવાળે હોતે હુએ ભી જિન ભગવાનકી આજ્ઞામે હી પ્રવૃત્તિ કર રહે હૈ। યહ વાત હાથોંસે સમુદ્ર કો પાર કરને જૈસી અસંભવ નહીં હૈ। કયોં કિ યહ સમ્યક્ત્વરૂપ માર્ગ ચિરકાલ તક અનેક તીર્થદ્વરોં એવં ગણધરોંને પાલા હૈ। ઇસી વાતકો દિખલાનેકે લિયે સૂત્રકારને “એવ તેષાં મહાવીરાણાં ચિરરાત્ર પૂર્વાણિ વર્ષાણિ રીયમાણાનાં દ્રવિકાણાં પદ્ય અધ્યાસિતમ્” ઇસ સૂત્રાંશકો કહા હૈ। ઇસમેં વે યહ બતલાતે હૈ કિ તીર્થદ્વરાદિકોંને ભી ઉક્ત વિધિકે અનુસાર હી અચેલ અવસ્થામેં રહતે હુએ તૃણસ્પર્શાદિ પરીષહોંકો સહન કિયા હૈ, ઔર ઇસીસે વે કર્મરૂપી શત્રુઓંકે ક્ષય કરનેમેં શૂરવીર બને હૈ, તથા ઁનકે જીવનકા પૂર્વ ઔર વર્ષરૂપ સમય સયમમાર્ગકી આરાધના

સાધુઓ કહાય પોતાના કલ્પથી છ મહિના સુધી ભિક્ષા ન મેળવે તો પણ સમતાભાવનુ અવલમ્બન કરી વિચારે છે કે આ બધા મુનિજન શાસ્ત્રવિધિના અનુસાર પોતપોતાના કર્મોંના ક્ષપણ કરવા માટે પ્રવૃત્ત છે ધૈર્ય, સંહનન, બળની સ્થિરતા આદિ કારણના વશથી વિભિન્ન કલ્પવાળા હોવા છતાં જીન ભગવાનની આજ્ઞામા જ પ્રવૃત્તિ કરે છે આ વાત હાથથી સમુદ્રને પાર કરવા જેવી અસંભવ નથી, કેમ કે સમ્યક્ત્વરૂપ માર્ગ ચિરકાળ સુધી અનેક તીર્થકરો અને ગણધરોએ પાળેલ છે આ વાતને પ્રદર્શિત કરવા માટે સૂત્રકાર “એવ તેષાં મહાવીરાણાં” ઇત્યાદિ સૂત્રાંશને કહેલ છે આમા તેઓ એ બતાવે છે કે તીર્થકર આદિએ પણ ઉક્તવિધિ અનુસાર જ અચેલ અવસ્થામા રહેતા તૃણસ્પર્શાદિ પરીષદને સહન કરેલ છે, અને એથી તેઓ કર્મરૂપી શત્રુઓનો ક્ષય કરવામા શૂરવીર બન્યા છે તથા એમનાં જીવનના પૂર્વ અને વર્ષરૂપ સમય સયમમાર્ગની આરાધના કરવામા જ વ્યતીત થયેલ છે અહિં પૂર્વનુ પ્રમાણ

તપ પૂર્વે નર્પાનાં સમુત્તિઃ કોટિસલાઃ પટ્ટપચ્ચાન્ન કોટિસહસ્રામિ, તપ ઋપમદેવાદા
રમ્ય શીતસ્નાયં દક્ષમતીર્યદ્ધરં યાન્તુ પૂર્વસંસ્થાયાઃ સન્નાતાત્ પૂર્વાર્ણીસ્યુચ્ચ, તતઃ
મેયાંસાદારમ્ય વર્ણસંસ્થાપદ્ધત્તેર્વર્ણીસ્યુક્તમિતિ । તથા દ્રવિક્ષનામ્=આત્માર્થિનામ્
અપ્યાસિતમ્=અધિસોદયેતત્-ઇતિ હે શિષ્ય ! પદ્ય=અવધારય । મહુર્મિર્મહાપુરુષૈઃ
પૂર્વે દ્વાર્ષિક્ષતિયરીપહસનં કુવં, તસ્માન્મોક્ષાર્થિમિસ્તુજસ્પદ્મોદયઃ પરીપદાઃ સમ્યક્
સોદય્યા ઇતિ મામ ॥ સુ. ૪ ॥

કરનેમેં હી વ્યતીત કુમા હૈ । યહાં પર પૂર્વકા પ્રમાણ મીકાકાર હસ પ્રકા
રસે પ્તલાતે હિ-૮૪૦૦૦૦૦ લાખ વર્ષકા એક પૂર્વાજ્ઞ હોતા હૈ ઓર
૮૪૦૦૦૦૦ લાખ પૂર્વાજ્ઞકા એક પૂર્વ હોતા હૈ । એક પૂર્વમેં ૭૦ લાખ
કરોડ ઓર ૫૬ હજાર કરોડ વર્ષ હોતે હૈ । ઋપમદ્વચસે હેકર શીતલનાથ
જો વશમેં તીર્થકુર હૈ વન તક સંયમકા કાલ તો પૂર્વ તક્કા રહા હૈ ।
વસકે વાલકે તીર્થકુર મેયાંસનાથસે હેકર મહાવીર પર્યન્ત તીર્થકુરોકા
સંયમ સમય પૂર્વકે પ્રમાણમેં ન રહ કર વર્ષોકે પ્રમાણમેં આ જાતા
હૈ; હસલિયે “વર્ણાગિ” એસા સૂત્રકારને કહા હૈ । દ્રવિક-આત્માર્થિયોકા
જીવનકાલ ખી હસી પ્રકારસે સંયમમાર્ગમેં વ્યતીત કુમા હૈ, હે શિષ્ય !
તુમ અપને ચિત્તમેં એસી શ્રદ્ધા રસો । નાવાર્થ—પૂર્વમેં અનેક મહાપુરુ
ષને ૨૨ પરીપદોંકો સહન કિયા હૈ; અતઃ મોક્ષામિલાપી તુણસ્પર્ણા
વિક પરીપદોંકો અચ્છી તરહસે સહન કરે ॥ સુ. ૪ ॥

ટીકાકાર આ પ્રકારે બતાવે છે-૮૪ લાખ વર્ષનું એક પૂર્વાજ્ઞ વાચ છે અને ૮૪
લાખ પૂર્વાજ્ઞનું એક પૂર્વ વાચ છે એક પૂર્વમાં સંતેર લાખ કરોડ અને
૭૫૫૫ હજાર કરોડ (૭ ૫૬ ૦૦ ૦૦) વપ હોય છે. ઋપમદેવથી હાથ
શીતલનાથ જે હજાર તીર્થકર છે એમના મુખી સમયનો કાળ તો પૂર્વ તકનો
રહો છે. એમના પાંચ તીર્થકર મેયાંસનાથથી હાથને મહાવીર પર્યન્ત તીર્થકરોના
સંયમસમય પૂર્વના પ્રમાણમાં ન રહેતો વર્ણના પ્રમાણમાં આવી ગયેલ છે આ માટે
“વર્ણાગિ” જેવું સૂત્રકારે કહેલ છે. દ્રવિક-આત્માર્થિઓનો જીવનકાળ પણ આ
પ્રકારના સંયમમાર્ગમાં વ્યતીત થયેલ છે હે શિષ્ય ! તમે તમારા ચિત્તમાં
એવી શ્રદ્ધા રાખો.

નાવાર્થ—પૂર્વમાં અનેક મહાપુરુષોને ૨૨ પરીપદોંકો સહન કર્યા છે. આ
માટે જે મોક્ષના અભિલાષી છે જેનું હર્ત્વ્ય છે કે તેઓ તુણસ્પર્ણાદિક પદો
પહેને સારી રીતે સહન કરે. (સુ. ૪)

પરીપદાદિસહનશીલાનાં શરીરસ્થ માંસરુધિરં મતનુકું—શુષ્કં સત્ સ્વત્પતરં મયતિ ।
આહારસ્વાદવ્યાહારત્વાત્ પરીપદાદિસહનાન્ન અત્યવસ્થતયા ઘૃણસ્પર્શશીતસ્પર્શાં
દેભિઃ શરીરસ્ય રસશોષણાન્ન મોક્ષાર્થિનાં માંસશોણિતં શુષ્કં મયતીતિ માત્ર ।

તથા—પરિશ્રયા=સમમાષનયા જિનકલ્પીઃ સ્થિરિકલ્પીકો વા ચિકુષ્ટાચિકુ-
ટતપમ્ભસ્પશીભઃ પ્રત્યહમોમો વા સર્વેઽપ્યતે મગધદાદ્યાવર્ષિન પથ-ઇત્યંબંરૂપયા
વેભેર્મિ કૃત્વા=રાગદ્વેષકપાયસતતિક્રૂપાં સસારાવતારભિકા સંસારભેર્મિ સમત્વમાવ-
યા ધ્યાન્ત્યાદિમિથ શ્રોટિતાં કૃત્વા વર્તેત ઇત્યર્થઃ । ૫૫=ઉક્તસખના સાધુઃ,

મુનિ હોતી કુર્ષ શારીરિક પીડાકી તરફ લક્ષ્ય નહીં વેતે હૈં । પરીપદ આદિ
કો શાંતિમાયસે સહનેવાલે સાધુએકે શરીરકા માસ ઓર રુધિર
શુષ્ક હો જાતા હૈં—બે શરીરસે વુચલે પતલે હો જાતે હૈં—રુધિર ઓર માસ
વનકે શરીરમેં વધુત કમ રહ જાતા હૈં । કારણ કિ અન્તગ્રાન્ત ઓરઅસ્પ
આહારસે, પરીપદ આદિકે સહનેસે ઓર યોગે વસ્તુ રસનેકે કારણસે
ઘૃણસ્પર્શાદિકોંક દ્વારા હોનેવાલી અનેક પરીપદોંસે વનકે શરીરકા
માંસ ઓર શોણિત સૂસ જાતા હૈં ।

સમમાષનાસે યુક્ત જિનકલ્પી હો યા સ્થિરિકલ્પી હો, ચિકુષ્ટ
(કઠિન) તપ તપનેવાલા હો, યા અચિકુષ્ટ (સાધારણ) તપ તપનેવાલા
હો, યા પ્રતિદિન આહાર કરનેવાલા હો, યે સય મગધાનકી આજ્ઞાનુસાર
હી ચલનેવાલે હૈં । ઇસ રૂપસે જો રાગ, દ્વેષ ઓર કપાયકી પરપરારૂપ
સંસારભેળીકો સમમાષસે ૫૫ ધ્યાન્ત્યાદિ ધર્મકે આરાધનસે તોફ વેતે

એ સદાયક ૪ છે આ પ્રકારે મળી એ મહામુનિ પોતાને થતી શારીરિક
પીડાની તથા લજ આપવા નથી, પરિવ્રજ આદિને શાન્તિપૂર્વક સહન કરવાવાળા
સાધુઓના શરીરનું માંસ અને લોહી સુકાઈ જાય છે અને શરીરથી તેઓ દુબળા
પડતા બની જાય છે. લોહી અને માસ એમના શરીરમાં નામમાત્રનાં રહે છે
કરણ કે અન્તગ્રાન્ત અને અન્ત આહારથી પરિવ્રજ આદિના સહેવાથી અને લોહા
વત્ત રામવાના કરણથી, તુલ્યસ્પર્શાદિકદ્વારા બનતા અનેક પરિવ્રજોથી તેના
શરીરનું માંસ અને લોહી સુકાઈ જાય છે

સમમાષનાથી યુક્ત જિનકલ્પી હોય અથવા તો સ્થિરિકલ્પી હોય; ચિકુષ્ટ-
કઠિન તપ તપવાળા હોય, અથવા-અચિકુષ્ટ-સાધારણ તપ તપવાળા હોય,
અથવા પ્રતિદિન આહાર કરવાવાળા હોય, કેઈ પણ સાધુ હોય એ
બધા ભગવાનની આજ્ઞા અનુસાર જ ચાલવાવાળા છે અને આ રૂપથી જે
સમ, દ્વેષ અને કમલની પરપરોપ સંસારભેળીને સમમાષથી એટલે ધ્યાન્ત્યાદિ

તીર્ણઃ=મવાઙ્મે: પારગતઃ, મુક્તઃ=સર્વસંગરહિતઃ, વિરતઃ=સર્વસાવધવ્યાપારરહિત વ્યાખ્યાતઃ=તીર્થઙ્કરૈઃ કથિતઃ । ઇતિ વ્રવીમિ, ભગવતા યયોપદિષ્ટ તથેદ કથયામીત્યર્થઃ ॥ સૂ૦ ૫ ॥

સસારશ્રેણિ સત્રોદય વર્તમાનમરતિરભિભવતીત્યાહ-‘વિરચ’ ઇત્યાદિ ।

મૂલ્મ-વિરચં ભિક્ષું રીયંતં ચિરરાઓસિયં અરઈ તત્થ કિં વિધારણ? ॥ સૂ૦ ૬ ॥

છાયા-વિરત મિશ્રુ રીયમાણ ચિરરાત્રોપિતમ્ અરતિસ્તત્ર કિં વિધારયેત્ ॥ મૂ૦ ૬ ॥

ટીકા—વિરતમ્=અસયમતો નિવૃત્ત રીયમાણમ્=ઉત્તરોત્તરપ્રવર્ધમાનશુભા-ધ્યવસાયોપુ પ્રવર્તમાન ચિરરાત્રોપિતં=પ્રભૂતકાલ સંયમાવસિયતં મિશ્રુ=નિરવધભિ-ક્ષાજીવિન મુનિમ્ અરતિઃ=સયમોદ્વેગઃ તત્ર=સયમે કિં વિધારયેત્=કિં પ્રતિસ્વલયેત્?!

હૈ, વહીં પૂર્વોક્તિલક્ષણસંપન્ન સાધુ સસારસમુદ્રસે પાર હો જાતે હૈં ઓર સર્વસંગસે રહિત હો સર્વસાવધવ્યાપારરહિત હો જાતે હૈં-એસા તીર્થઙ્કર પ્રમુકા કહના હૈં “ઇતિ વ્રવીમિ” યહ કથન મેરા નહીં હૈં, કિન્તુ પ્રમુકા હૈં । હે જમ્બૂ ! ઉન્હોને જૈસા કહા હૈં વૈસા હીં મૈં કહતા હૂં ॥ સૂ૦ ૬ ॥

સંસારપરમ્પરાકો ઉચ્છેદ કરકે રહે હુએ સાધુકો અરતિભાવ કદા-ચિત્ પરાસ્ત કર સકતા હૈં ! ઇસે પ્રકટ કરનેકે લિયે સૂત્રકાર કહતે હૈં “વિરચ” ઇત્યાદિ—

અસયમ ભાવસે દૂર રહનેવાલે, ઓર ઉત્તરોત્તર વઢતે હુએ શુભ અધ્યવસાયોમેં પ્રવૃત્તિ કરનેવાલે, તથા વહુત કાલ તક સંયમકી આરા-ધના કરતે ૨ ઉસીમેં અપને જીવનકે સમયકો વ્યતીત કરનેવાલે એસે નિરવધ મિક્ષાજીવી મુનિકો સંયમમેં ઉદ્વેગરૂપ અરતિભાવ ઉસસે સ્વ-

ધર્મના આરાધનથી તોડી દે છે, એવા પૂર્વોક્તલક્ષણસંપન્ન સાધુ સસારસમુદ્રથી પાર થઈ જાય છે, અને સર્વસંગથી રહિત બની સર્વસાવધવ્યાપારરહિત બની જાય છે, એવું તીર્થંકર પ્રભુનું કહેવું છે “ઇતિ વ્રવીમિ” —આ કથન માફ નથી, પરંતુ પ્રભુનું છે હે જમ્બૂ ! એમણે જેમ કહ્યું છે તેવી જ રીતે હું કહું છું (સૂ૦ ૫) સસારપર પરાનો ઉચ્છેદ કરીને રહેલા સાધુઓને અરતિભાવ કદાચ પરાસ્ત કરી શકે છે ! આને પ્રગટ કરવા માટે સૂત્રકાર કહે છે “વિરચ” ઇત્યાદિ

અસયમભાવથી દૂર રહેવાવાળા અને ઉત્તરોત્તર વધતા જતા શુભ અધ્ય-વસાયોમા પ્રવૃત્તિ કરવાવાળા તથા ઘણા કાળ સુધી સયમની આરાધના કરતા કરતાં એમા જ પોતાના જીવનનો સમય વ્યતીત કરવાવાળા એવા નિરવધ મિક્ષાજીવી મુનિને સયમમા ઉદ્વેગરૂપ અરતિભાવ અટકાવી શકે ખરેકે ?

અથ કિં શબ્દઃ પ્રભોઃ; તથાશૂતમપિ મોક્ષમાગાર્થઃ કિમરતિવિષયસ્થાનં નીત્વા સ્ત-
સ્યત્?, સ્તસ્યપદિત્યુચ્યતે । શ્ચિદ્રિયાણિ દુર્વારાણિ અવિનયન્તિ ચ, મોક્ષશક્તિમા-
પિન્ત્યા, તથા-કર્મપરિણતિરપિ વિનિષ્ઠા, તર્હિ કિં ન કુપ્યાત્?, અપિ તુ સર્વં
કુર્વાદિતિ માત્ર ।

યદ્વા-કિં શબ્દાઽપ્ર ક્ષપાર્યે । અરતિસ્તથાશૂતં માક્ષમાગાર્થસ્થિતં વિષાયત્-
પતિસ્તન્મમ્ કિં?, નૈવ વિષાયદિત્યર્થ ॥ મૂ० ૬ ॥

કિં—‘સંધેમાણે’ ઇત્યાદિ ।

મૂલ્કમ્—સંધેમાણે સમુદ્દિષ્ટ, જહા સે દીધે અસદીણે । મૂ० ૭।

છાયા—સંધવાના સમુસ્થિતઃ; યથા સ દ્રીપઃ અસંદીન ॥ મૂ० ૭ ॥

લિત કર સકતા છે ક્યા ? યહાં “કિ” યહ શબ્દ પ્રભવાચક છે ।

ઉત્તર—હાં! જેસે શ્રી ઉસ મોક્ષમાર્ગ મેં આસ્થા બ્રુન મુનિકો અરતિ-
નાય વિષયોંકી ઓરછે જાકર સ્થસ્થિત કર સકતા છે । પર્યોં કિ
શ્ચિદ્રિયાં દુર્નિષાર છે, મોક્ષકી શક્તિ અપિન્ત્ય છે તથા કર્મકી પરિણતિ શ્રી
વિનિષ્ઠ છે । જનકી પ્રયત્નતા ક્યા નહીં કર સકતી? સય કુછ કર
સકતી છે ।

અથવા—“કિ” શબ્દ યહા ક્ષેપ અર્થમેં છે; ઇસકા મતલબ છે કિ
યદિ કોઈ હમસ યહ પૂછ કિ ક્યા જેસે મોક્ષમાર્ગમેં સ્થિત માયુકો
શ્રી અરતિનાય સંયમમાર્ગસે ચ્યુત કર સકતા છે? તો હમ યહ ઉત્તર લગે
કિ નહીં કર સકતા છે । મૂ० ૩।

તથા—“સંધેમાણે” ઇત્યાદિ—

અર્થ “કિ” આ શબ્દ પ્રભવાચક છે

ઉત્તર—હા, જોવા મોક્ષમાર્ગમાં આજેક વધેલા મુનિને પણ અરતિનાય
વિષયોની વચ્ચે લઈ બંધ સ્થસ્થિત કરી શકે છે; કેમ કે શ્ચિદ્રિયાની અનેકલિપ
મોક્ષવાળી શક્તિ અપિન્ત્ય છે તથા કર્મની પ્રવિણતિ પણ વિનિષ્ઠ છે જોની
પ્રયત્નતા શુ નથી કરી શકતી? બધું કરી શકે છે.

અથવા—“કિ” શબ્દ અર્થ ક્ષેપ અર્થમાં છે અનેક મતલબ જો છે કે
જહામ કેમ જોમ પડે કે શુ આવા મોક્ષમાર્ગમાં સ્થિત આયુને પણ અર-
તિનાય સંયમ માર્ગથી ચ્યુત કરી શકે છે? તો જોના આ ઉત્તર છે કે કરી
શકેતા નથી. (સ ૬)

== સંધમાણે ઇત્યાદિ—

ટીકા—યતઃ સ સંદધાનઃ=ઉત્તરોત્તરમધિકાધિકપ્રગમ્તપરિણામધારા ગુણ-
સ્થાનકં વા આરોઢન્ સમુત્થિતઃ=સમ્યગુત્થિતઃ યથાઽઽત્યાતચારિત્રાભિમુગ્ધઃ ઉત્તરોત્તર
-પ્રગસ્તભાસમારૂઢો વર્તતે । તમરતિઃ કથ સ્વલેયિદિતિ માવઃ । યથા દ્વીપઃ=
દ્વિર્ગતા આપોઽસ્મિન્નિતિ દ્વીપઃ—ઉભયતઃ પાનીય યત્ર તિષ્ઠતિ સા સ્થલભૂમિર્દ્વીપઃ,
અસદીનઃ=જલોપપ્ત્યાવનાદ્યુપમર્ગગદ્ધિતો ભવતિ, તથા સ=પૂર્વોક્તલક્ષણો મુનિરપિ
પરિપદ્મોપસર્ગપ્રતિવાયિતો ન ભવતીત્યર્થઃ । યદ્વા—અસદીનો દ્વીપો યથા યાત્રિભિરા-
શ્વસનીયો ભવતિ, તથા સ તથાવિધઃ સામુરિતિ । સમુદ્રાદિકમુત્તરીતુમિચ્છન્તોઽમ-
દીન દ્વીપમાશ્વસન્તિ—વિશ્વસન્તિ, તથૈવ સસારસાગરં સમુત્તિર્તીર્પયોઽન્યે પ્રાણિનઃ ત
સામુ વિશ્વસન્તીત્યર્થઃ ॥ મૃ૦ ૭ ॥

જિસકી પ્રશસ્ત પરિણામધારા ઉત્તરોત્તર અધિકાધિકરૂપમે
વૃદ્ધિગત હો રહી છે, અથવા જો આગે ૨ કે ગુણસ્થાનો પર ચઢતા જા
રહ્યા છે, ઓર ઇસીસે જો યથાત્યાત ચારિત્રકે સન્મુગ્ધ જા રહ્યા છે, તેસે
મહામુનિકો અગ્નિભાવ કેસે અપને સ્થાનસે સ્વલિત કર સકતા છે ?
અર્થાત્ નહીં કર સકતા છે, દોનોં ઓર જિસકે જલ હોતા છે ઉસકા નામ
દ્વીપ છે । વહ દ્વીપ-સ્થલભૂમિ જિસ પ્રકાર જલમગ્ન હોને આદિકે ઉપ-
દ્રવસે સુરક્ષિત રહતા છે ઉસી પ્રકાર એસા મુનિ ભી પરીપદ્મ ઓર ઉપસર્ગ
સે વાધિત નહીં હોના છે ।

અથવા—જિસ પ્રકાર અસદીન (ઉપસર્ગરહિત) દ્વીપ યાત્રિયોંકે
લિયે આશ્વાસનકા સ્થાન હોતા છે ઉસી પ્રકાર વે મહામુનિ ભી ભવ્યોંકે
લિયે આશ્વાસન (આધાર) રૂપ હેં । સમુદ્રાદિકકો પાર કરનેકી ભાવના-
વાલે મનુષ્ય અસદીન દ્વીપમેં વિશ્વાસ રાખતે હેં, ઉસી પ્રકાર સસારરૂપી

હેની પ્રશસ્ત પરિણામધારા ઉત્તરોત્તર અધિકાધિકરૂપમા વૃદ્ધિગત થઈ
રહી છે, અથવા જે ગુણસ્થાનો પર આગળ આગળ ચઢતા જતા હોય છે, અને
આથી જે યથાત્યાત ચારિત્રની સન્મુગ્ધ જઈ ગ્હેલ છે એવા મહામુનિને અરતિભાવ
કયાથી પોતાના સ્થાનથી સ્ખલિત કરી શકે ? અર્થાત્ કરી શકતા નથી અને બાબુ
જેને જળ છે એવું નામ દ્વીપ છે, એ દ્વીપ-સ્થળભૂમિ જે રીતે પૂર આદિના ઉપદ્રવથી
સુરક્ષિત રહે છે એ રીતે એવા મુનિ પણ પારપદ્મ અને ઉપસર્ગથી બાધિત હોતા નથી
જેમકે ઉપસર્ગ રહિત દ્વીપ યાત્રિયોને માટે આશ્વાસનનું સ્થાન હોય છે, તેવી જ
રીતે મહામુનિ પણ ભવ્ય છવોને માટે આધારરૂપ છે સમુદ્રાદિકને પાર કરવાની
ભાવનાવાળા મનુષ્ય ઉપસર્ગરહિત દ્વીપમા વિશ્વાસ રાખે છે, એવી રીતે સસારરૂપી
સમુદ્રથી પાર થવાની ભાવનાવાળા ભવ્ય પણ એવા મુનિનો વિશ્વાસ કરે છે

मूकम्—एव से धम्मे आरियपदेसिय ॥ सू० ८ ॥

छाया—एवं स धर्म आर्यप्रदक्षितः ॥ सू० ८ ॥

टीका—स प्रागुक्तः आर्यप्रदक्षितः=तीर्थङ्करमापितः धर्मः एवम्=ईदृशो द्वीप तुल्योऽस्तीत्यर्थः । भगवद्भाषितो धर्मः सख्यं जलसंदीपनीयं अस्या कुत-
केन च कदाचिदपि न बाध्यते इति भाष ॥ सू० ८ ॥

ननु तथाविधा भगवद्भाषितधर्मस्य समाराधका कथंभूता भवन्तीति शिष्य-
चिन्तासायामाह—‘ते अणवकंस्वमाणा’ इत्यादि ।

समुद्रसे पार होनेकी भावनाबाले भग्य भी उन मुनिका विश्वास करते हैं ।

भावार्थ—यथावयात चारित्रको ओर छे जानेवाली प्रशस्त परिणाम
धारा जिसके उत्तरोत्तर अधिकाधिक रूपमें बढ रही है ऐसे मुनिके लिये
एकतो परीपह उपसर्गादिक आते नहीं हैं, यदि कदाचित् भा भी जाते हैं
तो वे मुनि उनसे जलके प्लाव (उपद्रव)से असंदीन द्वीपकी तरह सदा
सुरक्षित रहते हैं और अन्य प्राणियोंके लिये आभारभूत होते हैं ॥सू०७॥

जिस प्रकार पूर्वाक्त स्वरूपबाला साधु अरति आदि बाधाओंसे
पाषित नहीं होते उसी प्रकार जिनेन्द्रप्रतिपादित वह धर्म भी अरति
या कुतकोंसे कभी भी पाषित या क्षणिकत नहीं होता है । यह धर्म भी
असंदीन द्वीपकी तरह ही है । यह जिस प्रकार जलप्लावसे निर्वाह रहता
है—उसी प्रकार धर्म भी कुतकोंसे या अरति आदि दुर्भावोंसे अबाध्य
रहता है ॥सू०८॥

भगवत्कथित धर्मके समाराधक जीव कैसे होते हैं? इस प्रकार
शिष्यकी जिज्ञासाका “ते अणवकंस्वमाणा” इत्यादि सूत्रसे सूत्रकार

भाषार्थ—यथावयात चारित्रिणी तश्च दोषवायाणी प्रशस्त परिष्ठाभभास नेने
उत्तरीत्तर अभि-अभि-इयमावधी रही छे केवा मुनिने भाटे के छे परिपह उप
सर्गादिक आवता नथी अने कदाच आनी नय तो पणु के मुनि केनाधी जणना
उपद्रवणी सुरक्षित द्वीपणी भाहक सदा सुरक्षित रहे छे अने अन्य प्राणिओ
भाटे आभारभूत रहे छे (सू ७)

के प्रकार पूर्वोक्तस्वरूपवाणा साधु अरति आदि बाधाओंसे पाषित
नथी बत्ता, केव प्रकार एनेन्द्रप्रतिपादित धर्म पणु अरति अने कुतकोंकी कही
पणु पाषित अने क्षणिक बत्ता नथी आ धर्म पणु सुरक्षित द्वीपणी भाहक छे
के केव जणना उपद्रवणी सुरक्षित रहे छे ते प्रकार धर्म पणु कुतकोंकी अने
अरति आदि दुर्भावोंकी सुरक्षित रहे छे (सू ८)

भगवत्कथित धर्मणि आराधक एव केवा कोय छे? आ प्रकारनी शिष्यनी

મૂલમ્—તે અળવકંઘમાણા પાળે અળઙ્વાણમાણા દૃઙ્યા
મેહાવિણો પંડિયા ॥ સૂ૦ ૧ ॥

છાયા—તે અનવકાઙ્ઘનતઃ પ્રાણાન્ અનતિપાતયન્તઃ દયિતાઃ મેઘાવિનઃ
પંડિતાઃ ॥ સૂ૦ ૧ ॥

ટીકા—યતરતે મુનયઃ અનવકાઙ્ઘનતઃ=વિષયભોગાનનભિવાઙ્ઘનતઃ તથા—
પ્રાણાન્=પ્રાણિનઃ, અનતિપાતયન્તઃ=અર્હિસન્તઃ, ઇદ શેપમહાવ્રતાનામુપલક્ષણમ્—તેન
શેપાણ્યપિ મહાવ્રતાનિ ધારયન્ત ઇત્યર્થઃ, તથા—દયિતાઃ=સફલપ્રાણિના શુભચિન્ત-
કત્વાત્ સર્વલોકપ્રિયા ઇત્યર્થઃ, તથા—મેઘાવિનઃ—સાધુમર્યાદાવ્યવસ્થિતાઃ, પંડિતા =
સર્વસાવધવ્યાપારપરિહારેણ હેયોપાદેયજ્ઞાનવન્તો ભવન્તીત્યર્થઃ ॥ સૂ૦ ૧ ॥

યે તુ હેયોપાદેયજ્ઞાનાભાવાદ્ભગવદ્ધર્મે સમુત્થિતા ન સન્તિ, તાન્ પ્રતિ યદાચા-
ર્યાદીનાં કર્તવ્યં તદાહ—‘ એવ તેસિં ’ ઇત્યાદિ ।

સમાધાન કરતે હૈં—

ભગવત્પ્રતિપાદિત ધર્મકે સમારાધક જીવ વિષયભોગોંકી વાઙ્ઘાસે
રહિત હોતે હૈં, પ્રાણિયોંકી હિંસા નહીં કરતે હૈં । ઉપલક્ષણસે અવશિષ્ટ
મહાવ્રતોંકે ધારક હોતે હૈં । સમસ્ત જગતકે કલ્યાણકે અભિલાષી હોને
સે વે જગત્પ્રિય હોતે હૈં । સાધુમર્યાદામે રહતે હૈં ઔર સમસ્ત સાવધ
વ્યાપારોંકે ત્યાગી હોનેસે હેય ઔર ઉપાદેયકે વિવેકસે વાસિત અન્તઃક-
રણવાલે હોતે હૈં ॥સૂ૦૧॥

જો હેય ઔર ઉપાદેયકે વિવેકકે અભાવસે ભગવત્પ્રતિપાદિત ધર્મ
મેં સમુત્થિત નહીં હૈં—ઉસમેં અનુત્સાહી હૈં, ઉનકે પ્રતિ આચાર્યોંકા ક્યા
કર્તવ્ય હોના ચાહિયે ? ઇસ વાતકો સૂત્રકાર “ એવ તેસિં ’ ઇત્યાદિ સૂત્ર-
દ્વારા પ્રકટ કરતે હૈં—

છાયાના “ તે અળવકંઘમાણા ” ઇત્યાદિ સૂત્રથી સૂત્રકાર સમાધાન કરે છે

ભગવત્-પ્રતિપાદિત ધર્મના આરાધક જીવ વિષયભોગોની વાછનાથી રહિત
હોય છે પ્રાણીઓની હિંસા કરતા નથી ઉપલક્ષણથી અવશિષ્ટ મહાવ્રતોનો
ધારક હોય છે સમસ્ત જગતના કલ્યાણના અભિલાષી હોવાથી એ જગતપ્રિય
હોય છે સાધુમર્યાદામાં રહે છે અને સમસ્ત સાવધ વ્યાપારોના ત્યાગી હોવાથી
હોય અને ઉપાદેયના વિવેકથી ભરપૂર અન્તઃકરણવાળા હોય છે (સૂ૦૯)

જે હેય અને ઉપાદેયના વિવેકના અભાવથી ભગવત્-પ્રતિપાદિત ધર્મમાં
સ્થિર નથી—ઉત્સાહી નથી, એમના તરફ આચાર્યોનું શુ કર્તવ્ય છે ? એ વાતને
સૂત્રકાર “ એવ તેસિં ” ઇત્યાદિ સૂત્રદ્વારા પ્રગટ કરે છે

मूळम्—एष तेसिं भगवतो अणुद्वारेण जहा से दियपोष। एवं ते सिस्सा दिया य राखो य अणुपुब्बेण वाइयत्तिवेमि॥सू०१०॥

छाया—एष तेषां भगवतोऽनुस्थाने यथा स द्विनपोषः । एष ते शिष्या दिवा च रात्रौ च अनुपूर्वेण वाचिताः, इति ब्रवीमि ॥ सू० १० ॥

टीका—भगवतः श्रीवर्षमानस्वामिनो धर्मे एष=पूर्वोक्तरीत्या तेषां=तथाभूत-
ज्ञानाभावन भगवद्दर्शसमाराधनानुत्साहपतां शिष्याभ्याम् अनुस्थाने=उत्तरोत्तरमधि-
कृत्वा प्रत्यक्षपरिणामपारानारोहणे सति आचार्यादिभिः सदुपदेशदानेन बुद्धिप्रेष-
य निवेद्यमित्यर्थः । अथ दृष्टान्तमाह—‘ यथा सः ’ इत्यादि,

यथा सः=प्रसिद्धः द्विनपातः=पक्षिपक्षः मातापितृभ्यामनुपान्यते, एष
ते शिष्या आचार्येण दिवा च रात्रौ च अनुपूर्वेण=क्रमेण वाचिताः=सामायिकद्वि-
न्येकादशकालानि च पाठिताः सकलपरीषदापसर्गसहिष्णवः संसारसागरोचरणसम-
र्था भवन्तीत्यर्थः । इति ब्रवीमि । अस्य व्याख्या प्राग्भवत् ॥ सू० १० ॥

॥ पठ्याध्ययनस्य तृतीयोद्देशः समाप्तः ॥ ६-३ ॥

‘भगवान् श्री वर्षमानस्वामीके धर्ममें इस प्रकार पूर्वोक्त रीतिसे यदि शिष्यजन हेयोपादेय ज्ञानसे विकल होनेके कारण, भगवान् द्वारा उपदिष्ट धर्मकी आराधना करनेमें अनुत्साही हों तो, आचार्योक्त कर्तव्य है कि वे उन्हें सदुपदेश प्रदान करें, जिससे उनकी बुद्धिमें बिधा दता आवे । दृष्टान्त—जैसे पक्षियुगल अपने बच्चोंको पालता है, उन्हें पालना-फिरना सिखलाता है वसी प्रकार वे शिष्य भी आचार्यद्वारा रात दिन क्रम २ से सामायिक आविके तथा ग्यारह अंगोंकी पाठी बनाये जाते हैं, ताकि वे सकल परीषद् और उपसर्गोंको जीतनेमें सहजशील बन संसारसागरसे पार होनेमें शक्तिसम्यक् बन सकें । “इति ब्रवीमि ” इन पदोंकी व्याख्या पहिले जैसी जाननी चाहिये ।

भगवान् श्री वर्षमान स्वामीना धर्म भां आ प्रकार पूर्वोक्त रीतिसे कथ्य
शिष्यजन-हेय उपदेयना ज्ञानभी विकल होवाना कारणे भगवान्द्वारा
उपदिष्ट-उपदेशके धर्मनी आराधना कस्वामां अनुत्साही होय तो आचार्यनु-
कर्तव्य छे छे तेजो तेने अह उपदेश प्रदान करे जेनाभी तेनी बुद्धिमां बिधा-
इता आवे । दृष्टान्त-जैसे पक्षिजोडु पालना जप्पानि पोरे छे तेने आलतां
इस्तां रीतिवाटे छे जेवी ज रीते ते शिष्य पक्ष आचार्य द्वारा सतदिवस क्रम क्रमभी
सामायिक आविना जने जज्जारे ११ अंगोना पाठी बनाववाभां आवे छे जेभी ते सकल
परिषद् अने उपसर्गो लतवाभां सहजशील जनी संसारसागरभी पार बवाभां
शक्तिसयस जनी शके “इति ब्रवीमि” आ पदोनी आख्या पहिला जेवी अलुवी.

મૂલમ્—તે અણવકંઠમાણા પાણે અણઙ્વાણમાણા દડયા મેહાવિણો પંડિયા ॥ સૂ૦ ૧ ॥

છાયા—તે અનવકાક્ષન્તઃ પ્રાણાન્ અનતિપાતયન્તઃ દયિતાઃ મેધાવિનઃ પંડિતાઃ ॥ સૂ૦ ૧ ॥

ટીકા—યતરતે મુનયઃ અનવકાક્ષન્તઃ=વિષયભોગાનનભિવાઙ્છન્તઃ તથા—પ્રાણાન્=પ્રાણિનઃ, અનતિપાતયન્તઃ=અહિંસન્તઃ, ઇદ શેષમહાવ્રતાનામુપલક્ષણમ્—તેન શેષાણ્યપિ મહાવ્રતાનિ ધારયન્ત ઇત્યર્થઃ, તથા—દયિતાઃ=સકલપ્રાણિના શુભચિન્ત-કત્વાત્ સર્વલોકપ્રિયા ઇત્યર્થઃ, તથા—મેધાવિનઃ—સાધુમર્યાદાવ્યવસ્થિતાઃ, પંડિતા = સર્વસાવધવ્યાપારપરિહારેણ હેયોપાદેયજ્ઞાનવન્તો ભવન્તીત્યર્થઃ ॥ સૂ૦ ૧ ॥

યે તુ હેયોપાદેયજ્ઞાનાભાવાદ્ભગવદ્ધર્મે સમુત્થિતા ન સન્તિ, તાન્ પ્રતિ યદાચાર્યાદીનાં કર્તવ્યં તદાહ—‘ એવં તેસિં ’ ઇત્યાદિ ।

સમાધાન કરતે હૈં—

ભગવત્પ્રતિપાદિત ધર્મકે સમારાધક જીવ વિષયભોગોંકી વાઙ્છાસે રહિત હોતે હૈં, પ્રાણિયોંકી હિંસા નહીં કરતે હૈં । ઉપલક્ષણસે અવશિષ્ટ મહાવ્રતોંકે ધારક હોતે હૈં । સમસ્ત જગતકે કલ્યાણકે અભિલાષી હોને સે વે જગત્પ્રિય હોતે હૈં । સાધુમર્યાદામૈં રહતે હૈં ઔર સમસ્ત સાવધ વ્યાપારોંકે ત્યાગી હોનેસે હેય ઔર ઉપાદેયકે વિવેકસે વાસિત અન્તઃકરણવાલે હોતે હૈં ॥સૂ૦૧॥

જો હેય ઔર ઉપાદેયકે વિવેકકે અભાવસે ભગવત્પ્રતિપાદિત ધર્મ મૈં સમુત્થિત નહીં હૈં—ઉસમૈં અનુત્સાહી હૈં, ઉનકે પ્રતિ આચાર્યોંકા ક્યા કર્તવ્ય હોના ચાહિયે ? ઇસ બાતકો સૂત્રકાર “ એવં તેસિં ” ઇત્યાદિ સૂત્ર-દ્વારા પ્રકટ કરતે હૈં—

જીજ્ઞાસાનુ “ તે અણવકંઠમાણા ” ઇત્યાદિ સૂત્રથી સૂત્રકાર સમાધાન કરે છે

ભગવત્-પ્રતિપાદિત ધર્મના આરાધક જીવ વિષયભોગોની વાછનાથી રહિત હોય છે પ્રાણીઓની હિંસા કરતા નથી ઉપલક્ષણથી અવશિષ્ટ મહાવ્રતોનો ધારક હોય છે સમસ્ત જગતના કલ્યાણના અભિલાષી હોવાથી એ જગતપ્રિય હોય છે સાધુમર્યાદામાં રહે છે અને સમસ્ત સાવધ વ્યાપારોના ત્યાગી હોવાથી હેય અને ઉપાદેયના વિવેકથી ભરપૂર અન્તઃકરણવાળા હોય છે (સૂ૦૯)

જે હેય અને ઉપાદેયના વિવેકના અભાવથી ભગવત્-પ્રતિપાદિત ધર્મમાં સ્થિર નથી—ઉત્સાહી નથી, એમના તરફ આચાર્યોનું શુ કર્તવ્ય છે ? એ વાતને સૂત્રકાર “ એવં તેસિં ” ઇત્યાદિ સૂત્રદ્વારા પ્રગટ કરે છે

॥ अथ पष्ठाध्ययनस्य चतुर्थ उद्देशः ॥

इहानन्तरतृतीयोद्देशके उपकरणशरीरममत्वपूजनं प्रतिबोधितम् । तच्च गौरव प्रयत्नः सम्पूर्णतया न भवत्यतस्तत्पूजनार्थं चतुर्थोद्देशं कथयन्माघं सूत्रमाह—‘एवं ते सिस्सा’ इत्यादि ।

मूळम्—एवं ते सिस्सा दिवा य रात्रौ च अणुपुष्पेण वा इया तेहिं महावीरेहिं पण्णाणमतेहिं, तेसिंतिष् पण्णाणमुवल्ल भ्न हिच्छा उवत्तम फारुसिय समाइयति ॥ सू० १ ॥

छाया—एवं ते क्षिप्वा दिवा च रात्रौ च अनुपूर्वेण वाचिताः तैर्यहावीरे प्रधानवह्निः, तेषामन्तिकं प्रधानमुपसृज्य हित्वा उपस्रम पाक्षिकं समाददति ॥ १ ॥

टीका—एवं=पक्षिपाक्षस्तुवर्धनक्रमेण ते क्षिप्वाः दिवा रात्रौ च अनुपूर्वेण=क्रमेण यथा त्रिवर्षपर्याय आचाराद्वादि अद्याप्यते, क्तान्तरे केचनसमुद्भवे सति तत्

॥ छद्वा अध्ययनका चोधा उद्देशः ॥

इस अध्ययनके तृतीय उद्देशमें साधुको उपकरण और शरीरमें ममत्व नहीं रखना चाहिये, यह बात समझा दी गई है । इनमें ममत्व का त्याग, जो तीन गौरवोंसे युक्त है उसके संपूर्ण रीतिसे नहीं होता है । इसलिये उन गौरवोंके त्याग करनेके लिये इस चतुर्थ उद्देशको प्रारम्भ करते हुए सूत्रकार कहते हैं—“एवं ते सिस्सा” इत्यादि ।

जिस प्रकार पक्षी अपने पंखोंका क्रमशः संवर्धन करते हैं, उसी प्रकार सम्यग्ज्ञानी तीर्थङ्कर और गणधरादिकोंके द्वारा श्री आचाराद्वादि

छद्वा अध्ययनको चौथो उद्देश.

आ अध्ययनका तीसरा उद्देशमां साधुको उपकरण वरु ममत्व साधुनु न लेखके आ बात समव्यवहारमां आवीछि. आ ममत्वको त्याग, के त्रय औस्वभी भरपूर छि तेनाभी सारी रीते बर्छ शकतो नबी. भटे ते त्रय औस्वको त्याग कराववा भटे आ चतुर्थ उद्देशको प्रारम्भ करता सूत्रकार छे छे—“एवं ते सिस्सा” इत्यादि.

के प्रकार पक्षी पोताना अध्ययने पाणी पोषीने भोटु करे छि के रीते सम्यग्ज्ञानी तीर्थङ्कर जने जगुधर ज्योति दास पण्ड आचार्यज सूत्र इत्यादि पाठनक्रमशी शिक्षणन दिनरात प्रदण्डशिक्षा जने आधेवनशिक्षा अद जन्ने

भगवान्‌के द्वारा कथित धर्ममें जो शिष्यजन मन्दपरिणामी हों-
उत्साहशील न हों तो, आचार्यका कर्तव्य है कि वह उनका तिरस्कार न
कर उन्हें उस धर्मकी आराधना करनेमें चतुर बनावे-उन्हें शास्त्रोंका
अभ्यास करावे। जैसे पक्षी अपने बच्चोंकी संभाल रखते हैं उसी प्रकार
आचार्य भी उनकी हरएक प्रकारसे संभाल रखते हुए हेय और उपा-
देयके विवेकसे वासित मतिवाला करनेकी चेष्टा करते रहें; ताकि वे
परीषद्‌ और उपसर्गोंके सहनमें अधीर न बन कर सहनशील बनें, और
इस संसार समुद्रसे पार हो सकें ॥सू० १०॥

॥ छद्वा अध्ययन का तीसरा उद्देश समाप्त ॥ ६-३ ॥



भगवान्‌द्वारा कहेवायेला धर्मभा जे शिष्यजन मन्दपरिणामी होय-
उत्साहशील न होय तो, आचार्यनु कर्तव्य छे के तेनो तिरस्कार न करता तेने
आ धर्मनी आराधना करवाभा चतुर बनावे-तेने शास्त्रोने अभ्यास करावे जेभ
-पक्षी पोताना अभ्याओनी सभाण राखे छे ते प्रकारे आचार्य पणु तेनी दरेक
प्रकारधी सभाण राखीने होय अने उपादेयना विवेकधी भरपूर मतिवाणा करवानी
चेष्टा करता रहे, जेथी ते परिषद्‌ अने उपसर्गो सहन करवाभा अधीश न अने
सहनशील अने, अने आ संसार समुद्रधी पार थछ शके (सू० १०)

छद्वा अध्ययननो त्रीजे उद्देश समाप्त ॥ ६-३ ॥



દતિન્નુદ્ધાન્તિ, યથા-જ્ઞાનસ્થં પ્રાપ્ય, સન્મદાન્વાઃ પરસ્પર શાષનાપ્રચ્છનાદિપુ
શ્વદન્તિ, 'મન્તા યન્નિગદ્યતે નૈતત્ સમીચીનં, અસ્ય શ્વદસ્ય નાયમર્થઃ, યથા મયો-
પ્યતે સપ્ત સિદ્ધાન્તઃ, શ્વદાર્યનિર્ણયાય કમિદેવાસ્તિ માદદઃ' इत्यादिरूपं
વચનપારુપ્ય સ્વીકૃયન્તિ ॥ સૂ. ૧ ॥

વિષય—'વસિષ્ઠા' इत्यादि ।

મુદ્ધમ—વસિષ્ઠા યંભચેરસિ આણ ત નોત્તિ મદ્ધમાણા ॥ સૂ. ૨ ॥

છાયા—અપિત્વા પ્રજ્ઞાચર્યે આઘાં તાં નો इति મન્યમાનાઃ ॥ સૂ. ૨ ॥

ટીકા—અર્થક મુ શિષ્યાઃ પ્રજ્ઞાચર્યે=સંપન્ને આશારાવં મુ ઉપિત્વા=સ્થિત્વા તા
માઘાં તીર્યકુરોપદશસ્થાં નો इति મન્યમાનાઃ=દશતસ્તીર્યકુરુપદેશં નાદિયમાણા-
સાતાગૌરવમર્કયેમાઃ શાતકુલાદિષ્વન્તપ્રાન્તારાપ્રાપ્તિશ્ચક્રુવા હરીરભિપૂવાદિના વા
રિષ્માસિન્યસહ્યમં શાકુલિક્ત્વં પ્રપદ્યન્ત इति માત્ર ॥ સૂ. ૨ ॥

કરને લગા જાતે હૈં । બે પક્ષવચ્ચાદિપાષ્ણિત્વઘાટે શિષ્યજન ગર્ભોન્મત્સ
વન-અહંકારસે ફૂલ કર સૂચોક્તી શાષના પર્થ પ્રચ્છના આદિકે સમય
પર કહ વિધા કરતે હૈં કિ "આપ જો કુછ કહ રહે હૈં વહ ઠીક નહીં
હૈં, હસ શબ્દકા યહ અર્થ નહીં હૈં " "જો કુછ મેં કહતા હું વહી યથાર્થ
હૈં-વહી સુન્દર સિદ્ધાન્ત હૈં, શબ્દ ઓર અર્થકા નિર્ણય મેરા જૈંસા કોઈ
કર સક્તા હૈં ! કોઈ નહીં " इत्यादि रूपसे अभिमानयुक्त वचन
बोलते हैं ॥ સૂ. ૧ ॥

તથા—"વસિષ્ઠા" इत्यादि ।

કોઈ એક શિષ્યજન પ્રજ્ઞાચર્યકા પાલન કરકે તીર્યકુર ઉપવિષ્ઠ આશ્વા
કા આદર નહીં કરતે હૈં । એકવેશસે જી તીર્યકુરકે ઉપવેશકો બે નહીં
માનતે હૈં । સાતાગૌરવકે પ્રકર્ષસે "કયાચિન્ અજ્ઞાતકુલાદિકર્મો મેં હમેં
અન્તપ્રાન્ત આહાર મિલે ?" इत प्रकारकी शक्तासे वे शारीरिक बेष

કોર અવહાર કરવા લાગે છે. તેવા પક્ષવચ્ચાદિપાષ્ણિત્વઘાટા શિષ્યજન ગર્ભો
મત્સ બની બહુકારથી કુલાઈ અર્થ સૂચોક્તી શાષના અથવા પ્રચ્છના આદિના સમયે
એવું કહી રહે છે. આપ બે કાંઈ કહેા છે. જો ઠીક નહીં, ત્યા શબ્દનો
મા અર્થ નહીં. "હું બે કાંઈ કહું છું તે બરોબર છે. જો જ મુદ્ધર સિદ્ધાન્ત
છે શબ્દ અને અર્થના નિર્ણય માત્ર બેવેા કાંઈ કરી શકે છે ! કોઈ નહીં"
इत्यादि रूपથી अभिमानयुक्त वचन बोलते हैं. (सू. १)

તથા "વસિષ્ઠા" इत्यादि ।

કોઈ એક શિષ્યજન પ્રજ્ઞાચર્યનું પાલન કરી તીર્યકુર ઉપવેશને આશ્વાને
આદર ન કરે, એકવેશથી પણ તીર્યકુરના ઉપવેશને એ ન માને, સાતાગૌરવના

પૂર્વમપ્યધ્યાપ્યતે, -ઇત્યાદિક્રમેણ પ્રજ્ઞાનવદ્ધિઃ=સમ્યગ્જ્ઞાનવદ્ધિઃ તેર્મહાવીરૈઃ તીર્થઙ્ક-
રગણધરાદિભિઃ વાચિતાઃ=ગ્રહણાસેવનાશિક્ષાદ્વયેન શિક્ષિતાઃ, સૂત્રાર્થતદુભયાધ્યાપન-
રૂપા ગ્રહણશિક્ષા સાધુસામાચારીપાલનરૂપામાસેવનશિક્ષા ચ ગ્રાહિતાઃ । તત્ર કેચન
શિષ્યાઃ, તેષામ્ આચાર્યાદીનાં તીર્થઙ્કરાદીનામ્ અન્તિકે=સમીપે પ્રજ્ઞાન=પ્રકૃષ્ટ જ્ઞાન
શ્રુતજ્ઞાનમ્ ઉપલભ્ય=સંપ્રાપ્ય જ્ઞાનગર્વાન્થાઃ સન્તઃ ઉપશમ શાન્તિભાવં હિત્વા=પ્રવલ-
મોહોદયાપનીતસદુપદેશસજ્ઞાતોત્કટમદત્વેન ત્યક્ત્વા પારુષિક=પારુષ્યં સમાદ-

સૂત્ર પાઠનક્રમસે શિષ્યજન દિન-રાત નિરન્તર ગ્રહણશિક્ષા ઓર આ-
સેવનશિક્ષા ઇન દોનો શિક્ષાઓસે શિક્ષિત કિયે જાતે હૈ । શિષ્યકી
દીક્ષાપર્યાય જબ ત્રીન વર્ષકી હો જાય તો ઉસે આચારાન્ગ આદિ સૂત્રોંકા
ક્રમસે અધ્યયન કરાના ચાહિયે, તથા યદિ કક્ષા (કાંચ)મેં વાલ ઝગ
આવેં તો ઇસકે પહિલે ખી ઉસે આચારાન્ગ આદિકા અધ્યયન કરાયા જા
સકતા હૈ । ક્રમ ૨ સે સૂત્ર અર્થ ઓર સાય ૨ સૂત્ર અર્થકા અધ્યયન
શિષ્યકો કરાના ઇસકા નામ ગ્રહણશિક્ષા હૈ । સાધુ સમાચારીકે પાલન
કરનેકી ઉન્હેં શિક્ષા દેના ઇસકા નામ આસેવનશિક્ષા હૈ । ઉસમેં કોઈ
૨ શિષ્ય ઉન તીર્થઙ્કર યા આચાર્યોંકે નિકટ સર્વોત્તમ શ્રુતજ્ઞાન પ્રાપ્ત કર
વિશિષ્ટ જ્ઞાની જબ હો જાતે હૈં તબ જ્ઞાનકા ગર્વ કરને લગ જાતે હૈં, ઓર
ઇસ અભિમાનસે અંધ-ઉન્મત્ત હો કર શાન્તિભાવ તકકા ખી પરિત્યાગ
કર દેતે હૈં । ઇસ અવસ્થામેં વે પ્રવલ મોહકે ઉદયસે ગુરુકે પ્રદત્ત ઉપદેશ
અનુસાર પ્રવૃત્તિ નહીં કરતે હૈં, ઓર ઉત્કટ મદકે નશોમેં વેમાન જૈસે
બન કર અપને ઉપકારી ગુરુજનોંકે સાથ ખી વાચનિક કઠોર વ્યવહાર

શિક્ષાઓધી શિક્ષિત બનાવવામા આવે છે શિષ્યની દીક્ષાનો સમય જ્યારે ત્રણ
વર્ષનો થઈ જાય ત્યારે તેને આચારાન્ગ સૂત્ર આદિ સૂત્રોનું ક્રમથી અધ્યયન કરા
વવું જોઈએ પણ જો આ સમયની અદર તેની કાખમા વાળ ઉગવા લાગે
તો આ કાળ પહેલા આચારાન્ગ આદિનું અધ્યયન કરાવી શકાય છે ક્રમ ક્રમથી
સૂત્ર, અર્થ અને સાથોસાથ સૂત્ર અર્થનું અધ્યયન શિષ્યને કરાવવું જોઈએ,
આનું નામ ગ્રહણશિક્ષા છે સાધુસામાચારીનું પાલન કરવાની શિક્ષા દેવી
જોઈએ ? આનું નામ આસેવનશિક્ષા છે આમા કોઈ કોઈ શિષ્ય તીર્થ કર અથવા
આચાર્યોની પાસેથી શ્રુતજ્ઞાન પ્રાપ્ત કરી જ્યારે સારા જ્ઞાની બની જાય ત્યારે
જ્ઞાનનો ગર્વ કરવા લાગી જાય છે, અને એ અભિમાનથી અંધ-ઉન્મત્ત બની
શાન્તિભાવનો પણ પરિત્યાગ કરી દે છે આ અવસ્થામા તે પ્રબળ મોહના ઉદ-
યથી ગુરૂથી પ્રાપ્ત થયેલ ઉપદેશ અનુસાર પ્રવૃત્તિ કરતા નથી અને મદના
નશામા બેમાન બેવા બની જઈ ઉપકારી ગુરૂજનોની સાથે પણ વાદવિવાદરૂપી

न सम्यग् भवन्तः—पुनर्मोहोदयाद् गौरवजन्यतमावेशान्मोक्षमार्गे न प्रवर्षमाना
इत्यर्थः ; तथा कामैः—भोगामिलापैः विदग्धमानाः—अभिलषितविषयानवाप्त्वा कपा-
यानलेनान्तस्तप्यमानाः शृद्धाः—सातादिगौरवलोभ्याः, अभ्युपपन्नाः—विषयसुख-
निमग्नमानसाः आस्त्यार्तः—तीर्थङ्करप्ररूपितं समाधिम्—उपशमम् भगोपपन्तः—असेव-
मानाः सन्तः आस्त्यारमेय—अभिलषितारमेय, यद्वा—तीर्थङ्करादिक्रमेण परुषं—स्वयं निन्दावच-
नं वदन्ति । अत्र—एव श्रद्धेनेदृशवत् भवति—एवं तीर्थङ्करादि सर्वप्राणिमुत्साहं दुरन्त
संसारदुःखविषयसहं आश्वत्थिकशिखपदमापन्नं दयामयं धर्मं परमकल्याण्य कल्याणाय

भवन्तः” पुन मोहके उदयसे तीन गौरवोंमें से किसी एक गौरवके
आवेशसे मुक्ति मार्गमें प्रवृत्तिसे शून्य ही रहते हैं । भोगोंकी अभिला-
पासे वे रातदिन जलते रहते हैं । जय इन्हें अभिलषित विषय नहीं
मिलता है तो उस समय वे कपायरूपी अग्निसे संतप्त बन कर साता
दिक गौरवोंमें छोलुपी बने रहते हैं । इनकी वैषयिक सुखोंमें मानसिक
वृत्ति चलायमान होती रहती है । तीर्थङ्कर प्रभुसे प्ररूपित समाधिभाव-
उपशमभावसे रहित ही बने रहते हैं । समझाने पर वस्ते वे समझाने
वालेको ही कठोर बचन बोलकर उनकी भर्त्सना करते हैं—स्वयं निन्दा-
त्मक बचन बोलते हैं । सूत्रमें “आस्त्यारमेय” जो यहाँ ‘एव’ पदका
प्रयोग हुआ है उससे यह बात माहूस होती है कि—जो तीर्थङ्कर भग-
वान् सर्वप्राणिमोहको सुखकारक, इस दुरन्त संसारके दुःखोंका विनाशक
आश्वत्थिक शिखपदकी प्राप्तिफा हेतु और दयामय ऐसे धर्मकी परम
कठणासे जीवोंके कल्याणके निमित्त प्ररूपणा करते हैं, ऐसे तीर्थङ्करोंकी

साधु तो जनी अथ छे कदां पक्षु ते “न सम्यग् भवन्ता” पुनः
भोक्तव्य उदयधी त्रक्षु औस्वर्गानां जेके औस्वर्ग आवेशधी भुक्तिभार्जनी प्रवृत्तिधी
इर जनी अथ छे सोपेनी अभिलाषाधी ते शतदिवस जणतो रहे छे अथारे
तेने उचित निषय नधी भजतो त्थारे ते कथायङ्गी अजिधी सतस जनी साता
दिक औस्वोभां होलुपी जनी रहे छे तेनी वैषयिक सुपेभां मानसिक वृत्ति
सदावमान वती रहे छे तीर्थङ्कर प्रभुको प्ररूपित उपशमभावधी रहित जनी
अथ छे समभववाधी ते कटोरा समभववाधर तरङ्ग ज कठोर वचनो बोली जेनी
मानवनि करे छे—निन्दारमक वचनो बोली छे । सूत्रभां “आस्त्यारमेय” अर्थ के
‘एव’ पदने प्रयोग छे, जेभांभी जे वात माहूस पडे छे के तीर्थङ्कर भगवान् सव
प्राणिमोने सुखकारक आ दुरन्त संसारना दुःखोना विनाशक आश्वत्थिक शिख
पदनी प्राप्तिना हेतु जने दयामय जेवा धर्मनी परम कल्याणी लोना कल्याण
निमित्त प्ररूपणा करे छे जेभनी आश्वत्थ पावन कस्तु तो इर शत्रु पक्षु जेभने

નનુ સાધ્વાચારપરિભ્રષ્ટાના કુશીલાના દીર્ઘઃ સસારો ભવતીત્યુપદેશઃ કથં ન તેભ્યઃ ક્રિયતે ? इति जिज्ञासायामाह—‘आघाय तु’ इत्यादि ।

મૂલમ્—આઘાયં તુ સુચ્ચા નિસમ્મ, “સમણુન્ના જીવિસ્સામો” એગે નિક્ખમ્મ તે અસંભવંતા વિહજ્જમાણા કામેહિં ગિદ્ધા અજ્ઞો-વવન્ના સમાહિમાઘાયમજ્ઞોસયંતા સત્થારમેવ ફરુસં વયંતિ ।સૂ૦૩।

છાયા—આખ્યાતં તુ શ્રત્વા નિશમ્ય, ‘સમનોજ્ઞા જીવિપ્યામઃ’ એકે નિષ્ક્રમ્ય તે અસંભવન્તઃ વિદહ્માનાઃ કામૈર્ગૃહ્ણાઃ અધ્યુપપન્નાઃ સમાધિમ્ આખ્યાતમ્ અજોપયન્તઃ શાસ્તારમેવ પરુપં વદન્તિ ॥ સૂ૦ ૩ ॥

ટીકા—એકે=કેચન કુશીલાઃ શિષ્યાસ્તુ—આખ્યાત=તીર્થઙ્કરગણધરાદિભિઃ કથિતં કુશીલાચારવિપાક શ્રત્વા નિશમ્ય=અવધાર્ય શાસ્તારમેવ પરુપ વદન્તીત્યન્વયઃ। કથમ્ભૂતાસ્તે શિષ્યાઃ ? इत्याह—‘समनोज्ञा’ इत्यादि, समनोज्ञाः=लोकप्रियाः सन्तः जीविष्यामः; इति मत्वा निष्क्रम्य=प्रव्रजितो भूत्वा ते असम्भवन्तः=न भूषा बनाते हैं, इससे उनका चारित्र मलिन बनता है, और इससे वे बकुश मुनियोंकी श्रेणिमें परिगणित होने लगते हैं ॥ सू० २ ॥

સાધુકે આચારસે પરિભ્રષ્ટ ઊન કુશીલોંકો આપ વહ ઉપદેશ ક્યોં નહીં દેતે હો કિ કુશીલોંકા સસાર દીર્ઘ હો જાતા હૈ ? હસ પ્રકારકી શિષ્યકી જિજ્ઞાસામેં સૂત્રકાર “આઘાય તુ” યહ સૂત્ર કહતે હૈ—

કોઈ એક કુશીલ શિષ્ય તીર્થઙ્કર ઓર ગણધરાદિકોં દ્વારા કથિત કુશીલ સંબંધી આચારકે વિપાકકો સુનકર ઓર ઉસકા અવધારણ કર કે બી અપને શાસકકે પ્રતિ કઠિન વચન બોલતે હૈ । “ હમ લોગ લોક-પ્રિય બન કર જીયેંગે ” એસે અભિપ્રાયસે પ્રેરિત હો ભાગવતી દીક્ષાકા વેષ પહિન સાધુ તો બન જાતે હૈ, પરન્તુ ફિર વે “ ન સમ્યગ્

પ્રકર્ષથી “ કદાચ અભાણ્યા કુળવાળાઓને ત્યાથી અન્તઃપ્રાન્ત આહાર મળે ? આવી શ કાથી તે શરીરની વેશભૂષા બનાવે છે આથી એનુ ચારિત્ર મલિન બની નાચ છે, બકુશ મુનિઓની ગણત્રીમા ગણાવા લાગે છે (સૂ૦ ૨)

સાધુના આચારથી બ્રષ્ટ થયેલા તે કુશીલોને આપ કેમ ઉપદેશ આપતા નથી, જેથી કુશીલોનો સસાર દીર્ઘ બનો રહ્યો છે ? આ પ્રકારની શિષ્યની અને એથી તે જિજ્ઞાસામા સૂત્રકાર “ આઘાયં તુ ” આ સૂત્ર કહે છે

કેઈ એક કુશીલ શિષ્ય તીર્થંકર અને ગણધરાદિકોં દ્વારા કહેવામા આવેલ કુશીલસંબંધી આચારના વિપાકને સાબળી, અને સમજીને પણ પોતાના ગુરૂજન વગેરે તરફ કઠણ વચન બોલે છે, “ અમે તો લોકપ્રિય બનીને જીવવાના ” આવા અભિપ્રાયથી પ્રેરિત બની ભાગવતી દીક્ષાનો વેશ પહેરી

મૂલ્મ—સીલમંતા ઉવસતા સલાપ રયિમાણા ‘અસીલા’

અણુવયમાણસ્સ ધિતિયા મદસ્સ પાલયા ॥ સૂ૦૪ ॥

છાયા—શીલન્ત ઉપશાન્તાઃ સંસ્પયા રયિમાણા ‘અશીલાઃ’ અનુવદતઃ
દ્વિતીયા મન્દસ્ય પાલતા ॥ સૂ૦ ૪ ॥

ટીકા—યે સાધન ‘શીલન્ત’=અપ્તાદશશીલાક્ષસહસ્રવરાઃ, યદ્વા મહાપ્રત-
પચેન્નિયકપાયનિગ્રહ-ગુપ્તિત્રય-ચારિણા અતથા ઉપશાન્તાઃ=સાન્ત્યાદિગુમ્પુક્તાઃ,
‘શીલન્તાઃ’ ઇત્યને નૈવ કપાયાપશ્ચમાર્ચસ્ય ગતાર્યત્વાત્પુના ‘ઉપશાન્તાઃ’ ઇતિ
વિજ્ઞપયં કપાયનિગ્રહસ્ય પ્રાપાન્યં લોપયિતુમુક્તમ્ તથા—સંસ્પયા=દેવોપાદેયમદ્રયા
વ્યવહાર કરતે હૈં । इसी बातको प्रकट करनेके लिये सूत्रकार कहते हैं
“सीलमंता” इत्यादि ।

જો સાધુ અઠારહજાર (૧૮૦૦) શીલોંકે મેઢોંકો ધારણ કરનેવાલે
હૈં, અથવા પંચ મહાપ્રતોંકે પાલક પંચેન્નિયોંંઈ કપાયોંંકા નિગ્રહ કરનેવાલે
ઔર ગુપ્તિત્રયકે ધારક હૈં, તયા इसीसे जो क्षमा आदि मनुष्योंसे विमूढ
है, इय और उपादेयके विवेकपूर्वक संयममार्गमें जो लवलीन है ।
उन्हें भी ये कुशील “ये अशील हैं—ये चारित्रसे रहित हैं” ऐसा कहते हैं ।
यह इन अवसल—पासत्यादिरूप कुशीलोंकी दूसरी अज्ञानता है । प्रथम
तो उनकी यही बड़ी भारी अज्ञानता है—जो ये स्वयं चारित्रसे भ्रष्ट हुए
हैं और इसी अज्ञानता यह है कि जो ये चारित्रशालियोंको भी अचा-
रित्री—भ्रष्ट कहते हैं । सूत्रमें “शीलन्त” इस पदसे ही कषायोंके उप-
शमनरूप अर्चकी प्रतीति हो जाती है; फिर भी “उपशान्ताः” ऐसा जो
पद देकर उनका स्वतन्त्ररूपसे अभाव प्रदर्शित किया है, उसका मतलब
केवल कषायोंके निग्रहकी प्रधानता प्रकट करना ही समझना चाहिये ।

જે સાધુ અઠારહજાર (૧૮૦૦) શીલોના શેઢોને ધારણ કરવાવાળા છે અથવા
પાંચ મહાપ્રતોના પાલક પંચેન્નિયો અને કષાયોના નિગ્રહ કરવાવાળા અને ગુપ્તિત્રયના
ધારક છે અને એથી જે ક્ષમા આદિ મનુષ્યોથી વિમૂઢ છે તેમ અને ઉપ-
દેયના વિવેકપૂર્વક સંયમ માર્ગમાં જે લવલીન છે એમને પણ તે કુશીલ
= આ અશીલ છે—આ ચારિત્રથી રહિત છે એમ કહે છે, આ તે અવસલપાશ્વચાદિ
રૂપ કુશીલોની બીજી અજ્ઞાનતા છે પહેલી તો તેની આ મોટી અજ્ઞાનતા છે કે
તે સ્વયં ચારિત્રથી ભ્રષ્ટ થઈ ગયા છે અને બીજી અજ્ઞાનતા આ છે કે જે
ચારિત્રશાળીઓને પણ અચારિત્રી ભ્રષ્ટ કહે છે સૂત્રમાં “શીલન્તા” આ પદથી
જે કષાયોના ઉપશમનરૂપ અર્થની પ્રતીતિ થઈ ગયા છે છતાં પણ “ઉપશાન્તા”

સમુપદિશતિ, તદાજ્ઞાપરિપાલનં તુ દૂરતોઽપાસ્ત; પ્રત્યુત પરુપવચનેન તમેવાક્ષિપન્તિ, ત ઘથા-ભગવાન પ્રમાદી ષડ્લેશ્યાધારી ગોશાલકરક્ષણેન સ્વલિતઃ; ઇત્યાદિ। તદેત્સર્વે તેષાં પ્રવલમિથ્યાત્વોદયવિલાસમાત્રમિતિ નવમાધ્યયનચતુર્થોદ્દેશવૃત્તૌ સ્પષ્ટી-ભવિષ્યતિ ॥ સૂ. ૩ ॥

તે સ્વયં ભ્રષ્ટાઃ કુશીલા ન કેવલં શાસ્તારં પરુષં વદન્તિ, અપરાનપિ સાધૂન્ પરુષં વદન્તીત્યાહ-‘સીલમંતા’ ઇત્યાદિ ।

આજ્ઞાકા પાલન કરના તો દૂર રહ્યા, પરતુ વે કુશીલ ડનકા હી પરુષ (કઠિન) વચનોસે તિરસ્કાર કરતે હૈં, કહતે હૈં કિ “ભગવાન તો પ્રમાદી થે, ષડ્લેશ્યાઓંકો ધારણ કરતે થે, ગોશાલાકે રક્ષણ કરનેસે વે ચૂક ગયે થે” । હસ પ્રકાર ડનકા કહના પ્રવલ મિથ્યાત્વકે ઉદયકા ઇક વિલાસ-માત્ર હૈં; યહ વાત હમ નૌમે અધ્યયનકે ચતુર્થ ઉદેશમેં સ્પષ્ટ કરેંગે ।

વે વેષધારી સાધુકા વાના હસલિયે પહિર લિયા કરતે હૈં કિ હસ વાનેસે હમેં ઁવાને પીનેકો નિશ્ચિન્તતાસે મિલ જાયા કરેગા; નહીં તો કૌન પૂછે ! વિષયકષાયોંકે ઁ પિણ્ડ હોતે હૈં । થોડી ૨ સી વાતોમેં લઢને-ઢગઢનેકો તૈયાર હો જાતે હૈં । હન્હેં સાધુમર્યાદા ક્યા હૈં ? હસ તકકા ઁી ઁાન નહીં હોતા ! મૌજસે ઁાના ઔર તીન ગૌરવોંકે વશ રહના ઇક યહી હનકા લક્ષ્ય રહતા હૈં ॥ સૂ. ૩ ॥

સ્વયંભ્રષ્ટ વે કુશીલ સિર્ફ અપને શાસ્તાકે પ્રતિ હી કઠોર વચનોં કા પ્રયોગ કરતે હૈં, સો વાત નહીં; કિન્તુ અન્ય સાધુઓંસે ઁી યદ્વા-તદ્વા

જ કઠણ વચનોથી તિરસ્કાર કરે છે કે “ભગવાન તો પ્રમાદી હતા, ષડ્લેશ્યાધારી હતા, ગૌશાળાનુ રક્ષણ કરવાથી તેઓ ચૂકી ગયા હતા” આ પ્રકારે તેનુ કહેવુ પ્રબળ મિથ્યાત્વના ઉદયનો ઁક વિલાસ માત્ર છે આ વાત નવમા અધ્યયનના ચોથા ઉદેશમા સ્પષ્ટ કરવામા આવશે.

તે વેષધારી સાધુનો વેષ ઁ માટે પહેરી રાખે છે કે ઁ વેષથી ખાવા પીવાનુ તો વગર ચિન્તાઁ મળતુ રહે છે નહિ તો કોણ ભાવ પૂછે વિષય કષાયોના પિંડરૂપ તે જરા જરા વાતમા લડવા-ઁગડવા તૈયાર થઇ જાય છે સાધુમર્યાદા શું છે ? ઁનુ તેને ભાન નથી હોતું મોજથી ખાવુ ઁને ત્રણ ગૌરવના વશ રહેવુ આ જ તેનું લક્ષ હોય છે (સૂ. ૩)

જાતે ભ્રષ્ટ બનેલ તે કુશીલ ક્રૂર પોતાના આચાર્ય ગુરૂ આદિ પ્રત્યે જ કઠોર વચનોનો પ્રયોગ કરે છે ઁ વાત નથી, પરતુ ખીજા સાધુઓથી પણ ઁ આવોજ વ્યવહાર કરે છે આ વાતને પ્રગટ કરતા સૂત્રકાર કહે છે “સીલમંતા” ઇત્યાદિ

मूढम्—सीलमता उवसता सखाप रयिमाणा 'असीला'
अणुवयमाणस्स धितिया मंदस्स बालया ॥ सू० ४ ॥

छापा—शीलमन्त उपशान्ताः सम्पया रोयमाणा 'अशीलाः' अनुवदतः
द्वितीया मन्दस्य वासता ॥ सू० ४ ॥

टीका—ये सापयः शीलमन्तः=अष्टादशशीलाःसहस्रपराः, यद्वा महाव्रत-
पञ्चत्रयकृपायन्त्रिह-गुप्तित्रय-चारिणः अतएव उपशान्ताः=सान्त्वादिगुणयुक्ताः,
'शीलवन्तः' इत्यनेनैव कृपायोपशमार्थस्य गतार्थत्वात्पुनः 'उपशान्ताः' इति
विशेषणं कृपायन्त्रिहस्य प्राधान्यं बोधयितुमुक्तम्। तथा—सम्पया=हयोपादेयप्रहया
व्यवहार करते हैं। इसी बातको प्रकट करने के लिये सूत्रकार कहते हैं
"सीलमता" इत्यादि।

जो साधु अठारह हजार (१८०००) शीलोक मेवोंको धारण करनेवाले
हैं, अथवा पंच महाव्रतोंके पालक पंचेन्द्रियों एवं कृपायोंका निग्रह करनेवाले
और गुप्तित्रयके धारक हैं, तथा इसीसे जो क्षमा आदि सद्गुणोंसे विभूषित
हैं, हेय और उपादेयके विवेकपूर्वक संप्रममार्गमें जो लवलीन हैं।
उन्हें भी ये कुशील "ये अशील हैं—ये चारित्रसे रहित हैं" ऐसा कहते हैं।
यह इन अवसप्त—पासत्पादिरूप कुशीलोंकी दूसरी अज्ञानता है। प्रथम
तो उनकी यही बड़ी भारी अज्ञानता है—जो ये स्वयं चारित्रसे भ्रष्ट हुए
हैं और इसी अज्ञानता यह है कि जो ये चारित्रशालियोंको भी अचा-
रित्री—भ्रष्ट कहते हैं। सूत्रमें "शीलवन्तः" इस पदसे ही कृपायोंके उप-
शमनरूप अर्थकी प्रतीति हो जाती है; फिर भी "उपशान्ताः" ऐसा जो
पद देकर उनका स्वतन्त्ररूपसे अभाव प्रदर्शित किया है, उसका मतलब
केवल कृपायोंके निग्रहकी प्रधानता प्रकट करना ही समझना चाहिये।

ये साधु अठारह हजार (१८०००) शीलाना लेहोने धारण करवावाण छ अथवा
पाच महाव्रताना पालक पंचेन्द्रियो अने कृपायाना निग्रह करवावाण अने गुप्तित्रयना
धारक छ अने जेभी के क्षमा आदि सद्गुणोणी विभूषित छ हेय अने उपा-
देयना विवेकपूर्वक संप्रम मार्गमें के लवलीन छ जेभने पञ्च ते कुशील
आ अशील छे—आ चारित्रधी रहित छ जेभ कहै छ आ ते अवसप्तपादिरूप
इप कुशीलानी भील अज्ञानता छे। पहेली तो तेनी आ मोटी अज्ञानता छे के
ते स्वयं चारित्रधी भ्रष्ट भई जया छे अने भील अज्ञानता आ छे के के
चारित्रशालीओने पञ्च अचारित्री भ्रष्ट कहै छे सूत्रार्थ "शीलवन्तः" आ पदधी
अ कृपायाना उपशमनरूप अर्थनी प्रतीति भई जय छे छत्तां पञ्च उपशान्ताः

સમુપદિશતિ, તદાજ્ઞાપરિપાલનં તુ દૂરતોઽપાસ્ત; પ્રત્યુત પરુપવચનેન તમેવાક્ષિપન્તિ, તથથા-ભગવાન પ્રમાદી પડ્લેશ્યાધારી ગોશાલરક્ષણેન સ્વલિતઃ ઇત્યાદિ। તદેત્સર્વે તેષા પ્રવલમિથ્યાત્વોદયવિલાસમાત્રમિતિ નવમાધ્યયનચતુર્થોદ્દેશવૃત્તો સ્પષ્ટી-ભવિષ્યતિ ॥ સૂ. ૩ ॥

તે સ્વયં ભ્રષ્ટાઃ કુશીલા ન કેવલં શાસ્તારં પરુપં વદન્તિ, અપરાનપિ સાધૂન પરુપં વદન્તીત્યાહ-‘સીલમતા’ ઇત્યાદિ ।

આજ્ઞાકા પાલન કરના તો દૂર રહ્યા, પરતુ વે કુશીલ અનેકા હી પરુષ (કઠિન) વચનોંસે તિરસ્કાર કરતે હૈ, કહતે હૈ કિ “ભગવાન તો પ્રમાદી થે, પડ્લેશ્યાઓંકો ધારણ કરતે થે, ગોશાલાકે રક્ષણ કરનેસે વે ચૂક ગયે થે” । ઇસ પ્રકાર અનેકા કહના પ્રવલ મિથ્યાત્વકે ઉદયકા એક વિલાસ-માત્ર હૈ; યહ વાત હમ નૌમે અધ્યયનકે ચતુર્થ ઉદ્દેશમેં સ્પષ્ટ કરેગે ।

વે વેષધારી સાધુકા વાના ઇસલિયે પહિર લિયા કરતે હૈં કિ ઇસ વાનેસે હમેં યાને પીનેકો નિશ્ચિન્તતાસે મિલ જાયા કરેગા; નહીં તો કૌન પૂછે ! વિષયકષાયોંકે ચે પિણ્ડ હોતે હૈં । થોડી ૨ સી વાતોંમેં લડ્ઢને-જગડ્ઢનેકો તૈયાર હો જાતે હૈં । ઇન્હેં સાધુમર્યાદા ક્યા હૈ ? ઇસ તકકા ખી બાન નહીં હોતા ! મૌજસે યાના ઓર ત્રીન ગૌરવોંકે વશ રહના એક યહી ઇનકા લક્ષ્ય રહતા હૈ ॥ સૂ. ૩ ॥

સ્વયંભ્રષ્ટ વે કુશીલ સિર્ફ અપને શાસ્ત્રાકે પ્રતિ હી કઠોર વચનોં કા પ્રયોગ કરતે હૈં, સો વાત નહીં, કિન્તુ અન્ય સાધુઓંસે ખી યદ્વા-તદ્વા

જ કઠણ વચનોથી તિરસ્કાર કરે છે કે “ભગવાન તો પ્રમાદી હતા, પડ્લેશ્યાધારી હતા, ગોશાળાનુ રક્ષણ કરવાથી તેઓ ચૂકી ગયા હતા” આ પ્રકારે તેનું કહેવું પ્રબળ મિથ્યાત્વના ઉદયનો એક વિલાસ માત્ર છે આ વાત નવમા અધ્યયનના ચોથા ઉદ્દેશમાં સ્પષ્ટ કરવામાં આવશે.

તે વેષધારી સાધુનો વેષ એ માટે પહેરી રાખે છે કે એ વેષથી ખાવા પીવાનું તો વગર ચિન્તાએ મળતું રહે છે નહિ તો કેાણુ ભાવ પૂછે વિષય કષાયોના પિંડરૂપ તે જરા જરા વાતમાં લડવા-ઝગડવા તૈયાર થઈ જાય છે સાધુમર્યાદા શું છે ? એનું તેને બાન નથી હોતું મોજથી ખાવું અને ત્રણ ગૌરવના વશ રહેવું આ જ તેનું લક્ષ હોય છે (સૂ. ૩)

જાતે ભ્રષ્ટ બનેલ તે કુશીલ ક્રૂર પોતાના આચાર્ય શુરૂ આદિ પ્રત્યે જ કઠોર વચનોનો પ્રયોગ કરે છે એ વાત નથી, પરતુ ખીન સાધુઓથી પણ એ આવેાજ વ્યવહાર કરે છે આ વાતને પ્રગટ કરતા સૂત્રકાર કહે છે “સીલમંતા” ઇત્યાદિ

મૂક્મ-સીલમતા ઉપસતા સલાપ રીયમાણા 'અસીલા' અણુવયમાણસ્સ ધિતિયા મંદસ્સ ચાલયા ॥ સૂ૦૪ ॥

છાયા—શીલવન્ત ઉપશન્તાઃ સમ્યયા રીયમાણા 'અશીલા' ધતુવદઃ ધિતિયા મન્દસ્સ ચાલતા ॥ સૂ૦ ૪ ॥

ટીકા—યે સાપયા શીલવન્તઃ=અટાલશશીલાફલહસપરાઃ, યદ્વા મહાવ્રત-પંચેન્દ્રિયકપાયનિગ્રહ-ગુપ્તિત્રય-ધારિણ' તત્પત્વ ઉપશન્તાઃ=સાન્ત્યાવિગુણયુક્તા', 'શીલવન્તાઃ' इत्यनेनैव कपायोपशमार्थस्य गतार्थत्वात्पुन 'उपशान्ताः' इति विशेषणं कपायनिग्रहस्य प्राधान्यं बोधयितुमुक्तम्। तथा-सम्यक्या=हेयोपादयमग्न्या प्यबहार करते हैं। इसी बातको प्रकट करने के लिये सूत्रकार कहते हैं "सीलमंता" इत्यादि।

જો સાધુ અઠારહ જાર (૧૮૦૦૦) શીલોંકે મેદોંકો ધારણ કરનેવાલે હૈ, અપવા પંચ મહાવ્રતોંકે પાલક પંચેન્દ્રિયોંંકે કપાયોંકા નિગ્રહ કરનેવાલે ઔર ગુપ્તિત્રયકે ધારક હૈ, તથા इसीसे जो क्षमा आदि सर्वगुणोंसे विभूयित है, हेय और उपादेयके विषेकपूर्वक संयममार्गमें जो लबलीन है। वन्हें 'मी ये कुशील' "ये अशील हैं-ये चारित्रसे रहित हैं" ऐसा कहते हैं। यह इन अवसल-यासत्याविरूप कुशीलोंकी दूसरी अज्ञानता है। प्रथम तो उनकी यही बड़ी भारी अज्ञानता है-जो ये स्वयं चारित्रसे भ्रष्ट हुए हैं और दूसरी अज्ञानता यह है कि जो ये चारित्रशालियोंको 'मी अचा रिधी-भ्रष्ट कहते हैं। सूत्रमें "शीलवन्ताः" इस पदसे ही कपायोंके उपशमनरूप अर्थकी प्रतीति हो जाती है; फिर 'मी "उपशान्ताः" ऐसा जो पद देकर उनकी स्वतन्त्ररूपसे अमात्र प्रदर्शित किया है, उसका मतलब केवल कपायोंके निग्रहकी प्रधानता प्रकट करना ही समझना चाहिये।

જે સાધુ અઠારહ જાર (૧૮૦૦૦) શીલોંકા ભેટોને ધારણ કરવાવાળા છે અપવા પંચ મહાવ્રતોંકા પાલક પંચેન્દ્રિયોં અને કપાયોંકા નિગ્રહ કરવાવાળા અને ગુપ્તિત્રયના ધારક છે અને એથી જે ક્ષમા આદિ સર્વગુણોંથી વિભૂયિત છે હેય અને ઉપાદેયના વિષેકપૂર્વક સંયમ માર્ગમાં જે લવલીન છે એમને પણ તે કુશીલ "મી અશીલ છે-આ ચારિત્રથી રહિત છે એમ કહે છે આ તે અવસલપાસ્યાદિ રૂપ કુશીલોંની બીલ અજ્ઞાનતા છે પહેલી તો તેની આ મોટી અજ્ઞાનતા છે કે તે સ્વયં ચારિત્રથી ભ્રષ્ટ થઈ ગયા છે અને બીલ અજ્ઞાનતા આ છે કે જે ચારિત્રશાળીઓને પણ અચારિત્રી ભ્રષ્ટ કહે છે સૂત્રમાં "શીલવન્ત" "મી પદથી જે કપાયોંના ઉપશમનરૂપ અર્થની પ્રતીતિ થઈ ગય છે છતાં પણ ઉપશન્તા"

રીયમાણાઃ=સયમમાર્ગે પ્રવર્તમાનાઃ સન્તિ તાન્ 'અગ્રીલાઃ=ચારિત્રવર્જિતા એતે'
 इति अनुवदतः प्रतिवदत मन्दस्य=असन्नपार्श्वस्थादेरेपा द्वितीया वालतास्ति ।
 अत्र ज्ञानगर्वान्धत्वात् स्वयं चारित्रभ्रष्टा अभूवन्निति प्रथमा, द्वितीया तु अन्यसाधून्
 प्रति 'भ्रष्टाः' इति कथनरूपेति भावः ॥मृ०४॥

કેચિદ્ ઋજુમતયઃ સ્વયમશક્તા અપિ સાધ્વાચારં પ્રશમન્તીત્યાહ-
 'નિયદ્દમાણા' ઇત્યાદિ ।

મૂલમ્—નિયદ્દમાણા વેગે આચારગોચરમાઢ્કલ્પન્તિ ॥સૂ૦૫॥

છાયા--નિવર્તમાના વૈકે આચારગોચરમાલ્પ્યન્તિ ॥ મૃ ૦ ૫ ॥

ટીકા--વા=અથવા એકે=કેચિત્ નિવર્તમાનાઃ=સ્વયં સંયમારાધનાં સમ્યક્તયા
 કર્તુમસમર્થતયા તતો નિવૃત્તા અપિ આચારગોચર=મૂલોત્તરગુણં અલ્પ્યન્તિ=શુદ્ધતયા
 વર્ણયન્તિ, તેપાં દ્વિતીયા વાલતા નાસ્તીતિ ભાવઃ ॥ મ૦ ૫ ॥

જો ઝીલસપન્ન હૈ—ઉપશાન્ત હૈ, હેય ઔર ઉપાદેયકે વિવેકપૂર્વક
 સંયમમાર્ગમેં લગે હુએ હૈ ઉન્હેં યે કુશીલ અચારિત્રી કહ કર અપની
 અજ્ઞાનતા પ્રદર્શિત કરતે હૈ ॥સૂ૦૪॥

કોઈ ૨ કુશીલ (શિથિલાચારી) ઋજુમતિયુક્ત હોતે હૈ । યે ચારિત્રકે
 ભારકો વહન કરનેકે લિયે અસમર્થ હોતે હુએ ભી સાધુકે આચારકી
 પ્રશસા કરતે હૈ । ઈસી વાતકો પ્રકટ કરનેકે લિયે સૂત્રકાર કહતે હૈ
 “ નિયદ્દમાણા ” ઇત્યાદિ—

અથવા કોઈ ૨ કુશીલ (શિથિલાચારી) સ્વય સયમકી સમીચીન
 આરાધના કરનેમેં અસમર્થ હોનેસે ઉસસે દૂર રહતે હૈ, તો ભી મૂલગુણ
 ઔર ઉત્તરગુણોંકી શુદ્ધતાસે પ્રશસા કરતે હૈ । ઈન્કે દ્વિતીયા વાલતા
 (અજ્ઞાનતા) નહીં હોતી ।

એવુ જે પદ છે તે સ્વતઃપ્રત્યીકધાર્યોના અભાવ પ્રદર્શિત કરે છે આને અર્થ
 કેવળ કધાર્યોના નિઘ્રહની પ્રધાનતા પ્રગટ કરવા માટેજ કહેવાયાનુ સમજવુ જોઈએ
 જે શીલસપન્ન છે—ઉપશાન્ત છે, હેય અને ઉપાદેયના વિવેકપૂર્વક સયમ
 માર્ગમા લાગેલા છે એમને તે કુશીલ ચારિત્ર વગરના કહી પોતાની અજ્ઞાનતાનુ
 પ્રદર્શન કરે છે (સૂ૦૪)

કોઈ કોઈ કુશીલ (શિથિલાચારી) હલકી મનિથી ભરેલા હોય છે
 ચારિત્રના ભારને એ વહન કરી શકતા નથી, છતાં પણ સાધુના આચારની
 પ્રશસા કરે છે આ વાતને પ્રગટ કરતા સૂત્રકાર કહે છે “નિયદ્દમાણા” ઇત્યાદિ

અથવા કોઈ કોઈ કુશીલ (શિથિલાચારી) સ્વય સયમના આરાધના કરવામા
 અસમર્થ હોવાથી એનાથી દૂર રહે છે તો પણ મૂળગુણ અને ઉત્તરગુણોની

સદસદ્વિવેકપ્રપ્તિ મિ કુર્વન્તી ? ત્યાકાક્ષાયામાદ-‘નાણમદ્વા’ રત્યાદિ
મૂલ્મ-નાણમદ્વા દસગલ્પસિણો નમનાણા વેગે જીવિય
વિપ્પરિણામતિ ॥ સૂ. ૬ ॥

છાયા-જ્ઞાનપ્રપ્તિ કર્ધનકુપિણો નમ નાણ જીવિય વિપરિણામયન્તિ ॥ ૬ ॥
ટીકા-‘યક=કચન દ’નમ્પિણ’=સમ્યક્ત્વપતિતા, અતથ જ્ઞાનપ્રપ્તિ:=
હયાપાદેયબુદ્ધિવિચ્યુતા, નમન્તા યા=આચાર્યાદીન દ્રવ્યસઃ પ્રમન્તાઽપિ મીચિત્=
સ્વાત્માન વિપરિણામયન્તિ=પરિવર્તયન્તિ-સમ્યક્ચારિમાદ્ વિચ્ચંસપન્તીત્પર્ય, સમ્ય
મ્કર્ત્તજ્ઞાનચારિત્રલ્પજ્ઞાનમાસમાગાદ્ ભ્રમ્યન્તાતિ માષઃ ॥ મૂ. ૬ ॥

માર્થ-શુદ્ધ સંયમકી આરાધના નહીં હો સકલકે કારણ કોઈ
૨ કુશીલ ઉસ સંયમકી પાલનાસે ચણપિ દૂર રહેતે હૈ, ફિર મી વસ
સંયમકી શુદ્ધ રીતિસે પાલનચાલોંકી વ નિંદા નહીં કરતે-ઉન્હૈ ‘ય ઇષ્ટ
હૈ, પેસા નહીં સમસત; અન’ ય પ્રથમ પાલનાસે યુક્ત હોતે હુન મી દૂસરી
પાલનાસે રહિત માન જાતે હૈ ॥ મૂ. ૧ ॥

જો સત્ત ઓર અસત્તક વિવેકસે ઇષ્ટ હૈ, વ કયા કરતે હૈ ? રૂસ પ્રકાર
કી આકાંક્ષા હોન પર સૂચકાર કહત હૈ-“ નાણમદ્વા ” રત્યાદિ-

કોઈ ૨ યકુશ સમ્યક્સ્વસે પતિત દોનકી યજહસે, હેય ઓર ઉપા-
દેયવાલી બુદ્ધિસે રહિત હોતે હુન, આપ્યાયાદિકાકિ લિય દ્રવ્યરૂપ નમસ્કાર
સે નમન કરતે હૈ તો મી અપની આત્માકો સમ્યક્સ્વ ચારિત્રસે પતિત
હી યનાયે રહેતે હૈ । પેસ જીવ સમ્યક્દર્શન, સમ્યક્જ્ઞાન આર સમ્યક્
ચારિત્રરૂપ મોક્ષમાગસે સદા ઇષ્ટ હૈ, પેસા સમસતના ચાહિય ॥ મૂ. ૬ ॥

શુદ્ધતાથી પ્રથમ કરે છે એને બીજી બાજના (અજ્ઞાનતા) નથી હોતી.

ભાષા-શુદ્ધ સમનતા આત્મતા ન કરી શકવાને કારણે કોઈ કોઈ
કુશીલ તે સમનતા પાલનાથી એ કે દૂર રહે છે તો પણ સમનને શુદ્ધ રીતિથી
પાળવાવાળા નિંદા ત નથી કરતા-એમને એ જાણ છે એમ નથી સમજતા.
આથી એ પ્રથમ બાજનાથી યુક્ત હોવા છતાં પણ બીજી બાજનાથી રહિત
માનવામાં આવે છે (સુ. ૫)

૭ તત્ત અને અન અતત્ત વિવેકથી જાણે છે તે શુ કરે છે અપ્રકારની
આકાંક્ષા હોવાથી કહે છે નાણમદ્વા રત્યાદિ.

કોઈ કોઈ બકુશ સમ્યક્સ્વથી પતિત થવાના કા જે દેષ અને ઉપદેયવાળી
બુદ્ધિરહિત બની આચાર્યાદિકાને સમ્યક્ નમસ્કારથી નમન કરે છે તો પણ તે
પાલના આત્માને સમ્યક્ચારિત્રથી પતિત જ બનવાથી તાજે છે અથા એ
સમ્યક્દર્શન, સમ્યક્જ્ઞાન અને સમ્યક્ચારિત્રથી નોંડ મામથી તદા જાણે છે એવું
સમજવું એજે (સુ. ૬)

રીયમાણાઃ=સયમમાર્ગે પ્રવર્તમાનાઃ સન્તિ તાનુ 'અઙીલાઃ=ચારિત્રવર્જિતા ણ્તે' इति अनुवदतः प्रतिवदत मन्दस्य=असन्नपार्श्वस्थादेरेषा द्वितीया गान्तास्ति । अत्र ज्ञानगर्वान्धत्वात् स्वय चारित्रध्रुष्टा अभूवन्निति प्रथमा, द्वितीया तु ग्रन्थसाधून् प्रति 'अण्टाः' इति कथनरूपेति भावः ॥म०४॥

કેચિદ્ ક્રજુમતયઃ સ્વયમશક્તા અપિ માધ્યાચાર પ્રશમન્તીત્યાદિ-
'નિયટ્ટમાણા' ઇત્યાદિ ।

મૂલમ્—નિયટ્ટમાણા વેગે આચારગોચરમાઙ્ક્રવન્તિ ॥સૂ० ૫॥

છાયા--નિવર્તમાના વૈકે આચારગોચરમાગ્યાન્તિ ॥ સૂ० ૫ ॥

ટીકા--ગા=અથવા ણકે=કેચિત્ નિવર્તમાનાઃ=સ્વય સંયમારાધના સમ્યક્તયા કર્તુમસમર્થતયા તતો નિવૃત્તા અપિ આચારગોચર=મુલોત્તરગુણ અભ્યાન્તિ=શુદ્ધતયા વર્ણયન્તિ, તેષા દ્વિતીયા ગાન્તા નાસ્તીતિ ભાવઃ ॥ મ૦ ૫ ॥

જો ઝીલમપત્ર હૈ—ઉપશાન્ત હૈ, હેય ઔર ઉપાદેયકે વિવેકપૂર્વક સંયમમાર્ગમે લગે હુણ હૈ ઉઁહૈં યે કુઝીલ અચારિત્રી કહ કર અપની અજાનતા પ્રદર્શિત કરતે હૈ ॥સૂ०૪॥

કોઈ ૨ કુઝીલ (શિથિલાચારી) ક્રજુમતિયુક્ત હોતે હૈ । યે ચારિત્રકે ભારકો વહન કરનેકે લિયે અસમર્થ હોતે હુણ બી સાધુકે આચારકી પ્રશસા કરતે હૈ । ઇસી વાતકો પ્રકટ કરનેકે લિયે સૂત્રકાર કહતે હૈ
“ નિયટ્ટમાણા ” ઇત્યાદિ—

અથવા કોઈ ૨ કુઝીલ (શિથિલાચારી) સ્વય સયમકી સમીચીન આરાધના કરનેમેં અસમર્થ હોનેસે ઉસસે દૂર રહતે હૈ, તો બી મૂલગુણ ઔર ઉત્તરગુણોકી શુદ્ધતાસે પ્રશસા કરતે હૈ । ઇનકે દ્વિતીયા ચાલતા (અજ્ઞાનતા) નહીં હોતી ।

એવુ જે પદ છે તે સ્વતઃપ્રકાશી ઉપાયોના અભાવ પ્રદર્શિત કરે છે આનો અર્થ કેવળ ઉપાયોના નિગ્રહની પ્રધાનતા પ્રગટ કરવા માટેજ કહેવાયાનુ સમજવુ જોઈએ. જે શીલમ પત્ર છે—ઉપશાન્ત છે, હેય અને ઉપાદેયના વિવેકપૂર્વક સયમ માર્ગમા લાગેલા છે એમને તે કુશીલ ચારિત્ર વગરના કહી પોતાની અજ્ઞાનતાનુ પ્રદર્શન કરે છે (સૂ૦૪)

કોઈ કોઈ કુશીલ (શિથિલાચારી) હલકી મનિથી ભરેલા હોય છે ચારિત્રના ભારને એ વહન કરી શકતા નથી, છતાં પણ સાધુના આચારની પ્રશસા કરે છે આ વાતને પ્રગટ કરતા સૂત્રકાર કહે છે “ નિયટ્ટમાણા ” ઇત્યાદિ

અથવા કોઈ કોઈ કુશીલ (શિથિલાચારી) સ્વય સયમના આરાધના કરવામા અસમર્થ હોવાથી એનાથી દૂર રહે છે તો પણ મૂળગુણ અને ઉત્તરગુણોની

સદસદ્વિવેકશ્રષ્ટાઃ કિં કુર્વન્તી ? ત્યાકાર્જ્વાયામાહ—‘નાણગ્મદ્વા’ ઇત્યાદિ।
મૂક્મ્—નાણગ્મદ્વા દસગલ્પસિણો નમમાણા વેગે જીવિય
વિપ્પરિણામતિ ॥ સુ૦ ૬ ॥

છાયા—જ્ઞાનશ્રષ્ટા દર્શનસ્ફુપિમો નમત્તે એક જીવિતં વિપરિણામયન્તિ ॥મૂ૦ ૬॥
ટીકા—એકે=કેવન દર્શનસ્ફુપિમઃ=સમ્યક્ત્વપતિતા, અતएव જ્ઞાનશ્રષ્ટાઃ=
હયાપાદેયબુદ્ધિવિષ્ણુઃ, નમન્તા યા=આચાર્યાદીન્ દ્રવ્યસઃ પ્રણમન્તાઽપિ જીવિતં=
સ્વાત્માનં વિપરિણામયન્તિ=પરિવર્ધયન્તિ-સમ્યક્ચારિત્રાદ્ વિધ્વંસયન્તીત્યર્થઃ; સમ્ય
દર્શનજ્ઞાનચારિત્રસંપ્રગાન્માસમાર્ગાદ્ મ્હયન્તાતિ માઘઃ ॥ મૂ૦ ૬ ॥

ભાવાર્થ—શુદ્ધ સંયમકી આરાધના નહીં હો સકલકે કારણ કોઈ
૨ કુશીલ હસ સંયમકી પાલનાસે યથાપિ દૂર રહેતે હૈ, ફિર મી હસ
સંયમકો શુદ્ધ રીતિસે પાલનચાલોંકી વે નિંદા નહીં કરતે-ઉન્હે ‘યે બ્રહ્મ
હૈ, એસા નહીં મમજતે; અતઃ ય પ્રથમ પાલતાસે યુક્ત હોતે છુપ મી દ્વમરી
પાલતાસે રહિત માન જાતે હૈ ॥ સુ૦ ૧ ॥

જો સત્ ઓર અસત્ક વિવેકસે બ્રહ્મ હૈ, વંચ્યા કરતે હૈ? હસ પ્રકાર
કી આકાંક્ષા હોન પર સૂત્રકાર કહતે હૈ—“ નાણગ્મદ્વા ” ઇત્યાદિ—

કોઈ ૨ વકુશ સમ્યક્ત્વસે પતિત હોનેકો વજહસે, હેય ઓર ઉપા
દેયવાલી બુદ્ધિસે રહિત હોતે છુપ, આચાર્યાવિકોંકિ લિયે દ્રવ્યરૂપ નમસ્કાર
સે નમન કાતે હૈ તો મી અપની આત્માકો સમ્યક્ત્વ ચારિત્રસે પતિત
હી બનાય રહતે હૈ । એસે જીવ સમ્યક્દર્શન, સમ્યક્જ્ઞાન આર સમ્યક્
ચારિત્રરૂપ મોક્ષમાર્ગસે સદા બ્રહ્મ હૈ, એસા સમજના ચાહિય ॥સુ૦ ૬॥

શુદ્ધતાથી પ્રગતિ કરે છે એને બીજી બાજુ (બદ્ધતા) નથી હોતા.

ભાવાર્થ —શુદ્ધ સંયમની આરાધના ન કરી શકવાને કારણે કોઈ કોઈ
કુશીલ તે સંયમની પાલનાથી એ કે દૂર રહે છે તે પણ સંયમને શુદ્ધ રીતિથી
પાળવાવાળાની નિંદા તે નથી કરતા-એમને એ બ્રહ્મ છે એમ નથી સમજવો.
આથી એ પ્રથમ બાજુથી યુક્ત હોવા છતાં પણ બીજી બાજુથી રક્તિ
માનવામા આવે છે (સુ૦ ૫)

એ સત્ અને અસત્ના વિવેકથી બ્રહ્મ છે તે શુ કરે છે આ પ્રકારની
આકાંક્ષા હોવાથી કહે છે નાણગ્મદ્વા ઇત્યાદિ.

કોઈ કોઈ બકુશ સમ્યક્ત્વથી પતિત થવાના કારણે હેય અને ઉપદેશવાળી
બુદ્ધિરક્તિ બની આચાર્યાદિકોને દ્રવ્યરૂપ નમસ્કારથી નમન કરે છે તે પણ તે
પોતાના આત્માને સમ્યક્ત્વચારિત્રથી પતિત બનવાની તાણે છે એવા હવે
સમ્યક્દર્શન, સમ્યક્જ્ઞાન અને સમ્યક્ચારિત્રરૂપ મોક્ષ માર્ગથી તથા બ્રહ્મ છે એવું
સમજવું એજી. (સુ ૬)

કિંચ—‘પુટ્ટા’ ઇત્યાદિ ।

મૂલમ્—પુટ્ટા વેગે નિયદંતિ જીવિયસેવ કારણા, ણિક્ખંતંપિ તેસિં દુન્નિક્ખંતં ભવઙ્ ॥ સૂ૦૭ ॥

છાયા—સ્પૃષ્ટા વૈકે નિર્વર્તન્તે જીવિતસ્યૈવ કારણાત્, નિષ્ક્રાન્તમપિ તેષા દુર્નિષ્ક્રાન્ત ભવતિ ॥ સૂ૦૭ ॥

ટીકા—એકે=કેચન સ્પૃષ્ટાઃ=પરીપઘોપસર્ગેરુપદ્રુતાઃ સન્તઃ જીવિતસ્યૈવ કારણાત્=ક્ષણભગુરજીવનસ્ય સુખાર્ય નિર્વર્તન્તે=સયમાત્પૃથગ્ ભવન્તિ । તેષા=ચારિત્રચ્યુતાના નિષ્ક્રાન્તમપિ=નિષ્ક્રમણમપિ દુર્નિષ્ક્રાન્તં ભવતિ=મૂલોત્તરગુણવિધાતેન નિરર્થક ભવતિ । ચારિત્રપરિભ્રષ્ટાના ગૃહાન્નિષ્ક્રમણ ન શ્લાઘનીય ભવતિ; પ્રત્યુત્તરર્હણીયમેવેતિ ભાવઃ ॥ સૂ૦ ૭ ॥

તથા—“પુટ્ટા” ઇત્યાદિ ।

કોઈ ૨ વકુશ પરીષદ્દ ઓર ઉપસર્ગોં સે વાધિત વન કર અપને પ્યારે જીવનકે વિનાશકે ભયકે કારણસે ગૃહીત સયમમાર્ગમે ભ્રષ્ટ હો જાતે હૈ । અર્થાત્ એ જહાં ખી જીવનકે કષ્ટકારી વિપત્તિરુપ વિભીષિકા સે ઉપદ્રવિત હોતે હૈં શીઘ્ર હી વહાં ‘ હસ ક્ષણભગુર જીવનકો સુખ મિલે’ હસ ચાહનાસે સંયમમાર્ગસે હટ જાતે હૈં । એસે ચારિત્રસે પતિત હુએ ભયશીલોંકી પૂર્વકાલગૃહીત પ્રવ્રજ્યા-દીક્ષા મૂલ ઓર ઉત્તરગુણોંકે વિધાતસે નિરર્થક હો જાતી હૈ । ઠીક વાત હૈ—જો ચારિત્રસે ભ્રષ્ટ હો ચુકે હૈં, ઉનકા ગૃહસે નિકલના-ગૃહકા પરિત્યાગ કરના પ્રશસનીય નહી હોતા હૈ; ઉલ્ટા નિંદનીય હી માના જાતા હૈ ।

ભાવાર્થ—કોઈ ૨ વકુશ ક્ષણભગુર જીવનકો સુખી કરનેકે અભિ-

તથા—“ પુટ્ટા ” ઇત્યાદિ !

કોઈ કોઈ બકુશ પરિષદ્દ અને ઉપસર્ગોંથી ગભરાઈ પોતાના પ્યારા જીવનના વિનાશના ભયના કારણથી ઝડપી કરેલા સયમ માર્ગથી ભ્રષ્ટ થઈ જાય છે અર્થાત્ એ જ્યાં પણ જીવનને કષ્ટકારી કોઈ પણ આપત્તિ-વિપત્તિરૂપ કારણથી ઉપદ્રવિત અને છે તરત જ ત્યાંથી આ ક્ષણભગુર જીવનનું સુખ મળે એવી આકાંક્ષાથી તે સયમ માર્ગથી દૂર થાય છે એવા ચારિત્રથી પતિત અનેલા ભયશીલની પૂર્વ કાળમાં ઝડપી કરેલી દીક્ષા મૂળ અને ઉત્તર ગુણોના વિધાતથી નિરર્થક બની જાય છે કીક વાત છે જે ચારિત્રથી ભ્રષ્ટ અનેલા છે એમનું ધરમાથી નિકળવું પ્રશસનીય બનતું નથી, ઉલટું નિંદનીય માનવામાં આવે છે

ભાવાર્થ —કોઈ કોઈ બકુશ ક્ષણભગુર જીવનને સુખી કરવાના અભિપ્રા-

કિંચ—‘વાલવયણિજ્ઞા’ इत्यादि ।

મૂઝ્મ—વાલવયણિજ્ઞા હુ તે નરા, પુણો પુણો જાણ પકપ્પતિ, અહે સમવસા વિદાયમાણા “અહમસીતિ” વિડક્કસે, ઉદાસીણે ફરુસ વયતિ, પલિય પકસથે, અદુવા પકસથે અતહેહિં, તેં વા મેહાધી જાણિજ્ઞા ધમ્મ ॥ સુ. ૮ ॥

છાયા—વાલવયણીયા હુ તે નરા, પુન પુનર્જાતિ પ્રકલ્પયન્તિ, અથા સમવસત્ વિદાયમાના ‘અહમસમીતિ’ અપ્પરુપ્પિયુ, ઉદાસીનાન્ પલ્લપ્પ ક્કન્તિ, પલિત્ત મકલ્પયત્, અથથા મકલ્પયત્ અતથ્યે, કન્મેષાધી ખાનોપાત્ત ધમ્મ ॥ ૮ ॥

ટીકા—યત્ જીવિતસુખાર્થે ચારિત્રચિન્ચુતા અતસ્તે ત્તા વાલ્લવચનીયાઃ—
 ચાલાનામ્—આપામરજ્ઞનાં વચનીયાઃ—નિવ્વનીયા મવન્તિ, કિંચ તે પુન પુનર્જાતિમ્
 =એકન્દ્રિયાદિપુરુષર્ષિ પ્રકલ્પયન્તિ—પ્રકુર્વન્તિ । ચારિત્રપરિવર્તનનાનન્તાનન્તચારં ષત્તુ
 ગતિકસંસારે જન્મમરણાન્યનુવર્ષમાના અરહ્મ્યટીયન્ન્યાયન પરિવર્તન્ત્વ इति માતઃ ।

કિંચ—અથા સમવસન્ત—સંયમસ્થાનાસ્વતન્તાઃ વિદાયમાનાઃ—પણ્ડિતમ્મન્યાઃ
 પ્રાયસે હી પરિપહાદિક્કેઠિ ખાને પર સયમમાર્ગકો છોઢ્ઢ દેતે હિં । પેસે
 જીવોંકી પૂર્વકાલિક પ્રવ્રજ્યા મી નિરર્પક હો જાતી હે ॥ સુ. ૭ ॥

તથા—“વાલવયણિજ્ઞા” इत्यादि—

કર્પો કિ ય વકુણ જીવનકો સુખી કરનેકે અભિપ્રાયસે ચારિત્રસં
 ધ્રષ્ટ પનતે હિં, હસીલિયે પામર જૈસે પ્રાણિયોં લકસે મી નિવ્વનીય હોતે
 હિં । પેસે જીવ ચાર ૧ એકન્દ્રિયાદિક પર્વાયોં મેં અપની વસ્ત્તિ કરતે રહતે
 હિં—અર્થાત્ ગૃહીત ચારિત્રકે ત્યાગસં અનન્તામન્ત ચાર ચતુર્ગતિસ્વરૂપ
 સંસારમેં જન્મ ઝીર મરણકે બહારમેં પઢ કર અરહ્મ—ઘટીયન્નકી તરહ
 પ્રમણ કિયા કરતે હિં ।

પે સંયમસ્થાનસે નીચે ગિરત હિં, ફિર ની અપનેકો પણ્ડિત માનતે

૫મી ૪ પસિક્ક આદિ આપતાં સમમમાર્ગને છોડી દે છે એવા છવોની પૂર્વક
 લિં પ્રમથ્યા પલ્લ નિરર્પક અની અથ છે (સુ. ૭)

તથા—“વાલવયણિજ્ઞા” इत्यादि ।

કેમ કે જે બહુશ છવનને સુખી કરવાના અભિપ્રાયથી ચારિત્રથી પ્રષ્ટ
 બને છે આ માટે પામર એવા પ્રાણીઓથી પલ્લ નિવ્વનીય બને છે એવા છવ
 વારવાર એકન્દ્રિયાદિક પર્વાયોંમાં પોતાની ઉત્પત્તિ કરવા રહે છે અર્થાત્ ગૃહીત
 ચારિત્રના ત્યાગથી અનન્તામન્તચાર ચતુર્ગતિસ્વરૂપ સંસારમાં જન્મ બને
 મરણના બહારમાં પડી અરહ્મ/ઘટીયન્નની મારફત પ્રમણ કિયા કરે છે

તે અજન સ્થાનથી નીચે પડે છે છતાં પલ્લ પોતાની બલને પંક્તિ માને

કિંચ—‘ પુટ્ટા ’ इत्यादि ।

મૂલમ્—પુટ્ટા વેગે નિયટંતિ જીવિયસ્સેવ કારણા, ણિક્ખંતંપિ તેસિં દુન્નિક્ખંતં ભવઈ ॥ સૂ૦૭ ॥

છાયા—સ્પૃષ્ટા વૈકે નિવર્તન્ટે જીવિતસ્યૈવ કારણાત્, નિષ્ક્રાન્તમપિ તેપા દુર્નિષ્ક્રાન્તં ભવતિ ॥ સૂ૦૭ ॥

ટીકા—એકે=કેચન સ્પૃષ્ટા:=પરીપહોપસર્ગેરુપદ્રુતાઃ સન્તઃ જીવિતસ્યૈવ કારણાત્=ક્ષણભંગુરજીવનસ્ય સુખાર્થે નિવર્તન્ટે=સયમાત્પૃથગ્ ભવન્તિ । તેપા=ચારિત્રચ્યુતાના નિષ્ક્રાન્તમપિ=નિષ્ક્રમણમપિ દુર્નિષ્ક્રાન્તં ભવતિ=મૂલોત્તરગુણવિધાતેન નિરર્થકં ભવતિ । ચારિત્રપરિશ્રષ્ટાના ગૃહાન્નિષ્ક્રમણં ન શ્લાઘનીયં ભવતિ; પ્રત્યુત્તરર્હણીયમેવેતિ ભાવઃ ॥ સૂ૦ ૭ ॥

તથા—“ પુટ્ટા ” इत्यादि ।

કોઈ ૨ બકુશ પરીષદ્દ ઓર ઉપસર્ગોં સે વાધિત બન કર અપને પ્યારે જીવનકે વિનાશકે ભયકે કારણસે ગૃહીત સંયમમાર્ગમે બ્રષ્ટ હો જાતે હૈ । અર્થાત્ યે જહાં મી જીવનકે કષ્ટકારી વિપત્તિરૂપ વિમીષિકા સે ઉપદ્રવિત હોતે હૈ શીઘ્ર હી વહાં ‘ હસ ક્ષણભંગુર જીવનકો સુખ મિલે ’ હસ ચાહનાસે સયમમાર્ગસે હટ જાતે હૈ । એસે ચારિત્રસે પતિત હુએ ભયશીલોંકી પૂર્વકાલગૃહીત પ્રવ્રજ્યા-દીક્ષા મૂલ ઓર ઉત્તરગુણોંકે વિધાતસે નિરર્થક હો જાતી હૈ । ઠીક વાત હૈ—જો ચારિત્રસે બ્રષ્ટ હો ચુકે હૈ, ઉનકા ગૃહસે નિકલના—ગૃહકા પરિત્યાગ કરના પ્રશંસનીય નહીં હોતા હૈ; ઉલ્ટા નિંદનીય હી માના જાતા હૈ ।

ભાવાર્થ—કોઈ ૨ બકુશ ક્ષણભંગુર જીવનકો સુખી કરનેકે અભિ-

તથા—“ પુટ્ટા ” इत्यादि ।

કોઈ કોઈ બકુશ પરિષદ્દ અને ઉપસર્ગોંથી ગભરાઈ પોતાના પ્યારા જીવનના વિનાશના ભયના કારણથી ગ્રહણ કરેલા સયમ માર્ગથી બ્રષ્ટ થઈ જાય છે અર્થાત્ એ જ્યાં પણ જીવનને કષ્ટકારી કોઈ પણ આપત્તિ-વિપત્તિરૂપ કારણથી ઉપદ્રવિત બને છે તરત જ ત્યાંથી આ ક્ષણભંગુર જીવનનું સુખ મળે એવી આંક નાથી તે સયમ માર્ગથી દૂર થાય છે એવા ચારિત્રથી પતિત બનેલા ભયશીલની પૂર્વ કાળમાં ગ્રહણ કરેલી દીક્ષા મૂળ અને ઉત્તર ગુણોના વિધાતથી નિરર્થક બની જાય છે ઠીક વાત છે જે ચારિત્રથી બ્રષ્ટ બનેલા છે એમનું ધર્મમાંથી નિકળવું પ્રશંસનીય બનતું નથી, ઉલ્ટું નિંદનીય માનવામાં આવે છે

ભાવાર્થ —કોઈ કોઈ બકુશ ક્ષણભંગુર જીવનને સુખી કરવાના અભિપ્રા-

પ્રવદન્તિ યથા-‘ત્વ હિંસકા મપાત્રાવી સ્વય પતિતાડસિ, કિમન્યમુપદિશસી’-
ત્યાદિ। સુત્રે ‘વિઠક્તે’ ‘પસસ્થ’ इत्यत्र आर्षत्वादकचपनम्। उपસંહારमाह-‘त
मेहा बी’ इत्यादि, सतु=तरमात् कारणात् मधावी=साधुमर्यादाभ्यवस्थिता मुनिः
धर्म=भुतचारिप्रलक्षणं जानीयात्=सम्यग् भावयत्, न तु धर्मात्मवस्तितो मवेताम्०८।
ऐसे અવિશ્યમાન લોપોંસે ઉસે તર્જિત-તિરસ્કૃત કરના; જૈસે-તુમ હિંસક
હો, સુપાત્રાવી હો, સ્વય પતિત હો, દુસરોંકે લિયે કયા ઉપદેશ લેતે હો?
इत्यादि। उपसंहार करते हुए सूत्रकार कहते हैं-“तं मेहा बी” इत्यादि।
इसलिये साधुमर्यादामें व्यवस्थित मेहावी मुनि भुतचारिप्रलक्षण धर्मकी
अच्छी तरहसे भावना जाता रह-उसे समझाएला रहे, धर्मसे कमी
भी प्रच्युत न होवे।

માર્બાર્થ—જો યજ્ઞુષા ક્ષણિક રૂસ જીવનકો સુસ્થિત બનાવની રૂચ્છા
સે ચારિત્રરૂપ ધર્મસે વ્યુત હો જાતે હૈ, અગતક છોડે સે મી છોડે પ્રાણી
उनकी निंदा और इसी करते हैं। चारित्रघट जीवोंका अनन्तानन्त काल
एकेन्द्रियादिक जीवोंकी पर्यायमें ही व्यतीत होता है। चारित्र
घट हो कर भी जो अपनको अच्छा समझत है-अपन भीतर बहुत
भुत होनेका जो अभिमान करते हैं-अन्य निर्मल चारित्र आराधक
साधुओंके प्रति जो कठोर शब्दोंका प्रयोग करते हैं-उनका तिरस्कार
करते हैं-पहिलेके उनके आचरणोंको छे कर जो उन्हें नीचा दिखानेका

ત્યારે આજે અમને ઉપદેશ આપવા આ યા છે. આ પ્રકારના કચનતું નામ
પલિત છે અથવા જે દોષ જોનામાં ન હોય એવા ધર્મ-આદ્યા વિનાના હોય
લગાડી તિસ્કૃત કરવા; જેમ કે-તમે હિંસક છો. ખેડુ બોલનારા છે સ્વય પતિત
છો. ફરી બીજાને શુ ઉપદેશ આપો છે વગેરે ઉપસંહાર કરવાં સૂત્રકાર કહે છે કે-
“તમેહાવી ઈત્યાદિ। આ માટે સાધુ-મર્યાદામાં અવસ્થિત મેહાવી મુનિ ભુતચારિત્ર
રૂપ ધર્મની ભાવ । ભાવના રહે જોને સાધનના મ્હે. ધર્મથી કદિ પણ પાછા ન હો

ભાવાર્થ—જે બહુશ લુલ્લિકે આ જીવનને સુખી બનાવવાની ઇચ્છાથી
ચારિત્રરૂપ ધર્મથી પાછા હો છે આવા સાધુની જગતમાં નાના મોટા જોની
નિંદા અને હાંસી કરે છે ચારિત્રઘટ જીવોના અનન્તાનન્ત કાળ સુખી જોદેન્દ્રિ
યાદિક જીવોની પર્યાયમાં સમય વ્યતીત થાય છે. ચારિત્રઘટ બનીને પણ જે
પોતાને સારા સમજે છે પોતાની અંદર બહુમુત હોવાનું અભિમાન કરે ॥
બીજા નિર્મળ ચારિત્ર આરાધક સાધુ તરફ જે કઠોર શબ્દોનો પ્રયોગ કરે છે-
તેનો તિરસ્કાર કરે છે પહેલાના તેના અવચરજોનો શાખણ આડી તને નીચા

‘અહમસ્મીતિ’ અહમેવ વહુશ્રુતોડત્મીતિ પ્રત્યેક પ્રલપન્તસ્તે વ્યુત્કર્ષયેયુઃ=સ્વ
સ્વમાત્માન પ્રશમન્તિ, યા-યદાચાર્યો જાનાતિ તન્મયા માનેષ જ્ઞાતમિત્યાદિ ।
કિન્ચ-ઉદાસીનાન=ઉપશાન્નકયાયાન સ્વચ્છિત્તિત્તકચનપ્રવૃત્તાનડન્યાનપિ પરુષ
વદન્તિ=આક્ષિપતિ । તદેષ દર્શયતિ-પલિતમિત્યાદિ, પલિત=પ્રાક્તન દીક્ષાગ્રહણા-
ત્પ્રાક્કાલિકચરિત કાષ્ઠમાસ્વદનાદિક પ્રકથયેયુઃ=પ્રવદન્તિ-‘પૂર્વ તૃણકાષ્ઠમાસ્વાહ-
નાદિભિર્ધૃષ્ટગિરસિ તપ મૈક્ષોડપિ કેશો દૃષ્ટિગોચરીમયન્તિ, પૃથ્વૂત્તમ્સ્ય કિમિ-
દાનીમુપદેષ્ટુ પ્રવૃત્તોડસિ’ ડન્યાદિ । અથવા અતલ્યૈઃ=અમદ્વિર્દોષૈઃ પ્રકથયેયુઃ=પરુષ
હૈ । “મૈ હી વહુશ્રુત હ”-ડસ પ્રકાર ચે હરણકસે અપની આઢલાયા
કિયા કરતે હૈ । ડસમે ચે કમી ૨ ચદ્ની કદ્ દિયા કરતે હૈ કિ જો
આચાર્ય જાનતે હૈ વદ્ તો મે પહિલેસે હી જાનતા યા-આદિ । તયા-જિન
કી કષાયે ઉપશાંત હો ચુકી હૈ, આત્મહિતસે અપ્ત વને ટુળ મનુષ્યોકો
જો આત્મહિતકે ઉપદેશ કરનેમે પ્રવૃત્ત હૈં ંસે અન્ય સાધુજનોકા મી
ચે તિરસ્કાર કરતે હૈ-ડનકે પ્રતિ મી ચે કટોર વચનોકા પ્રયોગ કરતે
હૈ । ડસી વાતકો સૂત્રકાર “પલિત પ્રકથયેત્” ડત્યાદિ સૂત્રાંગસે પ્રકટ
કરતે હૈ । દીક્ષા ગ્રહણ કરનેકે પહિલેકે સમયકે આચરણકા નામ પલિત
હૈ । યદિ કોઈ વકુશ નિર્મલ સયમ માર્ગકે આરાધક સાધુજનસે ંસા
કહે કિ હમ તુમ્હે જાનતે હૈ, તુમ ચે હી હો જો પહિલે કાષ્ઠકા માર માથે
પર ઢોયા કરતે ચે । દેલો, યહી કારણ હૈ કિ પહિલે તૃણકાષ્ઠકે મારો
કો ઢોતે ઢોતે તુમ્હારે માથે-શિરપર ંક વાલ મી નજર નહીં આ રહા હૈ,
તુમ ંસે હો; અવડલ નમય કયા હમે ઉપદેશ દેનેકે લિયે પ્રવૃત્ત હો?-ડસ
પ્રકારકે કથનકા નામ પલિત કથન હૈ । અથવા જો દોષ ડસમે ન હો

છે “હુ જ બહુશ્રુત છુ” આ પ્રકારથી તે દરેડના સામે પોતાની બડાઈ ઢાડયે
રાખે છે આમા તે કોઈ વખતે એવુ પણ ડહે છે કે આચાર્ય બે બાણુ છે આ તો હુ
પહેલેથી જ બાણુ છુ વિ

તથા-બેની ડપાય ઉપશાન્ત થઈ ચૂડી છે, આત્મહિતથી અપ્ત
બનેલા માણસોને બે આત્મહિતનો ઉપદેશ આપવામા પ્રવૃત્ત છે એવા અન્ય
સાધુજનોનો પણ તે તિરસ્કાર કરે છે એના તરફ કઠોર વચનોનો પ્રયોગ કરે
છે આ વાતને સૂત્રકાર “પલિત પ્રકથયેત્” ડત્યાદિ સૂત્રાશથી પ્રગટ કરે છે
દીક્ષા લીધા પહેલાના સમયના આચરણુ નામ પલિત છે, કદી કોઈ બકુશ
નિર્મલ સયમ માર્ગના આરાધક સાધુજનને એમ કહે કે હુ તમને બાણુ છુ
તમે તો એ છોને કે પહેલા લાડડાના ભારા માથે ઉપાડના હતા બુઓ, આ
કારણે તમારા માથામા એડ પણ વાળ નજરે પડતો નથી, તમે તો એવા છો,

પ્રવદન્તિ યથા—‘સ્થ હિંસકા મપાત્રાવી સ્વયં પતિતાઽસિ, કિમન્યમુપદિશસી’—
ત્યાદિ। સૂત્રે ‘થિતકસે’ ‘પસસ્થ’ इत्यत्र भार्यत्वादकचनम्। उपसंहारमाह—‘त
मेहा बी’ इत्यादि, तत्=तरमात् कारणात् मधाबी=साधुमर्पादाव्यवस्थिता मुनिः
धर्म=भुतचारित्रछल्लं जानीयात्=सम्यग् भावयत्, न तु धर्मात्मनश्चित्तो महेताम्०८।
ऐसे अधिष्ठाમાન दोषोंसे उसे तर्जित-तिरस्कृत करना; जैसे-तुम हिंसक
हो, मृपावादी हो, स्वयं पतित हो, वृमरोकि लिये क्या उपदेश देते हो?
इत्यादि। उपसंहार करते हुए सूत्रकार कहते हैं—“त मेहाबी” इत्यादि।
इसलिये साधुमर्पादार्थे व्यवस्थित मेधावी मुनि भुतचारित्ररूप धर्मकी
अच्छी तरहसे भावना माता रहे—उसे समझालता रहे, धर्मसे कमी
भी प्रच्युत न होवे।

માર્થ—જો યકુશ ક્ષણિક હમ જીવનકો સુખિત બનાવેની હચ્છા
સે ચારિત્રરૂપ ધર્મસે વ્યુત હો જાતે હે, જગતકે છોટે સે મી છોટે પ્રાણી
વનકી નિંદા ધૌર હસી કરતે હે। ચારિત્રપ્રજ્ઞ જીવોંકા અનન્તાનન્ત કાલ
એકેન્દ્રિયાવિક જીવોંકી પર્યાયમેં હી વ્યતીત હોતા હે। ચારિત્ર
પ્રજ્ઞ હો કર મી જો અપને કો અચ્છા સમજાતે હે—અપને મીતર વહુ
મુત હોનેકા જો અધિમાન કરતે હે—અન્ય નિર્મલ ચારિત્ર આરાધક
સાધુઓંકે પ્રતિ જો કતોર શબ્દોંકા પ્રયોગ કરત હે—અનકા તિરસ્કાર
કરતે હે—પહિલેકે અનકે આચરણોંકો હે કર જો અહે નીચા દિશ્વાનેકા

ત્યારે આને જામને ઉપદેશ આપવા આખા છે. આ પ્રકારના કથનનું નામ
પદિત છે. અથવા જે દોષ બોલાયા ન હોય એવા પણ આપ્યા વિનાના દોષો
હમણી વિસ્ફુટ કરવા; જેમ કે—તમે હિંસક છે. ખેડુ બોલવામાં છે. સ્વયં પતિત
છો. ફરી બીજાને જી ઉપદેશ આપો છો. વગેરે ઉપસંહાર કરવા સૂત્રકાર કહે છે કે—
“ત મેહાવી” इत्यादि। आ भागे साधु-नर्पादाभा अवस्थित मेधावी मुनि भुतचारित्र
रूप धर्मनी भाव। भावता रहे भने आन जाता रहे. धर्मभी कहि पक्ष पाछ न दहे.

માર્થ—જે યકુશ ક્ષણિક આ જીવનને સુખી બનાવવાની પ્રયત્નથી
ચારિત્રરૂપ ધર્મથી પાછા હો છે આવા સાધુની જગતમાં નાના મોટા બેની
નિંદા બને હાંસી કરે છે ચારિત્રપ્રજ્ઞ હોવાનો અનન્તાનન્ત કાળ સુખી બેકેન્દ્રિ
યાવિક હોવાની પર્યાયમા સમય વ્યતીત થાય છે ચારિત્રપ્રજ્ઞ બનીને પણ જે
પોતાને સાચા સમજે છે પોતાની અંદર બહુમુત હોવાનું અધિમાન કરે છે
બીજા નિર્મળ ચારિત્ર આરાધક સાધુ તરફ ૭ કહોર શબ્દોના પ્રયોગ કરે છે—
તેના તિરસ્કાર કરે છે પહેલાના તેના અવસ્થાનો દાખલો આપી તેને નીચા

‘અહમસ્મીતિ’ અહમેવ વહુશ્રુતોઽસ્મીતિ પ્રત્યેક પ્રલ્લપન્તસ્તં વ્યુત્કર્ષયેયુઃ=સ્વં
 સ્વમાત્માન પ્રશસન્તિ, યા-યદાચાર્યો જાનાતિ તન્મયા પ્રાગેવ જ્ઞાતમિત્યાદિ ।
 કિન્ચ-ઉદાસીનાન્=ઉપશાન્તક્રપાયાન્ સ્પલિતહિતક્રયનમટ્ટતાનઽન્યાનપિ પરુષ
 વદન્તિ=આશ્મિપતિ । તદેવ દર્શયતિ-પલિતમિત્યાદિ, પલિત=પ્રાક્તન દીક્ષાગ્રહણ-
 ત્પ્રાક્કાલિકચરિત કાઠમાસ્વદનાદિક પ્રકથયેયુઃ=પ્રવદન્તિ-‘પૂર્વં તૃણકાષ્ઠભારમાહ-
 નાદિર્મિર્વૃષ્ટગિરસિ તવ નૈકોઽપિ કેશો દૃષ્ટિગોચરીભવતિ, એવમ્ભૂતસ્ત્વ કિમિ-
 દાનીમુપદેષુ પ્રત્નોઽસિ’ इत्यादि । અથવા અતઞ્ચેઃ=અસદ્વિદોષેઃ પ્રકથયેયુઃ=પરુષ
 હૈ । “મૈ હી વહુશ્રુત હ”-ઇસ પ્રકાર ચે દરુણકસે અપની આઝલાવા
 ક્રિયા કરતે હૈ । ઇસમે ચે કમી ૨ વદ્દ મી કદ્દ દિયા કરતે હૈ કિ જો
 આચાર્ય જાનતે હૈ વદ્દ તો મૈ પહિલેસે હી જાનતા યા-આદિ । તયા-જિન
 કી કપાયે ઉપશાન્ત હો ચુકી હૈ, આત્મહિતસે બ્રુવ્ત વને દુગ્ધ મનુષ્યોકો
 જો આત્મહિતકે ઉપદેશ કરનેમે પ્રવૃત્ત હૈ એસે અન્ય સાધુજનોકા મી
 ચે તિરસ્કાર કરતે હૈ-ઉનકે પ્રતિ મી ચે કઠોર વચનોકા પ્રયોગ કરતે
 હૈ । ઇસી વાતકો સૂત્રકાર “પલિતં પ્રકથયેત્” इत्यादि સૂત્રાંશસે પ્રકટ
 કરતે હૈ । દીક્ષા ગ્રહણ કરનેકે પહિલેકે સમયકે આચરણકા નામ પલિત
 હૈ । યદિ કોઈ વકુશ નિર્મલ સયમ માર્ગકે આરાધક સાધુજનસે એસા
 કહે કિ હમ તુમ્હે જાનતે હૈ, તુમ ચે હી હો જો પહિલે કાષ્ઠકા ભાર માથે
 પર ઢોયા કરતે થે । દેખો, યહી કારણ હૈ કિ પહિલે તૃણકાષ્ઠકે ભારો
 કો ઢોતે ઢોતે તુમ્હારે માથે-શિરપર એક વાલ મી નજર નહીં આ રહા હૈ,
 તુમ એસે હો; અવઈસ સમય કયા હમે ઉપદેશ દેનેકે લિધે પ્રવૃત્ત હો?-ઇસ
 પ્રકારકે કથનકા નામ પલિત કથન હૈ । અથવા જો દોષ ઉસમે ન હો

છે “હું જ બહુશ્રુત છું” આ પ્રકારથી તે દરેકના સામે પોતાની બડાઈ હાકર
 રાખે છે આમા તે કોઈ વખતે એવું પણ કહે છે કે આચાર્ય જે બાણ છે આ તો હું
 પહેલેથી જ બાણ છું વિ

તથા—જેની કપાય ઉપશાન્ત થઈ ચૂકી છે, આત્મહિતથી બ્રુવ
 બનેલા માણસોને જે આત્મહિતનો ઉપદેશ આપવામા પ્રવૃત્ત છે એવા અન્ય
 સાધુજનોનો પણ તે તિરસ્કાર કરે છે એના તરફ કઠોર વચનોનો પ્રયોગ કરે
 છે આ વાતને સૂત્રકાર “પલિતં પ્રકથયેત્” इत्यादि સૂત્રાંશથી પ્રગટ કરે છે
 દીક્ષા લીધા પહેલાના સમયના આચરણનું નામ પલિત છે, કદી કોઈ બકુશ
 નિર્મલ સયમ માર્ગના આરાધક સાધુજનને એમ કહે કે હું તમને બાણ છું
 તમે તો એ છોને કે પહેલા લાકડાના ભારા માથે ઉપાડતા હતા બુઝો, આ
 કારણે તમારા માથામા એક પણ વાળ નજરે પડતો નથી, તમે તો એવા છો,

પ્રસિદ્ધોઽસિ, તથા અધર્માર્થી=અધર્મામિલાપી અસિ । કિચ્ચ-ધોરા=દુઃસ્મયઃ કર્તુમ-
શ્ક્ય , ધર્મઃ=સાધુનામાચારઃ ઉદીરિતઃ=તીર્થક્ષુરૈઃ કથિતઃ । ત્યજ્યધર્મ્ય અનાદ્યાપા=
તીર્થક્ષુરાદ્યાધર્મિર્ધર્મી સન્ તં=તીર્થક્ષુરોક્ત ધર્મમ્ ઉપેક્ષસ=પરિત્યજસીત્યર્થઃ । આર્થ
ત્વાસ્મૃત્રે પ્રયમપુરુષનિર્દેશઃ । ઇપઃ=પર્વવિષસ્ત્વાદશ્ચો બનઃ વિપખ્યા=કામમોગમ્
નિષ્ક્રિતઃ, અતપ્સ વિતર્કઃ=પદ્મજીવનિકાયોપમર્દનપરાયણઃ વ્યાસ્પાઠઃ=તીર્થક્ષુરૈઃ
કથિતઃ । તસ્માત્ ઇતિ પ્રવીમિ=‘ત્થ મેષાલી મૂલ્વા ધર્મ આનીયા ’ ઇતિ પૂર્વોક્તઃ,
તથા વસ્ત્યમાણં ચ કથયમિ ॥ મૂ० ૧ ॥

સે उन्हें मरवाते हो, तथा उन्हें मारनेवालोंकी तुम अनुमोदना करते हो।
इसलिये तुम बाल हो-अज्ञरूपसे प्रसिद्ध हो । इस प्रकारकी प्रवृत्तिसे
ही यह स्पष्ट मालूम होता है कि तुम अधर्मामिलापी पने हुए हो।
तीर्थक्षुरों ने साधुओंका आचार बहुत कठिनतर फल लाया है-हर एक प्राणी
उसे सहसा नहीं पाल सकता है - ऐसा निश्चय कर तुम उनकी आज्ञा
के बहिर्बर्ती मत बनो। यदि ऐसा करते हो तो निश्चय है कि तुम उनके
धर्मकी अवहेलना करते हो-उपेक्षा करते हो। तीर्थक्षुरोंका यही आदेश
है कि जो तुम्हारे जैसे मनुष्य काम-मोगोंमें मूर्च्छित पने हुए हैं वे पद्म
जीवनिकाय के उपमर्दन करनेमें परायण माने गये हैं । इसलिये मैं
कहता हूँ कि तुम मेषाली बन कर धर्मको समझो । तथा और भी जो
कुछ कहता हूँ उसे सुनो । साधुको कृज, कारित और अनुमोदना एवं
मन बचन और कायसे हिंसादिक पापोंका सर्वथा त्यागी होना चाहिये
ऐसा तीर्थक्षुर प्रभुओंका मुख्य आदेश है यद्यपि-तुम स्वयं हिंसा नहीं

તથા તેને મારવાવાળાઓની અનુમોદના કરે છે, આ માટે તમે બાળ છો-અજ્ઞ
રૂપથી પ્રસિદ્ધ છો । આ પ્રકારની પ્રવૃત્તિથી એ સ્પષ્ટ માર્ગમ ધાર છે કે તમે
અધર્મ-અનિલાપી બન્યા છો । તીર્થક્ષુરોએ સાધુઓનો આચાર વધુ જ કઠિન
બતાવ્યો છે । હરેક પ્રાણી તેને સહસા પાળી શકતો નથી । તેવો નિશ્ચય કરી
તમે એમની આજ્ઞાન ઉલ્લંઘન કરનાર ન બનો । એ તમે એવું મર્દન શખવા
હો તો એ નિશ્ચય છે કે તમે તેના ધર્મની અવલેહના કરો છો-ઉપેક્ષા કરો
છો । તીર્થક્ષુરોએ એ આદેશ છે કે જે તમારા જેવા મનુષ્ય કામચોખ્ખામાં મૂર્ચ્છિત
બનેલા છે તેઓ પદ્મજીવનિકાયનો ઉપમર્દન કરવામાં પરાયણ માનવામાં આવેલા છે ।
આ માટે હું કહું છું કે તમે મેષાલી બની ધર્મને સમજો, બને બીજું પણ જે
કહું છું તે સાંભળો । સાધુએ કશું, કસવું બને અનુમોદન આપવું બને મન
વચન બને કાયાથી હિંસાદિક પાપોનો તથા ત્યાગ કરવો બેઠબેઠો, એવો તીર્થક્ષર
પ્રભુને મુખ્ય આદેશ છે । કદાચ તમે પોતે હિંસા ન કરતા હો; પરંતુ બીજા

ચારિત્રવિચ્યુતં વાલમાચાર્યાદિરેવં શિક્ષયેદિત્યાહ—‘અહમ્મટ્ટી’ ઇત્યાદિ ।

મૂલમ્—અહમ્મટ્ટી તુમંસિ ણામ વાલે, આરંભટ્ટી અણુવચમાણે ‘હણ પાણે’ ઘાયમાણે, હણઓ વાવિ સમણુજાણમાણે, ‘ઘોરે ધમ્મે ઉદીરિણ’ ઉવેહઈ ણં અણાણાણસ વિસણ્ણે વિતદે વિયાહિણ—ત્તિવેમિ ॥ સૂ. ૧ ॥

છાયા—અધર્માર્થી ત્વમસિ નામ વાલઃ, આરમ્ભાર્થી અણુવદન્ ‘પ્રાણાન્—જહિ’ ઘાતયન્, ઘનતશ્ચાપિ સમનુજાનાનઃ, ઘોરઃ ધર્મઃ ઉદીરિતઃ, ઉપેક્ષસે તમ્ અનાજ્ઞાયામ્ એષ વિપણ્ણઃ વિતર્દઃ વ્યાખ્યાતઃ—ઇતિ વ્રવીમિ ॥ મૂ. ૧ ॥

ટીકા—હે શિષ્ય ! યતસ્ત્વમ્ આરમ્ભાર્થી=પહ્નજીવનિકાયોપમર્દનપ્રવૃત્તઃ ‘પ્રાણાન્=પ્રાણિનઃ જહિ=મારય’ ઇતિ અણુવદન્=પુનઃ પુનર્વૃત્તવન્, તથા અપરૈઃ ઘાતયન્, ઘનતશ્ચાપિ સમનુજાનાનઃ=અનુમોદયન્ અસિ, તસ્માત્ત્વ વાલો નામ=અજ્ઞતયા

પ્રયત્ન કરતે હૈં, અવિચ્યમાન દોષોસે જો ઉન્હેં દૂષિત પ્રકટ કરતે હૈં એસે જીવ સાધુમર્યાદાસે બાહ્ય હૈં । ઇનમેં પ્રથમ નંબરકી વાલતાકે સાથ ૨ દ્વિતીય નંબરકી વાલતા રહી હોતી હૈ । ઇસલિયે મુમુક્ષુ સાધુકા કર્તવ્ય હૈ કિ વહ કમી ખી કિસી અન્ય સાધુકે પ્રતિ પરુષ (કઠિન) શબ્દોંકા પ્રયોગ ન કરે, તખી જાકર શ્રુતચારિત્રરૂપ ધર્મકા વહ સરક્ષણ ઔર પાલન કર સકતા હૈ ॥ સૂ. ૮ ॥

ચારિત્રસે ંષ્ટ હુએ વાલજીવોંકો આચાર્ય કિસ પ્રકારસે સવોધે ? ઇસ વાતકો પ્રકટ કરનેકે લિયે સૂત્રકાર કહતે હૈં—“અહમ્મટ્ટી ” ઇત્યાદિ ।

વાલ શિષ્યકો સવોધન કરતે હુએ આચાર્ય કહ રહે હૈં કિ હે શિષ્યો ! તુમ પહ્નજીવનિકાયોં કે ઉપમર્દનરૂપ આરમ્ભમેં પ્રવૃત્ત હો, ક્યોં કિ તુમ “ પ્રાણિયોંકો મારો ” ઇસ પ્રકાર વાર ૨ કહતે હો, ઔર દૂસરોં

દેખાડવાનેા પ્રયત્ન કરે છે પગ-માથા વિનાના દોષોથી જે તેને દોષિત પ્રગટ કરે છે, એવા જ સાધુ મર્યાદાથી બાહ્ય છે તેમા પહેલા નંબરની બાલતાની સાથે સાથે બીજા નંબરની બાલતા (અજ્ઞાનતા) રહી હોય છે માટે મુમુક્ષુ સાધુનુ કર્તવ્ય છે કે કોઈ પણ વખતે બીજા સાધુ પ્રત્યે કંઠણ શબ્દનો પ્રયોગ ન કરે, તો જ તે શ્રુતચારિત્રરૂપ ધર્મનુ સરક્ષણ અને પાલન કરી શકે છે (સૂ. ૮) ચારિત્રથી બ્રહ્મ બનેલા બાલજીવોને આચાર્ય કયા પ્રકારે સંબોધે ? આ વાતને પ્રગટ કરવા માટે સૂત્રકાર કહે છે “ અહમ્મટ્ટી ” ઇત્યાદિ

બાળશિષ્યને સંબોધન કરીને આચાર્ય કહે છે કે, હે શિષ્યો ! તમે પશુ વનિકાઓના ઉપમર્દનરૂપ આરભમા પ્રવૃત્ત છો, કેમ કે તમે—“પ્રાણીઓને મારો” આ પ્રકારે વારંવાર કહો છો અને બીજાઓથી તેનો ઘાત કરાવો છો

પ્રસિદ્ધોડસિ, તથા અધર્માર્થી=અધર્મામિલાપી અસિ। કિચ્ચ-ધોરા=દુઃસ્વમયઃ કર્તુમ
શક્યઃ, ધર્મ=સાધુનામાધાર ઉદીરિત=તીર્થકૂરે કથિત ઇત્યનપાર્ય ધનાદાર્યા=
તીર્થકૂરાદાવહિર્ધર્મી સન્ ત=તીર્થકૂરોક્ત ધર્મ ઉપેક્ષસ=પરિત્યગસીત્યર્થઃ। આર્પ
ત્વાસ્તુપ્રે પ્રથમપુરુષનિર્વેશઃ। ઇપ્પ=ઈર્ષ્યવિષસ્વાદશ્ચો જના વિપણ્ણ=કામમોગમ્
ચ્છિન્નઃ, અતપ્પ વિહર્દઃ=પદ્મોષનિકાયોપમર્દનપરાયણં વ્યાસ્પાત=તીર્થકૂરેઃ
કથિત। તસ્માદ્ ઇતિ ઘર્ષીમિ=‘ત્વં મેષાધી ભૂત્વા ધર્મ જાનીયાઃ’ ઇતિ પૂર્વોક્ત, તથા
વક્ષ્યમાર્થં ચ કથયમિ ॥ મૂ. ૧ ॥

સે અને મરણાલે હો, તથા અને મારનેચાલોંકી તુમ અનુમોદના કરતે હો।
ઇસલિયે તુમ ચાલ હો-અશ્વરૂપસે પ્રસિદ્ધ હો। ઇસ પ્રકારકી પ્રવૃત્તિસે
હી યહ સ્પષ્ટ માલૂમ હોતા હૈ કિ તુમ અધર્મામિલાપી બને હુપ હો।
તીર્થકૂરોં ને સાધુઓંકા આધાર વહુત કઠિનતર વતલાયા હૈ-હરેક પ્રાણી
વસે સહસા નહીં પાલ સકતા હૈ - એસા નિશ્ચય કર તુમ અનેકી આજ્ઞા
કે વહિર્ધર્મી મત બનો। યદિ એસા કરતે હો તો નિશ્ચય હૈ કિ તુમ અનેકે
ધર્મકી અવજેહના કરતે હો-ઉપેક્ષા કરતે હો। તીર્થકૂરોંકા યહી આદેશ
હૈ કિ જો તુમ્હારે જેસે મનુષ્ય કામમોગોંમે મૂચ્છિત બને હુપ હૈ વેપદ
જીવનિકાય કે ઉપમર્દન કરનમેં પરાયણ માન ગયે હૈ। ઇસલિયે મેં
કહતા હું કિ તુમ મેષાધી ધન કર ધર્મકો સમજો। તથા ઓર ની જો
કુછ કહતા હુ વસે સુનો। સાધુકો કૂત, કારિત ઓર અનુમોદના ગર્વ
મન ધ્વજન ઓર કાપસે હિંસાદિક પાપોંકા સર્વેષા ત્યાગી હોના ચાહિયે
એસા તીર્થકૂર પ્રજુઓંકા મુખ્ય આદેશ હૈ યદ્યપિ-તુમ સ્વયં હિંસા નહીં

તથા તેને આસ્વાનાજાઓની અનુમોદના કથે છે, આ માટે તમે જાણ છે-અશ્વ
રૂપથી પ્રસિદ્ધ છે। આ પ્રકારનાં પ્રવૃત્તિથી એ સ્પષ્ટ માલૂમ થાય છે કે તમે
અધર્મ-અભિક્ષતી બન્યા છે। તીર્થકથેએ સાધુઓને આધાર વધો ૪ કઠિન
મતાવ્યો છે। હરેક પ્રાણી તેને સહસા પાળી શકતો નથી, તેવો નિશ્ચય કરી
તમે જેમની આજ્ઞાનું ઉલ્લંઘન કરવા ન બનો। એ તમે એવું વાન રાખવા
હો તો એ નિશ્ચય છે કે તમે તેના ધર્મની અવજેહના કથે છે-ઉપેક્ષા કરી
છે। તીર્થકથેએ એ આદેશ છે કે જે તમારા જેવા મનુષ્ય કામચેત્તેર્મા મૂચ્છિત
બનેલા છે તેઓ પદ્મજીવનિકાયને ઉપમર્દન કરવામાં પરાયણ મનાવામાં આવેલ છે.
આ માટે હું હર્ષુ હું કે તમે મેષાધી બની ધર્મને અમજો, અને બીજુ પક્ષને
હર્ષુ હું તે સાંભલો. સાધુએ કરવું, કરવવું અને અનુમોદન આપવું અને મન
ધ્વજન અને કાયાથી હિંસાદિક પાપોને સદા ત્યાગ કરવો એમજે, એવો તીર્થકૂર
પ્રજુને મુખ્ય આદેશ છે. કદાચ તમે પોતે હિંસા ન કરવા હો, પરંતુ બીજા

इति ब्रवीमिति पूर्वसूत्रोपात्तं वक्ष्यमाणवचनमाह 'किमणेण भो' इत्यादि।

મૂલમ્—કિમણેણ ભો ! જણેણ કરિસ્સામિત્તિ મન્નમાણા
 एवं एगे विइत्ता मायरं पियरं हिच्चा णायओ य परिग्गहं
 વીરાયમાણા સમુટ્ટાણ અવિહિંસા સુવ્વયા દંતા, પસ્સ દીણે
 उप्पइण पडिवयमाणे, वसट्टा कायरा जणा लूसणा भवन्ति । सू० १०।

છાયા—કિમનેન ભો ! જનેન કરિણ્યામીતિ મન્યમાના એવમેકે વિદિત્વા
 मातरं पितरं हित्वा ज्ञातीन् च परिग्रह वीरायमाणाः समुत्थाय अविहिंसाः सुव्रता
 દાન્તાઃ, પશ્ય દીનાન્ ઉત્પતિતાન્ પ્રતિપતતઃ, વશાર્તાઃ કાતરા જનાઃ
 लूपका भवन्ति ॥ सू० १० ॥

टीका—भो ! = हे आत्मन् ! अनेन = एतद्भवप्राप्तेन जनेन = मातापित्रादि-
 स्वजनेन स्वार्थपरेण वस्तुतोऽनर्थरूपेण किं करिष्यामि = स्वकर्मविपाकावसरे नायं

करते हो, परंतु फिर भी दूसरों को उस ओर लगाते हो, एव उस काम
 के करनेवालोंकी अनुमोदना भी करते हो । अतः तुम्हारी इस प्रवृत्तिसे
 यही निश्चित होता है कि तुम अभी तक भी साधुमर्यादासे अनभिज्ञ बने
 हुए हो; इसलिये इस अज्ञताका त्याग करो । तुम तो समझदार हो, प्रयत्न
 करो, ता कि मुनिधर्मका वास्तविक स्वरूप समझ सको । आरभार्थी
 बन कर अधर्माभिलाषी मत बनो ॥ सू० ९ ॥

“इति ब्रवीमि” इस प्रकार जो ९ में सूत्रमें कहा है उसीके विषय
 को सूत्रकार कहते हैं—“किमणेण भो” इत्यादि ।

જો પહિલે સંસારકા પરિત્યાગ કર વિરક્ત સાધુ બન જાતે હૈં ઔર
 પીછે ઉસસે પતિત બન ગૃહસ્થ હો જાતે હૈં, ઉનકે વિષયમેં સૂત્રકાર કથન
 करते हैं कि ये प्राणी प्रथम ऐसा विचार करते हैं “हे आत्मन् ! इस

ઓને તે તરફ લગાડો છે, અને તેવા કામ કરવાવાળાઓની અનુમોદના પણ
 કરે છે, માટે તમારી આ પ્રવૃત્તિથી એ નિશ્ચિત થાય છે કે તમે હજી સુધી
 સાધુમર્યાદાથી અનભિજ્ઞ છો માટે આ અજ્ઞતાનો ત્યાગ કરો તમે સમજદાર
 છો, પ્રયત્ન કરો, જેથી મુનિધર્મનું વાસ્તવિક સ્વરૂપ સમજી શકો આરભાર્થી
 બની અધર્માભિલાષી ન બનો (સૂ. ૯)

“इति ब्रवीमि” આ પ્રકારે જે નવમા સૂત્રમાં કહેલ છે એ વિષયને
 सूत्रकार કહે છે—“किमणेण भो” ઇત્યાદિ

જે પહેલા સંસારનો પરિત્યાગ કરી વિરક્ત સાધુ બની જાય છે, અને
 પાછળથી એનાથી પતિત થઈ ગૃહસ્થ થઈ જાય છે, એના વિષયમાં સૂત્રકાર કહે
 છે—એ પ્રાણી પ્રથમ એવો વિચાર કરે છે “હે આત્મન્ ! આ જાવમાં પ્રાપ્ત એવા

जनो मम करणाय वा प्राणाय वा मयिप्यतीति मन्यमाना एके कंचन धर्मकथादि
भ्रमणेन निवृत्तिसंसारस्वभावाः एषम्=एतत्स्वकारक संसारस्वरूपं विदित्वा=सर्वधा-
नर्षमूलं विज्ञाय मातरं पितरम्, उपलक्षणतया पुत्रकलत्रमित्रादिकमपि, तथा धात्रीन्
=मान्भवान् परिग्रहं=धनधान्यहिरण्यसुवर्णहर्म्यादिकं च हित्वा=वैराग्यमाचनया वृज
कृत्परित्यज्य धीरायमाणाः=धारित्रग्रहणे सिद्धयत्प्रवर्तमानाः समुत्थाय=प्रव्रज्यां गृ
हीत्वा अविहिंसा=पट्टकायोपमर्दननिवृत्ता, अतएव मुक्ताः=प्राणातिपातविरममादि
महाप्रतपारिषाः, दान्ताः=इन्द्रियनोइन्द्रियदमनप्रवृत्ता भवन्ति । सन् उत्पतितान्=
प्रबलमोहोदयेन समस्तस्थानात् उत्सृज्य निर्गतान् प्रतिपततः=कर्मगतवैचित्र्यात्का

भवमें प्राप्त स्वार्थमें तत्पर एवं वास्तविक दृष्टिसे अनर्षरूप माता-पिता
आदि स्वजनसे मैं क्या करूँगा ? ये मेरे क्या काम आयेंगे ? जब मैं अपन
शुभ और अशुभ कर्मके फलका मोरता बनूँगा तब य मुझे उसमें सहा
यक नहीं हो सकेंगे, न ये मुझे शरणमूल होंगे, और न ये मेरे रक्षक
ही होंगे" ऐसे अध्यवसायसे प्रेरित हो कई एक जीव धार्मिक कथाओं
क अवलोकनसे संसारका स्वरूप जानकर और माता पिता तथा उपलक्षण
से-पुत्र, कलत्र एवं मित्रादिकोंको, तथा पाँचवों, धन, धान्य, हिरण्य,
सुवर्ण और मकान आदिको वैराग्यमाचनसे वासित अन्तःकरण बन,
वृणकी तरह छोड़ कर, धारित्रके ग्रहणमें सिद्धकी तरह प्रवृत्तिशील
बनते हुए दीक्षा धारण करते हैं, और पट्टकायके जीवोंकी हिंसासे दूर
रहते हुए प्राणातिपातविरमण आदि पंच महाप्रतोंका आराधन करते
हुए इन्द्रिय और मनका निग्रह करनेमें लगतीन रहते हैं। इतनी अवस्था
तक भी पहुँचे हुए जीवोंको मोहका प्रपल वदयका झकोरा कहाँ से कहाँ

स्वार्थमा उत्पन्न अने वास्तविक दृष्टिसे अनर्षरूप माता-पिता आदि स्वजन
आपके कुछ कुछ ? आ आपने माता क्या काममें आववाया ? आपने कुछ माताशुभ अने
अशुभ कर्मना होनेने बोधता बनीश त्पारे जेभा जे अने सहाय करी शकवाना
नथी न जे अने आश्रय आपरी, न तो माता रक्षक बनरी आपरा विना
रही प्रेराधने केअ कोर एव धार्मिक कथाओंना अवलुधी संसारनु स्वरूप
आधी, माता-पिता, श्री पुत्र कुटुंब तेमज मित्रादिको तथा धन, धान्य हीरा,
माती, सुवर्ण अने मकान आदिने वैराग्य आववाधी भिरी, धारित्रने
प्रपल कल्याणमें सिद्धनी माहक प्रवृत्तिशील बनी दीक्षा धारण करे छ अने पट्टा
यना एवेनी हिंसाधी दूर रही प्राणातिपातविरमण बनेरे पाप नदामतोनी
आसपना करवा इन्द्रिय अने मनने निग्रह कल्याण उत्पन्न रहे छ आटली
अवस्था सुधी पट्टाधिका एवने पट्टा मादना प्रवृत्ति उदयने कोकर आपरो कथाधी

રાગારસદશગૃહસ્થાવાસે પુનર્નિપતતઃ, અતएव दीनान्=शृगालवन्नीचभावप्रगतान्
 संसारदुःखव्याकुलान् पश्य=हे शिष्य ! अवलोकय । यतः वशात्ताः=कषायवशव-
 र्त्तित्वादार्त्तरौद्रध्यानयुक्ताः, कातराः=शृगालसादृश्यं प्राप्य परीषहोपसर्गभीरवो ये

લે જાકર પટક દેતા હૈ-इसके लिये सूत्रकार “पश्य दीनान् उत्पतितान्
 प्रतिपततः ” इस पंक्तिद्वारा प्रकट करते हैं —

वे इसमें बतलाते हैं कि प्रबल मोहके उदयसे सयमस्थानसे उछल-
 कर निकलनेवाले वे जीव कर्मकी गतिकी विचित्रतासे कारागारके तुल्य
 गृहस्थावासमें जाकर ठहरते हैं और वहां शृगालकी तरह नीच मनो-
 वृत्तिसे युक्त होते हुए सांसारिक दुःखोंसे व्याकुल होते रहते हैं ।
 शिष्यको सम्योधन कर सूत्रकार कहते हैं कि हे शिष्यो ! तुम देखो !
 क्या से क्या वे बन जाते हैं । इस प्रकारके उनके परिवर्तनमें छिपी हुई
 कौन वस्तु काम करती है कि जिससे मोहके उदयकी प्रबलता जागृत
 बन उनका सर्वसंहारक बनती है ? इसका उत्तर सूत्रकार “वशात्ताः
 कातराः जनाः लूषका भवन्ति” इस पंक्तिसे देते हैं । वे कहते
 हैं-इसमें प्रबल अपराध कषायवशवर्तिताका है । इतना सब कुछ करने
 पर भी वे जो प्रबल मोहके उदयसे पतित बना दिये जाते हैं, उसका
 प्रधान कारण उनका कषायोंसे युक्त होना है । कषायोंसे युक्त होनेके
 कारण ही जीव आर्त्त एव रौद्रध्यानवाले होते हैं । जिस प्रकार शृगाल
 जरासा भी ध्वनि पाकर अपने स्थानसे भाग खड़ा होता है, उसी प्रकार
 ये भी परीषह और उपसर्ग आने पर, उनसे भयभीत बनकर अपने

ઉપાડી કથા પછાડી દે છે એ અગે સૂત્રકાર “પશ્ય દીનાન્ ઉત્પતિતાન્ પ્રતિપતત ”
 આ પંક્તિદ્વારા પ્રગટ કરે છે તેઓ આમા બતાવે છે કે પ્રબળ મોહના ઉદયથી
 સયમસ્થાનથી ઉછળી કર્મની વિચિત્રતાથી જીવ કારાગારતુલ્ય ગૃહસ્થવાસમા જઈ
 પડે છે ત્યા શૃગાલની માફક નીચ મનોવૃત્તિથી યુક્ત બની સાસારિક દુઃખોથી
 વ્યાકુળ થતો રહે છે શિષ્યને સમોધન કરતા સૂત્રકાર કહે છે કે હે શિષ્યો !
 તમે જુઓ, ઘડીમા શુ થી શુ થઈ બન્ય છે આ પ્રકારના એના પરિવર્તનમા કઈ
 એવી છુપી વસ્તુ કામ કરે છે કે જેથી મોહના ઉદયની પ્રબલતા બન્યત થઈ
 એનો સર્વ સંહાર કરે છે ? આનો ઉત્તર સૂત્રકાર વશાત્તા કાતરા જના
 લૂષકા ભવન્તિ ” આ પંક્તિથી આપે છે તેઓ કહે છે-આમા પ્રબળ અપરાધ
 કષાયવશવશવર્તિતાનો છે આટલું ડરવા છતા પણ મોહના પ્રબળ ઉદય એને પતિત
 બનાવી દે છે. આનુ પ્રધાન કારણ એનુ કષાયોથી યુક્ત થવુ છે કષાયોથી યુક્ત
 થવાના કારણે જ જીવ આર્ત-રૌદ્ર ધ્યાનવાળો બની બન્ય છે. જે રીતે શૃગાલ

જનાઃ સન્તિ તે સૂક્ષ્માન્વતર્થિર્નસક્ષા મનન્તિ । અદ્યક્ષશીલાક્ષસાક્ષાણિ પારયિત્વ
કઃ પારયિષ્યતીત્યર્થાય દ્રવ્યલિજ્ઞ માલિજ્ઞ ચ વિદ્યાય સર્વથા પટ્ટકાયવિરામકા
મન્તીતિ માલઃ ॥ સૂ૦ ૧૦ ॥

પમાત્કૃતાનાં લોકપ્રવેશના મળતીત્યાદિ—‘અહમેગેસિ’ રૂપાદિ ।

મૂલ્ય—અહમેગેસિ સિલોપ પાષણ મળે, તે સમળવિઘ્નમતે
સમળવિઘ્નમતે ॥ સૂ૦ ૧૧ ॥

છાયા—અયેકેપાં શ્લોક પાપકો મળતિ, સ મળવિઘ્નમતઃ મળવિઘ્નમતઃ ।

ટીકા—અય=દ્રવ્યમાલિકાત્યાગાનન્તરમ્ એકેપાં=એ મળપ્રતિક્ષા; પરિત્યક્ત
સપમાસ્તેપાં મધ્ય કષિત્યક્ષ્યાત્યાગસમનન્તરમવન્નિયન્તે, કેચિદ્વિત્યકાષ્ટેન, યથા
કૃપીવલ્લભુનિર્મલગદમિમ્બલં રજોદરણ-સદોરકમુલ્લભલિકા-વક્ત્ર-પાદામિ પ્રતિષ્ઠિત સમયસ

મહાપ્રત-આરાધન-રૂપ સ્થાનસે ભાગ મળે હોતે હૈ—અર્થાત્ વર્તોકે લોપ
કરનવાલે હોતે હૈ । દ્રવ્યલિજ્ઞ તથા માલિકાજ્ઞો તજ કર યે સર્વથા પટ્ટ
કાયકે જીવોકે વિરામક હો જાતે હૈ ॥ સૂ૦ ૧૦ ॥

પટ્ટાકાંકી લોકમાં અવલેહના હોતી હૈ—હસ પાતકો પ્રદર્શિત
કરનેકે લિયે સૂત્રકાર કહતે હૈ—‘અહમેગેસિ’ રૂપાદિ ।

દ્રવ્યલિજ્ઞ ઓર માલિકાજ્ઞે ત્યાગકે યાદ અપની પ્રતિજ્ઞામજ્ઞ કરનવાલે
તથા સંયમકા પરિત્યાગ કરનવાલે વન જીવોમાં સે કિન્હી ૨ જીવોકી
પ્રવ્રજ્યા ત્યાગકે અનન્તર સમયમાં હી સૂત્ર હો જાતી હૈ, તથા કિન્હી ૨
કી કુણ સમય પદ્માત, જેસે કૃપીવલ્લ મુનિકી કિ જિસને મળવાનુકે
સમય હી રજોદરણ, સદોરક મુલ્લભલિકા યથં વક્ત્ર ઓર પાદોંકા પરિ
ત્યાગ કર દિયા થા, સમયસરણકી શ્રમિસે યાદર નિકલતે સમય હી

(સિધાન્ત) જસ અઠણપ્રત સાજળતા પેતાના સ્થાનથી જાગે છે એ જ રીતે
એ પશુ પરિવ્રત અને ઉપવ્રત જાપતાં જોનાથી અવશીત બની પેતાના
મહાપ્રતોની આસપાસના સ્થાનેથી જાગી છૂટે છે અર્થાત્ મહાપ્રતોને જાગી
નાગે છે દ્રવ્યલિજ્ઞ તથા માલિકાજ્ઞને જોયેને પટ્ટકાયના લયોને એ સદા
નિસપક બની બચ છે (સૂ ૧)

પટ્ટાકાંકીની લોકમાં મરકરી થાય છે આ વાતને પ્રદર્શિત કરવા સૂત્રકાર
કહે છે અહમેગેસિ રૂપાદિ.

દ્રવ્યલિજ્ઞ અને માલિકાજ્ઞના ભાગ જાદ પેતાની પ્રતિજ્ઞા બાદ કરવાવાળા
અને સુચમ પરિત્યાગ કરવાવાળા તે જોનામાંથી કોઈ કોઈ જીવની પ્રવ્રજ્યા
ત્યાગના જાદના સમયમાં જ મૃત્યુ થઈ બચ છે તથા કોઈ કોઈની પેાડ અમય
જાદ; એવી રીતે કૃપીવલ્લ મુનિકાંકે એવે અમયનાની સમય જ સ્નેહસ્વ મરોરક

રાગારસદશગૃહસ્થાવાસે પુનર્નિપતતઃ, અતएव दीनान्=शृगालवन्नीचभावप्रगतान्
 संसारदुःखव्याकुलान् पश्य=हे शिष्य ! अवलोकय । यतः वशार्ताः=कषायशव-
 चित्त्वादार्त्तरौद्रध्यानयुक्ताः, कातराः=शृगालसादृश्यं प्राप्य परीषहोपसर्गभीरवो ये
 ले जाकर पटक देता है-इसके लिये सूत्रकार “पश्य दीनान् उत्पतितान्
 प्रतिपततः ” इस पंक्तिद्वारा प्रकट करते हैं —

वे इसमें बतलाते हैं कि प्रबल मोहके उदयसे संयमस्थानसे उछल-
 कर निकलनेवाले वे जीव कर्मकी गतिकी विचित्रतासे कारागारके तुल्य
 गृहસ્થાવાસमें जाकर ठहरते हैं और वहां शृगालकी तरह नीच मनो-
 वृत्तिसे युक्त होते हुए सांसारिक दुःखोंसे व्याकुल होते रहते हैं ।
 शिष्यको सम्योधन कर सूत्रकार कहते हैं कि हे शिष्यो ! तुम देखो !
 क्या से क्या वे बन जाते हैं । इस प्रकारके उनके परिवर्तनमें छिपी हुई
 कौन वस्तु काम करती है कि जिससे मोहके उदयकी प्रबलता जाग्रत
 बन उनका सर्वसंहारक बनती है ? इसका उत्तर सूत्रकार “वशार्ताः
 कातराः जनाः लूषका भवन्ति” इस पंक्तिसे देते हैं । वे कहते
 हैं-इसमें प्रबल अपराध कषायवशवर्तिताका है । इतना सब कुछ करने
 पर भी वे जो प्रबल मोहके उदयसे पतित बना दिये जाते हैं, उसका
 प्रधान कारण उनका कषायोंसे युक्त होना है । कषायोंसे युक्त होनेके
 कारण ही जीव आर्त्त एव रौद्रध्यानवाले होते हैं । जिस प्रकार शृगाल
 जरासा भी ध्वनि पाकर अपने स्थानसे भाग खड़ा होता है, उसी प्रकार
 ये भी परीषह और उपसर्ग आने पर, उनसे भयभीत बनकर अपने

ઉપાડી કયા પછાડી દે છે એ અગે સૂત્રકાર “પશ્ય દીનાન્ ઉત્પતિતાન્ પ્રતિપતત.”
 આ પંક્તિદ્વારા પ્રગટ કરે છે તેઓ આમા બતાવે છે કે પ્રબળ મોહના ઉદયથી
 સંયમસ્થાનથી ઉછળી કર્મની વિચિત્રતાથી જીવ કારાગારતુલ્ય ગૃહસ્થાવાસમા જઈ
 પડે છે ત્યા શૃગાલની માફક નીચ મનોવૃત્તિથી યુક્ત બની સાસારિક દુઃખોથી
 વ્યાકુળ થતા રહે છે શિષ્યને સંબોધન કરતા સૂત્રકાર કહે છે કે હે શિષ્યો !
 તમે જુઓ, ઘડીમા શુ થી શુ થઈ જાય છે આ પ્રકારના એના પરિવર્તનમા કઈ
 એવી છુપી વસ્તુ કામ કરે છે કે જેથી મોહના ઉદયની પ્રબલતા જાગ્રત થઈ
 એનો સર્વ સંહાર કરે છે ? આનો ઉત્તર સૂત્રકાર વશાર્તા. કાતરા જના
 લૂષકા ભવન્તિ” આ પંક્તિથી આપે છે તેઓ કહે છે-આમા પ્રબળ અપરાધ
 કષાયવશવશવર્તિતાનો છે આટલું કરવા છતાં પણ મોહના પ્રબળ ઉદય એને પતિત
 બનાવી દે છે. આનું પ્રધાન કારણ એનું કષાયોથી યુક્ત થવું છે કષાયોથી યુક્ત
 થવાના કારણે જ જીવ આર્ત-રૌદ્ર ધ્યાનવાળો બની જાય છે જે રીતે શૃગાલ

इति द्विरुपतेमेदमुक्त भवति—सोके सर्वत्र प्रतिदेशं प्रतिग्रामं प्रतिनगरं प्रतिस्वसं
प्रतिमनं समयभ्रष्टानां निन्दा मसरसीति ॥ सू० ११ ॥

किञ्च—‘पासहेगे’ इत्यादि ।

मूकम्—पासहेगे समन्नागपहि असमन्नागप, जममाणेहि अण
ममाणे, विरपहि अविरप, दविपहि अदविप। अभिसमेच्चा पठिप
मेहारी णिद्वियद्वे वीरे आगमेण सया परक्रमज्जासि—त्तिवेमि ॥ १२ ॥

छाया—पश्यत एके समन्नागतै असमन्नागताः, नमस्त्रिरमन्तः, वि-
रतरविरताः, द्रविक्त्रद्रविकाः । अभिसमेत्य पण्डितः मेधावी निष्ठितार्थः वीर-
भागमेन सदा पराक्रमबा, इति व्रवीमि ॥ मू० १२ ॥

टीका—हे शिष्याः ! पश्यत यूयं कर्मप्रमाणम्, एके केचन इतमायाः समन्वा-
गतैः=उपविहारिमिः सह वसन्तोऽपि असमन्वागताः=शीतलविहारिणो भवन्ति ।
तथा—नमस्त्रिः=संयमाराधकतया विनयनघ्नैः सह स्थिता अपि अनमन्तः=अविनीता
अप्रकारिणः, तथा विरतैः=विरतिमग्निः सह निवसन्तोऽपि अविरताः=विरतिर

लिये અમળચિન્તાનત્ત હૈ । મૂલ સૂત્રમેં યહ પદ્ શો બાર કહા ગયા હૈ; સો
ઠસકા યહ મતલબ હૈ—કિ લોકમેં સર્વ જગહ—હરેક ગાંઠમેં, હરેક
નગરમેં, હરેક સ્થાનમેં ઔર પ્રત્યેક મનુષ્યમેં સંયમસે ઘ્રષ્ટ કુપ મનુષ્યો
કી નિન્દા હોતી હૈ ॥ સૂ. ૦૧૧ ॥

तथा—“पासहेगे” इत्यादि ।

शिष्योंको संबोधित करते हुए सूत्रकार कहते हैं कि हे शिष्यो !
तुम लोग कर्मोंके प्रमाणको तो देखो, विचारें इतमाय कोई साधुजन
उग्र विहार करनेवालोंके साथ रहते हुए भी शीतलविहारी होते हैं,
संयमक आराधन करनेवाले होमेसे विनीत साधुओंके साथ एक जगह
वसते हुए भी उद्धतस्वभावाक ठाहंकारी होते हैं, विरतिवालोंके साथ

વિજ્ઞાન્ત છે મૂળ સૂત્રમાં આ પદ બે વાર કહેવામાં આવેલ છે તેને આ
મતલબ છે કે લોકોમાં સર્વ જગ્યા હરેક ગામમાં, હરેક નગરમાં, હરેક સ્થાનમાં
અને પ્રત્યેક મનુષ્યમાં સંયમથી ઘ્રષ્ટ થયેલા મનુષ્યની નિન્દા થાય છે (સૂ. ૧૧)

तथा—‘पासहेगे’ इत्यादि ।

शिष्याને संबोधીને सूत्रकार कहे छे के के शिष्यो ! तमे कर्मो
प्रभाव तो तुमो जीयाश कतवाजी केअ साधुजन उग्रविहार कस्वावाज्जोनी
आधे रहेवा छतां पख शीतलविहारी अने छे संयमनु आराधन कस्वावाज्ज
होवाधी विनीत साधुजोनी आधे रहेवा छतां पख उद्धतस्वभावन तथा अ
कारी कीय छे निरतिवाज्जोनी आधे कमेरा स्थिति कस्वा छतां पख अविमति-

રણાદ્ વહિર્નિર્ગતસ્તદાનીમેવ મૃતઃ, યથા વા તતોઽધિકેન કાલેન ક્ષણ્ડરીકઃ, કેચિન્ન તતોઽધિકમપિ જીવન્તિ, તેષા શ્લોકઃ=ચારિત્રગ્રહણતત્પરિપાલનનિતયશઃકીર્તિ-
રૂપઃ પાપકઃ=સ્વપક્ષપરપક્ષે સર્વત્ર ભૂમણ્ડલે ચાશ્લોકો ભવતિ-ભગનોન્માહાના ભગ-
પરાક્રમાણા ભગનમહાવ્રતતાના લોકે સર્વત્ર નિન્દા ભવતિ । યથા—

“ પરલોકવિરુદ્ધાનિ, કુર્વાણ દૂરતસ્ત્યજેત્ ।

આત્માન યો ન સંધત્તે, સોઽન્યસ્મૈ સ્યાત્કથં હિતઃ ” ॥ ૧ ॥ ઇતિ ।

નિન્દામેવદર્શયતિ—‘સઃ’ ઇત્યાદિ, સઃ=અસૌ શ્રમણવિભ્રાન્તઃ=શ્રમણઃ
પશ્ચાદ્વિભ્રાન્તઃ, શ્રમણો ભૂત્વા પશ્ચાદ્બ્રષ્ટ ઇતિ । અત્ર મૂલે ‘શ્રમણવિભ્રાન્તઃ’
મૃત્યુ હો ગર્હ થી, ક્ષણ્ડરીકકી ચારિત્રત્યાગકે કુછ કાલ વાદ હી મૃત્યુ
હુઈ થી, કોઈ મનુષ્ય ચારિત્રત્યાગકે વાદ મી જીવિત રહતે હૈ । એસે જીવો
કી સ્વપક્ષ ઓર પરપક્ષમે તથા સર્વત્ર અપકીર્તિ ફેલતી હૈ! લોગ કહતે હૈ
કિ યહ ભગન ઉત્સાહવાલા હૈ, ભગન પરાક્રમવાલા હૈ, ભગન મહાવ્રત-
વાલા હૈ, ઇસ પ્રકાર લોકમેં સવ જગહ ઉસકી નિંદા હોતી હૈ । ઠીક હી હૈ—
લોકમેં ભગન ઉત્સાહવાલોકી, ભગન પરાક્રમવાલોકી, ભગન મહાવ્રતવાલોકી
નિંદા હોની હી ચાહિયે, ક્યોં કિ—“પરલોકવિરુદ્ધાનિ કુર્વાણં દૂરતસ્ત્યજેત્ ।
આત્માન યો ન સંધત્તે સોઽન્યસ્મૈ સ્યાત્કથં હિતઃ ॥” પરલોક વિરુદ્ધ કાર્યોંકો
કરનેવાલે વ્યક્તિકા દૂરસે પરિત્યાગ કર દેના ચાહિયે । જો સ્વયકા હિત
નહીં કર સકતા હૈ વહ દૂસરોકા કૈસે હિતકારક હો સકતા હૈ । નિંદાકા
પ્રકાર પ્રકટ કરનેકે લિયે સૂત્રકાર કહતે હૈ—“સ શ્રમણવિભ્રાન્તઃ ”
યહ ચારિત્રબ્રષ્ટ શ્રમણ હો કર પશ્ચાત્ વિભ્રાન્ત-બ્રષ્ટ હુઆ હૈ, ઇસ-

મુખવસ્ત્રિકા અને વસ્ત્ર તથા પાત્રોનો ત્યાગ કર્યો, અને સમવસરણુની ભૂમિથી બહાર ની
કળતા સમયે જ તેનું મૃત્યુ થયેલું ક્ષણ્ડરીકનું ચારિત્રત્યાગ બાદ થોડા કાળે મૃત્યુ
થવા પામેલું કોઈ મનુષ્ય ચારિત્ર ત્યાગ બાદ પણ જીવિત રહે છે એવા જીવોની
સ્વપક્ષ અને પરપક્ષમાં પણ અપકીર્તિ સર્વત્ર ફેલાય છે લોકો કહે છે કે આ
ઉત્સાહ વગરનો છે, પરાક્રમ વગરનો છે, મહાવ્રતનો ત્યાગ કરનાર છે, આ પ્રકારે
લોકોમાં સર્વત્ર તેની નિંદા થાય છે કીકજ છે—લોકોમાં ઉત્સાહ રહિતની,
પરાક્રમ રહિતની તથા મહાવ્રતનો ત્યાગ કરનારની નિંદા થવી જ નોઈ એ
કેમ કે—“ પરલોકવિરુદ્ધાનિ, કુર્વાણં દૂરતસ્ત્યજેત્ । આત્માનં યો ન સંધત્તે
સોઽન્યસ્મૈ સ્યાત્ કથં હિતઃ ॥ ”—પરલોક વિરુદ્ધ કાર્યોંનો કરનાર વ્યક્તિનો દૂરથી ત્યાગ
કરવો નોઈ એ જે પોતાનું હિત નથી કરી શકતા તે બીજાઓનું હિત કેવી રીતે કરી
શકે નિંદાનો પ્રકાર પ્રગટ કરતા સૂત્રકાર કહે છે કે “ સ શ્રમણવિભ્રાન્ત ” ઇતિ.
આ ચારિત્રબ્રષ્ટ સાધુ બનીને પાછળથી વિભ્રાન્ત-બ્રષ્ટ થયેલ છે, માટે શ્રમણ

इति द्विरुपतेनेदमुक्त भवति—सोके सर्वत्र प्रतिदेष्टुं प्रतिप्राप्यं प्रतिनगरं प्रतिस्थलं प्रतिननं संपमभ्रणानां निन्दा प्रसरतीति ॥ सू० ११ ॥

किञ्च—‘पासहेगे’ इत्यादि ।

मूल्म्—पासहेगे समन्नागपहिं असमन्नागप, णममाणेहिं अण ममाणे, विरपहिं अघिरप, दविपहिं अदविप। अभिसमेच्चा पडिप मेहावी णिद्वियद्वेवीरे आगमेण स्या परक्कमज्जासि—त्तिघेमि ॥ १२ ॥

छाया—पश्यत एके समन्वागतै असमन्वागताः, नमस्त्रिरनमन्ताः, चि-
रतरविरता, इति कैरुद्रविकाः । अस्मिमेत्य पण्डितः मेधावी निष्ठितार्यः वीर
आगमेन स्वा पराक्रमेयाः, इति व्रवीमि ॥ सू० १२ ॥

ટૌકા—હે શિષ્યા! પશ્યત યુયં કર્મપ્રમાવમ્, એકે કેવળ હતમાન્યાઃ સમન્વા
ગતૈઃ=અગ્રવિહારિભિઃ સહ વસન્તોઽપિ અસમન્વાગતાઃ=શીતલવિહારિણો મવન્તિ ।
તયા-નમઃક્રિઃ=સંયમારાધનતયા ચિનયનક્રિઃ સહ સ્થિતા અપિ અનમન્તઃ=અવિનીતા
અઙ્કારિણઃ, તયા વિરતૈઃ=વિરતિમક્રિઃ સહ નિવસન્તોઽપિ અવિરતાઃ=વિરતિર
લિયે અમળચિન્તાન્ત હૈ । મૂલ સૂત્રમેં યહ પદ દો વાર કહા ગયા હૈ; સો
ઉસકા યહ મતલબ હૈ—કિં લોકમેં સર્વ જગહ—હરેક ગાવમેં, હરેક
નગરમેં, હરેક સ્થાનમેં ઓર પ્રત્યેક મનુષ્યમેં સંયમસે ઘ્રષ્ટ હુપ મનુષ્યો
કી નિન્દા હોતી હૈ ॥સૂ० ૧૧॥

तथा—“पासहेगे” इत्यादि ।

शिष्योंको संबोधित करते हुए सूत्रकार कहते हैं कि हे शिष्यो !
तुम लोग कर्मोंके प्रभावको तो देखो, पिचारे इतनाग्य कोई साधुजन
वध विहार करनेवालोंके साथ रहते हुए भी शीतलविहारी होत हैं,
संयमक भाराधन करनेवाछे होनेसे विनीत साधुओंके साथ एक जगह
वसते हुए भी उद्भूतस्वभावके अहंकारी होते हैं, चिरतिवालोंके साथ

વિશ્રાન્ત છે મૂલ સૂત્રમાં આ પદ બે વાર કહેવામાં આવેલ છે તેને બધ
મતલબ છે કે હોહોમા સર્વ જગ્યા, હરેક જાગ્યા, હરેક નગરમાં, હરેક સ્થાનમાં
જને પ્રત્યેક મનુષ્યમાં સથમથી ઘ્રષ્ટ થયેલા મનુષ્યની નિંદા થાય છે. (સૂ० ૧૧)

तथा— पासहेगे इत्यादि.

શિષ્યોને સંબોધીને સૂત્રકાર કહે છે કે હે શિષ્યો! તમે કમીના
પ્રભાવ તો નુજો. બીજાના હલકાગી કેાઈ સાધુજન ઉદવિહાર કરવાવાળાઓની
સાથે રહેવા છતાં પણ શીતલવિહારી બને છે સથમનુ અધાધન કરવાવાળા
હોવાથી વિનીત સાધુઓની સાથે રહેવા છતાં પણ ઉદવતરવ્યાવના તથા અન
કારી હોય છે. ચિરતિવાળાઓની સાથે હંમેશા સ્થિતિ કરવા છતાં પણ અવિરતિ

હિતાઃ, તથા દ્રવિકૈઃ=સંયમારાધકૈઃ સદાપ્રસ્થિતા અપિ અદ્રવિકાઃ=સયમાનારાધકા
 એવ તિષ્ઠન્તિ । હે શિષ્ય ! ત્વ તુ અભિસમેત્ય=સમન્વાગતાદિમહાપુરુષાન્ સંપ્રાપ્ય
 તૈઃ સદા નિવાસં કૃત્વા, પણ્ડિતઃ=સમ્યગ્જ્ઞાનયાન્ મેધાવી=સાધુ સામાચારીવ્યવસ્થિતઃ
 નિષ્ઠિતાર્થઃ=વિગતવિષયસુખસ્પૃહઃ, તથા વીરઃ=પરીપહોપસર્ગસહનપુરસ્સર કર્મશત્રુ-
 દલનદક્ષઃ સન્ આગમેન=તીર્થઙ્કરોપદેશાનુસારેણ સદા સર્વદા પરાક્રમેધાઃ=તપઃ-
 સંયમે પરાક્રમં સ્ફોરય । ઇતિ બ્રવીમિ, વ્યાખ્યા પૂર્વવત્ ॥ સૂ૦ ૧૨ ॥

॥ ઇતિ ષષ્ઠાધ્યયનસ્ય ચતુર્થ ઉદ્દેશઃ સમાપ્તઃ ॥ ૬-૪ ॥

સદા સ્થિતિ કરતે હુણે અવિરતિસપત્ન હોતે હૈં, સંયમકી આરાધના
 કરનેવાલોંકે સાથ નિવાસ કરતે હુણે સયમકી આરાધના કરનેસે
 વંચિત રહતે હૈં । ઇસલિયે હે શિષ્ય ! તુમ ઉગ્રવિહારી, વિનયી, વિરતિ-
 સંપત્તિ અને સંયમારાધક સાધુઓંકે સાથ નિવાસ કરતે હુણે સમ્યગ્જ્ઞાન
 સંપત્તિ, સાધુ સમાચારીમે વ્યવસ્થિત, વૈષયિક સુખતૃષ્ણાસે નિર્મુક્ત, અને
 પરીષદ અને ઉપસર્ગોંકે સહનપૂર્વક કર્મશત્રુઓંકે વિનાશ કરનેમેં દક્ષ
 હોતે હુણે, તીર્થઙ્કર પ્રભુકે ઉપદેશકે અનુસાર સદા તપ અને સંયમકી
 આરાધના કરનેમેં વીર્યોલ્લાસી બનો । “ ઇતિ બ્રવીમિ ” ઇન પદોંકી
 વ્યાખ્યા પહિલેકે સમાન સમજની ચાહિયે ॥ સૂ૦ ૧૨ ॥

॥ છઠ્ઠા અધ્યયન કા ચૌથા ઉદ્દેશ સમાપ્ત ॥ ૬-૪ ॥

સપત્તિ અને છે સયમની આરાધના કરવાવાળાઓની સાથે નિવાસ કરવા છતાં
 પણ સયમની આરાધના કરવાથી વચિત રહે છે માટે હે શિષ્યો ! તમે ઉગ્રવિહારી,
 વિનયી, વિરતિસપત્તિ અને સયમ આરાધક સાધુઓની સાથે નિવાસ કરીને
 સમ્યગ્જ્ઞાનસપત્તિ, સાધુસમાચારીમા વ્યવસ્થિત, વૈષયિક તૃષ્ણાથી નિર્મુક્ત અને
 પરિષદ અને ઉપસર્ગો સહન કરી કર્મશત્રુઓનો વિનાશ કરવામા દક્ષ બનો.
 તીર્થઙ્કર પ્રભુના ઉપદેશ અનુસાર સદા તપ અને સયમની આરાધના કરવામા
 વીર્યોલ્લાસી બનો “ ઇતિ બ્રવીમિ ” આ પદોની વ્યાખ્યા પહેલાની માફક સમજવી
 છઠ્ઠા અધ્યયનનો ચોથો ઉદ્દેશ સમાપ્ત ॥ ૬-૪ ॥

। અથવષ્ટાધ્યયનસ્ય પચમ ઉદ્દેશ ।

શાન્તરક્તુર્વોદેશકે ગૌરવપ્રયવિપૂર્નનિ નિગદિતમ્ । તદર્થ ચોદેશકાર્યમુપ-
સંહરન્-‘ બીરે સયા આગમેર્ણ પરબ્રહ્મેજ્ઞાસિ ’ इति वाक्येन ‘ મુનિના
તીર્થકૂરોપવેશાનુસારેણ વર્તિતમ્ ’ મિત્યુચોપિ । અથ તથ ગૌરવપ્રયવિપૂર્ન
પરીષદોપસર્ગમાન્તાપમાનવિપૂર્નમેન વિના સમ્પૂર્ણતયા ન મપ્તિમાર્ગીત્યતસ્તત્તદર્શ-
યિદ્ પચ્ચમોદેશમુપક્રમતે, તત્ર પરીષદોપસર્ગાદીનિ ક્રમ સમવન્તીતિ દર્શયિતુમાર્-
‘ સે ગિદેસુ વા ’ इत्यादि ।

મુખ્ય-સે ગિદેસુ વા ગિદંતરેસુ વા ગામેસુ વા ગામતરેસુ વા
નગરેસુ વા નગરતરેસુ વા જણવપ્સુ વા જણવયતરેસુ વા સંતે

છઠ્ઠા અધ્યયનકા પાંચર્વો ઉદ્દેશ ।

इस छठे अध्यायनके चतुर्थ उद्देशमें सूत्रकारने तीन गौरवोंके त्याग
करनेका उपदेश दिया है । उस उपदेशके अन्दर उद्देशमें कथित अर्थका
उपसंहार करते हुए उन्होंने “ बीर सया आगमेर्ण परब्रह्मेज्ज्ञासि ” इस
वाक्यसे “ मुनियोंको तीर्थकुर प्रभुके उपदेशके अनुसार रहना चाहिये ”
यह समझाया है । यह गौरवप्रयका त्याग परीषद्, उपसर्ग, मान और
अपमानके सह विना पूर्ण रूपमें नहीं हो सकता है । इसलिये इसी
विषयका प्रदर्शन करनेके लिये इस पञ्चम उद्देशका प्रारम्भ किया गया है।
उसमें सर्व प्रथम सूत्रकार परीषद् और उपसर्ग कहां पर समवित होता
है-इस बातको दिखानेके लिये “ से गिदेषु ” इत्यादि सूत्र कहते हैं—

છઠ્ઠા અધ્યયનનો પાંચમો ઉદ્દેશ

છઠ્ઠા અધ્યયનના ચોથા ઉદ્દેશમાં સૂત્રકારે ત્રણ ગૌરવોના ત્યાગને ઉપદેશ
આપેલ છે તે ઉપદેશમાં ચતુર્થોદેશકથિત અર્થનો ઉપસંહાર કરતાં તેઓએ
“ બીરે સયા આગમેર્ણ પરબ્રહ્મેજ્ઞાસિ ” આ વાક્યથી “ મુનિઓએ તીર્થકૂર પ્રભુના
ઉપદેશ-અનુસાર રહેવું જોઈએ ” તે સમજાવ્યું છે આ ત્રણ ગૌરવોના ત્યાગ
પરિષદ ઉપસર્ગ, માન-અપમાનને સહ્ય વિના પૂર્ણરૂપથી બનતો નથી તેથી
આ વિષયને સમજાવવા માટે આ પાંચમા ઉદ્દેશનો પ્રારંભ કરેલ છે. આમાં
સર્વપ્રથમ સૂત્રકાર પરિષદ અને ઉપસર્ગ ક્યાં ક્યાં સમાવિત બને છે એ વાત
દેખાડવા માટે “ સે ગિદેસુ ” ઇત્યાદિ સૂત્ર કહે છે.

ગડ્યા જળા લૂસળા ભવંતિ, અદુવા ફાસા ફુસંતિ, તે ફાસે પુટ્ટો ધીરો અહિયાસણ ઓણ સમિયદંસળે ॥ સૂ૦ ૧ ॥

છાયા—તસ્ય ગૃહેષુ વા ગૃહાન્તરેષુ વા ગ્રામેષુ વા ગ્રામાન્તરેષુ વા નગરેષુ વા નગરાન્તરેષુ વા જનપદેષુ વા જનપદાન્તરેષુ વા સન્ત્યેકકે જના લૂપકા ભવન્તિ, અથવા સ્પર્શાઃ સ્પૃશન્તિ; તાન્ સ્પર્શાન્ સ્પૃષ્ટઃ ધીરઃ અત્યાસયેત્ ઓજઃ સમિત-દર્શનઃ ॥ સૂ૦ ૧ ॥

ટીકા—તસ્ય=આહારાદિ ગ્રહીતું ગચ્છતો મુનેઃ, ગૃહેષુ વા ઉચ્ચનીચમધ્યમ-કુલેષુ, ગૃહાન્તરેષુ વા ગૃહસમીપેષુ, ગ્રામેષુ વા ગ્રામસમીપેષુ વા, નગરેષુ વા નગરસમી-પેષુ વા, તથા ગ્રામાનુગ્રામં વિહરતથ્ જનપદેષુ વા=દેશેષુ મગધાદિષુ, જનપદાન્તરેષુ=દેશસીમાસુ, ઉપલક્ષણત્વાત્ ઉદ્યાનેષુ વા ઉદ્યાનાન્તરેષુ વા, તથા-વિહારભૂમિષુ સ્વાધ્યાયં કુર્વતો, વિચારભૂમિષુ શરીરચિન્તાર્થં ગચ્છતો ગતસ્ય વા, ઇકકે=એકે યે કેચન કપાયોપહતચેતસો જનાઃ લૂપકાઃ=પરીપહોપસર્ગાદિકારકાઃ ભવન્તિ। અથવા

આહારાદિ ગ્રહણ કરનેકે નિમિત્ત જાતે હુણ મુનિજનકો ઘરોમ્—ઉચ્ચ, નીચ ઓર મધ્યમ કુલોમ્, ઘરકે આસપાસમ્, ગાવોમ્, ગાંવોકે આસપાસમ્, નગરમ્, નગરકે આસપાસમે, તથા એક ગ્રામસે દૂસરે ગ્રામમ્ વિહાર કરતે હુણ મુનિકો મગધાદિક જનપદમ્, જનપદકો સીમા-હદમ્, ઉપલક્ષણસે વગીચામ્, વગીચાકે આસપાસમ્, તથા-સ્વાધ્યાય કરનેવાલે મુનિકો વિહાર ભૂમિમ્, શૌચાદિકી નિવૃત્તિકે લિયે જાતે હુણ અથવા ગયે હુણ સાધુકો વિચારભૂમિ-નગરકે વાહિરી જંગલ (વન) આદિ પ્રદેશમ્, કઈ એક કિ જિનકા ચિત્ત કપાયસે મલિન હો રહા હૈ—વ્યાસ યા યુક્ત બના હુઆ હૈ એસે દુષ્ટ મનુષ્ય ઉપસર્ગ ઓર પરીપહ આદિ કરનેવાલે હોતે હી હૈ। અથવા—વાત, પિત્ત ઓર કફજનિત દુઃખ વિશેષ યા તૃળ-સ્પર્શ, દંશમશક, શીત ઉષ્ણ આદિ જનિત દુઃખ મી કમી ૨ ઉન્હેં દુઃખિત

આહારાદિ ગ્રહણ કરવા નિમિત્ત જતા મુનિજનને ઘરોમા—ઉચ્ચ, નીચ અને મધ્ય કુળોમા ઘરની આસપાસમા, ગામમા, ગામની આસપાસમા, નગરમા, નગરની આસપાસમા, તથા એક ગામથી બીજા ગામમા વિહાર કરનાર મુનિને મગધાદિક જનપદમા, જનપદની સીમા—હદમા, ઉપલક્ષણથી બગીચામા, બગીચાની આસપાસમા તથા સ્વાધ્યાય કરવાવાળા મુનિને વિહાર ભૂમિમા, શૌચાદિની નિવૃત્તિ માટે જતા અથવા આવતા સાધુને વિચારભૂમિ-નગરની બહાર જંગલ (વન) આદિ પ્રદેશમા, કેટલાક દુષ્ટ મનુષ્ય કે જેનું ચિત્ત કષાયથી મલિન અનેલ છે—આકુળ આકુળ અનેલ છે; ઉપસર્ગ અને પરિપહ કરનાર હોય છે અથવા વાત, પિત્ત

સ્પર્શાઃ=દુઃસ્વપિત્તપા* શાતપિત્તફફત્તોપજનિતાઃ, તૃણસ્પર્શદ્વંશમધ્યકશીતોષ્ણાદિજનિતા
 શા સ્પર્શન્તિ=કદાચિદમિમષન્તિ; તૈઃ=પરીપહોપસર્ગાદિમિઃ સ્પૃષ્ટઃ ભોજઃ=એક રાગ-
 દ્રેષાદિરહિતઃ સમિતદર્શનઃ=ઉપશાન્તાધ્યવસાયઃ, યદ્વા સમિતદર્શનઃ=સમતામિતં
 સમિતં દર્શનં યસ્ય સાઃ, સમદષ્ટિરિત્યર્થઃ, ખીરાઃ=અક્ષોમ્યઃ સન્ તાન્=સ્પર્શકકૃતાન્
 શાતાદિદોષજનિતાત્ તૃણસ્પર્શાદિજનિતાન્ શા સ્પર્શન્=દુઃસ્વપિત્તપાન્ અધ્યાસમત્=
 અપિસદત્; નરકાદિદુઃસૈ યથા કર્માદયજનિતં તથા મહીયમેતત્સર્વં સ્વકર્મોદયફલ-
 મિત્યતન્મયૈવ સોઽભ્યમિત્યવધાર્ય સમ્યક્ ધિતિશ્ચિત્ત ઇત્યર્થઃ ॥ ૬૦ ૧ ॥

કિઞ્ચ—‘વયં’ ઇત્યાદિ ।

કરતે હી રહતે હૈં । ઇસલિયે ડન પરીપહ ઓર ઉપસર્ગ આલિસે સતાયે ગયે
 યા ઉપદ્રવિત કિયે ગયે થે રાગદ્રેષપરહિત સમ્યગ્દષ્ટિ મુનિજન અક્ષોમ્ય
 હોતે હુયે ડન શાતાદિદોષ જનિત અથવા તૃણસ્પર્શાદિસે જોનવાલે દુઃસ્વ
 વિશેષોંકો સહન કરે, ધપરાથે નહીં । ડસ સમય થે યહી વિચાર—કિ
 જિસ પ્રકાર કર્મકે ઉદયજનિત નરક આદિકે દુઃસ્વોંકો મૈતે હી અન
 નવાર સહન કિયે હૈં, ડસી તરહ યે સય મી હમારે કર્મોદયજનિત હૈં;
 ઇસલિયે હમૈં હી ઇન્હૈં મધ્યસ્થભાવસે સહના ચાહિયે, યેસા નિશ્ચય કર
 અઘ્છી તરહ—ધિના કિસી આકુલતાકે ડન્હૈં સહૈં । સમતાકો પ્રાપ્ત જિસકા
 દર્શન હૈ ડસકા નામ સમિતદર્શન—સમ્યગ્દષ્ટિ હૈ ॥ ૬૦ ૧ ॥

તથા—“વયં લોગસ્ત” ઇત્યાદિ ।

અને કહ્યજનિત દુઃખવિશેષ અને તૃણસ્પર્શ દશમશક શીત ઉષ્ણ આદિ
 જનિત દુઃખ યજુ એમને કોઈ કોઈ વખત દુઃખિત કરતો રહે છે
 આ માટે એવા પતિજ અને ઉપસન વગેરેથી સલાવેલ અને ઉપદ્રવિત કસ
 એલ એ રાગદ્રેષપરહિત સમ્યગ્દષ્ટિ મુનિજન અક્ષોમ્ય જનને તે શાતાદિ દોષ
 જનિત અથવા તૃણ સ્પર્શાદિથી યથાવાળા દુઃખનિયોગને સહન કરે અસમય
 નહિ. એ સમયે એ એવું જ વિચારે કે જે પ્રકારે કમના ઉદયથી નરક
 આદિના દુઃખોને મે અનેક વખતે સહન કરેલ છે એજ રીતે એ બધાં માસ
 કર્મોના ઉદયરૂપ છે આ નાદે મારે યજુ તેને મધ્યસ્થભાવથી સહન કરવાં
 એમજે એવો નિશ્ચય કરી સારી રીતે આકુલતાપરહિત એને સહે સમતાને પ્રાપ્ત
 એવું દર્શન છે એવું નામ સમ્યગ્દષ્ટિ છે (સુ ૧)

તથા—‘વયં લોગસ્ત’ ઇત્યાદિ.

મૂલમ્—દયં લોગસ્સ જાણિત્તા પાઈણં પડીણં દાહિણં ઉદીણં
આઈક્ષ્વે વિમણ્ કિટ્ઠે વેયવી ॥ સૂ૦ ૨ ॥

છાયા—દયા લોકસ્ય જ્ઞાત્વા પ્રાચીનં પ્રતીચીનં દક્ષિણં ઉદીચીનમ્ આવ-
ક્ષીત વિમજેત્ કીર્તયેત્ વેદવિત્ ॥ સૂ૦ ૨ ॥

ટીકા—વેદવિત્—સર્વજ્ઞપ્રણીતાગમજ્ઞાનવાન્ મુનિઃ, લોકસ્ય જ્ઞાત્વા=દ્રવ્યતઃ
પદ્મજીવનિકાયસ્વરૂપં વિજ્ઞાયેત્યર્થઃ, લોકસ્યેત્યત્ર—કર્મણઃ સમ્યન્ધમાત્રવિવક્ષાયા
પઘ્ની; તથા—ક્ષેત્રતઃ—પ્રાચીનં=પૂર્વ, પ્રતીચીનં=પશ્ચિમ, દક્ષિણમ્, ઉદીચીનમ્=
ઉત્તરમ્, ઉપલક્ષણત્વાદન્યાનપિ દિગ્વિભાગાન્ જ્ઞાત્વા=અભિસમીક્ષ્ય કાલતોયાવજ્જીવ
ભાવતો રાગદ્વેષરહિતઃ સર્વત્ર દયાં કુર્વન્ ધર્મમાચક્ષીત; યથા—સર્વે પ્રાણિનો દુઃખ-
દ્વિષઃ સુખલિપ્સવ આત્મોપમ્યેન સર્વદા દ્રષ્ટવ્યા इति । તથા ધર્મમાચક્ષાણઃ વિમ-
જેત્=દ્રવ્યક્ષેત્રકાલભાવભેદૈઃ પ્રાણાતિપાતવિરમણાદિભિશ્ચ પ્રરૂપયેત્ । કીર્તયેત્=
ધર્માનુષ્ઠાનફલં કથયેત્ ॥ સૂ૦ ૨ ॥

સર્વજ્ઞરચિત આગમકે જ્ઞાતા મુનિ દ્રવ્યસે પદ્મજીવનિકાયસ્વરૂપકો
જાન કર તથા ક્ષેત્રસે પૂર્વદિશા, પશ્ચિમદિશા, દક્ષિણદિશા ઓર ઉત્તર-
દિશાકો, એવં ઉપલક્ષણસે જન દિશાઓંકે વિભાગોંકો જાનકર, કાલકી
અપેક્ષા જીવનપર્યન્ત, ભાવસે રાગદ્વેષરહિત હોકર, સર્વત્ર ધર્મકા ઉપદેશ
કરે । ઉસ ઉપદેશમેં યહ અવશ્ય ૨ પ્રકટ કરે કિ સમસ્ત સંસારી પ્રાણી
દુઃખકો નહીં યાહતે હૈં ઓર સુખકે અભિલાષી હૈં, અતઃ સમસ્ત પ્રાણિઓં
કો અપને સમાન સમજના યાહિયે, તથા વહ ધર્મ દ્રવ્ય, ક્ષેત્ર, કાલ ઓર
ભાવકે ભેદોં એવં અહિંસા આદિ વ્રતોંકે ભેદોંકી અપેક્ષાસે અનેક પ્રકાર
કા હૈ । ઇસ પ્રકાર ઉસકા વિભાગ કર પ્રરૂપણા કરે । ધર્મકી આરાધનાસે
જીવોંકો ક્યા ફલ મિલતા હૈ ? ઇસકા ભી વ્યાખ્યાન કરે ।

સર્વજ્ઞરચિત આગમના જ્ઞાતા મુનિ દ્રવ્યથી પદ્મજીવનિકાયસ્વરૂપ લોક-
સ્વરૂપ જાણીને, તથા ક્ષેત્રથી પૂર્વદિશા, પશ્ચિમદિશા, દક્ષિણદિશા અને ઉત્તર-
દિશા, અને ઉપલક્ષણથી આ દિશાના વિભાગોને જાણીને, કાળની અપેક્ષા જીવન-
પર્યંત, ભાવથી રાગ દ્વેષ રહિત બનીને સર્વત્ર ધર્મનો ઉપદેશ કરે આ ઉપદેશમા
તે અવશ્ય અવશ્ય પ્રગટ કરે કે સમસ્ત સંસારી પ્રાણી દુઃખને યાહતા નથી,
અને સુખના અભિલાષી છે માટે સમસ્ત પ્રાણીઓને પોતાના સમાન સમજવા
જોઈએ. તથા એ ધર્મ, દ્રવ્ય, ક્ષેત્ર અને કાળ, ભાવના જોડો અને અહિંસા આદિ
વ્રતોના જોડોની અપેક્ષાથી અનેક પ્રકારનો છે. આ પ્રકારે તેના વિભાગ કરી
પ્રરૂપણા કરે. ધર્મની આરાધનાથી જીવોને શું ફળ મળે છે તેનું વ્યાખ્યાન કરે.

કિંચ—‘સે ઝટ્ઠિપ્પસુ વા’ ઇત્યાદિ ।

મૂલ્ય—સે ઝટ્ઠિપ્પસુ વા અણુટ્ઠિપ્પસુ વા સુસ્સુસમાણેસુ પવેદપ્પ—સંતિ વિરતિ ઉવસમં ણિઘ્વાણ સોયં અજ્ઞવિયં મહવિય લાઘવિયં અણઙ્ગવત્તિય ॥ સૂ૦ ૩ ॥

છાયા—ઠત્થિત્થેપુ વા અનુત્થિત્થેપુ વા શુભૂપમાણેપુ મહેદયેત્ આન્તિ વિરતિમ્, ઉપસમ નિર્વાણં ધોષમ્ આર્થવિકં માર્થવિકં ઠાપવિકમ્ અનતિપત્ત્ય ॥ મૂ૦ ૩ ॥

ટીકા—સા=આગમમિત્ શુભૂપમાણેપુ=શ્વેતુમિત્સુ ગુર્ણાદિસેવાં કુર્મસુ વા ઠત્થિત્થેપુ=પૂરીત્મક્રમ્યેપુ વા અનુત્થિત્થેપુ=આવકાદિપુ વા આન્તિમ્=અનમ્—અર્હિસા-

માવાય—સર્વજ્ઞ ભગવાનદ્વારા પ્રતિપાદિત આગમકે જ્ઞાતા મુનિરાજ લોક આદિકા ધર્માર્થ સ્વરૂપ જ્ઞાન કર, જીવોની રક્ષાકે નિમિત્ત ધર્મકા ઉપદેશ દે । ઇસમેં વહુ દ્રવ્ય, ક્ષેત્ર, કાલમાષકી, અથવા અર્હિસા વ્રત આદિકી અપેક્ષાસે ધર્મકા વિસ્તારપૂર્વક કથન કર, બીર સાધમેં વહુ મી સ્પષ્ટ સમજાવેં કિ ધર્મકે આરાધનસે કિન ૨ જીવોનો કિસ ૨ ફલ કી પ્રાપ્તિ હુઈ હૈ ॥ સૂ૦ ૨ ॥

તથા—“સે ઝટ્ઠિપ્પસુ વા” ઇત્યાદિ ।

આગમજ્ઞાતા એ મુનિ ધર્મકા ઉપદેશ કરતે સમય જન વિષયોંકા મી વિવચન કરે । ધાર્મિક ઉપદેશ સુનનેકે જો ઇચ્છુક હૈં ઇત્તેના નામ શુભૂપમાણ હૈં, અથવા જો ગુરુઓંની સેવા કરતે હૈં એ મી શુભૂપમાણ હૈં । જિન્હોને શીક્ષા પ્રાપ્ત કર લી હૈં એ વત્તિત હૈં બીર આવક આદિ અનુત્થિત્ત હૈં । જમ સયકે સિયે એ આગમજ્ઞાતા મુનિ અર્હિસા, મુપાપાદ આદિસે

જાવાય —સર્વજ્ઞ ભગવાન દ્વારા પ્રતિપાદિત આગમના જ્ઞાતા મુનિરાજ લોક આદિનું યથાર્થ સ્વરૂપ બાબી લેવેબી રક્ષા નિમિત્ત ધર્મનો ઉપદેશ દે તેમાં તે દ્રવ્ય, ક્ષેત્ર, કાળ, જાવ અને અદિસામત આદિની અપેક્ષાથી ધર્મનું વિસ્તાર-પૂર્વક કથન કરે. અને સાથે સાથે જો પણ સમજાવે કે ધર્મના આરાધનથી કયા કયા લેવેને કયા કયા ફળની પ્રાપ્તિ થયેલ છે

તથા—“સે ઝટ્ઠિપ્પસુ વા” ઇત્યાદિ.

આગમજ્ઞાતા જે મુનિ ધર્મનો ઉપદેશ કરતી વખતે જે વિષયોનું પણ વિવેચન કરે. ધાર્મિક ઉપદેશ આભવવામાં જે ઇચ્છુક છે તેનું નામ શુભૂપમાણ છે, અથવા જે ગુરુઓની સેવા કરે છે તેઓ પણ શુભૂપમાણ છે. જેઓને તથા બ્રહ્મ કરેલી છે તેઓ વત્તિત અને આવક આદિ અનુત્થિત છે આ બધા માટે

मूलम्—दयं लोगस्स जाणित्ता पाईणं पडीणं दाहिणं उदीणं
आइक्खे विभए किट्ठे वेयवी ॥ सू० २ ॥

छाया—दया लोकस्य ज्ञात्वा प्राचीनं प्रतीचीनं दक्षिणं उदीचीनम् आच-
क्षीत विभजेत् कीर्तयेत् वेदवित् ॥ सू० २ ॥

टीका—वेदवित्—सर्वज्ञप्रणीतागमज्ञानवान् मुनिः, लोकस्य ज्ञात्वा=द्रव्यतः
षड्जीवनिकायस्वरूपं विज्ञायेत्यर्थः, लोकस्येत्यत्र—कर्मणः सम्बन्धमात्रविवक्षाया
पृष्ठी; तथा—क्षेत्रतः—प्राचीनं=पूर्व, प्रतीचीनं=पश्चिमं; दक्षिणम्, उदीचीनम्=
उत्तरम्, उपलक्षणत्वादन्यानपि दिग्विभागान् ज्ञात्वा=अभिसमीक्ष्य कालतोयावज्जीवं
भावतो रागद्वेषरहितः सर्वत्र दयां कुर्वन् धर्ममाचक्षीत; यथा—सर्वे प्राणिनो दुःख-
द्विषः सुखलिप्सव आत्मोपमयेन सर्वदा द्रष्टव्या इति । तथा धर्ममाचक्षणः विभ-
जेत्=द्रव्यक्षेत्रकालभावभेदैः प्राणातिपातविरमणादिभिश्च प्ररूपयेत् । कीर्तयेत्=
धर्मानुष्ठानफलं कथयेत् ॥ सू० २ ॥

सर्वज्ञरचित आगमके ज्ञाता मुनि द्रव्यसे षड्जीवनिकायस्वरूपको
जान कर तथा क्षेत्रसे पूर्वदिशा, पश्चिमदिशा, दक्षिणदिशा और उत्तर-
दिशाको, एवं उपलक्षणसे इन दिशाओंके विभागोंको जानकर, कालकी
अपेक्षा जीवनपर्यन्त, भावसे रागद्वेषरहित होकर, सर्वत्र धर्मका उपदेश
करे । उस उपदेशमें यह अवश्य २ प्रकट करे कि समस्त संसारी प्राणी
दुःखको नहीं चाहते हैं और सुखके अभिलाषी हैं, अतः समस्त प्राणिओं
को अपने समान समझना चाहिये, तथा वह धर्म द्रव्य, क्षेत्र, काल और
भावके भेदों एवं अहिंसा आदि व्रतोंके भेदोंकी अपेक्षासे अनेक प्रकार
का है । इस प्रकार उसका विभाग कर प्ररूपणा करे । धर्मकी आराधनासे
जीवोंको क्या फल मिलता है ? इसका भी व्याख्यान करे ।

सर्वज्ञरचित आगमना ज्ञाता मुनि द्रव्यथी षड्जीवनिकायस्वरूप को-
क्षरूप ज्ञातीने, तथा क्षेत्रथी पूर्वदिशा, पश्चिमदिशा, दक्षिणदिशा अने उत्तर-
दिशा, अने उपलक्षणथी आ दिशाना विभागाने ज्ञातीने, कालनी अपेक्षा जीवन-
पर्यन्त, भावथी राग द्वेष रहित अनीने सर्वत्र धर्मना उपदेश करे. आ उपदेशमा
ते अवश्य अवश्य प्रकट करे के समस्त संसारी प्राणी दुःखने चाहता नथी,
अने सुखना अभिलाषी छे भाटे समस्त प्राणीओने पोताना समान समझवा
जोर्थ छे. तथा छे धर्म, द्रव्य, क्षेत्र अने काल, भावना सेहो अने अहिंसा आदि
व्रताना सेहोनी अपेक्षाथी अनेक प्रकारनो छे. आ प्रकारे तेना विभाग करी
प्ररूपणा करे. धर्मनी आराधनाथी ओवाने शुं इण भणे छे तेनु व्याख्यान करे.

ટીકા—મિથુઃ=નિર્દોષમિત્તામીવી મુનિઃ સર્વપ્રાણિશ્રુતજીવસત્તાનાં હિતં અનુ
 વિચિન્ત્ય=પર્યાલોચ્ય ધર્મે=શ્રુતચારિશ્રુતલક્ષણમ્-અગારધર્મમનગારધર્મં વા ભાવપ્રીત=
 પ્રતિબોધયત્ । એકેન્દ્રિયાવિક્ષુ સર્વેષુ પ્રાણિષુ કસ્યપિદપિ ચિરાધના યથા ન મથે
 વયા ધર્મમુપદિશેવિતિ માત્ર ॥ સૂ૦ ૪ ॥

અનુવિચિન્ત્ય ધર્મમાચણ્ણા મિથુરન્યત્કિં કુર્યાદિત્યાહ-‘અણુવીહ મિથસ્’
 ઇત્યાદિ ।

મૂવન્-અણુવીહ મિથસ્ ધમ્મમાહક્ષ્માણે જો અત્તાણ
 આસાહજ્જા, જો પર આસાહજ્જા, જો અલ્લાઈ પાણાઈ મૂયાહ
 જીવાહ સત્તાઈ આસાહજ્જા ॥ સૂ૦ ૫ ॥

નિર્દોષ મિથાસે અપને શરીરકા નિર્બાહ કરમેચાલે મિથુ સમસ્ત
 પ્રાણિયો, સમસ્ત મૂતો, સમસ્ત જીવોં ઔર સમસ્ત સત્ત્વોંકા હિત વિચાર
 કર શ્રુતચારિશ્રુતરૂપ ધર્મકા, અથવા ગૃહસ્થ ઔર મુનિકે ધર્મકા વ્યાખ્યાન
 કરે । એકેન્દ્રિયાવિક્ષુ સમસ્ત પ્રાણિયોંમેંસે કિસી ‘મી’ જીવકી ચિરાધના
 જિસ તરહ કિસી ‘મી’ જીવસે ન બને-હસ પ્રકારસે ધર્મકા ઉપદેશ દેકર
 જીવોંકો સમજાવેં । અથવા મુનિકા ધર્મ કયા હૈ ? ગૃહસ્થકા ધર્મ કયા હૈ ?
 હસ વિષયકો સમજાવેં । સમજાનકી પદ્ધતિ હતની હૃદયરોષક એવં
 વિસ્તારકર્પક હો કિ જિમસે પ્રાણી ડસ ઉપદેશકો સુન કર ‘એકેન્દ્રિયા
 વિક જીવોં તકકરે ‘મી’ ચિરાધના કરના છોકરે વેચે ॥ સૂ૦ ૬ ॥

ધર્મકા વાર ૨ વિચાર કર કથન કરનેચાલા મિથુ ઔર કયા કરે ?
 હસકે લિપ સૂત્રકાર કહતે હૈ-“અણુવીહ મિથસ્” ઇત્યાદિ ।

નિર્દોષ મિથામી પાતાના શરીરનો નિર્બાહ કરવાવાળા મિથુ સમસ્ત પ્રાણીયોં,
 સમસ્ત મૂતોં, સમસ્ત જીવોં અને સમસ્ત સત્ત્વોંના હિતનો વિચાર કરી શ્રુત
 ચારિત્રરૂપ ધર્મનું અથવા ગૃહસ્થ અને મુનિ ધર્મનું વ્યાખ્યાન કરે. એકેન્દ્રિ
 યાવિક્ષુ સમસ્ત પ્રાણીયોંમાંથી કોઈ પણ જીવની ચિરાધના જે રીતે કોઈ પણ
 જીવથી ન બને આ પ્રકારથી ધર્મનો ઉપદેશ આપી જીવોંને સમજાવે અને મુનિનો
 ધર્મ શું છે ? ગૃહસ્થનો ધર્મ શું છે ? આ વિષય સમજાવે. સમજાવવાની પદ્ધતિ એવી
 હૃદયજનક હોવી જોઈએ કે તેની અગર તાત્કાલિક પહોંચે, એથી ઉપદેશ
 સાંભળનાર એકેન્દ્રિયજીવોંની તરફ પણ સુધ્ધાવવાનો બને. (સૂ૦ ૬)

ધર્મનો વારવાર વિચાર કરી જોઈવાવાળા મિથુ જીવનું શું કરે ? અને
 માટે સૂત્રકાર કહે છે-“અણુવીહ મિથસ્” ઇત્યાદિ.

मित्यर्थः, विरतिम्=विरमणं मृषावादादिविरमणं मूलगुणमित्यर्थः, उपशमं=क्रोधो-
पशमं क्षमाम्, उपलक्षणत्वात्सर्वमुत्तरगुणमित्यर्थः, निर्वाणं=मूलगुणोत्तरगुणफलभूत
मोक्षम्, शौचं=मनःशुद्धिम्, आर्जविकम्=आर्जव मायाशल्यराहित्यं, मार्दविकं=मार्दव
मानराहित्य, लाघविकम्=कर्मभारापनयनादात्मनो लाघवम्। एतत्सर्वम् अनतिपत्य-
यथावस्थितमर्थमनतिक्रम्य-आगमानुसारेणेत्यर्थः, प्रवेदयेत्=उपदिशेत् ॥ सू० ३ ॥

किञ्च—‘सव्वेसिं’ इत्यादि ।

मूलम्—सव्वेसिं पाणाणं, सव्वेसिं भूयाणं, सव्वेसिं जीवाणं,
सव्वेसिं सत्ताणं अणुवीड् भिक्खू धम्ममाइक्खेज्जा ॥ सू० ४ ॥

छाया—सर्वेषां प्राणानां, सर्वेषां भूतानां सर्वेषां जीवानां, सर्वेषां सत्त्वानाम्,
अनुविचिन्त्य भिक्षुर्धर्ममाचक्षीत ॥ सू० ४ ॥

विरमण होनेरूप विरति—मूलगुण, क्रोधका उपशमरूप क्षमा, उपलक्षणसे
समस्त उत्तरगुण, निर्वाण—मूलगुण और उत्तरगुणोंके फलभूत मोक्ष, मान-
सिक शुद्धि, मायाशल्यका अभावरूप आर्जव (सरलता), मानका अभावरूप
मार्दव (नम्रता), और कर्मभारके नाश हो जानेसे उद्भूत आत्माके
लाघवगुणका यथार्थ स्वरूपसे—आगमके अनुरूप उपदेश करें ।

आगमज्ञाता मुनिको अपने उपदेशमें प्रधानतया किन २ विषयोंका
वर्णन करना चाहिये सूत्रकारने वे सब विषय उपर्युक्त रीतिसे प्रकट
किये हैं । अतः विद्वान् उपदेशक मुनि, धार्मिक उपदेश सुननेवालोंके
समक्ष उन विषयोंपर अवश्य २ अपने उपदेशमें प्रकाश डालें ॥ सू० ३ ॥

तथा—“सव्वेसिं” इत्यादि ।

ते आगमज्ञाता मुनि, अहिंसानो मृषावाद् आदिथी विरमणु ढोवाइय विरति-
मूलगुणुनो, निर्वाणु-क्रोधना उपशमइय क्षमानो, उपलक्षणुथी समस्त उत्तरगुणु,
मूलगुणु अने उत्तरगुणुना इणभूत मोक्षनो, मानसिक शुद्धि, मायाशल्यना अलावइय
सरणता, मानना अलावइय नम्रता अने कर्मभारनो नाश थइ जवाथी उद्भूत
आत्माना लाघवगुणुनो यथार्थस्वरूपथी आगमने अनुइय उपदेश करे

आगमज्ञाता मुनिओ पोताना उपदेशमा सुभ्य तथा डेवा डेवा विष
योतु वर्षणं करु ओधओ सूत्रकारे ओ यथो विषय उपर्युक्त (उपर उडेल)
रीतिथी प्रकट करेल छे. माटे विद्वान् उपदेशक मुनि धार्मिक उपदेश साधनवा-
वाणा समक्ष ओ विषयो उपर अवश्य अवश्य पोताना उपदेशनो प्रकाश डे डे
तथा—“सव्वेसिं” इत्यादि.

પરમ્=મન્ય, શુભ્રપુમાર્યમનાર્પ્યમ્સ્થિતમનુસ્થિતં વા ન આશાતયેત્, તથા-મન્યાન્
વા સામાન્યેન પ્રાણાન્=પ્રાણિનાઃ મૃતાન્ જીવાન્ સત્ત્વાન્, સર્વાન્સ્તિર્યઃ; ન આશાત
યેત્, પદ્મજીવનિકાયસ્વરૂપાપ્પલાપેન સાવધોપદેશેન ચ ન વિરાધયેત્। ઇવમુક્તં
મવતિ-તથામૃતમ્પદેદં ન કુર્યાત્ યેન કસ્યાપિ પ્રાણિનો વિરાધના સમુત્પદેત ॥૫॥

આશાતના હૈ। ઉપદેશ મુનનેકે સિયે અમિલાપી ધને હુપકા નામ શુભ્રુ, સર્વવિરતિરૂપ ચારિત્રકે પાલક ઉત્તિત ઔર ગૃહસ્થજન અનુતિત હૈ। इनमें से कोई भी हो, मुनिका कर्तव्य है कि वह इनकी आशातना (विराधना) न करे। इसी प्रकार सामान्यसे प्राणियोंकी, मृतोंकी, जीवोंकी, और सत्त्वोंकी वे आशातना करनेके अधिकारी नहीं हैं। ऐसा उपदेश न दें कि जिससे पद्मजीवनिकायके स्वरूपका आपलाप हो और सावध व्यापारोंमें जीवोंकी प्रवृत्ति हो। क्यों कि इस प्रकारके उपदेशसे जीवोंकी प्रवृत्ति अन्य जीवोंकी विराधनाकी ओर उत्साहित होती है। कहनेका मतलब यह है कि ऐसा उपदेश मुनिको कभी नहीं देना चाहिये कि जिससे किसी भी जीवकी विराधना होवे।

ધર્મકા ઉપદેશ કરનેવાલા સંયમી સદા હસ વાતકર પૂર્ણ ધ્યાન રહે ફિ, મેરે ઉપદેશસે જહાં તક હો સકે, સવ જીવોકા કલ્યાણ હો। કુમાર્ગમેં જાનેવાછે મી પ્રાણી હસસે છામ ઉઠાવે ઔર વે સન્માર્ગમેં લગ જાવે। ઓતાઓકે ઉપર ઉસી ઉપદેશકા પ્રભાવ પડતા હૈ જો સ્વયં જ્ઞાન,

ઉ ઉપદેશ સાંભળવા માટે ઉત્સુક બનેલાનુ નામ શુભ્રુ, સર્વવિરતિરૂપ ચારિત્રના પાલક ઉત્તિત અને ગૃહસ્થજન અનુતિત છે આપાથી કેહ પશુ હો મુનિનુ કર્તવ્ય છે કે તે કેહની વિરાધના ન કરે. આ જ રીતે સામાન્ય પ્રાણી એની, સ્ત્રીની, છોવોની અને સત્ત્વોની તે વિરાધના કરવાના અધિકારી નથી એવો ઉપદેશ ન આપે કે એથી પદ્મજીવનિકાયા સ્વરૂપનો અપલાપ (સત્તાડવાપણું) થાય અને સાવધ વ્યાપારમા છોવોની પ્રવૃત્તિ વધે. કેમકે આ પ્રકારના ઉપદેશથી છોવોની પ્રવૃત્તિ બન્ય છોવોની વિરાધના તરફ ઉત્સાહિત બને છે. કહેવાની મતલબ એ છે કે મુનિએ એવો ઉપદેશ ન દેવો એક એ કે બીજી કોઈ પણ છોવોની વિરાધના થાય.

ધર્મને ઉપદેશ કરનાર સયમી આ વાતને સદા પૂણી રીતે ધ્યાનમા રાખે કે માત્ર ઉપદેશથી બને ત્યાં મુખી છોવોનુ કલ્યાણ થાય. કુમાર્ગમાં વ્યાપારમા પ્રાણી પણ આને છામ મેળવે અને સન્માર્ગે ચાલવા લાગે, ઓતાએ ઉપર આવા ઉપદેશકોના પ્રભાવ પડે છે જે સ્વયં જ્ઞાન કર્તવ્ય અને ચારિત્રથી વિદ્ય

છાયા—અનુવિચિન્ત્ય ભિક્ષુર્ધર્મમાચક્ષાણઃ નો આત્માનમાશાતયેત્, નો પરમાશાતયેત્, નો અન્યાન્ પ્રાણાન્ ભૂતાન્ જીવાન્ સત્ત્વાન્ આશાતયેત્ ॥ સૂ૦ ૫ ॥

ટીકા—ધર્મમ્ આચક્ષાણઃ=કથયન્ ભિક્ષુઃ=સંયમી, અનુવિચિન્ત્ય=સર્વપ્રાણિ-હિતાહિતં પર્યાલોચ્ય આત્માનં=સ્વકીયમાત્માનં ન આશાતયેત્—સ્વાત્મન આશાતનાં સર્વથા ન કુર્યાત્, જ્ઞાનદર્શનચારિત્રવિરુદ્ધવર્તનનાત્મનઃ સંસારપરિભ્રમણં ભવતિ તદેવાત્મન આશાતના વિરાધનેત્યર્થઃ। સા દ્વિવિધા—લૌકિકી લોકોત્તરા ચેતિ, एकै-काऽपि द्रव्यभावभेदाद् द्विधा । તત્ર દ્રવ્યતો લૌકિકી સચિત્તાચિત્તમિશ્રદ્રવ્યવિષયા, ભાવતો વિનયાદિસ્વલિતસ્ય વિદ્યાદિલાભો યયા ન ભવતિ સા । દ્રવ્યતો લોકોત્તરા શરીરોપધિવિષયા, ભાવતસ્તુ જ્ઞાનદર્શનચારિત્રતપોવિનયાદિગુણવિષયા । તથા—

ધર્મકા ઉપદેશ કરનેવાલે ભિક્ષુ-સંયમી સમસ્ત પ્રાણિયોંકે હિત ઓર અહિતકી પર્યાલોચના કર, અપની નિજ આત્માકી સર્વથા વિરાધના ન કરે । જ્ઞાન, દર્શન ઓર ચારિત્રસે વિરુદ્ધ પ્રવર્તન કરનેસે આત્માકા જો સંસારમેં પરિભ્રમણ હોતા હૈ, વહ પરિભ્રમણ હી આત્માકી આશાતના-વિરાધના હૈ । યહ લૌકિકી, ઓર લોકોત્તરા કે ભેદસે પ્રકારકી હૈ । લૌકિકી એવં લોકોત્તરા યે દોનોં મી દ્રવ્ય ઓર ભાવકે ભેદસે દો દો ભેદવાલી હૈં । સચિત્ત, અચિત્ત ઓર મિશ્ર દ્રવ્યકો વિષય કરનેવાલી આશાતના દ્રવ્યસે લૌકિકી હૈ । અવિનયીકે જિસસે વિદ્યાદિકકા લાભ નહીં હોતા હૈ વહ ભાવસે લૌકિકી આશાતના હૈ । શરીર ઓર ઉપધિકો વિષય કરનેવાલી દ્રવ્યસે લોકોત્તરા આશાતના હૈ, તથા જ્ઞાન, દર્શન ઓર ચારિત્ર, તપ ઓર વિનયાદિક ગુણોંકો વિષય કરનેવાલી ભાવસે લોકોત્તરા

ધર્મનો ઉપદેશ કરનાર ભિક્ષુએ સયમ પાળવા ઉપરાત બધા પ્રાણીઓના હિત અને અહિતની પર્યાલોચના કરી પોતાના આત્માની સર્વથા વિરાધના ન કરે જ્ઞાન, દર્શન અને ચારિત્રથી વિરુદ્ધ પ્રવર્તન કરવાથી આત્માનુ જે સંસારમા પરિભ્રમણ થાય છે—એ પરિભ્રમણ જ આત્માની આશાતના—વિરાધના છે. આ લૌકિકી અને લોકોત્તરના ભેદથી બે પ્રકારે છે લૌકિકી અને લોકોત્તર આ બન્ને પણ દ્રવ્ય અને ભાવના ભેદથી બન્ને ભેદવાળી છે સચિત્ત, અચિત્ત અને મિશ્ર દ્રવ્યનો વિષય કરવાવાળી આશાતના દ્રવ્યથી લૌકિકી છે. અવિનયીને જેથી વિદ્યાદિકનો લાભ નથી મળતો તે ભાવથી લૌકિકી આશાતના છે શરીર અને અને ઉપધિનો વિષય કરવાવાળી દ્રવ્યથી લોકોત્તર તથા જ્ઞાન, દર્શન અને ચારિત્રમા અવિનય આદિ ગુણોનો વિષય કરવાવાળી ભાવથી લોકોત્તર આશાતના

પરમ્=મન્ય, મુમૂપુમાર્યમનાર્યમ્મુત્પિતમનુત્પિત વા ન આશાતમેત્, તથા=મન્યાન્
વા સામાન્યેન પ્રાપ્યાન્=પ્રાણિનઃ મૃતાન્ જીવાન્ સન્નાન્, સર્વાનિત્યર્યઃ; ન આશાત
મેત્, પદ્મજીવનિકાયસ્વરૂપાઽપ્સાપેન સાવધોપદેશેન વ ન ચિરાષમેત્। ર્દમુક્ક
મયતિ-તથામૃતમુપવંશે ન કુર્વાત્ એન કસ્યાપિ પ્રાણિનો ચિરાષના સમુત્પદ્યેત ॥૫॥

આશાતના હૈ। ઉપદેશ મુનનેકે લિયે અભિલાપી બને કુણ્ઠા નામ શુભ્રુ, સર્વચિરતિરૂપ ચારિત્રકે પાલક ઉત્પિત ઓર ગૃહસ્થજન અનુત્પિત હૈ। ફનમે સે કોઈ મી હો, મુનિકા કર્તવ્ય હૈ કિ વહ ફનકી આશાતના (ચિરાષના) ન કરે। ફસી પ્રકાર સામાન્યસે પ્રાણિયોંકી, મૃતોંકી, જીવોંકી, ઓર સન્નોંકી વે આશાતના કરનેકે અધિકારી નહીં હૈ। યેસા ઉપદેશ ન હૈ કિ જિસસે વહ જીવનિકાયક સ્વરૂપકા આપલાપ હો ઓર સાવધ બ્યાપારોંમે જીવોંકી પ્રવૃત્તિ હો। ક્યોં કિ ફસ પ્રકારકે ઉપદેશસે જીવોંકી પ્રવૃત્તિ અન્ય જીવોંકી ચિરાષનાકી ઓર ઉત્સાહિત હોતી હૈ। કહનેકા મતલબ યહ હૈ કિ યેસા ઉપદેશ મુનિકો કમી નહીં દેના ચાહિયે કિ જિસસે કિસી મી જીવકી ચિરાષના હોવે।

ધર્મકા ઉપદેશ કરનેલાલા સંયમી સદા ફસ જાતકા પૂર્ણ ધ્યાન રલે કિ, મેરે ઉપદેશસે જહાં તક હો સકે, સબ જીવોંકા કસ્યાણ હો। કુમાર્ગમે જાનેલાકે મી પ્રાણી ફસસે લાભ ઉઠાવે ઓર વે સન્માર્ગમે લગ જાવે। મોતાઓંકે ઉપર ઉસી ઉપદેશકા પ્રભાવ પડતા હૈ જો સ્વયં જ્ઞાન,

ઉપદેશ જાલગવા માં ઉત્કુઠ બનેલુ નામ મુમુષુ, સર્વવિસ્તૃત ચારિત્રના પાલક ઉત્પિત અને ગૃહસ્થજન અનુત્પિત છે આમાંથી કેઈ પણ હો, મુનિત્વ કર્તવ્ય છે કે તે કેઈની ચિરાષના ન કરે આ જ રીતે સામાન્ય પ્રાણી-ઓની, મૃતોની, જીવોની અને સત્વોની તે ચિરાષના કરવાના અધિકારી નથી એવો ઉપદેશ ન આપે કે એથી વધુ અનિશ્ચયના સ્વરૂપનો અપલાપ (સત્વાશયક) થાય અને સાવધ બ્યાપારમાં જીવોની પ્રવૃત્તિ વધે કેમકે આ પ્રકારના ઉપદેશથી જીવોની પ્રવૃત્તિ અન્ય જીવોની ચિરાષના તરફ ઉત્સાહિત અને છે. કહેવાની મતલબ એ છે કે મુનિએ એવો ઉપદેશ ન દેવો એકંએકે એથી કોઈ પણ જીવની ચિરાષના થાય.

ધર્મનો ઉપદેશ કરનાર સજમી આ વાતને સદા પૂર્ણરિતે ધ્યાનમાં રાખે કે મારા ઉપદેશથી અને ત્યાં મુખી જીવોનું કસ્યાણ થાય કુમાર્ગમાં જવાનાળા પ્રાણી પણ આને લાભ મેળવે અને સન્માર્ગે ચાલવા લાગે, મોતાઓ ઉપર આવા ઉપદેશનો પ્રભાવ પડે છે એ સ્વયં સદા ઈર્શન અને ચારિત્રથી વિહિત

एवम्भूतो मुनिः सर्वप्राणिनां शरणं भवतीति दृष्टान्तद्वारेण दर्शयति—
'से अणासायए' इति ।

मूलम्—से अणासायए अणासायमाणे वज्झमाणाणं पाणाणं
भूयाणं जीवाणं सत्ताणं जहा से दीवे असंदीणे एवं से भवइ
सरणं महामुणी ॥ सू० ६ ॥

छाया—सः अनाशातकः अनाशातयन् वध्यमानानां प्राणानां भूतानां जीवानां
सत्त्वानां, यथा स द्वीपः असन्दीनः, एवं स भवति शरणं महामुनिः ॥ सू० ६ ॥

टीका—यथा सः=प्रसिद्धः असन्दीन =जलोपप्लवरहितः द्वीपः प्राणिनां शरणम्
=आश्रयो भवति, एवं सः=असौ अनाशातकः=अविराधकः अनाशातयन्=आशातना-
मकुर्वन् महामुनिः=तीर्थङ्करो गणधरो वा तपःसंयमलब्धिसम्पन्नोऽनगारो वा वध्य-

दर्शन, और चारित्रसे विरुद्ध प्रवर्त्तन नहीं करता है । इसी लिये उस
उपदेष्टाके लिये प्रभुका यह आदेश है कि वह अपनी आशातना (विरा-
धना) न करे । जो स्वयं धर्मसे विरुद्ध प्रवृत्तिशाली होता है, वह दूसरों
को सुमार्गपर नहीं ला सकता है ॥सू० ५॥

ऐसा मुनि सर्व प्राणियोंका शरणभूत होता है—इस बातको दृष्टान्त
द्वारा सूत्रकार दिखलानेके लिये “से अणासायए” यह सूत्र कहते हैं—

असन्दीन द्वीप कि जिसके चारों ओर पानी होते हुए भी जो
स्वयं जलके उपद्रવसे रहित होता है—ऐसा प्रदेशविशेष जैसे
अनेक प्राणियों का आश्रयभूत होता है, इसी तरह अनाशातक
—अविराधक महामુનિ—તીર્થંકુર અથવા ગણધર દેવ યા તપ ઔર
સંયમકી લવ્ધિવાલે મુનિજન મી આશાતના (વિરાધના) સે રહિત હોકર

પ્રવૃત્તિ ન કરતા હોય આ માટે ઉપદેશકને પ્રભુનો એ આદેશ છે કે તે
પોતાની વિરાધના ન કરે જે સ્વયં ધર્મથી વિરુદ્ધ ચાલનાર હોય છે તે બીજાને
સુમાર્ગ ઉપર લાવી શકતા નથી (સૂ० ૫)

એવા મુનિ સર્વપ્રાણીઓના શરણુભૂત હોય છે એ વાત દૃષ્ટાન્તદ્વારા
સૂત્રકાર બતાવવા માટે “સે અણાસાયએ” આ સૂત્ર કહે છે

અસન્દીન ખેટ કે જેની ચારે તરફ પાણી હોય છે છતાં તે જળના ઉપદ્ર-
વથી રહિત રહે છે આવો પ્રદેશ અનેક પ્રાણીઓના આશ્રયઘાતા બને છે એ જ
રીતે અનાશાતક—અવિરાધક મહામુનિ—તીર્થંકર અથવા ગણધરદેવ તેમજ તપ
અને સંયમની લવ્ધિવાળા મુનિજન પણ, આશાતના (વિરાધના)થી રહિત થઈને

માનાનાં પ્રાણાનાં મૃતાનાં જીવાના સર્વાનાં સર્વેનાં સ્વસ્થાનોપાયપદર્શનતઃ કર્ણ
મનતિ । ચપકાનાં ચ સદ્ધમ્પસાયાધિવર્ષનેન વિશિષ્ટગુણસ્થાનાવસ્થાપનાચ્છરણ
મનતિ । તથાહિ—અગારાનગારધર્મમાવધાનસ્તથાવિષો મહાપુરુષ કતિચન પ્રમા
વતિ; કતિચન આશ્ચર્યતઃ પ્રવચયતિ, કતિચન સમ્યક્ત્વ પ્રાપન્ન મોક્ષમાર્ગસ્ય
પ્રથમસોપાને સમારોહયતિ, કતિચન પ્રકૃતિમધ્યાન કરોતિ, પ્રગાહમિધ્યાત્વવતઃપ્રાપ્તિ
કતિચન નવનીતવન્દુલમાનસાન્ વિધાતીતિ ॥ સૂ. ૬ ॥

ઉક્તમર્યપસંહરમાદ—‘પથં સે ઉદ્ધિપ’ ઇત્યાદિ ।

સમસ્ત પ્રાણી, મૃત, જીવંત, જીવંત અને સર્વજીવી રક્ષાકે ઉપાય દિશ્વાનેકે કારણ
સમસ્ત પ્રાણીયોકે, સમસ્ત મૃતોકે, સમસ્ત જીવોકે અને સમસ્ત સર્વો
કે આશ્રય—શરણ હોતે હૈ । તથા—એ જન પ્રાણી આદિકે વધ કરનેવાલોકે
મી, ઉન્ને હિંસાકે વ્યાપારસે નિવૃત્ત કર વિશિષ્ટ ગુણસ્થાનમેં પહુંચાનેકે
કારણ, શરણ હોતે હૈ । સર્વકે શરણ એ મહામુનિ વધ કરનેવાલે જીવો
મેં સે કિત્તનેક જીવોકો ઉપદેશ દે કર દીક્ષિત કર દેતે હૈ,
કર્યોકો આશ્ચર્યકે વર્તોમેં સ્થાપિત કર દેતે હૈ, કિત્તનેકો કો
સમ્યક્ત્વ પ્રાપ્ત કરા કર મોક્ષમાર્ગકી પ્રથમ સીડી પર ચઢા દેતે હૈ, અને
કિત્તનેક પ્રાણીયોકો પ્રકૃતિસે મદ્ર બના દેતે હૈ । યહાં તક કિ જિનકે
ગાઠ મિધ્યાત્વકા મી ઉવય હૈ એસે મી કર્જ જીવોકે ચિત્ત કો એ નવ
નીત (મમ્બન) કે સમાન કોમલ બના દેત હૈ ॥ સૂ. ૬ ॥

પૂર્વોક્ત અર્થકા ઉપસંહાર કરતે જુપ સુવકાર કહતે હૈ—“પથં
સે ઉદ્ધિપ” ઇત્યાદિ ।

સમસ્ત પ્રાણી મૃત, જીવંત અને સર્વજીવી રક્ષાકે ઉપાય પ્રદર્શિત કરવાને લીધે
સમસ્ત પ્રાણીયોના સમસ્ત મૃતોના, સમસ્ત જીવોના, અને સમસ્ત સર્વોના
આશ્રય—શરણ—દાતા હોય છે.

તથા—તે પ્રાણી આદિનો વધ કરનાર મહામુનિ હિંસાના વ્યાપારથી
નિવૃત્ત કરી, વિશિષ્ટ ગુણસ્થાનમાં વર્ધ બધાના કારણે, તે મહામુનિ તે હિંસાના
પણ શરણ આપે છે. બધાના શરણ તે મહામુનિ વધ કરનાર જીવોમાંથી કેટલાક જીવોને
ઉપદેશ આપી દીક્ષા પ્રદાન કરાવે છે કેટલાકને આશ્ચર્યના વર્તોમાં દાખલ કરે છે.
કેટલાકને સમ્યક્ત્વ પ્રાપ્ત કરાવી મોક્ષમાર્ગની પ્રથમ સીડી ઉપર બઢાવી દે છે. અને
કેટલાક પ્રાણીયોને પ્રકૃતિથી દૂર વળાવે છે ત્યાં સુધી કે જેનામાં નાદ મિધ્યા
ત્વનો પૂર્વ ઉદય હોય એવા મળા જીવોના ચિત્તમાં પાતાની શુદ્ધ પ્રાણીનો
પ્રગટ થી તેને માનવ જોવા કેમકે મનમાંથી બનવાથી દે છે (સૂ. ૧)

પૂર્વોક્ત અર્થને ઉપસંહાર કરતા સુવકાર કહે છે—“પથં સે ઉદ્ધિપ” ઇત્યાદિ.

एवम्भूतो मुनिः सर्वप्राणिना शरणं भवतीति दृष्टान्तद्वारेण दर्शयति—
'से अणासायए' इति ।

मूलम्—से अणासायए अणासायमाणे वज्झमाणाणं पाणाणं
भूयाणं जीवाणं सत्ताणं जहा से दीवे असंदीणे एवं से भवइ
सरणं महामुणी ॥ सू० ६ ॥

छाया—सः अनाशातकः अनाशातयन् वध्यमानानां प्राणानां भूतानां जीवानां
सत्त्वानां, यथा स द्वीपः असन्दीनः, एव स भवति शरणं महामुनिः ॥ सू० ६ ॥

टीका—यथा सः=प्रसिद्धः असन्दीन=जलोपप्लवरोहितः द्वीपः प्राणिनां शरणम्
=आश्रयो भवति, एव सः=असौ अनाशातकः=अविराधकः अनाशातयन्=आशातना-
मकुर्वन् महामुनिः=तीर्थङ्करो गणधरो वा तपःसंयमलब्धिसम्पन्नोऽनगारो वा वध्य-

दर्शन, और चारित्र्यसे विरुद्ध प्रवर्त्तन नहीं करता है । इसी लिये उस
उपदेष्टाके लिये प्रभुका यह आदेश है कि वह अपनी आशातना (विरा-
धना) न करे । जो स्वयं धर्मसे विरुद्ध प्रवृत्तिशाली होता है, वह दूसरों
को सुमार्गपर नहीं ला सकता है ॥सू० ५॥

ऐसा मुनि सर्व प्राणियोंका शरणभूत होता है—इस बातको दृष्टान्त
द्वारा सूत्रकार दिखलानेके लिये “से अणासायए” यह सूत्र कहते हैं—

असन्दीन द्वीप कि जिसके चारों ओर पानी होते हुए भी जो
स्वयं जलके उपद्रवसे रहित होता है—ऐसा प्रदेशविशेष जैसे
अनेक प्राणियों का आश्रयभूत होता है, इसी तरह अनाशातक
—अविराधक महामुनि—तीर्थङ्कर अथवा गणधर देव या तप और
संयमकी लब्धिवाले मुनिजन भी आशातना (विराधना) से रहित होकर

પ્રવૃત્તિ ન કરતા હોય આ માટે ઉપદેશકને પ્રભુનો એ આદેશ છે કે તે
પોતાની વિરાધના ન કરે જે સ્વયં ધર્મથી વિરુદ્ધ ચાલનાર હોય છે તે બીજાને
સુમાર્ગ ઉપર લાવી શકતા નથી (સૂ. ૫)

એવા મુનિ સર્વપ્રાણીઓના શરણુભૂત હોય છે એ વાત દૃષ્ટાન્તદ્વારા
સૂત્રકાર બતાવવા માટે “સે અણાસાયએ” આ સૂત્ર કહે છે

અસન્દીન બેટ કે જેની ચારે તરફ પાણી હોય છે છતાં તે જળના ઉપદ્ર-
વથી રહિત રહે છે આવો પ્રદેશ અનેક પ્રાણીઓનો આશ્રયદાતા બને છે એ જ
રીતે અનાશાતક—અવિરાધક મહામુનિ—તીર્થંકર અથવા ગણધરદેવ તેમજ તપ
અને સયમની લબ્ધિવાળા મુનિજન પણ, આશાતના (વિરાધના)થી રહિત થઈને

ઉક્તરીત્યા ચારિત્રમારાધયન્ જ્ઞાનં પ્રાપ્ય મુક્તો મયતીતિ દર્શયતિ—
'સંસ્થાય' ઇત્યાદિ ।

મૂલ્ય—સંસ્થાય પેસલં ધમ્મ દિદ્ધિમં પરિણિવુદ્ધે ॥સુ૦૮॥

છાયા—સંસ્થાય પેસલં ધર્મ દષ્ટિમાન્ પરિણિવૃતઃ ॥ સુ૦ ૮ ॥

ટીકા—દષ્ટિમાન્=સમ્યગ્ધર્મજ્ઞાનવાન્ પેસલં=હિંસાદિદોષરહિત શુદ્ધ ધર્મ=
જિનોક્તં શ્રુતચારિત્રાસ્ય સંસ્થાય=સમ્યગ્જ્ઞાનનં મિત્થાય પરિણિવૃતઃ=સમૂલસંકલ્પ-
કર્મણ્યાત્ પ્રકટિતશુદ્ધાત્મસ્વરૂપતયા નિરાચાયાઅમન્દસન્દોહસમ્પન્નો ભવતિ ॥

યસ્ય મિથ્યાદષ્ટિઃ પેસલ ધર્મ ન જાનાતિ સ પરિણિવૃત્તો ન મયતીતિ દર્શ-
યિતુમાર્—'તન્મા' ઇત્યાદિ ।

ઉક્ત રીતિસે ચારિત્રકી આરાધના કરનેવાલા મુનિ જ્ઞાનકી પ્રાપ્તિ
કરકે મુક્ત હોતા હૈ—હસ વાતકો સૂત્રકાર કહતે હૈ—“ સન્સાય ” ઇત્યાદિ ।

સમ્યક્ દર્શન—સમ્યક્ મુનિ હિંસાદિક દોષોસે રહિત શુદ્ધ પેસે
જિનેન્દ્રદ્વારા પ્રતિપાદિત શ્રુતચારિત્રરૂપ ધર્મકા સમ્યક્ જ્ઞાનસે પરિજ્ઞાન
કર પરિણિવૃત્ત હો જાતા હૈ—અર્થાત્ આમૂલ્યૂલ સંકલ્પ કર્મોંકે વિનાશ
હોનેસે પ્રકટિત શુદ્ધ આત્મસ્વરૂપ હોનેક કારણ, નિરાચાય અમન્દ આનંદ
કી પરપરાસે સંપન્ન હો જાતા હૈ—સમ્યગ્ધર્શન સપન્ન મહામુનિ જિનેન્દ્રદેવ
કવિત ધર્મકી સમ્યગ્જ્ઞાનપૂર્વક આરાધના કરનેસે સમસ્ત કર્મોંસે રહિત
હો જાતા હૈ ઔર અધ્યાચાય સુસ્વકા મોક્ષા વન જાતા હૈ ॥ સુ૦૮॥

જો મિથ્યાદષ્ટિ હૈ, યે મિથ્યાત્મકે પ્રમાણસે શુદ્ધ પેસે જિનોક્ત ધર્મ
કો નહીં જાનતે હૈ; હસલિયે યે મુક્તિકે ત્રી પાત્ર નહીં હોતે હૈ—હસ પાત

આ રીતથી ચારિત્રની આરાધના કરવાવાળા મુનિ જ્ઞાનની પ્રાપ્તિ કરી મુક્ત
બને છે આ વાતને સૂત્રકાર કહે છે—“ સન્સાય ” ઇત્યાદિ—

સમ્યગ્ધર્શનસંપન્ન મુનિ હિંસાદિક દોષથી રહિત શુદ્ધ બોધ જિનેન્દ્ર
દ્વારા પ્રતિપાદિત શ્રુતચારિત્રરૂપ ધર્મને સમ્યગ્જ્ઞાનથી બદલીને પરિણિવૃત્ત થઈ
બચ છે અર્થાત્ પોતાના સંકલ્પ કરીને સમૂળ વિનાશ થતા પ્રત્યેલા શુદ્ધ
આત્મસ્વરૂપના કારણે કોઈ પ્રકારની બાધાર્હિત અમન્દ (યસયાર) આનંદ-
સંપન્ન થઈ બચ છે સમ્યગ્ધર્શનસંપન્ન મહામુનિ જિનેન્દ્રદેવે કહેલા
ધર્મની સમ્યગ્જ્ઞાનપૂર્વક આરાધના કરવાથી સંપન્ન કરીથી રહિત બની બચ
છે અને અધ્યાચાય મુજબ કોણેય બને છે (સુ ૮)

જે મિથ્યાદષ્ટિ છે તે મિથ્યાત્મના પ્રમાણથી શુદ્ધ બોધ છનોત્ત ધર્મને

મૂલમ્—એવં સે ઉટ્ટિય ઠિયપ્પાઅણિહે અચલે ચલે અવાહિ-
લેસે પરિવ્વણ ॥ સૂ૦ ૭ ॥

છાયા—એવં સ ઉત્થિતઃ સ્થિતાત્મા અનીહઃ અચલ ચલઃ અવહિર્લેશ્યઃ
પરિવ્રજેત્ ॥ સૂ૦ ૭ ॥

ટીકા—એવમ્=ઉત્કરીત્યા સ ઉત્થિતઃ=કર્મધૂનનાથં ગૃહીતમવ્રજ્યઃ સ્થિતાત્મા-
શ્રુતચારિત્રધર્મે સ્થિતઃ=સ્થિરીભૂત આત્મા यस્ય સઃ—ધર્મારાધનપરાયણઃ, અનીહઃ=
કપટવર્જિતઃ—અનિગૂહિતવલવીર્યં इत्यर्थः, યદ્વા—‘અસ્મિન્હઃ’ इति च्छाया; રાગદ્વેષ-
રહિતઃ, અચલઃ=મહાવાતે મવ્રહતિ સતિ મેરુરિવાનુકૂલપ્રતિકૂલપરીપહોપસર્ગસમુપ-
સ્થિતૌ સત્યામપ્રકમ્પ., વિકૃતાધ્યવસાયરહિત इत्यर्थः । ચલઃ=સ્થિરવાસવર્જિતઃ,
ઉગ્રવિહારીત્યર્થઃ । અવહિર્લેશ્યઃ=ન વર્તેતે સંયમાદ્વહિર્લેશ્યા=મનોવૃત્તિર્યસ્ય સઃ
તથોક્તઃ, સયમૈકલક્ષ્યઃ સન્ પરિવ્રજેત્=વિહરેત્ ॥ સૂ૦ ૭ ॥

હસ પૂર્વોક્ત રીતિસે કર્મો કો હટાનેકે લિયે જિસને આર્હતી દીક્ષા
ધારણ કી હૈ, તથા જિસકી આત્મા શ્રુતચારિત્રરૂપ ધર્મ મેં સ્થિરીભૂત હૈ-
ધર્મકે આરાધન કરનેમેં જો પરાયણ હૈ, કપટરહિત હૈ—અપને વલ ઓર
વીર્યકો જિસને છિપાતા નહીં હૈ, અથવા અસ્મિન્હ—રાગ ઓર દ્વેષસે
રહિત હૈ, શંકાવાતકે ચલને પર ભી સુમેરુકી ડ્યોં જો અનુકૂલ પ્રતિકૂલ
પરીપહ ઓર ઉપસર્ગોંકે આને પર ભી અડોલ વના રહતા હૈ—વિકૃત-
પરિણામોંસે શૂન્ય રહતા હૈ, જો ઉગ્રવિહારી હૈ—સ્થિરવાસ નહીં કરતા હૈ,
સંયમકે સિવાય બાહિરી પદાર્થોંમેં જિસકી માનસિક વૃત્તિ ચલાયમાન નહીં
હોતી હૈ, એસા મુનિ સંયમરૂપ અપને એક લક્ષ્યમેં સ્થિર બન વિહાર કરે ॥ સૂ૦ ૭ ॥

એ પૂર્વોક્ત રીતથી કર્મોને હટાવવા માટે જેણે આર્હતી દીક્ષા ધારણ કરી
છે તથા જેનો આત્મા શ્રુત ચારિત્રરૂપ ધર્મમાં સ્થિર છે—ધર્મનું આરાધન કર
વામાં જે પરાયણ છે, કપટરહિત છે—પોતાનું બળ અને વીર્યને જેણે છુપાવેલ
નથી અથવા જે રાગ અને દ્વેષથી રહિત છે, ગમે તેવા અજ્ઞાવાતની સામે
જેમ મેરૂ પર્વત અડગ અને અચળ રહે છે, એ રીતે ગમે તેવા ઉપસર્ગોં અને
પરિપેક્ષ આવવા છતાં અચળ રહે છે—વિકૃત પરિણામોથી શૂન્ય રહે છે, જે ઉગ્ર
વિહારી છે—સ્થિર વાસ કરતા નથી, સયમ સિવાય બહારના પદાર્થોમાં જેની
માનસિક વૃત્તિ ચલાયમાન થતી નથી, એવા મુનિ સયમરૂપ પોતાના એક લક્ષ્યમાં
સ્થિર બની વિહાર કરે (સૂ૦ ૭)

उक्तरीत्या चारित्र्यमाराधयन् ज्ञानं प्राप्य मुक्तो भवतीति दर्शयति—
'संस्त्राय' इत्यादि ।

मूळम्—संस्त्राय पेसल धम्म दिट्ठिम परिणिव्वुडे ॥ सु० ८ ॥

छाया—संस्त्राय पेसल धर्म इष्टिमान् परिनिर्वृतः ॥ सु० ८ ॥

टीका—इष्टिमान्=सम्यग्दर्शनवान् पेसल=हिंसादिदोषरहित शुद्ध धर्म=
जिनोक्तं भुतचारित्र्याख्यं संस्त्राय=सम्यग्ज्ञानेन विज्ञाय परिनिर्वृतः=समूतसकल-
कर्मस्यात् प्रकटितशुद्धात्मस्वरूपतया निरायासः अमन्दोऽसम्पन्नो भवति ॥

यस्तु मिथ्यादृष्टिः पश्यन् धर्मं न जानाति स परिनिर्वृतो न भवतीति दर्श-
यितुमाह—'तम्हा' इत्यादि ।

उक्त रीतिसे चारित्र्यकी आराधना करनेवाला मुनि ज्ञानकी प्राप्ति
करके मुक्त होता है—इस बातको सूत्रकार कहते हैं—“संस्त्राय” इत्यादि ।

सम्यक् दर्शन—सम्यक् मुनि हिंसादिक दोषोंसे रहित शुद्ध ऐसे
जिनेन्द्रद्वारा प्रतिपादित भुतचारित्र्यरूप धर्मका सम्यक् ज्ञानसे परिज्ञान
कर परिनिर्वृत हो जाता है—अर्थात् आमूलचूल सकल कर्मोंके बिनाश
होनेसे प्रकटित शुद्ध आत्मस्वरूप होनेके कारण, निरायास अमन्द आनन्द
की परंपरासे मंचल हो जाता है—सम्यग्दर्शन संपन्न महामुनि जिनेन्द्रदेव
कथित धर्मकी सम्यग्ज्ञानपूर्वक आराधना करनेसे समस्त कर्मोंसे रहित
हो जाता है और अभ्यासाय सुखका भोक्ता बन जाता है ॥ सु० ८ ॥

जो मिथ्यादृष्टि हैं, वे मिथ्यात्वके प्रभावसे शुद्ध ऐसे जिनोक्त धर्म
को नहीं जानते हैं; इसलिये वे मुक्तिके भी पात्र नहीं होते हैं—इस बात

आ श्रुतं च चारित्र्यं आराधनां कृत्वा वाणा मुनि नान्नी प्राप्तिं करी मुक्त
बने छे आ वातने सूत्रकार कहे छे— संस्त्राय” इत्यादि—

सम्यग्दर्शनसंपन्न मुनि हिंसादिक दोषोंसे रहित शुद्ध जेवा जिनेन्द्र
द्वारा प्रतिपादित भुतचारित्र्यरूप धर्मने सम्यग्ज्ञानधी व्यष्टीने परिनिर्वृत धर्म
ज्ये छे अर्थात् पातना सकल कर्मोंना समूह बिनाश यत्ता प्रगटेवा शुद्ध
आत्मस्वरूपना कारणे केवल प्रकाशनी आभासहित अमन्द (पशुवाह) आनन्द
संपन्न धर्म ज्ये छे सम्यग्दर्शनसंपन्न महामुनि जिनेन्द्रदेवे कहेवा
धर्मनी सम्यग्ज्ञानपूर्वक आराधना कृत्वा भी सधया कर्मोंसे रहित जनी ज्ये
छे अने अभ्यासाय सुखना भोक्ता बने छे (सु ८)

वे मिथ्यादृष्टि छे ते मिथ्यात्वना प्रभावसे शुद्ध जेवा अनोक्त धर्मने

મૂલમ—एवं से उट्टिए ठियप्पाअणिहे अचले चले अवहि-
लेस्से परिव्वए ॥ सू० ७ ॥

છાયા—एवं स उत्थितः स्थितात्मा अनीहः अचल चलः अवहिल्लेश्यः
परिव्रजेत् ॥ सू० ७ ॥

ટીકા—एवम्=उत्तरीत्या स उत्थितः=कर्मधूननार्थं गृहीतप्रव्रज्यः स्थितात्मा-
श्रुतचारित्रधर्मे स्थितः=स्थिरीभूत आत्मा यस्य सः=धर्माधनपरायणः, अनीहः=
कपटवर्जितः=अनिगूहितबलवीर्य इत्यर्थः, यद्वा-‘अस्निहः’ इति च्छाया; रागद्वेष-
रहितः, अचलः=महावाते प्रवहति सति मेरुरिवानुकूलप्रतिकूलपरीषदोपसर्गसमुप-
स्थितौ सत्यामप्रकम्पः, विकृताध्यवसायरहित इत्यर्थः । चलः=स्थिरवासवर्जितः,
उग्रविहारीत्यर्थः । अवहिल्लेश्यः=न वर्तते संयमाद्वहिल्लेश्या=मनोवृत्तिर्यस्य सः
तथोक्तः, संयमैकलक्ष्यः सन् परिव्रजेत्=विहरेत् ॥ सू० ७ ॥

इस पूर्वोक्त रीतिसे कर्मों को हटानेके लिये जिसने आर्हती दीक्षा
धारण की है, तथा जिसकी आत्मा श्रुतचारित्ररूप धर्ममें स्थिरीभूत है-
धर्मके आराधन करनेमें जो परायण है, कपटरहित है-अपने बल और
वीर्यको जिसने छिपाता नहीं है, अथवा अस्निह-राग और द्वेषसे
रहित है, झंझावातके चलने पर भी सुमेरुकी ज्यों जो अनुकूल प्रतिकूल
परीषद और उपसर्गोंके आने पर भी अडोल बना रहता है-विकृत-
परिणामोंसे शून्य रहता है, जो उग्रविहारी है-स्थिरवास नहीं करता है,
संयमके सिवाय बाहिरी पदार्थोंमें जिसकी मानसिक वृत्ति चलायमान नहीं
होती है, ऐसा मुनि संयमरूप अपने एक लक्ष्यमें स्थिर बन विहार करे॥सू०७॥

એ પૂર્વોક્ત રીતથી કર્મોને હટાવવા માટે જેણે આર્હતી દીક્ષા ધારણ કરી
છે તથા જેનો આત્મા શ્રુત ચારિત્રરૂપ ધર્મમાં સ્થિર છે-ધર્મનું આરાધન કર
વામાં જે પરાયણ છે, કપટરહિત છે-પોતાનું બળ અને વીર્યને જેણે છુપાવેલ
નથી અથવા જે રાગ અને દ્વેષથી રહિત છે, ગમે તેવા ઝંઝાવાતની સામે
જેમ મેરૂ પર્વત અડગ અને અચળ રહે છે, એ રીતે ગમે તેવા ઉપસર્ગો અને
પરિષદ આવવા છતાં અચળ રહે છે-વિકૃત પરિણામોથી શૂન્ય રહે છે, જે ઉગ્ર
વિહારી છે-સ્થિર વાસ કરતા નથી, સંયમ સિવાય બહારના પદાર્થોમાં જેની
માનસિક વૃત્તિ ચલાયમાન થતી નથી, એવા મુનિ સંયમરૂપ પોતાના એક લક્ષ્ય મા
સ્થિર બની વિહાર કરે (સૂ०૭)

उत्करीत्या चारित्र्यभारापयन् ज्ञानं प्राप्य मुक्तो भवतीति दर्शयति—
'संस्वाय' इत्यादि ।

मूख्य—संस्वाय पेसलं घम्म दिट्ठिम परिणिव्वुडे ॥ सु० ८ ॥

छाया—संस्वाय पेसलं घम्म दिट्ठिमान् परिनिव्वुत्त ॥ सु० ८ ॥

टीका—दिट्ठिमान्=सम्यग्दर्शनवान् पेसलं=हिंसादिवापरहितं शुद्धं घम्म=जिनोक्तं भुतचारित्र्याख्यं संस्वाय=सम्पन्नत्वानेन विज्ञाय परिनिव्वुत्तः=समूलसंस्कृत्य भवत्यात् प्रकटितशुद्धात्मस्वरूपतया निरायाधामन्दानन्दसन्दोहसम्पन्नो भवति ॥

यस्य मिथ्यादृष्टिः पेसलं घम्म न जानाति स परिनिव्वुत्तो न भवतीति दर्शयितुमाह—'तम्हा' इत्यादि ।

उक्त रीतिसे चारित्र्यकी आराधना करनेवाला मुनि ज्ञानकी प्राप्ति करके मुक्त होता है—इस बातको सूत्रकार कहते हैं—“संस्वाय” इत्यादि ।

सम्यक् दर्शन—सम्पन्न मुनि हिंसादिक दोषोंसे रहित शुद्ध ऐसे जिनेन्द्रद्वारा प्रतिपादित भुतचारित्र्य रूप घर्मका सम्यक् ज्ञानसे परिज्ञान कर परिनिवृत्त हो जाता है—अर्थात् आमूलचूल संकल कर्मोंके बिनाश होनेसे प्रकटित शुद्ध आत्मस्वरूप होनेके कारण, निरायाध अमन्द आनन्द की परपरासे संपन्न हो जाता है—सम्यग्दर्शन संपन्न महामुनि जिनेन्द्रदेव कथित घर्मकी सम्यग्ज्ञानपूर्वक आराधना करनेसे समस्त कर्मोंसे रहित हो जाता है और अयायाध सुखका मोक्षा बन जाता है ॥ सु० ८ ॥

जो मिथ्यादृष्टि हैं, वे मिथ्यात्वके प्रभावसे शुद्ध ऐसे जिनोक्त घर्म को नहीं जानते हैं; इसलिये वे मुक्तिके श्री पात्र नहीं होते हैं—इस बात

का शीतली चरित्रिणी आराधना करवायागा मुनि ज्ञानकी प्राप्ति करी मुक्त होने के, का बातने सूत्रकार कहते हैं—“संस्वाय” इत्यादि—

सम्यग्दर्शनसंपन्न मुनि हिंसादिक दोषोंकी रहित शुद्ध कोच जिनेन्द्र द्वारा प्रतिपादित भुतचारित्र्य रूप घर्मने सम्यग्ज्ञानकी आवृत्तिने परिनिवृत्त भव्य का है अर्थात् योगाना संकल कर्मोंने समूह मिथ्या यत्न प्रभेदा शुद्ध आत्मस्वरूपका कारणे केवल प्रकारनी जायादृष्टि अमन्द (यासपाह) आनन्द संपन्न भव्य का है सम्यग्दर्शनसंपन्न महामुनि जिनेन्द्रदेवे कहेंवा घर्मनी सम्यग्ज्ञानपूर्वक आराधना करवायी सधया कर्मोंकी रहित भनी का है अने अयायाध सुखका योग्य होने के (सु ८)

वे मिथ्यादृष्टि के ते मिथ्यात्वका प्रभावकी शुद्ध कोच अनोक्त घर्मने

મૂલમ્—તમ્હા સંગંતિ પાસહ, ગંથેહિં ગઢિયા ણરા વિસપ્પા
કામક્રંતા, તમ્હા લૂહઓ ણો પરિવિત્તસેજ્જા ॥ સુ૦ ૧ ॥

છાયા—તસ્માત્ સજ્ઞમિતિ પશ્યત, ગ્રન્થૈર્ગ્રથિતા નરા વિષણ્ણાઃ કામક્રાન્તાઃ,
તસ્માદ્ રુક્ષાત્ નો પરિવિત્તસેત્ ॥ સૂ૦ ૧ ॥

ટીકા—ઇતિ શબ્દોઽત્ર હેત્વર્થે; ઇતિ=યતઃ-મિથ્યાદૃષ્ટિઃ સજ્ઞવાન ભૂત્વા ન
પરિનિર્વૃતો ભવતિ તસ્માત્ સજ્ઞ=માતાપિત્રાદિસમ્બન્ધં તદ્વિપાક વા પશ્યત=વિવેક-
બુદ્ધ્યા પર્યાલોચયત । સજ્ઞમાહ-ગ્રન્થૈઃ=સવાહ્યાભ્યન્તરપરિગ્રહૈઃ ગ્રથિતાઃ=અવવ-
દ્ધાઃ વિષણ્ણાઃ=ગ્રન્થસજ્ઞે નિમગ્નાઃ કામક્રાન્તાઃ=કામભોગાભિનિવિષ્ટચિત્તા ન પરિ-
નિર્વૃતા ભવન્તિ; કિન્તુ શારીરમાનસૈર્નાનાવિધદુરન્તદુઃખૈઃ પરિતપ્તા એવ ભવન્તિ,
તસ્માત્ કારણાત્ મુનિઃ રુક્ષતઃ=રાગાદિરહિતત્વાદસ્નિગ્ધતયા રુક્ષ ઇવ રુક્ષઃ=નિસ્સજ્ઞ.

કો દિશ્વાનેકે લિયે સૂત્રકાર કહતે હૈં “ તમ્હા ” ઇત્યાદિ ।

સૂત્રમેં ઇતિ શબ્દ હેત્વર્થમેં પ્રયુક્ત હુઆ હૈ। જિસ કારણસે વહ મિ-
થ્યાદૃષ્ટિ વાહ્ય પદાર્થોં મેં સંગ-આસક્તિવાલા બન કર મુક્ત નહીં હોતા
હૈ, ઇસી કારણસે હે શિષ્ય ! તુમ ખી માતા પિતા આદિકે સંબંધકા ઓર
ઉસકે વિપાકકા વિવેકબુદ્ધિસે અચ્છી તરહસે વિચાર કરો । જો વાહ્ય
ઓર આભ્યન્તર પરિગ્રહોંસે બંધે હુએ હૈં, ઓર ઇસીલિયે જો પરિગ્રહકે
સમ્બન્ધમેં મગ્ન હૈ, કામભોગોંમેં જિનકા ચિત્ત સર્વ પ્રકારસે લવલીન હૈ,
વે ઉસ અવસ્થામેં મુક્ત નહીં હો સકતે હૈ । સિર્ફ એસે જીવ શારીરિક
ઓર માનસિક નાના પ્રકારકે દુરન્ત દુઃખોંસે હી સંતપ્ત હોતે રહતે હૈ ।
ઇસ કારણ મુનિકા કર્તવ્ય હૈ કિ વહ રુક્ષ-સંયમસે કબી ખી ઉદ્વિગ્ન

નભુતા નથી, આથી તે મુક્તિને પાત્ર પણ નથી બનતા આ વાત બતાવવા
સૂત્રકાર કહે છે “ તમ્હા ” ઇત્યાદિ—

સૂત્રમા ઇતિ શબ્દ હેતુ-અર્થમા પ્રયુક્ત થયેલ છે જે કારણથી તે મિથ્યા
દૃષ્ટિ બાહ્ય પદાર્થોમા આસક્તિવાળા બની મુક્ત થઈ શકતા નથી, આ માટે હે
શિષ્યો ! તમે પણ માતા પિતા આદિના સંબંધને અને એના વિપાકને વિવેક-
બુદ્ધિથી વિચાર કરો જે બાહ્ય અને આંતરિક પરિગ્રહોથી બંધાયેલા છે અને
એથી કરી તેઓ એમા જ બુદ્ધિવાળા છે, કામભોગોમા જેમનું ચિત્ત સર્વ-પ્રકાર-
થી મગ્ન છે તેઓ એ અવસ્થામાથી મુક્ત થઈ શકતા નથી આવા જીવો
શારીરિક અને માનસિક નાના પ્રકારની વ્યાધિ-ઉપાધિઓમા સંતપ્ત રહે છે
આ કારણે મુનિનું કર્તવ્ય કે તે રુક્ષ-સંયમથી કદિ પણ ઉદ્વિગ્ન ન બને.

સંયમ, તસ્માત્ નો પરિવિષસત્-ન વિમીયાત્-સંયમપ્રપાદાય પરીપશવિમ્વસાસ
ન પ્રાપ્તુયાત્-અવિચલ્મનસા સયમં પરિપાલયવિત્પર્યઃ ॥ મૂં ૯ ॥

ન હો ! સ્પષ્ટકા અર્થે યહાં સંયમ હૈ; ક્યોં ફિ યહ રાગાવિકલોપોંસે રહિત
હોતા હૈ, હસ લિયે હસમેં સ્નિગ્ધતા નહીં આ સફતી હૈ, અતઃ ઉસકે ન
હોનેસે યહ સ્પષ્ટકાી તરહ સ્પષ્ટ હૈ, સ્પષ્ટ હોનેસે હી યહ કપાયોંસે સંસ્કિષ્ટ
નહીં હો સકતા હૈ એસે સંયમકો ગ્રહણ કર મુનિ પરીપહ આદિસે અય
મીત ન હો-અવિચલિત ચિત્તસે સંયમકી પાલના ઓર ઉસકી સદા
રક્ષા કરે ।

મિધ્યાદષ્ટિ મુક્ત નહીં હોતા-હસકા કારણ સૂત્રકાર પતલાતે હૈ । બે
કહતે હૈ કિ ઉસકી મિધ્યાત્વકે સમ્ય-ચસે ઘાઘ પદાર્થોંમેં આસક્તિ
ધની રહતી હૈ, જો સંયમકી વિષાતક હૈ । હસકી બુદ્ધિ કામાક્રાન્ત હોતી
હૈ, તથા ઘાઘ ઓર આમ્યન્તર પરિગ્રહોંમેં યહ સદા મગ્ન રહતા હૈ । હસ
લિયે અનેક દુરન્ત શારીરિક પથ માનસિક કષ્ટોંકા સામના કરતા
હુઆ બી સયમકે વર્ણન તકસે વંચિત રહતા હૈ, ફિર મુક્તિકી તો પાત
હી કયા કરની ? હસલિયે મુનિકા કર્મણ્ય હૈ કિ યહ સંયમ ગ્રહણ કરને
કે પાદ પરીપહ ઓર ઉપસર્ગાવિકોંકે જ્ઞાન પર અય ન કરે ઓર અવિ
ચલિત મન ધન સંયમકી પાલના ઓર રક્ષા કરતા રહે ॥ મૂં ૯ ॥

इक्ष्णेऽर्धं अर्द्धं सयमं छे केन के ते शमादिकं दोषोधी रहित होय
छे आ इक्ष्णे तेनाभां स्निग्धता आवी शक्ती नधी. आ इक्ष्णे ते इक्ष्णी
उरुह इक्ष छे. इक्ष होवाधी न ते कषायेधी अक्षयात्वा नधी. आवा
सयमने अक्षय करी मुनि परिषद आदिधी लयलीत न जने-अविचलितचित्तधी
सयमनी पालना जने तेनी सदा रक्षा करे.

मिध्यादष्टि मुक्त नधी अर्ध शक्ता जेनु अक्षय सूत्रकार जयावे ॥
ते कहे छे के जेनाभां मिध्यात्व होवा सजज तेनी जाझ पदार्थोभा आसक्ति
रहे छे, जे सयमनी विषातक छे जेनी बुद्धि विषयधी व्याप्त होय छे,
जने जाझ तथा आन्तरिक परिग्रहोभां जे सदा मग्न रहे छे आधी
लयकर जेनां शारीरिक जने मानसिक कष्टोन्मे सामने कष्टां छत्ता पञ्च सय
मना दर्शनधी पञ्च वंचित रहे छे पछी मुक्तिनी तो पात न कया करवी. आ
भाटे मुनिनु कतज छे के सयम धारण कष्टा जाड परिषद जने उपसर्गा
द्विगोत्रा आपवाधी लयलीत न जने जने अविचलित मनना जनी सयमनी
पालना जने रक्षा कस्टा रहे (सू. ६)

કસ્ય પુનઃ સયમાદપરિત્રાસઃ સમવતીતિ જિજ્ઞાસાયામાહ—‘જસિસમે’ ઇત્યાદિ।

મૂલમ્—જસિસમે આરંભા સઽવતો સઽવત્તાષ્ણ સુપરિણ્ણાયા ભવંતિ, જેસિમે લૂસિણો ણો પરિવિત્તસંતિ, સે વંતા કોહં ચ માણં ચ માયં ચલોહંચ । એસતુદ્દે વિયાહિષ્—તિવેમિ ।સૂ૦૧૦।

છાયા—યસ્યેમે આરમ્ભાઃ સર્વતઃ સર્વતયા સુપરિજ્ઞાતા ભવન્તિ, યેષ્વિમે લૂપિણો નો પરિવિત્રસ્યન્તિ, સ વાન્ત્વા ક્રોધ ચ માનં ચ માયા ચ લોભં ચ । એપ તુદ્દઃ વ્યાખ્યાતઃ, ઇતિ વ્રવીમિ ॥ સૂ૦ ૧૦ ॥

ટીકા—યેપુ=આરમ્ભેપુ આરમ્ભપ્રવૃત્તિપુ ઇમે=ગ્રન્થગ્રથિતા વિપણ્ણાઃ કામક્રાન્તાઃ જનાઃ લૂપિણઃ=લૂપણશીલા હિંસકા નો પરિવિત્રસ્યન્તિ=અજ્ઞાનેન પ્રવલમોહોદયેન ચ નોદ્વિજન્તે । સ્વસ્વપ્રાણપરિત્રાણકારણાત્ સ્વસ્વસ્થાનસ્થિતાઃ પૃથિવ્યાદયસ્તાન્ ભયસંજ્ઞાવતઃ, તથા—વિલનીડગૃહાદિક નિર્માય સ્વાત્મગોપનપરાઃ સ્થિતાઃ

કયા કારણ હૈ કિ જિસસે સયમસે મુનિજનોંકો ત્રાસ નહીં હોતા હૈ? ઇસ પ્રકારકી જિજ્ઞાસા હોનેપર સૂત્રકાર કહતે હૈ—“જસિસમે” ઇત્યાદિ।

જો જીવ અનેક આરંભો—અનેક આરમ્ભમય પ્રવૃત્તિઓમાં બાહ્ય ઔર આભ્યન્તર પરિગ્રહોંસે ગ્રથિત, તયા ઉસ પરિગ્રહકે જુટાનેમં મગ્ન ઔર કામભોગોંમં મૂર્ચ્છિત બન કર અનેક જીવોંકી હિંસા કરનેરૂપ પ્રવૃત્તિમં સલ્લિષ્ટચિત્ત રહતે હૈં, વે અજ્ઞાન ઔર પ્રવલ મોહકે ઉદયસે ઉસ પ્રકાર કી પ્રવૃત્તિકો કરતે હુઅ ભય નહીં કરતે હૈં—હમેં નરકનિગોદાદિકોંકે દુરન્ત દુઃખ ભોગને પડેંગે ઇસ પ્રકારકે ભયસે વે કિસી ભી તરહ નહીં ડરતે હૈં । યે દુષ્ટ જન અપને ૨ સ્થાનમં સ્થિત ભયસંજ્ઞાવાલે પૃથિવીકા-

કથુ કારણુ છે કે મુનિજનને સયમથી ત્રાસ થતો નથી ? આ પ્રકારની જિજ્ઞાસા થવાથી સૂત્રકાર કહે છે—“જસિસમે” ઇત્યાદિ

જે જીવ અનેક આરંભો—અનેક આરમ્ભમય પ્રવૃત્તિઓમાં બાહ્ય અને આંતરના પરિગ્રહોથી ગુથાઈ, તથા આવા પરિગ્રહને જોડવામાં મગ્ન અને કામભોગોમાં મૂર્ચ્છિત બની, અનેક જીવોની હિંસા કરવારૂપ પ્રવૃત્તિમાં વ્યાકુળ ચિત્ત રહે છે, તે અજ્ઞાન અને પ્રબળ મોહના ઉદયથી એ પ્રકારની પ્રવૃત્તિઓ કરતા ભય નથી કરતા—અમોને નરક નિગોદાદિકના ભય કર હોય ભોગવવા પડશે આ પ્રકારના ભયથી તે કોઈપણ રીતે ડરતા નથી આવા દુષ્ટ જનો પોતા-પોતાના સ્થાનમાં રહી ભયસંજ્ઞાવાળા પૃથ્વીકાયિક આદિ એકેન્દ્રિય જીવોને,

ક્રીડ્યાદયઃ કમુપસિમન્નુપ્યાદિપરુષેન્દ્રિયાધયે સ્વયમેવ પરિપ્રસ્તાસ્તિશ્ચન્તિ વાનપિ
રિસિર્તુ પ્રત્યા બ્રહ્મા નરકનિગાદાદિશુરન્તદુઃખેભ્યઃ કથં ચિદપિ ન વિમ્બતિ, પ્રત્યુત
વાન્ મન્નિપ્યાન્નિપ્યોપમર્થ હૃષ્યન્તીતિ માવઃ ।

કિન્તુ यस્ય યદીતયત્રન્યસ્થ મુને-શ્ચે=પૂર્વોક્તા માતાપિત્રાદિસજ્જનનિતા વા
મારમાઃ ઉપમોગાદયે દ્રવ્યમાવશઃૃૃષિમ્બપ્તેજોવાયુવનસ્પતિપ્રસોપમર્દનરૂપાઃ
શ્ચપરિજ્ઞાપ્યવનપ્રતિષોધિતાઃ સાવચન્યાપારાઃ સર્વતઃ=દ્રવ્યસમ્પ્રકાસમાવૃત્ત સર્વા
ત્મના=ચિક્રિયમાત્રિયાગૌઃ સુપરિજ્ઞાતાઃ=અપરિજ્ઞાયા વન્મહેતુત્ત્વેન ચિદ્વાય પ્રત્યાભ્યા-
નપચ્છિયા પરિત્યક્તા યશન્તિ ।

યિક આદિ ઇન્દ્રિયજીર્ણોકો, બિલ, નીહ, ઘર યના કર ઉસીમેં રહ કર
અપની આત્માકી રક્ષા કરનેમેં તત્પર ક્રીન્નિયાદિક તપા પશુ, પક્ષી
ઔર મનુષ્ય આદિ પંચેન્દ્રિય જીર્ણો કો, કિ જો સ્વય હી કરે હુપ
રહતે; હેં હેં ૨ કર મારસે હેં ઔર આનન્દ મનાતે હેં ।

કિન્તુ-જિસને 'માગયતી' વીક્ષાકા અગ્રીકાર કિયા હૈ; એસે મુનિ જન
પૂર્વોક્ત કુદૃશ્યોકો અથવા માતા પિતા આદિકે સંગસે ઉદ્ભૂત આરમ ઔર
ઉપમોગ આદિકે લિપ દ્રવ્ય તથા 'માવશાસ્ત્રોસે' ધૃતિચીકાયિક, અપ્કાયિક
તેજકાયિક, વાયુકાયિક, વનસ્પતિકાયિક ઔર ગ્રસ જીર્ણોકે બિનાશ
કરનેરૂપ શાસ્ત્રપરિજ્ઞાકે અધ્યયનમેં સમજાયે ગયે સાવચન્યાપારકો, દ્રવ્ય,
સેત્ર, કાલ ઔર 'માવશી' અપેક્ષાસે, ત્રિકરણ ઔર ત્રિપોગોદ્વારા, અપરિજ્ઞા
સે કથકે કારણરૂપ જાનકર પ્રત્યાભ્યાન પરિજ્ઞાસે પરિત્યાગ કરતે હેં ।

બોધ, શક્તિ, ધર બનાવી બેમા શ્ચીને પેતાના આત્માની રક્ષા કરવામા ત્વર
બેકન્દ્રિય, પશુ પક્ષી અને મનુષ્ય આદિ પંચેન્દ્રિય લગાને, કે ૭ પાતે ૪
કરતા રહે છે; એવી બેટીને માટે છે અને જાનક મનાવે છે

પશુ બેબોએ જાનવતી વીક્ષા અગ્રીકાર કરી છે એવા મુનિએ આ પૂર્વોક્ત
કુદૃશ્યોને અથવા માતા પિતા આદિના સંગથી ઉદ્ભૂત આરમ અને ઉપમોગ
આદિને માટે દ્રવ્ય અને જાનકશોધી પૃથ્વીકાયિક અપ્કાયિક તેજકાયિક,
વાયુકાયિક વનસ્પતિકાયિક અને ગ્રસલગેના બિનાશ કરવારૂપ શાસ્ત્રપરિજ્ઞા
અધ્યયનમા સનભવવામા આવેલ સાવચ ન્યાપારોને, દ્રવ્ય, સેત્ર, કાલ અને જાવની
અપેક્ષાથી ત્રિકરણ અને ત્રિયોગથી અપરિજ્ઞાથી બધના કારણરૂપ બધાને
પ્રત્યાભ્યાન પરિજ્ઞાથી પરિત્યાગ કરે છે

સ ક્રોધ ચ માન ચ માયાં ચ લોભ ચ ચતુરઃ કપાયાન્ વાન્ત્વા=ઉદ્ગીર્ય-
ત્યક્ત્વેત્યર્થઃ, મોહનીય ક્ષપયતિ-સયમમાર્ગે વિહરતિ । એપઃ=અસૌ મુનિઃ તુઃ=
તુટિતઃ-કર્મસન્તતેરપસૃતઃ-છિન્નકર્મબન્ધઃ-અકર્મા વ્યાખ્યાતઃ=તીર્થદ્વરગણધરા-
દિભિરભિહિતઃ । એતાદૃશસ્ય સંયમાત્ પરિત્રાસો ન ભવતીતિ વોધ્યમ્ । इति=एवं
पूर्वोक्तं वक्ष्यमाणं च ब्रवीमि=कथयामि ॥ सू० १० ॥

વહ ચતુર મુનિ ક્રોધ, માન, માયા ઓર લોભ કપાયોંકા પરિત્યાગ
કર, મોહનીય કર્મકે વિનાશ સ્વરૂપસંયમમાર્ગે વિહાર કરતા હૈ । એસા
મુનિ હી તીર્થદ્વર ઓર ગણધરાદિ દેવોંકે દ્વારા કર્મ સંતતિસે અલગ-છિન્ન
-બંધવાલા-અકર્મા કહા ગંયા હૈ । ઇસ પ્રકારકે મુનિકો સયમસે ભય
નહીં હોતા હૈ । ‘इति ब्रवीमि’-‘ऐसा मैं कहता हूं, आगे और भी
इसके विषयमें कहूंगा ।

ભાવાર્થ-કયા કારણ હૈ કિ જિસસે સયમી મુનિજનોંકો સંયમસે ત્રાસ
નહીં હોતા હૈ ? ઇસી પ્રશ્નકા ઉત્તર ઇસ સૂત્રમેં સૂત્રકારને દિયા હૈ । વે કહતે
હૈં કિ જો જીવ આરભ ઓર આરભમય પ્રવૃત્તિયોંમેં લવલીન રહતે હૈ,
પરિગ્રહમેં જો મગ્ન હો રહે હૈં, અથવા ઉસકે જુટાનેમેં હી જો રાતદિન
એક કરતે રહતે હૈ, વિષયોંમેં ભોગેચ્છાસે જિનકા અન્તઃકરણ આક્રાન્ત
બના હુઆ હૈ, ઓર ઇસીલિયે જો દૂસરે જીવોંકી વિરાધના કરનેસે નહીં
હરતે હૈ-ત્રસ ઓર સ્થાવર તકકો ખી મારકર જો આનદ માનતે હૈ;
એસે નિર્દયી જીવોંકો ઇતના તક ખી રુચાલ નહીં હોતા હૈ કિ હમેં ઇન
અપને કુકૃત્યોં કા ફલ નરકનિગોદાદિ ગતિયોંમેં જાકર ભોગના પડેગા ।

એ ચતુર મુનિ ક્રોધ, માન, માયા અને લોભ કપાયોંનો પરિત્યાગ કરી
મોહનીય કર્મના વિનાશરૂપ સયમમાર્ગમા વિહાર કરે છે એવા મુનિ જ
તીર્થદ્વર અને ગણધર આદિ દેવોંદ્વારા કર્મસંતતિથી અલગ-છિન્નબંધવાળા-અકર્મા
કહેવાયા છે એવા પ્રકારના મુનિઓ સયમથી ભય કરતા નથી “इति ब्रवीमि”

—આ રીતે હું કહું છું, આગળ પણ એના વિષયમા કહીશ

ભાવાર્થ-કયુ કારણ છે કે એનાથી સયમી મુનિજનોને સયમથી ત્રાસ થતો
નથી? આ પ્રશ્નનો ઉત્તર આ સૂત્રમા સૂત્રકારે આપેલ છે તેઓ કહે છે કે જે જીવ
આરભ અને આરભમય પ્રવૃત્તિઓમા મગ્ન રહે છે, પરિગ્રહમા જે મગ્ન હોય
છે, અને એનામા જ જે રાત-દિન રચ્યોપચ્યો રહે છે, વિષયોમા ભોગેચ્છાથી
જેતુ અન્તઃકરણ આક્રાન્ત બનેલું છે, અને આ માટે જે બીજા જીવોની વિરાધના
કરવાથી ડરતો નથી, ત્રસ અને સ્થાવરને મારીને જે આનદ માને છે, એવા
નિર્દયી જીવોને એટલો પણ ખયાલ નથી થતો કે અમારે આ મે કરેલા કૃત્યોનું
ફળ નરકનિગોદાદિક ગતિઓમા જઈને ભોગવવું પડશે કેમકે અજ્ઞાન અને

પ્રવીનોત્પદમતિદ્વાત વશ્યમાણમર્થમુપદર્શયતિ-‘કાયસ્સ’ इत्यादि ।

મૂઝ્મ-કાયસ્સ ધિયાધાપ સગામસીસે ધિયાહિપ્ । સે હુ પારગમે મુળી । અત્રિ હમ્મમાણે ફલગાવયદ્દાં કાલોવળીપ કસેજ્જ કાલ જાવ સરીરભેઓ ત્તિ ઘેમિ ॥ સૂ૦ ૧૧ ॥

જાયા-કાયસ્ય ષ્યાષાતઃ સગ્રામશીર્ષં ન્યાસ્પાતઃ । સ હુ પારક્કમો મુનિઃ । અપિ હન્યમાનઃ પલ્લકાપકુટ્ટી કાલોપનીતઃ કાર્ણસ્કાલં યાવત્ શરીરમંદ્વ इति प्रवीमि ॥ सू० ૧૧ ॥

ટીકા-કાયસ્ય=બૌદારિક-તૈજસ-કાર્મણ-શરીરસ્ય મહાગ્રાહિકર્મચતુષ્પત્યસ્ય શા
ખ્યોં કિ અજ્ઞાન ઓર પ્રબલ મોહક ઉદયસે ડન્હે આરમ્-સમારમાદિ
કાયોંસે મય નહીં હોતા હૈ, પરંતુ જો યહ સમસ્ટ જુકે હૈ કિ યે
આરમ્મ-સમારમ્મ આદિ કાર્ય મયજૂર નરકનિગોદાદિક અનર્થોંકે
ઉત્પાદક હૈ, ઇન્નલિયે ઘે ઇન્નકા મિકરણ ઓર મિયોગસે વ્રમ્પક્ષેપ્રાદિક્ષી
ની અપક્ષાસે ત્યાગકર જુકે હૈ યેસ મુનિજનોંકો સદા યે મયપ્રદહી જ્ઞાત
હોત રહતે હૈ । ઇસીલિય ઇન્ન સપ અનર્થોંકે ત્યાગરૂપ સંયમસે ડન્હે અપ્રાસ
હોતા હૈ, ઓર ઇસીસે કપાય આદિકે ત્યાગક્રમસે ઘે ધીર ૨ અકર્મા
પનતે હૈ । યહી તીર્થજૂરાદિકોંકા અભિમત હૈ ॥ સૂ૦ ૧૦ ॥

“પ્રવીમિ” ઇત્ત પદસે સુચિત વશ્યમાણ ધિયપકો મૂખકાર
“કાયસ્સ” ઇત્યાદિ મૂખસે પ્રવર્ણિત કરતે હૈ—

બૌદારિક, તૈજસ ઓર કાર્મણ-ઇન્ન ત્રીન શરીરોં અથવા મયોપગ્રાહિ

પ્રબળ મોહન ઉદયથી તને આરભ-સમારમાદિ કાર્યોથી ભય થતો નથી પરંતુ
? સનહ જુકેલા છે કે આ આરભ સમારભ આદિ કાય ભયકર નરક નિવે
દાદિક અનર્થોના ઉત્પાદક છે તેથી જે તેનો ત્રણ કરણ અને ત્રણ
યોગથી ત્યા-સેત્રાદિની પણ અપેક્ષાથી ત્યાગ કરી જુકેલા છે જેવા મુનિશબ્દને
જે સદા ભયપ્રદ જ જણાતાં રહે છે આ માટે આ બધા અનર્થોના ત્યાગરૂપ
મુચનથી તને ત્રાસ થતો નથી અને જેથી કપાય આદિને ત્યાગક્રમથી તે
ધીરે ધીરે અકર્મા બને છે જેવા તીર્થજૂર આદિના અભિપ્રાય છે. (સૂ૦ ૧)

“પ્રવીમિ” આ પદથી સૂચિત વશ્યમાણ ધિયપને સૂત્રકાર “કાયસ્સ”
ઇત્યાદિ સૂત્રથી પ્રવર્ણિત કરે છે

બૌદારિક તેજસ અને કાર્મણ આ ત્રણ શરીરો અથવા મયોપગ્રાહી આર

વ્યાઘાતઃ=આત્યન્તિકવિનાશઃ સગ્રામશીર્ષમ્=અષ્ટવિધકર્મવૈરિસંગ્રામશીર્ષમ્ વ્યા-
 ણ્યાતઃ=તીર્થદ્વરૈઃ કથિતઃ । યથા=દ્રવ્યસંગ્રામશિરસિ શત્રુ પરાજિત્યેષ્ટાન્ ભોગાન્
 વીરઃ પ્રાપ્નોતિ, એવ ભાવસંગ્રામશિરસિ કર્મવૈરિવિનાશનાદ્ વીરઃ સયમી અનન્ત-
 કેવલજ્ઞાનકેવલદર્શનં પ્રાપ્નોતીતિ ભાવઃ । સ હુ=સ એવ મુનિઃ પારંગમઃ જ્ઞાનાદિ
 પશ્ચવિધાચારતરણિસમારૂઢઃ સંસારસાગરપારગામી ભવતિ । કિંચ્ચ સ પરીપ્રહો-
 પસર્ગૈર્હન્યમાનોઽપિ=ઉપદ્રુતોઽપિ ફલકાવકૃષ્ટી=અવકૃષ્ટમસ્યાસ્તીત્યવકૃષ્ટી ફલકવદ-
 વકૃષ્ટી ફલકાવકૃષ્ટી, યથા ફલકં વાસ્યાદિભિરુભયપાર્શ્વતસ્તષ્ટ ઘટ્ઠિતં સત્ તદુ
 ભવતિ, અરક્તદ્વિષ્ટં વા ભવતિ, તથા સાધુરપિ સવાહ્યાભ્યન્તરેણ તપસા નિષ્ટસ-

ચાર અઘાતિયા કર્મોંકે આત્યન્તિક ક્ષયકો, તીર્થદ્વરોંને સંગ્રામશીર્ષ,
 અર્થાત્-અષ્ટવિધ કર્મોંકે સાથ સંગ્રામકા અગ્રભાગ કહા હૈ । જૈસે
 દ્રવ્યસંગ્રામકે અગ્ર ભાગમેં શત્રુકો જીત કર વીર પુરુષ અપને ઇચ્છિત
 ભોગોંકો પ્રાપ્ત કરતા હૈ, ઈસી તરહ ભાવસંગ્રામકે અગ્ર ભાગમેં કર્મ-
 રૂપી વૈરિયોંકે વિનાશસે વીર સંયમી અનન્ત કેવલજ્ઞાન અનન્ત કેવલદર્શન
 કો પ્રાપ્ત કર લેતા હૈ । એસા હી મુનિ જ્ઞાનાચાર આદિ પાંચ પ્રકારકે
 આચારરૂપી નૌકા પર સવાર હોકર સંસારરૂપી સમુદ્રકા પારગામી હોતા
 હૈ । પરીપ્રહાં ઓર ઉપસર્ગોંસે ઉપદ્રુત હોતા હુઆ મી યહ ફલકકી તરહ
 અવકૃષ્ટી હોતા હૈ । અવકૃષ્ટ જિસકે હૈ વહ અવકૃષ્ટી હૈ, ફલકકે તુલ્ય જો
 અવકૃષ્ટી હૈ વહ ફલકાવકૃષ્ટી હૈ । જૈસે ફલક-કાષ્ટકા પાદિયા કુલહાડી
 વગૈરહ હથિયારોંસે આજૂબાજૂમેં છીલે જાને પર પતલા હો જાતા હૈ,
 ઊસી તરહ સાધુ મી વાહ્ય ઓર આભ્યન્તર તપ તપનેસે કૃશશરીર-દુર્બલ
 ઓર રાગદ્વેષરહિત હો જાતા હૈ । અથવા-જૈસે વહી ફલક, વાસી (વસોલા)

અઘાતિયા કર્મોના આત્યન્તિક ક્ષયને તીર્થ ક્ષેત્રે સંગ્રામશીર્ષ, અર્થાત્-અષ્ટવિધ
 કર્મોની સાથે સંગ્રામનો અગ્રભાગ કહેલ છે જે રીતે દ્રવ્યસંગ્રામના
 અગ્ર ભાગમાં શત્રુને છતી વીર પુરુષ પોતાના ઇચ્છિત ભોગોને પ્રાપ્ત
 કરે છે, આવી રીતે ભાવસંગ્રામના અગ્ર ભાગમાં કર્મરૂપી વૈરિયોના
 વિનાશથી વીર સંયમી અનન્ત કેવળજ્ઞાન, અનન્ત કેવળ દર્શનને પ્રાપ્ત કરી લે
 છે એ જ રીતે મુનિ જ્ઞાનાચાર આદિ પાંચ પ્રકારના આચારરૂપી નૌકા ઉપર
 સવાર થઈ સંસારરૂપી સમુદ્રને પાર ઉતરનાર બને છે પરિપ્રહ અને ઉપસર્ગોથી
 ઉપદ્રુત (યુક્ત) થવા છતાં પણ તે મક્કમ રહે છે જેવી રીતે ફલક-લાકડાનું
 પાટીયું કુવાડાથી કે બીજા હથિયારોથી છેલતા પાતળું થઈ જાય છે,
 એ જ રીતે સાધુ પણ બાહ્ય અને અંદરથી તપ તપતા તેનું શરીર દુબળું મને જ
 રાગદ્વેષરહિત થઈ જાય છે જેમ પાટીયું કુવાડા વીંછેલવાથી પાતળું બને છે

વેદસ્તનુર્વલ્લખીરા રાગદોષરહિતથેતિ । યદ્વા—યયા ફલ્લક્ષ્મ્યમપ્તો વાસ્પાદિનાઞ્ચ કૃષ્ણમાગમવકુપ્તં ચ સત્ શ્રવણોપયોગિફલ્લકં છેલ્લનોપયોગિપટ્ટિકાસ્યં વા સપદ્યતે તથા મુનિર્વાદ્ધામ્યન્તરેષ તપસા ચહિરન્તઃપ્રાત્માનમનકર્મણિ, તન્નાનુકૂલ્મતિફલ્લપરિપ રોપસર્ગૌર્ભદિઃ સ્તીરમન્તસ્ટુ કર્મં બલકૃષ્ણમાર્ણં સદ્વાત્માઞ્ચકુપ્તો મયતિ, વાસ્પાદિશ્લસ્ત્રેભા તસ્યમાત્માઃ કઠાવેપ્રાદિના તાલ્પમાનો વા કર્મપ્રોટનાશ્ચો નિર્બેદં પ્રાપ્નોતિ ।

યદ્વા—‘ફલ્લક્ષ્મ્યમપ્તો’ ઇતિ જ્ઞાયા । દુર્વચનવાસ્પાદિમિસ્તસ્યમાપ્તોઽપિ ફલ્લક્ષ્મ્યમપ્તો યદૌરહસે છીલે જાનેપર ઔર ધિસે જાનેપર પત્તા ઔર ચિકના હો જાતા હૈ ઔર શ્રવણ કરનેકે કામમેં તલ્લરૂપસે ઔર લિલ્લને પદ્મનેકે કામમેં પદ્મરૂપસે જાતા હૈ, ડસી પ્રકાર મુનિ વાદ્ધ ઔર આમ્યન્તર તપોદ્ધારા વાહર ઔર મીતરસે અપને આપકો કૃશ કર વેતા હૈ, અનુકૂલ, પ્રતિકૂલ પરીષદ્ ઔર ઉપસર્ગોં કે જીતનેસે વાહરમેં વસકા શરીર ઔર મીતરમેં કર્મોંકે બંધન શિથિલ હો જાતે હૈં, યેસી અવસ્થામેં વહ આત્મા ડન કર્મોંકે બંધનસે શિથિલ—હલ્કા હો જાતા હૈ । પહિલે કર્મોંકે બંધનકા જિતના માર હસ પર વા વસકે શિથિલ હોને પર આત્મા મી પહિલેકી અપેક્ષા વસ મારકે શિથિલ હોતે હી સ્થય અપને આપકો વિના બોક્ષકે અનુમલ કરને છગતા હૈ । ક્રમ ૨ સે જલ વહ કર્મોંકા શિથિલ હુઆ બંધન ચિલ્લકૂલ નષ્ટ હોન લગતા હૈ તલ વહ આત્મા કર્મોંકે દૂટસે સમય ફલ્લક્ષ્મ્યમપ્તો આદિ શાસ્ત્રસે કપટે જાને પર વા કઠા—કોશા ઔર વેશ્ર આદિસે તાલિત હોને પર મી લેવલ્લિન્ન નહીં યનતા હૈ ।

અથવા—“ફલ્લક્ષ્મ્યમપ્તો” કી સસ્ટૂત જ્ઞાયા ‘ફલ્લક્ષ્મ્યમપ્તો’ મી હોતી અને પ્રસન્નથી લીધું થાય છે અને સુવા માટે પાટના રૂપમાં અને અપવા—પદ્મવાન્ય કામે પદ્મરૂપમાં દેશ્વાય છે, જે જ રતિ મુનિ બાદ્ધ અને અદરશ તપથી પેતે પોતાની જાતને દુબળી બનાવી દે છે અનુકૂળ પ્રતિકૂળ પરિપક્વ અને ઉપસર્ગને છલવાથી બદ્ધારમાં જેનું શરીર અને અદરમાં કર્મોંનાં બંધન છુટી જતાં જેને આત્મા હલ્કો બની જાય છે પ્રથમ કર્મોંના બંધનને જેટલો ભાર તેના ઉપર હોતો તે દૂર થતાં અને બદ્ધારના બંધન યજુ હટી જતાં સ્વયં પોતે પોતાને બેબશ્ચિત માને છે ક્રમ ક્રમથી કર્મોંના બાજ હલ્કો બને છે અને બંધન તુટતાં તુટતાં આપ નિર્મૂળ બને છે, ત્યારે આત્મા ખીલી ઊઠે છે. જેટલું નામનિશ્ચય સરજુ રહેતું નથી.

અથવા—“ફલ્લક્ષ્મ્યમપ્તો” મી સસ્ટૂત જ્ઞાયા ફલ્લક્ષ્મ્યમપ્તો યજુ થાય છે. જેને

યઃ કપાયાભાવેન ફલઋદ્વચ્છલોઽપ્તિષ્ઠતે તન્ગ્રીલશ્ચ સ ફલઋત્રસ્યાયી-વાસીચન્દ-
નકલ્પઃ, વાસ્યા તક્ષ્યતે ચન્દનેન ચાઽનુલિપ્યતે, ઉભયત્ર સમભાવ इत्यर्थ ।

यद्वा—‘ फलकापदर्शी ’ फल कर्मक्षयरूप तदेव फलक तेनाऽऽपदि ससार-
भ्रमणरूपायामर्थः प्रयोजन फलकापदर्शः, स विद्यते यस्यासौ फलकापदर्शी-ससार-
भ्रमणरूपायामापदि कर्मक्षयरूपफलाभिलाषीत्यर्थः ।

तथा कालोपनीतः—कालः=मरणकाल. उपनीतः=प्रज्ञाविषयीकृतो येन स
है । इसका अर्थ इस प्रकार है कि दुर्वचनरूपी कुठारसे छेदा गया भी
वह मुनि कषायरहित होनेसे फलककी तरह बिना किसी चिकृतिके स्थिर-
चित्त रहता है । इसे क्या बसोला क्या चन्दन ? दोनोंमें समता रहती है ।
चाहे कुल्हाडीसे यह काट दिया जावे तो इस्से उसमें रोष नहीं, और
चन्दनसे लिप्त कर दिया जावे तो उसमें उसे हर्ष नहीं, अर्थात्-उसे
दोनोंमें समभाव रहता है ।

अथवा—“ फलकापदर्शी ” यह भी संस्कृत छाया “ फल-
कावयट्टी ” जब इस पदकी मानी जावेगी, तब इसका अर्थ इस
प्रकारसे होगा कि कर्मक्षयरूप जो फल वही हुआ फलक, उससे
संसारपरिभ्रमणरूप आपत्तिमें जो मुनि प्रयोजनवाला है वह
फलकापदर्शी है । मुनिजन ससारपरिभ्रमणरूप आपत्तिमें कर्मक्षयरूप
फलके अभिलाषी होते हैं । मुनिको जब अपना मरणकाल ज्ञात हो जावे
तब वह १२ वर्षकी संलेखनासे क्रमशः शरीरको कृश करता हुआ भक्त

अर्थ એ પ્રકારનો છે કે દુર્વચનરૂપી કુહાડાથી છેદવામા આવેલ પશુ એ મુનિ-
કષાયરહિત હોવાથી પાટીયાની માફક કોઈપણ પ્રકારની વિકૃતિ વિના સ્થિરચિત્ત રહે
છે એને વાસી (વાસલો) શું ? અને ચદનશુ ? બન્નેમા સમતા રહે છે લલ્લે
કુવાડાથી તેને કાપવામા આવે તો પશુ તેને ગુસ્સો નથી, અને ચદનથી લેપ
કરવામા આવે તો તેને હર્ષ નથી બન્નેમા સમભાવ રહે છે

अथवा—“ फलकापदर्शी ” या पशु संस्कृत छाया “ फलगावयट्टी ” न्यारे
या पहनी मानवामा आवशे त्यारे येनो अर्थ ए प्रकारे थशे के कर्मक्षयरूप
जे क्षण तेज थयु इलक तेनाथी ससार-परिभ्रमण-रूप आपत्तिमा जे मुनि
प्रयोजनवाणा छे ते इलकापदर्शी छे मुनिजन ससार परिभ्रमणरूप आपत्तिमा
कर्मक्षयरूप क्षणमा अभिलाषी होय छे मुनिने न्यारे पोताना भरणुकाणनो समय
जणुधि आवे त्यारे ते १२ वर्षनी संलेखनाथी कमे कमे शरीरने धसावता धसावता

વપાક — જાતસ્વમરણકાલ સાધુ, દ્વાદશધર્મિન્યા સહેત્વનયા ક્રમદ્વાઃ શરીર સલિસ્ય મક્તમત્યાસુપાનેત્રિતમરણપાદપોપગમનાન્યત્તમમરણેન ચાક્ષ્મશરીરમેદઃ=શરીરસ્ય મેદઃ સ્વાસ્મનઃ પાર્યંક્ય યાદ્યમ્ભવતિ તાવત્ કાર્ક=મરણકાલમ્ કાદૃક્ષત્=દૃષ્ટેત્ શરીરવિપૂનનં કુર્યાદિત્યર્થ । એવ મક્તમત્યાસુપાનાદિમિ કૃત્તનર્કમ્ભવં

પ્રત્યાક્યાન, દ્વિતિમરણ ઓર પાદપોપગમન; इनमें से किसी एक मरणसे अपनी आत्मासे जब तक शरीरकी दृष्यता नहीं हो जाती तब तक शरीरको कृश करता रहे, समाधिमरणसे ही शरीरको छोड़े ।

માવાચ—ઔદારિક આદિ શરીરત્રયકા, અથવા મહોપગ્રાહિ કર્મ ચતુષ્ટયકા અભાષ હોતે હી કર્મોંકે સાધલગે હુણ યુદ્ધકા અન્ત હો જાતા હૈ । ઇસ અવસ્થામૈ સંગ્રામમૈ વિજયમ્મી પાનેચાલેશીરકી તરહ બહુ આત્મા મી અનન્ત જ્ઞાન ઔર અનન્તવર્ણમકી વિજયપતાકા કહરતા હુઆ પંચ પ્રકારકે આચારોંકી પૂર્ણતાસે મુક્તિકા ઘરણ કર લેતા હૈ । પરીપહ ઔર ઉપસર્ગ મુક્તિ પ્રાપ્તિકી તૈયારી કરનેચાલેકે લિયે બાધક નહીં બનતે હૈ । હાં, इनसे इतना अवश्य होता है कि वह आत्मा यदि इनका सम भावसे सामना करता है तो मुक्ति प्राप्तिके लिये बाधक नहीं बनते हैं । हां, इनसे इतना अवश्य होता है कि वह आत्मा यदि इनका सम भावसे सामना करता है तो मुक्ति प्राप्तिके लिये बाधक नहीं बनते हैं । हां, इनसे इतना अवश्य होता है कि वह आत्मा यदि इनका सम भावसे सामना करता है तो मुक्ति प्राप्तिके लिये बाधक नहीं बनते हैं । हां, इनसे इतना अवश्य होता है कि वह आत्मा यदि इनका सम भावसे सामना करता है तो मुक्ति प्राप्तिके लिये बाधक नहीं बनते हैं ।

શરત્તમત્યાસુપાન, ઈ ત્રિતમરણ અને પાદપોપગમન આમાંથી કેલે જોઈ મરણમી પોતાના અદ્ભુતમાં ન્યાં મુખી શરીરમી પૂરકતા નથી થતી, ત્યાં મુખી શરીરને કૃશ કરવા રહે, અને સમાધિમરણમી શરીરને છોડે.

બાવાચ—ઔદારિક આદિ શરીરત્રયનો અથવા મહોપગ્રાહી ચાર કર્મોના અભાવ થતા જ કર્મોની સાથે લાગેલા મુલનો અતઃકર્ષલ્પ છે. આ અવસ્થામાં સંગ્રામમાં વિજયમી મેળવનાર વીરની માફક તે આત્મા પણ અનન્તજ્ઞાન અને અનવરણની વિજયપતાકા લહેરવતા પાંચ પ્રકારના આધારોની પૂર્ણતાથી મુક્તિને માગે પહેલે છે. પરિપક અને ઉપસર્ગ મુક્તિ પ્રાપ્તિની તૈયારી કરવા વાળા માટે બાધક બનતા નથી. હા, જોમી જોટલું અવસ્થ થાય છે કે તે આત્મા કદાચ તેનો સમભાવમી સામનો કરે તો મુક્તિ પ્રાપ્તિને લાયક બાધ અને અવરણ વરોને તપતા તપતા બહારમાં કૃશશરીર અને નદરથી શિષિક=કર્મ બધવાળા બની વ્ધ છે. આ અવસ્થામાં આત્મા કર્મોના ભારથી હલકો બની પોતે પોતાને હલકો અનુભવ કરવા લાગે છે જેની રીતે લાક્ષણ પાટીયુ

પ્રિધાય મહાપુરુષઃ શિવમચલમરુજમનન્તમક્ષયમવ્યાવાધમપુનરાવૃત્તિસિદ્ધિગતિનામધેયં
સ્થાનં સંપ્રાપ્નોતીતિ ભાવઃ ॥ સૂ૦ ૧૧ ॥

અધ્યયનવિપયોપસંહારઃ—

સ્વજન-કર્મ-શરીર-વિધૂનન,

ત્રિતયગૌરવ-ધૂનનમાત્મનઃ ।

इह परीपहधूननमन्ततो,—

નિજગદે ગણનાથમુધર્મણા ॥ ૧ ॥

॥ इतिश्री-विश्वविख्यात-जगद्ब्रह्म-प्रसिद्धवाचक-पञ्चदशभाषाकलितललित-

कलापालापक-प्रविशुद्धगद्यपद्यनैकग्रन्थनिर्मापक-वादिमानमर्दक-शाहू-

छत्रपति-कोल्हापुरराजप्रदत्त-“ जैनशास्त्राचार्य ”-पदभूषित-

कोल्हापुरराजगुरु-बालब्रह्मचारि-जैनाचार्य-जैनधर्मदिवाकर-

पूज्य-श्रीघासीलाल-व्रतिविरचितायाम् आचाराङ्गसूत्र-

स्याऽऽचारचिन्तामणिटीकायां धूताख्यं षष्ठ-

मध्ययन सम्पूर्णम् ॥ ६ ॥

અપને આપકો હલ્કા અનુભવ કરને લગતા હૈ । જિસ પ્રકાર કાષ્ઠકા પાટિયા આજૂબાજૂસે વ્યર્થકે અવયવ છિલ જાને પર શયનાદિક કાર્યોમેં ઉપયોગી બન જાતા હૈ ઉસી પ્રકાર તપશ્ચર્યા આદિસે આત્માકે ડપરકા કર્મરૂપી વ્યર્થકા કચરા જબ નિકલ જાતા હૈ તો યહ બી મુક્તિકી પ્રાપ્તિ મેં ઉપયોગી બન જાતા હૈ ।

મુનિકો જબ અપના મરણકાલ માલૂમ હોજાવે તો ઉસકા કર્તવ્ય હૈ કિ વહ ૧૨ વર્ષકી સંલેખનાસે શરીરકો કૃશ કર ભક્તપ્રત્યાખ્યાન આદિ કિસી બી પ્રકારસે અપને શરીરકા પરિત્યાગ કરે ॥સૂ૦૧૧॥

આગુળાગુથી છોલાઈ જવાથી શયનાદિકાર્યોમા ઉપયોગી બની બીય છે એ પ્રકારે તપશ્ચર્યા આદિથી આત્માના ઉપરના કર્મરૂપી નકામો કચરો બ્યારે નિકળી બીય છે ત્યારે એ પણ મુક્તિની પ્રાપ્તિમા ઉપયોગી બની બીય છે

મુનિને બ્યારે પોતાનો મરણકાળ માલૂમ થઈ બીય ત્યારે તેનું કર્તવ્ય છે કે તે ૧૨ વર્ષની સંલેખનાથી શરીરને કૃશ કરી ભક્ત પ્રત્યાખ્યાન આદિ કોઈ પણ પ્રકારથી પોતાના શરીરનો ત્યાગ કરે (સૂ૦૧૧)

अध्ययनान्तर्गतविपर्योका उपसंहार

स्वजन-संग शरीर-ममत्त्वके

त्रितय गौरवके अरु कर्मके।

कथन है इसमें परिहार का

विधि परीषद्के जपकी कड़ी॥

यह आचारार्जसूत्रके धृतनामक छठा अध्ययनकी आचार-
चिन्तामणि-टीकाका द्वितीयाध्यायानुवाद सम्पूर्ण ॥ ६ ॥

अध्ययनान्तर्गत विपर्योको उपसंहार—

स्वजन-संग शरीर-ममत्त्व,

त्रितय-गौरवना सङ्ग कर्मना,

वणि परीषदना परिहारने,

आदि कथो जगत्त जगत्त्रिभि.

आ आचारार्जसूत्रना धृत नामना छठा अध्ययनकी आचार-
चिन्तामणि-टीकाको अनुवाद सम्पूर्ण ॥ ६ ॥

। अथ विमोक्षाख्यस्य अष्टमाध्ययनस्य प्रथम उद्देश ।

अथ पृथाख्यपष्ठाध्ययनानन्तरं क्रमप्राप्तमहापरिज्ञाख्यसप्तमाध्ययनस्यावसरः, किन्तु तस्य विच्छेदात्सम्पत्तिरप्यवसरम्पत्तेः, यतोऽपि यावच्छरीरमेवस्तावत् संपन्नं परिपालयन् मत्तप्रत्याख्यानपूर्वकं पण्डितमरणेन मुनिः कासमभिकाङ्क्षदिति पृथाध्ययने 'कस्मिञ्च काले जाव शरीरमेवो' इत्यन्तिमसूत्रेण प्रोक्तम् । तदनु महापरिज्ञानामकं सप्तममध्ययनम् । शास्त्रस्य सफलेद्योपादयविषयमतिपादकरत्वेन तदध्ययनं हेयनानाविषयमत्कारजनकविषयपरिपूरितमासीत् । एतदध्ययनमपीत्य समा

॥ विमोक्षनामक आठवां अध्ययनका पाहिला उद्देश ॥

घृत नामक छठे अध्ययनके बाद क्रमप्राप्त महापरिज्ञा-नामक सातवें अध्ययनका अवसर था, किन्तु विच्छेद हो जानेसे यह इस समय उपलब्ध नहीं है । जय तक शरीरका मेद (विनाश) है, तब तक समयकी पालना करता हुआ मुनि काल-समाधिमरणरूप कालकी चाहना करता रहे, यह बात घृत अध्ययन में "कस्मिञ्च काले जाव शरीरमेवो" इस अन्तिम सूत्रसे कही गई है, उसीके पीछे महापरिज्ञानामक सातवां अध्ययन है ।

यह अध्ययन अनेक प्रकारके सामत्कारिक विषयोंसे, जो हेयकोटिमें माने गये हैं; परिपूरित था । शास्त्रोंमें प्रत्येक विषयका, चाहे वह हेय हो या अपादेय हो; वर्णन होता है । इस अध्ययनको पढ़ कर और सुन कर

विमोक्ष नामना आठवां अध्ययनना पाहिला उद्देश.

घृत नामना छठ्ठा अध्ययन पाछी महापरिज्ञा नामना सातवां अध्ययनना अवसर कतो वलु तेना विच्छेद बर्ध जवाबो ते आ जमने प्राप्त बर्ध शके तेम नवी बर्ध सुधी शरीरने खेद (विनाश) छे त्या सुधी अवमनी पालना कस्ता मुनि काल-समाधिमरणरूप कालनी आदना कस्ता रहे. आ बात घृत अध्ययनमा अन्तिम काल जाव शरीरमेवो आ अन्तिम सूत्रधी कहेवामा आवेल छे जे पाछी महापरिज्ञा नामना सातवां अध्ययन छे

आ अध्ययन, अनेक प्रकारना सामत्कारिक विषयोधी-जे हेय कोटीमा मानवामा आवेल छे तेनाची-परिपूर्णा कर्तु शास्त्रोमा प्रत्येक विषयना आदे ते हेय होव अथवा अपादेव होव, पढ़ुन होय छे आ अध्ययनने जाचीने अने सांन्यासीने महा-

કર્મ્ય ચ મહાપુરુષાસ્તદુક્તવિદ્યાં જ્ઞપરિજ્ઞયા કર્મવન્ધકારિણી જ્ઞાતા પ્રત્યાખ્યાનપરિજ્ઞયા તાં પરિહૃત્ય ચ કર્મધૂનનપૂર્વકં સ્વાત્મકલ્યાણમકાર્પુઃ ।

તત્ર જલ-સ્થલાઽઽકાશ-પાતાલાદિવિહરણરૂપાઃ પરકાયપ્રવેશાદિકાઃ સિંહ-વ્યાગ્રાદિશરીરધારણપૂર્વકસ્વસ્વરૂપપરાવર્તનાદિસ્વભાવાશ્રાવર્તિન્યો વિદ્યા આસન્ । શ્રૂયતે ચ ગુરુપરમ્પરયા-સ્વશિષ્યમધ્યાપયન્ કશ્ચિદાચાર્ય એકદા વિચારભૂમિં ગતવાન્, તદનુ સ શિષ્યો વાલ્યચાપલ્યેન મહાપરિજ્ઞાઽઽધ્યયનેઽભિહિતાયાઃ સિંહતનુધારણ-વિદ્યાયા ઉપયોગ કુર્વન્ તત્પ્રભાવેન સ સિંહરૂપો જાતઃ, પરન્તુ તત્પરાવર્તનવિદ્યાન-મહાપુરુષોં ને હસ અધ્યયનમેં વર્ણિત વિદ્યાઓં કો જ્ઞપરિજ્ઞાસે કર્મોંકે વધ કરાનેવાલી જ્ઞાન કર પ્રત્યાખ્યાનપરિજ્ઞાસે ઉનકા પરિહાર કર કર્મ-ધૂનનપૂર્વક અપની આત્માકા કલ્યાણ કિયા હૈ ।

હસ અધ્યયનકે અંદર જલમેં, સ્થલમેં, આકાશમેં, પાતાલમેં વિહાર કરા-નેવાલી વિદ્યાઓંકા, પરશરીરમેં પ્રવેશ કરાનેવાલી વિદ્યાઓંકા, ઓર સિંહ વ્યાગ્ર આદિકા શરીર ધારણપૂર્વક અપને નિજરૂપકા પરિવર્તન કરાનેવાલી વિદ્યાઓંકા વર્ણન થા । ગુરુપરંપરાસે એસા સુના જાતા હૈ કિ કોઈ એક આચાર્ય મહારાજ યહ અધ્યયન એક સમય અપને શિષ્યકો પઢા રહે થે । શૌચક્રિયા કી વાધા હોને પર જવ યે વાહર શૌચનિવૃત્તિકે લિયે ગયે તો શિષ્યને વાલ-સુલભ ચંચલતા સે હસ મહાપરિજ્ઞાકે અધ્યયનમેં કથિત સિંહશરીરકો ધરાનેવાલી વિદ્યાકા ઉપયોગ કિયા ઓર વહ ઉસકે પ્રમા-

પુરૂષોએ એ અધ્યયનમા વર્ણવેલી વિદ્યાઓને જ્ઞપરિજ્ઞાથી કર્મોના બધ કરવાવાળી બાણીને પ્રત્યાખ્યાનપરિજ્ઞાથી એનો પરિહાર કરી કર્મધૂનનપૂર્વક પોતાના આત્માનું કલ્યાણ કર્યું છે.

આ અધ્યયનમાં જળમાં, સ્થલમાં, આકાશમાં, પાતાળમાં વિહાર કરાવવાવાળી વિદ્યાઓનું, પરશરીરમાં પ્રવેશ કરાવવાવાળી વિદ્યાઓનું અને સિંહ, વાઘ આદિના શરીર ધારણ કરીને પોતાના નિજરૂપના પરિવર્તન કરાવવાવાળી વિદ્યા ઓનું વર્ણન હતું. ગુરુપરમ્પરાથી એવું સાબળ્યું છે કે કોઈ એક આચાર્ય મહારાજ એ અધ્યયન પોતાના શિષ્યને એક સમય શીખવી રહ્યા હતા. આ વખતે શૌચક્રિયાની બાધા થતા જ્યારે તેઓ શૌચનિવૃત્તિ માટે બાહર ગયા ત્યારબાદ શિષ્યે બાળસુલભ ચંચળતાથી એ મહાપરિજ્ઞા અધ્યયનમાં કહેલ સિંહ શરીરને ધારણ કરાવવાવાળી વિદ્યાનો ઉપયોગ કર્યો, અને તે સિંહના સ્વરૂપમાં ફેરવાઈ ગયો. સિંહસ્વરૂપનું પરિવર્તન કરાવવાવાળી વિદ્યાના અધ્યયનથી અપ-

અપ્યયનેન તદ્વૃપ એવ સ્થિતઃ કિંકર્ત્ત્વ્યવિમુહો વિચારભૂમેરાગતેનાઽપ્યાર્થેણ વિમોક્ષિતઃ, પરમસ્વરૂપા પુનઃ સ્વસ્વરૂપપ્રાપિતઃ સ્વયેતસિ ચિન્તિતં ન-પચ્ચમારકેઽપ્યા-અપ્યયનેન સામસ્તુ દૂરાપથ એવ; પ્રત્યુત્ત મહાનનયો માવીતિ । તત આરમ્ભ્યેષ્ઠત્વાપ્યાપનક્રિયા છત્રપ્રાયાઽપ્યુત્ । તેનૈવ હેતુના પુસ્તકાકાશમયેઽપ્યાચાર્યપર્યેરેત્વઅપ્યયને ન સહ્યુહીતમ્ । તસ્માદિદં વિષ્ણુદમાપેતિ યુક્તમુત્પત્ત્યામઃ ।

અપાઽપ્યયં વિમોક્ષાપ્યયનં પ્રારમ્ભયતે । તત્ર વિમોક્ષઃ—વિ=વિશેષેષ્ય સર્વથા મોક્ષઃ=હૃદયમનઃકર્મમ્ । કર્મબન્ધકારણેભ્યઃ, પૃથગ્ યુત્વા પશ્ચિત્તમરણેન શરીરપરિત્યાગવત્સે સિંહકે સ્વરૂપમેં આ ગયા । અહ સિંહસ્વરૂપકે પરાવર્તન કરાનેલાહી વિચારકે અધ્યયનસે અપરિચિત થા, ઇસલિયે ડસસે છૂટ કર અપને અસહી રૂપમેં નહીં આ સકા । ઘોષસે નિવૃત્ત હોકર જબ આચાર્ય મહારાજ આપે તબ સન્હોને ઇસે સિંહરૂપમેં દેસા, દેસકર ડસકે કપર ડન્હેં દયા આઈ ઓર ડસે સિંહકે રૂપસે મુનિરૂપમેં પરિવર્તિત કર દિયા । શાવમેં આચાર્યને વિચાર ક્રિયા કિ પંચમકાલમેં ઇસ અધ્યયનકે પઠનસે છામકી તો કોઈ આશા હી નહીં હૈ; ડલ્ટા મહાન અનર્થ હી હોગા । અતઃ ડસ સમયસે સગાકર હી ઇસ અધ્યયનકો છુટ કર દિયા । ઇસી કારણસે શાસ્ત્રોંકી રચનાકે સમયમેં ઓ આચાર્યોને ઇસ અધ્યયનકા સંગ્રહ નહીં ક્રિયા, ઇસીલિયે ઇસકા વિષ્ણુદ મુખા ।

અથ વિમોક્ષાપ્યયન નામકા આઠવાં અધ્યયન પ્રારમ્ભ હોતા હૈ । ઇસમેં 'વિમોક્ષ' શબ્દકા અર્થ ઇસ પ્રકાર હૈ—વિ=સર્વથા મોક્ષ—દૂર હોના

રિવિત દોવાથી જે શિષ્ય પોતાના અસલ સ્વરૂપને પ્રાપ્ત કરી શકેલ નહિ. એવાથી નિવૃત્ત થઈ અથા અપ્યાર્થ મહાસત્ત્વ આનંદ ત્યારે તેમણે શિષ્યને સિદ્ધતા રૂપમાં જોયો, અને ઇલા અપવર્તા સિદ્ધતા રૂપથી મુનિરૂપમાં પરિવર્તન કરાવ્યું આ પછી અપ્યાર્થે વિચાર કર્યો કે પાંચમા કાળમાં આ અધ્યયનના પઠનથી છામની તો કોઈ આશા નથી, પણ જોથી વિપરીત મહાઅનર્થનીજ સલાવના છે આથી તે અમયે તેમણે જે અધ્યયનને છુટ કરી દીધા. આ કારણથી શાસ્ત્રોંથી રચનાના સમયમાં પણ અપ્યાર્થોંએ જે અધ્યયનનો સંગ્રહ કરેલ નથી, આ કારણે જોના સિદ્ધિ થયેલ છે.

જોને વિમોક્ષાપ્યયન નામના આઠમા અધ્યયનનો પ્રારમ્ભ થાય છે આમાં વિમોક્ષ શબ્દનો અર્થ આ પ્રકારે છે—વિ=સર્વથા, મોક્ષ=દૂર થવું અર્થાત્ કરી અને જોના બંધના કારણથી પૃથક્ થઈ

इत्यर्थः। तत्प्रतिपादकमिदमध्ययनमपि विमोक्षशब्देन व्यवह्रियते। अस्य धूताध्ययनेन सहाय परम्परासम्बन्धः—तत्र स्वकर्मशरीरोपकरणऋद्धिरससाताख्यगौरवत्रिकोप-सर्गसम्मानानां विधूनेन मुनेः सङ्गरहित्यं प्रतिपादितम्, तद्धूनेन तदैव सफलं स्याद् यद्यन्तकाले सम्यग् निर्याणं जायेतेति तदर्थमस्याध्ययनस्यारम्भः ।

अथवा—षष्ठे शब्दादिविषयसङ्गवर्जितेन मुनिनाऽनेकपरीपहोपसर्गाः सहनीया इत्यभिहितम् । एवमत्र मारणान्तिकोपसर्गसर्गोऽप्यनुद्विग्नेन सयमिना सम्यग् निर्याणं कार्यमिति कथनायेदमारभ्यते ।

—अर्थात् कर्म और इनके बन्धके कारणोंसे पृथक् होकर पण्डितमरणसे शरीरका परित्याग करना वही विमोक्ष है । इस विमोक्षका प्रतिपादन करने-वाला यह अध्ययन भी 'विमोक्ष' शब्दसे व्यवहृत हुआ है। इस अध्ययनका धूत नामक छठे अध्ययनके साथ परपरारूपसे संबंध है । छठे अध्ययनमें मुनिको अपनेद्वारा कृत कर्म, शरीर, उपकरण, ऋद्धि-रस-साता-नामक तीन गौरव, उपसर्ग एव मान और अपमान इन सबके विधूननसे सङ्गरहित होना चाहिये—इस प्रकारसे प्रतिपादन किया है । इन सबका विधूनन मुनिका तभी सफल हो सकता है, कि जब उसका अन्तसमयमें निर्याण सम्यक्—शास्त्रोक्त विधिके अनुसार हो, इसी विषयको प्रकट करनेके लिये इस अध्ययनका आरम्भ हुआ है ।

अथवा—शब्दादिक विषयोंमें संगसे रहित मुनिको अनेक परीषह और उपसर्ग सहन करना चाहिये—यह बात भी छठे अध्ययनमें कही गई है; सो मरणके समयमें उपसर्गों के आने पर भी सयमी—मुनिको उद्विग्न-

પણ્ડિતમરણથી શરીરનો પરિત્યાગ કરવો એ જ વિમોક્ષ છે આ વિમોક્ષનું પ્રતિપાદન કરવાવાળું આ અધ્યયન પણ વિમોક્ષ શબ્દથી વ્યવહૃત થયેલ છે. આ અધ્યયનનો ધૂત નામના છઠ્ઠા અધ્યયનની સાથે પરમ્પરારૂપથી સબંધ છે છઠ્ઠા અધ્યયનમા મુનિએ પોતાના દ્વારા કૃત કર્મ, શરીર, ઉપકરણ, ઋદ્ધિ-રસ-સાતા નામના ત્રણ ગૌરવ, ઉપસર્ગ અને માન અને અપમાન આ સઘળાના વિધૂન-નથી સંગરહિત હોવા જોઈએ, આ પ્રકારે પ્રતિપાદન કરેલ છે આ બધાનું વિધૂનન મુનિનું ત્યારે સફળ બને છે કે જ્યારે એના અત સમયમા નિર્યાણ સમ્યક્-શાસ્ત્રોક્તવિધિ અનુસાર હોય, આ વિષયને પ્રગટ કરવા માટે આ અધ્યયનનો આરંભ થાય છે

અથવા—શબ્દાદિક વિષયોના સંગથી રહિત મુનિએ અનેક પરિષદ અને ઉપસર્ગો સહન કરવા જોઈએ આ વાત પણ છઠ્ઠા અધ્યયનમા કહેવાયેલ છે, માટે મરણના સમયમા ઉપસર્ગો આવવાથી પણ સયમી મુનિએ ઉદ્વિગ્નચિત્ત

અપ્રોદેશાધિકાર । અસ્મિન્નપ્રોદેશાઃ સતિ । તપ્ર પ્રયયે-ત્રિપટ્યપિકમિશ-
તપાપિકાનામાહારોપદિષ્ટ્યાવિસસર્ગો વર્જનીયા, કિં પુનસ્તન્મસસ્વીકારઃ । તપઃ
ઇં ચમિરાપકાનામવસક્ષપાર્શ્વસ્થાવીનાં સસર્ગત્યાગમ્ કર્તવ્યમ્ । (૧)

ત્રિતીયે—શાસ્ત્રત્યાગારાદિ પ્રયજ્યતસ્તપિવેષકૃષ્ટમુદસ્યસ્ય શાસ્ત્રોક્તદોષમક-
ષનપુરસ્સરં તદાહારાદિપરિત્યાગમ્ । (૨)

ખિલ નહીં હોના આહિયે ઔર સમ્યક્-રીતિસે નિર્ધાન કરના આહિયે
હસ કાલકો સમજાનેકે લિયે હસ અધ્યયનકા પ્રારંભ કિયા ગયા હૈ યહાં
ઉદ્દેશકે અર્થકા અધિકાર હૈ । હસમેં આઠ ઉદ્દેશા હૈ—૧ પ્રથમ ઉદ્દેશમેં યહ
બતલાયા ગયા હૈ કિ મુનિજનકો ૩૬૩ પાસપિઞ્જમતધાલોકા આહાર,
ઉપધિ ઔર શાયા આદિકે સંસર્ગકા પરિત્યાગ કર લેના આહિયે । જબ
ઉનકી યે સબ બીજે પરિવર્જનીય હૈ તો ફિર ઉનકે મતકી સ્વીકૃતિ તો
કર્તવ્ય હૈ હી, હસમેં કયા કહનાં હસી પ્રકાર યહ બી બતલાયા ગયા હૈ
કિ જો તપ ઔર સંયમકે ચિરાપક હૈ દેસે અવસક્ષ-પાસત્યાવિકોકા
સંસર્ગ બી ત્યાગને યોગ્ય હૈ ।

૨ ત્રિતીય ઉદ્દેશમેં—મુનિકલ્પકે વિરુદ્ધ-અકલ્પનીય આહારાદિક
પ્રધાન કરનેવાલા મુદસ્ય, “યહ આહાર મુનિજનકે અયોગ્ય-અકલ્પ્ય હૈ”
હસ પ્રકાર મુનિજન દ્વારા નિવેષ કરનેપર યદિ રુઢ હોતા હૈ તો, મુનિકા
કર્તવ્ય હૈ કિ યહ વસ આહારકે પ્રહણ કરનેમેં શાસ્ત્રોક્ત દોષોકા પ્રતિપાદન
કરે ઔર વસ આહારકા પરિત્યાગ કર । યહ પ્રકટ કિયા ગયા હૈ ।

અર્થ ન બોધકો અને સમ્યક્-રીતિથી નિર્ધાર્ય કર્યુ બોધકો આ વાતને સમ
જવના માટે આ અધ્યયનનો પ્રારંભ કરેલ છે આદિ ઉદ્દેશના અર્થનો અધિકાર
છે. બીજા આઠ ઉદ્દેશ છે ૧ પ્રથમ ઉદ્દેશમાં જોમ બતાવેલ છે કે મુનિજને ૩૬૩
પાપદીમતવાળાઓના આહાર, ઉપધિ અને શીયા આદિના સંસર્ગનો પરિત્યાગ
કરવો બોધકો કરનાર તેની બે શબ્દોની બીજો પરિવર્જનીય છે તે પછી તેના
મતની સ્વીકૃતિ તો બજાવીય છે જ જોમાં કહેવાયું શું હોય. આ રીતે બે પદ્ય
બતાવ્યા છે કે જે તપ અને સમ્યગનો સિરાપક છે બીજા અવસક્ષ-પાસત્યાવિકોનો
સંસર્ગ પદ્ય ત્યાગ કરવા યોગ્ય છે.

૨ બીજા ઉદ્દેશમાં—મુનિકલ્પના વિરુદ્ધ અકલ્પનીય આહારાદિક પ્રધાન
કરવાવાળા મુદસ્ય, આ આહાર મુનિજનને માટે અયોગ્ય છે-અકલ્પ્ય છે”
આ પ્રકારે મુનિજનદ્વારા નિવેષ કરવાથી રીસાય તે, મુનિનું કર્તવ્ય છે કે તે તેના
આહારને પ્રહણ કરવામાં શાસ્ત્રોક્ત દોષોના પ્રતિપાદન કરે અને બે આહારને

તૃતીયે—શીતાદિના પ્રકમ્પિતં મુનિં કામવિકારિણં શઙ્કમાનાય ગૃહપતયે
'શીતાદિક મમ ગાત્રકમ્પનકારણં ન કામવિકારઃ' इति प्रतिपाद्य तच्छङ्कापनो-
दनमिति । (૩)

ચતુર્થે—ચાપરિહાર્યસ્ત્યાદુપસર્ગોપનિપાતે સંયમરક્ષાર્થં વૈહાનસ-ગાર્દ્ધપૃષ્ઠકા-
રદ્યરૂપમરણં શ્રેય इति । (૪)

પશ્ચમે—ગ્લાનાઘવસ્થાયાં પૂર્વાદૃતપ્રતિજ્ઞાયાઃ પાલનાશક્તૌ મુનેર્ભક્તપરિજ્ઞયા
મરણં સાધીય इति । (૫)

૩ તૃતીય ઉદ્દેશમે—શીત આદિસે કપતે હુણ મુનિકો દેવ કર
ગૃહસ્થ યદિ યહ શઙ્કાશીલ વન જાય કિ “ઇસ મુનિકે કામવિકાર હો
ગયા હૈ હસીલિયે યહ કંપ રહા હૈ” તો મુનિજનકા યહ ધર્મ હૈ કિ
ઉસ શંકાકા નિવારણ કરે ઔર કહે કિ મેરા શરીર શીતાદિક નિમિ-
ત્તસે કંપ રહા હૈ, કામવિકારસે નહીં! —યહ પ્રતિપાદિત કિયા ગયા હૈ ।

૪ ચતુર્થ ઉદ્દેશમે—સ્ત્રી વગૈરહ દ્વારા કૃત ઉપસર્ગકે અપરિહાર્ય હો
જાને પર સાધુકા કર્તવ્ય હૈ કિ વહ અપને સંયમકી રક્ષાકે લિયે વૈહા-
નસ ઔર ગાર્દ્ધપૃષ્ઠ નામક મરણસે અપને પ્રાણોંકો છોડ દેવે—યહ સ્પષ્ટ
કિયા ગયા હૈ ।

૫ પંચમ ઉદ્દેશમે—ગ્લાન આદિ અવસ્થામે પૂર્વગૃહીત પ્રતિજ્ઞા કી
પાલનામે સાધુકી અશક્તિ હોને પર ઉસ મુનિકે લિયે ભક્તપરિજ્ઞાસે મરણ
પ્રાપ્ત કરના શ્રેયસ્કર હૈ—યહ વાત વતલાઈ ગઈ હૈ ।

પરિત્યાગ કરે એ પ્રગટ કરવામાં આવેલ છે

૩ ત્રીજા ઉદ્દેશમા—ઠડી આદિથી ધૂનતા મુનિને જોઈ ગૃહસ્થ કહાય એવી
શંકા કરે કે “આ મુનિને કામવિકાર થયેલ છે એથી એ કંપી રહેલ છે”
તો મુનિજનને એ ધર્મ છે કે તે ગૃહસ્થની એવી શંકાનું નિવારણ કરે અને
કહે કે માફ શરીર ઠડી આદિથી કંપી રહેલ છે, કામવિકારથી નહિ. આર્થ
પ્રતિપાદિત કરવામાં આવેલ છે

૪ ચોથા ઉદ્દેશમા—સ્ત્રી વગેરે દ્વારા કરાયેલા ઉપસર્ગ અનિવાર્ય હોય તો
સાધુનું કર્તવ્ય છે કે તે પોતાના સંયમની રક્ષા માટે વૈહાનસ અને ગાર્દ્ધ-
પૃષ્ઠ નામના મરણથી પોતાના પ્રાણોને છોડી દે આ સ્પષ્ટ કરેલ છે.

૫ પાંચમા ઉદ્દેશમા—જ્ઞાનાદિ અવસ્થામા પૂર્વે લીધેલ પ્રતિજ્ઞાના પાલનમા

પઢે—વૈષ્ણવમાધનયા મુનેરિક્ષિતમરણ મશ્તમિતિ । (૬)

સપ્તમે—મુનિનૈકમાસાદિકા મિહુમતિમા પાલનીયા, શરીરસ્ય સંયમપાલનાશ્ચ-
કાવસ્પાયાં ક્રમેણ પશ્ચાત્માદિતપ્સાઽઽહારાદિસંયમે કૃત્વા પાવપોપગમનં
વિધેયમિતિ । (૭)

અષ્ટમે ચ—ચિરપરિપાલિતપારિષ્ય યયાશાસ્ત્રવિહારિણઃ સુશ્રાર્થતદુમય-
પ્રરખાદાનાઽસેવનાન્તર યજ્ઞાન્યા સંસીદત્સંયમક્રિયસ્ય સ્વદ્વિતશ્ચિષ્યસમ્પદ

૧ છઠે ઉદ્દેશમે—૧૫૨૪—માધનાસે યુક્ત હોકર મુનિકા ઇંગિતમરણ
પ્રદાત્ત છે । યહ પ્રકટ ક્રિયા ગયા છે ।

૭ સાતવે ઉદ્દેશમે—૧૫ માસ આદિ પ્રમાણવાલી મિહુમતિમા
મુનિકો પાલની બાહિયે, તથા જબ શરીર સંયમ પાલન કરનેકી શક્તિ
રહિત અવસ્થામે આ જાયે તો ક્રમ ૨ સે પઢ઼ ઓર અષ્ટમ આદિ તપસે
આહારકા સંયમે કર જે પાવપોપગમન સંયારા ધારણ કર લેના બાહિયે—
યહ ઘર્ણન ક્રિયા ગયા છે ।

૮ આઠવે ઉદ્દેશમે—ચિરકાલસે જિસને ચારિત્રકી આરાધના કી
છે ઓર શાસ્ત્રોક્ત વિધિકે અનુસાર હી જિસને વિહાર ક્રિયા છે—પેસે મુનિ
કી સૂચ, અર્થ ઓર સુશ્રાર્થ જન ત્રીનેકે પ્રજ્ઞા, જ્ઞાન ઓર આસેવનકે
વાવ બલકી જ્ઞાનસે સંયમરૂપ ક્રિયાકી પાલનામે શિષિલતા આ રહી હો

શાખુની જશક્તિ યવાથી જો મુનિને આટે બહતપરિચ્છાથી મરણ પ્રપ્ત કરવું
મેચકર છે આ વાત જતાવેલ છે.

૧ છઠું ઉદ્દેશમા—જેકલમાધનથી મુક્ત બની મુનિનું ઇન્દ્રિયમરણ
પ્રપ્ત છે આ પ્રગટ કરાયેલ છે

૭ સાતમા ઉદ્દેશમા—જેકમાસ —આદિ પ્રમાણવાળી મિહુમતિમા
મુનિકે પાળવી જોઈએ તથા આરે શરીર, સંયમ પાળવાળી શક્તિથી
રહિત અવસ્થામાં જાવી જાય તો ખીરે ખીરે છઠ જાને આઠમ આદિ તપથી
આહારને જામ કરી તેણે પાવપોપગમન સંયારા ધારણ કરી લેવો જોઈએ, આ
વર્ણન કરેલ છે.

૮ આઠમા ઉદ્દેશમા—જાણા કાળથી જેણે ચારિત્રની આરાધના કરી છે
જાને શાસ્ત્રોક્તવિધિ અનુસાર જ જેણે વિહાર કરેલ છે જેવા મુનિને સૂચ
અર્થ જાને સુશ્રાર્થ જે પ્રજ્ઞેન મલકે, જ્ઞાન જાને આસેવનના પાત્રે બળની
શક્તિથી સંયમરૂપ ક્રિયાને પાળવામાં શિષિલતા આવી રહેલ હોય તો

ઉત્સર્ગતો દ્વાદશવર્ષસંલેખનાક્રમેણ સંલિખિતશરીરસ્ય ભક્તપ્રત્યાખ્યાનેક્ષિતપાદપોપ-
ગમનમરણેષુ કિંચિદેકમાશ્રિત્ય જન્મ સફલીકર્તવ્યમિતિ પ્રતિપાદિતમ્ । (૮)

સામ્પ્રતં પ્રથમસૂત્રેણ પરમતનિરાકરણાર્થમેવોપક્રમતે ‘ સે વેમિ ’ इत्यादि ।

મૂલ્મ—સે વેમિ સમણુન્નસ્સ વા અસમણુન્નસ્સ વા અસણં
વા પાણં વા ખાઈમં વા સાઈમં વા વત્થં વા પઢિગ્ગહં વા કંબલં
વા પાયપુંછણં વા નો પાણ્જા નો નિમંતિજ્જા નો કુજ્જા વેયાવ-
હિયં પરં આઢાયમાણે ત્તિવેમિ ॥ સૂ૦ ૧ ॥

છાયા—સોઠ્ઠં વ્રવીમિ સમનોજ્ઞાય વાઽસમનોજ્ઞાય વાઽશનં વા પાનં વા ખાઘં
વા સ્વાઘં વા વસ્ત્રં વા પતદ્ગ્રહં વા કમ્બલં વા પાદપ્રોઞ્છનં વા નો પ્રદઘાત્ નો
નિમન્ત્રયેદ્ નો કુર્યાદ્ વૈયાટ્ઠત્યં પરમાદ્રિયમાણ इति વ્રવીમિ ॥ સૂ૦ ૧ ॥

ટીકા—‘ સોઠ્ઠમ્ ’ इत्यादि—યો ભગવન્મુખાદિનિર્ગતયથાશ્રુતગ્રાહી
પરિજ્ઞાતહેયોપાદેયઃ સોઠ્ઠં ત્વા વ્રવીમિ=વક્ષ્યમાણવચનં વચ્મિ, તદેવાહ—‘સમનોજ્ઞાયે-

તો સંવર્દિત-શિષ્યરૂપ-સંપત્તિવાલે ઉસ મુનિકો ઉત્સર્ગસે ૧૨ વર્ષ
કી સંલેખના ધારણ કર લેની चाहिये । इस क्रमसे शरीरके कृश होने
पर उसे भक्तप्रत्याख्यान, इंगित और पादपोपगम इन मरणोंसे किसी
एक मरणको धारण कर जन्म सफल करना चाहिये—यह विषय
समझाया गया है ।

इस समय प्रथम सूत्रसे सूत्रकार परमतके निराकरण करनेका
उपक्रम (प्रारंभ) करते हैं—‘ सें वेमि ’ इत्यादि—

श्री सुधर्मास्वामी श्री जम्बूस्वामीसे कहते हैं—हे शिष्य ! जिसने
भगवानके मुखसे निर्गत श्रुतके अनुसार ही तत्त्व ग्रहण किया है और

શિષ્યરૂપ સંપત્તિથી વૃદ્ધિ પામેલ એ મુનિએ ઉત્સર્ગથી ૧૨ વર્ષની સંલેખના ધારણ
કરી લેવી જોઈએ આ ક્રમથી શરીરના કૃશ થવાથી તેણે ભક્તપ્રત્યાખ્યાન,
ઇંગિત અને પાદપોપગમ આ મરણોમાથી કોઈ એક મરણને ધારણ કરી જન્મ
સફળ કરવો જોઈએ આ વિષય સમજાવેલ છે

આ સમય પ્રથમ સૂત્રથી સૂત્રકાર પરમતનુ નિરાકરણ કરવાનો પ્રારંભ
કરે છે—“ સે વેમિ ” इत्यादि

શ્રી સુધર્માસ્વામી શ્રી જમ્બૂસ્વામીને કહે છે—હે શિષ્ય ! જેને ભગવાનના
મુખથી નિર્ગત શ્રુતના અનુસાર જ તત્ત્વ ગ્રહણ કરેલ છે અને એનાથી જે હેય
અને ઉપાદેયના જ્ઞાનથી સુકત છે એવો હું તમને આ પ્રકારથી કહું છું કે તમે

स्यादि । परम्=उत्कृष्टम् आद्रियमाणः=सत्सुर्वाणः सन् समनोद्भाय=इष्टिस्त्रिभाम्यां
 पात्रवपाय स्वमहावसन्नपार्श्वस्यममृतये, वा=अश्वः पक्षान्तरयोतकः, असमनोद्भाय
 =परतीर्थिकाय शाक्यममृतय वा यद् अन्ननम्=ओदनादिकम् पानं=द्राक्षादिपावन-
 यत्सं वा, स्वाद्यं=नारिकेल्यादिकं वा, स्वाद्यं=स्वयंवादिकं वा, वस्त्रं वा, पतवृषां=पात्रं
 वा कम्बलं वा, पादप्रोच्छनं=रजोहरणादिकं वा नो मदघातम्=मासुकमपि तस्मै न
 ददेत्, नापि च चित्तरणाय निमन्त्रयत्, वैयावृत्त्यं=धुभूपादिकमपि न कुर्याद्=नो
 सिद्ध्यत् । इति=एषम् अहं त्वां प्रसीमि=यया भगरत्सकाक्षाभूतं तया कथयामि ॥

अपरमप्यहं प्रवीमीत्याह—‘ धुवं ’ इत्यादि ।

सूत्रम्—धुवं चेय जाणिज्जा असण वा जाव पायपुच्छण वा
 लभिया, नो लभिया मुंजिया, नो मुजिया, पथ विउत्ता
 विउक्कम विभत्त धम्म जोसमाणे समेमाणे चलेमाणे पाइज्जा

इसीसे जो हय और उपादेयके ज्ञानसे युक्त हैं वह मैं तुमसे इस प्रकार
 कहता हूं कि तुम अच्छी तरह—भक्तिके आवेशसे—आवर सत्कार करके,
 समनोद्भू=इष्टि और लिङ्गोंसे सुन्दर बेपबाछे ऐसे स्व-जैनमतानुयायी
 भवसन्न पासत्पादिकोंको, अथवा असमनोद्भू-परतीर्थिक शाक्य आदिकों
 भवान्-ओदनादिक, पान-द्राक्षादिका घोवन जल, स्वाद्य-नारियल आदि,
 अथवा स्वाद्य-उर्बंगादिक, वस्त्र, पतवृषाह-पात्र, कम्बल अथवा पादप्रो-
 छन-रजोहरणादिक, मासुक होने पर भी न दो और न उन्हें देनेके
 लिये आमंत्रित करो, वैयावृत्त्य भी उनकी न करो—इस प्रकार जैसा
 भगवानसे सुना है वैसा मैं तुमसे कहता हूं ॥ सू० १ ॥

और भी “ धुवं ” इत्यादि सूत्रसे कहता हूँ, सो सुनो—

सारी रीते—भक्तिवत् आवेशभी आवरसत्कार करीने समनोद्भू=इष्टि जने लिङ्गभी सुन्दर
 वेशपात्रों केवा चोत्ताना जैनमत अनुयायी अवतल-पसत्पादिकोंने भाटे—
 अथवा असमनोद्भू-परतीर्थिक शाक्य आदिने भाटे भवान्-ओदनादिक पान-
 द्राक्षादिकत घोवन जल, आद्य-नारियल आदि, जने स्वाद्य-वपत्रादिक वस्त्र,
 पतवृषाह-पात्र, कम्बल जने पादप्रोच्छन-रजोहरणादिक मासुक कोवा छत्ता
 भय न दो, जने न कोने आपवा भाटे आमंत्रण करो, वैयावृत्ति पद्य तेनी न
 करो आ प्रकार केवुं अजयानभी स्वाद्यभय से तेवुं कुं वमने कहुं छ (सू० १)

भीलु पद्य “ धुवं ” इत्यादि सूत्रभी कहुं छ आगणो

वा निमंतिज्जा वा कुज्जा वा वेयावडियं परं अणादायमाणे
त्तिवेमि ॥ सू० २ ॥

छाया--ध्रुवं चैतज्जानीयादशनं वा यावत् पादप्रोच्छनं वा लब्ध्वा नो
लब्ध्वा, भुक्त्वा, नो भुक्त्वा, पन्थानं व्यावर्त्यापि उत्क्रम्य विभक्त धर्मं जुषमाणः
समायन् चलन् प्रदद्यात् वा निमन्त्रयेद्वा कुर्याद्द्वैयावृत्त्यं परमाद्रियमाण इति ब्रवीमि ॥

टीका--‘ध्रुव’मित्यादि । शाक्यादयो हि कदाचिदशनादिकं प्रदर्शयन्
ब्रुवन्ति,—भवान्—एतत्=वक्तव्यं ध्रुवं=निश्चित जानीयात्=बुध्येत, यद्
अशनादिकमारभ्य यावत् पादप्रोच्छनं सर्वं परगृहे लब्ध्वा वा अलब्ध्वा वा भुक्त्वा
वा अभुक्त्वा वा अवश्यमस्माकं मनस्तुष्टये तद्ग्रहणायस्मदीयवसतौ समागन्तव्यम्,
तथा हि—अशनादीनामलामे लाभाय, लाभेऽपि चोत्कृष्टमिष्टान्नादिलाभार्थं वा,
भुक्तेऽपि पुनर्भोजनार्थम्, अभुक्तेऽपि प्रथमालिकार्थम् [‘सिरावण’ इति भाषायाम्],

शाक्य आदि, मुनिको देख कर कदाचित् भोजनादिक
दिखा कर यह कहें कि हे मुनि ! आप यह हमारा कहना
अवश्य मानें कि आपको अशनसे लगाकर पादप्रोच्छन तककी
समस्त सामग्री अथवा असमस्त सामग्री परगृहमें मिले या न
मिले, आपने आहार किया हो अथवा न भी किया हो तो भी आप
अवश्य २ हमारे सन्तोषके लिये ही कम से कम अशनादिक लाभके
निमित्त, हमारे स्थान पर पधारे । वहां आनेसे आपको फायदा होगा—
अशनादिकके अलाभमें आपको वहां उनका लाभ होगा, अन्यत्र उनके
मिल जाने पर भी वहां आनेसे आपके लिये उत्तम २ मिष्टान्न आदि
सामग्री की प्राप्ति हो जायगी, खा करके भी आने पर फिरसे भोजन हो

शाक्य आदि, मुनिने जो कुछ कहायित् भोजनादिक बतायी अब
कहे के हे मुनि ! आप अभाइ अब कहें अवश्य मानो के आपने
अशनथी लगाडी पादप्रोच्छन सुधी समस्त सामग्री अथवा असमस्त सामग्री
भीजने धरे भजे अथवा न भजे, आपने आहार क्यो होय अथवा न
क्यो होय तो पण आप अवश्य अवश्य अमारा सतोष भाटे न कमथी कम
अशनादिक लाभना निमित्त अमारा स्थान उपर पधारे त्या आववाथी आपने
क्षयहो थरे—अशनादिकना अलाभमा आपने त्या अनेना लाभ थरे, भीजे स्थणथी
अभजवा छता पण त्या आववाथी आपने भाटे उत्तममा उत्तम मिष्टान्न
आदि सामग्रीनी प्राप्ति थरे, पाछेने आववा छता क्षीथी भोजन थरे, अने

वस्मत्सन्तोपायावश्यमस्मत्स्थाने समागन्तव्यम्, यद् यद् भवतां करणीयं तच्छा-
स्यामीति भावः। ममादासो भवत्संभारपरम्यायामव वर्तते, यदि वक्राऽपि भवेत्
वाऽपि पन्थानं=मार्गं व्यावर्त्यापि=परिभ्रम्यापि उक्तम्=मार्गमध्यवर्तिगृहान्युल्ल-
ङ्घ्यागन्तव्यम्, नाऽत्र वल्लेष्टा गमनीय, कृपा विधेया-इत्यादि कथयित्वा स
विमर्श=मिन्नं धर्मं रूपमाणा=सेवमानः शाक्यादि, समायन्=तेन मार्गेण कदाचिद्
मागच्छन्, चलन्=मार्गं गच्छन् यज्ज्ञानादिकं प्रवृत्तात्, तद्वानादिना निमग्न-
येष्टा, अन्यथा देयादृश्यं कुर्यात्=विद्वद्भ्यात्, तर्हि मुनिः परम्=अस्यैवम् अनाद्रियमाणः
तस्यानन्दरं कुर्यन्-तमस्वीकुर्याजः सन् विहरेत्, तेन सह परिचयमपि न कुर्यात्,
यनेन दक्षेनधुदृषादरवश्यं भावादित्याश्रयः। इति पूर्वोक्तं वक्ष्यमाणं च ब्रवीमि=
कथयामि ॥ सू० २ ॥

आपगा, और नहीं आ कर आनेपर लुपहका लघुभोजन हो जायगा। इस
लिये हमारे संतोपके लिये आप मेरे स्थान पर अवश्य २ आवें। आनेपर
आपके लिये जो २ वस्तुएँ करणीय होंगी उन्हें मैं अवश्य २ दूंगा मेरा
निवासस्थान आपके निकलनेकी गली ही में है। यदि वहाँसे वह शायद
आपके लिये देना भी पड़े तो भी घुमकर कुछ मध्यवर्ती घरोंको छोड़
कर आप वहाँ जरूर आवें। इसमें परिभ्रमका क्याल न करे। बड़ी
दया होगी।” इत्यादि कह कर वह भिक्षु धर्मका अनुयायी शाक्य
आदि उस मार्गसे कदाचित् आता जाता मिल जाय और
उस मुनिके लिये जो कुछ भी अशानादिक दे, अथवा उसके लिये
आग्रह करे, या आमंत्रित करे अथवा दूसरी तरफसे कोई वैयावृत्ति
करना चाहे तो उस मुनिके चाहिये कि वह उसके किसी भी वस्तुका ग्रहण

आदि न करे। वही शिक्षा भक्त शरीर आ भाटे अभास स्थान उपर अभास सतोप
भाटे आप अवश्य अवश्य आवें। आपकी आपने भाटे के के वस्तुओं के रूप-पीय
हो के हु तमीने अवश्य अवश्य आपीश भाई निवासस्थान आपनी निकल
पानी शरीरमा न छे अवस्था त्यागीके छोड़े छोड़े पड़े तो पणु इरीने केटवाक
वसता भरीने मुनीने पणु आप त्या न कर आवें। आपा परिभ्रमने पनावन
इरीने भूत इमा शरीर छत्यादि इरीने के पीत भरीना अनुयायी शाक्य आदि
के भाईकी कदाचित् आपता नता भगी अव्य अने के मुनि
भाटे के भाई आपा पीवानु आपी अवस्था अने भाटे अवश्य करे या
आपमय करे, अवस्था नील शीते के भाई देयावृत्त करे या भाटे, त्यागे ते मुनि

‘અથવા’ પશ્ચાન્તરઘોત્તરઃ, તથા—અદત્તં ગૃહ્ણન્તો દિ વાચઃ=ગૃહ્ણવિધાઃ વક્ષ્ય-
માણા વિયુજ્જન્તિ=મયુજ્જન્તિ—વાચો મિનિયોગ કુર્વન્તિ—કથયન્તીત્યર્થઃ, તદેવાદ—
તથથેત્યાદિના—તથા—

કેચિદાહુ —‘લોકઃ=સ્થાવર-જઙ્ગમલક્ષણઃ, અસ્તિ=વિદ્યતે। તથાદિ-સપ્તસમુદ્રા
સપ્તદ્વીપા નવચ્ચણ્ડા પૃથિવી, નાતઃ પરમન્યો લોકઃ’ ઇતિ ।

કેચિચ્—एतादृशानि बहूनि ब्रह्माण्डानि सन्ति, तेषु कृति चिज्जलमध्ये प्लव-
मानानि सन्तीति, वर्तन्ते पञ्चमहाभूतानि पृथिव्यादीनीति, तथा अस्ति च पर-
लोकः=यमलोकादिरूपः’ ઇતિ પ્રવદન્તિ ।

સૂત્રકારકો इसके विषयमें विशेष कथन नहीं करना है—इसलिये इसका
क्रमप्राप्त असत्यके कथन करनेके पहिले कथन नामोल्लेखरूपसे किया
है । द्वितीय अव्रतमें विशेष वक्तव्यता है; इसलिये उसके बाद उसका
कथन किया है ।

અથવા—અદત્તકા ગ્રહણ કરનેવાલે મનુષ્ય વહુત પ્રકારકી (જિસકે
વિષયમેં આગે કહા જાયગા) વાતેં વનાયા કરતે હેં । ઇસીકા “તથથા”
પદસે સ્પષ્ટીકરણ કરતે હુણ સૂત્રકાર કહતે હેં—

કોઈ કોઈ કહતે હેં—સ્થાવર ઓર જગમ સ્વરૂપવાલા યહ લોક હૈ !
इसका मतलब सिर्फ इतना ही है कि यह पृथिवी सात समुद्रवाली है,
सात इसमें द्वीप है, और नव इसके खण्ड है । इसीका नाम लोक है ।
इससे जुदा और कोई लोक नहीं है । कोई २ ऐसा भी कहते हैं—ऐसे
तो बहुत ब्रह्माण्ड हैं । इनमें कितनेक तो जलके बीचमें डूबे हुए हैं,

આ વિષયમા વિશેષ કહેવા માગતા નથી આ માટે ક્રમપ્રાપ્ત અસત્યનું કથન
નહિ કરતા પહેલા અદત્તાદાનનું નામોલ્લેખરૂપથી કથન કરેલ છે બીજા અવ્રતમા
વિશેષ વક્તવ્ય છે, આ માટે એના પછી એનું કથન કરેલ છે

અથવા—અદત્તનું ગ્રહણ કરવાવાળા મનુષ્ય ઘણા પ્રકારની (જેના વિષયમા
આગળ કહેવામા આવશે) વાતો બનાવ્યા કરે છે, એનું “તથથા” પદથી
સ્પષ્ટીકરણ કરતા સૂત્રકાર કહે છે—

કોઈ કોઈ કહે છે સ્થાવર અને જગમ—સ્વરૂપવાળો આ લોક છે આનો
અર્થ ફક્ત એટલો જ છે કે આ પૃથ્વી સાત સમુદ્રવાળી છે, આમા સાત દ્વીપ
છે અને નવ એના ખડ છે આનું નામ લોક છે આનાથી બુદ્ધો બીજો કોઈ
લોક નથી કોઈ કોઈ એમ પણ કહે છે—એમ તો ઘણા પ્રહાસ છે, આમા
કેટલાક તો પાણીમા ડુબી ગયેલા છે કેટલાક પચમહાભૂતસ્વરૂપ પૃથ્વી આદિ

પાર્વાત્કારતુ-‘લોકાઃ=પરલોકો નાસ્તિ’ ઇત્યાદિઃ । ઇત્યં ત્ર તેષામન્યુપગમા-
સ્વર્ગાદિકં ગન્ધર્વનગરમક્ષરીષિકાદિસદ્દશમેવ, પ્રત્યક્ષમંથ પ્રમાણ, નાન્યદનુમાના
વિકં પરોક્ષમ્, પરલોકામાલેન ખીષઃ પરલોકગામી ન મનસ્યેષઃ, ક્ષિન્તુ પ્રત્યક્ષં પરિ-
દશ્યમાનઃ પદ્મપૂતાત્મક ઇષ લોકાઃ, અતો નાસ્તિ ચન્ધો, નાસ્તિ મોક્ષઃ, નાસ્તિ
પુણ્યં, નાસ્તિ પાપમિત્યાદિ, તથાદિ—

“યદા યદાઽર્યાધિન્ત્યતે, વિવિષ્યન્તે તથા તથા ।

યદેતત્સ્વયમર્યેભ્યો, રોચત તપ્ત કં ચમ્ ॥ ૧ ॥

કિન્તુએક પંચમહામૂતસ્વરૂપ પૃથિવી આદિક વિષયમાન હૈં । તથા યમ
લોક-આદિ-સ્વરૂપ પરલોક મી મૌખીક હૈં । ધાર્વાક-સિદ્ધાન્તવાલે
નાસ્તિકલોક ‘પરલોક નહીં હૈં’ એસા માનતે હૈં । ડનકા સિદ્ધાન્ત
હસ પ્રકારસે હૈં - સ્વર્ગાદિક પરલોકકી માન્યતા ગન્ધર્વનગર
તથા મક્ષરીષિકા જેસી હૈં । જેસે હનકા આમાસ ધ્રમસે હોતા હૈં, ડસી
તરહસે સ્વર્ગાદિક પરલોકકી મી માન્યતા એસી હી હૈં, વાસ્તાવિક નહીં ।
હનક સિદ્ધાન્તાનુસાર ૧ પ્રત્યક્ષ હી પ્રમાણ હૈં । પરોક્ષ-અનુમાનાદિક
નહીં । જય પરલોક હી નહીં તો ખીષ પરલોકમૈં જાતા હૈં,
અથવા પરલોકમૈં હસકે જાનેકા સ્વભાવ હૈં-એસી કલ્પના
મી ઠીક નહીં હૈં । જો કુછ પ્રત્યક્ષસે પદ્મપૂતાત્મક વિન્વાઈં વતા હૈં ઘહી
લોક હૈં, હસસે પર નહીં । હસલિયે ન ઘષ હૈં, ન મોક્ષ હૈં, ન પુણ્ય હૈં,
મૌર ન પાપ હૈં ।

વિષમાન ॥ તથા યમલોકઃ જગેરે સ્વરૂપકી પરલોકઃ પવુ છે અર્થાત્ સિદ્ધાન્ત
વાચ્ય નાસ્તિક લોક પરલોક નથી એવું માને છે એમનો સિદ્ધાન્ત
આ પ્રકારનો છે-સ્વર્ગાદિક પરલોકની માન્યતા ન મર્વનગર તથા મક્ષરીષિકા
એવી છે એમ એનો આભાસ ધ્રમથી થાય છે એવી જ રીતે સ્વર્ગાદિક પરલોક-
ની માન્યતા પવુ છે વાસ્તાવિક નથી એમના સિદ્ધાન્ત - અનુસાર
૧ પ્રત્યક્ષ જ પ્રમાણ છે પરોક્ષ-અનુમાનાદિક નહીં. અ્યારે પરલોક જ
નથી તે હન પરલોકમાં જાય છે, અથવા પરલોકમાં એનો જન્મ સ્વભાવ છે
એવી કલ્પના કરવી એ પવુ ઠીક નથી. જે મહ પ્રત્યક્ષથી પદ્મપૂતાત્મક દેખાય
છે એ જ લોક ॥ આથી ખીજુ નહીં આથી ન ઘષ છે, ન મોક્ષ છે ન
પુણ્ય છે કે ન પાપ છે.

અપિ ચ વક્ષ્યમાણં દર્શયતિ—‘ ઇહમેગેસિં ’ ઇત્યાદિ—

મૂલમ્—ઇહમેગેસિં આચારગોચરે નો સુનિસંતે ભવતિ, તેઇહ આરંભટ્ટી અણુવચમાણા હણ પાળે વાચમાણા હણઓ યાવિ સમણુજાણમાણા, અદુવા અદિન્નમાચયંતિ, અદુવા વાયાડ વિડ-જ્જંતિ, તં જહા—અતિથિ લોએ, નતિથિ લોએ, ધુવે લોએ, અધુવે લોએ, સાહિએ લોએ, અણાહિએ લોએ, સપજ્જવસિએ લોએ, અપ-જ્જવસિએ લોએ, સુકહેત્તિ વા, દુકહેત્તિવા, કહ્લાણેત્તિ વા, પાવેત્તિ વા, સાહુત્તિ વા, અસાહુત્તિ વા, સિદ્ધિત્તિ વા, અસિદ્ધિત્તિ વા, નિરણ્ણિ વા, અનિરણ્ણિ વા, જમિણં વિપ્પહિવન્ના મામગં ધમ્મં પન્નવેમાણા, એતથ વિ જાણહઅકસ્માત્, એવં તેસિં નો સુચક્ષાએ ધમ્મે નો સુપન્નત્તે ધમ્મે ભવઈ ॥ સૂ. ૩ ॥

છાયા—ઈહંકેપામાચારગોચરો નો સુનિશાન્તો ભવતિ, ત ઇહારમ્માર્થિનોડુ-વદન્તો ઘનન્તઃ પ્રાણાન્ ઘાતયન્તઃ ઘનતશ્વાપિ સમનુજાનન્તઃ, અથવાડ્વત્તમાદદતિ, અથવા વાચો વિયુજ્જન્તિ, તથવા—અસ્તિ લોકો, નાસ્તિ લોકો, ધુવો લોકઃ, અધુવો લોકઃ, સાદિકો લોકોજ્ઞાદિકો લોકઃ, સપર્યવસિતો લોકોઽપર્યવસિતો લોકઃ, સુકૃતમિતિ વા, દુકૃતમિતિ વા, કલ્યાણમિતિ વા, પાપમિતિ વા, સાધ્ધિતિ વા, અસાધ્ધિતિ વા, સિદ્ધિરિતિ વા, અસિદ્ધિરિતિ વા, નિરય ઇતિ વા, અનિરય ઇતિ વા, યદિદં વિપ્રતિપન્ના મામક ધર્મ પ્રદન્તઃ, અત્રાપિ જાનીત અકસ્માત્, એવં તેપા નો સ્વાચ્ચાતો ધર્મો ન સુપ્રણ્ણો ધર્મો ભવતિ ॥ સૂ. ૩ ॥

ટીકા—‘ ઇહંકેપા ’મિતિ—ઇહ=અત્ર મનુષ્યલોકે એકેપાં = કતિપયાનામ્,

ન કરે ઓર વહાંસે ચલ દેવે, કોઈ ઓ પ્રકારકા સંપર્ક ઉસસે ન રહે । હસ પ્રકારકે વર્તનસે ઉસ મુનિકે સમકિત કી શુદ્ધિ હોતી હૈ । એસા મૈં કહતા હૂ ॥ સૂ. ૨ ॥

તથા —‘ ઇહમેગેસિં ’ ઇત્યાદિ—

હસ મનુષ્ય લોકમૈં જો સર્વજ્ઞસે ઉપદિષ્ટ સયમકે માર્ગસે અનભિજ્ઞ

એની કોઈપણ વાત ઉપર ખ્યાલ ન કરે, એના ઠારા મળતી કોઈપણ વસ્તુને ગ્રહણ ન કરે અને ત્યાંથી ચાલ્યા બાદ, કોઈ પણ પ્રકારનો સંપર્ક એનાથી ન રાખે આ પ્રકારના વર્તનથી તે મુનિના સમકિતની શુદ્ધિ થાય છે, એણે હું કહું છું (સૂ. ૨)

અપિ ચ—“ ઇહમેગેસિં ” ઇત્યાદિ

આ મનુષ્ય લોકમા જે સર્વજ્ઞથી ઉપદેશવામા આવેલ સયમ માર્ગથી

न सर्वेषाम्; 'आचारगोचर' आचारस्य=सयमस्य गोचरः=विषयः सर्वज्ञोपदिष्ट
मार्ग इत्यर्थः, सुनिश्चान्तः=सुपरिचितः, नो मयति, ते इह=अस्मिंछोके आरम्भा-
र्पिनः पचन-पाचनानुमोदनाविषाद्यध्यापारयन्तः शाक्यादयो ब्रह्मसिद्धिर्नोऽस्तम्भ-
पार्थस्यादयः, अनुमोदन्तः=देवायतननिर्माणे प्रतिमाप्रतिष्ठापूजादौ औद्देशिकाहारादौ
य धर्मं प्रकल्पयन्तः सन्तः प्राणान्=एकेन्द्रियादिजीवान् जन्तः=नाशयन्तः अन्यै
प्रांतयन्तः, जन्तः प्रांतयतो वा समनुनानन्तः=अनुमोदयन्तो मयन्ति । एतेन
पञ्चजीवनिकापधिराधकत्वं तेषामभिहितम् ।

'अथवा' =पश्चान्तरे, तेन-ते आरम्भार्पिनः अर्ध-परस्य घनादिकम् आद-
दति=ग्रहन्ति, तृतीयेऽव्रते स्तोत्रकथनीयत्वाच्चस्य पूर्वं प्रतिपादनम् । द्वितीये च
पञ्चकल्पत्वाच्चतस्तदुपस्थास इति विज्ञेयम् ।

हैं, अर्थात् जो सर्वज्ञकथित सयमके मार्गसे अपरिचित हैं-ऐसे वे
शाक्यादिक तथा ब्रह्मसिद्धि अवसल-यासत्पादिक आरम्भार्पी, पचन,
पाचन और अनुमोदन आदि साधन व्यापारोंसे युक्त वन देवाय-
तन-मन्दिर आदिके निर्माणमें, प्रतिमा की प्रतिष्ठामें, और उसके पूजन
आदिमें तथा उद्दिष्ट आहार वगैरहमें धर्मकी प्रकल्पना करते हुए एकेन्द्रि-
यादिक जीवोंका स्वयं आरम्भ करनेवाले, दूसरोंसे उनका आरम्भ करा-
नवाले एवं उनके आरम्भ करनेवालोंकी अनुमोदना करनेवाले होते हैं।
इस कथनसे पञ्चजीवनिकायोंकी विराधकता उनके कहीं गई
समझनी चाहिये ।

अथवा—वे आरम्भार्पी—शाक्यादिक एवं अवसल-यासत्पादिक पर-
का अर्धस घनादिक ब्रह्म ग्रहण करते हैं । तृतीय अवत-चौर्य है ।

अनभिज्ञं छे अर्थात् जे सर्वज्ञकथित सयमका भार्गवी अपरिचित छे जेवा
जे शाक्यादिक तथा ब्रह्मसिद्धि अवसल-यासत्पादिक आरम्भार्पी पचन, पाचन
अने अनुमोदन आदि साधन व्यापारोंकी युक्त वनी देवायतन-मन्दिर आदिना
निर्माणमा प्रतिमाकी प्रतिष्ठामा अने तेना पूजन आदिमा तथा उद्दिष्ट आहार
वगैरहमा धर्मकी प्रकल्पना करता ओकेन्द्रिय आदि लोकोना स्वयं आरम्भ करता-
वाणा, जीवोंकी तेना आरम्भ कयवायना अने तेना आरम्भ करवायना अने अनु-
मोदन आपनास कोय छे आ कथनकी पञ्चजीवनिकायोंकी विराधकता तेनी कहे-
वामा आपनी समझनी कोयछे ।

अथवा—जे आरम्भार्पी—शाक्यादिक अने अवसल-यासत्पादिक जीवोनु-
मोदन आदि ब्रह्म ग्रहण करे छे तीनु अवत-चौर्य छे । अथवा आ

‘અથવા’ પશ્ચાન્તરધોતકઃ, તથા—અદત્તં ગૃહ્ણન્તો હિ વાચઃ=વહુવિધાઃ વક્ષ્ય-
માણા વિયુઙ્ગન્તિ=પ્રયુઙ્ગન્તિ—વાચો વિનિયોગ કુર્વન્તિ—કથયન્તીત્યર્થઃ, તદેવાદ-
તથથેત્યાદિના—તથા—

કેચિદાહુઃ—‘લોકઃ=સ્થાવર-જઙ્ગમલક્ષણઃ, અસ્તિ=વિધતે। તથાહિ—સપ્તસમુદ્રા
સપ્તદ્વીપા નવઃખણ્ડા પૃથિવી, નાતઃ પરમન્યો લોકઃ’ ઇતિ ।

કેચિચ્—एतादृशानि वहूनि ब्रह्माण्डानि सन्ति, तेषु कति चिज्जलमध्ये प्लव-
मानानि सन्तीति, वर्तन्ते पञ्चमहाभूतानि पृथिव्यादीनीति, तथा अस्ति च पर-
लोकः=यमलोकादिरूपः’ ઇતિ પ્રવદન્તિ ।

સૂત્રકારકો इसके विषयमें विशेष कथन नहीं करना है—इसलिये इसका
क्रमप्राप्त असत्यके कथन करनेके पहिले कथन नामोल्लेखरूपसे किया
है । द्वितीय अव्रतमें विशेष वक्तव्यता है; इसलिये उसके बाद उसका
कथन किया है ।

અથવા—અદત્તકા ગ્રહણ કરનેવાલે મનુષ્ય વહુત પ્રકારકી (જિસકે
વિષયમેં આગે કહા જાયગા) વાતેં બનાયા કરતે હૈં । ઇસીકા “તથા ”
પદસે સ્પષ્ટીકરણ કરતે હુએ સૂત્રકાર કહતે હૈં—

કોઈ કોઈ કહતે હૈં—સ્થાવર ઓર જંગમ સ્વરૂપવાલા યહ લોક હૈ !
इसका मतलब सिर्फ इतना ही है कि यह पृथिवी सात समुद्रवाली है,
सात इसमें द्वीप है, और नव इसके खण्ड हैं । इसीका नाम लोक है ।
इससे जुदा और कोई लोक नहीं है । कोई २ ऐसा भी कहते हैं—ऐसे
तो बहुत ब्रह्माण्ड हैं । इनमें कितनेक तो जलके बीचमें डूबे हुए हैं,

આ વિષયમા વિશેષ કહેવા માગતા નથી આ માટે ક્રમપ્રાપ્ત અસત્યનું કથન
નહિ કરતા પહેલા અદત્તાદાનનું નામોલ્લેખરૂપથી કથન કરેલ છે બીજા અવ્રતમા
વિશેષ વક્તવ્ય છે, આ માટે એના પછી એનું કથન કરેલ છે

અથવા—અદત્તનું ગ્રહણ કરવાવાળા મનુષ્ય ઘણા પ્રકારની (જેના વિષયમા
આગળ કહેવામા આવશે) વાતો બનાવ્યા કરે છે, એનું “ તથા ” પદથી
સ્પષ્ટીકરણ કરતા સૂત્રકાર કહે છે—

કોઈ કોઈ કહે છે સ્થાવર અને જંગમ—સ્વરૂપવાળો આ લોક છે આનો
અર્થ ફક્ત એટલો જ છે કે આ પૃથ્વી સાત સમુદ્રવાળી છે, આમા સાત દ્વીપ
છે અને નવ એના ખડ છે આનું નામ લોક છે આનાથી જુદો બીજો કોઈ
લોક નથી કોઈ કોઈ એમ પણ કહે છે—એમ તો ઘણા બ્રહ્માંડ છે, આમા
કેટલાક તો પાણીમા ડુબી ગયેલા છે કેટલાક પચમહાભૂતસ્વરૂપ પૃથ્વી આદિ

પાર્વાકાસ્તુ-‘લોકાઃ=પરલોકો નાસ્તિ’ ઇત્યાદિ । ઇત્યં ચ તેપામધ્યુપગમઃ-
સ્વર્ગાદિકં ગન્ધર્વનગરમક્ષ્મરીષિકાવિસદ્ધમેષ, પ્રત્યક્ષમેષ પ્રમાણ, નાન્યદમનુમાના
વિકં પરોક્ષમ્, પરલોકામાલેન જીવં પરલોકગામી ન ભક્ષ્યમેષ; કિન્તુ પ્રત્યક્ષં પરિ
રક્ષ્યમાનઃ પદ્મપૂતાત્મક એવં લોકાઃ, અતો નાસ્તિ ધન્યો, નાસ્તિ મોક્ષઃ, નાસ્તિ
પુણ્યં, નાસ્તિ પાપમિત્યાદિ, તથાદિ—

“યથા યથાઽર્પાંશિન્ત્યન્તે, વિવિષ્યન્તે તથા તથા ।

યથેતસ્ત્વયમર્થેભ્યો, રોચત તથ કે વયમ્ ॥ ૧ ॥

કિન્તુનેક પંચમહામૂતસ્વરૂપ પૃથિવી આદિક બિદ્યમાન છે । તથા યમ
લોક-આદિ-સ્વરૂપ પરલોક भी मौजूद हैं । पार्वक-सिद्धान्तवाले
नास्तिकलोग ‘परलोक नहीं है’ ऐसा मानते हैं । उनका सिद्धान्त
इस प्रकारसे है - स्वर्गादिक परलोककी मान्यता गन्धर्वनगर
तथा मक्ष्मरीषिका जैसी है । जैसे इनका आभास ध्रुमसे होता है, वसी
तरहसे स्वर्गादिक परलोककी भी मान्यता ऐसी ही है, वास्तविक नहीं ।
इनके सिद्धान्तानुसार १ प्रत्यक्ष ही प्रमाण है । परोक्ष-अनुमानादिक
नहीं । जब परलोक ही नहीं तो जीव परलोकमें जाता है,
अथवा परलोकमें बसके जानेका स्वभाव है-ऐसी कल्पना
भी ठीक नहीं है । जो कुछ प्रत्यक्षसे पद्मभूतात्मक दिम्बाई देता है वही
लोक है, इससे परे नहीं । इसलिये न बन्ध है, न मोक्ष है, न पुण्य है,
और न पाप है ।

વિદ્યમાન છે તથા યમલોક વગેરે સ્વરૂપથી પરલોક પણ છે આવાંકે સિદ્ધાંત-
વાળા નાસ્તિક લોક પરલોક નથી એવું માને છે એમને સિદ્ધાંત
આ પ્રકારનો છે-સ્વર્ગાદિક પરલોકની માન્યતા ગન્ધર્વનગર તથા મક્ષ્મરીષિકા
એવી છે એમ એને આભાસ પ્રમથી થાય છે એવી જ રીતે સ્વર્ગાદિક પરલો-
કની માન્યતા પણ છે વાસ્તવિક નથી એમના સિદ્ધાન્ત - અનુસાર
૧ પ્રત્યક્ષ જ પ્રમાણ છે પરોક્ષ-અનુમાનાદિક નહીં આદિ પરલોક જ
નથી તે છતાં પરલોકમાં બધા છે અથવા પરલોકમાં એનો જવ નો સ્વભાવ છે
એવી કલ્પના કરવી એ પણ ઠીક નથી એ મંદ પ્રત્યક્ષથી પદ્મભૂતાત્મક દેખાય
છે એ જ લોક છે આથી બીજું નહીં આથી ન બન્ધ છે, ન મોક્ષ છે ન
પુણ્ય છે કે ન પાપ છે

ભૌતિકાનિ શરીરાણિ, વિષયાઃ કરુણાનિ ચ ॥

તથાઽપિ મન્દૈરન્યસ્ય, તત્ત્વ સમુપદિશ્યતે ॥ ૨ ॥ ” ઇતિ ।

કિમધિકેન ।

કાપિલાસ્તુ—‘ધ્રુવો લોકઃ’=લોકઃ ધ્રુવઃ=શાશ્વતિક્રિયા=નિત્યઃ દુર્માત્માની-
વાઽઽવિર્ભાવ-તિરોભાવેનૈવોત્પત્તિધ્વસાદિવ્યવહાર ઔપચારિકો ન તુ વાસ્તવિકોઽ-
પૂર્વોપજનરૂપઃ ।

વૈશેષિકાદિતત્ત્વવદુત્પત્તેઃ પૂર્વં કાર્યસ્યાઽસત્ત્વસ્વીકારેઽસતઃ શશશૃંગાદેરપ્યુ-
ત્પત્તિઃ કદાચિદગ્નીકાર્યાં સ્યાત્ । સતો વિનાશઽસમ્ભવાચ ન સન્નાઽસત્; કિન્તુ

• યથા યથાર્થાશ્ચિન્ત્યન્તે વિવિચ્યન્તે તથા તથા ।

યદ્યેતત્સ્વયમર્થેભ્યો રોચતે તત્ર કે વયમ્ ॥ ૧ ॥

ભૌતિકાનિ શરીરાણિ વિષયાઃ કરુણાનિ ચ ।

તથાપિ મન્દૈરન્યસ્ય તત્ત્વ સમુપદિશ્યતે ॥ ૨ ॥

ભાવાર્થ—જિસ જિસ પ્રકારસે પદાર્થોંકા વિચાર કિયા જાતા હૈ
ઉસ ઉસ પ્રકારસે વે વિશીર્ણ (નષ્ટ) હોતે હૈં । હમ ક્યા કરે—યદિ યહ
શૂન્યતા હી પદાર્થોંકો રુચતી હૈ તો ! શરીર, વિષય ઓર ઇન્દ્રિયાં યે
સવ ભૌતિક હૈં, તો ખી મૂર્ખ પ્રાણી અન્યકે લિયે તત્ત્વોંકા ઉપદેશ દેતે
હૈં; જ્યાદા ક્યા કહા જાય ?

કાપિલમતાનુયાયી સાંખ્ય—યહ કહતે હૈં કિ યહ લોક
ધ્રુવ-શાશ્વતિક-નિત્ય હૈ । ઇસમેં ઉત્પત્તિ ઓર ધ્વંસ-નાશકા વ્યવહાર
ઔપચારિક-ગૌણ હૈ । ઇસમેં આવિર્ભાવ ઓર તિરોભાવ હી હોતે

યથા યથાર્થાશ્ચિન્ત્યન્તે વિવિચ્યન્તે તથા તથા ।

યદ્યેતત્સ્વયમર્થેભ્યો રોચતે તત્ર કે વયમ્ ॥ ૧ ॥

ભૌતિકાનિ શરીરાણિ વિષયાઃ કરુણાનિ ચ ।

તથાપિ મન્દૈરન્યસ્ય તત્ત્વ સમુપદિશ્યતે ॥ ૨ ॥

ભાવાર્થ—જે જે પદાર્થોંનો જે પ્રકારથી વિચાર કરવામા આવે છે તે તે
પ્રકારથી તેનો નાશ થાય છે અમે શુ કરીએ—જે આ શૂન્યતા જ પદાર્થોંને રૂચે
છે, શરીર, વિષય અને ઇન્દ્રિયો આ બધુ ભૌતિક છે તો પણ મૂર્ખ પ્રાણી
ખીલને માટે તત્ત્વોંનો ઉપદેશ આપે છે વધુ શુ કહેવાય

કાપિલ-મતાનુયાયી સાંખ્ય એવુ કહે છે કે આ લોક ધ્રુવ-શાશ્વતિક-નિત્ય છે.
આમા ઉત્પત્તિ અને નાશનો વ્યવહાર ગૌણ છે એમા આવિર્ભાવ અને તિરોભાવ જ

‘स्वसदिद प्रपञ्चार्थं, यथिकादाधुपादानकारणे घटादिरन्यत्करूपेण सन् बहिरिन्द्रियप्रत्यक्षायोक्तत्वेनाऽसन् घट इति व्यवहारः’ इत्यादिकमाहुः, तेषां मते सिद्धयेव लोकास्य ध्रुवत्वम् ।

हैं, अतः यह व्यवहार—वास्तविक नहीं है । मिहीसे घट कोई अपूर्ण वस्तु उत्पन्न नहीं होती है किंतु उसमें घटका तिरोभाव या धौर कारण कलापसे तिरोभाव हट जाने पर उसका आविर्भाव होता है । अधोत्सत्का ही आविर्भाव हुआ असत्का नहीं । इस लिये अपूर्ण कुछ भी उत्पन्न नहीं होता । वैशेषिकसिद्धान्तकी तरह उत्पत्तिसे पूर्ण कार्यका असत्त्व माना जायगा तो असत् शशशृङ्गकी भी उत्पत्ति कदाचित् स्वीकार करनी पड़ेगी । सत्का कभी भी विनाश नहीं होता है इसीलिये घटका सर्वथा सत्त्व मानने पर उसका कभी विनाश नहीं हो सकता है, परन्तु विनाश होता दिखता तो है, इसलिये यह जगत्प्रपञ्च सत्-असत्-स्वरूप है । उपादानकारणस्वरूप मिहीमें घटादिक कार्य अव्यक्तरूपसे थे, इसलिये वे बहिरिन्द्रिय बाह्यरादिकोंके अभिपयनूत थे; अतः मिहीमें वर्तमान होते हुए भी उनका बाह्यरिन्द्रियसे ग्रहण नहीं होता है । इस लिये बहिरिन्द्रियसे ग्रहणके अयोग्य होनेसे घटादिकोंमें “असन् घटः” इत्यादिक व्यवहार होता है—ऐसा सांख्योक्त कहना है, इस प्रकारके उनके कथनसे लोकमें ध्रुवता सिद्ध होती है ।

बाव छे पक्ष आ व्यवहार वास्तविक नही. माटीधी घट केहि अपूर्ण वस्तु उत्पन्न नहीं, परन्तु जेभां घटने तिरिभाव कते अने कारणकलापधी तिरिभाव हट गतां जेने आविर्भाव यर्ध अव छे अधोत्सत्ने अ आविर्भाव यथे असत्ने नही. आधी अपूर्ण केहि पक्ष उत्पन्न वस्तु नही. वैशेषिक सिद्धांत माइके उत्पत्तिधी पूर्व केहि अवसत्त्व मानवाभां आवे तो असत् शशशृङ्गनी पक्ष उत्पत्ति कदाच स्वीकारणी पडे सत्ने केहि पक्ष विनाश गते नही. अ कारणे घटनु सर्वथा सत्त्व मानवाधी जेने केहि विनाश यर्ध शकते नही. परन्तु विनाश गते हेभाव तो छे आधी आ जगत्-प्रपञ्च सत्-असत्-स्वरूप छे उपादान कारण माटीभां घटादिक कार्य अव्यक्तरूपधी कते आधी ते बहिरिन्द्रिय बाह्यरां अभिपयनूत कता. माटे माटीभां वर्तमान कीवा कतां पक्ष तेने आपधी केहि शकतु नही. माटे बाह्य र्धन्द्रियधी जेवाने जेवावे हेवाधी घट आदिभां “असन् घटः” केहि व्यवहार बाव छे जेनु सांख्येने केहेनु छे. आ प्रकारा तेना केवनी लोकभां ध्रुवता सिद्ध बाव छे.

વૌદ્ધાસ્તુ-‘અધ્રુવો લોકઃ’ ઇતિ બ્રુવતે; इत्थं हि तेषामभ्युपगमः-सर्वमिदं-
-स्थावरजङ्गमात्मकं जगत् क्षणिकम्, लोकस्य विनाशकारणाभावेन यदि ‘लोकો
नित्यः’ इति मन्यसे तर्हि नित्यभूतस्य शाश्वतिकस्य स्वरूपेणाविच्युतस्य तस्य
सर्वथा विकाररहितत्वेन भाव्यम्, तथा च क्रमेण यौगपद्येन वा तस्यार्थक्रियाया
सामर्थ्याभावात्सर्वव्यवहारोच्छेदापत्तिः स्यात्, तस्मात् ‘अध्रुवो लोकः’ इति ।

બૌદ્ધોંકા કથન હૈ કિ યહ લોક અધ્રુવ-અનિત્ય હૈ । ઉનકી માન્યતા
इस प्रकार है-कि स्थावर-जंगम-स्वरूप यह लोक क्षणिक-क्षण २
में नष्ट होता रहता है । विनाशके कारणोंके अभावसे यदि लोकको
नित्य माना जावे तो फिर इस प्रकार से सर्वथा नित्य बने इस
लोकमें विकृतिका सद्भाव नहीं पाया जाना चाहिये; क्योंकि
“अप्रत्युत्पन्नस्थिरैकरूपो नित्यः” उत्पत्तिरहित, शाश्वतिक, स्वरूपसे
अप्रच्युत का नाम ही नित्य है, और इस प्रकार नित्य बने हुए में
विकृति नहीं होती है । तथा-क्रम और यौगपद्यसे सर्वथा नित्य
पदार्थकी अर्थक्रिया करनेमें सामर्थ्य घटित नहीं होनेसे अर्थक्रियाकारित्व
के अभावसे उसमें शून्यता ही आवेगी, “यदेवार्थक्रियाकारि तदेव
परमार्थसत्” इस वाक्यके अनुसार अर्थक्रियाकारी पदार्थ ही परमार्थ
से सत् माना गया है । इसलिये नित्यमें विकृतिके अभावसे सर्वव्यवहार
के उच्छेदकी आपत्ति आनेसे “लोकअध्रुव” है यही मान्यता ठीक है ।

બૌદ્ધોંકા કથન છે કે આ લોક અધ્રુવ-અનિત્ય છે તેની માન્યતા આ
પ્રકારની છે સ્થાવર-જંગમ-સ્વરૂપ આ લોક ક્ષણિક-ક્ષણ ક્ષણમા નષ્ટ થતો-
રહે છે વિનાશના કારણોના અભાવથી કદાચ લોકને નિત્ય માનવામા આવે
તો પછી આ પ્રકારથી સર્વથા નિત્ય બનેલા આ લોકમા વિકૃતિનો
સદ્ભાવ રહેવુ બેધએ નહિ, કારણ કે ‘અપ્રત્યુત્પન્નસ્થિરૈકરૂપો નિત્ય.’ ઉત્પત્તિરહિત,
શાશ્વતિક અને સ્વરૂપથી અપ્રચ્યુતનુ નામજ નિત્ય છે, અને આ પ્રકારે નિત્ય બને-
લામા વિકૃતિ હોતી નથી. ક્રમ અને યૌગપદ્યથી સર્વથા નિત્ય પદાર્થની અર્થક્રિયા
કરવામા સામર્થ્ય ઘટિત નહિ હોવાથી, અર્થક્રિયાકારિત્વના અભાવથી તેમા શૂન્યતા
જ આવવાની “યદેવર્થક્રિયાકારિ તદેવ પરમાર્થસત્” આ વાક્ય અનુસાર અર્થ
ક્રિયાકારી પદાર્થ જ પરમાર્થથી સત્ માનવામા આવેલ છે નિત્યમા વિકૃતિના
અભાવથી સર્વ વ્યવહારના ઉચ્છેદની આપત્તિ આવશે, માટે “લોક અધ્રુવ” છે
એજ માન્યતા ઠીક છે

यथा कथित्—‘लोकः=भूलोकः पृथिवीमण्डलमित्यर्थः, अभुमः=चल’ इति वदन्ति, तथा हि—यथा—नौकादिगतैर्न नैषलद्विरपि भ्रान्तिवशादपलास्तीरस्य दृष्टादयमपला दृश्यन्ते, एवं वस्तुतः पृथिव्यवचलति सूर्यस्त्वचलोऽपि भ्रान्तिवशाच्चल इव प्रतिभाति ।

यद्यु—सूर्यं य पूर्वस्यां दिशि गीतं तत्पामुदितः सूर्यो जायते, य तु वर्जति त्वारं मेतत् तत्पामस्तमितः सूर्य इति । मध्यस्थितानां मध्याह्नगता भवति ।

पौराणिकास्तु—सादिको लोकः=उत्पत्तिमान् लोकः, तत्पूर्वं सृष्ट्यादौ तमो भूतमतर्क्य सर्वतः प्रमुपमिवाऽऽसीत् । विष्णोर्नाभिक्रमसाज्जगदिदमुत्पन्नमिति कथयन्ति ।

अथवा—कोई यह कहते हैं—लोक—भूलोक—पृथिवीमण्डल—चल है । जैसे—नौकादिसे चलनेवाले मनुष्योंको (जो नौकादिमें रहनेसे स्वयं स्थिर होते हुए भी भ्रमण कर रहें) भ्रान्तिक वशासे तीरस्य वृक्षादिक चलते हुए नजर आते हैं । इसी तरह वस्तुतः पृथिवी ही चलती है सूर्य अचल होते हुए भी भ्रान्तिके वशासे चलता हुआ जैसा ज्ञात होता है । सूर्यको जो पूर्वदिशामें उदित हुआ देखते हैं वे कहते हैं कि सूर्यका उदय हुआ, वर होनेसे जो नहीं देख सकते हैं वे कहते हैं कि सूर्य अस्तमित हो गया, मध्यमें स्थित प्राणियोंको मध्याह्नगत मात्स्य वेत्ता है; वास्तवमें तो सूर्य अचल ही है ।

पौराणिकोंका यह कथन है कि यह लोक सादिक उत्पत्तिवाला है, जय इसकी उत्पत्ति नहीं हुई थी अर्थात् सृष्टिकी आदि में यह तमोभूत था, अतर्क्य था (यह क्या था कुछ नहीं कहा जा सकता

अथवा—कहाँ जेम् कहे छे—लोक—भूलोक—पृथ्वीमण्डल चल छे जेम् अक्षरमां आदवापण्य मनुष्यने भ्रान्तिने कारणे तीरस्थित वृक्ष वनेरे दोहतां—आवतां नजर पड़े छे जेम् रीते वस्तुता पृथ्वी याते छे सूर्य अचल होवा छतां पद्य भ्रान्तिना वशापी आबतो होय जेम् देण्य छे सूर्य के बने पूर दिशामां उदित भजेबो जेम् छे छीजे, अने कहीजे छीजे के सूर्यना उदय भये । इर होवापी ने नबी देणी शक्य ते कहे छे के सूर्य आबनी जये । मध्यमां स्थित प्राणीजने मध्याह्न मात्स्य पड़े छे । वास्तवमां ते सूर्य अचल न छे ।

पौराणिकेन जेवु कथन छे के आ लोक सादिक—उत्पत्तिवालो न छे । अथरे जेनी उत्पत्ति कयेव न कती, अर्थात् सृष्टिनी उत्पत्ति पड़ेवा आ तमोभूत

અનાદિકો લોકઃ=સૌગતમતે ચાનાદિપરમ્પરયૈકાન્તતો લોકસ્યાનાદિત્વં ભવતિ
 સપર્યવસિતઃ=સાન્તઃ પ્રલયસમયે વિષ્ણોર્નાભિકમલે લોકો વિલીનો ભવતિ,
 એતદપિ પૌરાણિકમતમ્ ।

અપર્યવસિતઃ=અન્તરહિતો લોકોઽસ્તિ । સતો લોકસ્યાઽઽત્યન્તિકવિનાશ-
 સમ્ભવાત્ ।

યેપાં મતે સાદિકો લોકસ્તેપાં મતે લોકઃ સપર્યવસિતઃ । યેષા ત્વનાદિકસ્તે-
 પામપર્યવસિત ઇતિ બોધ્યમ્ ।

હૈ) ઔર સર્વતઃ પ્રસુત જૈસા થા । વિષ્ણુકી નાભિમેં રહે હુએ કમલસે
 યહ જગત ઉત્પન્ન હુઆ હૈ । અતઃ યહ સાદિક હૈ ।

યહ લોક અનાદિ હૈ-યહ ભી સૌગતોંકા મત હૈ । ઇસ માન્યતામેં
 એકાન્તરૂપસે અનાદિ પરમ્પરાસે ચલા આયા હુઆ હોનેસે લોકમેં અના-
 દિતા આતી હૈ ।

“ સપર્યવસિતો લોકઃ ” યહ લોક સાન્ત હૈ, પ્રલયકે સમયમેં
 યહ લોક વિષ્ણુકી નાભિકે કમલમેં વિલીન હો જાતા હૈ-યહ ભી
 પૌરાણિકોંકા મત હૈ । “ અપર્યવસિતો લોકઃ ” યહ લોક અન્તરહિત હૈ,
 ક્યોં કિ જો સત્ પદાર્થ હોતા હૈ ઉસકા આત્યન્તિક વિનાશ નહીં હોતા
 હૈ । જિસકે સિદ્ધાન્તાનુસાર લોક સાદિક હૈ ઉસકે સિદ્ધાન્તાનુસાર લોક
 સપર્યવસિત ભી હૈ, જિસને ઉસે અનાદિ માના હૈ, ઉસકી માન્યતાનુસાર
 વહ અપર્યવસિત ભી હૈ ।

હતું, શુ હતું તે કહેવાઈ શકતું નથી ચારે બાજુ સૂતકાર જેવું હતું વિષ્ણુની
 નાભિમા રહેલા કમળથી આ જગત ઉત્પન્ન થયેલ છે આ બરાબર છે.

આ લોક અનાદિ છે-આ સૌગતોનું કહેવું છે આ માન્યતા-અનુસાર
 એકાન્ત રૂપથી અનાદિ પરપરાથી આદ્યુ આવેલ હોવાથી, લોકમા અનાદિતા
 આવે છે

“ સપર્યવસિતો લોકઃ ” આ લોક સાન્ત છે પ્રલયના સમયમા આ
 લોક વિષ્ણુના નાભિ-કમળમા વિલીન થઈ જાય છે આવો પણ પૌરાણિકોના
 મત છે “ અપર્યવસિતો લોક ” આ લોક અન્તરહિત છે, કેમ કે જે સત્
 પદાર્થ હોય છે એનો આત્યન્તિક વિનાશ થતો નથી જેના સિદ્ધાન્ત અનુસાર
 લોક સાદિક છે તેના સિદ્ધાન્ત-અનુસાર લોક સપર્યવસિત પણ છે, જેને
 એણે અનાદિ માનેલ છે-એમની માન્યતાનુસાર તે અપર્યવસિત પણ છે.

स्याद्वादतत्त्वानामिच्छास्ते 'अस्ति लोको' इत्यादिनैकान्तवादमाभित्य नाना-
विषयाणां विनियोजनमभिधायतामविषयेऽपि विवक्षन्ते । तदेव वर्धयति—'सुकृत'
मित्यादि । सुकृतमिति वा-पुण्यमिति, सुष्ठुकृतमित्यर्थो वा, एवमेव दुष्कृतमिति वा
व्यापमिति वादिनो भवन्ति । तथा हि—यदनेन परिहृतसवसङ्गेन पञ्चमहाव्रतादानं
विरहितं कस्यचिद् कृतम्, तथा विहितस्त्रीपरिग्रहेण तनयमनुत्पाद्य स्त्री त्यक्तेति दुष्क
रमिति वा कृतमिति ।

किञ्च 'कल्याणमिति वा' शुद्धितत्त्वम कश्चित्कथयति—कल्याणमाचरितं त्वयेति,

ये पूर्वोक्त "अस्ति" आदि लोकविषयक समस्त मान्यताएँ स्या-
द्वादसिद्धान्तके तत्त्वसे अभिमिन्न हुए व्यक्तियोंकी हैं । इन अनेक प्रकारकी
मान्यताओं में एकान्तरूपसे ही अपने २ अभिमतकी पुष्टि की गई है ।
इन प्रवादियों की मान्यता आत्मतत्त्वमें भी निम्न २ रूपसे है—यही बात
'सुकृत' मित्यादि वाक्योंसे सूत्रकार स्पष्ट करते हैं ।

पुण्य अथवा सुष्ठुकृतका नाम सुकृत है । पाप अथवा खोटे कृत-
किये गयेका नाम दुष्कृत है । जैसे—इसने सब परिग्रह आदिका त्यागकर
पंच महाव्रतोंको धारण किया यह तो सुष्ठुकृतम्—बहुत अच्छा किया,
परन्तु जब इसके स्त्री भी तो इसे चाहिये या कि उसके कमसे कम एक
कच्चा ही हो जाता तब जा कर यह मुनि बनता, इसके पहिले इसने स्त्री
त्याग कर दिया और मुनि बन गया यह इसने 'दुष्कृत'—अच्छा नहीं किया ।

तथा—'कल्याणम् इति वा'—जिसने सधम धारण कर लिया है, ऐसे

आ पूर्वोक्त "अस्ति" आदि लोकविषयक समस्त मान्यताओं के लिये
सिद्धांताना तत्त्वभी अनेक जेवी व्यक्तिजोनी है आवी अनेक प्रकारकी मान्य
ताजोनी अनेकान्तरूपकी है योवपीताना भवनी पुष्टि कल्याणमाचरेक है आ
भक्तधामजोनी मान्यता आत्म तत्त्वमां पक्ष लुप्त लुप्त रूपकी है आ पाप-
'सुकृतम्' इत्यादि वाक्योंकी सूत्रकार स्पष्ट करे है पुण्य-अथवा साईं कार्य तेनु
नाम सुकृत है, पाप अने जेहु कार्य तेनु नाम दुष्कृत है अम-तेजे
सर्व परिग्रहने त्याग करी पांच महाव्रत धारण करी तेजे सुकृत कहुं परंतु
जोनी स्त्रीने अनेक जाणक बया पक्षी जेजे मुनिमत भक्ष कहुं होत ते
पक्ष बंद आनी पक्षी ते मुनि जनी जयो ते जेजे दुष्कृत कहुं
जेरते साईं नथी कहुं

तथा कल्याणम् इति वा—जेजे सधम धारण करेक है जेवा मुनिना अने

તથા 'પાપમિતિ વા' કશ્ચિત્કથયતિ-પાપ ત્વયા સમાચરિતં યદ્ ગૃહસ્થ ધર્મપરિપાલ-
નાસમર્થ કાતરોઽનપત્ય એવ ત્વ સંયમ ગૃહીતવાનિત। એવમેવ કશ્ચિત્કથયતિ-સાધુ-
રિતિ વા અસાધુરિતિ વા, તૈયૈવ ત્વ સિદ્ધિરિતિ વા, અસિદ્ધિરિતિ વા, તથા નિરય

મુનિકે પ્રતિ કોઈ એસા કહતા હૈ કિ “ કલ્યાણમ આચરિત ત્વયા ” તુમને
અપની આત્માકા કલ્યાણ-મલા-કર લિયા। તથા 'પાપમિતિ વા' કોઈ કહતા
હૈ કિ આપને યહ અચ્છા નહીં કિયા; કયો કિ ડસસે તો યહ માલૂમ
હોતા હૈ કિ તુમ ગૃહસ્થ ધર્મકે પાલન કરનેમેં કાયર-અસમર્થ થે ઓર
ડસસે કાયર બન કર વિના પુત્રરૂપ ઉત્તરાધિકારીકે હુણ તુમને સયમ
ધારણ કર લિયા હૈ। ઈસી તરહ કોઈ કહતા હૈ-‘ સાધુ ઇતિ વા, અસાધુ
ઇતિ વા-આપને અચ્છા કિયા, આપને અચ્છા નહીં કિયા, તથા-‘ત્વ
સિદ્ધિરિતિ વા’-અસિદ્ધિરિતિ વા, તુમ્હારી સિદ્ધિ હોગી-તુમ્હારી સિદ્ધિ
નહી હોગી, એવ નિરય ઇતિ વા-તુમને ઘરવાલોંકા કુછ ભી ચ્યાલ ન
કર ઓર ઉન્હેં રોતા વિલગતા છોડ કર જો યહ સાધુકા વેપ પહિર લિયા
હૈ-ડસસે તુમ્હારી ગતિ અચ્છી હો જાવેગી, સો યહ વાત નહીં હૈ, દૂસરોં
કો દુઃખકે ઉત્પાદક હોનેસે તુમને નરક ગમનકે યોગ્ય પાપકા હી ઉપા-
ર્જન કિયા હૈ, અતઃ તુમ મનુષ્ય નહીં-નારકી હો। યહ આવેશકે વચન
હૈં। કોઈ ૨ મનુષ્ય સાંસારિક પદાર્થોંકો છોડકર આત્મકલ્પાણ કરને-

કોઈ એમ કહે છે કે “ કલ્યાણમ્ આચરિતં ત્વયા ” તમે તમારા આત્માનુ
કલ્યાણ બહે કરી લીધુ તથા-‘પાપમિતિ વા’-કોઈ એમ કહે છે કે તમે આ ઠીક
નથી કર્યું, કેમ કે આથી તો એમ માલુમ પડે છે કે તમે ગૃહસ્થ ધર્મનું પાલન
કરવામાં અસમર્થ હતા, અને એથી કાયર બની પુત્રરૂપી ઉત્તરાધિકારી વિના
તમે સયમ ધારણ કરેલ છે આમાં કોઈ એમ પણ કહે છે કે ‘સાધુ ઇતિ વા’
‘અસાધુ ઇતિ વા’ આપે સાડ કર્યું આપે સાડ નથી કર્યું તથા-‘ત્વ સિદ્ધિ-
રિતિ વા અસિદ્ધિરિતિ વા’ તમારી સિદ્ધિ થશે તમારી સિદ્ધિ થનાર નથી
તથા-‘નિરય ઇતિ વા’ તમે પોતાના ધરવાણાઓનો કાંઈ પણ ખ્યાલ
કર્યા વગર અને તેને શતા કકળતા છોડીને જે આ સાધુનો વેશ પહેર્યો છે
એથી તમારી ગતિ સારી થશે એ વાત બરોબર નથી, ખીજાઓને હુ ખ થાય
તેવું કરવાથી તમોએ નરક યોગ્ય પાપનું જ ઉપાર્જન કરેલ છે આથી તમે
મનુષ્ય નથી, નારકી છો આ આવેશનું વચન છે કોઈ કોઈ મનુષ્ય, સાંસા
રીક પદાર્થોને છોડીને આત્મકલ્યાણ કરવાવાળાઓની પ્રશસા-સ્તુતિ પણ કરે છે

इति वा-नरकगमनायोषार्जितपापत्वादेव त्व नरकाः=नरकगामी, अथवा निरय इति वा-नरकलोकोऽस्तीति वा, तथैव अनिरय इति वा-नरकलोको नास्तीति, यद्वा-नास्य संप्रिन्नो नरकगमनमिति वा-इति । इत्यादीनि स्वच्छन्दमतिक्रिस्तानि नाना भिधानि वाक्यानि विवदन्ते । अन्यदप्युक्त्या विवदन्त इति दर्शयति-‘यदिद’-मित्यादि । यद्=यस्मात् कारणात्, यद्वा-यत्पूर्वोक्तं=लोकादिक्रममिहितं त्व इयं=लोकादिकं विप्रतिपत्त्या=विरुद्धभाषिमस्ते मिथ्यादृष्टयः, मामर्कं=स्वकीय धर्म भेषस्करं मुक्तिकरं च महापयन्तः=अकर्षण प्रकृतयन्तः स्वयं भयोमार्गाद् वञ्चिताः परा-

वालोकी प्रशंसा-स्तुति भी करते हैं और कहते हैं-“अनिरय इति” आपने अच्छा किया जो इस संसाररूपी नरकसे आप पार हो गये, अथवा यह सिद्धान्तका बखान है कि “अणुब्रह्ममहत्त्वयाई न छद्म है ब्रह्मवर्ग भुक्त” अणुब्रह्म महाब्रह्म देवायुके बंध करनेवालेके सिवाय किसी अन्य आयुके बंधक जीवको नहीं होते हैं-इस अपेक्षा इस संप्रमीक्षा नरकमें गमन नहीं हो सकता । इस प्रकार लोग स्वच्छन्दमतिसे कल्पित अनेक प्रकारके वाक्योंका प्रयोग करते रहते हैं । और भी स्वकल्पित बातें बोलनाते हैं-इसे सूचकार “यदिदं विप्रतिपत्त्या” हम पक्षोंसे प्रदर्शित करते हैं । इस प्रकारसे विरुद्ध भाषण करनेवाले ये मिथ्यादृष्टि जीव “मेरा ही धर्म भेषस्कर और मोक्षप्रदाता है” इस प्रकारकी प्ररूपणा कर स्वयं भयोमार्गसे वंचित बन, अन्य जीवोंको भी ठगा करते हैं, अर्थात् उस मार्गसे दूसरोंको वंचित बनाते रहते हैं । जिस प्रकार कोई

जने कहे छे अनिरय इति वा आपे आई कहु के आ सत्त्वस्वधी नरकधी आप पार भया, अथवा आ सिद्धांतनु बखान छे हे-“अणुब्रह्ममहत्त्वयाई न छद्म है ब्रह्मवर्ग भुक्त” अणुब्रह्म महाब्रह्म देवायुना जय करवावागानी सिद्धय केछे जीव आमुध्याना जय छे लयने भुतु नही आ अपेक्षा जेवा जेवा सवभीनु नरकभा गमन भयं शक्तु नही. आ रीते लोक स्वच्छन्दमतिधी कल्पित अनेक प्रकारका वाक्योने प्रयोग करवा छे छे जीव पक्ष स्वकल्पित बातें कहेला छे छे. तेने सूचकार-“यदिदं विप्रतिपत्त्या” आ पक्षधी प्रदर्शित कर छे आ लोकभा आ प्रकारधी विरुद्ध भाषण करवावाला जे मिथ्यादृष्टि लय “मेरा ही धर्म भेषस्कर जने मोक्ष आपनार छे” आ प्रकारनी प्ररूपणा करी भयोमार्गधी वंचित जनी, जीव लयने पक्ष कहे छे अर्थात् जे मार्गधी जीवकोने पक्ष वंचित जनावे छे. के रीते कहे आध्यात्म आपनाने दाख

નપિ વશ્ચયન્તિ 'અન્ધેનૈવ નીયમાનો યથાઽન્ધઃ' ઇતિ લોકોક્ત્યા સ્વય નષ્ટાઃ
પરાનાશયન્તીતિ તાત્પર્યમ્ । લોકાદિવિષયે તે વહુધા વિમદન્તે, તથા—

“ ઇચ્છન્તિ કૃત્રિમં સૃષ્ટિવાદિનઃ સર્વમેવમિતિ લિઙ્ગમ્ ॥

કૃત્સ્ન લોકે મહેશ્વરાદયઃ સાદિપર્યન્તમ્ ॥ ૧ ॥

નારીશ્વરજ કેચિત્કેચિત્સોમાગ્નિસમ્ભવ લોકમ્ ॥

દ્રવ્યાદિષ્ઢવિકલ્પં જગદેતત્ કેચિદિચ્છન્તિ ॥ ૨ ॥

ઈશ્વરપ્રેરિત કેચિત્ કેચિદ્બ્રહ્મકૃતં જગત્ ॥

અવ્યક્તપ્રભવ સર્વં વિશ્વમિચ્છન્તિ કાપિલા ॥ ૩ ॥

અંધા અંધેકા હાથ પકડ કર માર્ગ ચતાને લે જાતા હૈ તો વહ દૂસરે અંધે
કો ભી માર્ગસે ભ્રષ્ટ વના દેતા હૈ, અથવા યથેષ્ટ સ્થાન પર નહીં પહુચા
સકતા, ડમી પ્રકાર ઇન મિથ્યાદૃષ્ટિયોંકે પદેમેં પડા હુઆ પ્રાણી ભી
યથેષ્ટ સ્થાન પર નહીં જા સકતા । અતઃ એસે જીવ સ્વય નષ્ટ વન કર
દૂસરોંકો ભી નષ્ટ કરતે હૈં । લોકાદિકકે વિષયમેં ભી યેવહુધા વિવાદ
કિયા કરતે હૈં—

ઇચ્છન્તિ કૃત્રિમ સૃષ્ટિવાદિનઃ, સર્વમેવમિતિ લિઙ્ગમ્ ।

કૃત્સ્ન લોકે મહેશ્વરાદયઃ સાદિપર્યન્તમ્ ॥ ૧ ॥

નારીશ્વરજં કેચિત્ કેચિત્ સોમાગ્નિસંભવં લોકમ્ ।

દ્રવ્યાદિ-ષ્ઢવિકલ્પ જગદેતત્ કેચિદિચ્છન્તિ ॥ ૨ ॥

ઈશ્વરપ્રેરિતં કેચિત્ કેચિદ્ બ્રહ્મકૃત જગત્ ।

અવ્યક્તપ્રભવ સર્વં વિશ્વમિચ્છન્તિ કાપિલાઃ ॥ ૩ ॥

પકડીને માર્ગ ખતાવવા લઈ જાય છે તે બીજા આધજાને પણ માર્ગથી વેગળો
કરી દે છે, અને ઉચિત સ્થાને પહોચાડી શકતો નથી એ રીતે આવા મિથ્યા-
દૃષ્ટિના ક્ષદમા પડેલા પ્રાણી પણ ઉચિત સ્થાને પહોચી શકતા નથી. આથી
એવા જીવ સ્વય નાશ પામીને બીજાનો પણ નાશ કરે છે લોકાદિકના વિષયમા
પણ ઘણી વખત વિવાદ કર્યો કરે છે.

ઇચ્છન્તિ કૃત્રિમં સૃષ્ટિવાદિનઃ, સર્વમેવમિતિ લિઙ્ગમ્ ।

કૃત્સ્ન લોકે મહેશ્વરાદયઃ સાદિપર્યન્તમ્ ॥ ૧ ॥

નારીશ્વરજં કેચિત્ કેચિત્ સોમાગ્નિસંભવ લોકમ્ ।

દ્રવ્યાદિ-ષ્ઢવિકલ્પં જગદેતત્ કેચિદિચ્છન્તિ ॥ ૨ ॥

ઈશ્વરપ્રેરિત કેચિત્ કેચિદ્ બ્રહ્મકૃતં જગત્ ।

અવ્યક્તપ્રભવ સર્વં વિશ્વમિચ્છન્તિ કાપિલાઃ ॥ ૩ ॥

યાદચ્છિકમિદં સર્વં કેચિદ્ભૂતવિકારજમ્ ॥

કેચિન્વાનેકરૂપં તુ बहुषा संप्रधाविताः ॥ ૪ ॥

अनेकान्तवादानभिज्ञानामेकान्तवादिनामेतत्कथनम् । तथाहि—

यादृच्छિકमिदं सर्वं કેચિદ્ભૂતવિકારજમ્ ।

કેચિન્વાનેકરૂપં તુ बहुषा संप्रधाविताः ॥ ૪ ॥

માર્થ—સૃષ્ટિવાદી વૈશેષિક, મીમાંસક ઔર નૈયાયિક આદિ સિદ્ધાન્તકાર હસ લોકકો કૃત્રિમ ઔર આદિ-અન્તસહિત માનતે હૈ । કોઈ ૧ અર્ધનારીશ્વરસે ઉત્પન્ન જુઆ હસે સ્વીકાર કરતે હૈ । સોમ, વન્દ્ર ઔર અગ્નિસે યહ લોક જુઆ હૈ—કોઈ ૨ પેસા કહતે હૈ । કિસી ૨ કા સિદ્ધાન્ત હૈ કિ યહ લોક દ્રવ્યાદિ-યજ્ઞ-વિકલ્પ-સ્વરૂપ હૈ । કોઈ ૨ હસે શિશ્વરસે ઉદ્ભૂત, કોઈ ૨ હસે બ્રહ્માસે રચિત માનતે હૈ । સામ્ય હસે પ્રકૃતિ સે જનિત, કોઈ ૨ હસે સ્વતઃ ઉદ્ભૂત, ઔર કોઈ ૨ હસે પૃથ્વીયાદિક પાંચ મૂર્તીકા વિકારસ્વરૂપ સ્વીકાર કરતે હૈ । કોઈ હસે ઇકલ્પ ઔર કોઈ હસે અનેકરૂપ મી માનતે હૈ । હસ પ્રકારસે હસ લોકકે વિષયમેં મિશ્ર ૨ સિદ્ધાન્તકારોંકી મિશ્ર ૨ માન્યતાપેં હન પથોં દ્વારા ચલસાઈ ગઈ હૈ । લોક ઔર આત્મતત્ત્વકે વિષયમેં યે ઉપર્યુક્ત માન્યતાપેં વન્હીં વ્યક્તિયોં કરી હૈ જો અનેકાન્તવાદસે અનમિશ્ર બને જુપ હૈ । કહા મી હૈ—

યાદચ્છિકમિદં સર્વં કેચિદ્ ભૂતવિકારજમ્ ।

કેચિન્વાનેકરૂપં તુ बहुषा संप्रधाविताः ॥ ૪ ॥

માર્થ—સૃષ્ટિવાદી વૈશેષિક મીમાંસક અને નૈયાયિક આદિ સિદ્ધાન્તકાર આ લોકને કૃત્રિમ અને આદિ-અન્ત-સહિત માને છે. કેઈ કેઈ અર્ધનારીશ્વરથી ઉત્પન્ન થયેલ હોવાને સ્વીકાર કરે છે સોમ, વન્દ્ર અને અગ્નિથી આ લોક થયેલ છે તેમ કેઈ કહે છે કેઈ કેઈનો સિદ્ધાન્ત છે કે આ લોક દ્રવ્યાદિ-યજ્ઞ-વિકલ્પ-સ્વરૂપ છે કેઈ કેઈ તેને શિશ્વરથી ઉત્પન્ન થયેલ કેઈ કેઈ તેને બ્રહ્માથી રચિત થયેલ માને છે સામ્ય તેને પ્રકૃતિથી જનિત સ્વીકારે છે કેઈ કેઈ તેને સ્વતઃ ઉદ્ભૂત અને કોઈ કેઈ તેને પૃથ્વી આદિ પાંચ મૂર્તિના વિકાર-સ્વરૂપ સ્વીકાર કરે છે. કેઈ તેને એકરૂપ, કેઈ તેને અનેક રૂપ પદ્ધતિ માને છે, આ પ્રકારથી આ લોકના વિષયમાં સિત્ત સિત્ત સિદ્ધાન્તકારોની સિત્ત સિત્ત માન્યતાઓ આ પદો દ્વારા બતાવેલ છે લોક અને આત્મતત્ત્વના વિષયમાં ઉપર કહેલ એ માન્યતાઓ એ અશ્વિત્યોની છે કે જે અનેકાન્તવાદથી અબલ્ય છે. કહું પદ્ય છે

નપિ વશ્ચયન્તિ 'અન્ધેનૈવ નીયમાનો યથાઽન્ધઃ' ઇતિ લોકોક્ત્યા સ્વયં નષ્ટાઃ
પરાનાશયન્તીતિ તાત્પર્યમ્ । લોકાદિવિષયે તે बहुधा विवदन्ते, तद्यथा—

“इच्छन्ति कृत्रिमं सृष्टिवादिनः सर्वमेवमिति लिङ्गम् ॥
कृत्स्नं लोके महेश्वरादयः सादिपर्यन्तम् ॥ १ ॥
नारीश्वरजं केचित्केचित्सोमाग्निसम्भवं लोकम् ॥
द्रव्यादिषड्विकल्पं जगदेतत् केचिदिच्छन्ति ॥ २ ॥
ईश्वरप्रेरितं केचित् केचिद्ब्रह्मकृतं जगत् ॥
अव्यक्तप्रभवं सर्वं विश्वमिच्छन्ति कापिलाः ॥ ३ ॥

અંધા અંધેકા હાથ પકડી કર માર્ગ વતાને લે જાતા હૈ તો વહ દૂસરે અંધે
કો બી માર્ગસે ભ્રષ્ટ બના દેતા હૈ, અથવા યથેષ્ટ સ્થાન પર નહીં પહુચા
સકતા, ડસી પ્રકાર ઇન મિથ્યાદૃષ્ટિયોકે ફંદેમેં પડા હુઆ પ્રાણી બી
યથેષ્ટ સ્થાન પર નહીં જા સકતા । અતઃ એસે જીવ સ્વયં નષ્ટ બન કર
દૂસરોંકો બી નષ્ટ કરતે હૈં । લોકાદિકકે વિષયમેં બી યે बहुधा विवाद
કિયા કરતે હૈં—

इच्छन्ति कृत्रिमं सृष्टिवादिनः, सर्वमेवमिति लिङ्गम् ।
कृत्स्नं लोके महेश्वरादयः सादिपर्यन्तम् ॥ १ ॥
नारीश्वरजं केचित् केचित् सोमाग्निसम्भवं लोकम् ।
द्रव्यादि-षड्विकल्पं जगदेतत् केचिदिच्छन्ति ॥ २ ॥
ईश्वरप्रेरितं केचित् केचिद् ब्रह्मकृतं जगत् ।
अव्यक्तप्रभव सर्वं विश्वमिच्छन्ति कापिलाः ॥ ३ ॥

પકડીને માર્ગ બતાવવા લઈ બંધ છે તે બીજા આધળાને પણ માર્ગથી વેગળે
કરી દે છે, અને ઉચિત સ્થાને પહોચાડી શકતો નથી એ રીતે આવા મિથ્યા-
દૃષ્ટિના કદમા પડેલા પ્રાણી પણ ઉચિત સ્થાને પહોચી શકતા નથી આથી
એવા જીવ સ્વયં નાશ પામીને બીજાને પણ નાશ કરે છે લોકાદિકના વિષયમાં
પણ ઘણી વખત વિવાદ કર્યો કરે છે.

इच्छन्ति कृत्रिमं सृष्टिवादिनः, सर्वमेवमिति लिङ्गम् ।
कृत्स्नं लोके महेश्वरादयः सादिपर्यन्तम् ॥ १ ॥
नारीश्वरजं केचित् केचित् सोमाग्निसम्भवं लोकम् ।
द्रव्यादि-षड्विकल्पं जगदेतत् केचिदिच्छन्ति ॥ २ ॥
ईश्वरप्रेरितं केचित् केचिद् ब्रह्मकृतं जगत् ।
अव्यक्तप्रभव सर्वं विश्वमिच्छन्ति कापिलाः ॥ ३ ॥

વિપ્રતિપત્તૌ પર્વં યુર્વં જાનીત્—મુધ્યધ્વમ્, યસ્તપામ્ ‘અસ્તિ લોકઃ’ ‘નાસ્તિ લોકઃ’
 ઇત્યાપેકાન્તવાદ સઃ અકસ્માત્—અકસ્માત્’ ઇતિ સંસ્કૃતસ્યૈવ મગધદશે પ્રસિદ્ધતાન્મૂલે
 ગણપરેસ્તદેવ યુદ્ધીતમ્, ‘કસ્માત્’ ઇતિ હેતૌ; ન કસ્માત્ અકસ્માત્ નિર્હેતુકોઽસ્તીત્યર્થઃ।
 તથા હિ—યથેકાન્તઃ, ‘અસ્તિ લોકઃ’ ઇત્યપ્રાસ્તિત્વસમાનાધિકરણત્વં લોકસ્ય સ્યાત્
 સ્તથ ‘યદસ્તિ તલ્લોકઃ’ ઇતિ વ્યાપ્તે ‘અલોકોઽસ્તિ’ ઇત્યપ્રાસ્તિત્વરૂપહેતૌ:

અપેક્ષા નાસ્તિ ઔર નાસ્તિકી અપેક્ષા અસ્તિ। કોઈ વાદી લોકમાં અસ્તિત્વ
 ધર્મ સ્વીકાર કરતા હૈ દુસરા ડસમેં નાસ્તિત્વ। યે ધોનો કપન પરસ્પર
 ચિકિત્સા ઇસલિયે હૈં કિ યે નયકી વિષયક્ષાસે રહિત હૈં। ઇસીકા નામ
 પેકાન્તવાદ હૈં। ઇસીલિયે ઇનમેં અપની ૨ માન્યતાનુસાર વાદિયોંકો
 વિવાદકા પ્રસંગ આતા હૈં। સૂત્રકાર કહતે હૈં કિ ઇસ વિપ્રતિપત્તિમેં આપ
 લોગ યહી સમજો કિ ઉનકા “અસ્તિ લોકઃ, નાસ્તિ લોકઃ” યહ ઓ
 પેકાન્તવાદ હૈં વહ અકસ્માત્—નિર્હેતુક હૈં। “અકસ્માત્” યહ નિર્હેતુકતા-
 લોચક પદ સંસ્કૃત ભાષાકી તરહ મગધદશાકી ભાષામેં સી પ્રસિદ્ધ હૈં, ઇસ
 લિય ગણપરોને સી મૂલ સૂત્રમેં ડસી પદકા ગ્રહણ કિયા હૈં। “કસ્માત્” યહ
 હેત્વર્થમેં આતા હૈં, ઓ “કસ્માત્” નહીં વહ “અકસ્માત્” હૈં। ઇસકા
 અર્થ નિર્હેતુક” હોતા હૈં, અર્થાત્ ઉનકા યહ વાદ નિર્હેતુક હૈં। જૈસે કિ—
 “અસ્તિ લોકઃ” ઇસ કપનમેં અસ્તિત્વક સાથ સમાનાધિકરણતા પેકા-
 ન્તરૂપસે લોકમેં માની જાએ તો “યદસ્તિ તલ્લોકઃ” ઓ હૈં વહ લોક હૈં—

અપેક્ષા નાસ્તિ અને નાસ્તિકી અપેક્ષા અસ્તિ. કોઈ વાદી લોકમાં અસ્તિત્વ ધર્મનો
 સ્વીકાર કરે છે તો બીજા નાસ્તિત્વનો. આ બે તે વાતો પરસ્પર વિરૂદ્ધ આ માટે છે
 કે જો નક્કી વિવેક્ષાથી સક્રિય છે ત્યારે નામ એકાન્તવાદ છે. આ માટે એમાં
 પોતપોતાની માન્યતા અનુસાર વાદવાળાઓને વિવાદનો પ્રયત્ન આવે છે. સૂત્રકાર
 કહે છે કે આ સામસામા વાદ બાંધે આપ જો સમજો કે જોમનુ ‘અસ્તિ લોકઃ’
 અસ્તિ લોકઃ’ આ જો એકાન્તવાદ છે જો અકસ્માત્—હેતુ વગરનો છે. અકસ્માત્ જો
 હેતુ વગરના લોચક પદ સંસ્કૃત ભાષાની જેમ મગધદેશમાં પણ પ્રસિદ્ધ છે. આ
 માટે લગુપરોએ પણ મૂળ સૂત્રમાં જો પઢને શ્રદ્ધા કરેલ છે “કસ્માત્” આ
 હેત્વર્થમાં આવે છે કે “કસ્માત્” નહીં તે “અકસ્માત્” છે એનો અર્થ
 હેતુ વગરનો થાય છે. અર્થાત્ જોમનો જો વાદ નિર્હેતુક છે “અસ્તિ લોકઃ”
 આ વાદમાં અસ્તિત્વની સાથે સમાનાધિકરણતા એકાન્તવાદથી લોકમાં માન
 વામાં આવે તો “યદસ્તિ તલ્લોકઃ” એ છે તે લોક છે આ પ્રકારની આવે

“લોકક્રિયાઽઽત્મતત્ત્વે, વિવદન્તે વાદિનો વિભિન્નાર્થમ્ ।”

અવિદિતપૂર્વ યેષાં સ્યાદ્વાદવિનિશ્ચિતં તત્ત્વમ્ ॥ ૧ ॥ ઇતિ ।

યેષાં તુ સ્યાદ્વાદસિદ્ધાન્તો હૃદયે પ્રરૂઢસ્તેપામસ્તિત્વનાસ્તિત્વાદ્યર્થસ્ય તત્ત્વ-
ન્યામિપ્રાયેણ કથશ્ચિત્સદ્ગતિસદ્ધાવાત્પ્રવાદસ્થાનમેવ નાસ્તીતિ ।

પરતૈર્થિકધર્માણામપારમાર્થિકત્વં પ્રતિપાદયન્ સ્વધર્મસ્ય પારમાર્થિકત્વં દર્શ-
યતિ—‘ઇત્યવિ’—ઇત્યાદિ, અત્રાપિ ‘અસ્તિ લોકો નાસ્તિ લોક’ ઇત્યાદિ—

લોકક્રિયાત્મતત્ત્વે વિવદન્તે વાદિનો વિભિન્નાર્થમ્ ।

અવિદિતપૂર્વ યેષાં સ્યાદ્વાદવિનિશ્ચિત તત્ત્વમ્ ॥

જિનકે હૃદયમેં સ્યાદ્વાદ સિદ્ધાન્તકા વાસ હૈ, ડન્હેં અસ્તિત્વ—નાસ્તિત્વ
ઇત્યાદિ અર્થમેં ઉસ ૨ નયકે અભિપ્રાયસે સંગતિકા સદ્ભાવ હોનેસે, વાદ-
વિવાદકે લિયે સ્થાન હી નહીં હૈ ।

ભાવાર્થ—યે પૂર્વોક્ત મન્તવ્ય એકાન્તરૂપમેં માને જાને પર હી એક
દૂસરેકે લિયે વિવાદકા કારણ બનતે હૈ, પરન્તુ જવ યે કિસી અપેક્ષાસે
(નયકે અભિપ્રાયસે) વિચાર કરનેમેં આતે હૈ તો ઇનમેં વિવાદકે લિયે
સ્થાન હી નહીં રહતા હૈ । ઇસી વાતકો સૂત્રકાર “અત્રાપિ” ઇત્યાદિ
પદોસે પ્રદર્શિત કરતે હૈ, વે કહતે હૈ—પરતૈર્થિક ધર્મોમેં અપરમાર્થિકતા
ઔર સ્વધર્મમેં પરમાર્થિકતા ઇસ પ્રકારસે હૈ—

અસ્તિ લોકઃ, નાસ્તિ લોક, યે દો પરસ્પર વિરુદ્ધ હૈ—અસ્તિકી

લોકક્રિયાત્મતત્ત્વે વિવદન્તે વાદિનો વિભિન્નાર્થમ્ ।

અવિદિતપૂર્વ યેષાં સ્યાદ્વાદવિનિશ્ચિતં તત્ત્વમ્ ॥

જેના હૃદયમા સ્યાદ્વાદ સિદ્ધાન્તનો વાસ છે તેને અસ્તિત્વ નાસ્તિત્વ ઇત્યાદિ
અર્થમા તે તે નયના અભિપ્રાયથી સંગતિનો સદ્ભાવ હોવાથી વાદવિવાદ
માટે સ્થાન નથી

ભાવાર્થ:—આ પૂર્વોક્ત મન્તવ્ય એકાન્તરૂપમા માનવામા આવેલ હોવાથી
એક બીજા માટે વિવાદનુ કારણ બને છે, પરન્તુ બન્યારે એ કેઇ અપેક્ષાથી
(નયના અભિપ્રાયથી) વિચાર કરવામા આવે છે તો તેમા વિવાદને માટે
સ્થાન જ નથી આ વાતને સૂત્રકાર “અત્રાપિ” ઇત્યાદિ પદોથી પ્રદર્શિત કરે
છે તેઓ કહે છે—પરતૈર્થિક ધર્મમા અપરમાર્થિકતા અને સ્વધર્મમા પરમાર્થિકતા
આ પ્રકારે છે—

‘અસ્તિ લોક, નાસ્તિ લોક’ આ બન્ને પરસ્પર વિરુદ્ધ છે. અસ્તિની

ત્યાગમવચનાદ્ અસ્તિત્વં લોકોક્ત્યભ્યાસયમ્ । લોકત્વમલોકત્વં ચ અસ્તિત્વભ્યા-
યમ્ । इति अस्तित्वहेतुसद्भावेन समानत्वाद् अस्तित्वहेतुसद्भावेन लोकोऽप्यलोक इत्या-
दिषु, अलोकस्य अस्तित्वभ्याप्यतया व्यापकीभूतास्तित्वसत्तया व्याप्यभूतालोक
सत्तया निर्वापा ।

અપરજ્ઞ—एषम् अलोकाभावरूपस्य लोकस्य अस्तित्वभ्याप्यत्वे अलोकस्यापि
लोकप्रसङ्गः, लोकस्वरूपव्याप्यसद्भावे व्यापकस्यापि अलोकस्यास्तित्वस्य नि-
वृत्तयोर्मे व्यापक है, लोक और अलोक ये दोनों उस अस्तित्वके व्याप्य
हैं । इसलिये अस्तित्व हेतु दोनोंमें समानरूपसे रहता है । इस हेतुसे
अतिप्रसंग नामका भी रूपण आता है । क्योंकि अस्तित्व हेतुके सद्भाबसे
लोक भी अलोकरूपसे और अलोक लोकरूपसे आपादित किया जा सकता
है । कारण कि लोक जिस प्रकार अस्तित्वका व्याप्य है और वह अपनी
व्यापकीभूत सत्तासे समन्वित है उसी प्रकार अलोक भी अस्तित्वका
व्याप्य है और वह भी उसी सत्तासे समन्वित है, अतः सत्ताके एकत्व
होनेसे लोकमें भी अलोकपणा आपादित किया जा सकता है ।
इसी प्रकार अलोकमें भी लोकपणा आपादित हो सकता है, और
वह भी इस प्रकारसे कि अलोकके अभावरूप लोक अस्तित्वका व्याप्य-
पनामें रहता है; इसलिये अलोकमें लोकत्वका प्रसंग हो सकता है; क्यों
कि लोकत्वका व्याप्यके सद्भाबमें व्यापक—जो अलोकका अस्तित्व है,
उसका भी नियमसे वहां सद्भाब पाया जाता है । तब तो लोक अलोक
और अलोक लोक हो जायगा—इस प्रकार अनिष्टापत्ति होनेसे कुछ

કારણે અસ્તિત્વ હેતુ બન્નેમાં સમાન રૂપથી સ્થેત છે આ હેતુથી અતિપ્રસંગ
નમનું રૂપણ આવે છે કેમકે અસ્તિત્વ હેતુના સદ્ભાવથી લોક પણ અલોક
રૂપથી બને અલોક લોકરૂપથી આપાદિત કરી શકાય છે. કારણ કે લોક એ પ્રકારે
અસ્તિત્વનો વ્યાપ્ય છે અને તે પોતાની વ્યાપકભૂત સત્તાથી સમન્વિત છે. એજ
રીતે અલોક પણ અસ્તિત્વનો વ્યાપ્ય છે અને એ પણ એવી સત્તાથી સમન્વિત
છે આથી સત્તાનું એકત્વ થવાથી લોકમાં પણ અલોકપના આપાદિત કરી શકાય છે
આ રીતે અલોકમાં પણ લોકપના આપાદિત થઈ શકે છે અને એ પણ
આ પ્રકારથી કે અલોકના અભાવરૂપ લોક અસ્તિત્વના વ્યાપ્યપનામાં રહે છે.
આ કારણે અલોકમાં લોકત્વનો પ્રસંગ થઈ શકે છે કેમકે લોકત્વરૂપ વ્યાપ્યના
સદ્ભાવમાં વ્યાપક એ અલોકનું અસ્તિત્વ છે એનો પણ નિયમથી ત્યાં સદ્ભાવ
રહેલ્ય છે. ત્યારેતો લોક અલોક અને અલોક લોક થઈ જશે. આ પ્રકારની

સત્ત્વાત્, સાધ્યસ્ય લોકસ્ય ચાસત્ત્વાદનૈકાન્તિકો હેતુઃ । લોકાભાવરૂપસાધ્યાભાવ-
સાધકતયા વિરુદ્ધોઽપિ ચ ભવતિ । તથા ચ-અસ્તિત્વહેતુના લોકસ્ય સાધને લોક
एवालोकः स्यात्, આકાશાસ્તિકાયસ્ય લોકાલોકભેદમાશ્રિત્ય ‘અતિથિ અલોક’

इस प्रकारकी व्याप्ति होनेसे हेतु अनैकान्तिक हो जाता है; क्योंकि कि
साध्य लोकसे विरुद्ध अलोकके साथ भी इस अस्तित्वरूप हेतुकी व्याप्ति
व्यावृत्तिवाली नहीं होती है। अनैकान्तिक हेतु वही होता है जो पक्ष
सपक्षमें रहता हुआ भी विपक्षमें रहता है। प्रकृतमें “यदस्ति तल्लोकः”
यहां पर अस्तित्वरूप हेतु पक्ष लोकके साथ रहता हुआ भी विपक्ष अ-
लोकमें भी रहता है, क्योंकि वहां-अलोकमें साध्य-लोकका अभाव है,
दूसरे इसीलिये यह हेतु विरुद्ध भी पड़ता है, लोकका अभावरूप जो
साध्यका अभाव अलोक है उसका साधक यह हेतु होता है-अलोकाकाश
में भी अस्तित्वरूप हेतु रहता है। इस बातको प्रकट करनेके लिये टीका-
कार कहते हैं कि लोक और अलोक ये दो विभाग एक आकाश अस्ति-
काय द्रव्यके ही हैं तो जिस प्रकार लोकमें “अस्ति लोकः” ऐसा व्यव-
हार होता है, उसी प्रकार “अस्ति अलोकः” अलोकमें भी यह अस्ति-
त्वविशिष्ट व्यवहार होता है। “अतिथि लोए-अतिथि अलोए” ये दोनों वचन
आकाशविषयक हैं, अतः अस्तित्व यह हेतु लोक और अलोक इन

થવાથી હેતુ અનૈકાન્તિક થઈ જાય છે કેમ કે સાધ્ય લોકથી વિરુદ્ધ અલોકની
સાથે પણ એ અસ્તિત્વરૂપ હેતુની વ્યાપ્તિ વ્યાવૃત્તિવાળી થતી નથી અનૈકાન્તિક
હેતુ એ જ હોય છે જે પક્ષ સપક્ષમાં રહેવા છતાં વિપક્ષમાં પણ રહે છે પ્રકૃ-
તમાં “યદસ્તિ તલ્લોક.” અહીં પર અસ્તિત્વરૂપ હેતુ પક્ષ લોકની સાથે રહેવા
છતાં પણ વિપક્ષ અલોકમાં પણ રહે છે કેમ કે ત્યાં અલોકમાં સાધ્ય લોકનો
અભાવ છે, બીજી આ જ કારણે એ હેતુ વિરુદ્ધ પણ પડે છે લોકનો અભાવરૂપ
સાધ્યનો અભાવ અલોક છે, એનો સાધક એ હેતુ થાય છે-અલોકાકાશમાં પણ
અસ્તિત્વરૂપ હેતુ રહે છે આ વાતને પ્રગટ કરવા માટે ટીકાકાર કહે છે કે
લોક અને અલોક આ બે વિભાગ એક આકાશ અસ્તિકાય દ્રવ્યના જ છે તો
જે પ્રકારે લોકમાં “અસ્તિ લોક” એવો વ્યવહાર થાય છે એ જ રીતે “અસ્તિ
અલોક” અલોકમાં પણ આ અસ્તિત્વવિશિષ્ટ વ્યવહાર થાય છે એ આકાશનું
“અતિથિ લોએ-અતિથિ અલોએ” વચન છે આથી અસ્તિત્વ આ હેતુ લોક અને અલોક
બંનેમાં વ્યાપક છે લોક અને અલોક બંને એ અસ્તિત્વના વ્યાપ્ય છે આ

इत्यागमवचनाद् अस्तित्वं लोकोक्तव्यापकम् । लोक्तत्वमलोकत्वं च अस्तित्वव्याप्यम् इति अस्तित्वहेतोरुभयत्र समानत्वाद् अस्तित्वहेतुसद्भावेन लोकोऽप्यलोक इत्याप्येत, अलोकस्य अस्तित्वव्याप्यत्वात् व्यापकीभूतास्तित्वसत्तया व्याप्यभूतालोक तत्तया निर्वाणः ।

अपरञ्च—एषम् अलोकामावरूपस्य लोकस्य अस्तित्वव्याप्यत्वे अलोकस्यापि लोक्तत्वसङ्गः, लोक्तत्वरूपव्याप्यसद्भावे व्यापकस्यापि अलोकस्यास्तित्वस्य निवृत्त्यर्थं व्यापक है, लोक और अलोक ये दोनों उस अस्तित्वके व्याप्य हैं । इसलिये अस्तित्व हेतु दोनोंमें समानरूपसे रहता है । इस हेतुसे अतिप्रसंग नामका भी दूषण आता है । क्योंकि अस्तित्व हेतुके सद्भावेसे लोक भी अलोकरूपसे और अलोक लोकरूपसे आपादित किया जा सकता है । कारण कि लोक जिस प्रकार अस्तित्वका व्याप्य है और वह अपनी व्यापकीभूत सत्तासे समन्वित है उसी प्रकार अलोक भी अस्तित्वका व्याप्य है और वह भी उसी सत्तासे समन्वित है, अतः सत्ताके एकत्व होनेसे लोकमें भी अलोकपना आपादित किया जा सकता है । इसी प्रकार अलोकमें भी लोकपना आपादित हो सकता है, और वह भी इस प्रकारसे कि अलोकके अभावरूप लोक अस्तित्वका व्याप्यपनामें रहता है; इसलिये अलोकमें लोकत्वका प्रसंग हो सकता है; क्योंकि लोकत्वरूप व्याप्यके सद्भावमें व्यापक—जो अलोकका अस्तित्व है, उसका भी नियमसे वहाँ सद्भाव पाया जाता है । तब तो लोक अलोक और अलोक लोक हो जायगा—इस प्रकार अनिष्टापत्ति होनेसे कुछ

कारण अस्तित्व हेतु अनेकों समान रूपसे रहता है आ हेतुभी अतिप्रसंग नामक दूषण आवे कि किसे अस्तित्व हेतुना सहजावधी लोक पक्ष अलोक रूपसे अने अलोक लोकरूपसे आपादित करी शक्य कि कारण के लोक के प्रसंग अस्तित्वनो व्याप्य है अने ते पीतानी व्यापकभूत सत्ताकी समन्वित है अने हीते अलोक पक्ष अस्तित्वनो व्याप्य है अने जो पक्ष जेवी सत्ताकी समन्वित है आधी सत्तानु जोक्त्य बनावी लोकमां पक्ष अलोकपना आपादित करी शक्य है

आ हीते अलोकमां पक्ष लोकपना आपादित मर्ग शक्य है अने जो पक्ष आ प्रकाशकी है अलोकना अभावरूप लोक अस्तित्वना व्याप्यपनामां रहते है आ कारणे अलोकमां लोकत्वना प्रसंग मर्ग शक्य है किसे लोकत्वरूप व्याप्यना सहजावधी व्यापक के अलोकनु अस्तित्व है अने पक्ष नियमकी त्या सहजाव देनाम है । त्याहेतो लोक अलोक अने अलोक लोक मर्ग नरो. आ प्रकाशनी

યમતઃ સદ્ભાવાત્, તથા ચ-લોકઃ અલોકો ભવતિ, અલોકોઽપિ લોકઃ, इत्यादि सर्वमनिष्टम् ।

કિન્ચ-લોકાલોકાપેક્ષયાઽસ્તિત્વસ્ય વ્યાપકત્વે જિનદત્તજિનદાસાદેરપ્યલોક-ત્વાપત્તિઃ, વ્યાપ્યાયા જિનદત્તવ્યક્તેર્નિયમતો વ્યાપકીભૂતલોકાસ્તિત્વસદ્ભાવાત્, જિનદત્તાદૌ અલોકવ્યાપકાસ્તિત્વસ્ય સદ્ભાવે અલોકત્વસત્તાયા અવશ્યમ્ભાવાત્ ।

કિન્ચ-યદ્યસ્તિત્વરૂપેણ હેતુના લોકત્વં સાધ્યતે તર્हि 'અસ્તિત્વરૂપો હેતુરસ્તિ' इति कृत्वा हेतुरपि-अस्तित्ववानेव भवति, तथा च हेतोरपि लोकत्वे सिद्धे हेतु-

भी व्यवस्था नहीं बन सकती है ।

તથા—લોક ઔર અલોકકી અપેક્ષાસે અસ્તિત્વમેં વ્યાપકતા માનને પર જિનદત્ત ઔર જિનદાસ આદિ વ્યક્તિયોંમેં મી લોકત્વ ઔર અલોકત્વ કી આપત્તિ આયગી; ક્યોં કિ ઉભયકી સત્તાકા વહાં સદ્ભાવ હૈ । વ્યાપ્ય જિનદત્ત આદિ વ્યક્તિ લોકરૂપ ઇસલિયે માને જાને ચાહિયે કિ ઉનમેં લોકકા વ્યાપક જો અસ્તિત્વ હૈ ઉસકા સદ્ભાવ હૈ, તથા અલોકકા વ્યાપક જો અસ્તિત્વ હૈ ઉસકા મી વહાં સદ્ભાવ હૈ ।

તથા—યદિ અસ્તિત્વરૂપસે લોકકી સિદ્ધિ હોતી હૈ તો કોઈ યહાં યહ મી પ્રશ્ન કર સકતા હૈ કિ અસ્તિત્વરૂપ હેતુ જવ સ્વયં અસ્તિરૂપ હૈ તો ઉસે મી અસ્તિત્વવિશિષ્ટ હોનેસે લોકત્વાપત્તિ આવેગી, અર્થાત્ વહ સ્વય લોકરૂપ હો જાયગા ।

તથા—હેતુ ઔર સાધ્યમેં લોકરૂપપનેસે એકત્વાપત્તિ આ જાનેસે સાધ્યસાધકભાવ હી નહીં બન સકતા હૈ, એસી સ્થિતિમેં કિસકો હેતુ માન

અનિષ્ટાપત્તિ થવાથી કાઈ પણ વ્યવસ્થા નથી થઈ શકતી

તથા—લોક અને અલોકની અપેક્ષાથી અસ્તિત્વમા વ્યાપકતા માનવાથી જીનદત્ત અને જીનદાસ વગેરે વ્યક્તિઓમા પણ લોકત્વ અને અલોકત્વની આપત્તિ આવી જશે કેમ કે બન્નેની સત્તાનો ત્યા સદ્ભાવ છે વ્યાપ્ય જીનદત્ત આદિ વ્યક્તિને લોકરૂપ એ કારણે માનવી બેઈ એ કે એનામા લોકનુ જે વ્યાપક અસ્તિત્વ છે એનો સદ્ભાવ છે, તથા અલોકનુ વ્યાપક જે અસ્તિત્વ છે એનો પણ સદ્ભાવ છે

તથા—જો અસ્તિત્વરૂપથી લોકની સિદ્ધિ થાય છે તો કાઈ એવો પણ પ્રશ્ન કરી શકે છે કે અસ્તિત્વરૂપ હેતુ જ્યારે સ્વય અસ્તિરૂપ છે તો એને પણ અસ્તિત્વવિશિષ્ટ હોવાથી લોકત્વાપત્તિ આવશે અર્થાત્ એ સ્વય લોકરૂપ બની જશે તેમજ હેતુ અને સાધ્યમા લોકરૂપપણાથી એકત્વાપત્તિ આવી જવાથી

સાધ્યલોકોક્ત્યસ્વરૂપતયેકસ્વાપત્તિઃ, સતથ કં હેતુમાધિસ્ય લોકઃ સાધવિવ્યતે પ્રસ્યુત
લોકાદન્યોઽપ્યલોકઃ અસ્તિત્વહેત્વસમ્યવાદ્ ‘અસ્તિ લોકઃ’ ઇતિ પ્રતિજ્ઞાઽપિ નૈષ
સિદ્ધિર્મતિઃ । તસ્માદેકાન્તત્વ એવ લોકાસ્તિત્વે સ્વીક્રિયમાણે ઉક્તરીત્યા હેતુમાવો-
સ્તીતિ ‘અકસ્માત્’ ઇતિ પદન મગપતા પ્રદર્શિતમ્ ।

અગ્રામે વિવેક—સિદ્ધો વિ હેતુર્મથતિ, તથા યદસ્તિત્વહેતોલ્લોકસ્યસાધ્યાન્ત

કર લોકની સિદ્ધિ કી જા સકેગી ! લોકની સિદ્ધિને અમામમે ‘અસ્તિ
લોકઃ’ યહ સાધ્ય ઓર પક્ષની વચનસ્વરૂપ જો પ્રતિજ્ઞા હૈ ડસકી ખા
સિદ્ધિ નહીં હો સકતી ! સાધ્યની સિદ્ધિ હેતુસે હોતી હૈ, ક્યોં કિ હેતુ
ઓર સાધ્યકા પરસ્પરમે અધિનામાવ સમ્બન્ધ હોતા હૈ । યહાં પર લોકને
અસ્તિત્વવિધાયક હેતુકા હી જય અમાવ હૈ તથા ફિર સાધ્યની સિદ્ધિ
હેતુકે અમામમે હો ની કેસે સકતી હૈ ? નહીં હો સકને સે પ્રતિજ્ઞા કી
જાનિ જાતી હૈ । હસલિયે મૂલ સૂત્રમે જો “અકસ્માત્” હસ પદસે યહ
સૂત્રકારને કહા હૈ કિ “અસ્તિ લોકઃ નાસ્તિ લોકઃ” હસ્યાદિ વિપ્રતિપત્તિયાં
નિર્હેતુક હૈ, યહ યાત યહાં તક સ્પષ્ટ રીતિસે સમજાઈ ગઈ હૈ; ક્યોં કિ
પક્ષાન્તરીતિસે હી લોકકા અસ્તિત્વ સ્વીકાર કરનેમે ઉપર્યુક્ત રીતિસે
હેતુકા અમાવ આયા હૈ ।

જો હેતુ સિદ્ધ હોતા હૈ ત્થી અપને સાધ્યકા સાધક હોતા હૈ, અસિદ્ધ
નહીં । અસિદ્ધ સાધ્ય હોતા હૈ । પ્રકૃતમે અસ્તિત્વરૂપ હેતુ જય અપને સાધ્યકે

સાધ્ય-સાધકભાવ જ નથી જની શકતા. એવી સ્થિતિમાં કેને હેતુ માની લોકની
સિદ્ધિ કહી શકાય ! લોકની સિદ્ધિના અભાવમા “અસ્તિ લોકઃ” આ સાધ્ય અને
પક્ષના વચનરૂપ જે પ્રતિજ્ઞા છે એની પણ સિદ્ધિ થઈ શકતી. સાધ્યની સિદ્ધિ
હેતુથી થાય છે, કેમ કે હેતુ અને સાધ્યનો પરસ્પર અધિનામાવ સંબંધ થાય
છે અને લોકેત્વ અસ્તિત્વ-વિધાયક હેતુનો જ ભાગે અભાવ છે—ત્યારે પક્ષી
સાધ્યની સિદ્ધિ હેતુના અભાવમાં થઈ પણ કેમ શકે ? ન થઈ શકવાથી પ્રતિજ્ઞાને
જાનિ પહેંચે છે આ કારણે મૂળ સૂત્રમાં “અકસ્માત્” એ પદથી સૂત્રકારે આ કહ્યું
છે કે “અસ્તિ લોકઃ નાસ્તિ લોકઃ” હસ્યાદિ વિપ્રતિપત્તિઓ નિર્હેતુક છે એ વાત અહીં
મુખી સ્પષ્ટ રીતે સમજાવવામાં આવી છે કે એકાન્ત રીતિથી જ લોકના અસ્તિત્વનો
સ્વીકાર કરવામાં ઉપર્યુક્ત રીતિથી હેતુનો અભાવ આવે છે.

જે હેતુ સિદ્ધ થાય છે તે જ સાધ્યમાં સાધક અને છે, અસિદ્ધ નહીં અસિદ્ધ
સાધ્ય થાય છે. પ્રકૃતમાં અસ્તિત્વરૂપ હેતુ ભાગે પોતાના સાધ્યના અન્તર્ગત થઈ

ર્ગતત્વેન તસ્યાપિ સાધ્યત્વમાપતિતં, સાધ્યરૂપહેતોરસિદ્ધત્વેનાસાધકતયાનુમાનસ્યે-
વોચ્છેદઃ સ્યાત્ત્વન્મતે-ઇત્યાદિવહુવક્તવ્યત્વાદ્ વિસ્તરમિયા વિરમ્યતે । एवं 'ध्रुवो
લોકઃ' 'અધ્રુવો લોકઃ' ઇત્યાદિષ્વપિ એકાન્તવાદ નિરસ્ય સ્યાદ્વાદપક્ષઃ સર્વત્ર
યોજનીયઃ । यथा-‘ नास्ति लोकः ’ इति वादिनं पृच्छामि-‘ त्वमसि न वा ?,
यदि त्वमसि तदा लोकान्तर्भूतस्तद्वद्विर्भूतो वा ? यदि लोकान्तर्भूतस्त्व तर्हि
' नास्ति लोक ' इति ब्रुवन् कथं न लज्जसे?, अथ तदन्तर्भूतो नासि तर्हि बन्ध्या-

અન્તર્ભૂત હો જાગ્યા તવ વહ સાધ્યસમ-અસિદ્ધ, હોનેસે સ્વયં સાધ્ય-
કોટિમેં આજાયગા । यहां साध्य लोक है, हेतु भी लोकस्वरूप हो जानेसे वह
સાધ્ય જૈસા હો ગયા; અતઃ સાધ્ય ભાવકા અભાવ હોનેસે સાધનસે સાધ્ય
કા જ્ઞાન ન હો સકનેસે યહાં અનુમાન હી નહીં બન સકતા હૈ । इस
વિષયમેં ટીકાકાર કહતે હૈં કિ બહુત કુછ કહના થા, પરન્તુ વિસ્તાર
કે ભયસે ઇતના હી કહના કાફી હૈ । इसी प्रकार “ ध्रुवो लोकः ” इत्यादि
વાક્યોમેં મી એકાન્તવાદકા નિરસન ઓર સ્યાદ્વાદ પક્ષકા સમર્થન કર
લેના ચાહિયે । जो लोग एकान्तरूपसे “ नास्ति लोकः ” इस बातको कहते
हैं, हम उन वादियोंसे इतना पूछते हैं कि “ तुम स्वयं अस्तिरूप हो कि
नास्तिरूप ”? यदि अस्तिरूप हो तो लोकके अन्तर्गत हो या उससे बाहिर?
यदि लोकके अन्तर्गत तुम अपनेको मानते हो तो “ नास्ति लोकः ” इस
પ્રકાર કહતે હુએ આપકો સંકોચ ક્યોં નહીં હોતા । क्यों कि तुम स्वयं
અસ્તિત્વરૂપસે લોકકે અંતર્ગત અપને આપકો માન રહે હો । यदि

જશે ત્યારે તે સાધ્યસમ-અસિદ્ધ-હોવાથી સ્વયં સાધ્યકોટિમા આવી જશે, અહીં
સાધ્ય લોક છે, હેતુ પણ લોકસ્વરૂપ થઈ જવાથી તે સાધ્ય માફક થઈ જાય છે.
સાધ્યસાધકભાવનો અભાવ હોવાથી સાધનથી સાધ્યનું જ્ઞાન ન બની શકવાથી
આ જગ્યાએ અનુમાન બની શકતું નથી આ વિષયમા ટીકાકાર કહે છે કે-ઘણું
કહેવાનું હતું, પરંતુ વિસ્તારના ભયથી આટલું જ કહેવું બરોબર છે આ પ્રકારેજ
“ ધ્રુવો લોક ” ઇત્યાદિ વાક્યમા પણ એકાન્તવાદનું નિરસન અને સ્યાદ્વાદ પક્ષનું
સમર્થન કરી લેવું નોઈએ જે લોકો એકાન્તરૂપથી “ નાસ્તિ લોક ” આ વાતને
કહે છે, અમે તેવા વાદીઓને એવું પૂછીએ છીએ કે “ તમે સ્વયં
અસ્તિરૂપ છો કે નાસ્તિરૂપ ? ” ને અસ્તિરૂપ છો તો લોકના અન્તર્ગત છો કે
તેનાથી બાહર ? ને લોકના અન્તર્ગત પોતાને માનતા હો તો “ નાસ્તિ લોક ”
આ પ્રકારે કહેતા આપને સંકોચ કેમ નથી થતો ? કેમ કે તમે સ્વયં અસ્તિત્વ-

पुत्रादिवत् सर्वपापसत्त्वं तत्र प्राप्तं, सर्वं द्रुपेयाऽस्तथा तस्या सह वादक्याऽऽजम्माः ।

अनेकान्तवादिनामस्माकं मते त्वेकान्तत सत्त्वस्यासत्त्वस्य वा न सम्भवः, किन्तु द्वयोरपि सम्भवोऽस्ति, तथा हि-पटादिः स्वस्वरूपेण सन् परकीयरूपेण पाञ्चान्-स्त्वस्य-क्षेत्र-काष्ठमात्रैः घटादेः सत्त्वं परकीर्यम् वैरसत्त्वमिति । उक्तम्-

“सदेव सर्वं को नञ्छेत्, स्वरूपादिचतुष्टयात् ।

असदेव विपर्यासाच्च वेद्य व्यतिष्ठते ॥ १ ॥” इति ।

छोक्के अंतर्गत अपने आपको नहीं मानत होतो तुम्हारी चन्ध्यापुत्रकी तरह स्वतन्त्र सत्ता ही सिद्ध नहीं हो सकती; अतः असत्प्राप्तमक होने से तुम्हारे साथ वादविवाद करना भी व्यर्थ है । वादविवाद सत्क साथ होता है, असत् चन्ध्यापुत्रके साथ नहीं ।

अनेकान्तवादी हम लोगोंक मिद्धान्तमें न किसीका एकान्तसे एकत्व माना गया है और न एकान्तसे किसीका असत्त्व ही । सत्त्व और असत्त्व पे दो धर्म हैं और इनका सम्भव स्वरूपादि-चतुष्टयकी अपेक्षासे ही स्वीकृत है, जैसे-घटादि द्रव्य अपने द्रव्य, क्षेत्र, काष्ठ और भाव की अपेक्षासे ही है, परद्रव्य-पटादिकके द्रव्य-क्षेत्रादिकी अपेक्षासे नहीं । इनकी अपेक्षासे तो उसका असत्त्व ही अंगीकृत है । कहा भी है—

सदेव सर्वं को नञ्छेत् स्वरूपादिचतुष्टयात् ।

असदेव विपर्यासात् न वेद्य व्यतिष्ठते ॥ १ ॥

इसकी छोटी की जर पोवाने मानी रह्य छे जे छोटी की जर पोवाने न मानता हो तो तमारी चन्ध्यापुत्रकी तरह स्वतन्त्र सत्ता न सिद्ध भई सकती नहीं छे छे छे असत्प्राप्तमक होवारी जे जे तमारी साथे वादविवाद करवो व्यर्थ छे परविवाद सत्त्वनी साथे होय छे जसत्त्व चन्ध्यापुत्रनी साथे नहीं ।

अमास अनेकान्तवादिओना सिद्धांतमां न केछनु कोकान्तकी कोकत्व मानेव छे जने न तो कोकान्तकी केछनु असत्त्व सत्त्व जने असत्त्व मा जे धर्म छे जने जेने सत्त्व स्वरूपादि-चतुष्टयनी अपेक्षाकी न स्वीकृत छे जेम-घटादि द्रव्य पोताना द्रव्य, क्षेत्र, काष्ठ जने भावनी अपेक्षाकी न छे परद्रव्य पटादिकना द्रव्य-क्षेत्रादिकनी अपेक्षाकी नहीं । जेनी अपेक्षाकी तो जेना असत्त्वनेज न नीकार छे कहु पद्य छे—

“सदेव सर्वं को नञ्छेत्, स्वरूपादिचतुष्टयात् ।

असदेव विपर्यासाच्च वेद्य व्यतिष्ठते ॥ १ ॥” इति ।

इति सुदृढमनेकान्तवादसाम्राज्यम् ।

एवमुक्तप्रकारेण तेषां विरुद्धमपलपतां परतैर्थिकाणां धर्मो न स्वाख्यातः=शोभनो व्याख्यातः, एकान्तवादगर्भितत्वात्, नैव च तेषां धर्मः सुप्रज्ञप्तः=सुप्ररूप-पितो भवति असर्वज्ञप्रणीतत्वात्; अतः स्याद्वादसाम्राज्यवर्हिर्भूतत्वात्तेषां परवादिनां धर्मः सर्वथा हेय एवेति भावः ॥ सू० ३ ॥

स्वबुद्धिपरिकल्पितत्वनिरासायाऽऽह—‘ से जहेयं ’ इत्यादि—

મૂલમ્—સે જહેયં ભગવયા પવેડયં આસુપન્નેણ જાણયા પાસયા, અદુવા ગુત્તી વઓગોયરસ્સ ત્તિંબેમિ, સઠ્વત્થ સંમયં પાવં તમેવ ઉવાઙ્કમ્મ एस महं विवेगे वियाहिए, गामे वा अदुवा रणणे नेव गामे नेव रणणे, धम्ममायाणह पवेडयं माहणेण मइमया.

वस्तु स्वद्रव्यादिक की ही अपेक्षासे सत्त्वात्मक और परद्रव्यादिक की अपेक्षासे ही असत्त्वात्मक मानी गई है । इस प्रकारकी मान्यता न माननेसे किसी भी वस्तुकी स्वतन्त्र सत्ता सिद्ध नहीं हो सकती है! यही सुदृढ़ अनेकान्तवादका साम्राज्य है ।

इस प्रकार उक्तरूपसे एकान्तरूपमें गर्भित होनेके कारण परस्परमें विरुद्धार्थकी प्ररूपणा करनेवाले अन्य तीर्थिकोंका मत निर्दोषरूपसे कथित नहीं है, और इसीलिये वह असर्वज्ञ प्रणीत होनेसे अच्छी तरहसे प्ररूपित भी नहीं है । इसलिये स्याद्वाद साम्राज्यके बहिर्भूत होनेसे उन परवादियोंका धर्म सर्वथा हेय ही है ॥ सू० ३ ॥

अनेकान्ततत्त्वमें सूत्रकार स्वबुद्धिसे परिकल्पितपनेका निषेध करने के लिये “ से जहेय ” इत्यादि सूत्र कहते हैं ।

વસ્તુ સ્વદ્રવ્યાદિકની અપેક્ષાથી સત્ત્વાત્મક અને પરદ્રવ્યાદિકની અપેક્ષાથી અસત્ત્વાત્મક માનવામા આવેલ છે. આ પ્રકારની માન્યતા ન માનવાથી કોઈપણ વસ્તુની સ્વતન્ત્ર સત્તા સિદ્ધ થઈ શકતી નથી. આ સુદૃઢ અનેકાન્તવાદનું સામ્રાજ્ય છે.

આ રીતે એ રૂપથી એકાન્તરૂપમા ગર્ભિત થવાના કારણે, પરસ્પરમા વિરુદ્ધાર્થની પ્રરૂપણા કરવાવાળા અન્ય તીર્થિકોના મત નિર્દોષરૂપથી કહેવાયેલ નથી અને એ કારણે અસર્વજ્ઞ પ્રણીત હોવાથી સારી રીતે પ્રરૂપિત પણ નથી. આ કારણે સ્યાદ્વાદસામ્રાજ્યના બહિર્ભૂત હોવાથી પરવાહીઓનો ધર્મ સર્વથા હેય છે (સૂ૦૩)

અનેકાન્ત તત્ત્વમા સૂત્રકાર સ્વબુદ્ધિથી પરિકલ્પિતપણાનો નિષેધ કરવા માટે “ સે જહેયં ” ઇત્યાદિ સૂત્ર કહે છે—

जामा तिस्रि उदाहिया, जेसु इमे आयरिया सबुझमाणा समु
टिया, जे णिवुया पावेहिं कम्मेहिं आणियाणा ते धियाहिया ॥ सू० ४॥

छाया—उपपेदं भगवता प्रवेदितम् आधुमन्नेन ज्ञानता पश्यता, भवया
गुक्तिर्बोगोपरस्येति द्रवीभि, सर्वत्र सम्मतं पाप, तदेवोपातिकम्प एष मम विवेको
व्याख्यातः, ग्रामे वा अवसादस्थे, नैव ग्रामे नैवारण्य, धर्ममाजानीत प्रवेदितं
माहनेन मतिमता, यामात्रय उदाहृताः, एषु इम आयाः सम्बुध्यमानाः समुत्पिताः,
ये निर्वाताः पापेषु कर्मसु अनिदानास्ते व्याख्याताः ॥ सू० ४ ॥

टीका—उपपा—इदम् अनेकान्तरूप पूर्वोक्तं सकलव्यवहारानुसारि कुत्राप्यस्त्व-
स्त्विं सर्वं आधुमन्नेन—शीघ्रबुद्धिना आचरन्प्रज्ञयात् सततोप्युक्तेन, ज्ञानता—ज्ञानोप्युक्तेन
पश्यता—दर्शनोपयोगकता भगवता—तीर्थहारेण प्रवेदितं—प्ररूपितम् । एकान्तवादिनां
धर्मो न स्वाख्यातो भवति तत्र हेतुदृष्टान्तामात्रात्, सर्वज्ञोपदिष्टसु स्वाख्यातः
प्रतिज्ञा—हेतु—दृष्टान्तादिसङ्गाधाविति बाध्यम् । अथवा पक्षान्तरे बान्धोवरस्य—

कोई भी वस्तु एकान्तरूपसे न अस्तिरूप है और न नास्तिरूप है,
किन्तु अस्ति—नास्तिरूपता वस्तुओं में स्वप्नव्यादि वस्तुष्वप्यकी अपेक्षासे
ही मानी जाती है—यह बात तृतीय सूत्रकी व्याख्याके अंतमें सक्षेप
रूपसे पतलाई गई है। इसीका नाम अनेकान्त है। इसकी स्वीकृति
बिना दुनियाका कोई भी व्यवहार नहीं चल सकता है। ऐसी कोई भी
वस्तु नहीं है जो इस अनेकान्तके साम्राज्यसे बहिर्भूत हो। ऐसी
प्ररूपणा आधुमन्नेन—अनन्त ज्ञानशाली और अनन्तदर्शनोपयोगी भी
तीर्थंकर भगवान्नेकी है। हेतु और दृष्टान्तके अभावसे एकान्तवादिसंमत
धर्म स्वाख्यात—निर्दोषरूपसे प्रतिपादित नहीं हुआ है। प्रतिज्ञा, हेतु,

हेतु पक्ष वस्तु ज्ञानान्तरूपभी न अस्तिरूप है अने न तो नास्तिरूप है
अस्ति—नास्तिरूपता वस्तुओंमें स्वप्नव्यादिवस्तुष्वप्यकी अपेक्षाभी न मानी जाया
है। आ बात त्रीन सूत्रनी व्याख्या अतर्भा सक्षेपारूपभी कहेके है जेनु न नाम
अनेकान्त है जेनी स्वीकृति वजरदुनियाको हेतु पक्ष बदेचार वाली राके नहीं।
जेनी हेतु पक्ष वस्तु नहीं है आ अनेकान्तना साम्राज्यभी बहिर्भूत होय जेनी
प्ररूपणा आधुमन्नेन—अनन्तज्ञान अने अनन्तदर्शनशाली भी तीर्थंकर भगवान्नेकी
है हेतु अने दृष्टान्तना अभावभी ज्ञानान्तरूपभी—अतर्भा धर्म स्वाख्यात—निर्दोष-
रूपभी प्रतिपादित गया नहीं। प्रतिज्ञा, हेतु अने दृष्टान्त आदिना अज्ञानभी

‘તદેવે’ત્યાદિ-તદેવ=સાવધાચરણમેવ ઉપાતિક્રમ્ય=ઉલ્લઘ્ન્યાહ વર્તમાનોઽસ્મીત્યેવં-
 ભૂતસ્ય મમ એપ મહાન્ વિવેકઃ=હેયોપાદેયરૂપવિચારો વ્યાહતઃ=કથિતઃ, અનપિદિ-
 તાસ્રવદ્વારેણ ભવતા સહ સમ્ભાષણેનાલમ્ ।

નનુ પરતીર્થિકા અપિ વનવાસિનઃ ફલ-મૂલ-કન્દાદ્યાહારાસ્તસ્તલવાસિનો ભ-
 વન્તિ, કથ તે સમ્ભાષણાનર્હા? ઇતિ ચેન્ન, વનવાસ-ફલાહારાદિકરણેન ન ધર્મઃ, અપિ તુ
 જીવાજીવાદિતત્ત્વપરિજ્ઞાનપૂર્વકનિરવધાચરણાત્, તત્ત્વ તેષા નાસ્તિ । એતમેવાર્થમાવિ-
 ર્માવયન્નાહ-‘ગ્રામે વે’ત્યાદિ-ગ્રામે=ગ્રામવિપયે વસેચ્ચેદ્ધર્મો ભવેદ્, એવમરણ્યે=વતે
 મૈ સદા ઇન કૃત્યો-પાપોસે દૂર રહતા હું । મેરા વિવેક-હેય ઓર
 ઉપાદેયકી જાગૃતિરૂપ બોધ મી મુજે યહી કહતા હૈ । મહાપુરુષોંકી
 મી યહી શિક્ષા હૈ । અતઃ જિન્હોને ઇન પાપમય સાવધ વ્યાપારોંકે
 અત્યાગસે અપને કર્મોંકે આસ્રવકે દ્વારકો બંદ નહીં કિયા હૈ, ઉનકે સાથ
 સંભાષણ કરના મી મુજે ઉચિત નહી હૈ ।

શઙ્કા—પરતીર્થિક જન મી વનમેં રહતે હૈં, કંદ, મૂલ ઓર
 ફલ આદિકા આહાર કરતે હૈં, ગિરિ ગુફામેં એવં વૃક્ષોંકે નીચે નિવાસ
 કરતે હૈં તો ફિર યે સંભાષણકે અયોગ્ય કૈસે માને જા સકતે હૈં ?

ઉત્તર—કન્દમૂલ આદિ રવાનેસે ઓર વનમેં નિવાસ કરનેસે ધર્મકી
 પ્રાપ્તિ હોતી હૈ, સો વાત નહીં હૈ । ધર્મકી પ્રાપ્તિકા કારણ જીવ ઓર
 અજીવ આદિ તત્ત્વોંકા પરિજ્ઞાનપૂર્વક નિરવધ આચરણ કરના હૈ । યહ
 ઉનકે નહીં હોતા હૈ । ઇસી અર્થકો સમજાતે હુએ સૂત્રકાર કહતે હૈ—

અભિલષિત નથી. આ માટે હું સદા એ કુકૃત્યો-પાપોથી દૂર રહું છું
 મારા વિવેક-હેય અને ઉપાદેયની જાગૃતિરૂપ બોધ પણ મને એ કહે
 છે મહાપુરુષોની પણ એ શિક્ષા છે માટે એઓએ આવા પાપમય સાવધવ્યાપ-
 રના અત્યાગથી પોતાના કર્મોંતા આસ્રવનુ દ્વાર બંધ કરેલ નથી તેની સાથે
 સંભાષણ કરવુ પણ મને ઉચિત નથી

શ કા—પરતીર્થીક જન પણ વનમા રહે છે, કંદ, મૂળ, ફળ આદિનો આહાર
 કરે છે ગિરિ શુક્રમા અને વૃક્ષોની નીચે વાસ કરે છે, તો પછી એઓ સંભાષણ
 કરવાને અથોગ્ય કેવી રીતે માની શકાય ?

ઉત્તર—કંદમૂળ આદિ ખાવાથી અને વનમા નિવાસ કરવાથી ધર્મની
 પ્રાપ્તિ થાય છે એવી વાત નથી ધર્મની પ્રાપ્તિનુ કારણ જીવ અને અજીવ આદિ
 તત્ત્વોનુ પરિજ્ઞાનપૂર્વક નિરવધ આચરણ કરવુ તે છે આ તેનાથી બનતું નથી

ના પર્મો મષેવિતિ નૈષ નિયમઃ, યતો પર્મો નૈષ ગ્રામે મષતિ નૈષારમ્યે, કિન્તુ યમ કુત્રાપિ વસ્તો ઝીવાઝીવાદિતત્ત્વપરિજ્ઞાનપૂર્વકનિરવધાનુષ્ઠાનમેષ પર્મમ્ મા વાનીત, ઇતિ માદનેમ 'મા હન-મા હન' ઇતિ ચો ઝીવરસાદુપવિદ્યતિ સ માદનો ચીતરાગસ્તેન, મતિમતા-મતિઃ=વસ્તુતત્ત્વપરિજ્ઞાન, સા યસ્યાસ્તીતિ મતિ-માન્, તેન-કેવલિના, પર્મઃ=પૂર્વોવાદિતો વસ્તુમાણથ પ્રવેદિતઃ=મરૂપિતઃ॥ વસ્તુમાણ મેવાહ-'યામા' ઇત્યાદિ-મ્યો યામાઃ=વ્રતરૂપાઃ ઉદાહૃતાઃ=કથિતાઃ, અથ મિથ્થેન પ્રાપ્તિપાતમુપાસાદપરિગ્રહનિરમણરૂપા દુહીતાઃ, મૈથુનાઽઽજ્ઞાઽઽદાનવિરમણયોઃ પરિગ્રહવિરમણેઽન્તર્માત્માભિત્ય ત્યા મોક્તમિતિ યોગ્યમ્ ।

કિ 'ગ્રામમે રહનેસે, ઝંગલમે નિવાસ કરનેસે પર્મ હોતા હૈ' એસા નિયમ નહીં હૈ; ક્યોં કિ પર્મ ગ્રામ અથવા ઝંગલમે નહીં રસ્યા હૈ જો વહાં રહને સે મિલ જાતા હો । પર્મ ઝીવ ઔર ઝઝીવાદિ તત્ત્વોકિ પરિજ્ઞાનપૂર્વક નિરવધ અનુષ્ઠાનકે આચરણકા નામ હૈ, એસા ઝીવરસાકે ઉપદેશક ઔર વસ્તુતત્ત્વકે જ્ઞાતા કેવલી મગધાનને કહા હૈ । 'માહન' શબ્દકા અર્થ ચીતરાગ ઔર 'મતિ' શબ્દકા અર્થ સમ્પૂર્ણ વસ્તુઓં કા પરિજ્ઞાન હૈ । યહ મતિરૂપ પરિજ્ઞાન જિસકે હૈ વહ મતિમાન્ કેવલી હૈ ।

વ્રતરૂપ ત્રીન યામ કહે ગયે હૈ—૧ પ્રાણાતિપાતવિરમણ, ૨ મુષાવાદ વિરમણ ઔર ૩ પરિગ્રહવિરમણ । બાકીકે મૈથુનકા વિરમણ ઔર અદ્ સાદાનકા વિરમણ, યે વો મહાવ્રતરૂપ પર્મ યહાં ઇસલિયે સ્વતન્ત્રરૂપસે નહીં કહે ગયે હૈ કિ ડનકા અન્તર્માત્મ પરિગ્રહવિરમણરૂપ મહાવ્રતમેં કરલિયા હૈ

આ બ્રહ્મેને સુમબલવા માટે સુતકાર કહે છે કે—ગામમાં રહેવાથી, જંગલમાં નિવાસ કરવાથી પર્મ થાય છે એવો નિશ્ચય નથી, કેમ કે પર્મ થાય અને જંગલમાં રાખેલ નથી કે જે ત્યાં રહેવાથી મળી જાય, પર્મ જીવ અને બજીવાદિ તત્ત્વોનું પરિજ્ઞાનપૂર્વક નિરવધ અનુષ્ઠાનનું અદ્યક્ષ તે છે જ્યાં જીવરસાદુપદેશક અને વસ્તુતત્ત્વના જ્ઞાતા કેવલી ભગવાને કહેલ છે 'માહન' શબ્દનો અર્થ ચીતરાગ, અને મતિ શબ્દનો અર્થ સમ્પૂર્ણ વસ્તુઓનું પરિજ્ઞાન છે. આ મતિરૂપ પરિજ્ઞાન બેને છે તે મતિમાન્ કેવલી છે

મતિરૂપ ત્રણ યામ કહેવાયાં છે ૧ પ્રાણાતિપાતવિરમણ ૨ મુષાવાદ વિરમણ, ૩ પરિગ્રહવિરમણ બાકીનાં મૈથુનવિરમણ અને અદ્વાદાનવિરમણ આ બન્ને મહાવ્રતરૂપ પર્મ જ્યાં આ માટે સ્વતંત્રરૂપથી કહેવાયેલ નથી કે તેને અતર્થાત્ પરિગ્રહવિરમણરૂપ મહાવ્રતમાં કરાયેલ છે.

વાગ્વિપયસ્ય ગુપ્તિઃ=ભાષાસમિતિર્વિધેયેત્યેતદપિ પ્રવેદિતમ્ ।

યદ્વા-‘અસ્તિ લોકો નાસ્તિ લોક’ ઇત્યાદિવાદાય સમુત્થિતતાનાં પાપણ્ડિકાના સ્વાભિમતહેતુદૃષ્ટાન્તસ્થાપનેન તદુક્તદૂષણગણનિરસનેન ચ જયાત્ સ્વમતસ્થાપનં
 ઔર દૃષ્ટાન્ત આદિકે સદ્ભાવમેં સર્વજ્ઞપ્રતિપાદિત ધર્મ હી સ્વાખ્યાત હૈ ।

એકાન્તસ્થાપક ન કોઈ હેતુ હૈ ઔર ન કોઈ દૃષ્ટાન્ત હી મિલતા હૈ
 કિ જિસકે વલ પર એકાન્ત ધર્મકી પ્રરૂપણા વાસ્તવિક સિદ્ધ હો સકે ।
 હાં-અનેક ધર્માત્મક હી વસ્તુ હૈ । ઇસકી પ્રરૂપણાકે અ્યાપક હેતુ ઔર
 દૃષ્ટાન્તાદિ ઉપલબ્ધ હોતે હૈ ।

ભગવાને વચન બોલનેવાલે સાધુકે લિયે ભાષાસમિતિ પાલનેકા મી
 આદેશ દિયા હૈ । “ અસ્તિ લોકઃ નાસ્તિ લોકઃ ” ઇત્યાદિ વાદકે લિયે
 તૈયાર હુઅ વાદિયોંકે અભિમત તત્ત્વકા જો ઁન્હોંને અપને ઇચ્છાનુસાર
 હેતુ-દૃષ્ટાન્તકી સ્થાપનાસે સ્થાપન કિયા હૈ, ઔર પ્રતિવાદી જૈનસંમત
 તત્ત્વકી નિરાકૃતિનિમિત્ત દૂષણોંકા પ્રદર્શન કિયા હૈ, સો ઁનકે પ્રદર્શિત
 હેતુ ઔર દૃષ્ટાન્તોંકા નિરાકરણ એવ પ્રદત્ત દૂષણોંકા પરિહાર કરતે
 સમય પ્રતિવાદી મુનિકે લિયે ભાષાસમિતિકા પાલન કરના ચાહિયે ।
 પરપક્ષકા નિરાકરણ કરતે યા તદ્વિષયક ઉત્તર દેને સમય કમી ર જોશ
 સર્વજ્ઞપ્રતિપાદિત ધર્મ જ સ્વાખ્યાત છે

એકાન્તસ્થાપક ન કોઈ હેતુ છે ઁને ન કોઈ દૃષ્ટાન્ત પલ્લુ મળે છે,
 જેના બળ ઉપર એકાન્ત ધર્મની પ્રરૂપણા વાસ્તવિક સિદ્ધ થઈ શકે હા-અનેક
 ધર્માત્મક જ વસ્તુ છે ઁની પ્રરૂપણાના અ્યાપક હેતુ ઁને દૃષ્ટાન્તાદિ
 ઉપલબ્ધ થાય છે

ભગવાને વચન બોલવાવાળા સાધુ માટે ભાષાસમિતિ પાળવાનો પલ્લુ આદેશ
 આપ્યો છે “ અસ્તિ લોક નાસ્તિ લોક ” ઇત્યાદિ વાદને માટે તૈયાર થયેલા વાદિ
 યોએ પોતાના અભિમત-તત્ત્વનુ પોતાની ઇચ્છાનુસાર હેતુ-દૃષ્ટાન્તની સ્થાપનાથી
 સ્થાપન કરેલ છે ઁને પ્રતિવાદી જૈનસંમત તત્ત્વની નિરાકૃતિ નિમિત્ત દૂષણોંનુ
 પ્રદર્શન કરેલ છે, એવા એમના પ્રદર્શિત હેતુ ઁને દૃષ્ટાન્તોંનુ નિરાકરણ ઁને પ્રદત્ત
 (આપેલ) દૂષણોંનો પરિહાર કરતી વખતે પ્રતિવાદી મુનિને માટે ભાષાસમિતિનુ
 પાલન જરૂરી છે પરપક્ષનુ નિરાકરણ કરતા અથવા કોઈ પ્રશ્નનો ઉત્તર દેવાને
 સમયે ક્યારેક ભેશ આવી જવાથી વચનનો સચમ રહેતો નથી, તો પલ્લુ વિદ્વાન

શામ્ભોચરસ્ય શુસિરિતિ । વાચસપમેન સમ્યશુચર દેય નતુ માપાસમિતિમનપેક્ષ્યેતિ
 યતઃ । इति=शुसिर्वांभोचरस्य कार्येत्येतद्वक्ष्यमाणं चाहं प्रवीमि । तदेव वक्तुं प्रक-
 मते-‘सर्वत्रे’त्यादि-प्रतिवाचिन संशोध्य पुण्येष्ट-यत्तव पदभीबन्निर्कायोपमर्दनं कृ-
 तकारितानुमोदनैः सर्वत्र स्पष्टाया सम्मतम्=अप्रतिपिद्धत्वेनाभिलपित तत्सर्व पापं=
 पापजनकं नरकनिगोदादिदुःस्वकारकत्वावसो न ममामिलपितमित्यर्थः । तदेवाह-

આ જાને સે વચનકા સંયમ નહીં રહતા હૈ, તો શ્રી ચિદાન મુનિકે લિયે
 હસ યાતકા ચહાં શ્રી ધ્યાન રસના આદિયે । આપાસમિતિકા પરિહાર
 કર અપને મુલશુણમેં ચિરાયના છાના યહ વિદ્યાન્ મુનિકા કર્તવ્ય નહીં
 હૈ । इसी वस्तुस्थितिको ध्यानमें रख कर सप्रकार “शुसिर्वंभोगोचर
 स्येति प्रवीमि ” यह कहते हैं-जैनसिद्धान्तविमत हेतु और इष्टान्तकी
 स्थापनासे एवं पाल्खण्डियोंके द्वारा कफित रूपणोंके निरसन (उत्तर)से
 वन पाल्खण्डियोंके परास्त होनेपर स्वमतकी स्थापन स्वतः हो जाती है, और
 यही वचनविषयकी श्रुति है । इसमें रहनेवाले साधुको वाक्-संयमसे
 ही उत्तर देना चाहिये; उसकी उपेक्षा करके नहीं । इसी प्रकारसे
 सप्रकार प्रदर्शित करते हैं-विद्वान् वादी मुनि, प्रतिवादीको संबोधित
 कर यह पूछे कि आपके शास्त्रमें कृत, कारित और अनुमोदनासे यह
 जीवनिर्कायका उपमर्दन प्रतिपादित हुआ है और यह अप्रतिपिद्ध होनेसे
 आपके लिए सम्मत है । परंतु यह आप विश्वास रखे कि यह सब कुछ
 कृत्य है और करनेवाले जीवोंको नरक और निगोदादिक दुःस्वोंके प्रदत्ता
 हैं । इसलिये हमारी दृष्टिमें यह उपादेय-अभिलपित नहीं है । इसी कारण

મુનિકે જે વાતને ત્યાં પણ આપણે શરૂએ જોઈએ. આપાસમિતિનો પરિહાર કરી
 યોતાના મૂળ શુભમાં વિશાળતા લાવવી જે વિદ્યાન્ મુનિનું કર્તવ્ય નથી. આ વસ્તુ
 સ્થિતિને ધ્યાનમાં રાખી સુવચાર શુભિવચનોચરસ્યેતિ પ્રવીમિ ” આમ કહે છે.
 જૈનસિદ્ધાન્તાભિમત હેતુ અને દર્શાવતી સ્થાપનાથી અને પાખડીઓ દ્વારા કહેવાયેલા
 રૂપણોના ઉત્તરથી તે પાખડિઓની દ્વારા ચલાવી સ્વમતની સ્થાપના આપમેળે થઈ
 જાય છે-આ વચનવિષયની શ્રુતિ છે આમાં રહેવાનાના સાધુએ વાક્-સંયમથી
 જ ઉત્તર આપવા જોઈએ, આપાસમિતિની ઉપેક્ષા કરીને નહીં. આ પ્રદર્શન
 સુવચાર પ્રદર્શિત કરે છે-વિદ્યાન્ વાદી મુનિ, પ્રતિવાદીને સંબોધિત કરી પૂછે કે
 આપણા શાસ્ત્રમાં કૃત કારિત અને અનુમોદનાથી વજીવનિર્કાયના ઉપમર્દન પ્રતિ
 પાદિત થયેલ છે અને જે અપ્રતિપિદ્ધ હોવાથી અપને માટે સમ્મત છે; પરંતુ
 આપ વિશ્વાસ રાખો કે જે બધા કૃત્ય છે અને કરવાવાળા છોડેને નરક અને
 નિગોદાદિક દુઃખો આપનાર છે. આ કારણે અમારી દૃષ્ટિમાં જે ઉપાદેય-

‘તદેવે’ત્યાદિ-તદેવ=સાવધાચરણમેવ ઉપાતિક્રમ્ય=ઉલ્લુહ્યાહ વર્તમાનોડસ્મીત્યેવં-
 ભૂતસ્ય મમ એપ મહાન્ વિવેકઃ=હેયોપાદેયરૂપવિચારો વ્યાહતઃ=ઋથિતઃ, અનપિહિ-
 તાસ્રવદ્વારેણ ભવતા સદ્ સમ્ભાષણેનાલમ્ ।

નનુ પરતીર્થિકા અપિ વનવાસિનઃ ફલ-મૂલ-કન્દાદ્યાહારાસ્તરુતલવાસિનો ભ-
 વન્તિ, કથ તે સંભાષણાનર્હા? ઇતિ ચેન્ન, વનવાસ-ફલાહારાદિકરણેન ન ધર્મઃ, અપિ તુ
 જીવાજીવાદિતત્ત્વપરિજ્ઞાનપૂર્વકનિરવધાચરણાત્, તત્ત્વ તેપા નાસ્તિ । એતમેવાર્થમાવિ-
 ર્માવયન્નાહ-‘ગ્રામે વે’ત્યાદિ-ગ્રામે=ગ્રામવિષયે વસેચ્ચેદ્ધર્મો ભવેદ્, એવમરણ્યે=વને

મેં સદા ઇન કૃત્યોં-પાપોંસે દૂર રહતા હું । મેરા વિવેક-હેય ઓર
 ઉપાદેયકી જાગૃતિરૂપ બોધ ખી મુઝે યહી કહતા હૈ । મહાપુરુષોંકી
 ખી યહી શિક્ષા હૈ । અતઃ જિન્હોંને ઇન પાપમય સાવધ વ્યાપારોંકે
 અત્યાગસે અપને કર્મોંકે આસ્રવકે દ્વારકો વંદ નહીં ક્રિયા હૈ, ડનકે સાથ
 સંભાષણ કરના ખી મુઝે ડચિત નહીં હૈ ।

શઙ્કા—પરતીર્થિક જન ખી વનમેં રહતે હૈં, કંદ, મૂલ ઓર
 ફલ આદિકા આહાર કરતે હૈં, ગિરિ ગુફામેં એવં વૃક્ષોંકે નીચે નિવાસ
 કરતે હૈં તો ફિર યે સંભાષણકે અયોગ્ય કૈસે માને જા સકતે હૈં ?

ઉત્તર—કન્દમૂલ આદિ ખાનેસે ઓર વનમેં નિવાસ કરનેસે ધર્મકી
 પ્રાપ્તિ હોતી હૈ, સો બાત નહીં હૈ । ધર્મકી પ્રાપ્તિકા કારણ જીવ ઓર
 અજીવ આદિ તત્ત્વોંકા પરિજ્ઞાનપૂર્વક નિરવધ આચરણ કરના હૈ । યહ
 ડનકે નહીં હોતા હૈ । ઇસી અર્થકો સમજાતે હુએ સૂત્રકાર કહતે હૈં—

અભિલપિત નથી આ માટે હું સદા એ કુકૃત્યો-પાપોથી દૂર રહું છું
 મારા વિવેક-હેય અને ઉપાદેયની જાગૃતિરૂપ બોધ પણ મને એ કહે
 છે મહાપુરુષોની પણ એ શિક્ષા છે માટે જેઓએ આવા પાપમય સાવધન્યાપા-
 રોના અત્યાગથી પોતાના કર્મોના આસ્રવનું દ્વાર બંધ કરેલ નથી તેની સાથે
 સંભાષણ કરવું પણ મને ડચિત નથી

શ કા—પરતીર્થિક જન પણ વનમા રહે છે, કંદ, મૂળ, ફળ આદિનો આહાર
 કરે છે ગિરિ ગુફામા અને વૃક્ષોની નીચે વાસ કરે છે, તો પછી એઓ સંભાષણ
 કરવાને અયોગ્ય કેવી રીતે માની શકાય ?

ઉત્તર—કંદમૂળ આદિ ખાવાથી અને વનમા નિવાસ કરવાથી ધર્મની
 પ્રાપ્તિ થાય છે એવી વાત નથી ધર્મની પ્રાપ્તિનું કારણ જીવ અને અજીવ આદિ
 તત્ત્વોનું પરિજ્ઞાનપૂર્વક નિરવધ આચરણ કરવું તે છે આ તેનાથી બનતું નથી.

યા ધર્મો મવેદિતિ નૈષ નિયમા, યતો ધર્મો નૈષ પ્રાપ્તે મપતિ નૈવારણ્યે, કિન્તુ
યત્ર કુત્રાપિ વસ્તો બીજાનીવાદિતત્ત્વપરિજ્ઞાનપૂર્વકનિરવધાનુષ્ઠાનમેવ ધર્મમ્ આ
ચાનોત, इति माहनेन 'મા હન-મા હન' इति यो जीवरक्षापदिषति स माह्नो
बीतरागस्तेन, मतिमता-मतिः=सकलवस्तुतत्त्वपरिज्ञानं, सा यस्यास्तीति मति-
मान्, तेन-केवलिता, धर्मः=पूर्वोदाहृतो वस्तुमात्रश्च मवेदितः=परुषितः। वस्तुमात्र
मेवाह-'यामा' इत्यादि-अयो यामाः=व्रतरूपाः उदाहृताः=कविताः, अत्र प्रिय
इणेन प्रत्यातिपातमुपावाहपरिग्रहविरमणक्या गृहीता, मैथुनाऽऽद्याऽऽज्ञानविरम
णयोः परिग्रहविरमणेऽन्तर्भावमाभित्य तथा प्रोक्तमिति बोध्यम् ।

ફિ 'ધાર્મમે' રહનસે, જંગલમે' નિવાસ કરનેસે ધર્મ હોતા હૈ' એસા નિયમ
નહો હૈ; કયોં ફિ ધર્મ ધાર્મ અથવા જંગલમે' નહીં રચ્ચા હૈ જો વહાં રહને
સે મિલ જાતા હો । ધર્મ બીજા ઔર અબીજાવિ તત્ત્વોંકિ પરિજ્ઞાનપૂર્વક
નિરવધ અનુષ્ઠાનકે આચરણકા નામ હૈ, એસા બીજરક્ષાકે ઉપદેશક
ઔર વસ્તુતત્ત્વકે જ્ઞાતા કેવલી મગધાનને કહા હૈ । 'માહન' શબ્દકા અર્થ
બીતરાગ ઔર 'મતિ' શબ્દકા અર્થ સમ્પૂર્ણ વસ્તુઓં કા પરિજ્ઞાન હૈ । યહ
મતિરૂપ પરિજ્ઞાન જિસકે હૈ વહ મતિમાન્ કેવલી હૈ ।

વ્રતરૂપ ત્રીન યામ કહે ગયે હૈ—૧ પ્રાણાતિપાતવિરમણ, ૨ મુખાવાહ
વિરમણ ઔર ૩ પરિગ્રહવિરમણ । બાકીકે મૈથુનકા વિરમણ ઔર અવ
સ્તાવાનકા વિરમણ, યે વો મહાવ્રતરૂપ ધર્મ યહાં ફસલિયે સ્વતન્ત્રરૂપસે નહોં
કહે ગયે હૈ ફિ ઇનકા અન્તર્ભાવ પરિગ્રહવિરમણરૂપ મહાવ્રતમેં કરલિયા હૈ ।

આ અર્થને સમજવવા માટે સુચકાર કહે છે કે—આમમાં રહેવાથી, જમણમાં
નિવાસ કરવાથી ધર્મ થાય છે એવો નિયમ નથી, કેમ કે ધર્મ આમ અને જમ
ણમાં શાયેલ નથી કે એ ત્યાં રહેવાથી મળી જાય ધર્મ એવ અને અણબાદિ તત્ત્વોનું
પરિજ્ઞાનપૂર્વક નિસ્વલ અનુષ્ઠાનનું અવગણ્ય તે છે આમ એવરક્ષાના ઉપદેશક
અને વસ્તુતત્ત્વના જ્ઞાતા કેવલી ધર્મવાને કહેલ છે 'માહન' શબ્દનો અર્થ બીતરાગ,
અને 'મતિ' શબ્દનો અર્થ સમ્પૂર્ણ વસ્તુઓનું પરિજ્ઞાન છે. આ મતિરૂપ પરિ-
જ્ઞાન એને છે તે મતિમાન્ કેવલી છે

મતરૂપ ત્રણ યામ કહેવાયા છે ૧ પ્રણાતિપાતવિરમણ ૨ મુખાવાહ
વિરમણ ૩ પરિગ્રહવિરમણ બાકીનાં મૈથુનવિરમણ અને અસ્તાવાન-
વિરમણ, આ બન્ને મહાવ્રતરૂપ ધર્મ બાદિ આ માટે સ્વતન્ત્રરૂપથી કહેવાયેલ
નથી કે તેને અતર્ભાવ પરિગ્રહવિરમણરૂપ મહાવ્રતમાં કરાયેલ છે.

યદ્વા-યામા=અવસ્થાવિશેષાસ્ત્રયસ્તે યથા-અષ્ટવર્ષાદાત્રિશત એકા (૧), તત્ પષ્ટિવર્ષપર્યન્તં દ્વિતીયા (૨), તત્ ऊर्ध्वं તૃતીયેતિ, ઉદાહૃતાઃ=કથિતાઃ, એતેનાતિ-
વાલ-વૃદ્ધયોર્નિરાસઃ, તિસૃષ્વેવાયસ્થાસુ ધર્માદ્યાચરણસ્ય સમ્ભવાત્ ।

અથવા-‘યામાઃ’ યમ્યતે=વિરમ્યતે સસારપરિભ્રમણાદેભિરિતિ યામાઃ=જ્ઞાના-
દયસ્ત્રયઃ કથિતાઃ, કિમેતેનેત્યાહ-‘યેષ્વિ’-ત્યાદિ, યેષુ=વયોવિશેષેષુ ત્રિપુ જ્ઞાના-
દિષુ વા સંબુદ્ધ્યમાનાઃ=ધર્માચરણાવસરં મોક્ષં વા જાનાનાઃ, ઇમે=આર્યા દ્રવ્ય-ક્ષેત્ર
-કાલ-ભાવભેદેન ચતુર્વિધાસ્તે સમુત્થિતાઃ=તપઃસયમાચરણાદૌ પ્રવૃત્તાઃ, કે ?
યે પાપેષુ=પાપજનકેષુ પ્રાણાતિપાતાઘષ્ટાદશસ્થાનેષુ કર્મસુ નિવૃત્તાઃ=કપાયાપન-

અથવા—અવસ્થાવિશેષોંકા નામ બી યામ હૈ, વે તીન હૈ—
આઠ વર્ષસે લગા કરતીસ વર્ષ તક પ્રથમ, એકતીસ વર્ષસે લે કર ૬૦ વર્ષ
તક દ્વિતીય, ઓર ઉસસે આગે તૃતીય । ઇસસે યહ ધ્વનિત
હોતા હૈ કિ અતિબાલ ઓર અતિવૃદ્ધ અવસ્થા ધર્માચરણકે યોગ્ય
નહીં હૈ । ઇન તીનોં હી અવસ્થાઓંમેં ધર્માચરણકી સંભાવના હૈ ।

અથવા—સસારકા પરિભ્રમણ જિનસે ઇસ જીવકા રુક જાતા હૈ
ઉનકા નામ બી યામ હૈ । એસે યે યામ જ્ઞાનાદિક તીન હૈ । જિન વયોવિ-
શેષ યા જ્ઞાનાદિકત્રયમેં સંબુદ્ધ્યમાન, ધર્મકે આચરણકે અવસરકો અથવા
મોક્ષકો જાનતે હુએ યે દ્રવ્ય, ક્ષેત્ર, કાલ ઓર ભાવકે ભેદસે ચાર પ્રકારકે
આર્યજન મુનિરાજ કિ જો પાપજનક પ્રાણાતિપાતાદિક રૂપ ૧૮ પાપસ્થાનોંમેં
કષાયકે દૂર હોનેસે શાન્ત-આસ્રવસે નિવૃત્ત હૈ, વે તપ ઓર સંયમકે

અથવા—અવસ્થાવિશેષોનુ નામ પણુ યામ છે તે ત્રણુ છે આઠ વર્ષથી
માડી ત્રીસ વર્ષ સુધી પ્રથમ, એકત્રીસ વર્ષથી માડી ૬૦ વર્ષ સુધી દ્વિતીય અને
તેનાથી આગળ તૃતીય આથી એ ક્ષણિત થાય છે કે અતિબાળ અને અતિવૃદ્ધ અવસ્થા
ધર્માચરણુને યોગ્ય નથી આ ત્રણુ અવસ્થાઓમા ધર્માચરણુની સલાવના છે

અથવા—સસારનુ પરિભ્રમણુ જેનાથી આ જીવનુ અટકી જાય છે તેનું
નામ યામ છે આવા એ યામ જ્ઞાનાદિક ત્રણુ છે જે વયોવિશેષ અથવા જ્ઞાના-
દિક ત્રયમા સંબુદ્ધ્યમાન, ધર્મના આચરણુને અવસરને અથવા મોક્ષને બાણનારા,
દ્રવ્ય, ક્ષેત્ર, કાળ અને ભાવના ભેદથી ચાર પ્રકારના એક આર્યજન મુનિરાજ કે જે
પાપજનક પ્રાણાતિપાતાદિકરૂપ ૧૮ પાપસ્થાનોમા કષાયના દૂર થવાથી શાંત છે-
આસ્રવથી નિવૃત્ત છે તે તપ અને સયમના આચરણુ આદિમા પ્રવૃત્ત થાય છે

યનેન શાન્તાઃ, આસ્રવનિજ્ઞતા इत्यर्थ, તેમાં રાગાદિવિષયહેતુવાં ન સમ્મથનિ, અતઃ
एव ते अनिदानाः=द्रव्य-भाव-निदानरहिताः, તપ્ત દ્રવ્યનિદાન માતા-પિતા-પુત્ર-
પુત્રપ્રાદિ-વિષયક ધન-ધાન્યાદિવિષયક ચ, માવનિદાન વિષયકપાપાદિકં ષેતિ
द्विविधनिदानज्ञानपरायणास्ते व्याख्याता=कथिताः ॥ सू० ४ ॥

કસ્મિંસ્તે નિવાનરહિતાઃ ? इति दर्शयति—‘उद्ध’ इत्यादि ।

મૂઝ્મ-उद्ध अहं तिरियं दिसासु सव्वओ सव्वावति च
ળ પાટિયકં જીવેહિં કમ્મસમારમ્ભે ણ, ત પરિણાય મેહાવી નેવ
સય ષ્પહિં કાપ્પહિં દંઢ સમારમ્ભિજ્ઞા, નેવજ્ઞે ષ્પહિં કાપ્પહિં
દંઢ સમારમ્ભાવેજ્ઞા, નેવન્ને ષ્પહિં કાપ્પહિં સમારમ્ભતેઽવિ સમણુ
જાણેજ્ઞા । જે અન્ને ષ્પહિં કાપ્પહિં દંઢ સમારમ્ભતિ તેસિં પિ
થય લહ્હજામો, તં પરિન્નાય મેહાવી ત વા દંઢ અન્નવા દંઢ નો
દહમી દંઢ સમારમ્ભિજ્ઞાસિ-સિવેમિ ॥ सू० ५ ॥

છાયા—ऊर्ध्वमवस्थिर्यगुं विष्णु सवतः सर्वाद्य च लक्ष्यप्रत्येकं नीचपु कर्मसमारम्भः
લહ્હ, ત પરિણાય મેહાવી નેવ સ્વયમેતેપુ દંઢ સમારમેત, નેવાન્યેરેતેપુ કાપેપુ દંઢ
સમારમ્ભયેત, નેવાન્યેરતપુ કાપેપુ દંઢ સમારમમાણાનપિ સમ્મજ્ઞાનીયાત્, એ
વાન્યે પતેપુ કાપેપુ દંઢ સમારમ્ભતે તૈરપિ થયં સજ્ઞામહ, તં પરિણાય મેહાવી
ત વા દંઢમન્ય વા ના દંઢમીદંઢ સમારમયા, इति प्रवीमि ॥ सू० ५ ॥

આચરણ આદિમેં પ્રવૃત્ત હોતે હેં । इनके रागादिक जो बचके कारण हैं वे
नहीं होत हैं । इसीलिये ये द्रव्य और भावके भेदसे दोनों प्रकारके नि
दानोंके बिनाश करनेमें तत्पर कहे गये हैं । माता, पिता, पुत्र और स्त्री
आदि स्वजनविषयक, और धन-धान्य आदि परिग्रहविषयक द्रव्य
निदान, एवं विषयकपापादिविषयक भावनिदान होता है ॥ सू० ४ ॥

और मी किसमें वे निवानरहित होते हैं ? इस विषयको सूत्रकार
कहते हैं—“उद्धं अहं” इत्यादि—

તેને રાગાદિક ૭ બંધન કારણ છે તે બંધન નથી, જેથી તે દ્રવ્ય અને ભાવ ના
બેદથી બે પ્રકારના નિદાનોનો વિનાશ કરવામાં તત્પર કહેવાયેલ છે માતા,
પિતા, પુત્ર અને સ્ત્રી આદિ સ્વજનવિષયક, અને ધન ધાન્ય આદિ પરિગ્રહ-
વિષયક દ્રવ્ય નિદાન છે અને વિષયકપાપાદિવિષયક ભાવનિદાન હોય છે. (સૂ. ૪)

નીચ કયા કયામાં નિદાનરહિત હોય છે ? આ વિષયને સૂત્રકાર કહે છે—
“उद्धं अहं” इत्यादि.

ટીકા—‘ઊર્ધ્વ’મિત્યાદિ—ઊર્ધ્વમધસ્તિર્યગ્ દિશુ સર્વતઃ=સર્વપ્રકારેણ ‘સંવાવંતિ’ઈતિ સર્વાસુ ‘ચ’ શબ્દાદ્ વિદિશા સદ્ગ્રહસ્તેન વિદિશુ—इत्यर्थः, खलु=निश्चयेन प्रत्येक जीवेषु=सूक्ष्मवादरादिषु प्रत्येकं प्राणिषु यः कर्मसमारम्भः=प्राणिविराधनारूपः खलु=निश्चयेन अस्ति। मेधावी=विदितप्राण्युपमर्दनजनितकटुकफलः, तं=कर्मसमारम्भ परिज्ञाय=ज्ञपरिज्ञया ज्ञात्वा प्रत्याख्यानपरिज्ञया परिहृत्य च स्वयम् एतेषु कायेषु=षड्जीवनिकायेषु दण्ड=मनोवाक्यैर्जीवविराधनारूपं नैव समारभेत=नैव कुर्यादित्यर्थः। अपि च—स एव एतेषु कायेषु=चतुर्दशभूतग्रामवर्तिषु जीवेषु अन्यैर्दण्डं न समारम्भयेत्=न कारयेत्, एतेषु कायेषु दण्डं समारभमाणानप्यन्यानैव समनुजानीयात्=नानुमोदयेत् । ये वाऽन्ये दण्डं समारभन्ते तैः=दण्डसमारम्भविधायिभिः सह वक्तु-

ઊર્ધ્વ, અધઃ ઔર તિર્યગ્ દિશાઓમેં, સર્વ પ્રકારસે પૂર્વ, પશ્ચિમ, ઉત્તર ઔર દક્ષિણ દિશાઓમેં, ઔર “ચ” શબ્દસે ગૃહીત વિદિશાઓમેં વર્તમાન સૂક્ષ્મ ઔર ચાદર આદિકકે ભેદસે ૧૪ પ્રકારકે પ્રત્યેક જીવોમેં જો પ્રાણિયોંકી વિરાધનારૂપ કર્મસમારંભ હૈ, મેધાવી—જિસને પ્રાણિયોંકી હિંસાસે ઉત્પન્ન કટુક પરિણામ જાન લિયા હૈ એસા મેધાવી (બુદ્ધિમાન) મુનિ—ઉસ કર્મસમારંભકો જ્ઞપરિજ્ઞાસે જાનકર ઔર પ્રત્યાખ્યાનપરિજ્ઞાસે ઉસકા પરિત્યાગ કર ષડ્જીવનિકાયોંકે વિષયમેં મન, વચન ઔર કાયસે જીવવિરાધનારૂપ દણ્ડકા સમારંભ ન કરે, દૂસરોંસે ઇન ૧૪ પ્રકારકે જીવોંમેં દણ્ડકા આરંભ ન કરાવેં, ઔર જો ઇનકે વિષયમેં સમારંભ કર રહે હૈં ઊનકી અનુમોદના મી ન કરે । અંતમેં શિષ્યકો સબોધિત કરતે હુણ સૂત્રકાર કહતે હૈં કિ જો અન્ય પ્રાણી ષડ્જીવનિકાયોંમેં દણ્ડ

ઉર્ધ્વ, અધઃ અને તિર્યગ્ દિશાઓમા સર્વ પ્રકારથી પૂર્વ, પશ્ચિમ, ઉત્તર અને દક્ષિણ દિશાઓમા “ચ” શબ્દથી ગૃહીત વિદિશાઓમા વર્તમાન સૂક્ષ્મ અને બાહર આદિના ભેદથી ૧૪ પ્રકારના પ્રત્યેક જીવોમા જે પ્રાણીઓની વિરાધનારૂપ કર્મસમારંભ છે, મેધાવી—જેણે પ્રાણીઓની હિંસાથી ઉત્પન્ન કટુક પરિણામ ભણી લીધું છે એવા બુદ્ધિમાન—મુનિ કર્મસમારંભને જ્ઞપરિજ્ઞાથી ભણી અને પ્રત્યાખ્યાનપરિજ્ઞાથી તેનો ત્યાગ કરી સ્વયં ષડ્જીવનિકાયો વિષે મન, વચન અને કાયથી જીવવિરાધનારૂપ દડનો સમારંભ ન કરે, બીજાઓથી આવ્યા ૧૪ પ્રકારના જીવોમા દડનો આરંભ ન કરાવે અને જે તેનો સમારંભ કરે છે તેની અનુમોદના ન કરે અતમા શિષ્યને સબોધિત કરીને સૂત્રકાર કહે છે કે—જે અન્ય પ્રાણી આ ષડ્જીવનિકાયોમા દડનો સમારંભ કરે છે,

मपि नयं स्वप्नामहे; किञ्चित् तद्विमितानुमोदनम्, इत्थं कृतनिश्चयः मधावी=
साधुमर्यादास्थितः—‘दण्डमी’ दण्डात्=प्राणिविराधनारूपात् विमतीति दण्डमी=
प्राणातिपातमीरुः सन् तम्=अनर्थकरं कर्मसमारम्भं परिहृत्य=अपरिहृत्या हास्या
मेधावी तं=पूर्वोक्तं प्राणातिपातादिरूपं दण्डमन्यं वा दण्डं न समारम्भः=त्वं न कुरुष्व
—भ्रिकरण—त्रियोगैस्त्वं सर्वथा परित्यज्यरित्याश्रयः । ‘इति व्रवीमी’ त्यस्यायं सूक्त
एवति॥ सू० ५ ॥

॥ इति अष्टमाध्यायनस्य प्रथम उद्देशः समाप्तः ॥८-१॥



का समारम्भ करते हैं साधुजनोका यह दण्ड निश्चय होता है कि वे यह
विचार कर उनके कृत्यकी प्रशंसा नहीं करते हैं कि जब हम इनके साथ
बोलचालकर्में लजाते हैं तो इनके कृत्यकी प्रशंसा कैसे कर सकते हैं ?
इसलिये हे शिष्य ! तुम श्री साधुमर्यादाके पालक हो और प्राणियोंकी
विराधनारूप दण्डसे भीरु हो, अतः इस अनर्थकर प्राणातिपातादिरूप
दण्डका तथा अन्य दण्डका तुम तीव्र करण और तीन योगसे सर्वथा
परित्याग करो ॥ सू० ५ ॥

॥ आठवां अध्यायनका पहला उद्देश समाप्त ॥ ८-१ ॥



साधुजनानो कोचो दण्ड निश्चय होय छ के तेजो विचार करी तेना कृत्यकी
प्रशंसा करत नही, केम के ज्यारे जमे तेनी साथे बोलचाला पक्ष शरभ
जुलनीये छीजे तो पार तेना कृत्यकी प्रशंसा केवी रीते यथ शके ? भाटे दे
शिष्ये ! तमे पक्ष साधुमर्यादा पालक छे जने प्राणीजोनी विराधनारूप दण्ड
भीरु छे भाटे जथा जलज करी प्राणातिपात—आदिहृष दहने तथा अन्य दहने
तमे त्रक्ष करत जने त्रक्ष येजोभी सर्वथा परित्याग करे (सू ५)

आठमा अध्यायनको पहलो उद्देश समाप्त ॥ ८-१ ॥



। अष्टमाध्ययनस्य द्वितीय उद्देशः ।

उक्तः प्रथमोद्देशः, सम्प्रति द्वितीय आरम्भ्यते । अस्य च पूर्वोद्देशेन सहायमभि सम्बन्धः, पूर्वोद्देशे विशुद्धसंयमनिर्वाहाय कुट्टष्टिपरिहार उक्तः, स चाऽकल्प्य परिहारं विना न संभवति, तत्सम्बन्धेनास्मिन्नुद्देशे चाकल्प्यपरित्याग एव प्रतिपादनीयोऽस्ति । तत्र पूर्वमकल्प्यपरिहारविधिं दर्शयति—‘ से भिक्खू ’ इत्यादि—

मूलम्—से भिक्खू परिक्रमिज्ज वा, चिट्ठिज्ज वा, निसीइज्ज वा, तुयट्ठिज्ज वा, सुसाणंसि वा, सुन्नागारंसि वा, गिरिगुहंसि वा, रुक्खमूलंसि वा, कुंभाराययणंसि वा, हुरत्था वा, कहिंचि विहरमाणं तं भिक्खुं उपसंकमिच्चु गाहावई बूया—आउसंतो ! समणा ! अहं खलु तव अट्ठाए असणं वा, पाणं वा, खाइमं वा, साइमं वा, वत्थं वा, पडिग्गहं वा, कंबलं वा, पायपुच्छणं

आठवें अध्ययनका दूसरा उद्देश ।

प्रथम उद्देश कहा जा चुका । अब द्वितीय उद्देशका प्रारम्भ होता है ।

इसका पूर्व उद्देशके साथ सम्बन्ध इस प्रकारसे है—प्रथम उद्देशमें विशुद्ध संयमके निर्वाहके लिये मुनिको जो मिथ्यादृष्टियोंका परिहार करना कहा है वह अकल्पनिक अशनादिक परिहारके विना संभवित नहीं होता है इसलिये विशुद्ध संयमके साथ सम्बन्ध रखनेसे इस उद्देशमें अकल्पनिक अशनादिकका परित्यागसम्बन्धी वर्णन है । उसमें सर्व प्रथम सूत्रकार अकल्पनिकके परिहारको विधिका प्रदर्शन करते हैं—“ से भिक्खू ” इत्यादि ।

આઠમા અધ્યયનનો બીજો ઉદ્દેશ

પ્રથમ ઉદ્દેશ કહેવાઈ ગયો છે હવે બીજા ઉદ્દેશનો પ્રારંભ થાય છે આનો પૂર્વ ઉદ્દેશની સાથે સબંધ આ પ્રકારનો છે—પ્રથમ ઉદ્દેશમાં વિશુદ્ધ સંયમના નિર્વાહ માટે મુનિએ મિથ્યાદૃષ્ટિઓનો પરિહાર કરવાનું કહ્યું છે તે અકલ્પનિક અશનાદિકના પરિહાર વિના સંભવિત બનતું નથી, આ માટે વિશુદ્ધ સંયમની સાથે સબંધ રાખવાથી આ ઉદ્દેશમાં અકલ્પનિક અશનાદિકના પરિત્યાગસબંધી વર્ણન છે આમાં સર્વ પ્રથમ સૂત્રકાર અકલ્પનિકના પરિહારની વિધિનું પ્રદર્શન કરે છે—“ સે ભિક્ખૂ ” ઇત્યાદિ

वा, पाणाहं भूयाहं जीवाहं सत्ताहं समारब्ध समुद्दिस्त कीय
पामिच्च अच्छिज्ज अणिसिद्धं अमिहहं आहहं चेपमि, आवसहं
वा समुस्सिणोमि से भुजह वसह आउसतो! समणा! भिक्खूतं
गाहावहं समणस सवयस पढियाहक्खे—आउसतो ! गाहावहं !
नो खलु ते वयण आदामि, नो खलु ते वयण परिजाणामि जो
तुमं मम अद्वाप असण वा ४, वत्थवा ४, पाणाहं वा ४, समारब्ध
समुद्दिस्त कीय पामिच्च अच्छिज्ज अणिसिद्धं अमिहहं आहहं
चेपसि आवसह वा, समणुस्सिणामि से विरओ आउसो !
गाहावहं ! एयस्स अकरणयाप ॥ सू० १ ॥

छाया—स मिद्ध पराक्रमेत् वा सिध्देद्वा निवीदेद्वा स्वस्वर्तयेद्वा स्मशाने वा
गुण्यागारे वा गिरिगुहायां वा वृक्षमूले वा कुम्भकारायतने वा दुरत्या वा क्व
चिद्विरन्तं तं मिद्धपसंक्रम्य गाथापठिर्हयात्—आयुप्पन् ! भमण ! अहं खलु तथा
वांयाधनं वा पानं वा स्वाद्यं वा स्वाद्यं वा वस्त्रं वा पल्लवप्रदं वा कम्बलं वा पादप्रा
च्छनं वा प्राणिनो भूतान् जीवान् सत्त्वानि समारभ्य समुद्दिश्य कीर्तं प्राप्तिस्वम्
आच्छिप्यम् अनिष्टपम् अमिहत्तम् आहस्य ददामि, आवससं समुप्पुजोमि तव भूस्स
वस आयुप्पन् ! भमण ! । मिद्धस्तं गाथापठिं समनसं सवयसं प्रत्यावसीत—आयुप्पन् !
गाथापठ ! न खलु ते वचनमादिशे न खलु ते वचनं परिजानामि, यस्सं ममार्याप
वसनं वा ४ वस्त्रं वा ४ प्राणिनो वा ४ समारभ्य समुद्दिश्य कीर्तं प्राप्तिस्वम् आच्छि-
प्यम् अनिष्टपम् अमिहत्तम् आहस्य ददामि, आवससं वा समुप्पुजोपि, सोअं
विरत आयुप्पन् ! गाथापठ ! एतस्याकरणतया ॥ सू० १ ॥

इसमें ये जितने कल्प प्रकट किये गये हैं व सब प्रतिभाप्रतिपक्ष
साधुकी अपेक्षा से कहे गये हैं। अन्य साधुजनमें भी ये यथासंभव
जान लेना चाहिये। सूत्रकार 'इसमें मुनिजनके लिये इस प्रकारका आहार
अकल्पनिक है' यह बातलाते हैं—

अर्थात् नेटला इत्य भगवत् इत्यादी अपेक्षिते ते तथा प्रतिभाप्रतिपक्ष साधुकी
अपेक्षाधी कहेवाया है. अन्य साधुजनोभा पक्ष को यथासंभव समज्ज्या लेखने.
सूत्रकार आभा मुनिजनने भाटे 'को प्रकारका आहार अकल्पनिक है' ते. जतावे है—

ટીકા-‘ સ મિશ્રુ ’-રિત્યાદિ, સઃ=ગૃહીતપશ્ચમહાવ્રતઃ, પરિજ્ઞાશિખરિશિખર-સમારૂઢઃ સકલસમારમ્ભોપરતઃ મિશ્રુઃ=શરીરયાત્રાનિર્વહણાર્થમશનવસનાદિયાચન-શીલો મુનિઃ ‘શ્મશાને’ શવાઃ શેરતે યત્ર તત્ શ્મશાનમ્, અત્ર ‘વા’ શબ્દઃ સર્વત્ર પક્ષાન્તરઘોતકઃ । તથા શૂન્યાગારે=નિર્જનગૃહે ગિરિગુહાયા=પર્વતરુન્દરાયા વૃક્ષમૂળે =તરુમૂળે, કુમ્ભકારયતને=કુમ્ભકારાશાલાયાં ‘હુરત્યા’ ઇતિ દેશભાષયા પૂર્વોક્તસ્થાનેભ્યોઽન્યત્ર વા કુત્રચિત્ સ્થાને પરાક્રમેત=તપઃસંયમાચરણાદૌ પરાક્રમં કુર્યાત્, વિહરેદિત્યર્થ, તિષ્ઠેદ્વા ધ્યાનાદિવિધાનાય, નિપીદેદ્વા વાચના-પૃચ્છના-પરિવર્તનાદિકરણાય ઉપવિશેત્, અપિ ચાધ્વસ્વેદસમાપન્નઃ સ ત્વગ્વર્તયેત્=ત્વગ્વર્તન કુર્યાત્, પાશ્વં પરિવર્તયેદિત્યર્થઃ । એતે ચ કલ્પાઃ પ્રતિમાપ્રતિપન્નમધિકૃત્ય પ્રોક્તાઃ, અન્યેષા તુ યથાસમ્ભવ વોધ્યમ્ । ગાથાપતિઃ=ગૃહસ્થઃ=સ્વીકૃતસમ્યક્ત્વસાધ્વાચારા-નભિજ્ઞઃ પ્રકૃતિભદ્રસ્તત્ર તત્ર સ્થાનેષુ વિહરન્તં=વિચરન્તં મુનિમ્ ઉપસંક્રમ્ય=મુનિસ-

પાંચ મહાવ્રતોંકા ધારક, પરિજ્ઞારૂપી પર્વતકી શિખર પર સમારૂઢ સમસ્ત સમારમ્ભોંસે નિવૃત્ત મિશ્રુ શરીરયાત્રાકે નિર્વાહકે લિયે હી અશન, વસન (વસ્ત્ર) આદિકી યાચના કરનેવાલા મુનિ ધ્યાન આદિ કરનેકે નિમિત્ત, યા આગમકી વાચના, પૃચ્છના ઓર પરિવર્તના આદિ કરનેકે નિમિત્ત અથવા અપને ગૃહીત તપ ઓર સંયમકી વિશેષ આરાધનાકે નિમિત્ત કબી શ્મશાનયેં જાતા હૈ, કબી શૂન્ય ગૃહમેં ઠહરતા હૈ કબી પર્વતકી ગુફામેં વસતા હૈ ઓર કબી કિસી વૃક્ષકે નીચે ઓર કબી કિસી કુંભારકી શાલામેં યા ઓર મી કહીંં ઇન સ્થાનોંસે અતિરિક્ત સ્થાનોંમેં તથા માર્ગજનિત પરિશ્રમકો દૂર કરનેકે લિયે વિશ્રામકે નિમિત્ત મી ઇન્હીંં સ્થાનોંમેંસે કહીંં ઠહર જાતા હૈ । ઇસ પરિસ્થિતિસે સમ્પન્ન વિહાર કરનેવાલે મુનિકે પાસ પ્રકૃતિકે ભદ્ર સમ્યગ્દષ્ટિ કોઈ ગૃહસ્થ જો મુનિકે આચારસે

પાય મહાવ્રતોના ધારક, પરિજ્ઞાસ્થી પર્વતના શિખર પર સમારૂઢ અને સમસ્ત સમારભોમાથી નિવૃત્ત મિશ્રુ-શરીર યાત્રાના નિર્વાહ માટે જ અશન, વસન આદિની યાચના કરવાવાળા મુનિ-ધ્યાન આદિ કરવા નિમિત્ત, અગર આગ મની વાચના, પૃચ્છના અને પરિવર્તના આદિ કરવા નિમિત્ત, અથવા પોતે ધારણ કરેલ તપ અને સયમની વિશેષ આરાધનાના નિમિત્ત ક્યારેક શ્મશાનમા જાય છે, ક્યારેક ઉજ્જડ મકાનમા રહે છે, ક્યારેક પર્વતની ગુફામા વસે છે અને ક્યારેક કોઈ વૃક્ષની નીચે અને કુંભારની શાળામા અથવા બીજા કોઈ સ્થાનોમા તથા માર્ગની થાકને દૂર કરવા માટે વિશ્રામ નિમિત્તે પણ એજ સ્થાનોમાથી કંઈપણ રહી જાય છે આ પરિસ્થિતિથી સ પન્ન વિહાર કરવાવાળા મુનિની પાસે પ્રકૃતિથી

મીપમાગત્ય 'અર્થ સાનુક્રોશઃ કામાભાસત્યોપી મિશ્રોપજીવી પરોપકારપરાયણો
સ્તિ તસ્માદેવસ્યૈ સર્વમષનાદિકં શાસ્યામી' -તિ ચેતસિ વિચિન્ત્ય ચ મ્રુમાત્=મત્સ્યમાત્
પ્રાક્યં કયયેત્, તદ્વાહ-આયુષ્મન્! અમમ!-ઓ મુને! અહં સંસારપારાત્રાપારં
નિગમિષુઃ 'સ્વત્' વાક્ષ્યામ્કારે તથાર્થાય=મત્સ્યમ્ સર્વમ્ અશ્વનં પાનં સ્વાધં સ્વાધં ખતુ
વિષમપ્પાદારમ્, તથા વસ્ત્રં પત્ત્વમ્ કમ્બલ પાદમોઢનં સ્મૃદિશ્ચ=મત્સ્યમ્કારે
પર્વે પ્રાપ્તિનો મૃતાનિ=જીવાન્ સસ્વાનિ સમારમ્ય=મિરામ્ય સમ્પાદિતમ્ અશ્વનાદિ
પ્રમ્પાદને પદ્મીવનિકાંયપિરામનાયા અવ્યમ્માવાત્, તદ્વશનાદિકં ક્ષીર્વં=મૂર્યેન,
પ્રામિત્યમ્=અપમિત્યમ્ચિહ્નતયા ઘૃતીતમ્, ક્ષાપ્તિયં=અઘાત્કારેણ યદ્ દુર્ધસ્યદ્ યુ

અનમિત્ત હૈ વહ આકર હસ કપાલસે કિ "યહ સાધુ સાનુક્રોશ લાભ
ઔર અભાસમેં સંતોષી મિશ્રોપજીવી તથા પરોપકારમેં નિરત હૈ હસ કારણ
હસકે લિપ મેં અશ્વન વસનપુરિક હું " હસ ભાવનાસે પ્રેરિત હોકર પેંસા
કહતા હૈ કિ-હે આયુષ્મન મુને! મેં સંસારરૂપી સમુદ્રસે પાર હોજેચા હું, અતઃ
આપકે લિપે સમસ્ત અશ્વન, પાન, સ્વાધ, સ્વાધ, યે ચાર પ્રકારકા આહાર,
તથા વસ્ત્ર, પાત્ર, કમ્બલ ઔર રજોહરણ દેના ચાહતા હું। યે સમસ્ત વસ્તુપે
મેંને આપકે હરેશસે હી રહ છોકી હૈ। હનકી તૈયારી કરનેમેં અથવા સંગ્રહ
કરનેમેં અનેક પ્રાણીયો મૃતોં જીવોં ઔર સર્વોંકી પિરામના હુઈ હૈ, કપોં
કિ પદ્મકાપકે જીવોંકી પિરામના હુપુ બિના હનકી વત્પત્તિ હો જી કૈસે
સક્તી હૈ, આપકો દેનેકે લિપે હી મેંને હનૈં મૂલ્ય દે કર સરીવા હૈ,
હન વસ્તુઓંકો મેંને યેન કેન પ્રકારેણ લગાર હે કર હનૈં રહ્યા હૈ।
વહાત્કારસે છીન કર હનકા સંગ્રહ કિયા હૈ। મેરે ઘરમેં હન વસ્તુ-

હસ અમ્યમ્કારે ક્રોધ મુદ્ધસ્ય હે મુનિન્દ્રા આપારથી અભાવ છે તે આવીને આપા ખ્યાલથી
હે "આ સાધુ સાનુક્રોશ લાભ અને અભાસમાં સંતોષી, મિશ્રોપજીવી, તથા પરોપકારમાં
નિરત છે આ કારણે આને હું અતઃ વસ આપુ " અથવા આવી કાવનાથી પ્રેરિત બની
સાધુ સમક્ષ આવી વહના કરી કહે છે-હે આયુષ્મન મુને! હું સંસારરૂપી
સમુદ્રથી પાર થવાનો અભિલાષી છું આપના માટે અશ્વન, પાન, પાત્ર, સ્વાધ
અથવા પ્રકારના આહાર તથા વસ્ત્ર પાત્ર, કમ્બલ અને રજોહરણ દેવા ચાહું
હું આ બધી વસ્તુઓ મેં આપના હરેશથી જ રાખી છે આની તૈયારી કર-
વામાં અથવા સંગ્રહ કરવામાં અનેક પ્રાણીઓ, મૃતો, લુપ્ત અને સત્વેની
વિરપના થઈ છે, કેમ કે પદ્મકાપા લુપ્તની પિરામના થયા હિના ભેની કત્પત્તિ
અર્થ પદ્મ કેમ શકે? આપને આપના માટે જ મેં આ વસ્તુઓ
મૂલ્ય હવે ખરીદી છે, આ બધી વસ્તુઓ વૃષ્ટીથી હાથને મળેલ છે,
અગત્યકારથી દુર્બળોથી છીનવી બેનો સમક્ષ કરેલ છે. માત્ર પરમ્

ટીકા-‘ સ ભિક્ષુ ’-રિત્યાદિ, સઃ=ગૃહીતપશ્ચમદ્વાવ્રતઃ, પરિજ્ઞાશિરપરિગિલ્લ-
સમારુઢઃ સઃકલસમારમ્ભોપરતઃ ભિક્ષુઃ=શરીરયાત્રાનિર્વહણાર્થમગનવસનાદિયાચન-
શીલો મુનિઃ ‘સ્મશાને’ શયાઃ શેરતે યત્ર તત્ સ્મશાનમ્, ‘અ’ ‘વા’ શબ્દઃ સર્વત્ર
પક્ષાન્તરઘોતકઃ । તથા શૂન્યાગારે=નિર્જનગૃહે ગિરિગુહાયા=પર્વતકન્દરાયા વૃક્ષમૂળે
=તરુમૂળે, કુમ્ભકારયતને=કુમ્ભકારાશાલાયા ‘દુરત્યા’ ઇતિ દેશમાપયા પૂર્વો-
ક્તસ્થાનેભ્યોઽન્યત્ર યા કુત્રચિત્ સ્થાને પરાક્રમેત=તપઃસંયમાચરણાદૌ પરાક્રમ
કુર્યાત્, વિહરેદિત્યર્થ, તિષ્ઠેદ્વા ધ્યાનાદિપ્રધાનાય, નિપીદેદ્વા માચના-પૃચ્છના-
પરિવર્તનાદિકરણાય ઉપવિશેત્, અપિ ચાધ્વચ્ચેદસમાપન્નઃ સ ત્વગ્વર્તયેત્=ત્વગ્વર્તન
કુર્યાત્, પાર્શ્વ પરિવર્તયેદિત્યર્થઃ । एते च कल्पाः प्रतिमाप्रतिपन्नमधिकृत्य प्रोक्ताः,
અન્યેષા તુ યયાસમ્ભવ વોધ્યમ્ । ગાથાપતિઃ=ગૃહસ્થઃ=સ્વીકૃતસમ્યક્ત્વસાધ્યાચારા-
નભિજ્ઞઃ પ્રકૃતિભદ્રસ્તત્ર તત્ર સ્થાનેષુ વિહરન્ત=વિચરન્ત મુનિમ્ ઉપસક્રમ્ય=મુનિસ-

પાંચ મહાવ્રતોકા ધારક, પરિજ્ઞારૂપી પર્વતકી શિખર પર સમારુઢ
સમસ્ત સમારમ્ભોસે નિવૃત્ત ભિક્ષુ શરીરયાત્રાકે નિર્વાહકે લિયે હી
અશન, વસન (વસ્ત્ર) આદિકી યાચના કરનેવાલા મુનિ ધ્યાન આદિ
કરનેકે નિમિત્ત, યા આગમકી વાચના, પૃચ્છના ઓર પરિવર્તના આદિ
કરનેકે નિમિત્ત અથવા અપને ગૃહીત તપ ઓર સયમકી વિશેષ આરા-
ધનાકે નિમિત્ત કમી સ્મશાનમે જાતા હૈ, કમી શૂન્ય ગૃહમે ઠહરતા હૈ
કમી પર્વતકી ગુફામે વસતા હૈ ઓર કમી કિસી વૃક્ષકે નીચે ઓર કમી
કિસી કુભારકી શાલામે યા ઓર મી કહીં ઇન સ્થાનોસે અતિરિક્ત સ્થાનોમેં
તથા માર્ગજનિત પરિશ્રમકો દૂર કરનેકે લિયે વિશ્રામકે નિમિત્ત મી ઇન્હીં
સ્થાનોમેંસે કહીં ઠહર જાતા હૈ । इस परिस्थितिसे सम्पन्न विहार करनेवाले
મુનિકે પાસ પ્રકૃતિકે ભદ્ર સમ્યગ્દષ્ટિ કોઈ ગૃહસ્થ જો મુનિકે આચારસે

પાચ મહાવ્રતોના ધારક, પરિજ્ઞારૂપી પર્વતના શિખર પર સમારુઢ અને
સમસ્ત સમારભોમાથી નિવૃત્ત ભિક્ષુ-શરીર યાત્રાના નિર્વાહ માટે જ અશન,
વસન આદિની યાચના કરવાવાળા મુનિ-ધ્યાન આદિ કરવા નિમિત્ત, અગર આગ
મની વાચના, પૃચ્છના અને પરિવર્તના આદિ કરવા નિમિત્ત, અથવા પોતે ધારણ
કરેલ તપ અને સયમની વિશેષ આરાધનાના નિમિત્ત ક્યારેક સ્મશાનમાં જાય
છે, ક્યારેક ઉજ્જડ મકાનમાં રહે છે, ક્યારેક પર્વતની ગુફામાં વસે છે અને
ક્યારેક કોઈ વૃક્ષની નીચે અને કુભારની શાળામાં અથવા બીજા કોઈ સ્થાનમાં
તથા માર્ગની થાકને દૂર કરવા માટે વિશ્રામ નિમિત્તે પણ એજ સ્થાનોમાંથી કંઈપણ
રહી જાય છે આ પરિસ્થિતિથી સ પન્ન વિહાર કરવાવાળા મુનિની પાસે પ્રકૃતિથી

ટીકા-‘ સ ભિક્ષુ ’-રિત્યાદિ, સઃ=ગૃહીતપશ્ચમહાવ્રતઃ, પરિજ્ઞાશિત્વરિશિત્વ-સમારૂઢઃ સકલસમારમ્ભોપરતઃ ભિક્ષુઃ=શરીરયાત્રાનિર્વહનાર્થમશનવસનાદિયાચન-શીલો મુનિઃ ‘શ્મશાને’ શવાઃ શેરતે યત્ર તત્ શ્મશાનમ્, અત્ર ‘વા’ શબ્દઃ સર્વત્ર પક્ષાન્તરઘોતકઃ । તથા શૂન્યાગારે=નિર્જનગૃહે ગિરિગુહાયાં=પર્વતરુન્દરાયા વૃક્ષમૂલે =તરુમૂલે, કુમ્ભકારયતને=કુમ્ભકારાશાલાયાં ‘હુરત્યા’ ઇતિ દેશમાપયા પૂર્વો-ક્તસ્થાનેભ્યોઽન્યત્ર વા કુત્રચિત્ સ્થાને પરાક્રમેત=તપઃસંયમાચરણાદૌ પરાક્રમં કુર્યાત્, વિહરેદિત્યર્થ, તિષ્ઠેદ્વા ધ્યાનાદિવિધાનાય, નિપીદેદ્વા વાચના-પૃચ્છના-પરિવર્તનાદિક્રણાય ઉપવિશેત્, અપિ ચાત્વસ્વેદસમાપન્નઃ સ ત્વગ્વર્તયેત્=ત્વગ્વર્તનં કુર્યાત્, પાશ્વં પરિવર્તયેદિત્યર્થઃ । एते च कल्पाः प्रतिमाप्रतिपन्नमधिकृत्य प्रोक्ताः, અન્યેષા તુ યથાસમ્ભવ વોધ્યમ્ । ગાથાપતિઃ=ગૃહસ્થઃ=સ્વીકૃતસમ્યક્ત્વસાધ્વાચારા-નભિજ્ઞઃ પ્રકૃતિભદ્રસ્તત્ર તત્ર સ્થાનેષુ વિહરન્તં=વિચરન્તં મુનિમ્ ઉપસંક્રમ્ય=મુનિસ-

પાંચ મહાવ્રતોંકા ધારક, પરિજ્ઞારૂપી પર્વતકી શિખર પર સમારૂઢ સમસ્ત સમારમ્ભોંસે નિવૃત્ત ભિક્ષુ શરીરયાત્રાકે નિર્વાહકે લિયે હી અશન, વસન (વસ્ત્ર) આદિકી યાચના કરનેવાલા મુનિ ધ્યાન આદિ કરનેકે નિમિત્ત, યા આગમકી વાચના, પૃચ્છના ઓર પરિવર્તના આદિ કરનેકે નિમિત્ત અથવા અપને ગૃહીત તપ ઓર સયમકી વિશેષ આરાધનાકે નિમિત્ત કમી શ્મશાનમેં જાતા હૈ, કમી શૂન્ય ગૃહમેં ઠહરતા હૈ કમી પર્વતકી ગુફામેં વસતા હૈ ઓર કમી કિસી વૃક્ષકે નીચે ઓર કમી કિસી કુભારકી શાલામેં યા ઓર મી કહીં ઇન સ્થાનોંસે અતિરિક્ત સ્થાનોંમેં તથા માર્ગજનિત પરિશ્રમકો દૂર કરનેકે લિયે વિશ્રામકે નિમિત્ત મી ઇન્હીં સ્થાનોંમેંસે કહીં ઠહર જાતા હૈ । इस परिस्थितिसे सम्पन्न विहार करनेवाले मुनिके पास प्रकृतिके भद्र सम्यग्दृष्टि कोई गृहस्थ जो मुनिके आचारसे

પાત્ર મહાવ્રતોના ધારક, પરિજ્ઞારૂપી પર્વતના શિખર પર સમારૂઢ અને સમસ્ત સમારભોમાથી નિવૃત્ત ભિક્ષુ-શરીર યાત્રાના નિર્વાહ માટે જ અશન, વસન આદિની યાચના કરવાવાળા મુનિ-ધ્યાન આદિ કરવા નિમિત્ત, અગર આગ મની વાચના, પૃચ્છના અને પરિવર્તના આદિ કરવા નિમિત્ત, અથવા પોતે ધારણ કરેલ તપ અને સયમની વિશેષ આરાધનાના નિમિત્ત ક્યારેક શ્મશાનમાં જાય છે, ક્યારેક ઉજ્જડ મકાનમાં રહે છે, ક્યારેક પર્વતની શુકામાં વસે છે અને ક્યારેક કોઈ વૃક્ષની નીચે અને કુભારની શાળામાં અથવા ખીજ કોઈ સ્થાનોમાં તથા માર્ગની થાકને દૂર કરવા માટે વિશ્રામ નિમિત્તે પણ એજ સ્થાનોમાંથી કંઈક રહી જાય છે આ પરિસ્થિતિથી સ પદ્મ વિહાર કરવાવાળા મુનિની પાસે પ્રકૃતિથી

मीपमागत्य 'अयं सानुक्रोशः कामाक्षामसन्तोषी भिक्षोपजीवी परोपकारपरायणोऽस्ति तस्मादेतस्मै सर्वमश्ननादिकं दास्यामी' -ति चेत्तसि विचिन्त्य च ब्रूयात्=वस्तुमात्रं प्राक्यं कथयेत्, तदेवाह-आयुष्मन् ! भगवन् ! भो मुने ! अहं संसारपाराशरपारं निमग्नः 'स्वत्' वान्पासङ्कारे तथाकाय=मयद्वयं सर्वम् अशनं पानं स्वाद्यं स्वाद्यं चतुर्विधमप्याहारम्, तथा वस्त्रं पतव्यं कम्बलं पादमोच्छनं समुद्दिश्य=मन्तमुद्दिश्य एवं प्राणिनो भूतानि=जीवान् सत्त्वानि समारम्भ=विराग्य सम्पादितम् अश्नानादि सम्पादने पद्विषयनिकायविरागनाया अत्राप्यम्मावात्, तद्वश्ननादिकं क्रीडं=मूत्येन, ग्रामित्यम्=अपमित्यमुच्छिन्नतया पृथीतम्, आच्छिद्यं=वस्त्राकारेण यद् दुर्बलाद् यद्

अनभिज्ञ है वह आफर इस ब्यालसे कि "यह साधु सानुक्रोश लास और अलाममें संतोषी भिक्षोपजीवी तथा परोपकारमें निरत है इस कारण इसके लिए मैं अशन वसनादिक दूँ" इस भावनासे प्रेरित होकर ऐसा कहता है कि-हे आयुष्मन् मुने ! मैं संसाररूपी समुद्रसे पार होनेका हूँ, अतः आपके लिये समस्त अशन, पान, स्वाद्य, स्वाद्य, ये चार प्रकारका आहार, तथा वस्त्र, पात्र, कम्बल और रजोहरण देना चाहता हूँ। ये समस्त वस्तुएँ मैंने आपके उद्देशसे ही रख छोड़ी हैं। इनकी तैयारी करनेमें अथवा संग्रह करनेमें अनेक प्राणियों भूतों जीवों और सत्त्वोंकी विरागना हुई है, क्यों कि बट्कायके जीवोंकी विरागना हुए बिना इनकी उत्पत्ति हो भी कैसे सकती है, आपको देनेके लिये ही मैंने इन्हें सूर्य दे कर खरीदा है, इन वस्तुओंको मैंने येन केन प्रकारेण उधार ले कर इन्हें रखा है। बलात्कारसे छीन कर इनका संग्रह किया है। मेरे घरमें इन वस्तु-

अहं समुद्रादि क्रोशं पुरुषं के मुनिना आचार्यी जन्मसे ते आनीने आपा उभादधी है "आ साधु सानुक्रोश लास अने अलाममां सतोषी, भिक्षोपजीवी, तथा परोपकारमां निरत के आपा उधारसे आने हूँ जल वस्त्र आपा" अत आनी आपनायी शक्ति अनी साधु समस्त वस्तु वस्त्रा करी कहे है-हे आयुष्मन् मुने ! हूँ संसाररूपी समुद्रकी पार बवाने अक्षिताधी हूँ आपा माटे अशन, पान, स्वाद्य, स्वाद्य चार प्रकारका आहार तथा वस्त्र, पात्र, कम्बल अने रजोहरण देना चाहता हूँ आ अभी वस्तुओं के आपना उद्देशधी व शशी है आनी तैयारी कर पामां अथवा संग्रह करवामां अनेक प्राणियों, भूतों, लोको अने सत्त्वोंकी विरागना हुई है हेम के बट्कायला लोको निरागना अथ बिना जेनी उत्पत्ति कर्हि पक्ष हेम कहे ? आपने आपना माटे व मे आप वस्तुओं मूल्य कर्हि खरीदी है, आ अभी वस्तुओं क्रीडी अने सजेव है, अजोकारधी दुर्बलाधी छीनीये जेना संग्रह करेव है, आप मराम

હીતમ્, અનિસ્ટમ્=અનેકસ્વામિકાહારાદિકમન્યાનનાપૃચ્છ્ય તદનિચ્છયૈકેન યદીય માનમ્, અભિહત=સાધુસમીપમાનીય દીયમાનમ્, एतादृशं सर्वमाहारादिकम् आदित्य= આનીય તુમ્ય દદામિ, एवम् आवसथं=उसति वा भवदर्थं समुच्छृणोमि=નવીને વિદ-
ધામિ જીર્ણં वा परिष्करोमि भो आयुष्मन् ! श्रमण ! त्वं तत्तथाभूतमशनादिकं शु-
द्ध्य=અશાન, त्वदर्थं मन्निर्मितभवने च वम=तिष्ठ । मूले बहुवचनमार्यत्वात् । एव-
मुक्तवन्त गाथापतिं निषेधयन्मुनिरेवमाह-भिभुः=मुनिः समनस मनसा सहेति सम-
नास्त=सचेतसम् शोभनमनसा कृतादरं, सवयसं वयसा=वाल्यातिरिक्तेन सह सव-
यास्तं सवयस=वात्येतरावस्थापन्नं तादृश गाथापतिं=गृहस्थं प्रत्यावसीत=वक्ष्यमाण
प्रत्युत्तर दद्यात्—

ભો આયુષ્મન્ ! ગૃહપતે ? અહં તે વચન=પૂર્વોક્ત ન ‘સપ્ત’ શબ્દોઽ-
પ્યર્યે તેન નાપિ આદિયે=ન તત્રાદર કરોમિ, અપિ ચ અહં તે વચનં ન પરિજાનામિ
ઓંકે અનેક માલિક હૈં સો મૈને इन्हें देनेके निमित्त और किसीसे नहीं
પૂછા હૈં—શાયદ ઉનકી इच्छा देनेकी न हो—સો મૈં તો एक ही जनसे
પૂછ કર इन्हें देनेके लिये आपके समक्ष ले आया हूँ । ये आहारादिक
વસ્તુएँ आपके लेनेके योग्य हैं अतः आप इन्हें लीजिये मैं देता हूँ, इसी
પ્રકાર મૈં आपको ठहरनेके लिये एक नवीन मकान बनवाये देता हूँ,
અથવા पुरानेको ही ठीक करवाये देता हूँ, सो आप जैसा मैंने कहा है
उस प्रकारसे अशनादिकको ग्रहण करे और उस मेरे द्वारा बनवाये हुए
મકાનમે રહેં । इस प्रकार कहनेवाले गृहस्थजनके लिये मुनि इस प्रकारसे
નિષેધ કરે—

હે આયુષ્મન્ ગૃહપતે ! આપને જો કુછ કહા હૈં વહ ભક્તિસે ભરે
हुए अंतःकरणसे कहा है—उसमें ऊपरके दिखावकी झलक नहीं है । तथा

આ વસ્તુઓના અનેક માલિક છે પરંતુ આપને દેવા નિમિત્ત મેં કોઈને પૂછ્યું
નથી, કારણ કે કદાચ એમની ઈચ્છા દેવાની ન થાય—ફક્ત એકજ જણને પૂછી દેવા
માટે આપની સમક્ષ લઈ આવેલ છું આહારાદિક વસ્તુઓ આપને લેવા યોગ્ય
છે, આપ એનો સ્વીકાર કરો, હું આપુ છું આ રીતે આપને રહેવા માટે એક
નવું મકાન બનાવી આપુ છું અથવા જુનાને ઠીક કરાવી આપુ છું તો આપ મેં
કહ્યું તેમ અસનાદિકને ગ્રહણ કરો અને મારા બનાવેલા મકાનમા રહો આ
પ્રકારે કહેવાવાળા ગૃહસ્થને મુનિ આ પ્રકારે નિષેધ કરે—

હે આયુષ્માન્ ગૃહસ્થ ! આપે જે કહ્યું તે ભક્તિથી ભરપૂર અંતઃકરણથી
કહ્યું છે, તેમા ઉપરના દેખાવની ઝલક નથી, તથા તમે આલ્સ્ય અવસ્થાને ઉલ્લેખ

भासेवनपरिष्ठाया न समनुजानामि, यस्त्वं ममार्याय=मभिमिच्छ यत् अन्नं=यदुर्विषं
स्त्वं वा=यस्मादिकं प्राणादीन् समारभ्य पञ्जीषनिकायपुष्पमर्थं सम्पादितम्, तथा
समुत्तिष्ठ=माप्नुयिष्य क्रीते प्रामित्यम् आच्छिद्यम् अनिष्टष्टम् अभिहतम् आहत्य
वशासि, भावस्यं वा समुच्छृणोषि=मदर्थं निर्मापयसि किन्तु हे आयुष्मन् ! गृहपते !

तुम वाल्य अवस्थाको उल्लङ्घन भी कर चुके हो इसलिये हम यह भी
नहीं मान सकते कि किसीने तुम्हें समझा बुझाकर हमारे पास भेजा
है, अतः तुम सदैव एवं उमरछापक व्यक्ति हो फिर भी तुम मुनि
के मात्सर विचारोंसे अपरिचित हो इसलिये हम तुम्हें समझाते हैं
कि—आपने जो कुछ आहार आदि सामग्रीके छेनेके विषयमें कहा है,
मैं उन वचनोंको न सुनना चाहता हूं, न आदरकी दृष्टिसे देखता हूं और
न आसेवनपरिष्ठासे उनकी अनुमोदना भी करता हूँ। तुम जो कह रहे
हो कि मैं अन्नानादिक चारों प्रकारका आहार तथा यस्मादिक पञ्जी-
षनिकायको उपमर्दन करके संपादित किया है, तथा मेरे उद्देश्यसे इन्हें
खरीदा है, ये समस्त चीजें तुमने उधार लेकर हमको देनेके लिये इन्हें
रक्त छोड़ी है, यत्नात्कारसे निर्यत्नोंसे इसे छीन झपट कर संग्रह
की है, घरमें इस सामग्रीके अनेक मासिक ये सो किसीसे न पूछ कर
केवल एक ही मनुष्यकी आज्ञा ले कर तुम अपनी इच्छासे हाँ हमें देनेके
लिये इसे लाये हो, तथा एक नवीन मचन भी मुझे करवा देनेके लिये
कह रहे हो, आदि २ व तुम्हारी बातें मुनियोंके योग्य नहीं हैं, इस लिये

करी जवा छे भाटे अमे जे पक्ष भानता नथी के केछिजे तमने समन्वयी
पुनर्वीने जभादी पासो भेकलेल छे भाटे तमे समुद्रय तेमज उमरछापक अवस्थि
छे ते पक्ष तमे मुनिना आवधार विचारणी अपरिचित छे भाटे अमे
तमने समन्वयीके छीजे के आपे के केछि आहारसि साभजी लेवाना विषयभा
कहु छे हु ते वचनोने साकगवा भञ्जतो नथी, आदरनी दृष्टिभी
हेमतो नथी अने आसेवनपरिष्ठाभी तेनी अनुमोदना पक्ष करतो नथी. तमे
के कही रह्य छे के मे जगन्नाथिक चार प्रकारने आहार तथा यस्मादिक पक्ष
पनिकायनु उपमर्दन करीने संपादित करेल छे तथा मारी भिज्यभी खरीदेल छे
आ समस्त चीजे तमे छीनी छनि मने आपवा भाटे कछी मुकेल छे जगन्नाथको
निर्भोजो पसेथी अने आवधी लई सभक करेल छे परमां आ साभजीना
अनेक भावीक कता जेमाथी केछिने न पूछतां केवल केछि आ मायुस्त्री आज्ञा
छनि तमे तमानी भिज्यभी मने आपवा भाटे लावेल छे तेमज के नव

एतस्य=पूर्वोक्तस्य अकरणतया अनासेवनपरिज्ञया सोऽहं विरतः=अकल्पनीयाश-
नादिग्रहणेभ्यो निवृत्तोऽस्मि, पूर्वोक्तं सर्वं मम न कल्पत इति भावः, अतो मर्द-
मुपकल्पितं पूर्वोक्तं सर्वं वस्तुजातं भगवदाज्ञावहिर्भूतत्वात् स्वीकर्तुं न शक्नोमि,
नात्र त्वया स्वमनसि खेदो विधेयः, इत्यादि सान्त्वनावाक्यैस्तं प्रकृतिभद्रं गृहस्थ-
मनुनयेदिति तात्पर्यम् ॥ सू० १ ॥

विदितसाध्याचारो गृहपतिः साधुमविज्ञाप्याशनादिकमुपकल्प्य निमन्त्रयेत्
तन्निषेधयितुमाह—‘से भिक्षू’ इत्यादि ।

हम इसे ग्रहण नहीं कर सकते हैं और न हम इसकी तुम्हें स्वीकृति ही
दे सकते हैं, कारण कि इस प्रकारकी अकल्पनीय सामग्रीके ग्रहणसे
हम सर्वथा विरत हैं । तीर्थङ्कर प्रभुकी यह आज्ञा है कि मुनिजन इस
प्रकारकी अकल्पनीय अशनादि सामग्रीको ग्रहण न करें, अतः हमारे
निमित्त रखी हुई पूर्वोक्त समस्त अशनवसनादिरूप सामग्री तीर्थङ्कर
भगवान्की आज्ञासे बहिर्भूत होनेके कारण हमें ग्रहण करनेयोग्य नहीं
है, इसलिये हम उसे ग्रहण नहीं कर सकते हैं । इस विषयमें तुम
अपने चित्तमें खेद मत करना । इस प्रकारके सान्त्वना परिपूर्ण वचनोंसे
वह मुनि उस प्रकृतिभद्र गृहस्थको समझावे ॥ सू० १ ॥

साधुके निमित्त तय्यार की गई आहारादिक सामग्री ज्ञात होने पर
साधुके लिये अकल्पनीय है । साधुजन उसे नहीं ले सकते हैं ।
जिसने साधुका आचार जाना है ऐसे गृहस्थके द्वारा साधुके उद्देश

भक्षान पणु भारा भाटे करावी आपवानु कडी रक्षा छे आ सधजी तभारी
वातो मुनिने योग्य नथी जेथी तेने हुं अडलु करी शकतो नथी तेभ अनी स्वीकृति
पणु ढण शकतो नथी कारण के आ प्रकारनी अकल्पनीय सामग्रीना अडलुथी
हुं सर्वथा विरक्त छु तीर्थंकर प्रभुनी अनी आज्ञा छे के मुनिजन आवा
प्रकारनी अकल्पनीय अशनादि सामग्री अडलु न करे भाटे भाग निमित्त राखेडी
पूर्वोक्त समस्त अशनवसनादिरूप सामग्री तीर्थंकर भगवाननी आज्ञावी गडि
भूत होवाने कारणे भारे योग्य नथी आ भाटे हुं तेने अडलु करी शकतो
नथी आ जाणत तमे तभारा मनमा जेठ करेथो नई आ प्रकारे सान्त्वना
परिपूर्ण वचनोथी ते मुनि अ प्रकृतिभद्र गृहस्थने समझवे ॥ सू० १ ॥

साधुना निमित्त तय्यार करायेडी आहारादिक सामग्री ज्ञात पडी साधु
भाटे अकल्पनीय छे साधुजन तेना स्वीकार करता नथी जेणे साधुना आचार
ज्ञात छे जेवा गृहस्थद्वारा साधुना उद्देश विना पणु तय्यार करायेडी आहारादिक

मूक्य-से भिक्षु परक्रमिज्ज वा, जाव दुरत्था वा, कर्हि
चि विहरमाण त भिक्षुं उवसकमित्तु गाहावई आयगयाए पेहाए
असण वा ४, वत्थं वा ४, जाव आहह चेषइ आवसहं
वा समुस्सिणाइ त भिक्षु परिघासेउ। त च भिक्षु जाणिज्जा सह
सम्मइयाए परवागरणेण अण्नेसिं वा अतिए सुखा-अय खलु
गाहावई मम अट्ठाए असण वा ४, जाव आवसह वा समुस्सि-
णाइ त च भिक्षु पडिलेहाए आगमिन्ना आणविज्जा अणासे
वणयाए तिवेमि ॥ सू० २ ॥

छाया—स भिक्षुः परक्रमेत वा याक्स् दुरत्था (भग्न) वा कश्चिद्
विहरमाण तं भिक्षुमुपसक्रम्य शूयपतिरात्मगतया प्रेक्षया भक्षणं वा ४ वस्त्रं वा ४
याक्स्वात्स्य ददाति आशस्यं वा समुच्छृणोति तं भिक्षुं परिघासयितुं। तच्छ भिक्षुर्मा-
नीयाद् सहसम्मत्था परम्याकरणेनाऽन्वेषां वाऽन्तिके भुत्वा-अयं खलु गम्भाप-
विर्ममार्वायाश्चनं वा ४ याक्स्वाशस्यं वा समुच्छृणोति तस्मिन् भिक्षुः प्रत्युपेत्यावगम्या
ऽऽद्यापयदनासेकस्तयेति व्रथीमि ॥ सू० २ ॥

टीका—‘ स भिक्षु ’-रित्पावि, स भिक्षु-भुनिः पूर्वोक्ते क्षत्रानादौ ‘ दुरत्था ’
देष्टव्यमापया अन्यथापि ग्रामादौ परक्रमेत-उपसंक्रम्यादौ, ‘ याक्स् ’ इत्यनेन पूर्वो-
क्ते बिना भी तैयार की गई भोजनादिक सामग्री निमज्जित किया गया
साधु नहीं छे सकता है, इसे प्रकट करनेके लिय सूक्ष्मकार कहते हैं—
“ से भिक्षु ” इत्यादि।

उस भुनिको कि जो अपने तप और संयमकी वृद्धि करनेके निमित्त
प्याज आदिकी सिद्धिके निमित्त, अथवा आगमकी वाचना, पृच्छना और
परिचर्चना आदिके निमित्त हमशान आदि स्थानोंमें शून्य घरमें पर्यंतकी
सामग्री निमज्जित करवाया आवेक साधु कर्हि शक्या नही, तेने प्रकट करवा भाटे
सूत्रकार कहे छे—“ से भिक्षु ” इत्यादि।

जो भुनि ३ के पोटाना तप करने सधमनी वृद्धि करवा निमित्त प्याज
आदिनी सिद्धिना निमित्त अथवा आगमनी वाचना, पृच्छना अने परिचर्चना
आदिना निमित्त हमशान आदि स्थानोंमें, कश्चिद घरमें, पर्यंतकी सामग्री,

ષ્ટતસ્ય=પૂર્વોક્તસ્ય અકરણતયા અનાસેવનપરિજ્ઞયા સોઽહં વિરતઃ=અકલ્પનીયાશ-
ચાંદિગ્રહણેભ્યો નિવૃત્તોઽસ્મિ, પૂર્વોક્તં સર્વં મમ ન કલ્પત્યતિ ભાવઃ, અતો મદર્થ-
મુપેકલ્પિતં પૂર્વોક્તં સર્વં વસ્તુજાતં ભગવદાજ્ઞાવહિર્ભૂતત્વાત્ સ્વીકર્તુ ન શક્નોમિ,
નાત્ર ત્વયા સ્વમનસિ સ્વેદો વિધેયઃ, ઇત્યાદિ સાન્ત્વનાવાક્યૈસ્તં પ્રકૃતિભદ્ર ગૃહસ્થ-
મેનુનયેદિતિ તાત્પર્યમ્ ॥ સૂ૦ ૧ ॥

વિદિતસાધ્વાચારો ગૃહપતિઃ સાધુમવિજ્ઞાપ્યાશનાદિકમુપકલ્પ્ય નિમન્ત્રયેદ
તન્નિષેધયિતુમાહ—‘સે ભિક્ષુ’ ઇત્યાદિ ।

હમ્મ હસે ગ્રહણ નહીં કર સકતે હૈં ઓર ન હમ્મ હસકી તુમ્હે સ્વીકૃતિ હી
દે સકતે હૈં, કારણ કિ હસ પ્રકારકી અકલ્પનીય સામગ્રીકે ગ્રહણસે
હમ્મ સર્વથા વિરત હૈં । તીર્થંકર પ્રભુકી યહ આજ્ઞા હૈ કિ મુનિજન હસ
પ્રકારકી અકલ્પનીય અશનાદિ સામગ્રીકો ગ્રહણ ન કરે, અત્ત હમારે
નિમિત્ત રહ્લી હુઈ પૂર્વોક્ત સમસ્ત અશનવસનાદિરૂપ સામગ્રી તીર્થંકર
ભગવાનકી આજ્ઞાસે વહિર્ભૂત હોનેકે કારણ હમેં ગ્રહણ કરનેયોગ્ય નહીં
હૈ, હસલિયે હમ્મ હસે ગ્રહણ નહીં કર સકતે હૈં । હસ વિષયમેં તુમ
અપને ચિત્તમેં સ્વેદ મત્ત કરના । હસ પ્રકારકે સાન્ત્વના પરિપૂર્ણ વચનોસે
વહ્મ મુનિ હસ પ્રકૃતિભદ્ર ગૃહસ્થકો સમજાવે ॥ સૂ૦ ૧ ॥

સાધુકે નિમિત્ત તય્યાર કી ગઈ આહારાદિક સામગ્રી જ્ઞાત હોને પર
સાધુકે લિયે અકલ્પનીય હૈ । સાધુજન હસે નહીં લે સકતે હૈં ।
જિસને સાધુકા આચાર જાના હૈ એસે ગૃહસ્થકે દ્વારા સાધુકે ઉદ્દેશ

મકાન પણ મારા માટે કરાવી આપવાનુ કહી રહ્યા છે આ સઘળી તમારી
વાતો મુનિને યોગ્ય નથી જેથી તેને હું અહણુ કરી શકતો નથી તેમ એની સ્વીકૃતિ
પણ હઈ શકતો નથી કારણ કે આ પ્રકારની અકલ્પનીય સામગ્રીના અહણુથી
હું સર્વથા વિરત છું તીર્થંકર પ્રભુની એવી આજ્ઞા છે કે મુનિજન આવા
પ્રકારની અકલ્પનીય અશનાદિ સામગ્રી અહણુ ન કરે માટે મારા નિમિત્ત રાખેલી
પૂર્વોક્ત સમસ્ત અશનવસનાદિરૂપ સામગ્રી તીર્થંકર ભગવાનની આજ્ઞાથી બહિ
ર્ભૂત હોવાને કારણે મારે યોગ્ય નથી આ માટે હું તેને અહણુ કરી શકતો
નથી આ બાબત તમે તમારા મનમા ખેદ કરશો નહીં આ પ્રકારે સાન્ત્વના
પરિપૂર્ણ થયેનોથી તે મુનિ એ પ્રકૃતિભદ્ર અહસ્થને સમજાવે ॥ સૂ૦ ૧ ॥

સાધુના નિમિત્ત તૈયાર કરાએલી આહારાદિક સામગ્રી જાણ્યા પછી સાધુ
માટે અકલ્પનીય છે સાધુજન તેના સ્વીકાર કરતા નથી જેણે સાધુના આચાર
જાણ્યા છે એવા ગૃહસ્થદ્વારા સાધુના ઉદ્દેશ વિના પણ તૈયાર કરાયેલી ભોજનાદિક

जानीयात्=मुद्रपेक्ष, किं जानीयादित्याह—‘अय’—मित्यादि—अयम्=एष गायापतिः
 सद्ध=निश्चयेन, ममार्याय=मदर्थं संपाद्य भक्षणं वा ४ पक्षं वा ४ यावत्सर्वं
 वदाति, आससंबं वा सद्धप्युपोति एतत्सर्वं जानीयादिति सम्बन्धः । तत्सर्वमक-
 स्त्वस्वात्परिहरेदित्याह—‘तवि’—स्यादि, भिक्षुः=भुनिः तत्=अन्नं—वसनावसबादिकं
 मदर्थमेव सम्पादितमिति प्रत्युपेक्ष्य=दृष्ट्यादिना सम्मेक्ष्य अवगम्य=स्वमुद्रया
 सम्यगवमुद्रय च त गृहस्यम् अनासेपनतया=अकल्पनीयत्वेन सेषितुमयोग्यमिति
 आह्वापयेत्=अविबोधयेत्, गृहीतुमपि न कल्पत इति तत्स्यर्पम्, ‘एतन्मदर्थमुपक-
 स्त्विकमभक्षनादिकमुद्रगमादिदोषवृत्तितया नाहं गृहीष्ये, नापि तस्मिन् आससंबे
 वत्स्यामि, इत्यादिभिर्वाय ‘मासुक्त्वाने धर्मोऽन्यथा न धर्मः’ इत्यादिकं

वसीके दासदासी आदिके पासमें सुननेसे यह मालूम होता है कि यह
 आहारादिक सामग्री, या वस्त्र पात्रादिक वस्तुएँ, और ठहरनेके लिये यह
 निर्मित स्थान इस आबकने सुनियोजित निर्मित ही तैयार किये हैं । यह
 आहारादिक सामग्री इसने हमारे निर्मित ही बनवाई है, वस्त्रादिक ये
 हमारे निर्मित ही देने लाया है, यह मकान भी इसने हमारे निर्मित
 ही तय्यार करवाया है, इस प्रकार अच्छी तरह जानकर और विचारकर
 उस दाता गृहस्थको समझावे, कि—ये तुम्हारे द्वारा दी जानेवाली समस्त
 वस्तुएँ हमें अकल्प्य हैं—हमें सेवन करनेके अयोग्य हैं । हम इन्हें ग्रहण
 तक नहीं कर सकते हैं, कारण कि ये सब भक्षनादिक वस्तुएँ उद्गमा-
 दिक दोषोंसे वृत्त हैं, इसलिय हम न इन्हें ग्रहण करेंगे और न मकान-
 नमें ही ठहरेंगे । ऐसा कह कर “निर्वेषिके देनेमें ही धर्म होता है

आजणी जेम मालूम पडे छे के जे आहारादिक सामग्री अने वस्त्र पात्रादिक
 वस्तुजो अने ठहरवा भाटे जा निर्मित स्थान ते आबके सुनियोजित निर्मित छे
 तय्यार करेले छे जा आहारादिक सामग्री तेखे अभास निर्मित छे जनावेही छे
 वस्त्रादिक अभास निर्मित छे आपवा भाटे लावेले छे जा मकान पछु अभास
 निर्मित छे तेखे जनावेले छे जा प्रकारे सारी रीते व्यर्थीने अने विचार करीने
 ते दाता गृहस्थने जा प्रकारे समझवे के जा तभास द्वारा आपसी समस्त
 वस्तुजो आभास अकल्पनीय छे अभास सेवन भाटे अयोग्य छे अथि तेने
 अकल्प करी सकता नथी कारण के जे सधणी आहारादिक वस्तुजो उद्गमादिक
 दोषोधी वृत्त छे भाटे अथि तेने अकल्प करता नथी जेवुं कहीने मासुक्ने
 देवार्थं छे धर्म थाय छे जे सिबाय नही” एतयादि शास्त्रोक्त कथोने जेने

ક્તવન્નિપીદેત્ચર્વત્તયેદિતિ સદ્ગ્રહઃ, ગાયાપતિઃ=પ્રકૃતિભદ્રકઃ કશ્ચિદ્ આત્મગતયા
=અન્તઃકરણસ્થિતયા પ્રેક્ષયાઽનાવિષ્કૃતાશયઃ પ્રચ્છન્નપચનપાચનાદિના ષડ્જીવનિ-
કાયં વિરાધયન્ ત મિશું તત્ર ક્વચિદેકત્ર વિહરન્તમ્ ઉપસક્રમ્ય તત્સમીપ ગત્વા
અશન વા ચતુર્વિધં, વસ્ત્રં વા ૪ યાવત્ સર્વમ્ આહૃત્ય=આદાય ત મિશુ પરિઘાસયિતું=
મુનિભોજનાય દદાતિ=વિતરતિ આવસય વા=નવીનં ગૃહ વાસયિતું સમુચ્છૃણોતિ=
નિર્માપયતિ જીર્ણં વા પરિષ્કરોતિ, મિશુઃ=સંયમી તદ્ આહારાદિકં વસ્ત્રાદિક્રમાવ-
સયં વા સાધ્વર્થમેવ કૃતમિતિ સદસમ્મત્યા=સ્વબુદ્ધ્યા, તયાઽનધિગમે પરવ્યાકરણેન
પરપરિપ્રશ્નેન, તતોઽનવગમે અન્યેપા=તત્પરિજનદાસાદીનામન્તિકે=સમીપે શ્રુત્વા વા

ગુફાઓમેં કુંભારકી શાલામેં યા इनसे अतिरिक्त किसी भी स्थानमें
रहता है ठहरता है उठता है तथा बैठता है या मार्गजन्य खेदको दूर
करनेके लिये उन २ स्थानोंमें विश्राम करता है उन्हें देख कर कोई
प्रकृतिभद्र गृहस्थ अपनी इच्छासे उपार्जित आहार देनेकी भावनासे आता
है । मुनिके निमित्त इसने आहारादिक सामग्री तैयार की है इस प्रकार
का उसका अभिप्राय प्रकट नहीं हो रहा है, तथा मुनिके प्रच्छन्न पचन
पाचनादि व्यापारसे जिसने षड्जीवनिकायकी विराधना भी की है वह
गृहस्थ अशन, पान, स्वाद्य और स्वाद्य तथा वस्त्र, पात्र, कम्बल और
रजोहरण आदि समस्त सामग्रीको ले कर मुनिको देनेके निमित्त कहीं
रख देता है । नया मकान भी ठहरनेके लिये बनवा देता है, अथवा जीर्ण
का उद्धार करवा देता है । मुनिको जब यह बात अपनी बुद्धिसे या उस
से नहीं मालूम पड़ने पर दूसरेसे पूछनेसे, उससे भी निश्चित न होनेपर

કુંભારની શાળામાં, અથવા તેનાથી સિવાય કોઈ પણ સ્થાનમાં રહે છે-શેકાય છે
ઉઠે છે બેસે છે તથા માર્ગજન્ય થાકને દૂર કરવા માટે તેવા સ્થાનમાં
વિશ્રામ કરે છે તેને બેઠને કોઈ પ્રકૃતિભદ્ર ગૃહસ્થ પોતાની ઇચ્છાથી ઉપાશ્રીત
આહાર દેવાની ભાવનાથી આવે છે મુનિ નિમિત્ત તેણે આહારાદિક સામગ્રી
તૈયાર કરેલી છે આ પ્રકારનો ભાવ દેખાઈ આવતો નથી તથા મુનિથી
પ્રચ્છન્ન પચનપાચનાદિ વ્યાપારથી જેણે ષડ્જીવનિકાયની વિરાધના કરેલી છે તે
ગૃહસ્થ અશન, પાન, પાચ, અને સ્વાદ્ય તથા વસ્ત્ર, પાત્ર, કમ્બલ અને રજોહરણ
આદિ સમસ્ત સામગ્રી લઈને મુનિને દેવા માટે કોઈ જગ્યાએ રાખે છે નહીં
મકાન પણ રહેવા માટે બનાવી દે છે અથવા જીનાને સમરાવી આપે છે મુનિને
આ વાત જ્યારે પોતાની બુદ્ધિથી, અથવા તેને નહીં મારુમ પડવાથી બીજાને
પૂછવાથી, એનાથી પણ નિશ્ચિત ન થવાથી તેના દાસ દાસી આદિના પાસેથી

‘मो मित्रो ! तुभ्यमाहारवस्त्रादिकं दातुमिच्छामि स्वानं वा परिष्करिष्यामि अनु
मानोहि मा’ मित्यादिवाक्यैस्तं पृष्ट्वा, अप्राप्तानुहोऽपि गावापतिर्यदि सहा वाऽऽ-
प्रापयिष्यते, कश्चिच्च स्तोत्रमनगाराचारविधिः अपृष्ट्वा वा मिधुष्पाऽनुज्ञातः

आचारसे अपरिचित हैं, तथा कुछ गृहस्थ ऐसे हैं जो उनके आचारसे
परिचित हैं। इनमें जो उनके आचारसे अपरिचित हैं उनके विषयमें
सूत्रकार फिर भी कह रहे हैं कि ऐसे व्यक्ति मुनिको ध्यान अभ्ययनादि
पूर्वोक्त कारणोंके कारण श्रमशान आदि स्थानोंमें बिहार करते हुए देख
कर भक्तिके आवेष्टासे स्वयं मुनिसे पूछते हैं कि—महाराज ! मैं आपके
लिये आहार वस्त्रादिक देनेका अभिलाषी हू। आपके लिये एक नवीन
मकान भी जिसमें आप निवास कर सकें वैसा बनवा देना चाहता हू।
नहीं तो कोई एक आपके लायक पुराना ही स्थान सुधरवा दू, कहिये
आपकी क्या संमति है। आपकी आज्ञाकी ही देरी है काम बहुत शीघ्र
हो जायगा। इस प्रकार उस गृहस्थकी बातको सुन कर मुनि ध्यानादिके
कारण जब कुछ भी उत्तर नहीं देते हैं तो वह गृहस्थ अपने मनमें
अपनी ही कल्पनासे यह निश्चय कर लेता है कि ठीक है, मुनिराजने
इमें कोई इस बातमें उत्तर नहीं दिया है तो कोई हर्ज नहीं, मैं उन्हें
सुखित तो कर दिया है, बसो भक्ति—अनुनय विनयादि करके सब
उनसे मंजूर करवा लूंगा और यह सब आहारादिककी सामग्री इन्हें

आचारभी अपरिचित छे तथा केवलक बुद्धस्थ जेवा कोय छे के तेना आचारभी
परिचित छे जेभां के जेना आचारभी अपरिचित छे तेना विषयभां सूत्रकार
हरीषी पक्ष कहे छे के जेनी अहित मुनिने ध्यान अभ्ययन आदि स्थानेभां
बिहार कएल जेधने अहितना आवेष्टाभी पोते मुनिने पूछे छे के—महाराज कहु
आपने भाटे आहार वस्त्रादिक देवाने अभिलाषी हू आपने भाटे जेक नवीन
मकान पक्ष जेभां आप निवास करी सकै तेनु बनावी देवा थारु छु, नकि ते
आपने लायक जुना मकानने सुधरवी इहाँ कहे आपनी सु संमति छे ?
आपनी आज्ञानी वाए छे काम जरूरी धरि करी, आ प्रजापती ते बुद्धस्थानी बात
संलग्नीने मुनि ध्यानादिके कारणे जेवाए कछि पक्ष उत्तर आपणा नथी तयारे
ते बुद्धस्थ पातानी कल्पनाभी पाताना मनभां निश्चय करी ले छे—ठीक छे
मुनिको मने आ आज्ञातभां कछि उत्तर आपेल नथी तो कछि वापि नथी
ये तेमने अछेर तो करी करीछु छे, अहित—अनुनय—विनय विजिरे—भी मज्जर
इशवी लक्ष्मि अने आ आहारादिकेनी सामग्री पक्ष जेमने केछि पक्ष प्रक्षरे

શાસ્ત્રોક્તકલ્પમુપદિશ્ય તમભિસાન્ત્વયેદિતિ ભાવઃ । ‘ઈતિ’ અધિકારસમાપ્તૌ, યન્મયા ભગવત્સકાશાત્ શ્રુત તત્સર્વં પૂર્વોક્તં વક્ષ્યમાણ ચ વ્રવીમિ=ઋથયામિ ॥ સૂ. ૨ ॥

વક્ષ્યમાણમેવાહ—‘ભિક્ષુ ચ’ ઇત્યાદિ—

મૂલમ્—ભિક્ષુ ચ ચ્ચ પુટ્ટા વા, અપુટ્ટા વા જે ઇમે આહચ્ચ ગંથા વા ફુસંતિ સે હંતા હણહ, ચ્ચણહ, છિંદહ દહહ, પયહ, આલુપંહ, વિલુપંહ સહસા કારેહ, વિપ્પરામુસહ, તે ફાસે, પુટ્ટો ધીરો અહિયાસણ, અદુવા, આયારગોયરમાઙ્કલ્લે તલ્લિકયા ણમણે-લિસં, અદુવા વઙ્ગુત્તીણ ગોયરસ્સ અણુપુવ્વેણ સમ્મં પઢિલ્લેહાણ આયગુત્તે, બુદ્ધેહિં ણયં પવેઙ્ગયં ॥ સૂ. ૩ ॥

છાયા—ભિક્ષુ ચ ચ્ચ પુટ્ટા વા અપુટ્ટા વા યે ઇમે આહત્ય ગ્રન્થાદ્વા સ્પૃશન્તિ સ હન્તા હત ક્ષણત, છિન્ત, દહત, પચત, આલુમ્પત, વિલુમ્પત, સહસાકારયત, વિપ-રામુશત, તાન્ સ્પર્શાન્ સ્પૃષ્ટોઽધ્યાસયેત્, અથ વા આચારગોચરમાચક્ષીત, તર્કયિત્વા ચ્ચલુ અનીદ્વશમથવા વાગુપ્ત્યા ગોચરસ્યાનુપૂર્વ્યા સમ્યક્ પ્રત્યુપેક્ષેવ આત્મગુણઃ, બુદ્ધૈરેતત્પ્રવેદિતમ્ ॥ સૂ. ૩ ॥

ટીકા—‘ભિક્ષુ’—મિત્યાદિ, યે=પૂર્વોક્તા ઇમે=પ્રત્યક્ષનિર્દિષ્ટા ગાથાપતયો ભિક્ષુ =શ્મશાનાદૌ વિહરન્ત ત મુનિ ‘ચઃ’ સમુચ્ચયાર્થકઃ, ‘ચ્ચલુ’ વાક્યાલઙ્કારે, પુટ્ટા

અન્યથા નહી ” ઇત્યાદિક શાસ્ત્રોક્ત કલ્પકા ઉસે ઉપદેશ દેકર સમ-હ્યાવે । સૂત્રમેં ઇતિ શબ્દ અધિકારકી સમાપ્તિકા સૂચક હૈ । જો મૈને ભગવાનસે સુના હૈ વહ સવ પૂર્વોક્ત અથવા વક્ષ્યમાણ તુમસે કહા હૈ, તથા આગે કહતા હ ॥ સૂ. ૨ ॥

વક્ષ્યમાણ વિષયકો સૂત્રકાર કહતે હૈ—“ ભિક્ષુ ચ ” ઇત્યાદિ ।

સૂત્રકારને ૧ પ્રથમ ઓર ૨ દ્વિતીય સૂત્રમેં યહ પ્રકટ કિયા હૈ કિ-કુછ ગૃહસ્થ એસે હૈ જો મુનિયોં કે પ્રતિ પૂર્ણ ભક્તિ રખતે હૈ પરન્તુ ડનકે

ઉપદેશ આપી સમન્નવે સૂત્રમા ઇતિ શબ્દ અધિકારની સમાપ્તિના સૂચક છે જે મે ભગવાન પાસેથી સાભળેલ છે એ સઘળુ પૂર્વોક્ત અથવા વક્ષ્યમાણ તમને કહેલ છે તથા આગળ કહું છું ॥ સૂ. ૨ ॥

વક્ષ્યમાણ વિષયને સૂત્રકાર કહે છે—“ ભિક્ષુ ચ ” ઇત્યાદિ

સૂત્રકારે ૧ પ્રથમ અને ૨ બીજા સૂત્રમા એ પ્રગટ કરેલ છે કે કોઈ ગૃહસ્થ એવા હોય છે કે જે મુનિયોની તરફ પૂર્ણ ભક્તિ રાખે છે પણ તેના

‘मो मित्रो ! तुभ्यमाहारवस्त्रादिकं दातुमिच्छामि स्थानं वा परिष्करिष्यामि अनु
मानीहि मा’ मित्र्यादिवाक्यैस्तं पृष्ट्वा, अप्राप्तानुज्ञोऽपि गावापतिर्यदि सहसा चाऽऽ-
प्रापिष्यते, कश्चिन्व स्तोत्रमनगाराचारविधिः अपृष्ट्वा वा मित्रुणाऽनुज्ञातः

आचारसे अपरिचित हैं, तथा कुछ गृहस्थ ऐसे हैं जो उनके आचारसे
परिचित हैं। इनमें जो उनके आचारसे अपरिचित हैं उनके विषयमें
सूत्रकार फिर भी कह रहे हैं कि ऐसे व्यक्ति मुनिको ध्यान अध्ययनादि
पूर्वोक्त कारणोंके कारण इमशान आदि स्थानोंमें बिहार करते हुए देख
कर भक्तिके आवेष्टासे स्वयं मुनिसे पूछते हैं कि—महाराज ! मैं आपके
लिये आहार वस्त्रादिक देनेका अभिलाषी हूँ। आपके लिये एक नवीन
भवन भी जिसमें आप निवास कर सकें वैसा बनवा देना चाहता हूँ।
नहीं तो कोई एक आपके लायक पुराना ही स्थान सुपरवा हूँ, कष्टिये
आपकी क्या संमति है। आपकी आज्ञाकी ही देरी है काम बहुत शीघ्र
हो जायगा। इस प्रकार उस गृहस्थकी यातको सुन कर मुनि ध्यानादिके
कारण जब कुछ भी उत्तर नहीं देते हैं तो वह गृहस्थ अपने मनमें
अपनी ही कल्पनासे यह निश्चय कर लेता है कि ठीक है, मुनिराजने
इमें कोई इस बातमें उत्तर नहीं दिया है तो कोई हर्ज नहीं, मैंने उन्हें
सुचित तो कर दिया है, बलो भक्ति—अनुनय विनयादि करके सब
उनसे संजूर काबा सूगा और यह सब आहारादिककी सामग्री इन्हें

आचारभी अपरिचित छे तथा केवलक पुरुषस्य जेवा जेय छे के तेना आचारभी
परिचित छे जेभा के जेना आचारभी अपरिचित छे तेना विषयभां सूत्रकार
हरीभी पद्य छे छे के जेवी अहित मुनिने ध्यान अध्ययन आदि स्थानेभां
निकार करता जेभने अहितना आवेष्टाभी पोते मुनिने पूछे छे के—महाराज कुं
आपने भाटे आकार वस्त्रादिक देवाने अभिलाषी भुं आपने भाटे जेक नवीन
भवन पद्य जेभा आप निवास करी शके तेवुं जनावी देवा पाहुं छु, नकि तो
आपने लायक जुना भवनने सुपरवाी हई कहे आपनी शुं समति छे ?
आपनी आज्ञानी बार छे काम कही यथं जये, आ प्रकासी ते पुरुषस्यनी यात
अंशजीने मुनि ध्यानादिकना कारणे जेभारे काछ पद्य उत्तर आपत्ता नथी त्याहे
ते पुरुषस्य पोतानी कल्पनाभी पोताना मनभां निश्चय करी ले छे—कि छे
मुनिजने भने आ आज्ञाभां काछ उत्तर आपेव नथी तो काछ चांषि नथी,
ये तेभने बहेर तो करी क हीधुं छे अहित—अनुनय—विनय विजिरे—भी मजुर
कसवी छति, जने आ आहारादिकनी सामग्री पद्य जेभने केछ पद्य प्रकाश

દનૈઃ પરામૃશત=યાતના દદત । एष स्पृष्टः=पूर्वोक्तहननादिवहुविषयीपहाभिभूतः
सन् धीरः=परीषहोपसर्गसहनशीलः तान्=पूर्वाक्तान् हननादीन् स्पर्शान्=दुःखवि-
शेषान् अधिसहेत । स भिक्षुः परिषहोपसर्गैः स्पृष्टोऽपि न तदौ देशिकादिदोषदुष्ट-
माहारं शृङ्गीयात्, नापि ग्लानत्वमवलम्बेतेत्याशयः ।

अथवा स भिक्षुः अनीदृशम् ‘अय पुरुष’ कः किं सम्यग्दृष्टिरुत मिथ्यादृष्टिः?
अभिगृहीतनियमोऽनभिगृहीतनियमो वा ?’ इत्यादिरूपमीदृशं, तद्भिन्नमनीदृश
पुरुषं तर्कयित्वा=सम्भाषणार्हं समालोच्य आचारगोचरं=मुनेराचारविषयम् आच-
क्षीत=समुपदिशेत् । स्वसमयस्थापन-परसमयनिरसनेन च तमभिसान्त्वयेदित्यर्थः,

जिस २ प्रकारसे इसे अनेक यातनाएं दी जा सकें दो । इस प्रकार इन
उपर्युक्त हननादिक अनेक प्रकारके परीषहोंसे व्याप्त होता हुआ भी
वह धीर-परीषह और उपसर्गों के सहन करनेमें शक्तिशाली-मुनि इन
हननादिक दुःखविशेषोंको समभाव से सहन करे । इन परीषह और
उपसर्गों से घबड़ा कर वह मुनि औद्देशिकादि दोषोंसे दूषित उस
आहारको न लेवे और न चित्तमें कोई ग्लानि ही लावे ।

अथवा—वह मुनि “यह पुरुष कौन है ? सम्यग्दृष्टि है ? कि
मिथ्यादृष्टि ? अभिगृहीत नियमवाला है ? या उससे रहित है ?” इत्या-
दिरूप विचारका जो विषय हो उसका नाम ईदृश है, इससे भिन्नका
नाम अनीदृश है । “यह अनीदृश है” ऐसा विचार कर-‘यह सभाषणके
योग्य है ’ ऐसा जानकर-उसे मुनिके आचारका उपदेश दे । स्वसिद्धान्त
की स्थापना और परसिद्धान्तके निराकरणसे उस व्यक्तिको संतुष्ट करे

નાઓ પહોચાડી શકાય તેટલી પહોચાડો, એને રીખાવી રીખાવીને મારી નાખો
આ પ્રકારે અનેક પરિષદ અને ઉપસર્ગોથી વ્યાપ્ત થતા પણ ધીર-
પરીષદ અને ઉપસર્ગોને સહન કરવામા શક્તિશાલી મુનિ હનનાદિ દુઃખોને
સમભાવે સહન કરે પણ ઔદેશિકાદિક દોષોથી દૂષિત અન્ન વસ્ત્રાદિકને ગ્રહણ
ન કરે, તેમ ચિત્તમા કોઈ પ્રકારની ગ્લાનિ પણ ન લાવે.

અથવા—તે મુનિ “ એ પુરૂષ કોણ છે ? સમ્યગ્દૃષ્ટિ છે ? કે મિથ્યાદૃષ્ટિ ?
અભિગૃહીતનિયમવાળા છે ? અથવા એથી રહિત છે ? ” ઇત્યાદિ વિચારવાનો
વિષય જેવું નામ ઈદૃશ છે એનાથી ભિન્નનું નામ અનીદૃશ છે “આ અનીદૃશ છે”
એવું વિચારી-એ સભાષણને યોગ્ય છે-એવું બાણી લઈ એને મુનિના આચાર
રતો ઉપદેશ આપે સ્વસિદ્ધાંતની સ્થાપના અને પરસિદ્ધાંતના નિરાકરણથી એ
વ્યક્તિને સતોષ આપે અમારે માટે આ ઔદેશિક અશન વસનાદિક અસ્વી-

‘મમેદમન્નવસનાદિકં ન કલ્પ્ય’ મિતિ મૂમોક્ષગુણમદ્ભિર્ભાં સર્વા પિન્ડૈષ્ણાસ્થિદિ
ક્યપિત્વા—“યત્સ્વયમદુઃસિત સ્યાન્ન ચ પરદુઃસે નિમિષમૂતમપિ । કેવલ્લુપપ્રહ
કરં, ધર્મકૃતે તદ્ભવેયમ્ ” ॥ ૧ ॥ इत्यादिवाक्यैस्तमनुनयदिति भावः ।

સ્વસ્મિન્ ક્યનસામર્થ્યે થોતરિ વાનુકુષ્ઠે કયનીયમ્, અન્યથા ક્યનવૈયધ્યા
વિત્વાહ—અથ વા વામ્નુપ્ત્યા વાચો ગુપ્તિઃ વામ્નુપ્તિઃ=વામ્નુપ્તયમન મૌનમિત્યર્થઃ,
તથા વામ્નુપ્ત્યા ઉપસંસિતઃ મૌન એવ આત્મગુપ્તઃ=આત્મના તિષ્ઠભિર્મનાગુપ્ત્યાવિ
મિર્ગ્મિત્તઃ=રસિતઃ સન્ ગોચરસ્ય=આચારગોચરસ્ય પિન્ડધિશુદ્ધપાદેઃ, આનુપૂર્વ્યા=ઉદ્ધ
હમાર લિપ ઔરેશિક અજ્ઞાન વસનાદિક કલ્પનિક નહીં હૈ, હસ પ્રકાર
મૂલ ગુણ ઔર ઉત્તરગુણોકે મેવસે મિલ્લ પેસી સમ્પૂર્ણ પિન્ડૈષ્ણાકી શુદ્ધિ
કા ક્યન કર “યત્સ્વયમદુઃસિત સ્યાન્ન ચ પરદુઃસે નિમિષમૂતમપિ । કેવ
લ્લુપપ્રહકરં, ધર્મકૃતે તદ્ભવેયમ્ ॥” इत्यादि वाक्योंसे यह बातलावे कि जो
आहारादिक वस्तु अवोप होगी वही दूसरोंकी उपकारक होगी, ऐसी उप
कारक वस्तु ही मुनियों के लिये उनके धर्मकी वृद्धिमें सहायक होनेसे
वैनेयोग्य मानी गई है । यह सब मुनि आचारविषयक कथन तब ही करे
कि जब अपनेमें इस आचारको समझानकी पूर्ण शक्ति-योग्यता हो और
सुननवाला ओता अनुकूल हो । अन्यथा कहनेसे कोई लाभ नहीं
होगा । इसी बातको “अथवा वाम्नुप्या गोचरस्यानुपूर्व्यां सम्यक्
प्रत्युपक्षेप्त आत्मगुप्तः ” इन पदोंसे प्रस्फुट करते हैं—अथवा वचनगुप्ति
—वचनसंयम—मौन ही आत्माका गुण है । इस प्रकार मनोगुप्ति आदि तीन
गुप्तियोंसे गुप्त होता हुआ वह साधु पिन्डधिशुद्धि आविके उद्भूत

અર્થ છે આ પ્રકારે મૂલગુણ અને ઉત્તરગુણોના લેક્ષથી ભિન્ન એવી પિન્ડૈષ્ણાની
શુદ્ધિનું કથન કરી તે ચુકસ્થના મનમાં હલવા નમાવે તેવી વાણીથી તેને
સમજાવે “યત્સ્વયમદુઃસિત સ્યાન્ન ચ પરદુઃસે નિમિષમૂતમપિ । કેવલ્લુપપ્રહકરં,
ધર્મકૃતે તદ્ ભવેયમ્ ” ઈત્યાદિ વાક્યોથી એ બતાવે કે આહારાદિક વસ્તુ અરોપ
હોય તે ન બીજાને ઉપકારક અને આવી ઉપકારક વસ્તુ ન મુનિયો માટે
એમના ધર્મની વૃદ્ધિમાં સહાયક હોવાથી હેવા એવ્ય મનવામાં આવેલ છે આ
રીતે મુનિ આચારવિષયક કથન ત્યારે ન કરે કે ત્યારે એનામાં આવારને
સમજાવવાની પૂર્ણ શક્તિ-યોગ્યતા હોય અને સાંભળનાર પણ એવ્ય-પાત્ર હોય
એમ ન હોય તો કહેવાથી કોઈ લાભ નહીં અને આ વાતને “અથવા
વામ્નુપ્ત્યા” ઈત્યાદિ આ પદોથી પ્રસ્ફુટ (સ્પષ્ટ) કરે છે. અથવા વચન
ગુપ્તિ-વચનસંયમ-મૌન ન આત્માનો ગુણ છે આ રીતે મનોગુપ્તિ આદિ

દનૈઃ પરામૃશત=યાતના દદત । એવ સ્પૃષ્ટઃ=પૂર્વોક્તહનનાદિવહુવિપરીપહાભિમૂતઃ
સન્ ધીરઃ=પરીપહોપસર્ગસહનશીલઃ તાન્=પૂર્વાક્તાન્ હનનાદીન્ સ્પર્શાન્=દુઃસ્વવિ-
શેષાન્ અધિસહેત । સ ભિક્ષુઃ પરિપહોપસર્ગૈઃ સ્પૃષ્ટોઽપિ ન તદૌદ્દેશિકાદિદોષદુષ્ટ-
માહારં શૃઙ્ઘીયાત્, નાપિ ગ્લાનત્વમવલમ્બેતેત્યાશયઃ ।

અથવા સ ભિક્ષુઃ અનીદૃશમ્ ‘અયં પુરુષઃ કઃ કિં સમ્યગ્દૃષ્ટિરુત મિથ્યાદૃષ્ટિઃ?
અભિગૃહીતનિયમોઽનભિગૃહીતનિયમો વા?’ इत्यादिरूपमीदृश, તદ્વિન્નમનીદૃશ
પુરુષં તર્કયિત્વા=સમ્ભાષણાર્થં સમાલોચ્ય આચારગોચરં=મુનેરાચારવિષયમ્ આ-
ક્ષીત=સમુપદિશેત્ । સ્વસમયસ્થાપન-પરસમયનિરસનેન ચ તમભિસાન્તવ્યેદિત્યર્થઃ,

जिस २ प्रकारसे इसे अनेक यातनाएं दी जा सकें दो । इस प्रकार इन
उपर्युक्त हननादिक अनेक प्रकारके परीषहोंसे व्याप्त होता हुआ भी
वह धीर-परीषह और उपसर्गोंके सहन करनेमें शक्तिशाली-मुनि इन
हननादिक दुःस्वविशेषोंको समभाव से सहन करे । इन परीषह और
उपसर्गों से घबड़ा कर वह मुनि औद्देशिकादि दोषोंसे दूषित उस
आहारको न लेवे और न चित्तमें कोई ग्लानि ही लावे ।

અથવા—વહ મુનિ “યહ પુરુષ કૌન હૈ? સમ્યગ્દૃષ્ટિ હૈ? કિ
મિથ્યાદૃષ્ટિ? અભિગૃહીત નિયમવાલા હૈ? યા ઉસસે રહિત હૈ?” इत्या-
दिरूप विचारका जो विषय हो उसका नाम ईदृश है, इससे भिन्नका
नाम अनीदृश है। “यह अनीदृश है” ऐसा विचार कर—‘यह सम्भाषणके
योग्य है’ ऐसा जानकर—उसे मुनिके आचारका उपदेश दे। स्वसिद्धान्त
की स्थापना और परसिद्धान्तके निराकरणसे उस व्यक्तिको संतुष्ट करे

નાઓ પહોચાડી શકાય તેટલી પહોચાડો, એને રીળાવી રીળાવીને મારી નાખો
આ પ્રકારે અનેક પરિષદ અને ઉપસર્ગોથી વ્યાપ્ત થતા પણ ધીર-
પરીષદ અને ઉપસર્ગોને સહન કરવામા શક્તિશાલી મુનિ હનનાદિ દુષ્ટોને
સમભાવે સહન કરે પણ ઔદેશિકાદિક દોષોથી દૂષિત અન્ન વસ્ત્રાદિકને ગ્રહણ
ન કરે, તેમ ચિત્તમા કેઇ પ્રકારની ગ્લાનિ પણ ન લાવે

અથવા—તે મુનિ “એ પુરુષ કોણ છે? સમ્યગ્દૃષ્ટિ છે? કે મિથ્યાદૃષ્ટિ?
અભિગૃહીતનિયમવાળા છે? અથવા એથી રહિત છે?” इत्यादि विचारवाने
विषय जेवु नाम ईदृश છે એનાથી ભિન્ન નામ અનીદૃશ છે “આ અનીદૃશ છે”
એવુ વિચારી-એ સભાષણને યોગ્ય છે-એવુ બાણી લઈ એને મુનિના આચાર
રતો ઉપદેશ આપે સ્વસિદ્ધાંતની સ્થાપના અને પરસિદ્ધાંતના નિરાકરણથી એ
વ્યક્તિને સતોષ આપે અમારે માટે આ ઔદેશિક અશન વસનાદિક અસ્વી-

‘मयइमञ्जनवसनादिकं न कल्प्य’ मिति मूलोत्तरगुणभेदमिमां सयां पिण्डोपस्थासिद्धि
कल्पयित्वा—“यत्स्वयमदुःस्वितं स्यान्न च परदुःखे निमित्तभूतमपि । कवस्सुपग्रह
कृतं, परमकृते तद्वपरेषाम् ” ॥ १ ॥ इत्यादिवाक्यैस्त्वमनुनयदिति भावः ।

स्वस्मिन् कथनसामर्थ्ये भोतरि चानुक्छे कथनीयम्, अन्यथा कथनवैयर्थ्या-
दित्वाह—अथ वा बाम्गुप्त्या वाचो गुप्तिः बाम्गुप्तिः=वाक्यसंयमन मौनमित्यर्थः,
तथा चागुप्त्या उपलक्षितः मौन एव आत्मगुप्तः=आत्मना तिस्रभिर्मनागुप्त्यादि
भिर्मात्रैः =रक्षितः सन् गोचरस्य=आचारगोचरस्य पिण्डविद्युदपावेः, आनुपम्या=उद्व

हमारे लिये औपेक्षिक अज्ञान वसनादिक कल्पनिक नहीं हैं, इस प्रकार मूल गुण और उत्तरगुणोंके भेदसे मिल पेशी सम्पूर्ण पिण्डपणाकी शुद्धि का कथन कर “यत्स्वयमवुचितं स्यात्तच्च परवुत्तरे निमित्तमूतमपि । केवलमुपग्रहकरं, धर्मकृते तत्रवेदेयम् ॥” इत्यादि वाक्योंसे यह बतलावे कि जो आहारादिक वस्तु अवोप होगी वही दूसरोंकी उपकारक होगी, ऐसी उपकारक वस्तु ही मुनियों के लिये उनके धर्मकी वृद्धिमें सहायक होनेसे वेनेयोग्य मानी गई है । यह सब मुनि आभारविषयक कथन तब ही करे कि जब अपनेमें इस आभारको समझानेकी पूर्ण शक्ति-योग्यता हो और छुननेवाला भोता अनुकूल हो । अन्यथा कहनेसे कोई लाभ नहीं होगा । इसी बातको “अथवा बाग्युप्या गोचरस्यानुपूर्या सम्यक् प्रत्युपक्षेत आत्मशुभाः” इन पदोंसे प्रस्तुत करते हैं—अथवा बचनशुति—बचनसंयम—मौन ही आत्माका गुण है । इस प्रकार मनोगुति आदि तीन गुणोंसे गुप्त होता हुआ वह साधु पिण्डविशुद्धि आदिके उद्गम

અર્થ છે આ પ્રકારે મૂલ્યુષ્ઠ અને ઉત્તરણુલોના લેશથી ભિન્ન જેથી પિંડેવલાની શુદ્ધિત કથન કરી તે ચૂકરુચના મનમાં દહતા જમાવે તેથી વાક્યથી તેને સમજાવે “સત્ત્વચમતુશ્ચિત ત્યાજ્ય ન પરચુચ્ચ નિમિષમૂતમપિ । કેચ્છ મુપગ્રહકર, ધર્મકૃતે છદ્ મર્મહેષ્ઠ” ઇત્યાદિ વાક્યોથી જો બતાવે કે આકારાદિકે વસ્તુ અદોષ હોય તે જ બીજાને ઉપકારક બને. આવી ઉપકારક વસ્તુ જ મુનિએ માટે જોમના ધર્મની વૃદ્ધિમાં સહાયક હોવાથી કેવા યોગ્ય માનવામાં આવેલ છે આ રીતે મુનિ આચારવિષયક કથન ત્યારે જ કરે કે જ્યારે જોનારના આચારને સમજવવાની પૂજા શકિત-યોગ્યતા હોય અને સંભળનાર પણ યોગ્ય-પાત્ર હોય જોમ ન હોય તેા કહેવાથી કેઈ લાભ નહીં બને. આ વાતને “અમયા વામુપચા” ઇત્યાદિ. આ પરોથી પ્રસ્તુટ (૨૫૪) કરે છે બ્રહ્મવા વચન શ્રુતિ-વચન-અથમ-ગૌત જ આત્માનો શુદ્ધ છે આ રીતે મનોહુતિ આદિ

મોત્પાદનાદિપ્રશ્નપ્રતિવચનાદિપૂર્વક સમ્યક્ પ્રત્યુપેક્ષેત=તદ્ગતદોષાન્ સમ્યગ્ન-
ધારયેત્ । મિશ્નુઃ કદાચિદપ્યૌદેશિકાહારાદિક ન શૃઙ્ઘીયાત્, તદાહારગ્રહણસ્યા-
કલ્પ્યત્વં પ્રતિપાદયેત્, સમ્ભાષણેનાપ્યપ્રમાચિતાશૃઙ્ઘાયા મૌનમેવાવલમ્બેતેતિ વર્ત-
લાર્થઃ । સર્વમેવૈતન્ન મયા સ્વબુદ્ધ્યોચ્યત ઇત્યાહ-‘બુદ્ધૈ’-રિત્યાદિ, एतत्=સર્વ પૂર્વોક્ત-
મકલ્પ્યાહારાદિનિષેધનં વક્ષ્યમાણ વા બુદ્ધૈઃ કલ્પ્યાકલ્પ્યવિધાનાભિજ્ઞૈઃ સર્વજ્ઞૈઃ
પ્રવેદિતં=દ્વાદશપરિપદિ પ્રરૂપિતમ્ ॥ સૂ૦ ૩ ॥

વક્ષ્યમાણમેવ દર્શયતિ-‘સે સમણુન્ને’ ઇત્યાદિ ।

ઉત્પાદનાદિ ગત દોષોંકા પ્રશ્નપ્રતિવચનાદિપૂર્વક અચ્છી તરહસે નિશ્ચય કરો
તાત્પર્ય યહ કિ-મિશ્નુ કમ્પી મ્પી ઔદેશિક આદિ આહારકો ન લેવે । દૂસરે
જન યદિ વલાત્કારસે ઉસે દેનેકી હઠ કરે-આપત્તિ વિપત્તિયાં ટ્વડી કરો
-તો ઉનસે વલકુલ મ્પી ન ઘવઢાવે । મુનિકો કૈસા આહાર કલ્પનિક
હૈ યહ ઉન્હે સમજાવે । યદિ સમજાને પર મ્પી વે ન માને તો સર્વોત્તમ
એક યહી ઉપાય હૈ કિ વહ મૌન રસ્થે ।

યહ સવ મૈને અપની બુદ્ધિસે કલ્પિત કર નહીં કહા હૈ કિન્તુ યહ
પૂર્વોક્ત કલ્પ અકલ્પ આહારાદિવિષયક કથન તથા આગે ઔર મ્પી જો
કહના હૈ વહ સવ કલ્પ ઔર અકલ્પકે વિધાનકો જાનનેવાલે સર્વજ્ઞ
ભગવાન્ને અપની ૧૨ પ્રકારકી સભામેં કહા હૈ ॥ સૂ૦ ૩ ॥

વક્ષ્યમાણ વિષયકો હી સૂત્રકાર સૂત્રદ્વારા પ્રદર્શિત કરતે હૈ-
“સે સમણુન્ને” ઇત્યાદિ ।

ત્રણ ગુપ્તિઓથી ગુપ્ત રહેતા એ સાધુ પિણ્ડવિશુદ્ધિ આદિના ઉદ્દગમ ઉત્પાદનાદિ
ગત દોષોનેા પ્રશ્નપ્રતિવચનાદિપૂર્વક સારી રીતથી નિશ્ચય કરે તાત્પર્ય એ છે
કે-મિશ્નુ કદિ પણ ઔદેશિક આદિ આહાર ન લે બીજો માણસ કદી બળાત્કારથી
એને આપવાની હઠ પકડે-આપત્તિ વિપત્તિઓ ઉભી કરે-ત્યારે એનાથી જરા પણ
ન ગભરાય મુનિ માટે કેવો આહાર કલ્પનિક છે તે એને સમજાવે અને સમ-
જાવવા છતાં પણ તે ન માને તો સારામા સારો રસ્તો મૌન ધારણ કરવાનો છે
આ બધું મે મારી બુદ્ધિથી કલ્પિત કરીને કહ્યું નથી પરંતુ આ પૂર્વોક્ત
કલ્પ અકલ્પ આહારાદિવિષયક કથન, તથા આગળ કાંઈ કહેવાતું છે એ બધું
કલ્પ અને અકલ્પના વિધાનને જાણવા વાળા સર્વજ્ઞ ભગવાને પોતાની ૧૨ પ્રકારની
સભામા કહેલ છે. (સૂ૦ ૩)

વક્ષ્યમાણ વિષયને જ સૂત્રકાર સૂત્રદ્વારા પ્રદર્શિત કરે છે-“સે
સમણુન્ને” ઇત્યાદિ

मूष्म-से समणुष्णे असमणुष्मस्स असण वा ४, वत्थं वा ४
नो पाइज्जा नो निमतिज्जा नो कुज्जा वेयावडियं पर आढाय
माणे त्तिवेमि ॥ सू० ४ ॥

छाया—स समनोष्णोऽसमनोष्णायान्न वा ४ पक्वं वा ४ नो प्रवृत्ताभो निमन्त्र-
यभो कुर्याद्द्वैपातृत्यं परमाद्रियमाण इति प्रवीमि ॥ सू० ४ ॥

टीका—‘स समनोष्ण’ इत्यादि, स समनोष्णः=पूर्वोक्तोऽन्नगारः परम्=अन्यथम्
आद्रियमाणः तैः कृतादरोऽपि गृहपतितकाशात्केवलमकल्पनीयमेव न दृष्टीयात्
इत्येव न प्रवेदितं, किन्तु असमनोष्णाय=शाक्याप्रभृतये तत्पूर्वोक्तमाहारादिकं न
प्रदद्यात् न निमन्त्रयत् न तेषां द्वैपातृत्यं कुर्यात् । ‘इति’ अधिकारसमाप्तौ त्वां
प्रवीमि=कथयामि ॥ सू० ४ ॥

कीदृशः कस्मै दद्यादित्याह—‘धम्म०’ इत्यादि ।

यह अन्नगार उन असमनोष्ण-शाक्यादिकों-द्वारा अत्यंत मादृत होता
हुआ भी गृहस्थोंके यहांसे प्राप्त-कल्पनिक आहारादिक अशन, पान, स्नाय
और स्थाय एवं वस्त्र, पात्र, कम्बल और पादप्रोक्षणको उन शाक्यादिकों
के लिये न देवे न उन्हें देनेके लिये आमंत्रित करे और न उनकी धैर्य-
इति ही करो यहां ‘इति’ शब्द अधिकारकी समाप्तिमें आया है, इस प्रकार
अधिकारकी समाप्तिमें सुधर्मास्वामी भी जम्बूस्वामीसे कहते हैं—

साधु गृहस्थोंसे सिर्फ अकल्पनीय आहारादिकों का ग्रहण न करे
इतना ही नहीं किन्तु जो कल्पनीय आहारादिक ग्रहण किये गये हैं, वे
अन्य शाक्यादिकों को प्रदान भी न करे ॥ सू० ४ ॥

‘कैसा होकर किसके लिये उन्हें दे’ इसे प्रकट करते हैं—‘धम्म०’ इत्यादि ।

जो अन्नगार ते असमनोष्ण-शाक्यादिकों द्वारा अत्यंत मादृत भयेत पक्ष
गृहस्थोंने त्वांभी प्राप्त कल्पनिक आहारादिक अशन, पान, स्नाय अने स्थायतया
वस्त्र, पात्र, कम्बल अने पादप्रोक्षण, जो शाक्यादिकोंने न आये, अथवा तो
जो अने आपवध भाटे न आमंत्रण आये, अथवा तो न तेनी वैधायृत्य करे
अर्थात् ‘इति’ शब्द अधिकारकी समाप्तिमें आये छे आ प्रकार अधिकारकी समा-
प्तिमें भी सुधर्मास्वामी भी जम्बूस्वामीने कहे छे—

साधु गृहस्थों पासेभी इतत अकल्पनीय आहारादिक स्वीकार न करे आतुं
नकि परन्तु कल्पनीय आहारादिक स्वीकारेव केवल ते अन्य शाक्यादिकोंने आये
पक्ष नकि (सू० ४)

“देवा अर्धं दाने भाटे आये” अने प्रकट करे छे—‘धम्ममायावह’ इत्यादि ।

मोत्यादनादिप्रश्नप्रतिवचनादिपूर्वकं सम्यक् प्रत्युपेक्षेत=तद्गतदोषान् धारयेत् । भिक्षुः कदाचिदप्यौद्देशिकाहारादिकं न शृङ्गीयात्, तदाहारः कल्प्यत्वं प्रतिपादयेत्, सम्भाषणेनाप्यप्रभाविताशङ्काया मौनमेवावलम्ब्य लार्थः । सर्वमेवैतन्न मया स्वबुद्ध्योच्यत इत्याह—‘बुद्धै’—रित्यादि, एतत्=मकल्प्याहारादिनिषेधनं वक्ष्यमाणं वा बुद्धैः कल्प्याकल्प्यविधानानि प्रवेदितं=द्वादशपरिपदि प्ररूपितम् ॥ सू० ३ ॥

वक्ष्यमाणमेव दर्शयति—‘से समणुन्ने’ इत्यादि ।

उत्पादनादि गत दोषोंका प्रश्नप्रतिवचनादिपूर्वक अच्छी तरह से तात्पर्य यह कि—भिक्षु कभी भी औद्देशिक आदि आहारको जन यदि बलात्कारसे उसे देनेकी हठ करे—आपत्ति विपत्ति—तो उनसे बिलकुल भी न घबडावे । मुनिको कैसा आ है यह उन्हें समझावे । यदि समझाने पर भी वे न माने एक यही उपाय है कि वह मौन रखें ।

यह सब मैंने अपनी बुद्धिसे कल्पित कर नहीं कहा पूर्वोक्त कल्प अकल्प आहारादिविषयक कथन तथा आगे कहना है वह सब कल्प और अकल्पके विधानको जान भगवान् ने अपनी १२ प्रकारकी सभामें कहा है ॥ सू० ३ ॥

वक्ष्यमाण विषयको ही सूत्रकार सूत्रद्वारा प्रदर्शित “से समणुन्ने” इत्यादि ।

त्रयं गुप्तिञ्चोत्थी गुप्तं रहता ये साधु पिण्डविशुद्धिं आदिना उद्गतं होषोने प्रश्नप्रतिवचनादिपूर्वकं सारी रीतथी निश्चय करे के—भिक्षु कहि पण्य औद्देशिक आदिआहार न ले नीजे भाषुस के अने आपवानी छठ पकडे—आपत्ति विपत्तिओ उली करे—त्यारे ओ न गलराय मुनि भाटे केवो आहार कल्पनिक छे ते अने समणुन्ने नववा छता पण्य ते न माने तो साराभा सारे रस्तो मौन धारया आ भधुं मे भारी बुद्धिथी कल्पित करीने कहु नथी पर कल्प अकल्प आहारादिविषयक कथन, तथा आगण कांछे कडेवा कल्प अने अकल्पना विधानने नववा वाणा सर्वज्ञ भगवाने पोता सभाभा कडेव छे. (सू० ३)

वक्ष्यमाण विषयने न सूत्रकार सूत्रद्वारा प्रदर्शित “से समणुन्ने” इत्यादि

नीत ' भा=सर्वतो जानीत=पुद्गलपञ्च यूपमिति शेषः । ' इति व्रवीमि '—स्यस्यार्थं
स्तुक्त एवेति ॥ सू० ५ ॥

॥ अष्टमाध्ययनस्य द्वितीय उद्देशः समाप्तः ॥ ८-२ ॥



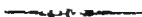
धर्मको है शिष्यो । तुम सब सर्व प्रकारसे समझो । इति व्रवीमि इन
पदोंका अर्थ पहिले उद्देशोमि कहा जा चुका है ॥ सू० ५ ॥

॥ आठवा अध्यायनका द्वितीय उद्देश समाप्त ॥ ८-२ ॥



शिष्यो । तमे अथवा सारी छंदे समझे " इति व्रवीमि " आ पदोन्ने अर्थ पदेवान्ना
उद्देशोमा उद्देशार्थ जयेव ॥ (सू० ५)

आठवा अध्यायनको नीचे उद्देश समाप्त ॥ ८-२ ॥



मूलम्—धम्ममायाणह पवेइयं माहणेण मइमया समणुत्ते
समणुन्नस्स असणं वा ४ वत्थं वा ४ पाएज्जा निमंतेज्जा कुज्जा
वेयावडियं परं आढायमाणे त्तिवेमि ॥ सू० ५ ॥

छाया—धर्ममाजानीत प्रवेदितं माहनेन मतिमता समनोज्ञः समनोज्ञायाशनं वा
४ वस्त्र वा ४ प्रदद्यात् निमन्त्रयेत् कुर्याद्वैयावृत्यं परमाद्रियमाण इति ब्रवीमि ॥५॥

टीका—‘धर्म’—मित्यादि, परम्=उत्कृष्टम् आद्रियमाणः तस्यादरं कुर्वन्
समनोज्ञैराहतो वा स समनोज्ञः=अनगारः उद्यतविहारी समनोज्ञाय=परस्मै सम्य-
ग्दर्शनादिमते सविनाय साम्भोगिकायैकसाम्माचारीप्रविष्टाय मुनये अशनं वा चतुर्वि-
धमाहार वस्त्रादिक प्रदद्यात्, निमन्त्रयेत्, वैयावृत्य=शुश्रूषां वा कुर्यात्। गृहस्थेभ्यः
केवलमकल्पनीयाऽऽहारादिग्रहणस्यैव प्रतिषेधः, असमनोज्ञेभ्यस्तु न ग्राह्यं नापि
तस्मै देयमिति भावः। इत्येवं माहनेन मतिमता=भगवता महावीरेण प्रवेदितं=
प्ररूपित धर्म=पूर्वोक्तमशनादिग्रहणविधिनिषेधप्रतिपादकं साध्वाचाररूपम् ‘आजा-

समनोज्ञोका आदर करता हुआ, अथवा समनोज्ञोसे आहत होता
हुआ वह उद्यतविहारी साधु सम्यग्दर्शनादिमें संविग्न—एक सामाचारीके
पालन करनेमें प्रविष्ट—अन्य मुनिजनोंके लिये चार प्रकारके अशन और
चार प्रकारके वस्त्रादिक देवे, उन्हें देनेके लिये आमन्त्रित करे, और उनकी
वैयावृत्य—शुश्रूषा भी करे। गृहस्थोंके पाससे केवल अकल्पनीय आहा-
रादिक एव वस्त्रादिक ले लेनेका ही निषेध है—कल्पनीयका नहीं, परंतु
असमनोज्ञोसे तो उन्हें न वह लेवे और न उन्हें वह देवे। इस प्रकार
मतिमान्—केवलज्ञानी श्री महावीर भगवान् द्वारा प्ररूपित पूर्वोक्त
अशनादिके ग्रहणकी विधि और निषेधका प्रतिपादक साधुके आचाररूप

समनोज्ञोनो आदर करता अथवा समनोज्ञोथी आहत थता ओ उद्यतविहारी
साधु सम्यग्दर्शनादिमा स विग्न—ओक सामाचारीनु पालन करवाभा प्रविष्ट—अन्य
मुनिजनों भाटे चार प्रकारना अशन अने चार प्रकारना वस्त्रादि डे, अने
आपवा भाटे आमन्त्रण आपे अने ओमनी वैयावृत्य—शुश्रूषा पणु करे गृह
स्थोनी पासोथी डेवण अकल्पनीय आहारादि अने वस्त्रादिने लेवानो निषेध छे
कल्पनीयनो नहो, परंतु असमनोज्ञो पासोथी न तो ले के न ओने आपे आ
प्रकारे मतिमान्—केवलज्ञानी महावीर भगवान् द्वारा प्ररूपित पूर्वोक्त अशना
दिना प्ररूपनी विधि अने निषेधना प्रतिपादक साधुना आचाररूप धर्मने डे

મધ્યમ—મજ્જિમેણ વયસાધિ પમે સંબુજ્જમાણા સમુદ્ધિયા સુદ્ધા મેહાવી વયણ પદિયાણ નિસામિયા સમિયાપ્પ ધમ્મે આરિપર્હિ પવેદ્ધપ, તે અણવકલ્લમાણા અણદ્ધવાપમાણા અપરિગ્ગ હેમાણા નો પરિગ્ગહાવતિ સવ્વાવતિ ચ ણ લોગસિ વિદ્ધાય દદ્ધ પાણેર્હિ પાવ કમ્મ અકુલ્લમાણે પસમહ અગથે વિયાહિપ્પ, ઓણ જુદ્ધમસ્સ સ્લેયણે ઉવવાય સ્વણ ચ નદ્ધા ॥ સૂ. ૧ ॥

જાયા—મધ્યમેન વયસાડપ્પકં સંબુદ્ધમાનાઃ સમુત્પિતા, મુક્ત્વા મેવાધી વ્યવનં પશ્ચિતાનાં તિદ્ધમ્પ સમતયા કર્મં મર્થિઃ પ્રવેદિત, તેજનમિકલ્લન્ત' અનતિપા તયન્તાડપરિચ્છન્તઃ નો પરિગ્રહન્ત સર્વસ્મિન્નાપ ચ લલ્લ કાક વિદ્ધાય દદ્ધં પ્રાપ્તિપુ પાપં કર્માઙ્કુર્વાણઃ એપ મહન્ત અપ્પ્યા વ્યાસ્યાતઃ, આજો પુતિમતઃ સ્લેયજ્ઞ ઉપપાત વ્યવનં ચ દ્વાત્થા ॥ સૂ. ૧ ॥

ટીકા—‘મધ્યમેને’—સ્યાદિ, મધ્યમેન વયસા—યૌવન—વર્ત્તમાનવ્યવસ્થાવિરિચિતેન તપઃ સંયમાચરણયોગ્યેનાવસ્થાવિશેષેણ સંબુદ્ધમાનાઃ—સયમાચરણાય લોપં પ્રાપ્તા પક્કે—કેવન સ્મૃત્વિતાઃ—પૂર્ણિતમગ્ન્યાઃ મુનયો મવન્તિ । અથ મધ્યમ—તૃતીયાવસ્થાદ્યે વિદ્યાય મધ્યમસદ્ગુણાત્માયદ્વસ્તસ્મિન્ વયસિ નિવૃત્તકામાભિલાષા નિર્વિષ્ણ રત્નપ્રચારામને શક્તિસમ્પન્ના મવન્તીતિ ઘોષિતમ્ ।

યૌવન એક કૃદ્ધ અવસ્થાસે નિશ્ચ અવસ્થાવિશેષકા નામ મધ્યમ અવસ્થા છે । યદ્ અવસ્થા હી પ્રધાનતયા તપ ઔર સંયમકે યોગ્ય માની ગઈ છે । હસ અવસ્થાસે સંયમકે આચરણકે છિયે લોપકો પ્રાપ્ત હુઆ કોઈ ૨ મનુષ્ય લીક્ષા હેકર મુનિ હો જાતે છે । સૂત્રમે પ્રથમ ઔર તૃતીય, હન લોનો અવસ્થાઓકો છોડકર જો મધ્યમ અવસ્થાકા પ્રહ્ણ કિયા છે ઉસસે યદ્ જાત માલૂમ હોતી છે કિ પ્રાયાઃ કર હસ અવસ્થામે કામકી અભિલાષાસે નિવૃત્ત હો કર પ્રાણી નિર્વિષ્ણ રૂપસે રત્નપ્રચારકી આરાધના કરને મેં શક્તિશાલી હોતે છે ।

યૌવન અને વૃદ્ધ અવસ્થામાં વ્યવસ્થાની અવસ્થાનુ નામ મધ્યમ અવસ્થા છે, એ અવસ્થા જ આસ કરી તપ અને સયમ માટે યોગ્ય માનવામાં આવેલ છે; એ અવસ્થામાં સયમના અભ્યાસ માટે જોખને પ્રાપ્ત થયેલ કોઈ કોઈ મનુષ્ય લીક્ષા હઈ મુનિ બને છે. સુવમાં પ્રથમ અને ત્રીજી જા જન્મે અવસ્થાઓને જોડી એ મધ્યમ અવસ્થા નામી કરવામાં આવી છે આથી એ વાત માલુમ પડે છે કે આસ કરી એ અવસ્થામાં કામની અભિલાષાથી નિવૃત્ત બની પ્રણી નિર્વિષ્ણ રૂપથી રત્નપ્રચારની આરાધના કરવામાં શક્તિશાળી હોય છે.

। અથાષ્ટમાધ્યયનસ્ય તૃતીય ઉદ્દેશઃ।

અભિહિતો દ્વિતીયોદ્દેશઃ, સામ્પ્રત તૃતીય આરમ્ભ્યતે, અસ્ય ચ પૂર્વોદ્દેશેન સદાય સમ્બન્ધઃ—અનન્તરોદ્દેશે ચાકલ્પનીયાગનાદિગ્રહણનિષેધ ઉક્તઃ, અત્ર ચ ગૃહપતિઃ કદાચિચ્છીતાદિના પ્રાપ્તપ્રકમ્પ મિશ્રાદ્યર્થમાગત મિશ્રુ પૃચ્છતિ—‘કામચેષ્ટયૈવ ભવચ્છરીર કમ્પતે ?’ ઇતિ તસ્ય ગૃહપતેરસદાશઙ્કા મુનિર્દૂરીકૃયાત્, ‘ગીતાદિના મમ ગાત્ર કમ્પતે નાન્યથે’—તિ પ્રતિપાદયિષ્યતે, તત્ર મધ્યમાપસ્થાયાં શીતપ્રવેપિતગાત્રપ્રસન્નાત્તસ્ય વયસઃ સયમાચરણયોગ્યતા પ્રથમઘટ્ટેણોપદર્શયતિ—‘મજ્ઞિમેણ’ ઇત્યાદિ ।

આઠવે અધ્યયનકા તીસરા ઉદ્દેશ ।

દ્વિતીય ઉદ્દેશ કહા । અત્ર તૃતીય ઉદ્દેશ કહા જાતા હૈ, ઇસ ઉદ્દેશકા પૂર્વ ઉદ્દેશકે સાથ યહ સમ્બન્ધ હૈ—વહાં સાધુકે લિયે અકલ્પનીય અશનાદિ ગ્રહણ કરનેકા નિષેધ કિયા હૈ, ઇસ ઉદ્દેશમે યહ વતલાયા જાયગા કિ અપને ઘર આહારાદિ ગ્રહણ કરનેકે નિમિત્ત આયે હુએ મુનિકો કોઈ ભદ્ર ગૃહસ્થ કદાચિત્ શીતાદિ કારણવશ પ્રકમ્પિત હોતે દેખ પૂછે કિ “કામકી ચેષ્ટાસે હી આપકા શરીર કાંપ રહા હૈ ક્યા ?” તવ સાધુકા કર્તવ્ય હૈ કિ વહ ઇસ પ્રકારકી ગૃહસ્થકી અસત્-ખોટી આશકાકા નિવારણ કરે ઔર કહે કિ “ગીતાદિક નિમિત્તસે હી મેરા શરીર કાંપ રહા હૈ અન્ય કારણસે નહીં।” ઉસમેં સર્વ પ્રથમ મધ્યમ અવસ્થામેં શીત સે કપિત શરીરકે પ્રસંગસે ઉસ અવસ્થા કી સયમકે આચરણકી યોગ્યતા કો સૂત્રકાર પ્રદર્શિત કરતે હૈ—‘મજ્ઞિમેણ’ ઇત્યાદિ ।

આઠમા અધ્યયનનો ત્રીજો ઉદ્દેશ

ખીજો ઉદ્દેશ કહેવાઈ ગયેલ છે, હવે ત્રીજો ઉદ્દેશ કહેવામા આવે છે આ ઉદ્દેશનો પૂર્વ ઉદ્દેશ સાથે એવો સબ્ધ છે—સાધુને અકલ્પનીય અશનાદિ ગ્રહણ કરવાનો એમા નિષેધ કરવામા આવેલ છે આ ઉદ્દેશમા એ બતાવવામા આવશે કે પોતાને ઘર આહારાદિ ગ્રહણ કરવા નિમિત્તે આવેલા મુનિને કોઈ ભદ્ર ગૃહસ્થ ઠડીના કારણે થરથરતા જોઈ પૂછે કે “કામની ચેષ્ટાથી આ શરીર કંપી રહ્યું છે કે શું ?” ત્યારે સાધુનું એ કર્તવ્ય છે કે તેણે પેલા ગૃહસ્થની ખોટી શંકાનું નિવારણ કરવું અને કહેવું કે—‘ઠડીના કારણે મારું શરીર કંપી રહ્યું છે ખીજું કોઈ કારણ જ નથી’ આમા સર્વ પ્રથમ મધ્યમ અવસ્થામા ઠડીથી કંપતા શરીરના પ્રસંગથી એ અવસ્થામા સયમના આચરણની યોગ્યતાને સૂત્રકાર પ્રદર્શિત કરે છે—“મજ્ઞિમેણ” ઇત્યાદિ

મધ્મ-મદ્ધિમેણ વયસાધિ પગે સંબુજ્જમાણા સમુદ્ધિયા
સુચ્ચા મેઘાધી વયણ પદિયાણ નિસામિયા સમિયાપ્પ ધમ્મે
આરિપર્હિ પવેદ્ધપ્પ, તે અણવકસમાણા અણદ્ધવાપ્પમાણા અપરિગ્ગ
દ્ધેમાણા નો પરિગ્ગહાવસિ સઠ્યાવસિ ચ્ચ ન લોગસિ વિદ્ધાય દદ્ધ
પાણેર્હિ પાવ કમ્મ અકુલ્લમાણે एसमह अगंधे विद्याहिप, ओप
जुहमस्तस्त्रेयस्त्रे उववाय चवणं च नच्चा ॥ सू० १ ॥

જાયા—મધ્યમેન વયસાડપ્પકં સંબુદ્ધમાનાઃ સમુત્થિતાઃ, ધુત્વા મેઘાધી
વયનં પશ્ચિતાનાં નિદ્રમ્ય સમતપા ધર્મ આર્થઃ પ્રવેદિત, તેઽનમિકાહ્નન્તઃ અનતિપા
ત્યન્તોઽપરિસુદ્ધન્તઃ નો પરિગ્રહન્ત સર્વસ્મિન્નાપ ચ સ્તદ્ધ લોકે વિદ્યમ્ય દપ્પં પ્રા-
પ્તિયુ પાપ કર્માઽકુર્વાણઃ એપ મહાન અગ્ન્યો વ્યામ્યાતઃ, આત્મો પ્રુતિમતઃ સ્ત્રેદઃ
ઉપપાત વ્યવનં ચ જ્ઞાત્વા ॥ મૂ० ૧ ॥

ટીકા—‘મધ્યમેન’—ત્યાદિ, મધ્યમેન વયસા—યૌવન—વર્ત્તકયાતિરિકતન તપઃ
સંયમાચરણયોગ્યનામસ્થાવિશ્લેષ સંબુદ્ધમાનાઃ=સંયમાચરણાય લોભં પ્રાપ્તા એકે=
કેષન સમુત્થિતાઃ=પૂરીતમગ્ન્યાઃ સુનયો મયન્તિ । અથ પ્રથમ—તૃતીયાવસ્થાદ્યં
વિદ્યાય મધ્યમપ્રજ્ઞાત્માયજ્ઞસ્વસ્મિન્ ક્વપિ નિદ્રતકામાભિલાષા નિર્વિષ્ણં રત્નત્રયા-
રાષને શક્તિસમ્પન્ના મન્ત્રીતિ ઘોષિતમ્ ।

યૌવન એક જુદા અવસ્થાસે નિશ્ચ અવસ્થાવિદોષકા નામ મધ્યમ
અવસ્થાહૈ । यह अवस्था ही प्रधानतया तप और संयमके योग्य मानी गई
है । इस अवस्थासे संयमके आचरणके लिये बोधको प्राप्त हुआ कोई २
मनुष्य दीक्षा लेकर मुनि हो जाते हैं । सूत्रमें प्रथम और तृतीय, इन
दोनों अवस्थाओंको छोड़कर जो मध्यम अवस्थाका प्रवृण किया है उससे
यह बात माळूम होती है कि प्रायः कर इस अवस्थामें कामकी अग्नि
लापासे निवृत्त हो कर प्राणी निर्बिघ्न रूपसे रत्नत्रयकी आराधना करने
में शक्तिशाली होते हैं ।

યૌવન અને જુદા અવસ્થાથી વચ્ચેની અવસ્થાનું નામ મધ્યમ અવસ્થા
॥ જે અવસ્થા જ પાત કરી તપ અને સંયમ માટે ચોખ્ખ માનવામાં આવેલ
છે, જે અવસ્થામાં સંયમના અભવજનુ માટે બોધને પ્રાપ્ત થયેલ કોઈ કોઈ મનુષ્ય
દીક્ષા લઈ મુનિ બને છે સૂત્રમાં પ્રથમ અને ત્રીજી જગ્યાએ જનને અવસ્થાઓને
છેડી જે મધ્યમ અવસ્થા નહીં કરવામાં આવી છે આથી જે વાત માલુમ પડે
છે કે પાત કરી જે અવસ્થામાં કામની અગ્નિલાપથી નિવૃત્ત બની પ્રદ્યુ
નિર્વિઘ્ન રૂપથી રત્નત્રયની આરાધના કરવામાં શક્તિશાળી હોય છે.

અત્રાય વિશેષ:-૩૬ સમ્બુદ્ધ્યમાના:-સ્વયંબુદ્ધાઃ પ્રત્યેકબુદ્ધાઃ બુદ્ધવોધિતાયેતિ ત્રિવિધાઃ સન્તિ, તેષુ બુદ્ધવોધિતાનામેવાત્રાધિકારોઽસ્તિ, તમેવાવલમ્બ્ય દર્શયતિ- 'શ્રુત્વે' -તિ-મેધાવી-રત્નત્રયારાધનફલાભિજ્ઞઃ પण्डिताना=તીર્થઙ્કર-ગણધરાદીના વચનમ્ ઇષ્ટાનિષ્ટપ્રાપ્તિપરિહારપ્રતિપાદકમાગમ શ્રુત્વા=સમાર્ઠ્ય તતો નિશમ્ય=હૃદયે-વધાર્ય ચ સમતામાશ્રયેત્ । યતો ધર્મઃ=શ્રુત-ચારિત્રલક્ષણઃ સમતયા=સર્વપ્રાણિષુ સમભાવેન આર્યૈઃ=તીર્થઙ્કર-ગણધરૈઃ પ્રવેદિતઃ=દ્વાદશગ્રંથપરિપદિ પ્રલપિતઃ । તેષામેવ કર્તવ્યં નિર્દિશતિ-'તે' इत्यादिना, તે=સમ્બુદ્ધ્યમાનાઃ સમુદ્યતાઃ સન્તઃ અનવકાઙ્ક્ષન્તઃ=શબ્દાદિવિષયમનિચ્છન્તઃ અનતિપાતયન્તઃ=પ્રાણિપ્રાણવ્યપરોપનમકુ-

યહાં इतना विशेष है-समुद्ध्यमान जीव ती प्रकारके हैं-१ स्वयम्बुद्ध, २ प्रत्येकबुद्ध, और ३ बुद्धवोधित । इनमें जो बुद्धवोधित है उनका ही यहां अधिकार है, अतः उसी अधिकारकी ले कर कहते हैं "श्रुत्वा" इत्यादि, रत्नत्रयकी आराधनाजन्य फलका जाता वह मेधावी-तीर्थङ्कर और गणधरादिकोंके इष्ट और अनिष्टकी प्राप्ति और परिहारके प्रतिपादक आगमस्वरूप वचन सुन कर, और उन्हें हृदयमें धारण कर समस्त जीवोंमें समताभाव धारण करे । क्यो कि श्रुतचारित्रलक्षणरूप ही धर्म है और यह समस्त जीवोंमें समभावरूपसे रहने से ही प्राप्त होता है, ऐसा तीर्थङ्कर और गणधरादि देवोंने बारह प्रकारकी सभामें कहा है । बुद्धवोधितों के कर्तव्योंको दिखलानेके निमित्त सूत्रकार 'ते अणवकंखमाणा' इस सूत्रांशका कथन करते हैं-ये बुद्धवोधित जीव प्रव्रज्या धारण करनेके लिये उद्यत होते हुए शब्दादिक विषयोंकी

આમા એટલુ વિશેષ છે-સમુદ્યમાન જીવ ત્રણ પ્રકારના છે ૧ સ્વયંબુદ્ધ, ૨ પ્રત્યેકબુદ્ધ, ૩ બુદ્ધબોધિત આમા જે બુદ્ધબોધિત છે એનોજ અહિં અધિકાર છે આથી એ અધિકારને લઈ સૂત્રકાર કહે છે-"શ્રુત્વા" ઇત્યાદિ રત્નત્રયની આરાધનાજન્ય ફળના બાણનાર એ મેધાવી-તીર્થઙ્કર-અને ગણધરાદિકોના ઇષ્ટ અને અનિષ્ટની પ્રાપ્તિ અને પરિહારના પ્રતિપાદક આગમ સ્વરૂપ વચન સાંભળી અને તેને હૃદયમા ધારણ કરી સમસ્ત જીવોમા સમતાભાવ ધારણ કરે કેમ કે શ્રુતચારિત્રલક્ષણરૂપ જ ધર્મ છે, અને તે સમસ્ત જીવોમા સમભાવરૂપથી રહેવાથી પ્રાપ્ત થાય છે એવુ તીર્થઙ્કર અને ગણધર આદિ દેવોએ બાર પ્રકારની સભામા કહ્યુ છે બુદ્ધબોધિતોના કર્તવ્ય બતાવવા માટે સૂત્રકાર "તે અણવકંખમાણા" આ સૂત્રાંશથી કથન કરે છે-આ બુદ્ધબોધિત જીવ પ્રવ્રજ્યા ધારણ કરવા માટે ઉદ્યમી બનીને શબ્દાદિક વિષયોની આહવાની રહિત બનીને

વાં છેદજ્ઞઃ, છેદજ્ઞન્દોઽગ્ર સ્વરૂપાર્થપ્રતિવોદકસ્તેન મોક્ષ-સયમયોઃ સ્વરૂપપરિ-
જ્ઞાતેત્યર્થઃ । દેવલોકેઽપિ ઉપપાતં ચ્યવન ચકારાન્નર-નરક-તિર્યગ્જન્મ-મરણાદિદુઃખ
જ્ઞાત્વા=ચુદ્ધ્વા પાપકર્મ નૈવ કુર્યાત્ ॥ સુ૦ ૧ ॥

હો 'દ્યુતિમત્'—મોક્ષ ઔર ઉસકે સાધન-સંયમ-કે 'છેદજ્ઞ' સ્વરૂપકા
પરિજ્ઞાતા હોતા હૈ, સંસારકે સાધનોંકા નહી, કારણ કિ યહ્ ઇસ
યાતકો અચ્છી તરહ જાન ચુકા હૈ કિ સંસારમેં ઇસ જીવકો કમી સચ્વી
સુખશાંતિ નહી મિલ સકતી હૈ, દેવગતિમેં મી જીવકો જન્મ ઔર મરણ
કરના પડતા હૈ, મનુષ્યગતિ, નરકગતિ ઔર તિર્યગ્ગતિમેં મી યહી પરિ-
સ્થિતિ હૈ । યહાં પર મી જીવ જન્મ ઔર મરણકે દુઃખોંસે રહિત નહીં હૈ,
ઇસલિયે ઇન સમસ્ત સાંસારિક દુઃખોંસે છુડાનેવાલા યદિ કોઈ હૈ તો,
વહ્ ઇનકા અભાવસ્વરૂપ ઇક મોક્ષ હૈ, ઔર મોક્ષકી પ્રાપ્તિકા કારણ
ઇક સયમ હૈ અતઃ યહ્ મોક્ષ ઔર સયમકે સ્વરૂપકા જ્ઞાતા બનકર ઉસી
ઔર અપની પ્રવૃત્તિકો લગાતા રહતા હૈ ઔર પાપકર્મોંસે સર્વથા જુદા
રહતા હૈ, ઇસી આશયકો સૂચિત કરનેકે લિયે “ઔજો દ્યુતિમતઃ છેદજ્ઞઃ
ઉપપાતં ચ્યવન ચ જ્ઞાત્વા ” યહ્ કહા હૈ ।

છેદજ્ઞ—છેદ શબ્દકા અર્થ સ્વરૂપ હૈ, ઉસકે જ્ઞાતાકા નામ છેદજ્ઞ
હૈ । મધ્યમ અવસ્થામે સંયમકે આચરણકે લિયે વોધકો પ્રાપ્ત હુઅ કોઈ ૨
જીવ દીક્ષા લે કર મુનિ હો જાતે હૈ । તીર્થઙ્કરાદિપ્રતિપાદિત વચન-

—મોક્ષ અથવા તેના સાધન-સયમ-ના 'છેદજ્ઞ' સ્વરૂપના બાણુકાર હોય છે-
સંસારના સાધનોના નહિ, કારણ કે એ આ વાતને સારી રીતે બાણી થૂકેલ છે કે
સંસારમા આ જીવને કદી પણ સાચી સુખ શાંતિ મળી શકતી નથી
દેવગતિમા પણ જીવને જન્મ અને મરણ કરવા પડે છે મનુષ્યગતિ,
નરકગતિ, અને તિર્યગ્ગતિમા પણ આવી જ પરિસ્થિતિ છે—ત્યા પણ
જીવ જન્મ અને મરણના દુ ખોથી રહિત નથી, માટે આવા સમસ્ત સાંસારિક
દુ ખોથી છોડાવવાવાળા બે કોઈ હોય તો તે તેના અભાવસ્વરૂપ એક મોક્ષ જ છે,
અને મોક્ષની પ્રાપ્તિ સયમથી જ મેળવી શકાય છે મોક્ષની પ્રાપ્તિનુ કારણ એક
સયમ છે માટે મોક્ષ અને સયમના સ્વરૂપના જ્ઞાતા બની તેના તરફ પોતાની
પ્રવૃત્તિને લગાડે છે અને પાપ કર્મોથી સર્વથા જુદા રહે છે આ આશયને સમ
બાવવા માટે “ ઔજો દ્યુતિમતઃ છેદજ્ઞઃ ઉપપાતં ચ્યવન ચ જ્ઞાત્વા ” આ કહ્યું છે
છેદજ્ઞ—ખેદ શબ્દનો અર્થ આ સ્થળે સ્વરૂપ છે, તેના જ્ઞાતાનુ નામ ખેદજ્ઞ છે

મધ્યમ અવસ્થામા સયમના આચરણ માટે પ્રાપ્ત થયેલ કોઈ કોઈ જીવ
દીક્ષા લઈને મુનિ બની બંધ છે તીર્થંકરાદિપ્રતિપાદિત વચનરૂપ આગમનુ

मध्यमे वयसि प्रवृत्तिता अप्यस्य परीपहेन्द्रियैर्गमयन्तीत्याह—‘आहारो०’ इत्यादि।
मध्यम—आहारावचया देहा परीसहपमगुरा, पासह एगे
सर्विदिपहिं परिगिलायमाणेहिं ओष दय दयह ॥सू० २ ॥

छाया—आहारोपचया देहाः परीपहमगुराः पश्यत एके सर्वेन्द्रियैः परि
स्वामानैः आहो दया दयसे ॥ सू० २ ॥

टीका—‘आहारोपचये’—स्वादि, ‘आहारोपचया’ आहारोपचय=भक्षणादिना
उपचयो इन्द्रियोपां ते आहारोपचयाः ‘परीपहमगुराः’ परीपहेन्द्रियैर्गमयन्तीत्याह

स्य आगमके अथवा एषं मनन से समस्त जीवों में समता चरण करने
से ही भुक्तचारित्र्यस्य धर्मकी प्राप्ति होती है, ऐसे दृढ़ विश्वास से शब्दा-
दिक विषयों की ओर नहीं जा कर अठारह प्रकारके पापस्थानकोंका परि-
त्याग कर अपने गृहीत चारित्र्यकी उत्कृष्टता करने निमित्त समस्त परिग्रहसे
रहित बन राग और द्वेषसे रहित होनेके लिये मोक्ष और उसके साधनों
को जानने की ओर ही अग्रसर होते हैं ॥सू० १॥

मध्यम वयमें दीक्षित होने पर भी कोई एक मुनि परीपह और
इन्द्रियोसे दुग्धित होते हैं, इस विषयको क्लान्तके लिये सूत्रकार
कहते हैं—‘आहारोपचया’ इत्यादि ।

प्राणियोक्ति शरीर “आहारोपचया” आहार—अशन आदिसे उपचय
—इन्द्रियो को प्राप्त होनेवाले तथा “परीपह प्रमगुराः” क्षुधास्य परीपहसे
पिनशनशील होते हैं ।

तत्पर्य यह कि—प्राणियोक्ता औदारिक शरीर आहारसे पृथिगत और

अथवा तेमज मननशी समस्त लोभा समता आरक्ष इत्यादी व भुक्तचारित्र्य
धर्मकी प्राप्ति थाय है जोवा एक विश्वासशी ते शब्दादिक विषयोंकी तरफ नही
जता आहार प्रकारका पापस्थानोंमें परित्याग करी पोताना गृहीत चारित्र्यने उत्कृष्टता
इत्यादि निमित्त समस्त परिग्रहशी रहित जनी राग अने द्वेषकी पर जनवायी
मोक्ष अने तेन साधनों अत्युत्तमी तरफ व अग्रसर थाय है. (सू १)

मध्यम वयमा दीक्षित जनवायी पक्ष केवल जोक मुनि परित्याग अने
इन्द्रियोकी दुग्धित थाय है अत विरयने जतापना मागे सूत्रकार बड़े है—
“आहारोपचया” इत्यादि.

प्राणियोक्त शरीर “आहारोपचयाः आहार—अशन आदिसे उपचय—इन्द्रियो
प्राप्त भवता तथा—“परीपहप्रमगुराः” क्षुधास्य परित्यागशी भवान् होता है

तत्पर्य जो है कि—प्राणियोक्त औदारिक शरीर आहारसे पृथिगत अने

વાં છેદજ્ઞઃ, છેદજ્ઞવ્દોઽન્ન સ્વરૂપાર્થપ્રતિબોધકસ્તેન મોક્ષ-સયમયોઃ સ્વરૂપપરિજ્ઞાતેત્યર્થઃ । દેવલોકેઽપિ ઉપપાતં ચ્યવન ચક્રારાન્નર-નરક-તિર્યગ્જન્મ-મરણાદિદુઃખ જ્ઞાત્વા=બુદ્ધ્વા પાપકર્મ નૈવ કુર્યાત્ ॥ સુ૦ ૧ ॥

હો ‘દ્યુતિમત્’-મોક્ષ ઓર ઉસકે સાધન-સયમ-કે ‘છેદજ્ઞ’ સ્વરૂપકા પરિજ્ઞાતા હોતા હૈ, સસારકે સાધનોંકા નહી, કારણ કિ યહ ઇસ વાતકો અચ્છી તરહ જાન ચુકા હૈ કિ સંસારમે ઇસ જીવકો કમી સચ્વી સુખશાંતિ નહી મિલ સકતી હૈ, દેવગતિમે ભી જીવકો જન્મ ઓર મરણ કરના પડતા હૈ, મનુષ્યગતિ, નરકગતિ ઓર તિર્યગ્ગતિમેં ભી યહી પરિસ્થિતિ હૈ । યહાં પર ભી જીવ જન્મ ઓર મરણકે દુઃખોસે રહિત નહીં હૈ, ઇસલિયે ઇન સમસ્ત સાંસારિક દુઃખોસે છુડાનેવાલા યદિ કોઈ હૈ તો, વહ ઇનકા અભાવસ્વરૂપ એક મોક્ષ હૈ, ઓર મોક્ષકી પ્રાપ્તિકા કારણ એક સયમ હૈ અતઃ યહ મોક્ષ ઓર સયમકે સ્વરૂપકા જ્ઞાતા બનકર ઉસી ઓર અપની પ્રવૃત્તિકો લગાતા રહતા હૈ ઓર પાપકર્મોસે સર્વથા જુદા રહતા હૈ, ઇસી આશયકો સૂચિત કરનેકે લિયે “ઓજો દ્યુતિમતઃ છેદજ્ઞઃ ઉપપાતં ચ્યવન ચ જ્ઞાત્વા ” યહ કહા હૈ ।

છેદજ્ઞ—છેદ શબ્દકા અર્થ સ્વરૂપ હૈ, ઉસકે જ્ઞાતાકા નામ છેદજ્ઞ હૈ । મધ્યમ અવસ્થામેં સયમકે આચરણકે લિયે બોધકો પ્રાપ્ત હુઅ કોઈ ૨ જીવ દીક્ષા લે કર મુનિ હો જાતે હૈ । તીર્થંકુરાદિપ્રતિપાદિત વચન-

—મોક્ષ અથવા તેના સાધન-સયમ-ના ‘છેદજ્ઞ’ સ્વરૂપના બાણકાર હોય છે-સસારના સાધનોના નહિ, કારણ કે એ આ વાતને સારી રીતે બાણી ચૂકેલ છે કે સસારમા આ જીવને કદી પણ સાચી સુખ શાંતિ મળી શકતી નથી દેવગતિમા પણ જીવને જન્મ અને મરણ કરવા પડે છે મનુષ્યગતિ, નરકગતિ, અને તિર્યગ્ગતિમા પણ આવી જ પરિસ્થિતિ છે-ત્યા પણ જીવ જન્મ અને મરણના દુ ખોથી રહિત નથી, માટે આવા સમસ્ત સાંસારિક દુ ખોથી છોડાવવાવાળા જે કોઈ હોય તો તે તેના અભાવસ્વરૂપ એક મોક્ષ જ છે, અને મોક્ષની પ્રાપ્તિ સયમથી જ મેળવી શકાય છે મોક્ષની પ્રાપ્તિનું કારણ એક સયમ છે માટે મોક્ષ અને સયમના સ્વરૂપના જ્ઞાતા બની તેના તરફ પોતાની પ્રવૃત્તિને લગાડે છે અને પાપ કર્મોથી સર્વથા જુદા રહે છે આ આશયને સમ જાવવા માટે “ ઓજો દ્યુતિમત્. છેદજ્ઞ. ઉપપાતં ચ્યવન ચ જ્ઞાત્વા ” આ કહ્યું છે છેદજ્ઞ—ખેદ શબ્દનો અર્થ આ સ્થળે સ્વરૂપ છે, તેના જ્ઞાતાનું નામ છેદજ્ઞ છે

મધ્યમ અવસ્થામા સયમના આચરણ માટે પ્રાપ્ત થયેલ કોઈ કોઈ જીવ દીક્ષા લઈને મુનિ બની બધે છે તીર્થંકુરાદિપ્રતિપાદિત વચનરૂપ આગમનું

मध्यमे वयसि प्रवृत्तिता अप्यन्ये परीपहन्त्रियैर्मानयन्तीत्याह—‘आहारो’ इत्यादि।
 मध्यम—आहारोपचया दहा परीसहपभक्षुरा, पासह एगे
 सर्व्विदियहिं परिगिलायमाणेहिं ओण दय दयह ॥सू० २ ॥

छाया—आहारोपचया दहाः परीपहमभक्षुरा पश्यत एक सर्व्वेन्द्रियैः परि
 स्थापमानैः आज्ञो व्यां दयते ॥ सू० २ ॥

टीका—‘आहारोपचय’ इत्यादि, ‘आहारोपचया’ आहारेण=भक्षणादिना
 उपचयो इदिर्येषां ते आहारोपचया ‘परीपहमभक्षुरा’ परीपहेण=धुधारूपेण

रूप आत्ममके अचण एषं मनन से समस्त जीवों में समता धारण करन
 से ही भुतचारित्र्यरूप धर्मकी प्राप्ति होती है, ऐसे हड़ विश्वास से शब्दा-
 दिक विषयों की ओर नहीं जा कर अठारह प्रकारके पापस्थानकोंका परि-
 त्याग कर अपने सुदृष्ट चारित्र्यकी उज्ज्वलता करने निमित्त समस्त परिग्रहसे
 रहित बन राग और द्वेषसे रहित होनेके लिये मोक्ष और उसके साधनों
 को जानने की ओर ही अग्रसर होते हैं ॥सू० १॥

मध्यम वयमें दीक्षित होने पर भी कोई एक मुनि परीपह और
 इन्द्रियोसे दुःखित होते हैं, इस विषयको पतानेके लिये सूत्रकार
 कहते हैं—‘आहारोपचया’ इत्यादि ।

प्राणियोंके शरीर “आहारोपचय” आहार-भक्षण आदिसे उपचय
 —वृद्धि को प्राप्त होनेवाले तथा “परीपहमभक्षुरा” धुधारूप परीपहसे
 विनश्वानशील होते हैं ।

तात्पर्य यह कि—प्राणियोंका औदारिक शरीर आहारसे वृद्धिगत और

अथवा तमक मननधी समस्त लोभोभा अभवा धारण इत्याधी न भुतभा त्रिद्व
 धर्मनी प्राप्ति थाय छ केवा हड विश्वासधी ते शब्दादिक विषयोनी तरे नदी
 एतां अग्र प्रकाश पापस्थानोने परित्याग करी पीताना नृदीन आदिने उज्ज्वल
 इत्या निमित्त समस्त परिग्रहधी रहित जनी राज जने द्वेषधी पर अन्याधी
 मोक्ष जने तेनां साधनो व्यसुजानी तरे न अग्र थाय छे । (सू १)

मध्यम वयमा दीक्षित जनयाधी पञ्च कोई अक मुनि पश्चिद जने
 इन्द्रियोधी दुःखित थाय छ आ विषयने पतापवा भाटे स्वरकार छडे छे—
 “आहारोपचय” इत्यादि.

प्राणीजोना शरीर, “आहारोपचया” आहार-भक्षण आदिसे उपचय—वृद्धिने
 प्राप्त यनात तथा—“परीपहमभक्षुरा” धुधारूप पश्चिदधी गान छेय छे.

तात्पर्य अने छे के—प्राणीजोनु औदारिक शरीर आहारधी वृद्धिगत जने

મમ્મદ્ગુરાઃ=વિનશનશીલાઃ પ્રાણિના દેહાઃ=શરીરાણિ મમન્તીતિ પશ્યત=દ્રુયં પ્રેક્ષ-
ધ્વમ્, એકે=કેચિત્કાતરાઃ ક્ષુધયા પરિગ્લાયમાનૈઃ સર્વેન્દ્રિયૈઃ કાતરભાવ ગચ્છન્તિ,
इत्यपि पश्यतेति पूर्वण सम्वन्धः । किन्तु तद्विपरीत ओजः=एकः राग-द्वेषवर्जितः
परीपहोपसर्गसहनममर्थः क्षुधादिपरीपहोपनिपातेऽपि महागिरिर्त्वाऽकम्प्यो दयां
पङ्जीवनिकायानुरुम्पा दयते=परिपालयति ।

ક્ષુધાર્તશ્ચક્ષુષા રૂપાદિક ન સમ્યક્ પશ્યતિ, કર્ણેન શબ્દ ન સમ્યક્ શૃણોતિ,
રસનયા ન રસં સમ્યગાસ્વાદયતિ, નાઽપિ વ્રાણેન ગન્ધ સમ્યગ્ જિગ્રતિ, ત્વચા
નાઽપિ શીતાદિક સમ્યક્ સ્પૃશતિ, ક્ષુધા સર્વેન્દ્રિયાણા શક્તિપ્રતિઘાતકારિણી
ભવતીત્યાશયઃ ।

ક્ષુધારૂપ પરીપહ સે મ્લાન યા વિનષ્ટ હો જાતા હૈ, યહ વાત શિષ્યોં કો
સમજાતે હૈ—“પશ્યત” આપ લોગ હસ વાત પર વિશ્વાસ રલ્લો ।
જવ યહ વાત હૈ નો કોઈ ૨ કાતર પ્રાણી ક્ષુધાવેદનીય સે દુઃખિત હુએ
ઇન્દ્રિયોંદ્વારા કાતર ભાવકો ધારણ કરતે હૈ । યહ ભી વાત વિશ્વાસ કરને
જૈસી હૈ, કિન્તુ જો રાગ-દ્વેષસે રહિત હોતે હૈં વે પરીપહ ઔર ઉપસર્ગોં
કો સહનેમેં શાક્તશાલી હોતે હૈં—ક્ષુધાદિ પરીપહોં કે આ જાને પર ભી
વે સુમેરુકી તરહ અકમ્પ્ય હોતે હૈં, ઔર પઙ્જીવનિકાય કી દયાકા
પરિપાલન કરતે હૈ ।

જો કાતર હોતે હૈં વે જવ ક્ષુધાસે પીડિત હોતે હૈ તવ આંત્રોંસે
રૂપાદિક્કા અચ્છી તરહસે અવલોકન નહીં કર સકતે હૈં, કાનોંસે
અચ્છી તરહ શબ્દ ભી નહીં સુન સકતે હૈં, જીભસે સુન્દર સુસ્વાદુ રસ
તક કા ભી સ્વાદ નહીં લે સકતે હૈં, નાકસે સુન્દર ગધ તક ભી નહીં

ક્ષુધારૂપ પરિષદ્ધર્થી મ્લાન અને નિર્બળ બને છે આ વાત શિષ્યોને સમ-
જાવે છે અને કહે છે—“પશ્યત” આપ લોક આ વાત ઉપર વિશ્વાસ રાખો
ન્યારે આ વાત છે તો કોઈ કોઈ કાયર પ્રાણી ભૂખના હુ બથી હુખિત બની
ઇન્દ્રિયોંદ્વારા કાયરભાવ ધારણ કરે છે આ વાત પણ વિશ્વાસ કરવા જેવી છે, પરંતુ
જે ગગ દ્વેષથી રહિત છે તે પરિષદ્ અને ઉપસર્ગોં સહેવામા શક્તિશાળી હોય છે—
ક્ષુધાદિ પરિષદ્હોના આવવાથી પણ તે સુમેરૂની માફક અડગ રહે છે, અને પં
જીવનિકાયની દયાનુ પરિપાલન કરે છે

જે કાયર હોય છે તે ન્યારે ભૂખથી પીડિત થાય છે ત્યારે આખોથી
રૂપાદિક્કુ પણ સારી રીતે અવલોકન કરી શકતા નથી, કાનોથી સારી રીતે શબ્દ
પણ સાંભળી શકતા નથી જીભથી સુન્દર સુસ્વાદુ રસનો પણ સ્વાદ લઈ
શકતા નથી, નાકથી સુન્દર ગધ પણ સુધી શકતા નથી અને સ્પર્શ ઇન્દ્રિયથી

નતુ કેવલિભિમાનાં દેહા આહારોપચયા મવન્તીતિ તદર્થે તેડમન્તિ, વયાવીનિ
 વ પાલ્પન્તીતિ, કેવલિનો હિ નિયતં સેત્સ્યન્તિ તર્હિ કિમર્થે તે દેહં ધારયન્તિ?
 કિમર્થં વ મુક્ષતે? इति चेत् न, કેવલિનામપિ વદનીયાદિકર્મક્ષતુષ્ટયસમ્પ્રાપ્તેન તત્ત-
 પચાર્થે શરીરપારજન્યાઽઽહારસ્ય ચાઽઽવશ્યકત્વાત્, અન્યથા તેષાં તદાનીમપિ વેદ-
 નીયાદિકર્મસત્ત્વાત્કુષાપરીપહામિમવસ્ય દુર્ધારસ્થં સ્યાત્, તત્તથ કેવલિનોઽપિ
 કવલાહારં કુર્ષન્તિ, ઇં વિનૌદારિકશરીરસ્થિતેરસમ્મવાત્, શરીરસ્થિતિં વિના શ્લેષ
 કર્મક્ષતુષ્ટયસપ્ચાસમ્મવાચ્ચાવશ્યક એવ કેવલિનામપિ કવલાહારં ઇત્યસ્મ્ ॥૨૦૨॥
 પદ્મજીવનિકાયરક્તકઃ કીદશો મવતીતિ દર્શયતિ—‘જે સંનિહાણસત્પસ’ ઇત્યાદિ ।

સૂચ સકતે હૈં ઔર સ્પર્શનં હિન્દ્રિયસે ગ્રીતાવિક્કે જ્ઞાનસે મી અપરિચિત
 રહતે હૈં, તાત્પર્ય—શુધા નમસ્ત હિન્દ્રિયોંકી શક્તિકા પ્રતિષ્ઠાત કરનેવાલી
 હોતી હૈં ।

કેવલિયોં કે ‘મી વેદમીયાદિક ચાર અવાલિયા કમોંકા સમ્પ્રાપ્ત હૈં,
 અતા વન કમોંકો નાશ કરનેકે લિયે ઉન્હેં ‘મી શરીરરક્ષાકી આશય
 કતા હૈં, ઔર શરીરરક્ષાકે નિમિત્ત કવલાહાર કી જરૂરત હૈં, કવલાહાર
 ‘મી ઇસલિયે વહાં હોતા હૈં કિ વહ વેદનીય કર્મકા કાર્ય હૈં, યદિ વે કવ
 લાહાર ન કરે તો વેદનીય કર્મકે સમ્પ્રાપ્તસે તત્તજન્ય-કુષાપરીપહજન્ય
 કષ્ટકા ઉન્હેં સામના કરના પડે । ઇમ લિયે કેવલી ‘મી કવલાહાર કરતે
 હૈં, ઇસકે વિના ઔદારિક શરીરકી સ્થિતિ નહીં રહ સકતી, શરીરસ્થિતિ
 રહે વિના શ્લેષ કર્મક્ષતુષ્ટયકા વિનાશ નહીં હો સકતા હૈં, અતાઃ કેવ
 લિયોંકે ‘મી કવલાહાર હૈં ॥ ૨૦૨ ॥

પદ્મજીવનિકાયકા રક્તક વહ કેસા હોતા હૈં ? મો કહતે હૈં—
 “જે સંનિહાણસત્પસ ” ઇત્યાદિ ।

કલી આક્રિયા જ્ઞાનથી પણ અપરિચિત રહે છે તાત્પર્ય—શુધ સમસ્ત હિન્દ્રિયોના
 શક્તિનો પ્રતિષ્ઠાત કરનાર છે.

કેવલિયોને પણ વેદનીય અદિ ચાર અવાલિયા કમોંના સમ્પ્રાપ્ત છે
 માટે તેવા કમોંના નાશ કરવા તેને પણ શરીરરક્ષાની આવશ્યકતા છે અને
 શરીરરક્ષાના નિમિત્ત કવલ આહારની જરૂરત છે કવલ આહાર પણ જે માટે
 ત્યાં કોષ છે કે તે વેદનીય કર્મનું કાર્ય છે એ તે કવલ આહાર ન કરે તો
 વેદનીય કર્મના સમ્પ્રાપ્તથી તત્તજન્ય-કુષાપરિપહજન્ય કષ્ટનો તેને સામનો
 કરવો પડે, માટે કેવલી પણ કવલ આહાર કરે છે તેના વિના ઔદારિક
 શરીરની સ્થિતિ રહી શકતી નથી. શરીરસ્થિતિ રહ્યા વિના બાકી રહેલા ચાર
 કમોંના વિનાશ થઈ શકતો નથી. માટે કેવલિયોને પણ કવલ આહાર છે (૨૦૩)

પદ્મજીવનિકાયના રક્તક કેવા કોષ છે? તે કહે છે— ‘જ સમિહાણસત્પસ’ ઇત્યાદિ.

મૂલમ્—જે સંનિહાણસત્થસ્સ ચેયન્ને સે ભિક્ખૂ કાલજ્ઞે વલન્ને માયન્ને ચ્વણન્ને વિણયન્ને સમયન્ને પરિગ્ગહં અમમાયમાણે કાલેણુટ્ટાઈ અપહિન્ને દુહઓ છિત્તા નિયાઇ ॥ સૂ૦ ૩॥

છાયા—યઃ સન્નિધાનશાસ્ત્રસ્ય ચેદજ્ઞઃ ભિક્ષુઃ કાલજ્ઞો વલજ્ઞો માત્રજ્ઞઃ ક્ષણજ્ઞો વિનયજ્ઞઃ સમયજ્ઞઃ પરિગ્રહમમાયમાન કાલેડુનુષ્ઠાયા અપ્રતિજ્ઞો દ્વિધા છિત્ત્વા નિયાતિ।

ટીકા—‘યઃ’ ઇત્યાદિ, યઃ=પૂર્વોક્તો દયાપરિપાલકઃ સન્નિધાનશાસ્ત્રસ્ય-સન્નિધીયતે=સ્થાપ્યતે નરકનિગોદાદિપુ જીવો યેન તત્ સન્નિધાન=જ્ઞાનાવરણીયાદિરૂં કર્મ, તસ્ય શાસ્ત્રં=તત્સ્વરૂપપ્રતિપાદક આગમઃ=સન્નિધાનશાસ્ત્રં, તસ્ય। યદ્વા—‘સન્નિધાનશાસ્ત્રસ્ય’ ઇતિ છાયા, તેન સન્નિધાનસ્ય કર્મણઃ શસ્ત્રવચ્છેદકત્વેન શસ્ત્રં સયમ-સ્તસ્ય ચેદજ્ઞઃ=કુશલો ભવતિ સ ભિક્ષુઃ કાલજ્ઞો વલજ્ઞો માત્રજ્ઞઃ ક્ષણજ્ઞો વિનયજ્ઞઃ સમયજ્ઞઃ પરિગ્રહમમાયમાનઃ કાલેડુનુષ્ઠાયા અપ્રતિજ્ઞો દ્વિધા રાગં દ્વેષં ચ છિત્ત્વા નિયાતિ=મોક્ષં પ્રાપ્નોતિ। એતેષા વ્યાખ્યા દ્વિતીયાધ્યયનસ્ય પશ્ચમોદેશે પ્રોક્તેતિ ॥

સન્નિધાનશાસ્ત્રકા અર્થ આગમ હૈ, વહ્ હસ પ્રકારસે-નરક ઓર નિગોદાદિકોં મેં જીવ જિસકે દ્વારા સ્થાપિત કિયા જાતા હૈ વહ સન્નિધાન-જ્ઞાનાવરણીયાદિ કર્મ-હૈ, હનકે સ્વરૂપકા પ્રતિપાદક જો શાસ્ત્ર હૈ વહ સન્નિધાનશાસ્ત્ર-આગમ હૈ। અથવા—“સન્નિધાનશાસ્ત્ર” યહ્ ભી “સંનિહાણસત્થસ્સ” કી છાયા હો સકતી હૈ। હસકા અર્થ સંયમ હૈ સંનિધાનકા અર્થ કર્મ, ઓર હસ કર્મકા શાસ્ત્રકી તરહ્ છેદક હોનેસે શાસ્ત્ર સયમ હૈ। આગમકા અથવા સયમકા જો જ્ઞાતા-હસ વિષયમેં જો કુશલ-હૈ વહ કાલજ્ઞ, વલજ્ઞ, માત્રજ્ઞ, ક્ષણજ્ઞ, વિનયજ્ઞ, સમયજ્ઞ પરિગ્ર-હત્યાગી, કાલોકાલ સયમ ક્રિયાકા આરાધક, અપ્રતિજ્ઞ મુનિ રાગ ઓર દ્વેષકા વિનાશ કર મોક્ષકો પ્રાપ્ત કરતા હૈ। હન સમસ્ત પદોં કી

સન્નિધાનશાસ્ત્રનો અર્થ આગમ છે તે આ પ્રકારથી-નરક અને નિગોદા-દિકોમા જીવ જેના દ્વારા સ્થાપિત કરાય છે તે સન્નિધાન-જ્ઞાનાવરણીયાદિ કર્મ છે તેના સ્વરૂપનુ પ્રતિપાદક જે શાસ્ત્ર છે તે સન્નિધાનશાસ્ત્ર-આગમ છે અથવા—“સન્નિધાનશાસ્ત્ર” આ પણ “સંનિહાણસત્થસ્સ”ની છાયા બને છે, આનો અર્થ સયમ છે સન્નિધાનનો અર્થ કર્મ-અને એ કર્મનુ શાસ્ત્રની રીતે છેદન કરનાર હોવાથી શાસ્ત્ર સયમ છે આગમના અથવા સયમના જે જ્ઞાતા-આ વિષયમા જે કુશળ-છે તે કાલજ્ઞ, વલજ્ઞ, માત્રજ્ઞ, ક્ષણજ્ઞ, વિનયજ્ઞ, સમયજ્ઞ, પરિગ્રહત્યાગી, કાલોકાલ સયમ ક્રિયાનો આરાધક, અપ્રતિજ્ઞ મુનિ રાગ અને દ્વેષનો વિનાશ કરી મોક્ષને પ્રાપ્ત કરે છે આ સમસ્ત પદોની

સપમાચરણાય પ્રવ્રજતો યદ્ભવતિ તદ્દર્શયતિ—‘તં મિષ્ણુ’ ઇત્યાદિ ।

મૂઢમ્—ત મિષ્ણુ સીયફાસપરિવેષમાણગાય ઉવસકમિત્તા ગાહાવર્ઙ વ્યયા—આઉસતો ! સમણા ! નો સ્વલ્લ ત ગામધમ્મા ઉવ્વાહતિ ? ! આઉસતો ! ગાહાવર્ઙ ! નો સ્વલ્લ મમ ગામધમ્મા ઉવ્વાહતિ, સીયફાસ ચ નો સ્વલ્લ અહ સન્થાપમિ અહિયાસિત્તપ્, નો સ્વલ્લ મે કપ્પહ અગણિકાય ઉજ્જાલિત્તપ્ વા પજ્જાલિત્તપ્ વા, કાય આયાવિત્તપ્ વા પયાવિત્તપ્ વા, અન્નેસિં વા વયણાઓ સિયા સે એવ ધયતસ્સ પરો અગણિકાય ઉજ્જાલિત્તા પજ્જાલિત્તા કાય આયાવિજ્ઞ વા પયાવિજ્ઞ વા ત ચ મિષ્ણુ પઢિલેદ્દાપ્ આગમિત્તા આણવિજ્ઞા અણાસેવણયાપ્—તિવેમિ ॥ સૂ૦ ૪ ॥

છાયા—તં મિષ્ણુ શ્રીતસ્પર્શપરિવેષમાનમાશ્વપ્સકમ્ય ગાથાપતિર્વ્યાત્—અસુ પ્પન્ન ! ભક્ષ્ય ! ન સ્વલ્લ તે ગ્રામધર્મા ઉદ્વાપન્ત ? ! આપુપ્પન્ન ! ગાથાપતે ! નો સ્વલ્લ મમ ગ્રામધર્મા ઉદ્વાપન્તે શ્રીતસ્પર્શ વન સ્વન્નાઈ ક્કન્નોમ્પપ્પાસિતું, ન સ્વલ્લ મે ક્કન્નવેડ મ્મિકાયમુજ્જ્ઞાનપિતું વા મન્નાસયિતું વા કાયમાતાપયિતું વા મતાપયિતું વા; અન્નેપાં વા નવનાત્ મ્યાત્ તસ્ય એવ ક્કત્ત; પટોડન્નિકાપ્પુજ્જ્ઞાસ્ય મજ્જાસ્ય કાયમાતાપયંઙા, મતાપયંઙા, તદ્દિદ્ધુઃ પ્રત્યુપપ્પાકગમ્માડ્ડઙ્ગાપયવ્વનાસેવ્વનયતિ વ્રવીમિ ॥ મૂ ૪ ॥

ત્રીક્ષ્—‘ત મિષ્ણુ’—મિત્યાદિ, ગાથાપતિ—ધન—ધાન્ય—હિરણ્ય—સુવર્ણ—આદિ સમુદિષ્ઠ દિમાન્ કસ્તૂરીચન્દનાદિપરિભિન્નગાત્રા રમણીયવપ્તુઃ કમનીયરમણીયસ્તમન્વિતો

પ્યાક્યા મિતીય અપ્યયનકે પાંચવે ઉદ્દેશમે કહ વી ગઈ હૈ ॥ મુ૦ ૩ ॥

સંયમકે આચરણકે લિયે વીક્ષિત કુપ મુનિ ક જો હોતા હૈ વસે સુવ્રક્ષાર કહતે હૈ—“તં મિષ્ણુ” ઇત્યાદિ ।

જો ધન, ધાન્ય, હિરણ્ય, સુવર્ણ આદિ સમુદિષ્ઠે યુક્ત હૈ,

કસ્તૂરી, ચન્દન આદિસે જિસફા શરીર લિપ્ત હો રહા હૈ, દેહ

વ્યાખ્યા બીજા અધ્યાયનના પાંચમા ઉદ્દેશનાં કહેવાયેલ છે (સૂ૦ ૪)

સપમાન આચરણ માટે વીક્ષિત બનેલ એ મુનિ હોય છે એને સુવ્રક્ષાર કહે છે—‘ત મિષ્ણુ’ ઇત્યાદિ.

જે ધન, ધાન્ય, હિરણ્ય, સુવર્ણ આદિ સમુદિષ્ઠી યુક્ત છે

કસ્તૂરી, ચન્દન, આદિથી જેણે શરીર લિપ્ત થઈ રહેલ છે તેણે પણ જેની

ગૃહસ્થઃ શીતસ્પર્શપરિવેપમાનગાત્રં=હેમન્તતૌ શીતસ્પર્શેન પરિવેપમાનં=કમ્પમાનં
 ગાત્રં=શરીર યસ્ય સ શીતસ્પર્શપરિવેપમાનગાત્રસ્તમ્ અલ્પોપધિકત્વેન શીતવાત-
 પરિકમ્પિતશરીરં તમ્=અન્તપ્રાન્તાશિનં તેજોરહિતમકિચ્ચન મિશ્રુ=મધ્યમાવસ્થાપનં
 મુનિમ્=ઉપસંક્રમ્ય=તત્સમીપમાગત્ય 'કિમયં મદીયવનિતારૂપ-લાવણ્ય-વિલોકનેન
 શૃંગારચેષ્ટાભિભૂતત્વાત્ પરિકમ્પિતગાત્રોઽથવા શીતસ્પર્શાદિના વા? इति सन्देहमुपगम्य
 च तं मिश्रुं ब्रूयात्=वक्ष्यमाणं वाक्यं कथयेत् पृच्छेदित्यर्थः, तदेवाह—' भो आयु-
 ष्मन् ! श्रमण ! किं ग्रामधर्माः=शृङ्गारादिमदनचेष्टाविशेषा विपयास्त्वां 'नो
 उद्वाधन्ते =न पीडयन्ति ? तादृश कृतप्रश्नमसत्याशङ्क गृहपतिमालक्ष्य स मिश्रु-
 स्तच्छङ्कामपनेतु ब्रवीति—' आयुष्मन् '—नित्यादि, हे आयुष्मन् ! ग्रामधर्माः मां नो

મો જિસકી बहुत सुन्दर है, घरमें जिसके मनोहर अंगवाली
 नारियोंका समूह है, ऐसे किसी गृहस्थके घर पर मध्यम अवस्थावाले,
 अल्प उपधिके धारी मुनि आहार लेनेके निमित्त आवे तब उन्हें
 अधिक ठण्डसे कंपित होते देखकर वह गृहस्थ उन अन्तप्रान्तभोजी
 एवं तेजरहित अकिंचन मुनिके प्रति सन्देहयुक्त विचार करता है कि-
 “यह मेरे घरकी इन वनिताओंके सुन्दर रूप और लावण्यको निहार कर
 शृङ्गार की चेष्टासे युक्त बन कम्पितशरीरवाला हुआ है? या शीतके स्पर्श
 से इसका शरीर कम्प रहा है ?” ऐसा सोच कर वह मुनिसे पूछता है-
 ‘भो मुने ! आपका शरीर हमारी स्त्रियोंको देख कर कम्प रहा है या
 अन्य किसी कारणसे ?, इस प्रकार असत्य आशङ्कासे युक्त उस पूछने-
 वाले गृहस्थ के प्रश्नको सुन कर वह भिक्षु उसकी आशङ्काके परिहार
 करने हेतु इस प्रकार कहे—‘भो आयुष्मन् ! ग्रामधर्म-काम-की चेष्टा

ખુબ સુંદર છે, ઘરમા મનોહર અંગવાળી સ્ત્રીઓના સમૂહ છે, એવા કોઈ ગૃહ-
 સ્થના ઘેર મધ્યમ અવસ્થાવાળા, અલ્પ ઉપધિના ધારક મુનિ આહાર લેવા માટે
 આવે ત્યારે તેને અધિક ઠંડીથી કાપતા જોઈ તે ગૃહસ્થ અન્તપ્રાન્તભોજી એવ
 તેજરહિત અકિચ્ચન મુનિના તરફ સંદેહયુક્ત વિચાર કરે છે કે—“ આ મારા
 ઘરની સ્ત્રીઓના સુંદર રૂપ અને લાવણ્યને જોઈ શૃંગારની ચેષ્ટાથી અકળાઈ
 કાપી રહેલ છે ? અથવા ઠંડીના સ્પર્શથી આનું શરીર કાપી રહ્યું છે ?” એવું વિચારી
 એ મુનિને પૂછે છે—હો મુનિ ! તમારું શરીર મારા ઘરની સ્ત્રીઓને જોઈ કાપી
 રહ્યું છે કે બીજા કોઈ કારણથી ?, આ પ્રકારની અસત્ય આશંકાથી પૂછવામા
 આવેલા ગૃહસ્થના એ પ્રશ્નને સાબળી શિક્ષુ એની આશંકાનું નિવારણ કર-
 વાના હેતુથી કહે છે કે—હો આયુષ્યમન્ ! ગ્રામધર્મ-કામ-ની ચેષ્ટાસ્વરૂપ શૃંગા-

સહ=નૈવ ઉત્પાદ્યતે=ન માં પીઠ્યન્તિ કિન્તુ અં શરીરદૌર્બલ્યનાસ્પોષકિયસ્યેન
 ચ શીતસ્પર્શ=તોષ્ણતરીતવાધામ્ અધ્યાસિદ્યુમ્=અધિસોદુ ન ધ્વન્યોમિ તેન મે ગાત્ર
 કમ્પત ન તુ કામચેષ્ટયેતિ માત્રઃ । ઇતિ સ્મ્બોચરો મુશ્પતિર્ચિનયમક્તિપરિપૂરિતા-
 ન્તાઃકરણઃ સન્ સઙ્ગિત પુનઃ પૂજ્યતિ-મવીર્ષ્ય પર્હિ સસેષ્ય શીતપીઠાં કર્ચ મથન્
 નાપનપતિ ! ઇતિ પ્રશ્ને સતિ મુનિરુચરમાહ-‘ ન સ્થિતિ ’-ત્યાદિ, અન્નિકાપમ્
 ઉચ્ચાલયિતુમ્=ઈપ્ત્ જ્વાલયિતું પ્રચ્ચાલયિતું=પ્રકર્ષેણ જ્વાલયિતું કાપ્યં=સ્વશરીરમ્=
 આતાપયિતુમ્=મનાઃ તાપયિમ્=અધિકમાતાપયિતુ મતાપયિતું વા, અન્યેષાં=પરેષાં
 વા ક્ષવનાત્=ક્ષયનાદપિ તદ્ ય=મમ ન કલ્પયે, અન્નિકાપારમ્મ પદ્મજીવન્નિકાપા
 રમ્મસ્યાવશ્યમ્માવાઙ્મગદાઙ્ગાચિરાકનાદોષાપાતાત્ ।

સ્વસ્થ શ્રુક્તરાવિ વિષયબાલે વિષય મુદ્ધે પીઠિત નહીં કર રહે હે, કિન્તુ
 હસ સમય શીત અધિક પડ રહા હૈ, ઉપધિ મી હતની અધિક નહીં હૈ
 કિ મિસસે મેં શીતકા વિષયારણ કર સહુ, સૈર-ઉપધિ અત્ય હોને પર
 મી યદિ શરીર સપાક હો તો મી શીત બગેરહ સહન કિયા જા સકતા
 હૈ પરન્તુ હસ સમય શરીર મી દુર્બલ હો રહા હૈ અતઃ શીતકે કારણ
 મેરા શરીર કંપ રહા હૈ-કામચેષ્ટાસે નહીં । હસ પ્રકાર મુનિસે જય બહ
 અપની આવાઙ્મકા ઉત્તર ઠીક ૨ પાલેતા હૈ તથ બહ લઙ્ગિત અવશ્ય હોતા
 હૈ, સાધમેં ઉસકે હૃદયમેં વિષેકકા સાગરસા ઉમઠ્ઠ આનેસે બહ ઉસ
 મુનિક પ્રતિ મક્તિ ખીર ચિનયક માત્રસે મરિત અંતાઃકરણવાલા
 સહિ વિષયવાળા વિષય મને પીઠ્યા નથી પરન્તુ અત્યારે ઠીક અધિક
 પ્રમાણમા હોવામા, તેમ મારી પાસે જો ઠીકથી જન્માવ કરી શકે તે સીતે
 વચ્ચાદિક ન કાપાથી કાપી રહ્યો છું વચ્ચાદિક જોખા હોવા છતાં પણ જો શરીર
 સસાદ્ય કાપ તો ઠીક સહન કરવામા હરકત ન પડે જા સમયે માફ શરીર
 પણ દુર્બલ છે, આથી ઠીકના અત્યારે માફ શરીર કાપી રહ્યો છે-કામચેષ્ટાથી
 નહીં જા પ્રકારે મુનિથી જન્મારે તે પોતાની જાસકાને ઉત્તર ઠીક ઠીક મેળવી
 લે છે ત્યારે તે અત્યુત્ત અને જ સાધમા તેના હૃદયમા સ્થિતિના ઉલ્લેખ જાવ
 વાથી તે મુનિ પ્રત્યે લલિત અને સ્થિતિના જાવથી બરેલા અત્યઃકલ્પવાળો અં

एव वदतो मुनेरग्निकायप्रज्वालनादे परिहारे कृतेऽपि स्यात्=रुदाचिद् यदि सः=पूर्वोक्तोऽन्यो वा गृहस्थः अग्निकाय=वर्हि तदर्थमुज्ज्वालय प्रज्वालय च तस्य मुनेः कार्यं=शरीरम् आतापयेद्वा प्रतापयेद्वा तदा भिक्षुः=स मुनिः तत् सर्वं प्रत्युपेक्ष्य =सावधाचरणतया धिचार्य अवगम्य=ज्ञात्वा वा त गृहपतिम् अनासेवनतया= अरुलपनीयतया 'अग्निसेवनं मम न कल्पते' इत्यनासेवनपरिज्ञया आज्ञापयेत्= प्रतिबोधयेत् । इति ब्रवीमि '-त्यस्यार्थस्तूक्त एव ॥ सू० ४ ॥

॥ अष्टमाध्ययनस्य तृतीय उद्देशः समाप्तः ॥ ८-३ ॥

હો કર વહ કહતા હૈ—મહારાજ ! જવ આપકી યહ હાલત હૈ તો ફિર આપ શીતકો અગ્નિદ્વારા ક્યો નહીં દૂર કરતે હૈ ? ।
 इसके उत्तरमे मुनि इस प्रकार कहता है कि—अग्निकायको थोड़ा या अधिक जलानेका और उससे इस शरीरको थोड़ा या अधिक तपानेका मुनिकल्प नहीं है ।

भावार्थ—अग्निकायके आरंभमें षड्जीवनिकायकी विराधना होती है, इस लिये शास्त्रमें इस प्रकारका आचार मुनिके लिये निषिद्ध है, क्यों न भयङ्करसे भयङ्कर शीत पड़े तो भी मुनि इस प्रकारका अग्निका आरंभ नहीं कर सकते । किसीकी विराधना कर इस पौद्गलिक शरीरको सुखित करना यह मुनियोंका कर्तव्य नहीं है । अग्निकायके आरंभमें अग्निकायिक जीवोंकी विराधनाके साथ २ इतरकायिक जीवोंकी भी विरा-

તે કહે છે—મહારાજ બ્યારે આપની આ હાલત છે તો પછી આપ ઠડીને અગ્નિથી કેમ દૂર કરતા નથી ? તેના ઉત્તરમા મુનિ કહે છે કે—અગ્નિકાયને થોડા અથવા વધારે આગવામા અને તેનાથી આ શરીરને થોડો અથવા અધિક તાપ આપવામા મુનિકલ્પ નથી

ભાવાર્થ—અગ્નિકાયના આરંભમા ષડ્જીવનિકાયની વિરાધના થાય છે માટે શાસ્ત્રમા આ પ્રકારનો આચાર મુનિ માટે નિષિદ્ધ છે ભલે ભયકરમા ભયકર ઠડી પડે તો પણ મુનિ આ પ્રકારે અગ્નિનો આરંભ કરી શકતા નથી કોઈની વિરાધના કરી આ પૌદ્ગલિક શરીરને સુખી કરવો એવું મુનિનું કર્તવ્ય નથી અગ્નિકાયના આરંભમા અગ્નિકાયના જીવોની વિરાધનાની સાથે સાથે બીજા

पनाका आरंभ अवश्य होता है, इस लिये इस प्रकारके आरंभ करनेकी भगवान् की आज्ञा मुनिके लिये नहीं है।

इस प्रकार समझाने पर भी यदि कोई या वही गृहस्थ भक्ति या दयाके आवेष्टासे उस मुनिकी पीतसे रक्षा करनेके अभिप्रायसे थोड़ी या बहुत अग्नि जला कर उसके शरीरको थोड़े रूपमें या बहुत रूपमें तपाने की चेष्टा भी करे तो उस समय वह मिथु इस प्रकारकी उनकी (अग्नि जलावनादि क्रियासे शरीरको तपानरूप) क्रियाको सावधानके आचरण रूपसे विचार कर और जानकर उस गृहस्थसे “यह आचार इस मुनियों को अकल्पनीय होनेसे नहीं कल्पता है” इस प्रकार अनासेवनपरिज्ञा से कहे—उसे समझावे। “इति ब्रवीमि” इन पदोंका अर्थ पहिछे कहा जा चुका है ॥सू०४॥

॥ आरंभे अध्ययनका तीसरा उद्देश समाप्त ॥ ८-३ ॥

एवोनी पक्ष विराधनात् आरंभ अवश्य था ३ भाटे का प्रकारने आरंभ करवानी भगवान् की आज्ञा मुनि भाटे नहीं।

आ रीते समझाववा छत्ता पक्ष ने केवल अववा केवल गृहस्थ भक्ति अनर इत्यादि आवेष्टाकी ते मुनिकी कटीकी रक्षा करवाना अभिप्रायकी थोड़ी थोड़ी अग्नि सज्जन्ती तेना शरीरने केवल रूपमा अववा पक्ष रूपमा तपानवानी चेष्टा पक्ष करे तो ते समय ते मिथु का प्रकारने तेनी (अग्निजलावनादि क्रियाकी शरीरने तपानवाराप) क्रियाने सावधाना आचरण रूपकी क्रियारी करने जानी ते गृहस्थनी “आ आचार अग्नि मुनिको भाटे अकल्पनीय होवाकी कल्पतु नहीं” का उकादे अनासेवनपरिज्ञाकी कहे—तेने समझावे। इति ब्रवीमि” का पदोने अव पड़ेवाना उद्देशोमा कहेवाला जयेल छे। (सू०४)

आरंभ अध्ययनका तीसरे उद्देश समाप्त ॥ ८-३ ॥

॥ अथाष्टमाध्ययनस्य चतुर्थ उद्देशः ॥

अथ तृतीयोद्देशकथनान्तरं सम्पत्तिं तुरीय आरभ्यते । अस्यानन्तरोद्देशेन सहायं सम्बन्धः—अनन्तरोद्देशे भिक्षार्यं परिभ्राम्यन् मुनिः शीतस्पर्शवेपितगात्रो ग्रामधर्म-शङ्कितमनसा गृहस्थेन पृष्टस्तस्यासत्यशङ्कामपनयेदित्यभिहितम् । अत्र च यदि पुनः स्त्रिय एव तं भिक्षुं हावभावादिभिर्वशीकृतुं चेष्टेत्, मुनिस्तत्स्थानान्निष्क्र-मितुमशक्तो भवेत्तदा चारित्रपरिक्षणार्थं वैहायस—गार्द्वपृष्ठाख्यमरणविधिना प्राणां-

आठवें अध्ययनका चौथा उद्देश ।

तृतीय उद्देशके कहनेके बाद अब चतुर्थ उद्देश प्रारम्भ होता है । इस उद्देशका अनन्तर उद्देशके साथ यह सम्बन्ध है—उस अनन्तर उद्देशमें यह कहा है कि “ भिक्षाके लिये निकले हुए मुनिका शीतकालमें शीतके स्पर्शसे कम्पित शरीर देख कर यदि कोई गृहस्थ ग्रामधर्मकी आशङ्का उसमें कर लेता है तो वह मुनि उसकी उस असत्य आशङ्काका परिहार कर देता है । इस उद्देशमें यह प्रकट किया जायगा कि स्त्रियां ही यदि उस मुनिको हावभाव आदि चेष्टाओंसे वशमें करनेका प्रयत्न करें, और मुनि उस स्थानसे बाहर निकलनेके लिये असमर्थ बन जाय तो उस समय उस मुनिका यही कर्तव्य है कि वह अपने चारित्रकी सब प्रकारसे रक्षा करनेके लिये वैहायस और गार्द्वपृष्ठ नामक मरणविधि

आठमा अध्ययनोऽथो उद्देश

त्रीजे उद्देश कडेवाध गया आठ डवे योथा उद्देशनो प्रारंभ थाय छे आ उद्देशनो पाछगना उद्देशनी साथे आ सणध छे—पाछगना उद्देशमा ओ कडेवाधु छे के भिक्षाने भाटे निडणेल मुनिने ठंडीमा ठंडीना स्पर्शथी कापता नेध ने केध गृहस्थ ग्रामधर्मनी आशंका करी ले छे त्यारे मुनि जेनी ओ असत्य आशंकानु समाधान करी दे छे आ उद्देशमा ओ प्रकट करवामा आवश्ये—स्त्रीओ न कदाय मुनिने हावभाव वगेरे चेष्टाओथी वशमा करवाने प्रयत्न करे, अने मुनि पणु ओ स्थानमाथी पहार निडणवामा असमर्थ जनी जय त्यारे ओ समये मुनिनु आ उत्तव्य छे के ते पोताना चारित्रनी रक्षा उरवा भाटे वैहायस अने गार्द्वपृष्ठ नामनी मरण विधिथी पोताना प्राणु तल दे पणु पोताना शील—अद्वयार्थमहाव्रत—नो लग न उरे केम के अद्वयार्थना

સ્વમેત્, ન તુ શ્રીષ્ઠમ્ સમાચરેત્, તદમાયે ચ તન્નરણં ગદિતમિતિ કથયમાલૌ
શીતસ્પર્શપત્રેન વસ્ત્રસ્ય કલ્પનીયતામાવેદયતિ-‘જે મિલ્લુ’ ઇત્યાદિ ।

મૂલ્ય-જે મિલ્લુ તિર્હિં વસ્થેર્હિં પરિવુસિય પાયચઉત્થેર્હિં, તસ્ત
ળ નો યવ મધઈ-ચઉત્થ વસ્થ જાઈસ્તામિ સે । અહેસગિજ્ઞાઈ
વસ્થાઈ જાઈજ્ઞા અહાપરિગ્માહિયાઈ વસ્થાઈ ધારિજ્ઞા નો ધોઈજ્ઞા
નો રપજ્ઞા નો ધોયરત્તાઈ વસ્થાઈ ધારિજ્ઞા અપલિઉચમાળે
ગામતરેસુ ઓમચેલિય પય સુ વસ્થધારિસ્ત સામગિય ॥સૂ૦૧॥

જાયા-યો મિલ્લુમિપિર્વૈર્ પર્વપિતઃ પામ્પતુષ્, તસ્ય ત્વતુ નો એવં મયતિ-
વતુર્ય વસ્ત્રં યાચિષ્ય, સ યયેપખીયાનિ વસ્ત્રાણિ યાચેત, યથાપરિગૃહીતાનિ વસ્ત્રાણિ
ધારયેત્, નો ધાવેત્, મો રજ્ઞયત્, નો ધોતરક્તાનિ વસ્ત્રાણિ ધારયેત્, અપરિકુલ્પ-
માનઃ પ્રામાન્તરેષુ મયમચેલિકા, એતસ્ત્વલ્લ વસ્ત્રધારિણઃ સામમ્યમ્ ॥સૂ૦ ૧ ॥

ટીકા-‘યો મિલ્લુ’-રિત્યાદિ, યો મુનિ પામ્પતુર્યઃ-વસ્ત્રધારિરિત્તં વતુર્ય
પામ્પં યથ તાનિ, યૈઃ પામ્પતુર્યઃ મિપિર્વૈસ્ત્રૈ-કાર્પાસિકં દ્રે, તૃતીયમૌર્લિકં કમ્બ-
હાદિકમ્, એતદ્વપમેષ વસ્ત્રં તેષાં કલ્પતે, તથ શીતપ્રારમ્ભે ચૈકં પ્રાચરણવસ્ત્રં સ
મુનિર્ધારયેત્, ત્તોડ્યપિક્કશીતપીઠાયાં કમ્બકમ્પપરિ ધારયેત્, એતેમ કમ્બલગત-
વાસ્ત્રાણાદનતાં વોખ્યા ।

સે અપને પ્રાણોંકો છોડ દે પરન્તુ જે શીલ-બ્રહ્મચર્ય મહાવ્રત-કા મજ્જ ન
કરે, ક્યોં કિ પ્રબ્રહ્મચર્યકે અમાચર્મે ઉસકા મરણ નિંદિત હૈ, હસ ધાતકો
કહતે હુપ સુત્રકાર આદિમેં શીતસ્પર્શકે પ્રસંગ સે વસ્ત્રકી કલ્પનીયતા
ઔર અકલ્પનીયતા સુઘ્રાધારા પ્રકટ કરતે હૈ-‘જે મિલ્લુ’ ઇત્યાદિ ।

સ્થિરિકલ્પી મુનિ ત્રીન વસ્ત્ર (દો સૂતી પદ્મકમી કમ્બલ) આદિ
ઔર પદ્મ પાત્ર, હસ પ્રકાર વસ્ત્ર ઔર પાદ્ય રખતે હૈ, ક્યોં કિ હતને હી
વસ્ત્ર ઔર પાત્ર રક્ષને કા ઉનફા કલ્પ હૈ । હમમેં શીતકાલકે પ્રારમ્ભમેં
પદ્મ હી ઓઢનેકા વસ્ત્ર જે રખતે હૈ । જય અધિક શીત પડ્ડને લગતી હૈ
તો જે ત્રિતીય વસ્ત્ર ઓઢનેકે લિયે રખ છેલે હૈ, ઔર યી અધિક

અભાવથી એનું મરણ નિહિત છે આ વાત કહેતાં સુત્રકાર કહીના પ્રસંગમાં
વસ્ત્રની કલ્પનીયતા અને અકલ્પનીયતા સૂત્રદ્વારા પ્રગટ કરે છે-‘જે મિલ્લુ’ ઇત્યાદિ.
આ સ્થિરિકલ્પી મુનિ ત્રણ વસ્ત્ર જેમાં જે સુતશરૂ અને એક કમ્બલ વગેરે
અને એક પાત્ર આ પ્રકારનાં વસ્ત્ર અને પાત્ર રાખે છે કેમ કે એટલા જ વસ્ત્ર અને
પાત્ર રાખવાનો એનો કલ્પ છે. આમાં કહીના પ્રારંભમાં એક જ ઓઢવાનું વસ્ત્ર રાખે
છે એનારે કહી વધુ પ્રમાણમાં પડવા લાગે ત્યારે બીજું વસ્ત્ર પણ ઓઢવા માટે
સંધી લે છે. મુજબ પ્રમાણમાં કહી પડવા લાગે ત્યારે એક કમ્બલ પણ રાખી

॥ अथाष्टमाध्ययनस्य चतुर्थ उद्देशः ॥

अथ तृतीयोद्देशकथनानन्तरं सम्प्रति तुरीय आरभ्यते । अस्यानन्तरोद्देशेन सहाय्यं सम्बन्धः—अनन्तरोद्देशो भिक्षार्थं परिभ्राम्यन् मुनि शीतस्पर्शवेपितगात्रो ग्रामधर्म-शङ्कितमनसा गृहस्थेन पृष्ठस्तस्यासत्यशङ्कामपनयेदित्यभिहितम् । अत्र च यदि पुनः स्त्रिय एव तं भिक्षु हावभावादिभिर्वशीकृतुं चेष्टेरन्, मुनिस्तत्स्थानान्निष्क्र-मितुमशक्तो भवेत्तदा चारित्रपरिरक्षणार्थं वैहायस—गार्द्धपृष्ठाख्यमरणविधिना प्राणा-

आठवें अध्ययनका चौथा उद्देश ।

तृतीय उद्देशके कहनेके बाद अब चतुर्थ उद्देश प्रारम्भ होता है । इस उद्देशका अनन्तर उद्देशके साथ यह सम्बन्ध है—उस अनन्तर उद्देशमें यह कहा है कि “ भिक्षाके लिये निकले हुए मुनिका शीतकाल में शीतके स्पर्शसे कम्पित शरीर देख कर यदि कोई गृहस्थ ग्रामधर्मकी आशङ्का उसमें कर लेता है तो वह मुनि उसकी उस असत्य आशङ्काका परिहार कर देता है । इस उद्देशमें यह प्रकट किया जायगा कि स्त्रियां ही यदि उस मुनिको हावभाव आदि चेष्टाओंसे वशमें करनेका प्रयत्न करें, और मुनि उस स्थानसे बाहर निकलनेके लिये असमर्थ बन जाय तो उस समय उस मुनिका यही कर्तव्य है कि वह अपने चारित्रकी सब प्रकारसे रक्षा करनेके लिये वैहायस और गार्द्धपृष्ठ नामक मरणविधि

आठमा अध्ययनने चौथो उद्देश

त्रीजे उद्देश कडेवाध गया आठ डवे चौथा उद्देशनो प्राण ल थाय छे आ उद्देशनो पाछगना उद्देशनी साथे आ सजध छे—पाछगना उद्देशमा ओ कडेवाधु छे के भिक्षाने माटे निकलेल मुनिने ठडीमा ठडीना स्पर्शथी कापता जेठ जे केथ गृहस्थ ग्रामधर्मनी आशका करी ले छे त्यारे मुनि ओनी ओ असत्य आशकासु समाधान करी दे छे आ उद्देशमा ओ प्रकट करवामा आवशे—स्त्रीओ न कदाय मुनिने हावभाव वगेरे चेष्टाओथी वशमा करवानो प्रयत्न करे, अने मुनि पणु ओ स्थानमाथी जहार निकणवामा असमर्थ जनी जाय त्यारे ओ समये मुनिनु आ उर्तव्य छे के ते पोताना चारित्रनी रक्षा करवा माटे वैहायस अने गार्द्धपृष्ठ नामनी भरषु विधिथी पोताना प्राण तल दे पणु पोताना शील—ब्रह्मचर्यभङ्गावत—नो लग न करे केम के ब्रह्मचर्यना

સ્યનેત્, ન તુ શ્રીકમ્યઈ સમાચરેત્, તદમાયે વ તન્નરથં ગર્હિતમિતિ કવચમાયૌ
શીતસ્પર્શમસક્તેન વસ્ત્રસ્ય કલ્પનીયતામાવેદ્યતિ-‘જે મિલ્લુ’ ઇત્યાદિ ।

મૂઝ્મ-જે મિલ્લુ સિર્હિં વસ્થેર્હિં પરિવુસિય પાયશ્વડસ્થેર્હિં, તસ્સ
પં નો યવ મવઙ્ઙ-ચડરથ વસ્થ જાઙ્ઙસ્સામિ સે । અઙ્ઙેસણિઙ્ઙાઙ્ઙ
વસ્થાઙ્ઙ જાઙ્ઙઙ્ઙા અઙ્ઙાપરિગ્ગહિયાઙ્ઙ વસ્થાઙ્ઙ ધારિઙ્ઙા નો ધોઙ્ઙઙ્ઙા
નો રપ્પઙ્ઙા નો ધોયરત્તાઙ્ઙ વસ્થાઙ્ઙ ધારિઙ્ઙા અપલિડચમાણે
ગામતરેસુ ઓમચેલિય યય રુ વત્થધારિસ્સ સામગ્ગિય ॥ સુ. ૦. ૧ ॥

છાયા-યો મિલ્લુક્રિમિર્વસ્ત્રે પર્યપિતઃ પાપચતુર્થે, ઇત્ય સહુ નો એવં મવતિ-
વતુર્થે વસ્ત્રં યાચિષ્ય, સ ચયેષ્વીયામિ વસ્ત્રાણિ યાચેત્, યયાપરિગૃહીતાનિ વસ્ત્રાણિ
ધારયેત્, નો યાચેત્, મો રક્ષયત્, ના ધોયરક્ષાનિ વસ્ત્રાણિ ધારયેત્, અપરિકુઙ્ઙ-
યાનઃ ક્રામાન્તરેષુ અમચેલિકઃ, ઇત્યસહુ વસ્ત્રધારિણઃ સામગ્યમ્ ॥ સુ. ૦. ૧ ॥

ટીકા-‘યો મિલ્લુ’-રિત્યાદિ, યો મુનિ પાપચતુર્થે = વસ્ત્રપ્રયાતિરિક્તં ચતુષ્
પાત્રં યમ ઇતિ, યેઃ પાપચતુર્થેઃ પ્રિમિર્વસ્ત્રે-કાર્પાસિકે દ્વે, તૃતીયમૈન્નિકં કમ્બ-
છાદિકમ્, ઇત્યપ્રમેય વસ્ત્રં તેષાં કલ્પયે, ઇમ શીતપ્રારમ્ભે વૈકં પ્રાવરણવસ્ત્રં સ
મુનિધારયેત્, ઇત્યોઽપિક્કશીતપીઠાયાં કમ્બકમ્પરિ ધારયેત્, ઇતેન કમ્બલગત
વાસ્ત્રાઙ્ઙાદનતા ચોપ્યા ।

સે અપને પ્રાણોંકો છોઢ વે પરન્તુ વે શીત-પ્રદ્યર્ચય મહાઘ્રત-કય મજ્ઞ ન
કરે, ક્યોં કિ પ્રદ્યર્ચયકે અમાચર્મે ઇસકા મરણ નિવિત છે, ઇસ વાતકો
કહતે હુપ સૂત્રકાર આદિમેં શીતસ્પર્શકે પ્રસંગ સ વસ્ત્રકી કલ્પનીયતા
ઔર અકલ્પનીયતા સૂત્રદ્વારા પ્રકટ કરતે હે-‘જે મિલ્લુ’ ઇત્યાદિ ।

સ્પશિરક્ષ્મી મુનિ ત્રીન વસ્ત્ર (યો સૂતી એક કમી કમ્બલ) આદિ
ઔર એક પાત્ર, ઇસ પ્રકાર વસ્ત્ર ઔર પાત્ર રક્ષતે હે, ક્યોં કિ ઇતને હી
વસ્ત્ર ઔર પાત્ર રક્ષને કા ઉનકા કલ્પ હે । ઇનમેં શીતકાલકે પ્રારમ્ભમેં
એક હી ઓઢનેકા વસ્ત્ર વે રક્ષતે હે । જબ અધિક શીત પઢને લગતી હે
તો વે દ્વિતીય વસ્ત્ર યી ઓઢનેકે લિયે રખ લેતે હે, ઔર યી અધિક

ખલાવથી એનું મરણ નિહિત છે આ વાત કહેતાં સૂત્રકાર કહીના પ્રસંગમાં
વસ્ત્રની કલ્પનીયતા અને અકલ્પનીયતા સૂત્રદ્વારા પ્રગટ કરે છે-‘જે મિલ્લુ’ ઇત્યાદિ
આ સ્પશિરક્ષ્મી મુનિ ત્રણ વસ્ત્ર એવા જે મુતસકે અને એક કમ્બલ વગેરે
અને એક પાત્ર આ પ્રકારના વસ્ત્ર અને પાત્ર તથા છે કેમ કે એટલા જ વસ્ત્ર અને
પાત્ર, સખવાને એવો કલ્પ છે. આમાં કહીના પ્રારંભમાં એક જ ઓઢવાનું વસ્ત્ર રાખે
છે આરે કહી વધુ પ્રમાણમાં પઢવા લાગે ત્યારે બીજું વસ્ત્ર પણ ઓઢવા માટે
રાખી દે છે. બીજું જ પ્રમાણમાં કહી પઢવા લાગે ત્યારે એક કમ્બલ પણ રાખી

एतैर्वस्त्रैः पर्युषितः=व्यवस्थितो भिक्षु-सयतो भवति, तस्य=पूर्वोक्तस्य भिक्षुश्चेतस्येवमध्यवसाय खलु=निश्चयेन न भवति-मम कल्पेन=वस्त्रत्रयरूपेण न शीतापगमो भवति तदर्धमहं चतुर्थं वस्त्रं याचिष्ये। अध्यवसायस्य प्रतिषेधेन चतुर्थवस्त्रयाचनं तु सर्वथा हेयमेवेति दर्शितम्। यदि वस्त्रत्रितयं न लब्धवान् शीतकालश्च सम्प्राप्तो भवेत् तदा तत् कल्पनीयं याचेत् भिक्षुरिति दर्शयति-‘स’ इत्यादि-स=भिक्षुः यथैषणीयानि वस्त्राणि मूल्यतः प्रमाणतश्चोत्कर्षापकर्षरहितान्यपरिकर्माणि याचेत्, एवं स एव यथापरिगृहीतानि =यथारूपप्राप्तानि श्वेतान्येव वस्त्राणि धारयेत्, किन्तु तानि वस्त्राणि नो धावेत्=पाठण्ड पड़ने पर वे एक कम्बल भी लेते हैं, जिससे शीतजन्य बाधा उन्हें बाधित न कर सके।

इन वस्त्रोंसे व्यवस्थित-युक्त जो साधु होता है। उसके चित्तमें निश्चयसे इस प्रकारका अध्यवसाय नहीं होता है कि-मेरा इस वस्त्रत्रय रखनेरूप कल्पसे शीतका निवारण नहीं होता है इसलिये चौथे वस्त्रकी याचना करूं। जब सूत्रकारने चौथे वस्त्रकी याचना करनेरूप अध्यवसायका ही प्रतिषेध किया है तो उससे यह बात स्पष्ट हो जाती है कि वे चतुर्थ वस्त्रकी याचना करेगे ही कैसे?—यह याचना तो सर्वथा त्याज्य ही है, हां इतना हो सकता है कि उसके पास यदि वे पूर्वोक्त तीन वस्त्र नहीं हैं और शीतकाल आ चुका है तो वे अपने लिये कल्पनीय ही वस्त्रोंकी याचना करेगे, अकल्पनीय की नहीं, यही बात “से” इत्यादि सूत्रांश द्वारा प्रकट की है। वह भिक्षु यथैषणीय-प्रमाणसे एव मूल्यसे जो उत्कर्ष और अपकर्ष रहित हैं ऐसे अपरिक्लम वस्त्रोंकी ही याचना कर सकते हैं। तथा याचना समयमें जो वस्त्र जिस रूपमें मिले हैं उसी

લે છે જેથી ઠડીને ઉપદ્રવ નહિ થાય

આ વસ્ત્રોથી વ્યવસ્થિત-યુક્ત જે સાધુ હોય છે, તેના દિલમાં નિશ્ચયથી આ પ્રકારનો અધ્યવસાય થતો નથી કે મારા-આ વસ્ત્રત્રય રાખવારૂપ કલ્પથી ઠડીનો નિવારણ થતો નથી આથી ચોથા વસ્ત્રની યાચના કરૂં જ્યારે સૂત્રકારે ચોથા વસ્ત્રની યાચના કરવારૂપ અધ્યવસાયનો જ નિષેધ કરેલ છે તો આથી એ વાત સ્પષ્ટ થઈ જાય છે કે એ ચોથા વસ્ત્રની યાચના કરે પણ કઈ રીતે?—જો યાચના તો સર્વથા ત્યાજ્ય જ છે, એટલું થઈ શકે છે કે એની પાસે જે પૂર્વોક્ત ત્રણ વસ્ત્ર ન હોય અને ઠડી શરૂ થઈ ગઈ હોય તો તે પોતાને માટે કલ્પનીય વસ્ત્રોની જ યાચના કરે અકલ્પનીયની નહીં, આ જ વાત “સે” ઇત્યાદિ સૂત્રાંશથી પ્રગટ કરવામાં આવેલ છે. તે ભિક્ષુ યથૈષણીય-

પુલ્લોકેનાપિ ન પ્રધાન્યેત્, નાપિ રજ્જવત્=કષરશ્ચારિશ્ચાદિના પીતાદિરામરજ્જિવાનિ ન કુર્યાત્, કિં ચ ધૌત-રક્તાનિ' પૂર્વ ધૌતાનિ=પ્રસાદિવાનિ પદ્યાન્ય રક્તાનિ ધૌતરક્તાનિ વસ્ત્રાનિ ના ખારયત્ તેન શૂદ્ધારાદિમાલસમ્ભવાત્ । અપિ ચ સ પ્રામાન્તરણુ વિહરન્ ઉત્ક્રાંતિમયન પાર્ગે વસ્ત્રાપિ અપરિકુઞ્ચમાનઃ=ન પરિગાપયન્=મૂલ્યપ્રમાણાદિના હીનત્વાદુશ્ચિત્તપ્રમદત્વેનાગોપનીયાન્યથ મુનીનાં પસનાનિ મથન્તીતિ કસપા શાલિપુ તાનિ ન પ્રચ્છમાનિ કુર્ષેશ્ચિત્યર્થઃ, અથમથલિકઃ=મથમ મૂલ્યત પ્રમાણતથ ન્યૂનં ચ તત્ પેલં બીર્જમલિનવસ્ત્રય્=અથમથેલ, તદસ્યાસ્તીતિ અથમથલિકઃ=હીન-બીર્જમલિનવસ્ત્રવસનરાત્ સન્ મુનિર્વિહરત્, યતત્ સ્વલ્પૂર્વોક્તમેવ નાન્યન્ વચ્ચારિગઃ શાપોઃ સામર્થ્ય=પાલકતુર્યવક્ત્રપ્રયાદિસ્થ સામર્થ્યમસ્તિ ॥ મૂ० ૧ ॥

રૂપમેં વે દ્વેત વસ્ત્રોંકા ઉપયોગ કર સકતે હૈં । અર્ધાત્ યાવના સમયમેં દ્વેત વસ્ત્ર હી છેતે હૈં ઔર ઉન્હેં વે ડસી રૂપમેં રખ કર અપને કામમેં લા સકતે હૈં । ઉન્હેં ય પ્રાસુક પાનીસે ધો ખી નહીં સકતે હૈં ઔર ન હરિદ્રા કેશર આદિ પીછે રંગસે રંગ હી સકતે હૈં, ક્યોં કિ એસે વસ્ત્રોંકિ રખનેસે શૂદ્ધારકા આચિન્નાંવ હોતા હૈં । જો પહિછે પ્રાપ ગયે હૈં ઔર પીછે રંગે ગયે હૈં વે ધૌત રક્ત વસ્ત્ર હૈં । પ્રામાન્તરોંમેં વિહાર કરતે સમય વે વસ્ત્રોંકો પૌરાલિકે મયસે કક્ષા ઔર પાત્રાલિકોંમેં છુપાનેકી માવનાન રસે, ક્યોં કિ મુનિયોંકે વસ્ત્ર મૂલ્યસે ઔર પ્રમાણ આદિ સે હીન હી હોતે હૈં, તપા સામાન્ય દુષામેં રહતે હૈં અતઃ વે અગોપમીય હી હોતે હૈં, હસ લિયે હન્હેં છિપાને કી કોશિશ નહીં કરની ચાહિયે । મૂલ્ય ઇવં પ્રમાણસે હીન વસ્ત્ર અવમથેલ કહલાતા હૈં, વે ઝિસકે પાસ હોતે હૈં અર્ધાત્ એસે વસ્ત્રકો

પ્રમાણથી અથવા મૂલ્યથી જે ઉત્કર્ષ અને અપકર્ષ શકિત છે એવા અપરિકર્મ વસ્ત્રોની જ કમના કરી શકે છે તથા ચાવના સમયે જે વસ્ત્રને રૂપમાં મળે એવા રૂપમાં તે સ્વેત વસ્ત્રોના ઉપયોગ કરે અર્ધાત્ ચાવના સમયે સહેલ વસ્ત્ર જ છે છે અને તેને એ જ રૂપમાં સખી પીતાન્યા કામમાં લઈ શકે છે એને એ ધોષ શકતા નથી તેમ હલકર કેશર કે તેવા પીળા રંગથી રંગી શકતા નથી. કેમ કે એવા વસ્ત્રા સખવાથી શૂદ્ધારને આચિન્નાંવ બની બાક છે એ પહેલા પીવાયા હોય અને પાછળથી રંગવામાં આવે તે ધૌત-રક્ત વસ્ત્ર છે આમલખોમાં વિહાર કરતી વખતે ઘોર વગેરેથી વસ્ત્રો કોશલ જવાના ભયથી વસ્ત્રોને કક્ષા કે પાત્રોમાં છુપાવવાની કોશિશ ન કરતી એમજે, કેમ કે મુનિ-જોનાં વસ્ત્ર મૂલ્યથી અને પ્રમાણથી હીનજ કોય છે તેમ સામાન્ય દુષાનાં હોય છે આથી જ અગોપનીય જ કોય છે આ માટે એને છુપાવવાની કોશિશ ન કરતી એમજે. મૂલ્ય અને પ્રમાણથી હીન વસ્ત્ર અવમથેલ કહેવાય છે. અ

एतैर्वस्त्रैः पर्युषितः=व्यवस्थितो भिक्षु-सयतो भवति, तस्य=पूर्वोक्तस्य भिक्षुश्चेतस्येवमध्यवसाय खलु=निश्चयेन न भवति-मम कल्पेन=वस्त्रत्रयरूपेण न शीतापगमो भवति तदर्थमहं चतुर्थं वस्त्रं याचिष्ये। अध्यवसायस्य प्रतिषेधेन चतुर्थवस्त्रयाचनं तु सर्वथा हेयमेवेति दर्शितम्। यदि वस्त्र-त्रितयं न लब्धवान् शीतकालश्च सम्प्राप्तो भवेत् तदा तत् कल्पनीयं याचेत् भिक्षुरिति दर्शयति-‘स’ इत्यादि-स=भिक्षुः यथैषणीयानि वस्त्राणि मूल्यतः प्रमाणतश्चोत्कर्षापकर्षरहितान्यपरिकर्माणि याचेत्, एवं स एव यथापरिग्रहीतानि =यथारूपप्राप्तानि श्वेतान्येव वस्त्राणि धारयेत्, किन्तु तानि वस्त्राणि नो धावेत्=प्रा-
ठण्ड पड़ने पर वे एक कम्बल भी लेते हैं, जिससे शीतजन्य बाधा उन्हें बाधित न कर सके।

इन वस्त्रोंसे व्यवस्थित-युक्त जो साधु होता है। उसके चित्तमें निश्चयसे इस प्रकारका अध्यवसाय नहीं होता है कि-मेरा इस वस्त्रत्रय रखनेरूप कल्पसे शीतका निवारण नहीं होता है इसलिये चौथे वस्त्रकी याचना करूं। जब सूत्रकारने चौथे वस्त्रकी याचना करनेरूप अध्यवसायका ही प्रतिषेध किया है तो उससे यह बात स्पष्ट हो जाती है कि वे चतुर्थ वस्त्रकी याचना करेगे ही कैसे?—यह याचना तो सर्वथा त्याज्य ही है, हां इतना हो सकता है कि उसके पास यदि वे पूर्वोक्त तीन वस्त्र नहीं हैं और शीतकाल आ चुका है तो वे अपने लिये कल्पनीय ही वस्त्रोंकी याचना करेगे, अकल्पनीय की नहीं, यही बात “से” इत्यादि सूत्रांश द्वारा प्रकट की है। वह भिक्षु यथैषणीय-प्रमाणसे एव मूल्यसे जो उत्कर्ष और अपकर्ष रहित हैं ऐसे अपरिकर्म वस्त्रोंकी ही याचना कर सकते हैं। तथा याचना समयमें जो वस्त्र जिस रूपमें मिले हैं उसी

લે છે જેથી ઠડીનો ઉપદ્રવ નહિ થાય

આ વસ્ત્રોથી વ્યવસ્થિત-યુક્ત જે સાધુ હોય છે, તેના હિલભા નિશ્ચયથી આ પ્રકારનો અધ્યવસાય થતો નથી કે મારા-આ વસ્ત્રત્રય રાખવારૂપ કલ્પથી ઠડીનો નિવારણ થતો નથી આથી ચોથા વસ્ત્રની યાચના કરૂં ન્યારે સૂત્રકારે ચોથા વસ્ત્રની યાચના કરવારૂપ અધ્યવસાયનો જ નિષેધ કરેલ છે તો આથી એ વાત સ્પષ્ટ થઈ જાય છે કે એ ચોથા વસ્ત્રની યાચના કરે પણ કઈ રીતે?—એ યાચના તો સર્વથા ત્યાજ્ય જ છે, એટલું થઈ શકે છે કે એની પાસે જે પૂર્વોક્ત ત્રણ વસ્ત્ર ન હોય અને ઠડી શરૂ થઈ ગઈ હોય તો તે પોતાને માટે કલ્પનીય વસ્ત્રોની જ યાચના કરે અકલ્પનીયની નહીં, આ જ વાત “સે” ઇત્યાદિ સૂત્રાંશથી પ્રગટ કરવામા આવેલ છે તે ભિક્ષુ યથૈષણીય-

टीका—‘अये’-त्यावि, स मिथुरथ पुनरेव मानीयात् यत् उपातिक्रान्तः=
 व्यतीतः सल हेमन्तः=शीतसमयः प्रतिपन्नः=प्रातश्च ग्रीष्मः=उष्णसमयः तदा स
 मिथु यथापरिजीर्णानि वस्त्राणि परिष्ठापयत्=परिहरेत्-यद् यद् जीर्णं संग्राह्यं
 वक्ष्यति स्वस्य सङ्ग्रहिषो विचरति स्वार्थः । व्यतीते शीतसमय क्षेम-काल पुरुषस्व
 भावन शीतवाधायां सत्यां किं फलं व्यमित्याह-‘सन्तरोचर’ इत्यादि, भयवा=
 अधिक मूल्य एव प्रमाणमे अधिक होते ही नहीं हैं जो चीरोंके मनको
 पिगाड़ सकें, हीन, जीर्ण और मलिन वे वस्त्र होते हैं-भला और ऐसे
 वस्त्रोंको लेकर करेंगे ही क्या ? अतः इन वस्त्रोंको छुपानेकी साधुको
 किसी भी प्रकारकी चेष्टा नहीं करनी चाहिये ॥२०॥

अथ सूत्रकार ‘शीतकाल व्यतीत हो जाने पर क्रम २ से उन वस्त्रों
 का भी साधुको परित्याग कर देना चाहिये’ यह प्रदर्शित करत है-
 “अह पुण” इत्यादि ।

यह मिथु इस बातको जाने कि-हमन्तकाल व्यतीत हो चुका
 है और ग्रीष्मसमय आ गया है उस समय यह मिथु जीर्ण
 वस्त्रोंको परिष्ठापित कर देवे-जो जो जीर्ण हो चुके हों उन २ का
 परित्याग कर निःसंग बने । शीत समयके व्यतीत होने पर भी यदि
 क्षेत्र काल और पुरुषस्वभाव को छे कर शीतवाधा उपस्थित हो जाय
 तो यह क्या करे ? इस प्रकारकी आशङ्कता उत्तर “सतन्तर” इत्यादि
 सूत्रांशसे सूत्रकार स्पष्ट करते हैं-‘अथवा’ यह पद पश्चान्तरमें है वे
 कहते हैं-जय इस प्रकारकी परिस्थिति हो तो यह तीन वस्त्र सहित हो
 जाय, भान्तर-सूतके दो वस्त्र एवं उत्तर-एक प्रापरणरूप ऊनका कम्बल,

अने प्रभाजभा अधिक नथो होवा के ओरिनु भन वस्त्राव ओछी किमंतवा
 दुहा अने मेला वस्त्र होव छे ओर जेने बर्धने करे पज्जु मु ? आधी न
 वस्त्रोने पुणवपानी जामुओ होपपज्जु प्रअरनी ओवा न कस्पी ओछोओ. (सू १)

अवे सूत्रकार कहीनी प्रसन्न पुरी यर्ध जता करे करे जे वस्त्रोने त्याज
 करी रवे ओछो जे जेनु प्रदर्शित करे छे- अह पुण इत्यादि.

तेलिमु आ बात प्रमओ के हेमन्तकाज पूरा यर्ध जुकेल छे अने ग्रीष्म समय
 आवी अये छे आ बजते ते लिमु एज्ज वस्त्रोने त्याज करे-जे जे एज्ज यर्ध
 नया होव जेने त्याज करी निःसंग जने कहीना समय आवीत यर्ध त्या
 एज्ज पज्जु छेन काज अने पुणस्वभावना काज्जे कहीने उपरज यर्ध अय ता
 ते मु करे ? आ प्रकासी आशओने उचर “सतन्तर” इत्यादि सूत्रांशसे
 सूत्रकार स्पष्ट करे छे-“अथवा” आ यह पश्चान्तरमा छे तेज्ज कहे छे-अथ
 आ प्रकासी परिस्थिति उभी आव तेने नज्ज वस्त्र प्रापरण करी बे. अन्तर-

મુનિઃ શીતેઽતિક્રાન્તે ક્રમેણ તાન્યપિ વસનાનિ પરિત્યજેદિતિ દર્શયતિ-
'અહ પુણ' ઇત્યાદિ ।

મૂલમ્—અહ પુણ એવં જાણિજ્ઞા ઉવાઙ્કંતે ચલુ હેમંતે
ગિમ્હે પઢિવન્ને અહાપરિજુન્નાઈં વત્થાઈં પરિટ્ઠવિજ્ઞા, અદુવા
સંતરુત્તરે અદુવા એગસાડે અદુવા અચેલે લાઘવિયં આગમમાણે
તવે સે અભિસમન્નાગણ ભવઈ ॥ સૂ. ૨ ॥

છાયા—અથ પુનરેવ જાનીયાત્ ઉપાતિક્રાન્તઃ ચલુ હેમન્તો ગ્રીષ્મઃ પ્રતિપન્નઃ
યથાપરિજીર્ણાનિ વસ્ત્રાણિ પરિષ્ઠાપયેત્, અથવા સાન્તરોત્તરઃ, અથવા અવમચેલઃ,
અથવા એકશદઃ, અથવા અચેલઃ, લાઘવિક્રમાગમયન્, તપસ્તસ્યાભિસમન્વાગત
ભવતિ ॥ મુ. ૨ ॥

જો ધારણ કરતા હૈ વહ અવમચેલિક હૈ । તેસે વસ્ત્ર મુનિયોંકે પાસ
હોતે હૈ, કયોં કિ વે હીન જીર્ણ ઔર શીર્ણ વસ્ત્રવાલે હોતે હૈ । યે હી
ત્રીન વસ્ત્ર ઔર એક પાત્ર યે, ચાર હી ઇન સ્થવિરકલ્પધારી સાધુઓંકે પાસ
સામગ્ર્ય—સાધન હૈ, અન્ય નહીં ।

ઢોરેસહિત મુંહપત્તી, રજોહરણ ઔર પહિરનેકા એક વસ્ત્ર ઇન્કે
સિવાય અન્ય યે પૂર્વોક્ત ત્રીન વસ્ત્ર ઔર એક પાત્ર મુનિ રખતે હૈ, ઇન્સે
અધિક નહીં । હાં ઇન ત્રીનમેં ચાહે તો વહ કમ હી કર સકતે હૈ પર
ઈન્હે વઢા નહીં સકતે ।

અધિક યાચનાકી ભાવના કરના હી જવ મના હૈ તો ફિર
ચતુર્થ વસ્ત્રકી વહ યાચના કર ભી કૈસે સકતે હૈ ? વિહારમેં વહ સિંહ
કી તરહ વિચરે—વસ્ત્રોંકી તરફસે નિશ્ચિત રહે—કારણ કિ વે ઇતને

જેની પાસે હોય છે એટલે આવા વસ્ત્રને જો ધારણ કરે છે તે અવમચેલિક છે
એવા વસ્ત્રો મુનિઓની પાસે હોય છે, કારણ કે તે છૂર્ણ શીર્ણ વસ્ત્રોવાળા
હોય છે એ જ ત્રણ વસ્ત્ર અને એક પાત્ર, આ ચાર જ આ સ્થવિરકલ્પધારી
સાધુઓની પાસે સામગ્ર્ય—સાધન છે, બીજુ નહીં

દોરા સાથે મુંહપત્તી, રજોહરણ અને પહેરવાનુ વસ્ત્ર ઉપરાંત ત્રણ વસ્ત્ર
અને એક પાત્ર મુનિ રાખી શકે છે, એનાથી અધિક નહીં આ ત્રણમાંથી જો
તે ચાહે તો ઓછા કરી શકે છે પણ વધારી શકતા નથી

વધુ વસ્ત્રોની યાચનાની ભાવના કરવી એ પણ બીજાં મના છે તો ચોથા
વસ્ત્રની તે યાચના પણ કઈ રીતે કરી શકે છે વિહારમાં તે સિંહની માફક
વિચરે—વસ્ત્રોની ખાખતમાં નિશ્ચિત રહે, કારણ કે તે એટલા મૂલ્યવાન

ટીકા—‘મયે’-ત્યાવિ, સ મિષ્ટુરય પુનરેવં જ્ઞાનીયાત્ યત્ ઉપાવિક્રાન્તઃ=
 વ્યતીતઃ સદ્દ્વિમનઃ=શીતસમયઃ પ્રતિપક્ષઃ=માત્રમ્ ગ્રીષ્મઃ=ઉષ્ણસમય તદા ॥
 મિષ્ટુ યથાપરિજીર્ણાનિ નક્ષાભિ પરિષ્ઠાપયત્=પરિહરેત્-યદ્ યદ્ જીર્ણં સંમાત
 વષ્ટપરિસ્થિત્ય સક્તરહિતા વિષરેલિસ્થિતઃ । વ્યતીતે શીતસમય ધ્રુવ-કાલ પુરુષસ્વ-
 માવન શીતવાપાયાં સત્યાં કિં કર્તવ્યમિત્યાદ-‘સાન્તરોચરઃ’ ઇત્યાદિ, અથવા=
 અધિક મૂલ્ય એવં પ્રમાણમેં અધિક હોતે હી નહીં હૈં જો ચોરોફિ મનકો
 બિગાફ સકેં, હીન, જીર્ણં ઓર મલિન બે વસ્ત્ર હોતે હૈં-મલાં ચોર પેસે
 વસ્ત્રોંકો હેકર કરેંગે હી ક્યા ? અતા હન વસ્ત્રોંકો છુપાનેકી સાધુકો
 કિસી ‘મી પ્રકારકી ચેષ્ટા નહીં કરની ચાહિયે ॥૬૦૧॥

અથ સૂત્રકાર ‘શીતકાલ વ્યતીત હો જાને પર ક્રમ્મ ૨ સે ઊન વસ્ત્રોં
 કા ‘મી સાધુકો પરિત્યાગ કર દેના ચાહિયે’ યહ પ્રદર્શિત કરતે હૈ-
 “અહ પુણ” ઇત્યાવિ ।

બહ મિષ્ટુ હસ જ્ઞાતકો જાને કિ-હેમનકાલ વ્યતીત હો જુકા
 હૈ ઓર ગ્રીષ્મસમય આ ગયા હૈ ઊસ સમય બહ મિષ્ટુ જીર્ણ
 વસ્ત્રોંકો પરિષ્ઠાપિત કર દેવે-જો જો જીર્ણ હો જુકે હૈં ઊન ૧ કા
 પરિત્યાગ કર નિઃસંગ બને । શીત સમયકે વ્યતીત હોને પર ‘મી યદિ
 ક્ષેત્ર કાલ ઓર પુરુષસ્વમાવ કો હે કર શીતવાપા ઉપસ્થિત હો જાય
 તો બહ ક્યા કરે ? હસ પ્રકારકી આશક્તકા ઉત્તર “સતસ્તરે” ઇત્યાવિ
 સૂત્રાંશસે સૂત્રકાર સ્પષ્ટ કરતે હૈ-“અથવા” યહ પદ પશ્ચાન્તરમેં હૈ બે
 કહતે હૈ-અથ હસ પ્રકારકી પરિસ્થિતિ હો તો બહ ત્રીન વસ્ત્ર સહિત હો
 જાવે, આન્તર-સૂત્રકે વો વસ્ત્ર એવં ઉત્તર-એક પ્રાચરણરૂપ ઝનકા કમ્બલ,

અને પ્રમાણમાં અધિક નથી હોવા કે ચોરોનું મન લલચાય જોઈ કિંમતનાં
 ટુંકા અને મેલાં વસ્ત્ર હોય છે ચોર જોને લઈને કંઈ પણ થું ? આથી નહ
 વચોને છુપાવવાની સાધુકો કોઈપણ પ્રકારની ચેષ્ટા ન કરવી જોઈએ (સુ ૧)

હવે સૂત્રકાર કહીની શાસન પુરી થઈ જવા કમે કમે જો વચોને ત્યાગ
 કરી દેવા જોઈએ. જોનું પ્રદર્શિત કરે છે- અહ પુણ ઇત્યાવિ.

તેમિષ્ટુ આ વાત સમજે કે હેમન-ત્રીકાળ પૂરા થઈ ચુકેલ છે અને ગ્રીષ્મ સમય
 આવ્યો ગયો છે આ જાણતે તે મિષ્ટુ જીર્ણ વચોને ત્યાગ કરે-એ વે જીર્ણ થઈ
 ગયા હોય જોને ત્યાગ કરી નિઃસંગ બને. કહીના સમય વ્યતીત થઈ જવા
 છતાં પણ ક્ષેત્ર કાળ અને પુરુષસ્વમાવના કારણે કહીને ઉપદ્રવ થઈ જાય તો
 તે થું કરે ? આ પ્રકારની આશકાને ઉત્તર “સતસ્તરે” ઇત્યાવિ સૂત્રાંશથી
 સૂત્રકાર સ્પષ્ટ કરે છે-“અથવા” આ પદ પશ્ચાન્તરમા છે તેજો કહે છે-અથર
 આ પ્રકારની પરિસ્થિતિ કશી થાય તો તે ત્રણ વસ્ત્ર ધારણ કરી લે. આવર-

પક્ષાન્તરે સ સાન્તરોત્તરઃ આન્તરં=મૂત્રવસ્ત્રદ્વયમ્ ઉત્તર=પ્રાવરણવસ્ત્ર, તાભ્યાં સહિતો વસ્ત્રત્રયવાન્ ભવેત્, શીતવાધયા ક્વચિત્ શરીરમાચ્છાદયેત્, ક્વચિચ્ચ શીતશઙ્કયા પાર્શ્વે સ્થાપયેત્ ન તુ તત્પરિત્યજેત્। અથવા સઃ અવમચેલઃ=મૂલ્યતઃ પ્રમાણતઃ હીન-જીર્ણવસ્ત્રવાન્ ભવેત્-કલ્પનીયેષુ ત્રિણ વસ્ત્રેષુ મધ્યે ચૈકપરિહારેણ વસ્ત્રદ્વયં ધારયે-દિતિ ભાવઃ। અથવા શનૈઃ શનૈઃ શીતાપગમે એકશાટકઃ દ્વિતીયવસ્ત્રપરિત્યાગેનૈક-વસ્ત્રધારી ભવેત્। અથવા સર્વથા શીતાપગમે ચૈકમપિ વસ્ત્રં પરિહૃત્ય અચેલઃ=પ્રાવ-રણવસ્ત્રરહિતો ભવેત્। કેવલં સદોરકમુખવસ્ત્રિકારજોહરણલજ્જાવસ્ત્રોપધિકઃ સન્ વિહરેત્।

इन सहित होनेका नाम सान्तरोत्तर है। क्षेत्र काल और पुरुषस्वभावकी अपेक्षासे यदि शीतकालकी बाधा आई हुई उसे ज्ञात हो तो वह साधु पूर्वोक्त दो वस्त्र सूतके और १ ऊनका कम्बल, इस प्रकार तीन वस्त्र रख लेवे। जब शीतकी बाधा उसे होवे तब तो यह उन्हें ओढ़ लेवे और यदि शीतबाधा न हो तो वह उन्हें पासमें ही रखे पर वस्त्रोंका त्याग न करे। अथवा वह अवमचेल रहे—हीन जीर्ण वस्त्र रखे। कल्पनीय तीन वस्त्रोंमें किसी एकके परित्यागसे दो वस्त्र रखे। शीत जैसे २ व्यतीत हो वैसे २ यह भी किसी एक द्वितीय वस्त्रका फिर त्याग करे और एक ही वस्त्र रखे। जब बिलकुल ही शीतकाल निकल जावे तब यह एक भी रखे हुए वस्त्रका परित्याग कर देवे और इस प्रकार यह प्रावरण वस्त्र से रहित हो जावे। पासमें केवल एक धागेसहित मुखवस्त्रिका रजोहरण और लज्जा निवारणार्थ एक पहननेका वस्त्र ही रखे।

સૂતરના બે વસ્ત્ર તેમજ ઉત્તર-એક પ્રાવરણરૂપ બિનની કબલ, આ સહિત થવાનું નામ સાન્તરોત્તર છે। ક્ષેત્ર કાળ અને પુરુષસ્વભાવની અપેક્ષાથી બે ઠંડીની બાધા આવેલી જણાય તો તે સાધુ પૂર્વોક્ત બે વસ્ત્ર સૂતરના અને એક બિન કમ્બલ, આ પ્રકારે ત્રણ વસ્ત્ર રાખી લે। જ્યારે ઠંડીનો ઉપદ્રવ તેને લાગે ત્યારે તે અને ઓઢી લે। ઉપદ્રવ ઓછો થતા પોતાની પાસે રાખે પણ વસ્ત્રોનો ત્યાગ ન કરે। અથવા—તે અવમચેલ રહે-હલકા બુના વસ્ત્ર રાખે, કલ્પનીય ત્રણ વસ્ત્રો માંથી એકનો પરિત્યાગ કરી બે વસ્ત્ર રાખે ઠંડી ઓછી થતા આ બે વસ્ત્રોમાંથી પણ કોઈ એક વસ્ત્ર તણ દે અને એક જ વસ્ત્ર રાખે, જ્યારે સંપૂર્ણપણે ઠંડી ઓછી થઈ જાય ત્યારે રાખેલા એક વસ્ત્રનો પણ તે ત્યાગ કરી દે। આ રીતે તે પ્રાવરણ વસ્ત્રથી રહિત બની જાય પોતા પાસે ફક્ત દોરા સાથેની એક મુઠપત્તી એક રજોહરણ અને લજ્જા સાચવવાના હેતુથી એક પહેરવાનું વસ્ત્ર, આટલું જ રાખે, બાકી કંઈ નહીં।

द्विर्ध्रं क्रमपैकैकं वसनं परिहार्यमित्याह—‘लाघविक’—मित्यादि, ‘साध-
विक’ सपोर्मावा साधन तद् यस्यास्तीति लाघविकस्तं लाघविकं=स्वात्मानम्
भागमयन्=सम्पादयन् मिष्टुः क्रमेण वसनं परिहरेत् । यद्वा—लाघविकं=देशोपकरणे
कर्मणि च सधुताम् भागमयन्=सम्पादयन् स वसनं परिवर्तयेत् । तस्य=एतादृशस्य
मिष्टो एव करणे तपः=कायकलेसरूपम् अभिसम्पन्नागतं=प्राप्तं भवति कायकलेशस्य
तपोमहत्वात्, तथा हि—“ पंचहिं ठाणेहिं समगारं निर्मयाण अभेसगसे पसरथ
भवइ, १ अहा-अत्ता पबिलहा १ वेसासिए रूप, २ तवे अणुमय, ३ लाघवे
पसत्थे, ४ कित्ते इदियनिमाह ॥ ” छाया-पञ्चमिः स्थानैः भ्रमणानां निर्ग्रन्थानाम्
वेत्तकत्वं प्रशस्तं भवति-अत्ता मतिछेत्तना १, वैद्यासिक रूप २, तपाज्जुमतं ३,
ठापन प्रशस्त ४, विपुल इन्द्रियनिग्रहः ५ । इति ।

मुनीनां वस्त्रमाद्येन मतिछेत्तनाज्ज्यत्वं १ विद्यासपाप्रत्य २ तपः‘सद्भाव’
३ प्रशस्तलाघवं ४ प्रपुष्टतरन्त्रियनिग्रहत्वं ५ च भवति भाषः ॥ सू० २ ॥

यह एकद वस्त्रके परिहारका जो यहाँ क्रम मतलाया है उसका मतलब
केवल इतना ही है कि इन पूर्वोक्त तीन वस्त्रोंके रखनेसे आत्मामें लाघव
नहीं आता है, मुनिजन आत्मामें लाघव छानेके ही अभिलाषी होते हैं
मतः क्यों २ इनका परित्याग होगा क्यों २ आत्मामें इनके हटनेसे इन
संबंधी भारका भी अभाव हो जायगा । इस आत्मामें एक प्रकारका लाघव
नामका गुण प्रकट होगा । इस प्रकारसे रहनवाले उस पश्चिमाचारी स्व-
भिरकल्पी मिष्टुके कायकलेश नामक तप आचरित होता है । कायकलेश
यह वाक्य तपका एक भेद है, जैसे—“ पंचहिं ठाणेहिं ” इत्यादि, अर्थात्—
अत्यवस्त्र रखनेसे पांच स्थानोंद्वारा निर्ग्रन्थ भ्रमणोंका अभेदपना प्रशस्त

अ रीते जोक जोक वस्त्रो त्याग के रीत जलाववाभां अनेक छे जेने
मतलब इहेत कोटहो ॥ ३ ॥ के-जे पूर्वोक्त वस्त्र वस्त्रो सभवाभां अन्धभाभां
लाघव नहिं आवे. मुनिजनोने आत्मा मुदा सतोषी अने ठोड पक्ष प्रकारनी
आकांक्षा वजनो छेने कोठको, आधी नेम नेम त्याग भेतो स्के तेम तेम
अन्धभाभां अना इह बवाधी के सजधी कारणो पक्ष अभाव बाय छे अने कोधी
अन्धभाभां जोक प्रकारो लाघव नामो गुण प्रकट बाय छे आ प्रकारधी रहेवावाजा
ते पश्चिमाचारी स्वभिरकल्पी मिष्टु कायकलेश नामना तपने आवसनास कोम
छे कायकलेश को बाह्य तपने जोक वेद छे नेव— पंचहिं ठाणेहिं ” इत्यादि
अथ वक्ता साधवासी पांच स्थानो द्वारा निर्ग्रन्थ भ्रमणानु अभेदपद प्रशस्त

पक्षान्तरे स सान्तरोत्तरः आन्तर=मूत्रमस्त्रद्वयम् उत्तर=प्रावरणमस्त्र, ताभ्या सहितो वस्त्रत्रयवान् भवेत्, शीतमाध्या क्वचित् शरीरमाच्छादयेत्, क्वचिच्च शीतशय्या पार्श्वे स्थापयेत् न तु तत्परित्यजेत्। अथवा सः अवमचेलः=मूल्यतः प्रमाणतश्च हीन-जीर्णवस्त्रवान् भवेत्-कल्पनीयेषु त्रिषु वस्त्रेषु मध्ये चैकपरिहारेण वस्त्रद्वय धारयेदिति भावः। अथवा शनैः शनैः शीतापगमे एकश्चाटकः द्वितीयमस्त्रपरित्यागेनैक-वस्त्रधारी भवेत्। अथवा सर्वथा शीतापगमे चैकमपि वस्त्रं परित्यज्य अचेलः=प्रा-रणवस्त्ररहितो भवेत्। केवल सदोरकमुखवस्त्रिकारजोहरणलज्जास्त्रोपधिकः सन् निदरेत्।

इन सहित होनेका नाम सान्तरोत्तर है। क्षेत्र काल और पुरुषस्वभावकी अपेक्षासे यदि शीतकालकी बाधा आई हुई उसे ज्ञात हो तो वह साधु पूर्वोक्त दो वस्त्र सूतके और १ ऊनका कम्बल, इस प्रकार तीन वस्त्र रख लेवे। जब शीतकी बाधा उसे होवे तब तो यह उन्हें ओढ़ लेवे और यदि शीतबाधा न हो तो वह उन्हें पासमें ही रखे पर वस्त्रोका त्याग न करे। अथवा वह अवमचेल रहे—हीन जीर्ण वस्त्र रखे। कल्पनीय तीन वस्त्रोंमें किसी एकके परित्यागसे दो वस्त्र रखे। शीत जैसे २ व्यतीत हो वैसे २ यह भी किसी एक द्वितीय वस्त्रका फिर त्याग करे और एक ही वस्त्र रखे। जब थिलकुल ही शीतकाल निकल जावे तब यह एक भी रखे हुए वस्त्रका परित्याग कर देवे और इस प्रकार यह प्रावरण वस्त्र से रहित हो जावे। पासमें केवल एक धागेसहित मुखवस्त्रिका रजोहरण और लज्जा निवारणार्थ एक पहननेका वस्त्र ही रखे।

सूतरना जे वस्त्र तेमज उत्तर—એક પ્રાવરણરૂપ બિનની કળલ, આ સહિત થવાનું નામ સાન્તરોત્તર છે. ક્ષેત્ર કાળ અને પુરૂષસ્વભાવની અપેક્ષાથી જો ઠંડીની બાધા આવેલી જણાય તો તે સાધુ પૂર્વોક્ત જો વસ્ત્ર સુતરના અને એક બી કમ્બલ, આ પ્રકારે ત્રણ વસ્ત્ર રાખી લે. જ્યારે ઠંડીનો ઉપદ્રવ તેને લાગે ત્યારે તે એને બોલી લે ઉપદ્રવ બોલે થતા પોતાની પાસે રાખે પણ વસ્ત્રોનો ત્યાગ ન કરે અથવા—તે અવમચેલ રહે—હલકા બુના વસ્ત્ર રાખે, કલ્પનીય ત્રણ વસ્ત્રો માથે એકનો પરિત્યાગ કરી જો વસ્ત્ર રાખે ઠંડી બોલી થતા આ જો વસ્ત્રોમાથે પણ કોઈ એક વસ્ત્ર તણ દે અને એક જ વસ્ત્ર રાખે, જ્યારે સપૂર્ણપણે ઠંડી બોલી થઈ જાય ત્યારે રાખેલા એક વસ્ત્રનો પણ તે ત્યાગ કરી દે આ રીતે તે પ્રાવરણ વસ્ત્રથી રહિત બની જાય પોતા પાસે ફક્ત દોરા સાથેની એક મુહપત્તી એક રબોહરણ અને લજ્જા સાચવવાના હેતુથી એક પહેરવાનું વસ્ત્ર, આટલું જ રાખે, બાકી કંઈ નહીં

किमपि क्रममेकैक वसनं परिहार्यमित्याह—‘लाघविक’—मित्यादि, ‘लाघविकं’ सपोर्मावो लाघवं तद् यस्यास्तीति लाघविकस्तं लाघविकं=स्वात्मानम् भागमयन्=सम्पादयन् मिथु क्रमण वसनं परिहरत् । यद्वा—लाघविकं=वेदापकरणे क्रमभिः च लघुताम् भागमयन्=सम्पादयन् च वसनं परिवर्तयत् । तस्य=एतादृशस्य मिथो एव कारणे तपः=कायकलेष्वरूपम् अभिसम्पन्नागते=प्राप्तं भवति कायकलेष्वस्य तपोभवत्वात्, तथा हि—“ पंचहिं ठाणेहिं समणाणं निर्मयाणं अचेमगत्तं पसत्थे म्मह, तं जहा—अप्पा पडिसेहा १ वेसास्मि रूढे, २ तवे अजुमए, ३ लाघवे पसत्थ, ४ चित्तल इंदियनिमाह ॥ ” छाया-पञ्चमि स्थानैः भ्रमणानां निर्गन्थानाम् चेल्लत्वं प्रवृत्तं भवति—अस्या प्रतिषेधना १, वैधासिकं रूपं २, तपाऽनुमतं ३, लाघवं प्रवृत्तं ४, चित्तल इन्द्रियनिग्रहः ५ । इति ।

मुनीनां वस्त्रलाघवनं प्रतिषेधनाऽऽपत्त्यं १ विधासपात्त्यं २ तपःसञ्ज्ञाकः ३ प्रवृत्तलाघवं ४ प्रवृत्तरन्ध्रियनिग्रहत्वं ५ च भवति भाषा ॥ सू० २ ॥

यह एकद वस्त्रके परिहारका जो यहाँ क्रम पतलाया है उसका मतलब केवल इतना ही है कि इन पूर्वोक्त तीन वस्त्रोंके रखनेसे आत्मामें लाघव नहीं आता है, मुनिजन आत्मामें लाघव लानके ही अभिलाषी होते हैं अतः ज्यों २ इनका परित्याग होगा त्यों २ आत्मामें इनके इतनेसे इन संपत्ति भारका भी अभाव हो जायगा। इस आत्मामें एक प्रकारका लाघव नामका गुण प्रकट होगा। इस प्रकारसे रहनबाड़े उस पंडितमाधारी स्थ विरक्तन्पी मिथुके कायकलेश नामक तप आचरित होता है। कायकलेश यह वाक्य तपका एक अंग है, जैसे—“पंचहिं ठाणेहिं” इत्यादि, अर्थात्—अल्पवस्त्र रत्नसे पाँच स्थानोंद्वारा निग्रन्ध भ्रमणोंका अचेलपना प्रशस्त

आ रीते कोक कोक वस्त्रना त्याग के रीत बतायावार्त्तानेह उ कोने भवद्वय इहव कोटकोह उ है—को पूर्वोक्त तप वस्त्रा संप्रदायी आत्मायां लाघव नाहि आवे मुनिजनेने आत्मा सदा तपोपी अने कोह पद प्रकाशपी आकाश वस्त्रने कोये कोहको, आधी कोम कोम त्याग अतो रदे तेम तेम आत्मायां अल्प वस्त्रवाधी को सल भी आरना पद अभाव बाध उ अने कोधी आत्मायां को प्रकाशने लाघवनामने गुण प्रज्वालाय उ आ प्रकाशपी द्येवाचार्य ते पंडितमाधारी स्थविरकक्षपी मिथु कायकलेश नामना तपने आचरनास होय उ। कायकलेश को व्यास तपने कोक कोह उ नेन—“पंचहिं ठाणेहिं” इत्यादि अथ वस्त्र संप्रदायी पात्र स्थानों द्वारा निग्रन्ध भ्रमणान् अचेलपदु प्रशस्त

સ્વમતિપરિકલ્પિતત્વનિરસનાયાહ—‘જમેય’ ઇત્યાદિ,

મૂલમ્—જમેયં ભગવયા પવેદ્યં તમેવ અભિસમિચ્ચા સઘ્વઓ
સઘ્વત્તાણ સમત્તમેવ સમભિજાણિજ્ઞા ॥ સૂ. ૩ ॥

છાયા—યદેતદ્ ભગવતા પ્રવેદિત તદેવાભિસમેત્ય સર્વતઃ સર્વાત્મતયા સમ્ય-
ક્ત્વમેવ સમભિજાનીયાત્ ॥ સૂ. ૩ ॥

ટીકા—‘ય’—દિત્યાદિ, યત્=પૂર્વોક્તં તદેતત્સર્વં ભગવતા=મહાવીરેણ પ્રવેદિત=
દ્વાદશપર્ષદિ પ્રરૂપિતમ્, મુનિઃ તદેવ=પૂર્વોક્તમેવ સર્વતઃ=સર્વપ્રકારૈઃ સર્વાત્મતયા
સકલાત્મભાવેન અભિસમેત્ય વિચાર્ય=સમ્યક્ત્વમેવ સમભિજાનીયાત્=આસેવનપરિ-
જ્ઞયા સેવેત । યદ્વા—‘સમત્વમેવે’—તિચ્છાયા, તેન સમત્વમેવ=સચેલાડચેલાવસ્થયોઃ
સમાનભાવમ્ સમભિજાનીયાત્ ॥ સૂ. ૩ ॥

હોતા હૈ, વે પાંચ સ્થાન યે હૈ—૧ પ્રતિલેખના કી અલ્પતા, ૨ વિશ્વાસપાત્રતા,
૩ તપકા સદ્ ભાવ, ૪ પ્રશસ્તલઘુતા, ૫ પ્રભૂતતર ઈન્દ્રિયોંકી નિગ્રહતા ॥ સૂ. ૨ ॥

સૂત્રકાર અપને કથનમેં અપની મતિદ્વારા કલ્પિતતાકા નિષેધ કરનેકે
લિયે કહતે હૈ—‘જમેયં’ ઇત્યાદિ ।

જો કુછ ઉપર કહા ગયા હૈ વહ સબ ભગવાન્ મહાવીરદ્વારા અપની
બારહ પ્રકારકી સભાઓમેં પ્રરૂપિત હુઆ હૈ અતઃ મુનિ હસ પૂર્વોક્ત કથન
કા સર્વ પ્રકારસે વિચાર કર હસે સત્યરૂપ સે હી જાને । અથવા “સમ-
ત્તમેવ” કી છાયા “સમત્વમેવ” બી હોતી હૈ, હસકા અર્થ યહ હૈ કિ
પૂર્વોક્ત કથન ભગવાન્ દ્વારા હી કથિત હુઆ હૈ, અતઃ મુનિ સચેલ ઔર
અચેલ હન દોનોં અવસ્થાઓમેં સમાન ભાવકા આસેવનપરિજ્ઞાસે
સેવન કરે ॥ સૂ. ૩ ॥

હોય છે તે પાચ સ્થાન આ છે—૧ પ્રતિલેખનાની અલ્પતા, ૨ વિશ્વાસપાત્રતા,
૩ તપને સદ્ભાવ, ૪ પ્રશસ્તલઘુતા, ૫ પ્રભૂતતર ઈન્દ્રિયોની નિગ્રહતા (સૂ. ૨)

સૂત્રકાર આ કથનમા પોતાની મતિ—અનુસાર કલ્પિતતાનો નિષેધ કરતા
કહે છે—“જમેયં” ઇત્યાદિ

જે કાઈ ઉપર કહેવાઈ ગયું છે એ બધું ભગવાન મહાવીરદ્વારા બાર
પ્રકારની સભાઓમા પ્રરૂપિત થયેલ છે, આથી મુનિ આ પૂર્વોક્ત કથનનો સર્વ
પ્રકારથી વિચાર કરી આને સત્યરૂપથી જ જાણે અથવા “સમત્તમેવ” ની છાયા
‘સમત્વમેવ’ પણ થાય છે આનો અર્થ એ છે કે પૂર્વોક્ત કથન ભગવાનનું
જ કહેલ છે આથી મુનિ સચેલ અને અચેલ આ બંને અવસ્થાઓમા સમાન
ભાવનું આસેવનપરિજ્ઞાથી સેવન કરે (સૂ. ૩)

शरीराशक्ततया मन्याध्यवसाये सति किं कर्तव्यमिति-दर्शयति-‘अस्त षं’
इत्यादि ।

सूत्रम्—अस्त ष मिच्छुस्त एव भवइ—पुष्टो खलु अहमसि
नालमहमसि सीयफास अहियासित्तए, से वसुम सठवसमन्ना
गयपप्पाणेण अप्पाणेण केइ अकरणयाए आउहे तवस्सिणो हु
त सेय जमेगे विहमाइए तरथवि तस्स कालपरियाए, सेअवि
तरथ विअतिकारए, इच्छेय विमोहायतण हिय सुइ खम
निस्सेयस आणुगामिय—तिथेमि ॥ सू० ४ ॥

छाया—यस्य खलु मिश्रोरेषं भवति—स्पष्टं सत्यमस्मि नालमहस्मि शीतस्पर्श-
मभ्यासितम्, स वसुमान् सर्वसमन्वागतमहानेनाऽऽत्मना कश्चिदकरणतयाऽऽवृतस्त-
पस्त्रिस्तद्वच्च भया यदको विहायआदिकं, तथाऽपि तस्य कालपर्यायः, सौऽपि तत्र
अन्तिकारका, इत्यतएव विमोहायतने रितं सुखं क्षमं निःश्रेयसमाणुगामिकमिति
ब्रवीमि ॥ सू० ४ ॥

टीका—‘यस्य’—त्यादि, यस्य=पूर्वोक्तस्य मिश्रोः=धुनेः खलु, एवं=वक्ष्यमा-
नोऽध्यवसायो भवति, तमेवाह—अहं स्पष्टः=रोगात्कुः शीतादिना कामिन्युपसर्गेन वा
पीडितोऽस्मि, शीतस्पर्श=शीतजन्यदुःखविशेषं योपिदुपसर्गं माप्यशीतस्पर्शं वा
मभ्यासितम्=अपिसोढुमहं नाहं=न समर्थोऽस्मि । समुत्पिष्टे च कामिन्युपसर्गे
प्रतिकारान्तरविधानासमर्थः समयपरिपालका मुनिस्तदा किं कुर्यादित्याह—‘सकसु

शरीर अशक्त होनेके कारण यदि अध्यवसायोमें संवत्ता भा जाय
तो मोक्षार्थी मुनिको क्या करना चाहिये ? इसे सूत्रकार प्रदर्शित करते
हैं—‘अस्त षं’ इत्यादि ।

जिस मुनिके इस प्रकारका बक्ष्यमाण अध्यवसाय होता है कि
‘मैं रोगोंके आतङ्कसे, शीत आदिके स्पर्शसे, अथवा भावशीत-कामिनीके
उपसर्ग-से पीडित हूँ, मैं इस शीतजन्य दुःखविशेषको अथवा, भाव
शीतस्पर्शरूप कामिनीके उपसर्गको सहनके लिये समर्थ नहीं हूँ” उस

शरीर अशक्त बवासी ने अध्यवसायोभा म हवा आवी जाय तो मोक्षार्थी
मुनिने हुं हखुं ओछोओं आ वात सुखकार सुत्रद्वारा प्रदर्शित करे छे—‘अस्त षं’ इत्यादि
के मुनिभां आ प्रकाशने-वक्ष्यमाण अध्यवसाय कोए छे के—“हुं श्रेयसा
उपसर्गशी, ह्री वजेदना स्पर्शशी अथवा भावशीत-कामिनीना उपसर्ग-शी पीडित
छे हुं आ ह्रीना दुःख विशेषने अथवा भावशीतस्पर्शरूप कामिनीना उपसर्ग-ने सहन
५३

માન' इत्यादि, सः=पूर्वोक्तविचारवान् कोऽपि=उपसर्गसहनाक्षमः सर्वसमन्वागतप्रज्ञा-
नेन=समुपलब्धहेयोपादेयविशिष्टज्ञानवता, आत्मना=अन्तःकरणेन अकरणतया=
उपसर्गप्रतीकारस्याकरणप्रतिज्ञया आवृतः=व्यवस्थितः वसुमान्=चारित्र्यधनो मुनिर्भ-
वति । तादृशः किं कुर्यादित्याह-'तपस्विनः' इत्यादि, यत् यस्मिन् काले स्त्री
भिक्षार्थमागतं मुनिं मोहयितुमुद्यता तं न मुञ्चति, सर्वथोपसर्गयितुमिच्छत्येव तत्
=तदा तपस्विनः=चिरकालोपार्जितसंयमपर्यायस्य तपोधनस्यापसर्गाभिभवाऽसहि-

समय वह मुनि कि जो चारित्र्यका पालक है एवं कामिनी आदिके उपसर्ग
उपस्थित होने पर उसके अन्य प्रतिकार करनेमें असमर्थ है तो क्या करे? इस
का उत्तर देते हुए सूत्रकार कहते हैं कि-वह मुनि जिसके ये पूर्वोक्त
विचार हैं अपने अन्तःकरणसे कि जो समुपलब्ध हेय और उपादेयके
विशिष्ट ज्ञानसे युक्त है उस आये हुए उपसर्गको अच्छी तरह अकर-
णनेसे सहन करे, अर्थात् मेरे ऊपर जो यह उपसर्ग स्त्री आदि द्वारा उप-
स्थित किया गया है मैं उसके अनुकूल कभी नहीं होऊँगा-विषयादिकों
का सेवन इसके साथ कभी नहीं करूँगा चाहे प्राण भले ही निकल जावें,
इस प्रकारकी अकरणपरिज्ञासे युक्त होता हुआ अपने चारित्र्यरूप धन
का रक्षक बने। इस प्रकारसे जब उसकी दृढ़ता होगी तो भिक्षाके लिये
आये हुए उस मुनिको मोहित करनेके लिये उद्यत कोई भी स्त्री-कामिनी
उसे वश करनेके लिये जब भरपूर चेष्टा करती है, उसके संयमरूपी
रत्नको लूटनेके लिये वह कोई भी बनता उपाय नहीं छोड़ती है, अथवा

કરવામા અસમર્થ છું ” એ સમયે તે મુનિ કે જે ચારિત્રના પાલક છે અને કામિની
આદિના ઉપસર્ગો ઉપસ્થિત થતા એની સામે પ્રતિકાર કરવામા અસમર્થ છે તે શું
કરે? આને ઉત્તર આપતા સૂત્રકાર કહે છે કે-એ મુનિ જેના પૂર્વોક્ત વિચાર છે
પોતાના અન્ત કરણથી કે જે સમુપલબ્ધ હેય અને ઉપાદેયના વિશિષ્ટ જ્ઞાનથી
યુક્ત છે એ આવેલા ઉપસર્ગને સારી રીતે અકરણપણથી સહન કરે, અર્થાત્
મારા ઉપર જે આ ઉપસર્ગ સ્ત્રી આદિ દ્વારા ઉપસ્થિત કરવામા આવેલ છે હું
તેને અનુકૂળ કદી પણ નહીં બનુ-વિષયાદિકનું સેવન એની સાથે કદિ નહિ કર
આદિ મારા પ્રાણ ભલે નિડળી જાય. આ પ્રકારની અકરણપરિજ્ઞાથી મહત્તમ રહી
પોતાના ચારિત્રરૂપ ધનના રક્ષક બને, આ પ્રકારે જે એનામા દૃઢતા હોય તો ભિક્ષાને
માટે આવેલ એ મુનિને મોહિત કરવા તત્પર થયેલ કોઈ પણ સ્ત્રી-કામિની
એને વશ કરવા માટે જ્યારે ભરપૂર ચેષ્ટા કરે છે, એના સંયમરૂપી રત્નને
લૂટવા માટે તે કોઈ પણ બનતો ઉપાય છોડતી નથી, અથવા કોઈ નિર્લજ્જ

प्यो केनापि जनेन कामिन्या सह गृहे प्रवेष्टव्यं कृतनिरोधस्य ततो निःसरणोपाय
मसम्मानस्य श्रीसमङ्गमनिच्छतो मुने, विहायभाषिकं वैहायसादिकं मरणं भेषः
प्रशस्तमस्ति । इत्युपसर्गाभिभाषे सति स मुनिर्गले पादबन्धनं विषमसम्भं जिह्वाक
र्षणपरिष्ठात् यत्नं वा विभाष्य प्राप्नान् परित्यजेत्, न तु चारित्र्यं लम्बयेदिति पर
मार्थः । ममोत्सर्गिकैर्मत्कपरिज्ञेयमरणपादपोषगमनस्पर्धैः क्षीरपरित्याग एव

कोई निर्लज्ज मनुष्य उस स्त्रीके साथ उस मुनिको कि जिसने बहुत काल
उपमर्षपायकी अच्छी तरह कमाई की है, और वही तपस्वी धन ही
जिस्के पास एक सहारा है, एवं जो उपसर्गजन्य परामर्शको सहनेमें
असहिष्णु है उसको उस घरमें प्रवेश करा देता है और बाहिर नहीं
निकलने देता है, इस अवस्थामें उस मुनिका कि जिसे वहांसे निकलने
का कोई उपाय नहीं सूझ रहा है, और जो अपने शीशके भंगसे डर
रहा है, उसके लिये यही कर्तव्य मार्ग है कि वह उस समय वैहायस
आदि मरण भंगीकार करे । अर्थात्—इस प्रकारके उपद्रव आने पर वह
मुनि गलेमें कांसी लगा कर, बिपका भक्षण कर या जिह्वाको
आकर्षित (लींच) कर अपने प्राणों का विसर्जन कर देवे, यदि कोई
उपाय उसे हाथ न आ सके तो वह ऊपरसे गिर कर भी मर जावे पर
अपने अमूल्य प्राणप्यार चारित्र्यकी जोरी अपनी आंखोंके समक्ष न होने
देवे । यह विचार उस समय अवश्य करे कि—मुखे तो उत्सर्ग मार्ग
ही अपने प्राणोंसे अधिक प्यारा था, मैं तो वही चाहता था कि मेरा मरण

मनुष्य को स्त्री की साथ को मुनिने है केवल मनुष्य कागधी समय पर्याप्तनी क्षीर
हमावी करी है जने को व उपद्रवी धनने केनी पक्षे को सहाय है जने
के उपसर्गजन्य प्रशस्तमने सहेनामा असहिष्णु है जने को घरमा प्रवेश
हसनी व वकार निकलना देता नहीं, केवी अवस्थाभा को मुनि है केना त्मांभी
निकलनामा हाथ उपाय नहीं सूझता जने के पीताना शीतना जगधी करी
रहेत है जने भाठे को व कर्तव्य मार्ग है ते को समथे वैहायस आदि मरण
जगीकार करे, अर्थात्—इस प्रकारके उपद्रव आववाशी ते मुनि जगधमा हांभी
हमावी, बिपनु भक्षण करी जगधमा ते एजने केवी हांभी पीताना माधुन
विज्ञान करी है को कोर् भीजे उपाय तेने न सूझे तो ऊपरशी पडीने
पक्ष माधुन विसर्जन करी है जने तेनी आपत्ति वष्ये पक्ष पीताना अभूय
चारित्र्यनी जोरी पीतानी आंजे क्षमे न बचा है को समथे व विचार ते
अवश्य करे है जने तो उत्सर्ग मार्ग भाव प्राप्ति करवा पक्ष पक्ष प्यारी है

શ્રેયાન્, પરન્તુ તેષા ચિરકાલસાધ્યતયા કાલક્ષેપાસહનયોગ્યેઽસ્મિન્નવસરે ન સમ્ભ-
વોઽસ્તિ । ઉપસર્ગથ્ ચ સોદુમનર્હથ્ચારિત્રવિરાધકઃ સમુપસ્થિતસ્તસ્માત્સામ્પ્રતમાપવાદિ-
કમપિ તત્ક્ષણનિષ્પાદ્ય વૈહાયસ-ગાર્દ્ધપૃષ્ઠાભ્યં વાલમરણં પંડિતમરણમેવેતિ ભાવઃ ।

નનુ વૈહાયસગાર્દ્ધપૃષ્ઠાદિરૂપવાલમરણે સત્યનર્થાધિગમસ્યાગમે દર્શનં યથા—

ભક્તપરિજ્ઞા, ઇજ્ઞિતમરણ, ઓર પાદપોપગમન, ઇન ત્રીન મરણોમેં સે કિસી
એક મરણકી આરાધનાસે હોતા, પર હાય ! મુજ્જ દુર્ભાગીકે લિયે યહ જીવન
કા સુવર્ણ અવસર દેખનેકે લિયે નહીં મિલા । હસ પ્રકાર આત્માકી નિંદા
કરતા હુઆ વહ સાધુ યહ દેખ કર કિ—“ઇન મરણોંકા સમય ચિરકાલ
સાધ્ય હૈ, ઓર યહ સમય અવ કાલક્ષેપ કરને યોગ્ય નહીં હૈ, ઇનકી
સમ્ભાવના ભી યહાં કૈસે હો સકતી હૈ, યહ ચારિત્રવિધ્વંસક ઉપદ્રવ જો
દુર્નિવાર આ કર ઉપસ્થિત હો ગયા હૈ ઇસ લિયે ઇસ સમય યહી અપવાદ-
માર્ગરૂપ મરણ મેરે લિયે પંડિતમરણ હૈ, વૈહાયસ, ગાર્દ્ધપૃષ્ઠ આદિ મરણ
વાલમરણ હૈ, પરન્તુ મેરા કામ તો ઇસ સમય ઇનસે હી સાધ્ય હોતા હૈ
અતઃ ઇન્હે હી પંડિતમરણ માન કર મૈં અપના કામ કર લૂં, ઇસીમેં મેરા
કલ્યાણ હૈ, વૈહાયસ આદિ મરણ સ્વીકાર કરે ।

શઙ્કા—વૈહાયસ ઓર ગાર્દ્ધપૃષ્ઠરૂપ વાલમરણસે પ્રાણોંકો છોડનેવાલોં
કો અનર્થકી પ્રાપ્તિ આગમમેં બતલાઈ હૈ, જૈસે—

હું તો એ ચાહું છું કે મારૂં મરણ ભક્તપરિજ્ઞા, ઇજ્ઞિત મરણ, અને
પાદપોપગમન, આ ત્રણ મરણમાથી એક મરણની આરાધનાથી થાય,
પરંતુ મારા જેવા દુર્ભાગીને માટે જીવનનો આ સુવર્ણ અવસર જોવાનો ન મળ્યો,
આ રીતે આત્માની નિંદા કરતા કરતા તે સાધુ આ જોઈને—“એ મરણનો સમય
ચિરકાળસાધ્ય છે, અને આ સમય હવે કાળક્ષેપ કરવા યોગ્ય નથી તો એની
સંભાવના પણ કેમ થઈ શકે ? આ ચારિત્રનો નાશ કરનાર ઉપદ્રવ આવીને
પડ્યો છે, એ કારણે મારે માટે આ સમયે અપવાદમાર્ગરૂપ મરણ પડિત
મરણ છે વૈહાયસ, ગાર્દ્ધપૃષ્ઠ વગેરે મરણ બાળ-મરણ છે, મારૂં કામ તો આ
સમયે આથી જ સાધ્ય બને છે આથી આને જ પડિતમરણ માનીને હું મારૂં
કામ કરી લઉં આમા જ મારૂં કલ્યાણ છે” વૈહાયસ આદિ મરણ સ્વીકાર કરે.

શકા—વૈહાયસ અને ગાર્દ્ધપૃષ્ઠરૂપ બાળમરણથી પ્રાણ છોડવાવાળાને અન-
ર્થની પ્રાપ્તિ થવાનું આગમમા બતાવેલ છે જેમ—

“ઈષ્વેણં વાલ્મરણેણં મરમાણે જીવે અર્ણસેદિં નેરહ્યમવગ્ગહોદિં અપ્પાણં સંજોપ્પ જાવ અણાહ્યં ચ ણ અણવયર્ગં ચાટરંતં સંસારફતારં મુક્કો મુક્કો પરિપ્પહ”
 इति । छाया—इत्येतेन वाल्मरणेन चियमाणो जीवो अनन्तैर्नेरपिकमप्रहमैरात्मानं
 संयोजयति यावदनादिषु चानवदग्रं चातुरन्तं ससारकान्तारं भूयो भूयः परिवर्तते” ।
 इति प्रतिपिद्धत्वेन कथं निन्दितमानस्तीति चेदाह—मैधुनं हि सकलस्याऽप्यधर्मस्य
 मूलं महादोषपुञ्जभूतम्, तत्र च निस्त्रिभुवतमङ्गो भवति, तथा चाक्तं भगवता—

“મૂલમેયમહમ્મસ મહાદોસમુસ્સય ।”

અહા મહુગસંસારં નિમાયા વજ્જયંતિ ણં ” ॥ ૧ ॥ (ઈતિ વસ્થૈ ૦ અ ૬

छाया—मूलमतदधर्मस्य, महादोषसमुच्चयम् ॥

तस्मान्મैધુનસંસારં, નિર્મન્યા વર્મયન્તિ તમ્ ॥ ૧ ॥ इति ।

“ઈષ્વેણં વાલ્મરણેણં મરમાણે જીવે અર્ણસેદિં નેરહ્યમવગ્ગહોદિં અપ્પાણં સંજોપ્પ જાવ અણાહ્યં ચ ણ અણવયર્ગં ચાટરંતં સંસારફતારં મુક્કો મુક્કો પરિપ્પહ”
 इति ।

અર્થાત્—હસ વાલ્મરણસે મરમેવાલા જીવ અનન્ત વાર અપની
 આત્માએ નરકમેં જાલતા હૈ ઓર વહ અનાદિ અનન્ત સંસારમેં પરિભ્રમણ
 કરતા હૈ, इत्यादि, अतः जब आगममें इसका निषेध है तो वह उस
 निन्दित वाल्मरणाका आचरण क्यों करता है ?

उत्तर—ऐसा नहीं कहना चाहिये, क्यों कि मैधुन सकल अधर्म
 का मूल है और अनेक दोषोंका पुञ्ज है । इसके सेवनसे समस्त वृत्तोंका
 भंग होता है । इस प्रकार वृक्षादिकालिकके अप्पयन छंदमें कहा है, जैसे—
 “मूलमेयमहम्मस महादोसमुस्सय” इत्यादि । यह मैधुन कर्म अधर्म

इष्वेणं वाल्मरणेणं मरमाणे जीवे अर्णसेदिं नेरह्यमवगगहोदिं अप्पाणं संजोपप्प
 जाव अणाह्यं च ण अणवयर्गं चाटरंतं ससारफतारं मुक्को मुक्को परिपप्पह” इति ।

अर्थात्—आ वाल्मरणा जी मरमाणा जीव अनन्तवार पीताना आत्माने
 नरकमां नाये छे अने ते आदि अनन्त वसारमां परिभ्रमण कर्था करे छे इत्यादि
 आधी आचरमां जेने निषेध छे तो पछी आपु आणमरखनु निन्दित आव
 रणु केम करे छे ?

उत्तर—जेणु न कहेणु जेछेको. केम के मैधुन सकल अधर्महु भूण छे
 अने अनेक दोषोना पुञ्ज छे जेना सेवनशी समस्त वृत्तोना भंग जाय छे
 आ प्रकार इत्यादिकालिका छुणु अप्पयनमां कहेल छे जेभ—“मूलमेयमहम्मस
 महादोसमुस्सय” इत्यादि. जे मैधुन कर्म अधर्महु भूण अने महादोषोनी आपु छे,

અતસ્તત્સેવનાપેક્ષયાડપવાદિકવાલમરણમપિ પણિતમરણમેવેત્યસ્યાત્રૈવ પ્રતિપાદિતત્વાત્ । તદેવ દર્શયતિ-‘તત્રાડપો’-ત્યાદિ, તત્રાડપિ=ઉપસર્ગાભિભવાવસરે વૈહાયસગાર્દ્ધપૃષ્ઠાદિમરણેડપિ તસ્ય=સમુપસ્થિતોપસર્ગાભિભવસ્ય મુનેઃ કાલપર્યાય પ્વચિરકાલ સંયમપરિરક્ષણ વિદધતો મુનેર્યથા દ્વાદશવાર્ષિકસંલેખનાવિધિના શરીરકૃશીકરણપૂર્વકાનનશનરૂપેણ કાલપર્યાયેણ ભક્તપરિજ્ઞાદિમરણં ગુણાય ભવતિ, તદ્વત્ તદા તસ્ય વૈહાયસ-ગાર્દ્ધપૃષ્ઠમરણમપિ ગુણાયૈવેત્યાશયઃ । યઃ કોડપિ વહુભિરપિ કાલપર્યાયૈર્યાવન્તિ કર્માણ્યપનયતિ તાવન્તિ ચ કર્માણિ સ સ્તોકે નૈવ કાલેન દૂરીકા મૂલ ઔર મહાદોષોં કી ખાન હૈ । એસા સમજ્ઞ કર હી નિર્ગ્રન્થ ઉસકા સેવન નહીં કરતે હૈ ।

इसलिये उसके सेवनकी अपेक्षा अपवादस्वरूप बाल मरण भी पण्डितमरण ही है, यह बात यहां पर प्रतिपादित की गई है । इसी विषयको सूत्रकार दिखलाते हैं-‘तत्थवि’-इत्यादि, उपसर्गजन्य अभिभवके समयमें वैहायस और गार्द्वपृष्ठ आदि बालमरण होने पर भी जैसे चिरकाल तक संयमकी रक्षा करनेवाले मुनिके लिये बारह वर्ष की संलेखनाविधिसे शरीरको कृश करनेपूर्वक अनशनरूप कालपर्यायसे भक्तपरिज्ञादि मरण लाभदायक होता है उसी प्रकार उपसर्गजन्य अभिभव जिस मुनिके उपस्थित हो चुका है उस मुनिके लिये वैहायस और गार्द्वपृष्ठ मरण भी लाभदायक होता है । जो कोई भी अव्रती प्राणी बहुत कालपर्यायों द्वारा जितने कर्मोंका नाश करता है उतने कर्मोंका नाश वह मुनि थोड़ेसे ही कालमें कर देता है । इसी अर्थको प्रकट करते हुए

એવુ સમજીને જ નિર્ગ્રન્થ એનુ સેવન કરતા નથી

આ કારણે એના સેવનની અપેક્ષા અપવાદસ્વરૂપ બાળમરણ પછી પડિતમરણ જ છે, એ વાત પછી અહિં પ્રતિપાદિત કરવામા આવી છે આ વિષયને સૂત્રકાર ખતાવે છે-‘ તત્થ વિ’ ઇત્યાદિ

ઉપસર્ગજન્ય અભિભવના સમયે વૈહાયસ અને ગાર્દ્ધપૃષ્ઠ આદિ બાળમરણ થવાથી પછી જેમ ચિરકાળ સુધી સયમની રક્ષા કરવાવાળા મુનિને માટે બાર વર્ષની સંલેખનાવિધિથી શરીરને કૃશ-નબળું કરવાની સાથે અનનશનરૂપ કાલપર્યાયથી ભક્તપરિજ્ઞાદિમરણ લાભદાયક થાય છે એ જ રીતે ઉપસર્ગજન્ય અભિભવ જે મુનિના ઉપર આવી પડે છે એ મુનિ માટે પછી વૈહાયસ અને ગાર્દ્ધપૃષ્ઠ મરણ પછી લાભદાયક બને છે જેમ કોઈ અવ્રતી પ્રાણી લાખા કાળને આતે કાલપર્યાયોદ્વારા જેટલા કર્મોનો નાશ કરી શકે છે એટલા જ કર્મોનો નાશ તે

કરોતીતિ હૃદયમ્ । તમવાર્થે પ્રકટયમાહ-‘સાઽપી-’ત્યાદિ, સોઽપિ=વૈદ્યાપસાદિ
 કરી ‘અપિ’ કૃષ્ણ કથનમક્તપરિણાદરાનુપૂર્ણા ન કારકા, હ્યર્થો ધોત્યવે,
 તમ વૈદ્યાપસાદિમરણે ‘અન્ટિકારકા’ ચિ=વિગ્રહણ અન્તિ-અન્ટિ=અન્તક્રિયા,
 તસ્યા કારક અન્ટિકારક=સંસારાન્તકારકો મુનિર્મથતિ, અત એવ તસ્ય
 વદા વૈદ્યાપસાદિમરણમપ્યોત્સર્ગિકમથેત્યભિપ્રાયઃ । ઉપસંહરમાહ-‘ઇત્યત’-વિત્યાદિ,
 રિતિ=સૂક્તમ્ પૃથત્=વૈદ્યાપસાદપૃષ્ઠમરણ, વિમોહાયતનમ્ ચિ=ચિગતો મોહઃ
 અવિવેકો યપાં ત વિમોહા=માહરહિતા મહાપુરુષાસ્તથામ્ આયતનં કર્તવ્યતથા
 સ્થાનમ્ વિમોહાયતનમ્, એવ રિતમ્=શ્ચમ્ કસ્યાણકારિત્યાત્, તથા મુક્ત ચિત્તમ્
 સમનં કં અનિર્જરાપ્યકમઅપાપાપન્દાન્દસન્દાહજનકસ્યાત્, એવં સ્તમ=સમર્થ
 સૂત્રકાર ‘સોચિ’ ઇત્યાદિ સૂત્રાશ કહતે હૈ-યહાં ‘અપિ’ શબ્દ યહ પ્રકટ
 કરતા હૈ કિ કેવલ નક્તપરિણા આદિકો અનુક્રમસે નહીં કરનવાલા ની
 વહ વૈદ્યાપસ આદિ મરણ પ્રાપ્તકરનેવાલા મુનિ ઉસ મરણમેં ની અન્તક્રિયા
 ક્ષપ સંસારકા અન્ત કરનેવાલા હોતા હૈ, ઇસલિપે ઉસકા વૈદ્યાપસ આદિ
 મરણ ની ઔત્સર્ગિક હી હૈ ।

ઇસ વિષયકા ઉપસંહાર કરતે મુગ સૂત્રકાર કહતે હૈ કિ યહ વૈદ્યા-
 પસ ઔર માર્દવૃષ્ઠ મરણ વિમોહાયતન-જિનકા મોહ-અવિવેક નષ્ટ
 હો ચુકા હૈ પેસે મોહરહિત મહાપુરુષોકા કર્તવ્યરૂપસે સ્થાન-હૈ, યહ
 કસ્યાણકારી હોનેસે રિત-શ્ચિત્ હૈ, કર્મોંકી નિર્જરાપૂર્વક અપ્યાપાપ અમન્દ
 આનંદપરમ્પરાકા જનક હોનેસે વહ મુક્ત-મુખ્યસ્વરૂપ હૈ, અર્થાત્ શિવસુલ્લકા

મુનિ થોડા જ કાળમાં કથી હે છે આ અર્થને પ્રકટ કરતાં સૂત્રકાર “સોઽપિ”
 ઇત્યાદિ સૂત્રાંશ કહે છે-અર્થે “અપિ” શબ્દ એવું પ્રકટ કરે છે કે કેવળ ભક્ત
 પરિણા આદિને અનુક્રમથી ન કરવાવાળા પણ એ વૈદ્યાપસ આદિ મરણ પ્રાપ્ત
 કરનાર મુનિ એ મરણમાં પણ અન્તક્રિયારૂપ સંસારનો અન્ત કરવાવાળા હોય
 છે, આ કારણ એવું વૈદ્યાપસ આદિ મરણ પણ ઔત્સર્ગિક જ છે

આ વિષયને ઉપસંહાર કરતાં સૂત્રકાર કહે છે કે આ વૈદ્યાપસ અને
 માર્દવૃષ્ઠ મરણ વિમોહમયતમ-એમનો મોહ-અવિવેક નષ્ટ થઈ ચુકેલ છે, એવા
 મોહરહિત મહાપુરુષોનું કર્તવ્યરૂપથી સ્થાન-છે એ કસ્યાણકારી હોવાથી રિત-શ્ચિત્
 છે, એ કર્મોંની નિર્જરાપૂર્વક અપ્યાપાપ અમન્દ આનંદપરમ્પરાને આપનાર હોવાથી
 તે મુક્ત-મુખ્યસ્વરૂપ છે, અર્થાત્ શિવશુભાગ આપનાર છે, વળ એ પ્રકારે પર્વતોનું

વજ્રવત્ કર્મવિદારણશક્તિમત્ત્વાત્, તથા નિઃશ્રેયસં-નિ શ્રેયસકારક કર્માપનયનવિધાયક-
ત્વાત્, એવમ્ આનુગામિકમ્ આત્મનો જન્મમરણાધ્યનન્તદુઃખજાલમુચ્છેદ્ય મોક્ષાનુકૂલ-
ગમનકારકત્વાત્ । એતાદૃશં મરણ તસ્ય મુનેર્મજ્જલરૂપમેવ ભવતીતિ ભાવઃ । 'ઇતિ
બ્રવીમી' -ત્યસ્યાર્થસ્તુક્તરીત્યા વોધ્યઃ ॥ સૂ૦ ૪ ॥

॥ અષ્ટમાધ્યયનસ્ય ચતુર્થ ઉદ્દેશઃ સમાપ્તઃ ॥ ૮-૪ ॥

દેનેવાલા હૈ । વજ્ર જિસ પ્રકાર પર્વતોંકો ભેદ દેતા હૈ ઉસી પ્રકાર યહ
મરણ મી કર્મેંકે વિદારણ કરનેમેં સમર્થ હોનેસે ક્ષમ-શક્તિશાલી હૈ । તથા
કર્મેંકો આત્માસે ભિન્ન કરાનેવાલા હોનેસે યહ નિઃશ્રેયસ-મોક્ષકા કારક
હૈ, ઓર આત્માકો જન્મ મરણ આદિ અનન્તદુઃખરૂપી પાશકા ઉચ્છેદન
કર મોક્ષકી ઓર લે જાનેવાલા હોનેસે આનુગામિક હૈ । એસા યહ મરણ
ઉસ મુનિકે લિયે મજ્જલરૂપ હી હોતા હૈ ॥ સૂ૦ ૪ ॥

॥ આઠવેં અધ્યયનકા ચતુર્થ ઉદ્દેશ સમાપ્ત ॥ ૮-૪ ॥

લેદન કરે છે એ જ રીતે આવું મરણ પણ કર્મોનો નાશ કરવામા સમર્થ હોવાથી
ક્ષમ-શક્તિશાળી છે તથા કર્મોને આત્માથી ભિન્ન કરનાર હોવાથી તે નિ શ્રેયસ-મોક્ષ
આપનાર છે અને આત્માને જન્મ મરણાદિ અનન્ત દુઃખરૂપી શાસલાનું છેદન કરી
મોક્ષની તરફ લઈ જનારા હોવાથી તે આનુગામિક છે એવું મરણ તે મુનિને
માટે મ ગણરૂપ થાય છે (સૂ૦ ૪)

આઠમા અધ્યયનનો એથો ઉદ્દેશ સમાપ્ત ॥ ૮-૪ ॥

। अथाष्टमाध्ययनस्य पञ्चम उद्देशः ।

यस्य कर्तुं विषयानन्तरं सम्पत्ति पञ्चमाशेषः समारम्भ्यते । अस्यानन्तरोद्देशेन
आश्रममिसम्बन्धः—अन्तरोद्देशे श्रीमद्युपसर्गाऽभिमन्युप्राप्ता वैद्यायस—गार्द
एतत्किं वाक्यार्थं सुमेरावासीममित्युक्तम् । इह तु रोगादिना स्थानियुपगतो
इतिविषयीतं मरुपरिहृत्यं प्राक्महीद्वर्पादिति प्रतिपादयन् मुनन्तानासुप-
न्यसिं तत्सम्बन्धते—'जे मित्सु' इत्यादि ।

एवम्—जे मित्सु दोहिं वरयेहिं परिवुसिय पायतइपहिं,
तस्स जं नो एव भवइ—तइय वरय जाइस्सामि । ते अइस
मित्ताइं वरपाइ जाइवजा जाव एव खुतस्स मित्सुस्स साम
मिया अहपुण एवं जाणिवा उवाइक्कते खलु हेमते गिम्हे पडिवण्णे
अहापरिवुसाइं वस्थाइ परिविविजा अवुवा सत्तरुत्ते, अवुवा ओम

आठवें अध्यायनका पाँचवाँ उद्देश ।

चतुर्थ उद्देशक कथन करने बाद अब पंचम उद्देशका कथन प्रारंभ
होता है, इसका चतुर्थ उद्देशके साथ यह संबंध है—वहाँ 'निय्यतीकार
श्री मादि द्वारा कृत उपसर्गसे अनिमज प्राप्त होने पर मुनिको अन्य
उपायक भवत्ससे वैद्यायस एवं गार्दपुष्ट मरण मादि मरण भङ्गीकार
पर स्था बाहिये' यह बात समझाई गई है । इस उद्देशमें " स्थानि को
पुष्ट हुमा मुनि वससे विपरीत मरुपरिहृता नामक मरण भङ्गीकार
कर " इस विषयका वर्णन किया जायगा, अतः मुनिकी स्थाननाका
वर्जन करनेके लिये सूत्रकार कहते हैं—“ जे मित्सु ” इत्यादि ।

आठमा अध्यायननो पायमो उद्देश

चौथ उद्देशका कथन बाद अब पंचम उद्देशका प्रारंभ बाय छे तेने
चौथ उद्देशकी साथे जेवा उल्लेख छे—या निमज्जीकार श्री मादि द्वारा
जेका उपसर्गकी अनिमज प्राप्त कर्ता मुनिके अन्य उपाय न होवथी तेका
उ अने गार्दपुष्ट मरण मादि मरण भङ्गीकार करी लेवुं जेपछे, जे वात
नमज्जवथा आवत छे या उद्देशमा " स्थानिणी मरुत्त मुनि तेनथी निज
मरुत्तपरिहृता नामक मरणने भङ्गीकार करे या विषयनु पडुं न कन्यमा अपथो
मथी मुनिनी—अनिनु पडुं न करवा माये सूत्रकार कहे छे— जे मित्सु—इत्यादि.

વજ્રવત્ કર્મવિદારણશક્તિમત્ત્વાત્, તથા નિઃશ્રેયસં-નિ શ્રેયસકારક કર્માપનયનવિધાયક-
ત્વાત્, એવમ્ આનુગામિકમ્ આત્મનો જન્મમરણાધનન્તદુઃસ્વજાલમુચ્છેદ્ય મોક્ષાનુકૂલ-
ગમનકારકત્વાત્ । એતાદૃશ મરણ તસ્ય મુનેર્મદ્ગલરૂપમેવ મયતીતિ ભાવઃ । 'ઇતિ
બ્રવીમી' -ત્યસ્યાર્થસ્તુક્તરીત્યા વોદ્યઃ ॥ સૂ૦ ૪ ॥

॥ અષ્ટમાધ્યયનસ્ય ચતુર્થ ઉદ્દેશઃ સમાપ્તઃ ॥ ૮-૪ ॥

દેનેવાલા હૈ । વજ્ર જિસ પ્રકાર પર્વતોંકો ભેદ દેતા હૈ ઉસી પ્રકાર યહ
મરણ મી કર્મોંકે વિદારણ કરનેમેં સમર્થ હોનેસે ક્ષમ-શક્તિશાલી હૈ । તથા
કર્મોંકો આત્માસે ભિન્ન કરાનેવાલા હોનેસે યહ નિઃશ્રેયસ-મોક્ષકા કારક
હૈ, ઓર આત્માકો જન્મ મરણ આદિ અનન્તદુઃસ્વરૂપી પાશકા ઉચ્છેદન
કર મોક્ષકી ઓર લે જાનેવાલા હોનેસે આનુગામિક હૈ । એસા યહ મરણ
ઉસ મુનિકે લિયે મદ્ગલરૂપ હી હોતા હૈ ॥ સૂ૦ ૪ ॥

॥ આઠવેં અધ્યયનકા ચતુર્થ ઉદ્દેશ સમાપ્ત ॥ ૮-૪ ॥

ભેદન કરે છે એ જ રીતે આવું મરણ પણ કર્મોનો નાશ કરવામા સમર્થ હોવાથી
ક્ષમ-શક્તિશાળી છે તથા કર્મોને આત્માથી ભિન્ન કરનાર હોવાથી તે નિ શ્રેયસ-મોક્ષ
આપનાર છે અને આત્માને જન્મ મરણાદિ અનન્ત દુઃખરૂપી ક્ષાલવાનું છેદન કરી
મોક્ષની તરફ લઈ જનારા હોવાથી તે આનુગામિક છે એવું મરણ તે મુનિને
માટે મ ગણરૂપ થાય છે (સૂ૦ ૪)

આઠમા અધ્યયનનો એથો ઉદ્દેશ સમાપ્ત ॥ ૮-૪ ॥

। અથાષ્ટમાધ્યયનસ્ય પચ્ચમ ઉદ્દેશ ।

અથ ચતુર્થોદ્દેશકથનનાનન્તરં સમ્યક્ષિ પચ્ચમારેણ સમારમ્યતે । અસ્થાનન્તરોદ્દેષેન સ્થાપ્યમભિસમ્બન્ધઃ—અનન્તરોદ્દેશ સ્ત્રીમૃત્યુપસર્ગાઽભિમત્તપ્રાપ્તૌ વૈદ્યાપ્ત—ગાર્દ પૃષ્ઠાદિકં શાલ્ભરણં મુનેરાષરણીયમિત્યુક્તમ્ । इह तु रोगादिना म्लानिमृगगतो मुनिस्तद्विपरीतं मत्तपरिहास्यं मरणमङ्गीकुर्यादिति प्रतिपादयन् मुनेर्स्થાનतामुप સ્પર્શ્યું વાવત્પ્રક્રમત—‘જે મિલ્લુ’ ઇત્યાદિ ।

મુલ્લુ—જે મિલ્લુ દોહિં વસ્યેહિં પરિહુસિય પાયતદ્દયહિં, તસ્ત ણ નો ઇવ મવદ્—તદ્દય વત્થ જાહસ્સામિ । સે અહેસ ણિજ્જાહં વસ્યાહં જાહ્જ્જા આથ ઇવ સુતસ્સ મિલ્લુસ્સ સામ મિયા અહ પુણ ઇથ જાણિજ્જા ઉવાહકતે સ્વલ્લ હેમતે ગિમ્હે પઢિવળ્ણે અહાપરિજુલ્લાહં વસ્યાહ પરિહ્વિજ્જા અવુવા સંતરુત્તરે, અવુવા ઓમ

આઠવે અધ્યયનકા પાંચવી ઉદ્દેશ ।

ચતુર્થ ઉદ્દેશકે કથન કરમે બાદ અથ પંચમ ઉદ્દેશકા કથન પ્રારંભ હોતા હૈ, ઇસકા ચતુર્થ ઉદ્દેશકે સાથ યહ સંબધ હૈ—વહાં ‘નિષ્પત્તીકાર ક્ષી આદિ દ્વારા કૃત ઉપસર્ગસે અભિમત્ત પ્રાપ્ત હોને પર મુનિકો અન્ય ઉપાયકે અભાવસે વૈદ્યાપ્ત ઇવ ગાર્દપૃષ્ઠ મરણ આદિ મરણ અંગીકાર કર લેના આદિયે’ યહ પાત સમજાઈ ગઈ હૈ । ઇસ ઉદ્દેશમે “ મ્લોનિ કો પ્રાપ્ત મુલા મુનિ ડસસે વિપરીત મત્તપરિહા નામત્ત મરણ અંગીકાર કર ” ઇસ વિષયકા વર્ણન ક્રિયા આયગા, અતઃ મુનિકી મ્લોનતાક્રમ વર્ણન કરનેકે લિયે સૂત્રકાર કહતે હૈ—“ જે મિલ્લુ ” ઇત્યાદિ ।

આઠમા અધ્યયનનો પાંચમો ઉદ્દેશ

બોધા ઉદ્દેશના કથન બાદ હવે પાંચમા ઉદ્દેશનો પ્રારંભ થાય છે. તેનો વૈષય ઉદ્દેશની સાથે એવો સંબધ છે—ત્યા નિષ્પત્તીકાર ક્ષી આદિ દ્વારા કૃત ઉપસર્ગથી અભિમત્ત પ્રાપ્ત થતા મુનિકો અન્ય ઉપાય ન હોવાથી વૈદ્યાપ્ત અને ગાર્દપૃષ્ઠ મરણ આદિ મરણ અંગીકાર કરી લેવું એવું, એ વાત સમજાવવામા આવેલ છે આ ઉદ્દેશમા મ્લોનિથી ભરપૂર મુનિ તેનાથી વિપરીત મત્તપરિહા નામના મરણને અંગીકાર કરે ” આ વિષયનું વર્ણન કરવામા આવ્યો આથી મુનિની મ્લોનિનું વર્ણન કરવા માટે સૂત્રકાર કહે છે— જે મિલ્લુ ” ઇત્યાદિ

ચેલે, અદુવા એગસાડે, અદુવા અચેલે, લાઘવિયં આગમમાણે તવે સે
અભિસમન્નાગે ભવઈ। જમેયં ભગવયા પવેદ્યં તમેવ અભિસમિચ્ચા
સઘ્વઓ સઘ્વત્તાએ સમત્તમેવ સમભિજાણિયા। જસ્સ પં ભિક્ખુસ્સ
એવં ભવઈ-પુઢો અવલો અહમંસિ નાલમહમંસિ ગિહંતરસંકમણં
ભિક્ખારિયગમણાએ, સે એવં વયંતસ્સ પરો અભિહંડં અસણં વા ૪
આહટ્ટુ દલહજ્જા, સે પુવ્વામેવ આલોહજ્જા-આડસંતો। ગાહા-
વઈ। નો ચલ્હુ મે કપ્પઈ અભિહંડં અસણં વા ૪ મુત્તએ વા પાયએ
વા, અન્ને વા એયપ્પગારે ॥ સૂ. ૧ ॥

છાયા—યો ભિક્ષુર્દ્વાભ્યા વસ્ત્રાભ્યા પર્યુપિતઃ પાત્રતૃતીયાભ્યા, તસ્ય ચલ્હુ નો
એવ ભવતિ-તૃતીય વસ્ત્રં યાચિષ્યે। સ યથૈપણીયાનિ વસ્ત્રાણિ યાચેત યાવત્-એવ ચલ્હુ
તસ્ય ભિક્ષોઃ સામગ્યમ્। અથ પુનરેવ જાનીયાત્ ઉપાતિક્રાન્તઃ ચલ્હુ હેમન્તઃ,
ગ્રીષ્મઃ પ્રતિપક્ષઃ, યથાપરિજીર્ણાનિ વસ્ત્રાણિ પરિષ્ઠાપયેત્, અથ વા સાન્તરોત્તર,
અથવા જવમચેલઃ, અથવા એકશાટઃ, અથવા અચેલઃ, લાઘવિકમાગમયન્
તપસ્તસ્યાભિસમન્વાગતં ભવતિ, યદેતદ્ ભગવતા પ્રવેદિતમ્ તદેવાભિસમેત્ય સર્વતઃ
સર્વાત્મતયા સમ્યક્ત્વમેવ સમભિજાનીયાત્। યસ્ય ચલ્હુ ભિક્ષોરેવ ભવતિ-સ્પૃષ્ટોઽવ-
લોઽહમસ્મિ, નાલમહમસ્મિ ગૃહાન્તરસક્રમણ ભિક્ષાચર્યાગમનાય, તદેવ વદતઃ પરો-
ઽભિહૃતમશનં વા ૪ આહૃત્ય દદ્યાત્, સ પૂર્વમેવાઽઽલોચયેત્-આયુષ્મન્! ગાથાપતે!
નો ચલ્હુ મે કલ્પતેઽભિહૃતમશન ૪ઃ ભોક્તુ વા પાતું વા, અન્યાનપ્યેવ પ્રકારાન્ ॥ સૂ. ૧ ॥

ટીકા—‘યો ભિક્ષુ’-રિત્યાદિ, પૂર્વોદ્દેશે ત્રિકલ્પપર્યુપિતઃ સ્થવિરકલ્પિકો
ભવેત્, કલ્પદ્વયપર્યુપિતો હિ નિયમતો જિનકલ્પિક-પરિહારવિશુદ્ધિક-યથાલન્દિક

પૂર્વ—ચતુર્થ ઉદ્દેશમે યહ થતલાયા જા ચુકા હૈં કિ સ્થવિરકલ્પી
મુનિ ત્રીન વસ્ત્ર ઓર એક પાત્રસે વ્યવસ્થિત હોતા હૈં, અર્થાત્
ત્રીન વસ્ત્રોંકો રાખનેકે કલ્પવાલા સ્થવિરકલ્પી હોગા। યહાં
દો વસ્ત્ર રાખનેકા કલ્પ જો પ્રકટ ક્રિયા ગયા હૈં ઉસસે
યહ બાત માલૂમ હોતી હૈં કિ દો વસ્ત્રોંકે રાખનેકા કલ્પવાલા

આગળના ચોથા ઉદ્દેશમા એવું બતાવવામા આવેલ છે કે સ્થવિરકલ્પી
મુનિ ત્રણ વસ્ત્ર અને એક પાત્રથી વ્યવસ્થિત હોય છે, અર્થાત્ ત્રણ વસ્ત્રો રાખવાના
કલ્પવાળા સ્થવિરકલ્પી સાધુ હોય છે એ વસ્ત્ર રાખવાનો કલ્પ જો પ્રગટ કરેલ છે
તેનાથી એ વાત માલૂમ થાય છે કે એ વસ્ત્રના રાખવાવાળા સાધુ નિયમથી જીનકલ્પી,

-પ્રતિમાપ્રતિપન્નેષ્વન્યતમોઽપ કયિત્ । દ્વાભ્યાં વક્ષાભ્યાં પર્યુપિતઃ, ક્ષ્યને નૈકા
આપૈસિકોઽપર ચૌર્થિકઃ, ક્ષિતિ યુક્તે વક્ષસામાન્યનાધિત્વપ્રતિપાદનાત્ । ‘જે
મિષ્ણુ’ ક્ષ્યાધારમ્ય ‘સમતમેષ સમભિજામિયા’ ક્ષ્યન્યતસ્ય ક્ષ્યાક્યા ત્વત્વધ્યયનસ્ય
પ્રત્યુપોદ્દેશાન્તર્ગત-પ્રથમ-દ્વિતીય-ત્રીતીય-સૂત્રમ્યાસ્પાવદિદ્વેયા, નથરમત્ર પામત્તીય
સ્વાદ્ય મથતાતિ, સ્તોઽધિકં ન યાવેત । યસ્ય સત્તુ મિષ્ણોરેવ મત્તધિ-અહ સ્પૃષ્ટઃ

સાધુ નિયમસે જિનકલ્પી, પરિહારમિદુદ્ધિક, યથાલન્ધિક એવં પ્રતિમા-
પ્રતિપદ્ધ, હન સાધુઓમિં સે કોઈ એક હોગા । “દ્વાભ્યાં વક્ષાભ્યાં પર્યુપિતઃ”
ક્ષ્ય કલ્પનસે યથાપિ સામાન્યતયા દો વક્ષોકે હી રક્ષનેકા કલ્પ કયિત્
હુઆ હૈ પરન્તુ ઉન દો વક્ષોમિં એક વક્ષ સૂત્રકા ધૌર એક વક્ષ કલ્પકા યના
હુઆ કલ્પકલ, એસે દો વક્ષ હી પરિગણિત હુપ હૈ, અત વક્ષસામાન્ય
મર્યકા પ્રતિપાદન કરનેચાહે ક્ષ્ય વક્ષ શમ્ભસે હન દો વક્ષોકા હી યહાં
મહણ હુઆ હૈ, એસા સમજના ચાહિયે । “જે મિષ્ણુ” યહાંસે હે કર
“સમતમેષ સમભિજામિયા” યહાં તકકે પદોંકી ક્ષ્યાક્યા ક્ષ્ય
મધ્યયનકે પ્રત્યુપોદ્દેશકે અન્તર્ગત પદિહે ક્ષ્યસે તીસરે સૂત્રોંકી ક્ષ્યાક્યા
વૈસી હી સમજની ચાહિયે । સમમેં તીન વક્ષ ધૌર એક પાત્રકો હેકર ક્ષ્યાક્યા
કી ગઈ હૈ યહાં પર દો વક્ષ એક પાત્રકો હે કર ક્ષ્યાક્યા હોગી, વસ ઉનસે
ક્ષ્ય સૂત્રક પદોંકી ક્ષ્યાક્યામેં યહી વિશેષતા હૈ, ક્ષ્ય લિયે ક્ષ્ય ક્ષ્યાક્યા
કે અનુસાર મુનિ અધિક કી પાલના ન કરે ।

પરિહારમિદુદ્ધિક યથાલન્ધિક અને પ્રતિમાપ્રતિપદ્ધ, એવા સાધુઓમાંથી અહીં કોઈ
એકનું મંત્રણ કરેલ છે “દ્વાભ્યાં વક્ષાભ્યાં પર્યુપિતઃ” આ કલ્પનથી યથાપિ સામાન્યતયા
બે વક્ષને જ કલ્પવાનો કલ્પ કયિત્ થયેલ છે પરન્તુ તે બે વક્ષોમાં એક સુત્રક
અને એક વક્ષ ઉનનું બનેલ કલ્પકલ, એવાં બે વક્ષ જ પરિચિત્ત થયેલ છે માટે
વક્ષસામાન્ય અર્થનું પ્રતિપાદન કરવાવાળા આ વક્ષ શબ્દથી આ બે વક્ષોનાજ
સ્વીકાર કરેલ છે એવું સુમળવું એઈએ. “જે મિષ્ણુ” અહીંથી લઈ
“સમતમેષ સમભિજામિયા” અહીં સુખીના પદોંની બાજબા આ અધ્યયનના
ઓશા ઉદ્દેશના અન્તર્ગત પડેલા બીજા અને ત્રીજા સૂત્રની બાજબા એવી જ
સમજવી એઈએ તેમાં ત્રણ વક્ષ અને એક પાત્રને લઈને બાજબા કરવામા આવેલ
છે, અહીં બે વક્ષ અને એક પાત્રને લઈને બાજબા થશે બસ આથી આ સૂત્રના
પદોંની બાજબામાં બે જ વિશેષતા છે, તેને માટે આ બાજબાનુસાર મુનિ
અધિકની પાલના ન કરે.

વાતાદિરોગવિશેષૈઃ પીડિતઃ, અવલઃ=શક્તિરહિતોઽસ્મિ, અત એવ મિક્ષાચર્યાગમ-
નાય=મિક્ષાર્થ ગૃહાન્તરસક્રમણ=ગેહાદ્ ગેહાન્તરગમન કર્તુમ્ અહ નાલમસ્મિ=સમર્થો
નૈવાસ્મીતિ । તદેવમ્=इत्येवम् एतादृशाक्य वदतः साधोः उपलक्षणादभवदतोऽपि च
परः=गाथापति. પ્રકૃતિભદ્રકઃ સમ્પ્રદાયાનુરક્તો વા અભિહત=षड्जीवनिकायविराध-
नासम्पादितम् અશન=चतुर्विधमाहारम् અભિહત્ય=स्वगृहादितः સમાનીય દદ્યાત્ ।
તદ્-ગૃહસ્થોપકલ્પિતમશનાદિક પરિહરતા જીવનસ્પૃહારહિતેન ગ્લાનેનાઽપિ મુનિના
વીતરાગોપદેશમનુગચ્છતા મરણમપિ સ્વીકાર્યં ન તુ તદશનાદિક ગ્રાહ્યમિત્યાશયઃ ।

उनके वादके पदोंकी व्याख्या इस प्रकार है—जिस भिक्षुके चित्तमे
इस प्रकारका विचार आता है कि—“ मैं वात आदि रोगविशेषोंसे आ-
क्रान्त हो कर शक्तिरहित हो गया हू अतः भिक्षाचर्या निमित्त
एक घरसे दूसरे घर जानेकी अव मुझमे शक्ति नहीं रही है ” इस प्रकार
से कहनेवाले अथवा उपलक्षणसे नहीं कहनेवाले उस साधुके निमित्त
कोई गृहस्थ, कि जो प्रकृतिसे भद्र एवं अपने सम्प्रदायमें अनुरक्त है,
वह षड्जीवनिकायकी विराधनासे सपन्न हुए चार प्रकारके आहारको
अपने घरसे मुनिके स्थानपर ला कर यदि उन्हें देवे तो गृहस्थद्वारा लाये
गये उस आहारादिकको, अपने जीवनमे भी स्पृहारहित बना हुआ वह
ग्लान साधु न लेवे, और वीतरागके उपदेशका अनुसरण करनेवाला होनेसे
वह अपनी मृत्यु तककी भी परवाह न करे । इस अवस्थामें उसकी यदि
मृत्यु भी हो जाय तो वह अच्छी, पर उसे अकल्पनीय उस अभ्याहृत
आहारादिकका ग्रहण करना कथमपि ठीक नहीं है । इस लिये जिनक-

તેના પછીના પદોની વ્યાખ્યા આ પ્રકારની છે—જે ભિક્ષુના ચિત્તમા આ
પ્રકારનો વિચાર આવે છે કે—“હું વાત આદિ રોગોથી વ્યાકુળ બની શક્તિરહિત
બની ગયેલ છું માટે ભિક્ષાચર્યા નિમિત્ત એક ઘરેથી બીજા ઘરે જવાની
હવે મારામા શક્તિ રહી નથી ” આ પ્રકારથી કહેવાવાળા અથવા ઉપલક્ષણથી
નહીં કહેવાવાળા એ સાધુના નિમિત્ત કોઈ ગૃહસ્થ કે જે પ્રકૃતિથી ભદ્ર અને
પોતાના સંપ્રદાયનો અનુરાગી છે તે ષડ્જીવનિકાયની વિરાધનાથી સંપન્ન બનેલ
આર પ્રકારના આહારને પોતાને ઘરેથી મુનિના સ્થાનપર લાવીને તે તેને આપે તો
ગૃહસ્થદ્વારા લાવવામા આવેલ એ આહારાદિકનો પોતાના જીવનમા પણ સ્પૃહારહિત
બનેલ ગ્લાન સાધુ ન લે, અને વીતરાગના ઉપદેશનું અનુસરણ કરવાવાળા
હોવાથી તે પોતાના મૃત્યુ સુધીની પરવા પણ ન કરે આ અવસ્થામા કહાય
તેનુ મૃત્યુ પણ થઈ જાય તો પણ અકલ્પનીય એ અભ્યાહૃત આહારાદિકનુ શ્રદ્ધ

તથા મુનિ કિંકુર્પાદિત્યાહ—‘સ’ इत्यादि—सः=मिनकरिपकायन्यसमो मुनि पूर्वमेव=आहारादिग्रहणात्प्रथममेव आलोचयेत्=अथाकर्मादिदोषदूषिततयाऽभ्याहततया प प्राप्तकम्प्यमनादिकमेतन्न मम कल्पतं, तत्सेवनापेक्षया मरणमत्र भेयं’ इति पिपारयत्, ४ गृहपति संबोधयेष्व, तथया—इ आयुष्मन् ! गाथापत ! एतदभ्या इतमश्नं चतुर्विधम् सदोष निर्दोषं वा यथायोग्यं भाक्तुमुपमाकर्तुं वा पातु वा अन्यानपि=मन्नापतिरिक्तानपि यस्त्र-पात्रादिकान् एतत्प्रकारान् अभ्याहृतान् अथाकर्मादिदोषदुष्टान् वा न मम कल्पत इति, इत्यर्थं दातुमुद्यतं गृहपतिमनासेष-न्याऽऽज्ञापयत् ॥ सू० १ ॥

સ્પિક આદિ મુનિજનોં મેં સે કોઈ સી મુનિજન ક્યોં ન હો વહ આહાર ભાવિકે પ્રશ્નકે પહિછે હી હસ યાત કી આલોચના કરકિ યહ “આહાર આદિ સામગ્રી આષાકર્મી આદિ દોષોંસે દૂષિત હોનસે, ઇષં અભ્યાહત-છાઈ ગઈ હોનેસે પ્રાસુક હોને પર સી મુક્તે કલ્પ્ય નહીં હૈ, હસકે સેવનકી અપેક્ષા મરણ હી અચ્છા હૈ” યેસા વિચાર કર. તથા છાકર દેને વાછે ઇસ ગૃહસ્થકો સી હસ પ્રકાર સમજાવે કિ—“ હૈ આયુષ્મન્ ! ગૃહસ્થા યહ છાયા ગયા ચારોં પ્રકારકા આહાર, અથવા યથાયોગ્ય વસ્ત્ર પાત્ર આદિ મન્ય વસ્તુપં જો હસી પ્રકાર કી હૈં ચાહ સદોષ હોં ચાહે નિર્દોષ હોં, મેરે ભોગ ઉપભોગ ગથં પાનકે યોગ્ય નહીં હૈ, ક્યોં કિ ય સબ આષા કર્માદિદોષોંસે યુક્ત હૈં । આષાકર્મીદિદોષવિશિષ્ટ આહારાદિક સામગ્રી સાધુ કો કલ્પ્ય નહીં માની ગઈ, હૈં હસ સિયે મેં હન સબકા પરિહાર કરતા હૂં ।” સૂ० ૧ ॥

કસ્તું હીક નથા આર્મા હનકલ્પી આદિ મુનિજનોઆશી કેઠાં પણ મુનિજન કેમ ન હોય તે આહાર આદિનું ગ્રહણ કરવા પહેલાં જ આ યાતને વિચાર કરે કે “આ આહાર આદિ સામગ્રી આષાકર્મી આદિ દોષોથી દૂષિત હોવાથી, અને અભ્યાહત-ભાવનામાં આવેલ હોવાથી પ્રાસુક હોવા છતાં પણ મારા માટે કલ્પ્ય નથી એના સેવનની અપેક્ષા મરણ જ ચાઈ છે એવો વિચાર કરે અને છાવીને આપનાર જે બુદ્ધસ્થને પણ આ પ્રકારથી સમજાવે કે— હે અયુષ્મન્ ! બુદ્ધસ્થ ! આ ભાવનામાં આવેલ ચારે પ્રકારનો આહાર અથવા યથાયોગ્ય વસ્ત્ર પાત્ર આદિ મન્ય વસ્તુઓ જે જે પ્રકારની છે. સાહે સદોષ હોય વાછે નિર્દોષ હોય, મારા ભોગ ઉપભોગ અને પાનના યોગ્ય નથી કેમ કે જે બધું આષા કર્મીદિ દોષોથી ભરેલ છે. આષાકર્મીદિદોષવિશિષ્ટ આહારાદિક સામગ્રી સાધુને માટે કલ્પ્ય માનવામાં આવેલ નથી, આ માટે હું આ બધાનો ત્યાગ કરું છું.” (સૂ० ૧)

किं चान्यदप्याह—‘ जस्स णं ’ इत्यादि ।

मूलम्—जस्स णं भिक्खुस्स अयं पगप्पे—अहं च खलु पडि-
न्नत्तो अपडिन्नत्तेहिं, गिलाणो अगिलाणेहिं अभिकंख साहम्मि-
एहिं करिमाणं वेयावडियं साइज्जिस्सामि, अहं वावि खलु
अप्पडिन्नत्तो पडिन्नत्तस्स अगिलाणो गिलाणस्स अभिकंख
साहम्मियस्स कुज्जा वेयावडियं करणाए, आहट्टु परिन्नं अणु-
क्खिस्सामि, आहडं च साइज्जिस्सामि (१), आहट्टु परिन्नं
आणक्खिस्सामि आहडं च नो साइज्जिस्सामि (२), आहट्टु
परिन्नं नो आणक्खिस्सामि आहडं च साइज्जिस्सामि (३),
आहट्टु परिन्नं नो आणक्खिस्सामि आहडं च नो साइज्जि-
स्सामि (४)। एवं से अहाकिट्टियमेव समभिजाणमाणे संते
विरए सुसमाहियलेसे तत्थवि तस्स कालपरियाए से तत्थ
विअंतिकारए, इच्चेयं विमोहाययणं हियं सुहं खमं निस्सेयसं
आणुगामियं—तिबेमि ॥ सू० २ ॥

छाया—यस्य खलु भिक्षोरय प्रकल्पः—अहं च खलु प्रतिज्ञप्तोऽप्रतिज्ञप्तैः,
ग्लानोऽग्लानैरभिकाङ्क्ष्य साधर्मिकैः क्रियमाणं वैयावृत्यं स्वादयिष्यामि, अहं चापि
खलु अप्रतिज्ञप्तः प्रतिज्ञप्तस्य अग्लानो ग्लानस्य अभिकाङ्क्ष्य साधर्मिकस्य कुर्यां
वैयावृत्यं करणाय । आहृत्य परिज्ञामन्वेषयिष्यामि, आहृतं च स्वादयिष्यामि १,
आहृत्य परिज्ञामन्वेषयिष्यामि आहृतं च नो स्वादयिष्यामि २, आहृत्य परिज्ञां नो
अन्वेषयिष्यामि आहृतं च स्वादयिष्यामि ३, आहृत्य परिज्ञां नो अन्वेषयिष्यामि आहृतं
च नो स्वादयिष्यामि ४, एव स यथाकीर्तितमेव धर्मं समभिजानन् शान्तः
विरतः सुसमाहृतलेश्यस्तत्रापि तस्य कालपर्यायः । स तत्र व्यन्तिकारकः, इत्येतद्
विमोहायतनं हितं सुखं क्षमं निश्रेयसमानुगमिकमिति ब्रवीमि ॥ सू० २ ॥

और भी इसी विषयसे संबंधित बात सूत्रकार प्रकट करते हैं—
‘ जस्स णं ’ इत्यादि ।

जी० प० आ० विषयथी संबंधित बात सूत्रकार प्रकट करे छे—
“ जस्स णं ” इत्यादि

टीका—‘यस्ये’—त्यादि, यस्य मिश्रो=परिहारविशुद्धिकस्य ययालन्दिक्स्य वा ‘स्तु’ वाक्यालङ्कारे, अयं वक्ष्यमाणः प्रकल्पः=आचारो भवति । तमेव दर्शयति—‘ग्रह’—मिस्त्यादि, ‘यः’ समुच्चये, ‘स्तु’ वाक्यालङ्कारे, भवति=केनाप्यनुक्तः=वैयाहृत्यकरणाय केनाप्यप्रेरितैरित्यर्थः, अस्मानैः=समुचितकार्यसहनशीलैः प्रतिष्ठित=वैयाहृत्यविधानाय प्रोक्तः—‘वयं तव समुचितं वैयाहृत्यं करिष्यामः’—इत्यमिहित वाताहिसोमेण तपधर्मादिना वा ग्लानः अहम् अभिकाहस्य=निर्जराशुचिष्य साधर्मिकैः=एककल्पस्यै सपतै क्रियमाणं=विधीयमानं वैयाहृत्यं शुभूपादिकं सादयिष्यामि=स्वीकरीष्यामि, एतादृशो यस्य मिश्रोः प्रकल्पोऽस्तीति पूर्वेण सम्बन्धः, स मिश्रस्तादृशं कल्पं परिरक्षन् भक्तपरिहया प्राप्तास्त्यजेत्, न पुनरपि मिश्रं परित्यज्येदित्याशयः । पूर्वमितरसाधर्मिकेण विधीयमानवैयाहृत्यानुज्ञाऽ

सूत्रकार इह सूत्रमें परिहारविशुद्धि सयमभाषे साधुका, मयवा ययालन्दिक् साधुका आचार केसा होता है ! इह विषयको प्रदर्शित करते हैं—‘वैयाहृत्य करनेके लिये किसी अन्य साधु द्वारा प्रेरित नहीं किये गये ऐसे अग्लान-समुचित कार्यसंपादन करनेमें सहनशील संपतोंद्वारा “ इह तुम्हारी समुचित वैयाहृत्य आदि करेंगे ” इस प्रकारसे कहा गया मैं, जो इस समय बालपित्तविक दोषोंसे या तपधर्मासे ग्लान हो रहा हूँ, अपने कर्मोंकी निर्जरा करनेके उद्देशसे एककल्पस्य उन साधुओंद्वारा की गई वैयाहृत्य आदिको स्वीकार कर लूंगा ” इस प्रकारका जिस परिहारविशुद्धिका या ययालन्दिक् साधुका कल्प होता है वह मिश्र उस प्रकारके कल्प-आचारकी रक्षा करता हुआ भक्तपरिहया नामक मरणद्वारा अपने प्राणोंको छोड़ देवे पर अभिग्रहणा स्वप्न न करे ।

सूत्रकार आ सूत्रभा परिहाराशुद्धि सयमभाषा साधुने कथवा कथं लन्दिक् साधुने आचार केसा होय छे ? आ विषयने प्रदर्शित करे छे— वैयाहृत्य करवा माटे कोई अन्य साधुभी प्रेरित न करावेत जेवा आ ग्लान जेटवे समुचित काय संपादन करवाभा सहनशील सयतो द्वारा “ हुं तमारी समुचित वैयाहृत्य आदि करीश जे प्रकारे कहेवाजेल हुं जे आ सभसे नावपित्तविक दोषोधी कथवा तपधर्माधी अग्लान पक्षी भूँ पोताना कर्मोनी निज से करवाना उद्देश्यो जेके एककल्प साधुजोषी करवाभा आवेल वैयाहृत्य आदिने स्वीकार करी लक्ष्यि ” आ प्रकारनु केने परिहाराशुद्धि आने ययालन्दिक् साधुने कथं होय छे त भिक्षु आ प्रकारनु । हय-आचार-नी रक्षा करीने लक्ष्यपरिहया नामनु मरण स्वीकरी पोताने प्राण छोडी दे छे पण अभिग्रहणु भजन करता नथी।

મિહિતા, ઇદાનીં સ એવાન્યસ્ય વૈયાટ્યં વિદધાતીત્યાહ-‘અહ’-મિત્યાદિ, ‘ચઃ’ સમુચ્ચયે ‘અપિ’ શબ્દઃ પુનરર્થે પૂર્વસ્માદિશેષપ્રદર્શનાયા। અહં પુનઃ સ્વલ્પ અગ્લાનઃ=રોગાદિરહિતઃ, અપ્રતિજ્ઞસઃ=વૈયાટ્યકરણાય કેનાપ્યનુક્ત, પ્રતિજ્ઞસ્ય=કથિતસ્ય ગ્લાનસ્ય તપસા વાત-શૂલરોગાદિના વા પીડિતસ્ય સાધર્મિકસ્ય=સદૃશકલ્પકસ્ય સાધોઃ કરણાય=ઉપકારાર્થે નિર્જરામભિકાન્નથ વૈયાટ્ય કુર્યામિતિ । એતાદૃશો મુનિરભિગ્રહશિખરિશિખરપરિસરપરિચારી પ્રતિજ્ઞા સ્વીકૃત્ય પ્રાણાન્ પરિહરેન્ન ત્વભિગ્રહમિત્યાશયઃ । અભિગ્રહસ્વરૂપપ્રકટનાય ચતુર્મંજ્ઞિકા દર્શયતિ-‘આહુ’-ઇત્યાદિ,

પહિલે કિસી સાધર્મી સાધુને વૈયાટ્ય કરને કે લિયે અપની સમતિ પ્રદાન કી પર વહ્ ઇસ સમય સ્વય કિસી દૂસરે સાધુકી વૈયાટ્ય કરને મેં લગ ગયા ઇસકે લિયે સૂત્રકાર “અહ”-મિત્યાદિ, સૂત્રાંશ કહતે હૈં-

“ઐ રોગાદિરહિત હ, વૈયાટ્ય કરનેકે લિયે મુજસે કિસીને બી નહીં કહા હૈ, ઇસ લિયે પૂર્વમેં કથિત ગ્લાન સાધુકી કિ જો ઇસ સમય તપસ્યાસે અથવા વાત શૂલ રોગ આદિસે પીડિત હો રહા હૈ, અપને ઉપકારકે લિયે કર્મોંકી નિર્જરાકી યાહનાકે ઉદ્દેશકો લે કર વૈયાટ્ય કર દૂ” ઇસ પ્રકારકી ભાવનાવાલા મુનિ કિ જો અભિગ્રહરૂપી પર્વતકે શિખર કે પ્રદેશ તક પહુચ ચુકા હૈ, અભિગ્રહ સ્વીકાર કર પ્રાણોંકો છોડ દેવે પર અપને અભિગ્રહકો ન છોડે ।

સૂત્રકાર અભિગ્રહકે સ્વરૂપકો પ્રકટ કરનેકે લિયે ચાર ભગોંકા પ્રદર્શન કરતે હૈં-“આહુ” ઇત્યાદિ,

પહેલા કોઈ સાધર્મી સાધુએ વૈયાટ્ય કરવા માટે પોતાની સમતિ આપી પણ તે આ સમય કોઈ બીજા સાધુની વૈયાટ્ય કરવામાં લાગી ગયા, આને માટે સૂત્રકાર “અહ” ઇત્યાદિ સૂત્રાંશ કહે છે-

“હુ રોગાદિકથી રહિત છું વૈયાટ્ય કરવા માટે મને કોઈએ કહેલ નથી આ માટે પૂર્વમાં કહેવાયેલ ગ્લાન સાધુની કે જે આ સમય તપસ્યાથી અથવા વાત શૂળ આદિ રોગથી પીડિત છે, પોતાના ઉપકારને માટે કર્મોની નિર્જરાની યાહનાને ઉદ્દેશ લઈને વૈયાટ્ય કરી આપું” આ પ્રકારની ભાવના વાળા મુનિ કે જે અભિગ્રહરૂપી પર્વતના શિખરના પ્રદેશ સુધી પહોંચેલ છે અભિગ્રહ સ્વીકારીને પ્રાણને છોડી દે, પણ અભિગ્રહ ન છોડે

સૂત્રકાર અભિગ્રહના સ્વરૂપને પ્રકટ કરવા માટે ચાર ભગોં પ્રદર્શન કરે છે-“આહુ” ઇત્યાદિ.

કમિદેહઃ પરિજ્ઞાં=વસ્તુમાત્રામગિગ્રહરૂપામ્ આહૃત્ય=આહવાય નિમિત્તોતિ અર્થ-જ્ઞાન-
સ્વાપરસ્ય મિત્તોઃ સાધર્મિકસ્થાપનાદિકમ્ અન્વેષયિષ્યામિ, વૈયાહૃત્યં ચ કરિષ્યામિ,
પર્વં પરેણ સાધર્મિકેણ મુનિના આહૃતમ્ આનીતમપ્તનાદિકં સ્વાદયિષ્યામિ=પ્રહી-
ષ્યામિ। ઇતિ પ્રથમો મઠ્ઠઃ (૧)।

અપરઃ કમિદેહં પ્રતિજ્ઞાનીતે-‘અર્થ સાધર્મિકાર્યમપ્તનાદિકમ્ અન્વેષયિષ્યામિ=
જ્ઞાનપ્યામિ, તથા પરેણ આહૃતમ્=આનીત ચ નો સ્વાદયિષ્યામિ=નો પ્રહીષ્યામિ’।
ઇતિ દ્વિતીયો મઠ્ઠઃ (૨)।

ત્યાજ્ય્ય પર્વં અભિગ્રહં કરોતિ-‘અર્થ પારર્થમાહારાદિકં નો અન્વેષયિષ્યામિ=
નાજ્ઞેષ્યે કિન્તુ ઇતરેભાઽઽહૃતં સ્વાદયિષ્યામિ’। ઇતિ તૃતીયો મઠ્ઠઃ (૩)।

કોઈ મુનિ હસ પ્રકારકા અભિગ્રહ કરે છે, કિ-મૈં કિસી જ્ઞાન મુનિકે
લિયે અથવા સાધર્મિક મિત્રુકે લિયે આહાર પાની આદિ છા વિયા કરૂંગા
ઔર ઉનકી વૈયાહૃત્ય મી કર વિયા કરૂંગા, તથા હસરે સાધર્મી મુનિદ્વારા
છાપે ગયે આહારાદિકકા મૈં સ્વયં મી ગ્રહણ કરૂંગા। यह प्रथम भंग है। ૧।

दूसरा कोई ऐसा अभिग्राह करता है कि-मै साधर्मिक साधुके लिये
आहारादिक छ़ा तो दिया करूंगा पर दूसरे कोईके द्वारा लाय गये
आहारादिकक़ा मૈं सेवन नहीं करूंगा। यह द्वितीय भंग है। २।

कोई दूसरा ऐसा अभिग्राह करता है कि-मै दूसरोंके लिये आहारादिक
नहीं छ़ाऊंगा पर दूसरा कोई मुझे ला देगा तो मૈं उसका सेवन करूंगा।
यह तीसरा भंग है। ३।

कोई २ ऐसा अभिग्राह करते हैं कि-मै न तो दूसरों के लिय आह

કોઈ મુનિ આ પ્રકારનો અભિગ્રહ કરે છે કે હું કોઈ જ્ઞાન મુનિ માટે અથવા
સાધર્મિક મિત્રુ માટે આહાર પાણી આદિ લાવી અપીશ અને તેની સેવા આકરી
પણ કરીશ, તથા બીજા સાધર્મી મુનિ મારફત લાવેલા આહારાદિકનું હું ગ્રહણ
કરીશ આ પ્રથમ ભંગ છે (૧)

બીજા કોઈ એવો અભિગ્રહ કરે છે કે હું સાધર્મી સાધુ માટે આહારાદિક લાવી
અપીશ પણ બીજા કોઈની મારફત લાવેલા આહારાદિકનું હું સેવન નહીં કરું
આ બીજો ભંગ છે (૨)

કોઈ એવો અભિગ્રહ કરે છે કે હું બીજાઓ માટે આહારાદિક નહીં લાવુ
પણ બીજા કોઈ લાવશે તો હું તેનું સેવન કરીશ આ ત્રીજો ભંગ છે (૩)

કોઈ કોઈ એવો અભિગ્રહ કરે છે કે હું બીજાઓને માટે આહારાદિક

અપરશ્ચૈતાદશમભિગ્રહં કરોતિ--‘અહં પરાર્યમશનાદિક નાન્વેપયિષ્યામિ, પરેણાઽઽહતમપિ નો સ્વાદયિષ્યામિ’ । ઇતિ ચતુર્થો મઙ્ગઃ (૪) ।

ઇતિ વહુવિધમભિગ્રહ સ્વીકૃત્ય ગ્લાયમાનોઽપિ જીવિતં પરિજઘ્વાન્ પુનરભિગ્રહં ત્યજેદિતિ પરમાર્થઃ । તમેવાર્થમુપસંહરન્નાહ-‘એવ’-મિત્યાદિ, સઃ=અનગારઃ પરિજ્ઞાતતત્ત્વઃ એવં=પૂર્વોક્તં યથાકીર્તિતમેવ=યથોક્તમેવ ધર્મમ્=અભિગ્રહસ્વીકરણરૂપં સમભિજાનન્=આસેવનપરિજ્ઞયાઽઽસેવમાનઃ, શાન્તઃ=કપાયોપશમેન । યદ્વા-‘શ્રાન્તઃ’ ઇતિ-જ્ઞાયા, શ્રાન્તઃ=નિરન્તરસસારપરિશ્રમણાત્ શ્રમયુક્તઃ, વિરતઃ=સર્વસમારમ્ભાદુપરતઃ, સુસમાહૃતલેશ્યઃ=સુસમાહૃતાઃ=સમ્યગ્રૂપેણ ગૃહીતાઃ લેશ્યાઃ=અન્તઃકરણવૃત્તયો યેન સઃ । યદ્વા-સુસમાહૃતા=સમ્યક સઙ્કોચિતા લેશ્યા=તેજોલેશ્યા યેન સારાદિક લા કર દૂગા ઓર ન દૂસરોસે લાયે હુણ આહારાદિકકા મેં ઉપભોગ હી કરુંગા । યહ ચતુર્થ ભંગ હૈ । ૪ ।

ઇસ તરહ અનેક પ્રકારકી પ્રતિજ્ઞાકો સ્વીકાર કરકે, ગ્લાયમાન ભી મુનિ અપને જીવનકો છોડ દેવે પર અભિગ્રહકા ભંગ ન કરે । ઇસી અર્થકા ઉપસંહાર કરતે હુણ સૂત્રકાર કહતે હૈ-‘એવ’-મિત્યાદિ, વહ તત્ત્વોકા જ્ઞાતા અનગાર અભિગ્રહકા સ્વીકાર કરના ઓર ઉસકા આસેવનપરિજ્ઞાસે પૂર્ણરૂપસે સેવન-નિર્વાહ કરના, ઇસ રૂપ ધર્મકો જાનતા હુઆ ભક્તપ્રત્યાખ્યાન નામક મરણ સ્વીકાર કરે । “શાન્તઃ, વિરતઃ, સુસમાહૃતલેશ્યઃ” યે સવ અનગારકે વિશેષણ હૈ । ઇનકા અર્થ ઇસ પ્રકાર હૈ-યહ અનગાર કષાયોકે ઉપશમ હોનેસે શાન્ત, સર્વ પ્રકારકે સમારંભોસે ઉપરત હોનેસે વિરત ઓર અન્તઃકરણકી વૃત્તિયોકો અચ્છી તરહ નિગૃહીત કરનેસે સુ-

નહિ લાવી આપુ અને બીજાઓથી લાવેલા આહારાદિકનો પણ હું ઉપયોગ નહિ કરૂં આ યોથા ભગ છે (૪)

આવી રીતે અનેક પ્રકારના અભિગ્રહો સ્વીકાર કરીને ગ્લાન મુનિ પણ પોતાના જીવનને છોડી દે પણ અભિગ્રહનો ભગ ન કરે આ અર્થનો ઉપસંહાર કરીને સૂત્રકાર કહે છે-‘એવં’ ઇત્યાદિ તે તત્ત્વોના બાહ્યનાર અનગારે અભિગ્રહનો સ્વીકાર કરવો અને તેનું આસેવનપરિજ્ઞાથી પૂર્ણરૂપથી સેવન-નિર્વાહ કરવો, આ રૂપથી ધર્મ બાહ્યને ભક્તપ્રત્યાખ્યાન નામનું મરણ સ્વીકારે “શાન્ત, વિરત, સુસમાહૃતલેશ્ય” આ સઘળા અનગારના વિશેષણ છે એનો અર્થ આ પ્રકારે છે-તે અનગાર કષાયોનો ઉપશમ થવાથી શાન્ત, સર્વ પ્રકારના સમારંભોથી ઉપરત હોવાથી વિરત અને અન્તઃકરણની વૃત્તિઓને સારી રીતે નિગૃહીત કરવાથી સુસમાહૃતલેશ્યાવાળા કહેવાય છે, “સંતે” પ્રાકૃતની સંસ્કૃત

સુસમાહૃતછેદયઃ । પ્રથમસ્વીકૃતામિદ્રપરિપાલ્નાક્ષમી રોગણ તપસા યા મ્લાન
સ્ત્ર યમિદ્રપરિત્યગન્ મક્તપ્રત્યાશ્વાનન ધરીરં ત્યમ્નિતિ તાત્પર્યમ્ ।

તથાપિ મરણકાલ્પર્યાય એવમ્ સમ્પાદિતશિષ્યગમ્ભ્યસ્ય સંતેસ્ના-મોષણાનુષ્ટ
દેરસ્ય યો મૃત્યારવસર સ એવ મ્લાનાવસરેડપિ કાલ્પર્યાય એવ, કર્મનિર્જરણસ્યાડ

સમાહૃતછેદયાવાલા કહતાતા છે 'સંતે' પ્રાકૃતકી સસ્કૃત છાયા 'શાન્ત'
માનકર અર્થ ઊપર ચતલાયા જા ચુકા છે । જયેં હસકી છાયા "આન્ત"
પેસી માની જાયગી તયેં હસકા અર્થે હસ પ્રકારસે હોગા કિં યહ "સંસાર
મેં પરિધ્રમણ કરતે ૨ અમયુક્ત હુઆ છે, હસીં લિયે સર્વસમારન્મોસે
યહ ચિરત-ઉપરત હુઆ છે । "સુસમાહૃતછેદય" કાં યહ બીં દૂસરે પ્રકારસે
અર્થે નિકલ્પતા છે કિ-જિસને અચ્છી તરહસે તેજોછેદયા સંકુચિત કી
છે, પેસા યહ અનગાર હોતા છે ।

તાત્પર્ય કહેનેકા યહ છે કિ-જિસને પહિલે પૂર્વોક્ત અમિદ્રા સ્વીકૃત
કિયે છે પર રોગ યા તપસે જો મ્લાન અવસ્થાયુક્ત થન રહા છે હસ લિયે
સ્વીકૃત અમિદ્રાહોંકિ પાલન કરનેમેં અસમર્થ હો રહા છે, તો બીં સ્વીકૃત
અમિદ્રાહાલે સાધુકા યહ કર્તવ્ય છે કિ યહ અપને ચૂદીત અમિદ્રાહકા
પરિહાર ન કર મક્તપ્રત્યાશ્વાનદ્વારા શરીરકા પરિત્યાગ કર દે, યહ મરણ
કાલ્પર્યાય હી છે । જિસકા શિષ્યગમ્ભ્યલ તપ્યાર હો ચુકા છે, પેસે સ
કેસનાકે સેવનસે યુક્ત દેહવાળા સાધુકી ચાતુકા જો અવસર છે યહ

છાયા જ્ઞાન્ત માની અર્થે ઊપર બતાવવામાં આવેલ છે અર્થાતેની છાયા "શાન્ત"
એવી માનવામાં આવશે ત્યારે તેનો અર્થ આ પ્રકાર થશે કે તે સંસારમાં
પરિધ્રમણ કરવા અનયુક્ત થયેલ છે આ માટે સવ સમારંભોથી તે વિસ્ત-નિવૃત્ત છે
"સુસમાહૃતછેદય" નો અર્થો પશુ બીજા પ્રકારે અર્થ નીકળે છે કે જેણે સારી
રીતે તેજોછેદના સંકુચિત કરેલી છે એવા તે અનગાર હોય છે.

તાત્પર્ય કહેવાતું એ છે કે-જેણે પહેલાં પૂર્વોક્ત અમિદ્રાહો સ્વીકારેલા
છે પરંતુ રોગ અને તપથી જે મ્લાન અવસ્થામાં આવી ગયેલ છે, એ કારણે
સ્વીકારેલ અમિદ્રાહોનું પાલન કરવામાં અસમર્થ બની રહેલ છે તો પશુ જેણે
અમિદ્રાહો સ્વીકાર્યા છે તેવા સાધુનું એ કર્તવ્ય છે કે તેણે સ્વીકારેલ અમિ
દ્રાહોનો ત્યાગ ન કરી ભક્તપ્રત્યાશ્વાનદ્વારા શરીરનો ત્યાગ કરે. આ મરણ પશુ
કાલ્પર્યાય જ છે જેણે શિષ્યગમ્ભ્ય તમાર મઠ ગયેલ છે એવા સંલેખનાના
સેવનથી યુક્ત દેહવાળા સાધુના મૃત્યુનો જે અવસર છે તે જ જ્ઞાનના અવસરમાં,

ત્રાપિ સમાનત્વાદિત્યાશયઃ । અત એવ સ તાદૃશો મુનિરનશનકરણે વ્યન્તિકારકઃ=કર્મનાશકારકો ભવતિ । તદેવમુપસહરતિ-‘ઇત્યેત’-દિત્યાદિ, ઇત્યેતદ્=ગ્લાનસ્ય ભક્તપ્રત્યાખ્યાનેન શરીરત્યાગસ્તદ્ વિમોહાયતનં હિતં સુખ ક્ષમ નિઃશ્રેયસમાનુગામિક ભવતિ । એતેષા પદાનાં વ્યાખ્યાનનંતરોદ્દેશસમાપ્તૌ પ્રોક્તા । ‘ઇતિ વ્રવીમી’-ત્યસ્યાર્થસ્તૂક્ત એવેતિ ॥ સૂ૦ ૨ ॥

॥ અઢ્ટમાધ્યયનસ્ય પશ્ચમ ઉદેશઃ સમાપ્તઃ ॥ ૮-૫ ॥

હી ગ્લાન કે અવસરમેં ભી કાલપર્યાય હી હૈ, ક્યોં કિ યહાં ખી કર્મોંકી નિર્જરાકી સમાનતા હૈ । ઇસીલિયે એસા મુનિ અનશન કરકે ભક્તપ્રત્યાખ્યાનસે મરણ કરને પર કર્મકા નાશ કરનેવાલા હોતા હૈ અતઃ ભક્તપ્રત્યાખ્યાનપૂર્વક શરીરકા ત્યાગ કરના, ગ્લાન મુનિકે લિયે વિમોહાયતન, હિતસ્વરૂપ, સુખસ્વરૂપ, ક્ષમસ્વરૂપ, નિશ્રેયસરૂપ, એવં આનુગામિક રૂપ હોતા હૈ । ઇન પદોંકી વ્યાખ્યા ડસી અધ્યયનકે ચતુર્થ ઉદ્દેશકી સમાપ્તિમેં કહ દી ગઈ હૈ ॥સૂ૦૨॥

॥ આઠવેં અધ્યયનકા પાંચવાં ઉદ્દેશ સમાપ્ત ॥ ૮-૫ ॥

પણ કાલપર્યાય જ છે, કેમ કે અહીં પણ કર્મોની નિર્જરાની સમાનતા છે, આ માટે એવા મુનિ અનશન કરીને ભક્તપ્રત્યાખ્યાનથી મરણ લાવવાથી કર્મોનો નાશ કરવાવાળા થાય છે, માટે ભક્તપ્રત્યાખ્યાનપૂર્વક શરીરનો ત્યાગ કરવો ગ્લાન મુનિ માટે વિમોહાયતન, હિતસ્વરૂપ, સુખસ્વરૂપ, ક્ષમસ્વરૂપ, નિશ્રેયસરૂપ, અને આનુગામિકરૂપ બને છે આ પદોની વ્યાખ્યા આ અધ્યયનના ઉદ્દેશની સમાપ્તિમા કહેવાયેલ છે (સૂ૦૨)

આઠમા અધ્યયનનો પાંચમો ઉદ્દેશ સમાપ્ત ॥૮-૫॥

પ્રતિપન્નઃ, યથાપરિજીર્ણં વસ્ત્ર પરિપ્ષ્ઠાપયેત્, અથવા એકશાટ્, અથવા અચેલો લાઘવિકમાગમયન્, તપસ્તસ્ય અમિસમન્વાગત ભવતિ, યદેતદ્ ભગવતા પ્રવેદિતં તદેવામિસમેત્ય સર્વતઃ સર્વાત્મતયા સમ્યક્ત્વમેવ સમભિજાનીયાત્ ॥ સૂ. ૧ ॥

ટીકા—‘યો મિશ્નુ’—રિત્યાદિ, સ્પષ્ટાર્થમેતત્સૂત્રમ્, વિશેષસ્ત્વયમ્—અન્ન ‘પાત્રદ્વિતીયેનૈકેન વસ્ત્રેણ’ ઇતિ વ્યાખ્યેયમ્ ॥ સૂ. ૧ ॥

અભિગ્રહવિશેષેણ પાત્રદ્વિતીયં વસ્ત્રમેક દધતો મિશ્નોઃ સપદિ મોક્ષપથમારુક્ષોઃ પરિકર્મિતમતેલૈલ્લુકર્મત્વાદેકત્વભાવનાઽધ્યવસાયમાહ—‘જસ્સ ણ’ ઇત્યાદિ—

इस सूत्रमें साधुके लिये एक वस्त्र और एक पात्र रखनेका कल्प प्रदर्शित किया गया है; अतः एक वस्त्र और एक पात्र रखते हुए किसी भी समय ऐसी इच्छा न करे कि मैं दूसरे वस्त्र या पात्रकी याचना करूँ। वह मुनि यथायोग्य एषणीय वस्त्रकी ही याचना करे और जिस प्रकारका मिल जाय वही धारण करे। ग्रीष्म ऋतु आने पर वह एक वस्त्र रखना चाहे तो रखे, अथवा जीर्ण हो जाने पर उस जीर्ण वस्त्रका त्याग करके अचेल बन जावे, और जिस प्रकार भगवानने आगममें कहा उसी प्रकार सव्यमाचरण करता हुआ मुनि समभावसे विचरे ॥ सू. ॥ १ ॥

અભિગ્રહવિશેષે એક પાત્ર અને એક વસ્ત્રને રાખવાના કલ્પ પ્રદર્શિત કરેલ છે, જેથી એક વસ્ત્ર અને એક પાત્ર રાખીને કોઈ પણ વખત એવી ઇચ્છા ન કરે કે હું બીજા વસ્ત્ર અને પાત્રની યાચના કરું તે મુનિ યથાયોગ્ય એષણીય વસ્ત્રની જ યાચના કરે, અને જેવા પ્રકારના મળી જાય તે ધારણ કરે, ગ્રીષ્મ ઋતુ આવવાથી તે એક વસ્ત્ર રાખવા ચાહે તો રાખે અથવા જીર્ણ થઈ જવાથી તે જીર્ણ વસ્ત્રનો ત્યાગ કરીને અચેલ બની જાય, અને જે પ્રકારે ભગવાને આગમમાં કહ્યું તેવા પ્રકારે સવ્યમાચરણ કરીને મુનિ સમભાવથી વિચરે (સૂ. ૧)

આ સૂત્રમાં સાધુ માટે એક વસ્ત્ર અને એક પાત્ર રાખવાનો કલ્પ પ્રદર્શિત કરેલ છે, જેથી એક વસ્ત્ર અને એક પાત્ર રાખીને કોઈ પણ વખત એવી ઇચ્છા ન કરે કે હું બીજા વસ્ત્ર અને પાત્રની યાચના કરું તે મુનિ યથાયોગ્ય એષણીય વસ્ત્રની જ યાચના કરે, અને જેવા પ્રકારના મળી જાય તે ધારણ કરે, ગ્રીષ્મ ઋતુ આવવાથી તે એક વસ્ત્ર રાખવા ચાહે તો રાખે અથવા જીર્ણ થઈ જવાથી તે જીર્ણ વસ્ત્રનો ત્યાગ કરીને અચેલ બની જાય, અને જે પ્રકારે ભગવાને આગમમાં કહ્યું તેવા પ્રકારે સવ્યમાચરણ કરીને મુનિ સમભાવથી વિચરે (સૂ. ૧)

અભિગ્રહવિશેષથી એક પાત્ર અને એક વસ્ત્રને રાખવાવાળા મિશ્નુ કે જે શીઘ્ર મોક્ષના માર્ગ પર આરૂઢ હોવાના અભિલાષી બનેલ છે, તથા પરિકર્મિત મતિવાળા છે લલ્લુકર્મી હોવાથી તેને એકત્વભાવનાનો અધ્યવસાય થાય છે તેથી એકત્વભાવનાનો અધ્યવસાયનું કથન કરે છે—‘જસ્સ ણં મિક્કલુસ્સ’ ઇત્યાદિ

મૂઝ્મ્-જસ્સ ણ મિક્સુસ્સ ઇવ મવઙ્-ઇગે અહમસિ, ન મે
અરિથિ કોઙ્, ન ચાહમત્રિ કસ્સવિ, ઇવ સે ઇગાગિણમેવ અપ્પાણ
સમમિજાણિજ્જા, લાઘવિય આગમમાણે તવે સે અભિસમન્નાગપ
મવઙ્ જાવ સમમિજાણિયા ॥ સૂ. ૨ ॥

ઘાયા-યસ્ય સ્મતુ મિશ્નોરેવં મથતિ-एकोऽहमस्मि, न मऽस्ति कोऽपि,
न चाहमपि कस्यापि, एवमसौ एकाकिनमेवात्मानं सममिजानीयात्, लाघविकमा
ममयन्, तपस्तस्याभिसमन्यागतं भवति यावत् सममिजानीयात् ॥ सू. २ ॥

ટીકા-‘યસ્યે’-ત્યાદિ, યસ્ય મિશ્નોમેતસિ ઇવં-અન્યમાણ મથતિ, તવેવ
ઈવંપથિ-‘અહ’-મિત્યાદિ-અહમ્ એકોઽસ્મિ, ન મઽસ્તિ કોઽપીતરઃ સહાયકઃ,
ન ચાહમપિ કસ્ય ચિદપિ પરસ્ય દુઃસ્વવિમાત્ષને સહાયકોઽસ્મિ, સર્વેઽપિ સ્વકુલક
ર્મફલમોક્તાર સન્ન્યતાં ન કોઽપિ મમ સહાયકા, નાપ્યહં કસ્માપિ સાહાર્ય
ર્જુનર્હોઽસ્યીતિ પરમાર્યઃ, અતો યોઽર્યઃ સમ્યક્સતમાહ-‘ઇવ’ મિત્યાદિ, ઇવં-પૂર્વો
ક્ષમકારણ સ્વસ્ય સહાયકસમ્મવાદ સાહાર્યકરણાસમ્મવાદ્વત્યાદિકુપ્યમ અસી
મુનિઃ આત્માન-નિવાત્માનમ્, એકાકિનમથ સહાયરહિતમથ સમમિજાનીયાત્,

જિસ મિધુકે પિત્તમેં હમ પ્રકારકા વિચાર હોતા હૈ કિ-“મેં एक हूँ,
यहां मेरा दूसरा कोई सहायक नहीं है मैं भी किसी दूसरेके दुःस्वोको
दूर करनेमें सहायक नहीं हो सकता हूँ, जितने भी प्राणी हैं व मय
अपने२ किये हुए कर्मोंके फलको भोगते हैं, इस लिय मैं उन्हें
इस कर्मके फलके भोगमें थोड़ी भी सहायता करनेवाला नहीं
हो सकता हूँ और न दूसरे भी मुझे इस विषयमें सहायता प्रदान
करनेवाले हो सकते हैं इस प्रकार न कोई अपना सहायक है
और न मैं दूसरोंका ही सहायक हूँ ” ऐसा विचार कर यह मुनि अपनी
आत्माको सहायरहित ही मानता है, इसका यह प्रमाण होता है

ને બિધુના ચિત્તમાં એવા પ્રકારના વિચાર હોય છે કે- હું એક છું અહિં
મારે બીજો કોઈ સહાયક નથી હું પણ કોઈ બીજાના દુઃખોને દૂર કરવામા
સહાયક બની શકતો નથી બેટલા પ્રાણી છે તે બધા પિતૃપિતાના કરેલા કર્મોના
ફળને ભોગવે છે આ માટે હું તેમને એ કર્મના ફળને ભોગવવામાં થોડી પણ
સહાયતા કરવાવાળા બધું શકતો નથી અને મને પણ બીજા આ વિષયના સંબંધતા
કરવાવાળા બની શકતા નથી આ પ્રકારે કોઈ મારે સહાયક નથી
અને હું પણ બીજાનો સહાયક બની શકતો નથી” એવો વિચાર કરી એ મુનિ
પિતાના અપ્રમાને સહાયરહિત જ માને છે. એના એ પ્રમાણ હોય છે કે તે

‘નરકનિગોદાદિકૃદુઃખપારાવારમજ્જદાત્મસન્તારણે સ્વાત્માનં વિના કોઽપિ ન કર્ણધારઃ’ इत्यवधार्य सम्प्राप्तं रोगशोकादिकं सन्तापकारकमितरकृतत्राणशरण-
स्पृहारहितो-‘ मत्कृतत्वेन मयैवोपभोक्तव्य’-मिति निश्चिन्वानः सर्वं सहेतैवेति
भावः । कुतो दुःखादिकं सोढव्यमित्याह-‘ लाघविक ’-मित्यादि, अयं सूत्रभाग
एतस्यैवाध्ययनस्य चतुर्थोद्देशे व्याख्यातः । इत्यलम् । सूत्रमिदं बहुषु पुस्तकेष्व-
नुपलब्धमपि क्वचिदुपलब्धतया व्याख्यातमिति विभावनीयम् ॥सू० २॥

अस्याध्ययनस्य द्वितीयोद्देशे उद्गमोत्पादनैषणाऽभिहिता, पञ्चमोद्देशे च ग्रहणै-
षणा कथिता, साम्प्रतं प्राप्तेषणामुपदर्शयितुमाह-‘ से भिक्खू ’ इत्यादि ।

कि इस मुनिके चित्तमें यह दृढ़ धारणा हो जाती है कि “ नरक और
निगोदादिकोंके दुःखरूपी समुद्रमें डूबते हुए मेरे आत्माको वहांसे पार
लगानेवाला यदि कोई है तो वह अपनी आत्मा ही है-इसके अतिरिक्त और
कोई नहीं।” इस प्रकारकी धारणासे प्राप्त हुए सन्तापकारी रोग और शोक
आदिमें अपने लिये दूसरोंसे की जानेवाली रक्षा एवं शरणकी स्पृहासे
रहित हो जाते हैं, और इस निश्चयसे कि यह सब मेरे द्वारा ही किया
गयाहै अतः मुझे ही भोगना चाहिये इस प्रकार सोच कर सब कुछ
सहन करता है । दुःखादिकोंके सहनेसे लाभ क्या होता है ? तथा यह
दुःखादिक सहन क्यों करता हूँ ? इसका उत्तर सूत्रकारने “ लाघवियं
आगममाणे ” से लेकर “ समभिजाणिया ” यहाँ तकके पदों द्वारा दिया
है । इन समस्त पदों का स्पष्ट रूपसे अर्थ इसी अध्ययनके चतुर्थ उद्देशमें
लिखा जा चुका है ॥ सू० २ ॥

मुनिના ચિત્તમાં એવી દૃઢ ધારણા બના રહે છે કે “ નરક અને નિગોદાદિકોના
દુઃખરૂપી સમુદ્રમાં ડુબતા મારા આત્માને ત્યાથી પાર લગાવનાર જો કોઈ હોય
તો તે મારો પોતાનો જ આત્મા છે, તેના સિવાય બીજો કોઈ નથી ” આ પ્રકારની
ધારણાથી પ્રાપ્ત થયેલા સતાપકારી રોગ અને શોક આદિમાં પોતાને માટે,
ખીનત્યાગી થનાર રક્ષા અને શરણની સ્પૃહાથી રહિત થઈ જાય છે અને આવા નિશ્ચ
યથી કે આ બધું મારા દ્વારા જ ઠરાયેલ છે, અને મારે જ ભોગવવું જોઈએ આ
પ્રકારે સમજીને બધું સહન કરે છે, હું બાદિકને સહેવાથી લાભ શું મળે છે ? તથા
એ હું બાદિકને સહન કેમ કરે છે ? એનો ઉત્તર સૂત્રકારે “લાઘવિયં આગમમાણે”થી
લઈ “સમભિજાણિયા” અહીં સુધીના પદો દ્વારા આપેલ છે આ સમસ્ત પદોનો
સ્પષ્ટ રૂપથી અર્થ આ અધ્યયનના ચોથા ઉદ્દેશમાં બતાવવામાં આવેલ છે (સૂ૦૨)

મૂષ્—સે મિષ્ત્રુ વા મિષ્ત્રુણી વા અસર્ણ વા ૪ આહારમાણે નો વામાઓ હણુયાઓ દાહિણ હણુય સંચારિજા આસાપમાણે, દાહિણાઓ હણુયાઓ વામ હણુયનો સંચારિજા આસાપમાણે, સે અણાસાયમાણે લાઘવિય આગમમાણે, તથે સે અભિસમન્ના યપ ભવદ્, જમેય ભગધયા પવેદ્ય તમેવ અભિસમિષ્વા સઘ્વઓ સઘ્વત્તાપ સમત્તમેવ સમભિજાણિયા ॥ સૂ. ૩ ॥

ઘાયા—સ મિષ્ત્રુવાં મિષ્ત્રુકી વા અક્ષનં વા ૪ આહારયન્ નો વામતો હતુતો શક્તિં હતું સંચારયેદાસ્વાદયન્, દક્ષિણતો હતુતો વામ હતું નો સંચારયેદાસ્વાદયન્, સ્મ આસ્વાદયન્ કાપચિક્ષમાગમયન્, ઉપસ્તસ્યામિસમન્નાગતં મન્તિ, યદતદ્ ભગ્ન-વા પ્રવેશિતં તદેવામિસમત્ય સર્વે સર્વાત્પતયા સમ્યક્સ્વમય સમમિનાનીયાત્ ॥ ૩ ॥

ટીકા—‘સ મિષ્ત્રુ’—રિત્યાદિ, સ=પૂર્વોક્ત્યઃ મિષ્ત્રુવાં=સાધુવાં મિષ્ત્રુકી વા=સાધ્વી વા અક્ષનં વા ૪ ચતુર્વિધમ્ ઉત્તમોત્પાદનૈપણાપરિશુદ્ધ યવામાર્ષં શુદ્ધિતં ક્ષત્ર્યેવાદિદોષરહિતં ધિગ્તાજ્જારધૂમાદિકમય શુદ્ધીત, રાગદોષાભ્યાં હેતુમૂતાભ્યા-

હસ અધ્યયનકે દ્વિતીય ઉદ્દેશમેં ઉત્તમ ઉત્પાદન ઔર પપણા કહી ગઈ છે. પંચમ ઉદ્દેશમેં બ્રહ્મણ પપણા વર્ણિત હુઈ છે, અથ હસ સમય પ્રાસ પપણાકા વર્ણન કરનેકે લિયે સૂત્રકાર કહતે છે—“સે મિષ્ત્રુ” રિત્યાદિ.

પૂર્વોક્ત સ્વરૂપધાત્મા સાધુ અથવા સાધ્વી જેવા પ્રકારકે આહાર કો જો ઉત્તમ ઉત્પાદન ઔર પપણાસે પરિશુદ્ધ છે, જિસ સમય જો મી જિતને રૂપમેં પ્રાસ હુઆ છે, બ્રહ્મણ-પપણા આદિ દોષોસે જો રહિત છે, ઔર અંગાર एवं ધૂમાદિક દોષ જિસમેં નહીં હેં વેસે આહારકો મીઠાવે-ઉપયોગમેં લાભે. અંગાર एवं ધૂમાદિક દોષોકે કારણ રાગ ઔર દ્રેષ હેં, હનસે હી બહ આહાર બજાર एवं ધૂમાદિકદોષવિશિષ્ટ હોતા છે. રાગ

અ અધ્યયનના બીજા ઉદ્દેશમાં ઉત્તમ ઉત્પાદન અને એપણા કહેવામાં આવેલ છે. પાંચમા ઉદ્દેશમાં બ્રહ્મણ એપણા કહેવાયેલ છે. હવે આ સમયે પ્રાસ એપણા પર્ણન કરવા માટે સૂત્રકાર કહે છે—“સે મિષ્ત્રુ” રિત્યાદિ.

પૂર્વોક્ત સ્વરૂપધાત્મા સાધુ અથવા સાધ્વી જેવા પ્રકારના આહારને કે જે ઉત્તમ ઉત્પાદન અને એપણાથી પરિશુદ્ધ છે, જે વખતે જે પણ બેટલા સ્વરૂપમાં પ્રાસ થએલ છે બ્રહ્મણ એપણા આદિ દોષોથી ને રહિત છે અને અંગાર અને ધૂમાદિક દોષ જેમાં નથી જેવા આહારને મીઠાવે-ઉપયોગમાં લાભે. અંગાર અને ધૂમાદિક દોષોના કારણ રાગ અને દ્રેષ છે. આનાથીજ તે આહાર

‘નરકનિગોદાદિદુઃખપારામારમજ્જદાત્મસન્તારણે સ્માત્માન ચિના કોડપિ ન કર્ણધારઃ’ इत्यवधार्य सम्प्राप्तं रोगशोकादिक सन्तापकारकमितरकृतत्राणशरण-
स्पृहारहितो-‘ मत्कृतत्वेन मयैषोपभोक्तव्य’-मिति निश्चिन्वानः सर्वं सहेतवेति
भावः । कुतो दुःखादिक सोढव्यमित्याह-‘ लाघविक ’-मित्यादि, अयं सूत्रभाग
एतस्यैवाध्ययनस्य चतुर्थोद्देशे व्याख्यातः । इत्यलम् । सूत्रमिदं बहुषु पुस्तकेष्व-
नुपलब्धमपि क्वचिदुपलब्धतया व्याख्यातमिति विभावनीयम् ॥सू० २॥

अस्याध्ययनस्य द्वितीयोद्देशे उद्गमोत्पादनैपणाऽभिहिता, पञ्चमोद्देशे च ग्रहण-
पणा कथिता, साम्प्रतं त्रासैपणामुपदर्शयितुमाह-‘ से भिक्खू ’ इत्यादि ।

कि इस मुनिके चित्तमे यह दृढ़ धारणा हो जाती है कि “ नरक और
निगोदादिकोंके दुःखरूपी समुद्रमें डूबते हुए मेरे आत्माको वहांसे पार
लगानेवाला यदि कोई है तो वह अपनी आत्मा ही है-इसके अतिरिक्त और
कोई नहीं।” इस प्रकारकी धारणासे प्राप्त हुए सन्तापकारी रोग और शोक
आदिमें अपने लिये दूसरोंसे की जानेवाली रक्षा एव शरणकी स्पृहासे
रहित हो जाते हैं, और इस निश्चयसे कि यह सब मेरे द्वारा ही किया
गयाहै अतः मुझे ही भोगना चाहिये इस प्रकार सोच कर सब कुछ
सहन करता है। दुःखादिकोंके सहनेसे लाभ क्या होता है ? तथा यह
दुःखादिक सहन क्यों करता है ? इसका उत्तर सूत्रकारने “ लाघविय
आगममाणे ” से लेकर “ समभिजाणिया ” यहां तकके पदों द्वारा दिया
है । इन समस्त पदों का स्पष्ट रूपसे अर्थ इसी अध्ययनके चतुर्थ उद्देशमें
लिखा जा चुका है ॥ सू० २ ॥

मुनिના ચિત્તમા એવી દૃઢ ધારણા બના રહે છે કે “ નરક અને નિગોદાદિકોના
દુઃખરૂપી સમુદ્રમા ડુબતા મારા આત્માને ત્યાથી પાર લગાવનાર ને કોઈ હોય
તો તે મારો પોતાનો જ આત્મા છે, તેના સિવાય બીજો કોઈ નથી ” આ પ્રકારની
ધારણાથી પ્રાપ્ત થયેલા સતાપકારી રોગ અને શોક આદિમા પોતાને માટે,
બીજાઓથી થનાર રક્ષા અને શરણની સ્પૃહાથી રહિત થઈ બંધ છે અને આવા નિશ્ચ
યથી કે આ બધું મારા દ્વારા જ કરાયેલ છે, અને મારે જ લોગવવું જોઈએ આ
પ્રકારે સમજીને બધું સહન કરે છે, હું બાહિકને સહેવાથી લાભ શું મળે છે ? તથા
એ હું બાહિકને સહન કેમ કરે છે ? એનો ઉત્તર સૂત્રકારે “ લાઘવિય આગમમાણે ” થી
લઈ “ સમભિજાણિયા ” અહીં સુધીના પદો દ્વારા આપેલ છે આ સમસ્ત પદોનો
સ્પષ્ટ રૂપથી અર્થ આ અધ્યયનના ચોથા ઉદ્દેશમા બતાવવામા આવેલ છે. (સૂ. ૨)

મૂષ્—સે મિષ્ત્રુ વા મિષ્ત્રુણી વા અસર્ણ વા ૪ આહારમાણે નો વામાઓ હળુયાઓ દાહિણ હળુય સચારિજા આસાપમાણે, દાહિણાઓ હળુયાઓ વામ હળુયનો સચારિજા આસાપમાણે, સે અણાસાયમાણે લાઘવિય આગમમાણે, તથે સે અમિસમન્ના ગપ્ ભવદ્, જમેયં મગધયા પવેદ્ય સમેધ અમિસમિચ્છા સન્વઓ સન્વચાપ્ સમત્તમેધ સમમિજાણિયા ॥ સૂ. ૩ ॥

છાયા—સ મિષ્ટુર્વા મિષ્ટુકી વા અમ્ન વા ૪ આહારયન્ નો વામતો હનુતો શ્વિર્ણ હનું સચારયેવાસ્વાદયન્, વશ્વિજતો હનુતો વાપ્ હનું નો સચારયેવાસ્વાદયન્, છા અનાસ્વાદયન્ કાપચિકમાગમયન્, તપસ્તસ્યામિસમન્નાગર્ત મવતિ, યદતદ્ મગધ-વા પ્રવેદિતં તદેવામિસમન્ન સર્વત્ સર્વાત્પતયા સમ્યક્ત્વમેવ સમમિમાનીયાત્ ॥ ૩ ॥

ટીકા—‘સમિષ્ટુ’—રિત્યાદિ, સમ=પૂર્વોક્ત્યઃ મિષ્ટુર્વા=સાધુર્વા મિષ્ટુકી વા=સાધ્વી વા અમ્ન વા ૪ ચતુર્વિધ્ય ઉત્તમોત્પાદનૈપચાપરિશુદ્ધ યયાપ્રાપ્ત ધૃતીર્ત શ્વેત્કાદિદોષરહિતં વિગતાહારપ્રમાદિકમ્બ શુદ્ધીત, રાગદ્વેષાભ્યાં હેતુમૂલાભ્યા-

હસ અધ્યયનકે દ્વિતીય ઉદ્દેશર્મે ઉત્તમ ઉત્પાદન ઔર પચના કહી ગઈ છે. પંચમ ઉદ્દેશર્મે પ્રહણ પચના વર્ણિત હુઈ છે, કય હસ સમય પ્રાસ પચનાકા વર્ણન કરનેકે સિયે સૂત્રકાર કહતે છે—“સે મિષ્ત્રુ” રિત્યાદિ.

પૂર્વોક્ત સ્વરૂપલાલા સાધુ અથવા સાધ્વી જેવે ચારો પ્રકારકે આહાર કો ઓ ઉત્તમ ઉત્પાદન ઔર પચનાસે પરિશુદ્ધ છે, જિસ સમય જો ની જિતને રૂપમે પ્રાસ જુમા છે, પ્રહણ-પચના આદિ દોષોસે ઓ રહિત છે, ઔર અગાર પચ્ પ્રમાદિક દોષ જિસમે મહી છે તેસે આહારકો નોગથે-અપયોગમે લાભે. અગાર પચ્ પ્રમાદિક દોષોકે કારણ રાગ ઔર દ્વેષ છે, હનસે હી વહ આહાર અજાર પચ્ પ્રમાદિકદોષવિશિષ્ટ હોતા છે. રાગ

આ અધ્યયનના બીજા ઉદ્દેશર્મા ઉત્તમ ઉત્પાદન અને એપણા કહેવામાં આવેલ છે પાચમા ઉદ્દેશર્મા શ્રદ્ધા એપણા કહેવાયેલ છે કવે આ સમયે પ્રાસ એપણા બહુન કરવા માટે સૂચકાર કહે છે—“સે મિષ્ત્રુ” રિત્યાદિ.

પૂર્વોક્ત સ્વરૂપલાલા સાધુ અથવા સાધ્વી જેવા પ્રકારના આહારને કે જે ઉત્તમ ઉત્પાદન અને એપણાથી પરિશુદ્ધ છે જે વખતે જે પચ્ જેટલા સ્વદ્ધ પમાં પ્રાસ થએલ છે શ્રદ્ધા એપણા આદિ દોષોથી જે રહિત છે અને અગાર અને પ્રમાદિક દોષ જેમાં નથી એવા આહારને લાભવે-અપયોગમાં લાવે. અગાર અને પ્રમાદિક દોષોના કારણ રાગ અને દ્વેષ છે આનાથીજ તે આહાર

મજ્જારધૂમાદિદોષદુષ્ટમશનાદિકં જાયતે, રાગદ્વેષો સરસનીરસાહારોપલમ્ભદેતુના જાયેતે । કારણમન્તરા કાર્યોત્પત્તેરદર્શનાદિતિ રસોપલબ્ધિકારણપરિહારમેવ પ્રદર્શયતિ-‘આહારયન્નિ’-ત્યાદિ, સ મિશ્નુરશન વા ષ અશનાદિકમ્ આહારયન્=શુજ્ઞાનઃ, આસ્વાદયન્=તદશનાદિકં ચર્વયન્ વામતો હનુતઃ=વામહનુતઃ આદાય રસાસ્વાદાય દક્ષિણં હનું નો સન્ધારયેત્, અપિ ચાશનાદિકમાસ્વાદયન્ સ મિશ્નુઃ દક્ષિણતો હનુતઃ=દક્ષિણહનુતો ગૃહીત્વા વામં હનુ ન સન્ધારયેત્, તાદૃશાસ્વાદન-સન્ધારણયોઃ કૃતયોઃ સતોઃ રસોપલબ્ધ્યા રાગ-દ્વેપજન્યા અન્નાર-ધૂમાદિદોષા જાયન્તે, અતસ્તથા કૃત્વા નો આસ્વાદયેદિત્યાશયઃ । યો નાસ્વાદયતિ તમાશ્રિત્ય કથયતિ-‘સ’

और द्वेष होनेका कारण भी सरस और नीरस आहारकी प्राप्ति है । इससे ही राग और द्वेष ये दोनों उसमें उत्पन्न होते हैं । कारण के बिना कार्यकी उत्पत्ति नहीं होती है इस लिये सूत्रकार यहां पर रसोपलब्धिरूप कारण के परिहारका प्रदर्शन करते हुए कहते हैं-वह भिक्षु जिस समय आहार करे उस समय चबाते हुए उस आहारका रसास्वादके निमित्त मुह में एक तरफसे दूसरी तरफ परिवर्तन न करे । यदि घ्रास दक्षिणकी दाढाओंके नीचे रखा है तो उसे उन्हीं दाढाओं द्वारा चबावे-वामतरफ न फेरे, यदि वामबाजूकी दाढाओं तले उसे रखा है तो उन्हींसे उसे चबावे-दक्षिणकी तरफ उसे न ले जावें, इस प्रकार के परिवर्तनसे आहार के रसकी उपलब्धि होती है अत इस प्रकार का चबाना और परिवर्तन करना, ये दोनों साधु के लिये रसास्वाद के निमित्त हेय है । ऐसा करनेसे रसकी उपलब्धि होगी और फिर उससे रागद्वेषके कारण-

અગાર અને ધૂમાદિક દોષવિશિષ્ટ થાય છે રાગ અને દ્વેષ હોવાનું કારણ પણ સરસ અને નિરસ આહારની પ્રાપ્તિ છે તેનાથી જ તે બન્ને તેમા ઉત્પન્ન થાય છે, કારણના બિના કાર્યની ઉત્પત્તિ થતી નથી આ માટે સૂત્રકાર અહિં રસની ઉપલબ્ધિરૂપ કારણના પરિહારનું પ્રદર્શન કરીને કહે છે કે તે ભિક્ષુ જે સમય આહાર કરે તે સમય ચાવતી વખતે તે આહારના રસાસ્વાદ માટે મોઢામા એક તરફથી બીજી તરફ ફેરફાર ન કરે કહાય ઘ્રાસને દક્ષિણ દાઢાની નીચે રાખેલ હોય તો તેને એ જ દાઢો દ્વારા ચાવે બીજી તરફ ન ફેરવે કહાય બીજી બાજુની દાઢો નીચે રખાયેલ હોય તો તેનાથી જ ચાવે સામી તરફ તેને ન લઈ જાય આ પ્રકારના પરિવર્તનથી આહારના રસની ઉપલબ્ધિ થાય છે માટે આ પ્રકારથી ચાવવું અને પરિવર્તન કરવું એ બન્ને સાધુ માટે હેય છે એમ કરવાથી રસની ઉપલબ્ધિ થશે અને પછી તેનાથી તેને રાગ અને દ્વેષના

સ્વાદિ-સ' પૂર્વોક્તા મિથુઃ મનાસ્વાદયન્=અન્યન્તરાદ્યન્વન્તરેજ્ઞનાદિસંચારમકુર્ષત્
અપવિષ્મ્=આહારભાગ્યમ્ આગમયન્=વિદ્યમ્ મયતિ, एसाहस्य तस्य मुने' तप'
सम्पन्नागतं मवतीति पूर्ववत् । स्वपुद्धिपरिकल्पितत्वनिरासायाह-‘यवत’-दिस्पादि,
स्त=મોજનવિધાનં વૈષ્ણવરિતમ્ एतत् सर्वं भगवता=સર્વજ્ઞન પ્રવેદિત=પ્રકૃપિતમ્, तव-
सदेन=पूर्वोक्तमय अमिसमेत्य सर्वतः सर्वात्मतया सम्यक्त्वमेष सममिज्जानीयादि
સ્વાદર્શ્યાસ્મા પૂર્વોક્તવિજ્ઞાડ્યસયા ॥ સૂ૦૩ ॥

મૂત અંગાર-દુમાદિષ્ઠ વોપ ઉત્પન્ન હોંગે, इसलिये इन दोषों से बचने
के लिये साधु इस तरह से 'मोजन-आहार न चबाये । जो साधुजन
इस प्रकार से 'मोजनको नहीं चबाते हैं-अर्थात् एकजबड़े से दूसरे जबड़े
तरफ उसे रसास्वाद क निमित्त परिवर्तित नहीं करते हैं, इससे आहा
रविषयक रसास्वाद न आनसे ये रागद्वेषकी लघुता करवैते हैं । इस
परिस्थितिमें जो भी उन्हें अल्पमात्रमें शुद्ध निर्दोष विषि-अनुसार
आहार उपलब्ध होता है वही उन्हें प्राप्ता होनेसे मुनिके तपकी प्राप्ति
और वृद्धि होती रहती है । साधुके लिये जो यह निर्दोष 'मोजनका
विधान कहा है वह सब भगवान् सर्वज्ञ द्वारा प्रकृपित ही कहा गया है,
इसलिये इस पूर्वोक्त विधान को सर्व प्रकार एवं सर्वात्मरूपसे सत्य ही
जानना चाहिये ।

નાચાર્ય—ચાહે સાધુ હો યા સાધ્વી હો આહારનો ચિના રસાસ્વાદ
લિયે હી કરે । यह बात साधुको तब ही बम सकती है कि जब वह

કરવુ બજારમુખારિકે દોષો ઉત્પન્ન થશે આ માટે જોવા દોષોથી
બચવા માટે સાધુ આ રીતે આહારને ખાવે નહિ. જે સાધુજન આ
પ્રકારથી જોજન આવવા નથી અર્થાત્ જોકે જરૂરથી ખીજા જડવા વચ્ચે તેને
સ્વાસ્વાદ નિમિત્ત ફેરવવા નથી જોથી આહારવિષયક રસાસ્વાદ ન આવવાથી
તેઓ ભગદેવની લઘુતા કરી દે છે આ પરિસ્થિતિમાં જે પણ તેને અલ્પ માત્રામાં
શુદ્ધ નિર્દોષ વિષિ અનુસાર આહાર મળે છે તેજ જોને પ્રાપ્ત થવાથી જોનાથી
વળી પ્રાપ્તિ અને વૃદ્ધિ તેને થતી રહે છે સાધુ માટે જે આ નિર્દોષ
આહારનું વિધાન કહેલ છે તે બધું ભગવાન સર્વજ્ઞદ્વારા પ્રકૃપિત જ અહીં કહે-
વાયું છે આ માટે આ પૂર્વોક્ત વિધાનને સર્વ પ્રકારે અને સર્વાત્મરૂપથી
અલ્પજ્ઞ માનવું જોઈએ.

નાચાર્ય—જાહે સાધુ હોય અથવા સાધ્વી આહારને રસાસ્વાદ લીધા ચિનાજ
ચાશેજે આ વાત સાધુ માટે ત્યારેજ અને છે જે જ્યારે તે આહારને મુખમાં

एतादृशस्य भिक्षोरन्तर्प्रान्तसेविन परिशुष्कमासशोणितसकलकायक्रियायामव-
सीदतो देहपरित्यागबुद्धिः समुदेतीति दर्शयति—‘ जस्स ण भिक्खुस्स ’—इत्यादि।

मूलम्—जस्स णं भिक्खुस्स एवं भवइ—से गिलामि च खलु
अहं इमंसि समए इमं सरीरगं अणुपुव्वेण परिवहित्तए, से
अणुपुव्वेणं आहारं संवट्ठिज्जा, अणुपुव्वेण आहारं संवट्ठित्ता
कसाए पयणुए किच्चा समाहियच्चे फलगावयट्ठी उट्ठाय
भिक्षू अभिनिव्वुडच्चे ॥ सू० ४ ॥

छाया—यस्य खलु भिक्षोरेव भवति—तद् ग्लायामि च खलु अहमस्मिन् समये
इदं शरीरकमानुपूर्व्यां परिवोढुम्, स आनुपूर्व्यां आहारं सर्वतयेत्, आनुपूर्व्यां
आहारं संवर्त्य कषायान् प्रतनुकान् कृत्वा समाहितार्चः फलकापदर्थी उत्थाय
भिक्षुरभिनिवृत्तार्चः ॥ सू० ४ ॥

आहार का मुखमे इधर उधर परिवर्तन न करे । आहार का स्वाद न
आनेसे भोजनमें लघुता होती है उससे तपकी प्राप्ति और उसकी वृद्धि
साधुके होती है । यह सब आहारविषयक कथन भगवान् सर्वज्ञद्वारा प्ररू-
पित है, वही यहां कहा गया है इसलिये इस पर पूर्ण विश्वास करें ॥सू० ३॥

जो मुनि अंत प्रान्त आहारका सेवन करता है और इसी कारणसे
जिसके शरीरके मांस और शाणित शुष्क हो चुके हैं, और इसीलिये जो
समस्त शारीरिक क्रियाओंके करनेमें असमर्थ बना हुआ है उसके
चित्तमें इस देहको परित्याग करनेकी बुद्धि जागृत होती है, इस विषयको
सूत्रकार प्रदर्शित करते हैं—“ जस्स णं भिक्खुस्स ” इत्यादि।

આડે અવળે ન ફેરવે આહારનો સ્વાદ ન આવવાથી ભોજનમાં લઘુતા થવાથી
તપની પ્રાપ્તિ અને તેની વૃદ્ધિ સાધુને થાય છે આ સઘળું આહાર વિષેનું કથન
ભગવાન સર્વજ્ઞ દ્વારા પ્રરૂપિતજ અહિં કહેવામાં આવેલ છે એ માટે તેના ઉપર
વિશ્વાસ કરવો (સૂ૦૩)

જે મુનિ અન્ત-પ્રાન્ત આહારનું સેવન કરે છે અને તેના કારણથી
જેનું લોહી અને માંસ સુકાઈ જાય છે જેનાથી સમસ્ત શરીરની ક્રિયાઓ કર-
વામાં અસમર્થ બનેલ છે તેના ચિત્તમાં આ દેહનો ત્યાગ કરવાની બુદ્ધિ જાગૃત
થાય છે, આ વિષયને સૂત્રકાર પ્રદર્શિત કરે છે—‘ જસ્સ ણં ભિક્ખુસ્સ ’ ઇત્યાદિ

ટીકા—‘યસ્ય’-સ્વાદિ, યસ્ય=અપચ્ચમાષનામાષિતાન્ત-કરણસ્ય મિસો=અપ્ચનાવિપુ સ્વપ્તામુપગતસ્ય મુને સ્વલુ ચતસિ પર્યન્વસ્પમાર્ણ મશતિ, તદવાહ-‘તદ્’ તથા, ‘ચ’ શબ્દ સમુચ્ચાયકઃ, અત યમાન્તમાન્તાશ્નસજ્ઞાતરોગામિયૂતઃ, યૌ સ્વલુ અસ્મિન્ સમય મતિષ્ઠાન શરીરસ્ય શ્રીર્યમાણસ્નાદ્ મ્માયામિ=અજ્ઞાનતામુપગતો-ડિમિ, દ્વમ્=મૈત્સરિકં શરીરકં-શ્રીયતે=નિદીર્યંત યત્ચશરીરં, શરીરમય શરીરદ્યમ્, વાનુપૂર્ણા=સમુચિતાવસરાવસ્થાકર્ત્ત્વ્યક્રિયા પરીચોદ્-તમ વ્યાપારયિતુ ન શક્નોમિ, શિષિવાર્થ ચ સ =મુનિ, માનુપૂર્ણા=વતુર્ય-પષ્ટા-શ્ચમાડ-આમામ્લાદિકષા, આશારમ્=અપ્ચનાદિકં સર્વત્યત્-સંપ્રયત્ ।

નવાનુપૂર્ણા પુનઃપ્રાદક્ષમર્પતેલેનાક્યા કુતા ન શુદ્ધત? ઇતિ વેદ-મ્માનિમુપગત-સ્ય ત્ચશરીરસ્ય દ્વાદશવર્ષકાલિકાવસ્થાનાસમ્મવાત્, અત મત્કાલ્સમુચિતયાડનુ

જો મુનિકા અન્ત-કરણ એકત્વ-માષનાસે બાધિત છે, ઔર આહાર માદિ મી જિસકા કમ હો ગયા છે ઉસકે બિલ્લમેં હસ પ્રકારકા બિષાર માતા છે કિ-મેં હસ સમય અન્ત પ્રાન્ત આહાર કે સેબન કરનેસે રોગા કાન્ત હો પુકા હ, શરીર મી પ્રતિષ્ઠાન અપને કર્મસ્પપથસે ક્ષીણ હો રહા છે-ગિપિલ બનતા જા રહા છે, હસલિયે યોગ્ય અવસરમેં જિનરે આવશ્યક ક્રિયાઓકો કરના બાહિયે વે અપ હસ શરીરદ્વારા પૂર્ણરૂપસે નહીં હો સક્તી હેં। પેસા બિષાર કર વહ ગ્લાન મુનિ વતુર્ય-પષ્ટ-અષ્ટમ મત્કસે ગર્વ આયમ્મિલ આદિ તપસે આહાર માદિકો કમ કર વેવે ।

શાકુ-પારહ વર્ષકી સંલેક્ષમારૂપ આનુપૂર્ણાકા આપને યહાં પ્રહણ ક્યો નહીં ક્રિયા ।।

ઉત્તર-પહ શાકુ ઠીક નહીં છે, ક્યો કિ જો મુનિ ગ્લાન અવસ્થા-બીમારી હાલત-મેં પકા હુઆ છે, ઉસકા શરીર પારહ વર્ષતક સ્થિર નહીં રહ

જે મુનિનુ અન્તાકરણ એક વ-માષનાથી બાધિત છે અને આકાર આદિ પદ્ધતેને શેડે કર્મતેલ છે તેના બિલ્લમેં એવા પ્રકારને વિચાર આવે છે કે-હું અન્તપ્રાન્ત આકાર લેવાથી આ સમયે રોગાજસા બનેલ હું શરીર પદ્ધતિષ્ઠાવ પાતાના કર્ત્ત્વ્યથી ક્ષીણ થઈ રહેલ છે-નિર્જળ બની રહેલ છે આ માટે મેન્વ અવસરમા જે જે આવશ્યક ક્રિયાઓ કરવી એઈએ તે હવે આ શરીરથી પૂર્ણ સ્વરૂપથી બની શકતી નથી એવો વિચાર કરી તે જ્ઞાન મુનિ અષ્ટમ-અનુ-અષ્ટમ બાધથી, આયમ્મિલ આદિ તપથી આકાર આદિ બોધ કરતા રહે

શકા-પાર વર્ષની સંલેખનારૂપ આનુપૂર્ણાના આપે પ્રકલ્પ કેમ નથી કર્યો ?

ઉત્તર-આ શકા ઠીક નથી, કેમકે જે મુનિ જ્ઞાન અવસ્થા-બિમારી કાલત-મા પડેલ છે એવું શરીર પાર વર્ષ મુખી સ્થિર રહી શકતું નથી, અ

પૂર્વ્યા દ્રવ્યસંલેખનયાઽશનાદિકં સંક્ષેપયેદિત્યાશયઃ । સ ચ દ્રવ્યસંલેખનયા સલિ-
 રુયાન્યદપિ વિદધીતેત્યાહ—‘સે’ इत्यादि, आनुपूर्व्या=तपःक्रमेण सवर्त्य=अशनादिकं
 संक्षिप्य तदनु कषायान्=क्रोधादीन् प्रतनुकान्=कृशान् कृत्वा ‘समाहितार्चः’ समा-
 हिता=सम्यग् व्यवस्थापिता अर्चा=शरीरं येन स समाहितार्चः=नियमितशरीरव्यापारः।
 यद्वा-समाहिता=सम्यक् सम्पादिता अर्चा=प्रशस्तलेख्यां येन स समाहितार्चः=परिशुद्धा-
 ध्यवसायः, अथ वा समाहिता=प्रशमिता अर्चा=क्रोधाद्यध्यवसायरूपा लेख्या=ज्वाला येन
 स समाहितार्चः, ‘फलकापदर्थी’=फलमेव फलक कर्मक्षपणात्मकं, तेन फलकेन आपदि=

સકતા ફસલિયે ઉસ કાલમેં સમુચિત દ્રવ્યસંલેખનારૂપ આનુપૂર્વીસે યહ
 અશનાદિકકો કમ કરે, ઁસા કહા હૈ, ઔર ફસી વિચાર સે ચતુર્થ-ષષ્ઠ
 આદિરૂપ આનુપૂર્વીકા યહાં ગ્રહણ કિયા ગયા હૈ ।

ફસ દ્રવ્યસંલેખનારૂપ આનુપૂર્વીસે આહારકી કૃશતા કર ફિર વહ
 સાધુ ઉસકે બાદ ક્રોધાદિક કષાયોંકો કૃશ કરે । ઉનકે કૃશ હો જાને
 પર ફિર વહ અપને શરીરકો નિયમિત વ્યાપારમેં લગાવે । અથવા અપને
 પરિણામોંકો શુદ્ધ રહે । અથવા ક્રોધાદિક અધ્યવસાયરૂપ જ્વાલાકો
 શાન્ત કરે । ફસ તરહકી પ્રવૃત્તિસે યહ મુનિ પણિડિતમરણ મેં ઉચ્ચોગ
 કરકે કર્મક્ષપક તપકી વિધિસે સંસિદ્ધ શરીરવાલા બનકર મહર્ષિયોં
 દ્વારા તથા તીર્થકર ગણધરોં દ્વારા સમાચરિત માર્ગકા અનુગામી હોતા
 હુઆ ઇગિતમરણ કરે ।

ફલકાપદર્થી—ફસ પદમેં ફલક ૧, આપદ્ ૨, અર્થી ૩, ઁસે ત્રીન શબ્દ
 હૈ । કર્મોંકા જો ક્ષપણ હોતા હૈ, વહ ફલક હૈ, સંસારમેં પરિભ્રમણ કરનેકા

માટે ઁ કાળમા સમુચિત દ્રવ્યસંલેખનારૂપ આનુપૂર્વીથી તે અશનાદિકને ઁછા
 કરે, ઁવુ કહ્યુ છે, અને આ જ વિચારથી ચઉત્થ-છઠ્ઠ આદિરૂપ આનુપૂર્વીના અર્થ
 ગ્રહણ કરવામા આવેલ છે

આ દ્રવ્યસંલેખનારૂપ આનુપૂર્વીથી આહારની કૃશતા-અલ્પતા કરી ફરી તે સાધુ
 ઁના પછી ક્રોધાદિક કષાયોને દૂર કરે આ બધુ ઁછ્યા બાદ પછી તે પોતાના શરીરને
 નિયમિત વ્યાપારમા લગાડે અથવા પોતાના પરિણામોને શુદ્ધ રાખે અથવા
 ક્રોધાદિક અધ્યવસાયરૂપ જ્વાલાને શાન્ત કરે આ રીતની પ્રવૃત્તિથી
 તે મુનિ પડિત મરણ માટે ઉચ્ચોગશીલ બની કર્મક્ષપક તપની વિધિથી સંસિદ્ધ
 શરીરવાળા બની મહર્ષિયોદ્વારા તથા તીર્થકર ગણધરો દ્વારા સુચવાયેલા માર્ગના
 અનુગામી બની ઇગિત મરણ કરે

ફલકાપદર્થી—ઁ પદમા ફલક ૧, આપદ્ ૨, અર્થી ૩, ઁવા ત્રણ શબ્દ છે,
 કર્મોના જ ક્ષય થાય છે, તે ફલક છે—સ સારમા પરિભ્રમણ કરવાનુ નામ આપદ છે. અર્થ

संसारपरिभ्रमस्यायां योऽर्थः=प्रयोजनं स फलकापदर्थः सोऽस्यास्तीति फलकापद
 र्थसंसारमनकर्मक्षपमप्रयोजनत्वान् मिथुः=मुनिः उत्थाय पण्डितमरणयोगविधाय
 यमिनिर्मुक्ताथः=अमिनिर्मुक्ता=कर्मक्षपकृतपेविधिना ससिद्धा अर्चा=शरीर यस्य
 स योक्ता=महर्षिसमाचरितमार्गानुगामी सन् इक्षितमरणं कुर्यात् ॥ सु०४ ॥

नाम आपत् है, अर्थ शब्दका अर्थ प्रयोजन है, कर्मक्षपणरूप फलकसे
 संसारपरिभ्रमणरूप आपत्तिमें जो अपने प्रयोजनका अभिलाषी है,
 अपात् संसार में भ्रमण करनेवाले कर्मोंको विनाश करनेका ही जिसका
 अभिप्रायरूप प्रयोजन है, वह फलकापदर्थी है। सूत्र में अर्चा शब्दका
 अर्थ शरीरलेख्या या कोषादिरूप ज्वाला, ऐसा अर्थ किया गया है।

भावार्थ—मुनिका शरीर जब अपने कर्मक्षमार्गके आचरण करनेमें
 शिथिल हो रहा हो तब उसका कर्मक्षम है कि वह संसारजनक कर्मों को
 क्षय करनेका प्रयोजनशील होकर क्षुर्य पष्ठ आदि आनुपूर्वीद्वारा
 आहारको, पद्मात् कोषादिक कषायोंको कृश करता हुआ इक्षितमरणरूप
 संसारको धारण करे। यह मार्ग महर्षियों द्वारा भी इसी अवसर पर
 पहिछे आचरित किया गया है, इस विचारसे वह मुनि भी अपनी शारी-
 रिक क्रियाओंको नियमित कर इस मरणके करनेमें उत्तरोत्तर परिणत-
 मोंकी वृद्धि करता रहे। मोक्षी भी भी शिथिलता इस 'समय न आने
 पावे, इसकी पूर्ण सावधानी रखे। 'फलकापदर्थी' इस पदसे सूत्रकारने इस

शब्दने अर्थ प्रयोजन है कर्मक्षमरूप इत्यर्थी संसारपरिभ्रमणरूप आपत्तिभां
 के योत्ताना प्रयोजनना अभिलाषी है अर्थात् संसारमां अभक्ष्य क्षयवा
 यणां कर्मिणि सिद्धा क्षयाने च वेने अभिक्षमरूप निक्षय है ते फलकापदर्थी
 है सूत्रभां अर्थां शब्दने अर्थ शरीरलेख्या=कोटले कोषादिरूप ज्वाला, जेदे
 अर्थ क्षयमां आवेले है.

भावार्थ—मुनिने शरीर ज्वाले योत्ताना कर्त य भावैतु आचरण कर
 यमा शिथिल जाय है त्थारे जेनु कर्तव्य है ते तेजे संसारजनक कर्मिणि
 क्षय क्षयमां प्रयोजनशीली यक्ष यतुय पष्ठ आदि आनुपूर्वीधी आहार अने
 कोषादिक कषायोने इर करता करता इक्षितमरणरूप संसारो धारण करवे आ
 भावै महर्षिबोदारा यक्ष आचरणसमां पछेला आचरणमां आवेले है. आ विधा
 र्थी जे मुनि पक्ष योत्तानी शारीरिक क्रियजोने नियमित करी आनु मरण
 क्षय भाटे उत्तरोत्तर पक्षिमांभीनी वृद्धि करता रहे आ समये मोक्षी पक्ष
 शिथिलता न आवे, जेनी पूर्णपक्षे संकाय राखे फलकापदर्थी आपदधी सूत्रकारे

તાદૃશમરણવિધિમેવાહ—‘અણુપવિસિત્તા’ ઇત્યાદિં ।

મૂલમ્—અણુપવિસિત્તા ગામં વા નગરં વા खेडं વા કઢ્ઢડં વા મડંબં વા પટ્ટણં વા દોળમુહં વા આગરં વા આસમં વા સન્નિવેસં વા નેગમં વા રાયહાણિં વા તળાઈં જાઈજ્જા, તળાઈં જાઈત્તાસે તમાયાએ ઇગંતમવક્કમિજ્જા, ઇગંતમવક્કમિત્તા અપ્પંડે અપ્પપાણે અપ્પવીએ અપ્પહરિએ અપ્પોસે અપ્પોદાએ અપ્પુત્તિંગપ-
ણગદગમટ્ટિયમક્કડાસંતાણએ પઢિલેહિયર પમજ્જિયર તળાઈં સંથરિજ્જા, તળાઈં સંથરિત્તા ઇત્થવિ સમએ ઇત્તરિયં કુજ્જા, તં સચ્ચં સચ્ચવાઈં ઓએ તિન્ને છિન્નકહંકહે આઈંયટ્ટે અળાઈંએ ચિચ્ચાણં મેઝરં કાયં, સંવિહૂય વિરૂપરૂપે પરીસહોવસગ્ગે, અસ્સિં વિસ્સંભળાએ મેરવમણુચિન્ને તત્થવિ તસ્સ કાલપરિયાએ, જાવ આણુગામિયં-તિ વેમિ ॥ સૂ૦ ૫ ॥

છાયા—અણુપવિસ્ય ગ્રામં વા નગરં વા खेडं વા કઢ્ઢડં વા મડમ્બં વા પત્તનં વા, દ્રોણમુખ વા, આકરં વા, આશ્રમં વા, સન્નિવેશ વા, નૈગમં વા, રાજયાનાં વા, તળાણિ વા, યાચેત, તળાણિ યાચિત્વા સ તાન્યાદાયેકાન્તે અપક્રમેત, એકાન્તમપક્રમ્ય અલ્પાપ્પંડે અલ્પપ્રાણે અલ્પવીજે અલ્પહરિતે અલ્પાવશ્યાયે અલ્પોદકે અલ્પોત્તિક્રૂપનક-
દકમૃત્તિકામર્કટસતાનકે પ્રત્યુપેક્ષ્યર પ્રમૃજ્યર તળાણિ સસ્તરેત્, તળાણિ સંસ્તીર્ય અત્રાપિ સમયે ઇત્વરિક કુર્યાત્, તત્સત્યં સત્યવાદી ઓજસ્તીર્ણશ્ચિન્નકથંકથઃ આતીતાર્થઃ અનાતીતઃ, ત્યક્ત્વા મિદુર કાયં સંવિહૂય વિરૂપરૂપાન્ પરીણોપગાન્ અસ્મિન્ વિશ્રમ્ભણતયા મેરવમણુચીર્ણવાન્, તત્રાપિ તસ્ય કાલપાર્યાયો યાવદાનુગા-
મિકમ્—ઈતિ બ્રવીમિ ॥સૂ૦ ૫॥

પ્રકારકે મરણ કરનેમે આત્મઘાતકા અભાવ પ્રકટ ક્રિયા હૈ ॥સૂ૦ ૪॥

અથ હસ મરણકી હી વિધિકા પ્રદર્શન કરતે હૈ—‘અણુપવિસિત્તા’ ઇત્યાદિ ।

આણુ મરણુ ડરવામા આત્મઘાત બેણુ ણનતુ નથી તેમ પ્રપટ ડરેલ છે (સૂ૦ ૪)

એ મરણુનીજ વિધિને પ્રદર્શિત ડરતા સૂત્રકાર કહે છે—‘અણુપવિસિત્તા’ ઇત્યાદિ.

ટીકા—‘મનુષ્યવિશે’—રૂપાદિ, સ મિષ્ટુ: ‘ગ્રામ’—પ્રસતિ બુદ્ધધારિણાનિતિ ગ્રામસ્ત, ‘વા’ સર્વત્ર પદાન્તરયોગકો જ્ઞેય; નગર—પ્રસિદ્ધ, સેટ—પાંશુમાકારમર્દ, કર્વટ—બુદ્ધમાકારવેષ્ટિત્વ, મહમ્મ—યસ્ય અર્થદિષ્ટ સાર્પક્રોડપાન્તરે ગ્રામાદિકં નાસ્તિ ક્ત્વ,

ઈગિતમરણકા અમિલાપી બહ મુનિ ગ્રામ, નગર, સેટ, કર્વટ, મહમ્મ, પ્રસન્ન, દ્રોણમુખ, આકર, આશ્રમ, સન્નિવેશ, નિગમ, અથવા રાજ પાનીમાં જાકર ઘાસકી યાચના કરે। ઘાસકો લેકર બહ પર્વતકી ગુફા ખાદિ પદાન્તર સ્થાનમાં જાવે। ઘાં કીઢીઆવિકોકે અખ્ખોંસે રહિત, ધીન્નિ પાદિક પ્રાણિયોંસે રહિત, નીચાર—ધાન્યાદિકાલીજરહિત, ઢૂઘીદિરહિત, સંકુરરહિત, હિમરહિત, ધીમ એવં આન્તરિક્ષ જલરહિત, ઉત્તિગ, પ નક, દક—સૂસિકા ઓર મર્કટસન્તાનસે રહિત, એસે સ્થાનમાં ઇસ ઘાસકા સંસ્તારા કરે (ઉસે ધિછાવે)। સંસ્તારા કરનેકે પહિછે બહ ઇસ સ્થાનકી અખ્ખી તરહ—પાર પાર—પ્રતિછેલ્લના કર લેવે, પ્રતિછેલ્લના કર લેને બાદ ઇસકા ફિર રજોહરણ આદિસે પ્રમાર્જન કર। ઘઢીનીત એ લઘુનીતકે સ્થાનકા ધી અખ્ખી તરહસે નિરીક્ષણ કરલેવે।

‘પ્રસતિ બુદ્ધધારિણાનિતિ ગ્રામ:’—બુદ્ધિઆદિ ગુણોંકા જો પ્રાસ કરતા હૈ—અર્થાત્ જહાં પર રહનેસે બુદ્ધધારિક ગુણોંમાં વિશેષ ઉત્કર્ષતા નહીં આતી હૈ ઇસકા નામ ગ્રામ હૈ। નગર, પ્રસિદ્ધ હૈ। જિસકે ચારોં ઓર વિશાલ ઈંચા પૂલિ કા કોટ રહતા હૈ બહ સેટ હૈ। જો છોટે પરકોટેસે ઘિરા હોતા હૈ બહ કર્વટ હૈ। જિસકી ચારોં ધિશાઓંમાં ઢાઈ—ઢાઈ કોશ તક પ્રામાદિક નહીં હોતે હૈ બહ મહમ્મ કહલતા હૈ। જહાં પર પ્રત્યેક વસ્તુ

ઈગિત મરણકા અમિલાપી જો મુનિ ગ્રામ, નગર, સેટ, કર્વટ મહમ્મ, પ્રસન્ન, દ્રોણમુખ, આકર આશ્રમ, સન્નિવેશ, નિગમ, અથવા રાજપાનીમાં જઈ ઘાસકી યાચના કરે. ઘાસને લઈ તે પવતની ગુફા વગેરે અખ્ખત સ્થાનમાં જઈ ત્યાં કીઢી વગેરેના ઇલાંધી રહિત, જે ધન્નિરખવાળા પ્રાણીઓથી રહિત, ઉત્તિગ થનક, દક—મૂત્તિકા અને મર્કટસન્તાન—(કેશીમાની બાળ)થી રહિત એવા સ્થાનમાં બિછાવે. અથવા કરતાં પહેલાં તે જો સ્થાનને સારી રીતે બેઈ લે અને ત્યારબાદી સ્નેહરણ વગેરેથી પ્રમાર્જિત કરે. દરેક રીતે જો સ્થાનનું અપૂર્ણપણે નિરીક્ષણ કરી લે

પ્રસતિ બુદ્ધધારિણાનિતિ ગ્રામ:—બુદ્ધિ વગેરે શુભોંના જે ગ્રામ કરે ॥ અર્થાત્ જે સ્થળે રહેવાથી બુદ્ધિ આદિ શુભોંમા ઉત્કર્ષતા આવતી નથી એવું નામ ગ્રામ છે નગર પ્રસિદ્ધ ॥ એની ચારે બાજુ ધુળના ઈંચા ઈંચા ટેકરા હોય છે તે સેટ છે, જે નાના પરકોટાથી ઘેરાએલ છે તે કર્વટ છે એની ચારે ધિશાઓંમાં ઢાઈ—ઢાઈ

પત્તનં=સર્વવસ્તુજાતં યત્ર સુલેન લભ્યતે તત્, તત્ત્વ દ્વિવિધ જલપત્તનં સ્થલપત્તનં ચ, તત્ર જલપત્તનં રત્નદ્વીપાદિકં, સ્થલપત્તનં=લવપુરાદિકં, દ્રોણમુખં=જલ-સ્થલાગ-મનિર્ગમમાર્ગમ્, યથા-મુખ્યાપુર્યાદિકમ્, આકરં=હિરણ્યાદિચિન્નિમ્, આશ્રમ=તાપ સાદીનાં વસતિ, સન્નિવેશ=સમાગન્તુકનરાણામાવાસં-સામાન્યજનાવાસં, નિગમ=પ્રચુરતરવણિગાદીનામાવાસં, રાજધાનીં=રાજસ્થાનમ્, અનુપ્રવિશ્ય તૃણાનિ યાચેત, તૃણાનિ યાચિત્વા તાનિ તૃણાનિ આદાય=ગૃહીત્વા એકાન્તમ્=નિર્જનસ્થાન ગિરિકન્દરાદિકમ્ ઉપક્રમેત=ગચ્છેત્, એકાન્તમુપક્રમ્ય ચ-‘અલ્પાણ્ડે’ અલ્પાનિ=અવિધમાનાનિ અણ્ડાનિ કીટકાદીનાં યત્ર તદ્ અલ્પાણ્ડં, તત્ર-અણ્ડપરિવર્જિતે સ્થાને, અલ્પશબ્દોઽત્ર પ્રકરણે સર્વત્રાઽભાવાર્થક એવ વોદ્યઃ । એવમ્ અલ્પપ્રાણે=દ્વીન્દ્રિયા-

અનાયાસ મિલતી હૈ વહ પત્તન હૈ । યહ દો પ્રકારકા હોતા હૈ-એક જલ-પત્તન હૈ ઓર દૂસરા સ્થલપત્તન । રત્નદ્વીપ આદિ જલપત્તન હૈ । લવપુર (લાહોર) આદિ નગર સ્થલપત્તન હૈ । જિસમેં આને જાનેકા માર્ગ જલ એવં સ્થલ, ઇન દોનોંસે હોતા હૈ વહ દ્રોણમુખ હૈ, જૈસે વર્તમાનમેં થવઈ આદિ શહર હૈ । સુવર્ણઆદિકી ઉત્પત્તિ કા જો સ્થાન હૈ વહ આકર હૈ । તાપસ આદિકે નિવાસસ્થાન આશ્રમ હૈ । પથિકોંકે ઠરરનેકે સ્થાનકા નામ સન્નિ-વેશ હૈ । જહાં અધિક સંખ્યામેં વ્યાપારિવર્ગકા નિવાસ હો વહ નિગમ હૈ । જિસમેં સ્વયં રાજાકા નિવાસ રહતા હૈ વહ રાજધાની હૈ ।

इस प्रकरणमे अल्प शब्द अभाव अर्थका द्योतक है । उत्तिंग, कीड़ी नगरेका नाम है । पनक-भाषामें लीलण-फूलणको कहते हैं, यह जहां

કોશ(ગાઉ), સુધી ગામ નથી હોતા તે મઝમ્મ કહેવાય છે ન્યા દરેક વસ્તુ અના-યાસે મળી જાય છે તે પત્તન છે એ બે પ્રકારના હોય છે-એક જળ-પત્તન અને બીજુ સ્થળ-પત્તન રત્નદ્વીપ આદિ જળ-પત્તન છે લવપુર-લાહોર વિગેરે નગર સ્થળ-પત્તન છે ન્યા આવવા જવાનો માર્ગ જળ અને સ્થળ બન્નેથી હોય છે તે દ્રોણમુખ છે તે હાલના મુખર્ધ આદિ શહેર છે સુવર્ણ વગે-રેની ઉત્પત્તિના બે સ્થાન છે તે આકર-ખાનિ છે તાપસ વગેરેના નિવાસસ્થાન આશ્રમ છે પથિકોને આશ્રય આપનારા સ્થાનતુ નામ સન્નિવેશ છે ન્યા અધિક પ્રમાણમા વેપારી વર્ગનો વસવાટ હોય છે તે નિગમ છે ન્યા રાજાનો નિવાસ હોય છે તે રાજધાની છે

આ પ્રકરણમા અલ્પ શબ્દ અભાવ અર્થનો દ્યોતક છે ઉત્તિંગ કીડી નગરાતુ નામ છે પનક-ભાષામા લીલણ-ફૂલણને કહે છે, જે જમીનમા લીનાશ

दिमाभिषिञ्जिते, अल्पपीजे=नीवार-यान्यादि बीजरहिते, अल्पहरिते=दूर्वादिहरित
 रमित 'अल्पावश्याये' -अल्पः=अविद्यमान अवश्यायो=नीवारो यत्र तत्तत्र
 =हरितरहिते, अल्पोदक=मौमान्तरिभजनसरहित, 'अल्पोक्षि-पनक-दकमृत्तिका,
 मर्कटसन्तानके-उचिज्ज-पिपीलिकानगरादिका, पनक=आर्द्रत्वेन पृथिव्याविस्थिता,
 उक्षिपिशेषः 'लीक्य-कृष्ण' इति भाषायाम्, दकमृत्तिका=अपकायाद्रीभूता मृत्तिका,
 मर्कटसन्तानकः=सुतातन्तुजालं यैतेपामितरेतरद्वन्द्वे उचिज्ज-पनक-दकमृत्तिका-
 मर्कटसन्तानकास्ते अल्पाः=अविद्यमाना यत्र सत् तत्र स्थाने गत्वा, तन्नष्टुपा
 मृत्युपेक्ष्यर=सुहृद्सुहृद्वा, अत्र बीप्सायां द्विष्वचनम्; प्रमृज्यर=रुनोहरभाविना
 सम्पाज्यर, तादृश पूर्वाङ्गते स्थाने तृणानि सस्तरत्, तृणानि सस्तोर्य उच्चारप्रस
 र्णमूर्ति प्रत्युपेक्ष्य च सस्तारकस्थित पूर्वाभिमुख सङ्कोरकमुत्पन्निकोपधोमितमुखः
 कृतस्मिद्धतमस्कारः आधर्तित्यञ्जपरमेष्ठिमन्त्रो गृहीतकतुर्विधञ्चरण प्रत्याख्याताष्टा
 दशपापः क्षमापितसकलमीमांसा, अप्रापि समय=एतस्मिन्मन्त्रे 'अपि' शब्दादन्यस्मि-
 नपि व्याकस्मिकोपसर्गसमय क्रियमाणत्ववर्तनादिक्रियो वृत्तिसंज्ञननादिवस्तुसमन्वितो
 अमीनमे गीलापनरहता है वहां रहती है। अपकायसे गीली हुई
 मिट्टीका नाम दकमृत्तिका है। मकड़ीक जालेका नाम मर्कटसन्तान
 है। ये सब जाबजात जहां नहीं है, ऐसे स्थान पर वह अपना
 घासका सहारा कर, और उस पर पूर्वाभिमुख होकर बैठ जावे। डोरा
 सहित हुंहरसिसे शोभित है मुख जिमका ऐसा वह साधु सिद्धोंको
 नमस्कार कर पञ्चरमेष्ठिबाबक नमस्कार मंत्रका जापकरे और अरहत
 सिद्ध, साधु और केवलप्रकृत धमका शरण ग्रहण करे। सग्न प्रकारके
 पापस्थानोंका परि त्याग करे और समस्तजीवोंसे क्षमायाचना करे,
 अपनी ओरसे भी उन्हें क्षमा प्रदान करे। इस अचसरमें भी त्वग्गतं ना-
 दिप्रिया करता हुआ वह धृति सहनन-बल-समन्वित ग्लान साधु नियत

होम छे त्या ओ रहे छे. अपकायधी बीजजोधी भाटीनु नाम दकमृत्तिका छे
 केशजीवा वज्रेनां जालां मर्कटसन्तान छे. आपी लप-बात न्यां न
 कीय जेवा स्थान उपर ते पासने सहारे छे, जने तेना उपर
 पूर्वाभिमुखधी मसी बल. दोरा साधेनी शुद्धपत्तीधी शोभित शुभवागा ते
 साधु सिद्धीने नमस्कार करी पञ्चरमेष्ठिबाबक नमस्कार मन्त्रनो जाप करी
 अरहत, सिद्ध, साधु जने केवलप्रकृत धर्मनु शरण ले. अक्षर प्रकारना
 पापस्थानोने परित्याग करी समस्त लोकोनी क्षमायाचना करी पीताम्ब तस्त्री
 पञ्च जेभने क्षमा आपी. आ अचसरमां पञ्च त्वग्गतं नादि प्रिया करतां करतां
 ते धृति-सहनन-जग-मुक्त ग्लान साधु निश्चित देशमा दास्य व्याख्यात

ગ્લાનઃ સ મિશ્રુ ઇત્વરિકમ્=ઇક્ષિતમરણં નિયતદેશપ્રચારાઙ્ગીકારરૂપં યાવજ્જીવં ચતુર્વિધાહારત્યાગનિયમં કુર્યાત્, ઉક્તञ્ચ—

“પચ્ચક્ષ્વહ આહારં, ચત્ત્વિહં નિયમઓ ગુરુસમીવે ।

ઇંગિયદેસંમિ તહા, ચિટ્ઠંપિ હુ નિયમઓ કુણહ ॥ ૧ ॥

ઉવ્વત્તહ પરિયત્તહ, કાઙ્ગમાઈવિ અપ્પણા કુણહ ।

સવ્વમિહ અપ્પણ ચ્ચિય, ણ અન્નજોગેણ ધિતિવલિઓ ” ॥ ૨ ॥

છાયા—પ્રત્યાખ્યાતિ આહારં, ચતુર્વિધં નિયમાદ્ ગુરુસમીપે ॥

ઇક્ષિતદેશે તથા, ચેષ્ટામપિ નિયમતઃ કરોતિ ॥ ૧ ॥

ઉદ્વર્તતે પરિવર્તતે કાયિક્યાદ્યપિ આત્મના કરોતિ ॥

સર્વમિદ્વાત્મનૈવ નાન્યયોગેન ધૃતિવલિકઃ ॥ ૨ ॥

પ્રદેશમેં હલને—ચલનેરૂપ મર્યાદાસે યુક્ત ઇંગિતમરણકો કિ જિસમેં યાવજ્જીવ ચતુર્વિધ આહારકા પરિત્યાગ હોતા હૈ ધારણ કરે । કહા મી હૈ—

“પચ્ચક્ષ્વહ આહારં, ચત્ત્વિહં નિયમઓ ગુરુસમીવે ।

ઇંગિયદેસમિ તહા, ચિટ્ઠં પિ હુ નિયમઓ કુણહ ॥ ૧ ॥

ઉવ્વત્તહ પરિયત્તહ, કાઙ્ગમાઈ વિ અપ્પણા કુણહ ।

સવ્વમિહ અપ્પણ ચ્ચિય, ણ અન્નજોગેણ ધિતિવલિઓ ” ॥ ૨ ॥

ભાવાર્થ—ઇસ ઇંગિત મરણમેં ગુરુકે સમીપ ચતુર્વિધ આહારકા પરિત્યાગ નિયમસે હોતા હૈ, ઇસ મરણમેં નિયમિત પ્રદેશમેં હી ગમનાગમનરૂપ ચેષ્ટા સાધુ કરતા હૈ, અનિયમિત પ્રદેશમેં નહીં । ઇસમે સમસ્ત શારીરિક સેવા સમાલ સાધુ સ્વતઃ કરતા હૈ, દૂસરોં સે નહીં કરવાતા ।

મર્યાદાયુક્ત ઇંગિતમરણ કે બેબે યાવજ્જીવ ચતુર્વિધ આહારનો પરિત્યાગ હોય છે—ધારણ કરે કહ્યું પણ છે—

“પચ્ચક્ષ્વહ આહારં, ચત્ત્વિહં નિયમઓ ગુરુસમીવે ।

ઇંગિયદેસંમિ તહા, ચિટ્ઠં પિ હુ નિયમઓ કુણહ ॥ ૧ ॥

ઉવ્વત્તહ પરિયત્તહ, કાઙ્ગમાઈ વિ અપ્પણા કુણહ ।

સવ્વમિહ અપ્પણ ચ્ચિય, ણ અન્નજોગેણ ધિતિવલિઓ ” ॥ ૨ ॥

ભાવાર્થ—આ ઇંગિત મરણમા ગુરૂની સામે ચતુર્વિધ આહારનો પરિત્યાગ નિયમથી થઈ જાય છે, એવા મરણમા નિયમિત પ્રદેશમા ગમનાગમનરૂપ ચેષ્ટા સાધુ કરે છે, અનિયમિત પ્રદેશમા નહિ એમા દરેક રીતે શારીરિક સેવા સમાળ સાધુ પોતે જ કરે છે—બીજાથી કરાવતા નથી.

પરમિશ્ચિત્તમરણવિધાયી કીરશો મળતીત્યાહ—‘તત્સત્ય’—મિત્યાદિ, સત્ય શાદી યયોક્તાનુશ્રાનાહ યથામુદીતપ્રવિધાપરિપાક્ષનાત્, એષમ્ મોહાઃ=રાગદ્વેષ રચિતઃ, ક્ષિં ચ—તીર્થઃ=દુષ્પારસંસારપારામારપારં ગતાઃ, અથ તરત્તસ્ય મવિષ્યત્કાન્તિ- કર્ત્વેઽપિ મૃતકાલિકસ્વમૌપચારિકં ચોખ્યમ્। એષ ‘છિન્નકર્મકથાઃ’ છિન્ના=દૂરીકૃતા કર્મ=કર્મમપિક્ષ્મા કથા=રાગકથાવિક્ષ્મા વિક્ષ્વા યન સ છિન્નકર્મકથા’। યદ્વા—‘છિન્નકર્મકથાઃ’—છિન્ના=અપનીતા ‘શ્ચિત્તમરણપ્રવિધામાઈ કર્મ=કેન પ્રશ્નરેષ પારયિષ્યે’ इत्येवविधा कथा यन स छिन्नकर्मकथा, यस्त्वष्टुविमान् इदनुष्ठेयाचारमाचरितुं प्रवृत्तो मनसि स जायते कर्मकमी, परन्तु यः पूर्वाश्रयविधा

શ્ચિત્તમરણ કરનેવાલા સાધુ કેસા હોતા હૈં હસ વાતકો સૂત્રકાર નિમ્ન લિખિત પદોં દ્વારા પ્રવર્ણિત કરતે હૈં—બહ સત્યવાદી હોતા હૈં, કારણ કિ જિસરુપસે ડસને નિયમ પ્રહણ કિયા હૈં ડસીં રુપસે બહ ડસકા નિર્વાહક હોતા હૈં। બહ ઓઝ-રાગદ્વેષ રહિત હોતા હૈં। તીર્ણ જિસકા પાર હોના મુશ્કિલ હૈં, એસે સંસારરુપી સમુદ્રકો તૈરનેવાલા હોતા હૈં। યદ્યપિ સંસારસમુદ્રસે યહ અમી પાર નહીં જુઆ હૈં, આગે પાર હોગા, ફિર જો યહાં ‘તીર્ણઃ’ એસા મૃતકાલિકા પ્રયોગ કિયા હૈં બહ કેબલ ઉપચારસે હી સમજના વાલિયે। યહ છિન્નકર્મકથા હોતા હૈં—રાગકથાવિક્ષ્મા વિક્ષ્વાઓંકા દૂર કરનેવાલા હોતા હૈં। અથવા—“હસ શ્ચિત્તમરણ નિયમકા મૈં કેસે નિર્વાહ કર સકૂંગા ?” હસ પ્રકારકી કથાકા પરિહારક હોતા હૈં। જો અમૃતિવાલા હો કર દુરનુષ્ઠેય આચારકો આચરિત કરનેકે લિયં પ્રવૃત્ત હોતા હૈં બહી

ઇતિત મરણ કરવાવાળા સાધુ કેવા હોય છે એ વાતને સૂત્રકાર નિચેના પદોથી કહે છે—તે સત્યવાદી હોય છે કારણ કે એવા રૂપથી એણે નિયમ લીધેલ હોય છે એ રૂપથી તે એને નીલાવે છે. તે ઓઝ-સજદેવરહિત હોય છે તોર્ને-એનાથી પાર થવું મહામુશ્કેલ છે તેવા સંસારરૂપી સમુદ્રને તરી જનાય હોય છે હજુ સુધી એ સંસારસમુદ્રથી પાર અર્ધ શકયા નથી—આખળ ઉપર પાર થયે, છતાં પણ અર્ધ “તીર્થઃ” એવો મૃતકાળનો પ્રયોગ કરેલ છે તે ફક્ત ઉપચારરૂપ જ સમજવે। એમણે તે છિન્નકર્મ કથા હોય છે—સજદેવરહિત કથારૂપ વિક્ષ્વાઓથી દૂર રહેનારા હોય છે અથવા —“આ ઇતિતમરણ નિયમને હું કઈ રીતે પાળી શકીશ આ મહારત્ની આશ કરવાળા હોય છે એ અમૃતિવાળા (ખીરજ વગરના) અર્ધ દુરનુષ્ઠેય અથવા રત્નો આચરણ કરવામાં પ્રવૃત્ત થાય છે તે કથારૂપી બને છે, “હું હવે આ આચરણ પાલન કેમ કરી શકીશ ” એવી કથા કથી કરે છે પરંતુ તે એવા નથી, કેમ કે

સ મહાપુરુષતયા ધૃતિવલસમ્પન્નસ્તાદૃશો ન ભવતીત્યર્થઃ, તથા-આતીતાર્થઃ
 આ=સમન્તાદ્ અતીવ્વૈતો=જ્ઞાતઃ અર્થો=જીવાજીવાદિપદાર્થો યેન સ
 આતીતાર્થઃ=સમ્યક્તયા પરિજ્ઞાતપદાર્થસાર્થઃ । યદ્વા-આતીતાઃ=સમ્યગ્રૂપેનાતિક્રા
 ન્તા અર્થાઃ=પ્રયોજનાનિ યસ્ય સઆતીતાર્થઃ=નિવૃત્તવ્યાપારઃ, એવમ્-‘અનાતીતઃ-
 આ=સમન્તાત્ અતીવ્વૈતઃ=ગતોઽનાદિસસારં સ આતીતઃ, અવિદ્યમાન આતીતો યસ્ય
 સઃ-અનાતીતઃ=અપારસંસારપારગામી, સ મિષ્ટુઃ, તદ્=ઇક્ષિતમરણં-‘સત્ય’ સદ્ગુણો
 હિતં સત્યં સર્વજ્ઞોપદેશેન સુગતિગમનેઽવિસંવાદાત્તથ્યં વિજ્ઞાય મિદુરં=પ્રતિક્ષણવિશર-
 ણશીલં કાયમ્=ઔદારિકં દેહં ત્યક્ત્વા=વિહાય વિરુપરૂપાન્=વહુવિધાન્ પરીપહોપ-
 સર્ગાન્ સવિધૂય=અપનીય અસ્મિન્=વીતરાગોપદિષ્ટે શાસને વિશ્રમ્ભણતયા=વિશ્વાસ-
 માજનતયા તદુક્તાગમસ્ય નિઃસશયં પરિશીલિતત્વેન ભૈરવ=કાતરાણા ભયાવહ

કથંકથી હોતા હૈ, “મૈ અવ્વ હસ આચારકા પાલન કૈસે કર સકૂગા” એસી
 કથા કિયા કરતા હૈ પરતુ યહ્ એસા નહીં હૈ, ક્યોં કિ યહ્ મહાપુરુષ
 હોનેસે ધૃતિવલસમ્પન્ન હોતા હૈ । યહ્ આતીતાર્થ હોતા હૈ-અચ્છી તરહસે
 જીવ ઔર અજીવ આદિ પદાર્થોં કા જ્ઞાતા હોતા હૈ । અથવા સમ્યક્રૂપસે
 અતિક્રાન્ત હો ચુકે હૈં સમસ્ત પ્રયોજન જિસકે એસા હોતા હૈ । યહ્
 અનાતીત-અપાર સંસારસે પારગામી હોતા હૈ ।

યહ્ મુનિ સર્વજ્ઞકે ઉપદેશસે સુગતિકે ગમનમેં વિસંવાદરહિત હોનેસે
 હી સજ્જનોંકે લિયે હિતવિધાયક હસ ઇગિતમરણરૂપ સત્યકો જો કાયરોંકે
 લિયે ભયાવહ્ હૈ જાનકર વીતરાગ ઉપદિષ્ટ શાસનમેં વિશ્વાસયુક્ત હોનેકે
 કારણસે હી સેવન કરતા હૈ; ઔર યહ્ સમક્ષતા હૈ કિ “યહ્ ઔદારિક
 શરીર પ્રતિક્ષણ વિનાશરૂપ હૈ, હસ લિયે હસ મરણદ્વારા હસકા ત્યાગ

તે મહાપુરુષ હોવાથી ધૃતિભળસ પન્ન હોય છે, તે આતીતાર્થ હોય છે-સારી રીતે
 જીવ અને અજીવ વગેરે પદાર્થોના બહુકાર હોય છે અથવા સમ્યક્રૂપથી અતિ
 ક્રાન્ત થઈ ચુક્યા છે સમસ્ત પ્રયોજન જેમના એવા હોય છે, તે અનાતીત-અપાર
 સ સારથી પારગામી હોય છે

તે મુનિ સર્વજ્ઞના ઉપદેશથી સુગતિના ગમનમા વિસંવાદરહિત હોવાથી
 જ સજ્જનોને માટે હિતવિધાયક એવા ઇગિતમરણરૂપ સત્યને જે કાયરોને માટે
 ભયકારક છે બહુની વીતરાગદ્વારા ઉપદેશેલ શાસનમા વિશ્વાસ હોવાના કારણે સેવ
 છે અને સમજે છે કે-“આ ઔદારિક શરીર પ્રતિક્ષણ વિનાશરૂપ છે આ માટે
 એ મરણદ્વારા ત્યાગ કરવો તે સર્વોચ્ચ કાર્ય છે” આ ખ્યાલથી જે ઔદારિક
 શરીરનો એના સેવનથી પરિત્યાગ કરે છે એટલે આ મરણનું આચરણ કરતી વખતે

સાધ્યાપારમ્ અનુચીર્ષ = આશસ્તિથાન્, તપાપિ = વ્યાધિપીઢાનિતેષ્વિમ-
ત્સસીઢરથેઽપિ તસ્ય=કાલક્રસ્ય સાધોઃ કાલપર્યાય, કર્મનિર્જરણસ્યોમયમ્
સમાન્તરાત્, પ્રતઃ સ તમ્ અનિત્કારકો મત્તિ, સ્થારમ્ય યાવત્ આતુગામિકં
તસ્ય મત્તિ। 'इति ब्रवीमी'—ત્યસ્યાર્વસ્તુક્ટ એવ ॥ સૂ ૫ ॥

॥ આઠવે અધ્યયનકા છઠ્ઠા ઉદેશ સમાપ્ત ॥ ૮-૬ ॥

કરના સર્વોત્તમ કાર્ય છે ” હસી ચ્યાલ સે જો હસ ઔદારિક શરીરકા
હસકે સેવનસે પરિત્યાગ કરતા હૈ, એવં હસ મરણકે આશ્વરણ કરતે
સમય હસે જો મી અનેક પ્રકારકે પરીપહઁ મૌર ઉપસર્ગ આવે હૈં ઉન્હૈં
યહ આનદસે સહન કરતા હૈ, અસ ઝોર ધ્યાન નહીં દેતા હૈ,
અસ કાલક્ર સાધુકી, વ્યાધિપીઢાસે જનિત હસ ઇગિતમરણમેં મી
કાલપર્યાય હૈ, ક્યોં કિ કર્મકી નિર્જરા દોનોં જગહ સમાન હૈ, હસ
તિય વહ સાધુ સંસારકા અન્તકારક હોતા હૈ ઔર અન્મમરણકે જાલકો
ચિન્ટ કર મોક્ષકે અનુકૂલ માર્ગપર ચલ્તનેવાલા હોતા હૈ । સૂ ૦૫ ॥

॥ આઠવે અધ્યયનકા છઠ્ઠા ઉદેશ સમાપ્ત ॥ ૮-૬ ॥

એ અનેક પ્રકારના પરિવહ અને ઉપસર્ગ આવે છે તેને આનદથી સહન કરે
છે-એ તરફ ધ્યાન આપતા નથી એવા કાલક્ર સાધુનું વ્યાધિ પીડાથી મથેલ
દિનિત મરણ પશ્ચ કાળપર્યાય છે કેમ કે કર્મની નિજા જન્મે સ્થળે સમાન
છે આ કારણે તે સાધુ સંસારનો અન્ત કરનાર હોય છે અને જન્મ મરણની
ચક્રને સેદીને મોક્ષના અનુદાન માત્ર ઉપર આશ્રયપાળા હોય છે. (સૂ ૫)

આઠમા અધ્યયનનો છઠો ઉદેશ સમાપ્ત ॥ ૮-૬ ॥

। અથાષ્ટમાધ્યયનસ્ય સપ્તમ ઉદ્દેશઃ ।

અભિહિતઃ પ્ષ્ઠ ઉદ્દેશઃ, સામ્પ્રતં સપ્તમ આરંભ્યતે । અસ્ય પૂર્વોદ્દેશેન સદાય સમ્બન્ધઃ—પૂર્વત્રૈકત્વભાવનાભાવિતાન્તઃકરણસ્ય ધૃતિ-સંહનનયુક્તસ્યેદ્વિતમરણ વર્ણિતમ્ । અત્ર ચૈકત્વભાવના પ્રતિમાભિઃ સમ્પાદનીયેત્યેકત્વભાવનામેવ ઋચયિતા વિશિષ્ટતરસંહનનોપેતસ્ય પાદપોપગમનમપિ વિધેયમિતિ પ્રતિપાદનીયમ્ । તત્ર પ્રથમપ્રતિમાપ્રતિપન્નસ્યાભિગ્રહવિશેષેણાવસ્થા વર્ણયતિ—‘ જે ભિક્ષૂ ’ ઇત્યાદિ ।

મૂલમ્—જે ભિક્ષૂ અચેલે પરિવુસિણ, તસ્સ ણં ભિક્ષુસ્સ એવં ભવઈ—ચાણમિ અહં તણફાસં અહિયાસિત્તણ, સીયફાસં અહિયાસિત્તણ, તેડફાસં અહિયાસિત્તણ, દંસ—મસગફાસં અહિયાસિત્તણ, ઇગયરે અન્નતરે વિરૂવરૂવે ફાસે અહિયાસિત્તણ, હિરિપહિચ્છાયણં ચઽહં નો સંચાણમિ અહિયાસિત્તણ, એવં સે કપ્પઈ કહિવંધણં ધારિત્તણ ॥ સૂ૦ ૧ ॥

॥ આઠવે અધ્યયનકા સાતવાં ઉદ્દેશ ॥

છઠ્ઠા ઉદ્દેશ કહા જા ચુકા હૈ । અવ સપ્તમ ઉદ્દેશ પ્રારંભ હોતા હૈ । ઇસકા પૂર્વ ઉદ્દેશ કે સાથ યહ સંવધ હૈ—પૂર્વ ઉદ્દેશમેં એકત્વકી ભાવનાસે ભાવિત અન્તઃકરણવાલે, એવ ધૃતિ-સંહનનસે યુક્ત સાધુકે ઇંગિત મરણકા વર્ણન કિયા હૈ । ઇસ ઉદ્દેશમેં પ્રતિમાઓં દ્વારા વહ એકત્વ ભાવના સંપાદનીય હૈ, અતઃ એકત્વભાવનાકા હી કથન કરકે વિશિષ્ટતર સંહનનસે યુક્ત ઇસ સાધુકો પાદપોપગમન સંચારા ભી વિધેય હૈ, યહ પ્રતિપાદિત હોગા । ઇસમેં સર્વ પ્રથમ સૂત્રકાર પ્રતિમાપ્રતિપન્ન સાધુકી અભિગ્રહવિશેષસે અવસ્થાકા વર્ણન કરતે હૈ—“સે ભિક્ષૂ ” ઇત્યાદિ ।

આઠમા અધ્યયનનો સાતમો ઉદ્દેશ

છઠ્ઠો ઉદ્દેશ કહેવાઈ ગયેલ છે હવે સાતમા ઉદ્દેશનો પ્રારંભ થાય છે આનો પૂર્વ ઉદ્દેશની સાથે આ સંબધ છે—પૂર્વ ઉદ્દેશમા એકત્વની ભાવનાથી ભાવિત અન્તઃકરણવાળા, અને ધૃતિ સંહનનથી યુક્ત સાધુના ઇંગિત મરણનું વર્ણન કરેલ છે આ ઉદ્દેશમા પ્રતિમાઓંદ્વારા તે એકત્વભાવના સંપાદનીય છે આ રીતે એકત્વભાવનાનું જ કથન કરીને વિશિષ્ટતર (૬૯) સંહનનથી યુક્ત એ સાધુને પાદપોપગમન સંચારો પણ વિધેય છે, આ પ્રતિપાદિત થશે.

આમા સર્વ પ્રથમ સૂત્રકાર પ્રતિમાપ્રતિપન્ન સાધુની અભિગ્રહવિશેષ અવસ્થાનું વર્ણન કરે છે—“ સે ભિક્ષૂ ” ઇત્યાદિ

छाया—यो मिधुरचेः। पर्युषितस्तस्य स्मृत्तु मिश्रोरेव भवति—अन्नोम्यै
 वृषस्पर्शमध्यासितु, शीतस्पर्शमध्यासितु, दंश-मक्षकस्पर्शमध्यासितुमेकतरानन्यतरान्
 विरूपकपान् स्पृष्टान् अध्यासितु शीतस्पर्शमध्यासितुं नो अन्नोम्यध्यासितुम्, एवं
 तस्य कल्पते कटिबन्धनं पर्युषम् ॥३०॥

टीका—‘यो मिधु’—रिप्यादि, यः प्रतिमाप्रतिपन्नो मिधुः=अन्तर्गतः, अन्तः
 =अभिप्रायविशेषेण यमननर्मितः सन् पर्युषितः=संयमो तपसि च व्यवस्थितोऽस्ति
 तस्य मिश्रोः=मुनेचेतसि एवम्=इत्थं भवति—अंशं वृणस्पर्शम्=वृणस्पर्शजन्यपीडाम्
 अध्यासितुम्=अध्यासितुम्, एवं शीतस्पर्शमध्यासितुम्, किञ्च तद्व्यासर्शं=प्रवृत्तमा-
 र्शं किञ्चान्नितोऽप्यन्यकहमध्यासितुम्, तथा दंश-मक्षकस्पर्शं=दंश-मक्षकजन्यमनि-
 तद्व्यासर्शमध्यासितुं, तथा एकतराम्=वृक्ष्यान् केवलशीतोष्णादिजनितान्, अन्य
 तरान्=द्विषहोरकतरान्, तथाविधान् विरूपकपान्=बहुविधान् कर्कशकठोरभूमिकण्ट

‘यो मिधु’=जो प्रतिमाप्रतिपन्न साधु, ‘अन्तः’=अभिप्रायविशेष से
 बद्धरहित होता हुआ, ‘पर्युषितः’=संयम और तपमें व्यवस्थित है, तस्य
 मिश्रो’=उस मुनिके ‘चेतसि’ चित्तमें, ‘एवं भवति’=इस प्रकार विचार
 आता है कि—‘अहं’=मैं, ‘वृणस्पर्श’=वृणस्पर्शजन्य पीडाको ‘अध्यासितुं’=
 सहन करनेके लिये, ‘एवं’ इसी प्रकार ‘शीतस्पर्श’=शीतस्पर्शजन्य बाधाको
 ‘अध्यासितुं’=सहन करने के लिये, ‘तथा स्पर्श’=सूर्यकी प्रसर किरणोंसे
 जनित उष्णताजन्य कष्टको ‘अध्यासितुं’=सहन करनेके लिये, तथा
 ‘दंशमक्षकस्पर्श’=दंशमक्षकके काटनेसे उत्पन्न हुए परिपक्वविशेषका
 ‘अध्यासितुं’=सहन करनेके लिये, तथा—‘एकतरान्’=केवल शीत अथवा
 उष्ण आदि जनित किसी एक वृक्षको, तथा ‘अन्यतरान्’=शीत उष्ण
 आदि दो में से अथवा बहुतोंमें से किसी अन्यतर कष्टको, अथवा ‘विरूपक-
 पान्’=अनेक प्रकारके कर्कश और कठोर भूमि और कण्टक आदिसे

यः मिधुः=जो प्रतिमाप्रतिपन्न साधु अथवा=अभिप्राय विशेषी वृक्षरहित
 होता हुआ पर्युषितः=संयम अने तपसी व्यवस्थित है तस्य मिश्रोः=उस मुनिके
 चेतसि चित्तमें एवं भवति=इस प्रकार विचार आता है कि—अहं=हूँ
 वृणस्पर्श=वृणस्पर्शजन्य पीडाने, अध्यासितुं=सहन करना भाटे, “एवं” के
 प्रकारे शीतस्पर्श=शीत तपस्पर्शजन्य बाधाने अध्यासितुं=सहन करना भाटे तथा
 तद्व्यासर्शं=अति तपसा सूर्यना उन्नतिरूपने अध्यासितुं=सहन करना भाटे, तथा
 दंशमक्षकस्पर्शं=दंश मक्षकजन्य परिपक्व अध्यासितुं=सहन करना भाटे एकतरान्=
 केवल-शीत अथवा अश्वी आदि में से जो केवल अन्यतरान्=तथा पीडित
 प्रकारना वृक्ष दुर्भाग्यी अथवा विरूपकपान्=अनेक प्रकारना कर्कशवाणी अने

કાર્દિજનિતાન્ સ્પર્શાન્=દુઃખાનિ અધ્યાસિતુ શક્નોમિ=સમર્થોઽસ્મિ । ધૃતિ-સહનન-યુક્તસ્ય શ્રુતજ્ઞાનદૃષ્ટ્યા પરિજ્ઞાત-નારક-તિર્યગ્વેદનાભિભવસ્ય વૈરાગ્યભાવના-ભાવિતસ્ય પ્રતિમાપ્રતિપન્નસ્ય મે તાદૃશાનિ દુઃખાનિ વહુશોઽનુધૂતપૂર્વાણિ સન્ત્યત એતાનિ દુઃખાનિ માં પરિભવિતું ન શક્નુવન્તીત્યાશયઃ, પરન્તુ-અહ કેવલં 'હીપ્રતિ-ચ્છાદન' દ્વિયા=લજ્જયા ગુહ્યસ્ય પ્રતિચ્છાદનમ્=આચ્છાદનમ્, મધ્યમપદસ્ય ગુહ્યસ્ય લોપઃ, ત્યક્તું=વિહાતુ ન શક્નોમિ=લજ્જાસ્વભાવત્વેન વિકૃતસાધુવેપશઙ્કયા ચ તત્પરિહર્તુ ન સમર્થોઽસ્મીત્યર્થઃ । એવં પૂર્વોક્તહેતુભિઃ તસ્ય=પ્રતિમાપ્રતિપન્નસ્ય ભિક્ષોઃ કટિબન્ધન=વિસ્તરેણ ચતુરંગુલાધિઋહસ્તપ્રમાણં, દૈર્ઘ્યેણ કટિપ્રમાણ, ગણનયા ચૈકં

જનિત 'સ્પર્શાન્'=દુઃખોકો, 'અધ્યાસિતુ'=સહન કરનેકે લિયે, 'શક્નોમિ'=સમર્થ હું ।

ભાવાર્થ—ધૃતિ ઓર સહનનસે યુક્ત, શ્રુતજ્ઞાનકી દૃષ્ટિસે નરક ઓર તિર્યગ્ગતિકે કષ્ટોકો જાનનેવાલે, વૈરાગ્યભાવનાસે ભાવિત, ઓર પ્રતિમાપ્રતિપન્ન, એસે મૈને જબ ઉસ ૨ પ્રકારકે દુઃખોકા પૂર્વમેં વહુતવાર અનુભવ કિયા હૈ તો ફિર યે દુઃખ મુક્તે, દુઃખિત યા તિરસ્કૃત કરનેકે લિયે સમર્થ નહીં હો સકતે હૈ ।

“હી-પ્રતિચ્છાદન” ઇસ પદમેં મધ્યમ પદ “ગુહ્ય”કા લોપ હુઆ હૈ, અતઃ ‘દ્વિયા’=લજ્જાકે કારણ ‘ગુહ્યસ્ય’=ગુહ્યભાગકે ‘પ્રતિચ્છાદન’=આચ્છાદનરૂપ વસ્ત્રકો ‘ત્યક્તું’=છોડને કે લિયે મૈ, ‘ન શક્નોમિ’=લજ્જા-યુક્ત સ્વભાવવાલા હોનેસે, ઓર સાધુકાવેષકી વિકૃતિ હો જાનેકી શંકા સે સમર્થ નહીં હૂ । ‘એવ’=હન પૂર્વોક્ત કારણોસે ‘તસ્ય’=ઉસ પ્રતિમાપ્રતિપન્ન સાધુકે, ‘કટિબન્ધન’=ચાર અંગુલ અધિક એક હાથ પ્રમાણ વિસ્તૃત એવં

કઠોર ભૂમિના, અને કાટા વગેરેથી ભરેલા, સ્પર્શાન્=દુઃખોને, અધ્યાસિતું=સહન કરવા માટે શક્નોમિ=સમર્થ છું

ભાવાર્થ—ધૃતિ અને સહનનથી યુક્ત શ્રુતજ્ઞાનની દૃષ્ટિથી નરક અને તિર્યગ્ ગતિના કષ્ટોને જાણવાવાળા વૈરાગ્ય ભાવનાથી ભાવિત અને પ્રતિમાપ્રતિપન્ન એવો મે જ્યારે જે જે દુઃખોનો અગાઉ ઘણી વખત અનુભવ કરેલ છે તો પછી આ દુઃખ મને દુઃખિત અથવા તિરસ્કૃત કરવામા સમર્થ બની શકનાર નથી

“હીપ્રતિચ્છાદન” આ પદમા મધ્યમ પદ “ગુહ્ય”નો લોપ થયેલ છે એ રીતે દ્વિયા=લજ્જાથી, ગુહ્યસ્ય=ગુહ્ય ભાગના, પ્રતિચ્છાદન=આચ્છાદનરૂપ વસ્ત્રને, ત્યક્તું=છોડવા માટે હું, ન શક્નોમિ=લજ્જાયુક્ત સ્વભાવ હોવાથી, અને સાધુના વેષની વિકૃતિ થઈ જવાની શંકાથી સમર્થ નથી એવ=આ પૂર્વોક્ત કારણોથી તસ્ય=એ પ્રતિમાપ્રતિપન્ન સાધુએ, કટિબન્ધન=ચાર આંગળ અધિક એક હાથ

કટિવશ્ચં પર્તું કલ્પતે । યદિ પુનર્લજ્જાપરીપહસદ્દનસમર્થાઽપિ મવચર્હિં ફક્ત
સદોસ્થસ્ત્રસક્ષિકારમોદરણોપધિકોઽચેલ એવં પરાક્રમત ॥ સૂ. ૧ ॥

સત્તરહિતસ્થેન શીતાદિસ્પર્શગ્રન્યદુઃસ્થિશેષં સમ્યગધિસદ્દેવેતિ વર્ણયતિ—
'અદુષ્ટા' इत्यादि ।

મૂલ્ય—અદુષ્ટા તત્થ પરાક્રમત મુઝ્જો અચેલ તળપાસા
ફુસતિ, સીયપાસા ફુસતિ, તેઝપાસા ફુસતિ, દસમસગપાસા
ફુસતિ, પગયરે અન્નયરે વિકુલકુલે પાસે અદ્વિયાસેઙ્ગ, અચેલે
લાઘવિય આગમમાણે, જાવ સમમિજાણિયા ॥ સૂ. ૨ ॥

છાયા—અથવા તથા પરાક્રમમાર્ગે ધ્રુવોઽચેલં તૃણસ્પર્શાં સૃષ્ણન્તિ, શ્વીતસ્પર્શાં
સૃષ્ણન્તિ, વેનસ્પર્શાં સૃષ્ણન્તિ, વશ્યશ્ચક્રસ્પર્શાં સૃષ્ણન્તિ, એકત્વરાન્યતરાન્ વિક્ષ્પ
રૂપાન્ સ્પર્શાન્ અધિસદ્દત્ત અથ્થો લાઘવિકમાગમ્યન્ યાવત્સમમિજાનીયાત્ ॥ સૂ. ૨ ॥

ટીકા—'અવશે'—સ્વાદિ, અથવા—પદાન્તરં તત્થા પૂર્વસૂત્રે હતુસરવે વસતં
પત્ત્વં યદિ ન સજ્જતે તદા ચેતરહિતં પરાક્રમત, ઇત્યુક્તમ્, તતાઽન્યપદ્ધમાભિત્ય
કટિપ્રમાણ સમ્યક એક કટિવશ્ચક્રા ધારણ કરના કલ્પિત છે—શાસ્ત્રાધિહિત
માર્ગે છે । યદિ વહ સાધુ લજ્જાપરીપહકો જીતનેમેં શક્તિસપન્ન છે તો
મી ત્તસે ચોરેસહિત મુદ્ધપત્તિ ઓર રજોદ્ધરણ, એ વો અપધિયાં તો
રક્ષના હી ચાહિયે । ફનકે રક્ષન પર 'મી વહ અચેલક હી છે ॥ સૂ. ૧ ॥

સત્તરહિત હોનેસે સાધુ શીતસ્પર્શાં આદિ જન્યદુઃસ્થ વિદોષકો અન્ધી
તરહ સદ્દનકરે, ફસ વિષયકો સૂત્રકાર પ્રવર્દિત કરતે છે—'અદુષ્ટા'
इत्यादि ।

"અથવા" શબ્દ પદાન્તરકા ઘોતક છે ફસલિય "પૂર્વસૂત્રમેં લજ્જા-
વિદેહુક સન્નાહમેં સાધુ વશ્ચ ધારણ કર, યદિ લજ્જાપરીપહ ત્તસને જીત

પ્રમાણ પહેળુ કહના પ્રમાણે લાંબુ બેઠ વશ્ચ કેડ ઉપર ધારણ કરવું કહિયત
છે—શાસ્ત્રમા કહેલ માર્ગ છે । પરંતુ તે સાધુ લજ્જાપરિપહને છત્તવામાં શક્તિ
અપન્ન છે તો પણ બેઠે દોરાસહિત મુદ્ધપત્તિ અને રત્નેકરણ આ બે ઉપધિયો
તો શામલી જ બેઠે બે. આને સળવાથી પણ તે અધિલક જ છે (સૂ. ૧)

સત્તરહિત હોવાથી સાધુ કહી આદિ સ્પર્શગ્રન્ય દુઃખ સારી રીતે સદ્દન
કરે, આ વિષયને સૂત્રકાર પ્રવર્દિત કરે છે—'અદુષ્ટા' इत्यादि.

"અથવા" શબ્દ પદાન્તરકા ઘોતક છે માટે પૂર્વ સૂત્રમાં "લજ્જા-
વિદેહુક સન્નાહવામાં સાધુ વશ્ચ ધારણ કરે, કહાય લજ્જા પરિપહ તેણે છત્ત

કથયતિ-તત્ર સંયમે પરાક્રમમાણમ્ અચેલમ્=વસ્ત્રરહિત તૃણસ્પર્શાઃ=તૃણસ્પર્શજન્ય-
 દુઃખાનિ સ્પૃશન્તિ=અભિભવન્તિ, એવં શીતસ્પર્શાઃ સ્પૃશન્તિ, તેજઃસ્પર્શાઃ
 સ્પૃશન્તિ, દંશમશકસ્પર્શાઃ સ્પૃશન્તિ, एतादृशान् एकतरान् अन्यतरान् विरूपरूपान्
 स्पर्शान् सोऽचेलः=અધિસહતે લાઘવિક્રમાગમયન્ યાવત્ સમ્યક્ત્વમેવ સમભિજા-
 નીયાત્। વ્યાખ્યા પૂર્વદિશાઽવસેયા ॥ સૂ.૦૨ ॥

પ્રતિમાપ્રતિપન્નોઽભિગ્રહવિશેષ સ્વીકૃયાત્-“અહમન્યેભ્યઃ પ્રતિમાપ્રતિપન્નેભ્યઃ
 કિમપિ दास्यामि, तेभ्यो वा ग्रहीष्यामि” इत्यादि चतुर्भङ्गिकया दर्शयति-
 ‘जस्स णं’ इत्यादि।

લિયા હૈ તો વસ્ત્રકા મી પરિત્યાગ કર દેવે ” જો યહ વિષય વતલાયા હૈ
 उससे भिन्न पक्षका आश्रय कर सूत्रकार कहते हैं कि-संयममें लवलीन
 वस्त्ररहित साधुको तृणस्पर्शजन्य दुःखविशेष पीडित करते हैं, शीतस्पर्श
 दुःखित करते हैं, उष्ण स्पर्श कष्ट पहुंचाते हैं, दंशमशक बाधा पहुंचाते
 हैं, एकतर या अन्यतर विरूपरूप परिषह उसे आकुलित करते हैं, परन्तु
 उस अचेल-वस्त्ररहित साधुका कर्तव्य है कि वह इन समस्त परिषह-
 जन्य बाधाओंको सहन करे। इससे उसे यह लाभ है कि उसके संचित-
 कर्मोंका भार हल्का होगा और आगामी कर्मोंका बंधन भी शिथिल
 होता रहेगा। ‘लाघविय आगममाणे’ यहांसे ले कर ‘सम्मत्तमेव
 समभिजाणिया’ यहां तकके इन पदोंकी व्याख्या चतुर्थ उद्देशमें पहिले
 की गई व्याख्या के अनुसार ही जान लेनी चाहिये ॥सू.०२॥

લીધો હોય તો વસ્ત્રનો પણ પરિત્યાગ કરે ” જે આ વિષય બતાવ્યો છે તેનાથી
 ભિન્ન પક્ષનું આશ્રય કરી સૂત્રકાર કહે છે કે—સંયમમાં લવલીન વસ્ત્રરહિત
 સાધુને તૃણસ્પર્શજન્ય દુઃખવિશેષ પીડા કરે છે, ઠડીનો સ્પર્શ દુઃખ કરે છે,
 ગરમીનો સ્પર્શ પીડા પહોંચાડે છે ડાસ, મચ્છર બાધા પહોંચાડે છે એકતર
 અને અન્યતર વિરૂપરૂપ પરિષદ તેને આકુળ બ્યાકુળ કરતા રહે છે, પરંતુ એ
 અચેલ-વસ્ત્રરહિત સાધુનું એ કર્તવ્ય છે કે તે આવી સમસ્ત પરિષદજન્ય
 પીડાઓ સહન કરે આથી તેને એ લાભ છે કે તેના સંચિત કર્મોનો ભાર
 હળવો થશે, અને આગામી કર્મોનું બંધન પણ શિથિલ થતા રહેશે.
 “લાઘવિય આગમમાણે” અહીંથી લઈ “સમત્તમેવ સમભિજાણિયા” અહીં સુધીના
 પદોની વ્યાખ્યા પહેલા ચતુર્થ ઉદ્દેશમાં કહેવાઈ ગયેલ વ્યાખ્યાની અનુસાર જાણી
 લેવી જોઈએ. (સૂ.૦૨)

मृष्य-जस्त ण भिक्खुस्त एव भवइ-अह च खलु अन्नेसिं
 भिक्खूण असण वा ४ आहट्टु दलइस्सामि, आहट्ट च साइ
 जिजस्सामि (१), जस्त ण भिक्खुस्त एव भवइ-अह च खलु
 अन्नेसिं भिक्खूण असण वा ४ आहट्टु दलइस्सामि आहट्ट च
 नो साइजिजस्सामि (२), जस्त ण भिक्खुस्त एव भवइ-अह च
 खलु असण वा ४ आहट्टु नो दलइस्सामि आहट्ट च साइजिज
 स्सामि (३), जस्त ण भिक्खुस्त एव भवइ-अह च खलु अ
 न्नेसिं भिक्खूण असण वा ४ आहट्टु नो दलइस्सामि आहट्ट
 च नो साइजिजस्सामि (४)। अह च खलु तेण अहाइरित्तेण
 अहेसणिज्जेण अहापरिग्गहिण्ण असणेण वा ४ अभिकंख
 साहम्मियस्स कुञ्जा वेयावडिय करणाए, अह वा वि तेण
 अहाइरित्तेण अहेसणिज्जेण अहापरिग्गहिण्ण अस्तणेण वा ४
 अभिकंख साहम्मियहिं कीरमाण वेयावडिय साइजिजस्सामि,
 लाघवियं आगममाणे जाव समज्जेवसमभिजाणिया ॥ सू०३ ॥

छाया-यस्य खलु मिश्रोरेवं मयति-अहं च खलु अन्येभ्यो मिष्टुभ्योऽन्नं
 वा ४ आहस्य दास्यामि, आहृतं च नो स्वादयिष्यामि (१), यस्य खलु मिश्रोरेवं
 मयति-अहं च खलु अन्येभ्यो मिष्टुभ्योऽन्नं वा ४ आहस्य दास्यामि, आहृतं च नो
 स्वादयिष्यामि (२), यस्य खलु मिश्रोरेवं मयति-अहं च खलु अन्येभ्यो मिष्टुभ्योऽ
 न्नं वा ४, आहस्य नो दास्यामि, आहृतं च स्वादयिष्यामि (३), यस्य खलु मिश्रोरेवं
 मयति-अहं च खलु अन्येभ्यो मिष्टुभ्योऽन्नं वा ४ आहस्य नो दास्यामि, आहृतं
 च नो स्वादयिष्यामि (४)। अहं च खलु तेन यथाऽतिरिक्तेन यथैषणीयेन यथापरि
 पृष्टीतेन अन्ननेन वा ४ अभिकाहस्य साधर्मिकस्य कुर्या वैपाहस्यं करणाए, अहं
 पाजपि तेन यथातिरिक्तेन यथैषणीयेन यथापरिपृष्टीतेन अन्ननेन वा ४
 अभिकाहस्य साधर्मिकैः क्रियमाणं वैपाहस्यं स्वादयिष्यामि स्वपत्निकमागमयन्
 पान्दु साम्यस्तत्रैव समभिजानीयात् ॥ सू ३ ॥

ટીકા—‘યસ્યે’-ત્યાદિ, અસ્યાથતુર્ભગ્ન્યા વ્યાખ્યા પૂર્વોક્તદિશૈવ જ્ઞેયા, एतेषा चाभिग्रहाणां चतुर्णामन्यतममभिग्रहं गृह्णीयादित्यादि । यद्वा-त्रिभिर्वानामाद्यानाમેक-
 પદેને પ્રતિમાપ્રતિપન્ન કશ્ચિન્મુનિરભિગ્રહ ગૃહ્ણીત, ચતુર્થસ્ય ચ મજનેત્યાહ-‘અહ’-
 મિત્યાદિ, यस्य भिक्षोश्चेतसि एव भवति-अहं च तेन पूर्वोक्तेन यथातिरिक्तेन=स्वो-
 પમોગોર્વરિતેન, यथैषणीयेन=प्रतिमाप्रतिपन्नाना यदेषणीयं तमनतिरुम्य यथैषणीयेन
 एवं यथापरिगृहीतेन=निजार्थाभ्युपगतेन, अशनेन वा४ = चतुर्विधेनाहारेण

પ્રતિમાપ્રતિપન્ન સાધુ ઇસ અભિગ્રહવિશેષકો સ્વીકાર કરે કિ-“ મેં
 અન્ય પ્રતિમાપ્રતિપન્ન સાધુઓંકે લિધે કુઠ દૂગા ઓર ડનસે મી કુઠ
 લૂગા ” ઇસી વિષયકો સૂત્રકાર ચારભંગોં દ્વારા પ્રદર્શિત કરતે હૈ-
 “ જસણ ભિક્ષુસ્સ ” ઇત્યાદિ ।

ઇસ ચતુર્ભગીકી વ્યાખ્યા ઇસી અધ્યયનકે પાંચવેં ઉદ્દેશમેં કી ગઈ
 દ્વિતીય સૂત્રકી વ્યાખ્યાકે અનુસાર સમજ લેની ચાહિયે । પ્રતિમા-
 પ્રતિપન્ન મુનિ ઇન ચાર અભિગ્રહોંમેંસે કિસી એક અભિગ્રહકો, અથવા
 આદિકે ત્રીન અભિગ્રહોં મેં સે કિસી એક અભિગ્રહકો ગ્રહણ કરે । ચતુર્થ
 અભિગ્રહકી ભજના હૈ, ઇસકે લિધે સૂત્રકાર ‘અહ’-મિત્યાદિ સૂત્રાંશ
 કહતે હૈ--જિસ ભિક્ષુકે ચિત્તમેં એસા વિચાર આતા હૈ કિ
 મેં ડસ ચતુર્વિધ આહાર સે કિ જો મેરે ઉપમોગસે વાકી વચ રહા હૈ,
 તથા જો યથૈષણીય પ્રતિમાપ્રતિપન્નોંકે લિધે કલ્પનીય હૈ, ઓર જિસે મેં
 અપને લિધે લાયા હૂં, કર્મોંકી નિર્જરા કરનેકી ચાહનાસે સાધર્મી સાધુ

પ્રતિમાપ્રતિપન્ન સાધુ આ અભિગ્રહ વિશેષનો સ્વીકાર કરે કે “ હું અન્ય
 પ્રતિમાપ્રતિપન્ન સાધુઓને માટે અશનાદિ દર્શન અને એમની પાસેથી પણ
 અશનાદિ દર્શન ” આ વિષયને સૂત્રકાર ચાર ભગોદ્વારા પ્રદર્શિત કરે છે-
 “ જસ જં ” ઇત્યાદિ

આ ચાર ભગોની વ્યાખ્યા, આ અધ્યયનના પૂર્વ ઉદ્દેશમા કહેવામા
 આવેલ બીજા સૂત્રની વ્યાખ્યા અનુસાર સમજ લેવી જોઈએ પ્રતિમાપ્રતિપન્ન
 મુનિ આ ચાર અભિગ્રહોમાથી કોઈ એક અભિગ્રહને અથવા આગળના ત્રણ
 અભિગ્રહોમાથી કોઈ એક અભિગ્રહને ગ્રહણ કરે એથા અભિગ્રહની ભજના છે
 આ માટે સૂત્રકાર અહ ઇત્યાદિ સૂત્રાંશ કહે છે-જે ભિક્ષુના ચિત્તમા
 એવો વિચાર આવે છે કે હું એ ચતુર્વિધ આહારથી કે જે મારા
 ઉપભોગથી બાકી બચી રહેલ છે, તથા જે યથૈષણીય-પ્રતિમાપ્રતિપન્નો માટે
 કલ્પનીય, અને જેને હું મારા માટે લાવેલ છું કર્મોની નિર્જરા કરવાની ચાહ-

મમિકાક્ષ્ય=કર્મનિર્મલમમિનાઠક્રમ કરણાય=ઉપમોગાય સાધર્મિકસ્ય=સમાનપ
 મેષઃ સાધોઃ ધયાદૃશ્ય કુર્યામ્ । યથાદૃશ્યમમિગ્રહં કથિષ્ઠુ ગૃહ્ણાતિ । પુનઃ પસાન્તરં
 પ્રવર્ષયતિ-‘અર્થવાઽપી’-ત્યાદિ ‘થા’ શબ્દ પસાન્તરમૂષકઃ, યસ્ય સ્તુ મિથોદેવસ્યપ
 મવતિ-મહમપિ=પુન તેન=યથાતિરિક્તેન યથૈવણીયેન યથાપરિગૃહીતેનાઽગ્નેન
 યાઃ કર્મનિર્મલમમિકાક્ષ્ય સાધર્મિકૈ ક્રિયમાણં વૈયાટૃશ્યં સ્વાદયિષ્યામિ
 =સ્વીકરિષ્યામિ । एवं પરિચિન્તયન્ સાધુ કિં કુર્યાદિતિ વર્ષયતિ-‘સાધવિક’-
 મિત્યાદિ, સર્વે ચ્યસ્યાતપૂર્વમ્ ॥ સૂ.૩ ॥

કા વૈયાટૃશ્ય કર્ત્તે । હસ પ્રકારકા અભિગ્રહ કોઈ સાધુ ગ્રહણ કરતા હૈ,
 મૌર કોઈ સાધુ એસા અભિગ્રહ કરતા હૈ કિ-મૈં યથાતિરિક્ત, પથૈવણીય
 ઔર યથાપરિગૃહીત ચતુર્વિધ અગ્નસે કર્મોંકી નિર્જરા હોનેકી કામનાસે
 સાધર્મિક સાધુ દ્વારા ક્રિયમાણ વૈયાટૃશ્યકો મૈં સ્વીકાર કરુંગા ।

હસ પ્રકાર વિચાર કરનેચાલા સાધુ કયા કરે ? હસે સૂત્રકાર “છાપ
 ચિયં આગમમાણે જાવ સમસ્તમેષ સમમિજાણિયા ” હન પદોંસે પ્રકટ
 કરતે હૈં । હન સમસ્ત પદોંકા અર્થ પહિલે હસી અધ્યયનકે ચતુર્થ ઉદ્દેશ
 મૈં કહા જા ચુકા હૈ ।

માવાર્થ—સાધુ દ્વારા સાધુકી વૈયાટૃશ્ય કરનેકે પ્રકાર યહાં પર
 સૂત્રકારને પ્રદર્શિત કિયે હૈં, યે હી પ્રકાર જબ નિયમરૂપસે અંગી
 કૃત હોતે હૈં તબ અભિગ્રહવિશેષ કહસાન લગ જાતે હૈ, ઉન્હોંકા યહાં
 કથન હૈ ।

નથી સાધર્મી સાધુન વૈયાટૃશ્ય કરે આ પ્રકારનો અભિગ્રહ કેહ સાધુ બ્રહ્મ
 કરે છે કેહ સાધુ જોવો અભિગ્રહ કરે છે કે-કુ યથાતિરિક્ત, યથૈવણીય
 અને યથાપરિગૃહીત ત્થર પ્રકારના અગ્નનથી કર્મોંની નિર્જરા હોવાની કામનાથી
 સાધર્મિક સાધુ દ્વારા ક્રિયામાણ વૈયાટૃશ્યને સ્વીકાર કરીશ.

આ પ્રકારનો વિચાર કરવાવાળા સાધુ શું કરે એને સૂત્રકાર “છાપચિય
 આગમમાણે જાવ સમસ્તમેષ સમમિજાણિયા ” આ પદોથી પ્રગટ કરે છે એ
 સમસ્ત પદોનો અર્થ પહેલાં આ અધ્યયનના બોધા ઉદ્દેશમાં કહેવાઈ ગયેલ છે.

માવાર્થ—સાધુજોદ્વારા સાધુજોની વૈયાટૃશ્ય કરવાનો પ્રકાર અર્થ
 સૂત્રકારે પ્રગટ કરેલ છે એ જ અર્થ નિગમરૂપથી અંગીકૃત થાય છે ત્યારે
 અભિગ્રહવિશેષ કહેવામાં આવી આવે છે એનું અર્થ કથન છે.

ટીકા—‘યસ્યે’—ત્યાદિ, અસ્યાથતુર્ભગ્ન્યા વ્યાખ્યા પૂર્વોક્તદિશૈવ જ્ઞેયા, एतेषा चाभिग्रहाणां चतुर्णामन्यतममभिग्रहं गृह्णीयादित्यादि । यद्वा—त्रिविगनामाद्यानामेक-
 પદેનૈવ પ્રતિમાપ્રતિપન્ન કશ્ચિન્મુનિરભિગ્રહ ગૃહ્ણીત, ચતુર્થસ્ય ચ ભજનેત્યાહ—‘અહ’—
 મિત્યાદિ, યસ્ય મિત્રોશ્વેતસિ એવ ભવતિ—અહં ચ તેન પૂર્વોક્તેન યથાતિરિક્તેન=સ્વો-
 પભોગોર્વરિતેન, યથૈષણીયેન=પ્રતિમાપ્રતિપન્નાના યદેષણીયં તમનતિક્રમ્ય યથૈષણીયેન
 एवं यथापरिगृहीतेन=निजार्थाभ्युपगतेन, અશનેન વા ૪ = ચતુર્વિધેનાહારેણ

પ્રતિમાપ્રતિપન્ન સાધુ હસ અભિગ્રહવિશેષકો સ્વીકાર કરે કિ—“ મૈ
 અન્ય પ્રતિમાપ્રતિપન્ન સાધુઓંકે લિપે કુછ દૂગા ઓર ડનસે મી કુછ
 લૂગા ” હસી વિષયકો સૂત્રકાર ચારભંગોં દ્વારા પ્રદર્શિત કરતે હૈ—
 “ જસસણ મિક્કલુસસ ” ઇત્યાદિ ।

હસ ચતુર્ભગીકી વ્યાખ્યા હસી અધ્યયનકે પાંચવેં ઉદ્દેશમેં કી ગઈ
 દ્વિતીય સૂત્રકી વ્યાખ્યાકે અનુસાર સમજ લેની ચાહિયે । પ્રતિમા-
 પ્રતિપન્ન મુનિ ઇન ચાર અભિગ્રહોંમેંસે કિસી એક અભિગ્રહકો, અથવા
 આદિકે તીન અભિગ્રહોં મેં સે કિસી એક અભિગ્રહકો ગ્રહણ કરે । ચતુર્થ
 અભિગ્રહકી ભજના હૈ, હસકે લિપે સૂત્રકાર ‘અહ’—મિત્યાદિ સૂત્રાંશ
 કહતે હૈ—જિસ મિક્ષુકે ચિત્તમેં એસા વિચાર આતા હૈ કિ
 મૈ ડસ ચતુર્વિધ આહાર સે કિ જો મેરે ઉપભોગસે બાકી વચ રહા હૈ,
 તથા જો યથૈષણીય પ્રતિમાપ્રતિપન્નોંકે લિપે કલ્પનીય હૈ, ઓર જિસે મૈ
 અપને લિપે લાયા હૂં, કર્મોંકી નિર્જરા કરનેકી ચાહનાસે સાધર્મી સાધુ

પ્રતિમાપ્રતિપન્ન સાધુ આ અભિગ્રહ વિશેષનો સ્વીકાર કરે કે “ હુ અન્ય
 પ્રતિમાપ્રતિપન્ન સાધુઓને માટે અશનાદિ દ્વર્ષશ અને એમની પાસેથી પણ
 અશનાદિ દ્વર્ષશ ” આ વિષયને સૂત્રકાર ચાર ભગોદ્વારા પ્રદર્શિત કરે છે—
 “ જસસ ણં ” ઇત્યાદિ

આ ચાર ભગોની વ્યાખ્યા, આ અધ્યયનના પૂર્વ ઉદ્દેશમા કહેવામા
 આવેલ ણીજ સૂત્રની વ્યાખ્યા અનુસાર સમજ લેવી જોઈએ પ્રતિમાપ્રતિપન્ન
 મુનિ આ ચાર અભિગ્રહોમાથી કોઈ એક અભિગ્રહને અથવા આગળના ત્રણ
 અભિગ્રહોમાથી કોઈ એક અભિગ્રહને ગ્રહણ કરે ચોથા અભિગ્રહની ભજના છે
 આ માટે સૂત્રકાર અહ ઇત્યાદિ સૂત્રાંશ કહે છે—જે ભિક્ષુના ચિત્તમા
 એવો વિચાર આવે છે કે હુ એ ચતુર્વિધ આહારથી કે જે મારા
 ઉપભોગથી બાકી બચી રહેલ છે, તથા જે યથૈષણીય—પ્રતિમાપ્રતિપન્નો માટે
 કલ્પનીય, અને જેને હુ મારા માટે લાવેલ છુ કર્મોની નિર્જરા કરવાની ચાહ-

મમિકાસ્ત્ય=કર્મનિર્જરણમમિકાસ્ત્ય કરનાય=ઉપભોગાય સાધર્મિકસ્ય=સમાનપ
ર્થઃ સાધોઃ પયાદસ્ય કુર્યામ્ । એસાદસ્યમમિકાસ્ત્ય કમિદ્ ગુહ્યાતિ । પુનઃ પસાન્તર
પ્રવર્ણયતિ-‘ઘૃત્વાડપી’-ત્યાદિ ‘ધા’ ક્ષપ્દ પસાન્તરમુચ્ચકઃ, યસ્ય સ્મૃ મિષ્ઠોમેતસ્યેષ
મવતિ-ચાદયપિ-પુનઃ તેન=યથાતિરિક્તેન યથૈષણીયેન યથાપરિગૃહીતનાડપ્તનેન
ધાઃ કર્મનિર્જરણમમિકાસ્ત્ય સાધર્મિકૈઃ ક્રિયમાણં વૈયાદસ્ય સ્વાદયિષ્યામિ
=સ્વીકરિષ્યામિ । ઇધં પરિચિન્તયન્ સાધુઃ કિં કુર્યાદિતિ દર્શયતિ-‘સાધર્મિક’-
મિત્યાદિ, સર્વં વ્યક્ત્યાતપૂર્વમ્ ॥ સૂ.૩ ॥

કા વૈયાદસ્ય કર્તૈ । હસ પ્રકારકા અભિગ્રહ કોઈ સાધુ ગ્રહણ કરતા હૈ,
મૌર કોઈ સાધુ યેસા અભિગ્રહ કરતા હૈ કિ-મૈં યથાતિરિક્ત, યથૈષણીય
મૌર યથાપરિગૃહીત ચતુર્વિધ અધાનસે કર્મોંકો નિર્જરા હોનેકી કામનાસે
સાધર્મિક સાધુ દ્વારા ક્રિયમાણ વૈયાદસ્યકો મૈં સ્વીકાર કરેંગા ।

હસ પ્રકાર વિચાર કરનેવાલા સાધુ કયા કરે ? હસે સૂત્રકાર “છાધ
વિયં ભાગમમાણે જાથ સમસ્તમેથ સમમિજાણિયા ” હન પદોંસે પ્રકટ
કરતે હૈ । હન સમસ્ત પદોંકા અર્થ પહિલે હસી અભ્યયનકે ચતુર્થ ઉદેશ
મૈં કહા જા ચુકા હૈ ।

માધાર્ય—સાધુ દ્વારા સાધુકી વૈયાદસ્ય કરનેકે પ્રકાર યહાં પર
સૂત્રકારને પ્રવર્તિત કિયે હૈ, યે હી પ્રકાર જાન નિયમરૂપસે અંગી-
કૃત હોતે હૈ તય અભિગ્રહવિશેષ કહલાને લગ જાતે હૈ, ંહોંકા યહાં
કથન હૈ ।

અમી સાધર્મી સાધુઁ વૈયાદસ્ય કર્તૈ આ પ્રકારને અભિગ્રહ કૈધ સાધુ ગ્રહણ
કરે છે કૈધ સાધુ જોવો અભિગ્રહ કરે છે કે-કુ યથાતિરિક્ત, યથૈષણીય
અને યથાપરિગૃહીત આર પ્રકારના અધાનથી, કર્મોંની નિર્જરા હોવાની કામનાથી
સાધર્મિક સાધુ દ્વારા ક્રિયમાણ વૈયાદસ્યને સ્વીકાર કરીશ.

આ પ્રકારને વિચાર કરવાવાળા સાધુ શું કરે જોને સૂત્રકાર “છાધવિય
ભાગમમાણ જાથ સમસ્તમેથ સમમિજાણિયા ” આ પદોંથી પ્રગટ કરે છે જો
સમસ્ત પદોંને અર્થ પહેલાં આ અભ્યયનના બોધા ઉદેશમાં કહેવાઈ જાય છે

માધાર્ય—સાધુજોદાસ સાધુજોની વૈયાદસ્ય કરવાને પ્રકાર અર્થ
સૂત્રકારે પ્રગટ કરેલ છે. જો જો અધાર નિયમરૂપથી અંગીકૃત થાય છે ત્યારે
અભિગ્રહવિશેષ કહેવાનાં આવી જાય છે જોનું અર્થ કથન છે

કોઈ ૨ સાધુ इस प्रकारसे अभिग्रह करते हैं कि-मैं अन्य साधुके लिये आहारादिक लाकर दिया करूँगा, यही मेरेद्वारा उनकी वैयावृत्त्य है, तथा कोई साधु मेरे लिये आहार पानी लाकर देगा तो मैं भी उसे स्वीकार कर लूँगा। यह अभिग्रहका एक प्रकार है। १।

कोई एक साधु इस प्रकारका अभिग्रह करता है कि-मैं दूसरे साधमीं साधुके लिये आहारादिक ला दिया करूँगा पर दूसरेके द्वारा लाया हुआ आहार पानी अपने उपयोग में नहीं लूँगा। यह अभिग्रहका दूसरा प्रकार है। २।

कोई २ साधु इस प्रकारका अभिग्रह कर लिया करता है कि-मैं दूसरोंके लिये आहारादिक लाऊँगा तो नहीं पर कोई मुझे लाकर देगा तो मैं उसे अपने उपभोग में ले लूँगा। यह अभिग्रहका तीसरा प्रकार है। ३।

कोई २ साधु ऐसा अभिग्रह करता है कि न मैं दूसरोंके लिये आहारादिक लाऊँगा और न अपने निमित्त किसी अन्यसे मंगवाऊँगा। यह अभिग्रहका चौथा प्रकार है। ४।

इन चार प्रकारके अभिग्रहोंमेंसे साधુ चाहे जिस किसी भी अभिग्रह को धारण कर सकता है, अथवा आदिकે ત્રીણ અભિગ્રહોં મેં સે મો

કોઈ કોઈ સાધુ એવા પ્રકારથી અભિગ્રહ કરે છે કે-હું બીજા સાધુઓ માટે આહારાદિક લાવી આપીશ, આ રીતે હું તેમની વैयावृत्त्य કરીશ તથા કોઈ સાધુ મારા માટે આહાર પાણી લાવી આપશે તો હું સ્વીકાર કરીશ આ અભિગ્રહનો એક પ્રકાર છે (૧)

કોઈ કોઈ સાધુ આ પ્રકારનો અભિગ્રહ કરે છે કે-હું બીજા સાધમીં સાધુ માટે આહારાદિક લાવી આપીશ પણ બીજાના દ્વારા લાવેલ આહાર પાણી ઉપયોગમાં નહીં લઉં. આ અભિગ્રહનો બીજો પ્રકાર છે (૨)

કોઈ કોઈ સાધુ આ પ્રકારનો અભિગ્રહ કરે છે કે-હું બીજાઓ માટે આહારાદિક લાવીશ તો નહીં પણ કોઈ મને લાવીને આપશે તો હું તેને મારા ઉપયોગમાં અવશ્ય લઉં. આ અભિગ્રહનો ત્રીજો પ્રકાર છે (૩)

કોઈ કોઈ સાધુ એવા અભિગ્રહ કરે છે કે-બીજાઓના માટે હું આહારાદિક લાવીશ નહીં તેમજ મારા માટે પણ બીજાથી મંગાવીશ નહીં આ અભિગ્રહનો ચોથો પ્રકાર છે (૪)

આવા ચાર પ્રકારના અભિગ્રહમાંથી સાધુ પોતાની ઇચ્છામાં આવે તેવો કોઈ પણ અભિગ્રહ ધારણ કરી શકે છે અથવા આદિના ત્રણ અભિ-

इत्यमन्यतरामिन्द्राग्निशोऽनगरस्याचेसस्य सचेसस्य वा धरीरपीडायाः
सद्भावेऽसद्भावे वा स्वायुःशेषतामवगच्छता मुनेस्वतमरणविधिमुपदर्शयति-
-‘वस्तु णं’ इत्यादि ।

મુષ્-જસ્ત ણં મિક્ષુસ્ત ઇવં ભવઙ્-સે ગિલામિ સ્વલુ
અહ ઇમમ્મિ સમપ્પ ઇમ સરીરગ અણુપુવ્વેણ પરિવહિત્તપ્પ, સે
અણુપુવ્વેણ આહાર સ્તવહિજ્ઞા, સંવહિત્તા કસાપ્પ પયણુપ્પ કિષ્ણા
સમાદિયચ્ચે ફલગાવયદ્દી ઉદ્દાય મિક્ષુ અભિનિવ્વુઙ્ગચ્ચે અણુ
પવિસિષ્ણા ગામ વા નગર વા જાવ રાયહારિણિ વા તણાઙ્ગ જાઙ્ગજ્ઞા
જાવ સથરિજ્ઞા, પૃથવિ સમપ્પ કાય ચ્ચ જોગ ચ્ચ ઈરિય ચ્ચ પચ્ચક્કલાઙ્ગજ્ઞા,
તં સચ્ચ સચ્ચવાઈ ઓપ્પ તિષ્ઠે છિદ્ધકહકહે આઈયદ્દે અણાઈપ્પ
વિજ્ઞા ણ મેઝર કાય સવિહુણિય વિરુવ્વક્કવે પરીસહોપસગ્ગે,
અસ્સિ વિસ્સમણયાપ્પ મેરવમનુચિન્ને, તત્થ વિ તસ્સ કાલપ
રિયાપ્પ, સેઽવિ તત્થ વિઅતિકારપ્પ, ઙ્ગચ્ચેય વિમોહાયયણ હિય
સુહં સ્સમં નિસ્સેયસ આણુગામિય-તિથેમિ ॥ સુ.૦૪ ॥

છાયા-યસ્ય સ્વલુ મિહોરવં મશતિ-તત્ સ્થાપામિ સ્વલુ શ્ચમ્ અસ્મિન્ સમયે
સ્વંધરીરકમ્ આનુપૂર્વ્યાં પરિવાહુર્મ્, સ આનુપૂર્વ્યાં આહારં સંવર્તयेत्, સંસ્પર્શ કપાયાન્
મતનૂલ કૃત્વા સમાહિતાર્થઃ કલ્પકાપર્યાં ઉત્પાય મિહુરમિનિર્વાર્થઃ અનુગ્રવિશ્ય
ગ્રામં વા નગરં વા યાવદ્ રાજધાનીં વા શુભાનિ યાચેત યાવદ્ સંસ્તરત્,
અથાપિ સમયે કાર્યં ચ યોગં ચ ઈર્ષ્યાં ચ પ્રત્યાષ્ણસીત, તત્સત્યં સત્યવાદી,
બોઝસીર્ષમિષ્ઠકર્યક્રમઃ આતીતાર્થઃ, અનાતીતઃ, સ્પક્ષ્તા મિદુરં ક્ષયં સંવિષ્ણ
સ્પક્ષ્મરૂપાન્ પરીપહોપસર્ગાન્ અસ્મિન્ મિશ્રમ્મણતયા મેરવમનુષીર્ષઃ, તથાપિ તસ્ય
અસ્પર્શ્યાઃ, સોઽપિ તથ વ્યન્તિકારકઃ, ઇત્યતદ્વિમોહાયવર્તનં હિત સુત્તં સમં નિઃશ્રે
યસમાનુગામિકમ્, ઇતિ પ્રશીમિ ॥ સુ.૦૪ ॥

જાહે જિસે કર સક્કતા હૈ। इत पक्षमें भीये अभिग्रहकी मजना है-चारण
करे न भी कर। नीचे के सूत्रांशसे सूत्रकारने यही बात प्रकट की है-इसमें
सन्हांने प्रथम द्वितीय तथा तृतीय अभिग्रहका प्रवर्णन किया है ॥सू.०३॥

અહીંમાંથી પણ જાહે તે શ્રલેખ કરી શકે છે. આ પક્ષમાં જોયા અભિગ્રહની શબ્દના છે
-પ્રારણ કરે, ન પણ કરે, નીચેના સૂત્રાંશથી સૂત્રકારે જોજ વાત પ્રગટ કરી છે. જોમાં
તેજોએ પહેલા બીજા અને ત્રીજા અભિગ્રહનું પ્રવર્ણન કરેલ છે (સુ. ૩)
૧૧

કોઈ ૨ સાધુ इस प्रकारसे अभिग्रह करते हैं कि-मैं अन्य साधुके लिये आहारादिक लाकर दिया करूँगा, यही मेरेद्वारा उनकी वैयावृत्त्य है, तथा कोई साधु मेरे लिये आहार पानी लाकर देगा तो मैं भी उसे स्वीकार कर लूँगा। यह अभिग्रहका एक प्रकार है। १।

कोई एक साधु इस प्रकारका अभिग्रह करता है कि-मैं दूसरे साधमीं साधुके लिये आहारादिक ला दिया करूँगा पर दूसरेके द्वारा लाया हुआ आहार पानी अपने उपयोग में नहीं लूँगा। यह अभिग्रहका दूसरा प्रकार है। २।

कोई ૨ સાધુ इस प्रकारका अभिग्रह कर लिया करता है कि-मैं दूसरोंके लिये आहारादिक लाऊँगा तो नहीं पर कोई मुझे लाकर देगा तो मैं उसे अपने उपभोग में ले लूँगा। यह अभिग्रहका तीसरा प्रकार है। ३।

કોઈ ૨ સાધુ ऐसा अभिग्रह करता है कि न मैं दूसरोंके लिये आहारदिक लाऊँगा और न अपने निमित्त किसी अन्यसे मगवाऊँगा। यह अभिग्रहका चौथा प्रकार है। ४।

इन चार प्रकारके अभिग्रहोंमेंसे साधु चाहे जिस किसी भी अभिग्रह को धारण कर सकता है, अथवा आदिके तीन अभिग्रहों में से भी

કોઈ કોઈ સાધુ એવા પ્રકારથી અભિગ્રહ કરે છે કે-હું બીજા સાધુઓ માટે આહારાદિક લાવી આપીશ, આ રીતે હું તેમની વૈયાવૃત્ત્ય કરીશ તથા કોઈ સાધુ મારા માટે આહાર પાણી લાવી આપશે તો હું સ્વીકાર કરીશ આ અભિગ્રહનો એક પ્રકાર છે (૧)

કોઈ કોઈ સાધુ આ પ્રકારનો અભિગ્રહ કરે છે કે-હું બીજા સાધમીં સાધુ માટે આહારાદિક લાવી આપીશ પણ બીજાના દ્વારા લાવેલ આહાર પાણી ઉપયોગમાં નહીં લઉં. આ અભિગ્રહનો બીજો પ્રકાર છે (૨)

કોઈ કોઈ સાધુ આ પ્રકારનો અભિગ્રહ કરે છે કે-હું બીજાઓ માટે આહારાદિક લાવીશ તો નહીં પણ કોઈ મને લાવીને આપશે તો હું તેને મારા ઉપયોગમાં અવશ્ય લઉંશ. આ અભિગ્રહનો ત્રીજો પ્રકાર છે (૩)

કોઈ કોઈ સાધુ એવા અભિગ્રહ કરે છે કે-બીજાઓના માટે હું આહારાદિક લાવીશ નહીં તેમજ મારા માટે પણ બીજાથી મગાવીશ નહીં. આ અભિગ્રહનો ચોથો પ્રકાર છે (૪)

આવા ચાર પ્રકારના અભિગ્રહમાંથી સાધુ પોતાની ઇચ્છામાં આવે તેવો કોઈ પણ અભિગ્રહ ધારણ કરી શકે છે અથવા આદિના ત્રણ અભિ-

महाव्रतवतुर्विधमप्याहारं प्रस्थाप्याय काय=काययोगमाकुञ्चनप्रसारपरिचित्तधार
णादिरूपं कायव्यापार योगम्=ममज्ञस्तमनोयोगं सर्वथा वाग्योगे च, यद्वा-कायं
=अयममत्वं योगं=तस्यैवाकुञ्चन-प्रसारणादिव्यापारम् । ईयं=गमनागमनस्यां
क्रियां प्रस्थाप्योक्त=परिहरेत् ।

एवं 'तं सत्त्वं' इत्यारम्भ सूत्रसमाप्तिपर्यन्तस्य व्याख्या पठारेक्षेऽवसेया ।
'इति व्रवीमी' -स्यस्यार्थस्तुक्त एव ॥ सू० ४॥

॥ अष्टमाध्ययनस्य सप्तम उद्देशः समाप्तः ॥ ८-७ ॥

योगका, अथवा कायमें ममत्वरूप कायका और उसीके आकुञ्चन,
प्रसारण आदि व्यापाररूप योगका, एवं गमनागमनरूप क्रियाका
परित्याग कर देंगे ।

इस प्रकार 'तं सत्त्वं' यहाँ से लेकर उस सूत्रकी समाप्ति तकके
पदोंकी व्याख्या इसी अध्ययनके छठे उद्देशमें तथा चतुर्थ उद्देशके अन्तमें
लिखी जा चुकी है उसीके अनुसार समझलेनी चाहिये । "इति व्रवीमि"
इन पदोंका अर्थ भी कहा जा चुका है ॥ सू० ४॥

॥ आठवें अध्ययनका सातवां उद्देश समाप्त ॥ ८-७ ॥

अथवा अथवा ममत्वरूप कायने अने तेना आकुञ्चन, प्रसारण आदि व्यापार
रूप योगने, अथवा ममत्त्वममनरूप क्रियाने परित्याग करे.

आ प्रकार "तं सत्त्वं" अर्थात् यद्वा करी आ सूत्रकी समाप्ति सुधीना
पठोनी व्याख्या आ अध्ययनका छठे उद्देशमें तथा अथवा उद्देशना अतथा
वर्णन अथवा छे ते अनुसार समझ लेनी चाहिये. "इति व्रवीमि" आ पठोने
अर्थ पद्य अनादना अध्ययनका कहेंवर्णन अथवा छे. (सू० ४)

आठवा अध्ययनने सातवा उद्देश समाप्त ॥ ८-७ ॥

ટીકા—‘યસ્યે’—ત્યાદિ, ‘યસ્ય ચલુ’ ઇત્યારમ્ય’ યાવત્ સંસ્તરેત્’ ઇત્યન્તસ્ય વ્યાખ્યાઽન્ત્રવાધ્યયને પષ્ઠોદેશે ચતુર્થસૂત્રે પ્રોક્તા । તૃણાનિ સસ્તીર્યં યદ્વિધેયં તદાદ-
‘અત્રાઽપી’—તિ, અત્રાપિ સસ્તારકોપવેશનાવસરે કૃતપાદપોપગમનપ્રતિજ્ઞો મિશ્રુઃ
‘નમોત્યુળં’ પઠિત્વા સિદ્ધાન્તર્હતો ધર્માચાર્યાથ નમસ્કૃત્ય તદનુ સ્વયમેવ પુનર્ગૃહીતપ-

इस प्रकार कीसी एक अभिग्रह को धारण करनेवाले सचेल तथा अचेल साधुकी शारीरिक पीडाके सम्भवमें या असम्भवमें अपनी आयुके अवशिष्ट भागका ज्ञान होने पर मरणविधि सूत्रकार प्रदर्शित करते हैं—“जस्स णं” इत्यादि ।

“जस्स णं ” यहां से लेकर “ जाव संधरिज्जा ” यहां तक के पदोंकी व्याख्या इसी अध्ययनके छठे उद्देशमें कही जा चुकी है । घास का संधारा कर साधुके कर्तव्यका प्रदर्शन करते हुए सूत्रकार कहते हैं कि—साधु संधारे पर बैठ जावे तब उस समय वह साधु कि जिसने पदपोपगमन संधारा धारण करनेका नियम लिया है वह पहले “नमोत्युण” का पाठ पढ़े । पढ़कर सिद्धोंको, अर्हन्तोंको और धर्माचार्योंको नमस्कार करे । उसके बाद स्वयं पांच महाव्रतोंका पुनः ग्रहण कर, चारों प्रकारके आहारका परित्याग कर देवे, पश्चात् आकुञ्चन, प्रसारण, और दृष्टिसंचरण आदिरूप कायव्यापारका, अप्रशस्त मनोयोग का और सर्वथा वचन-

આ પ્રકારે ઠાઈ એક અભિગ્રહને ધારણ કરવાવાળા સચેલ તથા અચેલ સાધુની, શારીરિક પીડાના સહ્ભાવમા અગર અસહ્ભાવમા પોતાના આયુષ્યના અવશિષ્ટ ભાગના જણકાર હોવાથી મરણવિધિ સૂત્રકાર પ્રગટ કરે છે—
“ જસ્સ ણ ” ઇત્યાદિ.

“યસ્ય ચલુ” અહીંથી લઈને “યાવત્સંસ્તરેત્” અહીં સુધીના પદોથી વ્યાખ્યા આ અધ્યયનના છઠ્ઠા ઉદ્દેશમા કહેવાયેલ છે ઘાસનો સંધારો કરી સાધુના કર્તવ્યનુ પ્રદર્શન કરતા સૂત્રકાર કહે છે કે—સાધુ જ્યારે સંધારા ઉપર બેસે ત્યારે તે સમયે તે સાધુ કે જેણે પાદપોપગમન સંધારો ધારણ કરવાનો નિયમ લીધો છે તે, પહેલા “નમોત્યુળં”નો પાઠ બાણે પાઠ બાણીને સિદ્ધોને, અર્હન્તોને અને ધર્માચાર્યોને નમસ્કાર કરે ત્યાર બાદ પોતે પાંચ મહાવ્રતોને ફરીથી ગ્રહણ કરે. ચાર પ્રકારના આહારનો પરિત્યાગ કરે પછી આકુચન, પ્રસારણ અને દૃષ્ટિસંચરણ આદિરૂપ કાયાના વ્યાપારનો, અપ્રશસ્ત મનોયોગનો અને સર્વથા વચનયોગનો,

टीका—‘आनुपूर्व्ये’—त्यादि, वसुमन्तः=संयमिनः, ‘मतिमन्त’=मननं मतिर्हे
योपादेयपरिहारप्रवृत्त्याप्यवसायः, सा येनामस्तीति मतिमन्तः, भीराः=परीपहोपग-
मोभ्या मुनयः, आनुपूर्व्या=क्रमेण, स च क्रमो यथा—प्रवृत्त्या, शिक्षा, मृगार्थप्रवृत्त-
त्परस्यैकाकिषिहारित्वम्, यद्वा-आनुपूर्व्या=संलेखनाक्रमैवतुर्थं-पष्ठाऽष्टम-दशम-
द्वादशमक्तादिकृतपोविशेषरूपैर्विप्रकृष्टैः यानि=कथितानि ‘विमोहानि’ विगतो मोह

संयम पालन करनेवाले, हेय और उपादेयरूप पदार्थों के परिहार
पक्ष प्राप्त करानेवाले ज्ञानसे संयम, तथा परीपह और उपसर्गों से अक्षोभ्य
ऐसे मुनिराज क्रमसे पूर्व उद्देशोर्मि वर्णित भक्तपरिज्ञा, इंगितमरण और
पादपोपगमनरूप विमोहको प्राप्तकर और उन्हें “अनीदृशं सर्वं ज्ञात्वा”
मसाधारण जानकर समाधिका पालन कर।

सूत्रगत आनुपूर्वी शब्दका अर्थ क्रम है इन भक्तप्रत्याख्यान आदि
समाधिमरणोंको धारण करनेका क्रम इस प्रकार है—सर्व प्रथम मुनिदीक्षा
धारण करना। तदनन्तर सूत्रका अध्ययन एवं उसके अर्थका अवधारण,
मथवा युगपद्—एक साथ दोनोंका पठन और अवधारण करना। इसमें
निष्णात होकर फिर एकाकी विहार करना।

अथवा—उत्कृष्ट, चतुर्थभक्त, अष्टमभक्त, दशमभक्त और द्वादश
भक्त आदि संलेखनाके क्रमस्वरूप तपविशेषोंका धारण करना। ‘विमोह’
शब्दका अर्थ—भक्तपरिज्ञा, इंगितमरण और पादपोपगमन संयारा है।

संयम पालन करवावण्डा हेय अने उपादेय रूप पदार्थोंने परिहार अने
प्राप्त करवावण्डा ज्ञानकी संयम, तथा परिपह अने उपसर्गोंकी अक्षोभ्य, जेवा
मुनिजन क्रमकी पूर्व उद्देशीय जवावेक अवधारित्व, धनितमरण अने पाद
पोपगमन रूप विमोह (विशेष)ने प्राप्त करी अने तेने “अनीदृशं सर्वं ज्ञात्वा”
अवधारण (विशेष) अवधिने समाधिनु पालन करे.

सूत्रगत आनुपूर्वी शब्दने अर्थ क्रम छि, जे लक्ष्यप्रत्याख्यान आदि
समाधिमरणोंने धारण करवावण्डा क्रम आ प्रकारने छे-पडेवा मुनिदीक्षा धारण
करौ, त्पार पछी सूत्रनु अध्ययन अने तेना अर्थनु अवधारण, अथवा युगपद्—
जेकी साथी जन्नेनु पठन अने अवधारण करु आमा निष्णात जनी पछी जेकवा
विहार करवे.

अथवा—उत्कृष्ट चतुर्थभक्त, अष्टमभक्त, दशमभक्त अने द्वादशभक्त आदि
भक्तजनना क्रमस्वरूप तपविशेषोंने धारण करवां विमोह शब्दने अर्थ—
भक्तपरिज्ञा धनितमरण अने पादपोपगमन संयारा ॥

। अथाष्टमाध्ययनस्याष्टम उद्देशः ।

सप्तमोद्देशकथनानन्तरमष्टमः प्रारभ्यते । अस्य च पूर्वोद्देशैः सहाय सम्बन्धः—
पूर्वं चतुर्थोद्देशे व्याधातिमरण वैहायस—गार्धपृष्ठमरणं च, पञ्चमे—भक्तप्रत्याख्यानं,
षष्ठे इङ्गितमरण, सप्तमे च पादपोषगमनमुपदर्शितम् । अत्राष्टमे—तेषां त्रयाणां
भक्तपरिज्ञेङ्गितमरणपादपोषगमनानां विधिमुपदर्शयन् प्रथम भिक्षोः समाधिपरि-
पालनप्रकारमेव दर्शयति—‘अणुपुण्ड्रेण’ इत्यादि ।

मूलम्—अणुपुण्ड्रेण विमोहाइं, जाइं धीरा समासज्ज ॥

वसुमंतो मइमंतो, सव्वं नच्चा अणेलिसं ॥ १ ॥

छाया—आनुपूर्व्या विमोहानि, यानि वीराः समासाद्य ॥

वसुमन्तो मतिमन्तः, सर्वं ज्ञात्वा अनीदृशम् ॥ १ ॥

आठवें अध्ययनका आठवां उद्देश ।

सप्तम उद्देशके कथनके बाद अब अष्टम उद्देश प्रारम्भ होता है । इस
उद्देशका पूर्व उद्देशोंके साथ यह संबन्ध है—चतुर्थ उद्देशमें व्याधि—मरण,
वैहायस—मरण और गार्धपृष्ठमरण, पंचम उद्देशमें भक्तप्रत्याख्यान,
छठेमें इङ्गितमरण और सप्तम उद्देशमें पादपोषगमन सत्कारे का वर्णन
सूत्रकारने किया है । इस अष्टम उद्देशमें भक्तपरिज्ञा, इङ्गितमरण और
पादपोषगमन, इन तीनोंकी विधि दिखलाते हुए सूत्रकार प्रथम भिक्षुके
समाधिपालनके प्रकारको प्रदर्शित करते हैं—‘अणुपुण्ड्रेण’ इत्यादि ।

आठमा अध्ययनो आठमो उद्देश.

सातमा उद्देशना कथन पछी हुवे आठमा उद्देशनो प्रारम्भ थाय छे आ
उद्देशनो पूर्व उद्देशोनी साथे आ सम्बन्ध छे—आठमा उद्देशमा व्याधिभरण, वैहायस
भरण आने गार्धपृष्ठभरण, पादपोषगमन आठमा उद्देशमा भक्तप्रत्याख्यान, छठमा इङ्गित
भरण आने सातमा उद्देशमा पादपोषगमन सत्कारानुवर्णन सूत्रकारे करेले छे
आ आठमा उद्देशमा भक्तपरिज्ञा, इङ्गितभरण आने पादपोषगमन, आ त्रयुनी
विधि बतावने सूत्रकार प्रथम भिक्षुना समाधि पालनना प्रकारने उल्लेख छे—
‘अणुपुण्ड्रेण’ इत्यादि

टीका—‘आनुपूर्व्य’—त्यादि, वसुमन्तः=सयमिनः, ‘मतिमन्तः’=मननं मतिर्हे
 वेसादेयपरिहारग्रहणाध्यवसायः, सा वेसामस्तीति मतिमन्तः, भीराः=परीपक्षोपग
 र्गोम्या मुनय, आनुपूर्व्या=क्रमेण, स च क्रमो यथा—ग्रहण्या, शिक्षा, मृग्यग्रहण-
 त्परस्यैकाकिविहारिस्त्वम्, यद्वा आनुपूर्व्या=संलेखनाक्रमैवतुर्य-वष्टाऽष्टम-दशम-
 द्वादशमक्तादिकृतपोविशेषस्मैर्यमकृष्टैः यानि=कथितानि ‘विमोहानि’ विगतो मोह

संयम पालन करनेवाले, हेय और उपादेयरूप पदार्थों के परिहार
 एवं प्राप्त करानेवाले ज्ञानसे संयम, तथा परीषद् और उपसर्गों से अक्षोभ्य
 ऐसे मुनिराज क्रमसे पूर्व उद्देशोर्मि वर्णित भक्तपरिक्षा, इंगितमरण और
 पापपोषगमनरूप विमोहको प्राप्तकर और उन्हें “अनीदृशं सर्वं ज्ञात्वा”
 असाधारण जानकर समाधिका पालन करे।

सूत्रगत आनुपूर्वी शब्दका अर्थ क्रम है इन भक्तप्रत्याख्यान आदि
 समाधिमरणोंको धारण करनेका क्रम इस प्रकार है—सर्व प्रथम मुनिदीक्षा
 धारण करना। तदनन्तर सूत्रका अध्ययन एवं उसके अर्थका अवधारण,
 अथवा युगपद्—एक साथ दोनोंका पठन और अवधारण करना। इसमें
 निष्णात होकर फिर एकाकी विहार करना।

अथवा—उत्कृष्ट, चतुर्थभक्त, अष्टमभक्त, दशमभक्त और द्वादश
 भक्त आदि संलेखनाके क्रमस्वरूप तपविशेषोंका धारण करना। ‘विमोह’
 शब्दका अर्थ—भक्तपरिक्षा, इंगितमरण और पापपोषगमन संघारा है।

संयम पालन करनेवाला हेय और उपादेय रूप पदार्थोंके परिहार करने
 प्राप्त करानेवाले ज्ञानसे संयम, तथा चरित्रक करने उपसर्गोंकी अक्षोभ्य, जेवा
 मुनिजन केमकी पूर्व उद्देशोर्मा लयावेक भक्तपरिक्षा, एजितभक्त्यु जने पाद
 पोषगमन रूप विमोह (विवेक)ने प्राप्त करी जने तेने “अनीदृशं सर्वं ज्ञात्वा”
 ज्ञात्वाधारण (विशेष) लक्ष्योंने समाधितु पालन करे

सूत्रगत आनुपूर्वी शब्दने अर्थ क्रम छे, जे भक्तप्रत्याख्यान आदि
 समाधिमरणोंने धारण करवाने केम आ प्रकारने छे—पहिले मुनिदीक्षा धारण
 करनी, त्पार फेरि सूत्रतु अध्ययन जने तेना जर्मातु अवधारण, अथवा युगपद्—
 जेकी साथे जन्नेतु पठन जने अवधारण करणु आभा निष्णात जनी पछी जेकेवा
 विहार करवे।

अथवा—उत्कृष्ट चतुर्थभक्त, अष्टमभक्त, दशमभक्त जने द्वादशभक्त आदि
 संलेखनरूप क्रमस्वरूप तपविशेषोंने धारण करवा निमोह शब्दने अर्थ—
 भक्तपरिक्षा एजितभक्त्यु जने पादपोषगमन संघारा छे

एभ्य एषामेषु वा तानि विमोहानि=भक्तपरिज्ञेद्विमतमरणपादपोषगमनानि यथाक्रम-
माप्तानि, तानि समासाद्य=उपलभ्य अनीदृशम्=अद्वितीयम् सर्वम् उचितमनुचितं
वा पूर्वोक्तं भक्तपरिज्ञादिकं ज्ञात्वा समार्धिं परिपालयेयुः ॥ १॥

अपि चान्यदाह-‘दुविहं’ इत्यादि ।

मूलम्-दुविहं पि विद्वत्ता णं, बुद्धा धम्मस्स पारगा ॥

अणुपुव्वीइ संखाए, आरंभाओ तिउट्ठई ॥ २ ॥

छाया--द्विविधमपि विदित्वा खलु, बुद्धा धर्मस्य पारगाः ॥

आनुपूर्व्यां सङ्ख्याय, आरम्भात् नુટચતે ॥ ૨ ॥

टीका-‘द्विविधमपी’-त्यादि, बुद्धाः=परिज्ञातहेयोपादेयाः, द्विविधमपि बाह्य-
माभ्यन्तरं च तपो विदित्वा=आसेव्य, यद्वा-द्विविधमपि=बाह्य शरीरोपकरणादिकम्,
आभ्यन्तरं राग-द्वेषादिकमपि हेयतया ज्ञात्वा प्रत्याख्यानपरिज्ञया त्यक्तवैत्यर्थः,
खलु=निश्चयेन धर्मस्य=श्रुतचारित्राख्यस्य पारगाः=पारगामिन सकलरहस्यवेत्तारो
भवन्ति, तैः आनुपूर्व्यां=प्रव्रज्याग्रहण-द्वादशाङ्गाध्ययनादिक्रमेण संख्याय=“संयमं

वि + मोहमें ‘वि’ शब्दका अर्थ विगत-रहित है। विगत हुआ है मोह
जिन्होंसे, अथवा जिन्होंका, अथवा जिन्होंमें वे विमोह हैं। ‘सर्व’
शब्द यह भाव प्रकट करता है कि समाधिधारणकर्ता यह विचार
अवश्य करे कि इनसंसारोका धारण करना किस समय उचित है अथवा
किस समय अनुचित है॥ १ ॥

और भी सूत्रकार इस विषयमें कहते हैं-‘दुविहंपि’ इत्यादि।

हेय और उपादेय पदार्थों के परिज्ञाता मुनिजन बाह्य और आभ्यन्तर
तपका सेवनकर निश्चय से श्रुतचारित्ररूप धर्मके सकल रहस्य के ज्ञाता
होते हैं। वे प्रव्रज्याग्रहण और द्वादशाङ्गका अध्ययन आदिके क्रमसे भक्त-

વિ + મોહમા ‘વિ’ શબ્દનો અર્થ વિગત-રહિત છે મોહ વિગત થયેલ
છે, જેનાથી અથવા જેનો અથવા જેઓમાં તે વિમોહ છે “સર્વ” શબ્દ એ
ભાવ પ્રકટ કરે છે કે સમાધિ ધારણ કરનાર એ વિચાર જરૂર કરે કે તે સંચારાતું
ધારણ કરવું કયા સમયે ઉચિત છે ? અથવા કયા સમયે અનુચિત છે ? (૧)

વધુમા પણ સૂત્રકાર એ વિષયમા કહે છે-“દુવિહપિ” ઇત્યાદિ.

હેય અને ઉપાદેય પદાર્થોના પરિજ્ઞાતા મુનિજન બાહ્ય અને આભ્યંતર
તપનું સેવન કરી નિશ્ચયથી શ્રુતચારિત્રરૂપ ધર્મના સંકળ રહસ્યના જ્ઞાતા હોય
છે. તે પ્રવ્રજ્યાગ્રહણ અને દ્વાદશાંગના અધ્યયન વગેરેના ક્રમથી ભક્તપ્રત્યાખ્યાન

परिपाल्यतो ममाविशिष्टिथिलगात्रतया संयमाराधने सामर्थाभावाच्छरीरपरित्यागा-
वसरः समायातस्तस्मादहं भक्तप्रत्याख्यानविषु कस्मिन् मरणे समर्प्योऽस्मी”-ति
विचिन्त्य, आरम्भात्=शरीरधारणार्थमशनादिगवेषणात् नृदृष्टते=विरम्यते ॥२॥

अभ्युपगतमरणाय संलेखनां विवक्षता मुख्यत्वेन शोभाविप्रतनुकरणरूपा भावसं-
लेखना विधेयेति दर्शयति-‘कसाप’ इत्यादि ।

मूत्र-कसाप पयण् किञ्चा, अप्याहारे तितिक्षत्वम् ॥

अहं भिक्षु गिलाइज्जा, आहारस्तेव अतिय ॥ ३ ॥

छाया--कपायात् यत्कृत्वा, मत्स्याहारस्तिविशेषः ॥

अव मिहूर्सायेत्, आहारस्यैवान्तिक्त्वा ॥ ३ ॥

प्रत्याख्यान आदिका विचार कर शरीर धारणके निमित्त आहार आदि
की गवेषणासे विरक्त हो जाते हैं । सूत्रमें “संस्वाप” शब्द यह मत
छाता है कि मुनिजन यह विचार करे कि संयमकी परिपालना करते-
मेरा शरीर अब शिथिल हो गया है इससे संयमकी आराधना करने
की अब शक्ति नहीं रही है, अतः अब इस शरीर के परित्यागका समय
आजुका है, इसलिये भक्तप्रत्याख्यान आदि मरणोंमें से मैं कौनसा
मरण धारण करने में समर्थ हूँ । इस प्रकार विचार करके अशनादिकी
गवेषणा करनेका त्याग कर देवे ॥२॥

प्राप्तमरणके लिये संलेखना करनेवाले मुनिजनकी मुख्यरूपसे शोभा-
विक कपायों के कृश करनेका भावसंलेखना करनी चाहिये, यह बात
सूत्रकार प्रदर्शित करते हैं-‘कसाप’ इत्यादि ।

वजेशेना विचार करी शरीर धारणका निमित्त आहार वजेशेनी जवेपणाकी विरक्त
गनी अब छे सूत्रमें “संस्वाप” शब्द जेवु जतावे छे के मुनिजन जेवे
विचार करे के संयमकी परिपालना करवा करवा भाव शरीर दवे शिथिल भव
अमु छे आधी संयमकी आराधना करवाने आराध शक्ति रही नथी, जेटले
दवे आ शरीरने परित्याग करवाने समय आधी जथा छे आ भाटे लज्ज
प्रत्याख्यान वजेशे अश्वेभाधी छे अमु मरण धारण करवाने समर्थ छुँ ? आ
प्रकरणे विचार करी अशनादिनी जवेपणा करवाने त्याग करी रे.

प्राप्तमरण भाटे संलेखना करवावाग मुनिजे मुख्यरूपसे शोभाविक कपायेने
कृश करवा करवा जेवु जे आ बात सूत्रकार प्रदर्शित करे छे-
‘कसाप’ इत्यादि.

एभ्य एषामेषु वा तानि विमोहानि=भक्तपरिज्ञेद्विमतमरणपादपोषगमनानि यथाक्रम-
प्राप्तानि, तानि समासाद्य=उपलभ्य अनीदृशम्=अद्वितीयम् सर्वम् उचितमनुचितं
वा पूर्वोक्तं भक्तपरिज्ञादिकं ज्ञात्वा समाधिं परिपालयेयुः ॥ १॥

अपि चान्यदाह—‘दुविहं’ इत्यादि ।

मूलम्—दुविहं पि विदित्ता णं, बुद्धा धम्मस्स पारगा ॥

अणुपुब्बीइ संखाए, आरंभाओ तिउट्ठई ॥ २ ॥

छाया—द्विविधमपि विदित्वा खलु, बुद्धा धर्मस्य पारगाः ॥

आनुपूर्व्यां सद्दथाय, आरम्भात् नુટ્યते ॥ २ ॥

टीका—‘द्विविधमपी’—त्यादि, बुद्धाः=परिज्ञातहेयोपादेयाः, द्विविधमपि बाह्य-
माभ्यन्तरं च तपो विदित्वा=आसेव्य, यद्वा—द्विविधमपि=बाह्य शरीरोपकरणादिकम्,
आभ्यन्तरं राग-द्वेषादिकमपि हेयतया ज्ञात्वा प्रत्याख्यानपरिज्ञया त्यक्तवैत्यर्थः,
खलु=निश्चयेन धर्मस्य=श्रुतचारित्राख्यस्य पारगाः=पारगामिन सकलरहस्यवेचारो
भवन्ति, तैः आनुपूर्व्यां=प्रव्रज्याग्रहण-द्वादशाङ्गाध्ययनादिक्रमेण सख्याय=“संयमं

वि + मोहमें ‘वि’ शब्दका अर्थ विगत—रहित है। विगत हुआ है मोह
जिन्होंसे, अथवा जिन्होंका, अथवा जिन्होंमें वे विमोह हैं। ‘सर्व’
शब्द यह भाव प्रकट करता है कि समाधिधारणकर्ता यह विचार
अवश्य करे कि इनसत्थारोका धारण करना किस समय उचित है अथवा
किस समय अनुचित है॥ १ ॥

और भी सूत्रकार इस विषयमें कहते हैं—‘दुविहंपि’ इत्यादि।

हेय और उपादेय पदार्थों के परिज्ञाता मुनिजन बाह्य और आभ्यन्तर
तपका सेवनकर निश्चय से श्रुतचारित्ररूप धर्मके सकल रहस्य के ज्ञाता
होते हैं। वे प्रव्रज्याग्रहण और द्वादशाङ्गका अध्ययन आदिके क्रमसे भक्त-

वि + मोહમા ‘વિ’ શબ્દનો અર્થ વિગત—રહિત છે. મોહ વિગત થયેલ
છે, જેનાથી અથવા જેનો અથવા જેઓમાં તે વિમોહ છે “સર્વ” શબ્દ એ
ભાવ પ્રકટ કરે છે કે સમાધિ ધારણ કરનાર એ વિચાર જરૂર કરે કે તે સત્તારાતું
ધારણ કરવું કયા સમયે ઉચિત છે ? અથવા કયા સમયે અનુચિત છે ? (૧)
વધુમા પશુ સૂત્રકાર એ વિષયમા કહે છે—“દુવિહંપિ” ઇત્યાદિ.

હેય અને ઉપાદેય પદાર્થોના પરિજ્ઞાતા મુનિજન બાહ્ય અને આભ્યંતર
તપનું સેવન કરી નિશ્ચયથી શ્રુતચારિત્રરૂપ ધર્મના સંકળ રહસ્યના જ્ઞાતા હોય
છે. તે પ્રવ્રજ્યાગ્રહણ અને દ્વાદશાંગના અધ્યયન વગેરેના ક્રમથી ભક્તપ્રત્યાખ્યાન

परिपालयतो ममाविशिष्टिस्मात्रतया संयमाराधने सामर्थ्याभावाच्छरीरपरित्यागा-
वतर। समायातस्वस्मादहं भक्तप्रस्थास्यानाविषु कस्मिन् मरणे समर्थाऽस्मी”-ति
विनिश्चय, आरम्भात्=शरीरधारणार्थमक्षनादिगवेषणात्: कूटघटे=विरम्यते ॥२॥

अभ्युपगतमरणाय संलेखनो विवक्षता मुख्यस्थेन क्रोधादिप्रतनुकरभरूपा मायसं-
सक्तना विधेयेति दर्शयति-‘कसाप’ इत्यादि।

मूष्य-कसाप पयणू किञ्चा, अप्पाहारे तिसिक्खप ॥

अह भिक्खू गिलाइप्पा, आहारस्सेव अंतिय ॥ ३ ॥

प्राया-कपायान् प्रतनू कृत्वा, अन्त्याहारस्तिष्ठेत् ॥

अथ मिष्टुर्त्सापेत्, आहारस्यैवान्तिक्ख ॥ ३ ॥

प्रस्थास्यान आदिक्ता विचार कर शरीर धारणके निमित्त आहार आदि
की गवेषणासे विरक्त हो जाते हैं। सूत्रमें “संन्याय” शब्द यह बात
छाता है कि मुनिजन यह विचार करे कि संयमकी परिपालना करते-
मेरा शरीर अब शिथिल हो गया है इससे संयमकी आराधना करने
की अब शक्ति नहीं रही है, अतः अब इस शरीर के परित्यागका समय
आशुका है, इसलिये भक्तप्रस्थास्यान आदि मरणोंमें से मैं कौनसा
मरण धारण करने में समर्थ हूँ। इस प्रकार विचार करके अशानादिकी
गवेषणा करनेका त्याग कर देवे ॥२॥

प्राप्तमरणके लिये संलेखना करनेवाले मुनिजनकी मुख्यरूपसे क्रोधा-
दिक कपायों के कृदा करनेका भावसंलक्षना करनी चाहिये, यह बात
सूत्रकार प्रदर्शित करते हैं-‘कसाप’ इत्यादि।

वनेरेने विचार करी शरीर धारणना निमित्त आहार वनेरेनी अवेषणाची विरक्त
पनी वध है सूत्रमें “संन्याय” शब्द जेवु जतावे है ते मुनिजन जेवे
विचार करे ते सबमनी परिपालना करवा करवा भाव शरीर हवे शिथिल पध
अब ते आधी सबमनी आराधना करवानी आशामें शक्ति रही नहीं, जेटवे
हवे आ शरीरने परित्याग करवाने समय आवी अथी है आ भाटे लक्ष
प्रस्थास्यान वनेरे अवेषणाची हू कहु मरण धारण करवामें समर्थ हूँ ? आ
प्रकारने विचार करी अशानादिनी अवेषणा करवाने त्याग करी दे.

प्राप्तमरण भाटे संलेखना करवावाण मुनिजे मुख्यरूपसे क्रोधादिक कपायने
कृदा अवसंलक्षना करनी जेवजे आ बात सूत्रकार प्रदर्शित करे है—

कसाप’ इत्यादि.

ટીકા—‘કપાયા’—નિત્યાદિ, સ મિશ્રુઃ, અલ્પાહારઃ=સ્તોકભોજી સંલેખનાક્રમેણ પષ્ટાષ્ટમાદિવિધિના તપઃ કુર્વન્ પારણાદિને યદિ કેન ચિદન્યેન મુનિના સમાનીય દીયતે તદપ્યલ્પં મુદ્ધકતે, ઇતિ ભાવઃ। કપાયાન્ કપસ્ય=સંસારસ્ય આયાઃ=સ્થાનાનિ કપાયાસ્તાન્=ક્રોધાદીન્ ચતુર્વિધાન્ પ્રતનૂન્=કૃશાન્ કૃત્વા તિતિ-ક્ષેત=નીચાદપિ દુર્ભાષિતાદિકં સહેત, વ્યાધ્યાતઙ્ક ચ ક્ષમેત, અલ્પાહારકરણ કપા-યોપશમસમ્ભાવનયા ભવતિ તથાઽપિ કદાચિત્તસ્ય કપાયોદયો ભવેત્તદપિ સ ક્ષમેત એવેત્યાશયઃ ।

અલ્પાહારી વહ મુનિ ક્રોધાદિક કષાયોંકો કૃશ કરકે નીચ પુરુષોંકે કુવચનોંકો ઓર વ્યાધિકે આતંક કો ધી સહન કરે । યદિ-કદાચિત્ અવ્યાવાધ શિવ-સુખકા અભિલાષી વહ મુનિ ગ્લાન હો જાય તો વહ ચાર પ્રકારકે આહારકા હી પરિત્યાગ કર દેવે-સંલેખના કે ક્રમકા નહીં । સૂત્રસ્થિત અલ્પાહાર પદ યહ પ્રકટ કરતા હૈ કિ વહ સાધુ સંલેખનાક્રમસે-ષ્ટ, અષ્ટમ આદિ વિધિસે-તપસ્યા કરતા હુઆ પારણાકે દિન કિસી અન્ય મુનિકે દ્વારા લાકર દિયે ગયે આહારકો ધી અલ્પ માત્રામેં હી લેતા હૈ । કષાય-ઈસમેં કષ ઓર આય, યે દો શબ્દ હૈ, કષકા અર્થ સસાર ઓર આયકા અર્થ સ્થાન હૈ । સંસારકે જો સ્થાન હૈં ઉનકા નામ કષાય હૈ । અલ્પ આહારકા કરના કષાયોંકે ઉપશમકી સમ્ભાવનાસે હોતા હૈ તો ધી કદાચિત્ ઉસકે કષાયકા ઉદય હો જાવે ઉસ સમય ધી વહ દુર્ભાષિત આદિકો સહન હી કરતા હૈ, યહ વાત ધી ‘તિતિક્ષેત’ ઈસ પદસે પ્રકટ હોતી હૈ ।

અલ્પાહારી તે મુનિ ક્રોધાદિ કષાયોને કૃશ કરતા નીચ પુરુષોના કુવચનોને અને વ્યાધિના દુખને પણ મહન કરે, અને કદાચિત્ અવ્યાવાધ શિવસુખનો અભિલાષી તે મુનિ ગ્લાન બની જાય તો તે ચાર પ્રકારના આહારને પરિત્યાગ કરી દે—સંલેખનાના ક્રમનો નહીં સૂત્રગત અલ્પાહાર પદ એ પ્રગટ કરે છે કે તે સાધુ સંલેખનાક્રમથી—છટ્ઠ, અષ્ટમ, આદિ વિધિથી તપસ્યા કરતા પારણાના દિવસે ધીજા કોઈ મુનિદ્વારા લાવી આપવામા આવેલ આહારને પણ અલ્પ માત્રામાજ લે છે કષાય—એમા કષ અને આય એ બે શબ્દ છે કષનો અર્થ સસાર, અને આયનો અર્થ સ્થાન છે સસારનું બે સ્થાન છે તેનું નામ કષાય છે અલ્પ આહાર કરવો તે કષાયોના ઉપશમની સમ્ભાવનાથી થાય છે તો પણ કદાચ તેને કષાયનો ઉદય આવે તો તે સમયે પણ દુર્ભાષિત આદિને સહનજ કરે છે. આ વાત પણ ‘તિતિક્ષેત’ આ પદથી પ્રગટ થાય છે.

અર્થ=પશ્ચાન્તરે, યદિ મિથુ=અધ્યાપાપશિષ્યુસ્વામિભાષી મુનિઃ સ્માયેત્
=કેનાંપ સાધુના સમાનીતા મિથ્યા નોપસમ્યેત તેન કારણેન સ્થાનો મહેત્વદા
આહારસ્યૈવ=પતુર્વિધાહારસ્યૈવ અન્તિકમ્=અન્તમક્ષાન્ કુર્યાત્, ન તુ સંલેક્ષનાક્રમસ્ય ।
અથ ‘અથ’-કારેણ અપિ મત્તપ્રત્યાભ્યાનાદિકં કુર્યાત્ કિન્તુ “કતિચિદિનાનિ
હક્ત્વા પથાત્સંલેક્ષનાશ્ચેપ કરિષ્યામિ” इत्यर्थे कातरतामुपगतस्य संलेखनाक्रमं न
श्रोतयेदिति भावः ॥ ૩ ॥

અન્યત્ત્વ-‘જીવિય’ इत्यादि ।

મૂલ્ક-જીવિય નામિકસ્વિજ્ઞા, મરણ નો વિ પરથપ્ ॥

દુહઓઽપિ ન સજ્વિજ્ઞા, જીવિય મરણે તદ્વા ॥ ૪ ॥

જાયા-જીવિત્ નામિકાશ્ચેત્, મરણં નાપિ માર્યયેત્ ॥

તત્પરોઽપિ ન સજ્જેત, જીવિત્ મરણે તથા ॥ ૪ ॥

‘સ્માયેત્’ यह क्रियापद यह सूचित करता है कि किसी भी साधु
के द्वारा समानीत-लाई गई मिथ्या यदि उस साधुको नहीं मिचे तो वह
स्थान उस समय चारों प्रकारके आहारका ही त्याग कर देवे,
संलेखनाक्रमका नहीं ।

“आहारस्यैव” यहां पर “अथ” यह पद यह बतलाता है कि वह भक्त-
प्रत्याख्यान आदि करे तो परन्तु ऐसा कायर बनकर वह अपने संलेखना
के क्रमका भंग न करे कि ‘सबो कुछ विनों आहार छोड़ पीछे अवशिष्ट
संलेखना पूर्ण कर लूंगा’ ॥३॥

અન્યત્ત્વ-‘જીવિય’ इत्यादि ।

સ્માયેત્ આ ક્રિયાપદ એ સૂચિત કરે છે કે કેઈ પણ સાધુદાસ
સમાનીત-લાવેલ મિથ્યા કદાચ તે સાધુને ન મિચે તો તે સ્થાન તે સમય
ચારે પ્રકારના આહારનો ત્યાગ કરી કે પણ સંલેખનાના ક્રમનો નહી

આહારસ્યૈવ” અર્થે પર “અથ” આ પદ એમ બતાવે છે કે તે ભક્ત
પ્રત્યાખ્યાન આદિ કરે તો, પરંતુ એવા કાચર બનીને તે પોતાના સંલેખનાના
ક્રમનો ભંગ ન કરે કે- આજે થોડા દિવસ આહાર કરી તર્જ પછી બાકી રહેલ
સંલેખના પૂર્ણ કરી લઉંશ’ (૩)

કરી પણ કહે છે- જીવિય ઈત્યાદિ.

टीका—‘कषाया’-नित्यादि, स भिक्षुः, अल्पाहारः=स्तोत्रभोजी सलेखनारू-
मेण पष्ठाष्टमादिविधिना तपः कुर्वन् पारणादिने यदि केन चिदन्येन मुनिना
समानाय दीयते तदप्यल्पं मुद्रकते, इति भावः। कषायान् कपस्य=संसारस्य आयाः=
स्थानानि कषायास्तान्=क्रोधादीन् चतुर्विधान् प्रतनून=कृशान् कृत्वा तिति-
क्षेत=नीचादपि दुर्भाषितादिकं सहेत, व्याध्यातङ्क च क्षमेत, अल्पाहारकरण कषा-
योपशमसम्भावनाया भवति तथाऽपि कदाचित्तस्य कषायोदयो भवेत्तदापि स
क्षमेत एवेत्याशयः ।

अल्पाहारी वह मुनि क्रोधादिक कषायोको कृश करके नीच
पुरुषोंके कुचचनोंको और व्याधिके आतंक को भी सहन करे । यदि
कदाचित् अव्यावाध शिव-सुखका अभिलाषी वह मुनि ग्लान हो जाय
तो वह चार प्रकारके आहारका ही परित्याग कर देवे-सलेखना के
क्रमका नहीं । सूत्रस्थित अल्पाहार पद यह प्रकट करता है कि वह साधु
सलेखनाक्रमसे-षष्ठ, अष्टम आदि विधिसे-तपस्या करता हुआ पारणाके
दिन किसी अन्य मुनिके द्वारा लाकर दिये गये आहारको भी अल्प मात्रामें
ही लेता है । कषाय-इसमें कष और आय, ये दो शब्द हैं, कषका अर्थ संसार
और आयका अर्थ स्थान है । संसारके जो स्थान हैं उनका नाम कषाय
है । अल्प आहारका करना कषायोके उपशमकी सम्भावनासे होता है तो
भी कदाचित् उसके कषायका उदय हो जावे उस समय भी वह दुर्भा-
षित आदिको सहन ही करता है, यह बात भी ‘तितिक्षेत’ इस पदसे
प्रकट होती है ।

अल्पाहारी ते मुनि क्रोधादि कषायोने कृश करता नीच पुरुषोना कुच-
चनोने अने व्याधिना हु अने पण्डु महुन करे, अने कदाचित् अव्यावाध
शिवसुखको अभिलाषी ते मुनि ग्लान भनी जाय तो ते चार प्रकारका आहारको
परित्याग करी दे-सलेखनाना क्रमको नही सूत्रगत अल्पाहार पद ओ प्रकट
करे छे छे ते साधु सलेखनाक्रमसे-छठ, अष्टम, आदि विधिसे तपस्या करता
पारणादि विधिसे भी जो कदाचित् मुनिके द्वारा लायी आपवासा आवेल आहारने पण्डु
अल्प मात्रामें ले छे कषाय-अर्थात् कष अने आय ओ ये शब्द छे कषको अर्थ
संसार, अने आयको अर्थ स्थान छे संसारनु ओ स्थान छे तेनु नाम कषाय छे
अल्प आहार करवे ते कषायोना उपशमनी सम्भावनाथी थाय छे तो पण्डु
कदाचित् तेने कषायको उदय आवे तो ते समये पण्डु दुर्भाषित आदिने सहन करे
छे आ वात पण्डु ‘तितिक्षेत’ आ पदथी प्रकट थाय छे

वर्धितस्य कालपर्यायेण मरणं यद् यदा भवति तं कालं स समाहितमनाः परिपाल-
यदित्याद्ययः॥ एवम् अन्तः=कपायान् बहिः=शरीरोपकरणादिकं च व्युत्सृज्य=विहाय
हृद्-राग-द्वेषाद्युपक्रमद्विस्रोतसिकावर्मितम्, अध्यात्मम्=अन्तःकरणम् अन्वेपयेत्=
गवेपयत् ॥ ५ ॥

किञ्च—‘न किंचु’ इत्यादि।

मूष्ण-ज किंचुवक्रम जाणे, आउबखेमस्स मप्पणो ॥

तस्सेव अतरद्धाप, खिप्प सिक्खिज्ज पठिण् ॥ ६ ॥

जाया—यं कं वनोपक्रमं जानीयात्, आयुःक्षेमस्याऽऽत्मनः ॥

तस्यैव अन्तरद्धायां, सिधे शिखेत पण्डितः ॥ ६ ॥

टीका—‘यं कं वने’—त्यादि, आत्मन = स्वस्य आयुःक्षेमस्य = स्वसम्बन्धिन
आयुः क्षेमस्य = कल्याणस्य च यं कं वन उपक्रमम् = उपक्रमम् जानीयात् तस्यैव =
संश्लेखनाकालस्य अन्तरद्धायां = मध्यवर्तिकालं पण्डितः = अवगतद्वेयोपादेयतया
स्वायुषा निब्रह्मस्य बोधायपरिज्ञाता सिध = शीघ्र शिखेत = मन्मसेत। यद्वा—य
वात्मनः = निब्रह्मस्य आयुःक्षेमस्य सुखदीपितस्य यं कं वनोपक्रमम् आयुःपुद्गलानां
समयकी वह मुनि सावधानचित्त वन प्रतीक्षा करे। इस प्रकार अन्तरगकी
उपाधित्वरूप कथायोंका, एवं बहिरगकी उपाधिरूप शरीर और उपकरण
आदिका परित्यागकर वह मुनि राग द्वेष आदिके उपशमसे विस्रोतसिक-
संशयादिकदोष-रहित, ऐसे अपने अन्तःकरणकी गवेपणा करे ॥५॥

किञ्च—‘जं किं चुवक्रम’ इत्यादि।

तथा—अपनी आयुको और अपने कल्याणके जिस किसी भी उपक्रम
को वह जाने, उसका वह शीघ्र ही संश्लेखना कालके मध्यवर्ति कालमें
मन्मास करे। अथवा—वह मुनि जब ही अपने सुखमय जीवनकी
स्थिति पूरी होती हुई जाने, अर्थात् ‘आयुके पुद्गलोंका संकुचन होने का

है या प्रकृति अन्तराणी उपाधिरूप कथाये। अने प्रकारनी उपाधिरूप शरीर
अने उपकरण वगैरेना त्याग करी जे मुनि राग द्वेषभी रहित विस्रोतसिका-
संशयादिक दोष-रहित बरि पोताना अन्तःकरणनी गवेपणा करे। (५)

शरी—जं किं चुवक्रम धर्मादि।

पोतानी आयुअ अने कल्याणना इहे प्रकारना उपक्रमने ते जाये, अने
ते परत ज संश्लेखनाकालना मध्यवर्ती कालने मन्मास करे, अथवा—आपरे ते
पोताना सुखमय जीवननी स्थिति पुरी भती जाये, अथवा—आयुअना पुद्गलाने

ટીકા---‘જીવિત’-મિત્યાદિ, સ સંલેખનાકારી મુનિઃ જીવિત નામિકાદ્દક્ષેત્
=નેચ્છેત્, ક્ષુધાપરીપદાભિભૂતો મરણમ્=ઔદારિકશરીરત્યાગમપિ ન પ્રાર્થયેત્, તથા
જીવિતે મરણે ઉભયતોડપિ=ઉભયસ્મિન્નપિ ન સજ્જેત=આસક્તિ ન કુર્યાદિત્યર્થઃ॥૪॥

તદા કીદશો ભવેદિત્યાહ-‘મજ્ઞત્યો’ इत्यादि ।

મૂલમ્-મજ્ઞત્યો નિજ્જરાપેહી, સમાહિમણુપાલણ ॥

અંતો વહિં વિડસ્સિજ્જ, અજ્ઞત્યં સુદ્ધમેસણ ॥ ૫ ॥

છાયા—મધ્યસ્થો નિર્જરાપેક્ષી, સમાધિમણુપાલયેત્ ॥

અન્તર્વહિદ્યુત્સજ્જ્ય, અધ્યાત્મ શુદ્ધમન્વેપયેત્ ॥ ૫ ॥

ટીકા—‘મધ્યસ્થ’-इत्यादि, મધ્યસ્થઃ રાગ-દ્વેષયોરુદાસીનઃ, યદ્વા-મધ્યસ્થઃ
=જીવિતે મરણેડપિ ચ નિઃસ્પૃહઃ, અત એવ ‘નિર્જરાપેક્ષી’ નિર્જરા=કર્મનિર્જરણમપેક્ષિતુ
શીલં યસ્ય સ નિર્જરાપેક્ષી, સ સમાધિ=મરણસમાધિમ્ અનુપાલયેત્-જીવિતમરણેચ્છા-

વહ સંલેખનાકારી સાધુ સંલેખનામેં અધિક જીનેકી આકાંક્ષા ન
કરે, ક્ષુધા-પરીપદ આદિસે ત્રસ્ત હોકર ઔદારિક શરીરકે પરિત્યાગરૂપ
મરણકી, અર્થાત્ અધિક જીનેકી એવ દુઃખિત હોકર મરનેકી યાહના ન
રખે, તથા મરને જીને દોનોં મેં આસક્તિ ન કરે ॥ ૪ ॥

ઉસ સમય વહ કૈસા હોના યાહિયે ? હસકા ઉત્તર દેનેકે લિયે
સૂત્રકાર કહતે હૈ—‘મજ્ઞત્યો’ इत्यादि ।

રાગ ઔર દ્વેષમેં ઉદાસીન વૃત્તિવાલા, અથવા જીને ઔર મરનેમેં બી
નિઃસ્પૃહ, અત એવ કર્મોકી નિર્જરા કરનેકી અપેક્ષાકા સ્વભાવવાલા, એસા
વહ મુનિ મરણસમાધિકી અનુપાલના કરે, અર્થાત્-જીવિત ઔર મરણમેં
ઈચ્છારહિત મુનિકા કાલપર્યાયસે જિસ સમય મેં મરણ હોતા હૈ ઉસ

એ સંલેખનાકારી સાધુ સંલેખનામા વધારે જીવવાની આકાંક્ષા નહીં કરે,
ક્ષુધાપરિપદ આદિથી ત્રસ્ત બની ઔદારિક શરીરના પરિત્યાગરૂપ મરણની પણ
આકાંક્ષા ન કરે અર્થાત્-અધિક જીવવાની એમજ દુષ્ટિત બનીને મરવાની
ચાહના ન રાખે તથા મરવા જીવવા બન્નેમા આસક્તિ ન કરે (૯)

તે સમય એ કેવો હોવો જોઈએ ? તેનો ઉત્તર આપતા સૂત્રકાર કહે છે-
‘મજ્ઞત્યો’ इत्यादि

રાગ અને દ્વેષમા ઉદાસીન વૃત્તિવાળા, અથવા જીવવામા અને મરણમા પણ
નિસ્પૃહ, માટે જ કર્મોની નિર્જરાની અપેક્ષાના સ્વભાવવાળા એવા તે મુનિ મરણ-
સમાધિની અનુપાલના કરે જીવન અને મરણમા ઇચ્છારહિત મુનિનુ કાળ પર્યા-
યથી જે સમયે મરણ થાય છે એ સમયની તે મુનિ સાવધાન ચિત્તથી પ્રતીક્ષા

परित्यक्तस्य कामपर्यायण मरणं यत् यदा मयति तं कालं त समाहितमनाः परिपाल-
येदित्याह्वयः। एवम् अन्तः=कपायान् बहिः=शरीरोपकरणादिकं च ध्युत्सृज्य=विहाय
हृदय=राग-द्वेषाद्युपश्रमादिस्रोतसिकापरित्यक्तम्, अध्यात्मम्=अन्तःकरणम् अन्वेषयेत्=
मवेपयत् ॥ ५ ॥

किञ्च—‘जं किञ्चु०’ इत्यादि।

मूत्र-ज किञ्चुयकम् जाणे, आउकस्वेमस्स मप्पणो ॥

तस्सेव अतरद्वाए, सिप्प सिक्खिज्ज पडिप्प ॥ ६ ॥

भाषा—यं कं चनोपक्रमं जानीयात्, आयुःक्षेमस्याऽऽत्मनः ॥

तस्यैव अन्तरदायां, सिद्धं सिद्धं पण्डितः ॥ ६ ॥

टीका—‘यं कं चने’—त्यादि, आत्मनः=स्वस्य आयुःक्षेमस्य=स्वसम्बन्धिन
आयुः क्षेमस्य=कल्याणस्य च यं कं चन उपक्रमम्=उपक्रमम् जानीयात् तस्यैव=
संश्लेषनाकात्मस्य अन्तरदायाम्=मध्यवर्तिकां पण्डितः=अवगतहयोपादेयतया
स्वायुषा निबध्नेमस्य बोधायपरिज्ञाता सिद्ध=सीध सिद्धेत्=अभ्यसेत्। यद्वा—य
आत्मनः=निमस्य आयुःक्षेमस्य=सुखजीवितस्य यं कं चनोपक्रमम् आयुःपुद्गलानां
समयकी वह मुनि माध्वानचित्तवन प्रतीक्षा करे। इस प्रकार अन्तरगती
उपाधिस्वरूप कषायोक्त, एवं बहिरगती उपाधिरूप शरीर और उपकरण
आदिका परिस्थागकर वह मुनि राग द्वेष आदिके उपश्रमसे चित्तोत्तसिका-
संशयादिकदोष-रहित, ऐसे अपने अन्तःकरणकी गवेषणा करे ॥५॥

किञ्च—‘जं किं चुवकम्’ इत्यादि।

तथा—अपनी आयुको और अपने कल्याणके जिस किसी भी उपक्रम
को वह जाने, उसका वह सीध ही संश्लेषना कालके मध्यवर्ति कालमें
अभ्यास करे। अथवा—वह मुनि जब ही अपने सुखमय जीवनकी
स्थिति पूरी होती हुई जान, अर्थात् ‘आयुके पुद्गलोंका संकुचन होने का

३१. आ प्रश्न अन्तरगती उपाधिरूप कषायो अने बहिरगती उपाधिरूप शरीर
अने उपकरण वगैरेको त्याग करी जो मुनि राग द्वेषी रहित चित्तोत्तसिका-
संशयादिक दोष-रहित ब्रह्म चेताना अन्तःकरणकी अवेषणा करे (५)

हरी—ज किं चुवकम् इत्यादि।

चेतानी आयुष्य अने कल्याणना इसके प्रकारना उपक्रमने ते लक्ष्ये, अने
ते तत्त्व च अन्तःकरणना मध्यवर्ती कालना अभ्यास करे, अथवा—अथवा ते
चेताना सुखमय जीवनकी स्थिति पूरी यती लक्ष्ये, अथवा—आयुष्यना पुद्गलाना

સદ્જોચન સમુપસ્થિતં જાનીયાત્ સ પષ્ટિતઃ=અમરજ્ઞઃ તસ્યૈવ=ઉપક્રમમ્ય સલેખના-
વસરસ્ય અન્તરદ્વાયા=મધ્યકાલે ક્ષિપ્ર=શીઘ્ર શિક્ષેત=મક્તપરિજ્ઞાદિક્રમાસેવનેન
પરિજાનીયાત્ ॥ ૬ ॥

સ સંલેખનાપરિશુદ્ધકૃશશરીરો મરણકાલે ચોપસ્થિતે કિં વિદધીત? ઇત્યાદિ-
'ગામે વા' ઇત્યાદિ ।

મૂલમ્—ગામે વા અદુવા રણે, થંડિલં પડિલેહિયા ॥

અપ્પપાણં તુ વિન્નાય, તળાઈં સંથરે મુળી ॥ ૭ ॥

છાયા—પ્રામે વા અવવા અરણ્યે, સ્થણ્ડિલ પ્રત્યુપેક્ષ્ય ॥

અલ્પપ્રાણ વિજ્ઞાય, તૃણાનિ સસ્તરેન્મુનિઃ ॥ ૭ ॥

ટીકા—'ગામે વા'—ઇત્યાદિ, મુનિઃ=ભિક્ષુઃ સલેખનાશુદ્ધકૃશશરીરઃ ગ્રામે વા
અથવા અરણ્યે=વને અલ્પપ્રાણ=પ્રાણિર્વર્જિતં સ્થણ્ડિલ=સસ્તારકપ્રદેશં પ્રત્યુપેક્ષ્ય=સમ્ય-
ગવધાર્ય વિજ્ઞાય=વિશેષરૂપેણ જ્ઞાત્વા, તૃણાનિ=ગ્રામાદી યાચનયા પ્રાપ્તાનિ પ્રાસુ-
કાનિ દર્ભાદીનિ સંસ્તરેત્=તૈઃ સસ્તરણં કુર્યાત્ ॥ ૭ ॥

સમય ઉપસ્થિત હોચુકા હૈ' એસા સમજો તવ હી વહ અવસરજ મુનિ સંલે-
ખના કે અવસરકે મધ્યકાલમેં શીઘ્ર હી ભક્તપરિજ્ઞા આદિકા સેવન
કરને લગે ॥૬॥

સલેખના સે પરિશુદ્ધ કૃશ શરીર મુનિ મરણકાલકે ઉપસ્થિત હોને
પર ક્યા કરે? ઇસકે ઉત્તરમેં સૂત્રકાર કહતે હૈ—'ગામે વા' ઇત્યાદિ ।

વહ મુનિ કિ જિસકા કૃશ શરીર સલેખનાસે શુદ્ધ હૈ વસતિમેં
અવવા જગલ મેં પ્રાણિર્વર્જિત સસ્તારક પ્રદેશકા નિરીક્ષણ કરે, ઔર
ઉસકે પશ્ચાત જવ યહ નિશ્ચિત હોજાવે કિ યહ પ્રદેશ જીવજંતુરહિત હૈ
તવ ગ્રામાદિક મે યાચનાસે પ્રાપ્ત પ્રાસુક દર્ભ આદિ ઘાસ કો વહાં પર
વિછાકર અપના સથારા તૈયાર કરે ॥૭॥

સ કુચિત થવાનો સમય આવી ચુક્યો છે' એવું સમજો ત્યારે તે અવસરજ મુનિ
સલેખનાના અવસરના મધ્યકાળમાં સત્વર ભક્તપરિજ્ઞા વગેરેનું સેવન કરવા લાગે (૬)

સલેખનાથી જેનું કૃશ શરીર શુદ્ધ છે એવા મુનિ મરણકાળ ઉપસ્થિત
થતા શું કરે? આના ઉત્તરમાં સૂત્રકાર કહે છે—'ગામે વા' ઇત્યાદિ

જે મુનિનું કૃશ શરીર સલેખનાથી શુદ્ધ છે, વસતિમાં અથવા જગલમાં
પ્રાણિર્વર્જિત સ્થાનનું નિરીક્ષણ કરે, અને એ પછી જ્યારે એવો નિશ્ચય થઈ
જાય કે આ પ્રદેશ જીવ-જંતુથી રહિત છે, ત્યારે આમાદિકમાં યાચનાથી પ્રાપ્ત
કરેલ ઢર્ભ વગેરે ઘાસને ત્યા ખીછાવી પોતાનો સથારો તૈયાર કરે (૭)

ततः किं कुर्यादित्याह—‘अनाहारो’ इत्यादि ।

सूत्र—अनाहारो तु यद्वेज्जा, पुटो तस्यऽहियासप ।

णातिवेळ उवचरे, माणुस्सेहि वि पुटप ॥ ८ ॥

प्राया—अनाहारस्त्वर्ग्ययेत्, स्पृष्टस्तप्राध्यासयेत् ॥

नातिवेळमुपचरेत्, मानुष्यैरपि स्पृष्टकः ॥ ८ ॥

टीका—‘अनाहार’—इत्यादि—स संलेखनाशुद्धशरीरः, अनाहारः=त्रिषिध-चतुर्विधाश्ननपरित्यागी, गृहीतमहाश्रतः स्वयं ज्ञान्तः समापितसकलप्राणिगन्धः समदुःखमुक्तो विदितात्मवच्चतया भरबावप्यविम्वन् स सस्तरे स्वमर्तयेत्=प्रतिलम्प्य प्रमार्ज्य च पार्थपरिवर्तनं निश्चयात्, स एव तत्र सस्तरं स्पृष्ट=परीपहापसर्गैरभिभूतः सन् तान् वक्ष्याम्येत्=अभिसिहेत्, अपि च—तत्र मानुष्यैः=अनुकूलैः—पुत्र-कलत्र-मित्रादिसं

वह इसके पश्चात् क्या करे? इसके लिये सूत्रकार—कहते हैं—
‘अनाहारो’ इत्यादि ।

संलेखना से शुद्ध शरीर वाला, तीन प्रकार या चार प्रकारके आहारका परित्यागी, महाश्रतों को जिसने ग्रहण किया है, समस्त जीवोंको जिसने क्षमा प्रदान किया है और उनसे भी जिसने अपने समस्त प्रत्यक्ष और परोक्ष कृत दोषों की क्षमायाचना कर ली है, सुख और दुःख में जो समभावी बन चुका है और आत्मतत्त्वका ज्ञाता होने से जो मरण से भी अस्त नहीं है ऐसा वह मुनि उस पिछाये हुए सधारेकी पहिछे प्रतिछेखना करे पश्चात् उसकी प्रमार्जना करे । प्रतिछेखना और प्रमार्जना करने बाद फिर उस पर सोजावे । उस सधारे पर सोये ही वह परिपह और उपसर्गोंसे उपब्रक्षित बन उन्हें सहे । अपने अनुकूल-पुत्रमित्रकलत्रादिकों के संसर्गसे जनित परीपह और

वे मुनि क्या पछी शु करे? जाने आटे सूत्रकार कहें हैं—‘अनाहारो’ इत्यादि ।

संलेखनाभी शुद्ध शरीरवाला, त्रय प्रकारका है चार प्रकारका आहारका परित्यागी महाश्रतों के लिये ग्रहण करे है सभस्त लगेने के लिये क्षमाप्रदान करे है जाने पोते त्रय पोताना अपा प्रत्यक्ष जाने परोक्ष दोषोंकी क्षमायाचना करे है मुनि अपने कु अर्मा के सभभावी बननी मुहैल है जाने अत्रभवत्त्वना यत्ना लेखने करके के भरजुने का सजता नही, जेवोते मुनि वीजपनामां जेवोत सधारेकी पहिछेखना करी करी परिभाषना करे, जे पछी ते तेना उपर मुने सधारे नदख करे ते मुनि उपसर्गोंकी न आश्रयता तेने नदन करे पोताना अनुकूल-पुत्र-मित्र जाने कुटुंबीजनोना ससभभी आवेले परित्यक्ष जाने

સર્ગજનિતૈઃ, પ્રતિકૂલૈઃ—વધાન્વનાક્રોશાદિસમુદ્ભૂતૈઃ પરીપદોપસર્ગૈરપિ સ્પૃષ્ટકઃ= સ્પૃષ્ટ એવ સ્પૃષ્ટકઃ અનુકૂલોપસર્ગૈસ્તદનુધ્યાનપરઃ, પ્રતિકૂલૈશ્ચ તૈઃ કોપપરાયણઃ સન્ અતિવેલં નોપચરેત્=સાધુમર્યાદા નાતિક્રામેત્ ॥ ૮ ॥

ઉક્તાર્થમેવ વિશદયતિ—‘સસપ્પગા’ इत्यादि—

મૂલમ્—સંસપ્પગા ય જે પાણા, જે ય ઉડ્ડમહેચરા ॥

મુંજંતિ મંસસોણિયં, ન છળે ન પમજ્જણ ॥ ૯ ॥

છાયા—સંસર્પકાશ્ચ યે પ્રાણાઃ, યે ચ ઋર્ધ્વમધશ્ચરાઃ ॥

મુંજતે માસશોણિતં, ન ક્ષણુયાન્ન પ્રમાર્જયેત્ ॥ ૯ ॥

ટીકા—‘સંસર્પકા’—इत्यादि, સંસર્પકાઃ=સંસર્પણશીલાઃ પિપીલિકા—સર્પ—મૂષ-કાદયશ્ચ યે પ્રાણાઃ=પ્રાણિનઃ ચ=પુન. યે ઋર્ધ્વમધશ્ચરાઃ=ઋર્ધ્વચારિણો ગૃધ્રાદયઃ, અધશ્ચરાઃ=સિંહ-વ્યાઘ્ર-શૃગાલાદયઃ માસશોણિત મુંજતે, તત્ર માસભોજિનઃ ગૃધ્ર-સિંહ-વ્યાઘ્રાદયઃ, શોણિતાશિનઃ પિપીલિકાદયઃ, આદિશબ્દાત્ દશ-મશ્ક-મત્કુળ-યૂકાલિશ્લાદયઃ સન્તિ, સ મિશ્રુસ્તાન્ પૂર્વોક્તાન્ પ્રાણિનઃ સ્વમાસાવશનાય

ઉપસર્ગોંસે હર્ષિત હો કર, તથા પ્રતિકૂલ-વધ વંવન આક્રોશ આદિસે ઉત્પન્ન ઉનસે કોપપરાયણ હોકર વહ સાધુ મર્યાદાકા ઉલ્લંઘન ન કરે ॥૮॥

इस अर्थको सूत्रकार स्पष्ट करते हैं—‘संसप्पगा य’ इत्यादि ।

પિપીલિકા—કીડી, સર્પ ઓર મૂષક આદિ સસર્પણશીલ પ્રાણી, ગૃધ્ર-વગેરહ ઋર્ધ્વચારી જીવ, ઓર સિંહ, વ્યાઘ્ર એવં શૃગાલ આદિ અધશ્ચારી જીવ કિ જો માંસ ઓર શોણિત કા આહાર કરને વાલે હૈ, વે યદિ ઉસ સાધુ કે માંસ શોણિત કો ખાનેકે લિયે આવે તો વહ ઉનકી હિંસા ન કરે, તથા ઉનકે દ્વારા ખાયા ગયા અપને શરીરકા કોઈ મી અવચવ વહ રજોહરણાદિક સે પ્રમાર્જિત ન કરે। ગૃધ્ર, સિંહ ઓર વ્યાઘ્ર આદિ માંસ

ઉપસર્ગોંથી હર્ષિત બની તથા પ્રતિકૂળ-વધ-અધન-આક્રોશ વગેરેથી ઉત્પન્ન તેઓથી કોપપરાયણ બની સાધુમર્યાદાનુ તે ઉલ્લંઘન ન કરે (૮)

આ અર્થને સૂત્રકાર સ્પષ્ટ કરે છે—‘સસપ્પગા ય’ इत्यादि

કીડી-સર્પ-ઉદર-ધુસ-ખીસકેલી-છછુદર વગેરે સસર્પણશીલ પ્રાણી, ગીધ્ર વગેરે ઋર્ધ્વચારી જીવ, સિંહ, વાઘ, શીયાળ વગેરે અધશ્ચારી જીવ કે જે માંસ અને લોહીને જ ભક્ષણ કરનારા છે, એ કદાચ તે સાધુના માંસ અને લોહીનું ભક્ષણ કરવા આવે તો તે તેની હિંસા ન કરે, તેમ એના દ્વારા ખાવામાં આવેલા શરીરના કોઈ પણ ભાગને રબેડણુદિકથી પ્રમાર્જિત ન કરે ગીધ્ર સિંહ,

समागतान् न क्षण्यत् न हि स्यात्, नापि तैस्तुल्यमानमवयवम् रजोहरणादिना ममा
भवेत् ॥ ९ ॥

अपि पाद-‘पाणा’ इत्यादि ।

मूष्म-पाणा देह विहिससि, ठाणाओ नवि उष्ममे ॥

आसवेहि विविचेहि, तिप्यमाणोऽहियासय ॥ १० ॥

छापा-माणा देह विहिससि, स्थानान्नाप्युष्ममेत् ॥

आसवेविचिक्ते, स्तूप्यमाणोऽध्यासयेत् ॥ १० ॥

टीका-‘प्राणा’-इत्यादि, प्राणाः=प्राणिनो ह्यिन्द्रियादयो देह=मम शरीरं
विहिससि=मन्ति न पुना रत्नप्रयम्, अतः परिहृतवेदाद्यः समाचरितामिग्रहम्
वाचान् न निवारयत् । नापि=नैव तस्मात् स्थानात्=स्थितिमात् त्वुष्ममेत्=अवधि-
न्यत्र गच्छेत् । अपि च-विचिक्तेः=मिन्नैः आसवे=माणातिपातादिभिः, इत्या-
दिविषयकप्रायादिभिर्वा त्वप्यमाम=पीडयमानो अध्यासयेत्=तत्कृतां परीपहो-
पसर्गवाचामप्सिहेत् ॥ १० ॥

भोजी हैं, पिपीलिकादिक, आदि शब्दसे दंश, मशक, खटमल, जू एवं
सीस आदि शोणितभोजी हैं ॥ ९ ॥

और भी-‘पाणा देह’ इत्यादि ।

‘ये इन्द्रियादिक प्राणी मेरे शरीरकी ही हिंसा करते हैं, रत्नप्रयकी
नहीं ऐसा विचार कर अपने शरीरके ममत्व का त्यागी वह साधु
समाचरित-गृहीत अमिग्रहके संग के भय से उन मांसशोणितभक्षी
जीवोंका निवारण न कर, और न उनके भयसे वह उस स्थानसे किसी
और दूसरे स्थान में जावे । तथा वह साधु प्राणातिपातादिक अथवा
शब्दादिक विषय कषायरूप अनेक आसवोंसे आहत-पीडित होता हुआ
भी उन द्वारा की गई परीपह और उपसर्गकी पीड़ाको सहता रहे ॥ १० ॥

पाद वज्रे भंस ज्ञानास ॥ छिदी आदि आदि शब्दभी भयंकर भाव ७,
छिन्न वज्रे छेदी भुसनास ७ (६)

इसी पक्ष- पाणा देह इत्यादि ।

‘आ मे इन्द्रियवाणा प्राणी मास शरीरान् अक्षय करणारां छे पक्ष रत्नप्रयन् नही
कोवे विचार इसी पाताना शरीरना ममत्वना त्यागी ते साधु, समाचरित-
अक्षय करेस अभिग्रहना अजना अवधी को मास-छेदीन् अक्षय करणार छेवाने
इर न करे तेम कोना अवधी पीते को स्थान छिदी जीव स्थान न व्यय, तथा
ते साधु प्रजातिपातादिक अवयव शब्दादिक विषय-कषायोदय अनेक आसवोधी
पीयते केना कदां पक्ष ते दास वत्त परिपह अने उपसर्गनी पीयने अहं करे (१)

सर्गजनितैः, प्रतिकूलैः—उद्यन्धनाक्रोशादिसमुद्भूतैः परीपहोपसर्गैरपि स्पृष्टकः=स्पृष्ट एव स्पृष्टकः अनुकूलोपसर्गैस्तदनुध्यानपरः, प्रतिकूलैश्च तैः कोपपरायणः सन् अतिवेलं नोपचरेत्=साधुमर्यादां नातिक्रामेत् ॥ ८ ॥

उक्तार्थमेव विशदयति—‘संसर्पगा’ इत्यादि—

मूलम्—संसर्पगा य जे पाणा, जे य उड्डमहेचरा ॥

भुंजंति मंससोणियं, न छणे न पमज्जए ॥ ९ ॥

छाया—संसर्पकाश्च ये प्राणाः, ये च ऊर्ध्वमधश्चराः ॥

भुञ्जते मांसशोणितं, न क्षणयान्न प्रमार्जयेत् ॥ ९ ॥

टीका—‘संसर्पका’—इत्यादि, संसर्पकाः=संसर्पणशीलाः पिपीलिका—सर्प—मूष—कादयश्च ये प्राणाः=प्राणिनः च=पुन ये ऊर्ध्वमधश्चराः=ऊर्ध्वचारिणो गृध्रादयः, अधश्चराः=सिंह—व्याघ्र—शृगालादयः मांसशोणितं भुञ्जते, तत्र मांसभोजिनः गृध्र—सिंह—व्याघ्रादयः, शोणिताशिनः पिपीलिकादयः, आदिशब्दात् दश—मशक—मत्कुण—यूकालिक्षादयः सन्ति, स भिक्षुस्तान् पूर्वोक्तान् प्राणिनः स्वमांसाद्यशनाय

उपसर्गोसे हर्षित हो कर, तथा प्रतिकूल—वध बंधन आक्रोश आदिसे उत्पन्न उनसे कोपपरायण होकर वह साधु मर्यादाका उल्लंघन न करे ॥८॥

इस अर्थको सूत्रकार स्पष्ट करते हैं—‘संसर्पगा य’ इत्यादि ।

पिपीलिका—कीड़ी, सर्प और मूषक आदि संसर्पणशील प्राणी, गृध्र—वगैरह ऊर्ध्वचारी जीव, और सिंह, व्याघ्र एवं शृगाल आदि अधश्चारी जीव कि जो मांस और शोणित का आहार करने वाले हैं, वे यदि उस साधु के मांस शोणित को खानेके लिये आवे तो वह उनकी हिंसा न करे, तथा उनके द्वारा खाया गया अपने शरीरका कोई भी अवयव वह रजोहरणादिक से प्रमार्जित न करे। गृध्र, सिंह और व्याघ्र आदि मांस

उपसर्गोत्थी हर्षित भनी तथा प्रतिकूल—वध—अधन—आक्रोश वगैरेत्थी उत्पन्न तेत्थोत्थी कोपपरायण भनी साधुमर्यादातु ते उल्लंघन न करे (८)

आ अर्थने सूत्रकार स्पष्ट करे छे—‘संसर्पगा य’ इत्यादि

कीड़ी—सर्प—उदर—धुस—भीसकोली—छछुदर वगैरे संसर्पणशील प्राणी, गीध वगैरे ऊर्ध्वचारी एव, सिंह, व्याघ्र, शीयाण वगैरे अधश्चारी एव के जे मांस अने बोडीने जे लक्ष्य करनार छे, ओ कदाय ते साधुना मांस अने बोडीनुं लक्ष्य करवा आवे तो ते तेनी हिंसा न करे, तेम अना द्वारा आवामा आवेला शरीरना के छ पक्ष भागने रजोहरणादिके प्रमार्जित न करे गीध सिंह,

तमरमण्यवर्णयति—'पद्मविमोक्ष०' इत्यादि, द्विविकस्य=संयमवतः विजानतः=गीतार्थस्य
अपन्येनापि नवपूर्वाभिज्ञस्य नान्यस्य इव=वक्ष्यमाणमिच्छितमरण पश्यीततरम्
अतिद्वयेन सम्यक् स्वीकृतं भवति । इच्छितमरणेऽपि संसेवनात्मसंस्तारादिक
पूर्ववद् बोध्यम् ॥११॥

तन्मरणस्यान्यमपि विधिं दर्शयति—'अय' इत्यादि।

मृष्य—अय से अपरे धम्मे, नायपुत्तेण साहिण् ॥

आयवज्ज पटीयार, विअहिज्जा तिहा तिहा ॥१२॥

आया—अयं सः अपरः धर्मो, ज्ञातपुत्रेण स्वाहितः ॥

आत्मवर्नं मतीचारं, विज्जात् विधा विधा ॥१२॥

टीका—'अय'—मित्यादि, ज्ञातपुत्रेण=मगधता महावीरेण स्वाहित=मुष्टु
आहितः=ज्ञातः केवललोकन स्मृपलम्प इत्यर्थः, अयं वक्ष्यमाणः इच्छितमरणस्य
धर्मः, अपरः=मक्तपरिह्वारमरणव्ययगति, एतस्यापि मरणस्य प्रव्रज्यासंसेवनादिको
विधिः पूर्ववद् बोध्यः । इच्छितमरणमिकाहसी सर्वसुपकरण परिहृत्य स्थण्डिलप्रत्यु

सुत्रकार कहते हैं कि—जो संयमी है, तथा कमसे कम तो नौ पूर्वके ज्ञाता
हैं वही इसे स्वीकार करता है—अन्य मुनि नहीं । इस में भी
संसेवना एव तृणसंस्तार आदिकी विधि पूर्ववत् जाननी चाहिये ॥११॥

इस मरणकी अन्य विधि कहते हैं—'अयं से' इत्यादि।

ज्ञातपुत्र भी महावीर के द्वारा केवलज्ञानस्वी आलोकसे अच्छी
तरह जाना गया यह इच्छितमरणरूप धर्म 'मक्तप्रत्याख्यान आदि मरण
से भिन्न है। इस मरण की भी प्रव्रज्या ग्रहण करना, संसेवनादिक
धारण करना आदि विधि पहिलेकी तरह ही समझना चाहिये । इच्छित
मरणका अभिलाषी मुनि समस्त उपकरणका परित्याग कर स्थण्डिलका

कहे छे के के सबभी छे तथा के ओछामां ओछा नवपूर्णा बलुकारोछा छे
तेज तेने अजीकार कहे छे—भीअ मुनि नहीं, आमां पणु सदेवणा अने
आत्मन स याता वजेरेनी विधि पछेवानी माइके बलुवी ओछां के (११)

आ मरवणी नील पणु विधि कहे छे—अय से इत्यादि।

ज्ञातपुत्र भी महावीर द्वारा केवलज्ञानरूपी आलोकनरूपी (प्रकाशवदे)
आदी रीते बलुवामां आवेत्ते ते ध्मिअमरणरूप धर्म अकतप्रत्याख्यान वजेरे
मरवणी लुध प्रकाशु छे आ मरवणी पणु रीक्षा अकवु करणी सदेवणा
वजेरेनु पारणु कएनु वजेरे विधि पछेवानी माइके समजणी ओछां के, ध्मिअ
मरण आभिलाषी मुनिजे समस्त उपकरणो परित्याग कर स्थण्डिल

અન્યચ્ચાહ—‘ગંથેહિ’ ઇત્યાદિ ।

મૂલમ્—ગંથેહિં વિવિત્તેહિં, આઝકાલસ્સ પારણ ॥

પગ્ગહિયતરગં ચેયં, દવિયસ્સ વિયાણઓ ॥૧૧॥

છાયા—ગ્રન્થૈર્વિવિક્તૈઃ, આયુઃકાલસ્ય પારગઃ ॥

પ્રગૃહીતતરક ચેદ, દ્રવિકસ્ય વિજાનતઃ ॥૧૧॥

ટીકા—‘ગ્રન્થૈ’—રિત્યાદિ, ય વિવિક્તૈઃ=પૃથગ્ભૂતૈઃ, ગ્રન્થૈઃ=વાહ્યૈઃ શરીરાદિભિઃ, આભ્યન્તરૈશ્ચ રાગાદિભિઃ સ્વાત્માનં ભાવયન્ ધર્મશુક્લધ્યાનૈકતરસમન્વિતઃ સ આયુઃકાલસ્ય=મરણાવસરસ્ય=પારગઃ=પારગામી સ્યાત્—ચરમોચ્છ્વાસ-નિઃશ્વાસપર્યન્ત સમાધિમાન્ ભવેત્, એવંવિધમરણાદિવિધાયી નીરજાઃ સન્ સિદ્ધિઃ, કર્માવશેષે દેવલોક વા ગચ્છેત્ । કથિત ભક્તપરિજ્ઞાસ્થમરણમ્, સામ્પ્રતં પદ્યાર્દ્ધેનેદ્ધિ-

ઔર મી—‘ગંથેહિં’ ઇત્યાદિ ।

જો મુનિ આત્મા સે સર્વથા પૃથગ્ભૂત વાહ્ય—શરીરાદિકરૂપ એવં આભ્યન્તર—રાગાદિરૂપ પરિગ્રહોં સે અપનેકો ભિન્ન માનતા હૈ, ઔર હીસી પ્રકારકી જિસકી સદા ભાવના બની રહતી હૈ, તથા ધર્મધ્યાન ઔર શુક્લધ્યાન, હન દો ધ્યાનોં મેં સે જો કિસી એક ધ્યાનસે સમન્વિત રહતા હૈ, વહ મરણકે અવસર કા પારગામી હોતા હૈ, અર્થાત્—અન્તિમ શ્વાસ ઔર નિઃશ્વાસ પર્યન્ત સમાધિસપન્ન રહતા હૈ । હિસ રીતિસે મરણ કરનેવાલા સાધુ કર્મરૂપ રજસે રહિત હોકર સિદ્ધિલોકમે અથવા કર્મોંકે અવશેષ રહને પર દેવલોક મેં જાતા હૈ । યહાં તક ભક્તપરિજ્ઞા—નામક મરણકા કથન કિયા ગયા હૈ । યહાં સે આગે અબ આધે પદ્યસે સૂત્રકાર હિગિતમરણકા કથન આરંભ કરતે હૈ—પ્રથમ હિગિતમરણ કૌન કરતા હૈ ? હિસકે લિયે

ફરી પછુ—‘ગંથેહિં’ ઇત્યાદિ

જે મુનિ આત્માથી સર્વથા પૃથગ્ભૂત વાહ્ય—શરીરાદિકરૂપ, અને આભ્યન્તર—રાગાદિરૂપ પરિગ્રહોથી પોતાને ભિન્ન માને છે, અને આવા પ્રકારની બેની સદા ભાવના બની રહે છે, તથા ધર્મધ્યાન અને શુક્લધ્યાન, આ બંને ધ્યાનોમાથી જે કોઈ એક ધ્યાનથી સમન્વિત રહે છે તે મરણના અવસરને પાર કરનાર બને છે—અન્તિમ શ્વાસ અને નિશ્વાસ સુધી સમાધિસપન્ન રહે છે આ રીતથી મરણ કરવાવાળા સાધુ કર્મરૂપ રજથી રહિત બનીને સિદ્ધિલોકમા, અથવા કર્મોના અવશેષ રહેવાથી દેવલોકમા જાય છે અહિ સુધી ભક્તપરિજ્ઞા નામના મરણનું વર્ણન કરવામા આવેલ છે આગળ હવે અર્ધો પદ્યથી સૂત્રકાર હિગિતમરણના કથનનો પ્રારંભ કરે છે—પ્રથમ હિગિતમરણ કોણ કરે છે ? એને માટે સૂત્રકાર

मरणमुपदर्शयति—‘पगगहियं’ इत्यादि, प्रविकस्य=संयमवतः विजान्तः=गीतार्थस्य
मफ्यनापि नवपूर्णाभिज्ञस्य नान्यस्य इव=वस्यमाणमिज्ञितमरणं मयूरीतलकम्
अतिशयेन सम्यक् स्वीकृतं भवति । इज्ञितमरणेऽपि संलेखनात्मकसंस्तारादिकं
पूर्ववद् बोध्यम् ॥११॥

तन्मरणस्यान्यमपि विधिं दर्शयति—‘अय’ इत्यादि।

मूम्—अय से अपरे धम्मे, नायपुत्तेण साहिण् ॥

आयवज्ज पढीयार, विजहिज्जा तिहा तिहा ॥१२॥

प्राया—अयं सः अपरः धर्मो, ज्ञातपुत्रेण स्वारितः ॥

आत्मवर्मे मरीचार्, विजज्ञात् मिघा मिघा ॥१२॥

टीका—‘अय’—मित्यादि, ज्ञातपुत्रेण=मगधता महावीर्यं स्वारितः=सुष्ठु
स्वारितः=ज्ञातः केवलज्ञानोकेन समुपलभ्य इत्यर्थः, अयं वस्यमाण इज्ञितमरणस्य
धर्मः, अपरः=मरुपरिग्रामरणात्पुत्र्यगति, एतस्यापि मरणस्य प्रवक्ष्यासंखेयनादिको
विधिः पूर्ववद् बोध्यः । इज्ञितमरणाभिकाङ्क्षी सर्वमुपकरणं परिहृत्य स्थण्डिलस्यु-

चक्रकार कहते हैं कि—जो संयमी है, तथा कमसे कम तो नौ पूर्वके ज्ञाता
हैं वही इसे स्वीकार करता है—अन्य मुनि नहीं । इस में भी
संखेयना एवं तृणसंस्तार आदिकी विधि पूर्ववत् जाननी चाहिये ॥११॥

इस मरणकी अन्य विधि कहते हैं—‘अयं से’ इत्यादि।

ज्ञातपुत्र श्री महावीर के द्वारा केवलज्ञानरूपी आलोकसे अच्छी
तरह जाना गया यह इंगितमरणरूप धर्म मरुप्रत्याख्यान आदि मरण
से भिन्न है। इस मरण की भी प्रवक्ष्या ग्रहण करना, संखेयनादिक
धारण करना आदि विधि पहिलेकी तरह ही समझना चाहिये। इंगित
मरणका भूमिलापी मुनि समस्त उपकरणका परित्याग कर स्थण्डिलका

हठे छे छे के सबधी छे तथा के ज्ञेयार्थ ज्ञेय नवपूर्वना अलुकारदोष छे
तेष तेने अतीकार करे छे—जीव्य मुनि नही आर्थां पणु संलेखना अने
पासना सधारा वज्जेनेनी विधि पढेवानी भाइके अणुनी जेठे जे (११)

आ मरुणनी जील पणु विधि हठे छे—‘अयं से’ इत्यादि

ज्ञातपुत्र श्री महावीर द्वारा केवलज्ञानरूपी आलोकप्रकाश (प्रकाशवट)
धारी शते अणुधमा आवेष्ट ते इज्ञितमरणरूप धर्म अकवप्रत्याख्यान वज्जे
मरुणधी जुध प्रकाश छे आ मरुणनी पणु दीक्षा अणु करणी संलेखना
वज्जेनु धारण करु वज्जे विधि पढेवानी भाइके समरुणी जेठे जे इति
मरुणना अविद्यानी मुनिजे समस्त उपकरणने परित्याग करी स्थण्डिल

પેક્ષણપૂર્વકમાલોચિતપ્રતિક્રાન્તઃ, ગૃહીતપુનઃપશ્ચમહાવ્રતો યાવદશનં વિહાય સંસ્તાર-
સ્થિતો ભવેત્ । એતસ્મિન્ વિશેષ દર્શયતિ-‘આત્મવર્જ’-મિત્યાદિના, સ તૃણસસ્તા-
રગત ઇક્ષિતમરણેચ્છુઃ, ત્રિધા-ત્રિધા=ત્રિવિધૈર્મનોવાકાયરૂપેઃ કૃતકારિતાનુમતિ-
મિથ્થ આત્મવર્જ=નિજશરીરાવશ્યકકાર્યવર્જં પ્રતીચારમ્=અવયવસશ્ચારં વિજહ્યાત્=
પરિહરેત્, સ્વયમેવ ચ-ઉદ્વર્તનપરિવર્તન કાયવ્યાપારાદિક કરોતીતિ ભાવઃ॥સૂ૦ ૧૨॥

મુહુર્મુહુઃ પ્રાણિપ્રાણપરિપાલનસ્યાવશ્યકતામુપદર્શયતિ-‘હરિણ્સુ’ ઇત્યાદિ ।

મૂલમ્-હરિણ્સુ ન નિવંજિજ્જા, થંડિલં મુણિયા સણ ॥

વિઓસિજ્જ અળાહારો, પુટ્ટો તત્થઽહિયાસણ ॥૧૩॥

છાયા-હરિ તેષુ ન નિષીદેત્, સ્થળિલં જ્ઞાત્વા શયીત ॥

વ્યુત્સૃજ્યાનાહારઃ, સ્પૃષ્ટસ્તત્રાધ્યાસયેત્ ॥ ૧૩ ॥

નિરીક્ષણ, ઉસકા સંમાર્જન, પાપોંકી આલોચના એવં પ્રતિક્રમણ કરે ।
પાંચ મહાવ્રતોંકો પુનઃ ગ્રહણ કરે । અશનાદિકકો ક્રમશઃ કુશ કરતે હુણ
ઉસકા સર્વથા પરિહાર કરે, ઓર ગ્રામાદિકસે ઘાસકી યાચના કર એકાંત
સ્થાન મેં નિર્જીવ સ્થાનપર ઉનકા સંથારા કર ઉસ પર સ્વમત-સ્વામણા
કર સ્થિત હો જાવે । ઇગિત મરણકા ઇચ્છુક મુનિ મન વચન એવં કાયસે,
તથા કૃત, કારિત એવં અનુમોદના સે અપને શારીરિક આવશ્યક કાર્યોં
કે સિવાય અન્ય-અવયવોં કે સચાર કરનેરૂપ પ્રતીચારકા પરિહાર કર
દેવે । ઉદ્વર્તન-પરિવર્તનરૂપ કાયવ્યાપારાદિક યહ કર સકતા હૈ ॥૧૨॥

સૂત્રકાર બારબાર પ્રાણિયોં કે પ્રાણોંકી રક્ષાકી આવશ્યકતા પ્રકટ
કરતે હુણ સૂત્ર કહતે હૈ-‘હરિણ્સુ’ ઇત્યાદિ ।

નિરીક્ષણ, તેનુ સમાર્જન, પાપોની આલોચના તેમજ પ્રતિક્રમણ કરી પાચ મહા-
વ્રતોને પુનઃ ગ્રહણ કરે અન્ન વગેરે ઓછુ કરતા બીજા અને છેવટે તેનો સંપૂર્ણ
ત્યાગ કરે, અને આમાદિકથી ઘાસની યાચના કરી એકાંત સ્થાનમાં, નિર્જીવ
સ્થાન ઉપર સંથારો કરી એ ઉપર બેસી ખમત-ખામણા કરી સ્થિર બની બીજા
ઇગિતમરણને ઇચ્છનાર મુનિ મન વચન અને કાયાથી કરેલા, કરાયેલા, અને
અનુમોદન આપેલા પોતાના શારીરિક આવશ્યક કાર્યોં સિવાય બીજા અવયવોનો
સંચાર કરવારૂપ પ્રતિચારનો ત્યાગ કરી દે ઉદ્વર્તન-પરિવર્તનરૂપ કાયવ્યાપા-
રાદિક તે કરી શકે છે (૧૨)

સૂત્રકાર બારબાર પ્રાણીઓના પ્રાણોની રક્ષાની આવશ્યકતા પ્રગટ કરીને
સૂત્ર કહે છે-‘હરિણ્સુ’ ઇત્યાદિ

૧ ‘નિ’ પૂર્વસ્ય ‘સદ્’ ધાતો રૂપમ્ ।

टीका—‘हरितपि’—स्यादि, स मिथुः, हरितेषु—रुपाङ्गुत्युतषु प्रवेशेषु न निपीदेत्—नोपविशत्, तं स्वच्छिन्ने—हरिवादिवर्जितं स्थानं ज्ञात्वा क्षयीत, व्युत्सृज्य—आहारं त्यक्त्वा अनाहारः—कृतानखन स्पृष्टा—परिपहोपसर्गाभिमग्नमपि सहेत ॥ सू० १३ ॥ संस्थरे वर्तमान एव अन्यासयत्—उपस्थितं परीपहोपसर्गाभिमग्नमपि सहेत ॥ सू० १३ ॥

अन्यथा—‘इदिपि’—इत्यादि ।

मूत्र—इदिपि गिलायतो, समिय आहरे मुणी ॥

तद्वाचि से अगारिहे, अण्वले जे समाहिण ॥ १४ ॥

आया—इन्द्रियैर्लभ्यमानः, अमितामाहारेण मुनिः ॥

तथापि सः अर्हः, अचक्षो यः समाहितः ॥ १४ ॥

टीका—‘इन्द्रियै’—रित्यादि, अश्ननमत्याख्यानादिन्द्रियाणां क्षीणशक्तितया इन्द्रियै—भोगादिभिः, लभ्यमानः—लभनमनुभवन् मुनिः अमिनो—मनोनिग्रहगतो मावः अमिता, तां, यद्वा—साम्यम्’ इतिच्छाया, साम्यम्—समभावम् आहारयत्—स्वात्मनि स्थापयत्, आतध्यानसमन्विता न भवदित्याशयः । यथासमाधि तत्र

बह मिथु, जिस प्रवेशमें हरित—रुपाङ्गुतिके अंकुर हों उस प्रवेशमें नहीं बैठे । जहाँ हरितांकुर आदि न हों, वहाँ पर ऊठे बैठे एवं सोवे । चतुर्विध आहार का परित्यागी बह मिथु परीयह और उपसर्गों से उपद्रवित होने पर उस संपार पर रहता हुआ ही उपस्थित उस परिपह और उपसर्ग अन्य पाषा को महे ॥ १३ ॥

और भी—‘इदिपि’—इत्यादि ।

आहार के परित्याग कर देने से इन्द्रियां स्वयं शिथिल हो जाती हैं, अतः आहार क परित्याग से क्षीणशक्तिवाली इन्द्रियों द्वारा मुनि जब ग्लानिक्रम अनुभव करने लगे उस समय बह अपने मनका निग्रह करके समताभावको धारण कर—आतध्यानसे युक्त न पने । हस्त—पादा

ते किमु ने प्रदेशमा लीला इवा आदिना अंकुर होय तेवा प्रदेशमा न भेसे, जहाँ लीला इहाँना अंकुर न होय त्या भेसे उठे अने सुवे, धार प्रकल्प आका र्ण्य परित्यागी जे साधु परिपह अने उपसर्गों की उपद्रवित होवा छया सधाश उपर रहने उरफन घटा परिपह अने उपसर्गजन्य आधाजोने सहन करे (१३)

पु ५५—इदिपि—इत्यादि

आहारने त्याग करी देवाची इन्द्रियो स्वयं शिथिल जनी लय छे ओटले आका र्ण्य त्यागची क्षीणशक्तिवाली इन्द्रियो की मुनि लयरे ग्लानि अनुभव करे जे जे समये ते पाठाना मननो निग्रह करीने समता भावने धारण करे—

પેક્ષણપૂર્વકમાલોચિતપ્રતિક્રાન્તઃ, ગૃહીતપુનઃપશ્ચમહાવ્રતો યાવદશનં વિહાય સંસ્તાર-
સ્થિતો ભવેત્ । એતસ્મિન્ વિશેષ દર્શયતિ-‘આત્મવર્જ’-મિત્યાદિના, સ તૃણસસ્તા-
રગત ઇદ્વિતમરણેચ્છુઃ, ત્રિધા-ત્રિધા=ત્રિવિધૈર્મનોવાકાયરૂપૈઃ કૃતકારિતાનુમતિ-
મિશ્ર આત્મવર્જ=નિજશરીરાવશ્યકકાર્યવર્જ પ્રતીચારમ્=અવયવસંસ્થારં વિજહ્યાત્=
પરિહરેત્, સ્વયમેવ ચ-ઉદ્વર્તનપરિવર્તનં કાયવ્યાપારાદિક કરોતીતિ ભાવઃ॥મૂં૦૧૨॥

મુહુર્મુહુઃ પ્રાણિપ્રાણપરિપાલનસ્યાવશ્યકતામુપદર્શયતિ-‘હરિણ્સુ’ ઇત્યાદિ ।

મૂલમ્-હરિણ્સુ ન નિવંજિજ્જા, થંડિલં મુણિયા સણ ॥

વિઓસિજ્જ અળાહારો, પુટ્ટો તત્થહિયાસણ ॥૧૩॥

છાયા-હરિ તેષુ ન નિષીદેત્, સ્થંડિલં જ્ઞાત્વા શયીત ॥

વ્યુત્સૃજ્યાનાહારઃ, સ્પૃષ્ટસ્તત્રાધ્યાસયેત્ ॥ ૧૩ ॥

નિરીક્ષણ, ઉસકા સંમાર્જન, પાપોંકી આલોચના એવં પ્રતિક્રમણ કરે ।
પાંચ મહાવ્રતોંકો પુનઃ ગ્રહણ કરે । અશનાદિકકો ક્રમશઃ કૃશ કરતે હુણ
ઉસકા સર્વથા પરિહાર કરે, ઓર ગ્રામાદિકસે ઘાસકી યાચના કર એકાંત
સ્થાન મેં નિર્જીવ સ્થાનપર ઉનકા સંથારા કર ઉસ પર સ્વમત-સ્વામણા
કર સ્થિત હો જાવે । ઇગિત મરણકા ઇચ્છુક મુનિ મન વચન એવ કાયસે,
તથા કૃત, કારિત એવં અનુમોદના સે અપને શારીરિક આવશ્યક કાર્યોં
કે સિવાય અન્ય-અવયવોં કે સંચાર કરનેરૂપ પ્રતીચારકા પરિહાર કર
દેવે । ઉદ્વર્તન-પરિવર્તનરૂપ કાયવ્યાપારાદિક યહ કર સકતા હૈ ॥૧૨॥

સૂત્રકાર બારબાર પ્રાણિયોં કે પ્રાણોંકી રક્ષાકી આવશ્યકતા પ્રકટ
કરતે હુણ સૂત્ર કહતે હૈ-‘હરિણ્સુ’ ઇત્યાદિ ।

નિરીક્ષણ, તેનુ સમાર્જન, પાપોની આલોચના તેમજ પ્રતિક્રમણ કરી પાચ મહા-
વ્રતોને પુનઃ ગ્રહણ કરે અન્ન વગેરે ઓછુ કરતા બીજા અને છેવટે તેનો સંપૂર્ણ
ત્યાગ કરે, અને ગ્રામાદિકથી ઘાસની યાચના કરી એકાન્ત સ્થાનમાં, નિર્જીવ
સ્થાન ઉપર સંથારો કરી એ ઉપર બેસી ખમત-ખામણા કરી સ્થિર બની બીજા
ઇગિતમરણને ઇચ્છનાર મુનિ મન વચન અને કાયાથી કરેલા, કરાયેલા, અને
અનુમોદન આપેલા પોતાના શારીરિક આવશ્યક કાર્યોં સિવાય બીજા અવયવોનો
સંચાર કરવારૂપ પ્રતિચારનો ત્યાગ કરી દે ઉદ્વર્તન-પરિવર્તનરૂપ કાયવ્યાપાર-
ાદિક તે કરી શકે છે (૧૨)

સૂત્રકાર વારવાર પ્રાણીઓના પ્રાણોની રક્ષાની આવશ્યકતા પ્રગટ કરીને
સૂત્ર કહે છે-‘હરિણ્સુ’ ઇત્યાદિ

૧ ‘નિ’ પૂર્વસ્ય ‘સદ્’ ઘાતો રૂપમ્ ।

ટીકા—‘અમિક્રમે’—વિત્યાદિ, સ મુનિઃ કાપસાધારણાર્થાય દેહસ્યાપિ સુ
 કમારતયા તમિર્નિર્જાર્યમ્, અમિક્રમેત્=સંસ્તારકામિમુક્તે ગચ્છેત્, તથા પ્રતિક્રા-
 મેત્=સંસ્તારકાત્ પશ્યાત્ ગચ્છેત્, સક્તોષયેત્-પ્રસારયેત્=સ્તપાદાદીનાં સક્તોષન
 પ્રસારણં ચ કુર્પાત્, અપ્ર વાઽપિ પૂર્વોક્તામિક્રમણાદિકરણેઽપિ ‘વા’ શબ્દાત્ સતિ
 સામર્થ્યે પાદપોપગમનશ્ચત્રેન્નિતમરણેઽપિ અચેતન-શુષ્કકાષ્ઠત્ સર્વક્રિયાપક્ષિત
 एव विज्ञेयः ॥ ૧૫ ॥

તથાવિષસામર્થ્યાઽચ્ચ ચત્રિણેય તદાહ—‘પરિક્રમે’ ઇત્યાદિ ।

મૂલ્ક—પરિક્રમે પરિકિલ્લતે, અતુલા ચિદ્ અહાયણ ॥

ઠાળેણ પરિકિલ્લતે, નિસીદ્ધિજા ચ અતસો ॥ ૧૬ ॥

ઘાયા—પરિક્રમેત્ પરિક્રાન્તાઃ, અથવા તિષ્ઠેત્ યયાયતઃ ॥

સ્યાનેન પરિક્રાન્તઃ, નિપીદેચ અન્તઃ ॥ ૧૬ ॥

વહ મુનિ દેહકે અતિસુકુમાર હોનેકે કારણ નિર્જાહ કરને કે ધિયે
 સંસ્તારક ક સન્મુક્ત જા સકતા હૈ, વહાંસે પીછ છોઈ કર વાપિસ મી
 ખા સકતા હૈ । અપન હાથ પેર આદિ અવયવોં કો ફેલા સકતા હૈ ઓર
 વનકા સક્તેચ મી કર સકતા હૈ । ઇંગિત મરણ કરન મેં વપત વહ સાધુ
 इन पूर्वोक्त क्रियाओंको कर सकता है । यदि उसमें शक्ति हो तो पादपो
 पगमन में जैसे शुष्ककाष्ठ की तरह निष्क्रिय पड़ा रहता है वसी तरह
 यह भी इस इंगितमरण में निष्क्रिय हो कर रह सकता है ॥ ૧૫ ॥

इस प्रकारकी शक्ति के अभाव में जो करने योग्य है वह सूत्रकार
 प्रदर्शित करते हैं—‘परिक्रमे’ इत्यादि ।

તે મુનિ દેહના અતિ સુકુમાર હોવાને કારણે જોના હલન-ચલન માટે
 સલાસની આબુજાબુ જઈ શકે છે ત્યાંથી ફરી તે પાછા સમારના સ્થળે
 આવી શકે છે પોતાના હાથ પગ વગેરે અવયવોને ફેલાવી શકે છે અને તેના
 સક્તેચ પણ ફરી શકે છે ઇંગિત-મરણ કરવામા ઉવમી તે સાધુ આવી પૂર્વોક્ત
 ક્રિયાઓ ફરી શકે છે એ તેનામાં શક્તિ હોય તો તે પાદપોપગમનમાં જેમ
 મુકેલાં લાકડાંની જેમ નિષ્ક્રિય પડ્યા રહે છે તેમ તે પણ આ ઇંગિતમરણમા
 નિષ્ક્રિય થઈ રહી શકે છે (૧૫)

આ પ્રકારની શક્તિના અભાવમા જે કરવા યોગ્ય છે સૂત્રકાર તેને
 ધૂમ્કાસ બતાવે છે—પરિક્રમે ઇત્યાદિ

તિષ્ઠેત્, તથા હિ-સઙ્કોચનોદ્વિગ્નો હસ્તપાદાદ્યવ્યયં પ્રસારયેત્, તેન શ્રાન્ત આસીદેત્
 ઇદ્વિતપ્રદેશે પરિભ્રમેદ્વા, તથાઽપિ=અં કુર્વન્નપિ યો મુનિ, અમ્યુદ્યતમરણાદ્ ગિરિ-
 રિવાઽપ્રકમ્પ્યઃ શરીરમાત્રેણ તુ ચલિત એવ સમાહિતઃ=સમાધિસ્થાપિતચિત્તો ભવેત્
 સોઽર્ગહ્યઃ=અનિન્દ્યઃ, આરાધક એવેત્યર્થઃ । સ ભાવતોઽચલ ઇદ્વિતપ્રદેશે ગમનાદિકં
 કર્તુમર્હતીત્યાશયઃ ॥ સૂ૦ ૧૪ ॥

ઉક્તમેવાર્થ પ્રકટયતિ-‘અભિક્રમે’ ઇત્યાદિ ।

મૂલમ્-અભિક્રમે પઙ્કિક્રમે, સંકુચણ પસારણ ॥

કાયસાહારણદ્વાણ, ઇત્ય વાવિ અચેયણો ॥ ૧૫ ॥

છાયા-અભિક્રમેત્ પ્રતિક્રમેત્, સઙ્કોચયેત્પ્રસારયેત્ ॥

કાયસાધારણાર્થાય, અત્ર વાઽપિ અચેતનઃ ॥ ૧૫ ॥

દિક અવયવોં કે સંકોચસે યદિ વહ ઉદ્વિગ્ન ચિત્તવાલા હો જાતા હૈ, તો
 વહ હસ્તપાદાદિકો ફૈલા સકતા હૈ । લેટેર યદિ વહ થક જાતા હૈ તો વહ ઉઠ
 કર બૈઠ ભી સકતા હૈ, ઓર ઇગિતપ્રદેશમેં ઘૂમ ભી સકતા હૈ । ઇસ પ્રકારસે
 અપની પરિસ્થિતિકો સંભાળતા હુઆ ભી વહ પ્રાપ્ત હુણ મરણસે ચચલ-
 ચિત્ત નહીં બનતા, પ્રત્યુત પર્વતકે સમાન અડોલ હી રહતા હૈ । કેવલ શરીર
 સે હી ચલતા હૈ પરન્તુ ગૃહીત સમાધિસે કિ જિસમેં ઉસને અપના ચિત્ત
 સ્થાપિત કિયા હૈ ઉસસે ચલિત નહીં હોતા । એસા સાધુ હી અનિન્દ્ય આરાધક
 હોતા હૈ । ભાવસે અચલ હોકર હી યહ ઇગિત પ્રદેશ મેં ગમનાદિક કર
 સકતા હૈ ॥૧૪॥

કથિત અર્થકો હી સૂત્રકાર પ્રદર્શિત કરતે હૈ-‘અભિક્રમે’
 ઇત્યાદિ ।

-આર્તધ્યાનથી યુક્ત ન બને હાથ પગના અવયવોના સંકોચથી જો તે ઉદ્વિગ્ન
 ચિત્તવાળા થઈ જાય તો તે એને ફેલાવી શકે છે સુતા સુતાં જો તે થાકી જાય
 તો તે ઉઠીને બેસી શકે છે અને ઇગિત પ્રદેશમા ફરી શકે છે આ પ્રકારથી
 પરિસ્થિતિને સંભાળતા છતાં પણ તે પ્રાપ્ત થતા મરણથી અચળ ચિત્તવાળા
 બનતા નથી, પરંતુ પર્વતની જેમ અડોલ રહે છે કેવળ શરીરથી જ ચાલે છે
 પરંતુ લીધેલ સમાધિથી કે જેમા તેજો ચિત્ત સ્થાપિત કરેલ છે તેનાથી ચલિત
 થતા નથી એવા સાધુ જ પ્રશંસા મેળવનાર બને છે ભાવથી અચળ બનીને જ
 તે ઇગિત પ્રદેશમા હરી-ફરી શકે છે (૧૪)

કહેવામા આવેલા અર્થને જ સૂત્રકાર પ્રદર્શિત કરે છે-‘અભિક્રમે’ ઇત્યાદિ.

ટીકા—‘અભિક્રમે’—વિત્તાદિ, સ મુનિ કાયસાધારણાર્થાય દેશ્યાપિ સુ
 ક્રમાતયા તથિર્મિદ્ધજાર્થમ્, અભિક્રમેત્=સંસ્તારકામિદ્ધુલ્લં ગચ્છત્, તથા પ્રતિક્રા-
 મેત્=સંસ્તારકાત્ પથાત્ ગચ્છેત્, સક્તાપયત્-પ્રસારયેત્=સ્તપાદાદીનાં સક્તોષનં
 પ્રસારણં ચ કુર્વાત્, અપ વાડપિ પૂર્વોક્તામિક્રમનાદિકરણેડપિ ‘ના’ શબ્દાત્ સતિ
 સામર્થ્યે પાદપોપગમનવદગ્રેક્ષિતમરણેડપિ અવેતન=શુષ્કકાષ્ઠક્ત્ સર્વક્રિયાવર્જિત
 એવ વિદ્યેયઃ ॥ સુ ૧૫ ॥

તથાવિપસામધ્યોડસરથે યદ્વિષેયં તદાહ—‘પરિક્રમે’ ઇત્યાદિ ।

મૂલ્ક—પરિક્રમે પરિકિલ્લતે, અદુવા ચિદ્ધ અદ્વાયણ ॥

ઠાળેણ પરિકિલ્લતે, નિસીદ્ધિજા ય અતસો ॥ ૧૬ ॥

ઘાયા—પરિક્રમેત્ પરિક્રાન્તાઃ, અથવા તિષ્ઠેત્ યયાપતઃ ॥

સ્યાનેન પરિક્રાન્તાઃ, નિપીદેષ અન્તઃ ॥ ૧૬ ॥

બહુ મુનિ દેહકે અતિસુકુમાર હોનેકે કારણ નિર્બાહ કરને કે લિયે
 સંસ્તારક કે સન્મુલ્લ જા સકતા હૈ, બહાંસે પીછે લૌટ કર વાપિસ મી
 મા સકતા હૈ । અપને હાથ પેર આદિ અવયવોં કો ફેલા સકતા હૈ ઓર
 વનકા સકોષ મી કર સકતા હૈ । ઇંગિત મરણ કરને મેં વપત બહુ સાધુ
 હન પૂર્વોક્ત ક્રિયાઓંકો કર સકતા હૈ । યદિ ઉસમેં શક્તિ હો તો પાદપો
 પગમન મેં જૈસે શુષ્કકાષ્ઠ કોતરહ નિષ્ક્રિય પડા રહતા હૈ ડસીતરહ
 પહ મી હસ ઇંગિતમરણ મેં નિષ્ક્રિય હો કર રહ સકતા હૈ ॥ ૧૫ ॥

હસ પ્રકારકી શક્તિ કે અમાલ મેં જો કરને યોગ્ય હૈ બહુ સૂત્રકાર
 પ્રદર્શિત કરતે હૈ—‘પરિક્રમે’ ઇત્યાદિ ।

તે મુનિ ડેહના અતિ સુકુમાર હોવાને કારણે જેના હલન-ચલન માટે
 સમાસની અબુજાબુ બર્ધ શકે છે ત્યાંથી ફરી તે પાછા સમાસના સ્થળે
 આવી શકે છે પોતાના કાય પત્ર વગેરે અવયવોને ફેલાવી શકે છે અને તેના
 સકોચ પણ કરી શકે છે. ઇન્નિત-મરણ કરવામાં હલમી તે સાધુ આવી પૂર્વોક્ત
 ક્રિયાઓ કરી શકે છે એ તેનામા શક્તિ હોય તો તે પાદપોપનમનમા જેમ
 સુકેલાં લાકડાંની જેમ નિષ્ક્રિય પડ્યા રહે છે તેમ તે પણ આ ઇન્નિતમરણમાં
 નિષ્ક્રિય થઈ રહી શકે છે (૧૫)

આ પ્રકારની શક્તિના અભાવમા જે કરવા યોગ્ય છે સૂત્રકાર તેને
 સૂત્રકાર બતાવે છે—પરિક્રમે ઇત્યાદિ

ટીકા—‘પરિક્રામે’—દિત્યાદિ, યદા મુનેરુપવિશતઃ શરીરપીડા ભવેત્તદાસ પરિક્રાન્તઃ=શ્રમમુપગતઃ સન્ પરિક્રામેત્=પરિભ્રામ્યેત્ નિયતદેશે સરલગત્યા યાતા-યાતાદીનિ સમાચરેત્ । તત્રાપિ શ્રાન્તશ્ચેત્તદા કિં કુર્યાદિત્યાહ—‘અથવે’—ત્યાદિ, અથવા યથાયતઃ=યથાસ્થાપિતશરીરઃ તિષ્ઠેત્, યદિ સ્થાનેન=એકસ્થાનાગ્રસ્થિત્યા પરિક્રાન્તો ભવેત્—યદ્યુપવિષ્ટથેત્ પર્યઙ્કોત્કુટુકાદ્યાસનાન્તરાણિ કુર્યાત્, ઉત્થિત-શ્ચેદ્ ગમનાગમનાદિકં કુર્યાત્, તતોઽપિ ક્લાન્તશ્ચેત્તદા અન્તઃ=અન્તતો નિપીદેચ્ચ=ઉપવિશેત્, તસ્યામવસ્થાયાં પાર્શ્વશાયી દણ્ડાયતિકો લગુડશાયી વા ભૂત્વા યથા-યોગમવતિષ્ઠેતેતિ તાત્પર્યમ્ ॥ સૂ. ૧૬ ॥

અપિ ચાન્યદપ્યાહ—‘આસીણે’ ઇત્યાદિ ।

વૈઠે ૨ મુનિ કો જવ શારીરિક કષ્ટકા અનુભવ હોને લગે ઓર ઉસ દશામેં ઉસે અપના શરીર ચક્રાસા માલૂમ પડને લગે તો વહ નિયમિત પ્રદેશમેં સરલગતિ સે ગમનાગમન કર સકતા હૈ । એસા કરતે ૨ મી યદિ થક જાતા હૈ, તો ઉસે એક સ્થાન પર ઠહર જાના ચાહિયે । ઠહરતે સમય યદિ વહ વૈઠ ગયા હૈ, તો વહ પર્યઙ્કાસન યા ઉત્કુટ આસન આદિસે વૈઠ સકતા હૈ, યદિ યહા હી હૈ તો શ્રમ સમાપ્ત હોતે હી વહ ફિરસે ગમના-ગમન કર સકતા હૈ । ઇસ મેં મી જવ વહ થક જાવે તો વહ અન્તમેં વૈઠ જાવે, ઇસ સમય વહ લેટ મી સકતા હૈ, દણ્ડ જૈસા હો સકતા હૈ, તયા વહ અપને હાથ પૈર આદિ સમસ્ત અવયવોંકો ઇચ્છાનુસાર પસાર સકતા હૈ, તાત્પર્ય યહ હૈ કિ—જિસ રૂપસે લેટનેમેં યા વૈઠનેમેં ઉસે સુખ માલૂમ હો વહ ઉસ પ્રકાર સે લેટ સકતા હૈ અથવા વૈઠ સકતા હૈ ॥ ૧૬ ॥

ઓર મી—‘આસીણે’ ઇત્યાદિ ।

બેઠા બેઠા મુનિને જ્યારે શારીરિક કષ્ટનો અનુભવ થવા લાગે અને એ દશામા તેને પોતાનું શરીર થાકેલું માલુમ પડે તો તે નિયમિત પ્રદેશમાં સરળ ગતિથી હરી-ફરી શકે છે એમ કરતા કરતા પણ જો તે થાકી જાય તો તેણે એક સ્થાન ઉપર બેસી જવું જોઈ એ જે સ્થાન ઉપર પોતે બેસી ગયેલ છે ત્યાં તે પર્યંકાસન અથવા ઉત્કુટ (ઉકડું) આસન વગેરેથી બેસી શકે છે જો ઉભા જ રહે તો શ્રમ લાગતા વળી ફરીથી હરી-ફરી શકે છે એ વખતે પણ જો તે થાકી જાય તો અતે બેસી જાય અને સુઈ પણ શકે છે, લાકડીની માફક થઈ શકે છે, અને તે પોતાના હાથ પગ વગેરે અવયવો ઇચ્છાનુસાર ફેરવી શકે છે તાત્પર્ય એ છે કે—જો રીતે સુવા બેસવામાં એને સુખ પડે તે પ્રકારે તે સુઈ બેસી શકે છે (૧૬)

વધુમાં—‘આસીણે’ ઇત્યાદિ

मूढम्—आसीनेऽणेलिस मरण, इन्द्रियाणि समीरय ॥

कोलावास समासज्ज, वितथ प्रादुरेसय ॥ १७ ॥

भाषा—आसीनेऽनीदृशं मरणम्, इन्द्रियाणि समीरयत् ॥

कोलावासं समासाद्य, वितथ प्रादुरेपयेत् ॥ १७ ॥

टीका—‘आसीन’—इत्यादि अनीदृशम्=अनन्यतुल्य कातरजनबुद्धिं मरणम्= इन्द्रियाण्यम् आसीना=उपविष्टम्=स्वीकृत्य सादृशमरणकृताभ्युपसाय इत्यर्थः, स इति इन्द्रियाणि=आभादीनि समीरयेत्=मनोहामनोहृष्टादिविषयेषु राग-द्वेषा-करणेन प्रेरयेत्-विषयेभ्य इन्द्रियाणि निवृत्तयेदित्यर्थः । राग-द्वेषयोरसम्बन्धेन स्वत एव तानि स्वविषयेभ्यो निवृत्तानि भवन्तीति परमार्थः॥ स एव ‘कोलावासं’ कोलानां पुमाख्यकीटविशेषाणाम् आवास = स्थान, यम्, अन्तर्गुह्यतः पीठफलकादिकं समासाद्य=प्राप्य वितथम्=अतवायुत कोलावासादन्य सर्वथा पुमादिवीषरहित

जिसे कायर जन अंगीकार नहीं कर सकते ऐसे इस इंगित मरण को स्वीकार करनेवाला यह मुनि अपनी ओत्र आदि इन्द्रियोंको मनोह और अमनोह शब्द आदि विषयों में राग और द्वेष नहीं करके उस तर्क से हटा छेके । विषयों में जब इन्द्रियोंका राग और द्वेष नहीं होगा तो वे स्वतः उस ओर से हट जायेंगी । यह मुनि कोलावास-भीतर से जिसे घुनने ला लिया है ऐसे पीठ फलकादिको छोड़कर अच्छ मज भूत निश्चिद्र पीठ-फलकादिककी अपने सहारे के निमित्त गवेषणा करे । पुण नामक कीट-विशेषका नाम कोल है, इनका जिसमें स्थान है वह कोलावास है । इससे भिन्न कि जिसके भीतर घुन न लगा हो जिसमें छिद्र न हो और जिसकी प्रतिछेम्बना आदि क्रिया अच्छी तरह से हो

नेने असुखभी जन अंगीकार नहीं करी शकता जेवा जे उचित-मरणने स्वीकार करवावा जे मुनि पोतानी ओत्र वजेर उन्निधेने मनोह अने अम नेह शब्द वजेर विषयेभां राग अने द्वेष नहि करता जे तरक्षी कटावी ते विषयेभां जेवारे उन्निधेने राग अने द्वेष न होय त्वारे ते अते न ते तरक्षी करी जये । ते मुनि नेने अहरथी पुण वाजेर छे जेवा पीठ-फलकादिकने छेदी छर्छ सास भज्जुत छिद्र वज्जना पीठ-फलकादिकने छेद्याना नकरा भाटे जवेववा छे । जे वाक्यभां केछ होयनु स्थान न होय तेवा छिद्र वज्जना, जेनी प्रतिछेम्बना वजेरु क्रिया सारी रीते भर्छ यके जेवा

ટીકા—‘પરિક્રામે’—દિત્યાદિ, યદા મુનેરુપવિશતઃ શરીરપીડા ભવેત્તદાસ પરિક્લાન્તઃ=શ્રમમુપગતઃ સન્ પરિક્રામેત્=પરિશ્રામ્યેત્ નિયતદેશે સરલગત્યા યાતા-યાતાદીનિ સમાચરેત્ । તત્રાપિ શ્રાન્તશ્ચેત્તદા કિં કુર્યાદિત્યાહ—‘અથવે’—ત્યાદિ, અથવા યથાયતઃ=યથાસ્થાપિતશરીરઃ તિષ્ઠેત્, યદિ સ્થાનેન=એકસ્થાનાવસ્થિત્યા પરિક્લાન્તો ભવેત્—યદ્યુપવિષ્ટશ્ચેત્ પર્યઙ્કોત્કુટકાઘાસનાન્તરાણિ કુર્યાત્, ઉત્થિત-શ્ચેદ્ ગમનાગમનાદિકં કુર્યાત્, તતોઽપિ ક્લાન્તશ્ચેત્તદા અન્તઃ=અન્તતો નિષીદેચ્ચ-ઉપવિશેત્, તસ્યામવસ્થાયાં પાર્શ્વશાયી દણ્ડાયતિકો લગુડશાયી વા ભૂત્વા યથા-યોગમવતિષ્ઠેતેતિ તાત્પર્યમ્ ॥ સૂ૦ ૧૬ ॥

અપિ ચાન્યદપ્યાહ—‘આસીણે’ ઇત્યાદિ ।

બેઠે ૨ મુનિ કો જ્ય શારીરિક કષ્ટકા અનુભવ હોને લગે ઓર ઉસ દશામેં ઉસે અપના શરીર થકાસા માલૂમ પડને લગે તો વહ નિયમિત પ્રદેશ મેં સરલગતિ સે ગમનાગમન કર સકતા હૈ । એસા કરતે ૨ ભી યદિ થક જાતા હૈ, તો ઉસે એક સ્થાન પર ઠહર જાના ચાહિયે । ઠહરતે સમય યદિ વહ બેઠ ગયા હૈ, તો વહ પર્યઙ્કાસન યા ઉત્કુટ આસન આદિસે બેઠ સકતા હૈ, યદિ યહા હી હૈ તો શ્રમ સમાપ્ત હોતે હી વહ ફિરસે ગમના-ગમન કર સકતા હૈ । ઇસ મેં ભી જ્ય વહ થક જાવે તો વહ અન્તમેં બેઠ જાવે, ઇસ સમય વહ લેટ ભી સકતા હૈ, દણ્ડ જૈસા હો સકતા હૈ, તથા વહ અપને હાંય પૈર આદિ સમસ્ત અવયવોંકો ઇચ્છાનુસાર પસાર સકતા હૈ, તાત્પર્ય યહ હૈ કિ—જિસ રૂપસે લેટનેમેં યા બેઠનેમેં ઉસે સુખ માલૂમ હો વહ ઉસ પ્રકાર સે લેટ સકતા હૈ અથવા બેઠ સકતા હૈ ॥ ૧૬ ॥

ઓર ભી—‘આસીણે’ ઇત્યાદિ ।

બેઠા બેઠા મુનિને જ્યારે શારીરિક કષ્ટનો અનુભવ થવા લાગે અને એ દશામા તેને પોતાનું શરીર થાકેલું માલુમ પડે તો તે નિયમિત પ્રદેશમા સરળ ગતિથી હરી-ફરી શકે છે એમ કરતા કરતા પણ જો તે થાકી જાય તો તેણે એક સ્થાન ઉપર બેસી જવું જોઈ એ જે સ્થાન ઉપર પોતે બેસી ગયેલ છે ત્યાં તે પર્યંકાસન અથવા ઉત્કુટ (ઉકડું) આસન વગેરેથી બેસી શકે છે જો ઉભા જ રહે તો શ્રમ લાગતા વળી ફરીથી હરી-ફરી શકે છે એ વખતે પણ જો તે થાકી જાય તો અતે બેસી જાય અને સુધ્ધ પણ શકે છે, લાકડીની માફક થઈ શકે છે, અને તે પોતાના હાથ પગ વગેરે અવયવો ઇચ્છાનુસાર ફેરવી શકે છે તાત્પર્ય એ છે કે—જે રીતે સુવા બેસવામા એને સુખ પડે તે પ્રકારે તે સુધ્ધ બેસી શકે છે (૧૬)

વધુમા—‘આસીણે’ ઇત્યાદિ.

વયોગાદુ દુઃખમિહિતવાયોગાવાર્તપ્યાનાદિમનોયોમાભાવમાદુર્માનિકારખાત્
માત્માનમ્ ઉત્કર્ષયેત્=પૃથક્ કુર્યાત્ નિર્ક્ષયેદિત્યર્થઃ । તપ્=ઇન્દ્રિયમરણે પૂતિસંહ
નનુકોઽપ્રતિદર્મદેહઃ પરિપ્પુશુમાધ્યનસાયો વીતરાગમોક્ષપદાર્થસાધસ્કરૂપ-
મદ્વાપરૂપણાસ્પર્શનાપ્રતિનિવિષ્ટચિત્તઃ 'સર્વસ્ય કરુણુક ઇવ શરીરમિદં મમ ત્યાજ્ય'
મિત્યેવં કૃતનિશ્ચય સ મિશ્નુઃ સ્પર્શાન્=સકલદુઃખપિણેપાન્ અધ્યાસયેત્ 'એતે ચ
ઉપવેશાન ઔર પાન્થપરિચતન આદિકાયયોગસે, અશુભ વચનયોગસે
એવ આસ્તધ્યાન આદિ યુક્ત મનોયોગ સે જો પાર્ષોક્તી ઉત્પત્તિ કે કારણ
હે ઉ નસે અપને કો વહ મુનિ સબથા દૂર રહે ।

હસ-ઈન્દ્રિયમરણ-મેં હૃતિ એવં સંહનનસે યુક્ત સાધુ, કિ જિસકે
શુભ અધ્યવસાય વચનશીલ હૈ ઔર વીતરાગ પ્રમુ દ્વારા
પ્રરૂપિત પદાર્થો કે સ્વરૂપકી અદ્વા કરને મેં, ઇમકી પ્રરૂપણા કરનેમેં ઔર
અન્તરગ ભાવસે ઇનકી સ્પર્શના કરનેમેં જિસકા ચિત્ત સ્વલીન હો રહ્યા
હે, જેસે સર્વ અપની કંચુકી (કાંચલી)કો ઊંઢ દિવા કરતા હૈ-ઉસકે પરિ-
ત્યાગ મેં ઇસે કિસી મી તરહ કા સંકોચ યા કષ્ટ નહીં હોતા હૈ ઇસી
તરહ મુક્તે મી યહ શરીર અબદ્ય ઊંઢને યોગ્ય હૈ, હસ પ્રકાર સે જિસને
હહ નિશ્ચય કર લિયા હૈ સમસ્ત દુઃખાધિદોષોંકો સંહન કરતા રહે ।
"યે સમ્પૂર્ણ દુઃસ્વાદિક પૌદ્ગલિક શરીરકે હી બાધા કરતે હૈ, ધર્મકા
અ મુષ્ઠાન કરનેવાલે એસે મેરા તો યે કુછ મી બિગાડ નહીં કર સકતે"

તેવે એક એ કથાન ઉપવેશન અને પાન્થપરિચતન (પદ્મુ દેશવતું) વગેરે
કામ યોગથી અશુભ વચન યોગથી તેમજ આત્મધ્યાન વગેરે કુલ મનોયોગથી
જે પાપેની ઉત્પત્તિનું કારણ છે તેવાથી મુનિ પોતાની બાવને સર્વથા દૂર રહે
જે ઇન્દ્રિય અવશ્યમાં ધૃતિ અને સંકલનથી કુલ કે જેના શુભ અથવા
વધા વર્ધનશીલ છે અને વીતરાગ પ્રમુદ્ધાના પ્રરૂપિત પદાર્થોના સ્વરૂપની
અર્થ કરવામાં તેની પ્રરૂપણા કરવામાં અને અન્તરગ ભાવથી જેની સ્પર્શના
કરવામાં જેનું ચિત્ત લવલીન બની જાય છે એમ સર્વ પોતાની કાંચળી છાદી
હે છે-જેના પરિત્યાગથી સાપને કોઈ તરફનું સંકટ કે સંકોચ થતાં નથી.
આજ રીતે મારે પણ આ શરીર અવશ્ય છાદ્યા યોગ્ય છે આ પ્રકારનો જેલું
હ નિશ્ચય કરી લીધેલ છે તેવા મુનિ સમસ્ત દુઃખોને કોઈ પ્રકારના અંકડ વગર
સંકલન કરવા રહે "જે સપૂજ્ય દુઃસ્વાદિક પૌદ્ગલિક શરીરને જ બાધા કરે છે-
ધર્મનું અનુધ્યાન કરવાનાળા માથા જેવાનું તો જે કાઈ પણ બગાડી શકવાના

પાદુરેપયેત્=પ્રકટં પ્રતિલેખનયોગ્યં છિદ્રવર્જિત પીઠફલકાદિકમવઘ્મ્મનાર્થમન્વે-
પયેત્ ॥ ૧૭ ॥

કોલાવાસયુક્તપીઠફલકાદિવર્જને હેતુમાહ—‘જઓ’ ઇત્યાદિ ।

મૂલમ્—જઓ વજ્જં સમુપ્પજ્જે, ન તત્થ અવલંબણ ॥

તઓ ઉક્કસે અપ્પાણં, ફાસે તત્થહિયાસણ ॥૧૮॥

છાયા—યતો વજ્જં સમુત્પદ્ધેત, ન તત્રાવલમ્બેત્ ॥

તત ઉત્કર્ષયેદાત્માન, સ્પર્શસ્તત્રાઽધ્યાસયેત્ ॥ ૧૮ ॥

ટીકા—‘યત’—ઇત્યાદિ, યતઃ=યસ્માત્ કોલાવાસાદિયુક્તપીઠફલકાઘવઘ્-
નાત્ વજ્જમ્=વજ્જમિવ ગુરુત્વાદ્ જ્ઞાનાવરણીયાદિકર્મ, યદ્વા—‘અવઘ’—મિતિચ્છાયા,
અવઘ=પાપ સમુત્પદ્ધેત=જાયેત, તત્ર=તાદૃશે ઘુણક્ષતપીઠફલકાદૌ ન અવલમ્બેત=

અવઘ્મ્મનાદિક્રિયા નૈવ કુર્યાત્, તતઃ=તસ્માદ્ ઉત્થાનોપવેશનપાર્શ્વપરિવર્તનાદિકા-
સક્તી હો એસે પીઠ-ફલકાદિક કોહી વહ સાધુ અપને ઉપયોગ મેં લા
સકતા હૈ, ઇસસે ભિન્ન કોલાવાસયુક્ત સછિદ્રકો નહીં ॥૧૭॥

પૂર્વોક્ત પ્રકારકે પીઠફલકાદિક ઉપયોગમેં ક્યોં નહીં લાના ચાહિયે?
ક્યોં ઇનકા પરિહાર કરના ચાહિયે? ઇસ વિષયમેં કારણ બતાતે હુઅ સૂત્ર-
કાર કહતે હૈ—‘જઓ’ ઇત્યાદિ ।

કોલાવાસયુક્ત પીઠ-ફલકાદિકકો અપને ઉપયોગ મેં લાનેસે કઠોર
વજ્જકી તરહ જ્ઞાનાવરણીયાદિક કર્મોંકા અથવા પાપકા ઉસ સાધુકે બંધ
હોતા હૈ, અર્થાત્—ઘુને પીઠ ફલકાદિકકા સહારા લેને સે સાધુ જ્ઞાનાવર-
ણીયાદિક કર્મોંકા અથવા પાપોંકા સંચય કરનેવાલા હોતા હૈ, ઇસલિયે
ઉસકા ઉસે અવઘ્મ્મ-સહારા આદિ નહીં લેના ચાહિયે, એવ ઉત્થાન,

પીઠ-ફલકાદિકને જ તે સાધુ પોતાના ઉપયોગમા લઈ શકે છે તેનાથી ભિન્ન એટલે
કીડાએ પાડેલા છિદ્રવાળા નહીં (૧૭)

કીડાએ પાડેલા છિદ્રવાળા લાકડાના પાટીયાનો ઉપયોગ પીઠ માટે કેમ ન
લેવાય? એનો શા માટે પરિહાર કરવો જોઈએ? આ વિષયમા કારણ બતાવતા
સૂત્રકાર કહે છે—‘જઓ’ ઇત્યાદિ

કીડાએ કોતરેલા કે તેમા વાસ કરેલ પીઠ-ફલકાદિકને પોતાના ઉપયો-
ગમા લેવાથી વજ્જના જેવા કઠોર જ્ઞાનાવરણીયાદિક કર્મોંનો, અથવા
‘અવઘ’—પાપનો બંધ થાય છે અદરથી કોહાઈ ગયેલા એવા
લાકડાના પીઠ-ફલકાદિકનો આશરો લેવાથી સાધુ જ્ઞાનાવરણીયાદિક કર્મોંના
અથવા પાપોંના સંચય કરવાવાળા બને છે, આ માટે તેનો સહારો સાધુએ ન

पूर्वोक्तविधिना पादपोषगमनविधिम् अनुपालयेत् स मुनिः सर्वगात्रनिरोधेऽपि—सफ-
स्वरीरम्यापारनिरोधेऽपि उत्तप्यमानशरीरो मूर्च्छन् शृगाल-गृध्र-पिपीलिकादिभि-
र्भक्ष्यमात्रमांसशोणितः मारणान्तिष्ठसमुद्रावपातो वा महासत्त्वतया तेनापि
ततोऽप्यस्त्वस्मन् स्थानात्—द्रव्यत्—संस्तारकस्थानात्, भावतः—शुभाध्यवसायात्
नापि—नैव व्युत्क्रमेत्—चलेत्, शृगालादिभक्षितमांसशोणितोऽपि तस्मात्स्थानादन्यत्र
नैव मज्जेदिति तात्पर्यम् ॥१९॥

पादपोषगमनस्याचमनस्य प्रदर्शयन् तद्विधिमाह—‘अयं’ इत्यादि ।

मूष्म्—अयं से उत्तमे धम्मसे, पुव्वट्ठाणस्स पग्गह ॥

अचिरं पडिलेहिच्चा, विहरे चिद्ध माहणे ॥ २० ॥

छाया—स उत्तमो धर्मः, पूर्वस्थानस्य प्रग्रहः ॥

अचिरं प्रत्युपेक्ष्य, विहरे चिच्छेन्माह्नः ॥२०॥

जो मुनि पूर्वोक्त विधिके अनुसार पादपोषगमनकी विधिकर पालन
करता है वह मुनि शारीरिक समस्त व्यापारोंके निरोधमें भी शृगाल
पिपीलिका और गृध्र आदि मांसशोणितभक्षी जीवों द्वारा अपने
शरीरका मांस और शोणित खाये जाने पर भी चित्तशरीर नहीं
होता है। शरीरमें जरा भी कष्टका अनुभव नहीं करता है। अथवा
मरणान्तिकसमुद्राव प्राप्त यह मिश्र महासत्त्व-बलविशिष्ट होनेसे
ऐसी हालतमें भी उससे अभक्षित होता हुआ द्रव्यसे संस्तारक-
स्थानसे और भावसे—शुभ अध्यवसायसे विचलित नहीं होता है,
अर्थात् शृगाल आदि द्वारा अपने शरीर का मांस शोणित खाये जानेपर
भी यह मिश्र समाधिस्थानसे दूसरी जगह नहीं जाता ॥१९॥

पादपोषगमन में उत्तमता दिखलाते हुए सूत्रकार उसकी विधिकर
प्रदर्शन करते हैं—‘अयं से’ इत्यादि ।

अभनन्ती विधितुं पालनं करे ते मुनि पोतान्ता शरीरान्ता भोक्तव्यं तदन विरक्त
जनी सिद्धं यम शीघ्राण पजेरे भांसरक्तवक्त्रं लोको द्वारा पोतान्ता शरी-
रं मांस जने लोकी जवाता क्त्वा पणु अक्षित भनता नभी—अतः पणु
कथने अनुभव करता नभी अने भूत्सु व्यावर्ता सुभी पणु ते किमु महासत्त्व
पणुविशिष्ट होवासी जेनी कालतन्त्र पणु जेभी अभक्षित जनी द्रव्यभी संशयान्ता
स्थानधी जने आवधी शुभ अध्यवसायधी अक्षित क्त्वा नभी, अर्थात्—शीघ्राण
पजेरे द्वारा पोतान्ता शरीरान्ता भांस-लोकी जवाता क्त्वा पणु ते किमु समाधि
स्थानधी जीव स्वर्णे जवा नभी (१६)

पादपोषगमनमा उत्तमता जवावर्ता सूत्रकार जेनी विधि कहे ते—‘अयं से’ इत्यादि ।

સ્પર્શાઃ શરીરમેવાભિભવન્તિ ન તુ માં ધર્માનુષ્ઠાયિન '—મિતિ વિચિન્ત્ય સર્વદુઃસ્વે-
દનાસહનશીલો ભવેદિત્યાશયઃ ॥ સૂ૦ ॥ ૧૮ ॥

- ઇક્ષિતમરણાધિકારઃ પ્રોક્તઃ, इदांनी पादपोषगमनमुपलक्ष्य दर्शयति—‘अयं’ इत्यादि।
મૂલમ્—અયં ચાયતરે સિયા, જો એવમણુપાલણ ॥

सव्वगायनिरोहेऽपि, ठाणाओ न विउब्भमे ॥ १९ ॥

છાયા—અયં ચાયતરઃ સ્યાદ્, ય એવમણુપાલયેત્ ॥

सर्वगात्रनिरोधेऽपि, स्थानान्न व्युद्भ्रमेत् ॥ १९ ॥

टीका—‘अयं’—मित्यादि, अयं च—चकारस्त्वर्थ, अनुपदवक्ष्यमाणः पादपोगमन-
विधिः, आयततरः=पूर्वोक्तभक्तपरिज्ञेक्षितमरणापेक्षया श्रेष्ठतरः, स्यात्=भवेत्,
अस्तीत्यर्थः एतस्मिन्नपि मरणे प्रव्रज्या—संलेखनादिकमिक्ષितमरणाविधिवदेव सर्व
बोध्यम् । किमेतेन प्रकृते समायातमित्याह—‘य एव’—मित्यादि, यः मुनिः, एवं=

इस प्रकार વિચાર કર વહ આયે હુએ સમસ્ત દુઃસ્વજન્યવેદનાઓંકો સહન
કરને કા સ્વભાવવાલા બને ॥૧૮॥

यहां तक इंगितमरणका अधिकार कहा। अब यहांसे आगे
पादपोषगमन संधारेका प्रकरण प्रारंभ होता है—‘अयं’ इत्यादि ।

इस सूत्रमें “च” यह शब्द “तु” के अर्थमें आया है। यह पादपोष-
गमन संधाराकी विधि, कि जो अभी कही जानेवाली है वह पूर्वमें
कथित भक्तपरिज्ञा और इंगितमरणकी अपेक्षासे श्रेष्ठतर है। इस
मरणमें भी प्रव्रज्याग्रहण, संलेखना आदिका धारण, यह सब विधि
इंगितमरणकी विधि की तरह ही समझना चाहिये। इस कथन से प्रकृत
कथनमें क्या बात आई? इसका उत्तर देते हुए सूत्रकार कहते हैं कि—

नथी ” આ પ્રકરનો વિચાર કરી તે આવેલી સમસ્ત હુ બજન્ય વેદનાઓને
સહન કરવાના સ્વભાવવાળા બને (૧૮)

અહિં સુધી ઇંગિત મરણનો અધિકાર કહ્યો, હવે આગળ પાદપોષગમન
સંધારાના પ્રકરણનો પ્રારંભ થાય છે—‘અયં’ ઇત્યાદિ

આ સૂત્રમાં “ચ” એ શબ્દ “તુ” ના અર્થમાં આવેલ છે એ પાદપોષ-
ગમન સંધારાની વિધિ કે જે હવે કહેવામાં આવશે તે અગાઉ કહેવામાં આવેલ
ભક્તપરિજ્ઞા અને ઇંગિતમરણની અપેક્ષાથી શ્રેષ્ઠતર છે એ મરણમાં પણ
પ્રવ્રજ્યાગ્રહણ, સંલેખના વગેરેનું ધારણ, આ બધી વિધિ ઇંગિતમરણની
વિધિની માફકજ સમજવી આ કથનથી પ્રકૃત કથનમાં કઈ વાત આવી? આનો
ઉત્તર આપતા સૂત્રકાર કહે છે કે—જે મુનિ અગાઉની વિધિ પ્રમાણે પાદપોષ-

पूर्वोक्तविधिना पादपोपगमनविधिम् अनुपालयत् स मुनिः सर्वगात्रनिरोधेऽपि—सक
शरीरस्यापारनिरोधेऽपि तत्तप्यमानशरीरो मूर्च्छन् धृगाल-गृध्र-पिपीलिकादिभि-
र्मक्षमाणमांसशोणितं मारणान्तिष्ठसमुद्घातपातो वा महासत्त्वतया तेनापि
ततोऽप्यस्त्वन्नं स्थानात्—द्रव्यस—सस्तारकस्थानात्, माषतः—शुमाध्यवसायात्
नापि—नैव व्युद्भ्रमत्—चलेत्, धृगालादिमक्षितमांसशोणिताऽपि तस्मात्स्थानादन्वय
मेव गच्छेदिति तात्पर्यम् ॥१९॥

पादपोपगमनस्याचमनं प्रदर्शयन् तद्विधिमाह—‘अयं’ इत्यादि ।

मूष्म—अयं से उत्तमे धम्मो, पुष्यट्ठाणस्स पग्गहं ॥

अधिरं पढिलेद्धित्ता, विहरे चिद्ध माहणे ॥ २० ॥

छाया—स उत्तमो धर्मः, पूर्वस्थानस्य प्रग्रहः ॥

अधिरं प्रत्युपेक्ष्य, विहरेषिष्ठेन्माह्न ॥२०॥

जो मुनि पूर्वोक्त विधिके अनुसार पादपोपगमनकी विधिका पालन
करता है वह मुनि शारीरिक समस्त व्यापारोंके निरोधमें भी शृगाल
पिपीलिका और गृध्र आदि मांसशोणितमक्षी जीवों द्वारा अपने
शरीरका मांस और शोणित खाये जाने पर भी अस्मितशरीर नहीं
होता है। शरीरमें जरा भी कष्टका अनुभव नहीं करता है। अथवा
मारणान्तिकसमुद्घात प्राप्त यह निष्ठु महासत्त्व-बलविशिष्ट होनेसे
ऐसी हान्यमें भी उससे अक्षित होता हुआ द्रव्यसे सस्तारक-
स्थानसे और माषसे—शुभ अध्यवसाय से विचलित नहीं होता है,
अर्थात् शृगाल आदि द्वारा अपने शरीर का मांस शोणित खाये जानेपर
भी यह निष्ठु समाधिस्थानसे दूसरी जगह नहीं जाता ॥१९॥

पादपोपगमन में उत्तमता दिखलाते हुए सूत्रकार उसकी विधिका
प्रदर्शन करते हैं—‘अयं से’ इत्यादि ।

अमननी विधिनु पालन करे छे ते मुनि पोताना शरीरका भौकथे तबन विरक्त
जनी सिद्ध, पाष, शीयाण पजेरे मांसरक्तकाष्ठ छेवे द्वारा पोताना शरी
रनु भास जने बोझी जगता छता पणु अक्षित जनता नथी—जरा पणु
हउने अनुभव इत्ता नथी जने भूतु भावता सुधी पणु ते निष्ठु महासत्त्व
बलविशिष्ट होवाथी जेवी कालतमां पणु जेवी अक्षित जनी द्रव्यधी समाधान
स्थानधी जने भावधी शुभ अध्यवसायधी अक्षित कता नथी, अर्थात्—शीयाण
पजेरे द्वारा पोताना शरीरका मांस—बोझी जगता छता पणु ते निष्ठु समाधि
स्थानधी जीव स्थले कता नथी । (१६)

पादपोपगमनमां उत्तमता जतावता सूत्रकार जेनी विधि कहे छे—‘अयं से’ इत्यादि.

ટીકા—‘અય’—મિત્યાદિ, અયં પ્રત્યક્ષનિર્દિષ્ટઃ પાદપોષગમનમરણવિધિઃ સઃ ધર્મઃ, યતઃ ‘પૂર્વસ્થાનસ્ય’ ઇતિ પञ्चમ્યર્થે પઠી, તેન—પૂર્વસ્થાનાત્=ભક્તપરિજ્ઞિત-મરણરૂપાત્ પ્રગ્રહઃ=શ્રેષ્ઠઃ, અત એવ સ ઉત્તમો ધર્મોઽસ્તિ । ઇજિતમરણે કાયપરિપાલનાનુમતિરભિહિતા, અત્ર ચ તત્પરિસ્પન્દનમપિ ન કર્તવ્યમ્ । છિન્નમૂલપાદપો યથા ચેષ્ટાવર્જિતઃ ક્રિયાવર્જિતો દલ્લમાનશ્ચિદ્યમાનો વિષમપતિતઃ સમપતિતોઽપિ વા યથૈવાવતિષ્ઠતે ન તુ તસ્માત્ સ્થાનાત્ સ્થાનાન્તરં ગચ્છતિ, તથૈવ મુનિરપિ સતિ-

યહ પ્રત્યક્ષનિર્દિષ્ટ પાદપોષગમન મરણક્રી વિધિ પ્રવર્તમેં પ્રતિપાદિત ભક્ત પરિજ્ઞા ઔર ઇગિતમરણરૂપ પૂર્વસ્થાન સે શ્રેષ્ઠ હૈ, ડસલિયે યહ ઉત્તમ ધર્મ હૈ । ઇગિતમરણ મેં શરીરકા પરિપાલન ઔર ઉસમેં અનુમતિ કહી ગઈ હૈ । અથવા ઇગિતમરણ પાલનેવાલા સાધુ અપને શરીરકી પાલનાનિમિત્ત દૂસરે સાધુઓંકો અનુમતિ દે સકતા હૈ, પરન્તુ ઇસ મરણમેં તો વહ મરણકર્તા સાધુ અપને શરીરકા પરિસ્પન્દન-હલન-ચલનરૂપ ક્રિયાકા મી સર્વથા પરિત્યાગી હો જાતા હૈ । જિસકા મૂલ છિન્ન હૈ, એસા ઉઘડા હુઆ વૃક્ષ જિસ પ્રકાર સ્વયં ચેષ્ટાસે રહિત હોતા હૈ-ક્રિયાસે શૂન્ય બન જાતા હૈ, યાહે વહ કાટ દિયા જાય, યાહે વહ જલા દિયા જાય, યાહે સમસ્થાન પર પડે અથવા વિષમસ્થાન પર પડે કહી મી પડે જૈસાકા તૈસા પડા રહતા હૈ, નિશ્ચેષ્ટ રહતા હૈ-ઉસ સ્થાનસે એક રતીઅર મી આગે નહી ચલતા હૈ, હૈસી પ્રકાર ઇસ મરણકા ધારક મુનિ મી માના ગયા હૈ-યહ મી દેહાશ્રિત સમસ્ત ક્રિયાઓંસે શૂન્ય રહતા હૈ । હૈસી વિષયકો સૂત્રકાર સ્પષ્ટ કરતે

આ પાદપોષગમન મરણની વિધિ પ્રથમ કહેવાયેલ ભક્તપરિજ્ઞા અને ઇગિત મરણથી શ્રેષ્ઠ છે, આ કારણે તે ઉત્તમ ધર્મ છે ઇગિતમરણમા શરીરનું પરિપાલન કરવાની અનુમતિ અપાયેલ છે અથવા-ઇગિતમરણ પાળવાવાળા સાધુ પોતાના શરીરની પાલનાનિમિત્ત બીજા સાધુઓને અનુમતિ આપી શકે છે, પરંતુ આ મરણમા તો મરણ સ્વીકારનાર સાધુ પોતાના શરીરના પરિસ્પન્દન-હલન-ચલનરૂપ ક્રિયાનો પણ સંપૂર્ણ પછે પરિત્યાગી બની જાય છે જેના મુળ તુટી ગયા એવું ઉખડી ગયેલું વૃક્ષ જે રાતે સ્વયં ચેષ્ટાથી રહિત બને છે-ક્રિયાથી શૂન્ય થઈ જાય છે-ચાહે તેને કાપી નાખવામા આવે ચાહે બાળી નાખવામા આવે, ચાહે સમસ્થાન પર પડે-ચાહે વિષમસ્થાન પર પડે, ગમે ત્યાં પડે જેમને તેમ પડી રહે છે, નિશ્ચેષ્ટ રહે છે-જે સ્થાને પડ્યું હોય ત્યાંથી એક દોશ પણ આગળ વધી શકતું નથી આજ પ્રમાણે આ મરણને ધારણ કરનાર મુનિ માનવામા આવેલ છે એ દેહાશ્રિત સમસ્ત ક્રિયાઓથી શૂન્ય રહે છે, આ વિષયને

प्लेव । एतदेव स्पष्टयति—‘अचिर’—मिस्थादि, माह्नः=मुनिः अचिरं=शीघ्रं प्रत्यु-
पेक्ष्य=उत्स्थानं प्रतिष्ठिष्य तत्र विहरेत्=पादपोषगमनमाचरेत् । पादपोषगमनप्रस-
ङ्गेन तत्र विहारस्तद्विधिपरिपालनरूपः कथितः । अथ स्थानान्तरगमनं निषेधयितुं
माह—‘विष्ठ’—व्रिति, सर्वगान्निराधेऽपि स्थानान्तरगमनान्निवृत्तः सन् छिन्नपादप-
द् विष्टेत् ॥२०॥

किञ्च—‘अचिरं’ इत्यादि ।

मूल्—अचित्त तु समासज्ज, ठावण तस्य अप्पग ॥

वोसिरे सव्वसो कायं, न मे देहे परीसहा ॥ २१ ॥

छापा—अचिरं तु समासाय, स्थापयत्तप्रात्यक्षम् ॥

व्युत्सुजेस्त्वर्ध्वः कायं, न मे देहे परीपहा ॥२१॥

हैं—इस मरणको धारण करनेकी भाषनाबाला मुनि शीघ्र उस स्थानकी
प्रतिष्ठेस्सना कर पादपोषगमन संधारा धारण करे । “विहरेत्” यह
क्रियापद पादपोषगमनके प्रकरणक सब घसे उसकी विधिकी परिपालन
करनेरूप विहारका कथन करता है, अर्थात् मुनि पादपोषगमन संधार
का धारण उसकी विधिके अनुसार ही करे । इस संधारेमें मुनि एकस्थान
से दूसरे स्थानमें नहीं जा सकता है, इस बातको सूत्रकार “विष्ठ माहणे”
इस सूत्रांशसे प्रदर्शित करते हैं, यह मुनि समस्त शारीरिक
क्रियाओंके निरोध होनेसे छिन्नवृक्षकी तरह एक जगहसे दूसरी जगह
जानेरूप क्रियाका सर्वथा परिहारी होता है ॥२०॥

और भी—‘अचिरं तु’ इत्यादि ।

सूत्रकार स्पष्ट करे छे—आवा भरखुने धारण करवानी आवनावाणा मुनि वात्कलिके को
स्थानकी प्रतिष्ठेप्पना करी पादपोषगमन संधारा धारण करे विहरेत् आ क्रियापद
पादपोषगमन प्रकरणका सब घसी कोनी विधिनु परिपालन करवाइय विहारतु
करे छे अर्थात्—मुनि पादपोषगमन संधारा कोनी विधि अनुसार न धारण
करे आ संधाराभां मुनि कोठ स्थानकी नीला स्थान ठीकर लट शकवा नही
आ बातने सूत्रकार “विष्ठ माहणे” आ सूत्रांशकी प्रदर्शित करे छे । ते मुनि
समस्त शारीरिक क्रियाकोने निरोध होवासी पठेवा वृक्षकी भाइके कोठ आव्वासी
नीला आव्वाको अपा रूप क्रियाका सबथा परिहारी होय छे (२०)

इसे पद्य—अचित्त तु’ इत्यादि

टीका—‘अचित्त’—मित्यादि. स मुनिः, अचित्तम्=प्राणिशून्यं प्रासुक स्थण्डिलं समासाद्य=प्राप्य तत्र=स्थण्डिले आत्मक=स्वात्मानं स्थापयेत् । तत्र स्थितः परिहृतचतुर्विधाहारो गिरिरिवाऽप्रचलितो विहितप्रत्युपेक्षणादिपरिकर्मा सन् सर्वशः=सर्वभावेन कायं शरीरममत्वं व्युत्सृजेत्=परित्यजेत् । यदि तं शरीरपरीपहोपसर्गा अभिभवेयुस्तदा स चेतस्येवं चिन्तयेदित्याह—‘न मे’ इत्यादिना, मे=मम देहे=शरीरे परीषहाः तत्र समुत्पन्नाः—अनुकूल—प्रतिकूलान् न सन्ति, यतो देहोऽपि मदीयो नास्ति कथं तत्सम्बन्धिनः परीषहा मामभिभवेयुः, तद्विहितवेदनाया अननुभवादित्याशयः ॥२१॥

वह मुनि प्राणिशून्य—प्रासुक स्थण्डिल—स्थान प्राप्तकर वहां अपनेको स्थापित करे, अर्थात् वहां ठहर जावे। चतुर्विध आहारका परित्यागी एवं पर्वतके समान अचल वह साधु उस भूमिका समार्जन आदि परिकर्म कर उस पर अपना घासका संथारा करे, इत्यादि समस्त पूर्वोक्त विधि कर वह साधु सर्वभावसे शरीरका ममत्व छोड़ देवे। उस समय यदि उसे परीषह और उपसर्ग उपद्रवित करते हैं, तो वह उन सबको, चित्तमें इस प्रकारके विचारसे सहन करे कि “देहे परीषहाः” ये अनुकूल और प्रतिकूल परीषह आदि देहमें हैं “न मे” मेरी आत्मामें नहीं है, जब देह हीं मेरा नहीं है तो फिर उस सबंधी ये परीषह आदि मुझे दुःखित या उपद्रवित भी कैसे कर सकने हैं? क्यो कि इनसे उत्पन्न वेदनाका मुझे तो कोई अनुभव ही नहीं होता है ॥२१॥

ते मुनि प्राणिशून्य—प्रासुक स्थण्डिल—स्थान प्राप्त करी त्या पोताने स्थापित करे, अर्थात् त्या रोकड वन्य चार प्रकारना व्याहारना परित्यागी अने पर्वत समान अचल ते साधुचे भूमि साक्षसूक्ष्म करी जेना उपर घासनेा स थारा करे, त्या रीते जधी विधि पूर्युं कर्या पछी ते साधु सर्वभावधी शरीरनु ममत्व छोडी दे जे समये कदाच तेने परिषड अने उपसर्ग उपद्रव करे तो तेने चित्तभा आ प्रकारना विचारथी सहन करे के ‘देहे परिषहा’ अ अनुकूल अने प्रतिकूल परिषड वगेरे देहमा छे “न मे” भारी आत्माभा नथी, ज्यारे आ देह न भारी नथी तो पछी ते सजधी आ परिषड वगेरे मने उपद्रवित अथवा दुःखी पणु केम करी शके? केमके आनाथी उत्पन्न वेदनाने। मने तो केई अनुभव न नथी थतो (२१)

તે પરીપદા ક્રિયત્કાસમગ્યાસનીયાઃ? इति शिष्यजिज्ञासायामाह—‘भाव-
जीवं’ इत्यादि ।

મૂળ—જાવડજીવં પરીસદા, ઉપસર્ગા इति સંસ્થાયા ॥

સતુદે દેહમેવાય, इयपस्नेऽहियासय ॥ ૨૨ ॥

જાયા—યાવજ્જીવં પરીપદા,—ઉપસર્ગા इति સંસ્થાયા ॥

સંતુલો દેહમેવાય, इतिप्रज्ञोऽध्यासयेत् ॥૨૨॥

ટીકા—‘યાવજ્જીવ’—મિત્યાદિ, પરીપદા ઉપસર્ગાંય યાવજ્જીવ=જીવનપર્યન્તં
પદા સ્વાયત્વા સદ્નીયાઃ સન્તિ, इति=અર્થ સંસ્થાયા=નિશ્ચિત્ય સ મુનિઃ દેહમેવાય
=દેહપરિત્યાગાર્થ સંતુલ=કાયાવિસફલમ્યાપારનિવૃત્તઃ इतिप्रज्ञ=પાદપોગમનસમુ-
ચિતવિધિપરિજ્ઞાનસુલભઃ, અધ્યાસયત્=સર્વ પરીપદોપસર્ગાદિકમુપનત્તમચિસેત્ ॥૨૨॥

પદાદર્શ મિદ્ધુપસમ્ય રાગાવિસ્તં यदि निमन्त्रयेत्निषेधायाह—‘ મઠરેસુ ’
इत्यादि ।

સાધુકો પે પરીપદ વિજ્ઞાને સમય તક સદ્દન કરના જાહિયે ? इस
प्रकारकी जिज्ञासामें सूत्रकार कहते हैं—“ जावडजीवं ” इत्यादि ।

“ जिस तरहसे बने उस तरहसे परीपद और उपसर्ग साधुको
जीवनपर्यन्त सहन करनेयाग्य हैं ” ऐसा विचार कर मुनि शरीरको
छोड़नेके लिये कायादिके सकल व्यापारोंसे निवृत्त होता हुआ, तथा पा-
दपोगमन संघारेकी उचित विधिके परिज्ञानमें कुशल बना हुआ
आय हुए परीपद और उपसर्गादिकोंको सहन करे ॥ २२ ॥

ऐसे विशिष्ट तपस्वी मुनिको देख कर यदि राजा भगैरह उसे
भारमंत्रित कर तो इसके निषेधके लिय कहते हैं—‘ मठरेसु ’ इत्यादि ।

સાધુકો આવા પરિપદ કેટલા સમય મુખી ચક્રન કરવો જોઈએ? આ
પ્રશ્નની હજારામાં સૂત્રકાર કહે છે— જાવડજીવ ઇત્યાદિ.

“ જ્યાંસુખી હવે ત્યાંસુખી પરિપદ અને ઉપસર્ગ સાધુકો જેમ અને તેમ
ચક્રન કરવા જરૂરી છે ” આવો વિચાર કરી તે મુનિ શરીરને છોડવા માટે કયા
વિધના રીતે વ્યવસ્થાથી નિવૃત્ત થતા અને પાદપોગમન સંઘાસની ઉચિત
વિધિના પરિજ્ઞાનમાં જ લગ્નલીન બનવા જે કાંઈ પરિપદ અને ઉપસર્ગાદિક આવે
તેને ચક્રન કરે (૨૨)

જેવા વિશિષ્ટ તપસ્વી મુનિને જોઈ કદાચ કયા વજેરે જોને આમ ત્રણ આવે
તે એના નિષેધ માટે સૂત્રકાર કહે છે— મઠરેસુ ઇત્યાદિ.

टीका—‘अचित्त’—मित्यादि. स मुनिः, अचित्तम्=प्राणिशून्यं प्रासुकं स्थण्डिलं समासाद्य=प्राप्य तत्र=स्थण्डिले आत्मक=स्वात्मानं स्थापयेत् । तत्र स्थितः परिहृतचतुर्विधाहारो गिरिरिवाऽप्रचलितो विहितप्रत्युपेक्षणादिपरिकर्मां सन् सर्वशः=सर्वभावेन कायं शरीरममत्वं व्युत्सृजेत्=परित्यजेत् । यदि तं शरीरपरीपहोपसर्गा अभिभवेयुस्तदा स चेतस्येवं चिन्तयेदित्याह—‘न मे’ इत्यादिना, मे=मम देहे=शरीरे परीपहाः तत्र समुत्पन्नाः—अनुकूल—प्रतिकूल न सन्ति, यतो देहोऽपि मदीयो नास्ति कथं तत्सम्बन्धिनः परीपहा मामभिभवेयुः, तद्विहितवेदनाया अननुभवादित्याशयः ॥२१॥

वह मुनि प्राणिशून्य-प्रासुक स्थण्डिल-स्थान प्राप्तकर वहां अपनेको स्थापित करे, अर्थात् वहां ठहर जावे। चतुर्विध आहारका परित्यागी एव पर्वतके समान अचल वह साधु उस भूमिका समार्जन आदि परिकर्म कर उस पर अपना घासका संथारा करे, इत्यादि समस्त पूर्वोक्त विधि कर वह साधु सर्वभावसे शरीरका ममत्व छोड़ देवे। उस समय यदि उसे परीषह और उपसर्ग उपद्रवित करते हैं, तो वह उन सबको, चित्तमें इस प्रकारके विचारसे सहन करे कि “देहे परीषहाः” ये अनुकूल और प्रतिकूल परीषह आदि देहमे हैं “न मे” मेरी आत्मामें नहीं है, जब देह ही मेरा नहीं है तो फिर उस सबंधी ये परीषह आदि मुझे दुःखित या उपद्रवित भी कैसे कर सकने हैं? क्यों कि इनसे उत्पन्न वेदनाका मुझे तो कोई अनुभव ही नहीं होता है ॥२१॥

ते मुनि प्राणिशून्य-प्रासुक स्थण्डिल-स्थान प्राप्त करी त्या पोताने स्थापित करे, अर्थात् त्या रोकड जग्य चार प्रकारना व्याहारना परित्यागी अने पर्वत समान अथवा ते साधुअे भूमि साक्षर करी अनेा उपर घासनेा संथारे करे, आ रीते जधी विधि पूर्य कर्था पछी ते साधु सर्वभावथी शरीरनु ममत्व छोडी दे अे समये कदाच तेने परिषड अने उपसर्ग उपद्रव करे तो तेने चित्तमा आ प्रकारना विचारथी सहन करे के ‘देहे परिषहा’ अ अनुकूल अने प्रतिकूल परिषड वगेरे देहमा छे “न मे” भारी आत्माभा नथी, ज्यारे आ देह ज भारी नथी तो पछी ते सजधी आ परिषड वगेरे भने उपद्रवित अथवा दुःखी पण केम करी शके? केमके आनाथी उत्पन्न वेदनानेा भने तो केध अनुभव ज नथी थतो (२१)

किं शान्त्यदप्याह—‘सासपहिं’ इत्यादि ।

मूत्र—सासपहिं निमतिउजा, दिव्यमाय न सहदे ॥

त पडिघुज्ज माहणे, सव्व नूम विवृणिया ॥२४॥

छापा—शान्तैर्निमन्त्रयेत्, दिव्यमायां न भक्षीत ॥

तत्पठिषुदपस्व माहनः, सर्वं नूनं विधूय ॥ २४ ॥

टीका—‘शान्तै’—रित्यादि, यदि राजाविस्तं मिश्रं शान्तैः—यावज्जीवनयाप्राप्या पनपोम्यैः, बहुदानादिनाऽप्यपरिहीयमाणैरर्थैर्निमन्त्रयेत् एवं देवादिस्तपः तन्त्रयितुं शक्यतादिना, विरोधच्छया दिव्यदिप्रलामनेन वा निमन्त्रयत्वा तां दिव्यमायां दवादिपिरितप्रपञ्चरूपां स न भक्षीत—न तत्र भद्रां कुर्यात्, तत्र पृद्धो भूत्वा न तपः तन्त्रयेदित्यभिप्रायः । ‘यदर्थं घनादिकमन्त्रिष्यते तत् क्षीरमेवाऽशान्तम्’ इति

और भी सूत्रकार प्रकट करते हैं—‘सासपहिं’ इत्यादि ।

यदि राजा आदि उस मिश्रके लिये उसके जीवनपर्यन्त, कि जिससे उसकी जीवनयात्राका निर्बाह अच्छी तरहसे हो सके, तथा जो दान करने पर भी कमीकम न हो सके इतने द्रव्य देनेका प्रलोभन दे कर उसे आमंत्रित कर, अथवा कोई देव आदि उसके तपको म्बडित करनेके लिये कौतूहल से, विरोध की इच्छासे, अथवा दिव्य-मन्त्रिके प्रलोभनसे उसे आमंत्रित करे तो यह मुनि उस राजाद्वारा प्रलोभनको एवं देवादिकृत प्रपञ्चरूप उस दिव्य यमस्कारको भद्राकी दृष्टिसे न देखे । उसमें लुब्ध घन कर यह अपने तपको म्बडित न करे । इस प्रकार विचार कर ह माहन ! हे अमण ! तुम समस्त अष्ट कर्मों के दूर करनेमें उस शान्त-यावज्जीव टिकनवाले अर्थको एवं दिव्य मायाको

पुत्रमा आ सुत्राश प्रम ० रे छे—सासपहिं इत्यादि

होई शान्त वजरे के मिश्र भाटे जेना जीवनपर्यंतनी देनाधी जेनी लुभन यात्राये निर्वाह जारी रीते यह शक्य तथा दान करवा जेता पण के करी जेता न यह शक्य जेटहु न्य देवानु प्रलोभन यह जेने आमंत्रित करे, अथवा होई देव वजरे जेना तपने भक्ति करवा भाटे पुत्रदलभी विराधनी छिछाधी अथवा दिव्य रिजिना प्रलोभनभी जेने आमंत्रण आपी तयारे जे मुनि आपा राख तरावना प्रलोभनने, तथा देव आदिना प्रपञ्चरूप जेना दिव्य यमस्कारने भद्रानी दृष्टीभी न जुजे, जेनां होहुप जनी ते पातना तपने भक्ति न करे या प्रसारने विचार करीछे माहन ! हे अमण ! तपे नमस्त आठ कर्मने दूर करवाव ते शान्त वजरे टिकनाइ जेने अने दिव्यमायाने अनर्थकारक नमजे

મૂલમ્—મેઝરેસુ ન રજિજ્જા, કામેસુ વહુતરેસુ વિ ॥

ઇચ્છાલોભં ન સેવિજ્જા, ધુવવર્ણં સપેહિયા ॥ ૨૩ ॥

છાયા—મિદુરેપુ ન રજ્યેત, કામેપુ વહુતરેષ્વપિ ॥

ઇચ્છાલોભ ન સેવેત, ધુવવર્ણં સપ્રેક્ષ્ય ॥ ૨૩ ॥

ટીકા—‘મિદુરેપિ’—ત્યાદિ, સ મિદુઃ=હર્મનિર્જરણપરઃ વહુતરેષ્વપિ=વહુવિધે-
ષ્વપિ મિદુરેપુ=ક્ષણમદ્ગરેપુ કામેપુ=શબ્દાદિકામગુણેપુ ન રજ્યેત=ન રાગમુપગચ્છેત,
રાજા રાજદ્વિપ્રદાનેનાપિ યદ્યુપનિમન્ય પ્રલોભયેત્તથાઽપિ તત્ર ન સમૂર્ચ્છિતો ભવેદિ-
ત્યભિમાય । કિં ચ—સ ધુવવર્ણં,=ધુવવર્ણ=શાશ્વતત્વાઽસૌ વર્ણઃ=સયમો મોક્ષો વા ધુવ-
ર્ણસ્ત મોક્ષ તત્સાધન ચ સપ્રેક્ષ્ય=સમાલોચ્ય ઇચ્છાલોભમ્=ઇચ્છાપૂર્વત્વાસૌ લોભઃ=ઇચ્છા-
લોભસ્તમ્ ઇન્દ્રાદિસમૃદ્ધિપ્રાપ્ત્યભિલાષ ન સેવેત=“ઇહલોગાસમ્પઓગે ૧ પરલોગા-
સંસપ્પઓગે ૨ જીવિયાસસપ્પઓગે મરણાસસપ્પઓગે ૪ કામભોગાસસપ્પઓગે ૫”
ઇત્યાદિભગવદ્વચનાદિહલોકપરલોકાદિવાચ્છા નિપેધયેદિત્યાશયઃ ॥ ૨૩ ॥

કર્મોંકી નિર્જરા કરનેમેં તત્પર વહ મિદુઃ અનેક પ્રકારકે મી ક્ષણ-
મગુર એસે શબ્દાદિક કામગુણોં મેં રાગી ન વને, અતઃ કોઈ રાજા ઉસ
મુનિકો રાજઋદ્ધિકે પ્રદાન કરનેકા પ્રલોભન દેકર મી યદિ અપને યહાં
આમત્રિત કરતા હૈ તો મી વહ મુનિ ઉસમેં મૂર્ચ્છિત ન વને। સંયમ અથવા
મોક્ષરૂપ ધુવવર્ણકા એવ ઉસકે સાધનોકા વિચાર કર વહ ઇચ્છારૂપ લોભ-
ઇન્દ્રાદિકકી ઋદ્ધિકી પ્રાપ્તિરૂપ અભિલાષા—કા સેવન ન કરે—ઉસકે વશવર્તી
ન વને। અપિ તુ—“ઇહ લોગાસસપ્પઓગે ૧, પરલોગાસંસપ્પઓગે ૨, જીવિ-
યાસસપ્પઓગે ૩, મરણાસસપ્પઓગે ૪, કામભોગાસંસપ્પઓગે ૫” ઇત્યાદિ
મગવાનકે વચનસે ઇસ લોક ઓર પરલોક આદિકી વાચ્છાકા સૂત્ર-
કારને ઉસકે લિયે નિપેધ કિયા હૈ, અર્થાત્ વહ પરલોક આદિકી કમી
મી વાચ્છા ન કરે ॥ ૨૩ ॥

કર્મોંની નિર્જરા કરવામા તત્પર એવા તે ભિક્ષુ અનેક પ્રકારના ક્ષણભ-
ગુર એવા શબ્દોની જાળમા ન ફસાય કદાચ રાજા તે સાધુને રાજઋદ્ધિનુ પદ
આપવાનુ પ્રલોભન આપી આમત્રણ આપે તો પણ તે સાધુ આવા પ્રલોભનમા
ન ફસાય સયમદ્વારા મોક્ષરૂપ ધુવવર્ણનો અને તેના સાધનોનો વિચાર કરી
ઇચ્છારૂપી લોભ-ઇન્દ્રાદિકની ઋદ્ધિની પ્રાપ્તિરૂપ અભિલાષા—નુ સેવન ન કરે—
એનાથી ન લલચાય, અપિતુ—“ઇહલોગાસ સપ્પઓગે ૧, પરલોગાસ સપ્પઓગે ૨,
જીવિયાસ સપ્પઓગે ૩, મરણાસ સપ્પઓગે ૪, કામભોગાસ સપ્પઓગે ૫” ઇત્યાદિ
ભગવાનના વચનથી આ લોક અને પરલોક આદિની વાચ્છાના સૂત્રકારે એને
નિપેધ કરેલ છે, અર્થાત્ તે પરલોક આદિની પણ કદી ઇચ્છા ન કરે (૨૩)

मृम्—सठवठेहि अमुच्छिप, आउकालस्स पारप ॥

तितिक्खं परम नञ्चा, विमोहस्यर हियं ॥ २५ ॥

जामा—सर्वाधैरमुच्छिप, आयु'कालस्स पारग ॥

तितिक्षां परमं ज्ञात्वा, विमोहान्यतर हितम् ॥ २५ ॥

टीका—‘सर्वाधै’—रित्यादि, स सर्वाधै—सर्वे च तेऽर्थाः सर्वाधैस्तैः सर्वाधै पञ्चभिः शब्दादिकामण्यैस्तस्मात्कथनसमूहैर्ना अमूर्च्छितः=जगदा, आयुःकालस्य=यावत्कालमायुः संतिष्ठते स आयुःकालस्तस्य ‘पारमः’—पारम्=व्युत्पन्नपुत्रानां यावन्मात्रं गच्छतीति पारगः=पूर्वोक्तविधिना पादपोषगमनपरः परिषदितकल्याणमाभ्यवसायवान् निश्चायुःकालस्यान्तगामी स्यात् । इत्थं पादपोष गमनप्रकारमभिसमाप्य साम्प्रतं सकलमरणानां क्षेत्र—काल-पुरुषावस्था मेदात् समानतामुपसंहरन्—‘तितिक्षा’—मित्यादि, सः सर्वस्मिन्पि पूर्वोक्तमरणप्रकारे ति-

समस्त अर्थस्वरूप पांच इन्द्रियों के पांच प्रकारके शब्दादिक काम गुणोंसे, अथवा उनके साधक द्रव्यसमुदायसे अमूर्च्छित, एवं अपनी आयुके समयका पारगामी, जितने काल तक आयु रहती है वह आयु काल है, तथा आयुके पुत्रोंके विनाशका नाम पार है । पूर्वोक्त विधि से पादपोषगमनमें तत्पर तथा परिषदित कल्याणके अभ्यवसायवाला मुनि अपनी आयुके कालका अन्तगामी होता है । इस प्रकार सूत्रकार पादपोषगमन संघारेका कथन कर अब समस्त मरणोंमें क्षेत्र, काल और पुरुष अवस्थाके भेदसे समानता का उपसंहार करते हुए ‘तितिक्खं’ इत्यादि सूत्रांश कहते हैं—वह मुनि पूर्वोक्त इन भक्तपरिज्ञा आदि मरणोंके प्रकार—भेदमें अनुकूल और प्रतिकूल परीपह एवं उपसर्गों से

समस्त अर्थस्वरूप पांच इन्द्रियोंका पांच प्रकारका शब्दादिक कामगुणोंकी, अथवा जेना साधक द्रव्यसमुदायकी विरक्त होने पोटानी आयुना समयने आयुना नेटका काजमुषी आयु रहे छे ते आयुकाज छे अने आयुना पुत्रमोटानी विनाशना नाम पार छे आयुज कहेवाभां आवेल विविधी पादपोषगमनमां तत्पर तथा परिषदित कल्याणना अभ्यवसायवाणा मुनि पोटाना अवकाजना आयुकर क्षेत्र छे आ प्रकारे पादपोषगमन संघासनु कथन करी संतकर हवे समस्त भवेलाभा क्षेत्र काज अने पुरुष-अवस्थाना क्षेत्री समा नटानी उपसंहार करवा “तितिक्खं” इत्यादि सूत्रांश कहें छे—ते मुनि आयुज कहेवाभां आवेल अकतपरिज्ञा आदि भवेलाभा प्रकार-क्षेत्रां अनुकूल अने

વિચાર્ય 'માહણે' માહનઃ 'મા હણ મા હણ' ઇત્યુપદેશદાયકો મુનિઃ તત્=રાજાદિનિમન્ત્રિતમર્થં દેવદિં ચ પ્રતિબુધ્ય=આત્મકલ્યાણપ્રતિકૂલતયા વિજ્ઞાય 'સર્વં નૂમ' સર્વં નૂમં=જ્ઞાનાવરણીયાદ્યષ્ટવિધકર્મ 'વિહૂણિયા' વિધૂનયેત્=સમ્યગ્જ્ઞાનદર્શનચારિત્રેણ દૂરીકુર્યાત્ । 'કર્મનિર્જરાર્થમહ નિઃક્રાન્તઃ' ઇતિ વિચાર્ય મુનિઃ કર્મવન્ધનહેતું રાજાદિનિમન્ત્રિતમર્થાદિકં જ્ઞ-પરિજ્ઞયા પરિજ્ઞાય પ્રત્યાખ્યાન-પરિજ્ઞયા પરિહરેત્, ન તુ તત્ત્વ રજ્યેદિતિ ભાવઃ । યદ્વા-‘પઙ્કિવુજ્ઞ’ ‘વિહૂણિયા’ ઇત્યનયો-‘પ્રતિબુધ્યસ્વ’ ‘વિધૂય’ ઇતિચ્છાયા, તત્પક્ષે-હે માહન=હે મુને ! હદ્ ‘સર્વ નૂમ’ સર્વં પ્રપન્ન વિધૂય-નિઃશેપતઃ પરિત્યજ્ય ‘ત’ તત્=આત્મકલ્યાણહેતુ રત્નત્રય પ્રતિબુધ્યસ્વ=વિજાનીહિ, તત્સમારાધ્યે તત્પરો ભવેદિતિ ભાવઃ ॥ ૨૪ ॥

અન્યદપ્યાહ--‘સર્વદ્વેહિ’ ઇત્યાદિ ।

અનર્થકર સમજો । તાત્પર્યં યહ કિ-શાશ્વત અર્થ દેનેકા પ્રલોભન દેકર નિમત્રણ-બુલાનેકી પ્રેરણા-કરે ઉસમેં, અથવા દેવાદિકોંકી માયામેં પ્રીતિ એવ શ્રદ્ધારહિત હુઆ મુનિ ‘યહ સમસ્ત, મોક્ષ ઓર ઉસકે સાધનોંસે પ્રતિકૂલ હૈ ’ એસા વિચાર કર ઉસ શાશ્વત અર્થમેં એવં દિવ્ય માયામેં મૂર્છિત ન બને । દિવ્ય માયાકા નિરીક્ષણકર વહ મુનિ અપને ચિત્તમેં ઇસ પ્રકારસે વિચાર કરે-“યહ સર્વ મેરી તપસ્યાકે પ્રતિકૂલ હૈ, ઓર મેરે તપકા સ્વર્ણન કરનેકે લિયે યહ સર્વ આયોજન કિયા ગયા હૈ । યદિ એસી વાત ન હો તો પુરુષોંકો ટુલંભ યહ બહુત પ્રકારકા વિત્ત-દ્રવ્ય એસે ક્ષેત્ર, કાલ, ઓર ભાવ આદિમેં કેસે સુલભ હો સકતા હૈ । ઇસ લિયે માલૂમ હોતા હૈ કિ યહ સમસ્ત મૃગતૃષ્ણારૂપ હી હૈ-આભાસ માત્ર હૈ અર્થાત્ મૂલમેં કુછ મિલતા જુલતા નહીં હૈ ” ॥ ૨૪ ॥

ઓર ‘મી સૂત્રકાર પ્રદર્શિત કરતે હૈ-‘સર્વદ્વેહિ’ ઇત્યાદિ ।

તાત્પર્યં એ છે કે-રાજમા ઉચી પદવી આપી અર્થ લોભનુ પ્રલોભન દઈ નિમત્રણ કરે, તેમા અથવા દેવાદિકની માયામા પ્રીતિ અને શ્રદ્ધા ન રાખનાર મુનિ “આ બધુ મોક્ષ તથા એના સાધનોથી વિરૂદ્ધનુ છે” એવો વિચાર કરીને એવા અર્થલોભ અને દિવ્ય માયાના પ્રલોભનમા ન ફસાય. દિવ્ય માયાનુ નિરીક્ષણ કરી તે મુનિ પોતાના મનમા એ પ્રકારનો વિચાર કરે કે આ બધુ મારી તપસ્યાથી પ્રતિકૂળ છે, અને મારા તપનુ ખડન કરાવવા માટે આ માયાબળ ઉભી કરાઈ રહેલ છે, જો એમ ન હોય તો એક સાથે આટલુ બધુ કઈ રીતે બની શકે ? આથી ચોક્કસ છે કે આ બધુ મૃગજળસમાન છે-આભાસમાત્ર છે-વાસ્તવમાં કાઈ પણ નથી (૨૪)

વધુમા સૂત્રકાર પ્રદર્શિત કરે છે-‘સર્વદ્વેહિ’ ઇત્યાદિ

મૃત્યુ-સઘ્વદ્દેહિં અમુચ્છિપ, આઠકાલસ્સ પારમ્ ॥

તિતિક્ષ્વ પરમ નદ્ધા, વિમોહનયર હિયં ॥ ૨૫ ॥

જામા-સર્વાયેરમુચ્છિતઃ, આયુઃકાલસ્ય પારમઃ ॥

તિતિસાં પરમં જ્ઞાત્વા, વિમોહન્યતર દિતમ્ ॥ ૨૫ ॥

ટીકા-‘સર્વાયે’-રિત્યાદિ, સ સર્વાયે-સર્વે ચ તેઽર્પાઃ સર્વાર્થસ્તૈઃ સર્વાયેઃ પદ્ધતિભૈઃ ક્ષમ્યાદિકામગુણૈસ્તત્સાધકપનસમૂર્ધ્વા અમુચ્છિતઃ-અમૃતઃ, આયુઃકાલસ્ય-વાક્ત્કાલમાયુઃ સંવિષ્ટતે સ આયુઃકાલસ્તસ્ય ‘પારમઃ’-પારમ્=અમૃતપુલ્લભાનાં યાવન્માદ્ય ગચ્છતીતિ પારમ=પૂર્વોક્તવિધિના પાદપોષ્મગમનપરઃ પરિવર્દિતકલ્પાબ્યાધ્યક્ષાયવાન્ નિમાયુઃકાલસ્થાન્તગામી સ્યાત્ ॥ इत्यं पादपोष गमनप्रकारमभिसमाप्य साम्प्रतं सकलमरणानां क्षेत्र-काल-पुरुषावस्था-मेवात् समा क्तव्यपसंहरमाह-‘तितिक्षा’-मित्यादि सः सर्वस्मिन्पि पूर्वोक्तमरणप्रकारे ति-

સમસ્ત અર્થસ્વરૂપ પાંચ જન્ત્રિયોંક પાંચ પ્રકારકે શબ્દાદિક કામ ગુણોસે, અથવા ડનકે સાધક દ્રવ્યસમુદાયસે અમુચ્છિત, ઇવં અપની માયુકે સમયકા પારગામી, જિતને કાલ તક આયુ રહતી હૈ બહ આયુ કાલ હૈ, તથા આયુકે પુલ્લભેકિ બિનાશકા નામ પાર હૈ । પૂર્વોક્ત વિધિ સે પાદપોષગમનમેં તત્પર તથા પરિવર્દિત કલ્પાણકે અધ્યક્ષાયવાલા મુનિ અપની આયુકે કાલકા અન્તગામી હોતા હૈ । ઇસ પ્રકાર સૂત્રકાર પાદપોષગમન સંચારેકા કથન કર અબ સમસ્ત મરણોંમેં ક્ષેત્ર, કાલ ઔર પુરુષ અવસ્થાકે મેદસે સમાનતા કા ઉપસંહાર કરતે હુપ ‘તિતિક્ષ્વ’ ઇત્યાદિ સૂત્રાંશ કહતે હૈ-બહ મુનિ પૂર્વોક્ત ઇન અક્તપરિજ્ઞા આદિ મર જોંકે પ્રકાર-મેવમેં અનુકૂલ ઔર પ્રતિકૂલ પરીપહ ઇવં ઉપસર્ગોં સે

સમસ્ત અર્થસ્વરૂપ પાંચ જન્ત્રિયોંના પાંચ પ્રકારના શબ્દાદિક કામગુ-
ણોથી, અથવા એના સાધક દ્રવ્યસમુદાયથી વિરહત અને પોતાની આયુના
સમયને અનુસાર બેટલા કાળમુધી આયુ રહે છે તે આયુકાળ છે અને આયુના
પુલ્લભોના બિનાશનું નામ પાર છે આજળ કહેવામાં આવેલ વિધિથી પાદપો-
ષગમનના વડપર તથા પરિવર્દિત કલ્પાનું અધ્યક્ષાયવાળા મુનિ પોતાના
અવસ્થાના અનુકાર કોય છે આ પ્રકારે પાદપોષગમન સંચારનું કથન કરી
સૂત્રકાર કહે સમસ્ત મરણોમાં ક્ષેત્ર કાળ અને પુરુષ-અવસ્થાના લેદથી મુખ્ય
તવાનો ઉપસંહાર કરતાં = તિતિક્ષ્વ ઇત્યાદિ સૂત્રાંશ કહે છે-તે મુનિ આજળ
કહેવામાં આવેલ અકતપરિજ્ઞા આદિ મરણોના પ્રકાર-લેદમાં અનુકૂળ અને

તિક્ષામ્=અનુકૂલ-પ્રતિકૂલ-પરીપહોપસર્ગાભિભવજન્યદુઃસ્વસહનરૂપા પરમમ્=ઉત્કૃષ્ટ
 યથા સ્યાત્તથા જ્ઞાત્વા ' વિમોહાન્યતર ' વિગતો મોહોઽજ્ઞાનં યેષુ તાનિ વિમોહાનિ,
 તેષા=પૂર્વોક્તાનાં ભક્તપરિજ્ઞેદ્વિતમરણપાદપોપગમનાનામ્ અન્યતરત્=ત્રયાણામન્યતમં
 કિમપ્યેક હિત=કર્મનિર્જરાયાઃ સર્વત્ર સમસમ્પાદકતયા સમ્યગિષ્ટ વિદધીત । 'ઈતિ
 વ્રવીમી '—ત્યસ્યાર્યસ્તુ પ્રથમાધ્યયનોક્તપ્રકારેણાઽવગન્તવ્ય ઇતિ ॥ સૂ. ૨૫ ॥

અધ્યયનવિષયોપસહારઃ—

અસ્મિન્નધ્યયને લસન્તિ ચ વિમોક્ષાલ્પાષ્ટમે યેઽલ્પિલા—

સ્તે સૂચ્યન્ત ઇમે ક્રમેણ વિષયાઃ સંક્ષેપતસ્તાન્ શૃણુ ॥

ઉદ્દેશે પ્રથમે ન્યરૂપિ વિરહઃ પાપણ્ડિકૈઃ સદ્ગતે—

સ્તેષા સમ્મતિહાનપૂર્વકમથ ત્યાગસ્તપો વિદ્વિપામ્ ॥ ૧ ॥

ઉત્પન્ન દુઃસ્વોકો સહન કરનેરૂપ તિતિક્ષાકો સર્વોત્તમ જ્ઞાનકર પૂર્વોક્ત ઇન
 ભક્તપરિજ્ઞા, દ્વિજિતમરણ, ઓર પાદપોપગમન, ઇન ત્રીનોંમેં સે કિસી એક
 કો હિતકારી સમજ કર ધારણ કરે । ઇન ત્રીનોંમે કમોંકો નિર્જરા સર્વત્ર
 એકસી હૈ । “ ઇતિ વ્રવીમિ ” ઇન પદોંકા અર્થ પ્રથમ અધ્યયનમેં કથિત
 પ્રકારસે જ્ઞાન લેના ચાહિયે ॥૨૫॥

હસ અધ્યયનકે વિષયોંકા ઉપસંહાર પદ્યોંસે કરતે હૈં—

હસ વિમોક્ષ અધ્યયન બીચમેં આઠ વડે ઉદ્દેશ દિયે ।

ઉનમેં વર્ણિત વિષયોંકા હમ થોડેમેં વર્ણન કિયે ॥

પ્રથમ ઉદ્દેશમેં—પહિલે—મેં પાલડી જનકી સગતિકા પરિહાર કહા,

ઉન્હેં ન સમતિ દેના કુછ ભી તપ ભી ઉનકા હેય કહા ॥ ૧ ॥

પ્રતિકૂળ પરીષદ અને ઉપસર્ગોથી આવેલા દુઃખોને સહન કરવારૂપ તિતિક્ષાને
 સર્વોત્તમ બાણી અગાઉ કહેવાયેલ એ ભક્તપરિજ્ઞા, ધિજિતમરણ, અને પાદ
 પોપગમન, ત્રણુમાથી કોઈ એકને હિતકારી સમજી ધારણ કરે આ ત્રણુમા
 કર્મોની નિર્જરા સર્વત્ર એકસરખી છે “ ઇતિ વ્રવીમિ ” આ પદોનો અર્થ
 અગાઉના અધ્યયનમા કહેવામા આવેલ પ્રકાર જેવો સમજવો જોઈએ (૨૫)

આ અધ્યયનના વિષયોનો ઉપસંહાર કરે છે

આ વિમોક્ષ નામના પ્રકરણમા આઠ મોટા ઉદ્દેશ ભરેલા છે એમા
 વર્ણવવામા આવેલ વિષયોનુ અહિં સક્ષિપ્ત વર્ણન કરેલ છે—

પ્રથમ ઉદ્દેશમા—પાપડી માણસોની સગતનો ત્યાગ, આવા તપ વગરના માણ-
 સોને કોઈ પ્રકારની સમતિ ન આપવી. (૧)

शास्त्राऽप्यमुपेतमवसर्गं त्याज्यं द्वितीये तथा
 आहारादिनिषेधने गृह्यते रोपोपशान्त्यै विधिः ॥
 शैत्येनास्थितवपयी स्मरशस्यापातशङ्का मुनौ
 पारावारचलचरान्वयं धिक्ता तृतीयेऽसताम् ॥ २ ॥
 कामासक्तिचोपयातल्लनाऽभ्यासाभिरेतुं मुने,—
 सौम्यस्य मुक्तिर्हि सा निगदितादेश तुरीये तथा ॥

द्वितीय उद्देशमें—शास्त्रनिषिद्ध अन्नवसनादिक मुनिजनको है कल्प्य नहीं,
 वनका वस्त्रा नहीं छेने पर हो जावे जो रुष्ट कहों।
 मुनिवर नहीं छेनेका कारण प्रकट खुलाशा पतलावे,
 रोपशामनका यह विधान उद्देश दूसरा दर्शावे ॥ २ ॥

तृतीय उद्देशमें—कंपित मुनिवरके शरीरको, शीतादिक कारणवशासे,
 देख्य यने शक्ति गृहस्थका मन मनोज्ञकी जागृतिस।
 शीतादिक मम गात्रकंपने कारण हैं न मनोज्ञविकार,
 इस प्रकार कह मुनिवर उसकी शंकाका कर दे परिहार ॥ ३ ॥

चतुर्थ उद्देशमें—कामाधीन-चित्त ललनाशन के समीपसे जानेमें,
 जो अस्मर्ष यने वह मुनिवर संपन्न भार निमानेमें।
 धरे भावना-वैराग्यस अरु गार्हपृष्ठ ये मरण भले,
 साथे वह तत्काल न बिलमें पर समयसे नहीं गळे ॥ ४ ॥

प्रीति उद्देशमां—शास्त्रमां जेतो निषेध करवाना आवेक छे तेवा अन्न, वस्त्र-
 दिनी मुनिजे अकलु न करवे भेधको आपना छिन्नितार न देवाधी शुद्ध
 धाय तो मुनिजे न देवानु करवु पुढासाधी तेने समझवी तेना सुस्थानु
 रासन करवु भेधको, ते प्रीति उद्देशमां गवावेक छे (१)

त्रीति उद्देशमां—छद्म वनेरेना करवुधी आपता मुनिवरना शरीरने भेध श का
 प्रीति भनेक मुक्तस्थनी शकतु समझान योग्य समझवुधी करवु भेधको
 आ त्रीति उद्देशमां गवावावु छे (२)

वैराग्य उद्देशमां—कामने आधीन भनेक वलना (नी) वननी साथे जवामां अन्न
 भर्ष भनेक मुनिजन समयने व्यवववा वैराग्यस अने गार्हपृष्ठ आ
 भरणने निरा चित्तमे स्वीकारी छे परतु समयभी वैराग्यस छे नहि
 जेतु वैराग्य उद्देशमां कहेवावेक छे (४)

પૂર્વાંગીકૃતસંયમાક્ષમમુને-ગ્લાનાદ્યવસ્થાવશાત્ ,
 સાધીયો મરણં વિધાનસહિત પ્રોક્તં તથા પશ્ચમે ॥ ૩ ॥
 एकत्वस्य च भावनेन मरणं पष्ठे प्रशस्त कृत,
 भिक्षुणा प्रतिमा मुनेरभिहिता पाल्यैकमासादिका ॥
 सामर्थ्यं गलिते तनोर्मुनिवरैराहारसंक्षेपणं,
 कृत्वा शास्त्रविधानतस्तरुसम स्येय तथा सप्तमे ॥ ४ ॥
 चारित्रं चरतो मुनेः कलयतोऽशक्त्या पर सीदतो,
 देहत्यागविधिस्त्रिधा निगदितः साफल्यनीत्यै जनेः ॥

પચમ ઉદ્દેશમે—ગ્લાનાદિક હાલતમે મુનિવર સ્વીકૃત સંયમ પાલનમે,
 હો અસમર્થ સવિધિ વહ ધારે ભક્તપરિજ્ઞા ઉસ ક્ષણમે ॥ ૫ ॥
 षष्ठ उद्देशमें—मुनिवरका एकत्व भावनासे है मरण प्रशस्त कहा,
 रहे सुरक्षित संयम-धन यह निर्मल मनमें भाव गहा ॥ ६ ॥
 સસમ ઉદ્દેશમે—એકમાસ આદિક મર્યાદા વાલી મુનિકી પ્રતિમાઈ,
 મુનિવર પાલે ટરે ન ડનસે ચાહે આયે વાધાઈ.
 સયમ ભાર વહન કરનેમે શક્તિહીન તન જવ જાને,
 षष्ठ अष्टमादिक तपक्रमसे भोजन कृश करना ठाने ।
 શાસ્ત્રવિહિત મર્યાદા માફિક તરુસમ વન સથાર ધરે,
 देहाश्रित समस्त क्रियाओंका वह मुनि परिहार करे ॥ ७ ॥
 અષ્ટમ ઉદ્દેશમે—ચિરપાલિતચારિત્ર-સાધુકી સયમ ક્રિયા ન સઘતી હો,

પાચમા ઉદ્દેશમા—રોગગ્રસ્ત હાલતમા, સયમ પાળવામા અસમર્થ બની જાય
 તેવા મુનિએ પોતે સ્વીકારેલ અભિગ્રહના પાલન માટે લકતપરિજ્ઞા નામનુ
 મરણ સ્વીકારવુ બોધએ, તેમ બતાવેલ છે (૫)

છઠ્ઠા ઉદ્દેશમા—એકત્વભાવનાવાળુ મુનિનુ મરણ પ્રશસ્ત કહેવામા આવેલ
 છે સયમ ધનનુ નિર્મળ મનથી પાલન કરવાનો ભાવ સમજાવવામા
 આવેલ છે (૬)

સાતમા ઉદ્દેશમા—એક માસ કે તેથી વધારાની મર્યાદાવાળુ મરણ મુનિજન
 પાળે, ભલે ગમે તેટલી મુસીબતો સહેલી પડે છતાં અને શક્તિહીન બની
 જાય તે છતાં સયમથી જરા પણ વિચલિત ન બને, છટ્ટ-અઠ્ઠમ આદિ
 તપક્રમથી આહારાદિક યોછા કરે, અને શાસ્ત્રની મર્યાદામા બતાવ્યા પ્રમાણે
 સથારો કરી દેહની સમસ્ત ક્રિયાઓને મુનિજન ત્યાગી દે (૭)

આઠમા ઉદ્દેશમા—ચિરકાળથી ચારિત્રસ પન્ન સાધુ વૃદ્ધાવસ્થા કે રોગના કારણે

ઉદ્વેગપ્રમ સ્પૃશ્યોચિ મુનિમિથારિભરલૈપિમિ,
સારો બ્રાહ્મતરોઽનિષ્ઠ વિજયતાં તાપોપશાન્ત્યૈ નૃણામ્ ॥ ૫ ॥ શ્રુતિ ।
॥ અષ્ટમાધ્યયનસ્થાપ્તમ ઉદ્વેશ સમાપ્તઃ ॥ ૮-૮ ॥

॥ શ્રુતિમી-વિશ્વવિસ્તાર-અગાધપ્રમ-મસિદ્ધવાચક-પશ્ચાદ્વશમાપાત્કસ્તિલક્ષિત-
ક્ષાપાતાપક-પ્રતિશુદ્ધગણપથનૈકગ્રન્યનિર્માપક-શાદિમાનમર્વક-શાહ-
છપ્રપતિ-કોત્તરાપુરરાજમદત્ત-“ જૈનશાસ્ત્રાચાર્ય ”-પદ્મભૂપિત-
કોત્તરાપુરરાજમદત્ત-શાસ્ત્રમહાચારિ-જૈનાચાર્ય-જૈનધર્મદિષાત્કર-
પૂજ્ય-શ્રી ધાસીલાલ-વ્રતિજિરવિષ્ણવામ્ આચારાન્નસુત્ર-
સ્થાઽધ્યયનચિન્તામણિટીકાયાં વિમોક્ષાધ્યયનમષ્ટમ-
મધ્યયન સંમ્પૂર્ણમ્ ॥ ૮ ॥

પલબિહીન હોનેસે રૂસસે, ચરમે પીઢા અગતી હો ।
તો રૂહ સાધુ ત્રિવિધ મરણમેસે કોઈ સંધાર મરે,
જન્મ સફળ હો જાયે ઉસકા મરે કા સંકલેશ ટરે ॥ ૮ ॥

॥ આઠમે અધ્યયનકા આઠમા ઉદ્વેશઃ સમાપ્ત ॥ ૮-૮ ॥

પદ્મ આચારાન્નસુત્રકે વિમોક્ષ નામકે આઠમે અધ્યયનકી આચાર
ચિન્તામણિ-ટીકાકા દિન્વીમાપાનુવાદ સંમ્પૂર્ણ ॥ ૮ ॥

અશક્ત બની અમેલ દોષ, અને તેનુ શરીર પીઢાથી રીજાતુ હેતુ ત્યારે
તે સાધુ ત્રણ મરણમાંથી કોઈ એક મરણ મારે સંધારે કરે અને
પોતાના જન્મને સફળ બનાવી બાવના રૂશને ટાળી રે. (૮)
આઠમા અધ્યયનનો આઠમો ઉદ્વેશ સમાપ્ત ॥ ૮-૮ ॥

આ આચારાન્નસુત્રના વિમોક્ષ નામના આઠમા અધ્યયનની આચાર-
ચિન્તામણિ-ટીકાનો સુલક્ષણી અનુવાદ સંપૂર્ણ ॥ ૮ ॥

પૂર્વાદ્વીકૃતસંયમાત્મમુને—ગ્લાનાદ્યવસ્થાવશાત્ ,
 સાધીયો મરણ વિધાનસહિત પ્રોક્ત તથા પશ્ચમે ॥ ૩ ॥
 એકત્વસ્ય ચ ભાવનેન મરણ પથે પ્રશસ્ત કૃત,
 ભિક્ષુણા પ્રતિમા મુનેરભિદ્ધિના પાલ્યૈકમાસાદિકા ॥
 સામર્થ્યં ગલિતે તનોર્મુનિયરૈરાહારસંક્ષેપણં,
 કૃત્વા શાસ્ત્રવિધાનતત્ત્વસમ સ્યેય તથા સપ્તમે ॥ ૪ ॥
 ચારિત્રં ચરતો મુનેઃ કલયતોઽશક્ત્યા પર સીદતો,
 દેહત્યાગવિધિસ્ત્રિધા નિગદિત. સાફલ્યનીત્યૈ જનેઃ ॥

પંચમ ઉદ્દેશમે—ગ્લાનાદિક દાહતમે મુનિવર સ્વીકૃત સયમ પાલનમે,
 હો અસમર્થ સવિધિ વહ ધારે ભક્તપરિજ્ઞા ઉસ ક્ષણમે ॥ ૫ ॥
 ષષ્ઠ ઉદ્દેશમે—મુનિવરકા એકત્વ ભાવનાસે હૈ મરણ પ્રશસ્ત કહા,
 રહે સુરક્ષિત સયમ—ધન વહ નિર્મલ મનમે ભાવ ગદા ॥ ૬ ॥
 સપ્તમ ઉદ્દેશમે—એકમાસ આદિક મર્યાદા વાલી મુનિકી પ્રતિમાઈ,
 મુનિવર પાલે ટરે ન ડનસે ચાહે આયે વાધાઈ.
 સયમ ભાર વહન કરનેમે શક્તિહીન તન જવ જાને,
 ષષ્ઠ અષ્ટમાદિક તપક્રમસે ભોજન કુશ કરના ઠાને.
 શાસ્ત્રવિહિત મર્યાદા માફિક તરુસમ વન સંચાર ધરે,
 દેહાશ્રિત સમસ્ત ક્રિયાઓંકા વહ મુનિ પરિહાર કરે ॥ ૭ ॥
 અષ્ટમ ઉદ્દેશમે—ચિરપાલિતચારિત્ર—સાધુકી સયમ ક્રિયા ન સધતી હો,

પાત્રમા ઉદ્દેશમા—રોગગ્રસ્ત હાલતમા, સયમ પાળવામા અસમર્થ બની જાય
 તેવા મુનિએ પોતે સ્વીકારેલ અભિગ્રહના પાલન માટે લોકતપરિજ્ઞા નામનુ
 મરણ સ્વીકારવું જોઈએ, તેમ બતાવેલ છે (૫)

છઠ્ઠા ઉદ્દેશમા—એકત્વભાવનાવાળું મુનિનું મરણ પ્રશસ્ત કહેવામા આવેલ
 છે સયમ ધનનું નિર્મળ મનથી પાલન કરવાનો ભાવ સમજાવવામા
 આવેલ છે (૬)

સાતમા ઉદ્દેશમા—એક માસ કે તેથી વધારાની મર્યાદાવાળું મરણ મુનિજન
 પાળે, ભલે ગમે તેટલી મુસીબતો સહેવી પડે છતાં અને શક્તિહીન બની
 જાય તે છતાં સયમથી જરા પણ વિચલિત ન બને, છટ્—અકુમ આદિ
 તપક્રમથી આહારાદિક યોછા કરે, અને શાસ્ત્રની મર્યાદામા બતાવ્યા પ્રમાણે
 સચારો કરી દેહની સમસ્ત ક્રિયાઓને મુનિજન ત્યાગી દે (૭)

આઠમા ઉદ્દેશમા—ચિરકાળથી ચારિત્રસંપન્ન સાધુ વૃદ્ધાવસ્થા કે રોગના કારણે

उपेक्ष्य इत्यथोपि मुनिभिर्भारिभरत्नैःपिभिः,
सारो ब्राह्मणतरोऽनिर्घ्नं विनयतां सापोपशान्त्यै नृणाम् ॥ ५ ॥ इति ।
॥ अष्टमाध्ययनस्याष्टम उद्देशः समाप्तः ॥ ८-८ ॥

॥ इतिभी-विभविस्म्यात-जगद्धर्म-मसिद्धवाचक-पञ्चदशभाषाफलितलसित-
कलापात्मापक-प्रविशुद्धगद्यपद्यनैकग्रन्थनिर्मापक-वादिमानमर्द्धक-शाह-
छत्रपति-काश्मीरपुराणमदत्त-“ जैनशास्त्राचार्य ”-पदभूषित-
कोन्दापुराणमदत्त-वासवयस्यभारि-जैनाचार्य-जैनधर्मविवाकर-
पूज्य-श्रीघासीलाल-प्रतिपिरचितायाम् आचाराङ्गसूत्र-
स्याऽऽधारचिन्तामणिटीकायां विमोक्षाख्यमष्टम-
मध्ययनं सम्पूर्णम् ॥ ८ ॥

यलविहीन होनेसे इससे, उरमें पीडा जगती हो ।
तो वह साधु त्रिविध भरणमेसे कोई संधार घरे,
जन्म सफल हो जाये उसका भवण का संकलेश टरे ॥ ८ ॥

॥ आठवें अध्ययनका आठवां उद्देशः समाप्तः ॥ ८-८ ॥

यह आचाराङ्गसूत्रके विमोक्ष नामके आठवें अध्ययनकी आचार
चिन्तामणि-टीकाका हिन्दीभाषानुवाद सम्पूर्ण ॥ ८ ॥

अथवा जनी अथवा ज्ञान, अनेतेजु शरीर पीडाभी रीजातु ज्ञान त्याग
ते साधु त्रय भरणभाभी केवल जोह भरण भाटे सवाशे करे अने
प्राप्ताना जन्मने सकेण जन्मवी जवना देशने टाणी रे. (८)
आठमा अध्यायननो आठवा उद्देशः समाप्त ॥ ८-८ ॥

या आचार्यजसूचना विमोक्ष नामना आठमा अध्यायननी आचार-
चिन्तामणि-टीकानो गुजराती अनुवाद सम्पूर्ण ॥ ८ ॥

॥ अथोपधानश्रुताख्यस्य नवमाध्ययनस्य प्रथम उद्देशः ॥

प्रागुक्ताध्ययनाष्टके योऽर्थः प्रतिबोधितः, स वीरवर्धमानस्वामिना भगवताऽपि स्वयमाचरितस्तस्मात् साधुभिरपि तथैवाचरणीयमिति बोधयितुमिदमुपधानश्रुताख्यमध्ययन प्रारभ्यते-उपधानस्य श्रुतस्य च प्रतिबोधकत्वादिदमध्ययनमुपधानश्रुतमुच्यते । उप=सामीप्येन धीयते=व्यवस्थाप्यते इत्युपधान तद् द्रव्यभावभेदाद् द्विविधम्, तत्र द्रव्योपधान शय्यादौ शिरसः समालम्बनवस्तु, भावोपधान तु-सप्तदशविधसयमः, स बाह्याभ्यन्तर तपश्च, तद्धि चारित्रपरिणामरूपस्य भावस्य स्थैर्यं

॥ नववें अध्ययनका प्रथम उद्देश ॥

पहिले कहे गये आठ अध्ययनोंमें जो विषय समझाया गया है, वह वीर-वर्धमान प्रभुने स्वयं आचरित किया है, इस लिये साधुजनोंको भी वह वैसा ही आचरित करना चाहिये, इस बातको समझानेके लिये यह उपधानश्रुत नामक अध्ययन प्रारंभ किया जाता है । उपधान और श्रुतका प्रतिबोधक होनेसे यह अध्ययन भी इस नामसे कहा गया है । जो स्वयं की उपस्थितिमें किया जाता है उसका नाम उपधान है । यह द्रव्य और भावके भेदसे दो प्रकारका है । शय्या आदिमें शिरका अवलम्बनरूप तकिया आदि द्रव्य-उपधान है, इसका यहां अधिकार नहीं है । सत्रह प्रकारका सयम, एव बाह्य और आभ्यन्तर तप, ये भाव-उपधान हैं । यह भावरूप उपधान चारित्ररूप भावमें स्थिरताका उत्पादक होता है ।

नवमा अध्ययनने पडेલો ઉદ્દેશ

પડેલા કહેવાયેલા આઠ અધ્યયનોમા જે વિષય સમજાવવામા આવેલ છે તે વીર-વર્ધમાન પ્રભુએ પોતેજે કહેલા છે સાધુજનોએ પણ એવું જ આચરણ કરવું જોઈએ આ વાતને સમજાવવા માટે ઉપધાનશ્રુત નામના અધ્યયનને પ્રારંભ કરવામા આવે છે ઉપધાન અને શ્રુતના પ્રતિબોધક હોવાથી આ અધ્યયન પણ એ નામથી કહેવાયેલ છે જે પોતાની હાજરીમા કરવામા આવે છે તેનું નામ ઉપધાન છે એ દ્રવ્ય અને ભાવના બેદથી જે પ્રકારના છે સુવાની પથારી વગેરેમા અવલમ્બનરૂપ એાસીકા વગેરે દ્રવ્ય-ઉપધાન છે તેનો અહીંયા અધિકાર નથી સત્તર પ્રકારના સયમ અને બાહ્ય તથા આભ્યન્તર તપ, એ ભાવ-ઉપધાન છે એ ભાવરૂપ ઉપધાન ચારિત્રરૂપ ભાવમા સ્થિરતા લાવનાર હોય છે સયમ

સંપાદયતિ । સંયમેન તપસા ચ બીયસ્ય જ્ઞાનાપરખીયાદિક સર્વં કર્મરજોઽપગ્છતિ
તસ્માત્ સક્લકર્મસંયમેદુત્પત્તસ્ય તસ્ય સંયમસ્ય તપસથ સમાલમ્બનરૂપસ્વાદુપધાન-
રેને વ્યપદેશ્ચ । મુતમપિ દ્રવ્યમાયમેદાત્-દ્વિવિધમ્, તપ્ર દ્રવ્યમુતમ્-અનુપયુક્તસ્ય
પદ્મ મુતમ્, દ્રવ્યાર્થે વા યત્ મુતમ્, કુપ્રાવચનિકમુતં ચ દ્રવ્યમુતમ્ । માયમુતં
દ્વ-દ્વાદશાક્રમુતવિપયોપયોગ । ઉપધાનં ચ મુતં ચ, ઇત્યનયો સમાહાર ઉપધા-
નમુતમ્, તત્પતિપાદકમધ્યયનમુપધાનમુતાધ્યયનમિતિ ।

૩૨ પ્રથમોદ્દેશે મગત ભીષર્ષમાનસ્વામિનો બિહારઃ દ્વિતીય મગત સ
પ્ચાઽઽસનાનિ, તૃતીય તત્પ્રાનુકુલ-પ્રતિકુલ-પરીપદોપસર્ગતશિષ્યુતા, ચતુર્થે તુ
સંયમ ધૌર તપસે જીવકે માય અનાદિકાલસે છગીદુર્હ સમસ્ત કર્મરૂપી
પૃથિ નષ્ટ હો જાતી હૈ ફસ કારણ સક્લ કર્મો કે ક્ષયકા કારણ ડસ
સંયમ ધૌર તપકા આલમ્બનરૂપ હોનેસે સમર્મે (માય ઉપધાનર્મે) ઉપ
ધાન પનેકા વ્યપદેશ હોના હૈ । મુત મી દ્રવ્ય ધૌર માયકે મેદસે દો
પ્રકાર હૈ । અનુપયુક્ત માત્રમાકા જો મુત હૈ વહ, અથવા દ્રવ્યકે લિયે
જો મુત હૈ વહ, વા કુપ્રાવચનિકો (મિધ્યાદષ્ટિયો) કા જો મુત હૈ વહ,
દ્રવ્યમુત હૈ । દ્વાદશાક્રમુતવિપયક જો ઉપયોગ હૈ વહ માયમુત હૈ ।
ઉપધાન ધૌર મુતકા જો સમાહાર હૈ વહ ઉપધાનમુત હૈ, ફનકા પ્રતિ
પાદક અધ્યયન મી 'ઉપધાનમુતાધ્યયન' ફસ નામસે પ્રસિદ્ધ હુઆ હૈ ।

ફસ ઉપધાનમુતાધ્યયનર્મે ચાર ઉદ્દેશ હૈ । ડનર્મે પ્રથમ ઉદ્દેશર્મે મી ચ
ર્ષમાનપ્રસુકે વિહારકા, દ્વિતીય ઉદ્દેશર્મે ડનકી શપ્પા પર્ષ આસનાદિકા,
તૃતીય ઉદ્દેશર્મે અનુકુલ પ્રતિકુલ પરીપદોકી સહનશીલતાકા, ધૌર

અને તપથી છવની સાથે બ્રહ્મદિગ્ગણથી કાગેલ કર્મરૂપી પુજાને નાશ થાય છે.
આ કારણે સક્લ કર્મના ક્ષયના કારણે જે સ્વયમ અને તપના અવલમ્બનરૂપ
હોવાથી જેમાં (માય-ઉપધાનમાં) ઉપધાનપણાને વ્યપદેશ થાય છે. મુત પદ્મ
દ્રવ્ય અને માયના સેદથી જે પ્રકારે છે. અનુપયુક્ત બ્રહ્માને જે મુત છે તે,
અથવા દ્રવ્યને માટે જે મુત છે તે, અથવા મિધ્યાદષ્ટિયાને જે મુત છે તે
દ્રવ્ય-મુત છે દ્વાદશાક્રમુતવિપયક ઉપયોગ છે તે માય-મુત છે ઉપધાન અને મુત
એનું પ્રતિપાદક અધ્યયન પદ્મ ઉપધાનમુતાધ્યયન આ નામથી પ્રસિદ્ધ થયેલ છે.

આ ઉપધાનમુતાધ્યયનમાં ચાર ઉદ્દેશ છે, જેમાં પ્રથમ ઉદ્દેશમાં મી વર્ષ
માન પ્રમુખ વિકારનેા જીવ ઉદ્દેશમાં જેમની શપ્પા અને આસન બ્રહ્મનેા, ત્રીજા
ઉદ્દેશમાં અનુદ્વજ પ્રતિદ્વજ પરિપદોની સહનશીલતાનેા અને ચોથા ઉદ્દેશમાં મુખ

॥ अथोपधानश्रुताख्यस्य नवमाध्ययनस्य प्रथम उद्देशः ॥

प्रागुक्ताध्ययनाष्टके योऽर्थः प्रतिबोधितः, स वीरवर्धमानस्वामिना भगवताऽपि स्वयमाचरितस्तस्मात् साधुभिरपि तथैवाचरणीयमिति बोधयितुमिदमुपधानश्रुता-
ख्यमध्ययन प्रारभ्यते-उपधानस्य श्रुतस्य च प्रतिबोधकत्वादिदमध्ययनमुपधान-
श्रुतमुच्यते । उप=सामीप्येन धीयते=व्यवस्थाप्यते इत्युपधान तद् द्रव्यभावभेदाद्
द्विविधम्, तत्र द्रव्योपधान शय्यादौ शिरसः समालम्बनस्तु, भावोपधान तु-सत्त-
दशविधसयमः, स ब्राह्मभ्यन्तर तपश्च, तद्धि चारित्रपरिणामरूपस्य भावस्य स्थैर्यं

॥ नववें अध्ययनका प्रथम उद्देश ॥

पहिले कहे गये आठ अध्ययनोंमें जो विषय समझाया गया है, वह वीर-वर्धमान प्रभुने स्वयं आचरित किया है, इस लिये साधुजनोंको भी वह वैसा ही आचरित करना चाहिये, इस बातको समझानेके लिये यह उपधानश्रुत नामक अध्ययन प्रारम्भ किया जाता है । उपधान और श्रुतका प्रतिबोधक होनेसे यह अध्ययन भी इस नामसे कहा गया है । जो स्वयं की उपस्थितिमें किया जाता है उसका नाम उपधान है । यह द्रव्य और भावके भेदसे दो प्रकारका है । शय्या आदिमें शिरका अवलम्बन-रूप तकिया आदि द्रव्य-उपधान है, इसका यहां अधिकार नहीं है । सत्तह प्रकारका सयम, एव ब्राह्म और आभ्यन्तर तप, ये भाव-उपधान है । यह भावरूप उपधान चारित्ररूप भावमें स्थिरताका उत्पादक होता है ।

नवमा अध्ययनનો પહેલો ઉદ્દેશ

પહેલા કહેવાયેલા આઠ અધ્યયનોમા જે વિષય સમજાવવામા આવેલ છે તે વીર-વર્ધમાન પ્રભુએ પોતેજે કહેલા છે સાધુજનોએ પણ એવું જ આચરણ કરવું જોઈએ આ વાતને સમજાવવા માટે ઉપધાનશ્રુત નામના અધ્યયનનો પ્રારંભ કરવામા આવે છે ઉપધાન અને શ્રુતના પ્રતિબોધક હોવાથી આ અધ્યયન પણ એ નામથી કહેવાયેલ છે જે પોતાની હાજરીમા કરવામા આવે છે તેનું નામ ઉપધાન છે એ દ્રવ્ય અને ભાવના ભેદથી બે પ્રકારના છે સુવાની પથારી વગેરેમા અવલમ્બનરૂપ ઓસીકા વગેરે દ્રવ્ય-ઉપધાન છે તેનો અહીંયા અધિકાર નથી સત્તર પ્રકારના સયમ અને બ્રાહ્મ તથા આભ્યન્તર તપ, એ ભાવ-ઉપધાન છે એ ભાવરૂપ ઉપધાન ચારિત્રરૂપ ભાવમા સ્થિરતા લાવનાર હોય છે સયમ

સંપાદયતિ । સંયમેન તપસા ચ ધીયસ્ય જ્ઞાનાવરણીયાદિકં સર્વં કર્મરજોઽપગચ્છતિ
તસ્માત્ સકલકર્મભ્રમયદેતુમ્ભૂતસ્ય તસ્ય સંયમસ્ય તપસચ સમાલમ્બનરૂપત્વાદુપધાન
ત્વેન વ્યપદેશઃ । મુતમપિ દ્રવ્યમાવશેષાત્-દ્વિવિધમ્, તપ્ત દ્રવ્યમુતમ્-અનુપયુક્તસ્ય
પ્ત મુતમ્, દ્રવ્યાર્થે વા યત્ મુતમ્, કુમાવશનિકમુતં ચ દ્રવ્યમુતમ્ । માવમુતં
દ્વ-શ્વશાન્નમુતવિપયોપયોગ । ઉપધાનં ચ મુતં ચ, ઇત્યનયો સમાહાર ઉપધા
નમુતમ્, સ્વવિપાદકમધ્યયનમુપધાનમુતાધ્યયનમિતિ ।

इ प्रथमादेशे मगलं धीवर्षमानस्वामिनो विहारः द्वितीयं मगलं च
व्याऽऽसनानि, तृतीये तस्यानुकूल-प्रतिकूल-परीपहोपसर्गसंरिष्णुता, चतुर्थे तु
संयम और तपसे जीवके साथ अनाविकालसे लगी हुई समस्त कर्मकमी
वृत्ति नष्ट हो जाती है इस कारण सकल कर्मों के क्षयका कारण उस
संयम और तपका आलम्बनरूप होनेसे उसमें (भाव उपधानमें) उप-
धान पनेका व्यपदेश होता है । भुत मी द्रव्य और भावके मेवसे दो
प्रकार है । अनुपयुक्त आत्माका जो भुत है वह, अथवा द्रव्यके लिये
जो भुत है वह, या कुमावशनिकों (मिथ्यादृष्टियों) का जो भुत है वह,
द्रव्यभुत है । श्वशान्नभुतविषयक जो उपयोग है वह भावभुत है ।
उपधान और भुतका जो समाहार है वह उपधानभुत है, इनका प्रति-
पादक अध्ययन मी 'उपधानमताध्ययन' इस नामसे प्रसिद्ध हुआ है ।

इस उपधानमुताध्ययनमें चार उद्देश हैं । उनमें प्रथम उद्देशमें मी च
धर्मान्प्रसक्त विहारका, द्वितीय उद्देशमें उनकी शय्या एवं आसनादिका,
तृतीय उद्देशमें अनुकूल प्रतिकूल परीपहोकी सहनशीलताका, और

અને તપથી લવની સાથે આગ્રહિકાવધી લાભેલ કર્મરૂપી પુણ્યને નાશ થાય છે.
આ કારણે સકલ કર્મના ક્ષયના કારણે જે સંયમ અને તપના અવલમ્બનરૂપ
હોવાથી જોમા (ભાવ-ઉપધાનમાં) ઉપધાનપણ્યનો વ્યપદેશ થાય છે. મુત પણ્ય
દ્રવ્ય અને ભાવના સેદથી જે પ્રકારે છે. અનુપયુક્ત આત્માનો જે મુત છે તે,
અથવા દ્રવ્યને માટે જે મુત છે તે, અથવા મિથ્યાદૃષ્ટિવાનો જે મુત છે તે
દ્રવ્ય-મુત છે શ્વશાન્નમુતવિષયક ઉપયોગ છે તે ભાવ-મુત છે ઉપધાન અને મુત,
જેનું પ્રતિપાદક અધ્યયન પણ 'ઉપધાનમુતાધ્યયન' આ નામથી પ્રસિદ્ધ થયેલ છે.

આ ઉપધાનમુતાધ્યયનમાં ચાર ઉદ્દેશ છે જોમા પ્રથમ ઉદ્દેશમાં મી વર્ધ-
માન પ્રમુત્ત વિકારનો બીજા ઉદ્દેશમાં જોમની શય્યા અને આમ્રન આદિનો, ત્રીજા
ઉદ્દેશમાં અનુકૂળ પ્રતિકૂળ પરિવર્તોની સહનશીલતાનો અને ચોથા ઉદ્દેશમાં મુખ

શ્રુત્પીઢાજનિતાઽઽતઙ્કસમુદ્ભવે વિશિષ્ટાભિગ્રહપ્રાપ્તાહારેણ તત્પતીકાર ઇત્યુચ્યતે, તસ્ય ભગવતસ્તપશ્ચરણવર્ણનં તૂદેશકચતુષ્ટયાનુગામિ ॥

અથ ભગવતશ્ચર્યાવિધિ વોધયિતું શ્રીસુધર્માસ્વામી જમ્બૂસ્વામિનમાહ—
'અહાસુયં' ઇત્યાદિ ।

મૂલમ—અહાસુયં વઢ્ઢસ્સામિ, જહા સે સમણે ભગવં ઉઢ્ઢાણ ।

સંખાણ તંસિ હેમંતે, અહુણા પવ્વઢ્ઢણ રીઢ્ઢત્થા ॥ ૧ ॥

છાયા—યથાશ્રુત વદિષ્યામિ, યથા સ શ્રમણો ભગવાન્ ઉત્થાય ।

સંખ્યાય તસ્મિન્ હેમન્તે અધુના પ્રવ્રજિતોઽરીયત ॥ ૧ ॥

ટીકા—યથાશ્રુત=યથાશ્રવણવિષયીકૃત, તથા વદિષ્યામિ=કથયિષ્યામિ, તદ્ યથા-સ:=લોકત્રયપ્રસિદ્ધઃ, શ્રમણો ભગવાન્=મહાવીરઃ શ્રીવર્ધમાનસ્વામી, ઉત્થાય=ઉઘટવિહારં સ્વીકૃત્ય સર્વાભરણ વિહાય પચ્ચમુષ્ટિકં લોચ કૃત્વા ધર્મોપકરણતયા ગૃહીતવસ્ત્રઃ, સામાયિકાર્થં કૃતાભિગ્રહઃ, પ્રકૃટીભૂતમનઃપર્યયજ્ઞાનો જ્ઞાના-

ચતુર્થં ઉદ્દેશમેં શુધા-પીઢાસે જનિત આતંકકે સદ્ભાવમેં વિશિષ્ટ અભિગ્રહસે પ્રાપ્ત આહારસે ઉસ શુધાજન્ય પીઢાકે પ્રતિકારકા વર્ણન હૈ । ભગવાનકે તપશ્ચરણકા વર્ણન તો ઇન ચારોં ઉદ્દેશોં મેં હૈ હી ।

અવ-ભગવાનકી ચર્યાવિધિકો સમજાનેકે લિયે શ્રી સુધર્માસ્વામી જમ્બૂસ્વામીસે કહતે હે—'અહાસુય' ઇત્યાદિ ।

પ્રસુસે જૈસા મૈને સુના હૈ વૈસા હી તુમસે કહૂંગા, વહ ઇસ પ્રકાર—

ઉચ્ચત (ઉત્કૃષ્ટ) વિહાર સ્વીકાર કર, સમસ્ત રાજચિહ્ન આદિ આભરણોંકા પરિત્યાગ કર, ઔર પચ્ચમુષ્ટિ કેશોંકા લુચન કર, વસ્ત્ર કો ધર્મકા ઉપકરણ સમજકર માત્ર ઁક હી વસ્ત્ર ધારણકર, સયમકે લિયે

પાંડાથી થયેલ આતંકના સદ્ભાવમા વિશિષ્ટ અભિગ્રહથી પ્રાપ્ત આહારથી એ-શુધાજન્ય પીડાના પ્રતિકારનુ વર્ણન છે ભગવાનની તપશ્ચર્યાનુ વર્ણન તો એ ચારે ઉદ્દેશોમા છે જ

હવે ભગવાનની ચર્યા વિધિને સમજાવવા માટે શ્રી સુધર્માસ્વામી જમ્બૂસ્વામીથી કહે છે—'અહાસુય' ઇત્યાદિ

પ્રભુ પાસે જેવુ મે સાભળ્યુ છે તેવુંજ તમેને કહીંગ ઉત્કૃષ્ટ વિહાર સ્વીકારી, સમસ્ત રાજચિહ્ન-વિગેરે આભરણોને પરિત્યાગ કરી, અને પચ્ચમુષ્ટિ કેશોનું લુચન કરી, વસ્ત્રને ધર્મનું ઉપકરણ સમજી માત્ર એક જ વસ્ત્ર ધારણ

रत्नीयाधष्टविधकर्मरत्नाऽपहर्षु तीर्थं प्रवर्तयितुं च प्रवृत्तो भूत्वेत्यर्थः, संस्त्र्याय=प्रव-
ज्याकासं चिन्ताय, तस्मिन् प्रवज्याग्रहणविहरणयोग्यतया प्रसिद्धे, हेम-ते=हमन्तर्गतौ,
मार्गशीर्षमासे तस्य कृष्णदशम्यां पूर्वगामिन्यां छायायासु, अपराह्नसमय इति
मासः । प्रवर्तित=गृहीतप्रव्रज्यः, अधुना=अस्मिन् काष्ठे-प्रव्रज्याग्रहणकाष्ठे, तद्
व्यवहितोत्तरकास एवेति यावत्, अरीयत=विहारमकरोत् ॥ १ ॥

पर्मोपकृतवत्या वस्त्रं भगवता गृहीतमित्यतश्च बाधयितुमाह—‘जो चे
विमेण’ इत्यादि ।

सूत्रम्—जो चेविमेण वस्येण, पिहिस्सामि तसि हेमते ।

से पारय आवकहाय, एवं खु अणुधम्मिय तस्स ॥२॥

छाया—जो चैव अनन वस्त्रेण पिधास्यामि तस्मिन् हमन्ते ।

स पारगो यावत्कथम् एतत् खु अनुधार्मिकं तस्य ॥ २ ॥

कृताभिग्रह होकर, मन पर्यय ज्ञानकी प्राप्तिसे युक्त मन ज्ञानावरणीय
आदि आठ प्रकारकी समस्त कर्मरूपी धूलिको उड़ानेके लिये, एवं तीर्थकी
प्रवृत्ति करनेके लिये कठिणद्व होकर लोकत्रयमें प्रसिद्ध वह भगवान्
श्री महावीर स्वामीने, प्रव्रज्या काल जानकर प्रव्रज्या ग्रहण एवं विहार
करनेकी याग्यतासे प्रसिद्ध ऐसे हम-१-मार्गशीर्ष मास-में कृष्णपक्षकी
वृश्चमी १० तिथिके दिन अपराह्न समय-दिनके पिछड़े प्रहरमें दीक्षित
होकर उसी समय विहार किया ॥ १ ॥

‘वस्त्र नी धार्मिक उपकरण है’ ऐसा विचार कर वस्त्र ग्रहण किया,
इस बातको समझानेके लिये सूत्रकार कहते हैं—‘जो चेविमेण’ इत्यादि ।

करी सकम्प्य भाटे कृताभिग्रह बर्ध भगवत्पथ ज्ञाननी प्राप्तिधी युक्त मन
ज्ञानावरणीय वज्रे आठ प्रकारकी समस्त कर्मरूपी धुलाने उड़ाने का भाटे अने
तीर्थनी प्रवृत्ति करवा भाटे कठिणद्व बर्ध लोकत्रयमां प्रसिद्ध ते भगवान् श्री महा-
वीर स्वामीने प्रव्रज्याग्रहण कथनी बर्ध प्रव्रज्याग्रहण अने विहार करवानी
याग्यताधी प्रसिद्ध जेवा हेमन्त-मास-मास-मां कृष्णपक्षनी वृश्चमी तिथिना दिवसे
अपराह्ण समये-दिवसना पाछवा भागमा दीक्षित बर्ध जे समये विहार करी (१)

पक्ष धार्मिक उपकरण है’ जेवा विचार करी वस्त्र ग्रहण करी अथ बात
समझाववा भाटे सूत्रकार कहे छे—‘जो चेविमेण’ इत्यादि.

ક્ષુત્પીડાજનિતાઽઽતઙ્કસમુદ્ભવે વિશિષ્ટાભિગ્રહપ્રાપ્તાહારેણ તત્પતીકાર ઇત્યુચ્યતે, તસ્ય ભગવતસ્તપશ્ચરણવર્ણનં તૂદેશકચતુષ્ટયાનુગામિ ॥

અથ ભગવતશ્ચર્યાવિધિં વૌધયિતુ શ્રીસુધર્માસ્વામી જમ્બૂસ્વામિનમાદ—
'અહાસુયં' ઇત્યાદિ ।

મૂલમ્—અહાસુયં વડસ્સામિ, જહા સે સમણે ભગવં ઉટ્ટાપ ।

સંખાપ તંસિ હેમંતે, અહુણા પઠ્ઠવિણ્ણ રીઠ્ઠથા ॥ ૧ ॥

છાયા—યથાશ્રુત વદિષ્યામિ, યથા સ શ્રમણો ભગવાન્ ઉત્થાય ।

સખ્યાય તસ્મિન્ હેમંતે અધુના પ્રવ્રજિતોઽરીયત ॥ ૧ ॥

ટીકા—યથાશ્રુત=યથાશ્રવણવિપરીકૃત, તથા વદિષ્યામિ=વચયિષ્યામિ, તદ્ યથા-સઃ=લોકત્રયપ્રસિદ્ધઃ, શ્રમણો ભગવાન્=મહાવીરઃ શ્રીવર્ધમાનસ્વામી, ઉત્થાય=ઉદ્યતવિહારં સ્વીકૃત્ય સર્વાભરણં વિહાય પચ્ચમુષ્ટિકં લોચ કૃત્વા ધર્મોપકરણતયા ગૃહીતવસ્ત્રઃ, સામાયિકાર્થં કૃતાભિગ્રહઃ, પ્રમટ્ટીભૂતમનઃપર્યયજ્ઞાનો જ્ઞાના-

ચતુર્થ ઉદ્દેશમેં ક્ષુધા-પીડાસે જનિત આતકકે સદ્ભાવમેં વિશિષ્ટ અભિગ્રહસે પ્રાપ્ત આહારસે ઉસ ક્ષુધાજન્ય પીડાકે પ્રતિકારકા વર્ણન હૈ । ભગવાનકે તપશ્ચરણકા વર્ણન તો હન ચારોં ઉદ્દેશોં મેં હૈ હી ।

અવ-ભગવાનકી ચર્યાવિધિકો સમજ્ઞાનેકે લિયે શ્રી સુધર્માસ્વામી જમ્બૂસ્વામીસે કહતે હે—'અહાસુય' ઇત્યાદિ ।

પ્રશ્નસે જૈસા મૈને સુના હૈ વૈસા હી તુમસે કહૂંગા, વહ ઇસ પ્રકાર—

ઉદ્યત (ઉત્કૃષ્ટ) વિહાર સ્વીકાર કર, સમસ્ત રાજચિહ્ન આદિ આભરણોંકા પરિત્યાગ કર, ઔર પચ્ચમુષ્ટિ કેશોંકા લુચન કર, વસ્ત્ર કો ધર્મકા ઉપકરણ સમજ્ઞકર માત્ર એક હી વસ્ત્ર ધારણકર, સયમકે લિયે

પાંડાથી થયેલ આતકના સદ્ભાવમા વિશિષ્ટ અભિગ્રહથી પ્રાપ્ત આહારથી એ-ક્ષુધાજન્ય પીડાના પ્રતિકારનુ વર્ણન છે ભગવાનની તપશ્ચર્યાનુ વર્ણન તો એ ચારે ઉદ્દેશોમા છે જ

હવે ભગવાનની ચર્યા વિધિને સમજાવવા માટે શ્રી સુધર્માસ્વામી જમ્બૂસ્વામીથી કહે છે—'અહાસુયં' ઇત્યાદિ

પ્રશ્ન પાસે જેવુ મે સાબળ્યુ છે તેવુંજ તમોને કહીશ ઉત્કૃષ્ટ વિહાર સ્વીકારી, સમસ્ત રાજચિહ્ન-વિગેરે આભરણોના પરિત્યાગ કરી, અને પચ્ચમુષ્ટિ કેશોનું લુચન કરી, વસ્ત્રને ધર્મનું ઉપકરણ સમજી માત્ર એક જ વસ્ત્ર ધારણ

ननु तर्हि यत्न किमर्थमङ्गीकृतम् ? अथाह—सु=नियमेन, एतत्=वस्त्रधारण
तस्य=भगवतः, अनुधार्मिकम्=पूर्वपूर्वतीर्थहरणमाप्तकृतम्, अपरै परंपरयान्तीन
तीर्थहरैरपि पूर्वं धर्मोपकरणतया तथाऽनुष्ठितमित्यर्थः ॥ २ ॥

दीक्षाकालिकानुलिप्तभन्नादिसुगन्धलोमाव् भ्रमरादयः समागत्य भगवद्
शुचि दंशनं चक्रुरिति बोधयितुमाह—‘ वस्तारि साहिप ’ इत्यादि ।

श्रुत्वा—चत्तारि साहिप मासे, बह्वे पाणजाइया आगम्म ।

अभिरुक्षकाय त्रिहरिसु आरुसिया ण तस्थ हिंसिसु ॥३॥

जया—चतुर साधिकान् मासान्, बहव प्राणिजातयः आगम्य ।

अभिरुक्ष काय विचङ्गुः, आरुम्य तच्छ तत्र निरिसुः ॥ ३ ॥

शंका—अब बस्त्रसे शरीरको आच्छादित नहीं करनेका अभिप्राह
भगवानने यावज्जीवन अंगीकृत किया तो फिर भगवानने बस्त्रका ग्रहण
ही क्यों किया ?

उत्तर—शंका ठीक है, परन्तु आचारपात्रनके लिये ही उन्होंने ऐसा
किया । जिस प्रकार परंपरासे होनेवाले धर्मतीर्थप्रवर्त्तक तीर्थकरोंने
बस्त्रका धर्मका उपकरण होनेसे ग्रहण किया है । यही बात “अनुधार्मि
कम्” इस पदसे सूत्रकार प्रकट की है ॥ २ ॥

दीक्षा समयमें जब भगवानके शरीरमें चवनादि सुगन्धित द्रव्योंका
उबदन-छेप किया गया उस समय उनकी सुगन्धिसे आये हुए भ्रमर
भगवानके शरीरको काटने लगे, इस बातको समझानेके लिये सूत्रकार
कहते हैं—‘ वस्तारि साहिप ’ इत्यादि ।

शंका—अपारै वस्त्राणी शरीरने आच्छादित न करवाने अनिष्टक भगवानने
आश्रयन कभीकृत क्यों तो पहले भगवानने वस्त्राने केम न तत्त्वयां ?

उत्तर—शंका ठीक है परन्तु आचार पात्रन करवा भाटे न तेमले केम
भुं के प्रकार तीर्थहरैने वस्त्रने धर्म—उपकरणरूप भानी बहवु करेत्त आ
पात्त “अनुधार्मिकम्” आ पक्षी सूत्रकार प्रकट करेत्त है (२)

दीक्षा समयमें अपारै भगवानना शरीर उपर चवनादि सुगन्धित द्रव्योंको
छेप करवाया आये आ समयमें तेनी भुम पक्षी आकषार्ध भभसजे शरीर
उपर निरुधवा आये आने करवाया आये, आ बातने समझपता सूत्रकार कहे है—

वस्तारि साहिप इत्यादि.

टीका—स भगवान् महावीरः श्रीवर्धमानस्वामी, एव विभावयतिस्म-अनेन वस्त्रेण=तस्मिन् शैत्यवर्धकतया प्रसिद्धे हेमन्ते=हेमन्ताख्ये ऋतौ, न चैव पिधास्यामि स्वदेहमहं नैव प्रावरिष्यामि, एतदुपभोगेन शीतसमये स्वात्मानं सुखयितुं प्रवृत्तो न भविष्यामीत्यर्थः । ईदृशविचारणाकरणप्रदर्शक तस्य विशेषण प्रदर्शयति-पारग इति, प्रतिज्ञायाः पारगामी, प्रतिज्ञापूर्णसमर्थ इत्यर्थः । यद्वा—संसारसागरपा-रगमने समर्थ इत्यर्थः । क्रियन्त कालमपेक्ष्य प्रतिज्ञात भगवतेति जिज्ञासायामाह-यावत्कथमिति, यावज्जीवनमित्यर्थः ।

भगवान् महावीरने ऐसा विचार किया कि इस वस्त्रसे शैत्यवर्धक-पनेसे प्रसिद्ध हेमन्त ऋतुमें मैं अपने शरीरको नहीं ढकूंगा-इसके उप-भोगसे शीतसमयमें मैं अपनेको सुखित करनेके लिये प्रवृत्त नहीं होऊँगा । इस प्रकारकी भगवान् महावीरकी विचारणाका कारण यह था कि वे अपने अभिग्रहका पूर्णरूपसे निभानेमें शक्तिशाली थे, यही बात “पारगः” इस विशेषण पदसे सूत्रकारने प्रदर्शित की है । उनके शरीरमें इतनी शक्ति थी कि जिसके आगे उस मार्गशीर्ष जैसे मासकी ठंडकी शक्ति उनके प्रति कुण्ठित हो गई थी । अथवा “पारगः” इस विशेषण पदका यह भी दूसरा अर्थ हो सकता है कि जब वे उसी भवसे संसाररूपी अथाह समुद्रको पार करनेमें समर्थ थे तब उनके समक्ष यह शीतकाल किस गणनामें था । वस्त्रसे शरीरको आवृत नहीं करनेकी प्रतिज्ञा भगवानने कुछ समयके लिये नियमरूपसे अंगीकृत नहीं की थी, किन्तु यावत्कथ-यावज्जीवन यह प्रतिज्ञा उन्होंने स्वीकार की थी ।

भगवान् महावीरने ऐसा विचार किया कि मैं वस्त्रसे ढकी आपवामा प्रसिद्ध हेमन्त ऋतुमें मैं अपने शरीरने ढकी नहीं-आना उपभोगशी ढकीना समयमें मैं अपने सुखी करवामा प्रवृत्त नहीं थकूँगा । आ प्रकारनी भगवान् महावीरनी विचारणानु कारणों से वे ऐसा सोचाना अभिग्रहण पावन पूर्णरूपसे निभाववामा शक्तिशाली होता थे वात ‘पारगः’ आ विशेषण पदसे सूत्रकारने प्रदर्शित करेले थे अभिग्रहण शरीरमें अटली शक्ति होती के नेनी सामे भागशर भड़िनानी ढकीनी शक्ति पक्ष निर्माण भीनी गंध होती अथवा “पारग ” आ विशेषणने भीने से पक्ष अर्थ थक शकें से के न्यारे ते सेज अवधी संसाररूपी अथाह समुद्रने पार करवामा समर्थ होता. आ समर्थ आत्मा सामे शीत कालनी गणनी शुं ? वस्त्रसे शरीरने आवृत न करवाने। अभिग्रहण भगवाने सोचा समयने माटे नियमरूपसे अंगीकृत करेले नहीं परंतु आवृत्तन से अभिग्रहण अभिग्रहण स्वीकार किया होता

નનુ ઠર્હિં ચક્ષં કિમર્થમક્રીકૃતમ્ ? અપ્રાહ—સુ=નિયમન, એતદ્=ચક્ષુષધારણ
તસ્ય=મગધત, અનુચાર્મિકમ્=પૂર્વપૂર્વતીર્થદૂરપર્માન્નુકૂલમ્, અપરે પરંપરયાચતીષ
તીર્થદૈરેતિ પૂર્વે પર્મોપકરણતયા સયાડનુષ્ઠિતમિત્યર્થઃ ॥ ૨ ॥

દીક્ષાકાલિકાન્નુભિન્નચ્ચદનાદિસુગન્ધભોગાણામ્ ભ્રમરાદયઃ સમાગત્ય મગધદ્
પુપિ વંદન ચતુરિતિ શાપયિતુમાહ—‘ ચત્તારિ સાહિય ’ ઇત્યાદિ ।

નૂચ્ચ—ચત્તારિ સાહિય માસે, ચદ્ધવે પાણજાડ્યા આગમ્મ ।

અમિરુક્ષ કાય વિહરિંસુ આરુસિયા ણ તત્થ હિંસિસુ ॥૩॥

છાયા—ચતુરઃ સાધિકામ માસાન્, ચદ્ધવ માણિનાતય આગમ્ય ।

અમિરુક્ષ કાય વિહરિંસુ, આરુમ્પ સ્થલ તથ હિંસિસુ ॥ ૩ ॥

શંકા—જય ચક્ષુસે શરીરકો આચ્છાદિત નહીં કરનેકા અમિરુક્ષ
ભગવાનને પાવડીચન અંગીકૃત કિયા તો પિર ભગવાનને ચક્ષુકા ઘટ્ટણ
હી ક્યોં કયા ?

ઉત્તર—શંકા ઠીક છે, પરન્તુ આચારપાતનકે લિય હી ઉન્હોને પેસા
કિયા । જિસ પ્રકાર પરપરાસે હોનેચાલે ચર્મતીર્થપ્રવર્તક તીર્થકરોને
ચક્ષુકા ધર્મકા ઉપકરણ હોનેસે ઘટ્ટણ કિયા છે । યહી યાત ‘અનુચાર્મિ
કમ્’ ઇસ પદસે સૂત્રકાર પ્રકટ કી છે ॥ ૨ ॥

દીક્ષા સમયમેં જય ભગવાનકે શરીરમેં ચ્ચદનાદિ સુગન્ધિત દ્રવ્યોંકા
ઉચ્ચદન-લેપ કિયા ગયા ઇસ સમય ડનકી સુગન્ધિસે આપે હુગ્ન ધ્રમર
ભગવાનક શરીરકો કાટને લગે, ઇસ યાતકો સમજાનેકે લિય સૂત્રકાર
કહેતે છે —‘ ચત્તારિ સાહિય ’ ઇત્યાદિ ।

શંકા—આપે વચ્ચથી શરીરને આચ્છાદિત ન કરવાનો અભિપ્રાય ભગવાને
આલપત અગ્રીકૃત ઠરોં તે પછી ભગવાને વચ્ચાને કેમ ન વચ્ચા ?

ઉત્તર—શંકા ઠીક છે પરન્તુ આચાર પાતન કરવા માટે જ તેમણે એમ
કહ્યું કે આશ તીર્થ કરશે વચ્ચે ધર્મ-ઉપકરણ માની શ્રદ્ધા કરેલ આ
ચાર “અનુચાર્મિકમ્” આ પદથી સૂત્રકાર પ્રમટ કરેલ છે (૨)

દીક્ષા સમયે આપે ભગવાનના શરીર ઉપર ચ્ચદનાદિ સુગન્ધિત દ્રવ્યોંને
લેપ કરવામાં આવ્યો આ સમયે તેની સુગન્ધથી આકર્ષાઈ ભગવાનો શરીર
ઉપર બેસવા લાગ્યા અને કરકવા લાગ્યા, આ વાતને સમજાવતાં સૂત્રકાર કહે છે—

ચત્તારિ સાહિય ઇત્યાદિ.

ટીકા—વહનઃ પ્રાણિજાતયઃ ભ્રમરાદયઃ ચતુરઃ સાધિકાન માસાન્ મનોજ્ઞ-
ગન્ધલોભાન્ આગમ્ય કાય=ભગવતઃ શરીરમ્, અભિહ્વા વિજહુઃ=નિજનિજચરણાનિ
સપરુપસ્પર્શ ચારયામાસુઃ । તથા—તદીયરક્તાદ્યર્થિતથા ચ આરુપ્ય=પ્રકુપ્યેવ તત્ર=
ભગવત શરીરે નિર્દિશુઃ=દદશુઃ ॥ ૩ ॥

તદ્ વસ્ત્રં ભગવાન્ કિયત્કાલ દધારેતિ શિષ્યજિજ્ઞાસાયમાહ—‘સવચ્છરં
સાહિયં’ ઇત્યાદિ ।

મૂલમ્—સવચ્છરં સાહિયં માસં, જ ન રિક્તવાસિ વત્થગં ભગવં ।

અચેલણ તઓ ચાર્દ, તં વોસિરિજ્જ વત્થમણગારે ॥૪॥

છાયા—સવત્સર સાધિક માસ, યત્ ન રિક્તવાન્ વસ્ત્રક ભગવાન્ ।

અચેલકઃ તતઃ ત્યાગી, તદ્ વ્યુત્સૃજ્ય પલ્લવનગારઃ ॥ ૪ ॥

ટીકા—ભગવાન્ શ્રીવર્ધમાનસ્મામી પલ્લવકં=તદ્ વસ્ત્ર સવત્સરમ્=એકવર્ષ, તથા
સાધિક માસ=સાધિકૈકમાસ કિંચિદધિકત્રયોદશમાસાનિત્યર્થઃ, યત્ ન રિક્તવાન્

કુદ્ધ અધિક ચાર માસમે વહુતસી—અનેક પ્રાણિયોંકી જાતિયાં,
અનેક જાતિકે ભ્રમરાદિક જીવજન્તુ મનોજ્ઞ સુગધકે લોભસે
આકર ભગવાનકે શરીરકે આજૂ—વાજૂ ભિનર કરતે હુણ અનેકે શરીરકો
કઠોર સ્પર્ગ કરતે હુણ ચારોં ઓર ઘૂમને લગે ઓર ક્રોધિત કી તરહ
અનેકે શરીરકો કાટર કર લોહી માંસ ખાને લગે ॥ ૩ ॥

અસ વસ્ત્રકો ભગવાનને કિતને સમયતક ધારણ કિયા? શિષ્યકી
અસ જિજ્ઞાસાકા સમાધાન કરનેકે લિયે સૂત્રકાર કહતે હૈ—‘સવચ્છર’
ઇત્યાદિ ।

ભગવાનને અસ વસ્ત્રકો કુદ્ધ અધિક ંક મહીનાસે યુક્ત ંક વર્ષ,

થોડા અધિક આર મહિનામા ઘણા પ્રાણીઓ અને ઘણી જાતના ભમરા
વગેરે જીવ જાતુની જાતિયો મનને સુગધથી ભરપુર બનાવી દે તેવી સુગધના
લોભમા પડી ભગવાનના શરીર ઉપર તેમજ આરે તરફ ફરી વળી ગણગણાટ
શરૂ કરી દીધો અને જાણે ક્રોધવાળા બન્યા હોય એ રીતે તેમના શરીર ઉપર
સુગધ ચુસવાની ભાવનાથી લોહી તથા માંસને ખાવા લાગ્યા (૩)

એ વસ્ત્રને ભગવાને કેટલા સમય સુધી ધારણ કર્યું ? શિષ્યની આ જાણ-
સાધુ સમાધાન કરવા માટે સૂત્રકાર કહે છે—‘સવચ્છર’ ઇત્યાદિ
ભગવાને થોડા અધિક એક મહીનાથી યુક્ત એક વર્ષ—એટલે થોડા અધિક

ત્યક્તવાન્ તત્ 'સ્વિકૃત્યઃ' इति कृत्वा तत् ऊर्जं तद् वस्त्र व्युत्सृज्य=अपनीय
 त्यागी=वस्त्रपरित्यागी अनगारः=भगवान् अवेसकः=अवज्ञः, अभूदित्यर्थः ॥४॥

किञ्च--'अदु पोरिसि' इत्यादि ।

मूल्म्-अदु पोरिसि तिरियमिति चक्षु मासज्जअन्तसो झाइ ।

अह चक्षुभीया सहिया, तेहता हता बहवे कर्दिसु ॥५॥

भाषा—अह पौरुषी तिर्पेग्मिति चक्षुरासाद्य अन्तसो ध्यायति ।

अथ चक्षुर्पीता सवितास्त, इता इत्या बहवश्चक्रन्दुः ॥ ५ ॥

ટોળા—અથ=અનન્તરં, તિર્પેગ્મિતિ=પ્રવેશસ્થાન સહનિતામ્ને વિસ્તીર્ણા, પૌ
 રુષી=પુરુષમમાત્માં સીધી ગળ્છન્ અન્તરઃ=મધ્યે અપ્યન્તર, ચક્ષુરાસાધ=જ્ઞાનદષ્ટિ
 નિષાપ, સોપયોગો મૂલ્યા, ધ્યાયતિ=ઈર્યાસમિતો ગચ્છતિ । ઈર્યાસમિતસ્ય ગમનમેવાપ્ર
 ધ્યાનમ્ ।

અર્થાત્ કુલ અધિક ભેરહ મહીને નક સ્થિતકવ્ય સમસકર રત્વા । ફિર
 રસકે વાદ્ ડસકા પરિહાર કર જે અચેલ-બહારહિત હુપ ॥૪॥

ફિર મી—'અદુ પોરિસિ' इत्यादि ।

પ્રવેશ સ્થાનમે સંકુચિત ઔર આગે વિસ્તૃત વેસે માર્ગસે જે ભગ
 વાન ઈર્યાસમિતિપૂર્વક જાહે । યહાં "ધ્યાયતિ" વહ ક્રિયાપદ 'ભગવાન
 ઈર્યાસમિતિસે ગમન કરતે હુપ' હમ અર્થકા પોષ કરાતા હૈ, ક્યોં કિ
 સોપયોગ ઈર્યાસમિતિ બાહેકા ગમન હી યહાં ધ્યાન હૈ । "ચક્ષુરાસાધ"
 વહ પદ વહ પ્રકટ કરતા હૈ કિ જે ભગવાન જ્ઞાનદષ્ટિકો રત્વકર-ઉપ
 યોગ સહિત હોકર જાહે । ઈર્યાસમિતિસે જસતે હુપ મી ઉપયોગ અસ્થિર
 હો સકતા હૈ-પરન્તુ યહાં પર ભગવાનકા ઉપયોગ અસ્થિર નહીં થા વહ
 વિશેષતા પ્રકટ કરમેકે લિયે 'ચક્ષુરાસાધ' વહ પદ સૂચકારને રચા હૈ ।

વેરમહિના મુધી તે વસ્ત્રને સ્થિતકવ્ય સમસકરે રાખ્યુ આ પછી તે જોએ તેનો ત્યાગ
 કર્યો અને અવેલ-વસ્ત્રસહિત ચલા (૪)

इती- अदु पोरिसि इत्यादि.

પ્રવેશસ્થાનમા સંકુચ અને આગળ જતાં વિસ્તૃત એટલે પહોળા માર્ગ
 ઉપર ભગવાન ઈર્યાસમિતિપૂર્વક ચાલ્યા જાકિ ધ્યાયતિ આ ક્રિયાપદ ભગ
 વાન ઈર્યાસમિતિથી જામન કરેલ આ જામનના બાધ કરાય છે કેમ કે સોપયોગ
 ઈર્યાસમિતિવાળાનું જામન જ ધ્યાન છે 'ચક્ષુરાસાધ' આ પદ એવું પ્રગટ કરે
 છે કે ભગવાન જ્ઞાનદષ્ટિથી ઉપયોગસહિત જો મારગથી ચાલ્યા ઈર્યાસમિતિથી
 ચાલવાવાળાનો ઉપયોગ અસ્થિર પણ થઈ શકે છે પરંતુ ભગવાનનો ઉપયોગ અસ્થિર
 નહોતો, આ વિશેષતા પ્રગટ કરતાં 'ચક્ષુરાસાધ' આ પદ સૂચકારે રાખેલ છે.

ટીકા—વહ્નવઃ પ્રાણિજાતયઃ ભ્રમરાદયઃ ચતુરઃ સાધિકાન્ માસાન્ મનોજ્ઞસુ-
ગન્ધલોભાત્ આગમ્ય કાયં=ભગવતઃ શરીરમ્, અભિરુઢ વિજહુઃ=નિજનિજચરણાનિ
સપરુપસ્પર્શ ચારયામામુઃ । તથા—તદીયરક્તાદ્યર્થિતયા ચ આરુણ્ય=પ્રકુપ્યેવ તત્ર=
ભગવત શરીરે જિહ્વિસુઃ=દદશુઃ ॥ ૩ ॥

તદ્ વસ્ત્રં ભગવાન્ કિયત્કાલં દધારેતિ શિષ્યજિજ્ઞાસાયમાહ—‘સવચ્છરં
સાહિયં’ ઇત્યાદિ ।

મૂલમ્—સંવચ્છરં સાહિયં માસં, જં ન રિક્તવાસિ વત્થગં ભગવં ।

અચેલણ તઓ ચાઈ, તં વોસિરિજ વત્થમળગારે ॥૪॥

છાયા—સવત્સર સાધિક માસ, યત્ ન રિક્તવાન્ વસ્ત્રક ભગવાન્ ।

અવેલકઃ તતઃ ત્યાગી, તદ્ વ્યુત્કલ્પ્ય વસ્ત્રમનગારઃ ॥ ૪ ॥

ટીકા—ભગવાન્ શ્રીવર્ધમાનસ્વામી વસ્ત્રકં=તદ્ વસ્ત્રં સવત્સરમ્=એકવર્ષ, તથા
સાધિક માસં=સાધિકૈકમાસ કિંચિદધિકત્રયોદશમાસાનિત્યર્થઃ, યત્ ન રિક્તવાન્

કુછ અધિક ચાર માસમેં વહુતસી—અનેક પ્રાણિયોંકી જાતિયાં,
અનેક જાતિકે ભ્રમરાદિક જીવજન્તુ મનોજ્ઞ સુગંધકે લોભસે
આકર ભગવાનકે શરીરકે આજૂ-વાજૂ બિનર કરતે હુણ અનેક શરીરકો
કઠોર સ્પર્શ કરતે હુણ ચારોં ઓર ધૂમને લગે ઓર ક્રોધિત કી તરહ
અનેક શરીરકો કાટર કર લોહી માંસ ખાને લગે ॥ ૩ ॥

અસ વસ્ત્રકો ભગવાનને કિતને સમયતક ધારણ કિયા? શિષ્યકી
અસ જિજ્ઞાસાકા સમાધાન કરનેકે લિયે સૂત્રકાર કહતે હૈ—‘સંવચ્છર’
અત્યાદિ ।

‘ભગવાનને અસ વસ્ત્રકો કુછ અધિક એક મહીનાસે યુક્ત એક વર્ષ,

થોડા અધિક ચાર મહિનામા ઘણા પ્રાણીઓ અને ઘણી જાતના ભ્રમરા
વગેરે જીવ જાતુની જાતિયો મનને સુગંધથી ભરપૂર બનાવી દે તેવી સુગંધના
લોભમા પડી ભગવાનના શરીર ઉપર તેમજ ચારે તરફ ફરી વળી ગણગણાટ
શરૂ કરી દીધો અને જાણે ક્રોધવાળા બન્યા હોય એ રીતે તેમના શરીર ઉપર
સુગંધ ચુસવાની લાવનાથી લોહી તથા માસને ખાવા લાગ્યા (૩)

એ વસ્ત્રને ભગવાને કેટલા સમય સુધી ધારણ કર્યું ? શિષ્યની આ જાણ
માનુ સમાધાન કરવા માટે સૂત્રકાર કહે છે—‘સવચ્છર’ ઇત્યાદિ

ભગવાને થોડા અધિક એક મહીનાથી યુક્ત એક વર્ષ—એટલે થોડા અધિક

ન્યક્તવાન્ તત્ 'સ્થિતકલ્પ' इति कृत्वा तत ऊर्ध्वं तद् वस्त्रं व्युत्सृज्य=अपनीय
स्यागी=बन्धपरिस्थागी अनगारः=मगधान् अवेष्मन्=अवस्त्रा, अभूविस्पर्ष ॥४॥

किञ्च—'अबु पोरिसि' इत्यादि ।

मृष्य-अबु पोरिसि तिरियभिचि चक्खु मासब्ब अन्तसो झाइ ।

अह चक्खुभीया सहिया, तेहता हता बहवे कर्दिसु ॥५॥

जाया—अथ पीकरीं तिर्थेगिमसि चक्षुरासाय अन्तसो ध्यायति ।

अथ चक्षुर्धीता सहिसास्त, इता इत्वा बहव्यमक्रन्दुः ॥ ५ ॥

टीका—अथ=अनन्तर, तिर्यग्मिति=प्रवेक्षस्थानं सङ्कुचितामध्ये विस्तीर्णा, पी
करी=युरूपममाणां पीपी गच्छन् अन्तः=मध्ये अभ्यन्तर, चक्षुरासाय=ज्ञानदृष्टि
निधाय, सोपयोगो भूत्वा, ध्यायति=ईर्ष्यासमितो गच्छति । ईर्ष्यासमितस्य गमनमेवात्र
ध्यातम् ।

अर्थात् कुछ अधिक तेरह महीने तक स्थितकल्प समझकर रखा । फिर
उसके बाद उसका परिहार कर के अवेष्ट-बन्धरहित हुए ॥४॥

फिर भी—'अबु पोरिसि' इत्यादि ।

प्रवेश स्थानमें सङ्कुचित और आगे विस्तृत ऐसे मार्गसे वे भग
वान् ईर्ष्यासमितिपूर्वक चले । यहाँ "ध्यायति" यह क्रियापद "भगवान्
ईर्ष्यासमितिसે ગમન કરતે હુ" इस अर्थका बोध कराता है, क्यों कि
सोपयोग ईर्ष्यासमिति बाछेका गमन ही यहाँ ध्यान है । "चक्षुरासाय"
यह पद यह प्रकट करता है कि वे भगवान् ज्ञानदृष्टिको रम्यकर-उप
योग सहित होकर चले । ईर्ष्यासमितिसे चलते हुए भी उपयोग अस्तिर
हो सकता है-परन्तु यहाँ पर भगवान् का उपयोग अस्तिर नहीं था यह
विशेषता प्रकट करनेके लिये 'चक्षुरासाय' यह पद सूचकारने रखा है ।

તેમહિના મુખી તે બચને સ્થિતકલ્પ સમજીને રાખ્યુ આ પછી તેઓએ તેના ત્થાન
ઠીકે અને અવેષ-બન્ધરહિત થયા. (૪)

ફરી- અબુ પોરિસિ ઈત્યાદિ.

પ્રવેશસ્થાનમાં સંકુચ અને આગળ જતાં વિસ્તૃત એટલે પહોળા માર્ગ
ઉપર ભગવાન ઈર્ષ્યાસમિતિપૂર્વક ચાલ્યા. અહીં ધ્યાયતિ આ ક્રિયાપદ ભગ
વાન ઈર્ષ્યાસમિતિથી ગમન કરેલા આ અર્થનો બોધ કરાવે છે કેમ કે સોપયોગ
ઈર્ષ્યાસમિતિવાળાનું ગમન જ ધ્યાન છે. 'ચક્ષુરસાય' આ પદ એવું પ્રગટ કરે
છે કે ભગવાન જ્ઞાનદ્રષ્ટિથી ઉપયોગસહિત એ મારગથી ચાલ્યા. ઈર્ષ્યાસમિતિથી
ચાલવાવાળાનો ઉપયોગ અસ્થિર પણ થઈ શકે છે પરંતુ ભગવાનનો ઉપયોગ અસ્થિર
નહોતો, આ વિશેષતા પ્રગટ કરતા 'ચક્ષુરસાય' આ પદ સૂચકારે રાખેલ છે.

તં તથા વ્રજન્તમવલોક્ય બાલકા ઉપસર્ગ ચક્રુરિત્યાહ—‘અથ ચક્ષુર્મીતાઃ’
 इत्यादि ।

અથ=અનન્તરં, ચક્ષુર્મીતાઃ=અત્ર ચક્ષુઃશબ્દેન દર્શનં ગૃહ્યતે, દર્શનાદ્મીતાઃ
 भगवन्त विलोक्य भयमुपगताः, अत एव सहिताः=मिलिताः, ते=बालका इत्या
 हत्वा=धूलिप्रक्षेपादिभिः पुनः पुनस्ताडयित्वा चक्रन्दुः=अन्यान् बालानाद्वयन्ति स्म,
 ‘इहागच्छत पश्यत मुण्डितोऽय’—मिति, तथा—‘किदेशीयः कुतः समया-
 तोऽय’—मिति कलकलशब्द चक्रुरित्यर्थः ॥ ५ ॥

કિન્ન—‘સયણેહિં’ इत्यादि ।

मूलम्—सयणेहिं वितिमिस्सेहिं, इत्थीओ तत्थ से परिन्नाय ।

सागारियं न सेवेइ य, से सयं पवेसिया झाइ ॥ ६ ॥

જાયા--શયનેષુ વ્યતિમિશ્રેષુ સ્ત્રિયસ્ત્ર સ પરિજ્ઞાય ।

सागारिक न सेवेत च स स्वयं प्रवेश्य ध्यायति ॥ ६ ॥

टीका—शयनेषु=शय्यते यत्र तानि शयनानि=आगन्तुकार्थवासस्थानानि,
 तेषु व्यतिमिश्रेषु=कुतश्चित् कारणाद् गृहस्थैस्तीर्थिकैश्च संयुक्तेषु सत्सु तत्रावस्थि-

भगवानको इस तरह विहार करते हुए देखकर भयसे युक्त हो बालक
 मिलकर उनके ऊपर धूलि आदि डालकर उपसर्ग करने लगे और
 कोलाहल करते हुए कहने लगे कि—आओ देखो यह मनुष्य मुडित है,
 यह अजब ढगका आदमी कहाँसे आया है ॥५॥

और भी—‘सयणेहिं’ इत्यादि ।

आगन्तुक—પથિક જનોંકે લિયે વસને યોગ્ય સ્થાનોંકા નામ શયન છે ।
 इन शयनोंमें अनेक प्रकारके व्यक्ति आकर ठहरते हैं और चले जाते हैं, ऐसे
 स्थानोंमें यदि मुनिजन ठहरे और वहीं पर गृहस्थजन या अन्य तीर्थिक-

ભગવાને આ રીતે વિહાર કરતા જોઈ ભયભીત બનતા બાળકોએ ધુળ
 કાકરા વગેરે તેમના ઉપર નાખવા માડ્યા, અને તમાસો જોવાના નિમિત્તે બીજા
 બાળકોને પણ બોલાવવા લાગ્યા અને કોલાહલ મચાવી કહેવા લાગ્યા કે—જુઓ
 જુઓ આ માણસ માથે મુઠેલ એવા અજબ ઢગનો છે આ માણસ અહિં
 કયાથી આવેલ છે ? (૫)

ફરી—‘સયણેહિં’ ઇત્યાદિ

આગ તુક—માર્ગ વહેતા માણસોને વસવા યોગ્ય સ્થાનોનું નામ શયન છે આ શયનોમાં
 અનેક પ્રકારના માણસો આવી રોકાય છે, અને ચાલ્યા જાય છે આવા સ્થાનોમાં કદીક
 મુનિ પણ રોકાય છે અને બીજા ગૃહસ્થજન અને અન્યતીર્થિક બીજા ધર્મવાળા માણસો

तः सन् स्त्रीभिः प्रार्थितो भवति चेत् तदा स स्त्रियः परिहाय=परिग्रहा 'श्माः सयमसरणिपतिरोषिकाः' इति ज्ञात्वा, प्रत्यास्याम-परिग्रहा परिवर्जयन् 'मुनिः सागारिकं=मैथुनं न सेवेत्' इत्येषं स्वधर्ममनुस्मरन् स=भगवान् महावीरः श्री वर्षमानस्वायी वैराग्यमार्गे स्वयं=स्वमात्मानं प्रवेष्ट्य ध्यायति=धर्मध्यानं करोति स्म ॥ सू० ६ ॥

यदि मार्गे गृहस्था आगत्य भित्तन्ति पृच्छन्ति, तदानीमपि भगवतो ध्यानमङ्गे नापूरित्याह—'जे के इमे' इत्यादि ।

मूम्—जे के इमे अगारस्था, मीसीभावं पहाय से झाई ।

पुढो वि नाभिभासिसु, गच्छइ नाइवत्तइ अजू ॥ ७ ॥

छाया—ये केबिइ इमे अगारस्थाः मिथीभावं प्रहाय स ध्यायति ।

पृष्ठोऽपि नाम्यमापत्, गच्छति नातिवर्तते ऋजुः ॥ ७ ॥

जन मी ठहर हों और उनमेंस कोई कामिमी वस मुनिसे अपनी वैपयिक अनिछापा प्रकट करे तब वह मुनि उस स्त्रीको 'यह संयम मार्गकी प्रतिरोधिका है' ऐसा कह-परिज्ञासे जानकर प्रत्याख्यान-प्रतिज्ञासे सर्वथा उसका परिहार कर देवे, और इसकी वैपयिक अनिछापाकी पूर्ति न करे, इस प्रकारके अपने धर्मका विचार करते हुए वे भगवान् महावीर वैराग्यमार्गमें अपने आपको ओत-प्रोत कर धर्मध्यानमें तत्पर रहें ॥ ६ ॥

मार्गमें चलते हुए भगवान्को यदि गृहस्थजन आकरके भित्तते और कुछ पूछते तो भी भगवान्का ध्यानमङ्ग नहीं होता, इस बातको सूत्रकार प्रकट करते हैं—'जे के इमे' इत्यादि ।

पञ्च रत्ने छे. आमां केळी स्त्री आ स्थानमां शोभायेला मुनिजनभी पोतानी वैपयिक अनिछापा प्रकट करे जे समये मुनि "स्त्री स धर्ममात्रने अपरोध करनार छे" जेवुं स-परिज्ञाभी आवी प्रत्याख्यान-प्रतिज्ञाभी जेने त्याज करी हे अने जेनी वैपयिक-विषयसभभी अनिछापाकी पूर्ति न करे, आ प्रकारभी पोतान्य धर्मनि विचार करत भगवान् महावीर वैराग्यमार्गमां पोताने ओत-प्रोत ज्ञानची धर्मध्यानमा भग रत्ने छे (६)

मार्गमां चलतां भगवान्ने केळी गृहस्थजन आनीने भजे अने पुछपरछ करे तो पञ्च भगवान्का ध्यानने अज नहि गते आ बातने सूत्रकार प्रकट करे छे— ज के इमे इत्यादि

તં તથા વ્રજન્તમલોક્ય બાલકા ઉપસર્ગ ચક્રુરિત્યાહ—‘અથ ચક્ષુર્મીતાઃ’
 इत्यादि ।

અથ=અનન્તરં, ચક્ષુર્મીતાઃ=અત્ર ચક્ષુઃશબ્દેન દર્શન ગૃહ્યતે, દર્શનાદ્મીતાઃ
 भगवन्तं विलोक्य भयमुपगताः, अत एव संहिताः=मिलिताः, ते=बालका इत्या
 हत्वा=धूलिप्रक्षेपादिभिः पुनः पुनस्ताडयित्वा चक्रन्दुः=अन्यान् बालानाह्वयन्ति स्म,
 ‘इहागच्छत पश्यत मुण्डितोऽय’-मिति, तथा—‘किदेशीयः कुतः समाय-
 तोऽय’-मिति कलकलगद्गद चक्रुरित्यर्थः ॥ ५ ॥

કિન્ન—‘સયણેહિ’ ઇત્યાદિ ।

मूलम्—सयणोहिं वितिमिस्सेहिं, इत्थीओ तत्थ से परिन्नाय ।

सागारियं न सेवेइ य, से सयं पवेसिया झाइ ॥ ६ ॥

છાયા--શયનેષુ વ્યતિમિશ્રેષુ સ્ત્રિયસ્તત્ર સ પરિજ્ઞાય ।

सागारिक न सेवेत च स स्वयं प्रवेश्य व्यायति ॥ ६ ॥

ટીકા—શયનેષુ=શય્યતે યત્ર તાનિ શયનાનિ=આગન્તુકાર્થવાસસ્થાનાનિ,
 તેષુ વ્યતિમિશ્રેષુ=કુતથિત્ કારણાદ્ ગૃહસ્થૈસ્તીર્થિકૈશ્ચ સયુક્તેષુ સત્સુ તત્રાવસ્થિ-

भगवानको इस तरह विहार करते हुए देखकर भयसे युक्त हो बालक
 मिलकर उनके ऊपर धूलि आदि डालकर उपसर्ग करने लगे और
 कोलाहल करते हुए कहने लगे कि—आओ देखो यह मनुष्य मुडित है,
 यह अजब ढगका आदमी कहाँसे आया है ॥५॥

और भी—‘सयणोहिं’ इत्यादि ।

आगन्तुक-पथिक जनोंके लिये वसने योग्य स्थानोंका नाम शयन है ।
 इन शयनोंमें अनेक प्रकारके व्यक्ति आकर ठहरते हैं और चले जाते हैं, ऐसे
 स्थानोंमें यदि मुनिजन ठहरें और वहीं पर गृहस्थजन या अन्य तीर्थिक-

ભગવાનને આ રીતે વિહાર કરતા જોઈ ભયભીત બનતા બાળકોએ ધુળ
 કાકરા વગેરે તેમના ઉપર નાખવા માંડ્યા, અને તમાસો જોવાના નિમિત્તે બીજાં
 બાળકોને પણ ખેલાવવા લાગ્યા અને કોલાહલ મચાવી કહેવા લાગ્યા કે—બુઝો
 બુઝો આ માણસ માથે મુડેલ એવા અજબ ઢગનો છે આ માણસ અહિં
 કયાથી આવેલ છે ? (૫)

ફરી—‘સયણેહિ’ ઇત્યાદિ

આગ તુક—માર્ગવહેતા માણસોને વસવા યોગ્ય સ્થાનોનું નામ શયન છે આ શયનોમા
 અનેક પ્રકારના માણસો આવી રોકાય છે, અને ચાલ્યા જાય છે. આવા સ્થાનોમાં કદીક
 મુનિ પણ રોકાય છે અને બીજા ગૃહસ્થજન અને અન્યતીર્થિક બીજા ધર્મવાળા માણસો

मापते—न प्रसीति, नाप्यनभिवाद्यद्वयम् कुप्यतीत्यपि उपलक्षणार्थस्य ऽधगन्तव्यम्।
प्रतिहसोपसर्गोपस्थितौ सत्यामपि ध्यानमज्ञौ नाभूविस्थाह—‘इतपूर्व’ इत्यादि।
तत्र—अनार्यदेहादौ विहसन् अल्पपुण्यैः—हीनपुण्यैर्मैस्त्वारहितैरनार्यैश्चैतपूर्वः
पूर्व इतः, त्वावृत्तपूर्वः—विस्तिपूर्वः केवलमुज्जनादिभि पूर्वं विस्तिता नामिमापते,
न कपायभावं प्राप्तवानित्यर्थ ॥ ८ ॥

किञ्च—‘फरुसाई’ इत्यादि।

मूषम्—फरुसाई दुत्तितिक्रुसाई, अइअच्च मुणी परधकममाणे।

आघायनदृगीयाइ, दबजुद्धाई मुट्टिजुद्धाई ॥ ९ ॥

ज्या—फरुयाणि दुत्तितिक्षाणि अतिगत्य मुनिः पराक्रममाण ।

आल्पातदृस्मगीतानि दण्डयुद्धानि मुष्टियुद्धानि ॥ ९ ॥

चाहे कि हम भी इस प्रकारके मांभमें अपने जीवनको डालें तो ये नहीं
डाल सकते। भगवान् अपने को बचना करनेवाले मनुष्योंसे प्रेमसे नहीं
पोसते और उपलक्षणसे नहीं बचनेवालों पर क्रोधी नहीं होते। भगवान्
के ऊपर चाहे कितनेही प्रतिकूल और अनुकूल उपसर्ग आते, तो भी वे
अपने ध्यानसे विचलित नहीं होते। अनार्य देहादिकमें विहार करते
समय भगवान् धर्मसंसारहित ऐसे हीनपुण्य अनार्यों द्वारा दण्डोंसे भी
ताड़ित हुए, और केवलमुज्जनादिकपूर्वक उनके द्वारा दुःखित भी किये
गये, उन पर पत्थर आदिका प्रहार भी किया गया तो भी भगवान्
उनके प्रति कपायभावोंसे संपन्न नहीं हुए थे ॥ ८ ॥

और भी—‘फरुसाई’ इत्यादि।

हे ईश्वर! पशु जगत्प्रकारे भास लुचनने लक्ष्मि लठ तो जे प्रभावे ते करी शके
नहीं—जे प्रकारेन राज लणी शके नहीं लजवाननी बटना कस्या आपत्ता
भाज्यसे चाहे तेजो प्रेमभी जालता नहीं; अने उपलक्ष्यधो नहीं पांडवाद्यग्न
ऊपर क्रोध करता नहीं तेमना ऊपर अग्नि तेरवा प्रतिकूल अने अनुकूल उप
सर्ग आवे तो पशु तेजो पीताना ध्यानभी विचलित भत्ता नहीं अनार्य देश
दिकमां बिकार करी बभते धर्मसंज्ञाभी रहित जेवा हीनपुण्य अनार्योंभी लन
जाने अनेक प्रकारेन कष्टो सहेवा पठेबां। इह विजेशनी ताडनाभी तेमज
आध्या पाज बहरी जेजवा विजेशभी लजवानने अनेक रीते दुःख पठेबां।
जमां आवेबां कंकरा, तेमज पथर विजेशना प्रकारे करवाभा आभा कता
तो पशु जेमना तरह कपायभावसंपन्न नहि यथा. (८)

हरी—फरुसाई इत्यादि.

टीका—ये केचिद् इमे अगारस्थाः=गृहस्थाः आगत्य समिलन्ति तैर्मिश्री-
भाव=सहवास प्रहाय=परित्यज्य सः=भगवान् ध्यायति=ध्यानमेवावलम्बते स्म ।
तथा—तैः कश्चिद् विषयं पृष्ठोऽप्यपृष्ठो वा स ऋजुः सरलहृदयो भगवान् नाभ्य-
भाषत, किन्तु—गच्छति ईर्यासमितः सन् मार्गे व्रजत्येव, तथा नातिवर्तते=मोक्ष-
मार्गं ध्यानं वा न परित्यजति स्मेत्यर्थः ॥ ७ ॥

किञ्च—‘णो सुकर०’ इत्यादि ।

मूलम्—णो सुकरमेयमेगेसिं, नाभिभासए अभिवायमाणे ।

हयपुण्वे तत्थ दंडेहिं, लूसियपुण्वे अप्पपुण्णेहिं ॥८॥

छाया—नो सुकरमेतद् एकेषां नाभिभाषते अभिवादयतः ।

हतपूर्वः तत्र दण्डै लूषितपूर्वः अल्पपुण्यैः ॥ ८ ॥

टीका—एतद्=उक्तं वक्ष्यमाणं च, भगवच्चरितं एकेषाम्=अन्येषां नो सुकर
=न कर्तुं शक्यम्, तदेव दर्शयति—अभिवादयतः=अभिवन्दनं कुर्वतो जनान्, नाभि-

जो कोई गृहस्थजन आकरके भगवानसे मार्गमें मिलते तो वे उनके
साथ सहवास नहीं करते, और अपने ध्यान हीमें मग्न रहते। उनके
द्वारा किसी विषयको लेकर पूछे गये अथवा नहीं पूछे गये वे सरल
हृदयवाले भगवान् उनसे बोलते—चालते नहीं, मार्गमें ईर्यासमितसे
ही चलते रहते। मोक्षमार्ग अथवा ध्यानकी ओरसे वे अपने चित्तको
नहीं हटाते थे ॥ ७ ॥

फिर भी—‘णो सुकर०’ इत्यादि ।

यह कहा हुआ और आगे कहा जाने वाला भगवानका चरित्र
अन्य मनुष्योंके लिये सुकर—आचरण करना सहज—नहीं है, अन्य मनुष्य

जो डोई गृहस्थ जन आवी मार्गमा भगवानने भणता तो तेमनी साथे
भगवान सहवास करता न डता अने पोताना ध्यानमा न भग्न रहेता डता
पूछवामा आवती अथवा नही पूछवामा आवती डोई पणु वातनो भगवान
नवाण आपता नही—डोईनी साथे गोलता आलता नही मार्गमा धर्यासमितिथी
आलता रहेता मोक्षमार्गथी अने ध्यानना तरइथी तेओ पोतानु चित्त नरा
पणु भील तरइ देखता नही (७)

इरी—‘णो सुकर०’ इत्यादि

आ डोवामा आवेल अने आगण डोवामा आवनार भगवाननु चरित्र
भीन भाणुसो भाटे ओ रीतथी आचरण करु सडेन नथी डोई भाणुस विचारै

मापते—न ब्रवीति, नाप्यनभिषाद्ययङ्गयम् कुप्यतीत्यपि उपलक्षणार्थतयाऽपगन्तव्यम्।
मत्तिसोपसर्गोपस्थितौ सत्यामपि ध्यानमङ्गा नाभूदित्याह—‘इतपूर्वः’ इत्यादि।
तत्र—अनार्यदंष्ट्रादौ विहारन् अत्यपुण्यैः—हीनपुण्यैर्धर्मसङ्गारहितैरनार्यैर्दण्डैरितपूर्वः
पूर्व इति, तथास्त्वितपूर्वः—द्विसितपूर्व केवललज्जनादिभिः पूर्वं द्विसितो नाभिमापते,
न कृपायमात्र प्राप्तवानित्यर्थः ॥ ८ ॥

किञ्च—‘फरुसाह’ इत्यादि।

मूकम्—फरुसाह वृत्तितिक्रसाह, अङ्गमञ्च मुणी परक्कममाणे।

आघायनदृगीयाह, दडजुद्धाह मुद्धिजुद्धाह ॥९॥

जया—फरुपाणि दुस्त्वितिसाणि अतिगत्स्य मुनिः पराक्कममाणः।

आरुपातदृस्यगीतानि दण्डयुद्धानि मुद्धियुद्धानि ॥ ९ ॥

चाहें कि हम भी इस प्रकारके मांभमें अपने जीवनको डालें तो वे नहीं
हाल सकते। भगवान् अपने को बचना करनेवाले मनुष्योंसे प्रेमसे नहीं
बोलते और उपलक्षणसे नहीं बचनेवालों पर क्रोधी नहीं होते। भगवान्
के ऊपर चाहें किन्तनेही प्रतिकूल और अनुकूल उपसर्ग आते, तो भी वे
अपने ध्यानसे विचलित नहीं होते। अनार्य देशादिकमें विहार करते
समय भगवान् धर्मसङ्गारहित ऐसे हीनपुण्य अनार्यों द्वारा दण्डोंसे भी
ताड़ित हुए, और कदालुज्जनादिकपूर्वक उनके द्वारा दुःस्मित भी किया
गये, उन पर पत्थर आदिका प्रहार भी किया गया तो भी भगवान्
उनके प्रति कृपायमात्रोंसे सफल नहीं हुए थे ॥ ८ ॥

और भी—‘फरुसाह’ इत्यादि।

हे दुं पद्य आ प्रकारे भाशे एवमने छह बातें तो जे प्रभावें ते करी सके
नहीं—जे प्रकारेण बाण बाणी सके नहीं भजवान्भी बचना करवा आपत्ता
भावसे साबे तेजो प्रेमभी मिलता नहीं; अने उपलक्षणधरी नहीं वांस्वाभाव
ऊपर क्रोध करता नहीं तेमन्त्र ऊपर जे तेदला प्रतिकूल अने अनुकूल उप-
सर्ग आवे तो पद्य तेजो पीताना ध्यानधी विचलित भता नहीं अनार्य देश-
दिग्भां विहार करती वजते धर्मसङ्गधी रहित जेवा हीनपुण्य अनार्योंभी भज
वजने अने प्रकारेण करी सकेवा पडेला दड विजिरेनी दान्नाधी तेमन्त्र
आघात पाण पडरी जेवना विजिरेणी भजवानने अनेक रीते दुःख पडेला
कुभां आवेला हांकरा, तेमन्त्र पद्य विजिरेना प्रकारेण करवावा आवा दता
तो पद्य जेमन्त्र तथे कृपायमात्र पन्न नहि भवा (८)

हरी—फरुसाह इत्यादि.

ટીકા—મુનિઃ=શ્રીવર્ધમાનસ્વામી, પરુપાણિ=કઠોરવચનાનિ, દુસ્તિતિક્ષાણિ =અન્યૈઃ પ્રાકૃતપુરુષૈર્દુઃસહાનિ અતિગત્ય=અવિગણમ્ય, પરાક્રમમાણઃ=સમ્યક્-તિતિક્ષાવાન્ ભવતિ, તથા—આખ્યાતનૃત્યગીતાનિ=આખ્યાતાનિ નૃત્યગીતાનિ ઉદ્દિ-શ્ય કૌતુકં ન કરોતિ, તથા—દણ્ડયુદ્ધાનિ મુષ્ટિયુદ્ધાનિ દૃષ્ટ્વા શ્રુત્વા વા નાપિ રોમા-શ્ચિતો ભવતિ ॥ ૯ ॥

કિંચ—‘ગઢિય’ ઇત્યાદિ ।

મૂલમ્—ગઢિય મિહોકહાસુ, સમયંમિ નાયસુય વિસોગે અદક્ષૂ ।

અર્થાત્—સે ઊરાલાઈં, ગચ્છઈ નાયપુત્તે અસરણાય ॥ ૧૦ ॥

છાયા—ગૃહઃ મિથઃકથાસુ સમયે જ્ઞાતસુત વિશોકઃ અદ્રાક્ષીત્ ।

અર્થાત્—સ ઉદારાણિ ગચ્છતિ જ્ઞાતપુત્રઃ અસરણાય ॥ ૧૦ ॥

ટીકા—સમયે=એકસ્મિન્ કાલે કદાચિત્ જ્ઞાતસુતઃ=ભગવાન્ મહાવીરઃ શ્રી વર્ધમાનસ્વામી મિથઃકથાસુ=પરસ્પર કામસંબંધિવાર્તાલાપેષુ ગૃહા=આસક્તાઃ સ્ત્રીઃ, વિશોકઃ=રાગરહિતઃ સન્ અદ્રાક્ષીત્ । સ જ્ઞાતપુત્રઃ=ભગવાન્ અસરણાય=શરણં=

મુનિ શ્રી વર્ધમાન સ્વામી અન્ય સાધારણ પ્રાણી મી જિન્હૈં સહન ન કર સર્કે એસે કઠોર વચનોંકી ઓર કુછ મી ધ્યાન ન દેકર સમ્યક્ પ્રકારસે સહન કરને વાલે હુએ—સર્વ પ્રકારસે અચ્છી તરહ સહનશીલ બને । તથા આખ્યાત (કથા-વાર્તા) નૃત્ય ઓર ગીતકી તરફ આશ્ચર્યસે યુક્ત ન હુએ, એવં દણ્ડયુદ્ધ ઓર મુષ્ટિયુદ્ધોંકો દેખકર યા સુનકર રોમાશ્ચિત-આશ્ચર્યચકિત મી ન બને ॥૯॥

ફિર મી--‘ગઢિય’ ઇત્યાદિ ।

એક સમય કી વાત હૈ કિ ભગવાન્ મહાવીરને પરસ્પર કામસંબંધી-વાર્તાલાપોંમેં આસક્ત સ્ત્રિયોંકો દેખા તો મી વે ઉસ ઓરસે વીતરાગ

મુનિશ્રી વર્ધમાન સ્વામી અન્ય સાધારણ પ્રાણી પણ જોને સહન ન કરી શકે એવા કઠોર વચનોની તરફ જરા પણ ધ્યાન ન દઈ સમ્યક્ પ્રકારથી સહન કરવાવાળા થયા—સર્વ પ્રકારથી તેઓ સહનશીલ વૃત્તિના બન્યા આખ્યાન(કથાવાર્તા) નૃત્યો અને ગીતોમા તેઓને આશ્ચર્ય થયેલ નહીં, તેમ હડયુદ્ધ અને મુષ્ટિયુદ્ધને જોઈ તથા સામળી રોમાચિત-આશ્ચર્યચકિત બન્યા ન હતા (૯)

ફરી—‘ગઢિય’ ઇત્યાદિ

એક સમયની વાત છે કે ભગવાન મહાવીરે પરસ્પર કામસંબંધી વાર્તા-લાપોમા સ્ત્રીઓને આસક્ત બનેલી જોવા છતાં પણ એ બારામા એઓ વીતરાગી

यह यत्र नास्तीत्यहरणः=संयमस्तस्मै, संयमाराधनायैम्, एतानि=अनुकूल-प्रति-
कृतानि परीपहोपसर्गरूपाणि उदाराणि=अन्यजनैर्दुःस्थानि गच्छति=अतिक्रामति,
परीपहोपसर्गैः प्रतिबद्धो न मषतीति भावः ॥ १० ॥

तत्र म्भारता दीक्षाग्रहणात् पूर्वं साधिकत्वप्राप्तयः शीतत्रय परिषिन्नितमित्याह-
‘अबिसाहिष’ इत्यादि ।

मूयम्-अबि साहिष बुवासे, सीतोदं अभोरुथा णिक्खते ।

पगत्तगय पिहियच्चे, से अहिस्सायदंसणे संते ॥११॥

छाया-अपि साधिके द्वे वर्षे शीतत्वकम् अक्षुब्धत्वा निष्क्रान्तः ।

एकस्वमतः पिहितार्थं स अग्निज्ञातदर्शनं ज्ञानम् ॥ ११ ॥

टीका-अपि च-स भगवान् साधिके द्वे वर्षे शीतादकम्=सचिचजलम्,
अक्षुब्धत्वा=अपीत्वा, एकस्वमतः=एकत्वभावनामाभित-‘अहमेक एवासहायाऽस्मि
नास्ति मम कबिदात्मकल्याणार्थं द्वितीयं यथाप, अपि च नास्ति कनाऽपि सह
ही रहे, अर्थात् उनकी ओर भगवान्ने रागसहित दृष्टि भी नहीं रखी ।
ज्ञानपुत्र भगवान् अहारण रहे-संयमकी आराधनाके लिये अन्यजनोंका
धारण नहीं लिया, एवं बुवासे प्रतिकूल और अनुकूल परीपहोके आने
पर भी अखोल रहे ॥ १० ॥

भगवान्ने दीक्षाग्रहण करनके पहिल कुछ अधिक दो वर्षोंसे शीत
सख-सचिच पानीका त्याग कर दिया था, इस बातको सूत्रकार प्रदर्शित
करते हैं-‘अबि साहिष’ इत्यादि ।

भगवान्ने कुछ अधिक दो वर्षों से सचिचजलका त्याग करदिया था,
अर्थात्-सचिचजल नहीं पिया । इस एकत्व भावनासे कि-‘मैं एक
हूँ और असहाय हूँ-आत्मकल्याणके मार्गमें आगे आनवाले मेरे लिये

च रह्य अर्थात् भगवान्ने तेमन्ना तस्मै संयमस्तस्मै दृष्टि रही, ज्ञानपुत्र भगवान्
अक्षुब्धत्वा रह्य-संयमना आराधना भाटे पीबितु संयम न बीधु जने अमे तेना
प्रतिपूज के अनुकूल प्रतिकूल-दुःखके दुःखे आवना छदा पयु अठेस रह्य (१०)
भगवान्ने दीक्षा दीधा पड़ेलां जे वर्षधी पयु पधारै समवधी ६५ पावुनि
त्याज करी दीपेले, अर्थात् सूत्रकार प्रदर्शित करे छे- अबि साहिष इत्यादि
भगवान्ने जे वर्षधी पयु पधारै समवधी ६५ पावुनि त्याज करी दीपेले
-अर्थात्-६५ (अयु) पावुनी पीपेले नहीं, अर्थात् एकत्व-भावनाधी छे- दुःखके दुःख
जने असहाय छे आत्मकल्याणका मार्गमें आगे आनवाले मेरे लिये

ટીકા—મુનિઃ=શ્રીવર્ધમાનસ્વામી, પરુપાણિ=કઠોરવચનાનિ, દુસ્તિતિક્ષાણિ =અન્યૈઃ પ્રાકૃતપુરુષૈર્દુઃસહાનિ અતિગત્ય=અવિગણગ્ય, પરાક્રમમાણઃ=સમ્યક્-તિતિક્ષાવાન્ ભગતિ, તથા—આખ્યાતનૃત્યગીતાનિ=આખ્યાતાનિ નૃત્યગીતાનિ ઉદ્દિ-શ્ય કૌતુકં ન કરોતિ, તથા—દણ્ડયુદ્ધાનિ મુષ્ટિયુદ્ધાનિ દ્વદ્વા શ્રુત્વા વા નાપિ રોમા-શ્ચિતો ભવતિ ॥ ૯ ॥

કિંચ—‘ગઢિય’ ઇત્યાદિ ।

મૂલમ્—ગઢિય મિહોકહાસુ, સમયંમિ નાયસુય વિસોગે અદક્ષૂ ।

અર્થાઙ્ગે સે ઊરાલાઙ્ગે, ગચ્છઙ્ગે નાયપુત્તે અસરણાણ ॥ ૧૦ ॥

છાયા—ગૃહઃ મિથઃકૃત્યાસુ સમયે જ્ઞાતપુત્ર વિશોકઃ અદ્રાક્ષીત્ ।

અત્તાનિ સ ઉદારાણિ ગચ્છતિ જ્ઞાતપુત્રઃ અશરણાય ॥ ૧૦ ॥

ટીકા—સમયે=અકસ્મિન્ કાલે કદાચિત્ જ્ઞાતપુત્રઃ=ભગવાન્ મહાવીરઃ શ્રી વર્ધમાનસ્વામી મિથઃકૃત્યાસુ=પરસ્પર કામસમ્બન્ધિવાર્તાલાપેષુ ગૃહા=આસક્તાઃ સ્ત્રીઃ, વિશોકઃ=રાગરહિતઃ સન્ અદ્રાક્ષીત્ । સ જ્ઞાતપુત્રઃ=ભગવાન્ અશરણાય=શરણં=

મુનિ શ્રી વર્ધમાન સ્વામી અન્ય સાધારણ પ્રાણી ખી જિન્હે સહન ન કર સર્કે એસે કઠોર વચનોંકી ઓર કુછ ખી ધ્યાન ન દેકર સમ્યક્ પ્રકારસે સહન કરને વાલે હુએ—સર્વ પ્રકારસે અચ્છી તરહ સહનશીલ બને । તથા આખ્યાત (કથા—વાર્તા) નૃત્ય ઓર ગીતકી તરફ આશ્ચર્યસે યુક્ત ન હુએ, એવં દણ્ડયુદ્ધ ઓર મુષ્ટિયુદ્ધોંકો દેસકર યા સુનકર રોમાશ્ચિત-આશ્ચર્યચકિત ખી ન બને ॥૯॥

ફિર ખી—‘ગઢિય’ ઇત્યાદિ ।

અક સમય કી વાત હૈ કિ ભગવાન્ મહાવીરને પરસ્પર કામસંબંધી-વાર્તાલાપોંમેં આસક્ત સ્ત્રિયોંકો દેસા તો ખી વે ઊસ ઓરસે વીતરાગ

મુનિશ્રી વર્ધમાન સ્વામી અન્ય સાધારણ પ્રાણી પણ જોને સહન ન કરી શકે એવા કઠોર વચનોની તરફ જરા પણ ધ્યાન ન દઈ સમ્યક્ પ્રકારથી સહન કરવાવાળા તથા—સર્વ પ્રકારથી તેઓ સહનશીલ વૃત્તિના બન્યા આખ્યાન(કથાવાર્તા) નૃત્યો અને ગીતોમાં તેઓને આશ્ચર્ય થયેલ નહીં, તેમ હડયુદ્ધ અને મુષ્ટિયુદ્ધને જોઈ તથા સામાની રોમાશ્ચિત-આશ્ચર્યચકિત બન્યા ન હતા (૯)

૧૧—‘ગઢિય’ ઇત્યાદિ

એક સમયની વાત છે કે ભગવાન મહાવીરે પરસ્પર કામસંબંધી વાર્તા-લાપોમાં સ્ત્રીઓને આસક્ત બનેલી જોવા છતાં પણ એ બારામાં એઓ વીતરાગી

મગ્નતા પૃથિવ્યાવિપદ્વીનિકાપારમ્મ પરિર્મિતઃ, ઇત્યાહ—‘પયાઈ’
 ઇત્યાદિ ।

મૂર્ખ—“પયાઈ સતિ” પદિલેહ, ચિત્તમસાઈ સે અભિધાય ।

પરિવર્જિય વિહરિત્થા, ઇય સંસ્થાય સે મહાવીરે ॥૧૩॥

ધ્યાયા—“પ્તાનિ સન્તિ” પ્રતિષ્ઠેસ્મ્ય ચિત્તમન્તિ સ અમિદ્ધાય ।

પરિકર્જ્ય વિહરતિ સ્મ ઇતિ સમ્પ્રાય સ મહાવીર ॥ ૧૩ ॥

ગીઠા—મ મગ્નતા મહાવીરઃ “પ્તાનિ પૃથિવ્યાદીનિ ચિત્તમન્તિ” સન્તિ ઇતિ
 પ્રતિષ્ઠેસ્મ્ય=ચિત્તાર્ય, તદ્ અમિદ્ધાય સ્વરૂપતો જ્ઞાત્વા, ઇતિ=અર્થ સમ્પ્રાય=મેદ-પ્રમે-
 રામ્યા સર્વજ્ઞતો વિદ્યાય, તદારમ્ય પરિવર્જ્ય વિહરતિ સ્મ ॥૧૩॥

ગ્રીવાનાં પ્રસથાપરસ્થેન મદમુપદર્શ્ય તેષાં પરમ્પરાનુગમનં ભવતીતિ વૌધયિ-
 દુમાહ—‘અદુ ધાવરા’ ઇત્યાદિ ।

મૂર્ખ—અદુ ધાવરા ય તસત્તાપ, તસા ય ધાવરત્તાપ ।

અદુવા સઘ્વજોગિયા સત્તા, કમ્મુણા કપ્પિયા પુઢો થાલા ॥ ૧૪ ॥

મગ્નતાને દ્વારા પૃથિવી આદિ જહ જીવનિકાપોક્ષ આરમ્મ સ્પક્ત
 હુમા, હસી ચિપ્પકો સૂત્રકાર પુન પ્રદર્શિત કરતે હૈ—‘પયાઈ સતિ’ ઇત્યાદિ ।

મગ્નતા મહાવીરને જન પૃથિવી આદિ જહ જીવનિકાપે કે જીવેકે
 આરમ્મકા પરિત્યાગ યહ ચિત્તારકર કિયા કિ—“યે મમ્મસ પૃથિવી આદિક
 સચ્ચિત્ત-સજીવ હૈ” । તથા “જન સચ્ચકા સ્વરૂપ કયા હૈ?” હસે મી અચ્છી
 તરહસે જાનકર અર્થ જનકે મેદ ઓર પ્રમેદોકા સર્વોદારૂપસે મનન કર
 જનકે આરમ્મસે રહિત હો બે પ્રમુ વિહાર કરતે થે ॥૧૪॥

અસ ઓર સ્થાવરરૂપસે જીવેકે મેદોકો સમજાને કે લિયે સૂત્રકાર
 કહત હૈ—“અદુ ધાવરા” ઇત્યાદિ ।

મગ્નતા દ્વારા પૃથ્વી વિજેરે પદ્મનિકાપોક્ષ આરમ્મ તદ્ધવાનાં આવેશે ।
 આ વિષયને સૂત્રકાર પુન પ્રદર્શિત કરે છે—‘પયાઈ સતિ’ ઇત્યાદિ ।

મગ્નતા મહાવીરે આ પૃથ્વી વિજેરે પદ્મનિકાપોક્ષ લેવેના અરમ્મને
 પદ્મિયાજ કે વિચારીને કરેશે કે જે બધા સચિત્ત-સલ્લ છે તથા આ બધાનું
 સ્વરૂપ શું છે ? જેને પણ સારી રીતે જાણી જોના લેદ અને પ્રમેદોને સપૂર્ણ રીતે
 વિચારી જોના આરમ્મથી રહિત અર્થપ્રમુ વિહાર કરવા હતા. (૧૩)

લેવેના તસ અને સ્થાવરરૂપના લેદોને સમજાવવા માટે સૂત્રકાર કહે છે—

અદુ ધાવરા ઇત્યાદિ ।

शाश्वतिकः पारमार्थिक सम्बन्धो ममे'—त्यादिरूपामेकत्वभावनामुपगत इत्यर्थः, तथा पिहितार्चः=अर्चा=क्रोधज्वाला पिहिता=उपशमिता येन स तथाविधः, तथा—अभिज्ञातदर्शनः=सम्यक्त्वभावनाभावितः, अत एव शान्तः सन् निष्क्रान्तः=दीक्षां जग्राह ॥ ११ ॥

किञ्च—'पुढविं च' इत्यादि ।

मूलम्—पुढविं च आउकायं, तेउकायं च वाउकायं च ।

पणगा य बीय-हरियाङ्, तसकायं च सव्वसो णच्चा॥१२॥

छाया—पृथिवीं चापूकायं तेजस्कायं च वायुकाय च ।

पनकाश्च बीजहरितानि त्रसकायं च सर्वशो ज्ञात्वा ॥ सू० १२ ॥

टीका—भगवान् पृथिवीं=पृथिवीकायं, अपूकाय, तेजस्कायं, वायुकायं पन-
कान्=शैवालान्, बीजहरितानि=वनस्पतीन् त्रसकायं च ज्ञात्वा='सर्व एवैते सजी-
वा.' इत्यवबुध्य सर्वशः=सर्वप्रकारेण तदारम्भ परिवर्जयन् विहरति स्मेत्यर्थः॥ १२ ॥

इस मार्गमें कोई और दूसरा सहायक नहीं है, मेरा किसीके भी साथ निरन्तर पारमार्थिक संबध नहीं है" ऐसा विचार कर सदा एकत्व भावनामें तत्पर रहे । क्रोध-कषायकी ज्वालाको प्रभुने उपशमित की । सम्यक्त्वकी भावनासे भावित प्रभुने इसी लिये शान्तचित्त बन दीक्षा अंगीकार की ॥ ११ ॥

और भी—'पुढविं च' इत्यादि ।

भगवान्ने पृथिवीकाय, अपूकाय, तेजस्काय, वायुकाय, शैवाल, और बीज-हरितादिरूप वनस्पतिकाय, एव त्रसकाय, इन छह कायके जीवोंको " ये सब ही जीवसहित हैं " ऐसा जानकर सर्वप्रकारसे उनके आरंभका परित्याग करते हुए ही विहार किया ॥ १२ ॥

आ मार्गमा कोर्छ भीजे सहायक नथी, मारो कोछनी साथे निरन्तर पारमार्थिक संध नथी" आगे विचार करी प्रभु सदा एकत्व भावनामा तत्पर रहेता क्रोधकषायनी ज्वालाएने प्रभुजे समापी दीधी छती सम्यक्त्वनी भावनाथी भावित प्रभुजे आने न माटे शान्तचित्त यनी दीक्षा अंगीकार करेदी (सू० ११)

इरी—'पुढविं च' इत्यादि

भगवाने पृथ्वीकाय, अपूकाय, तेजस्काय, वायुकाय, शैवाल अने भीज हरितादिरूप वनस्पतिकाय अने त्रसकाय, आ छ कायना एवोने "आ यथा एवमहित छे" जेवु नष्टी सर्व प्रकारेथी जेना आरबाने परित्याग करता करता न विहार करेदी (१२)

भगवता पृथिव्यादिपद्मजीविकापारम्भः परिवर्जित', इत्याह—'एषाह' इत्यादि ।

मूत्रम्—“ एषाह सति ” पडिलेह चित्तमताई से अभिप्राय ।

परिवर्जित विहरित्या, इय सखाय से महावीरे ॥१३॥

छाया—“ एतानि सन्ति ” प्रतिषेध्य चित्तमन्ति स अभिप्राय ।

परिक्लृप्तं विहरति स्म इति सख्याय स महावीर ॥ १३ ॥

टीका—म भगवान् महावीरः “एतानि पृथिव्यादीनि चित्तमन्ति” सन्ति इति प्रतिषेध्य=विचार्य, तद् अभिप्राय स्वरूपतो ज्ञात्वा, इति=एवं सख्याय=भेद-प्रम दाम्नां सर्वोक्तो विज्ञाय, तदारम्भं परिक्लृप्तं विहरति स्म ॥१३॥

जीवन्तो असंस्काररूपेण मदमपवर्ग्य तेषां परम्परानुगमनं भवतीति बोधयि दुमाह—‘अबु धावरा’ इत्यादि ।

मूत्रम्—अबु धावरा य तसत्ताय, तसा य धावरत्ताय ।

अबुवासंज्ञजोणिया सत्ता, कम्मुणा कप्पिया पुढो वाला ॥ १४ ॥

भगवानके द्वारा पृथिवी आदि छह जीवनिकार्योंका आरम्भ स्पष्ट हुआ, इसी विषयको सूत्रकार पुनः प्रदर्शित करते हैं—‘एषाह सति’ इत्यादि ।

भगवान् महावीरने इन पृथिवी आदि पद्मजीविकाय के जीविके आरम्भका परित्याग यह विचारकर किया कि—“ये समस्त पृथिवी आदिक सन्ति—मजीव हैं” । तथा “इन सबका स्वरूप क्या है?” इसे भी अच्छी तरहसे जानकर एवं इनके मेव और प्रमेदोंका सर्वोदाहरणसे मनन कर इनके आरम्भसे रहित हो वे प्रभु विहार करते थे ॥१३॥

अस और स्थावररूपसे जीविके मेदोंको समझाने के लिये सूत्रकार कहते हैं—“अबु धावरा” इत्यादि ।

भगवान द्वारा पृथ्वी विज्ञेय पद्मजीविकायोनो आरम्भ तन्मनामा आवेत्तो आ विषयने सूत्रकार पुनः प्रदर्शित करे छे— एषाह सति इत्यादि ।

भगवान महावीर आ पृथ्वी विज्ञेय पद्मजीविकायना लोकेना आरम्भने परित्याग जे विचारने करेहो हे जे लया सन्निव-सलप छे । तथा आ लयानु स्वरूप हु छे । जेने पद्म सारी सीते लोकी जेना सेह अने प्रसेदोने स पद्म रीते विचारि जेना आरम्भो रहित भव प्रभु विहार करवा कवा (१३)

लोकेना अस अने स्थावररूपना सेदोने समझाववा भाँ सूत्रकार कहछे— अबु धावरा इत्यादि ।

છાયા—અથ સ્થાવરાશ્ચ ત્રસતયા, ત્રસાશ્ચ સ્થાવરતયા ।

અથવા સર્વયોનિકાઃ સત્ત્વાઃ કર્મણા કલ્પિતાઃ પૃથગ્ વાલાઃ ॥૧૪॥

ટીકા—અથ=અનન્તરં સ્થાવરાઃ=પૃથિવ્યપ્તેજોવાયુવનસ્પતયઃ ત્રસતયા=કર્મ-પ્રભાવાદ્ દ્વીન્દ્રિયાદિરૂપેણ જાયન્તે, ત્રસાશ્ચ=ત્રસજીવા દ્વીન્દ્રિયાદયશ્ચ સ્થાવરતયા=પૃથિવ્યાદ્યેકેન્દ્રિયરૂપેણ પુનરુત્પદ્યન્તે, અથવા સર્વયોનિકાઃ=સર્વયોનય=ઉત્પત્તિ-સ્થાનાનિ યેવા તે સર્વયોનિકાઃ=ચતુર્ગતિગન્તારઃ, સત્ત્વાઃ=જીવાઃ, વાલાઃ=મૃદાઃ, કર્મણા=સ્વોપાત્તેનાઘૃતિધર્મકર્મણા પૃથક્=પૃથક્ત્વેન-સર્વયોનિગામિત્વેન ચ કલ્પિતાઃ=વ્યવસ્થિતા ઇતિ । તથા ચોક્તમ્—

પૃથિવી, અપ્, તેજ, વાયુ ઓર વનસ્પતિ, યે સવ સ્થાવરકાય-એકેન્દ્રિય જીવ હૈ । યે કર્મકે પ્રભાવસે દ્વીન્દ્રિયાદિક રૂપસે પરભવમેં ઉત્પન્ન હો જાતે હૈ । દ્વીન્દ્રિય, તેજન્દ્રિય, ચોજન્દ્રિય, ઓર પચેન્દ્રિય જીવ, યે ત્રસ હૈ, ક્યોં કિ હનકે ત્રસ નામકર્મકા ઉદય રહતા હૈ । યે ત્રસ જીવ મી કર્મકી વિચિત્રતાસે સ્થાવર-પૃથિવી આદિક એકેન્દ્રિયરૂપસે દૂસરે ભવમેં ઉપન્ન હો જાતે હૈ । અથવા-સમસ્ત યોનિયાં હૈ ઉત્પત્તિસ્થાન જિન્હોંકી એસે સર્વયોનિક-ચતુર્ગતિમેં ભ્રમણ કરનેવાલે-જીવ અજ્ઞાનસે આવૃત વન અપનેર દ્વારા ઉપાત્ત-ગ્રહણ કિયે ગયે અઘટવિધ કર્મકે પ્રભાવસે ભિન્નર રૂપમેં સર્વ યોનિયોંમેં જાને વાલે હોતે હૈ । તાત્પર્ય યહ કિ-હરેક ભિન્નર યોનિમેં રહા હુઆ જીવ કર્મકે ઉદયસે પરભવમેં દૂસરી યોનિમેં જન્મ ધારણ કર સકતા હૈ । એસા નહી હૈ કિ વહ એક હી યોનિમેં નિયમિતરૂપસે જન્મ લેતા રહે । સો હી કહા હૈ—

પૃથ્વી, અપ્, તેજ, વાયુ અને વનસ્પતિ, આ બધા સ્થાવરકાય એકેન્દ્રિય જીવ છે એ કર્મના પ્રભાવથી દ્વીન્દ્રિયાદિક રૂપથી પરભવમા ઉત્પન્ન થઈ બીજા છે બેઈન્દ્રિય, ત્રણઈન્દ્રિય, ચાર ઈન્દ્રિય, પાંચ ઈન્દ્રિય જીવ એ ત્રસ છે, કેમકે એમને ત્રસનામકર્મનો ઉદય રહે છે આ ત્રસ જીવ પણ કર્મની વિચિત્રતાથી પૃથ્વી આદિ સ્થાવર-એકેન્દ્રિય-રૂપથી બીજા ભવમા ઉત્પન્ન થાય છે અથવા-સમસ્ત યોનીઓ જેમનું ઉત્પત્તિસ્થાન છે એવા સર્વયોનિક-ચાર ગતિમા ભ્રમણ કરવાવાળા જીવ અજ્ઞાનથી આવૃત બની પોતપોતાના દ્વારા ઉપાત્ત-ગ્રહણ કરવામા આવેલ અઘટવિધ કર્મના પ્રભાવથી બુદ્ધા બુદ્ધા રૂપમા સર્વ યોનીયોમા બવાવાળા હોય છે તાત્પર્ય એ છે કે-દરેક યોનીયોમા રહેલ જીવ કર્મના ઉદયથી પરભવમા બીજા યોનિમા જન્મ ધારણ કરી શકે છે એવું નથી કે એક જ યોનિમા નિયમિત રૂપથી તે જન્મ લેતો રહે એ જ કહ્યું છે—

“रक्षमूर्मिर्न सा काचिच्छुद्धा जगति विद्यते ।

विचित्रैः कर्मणेष्वैर्यत्र सत्त्वेन नादितम्” ॥१॥ इति ॥ १४ ॥

किञ्च—‘मगधं’ इत्यादि ।

मृष्य—भगव च एवमग्रेसिं, सोषहिष इ लुप्यई चाले ॥

कम्म च सत्त्वसा नच्छा, त पडियाइक्खे पावग भगव ॥१५॥

जया—भगवांमैवमनैपीत् सोपधिका एष लुप्यत चालः ।

कर्म च सर्वज्ञो ज्ञात्वा तत् प्रत्याख्याति पापकं मगधान् ॥ १५ ॥

टीका—मगधान् मगधीरं धीवर्धमानस्वामी एवं=वक्ष्यमाणप्रकारेण अन्यै पीत्=मवधीत् वाम.=मोहमुपगत, सापधिका=उपधिना सह वर्तत इति सोपधिका=द्रव्यमात्रोपधियुक्तं सन् लुप्यत एष=छिद्यते मिद्यत एष, कर्मप्रमाणात् क्लेशमन्त्र-मत्स्येवेत्यर्थः । तस्मात् मगधान् कर्म, सर्वमकारेण ज्ञात्वा तत्=कर्म, पापकं च=कर्मनिबन्धन सावयव्यापार च प्रत्याख्याति=निराकृतवान् ॥ १५ ॥

“रक्षमूर्मिर्न सा काचिच्छुद्धा जगति विद्यते ।

विचित्रैः कर्मणेष्वैर्यत्र सत्त्वेन नादितम्” ॥ १ ॥

जगतमें ऐसी कोईसी मूर्मि शुद्ध नहीं यही कि जहाँ पर कर्मकरी विचित्र रचनासे युक्त इस जीवने अपना मादक न किया हो ॥ १४॥

फिर भी—मगध च’ इत्यादि ।

‘मगधान् भी वर्धमान स्वामीने यह बात जान ली कि जो अज्ञानी प्राणी द्रव्य और माध उपधिसे युक्त है, वे ही कर्मके प्रभाव-उदयसे छेदे और मेदे जाते हैं, रात दिन अनेक क्लेशोंका अनुभव करते ही रहते हैं । इसी लिय प्रभुने कर्मका यह विचित्र प्रभाव सर्वप्रकारसे

रक्षमूर्मिर्न सा काचिच्छुद्धा जगति विद्यते ।

विचित्रैः कर्मणेष्वैर्यत्र सत्त्वेन नादितम्” ॥१॥

जगतमा जेना केह पक्ष मूर्मि शुद्ध नहीं यही के अर्था कर्मनी विचित्र स्थानही शुद्ध आ छेदे पोतानु नादक न कर्मु’ केअ. (१४)

इति—“मगध च” इत्यादि ।

मगधान् भी वर्धमान स्वामीने आ बात अखेली के के अज्ञानी प्राणी द्रव्य अने माध उपधिसां युक्त छे ते कर्मना प्रभाव-उदयभी छेदाय अने वेदाय छे. रात दिवस अनेक क्लेशोंने अनुभव करता अ रहै छे आ माटे प्रभुने

કિંચ—‘દુવિહ’ ઇત્યાદિ ।

મૂલમ—દુવિહં સમિચ્ચ મેહાવી, કિરિયામક્કયાયઽણેલિસં નાણી ।

આયાણસોયમઙ્ગાયસોયં, જોગં ચ સઠ્ઠવસો ણચ્ચા ॥૧૬॥

ઝાયા—દ્વિવિધ સમેત્ય મેધાવી ક્રિયામાખ્યાતવાન્ અનીદર્શો જ્ઞાની ।

આદાનસ્રોતઃ અતિપાતસ્રોતઃ યોગં ચ સર્વશો જ્ઞાત્વા ॥ ૧૬ ॥

ટીકા—મેધાવી=હેયોપાદેયવિવેકવાન્, જ્ઞાની=જ્ઞાનચતુષ્ટયસપત્નો ભગવાન્
દ્વિવિધ ઐર્યાપથિક-સાપરાયિકભેદાદ્ દ્વિપ્રકારકં કર્મ સમેત્ય=અવબુદ્ધ્ય, તથા-
આદાનસ્રોતઃ=આદીયતે ગૃણતે વ્યયતે કર્માનેનેત્યાદાન દુષ્પણદ્વિતમિન્દ્રિય, તદ્રૂપ
સ્રોતઃ=કર્માગમનમાર્ગઃ મિથ્યાત્વાદિરૂપસ્તત્, અતિપાતસ્રોતઃ=પ્રાણાતિપાતાદિરૂપમ્ ।

જાનકર उस कर्मका और कर्मके कारणभूत पापजनक सावय व्यापारका
मदाके लिये त्रियोग और त्रिकरणसे प्रत्याख्यान किया ॥१५॥

और भी—‘दुविह’ इत्यादि ।

હેય ઔર ઉપાદેયકે જ્ઞાનસે યુક્ત, તથા મતિ, શ્રુત આદિ ચાર જ્ઞાન-
ધારી ભગવાન શ્રીમહાવીર સ્વામીને ઐર્યાપથિક ઔર સાંપરાયિકકે ભેદસે
કર્માર્થી દ્વિવિધતા સ્વય જાનકર, તથા આદાનસ્રોતરૂપ મિથ્યાત્વ આદિ,
અતિપાતસ્રોતરૂપ પ્રાણાતિપાતાદિ, ણ્ચ અશુભ મન વચન ઔર કાચકો
“ મં રાય સર્વ પ્રકારસે કર્મવન્ધકે કારણ હૈ ” એસા જાનકર સયમકા
અનુષ્ઠાન-પાલન કરનેરૂપ ક્રિયાકા કથન કિયા, અર્થાત્ આચરણ કિયા ।
જિનિગો યારા કર્મોંકા વધન હો વહ આદાન હૈ, ઔર વહ અશુભરૂપસે

કર્મના એ વિચિત્ર પ્રભાવને જાણી એ કર્મોંનુ અને કર્મના કારણભૂત પાપજનક
પ્રાપ્તિ આપારનું સહાને માટે ત્રિયોગ અને ત્રિરણથી પ્રત્યાખ્યાન કરેલ (૧૫)

કરી- ‘ દુવિહ ’ ઇત્યાદિ

જિન અને ઉપાદેયના જ્ઞાનથી યુક્ત તથા મતિ, શ્રુત આદિ ચાર
જ્ઞાનધારી ભગવાન શ્રી મહાવીર સ્વામીએ ઐર્યાપથિક અને સાંપરાયિકના ભેદથી
કર્મોંની વિવિધતા રાખે જાણી, અને આદાનસ્રોતરૂપ મિથ્યાત્વ વગેરે, અતિપા-
તજ્ઞાનરૂપ પ્રાણાતિપાતાદિ, એમ જ અશુભ મન વચન અને કાયાને “ એ બધા
જયે પ્રકારથી કર્મોં વન્ધનના કારણ છે ” આવું જાણી સયમનું અનુષ્ઠાન-પાલન
કરવારૂપ ક્રિયાનું કરન એટલે આચરણ કર્યું જેનાથી કર્મોંનું બંધન થાય છે તે
આદાન છે, અને તે અશુભરૂપથી પ્રવૃત્ત બનેલ ઇન્દ્રિયોરૂપ હોય છે કર્મોંના આવવાના

योगं=दुष्प्रवृत्तिं मनोवाकाय सर्वत्र=सर्वप्रकारै र्कर्मनन्धाय ब्रह्मा अनीहणीम्=
उक्तप्रक्रियां=सपमानुष्ठानरूपाम् आकृष्यात्तवान्=आचरितवानित्यर्थ ॥१६॥

किञ्च—‘अद्वयस्त्विय’ इत्यादि ।

मूकम्—अद्वयस्त्विय अणाउट्टि, सयमस्तेसि अकरणयाप ।

जस्तिस्थीओ परिज्ञाया सव्वकम्मावहा उ से अदक्खू॥१७॥

छाया—भविष्यतिष्ठाम् अनाकुट्टि स्वयमन्यपाम् अकरणतया ।

यस्य स्त्रिय परिज्ञाताः सर्वकर्मावहा तु साऽब्रवीत् ॥१७॥

टीका—यो भगवान् भविष्यतिष्ठाम्=भविष्येत्स्यः=भाषातिपातम्याऽतिक्रान्तां
प्राप्नुयमर्दनवर्जिताम्, अनाकुट्टिम्=आकुट्टिर्हि सा तदन्याऽनाकुट्टिः=अहिंसा, तामनु
सृत्य, स्वयमन्यपां च अकरणतया=स्वतः परमं च हिंसापरिवर्जनेन प्रवृत्तः, तया-
यस्य भगवतः स्त्रियः सर्वकर्मावहा=सर्वविषयकर्मबन्धमूला इति परिज्ञाताः=ह-
पक्षिणा ज्ञाताः प्रत्याख्यान-परिज्ञाया परित्यक्ता भवन्ति, स भगवान् ब्रवीत्=
पद्यावस्थित संसारस्वभाव परमार्थतत्त्वं ज्ञातवान् ॥१७॥

प्रवर्तित की गई इन्द्रियांरूप होता है । कर्मोंके आनेके मार्गका नाम
जोत है । वह मिथ्यात्व आदि रूप है । आत्मानरूप जोतका नाम
आदानजोत है ॥१६॥

और ‘मी’—‘अद्वयस्त्विय’ इत्यादि ।

प्राणातिपातरूप पापोंसे रहित होनेसे शुद्ध ऐसी अहिंसाका भग
वानने स्वयं अनुसरण करके दूसरोंसे मी हिंसादिक कार्योंका परिच-
र्जन कराया । भगवानने सर्व प्रकारसे कर्मबन्धका मूल कारण स्त्रीधर्म
का, ह-परिज्ञासे जानकर प्रत्याख्यान-परिज्ञासे परित्याग किया, और
पद्यावस्थित संसारका स्वभाव मी जानलिया ॥ १७ ॥

भार्जनु नाम जोत छ ते मिथ्यात्व आदि रूप छ आदानरूप जोतनु नाम
आदानजोत छ (१६)

हरी— अद्वयस्त्विय इत्यादि

प्राणातिपातरूप पापोंकी रहित होवाकी शुद्ध जेवां अदि साने भगवाने स्वयं
अनुसरण करी, मीजोकोने पद्य कि सादिक कार्योंका त्याग करान्ये । भगवाने सर्व
प्रकारकी कर्मबन्ध करण करी वर्जने उपरिज्ञाकी व्यपुी प्रत्याख्यान-परिज्ञाकी
परित्याग करी पद्यावस्थित संसारका स्वभावने व्यपुी लीया (१७)

ભગવતો મૂલગુણાનભિધાયોત્તરગુણાનાહ—‘અહાકહ’ ઇત્યાદિ ।

મૂલમ—અહાકહં ન સે સેવે, સવ્વસો કમ્મુણો વંધં અદક્કસૂ ।

જં કિંચિ પાવગં ભગવ, તં અકુવ્વં વિચયં મુંજિત્થા ॥૧૮॥

છાયા—યથાકૃતં ન સ સેવતે સર્વશઃ કર્મણો વન્ધમદ્રાક્ષીત્ ।

યત્ કિંચિત્પાપક મગવાંસ્તદકુર્વન્ વિકૃતમશુક્લ ॥ ૧૮ ॥

ટીકા—યથાકૃતમ્=યથા યેન પ્રકારેણ પૃષ્ઠાષ્પૃષ્ઠા વા સાધુમુદ્દિશ્ય કૃતં યથા-કૃતમ્ અધઃકર્માદિકદોષદૂષિતં સર્વશઃ=સર્વપ્રકારેણ, કર્મણા=જ્ઞાનાવરણીયાદિ-નાઽઽત્મનો વન્ધમદ્રાક્ષીત્=દષ્ટવાન્, તસ્માત્ સ અધઃકર્માદિદોષદૂષિતમાહાર ન સેવતે સ્મ । અન્યદપ્પેવમ્ભૂત ન સેવતે સ્મેત્યાહ—‘યત્ કિંચિત્’ ઇત્યાદિ । યત્ કિંચિત્’ પાપક=પાપકારણ, સદોષમન્નાદિકં, તદ્ અકુર્વન્=અસ્વીકુર્વન્ અગૃહ્ણન્ વિકૃત=પ્રાસુકમ્ અશુક્લ=સેવતે સ્મ ॥ ૧૮ ॥

કિંચ—‘ળો સેવહ’ ઇત્યાદિ ।

ભગવાન કે મૂલગુણોંકા કથન કર અવ સૂત્રકાર ઉત્તર ગુણોંકા કથન કરતે હૈ—‘અહાકહં’ ઇત્યાદિ ।

પૂછકર અથવા નહીં પૂછકર સાધુકે ઉદ્દેશ્યસે જો કિયા ગયા હો ઉસકા નામ યથાકૃત હૈ । યથાકૃત આહારાદિક અધઃકર્માદિદોષોંસે દૂષિત રહતા હૈ । ભગવાનને ઇસ યથાકૃત-અધઃકર્માદિદોષદૂષિત આહારાદિકા સેવન નહીં કિયા, કારણ કિ “ઇસ પ્રકારસે આહારાદિકે સેવનસે આત્મા કર્મોંકા ઉપાર્જન કરતી હૈ, ઓર ઉનકા બધ કરતી હૈ” એસા ભગવાનને અપને જ્ઞાનચક્ષુસે દેખા । ઇસો પ્રકાર ઓર મી સદોષ પાપકારણ અન્ન આદિ વસ્તુ ગ્રહણ કરનેકા ભગવાનને ત્યાગ કર દિયા । કેવલ બે નિર્દોષ પ્રાસુક હી આહારાદિ લેતે થે ॥૧૮॥

ભગવાનના મૂળગુણોંકા કથન કરી હવે સૂત્રકાર ઉત્તરગુણોંકા કથન કરે છે— ‘અહાકહ’ ઇત્યાદિ

પૂછીને અથવા ન પૂછીને સાધુના ઉદ્દેશથી જે કરાયેલ છે તે યથાકૃત આહારાદિક છે, જે અધ કર્માદિ દોષોથી દૂષિત રહે છે ભગવાને આ યથાકૃત અધ કર્માદિદોષદૂષિત આહારાદિકનું સેવન કરેલ નથી, કારણ કે “આવા પ્રકારના આહારાદિકના સેવનથી આત્મા કર્મોંકા ઉપાર્જન કરે છે, અને તેના અધ પણ કરે છે” એવું ભગવાને પોતાના જ્ઞાનચક્ષુથી જોયું આ રીતના ખીન્ન પણ સદોષ પાપકારણવાળા અન્ન આદિ વસ્તુ ગ્રહણ કરવાનો ભગવાને ત્યાગ કર્યો. તેઓ ફક્ત નિર્દોષ પ્રાસુક જ આહારાદિક લેતા હતા (૧૮)

मृगम्—णो सेवह य परवस्थ, परपाण वि से ण भुजित्था।

परिवज्जियाण ओमाण, गच्छइ सखडिमसरणाय ॥१९॥

अथा—नो सेवते च परवत्तं, परपात्रेऽपि स नाशुक्क।

परिवर्ज्यापमानं गच्छति संखडिमसरणाय ॥ १९ ॥

गीता—स=भगवान् परवस्थे न सेवते=न श्रद्धाति, अपि च परपात्रेऽपि नाशुक्क, अपमानं परिवर्ज्य=अगणयित्वा अक्षरणाय=संयमाराधनार्थमधीनमनस्कः। सन् संखडि=संस्तभ्यन्ते उपमर्द्यन्ते प्राप्तिनो यत्र तां संखडिम्=आहारपाकस्थानं मच्छति=भोगमस्तरयः। अत्र सम्बडि=शब्दज्ञातिभोजनरूपोऽर्थो न श्रद्धते, तस्यां शास्त्रे निषिद्धत्वात् ॥ १९ ॥

किञ्च—‘मायण्णे’ इत्यादि।

मृगम्—मायण्णे असणपाणस्स, नाणुगिद्व रसेसु अपडिन्ने।

अच्छिपि नो पमाज्जिआ, नो वि य कडूयण मुणीगाय॥२०॥

अथा—मात्राद्विज्ञानपानस्य, नाणुगद्वो रसेषु भवतिष्ठः।

अक्षिपी अपि नो पमार्जयति, नापि च कडूयते मुनिर्गात्रिम् ॥ २ ॥

और भी—‘णो सेवह’ इत्यादि।

भगवान्न वृसरौका वत्त अपन उपयोगमें नहीं लिया, भार न वृसरौके पात्रमें भोजन ही किया। अपने अपमानका क्याल न कर, स्वयं भगवान्न सयम आराधनाक निमित्त अधीनमन होकर आहारके पाकस्थान (गृहस्थोंके यहाँ आहार बनानेके भोजनघर) में जाते थे। भगवान्न यह क्याल नहीं किया कि आहार छेनेके लिये जन्मेमें मेरा अपमान है। ऐसा करनेसे ही संयमकी अच्छी तरहसे पाखना होती है, ऐसी भाधनासे वे स्वयं आहार छेने जाया करते थे ॥ १० ॥

हरी— जो सेवह भुजित्ति

भगवान्ने जीवज्जियाणा वत्ताने पोताना उपभोगमां नथी लीधा। तेमज्ज भवन्ता पात्रमा लोचनं पणु कीणु नथी। पोताना अपमानणे ज्जात कथं विना भगवान्ने पोते सयम आराधनाया निमित्त अधीनमन भवन्ति गृहस्थाने त्या तेमन्ता लोचनजुडे जत्ता कत्ता आमां भगवान्ने कोवे ज्जात नथी कथे डे आहार लेवा ज्जाभा भाई अपमान थाय छे आणुं करवावीज नवमनी नारी रीते पडना थाय छे कोवी भावनाधीन तेज्जे वड्ढे आहार लेवा जत्ता कत्ता। (१६)

ટીકા—અશનપાનસ્ય માત્રજ્ઞઃ=પરિમાણજ્ઞઃ । તથા રસેષુ=મધુરાદિપુ નાનુગૃહઃ
=અનાસક્તઃ, ગૃહસ્થાવસ્થાયામપિ રસગૃદ્ધિરદ્વિત્વાદિતિ ભાવઃ, અત એવ અપ્રતિજ્ઞઃ
રસવિશેષપ્રતિજ્ઞાવર્જિતઃ, ‘‘ અથ મયા મોદકા એવ ગ્રાહ્યાઃ ’’ ઇત્યાદિરૂપા પ્રતિજ્ઞા
ભગવતો નાસીત્, કિન્તુ શીતલપર્યુષિતપિષ્ઠનીરસપુરાણકુલત્યાદિકે સપ્રતિજ્ઞ એવ ।
તથા—અક્ષિણી અપિ રજઃકળકાદિનિસ્સારણાય ન પ્રમાર્જયતિ, અપિ ચ મુનિઃ=સર્વ-
જીવસમભાવો ભગવાન્ ગાત્ર ન કળ્પ્યતે દશમશકાદિદંશનેઽપિ હસ્તાદિના શરીર-
સઘર્ષણં ન કૃતવાનિત્યર્થઃ ॥ ૨૦ ॥

ફિર ખી—‘માયળ્ણે’ ઇત્યાદિ ।

‘ભગવાન સદા અશનાદિકકા સેવન માત્રાનુસાર હી કિયા કરતે
થે, કયોં કિ વે સ્વય ‘ઇન્હેં કિતની માત્રામે લેના ચાહિયે’ ઇસ વિષયસે
પરિચિત થે । તથા પ્રસુ કખી ખી કિસી ખી રસમેં ગૃદ્ધ નહીં વને । ગૃહસ્થ
અવસ્થામે ખી યે રસગૃદ્ધિસે રહિત રહે, ઇસી લિયે ‘ભગવાન્ કિસી રસવિ
શેષકે લેનેકી પ્રતિજ્ઞા અગોકૃત નહી કી । “ આજ મેં મોદક હી
ખાઝુંગા ” ઇત્યાદિ પ્રકારકી પ્રતિજ્ઞા ભગવાનને કખી ખી ધારણ નહીં
કી । શીતલ, પર્યુષિત પિષ્ઠ ઓર નીરસ પુરાની કુલથી આદિકે આહાર
લેનેમેં તો વે નિયમયુક્ત હી રહે । ભગવાનને અપની આંઘ્રોમે ગિરે હુએ
રજકે કળોંકો નિકાલનેકે નિમિત્ત આંઘ્રોકો કખી કહીં ન મસલતે ઓર
ન દશમશકાદિકકે કાટને પર શરીરકો યુજાતે થે ॥ ૨૦ ॥

ફરી—‘ માયળ્ણે ’ ઇત્યાદિ

ભગવાન સદા અશનાદિકકુ સેવન માત્રાનુસાર જ કરતા હતા, કેમ કે
તેઓ સ્વય ‘ એને કેટલી માત્રાથી લેવા બેઠએ ’ તેનાથી પરિચિત હતા, તથા
પ્રભુ ક્યારેય પણ કોઈ પણ રસમા ગૃદ્ધિવાળા થયા નથી ગૃહસ્થ અવસ્થામા
પણ તેઓ રસગૃદ્ધિથી અલિપ્ત રહ્યા હતા આ કારણે ભગવાને કદી કોઈ રસ
વિશેષને લેવાની પ્રતિજ્ઞા અગોકૃત કરેલ ન હતી “ આજ હું લાડુ જ
ખાઈશ ” ઇત્યાદિ પ્રકારની પ્રતિજ્ઞા ભગવાને કદિ પણ ધારણ કરેલ ન હતી
શીતળ, પર્યુષિત-પિંડ અને બુના કળથી વગેરેનો આહાર લેવામા તો તેઓ
પ્રતિજ્ઞાવાળા જ રહ્યા, ભગવાને પોતાની આખોમા પડેલા રજકણોને બહાર
કાઢવા નિમિત્તે પણ આખોને કદિ મસળી ન હતી, તેમ ડાસ, મચ્છરના કર
ડવાથી શરીરને કદિ પણ ખજવાળેલ નથી (૨૦)

अन्य—‘अप्यं तिरियं’ इत्यादि ।

मूक्य—अप्यं तिरियं पेहाय, अप्यं पिट्टओय पेहाय ।

अप्यं तुङ्गय पडिभासी, पथपेही चरे जयमाणे ॥२१॥

अप्यं—अप्यं तिरियं प्रेक्षते, अप्यं पृष्ठतः प्रेक्षते ।

अन्यमुक्तः प्रतिभापी, पथिप्रेक्षी चरति यतमानः ॥ २१ ॥

टीका—मगवान् मार्गे गच्छन् तिर्यक्=तिरश्चीनम् अप्यं प्रेक्षते=न पश्यति स्म । अत्राप्युच्यते निषेधार्थकः । तथा पृष्ठतोऽपि अप्यं प्रेक्षते । उक्तः=कनापि पृष्ठः सन् अप्यं प्रतिभापी-न प्रवीति स्म, किन्तु पथिप्रेक्षी=पन्थान=स्वधरीर परिमितां पुरोर्ध्विनीं भूमिं प्रेक्षितुं=द्रष्टुं क्षीलमस्थति स तथोक्तः यतमानः=यतनां कर्मानः सन् चरति=विहरति स्म ॥ २१ ॥

पुनश्च—‘सिसिरसि’ इत्यादि ।

मूक्य—सिसिरसि अरुपडिवन्न, त वोसिञ्ज वरथमणगारे ।

पसारित्तु बाहु परक्कमे, नो अवलंघियाण खधंसि ॥२२॥

अप्यं—विहारेऽप्यप्रतिपन्न, स्तव्यं व्युत्सृज्य वल्लभनगारः ।

प्रसार्य बाहु पराक्रमते, नो अवलम्ब्य स्थन्वे ॥ २२ ॥

और भी—‘अप्यं तिरियं’ इत्यादि ।

भगवानने मार्गमें बिहार करते समय न तिरछा देखते और न पीछे ही देखते, किन्तु अपने शरीरप्रमाण भूमिपर ही सामने निरीक्षण करते । बिहारमें किसीके पूछने पर भी प्रभु किसीसे कुछ नहीं बोलते थे, और यतनाचारपूर्वक ही प्रभु बिहार करते थे ॥ २१ ॥

फिर भी—‘सिसिरसि’ इत्यादि ।

हरी पद्य—“अप्यं तिरियं” इत्यादि ।

भगवान् मार्ग में बिहार करती वजते आहु अप्यं जेता न दत्ता, तेम पाछा पद्य हरीने जेता न दत्ता, पद्य पोताना शरीरप्रमाण भूमिने न जेधने जावता । बिहारमें कोधना पूछना उपर पद्य प्रभु कोधनी जेवता न दत्ता जेने अत्यन्तपूर्वक प्रभु बिहार करती दत्ता । (२१)

हरी—सिसिरसि इत्यादि ।

ટીકા—અશનપાનસ્ય માત્રજ્ઞઃ=પરિમાણજ્ઞઃ । તથા રસેષુ=મધુરાદિષુ નાનુગૃહઃ =અનાસક્તઃ, ગૃહસ્થાવસ્થાયામપિ રમગૃદ્ધિરદ્વિતત્વાદિતિ ભાવઃ, અત એવ અપ્રતિજ્ઞઃ રસવિશેષપ્રતિજ્ઞાવર્જિતઃ, ‘અથ મયા મોદકા એવ ગ્રાહ્યાઃ’ ઇત્યાદિરૂપા પ્રતિજ્ઞા ભગવતો નાસીત્, કિન્તુ શીતલપર્યુષિતપિણ્ડનીરસપુરાણકુલત્યાદિકે સપ્રતિજ્ઞ એવ । તથા—અક્ષિણી અપિ રજઃકળકાદિનિસ્સારણાય ન પ્રમાર્જયતિ, અપિ ચ મુનિઃ=સર્વ-જીવસમભાવો ભગવાન્ ગાત્ર ન રુઢ્યયતે દશમશકાદિદંશનેઽપિ હસ્તાદિના શરીર-સઘર્ષણં ન કૃતવાનિત્યર્થઃ ॥ ૨૦ ॥

ફિર ‘મી’—‘માયણે’ ઇત્યાદિ ।

‘ભગવાન સદા અશનાદિકકા સેવન માત્રાનુસાર હી ક્રિયા કરતે થે, ક્યોં કિ વે સ્વય ‘ઈન્હેં કિનની માત્રામેં લેના ચાહિયે’ ઇસ વિષયસે પરિચિત થે । તથા પ્રસુ કમી ‘મી કિસી ‘મી રસમે ગૃદ્ધ નહીં વને । ગૃહસ્થ અવસ્થામે ‘મી યે રસગૃદ્ધિસે રહિત રહે, ઇસી લિયે ‘ભગવાન્ કિસી રસવિ શેષકે લેનેકી પ્રતિજ્ઞા અગોકૃત નહી કી । “આજ મેં મોદક હી ખાઝુંગા” ઇત્યાદિ પ્રકારકી પ્રતિજ્ઞા ભગવાનને કમી ‘મી ધારણ નહીં કી । શીતલ, પર્યુષિત પિણ્ડ ઓર નીરસ પુરાની કુલથી આદિકે આહાર લેનેમેં તો વે નિયમયુક્ત હી રહે । ભગવાનને અપની આંઘ્રોમે ગિરે હુણ રજકે કળોંકો નિકાલનેકે નિમિત્ત આંઘ્રોકો કમી કહીં ન મસલતે ઓર ન દશમશકાદિકકે કાટને પર શરીરકો યજાતે થે ॥ ૨૦ ॥

ફરી—‘માયણે’ ઇત્યાદિ

ભગવાન સદા અશનાદિકકુ સેવન માત્રાનુસાર જ કરતા હતા, કેમ કે તેઓ સ્વય ‘એને કેટલી માત્રાથી લેવા બેઠાએ’ તેનાથી પરિચિત હતા, તથા પ્રસુ ક્યારેય પણ કોઈ પણ રસમા ગૃદ્ધિવાળા થયા નથી । ગૃહસ્થ અવસ્થામા પણ તેઓ રમગૃદ્ધિથી અલિપ્ત રહ્યા હતા આ કારણે ભગવાને કદી કોઈ રમ વિશેષને લેવાની પ્રતિજ્ઞા અગોકૃત કરેલ ન હતી “આજ હું લાડુ જ ખાઈશ” ઇત્યાદિ પ્રકારની પ્રતિજ્ઞા ભગવાને કદિ પણ ધારણ કરેલ ન હતી । શીતળ, પર્યુષિત-પિંડ અને બુના કળથી વગેરેનો આહાર લેવામા તો તેઓ પ્રતિજ્ઞાવાળા જ રહ્યા, ભગવાને પોતાની આખોમા પડેલા રજકણોને ખઠાર કાઢવા નિમિત્તે પણ આખોને કદિ મસળી ન હતી, તેમ કામ, મચ્છન્ના કર ડવાથી શરીરને કદિ પણ ખજવાળેલ નથી (૨૦)

अन्यत्र—‘अप्य तिरियं’ इत्यादि ।

मूकम्—अप्य तिरिय पेहाय, अप्यं पिट्टओय पेहाय ।

अप्य दुष्टं पडिभासी, पथपेही चरे जयमाणे ॥२१॥

छाया—अप्य तिरियं प्रेसते, अल्पं पृष्ठतः प्रेसते ।

अन्यमुक्तः प्रतिभापी, पथिप्रेक्षी चरति यतमानः ॥ २१ ॥

टीका—मगवान् मार्गे गच्छन् तिरियं=तिरस्त्रीनम् अल्पं प्रसते=न पश्यति स्म । अत्रत्यशब्दो निपेक्षार्थकः । तथा पृष्ठतोऽपि अल्पं प्रेसते । उक्तः=कनापि पृष्ठः सन् अप्य प्रतिभापी=न ग्रहीति स्म, किन्तु पथिप्रेक्षी=पन्थान=स्वच्छरीर परिमिता पुरोवर्तिनीं भूमिं प्रेक्षितुं=द्रष्टुं क्षीलमस्येति स उच्यते यतमानः=यतनां कुर्वाणः सन् चरति=बिहरति स्म ॥ २१ ॥

पुनश्च—‘सिसिरसि’ इत्यादि ।

मूकम्—सिसिरसि अरुपडिघट्ट, त वोसिज्ज वस्थमणगारे ।

पसारित्तु वाहु परक्कमे, नो अवलवियाण स्वर्धमि ॥२२॥

छाया—बिहारेऽप्यप्रतिपन्न,—स्तुष्टु व्युत्सृज्य बलमनगारः ।

पसार्य वाहु पराक्रमते, नो मनसस्य स्फुट्ये ॥ २२ ॥

और मी—‘अप्य तिरियं’ इत्यादि ।

‘मगवाने मार्गमें बिहार करते समय न तिरछा देखते और न पीछे ही देखते, किन्तु अपने शरीरप्रमाण भूमिका ही सामने निरीक्षण करते । बिहारमें किसीके पृष्ठने पर मी प्रभु किसीसे कुछ नहीं बोलते थे, और पतनाचारपूर्वक ही प्रभु बिहार करते थे ॥ २१ ॥

फिर मी—‘सिसिरसि’ इत्यादि ।

हरी पथ—“ अप्य तिरियं ” इत्यादि.

मगवान् मार्गमा बिहार करती वधते आहु मगधु जेता न दत्ता, तेम पछण पथु हरीने जेता न दत्ता, पथु पित्ताना सरीरप्रभायु भूमिने न जेधने जालता बिहारमा कोधना पूछना उपर पथु प्रभु कोधधी ओलता न दत्ता जने अन्याचारपूर्वक प्रभु बिहार करती दत्ता. (२१)

हरी— सिसिरसि इत्यादि.

ટીકા--અધ્વપ્રતિપન્નઃ=માર્ગારૂઢઃ અનગારો=ભગવાન્ શિશિરે=શીતકાલે તદ્ વસ્ત્રં વ્યુત્પૃજ્ય=પરિત્યજ્ય વાહુ=શુજૌ સ્કન્ધભાગે નો અપ્લમ્બ્ય=શીતવાધાનિવા-
રણાર્થં ન સંસ્થાપ્ય, કિન્તુ પ્રસાર્ય=વાહુદ્વય વિસ્તાર્ય ચ પરાક્રમતે=પરીપહસહનાય
યતે સ્મ ॥ ૨૨ ॥

ઉપસહરન્નાહ--‘એસ વિહી’ ઇત્યાદિ ।

મૂલમ્-એસ વિહી અણુવકંતો, માહ્નેન મર્દમયા ।

વહુસો અપડિન્નેન, ભગવયા એવં રીયંતિ-ત્તિવેમિ ॥૨૩॥

છાયા--એષ વિધિરનુક્રાન્તો માહ્નેન મતિમતા ।

વહુશોઽપ્રતિજ્ઞેન ભગવતા, એવં રીયંતે, ઇતિ વ્રવીમિ ॥ ૨૩ ॥

ટીકા--માહ્નેન=યઃ સ્વયં હનનનિવૃત્તઃ સન્ પર પ્રતિ ‘મા હન મા હન’ ઇત્યેવ
વદતિ, સ માહ્નસ્તેન, મતિમતા=હેયોપાદેયપ્રજ્ઞાવતા વહુશોઽપ્રતિજ્ઞેન=સર્વથા નિદાન-

માર્ગારૂઢ-વિહારમેં રહે હુણ-ભગવાનને उस वस्त्रका शीतकालमें
परित्याग कर दिया । शीतको दूर करनेके लिये उन्होंने अपने दोनों
हाथोंको कंधों पर नहीं रखा, अर्थात् शीतसे पीड़ित होने पर लोग
दाये हाथको बांये कंधे पर और बांयें दाथको दाहिने कंधे पर दबा कर
रखलेते हैं, इससे शीतबाधा सताती नहीं है, सो प्रभुने शीतबाधाकी
निवृत्तिके लिये वस्त्र त्यागकरके भी ऐसा नहीं किया, प्रत्युत दोनों
भुजाओंको ऊंची करके वे शीत-परीषहको सहन करते थे ॥२२॥

ઉપસહાર કરતે હુણ કહતે હૈ--‘એસ વિહી’ ઇત્યાદિ ।

સ્વયં હનનાદિકાર્યોસે નિવૃત્ત હોકર દૂસરોંકો ખી ‘મા હન, મા હન-
‘મત મારો, મત મારો’ હસ પ્રકાર કહકર ઉનસે નિવૃત્ત કરાને વાલે, તથા

માર્ગારૂઢ-વિહારમા રહેતા-ભગવાને એ વસ્ત્રનો ઠડીના સમયે ત્યાગ કરી
દીધેલ ઠડીને દૂર કરવા માટે તેઓએ પોતાના બન્ને હાથોને ખાધ ઉપર
રાખ્યા નથી, અર્થાત્ ઠડીથી પીડાતી વખતે લોકો ડાબા હાથને જમણા કાધ
પર અને જમણા હાથને ડાબા કાધ ઉપર રાખે છે, જેથી ઠડીની પીડા એને
સતાવતી નથી, પરંતુ પ્રભુએ ઠડીથી બચવા વસ્ત્રત્યાગ કર્યા પછી પણ એમ ડરેલ ન
હતું, પરંતુ બન્ને હાથોને ઉચા ડરી તેઓ શીત-પરિષહને સહન કરતા હતા (૨૨)

ઉપસહાર કરતા કહે છે--‘એસ વિહી’ ઇત્યાદિ

સ્વયં હણવાદિઽ કાર્યોથી નિવૃત્ત બની બીજાઓને પણ મા હન-મા હન-“મારો
નહિ, મારો નહિ” આ પ્રકારનું કહીને તેનાથી નિવૃત્ત કરાવનાર, તથા હેય અને

रहितेन मगधसा=भीषर्षमानस्वामिना एषः=पायुक्तः विधिः=आचारः मनुकान्तः=
मनुसधितः, एषम्=जनेन विधिनाऽन्यऽपि मोक्षसाधकः साधकः सकलकर्मस्यार्थ
रीयते=विहरन्ति सयममार्गे निहरेयुरिति भावः। 'इति ब्रवीमि' अस्य व्याख्या
पूर्ववत् ॥ २३ ॥

॥ नवमाध्ययनस्य प्रथम उद्देशः समाप्तः ॥ ९-१ ॥

हेय और उपादेयके विवेकसे युक्त, एवं सर्वथा अप्रतिज्ञ-निदानरहित, ऐसे
भीषर्षमानस्वामीने यह पूर्वोक्त आचार स्वयं पालन किया, अतः इसी तरहसे
अन्य मोक्षसाधक साधुजन भी अपने समस्तकर्मों का नाश करनेके लिये
संयममार्गमें विचरण करे, अर्थात् इसी प्रकारसे इस विधिका पालन
कर अन्य मोक्षार्थी मुनि भी अपने कर्मों का नाश करनेके लिये संयम
मार्गमें लवलीन बनें। "इति ब्रवीमि" इन पदोंकी व्याख्या पहिले
की गई व्याख्याकी तरह जान लेनी चाहिये ॥२३॥

॥ नवमं अध्ययनका प्रथम उद्देश समाप्त ॥ ९-१ ॥

उपादेयना विवेकशी युक्त अने सर्वथा अप्रतिज्ञ-निदानरहित जेवा भी वर्धमान
स्वामीजे आ पूर्वोक्त आचार स्वयं पालन करेव जेटले आ सीते जीव मोक्षसाधक
(मोक्षना अखिलावी) साधुजन पक्ष पोताना समस्त करेनि नाश करवा
भाटे विवस्व करे. अर्थात्—जेवा प्रकारशी जेवी विभिन्न पालन करी जीव
मोक्षार्थी मुनि पक्ष पोताना करेनि नाश करवा भाटे समममार्गमें लवलीन
बने इति ब्रवीमि " आ पदोनी आआ अनादिना अध्ययनोभां कहेवाया प्रभावे
समजची जेधजे (२३)

नवमा अध्ययनने प्रथम उद्देश समाप्त ॥ ९-१ ॥

टीका—अध्वप्रतिपन्नः=मार्गारूढः अनगारो=भगवान् शिशिरे=शीतकाले तद् वस्त्रं व्युत्सृज्य=परित्यज्य बाहू=भुजौ स्कन्धभागे नो अवलम्ब्य=शीतवाधानि-
रणार्थं न सस्थाप्य, किन्तु प्रसार्य=बाहुद्वय विस्तार्य च पराक्रमते=परीपहसहनाय
यतते स्म ॥ २२ ॥

उपसंहरन्नाह—‘एस विही’ इत्यादि ।

मूलम्—एस विही अणुक्कंतो, माहणेण मईमया ।

बहुसो अपाडिन्नेण, भगवया एवं रीयंति-त्तिवेमि ॥२३॥

छाया—एष विधिरनुक्रान्तो माहनेन मतिमता ।

बहुशोऽप्रतिज्ञेन भगवता, एवं रीयते, इति ब्रवीमि ॥ २३ ॥

टीका—माहनेन=यः स्वयं हनननिवृत्तः सन् पर प्रति ‘मा हन मा हन’ इत्येवं
वदति, स माहनस्तेन, मतिमता=हेयोपादेयप्रज्ञायता बहुशोऽप्रतिज्ञेन=सर्वथा निदान-

मार्गारूढ-विहारमें रहे हुए-भगवानने उस वस्त्रका शीतकालमें
परित्याग कर दिया । शीतको दूर करनेके लिये उन्होंने अपने दोनों
हाथोंको कंधों पर नहीं रखा, अर्थात् शीतसे पीड़ित होने पर लोग
दाये हाथको बांये कंधे पर और बांये दाथको दाहिने कंधे पर दबा कर
रखलेते हैं, इससे शीतबाधा सताती नहीं है, सो प्रभुने शीतबाधाकी
निवृत्तिके लिये वस्त्र त्यागकरके भी ऐसा नहीं किया, प्रत्युत दोनों
भुजाओंको ऊची करके वे शीत-परीषहको सहन करते थे ॥२२॥

उपसहार करते हुए कहते हैं—‘एस विही’ इत्यादि ।

स्वयं हननादिकार्यो से निवृत्त होकर दूसरोंको भी ‘मा हन, मा हन-
‘मत मारो, मत मारो’ इस प्रकार कहकर उनसे निवृत्त कराने वाले, तथा

मार्गारूढ-विहारमा रहेता-भगवाने ये वस्त्रने ठडीना समये त्याग करी
दीधेल ठडीने दूर करवा माटे तेओओ पोताना अन्ने हाथेने आध उपर
राख्या नथी, अर्थात् ठडीथी पिडाती वणते डोडो आमा हाथने नमछा काध
पर अने नमछा हाथने आमा काध उपर राखे छे, जेथी ठडीनी पीडा ओने
सतावती नथी, परतु प्रभुओ ठडीथी अथवा वस्त्रत्याग कयो पछी पणु ओम करेल न
छतु, परतु अन्ने हाथेने उया करी तेओ शीत-परिषडने सहन करता छता (२२)

उपसहार करता छडे छे—‘एस विही’ इत्यादि

स्वयं छणुवाडिके कार्योथी निवृत्त अनी ओओओने पणु मा हन-मा हन-“मारो
नडि, मारो नडि” आ प्रकारतु छडीने तेनाथी निवृत्त करावना, तथा छेय अने

અર્થે પૃથ્વી ધીમુષ્માસ્વામી નમ્યસ્વામિનં પ્રત્યાહ—‘આવેસણ૦’ ઇત્યાદિ।

મૂલ્મ—આવેસણસમાપવાસુ, પળિયસાલાસુ યગયા વાસો।

અદુઘા પલિયદ્વાણેસુ, પલાલપુજેસુ યગયા વાસો ॥૨॥

છાયા—આવેસણસમાપવાસુ પળ્પશાલાસુ એકદા વાસઃ।

અથવા પલિતસ્થાનેષુ પલાલપુઠજેષુ એકદા વાસઃ ॥૨॥

ટીકા—એકદા=કદાચિત્, આવેસણસમાપવાસુ=મા=સમન્તાત્ વિસન્તિ યમ, તદાવેસણમ્=શૂન્યગૃહમ્, સમા=ગ્રામનગરવાસિનાં લોકાનામાસ્થાયિકાર્યમાગન્તુકાનાં ક્ષયનાર્થે ચ યા કુઢયાપાકૃતિપ્રાંમવાસિર્ભિનગરવાસિમિથ ક્રિયત્ સા સમા, પ્રપા=પાનીયશાલા, આવેસણ ચ, સમા ચ, પ્રપા ચ, પ્રપામિતરયોગદ્વન્દ્વઃ આવેસણસમાપ વાસાસુ, તથા કદાચિત્-પળ્પશાલાસુ=પ્રાપ્તેષુ ભગવતો વાસઃ અમૃત્। અપવા-કદાચિત્ પમિતસ્થાનેષુ=પમિતમિથ પલિત=કર્મ તસ્ય સ્થાનાનિ કર્મસ્થાનાનિ કર્મા-

ઈસ પ્રકાર પૂઠે જાને પર શ્રી મુષ્માસ્વામી જમ્યસ્વામીસે કહતે હૈ—
‘આવેસણ’ ઇત્યાદિ।

અન ત્રિલોકપ્રસિદ્ધ શ્રી મહાવીર ભગવાનની શરૂઆત અને આસન બુદ્ધ મિત્રર પ્રકાર કે થે। જે કમી આવેસણ-શૂન્યગૃહમ્, કમી સમા-નગર યા ગ્રામવાસિયોદ્વારા નગર અને ગ્રામને લોકોને બેઠનને લિયે અને પશ્ચિમોને મોનેને લિયે જો કુઢયાપાકૃતિ-આસ્થાઈ (ચોરા) બનાઈ હુઈ જોતી હૈ અસમે, કમીર પ્યાઝ-પાનીની શાલા-મેં કમીર પળ્પશાલા-બુકાનોમેં, યા પલિતસ્થાન-છાયાની શાલામેં અને કમીર પલાલપુજેની હુઈ શોપનીમેં નિવાસ કરતે ચ। “પલિયદ્વાણેસુ” ની સંસ્કૃત છાયા “પલિતસ્થાનેષુ” હૈ। ઇત્યાદિ અર્થ “પલિતમિથ પલિત-કર્મ, તસ્ય સ્થાન કર્મસ્થાન=કર્માવા-

અ રીતે પુષ્પાશ્રી શ્રી મુષ્માસ્વામી જમ્યસ્વામીને કહે છે— આવેસણ ઇત્યાદિ.

તે ત્રણ લોકમા પ્રસિદ્ધ શ્રી મહાવીર ભગવાનની શરૂઆત અને આસન બુદ્ધ મુદ્ધ પ્રકારના કલાં તેઓ ક્યારેક ઉજડ વરમા, કલી સલા-નગર અથવા ગ્રામવા-સીએએ લોકોને બેસવા માટે અને મુસાફરોને ઉતરવા માટે બનાવેલ સાર્વજનિક આરામગૃહોમાં, ક્યારેક પરવોમા, ક્યારેક-ક્યારેક કોઈ કુકાનોમાં અથવા છાયાની કોઠમાં અને ક્યારેક પશ્ચાત્તી બનાવેલી છુપડીયા નિવાસ કરેલો “પલિયદ્વાણેસુ” ની સંસ્કૃત છાયા “પલિતસ્થાનેષુ” છે અને અર્થ-પલિતમિથ

। अथ नवमाध्ययनस्य द्वितीय उद्देशः ।

इहानन्तरप्रथमोद्देशके महावीरस्य भगवतो विहारः कथितः, तत्र शय्याऽऽसनानि यथा तस्याऽऽसन् तद्वोधनार्थं द्वितीयोद्देशकं कथयति । तत्र जम्बूस्वामी श्रीसुधर्मस्वामिनं पृच्छति—‘चरियासणाइ’ इत्यादि ।

मूलम्—चरियासणाइं सिज्जाओ, एगइयाओ जाओ बुइयाओ ।

आइक्ख ताइं सयणासणाइं, जाइं सेवित्था से महावीरो ॥१॥

छाया—चर्यासनानि शय्या एकिका या उक्ताः ।

आख्याहि तानि शयनासनानि यानि सिपेवे स महावीरः ॥ १ ॥

टीका—‘चरिया’ इति लुप्तविभक्तिकमिदम् । चर्याया=विहारावस्थायां यानि आसनानि, याश्च, शय्या एकिकाः=एकैकप्रकारा विभिन्नरूपाः पूर्वम् उक्ताः, यानि शयनासनानि स=लोकत्रयप्रसिद्धः भगवान् महावीरः श्रीवर्धमानस्वामी सिपेवे तानि आख्याहि, इति ॥१॥

नववें अध्ययनका दूसरा उद्देश ।

इस नवम अध्ययनके प्रथम उद्देशमें श्री महावीर प्रभुका विहार वर्णित किया जा चुका है। उस विहारमें प्रभुकी शय्या और आसन जिस प्रकारके थे उन्हें समझानेके लिये सूत्रकार इस द्वितीय उद्देशका प्रारंभ करते हैं। यहां जम्बूस्वामी श्रीसुधर्मास्वामीसे पूछते हैं—‘चरियासणाइं’ इत्यादि ।

भगवन्! यह तो कहिये कि भगवान् श्री महावीरने विहार करते समय जिन २ शय्या और आसनोंका सेवन किया है ये एक ही प्रकारके थे या भिन्न २ प्रकारके ॥१॥

नवमा अध्ययननो णीजे उद्देश

आ नवमा अध्ययनना प्रथम उद्देशमा श्री महावीर प्रभुना विहारनु वर्णुन करवामा आवेल छे ओ विहारमा प्रभुनी शय्या अने आसन जे प्रकारना हुता ओ समजववा भाटे सूत्रकार आ णीजे उद्देशनो प्रारंभ करे छे अहिं जम्बूस्वामी श्री सुधर्मा स्वामीने पूछे छे—‘चरियासणाइ’ इत्यादि

भगवन्! ओ तो बतावो के भगवान् श्री महावीर विहार करती वधते जे जे शय्या अने आसननु सेवन करेल ते ओके २ प्रकारना हुता के बुझा प्रकरना ? (१)

एवं एष्ट श्रीसुधर्मास्वामी मन्वस्वामिन् प्रत्याह—‘आवेशण०’ इत्यादि।

मन्म—आवेशणसभापवासु, पणियसालासु पगया वासो।

अदुवा पलियद्वाणेसु, पलालपुंजेसु पगया वासो ॥२॥

छाया—आवेशनसमाप्रपासु पण्यशालासु एकदा वासः।

अथवा पलितस्थानेषु पलालपुंजेसु एकदा वासः ॥२॥

टीका—एकदा=कदाचित्, आवेशनसमाप्रपासु=मा=समन्ताद् विशन्ति यत्र, द्वावशनम्=शून्यगृहम्, समा=ग्रामनगरवासिनां लोकानामास्याधिकार्यमागन्तुकानां वपनार्थं च या कुट्टपायाकृतिर्ग्रामवासिभिर्नगरवासिमिष क्रियत सा समा, प्रपा=पानीपशाला, आवेशन च, समा च, प्रपा च, एषामितेरतयोगद्वन्द्वः आवेशनसमाप्रपास्तासु तथा कदाचित्-पण्यशालासु=प्रापणेषु मग्नतो वासः अभूत्। अथवा-कदाचित् पलितस्थानेषु=पलितमिष पलित=कर्म तस्य स्वानानि कर्मस्थानानि कर्मा

इस प्रकार पूछे जाने पर श्री सुधर्मास्वामी जन्मस्वामीसे कहते हैं—‘आवेशण’ इत्यादि।

उन त्रिलोकप्रसिद्ध श्री महावीर भगवानकी शाय्या और आसन सब मिलकर प्रकार के थे। वे कमी आवेशन-शून्यगृहमें, कमी समा-नगर या ग्रामवासियोंद्वारा नगर और ग्रामके लोगोंको बैठनेके लिये और पक्षियोंको सोनक लिये जो कुट्टपाकृति-आस्थाई (चोरा) बनाई हुई होती है उसमें, कमीर प्याऊ-पानीकी शाला-में कमीर पण्यशाला-दुकानोंमें, या पलितस्थान-दुहारकी शालामें और कमीर पलासकी बनी हुई छोंपडीमें निवास करते थे। “पलियद्वाणेसु” की संस्कृत छाया “पलितस्थानेषु” है। इसका अर्थ “पलितमिष पलित=कर्म, तस्य स्थानं कर्मस्थान=कर्मादा-

या रीते पुष्पाधी श्री सुधर्मास्वामी जन्मस्वामीने कहे छे—आवेशण इत्यादि।

ते त्रय लोकमां प्रसिद्ध श्री महावीर भगवानकी शाय्या अने आसन लुदा लुदा प्रकारनां कृतं तेभ्यो कथारिक उक्त प्रथमा, कही सभा-नगर अथवा ग्रामवा सीनेअने बैठनेने मग्नता भाटे अने सुखाइयेने उतस्था भाटे जनावेल आर्षिक आशमयुद्धमां, कथारिक परवोमां कथारिक-कथारिक कौर्ष दुकानेमां अथवा सुकाने की कौशमा अने कथारिक पलणनी जनावेली लुपडीमां निवास करेछे। “पलियद्वाणेसु” नी संस्कृत छाया “पलितस्थानेषु” छे आने अर्थ-पलितमिष

દાનસ્થાનાનિ 'કારખાના' इति प्रसिद्धानि, तेषु लोहकारादिशालादिषु, तथा कदाचित् पलालपुञ्जेषु=पलालनिर्मितकुटीरेषु तस्य वासः अभूत् ॥२॥

કિન્ન-‘આગતારે’ इत्यादि ।

મૂલમ્—આગંતારે આરામાગારે, તહ ય નગરે વિ ઇગયા વાસો ।

સુસાળે સુણ્ણગારે વા, સુખમૂલે વિ ઇગયા વાસો ॥૩॥

છાયા—આગન્ત્રગારે આરામાગારે તથા ચ નગરેઽપિ ઇકદા વાસઃ ।

શ્મશાને શૂન્યાગારે વા, વૃક્ષમૂલેઽપિ ઇકદા વાસઃ ॥૩॥

टीका—एकदा=कदाचित् आगन्त्रागरे=आगन्तृभ्यः अगारम् आगन्त्रगारं ग्रामान्नगराद् वा बहिरागन्तुकजननिवासार्थं गृह धर्मशालेत्यर्थः, तस्मिन् भगवतो वासः =अवस्थानं बभूव । एकदा=कदाचित् आरागागारे=आरामः=उपवनं तत्रागारं=गृहं तस्मिन्, तथा कदाचित् नगरेऽपि=नगरमध्येऽपि तस्य वासो बभूव । तथा एकदा श्मशाने वा, अथवा शून्यागारे=शून्यगृहे कदाचित् वृक्षमूलेऽपि=वृक्षतलेऽपि भगवतो वासो बभूव ॥३॥

नस्थानं” इस व्युत्पत्तिके अनुसार कर्मों के आदानका स्थानभूत-कार-
खाना भी होता है । पलाल-एक तरहका घास होता है ॥२॥

और भी—‘आगतारे’ इत्यादि ।

કમ્બીર વે પ્રસુ ગ્રામ તથા નગરસે વાહર વની હુઈ ધર્મશાલામેં ઉતરતે
તો કમ્બી ૨ વગીચામેં ઠહરતે । કમ્બી નગરમેં તો કમ્બી શ્મશાનમે, કમ્બી
કિસી શૂન્યઘરમેં તો કમ્બી કિસી વૃક્ષકે નીચે હી રહજાતે । ઇસ પ્રકાર
પ્રસુકે ઠહરનેકા કોઈ નિયમિત સ્થાન નહીં થા, જહાં અવસર દેખતે
વહાં પ્રાસુક સ્થાનમેં ઠહર જાતે ॥ ૩ ॥

पलितं, कर्म, तस्य, स्थानं=कर्मस्थानं, कर्मादानस्थानं आ व्युत्पत्ति अनुसार कर्मोना
आदाननु स्थान-कारणानु पणु थाय छे त्या पराण आ ओक ज्ञातनु घास छे (२)

ફરી—“ આગંતારે ” इत्यादि

કચારેક કચારેક પ્રસુ ગામ અથવા તો શહેરની બહાર બનેલી ધર્મશા-
લાઓમા ઉતરતા તો કચારેક બગીચામા રોકાતા કચારેક નગરમા તો કચારેક
શ્મશાનમા, કચારેક ઉજ્જડ ઘરોમા તો કચારેક કોઈ વૃક્ષના નીચેજ રહી
જતા આ રીતે પ્રસુના રોકાવાનુ કોઈ નિયમિત સ્થાન ન હતુ, જ્યાં અવસર મળતો
ત્યાં પ્રાસુક સ્થાનમાં રોકાઈ જતા. (૩)

मगवान् कियन्ते कासं यावत् तपःसंयमाराधनं कृतवानिति जिज्ञासायामाह—
'एषहिं मुणी' इत्यादि।

पञ्च-एषहिं मुणी सयणे हिं, समणे आसि पतेरसवासे ।

राइदियपि जयमाणे, अप्पमच्चे समाहिण् हाइ ॥४॥

छाया—एतेषु मुनिः श्रयणेषु भ्रमणः आसीत् प्रश्रयोदध्वर्पाणि ।

रात्रिदिवमपि यतमानः अप्रमत्तः समाहितो ध्यायतिः ॥४॥

मुनिः=मगवान् महावीरः श्रीवर्धमानस्वामी एतेषु=प्रागुक्तेषु श्रयणेषु=वसतिषु
प्रश्रयोदध्वर्पाणि=प्रक्षर्येण=किंचिदधिकार्वमागन् श्रयोदध्वं येषु तानि तथाभूतानि
स्वाभिः, सार्धपञ्चमासन्त्यूनप्रयोदध्वर्पाणीत्यर्थः; रात्रिदिवमपि=महर्निशं, यतमानः
=संयमाराधनपरायणः, अप्रमत्तः=तपसि समुद्युक्त आसीत् । तथा अप्रमत्तः निद्रादि
प्रमादपरिवर्जितः समाहितः=विस्मृतसिंकारहितः सन् ध्यायति धर्मध्यानमिति ॥४॥

हिं—'णिह पि नो' इत्यादि।

पञ्च-णिह पि नो पगामाए, सेवइ भगव उट्ठाए ।

जग्गवइ य अप्पाण, ईसिंसाई आसि अपडिस्से ॥५॥

छाया—निद्रामपि नो प्रकामतया संपते मगवान् उत्थाय ।

जागृत्यति चात्मानं ईष्यन्नापी आसीत् अप्रच्छिन्नः ॥ ५ ॥

मगवानने कितने समयतक तप और संयमका आराधन किया ?
इस प्रकारकी जिज्ञासाका समाधान करते हुए सूत्रकार कहते हैं—
'एषहिं' इत्यादि ।

बिहार अवस्थामें भ्रमण मगवान महावीर इन पूर्वोक्त वसतियोंमें
तेरह वर्षसे कुछ कम अर्थात्—साठेपारह वर्ष और पन्त्रह दिन—रहे । व
रात और दिन संयमकी आराधना करते हुए तपश्चर्यामें तत्पर रहे, और
प्रमादरहित होकर समाधिमाययुक्त वे सदा धर्मध्यानमें तत्पर रहे ॥४॥

और भी—'णिहपि नो' इत्यादि ।

मगवाने केटवा समय मुनी तप करने सधमनी आराधन करी ? आ
प्रकारकी जिज्ञासाका समाधान करते सूत्रकार कहे छे— एषहिं इत्यादि।

विहार अवस्थामें भ्रमण मगवान श्री महावीर वस्तीयोभां १३ तेर
वर्षकी केटा केछे समय रह्या केवा तेजो सतदिवस सधमनी आराधन करवा
केवा तपश्चर्यामां तत्पर रहेवा अने प्रमादरहित सध समाधिमाययुक्त धम
ध्यानमां सदा ओकरूप जनी रहेवा. (४)

हरी—'णिहपि नो' इत्यादि।

टीका—भगवान्=महावीरः श्रीवर्धमानस्वामी प्रकामतया निद्रामपि नो सेवते, निद्राधीनो न बभूवेत्यर्थः । चकारस्त्वर्थे, किन्तु उत्थाय=निद्रासमागमनकाले सावधानीभूय आत्मानं जागरयति=तपःसंयमाराधने प्रवर्तयति । अप्रतिज्ञः=स्वाप-प्रतिज्ञारहितः ईषच्छायी=छद्मस्थावस्थाया अन्तिमरात्रावन्तर्मुहूर्तमात्रकालस्वप्नदर्शी आसीत्=अभूत् ॥५॥

किञ्च—‘सवुज्जमाणे’ इत्यादि ।

मूलम्—संवुज्जमाणे पुनरपि, आसिंसु भगवं उट्टाए ।

निकखम्म एगया राओ, वहि चंकमिया मुहुत्तागं ॥६॥

छाया—संवुध्यमानः पुनरपि आसिष्ट भगवान् उत्थाय ।

निष्क्रम्यैरुदा रात्रौ वहिश्चङ्क्रम्य मुहूर्तकम् ॥ ६ ॥

टीका—पुनरपि भगवान् श्रीवर्धमानस्वामी संवुध्यमानः=निद्रादोषं सम्पूर्णं जानन् ‘निद्रा कर्मबन्धस्य कारणमस्ती’—त्यक्वगच्छन् निद्रासमागमनकाले संयमोत्थानेन उत्थाय एरुदा=रुदाचित् शीतकाले रात्रौ वहिर्निष्क्रम्य=वहिर्नि-

भगवान् श्री महावीर प्रभुने अधिक निद्राका सेवन नहीं किया, अर्थात् वे निद्राके अधीन नहीं हुए । जिस समय निद्रा आनेका समय होता था उस समय वे सावधान होकर अपनी आत्माको तप और संयमकी आराधना करनेमें लगा देते थे । ये स्वाप-सोनेकी प्रतिज्ञासे रहित थे । छद्मस्थावस्थाकी अन्तिम रात्रिमें अन्तर्मुहूर्तकालमात्र ही स्वप्नदर्शी बने ॥ ५ ॥

और भी—‘सवुज्जमाणे’ इत्यादि ।

श्री वीरप्रभु निद्राके अधीन नहीं हुए, क्यों कि यह वे जानते थे कि निद्रा कर्मबन्धका कारण है । यदि कभी निद्रा आने लगती तो शीत-

भगवान् श्रीमहावीर स्वामीએ કદી અધિક નિદ્રાનું સેવન કર્યું નથી, અર્થાત્ તેઓ નિદ્રાને આધીન બન્યા નથી. જે સમયે નિદ્રા આવવાનો સમય હોય એ સમયે સાવધાન બની પોતાના આત્માને તપ અને સયમની આરાધનામાં લગાડી દેતા હતા તેઓ સ્વાપ-સુવાની પ્રતિજ્ઞાથી રહિત હતા, છદ્મસ્થાવસ્થાની છેલ્લી રાત્રે અન્તર્મુહૂર્તકાળમાત્રમાં સ્વપ્નદર્શી બન્યા (૫)

ફરી—‘સવુજ્જમાણે’ ઇત્યાદિ

નિદ્રાને શ્રી મહાવીર પ્રભુ કર્મ બંધનું કારણ માનીને તેનો ત્યાગ કરતા હતા ક્યારે નિદ્રા આવતી તો શીતકાલની રાત્રીમાં મકાન બહાર જઈ મુહૂર્ત માત્ર ધર્મધ્યાનમાં તત્પર બની નિદ્રાના વિજેતા બનતા (૬)

गंस्य गृहसंकेतं—गृहसमाश्रं चक्रम्य—ध्याने निहृत्य धर्मध्यानावस्थितो भूत्वेत्यर्थः
वासिष्ठ—उपाविशत्—निद्रां परिवर्तयामासेति भावः । १६ ॥

किञ्च—‘सयणेहि’ इत्यादि।

मूकम्—सयणेहि तस्सुवसग्गा, मीमा आसी अणेगरूवा य ।

ससप्यगा य जे पाणा, अदुवा जे पभिस्रणो उवचरति॥७॥

भाषा—अयनेषु तस्योपसर्गा मीमा आसन् अनेकरूपाय ।

संसर्पकाय ये प्राणा अयथा पथिष्य उपचरन्ति ॥ ७ ॥

टीका—अयनेषु—अय्यते=स्वीयते विविधासनादिमिर्यं च तानि अयनानि
मात्रपस्यानानि, तेषु तस्य मगवतः श्रीचर्ममानस्वामिनः मीमाः=घोराः अनेकरूपा
उपसर्गा आसन्=उपस्थिता बभूवुः । तथा—य संसर्पका=सरीसृपाः शून्यगृहादौ
सर्पनकृतादयः, प्राणाः=मागिनः, अयथा—ये पथिष्यः=ममज्ञानादौ गृहादयस्तेऽपि
उपचरन्ति=नानाविधमुपसर्गं कुर्वन्ति स्म, तद्वाचचर्ममासादिकं कुर्वन्ति स्मेत्यर्थः ॥७॥

किञ्च—‘अदु कुचरा’ इत्यादि।

काञ्ची रत्नमें मकानसे बाहर जाकर गृहसमाश्रं धर्मध्यानमें तल्लीन
होकर वे उस निद्रा पर विजय प्राप्त कर लेते ॥१॥

और भी—‘सयणेहि’ इत्यादि।

शयनोंमें—आश्रयमूल स्थानोंमें उन धीर प्रभुके ऊपर घोर उपसर्ग
उपस्थित होते थे। कभी २ शून्य घरमें रहने पर सरीसृप—सर्प नकुल
आदि प्राणी, अथवा ममज्ञानमें बसने पर गृध्र आदि पक्षी अनेक प्रकार
रसे उनके ऊपर उपसर्ग करते, परन्तु वे धीर धीर सपकुछ सहन करते
थे, यहाँ तक कि जब गृध्र आदि पक्षी उनके शरीरके मांसको भी नोचते
थे भी वे समभावसे सहन करते परन्तु खमका निवारण नहीं करते ॥७॥

और भी—‘अदु कुचरा’ इत्यादि।

इति—सयणेहि इत्यादि

शयनमा—आश्रयवाणा स्थानमा भी भक्तधीर प्रभु ऊपर घोर उपसर्ग
उपस्थित होता होता। कबारेक उन्मत्त धर्ममा रहेवाकी सप पजेरे प्राणी तेम
रमस्थानमा रहेवाकी जीव पजेरे पक्षीभी अनेक प्रकार्या दुःखे सहैवा पक्ष्यां दत्ता
धीर धीर जेवा प्रभु आ लभां दुःखेने सहन करवाते त्यां सुधी के लभारे जीव
पजेरे पक्षीये तेमना शरीरका मांसने खायाकी आपत्ता तो पक्ष समभावधी प्रभु
सहन करवा परंतु तेनु निवारण करवा नहीं (७)

इति—‘अदु कुचरा’ इत्यादि

टीका—भगवान्=महावीरः श्रीवर्धमानस्वामी प्रकामतया निद्रामपि नो सेवते, निद्राधीनो न बभूवेत्यर्थः । चकारस्त्वर्थे, किन्तु उत्थाय=निद्रासमागमनकाले सावधानीभूय आत्मानं जागरयति=तपःसंयमाराधने प्रवर्तयति । अप्रतिज्ञः=स्वाप-प्रतिज्ञारहितः ईप्सुछाया=छद्मस्थावस्थाया अन्तिमरात्रावन्तर्मुहूर्तमात्रकालस्वप्नदर्शी आसीत्=अभूत् ॥५॥

किञ्च—‘सवुज्झमाणे’ इत्यादि ।

मूलम्—संवुज्झमाणे पुनरपि, आसिंसु भगवं उट्ठाए ।

निक्खम्म एगया राओ, वहि चंकमिया मुहुत्तागं ॥६॥

छाया—संवुध्यमानः पुनरपि आसिष्ट भगवान् उत्थाय ।

निष्क्रम्यैकदा रात्रौ वहिश्चक्रम्य मुहूर्तकम् ॥ ६ ॥

टीका—पुनरपि भगवान् श्रीवर्धमानस्वामी संवुध्यमानः=निद्रादोषं सम्यग् जानन् ‘निद्रा कर्मबन्धस्य कारणमस्ती’—त्यक्वच्छन् निद्रासमागमनकाले संयमोत्थानेन उत्थाय एकदा=रुदाचित् शीतकाले रात्रौ वहिर्निष्क्रम्य=वह्निर्नि-

भगवान् श्री महावीर प्रभुने अधिक निद्राका सेवन नहीं किया, अर्थात् वे निद्राके अधीन नहीं हुए । जिस समय निद्रा आनेका समय होता था उस समय वे सावधान होकर अपनी आत्माको तप और संयमकी आराधना करनेमें लगा देते थे । ये स्वाप-सोनेकी प्रतिज्ञासे रहित थे । छद्मस्थावस्थाकी अन्तिम रात्रिमें अन्तर्मुहूर्तकालमात्र ही स्वप्नदर्शी बने ॥ ५ ॥

और भी—‘सवुज्झमाणे’ इत्यादि ।

श्री वीरप्रभु निद्राके अधीन नहीं हुए, क्यों कि यह वे जानते थे कि निद्रा कर्मबन्धका कारण है । यदि कभी निद्रा आने लगती तो शीत-

भगवान् श्रीमहावीर स्वामीએ કદી અધિક નિદ્રાનુ સેવન કર્યું નથી, અર્થાત્ તેઓ નિદ્રાને આધીન બન્યા નથી જે સમયે નિદ્રા આવવાનો સમય હોય એ સમયે સાવધાન બની પોતાના આત્માને તપ અને સંયમની આરાધનામાં લગાડી દેતા હતા તેઓ સ્વાપ-સુવાની પ્રતિજ્ઞાથી રહિત હતા, છદ્મસ્થાવસ્થાની છેલ્લી રાત્રે અન્તર્મુહૂર્તકાળમાત્રમાં સ્વપ્નદર્શી બન્યા (૫)

क्षरी—‘सवुज्झमाणे’ इत्यादि

निद्राને श्री महावीर प्रभु कर्म बंधन कारण मानीने तेना त्याग करता हता क्यारे निद्रा आवती तो शीतकालनी रात्रीमा भडान भडार बर्ध मुहूर्त मात्र धर्मध्यानमा तत्पर भनी निद्राना विजेता बनता. (६)

मस्य सुहृत्क=सुहृत्मात्रं चक्रकर्म=ध्याने विहृत्य पर्यध्यानान्वसितो भूत्वेत्यर्थः
वासिष्ठ=उपाविशत्-निश्रं परिब्रजयामासेति भावः । ६ ॥

किञ्च—‘सयणेहि’ इत्यादि ।

मस्य=सयणेहि तस्सुवसग्गा, भीमा आसी अणेगरूपा य ।

तसप्यगा यजे पाणा, अदुवा जे पक्खिणो उवचरति॥७॥

प्राणा—अयनेषु तस्योपसर्गा भीमा भासन् अनेकरूपाश्च ।

संसर्पकाश्च य प्राणा अथवा पक्षिण उपचरन्ति ॥ ७ ॥

टीका—अयनेषु=अयने=स्थीयते विविधासनादिभिर्मयं तानि अयनानि
नामयस्यानानि, तेषु तस्य भगवत भीषर्षमानस्यामिनः भीमाः=घोराः अनेकरूपा
उपसर्गा भासन्=उपस्थिता बहुवचः । तथा-य संसर्पका=सरीसृपाः सूक्ष्मसृष्टादौ
सर्पन्त्यादयः, प्राणाः=माणिनाः, अथवा-ये पक्षिण=इन्द्रजानादौ सृष्टादयस्तेऽपि
उपचरन्ति=नानाविधमुपसर्गं कुर्वन्ति स्म, तद्वाच्यममांसादिकं कुर्वन्ति स्मेत्यर्थः॥अ॥

किञ्च—‘अदु कुचरा’ इत्यादि ।

काल्की रातमें मकानसे बाहर जाकर सुहृत्तमात्र चर्मध्यानमें तल्लीन
होकर वे उस निद्रा पर विजय प्राप्त कर लेते ॥९॥

और भी—‘सयणेहि’ इत्यादि ।

शयनोर्मे-आभयमृत स्थानोर्मे वन बीर प्रभुके ऊपर घोर उपसर्ग
उपस्थित होते थे । कभी २ शून्य घरमें रहने पर सरीसृप-सर्प नकुछ
आदि प्राणी, अथवा इन्द्रजानमें बसन पर गृध्र आदि पक्षी अनेक प्रकृ-
रसे उनके ऊपर उपसर्ग करते, परन्तु वे बीर बीर सयकुछ सहन करते
थे, यहाँ तक कि जब गृध्र आदि पक्षी उनके शरीरके मांसको भी नोचते
तो भी वे समभावसे सहन करते परंतु उनका निवारण नहीं करते ॥अ॥

और भी—‘अदु कुचरा’ इत्यादि ।

इति—सयणेहि धन्यादि ।

शयनमा-आभयवाणा स्थानोर्मा भी भद्रावीर प्रभु उपर घोर उपसर्ग
उपस्थित यदा कदा कालके उन्मत्त वेश्यामां सहेवाही सप वनेरे प्राणी तेमव
रमस्थानमां सहेवाही जीम वनेरे पक्षीभी अनेक प्रभुका हुंजो सहेवां पक्ष्यां कदा
धीरधीर जेवा प्रभु मा वार्ता हुंजोने सकन करवाते त्यां सुधी के न्याये जीम
वनेरे पक्षीयो तेमना सरीसृपा मांसने खायाही वाक्यता तो पक्षु समभावशी अनु
सहन करवा परंतु तेहुं निवारण करवा नहीं (७)

इति—अदु कुचरा धन्यादि ।

મૂલમ્—અદુ કુચરા ઉવચરંતિ, ગામરક્ષા ય સત્તિહત્થા ય ।

અદુ ગામિયા ઉવસગ્ગા, इत्थी एगइया पुरिसा य ॥ ૮ ॥

છાયા—અથ કુચરા ઉપચરન્તિ ગ્રામરક્ષાશ્ચ શક્તિહસ્તાશ્ચ ।

અથ ગ્રામ્યા ઉપસર્ગા સ્ત્રિયઃ એકિકાઃ પુરુષા વા ॥ ૮ ॥

ટીકા—કુચરા:=કુત્સિતાચરણશીલાઃ ચૌરવ્યભિચારિમૃતયઃ ઉપચરન્તિ=ભગવત ઉપસર્ગ કર્વન્તિ સ્મ । સ્વસ્વકાર્યંડન્તરાયં મત્વા ભગવન્ત કશા-દિમિસ્તાડયન્તિ સ્મેત્યર્થઃ । તથા—શક્તિહસ્તાઃ=શસ્ત્રવિશેષધારિણ ગ્રામરક્ષાઃ=પ્રાહરિકાદયઃ ઉપચરન્તિ=ચૌરલુપ્ટકુલક્રુણ્યા ભગવન્તં પ્રહરન્તિ સ્મ । અથવા ગ્રામ્યાઃ=ગ્રામધર્માવસ્થિતાઃ કામવશગા इत्यर्थः, અત એનોપસર્ગાઃ=ઉપસર્ગકારિત્વાદુપસર્ગરૂપાઃ સ્ત્રિયઃ એકિકાઃ=એકાકિન્યઃ સમાગત્ય ઉપચરન્તિ=ભગવન્ત વિપયાર્થમુપસર્ગયન્તિ સ્મ । વા=અથવા—પુરુષા અપિ તમ્ ઉપચરન્તિ=‘ઇમમન-

ચૌર, વ્યભિચારી આદિ જન મી ઉનકો ઉપસર્ગ દેતે થે । ઇસ્કા કારણ યહ થા કિ વે ભગવાનકો અપને ૨ કાર્યોમિં વિઘ્નરૂપ માનતે થે, અતઃ વે ભગવાનકો ચાવુકસે મારતે થે । ગાંવકી રક્ષા કરનેવાલે કોટ-વાલ આદિજન મી કિ જિનકે હાથમેં શક્તિ નામકા શસ્ત્ર રહતા થા, ભગવાનકો ચોર, લુટેરા સમઝકર ઉનપર પ્રહાર કરતે । કમીર કામાધીન મદોન્મત્ત સ્ત્રિયાં મી ભગવાનકે પાસ અકેલી આકર ઉનસે વૈષયિક લાલસા પ્રકટ કરતી, ઇસ તરહ વે મી ભગવાનકે ઉપર અનેક પ્રકારસે ઉપદ્રવ વરસાતી । કોઈ પુરુષવર્ગ મી યહ સમઝકર કિ ‘યહ અતિશયરૂપ સંપન્ન હૈ—અનન્તરૂપ ઔર લાવણ્યકા ભંડાર હૈ, ઇસે દેખકર હમારી

ચોર, વ્યભિચારી વિગેરે માણુસો તરફથી ભારે રીતનો ત્રાસ આપવામા આવતો, જેનુ કારણ એ હતું કે એ લોકો ભગવાનને પોતપોતાના કાર્યોમાં વિઘ્નરૂપ ગણતા, આથી તેઓ ભગવાનને ચાળખાથી મારતા હતા ગામની રક્ષા કરવા-વાળા પટેલ પસાયતા વગેરે લોકો પણ કે જેના હાથમા શક્તિ નામનુ શસ્ત્ર રહેતુ હતું, ભગવાનને લૂટારા, ચોર વગેરે માનતા અને આ કારણે અવનવીન ત્રાસ આપતા કોઈ કોઈ વખત કામથી મદોન્મત્ત બનેલી એવી સ્ત્રીઓ પણ ભગવાન પાસે એકલી આવતી અને તેમની પાસેથી વિષયભોગની લાલસા જણાવતી આ કારણે આવી સ્ત્રીઓ પણ ભગવાનની ઉપર અનેક પ્રકારના ઉપદ્રવ વરસાવતી કોઈ પુરુષવર્ગ પણ ભગવાનનુ અતિશય લાવણ્યમય શરીર જોઈ એવી શકા ધરાવતા કે ‘અમારી સ્ત્રીઓ આમનુ લાવણ્ય-

नक्षत्रावप्यशास्त्रिनं विलोक्य मदीयवयिता मसो विरता भविष्यती'-
ति मत्वोपसर्गं चकारेत्पर्य ॥८॥

किञ्च—'इहलोइयाह' इत्यादि ।

मृष्य-इहलोइयाह परलोइयाह, भीमाह अणेगरूवाह ।

अथि सुचिम्-दुचिम्गधाहं, सबाह अणेगरूवाह ॥९॥

छाया-ऐहमौक्किकान् पारमौक्किकान् भीमान् अनेकरूपान् ।

अपि सुरमिदुरमिगन्धान् चन्दान् अनेकरूपान् ॥ ९ ॥

टीका-मगवान् ऐहमौक्किकान्=मनुष्यकृतान्, पारलौकिकान्=देवतिर्यक्-
कृतां भीमान्=मयकृतान् अनेकरूपान्=अनुकूलप्रतिकूलान् उपसर्गान् सहाते स्म ।
छाया-सुरमिदुरमिगन्धान्=सुरमिगन्धान्=सूक्ष्मचन्दनमणितान्, दुरमिगन्धान्=
पूविगन्धान् मृतसर्पशृगालकलेबरसमुत्पान्, तथा अनेकरूपान्=मनोहामनोहान्
सर्वेषां सहाते स्म ॥ ९ ॥

छछनाएँ हमसे विरक्त हो जायगी' इस दुरभिप्रायसे उन पर उप
सर्ग करते ॥८॥

और भी—'इहलोइयाह' इत्यादि ।

वे मगवान परीयह और उपसर्गोंकी कुछ भी परबाह न कर मनु
ष्यकृत अनेक भयंकर उपद्रवोंको, देवकृत एवं तिर्यक्कृत अनेक कठोर
उपसर्गोंको, चाहे वे अनुकूल हों चाहे प्रतिकूल हों, सहाते थे । पुष्पोंकी
माला, और मलयगिरिवनसे उत्पन्न सुगन्धिमें और सड़े हुए सर्प,
शृगाल आदिके कलेबरकी दुर्गन्धिमें, तथा मनोह और अमनोह इन्दि
योंके शब्दादिक विषयोंमें उन्हें न राग था और न द्वेष था, वे सब
अवस्थामें समभावी थे ॥९॥

मम शरीर अर्ध अमाशयी विरक्त जनी जरी' आवो अक्षय विचार मनभा
ली अमेना उपर त्रास परतावता (८)

इरी-इहलोइयाह इत्यादि

अजवान आवा हुजो अने उपसर्गोंनी देश भाज परता न करता मनुष्यो
दास करता अनेक लयकर उपद्रवो देव अने तिर्य्याशी करता अनेक ठोहर
उपसर्गो, चाहे ते अनुकूल होय के प्रतिकूल, तेने सहन करता. पुष्पोंनी माला,
मलीयाजिरी वनधी उत्पन्न सुगन्धिमा तथासठेला सर्प तेमच अन्य भरीला
पशुजोना सठेला शरीरिनी दुर्गन्धिमा, तथा मनोह अने अमनोह इन्दिरीया
शब्दादि विषयोमा अमेने न तो राग कतो न द्वेष, तेजो इरीक अवस्थाभा
समभावी कता (९)

મૂલમ્—અદુ કુચરા ઉવચરંતિ, ગામરક્ષા ય સત્તિહત્થા ય ।

અદુ ગામિયા ઉવસગ્ગા, इत्थी एगइया पुरिसा य ॥ ૮ ॥

છાયા—અથ કુચરા ઉપચરન્તિ ગ્રામરક્ષાશ્ચ શક્તિહસ્તાશ્ચ ।

અથ ગ્રામ્યા ઉપસર્ગા સ્ત્રિયઃ એકિકાઃ પુરુષા વા ॥ ૮ ॥

ટીકા—કુચરાઃ=કુત્સિતાચરણશીલાઃ ચૌરવ્યભિચારિપ્રમૃતયઃ ઉપચરન્તિ=ભગવત ઉપસર્ગ કર્વન્તિ સ્મ । સ્વમ્યકાર્યેઽન્તરાય મત્વા ભગવન્તં કશા-દિભિસ્તાડયન્તિ સ્મેત્યર્થઃ । તથા—શક્તિહસ્તાઃ=શસ્ત્રવિશેષપ્રારિણ ગ્રામરક્ષાઃ=પ્રાહરિકાદયઃ ઉપચરન્તિ=ચૌરલુપ્ટકગદ્ગ્યા ભગવન્તં પ્રહરન્તિ સ્મ । અથવા ગ્રામ્યાઃ=ગ્રામવર્માવસ્થિતાઃ કામવશાગા इत्यर्थः, અત એવોપસર્ગાઃ=ઉપસર્ગકારિત્વાદુપસર્ગરૂપાઃ સ્ત્રિયઃ એકિકાઃ=એકાકિન્યઃ સમાગત્ય ઉપચરન્તિ=ભગવન્ત વિપયાર્થમુપસર્ગયન્તિ સ્મ । વા=અથવા-પુરુષા અપિ તમ્ ઉપચરન્તિ=‘હમમન-

ચૌર, વ્યભિચારી આદિ જન મી ઉનકો ઉપસર્ગ દેતે થે । ઇસ્કા કારણ યહ થા કિ વે ભગવાનકો અપને ૨ કાર્યોમે વિઘ્નરૂપ માનતે થે, અતઃ વે ભગવાનકો ચાચુકસે મારતે થે । ગાંવકી રક્ષા કરનેવાલે કોટવાલ આદિજન મી કિ જિનકે હાથમે શક્તિ નામકા શસ્ત્ર રહતા થા, ભગવાનકો ચોર, લુટેરા સમજ્ઞકર ઉનપર પ્રહાર કરતે । કમી ૨ કામાવીન મદોન્મત્ત સ્ત્રિયાં મી ભગવાનકે પાસ અકેલી આકર ઉનસે વૈપયિક લાલસા પ્રકટ કરતી, ઇસ તરહ વે મી ભગવાનકે ઉપર અનેક પ્રકારસે ઉપદ્રવ વરસાતી । કોઈ પુરુષવર્ગ મી યહ સમજ્ઞકર કિ ‘યહ અતિશયરૂપ સપન્ન હૈ—અનન્તરૂપ ઔર લાવણ્યકા ભંડાર હૈ, ઇસે દેખકર હમારી

ચોર, વ્યભિચારી વિગેરે માણસો તરફથી ભારે રીતનો ત્રાસ આપવામા આવતો, જેનુ કારણ એ હતુ કે એ લોકો ભગવાનને પોતપોતાના કાર્યોમા વિઘ્નરૂપ ગણતા, આથી તેઓ ભગવાનને યાજખાથી મારતા હતા ગામની રક્ષા કરવા-વાળા પટેલ પસાયતા વગેરે લોકો પણ કે જેના હાથમા શક્તિ નામનુ શસ્ત્ર રહેતુ હતુ, ભગવાનને લૂટારા, ચોર વગેરે માનતા અને આ કારણે અવનવીન ત્રાસ આપતા કોઈ કોઈ વખત કામથી મદોન્મત્ત બનેલી એવી સ્ત્રીઓ પણ ભગવાન પાસે એકલી આવતી અને તેમની પાસેથી વિપયભોગની લાલસા જણાવતી આ કારણે આવી સ્ત્રીઓ પણ ભગવાનની ઉપર અનેક પ્રકારના ઉપદ્રવ વરસાવતી કોઈ પુરુષવર્ગ પણ ભગવાનનુ અતિશય લાવણ્યમય શરીર નેઈ એવી શકા ધરાવતા કે ‘અમારી સ્ત્રીઓ આમનુ લાવણ્ય-

तत्स्यलावण्यशालिनं विलोक्य मदीयदयिता मत्तो विरता भविष्यती'-
सि मत्तोपसर्गं चकारेत्यर्थ ॥८॥

किञ्च—'इहलोइयाइ' इत्यादि ।

पञ्च—इहलोइयाइ परलोइयाइ, भीमाइ अणेगरूवाइ ।

अवि सुठिम—दुब्बिमगधाइ, सदाइ अणेगरूवाइ ॥९॥

छाया—पेइलौफिकान् पारलौफिकान् भीमान् अनेकरूपान् ।

अपि सुरमिदुरमिगन्वान् शुब्दान् अनेकरूपान् ॥ ९ ॥

टीका—भगवान् पेइलौफिकान्=मनुष्यकृतान्, पारलौफिकान्=देवतिर्यङ्-
कृत्वाथ भीमान्=मयङ्कृतान् अनेकरूपान्=अनुकूलप्रतिकूलान् उपसर्गान् सहते स्म ।
तथा—सुरमिदुरमिगन्वान्=सुरमिगन्वान्=सुखचन्दनननिताम्, दुरमिगन्वान्=
पूतिगन्वान् मृतसर्पशृगाळकछेवरसमुत्पान्, तथा अनेकरूपान्=मनाङ्गमनोङ्गान्
सर्वेषां सहते स्म ॥ ९ ॥

छलनाएँ हमसे विरक्त हो जायगी' इस दुरमिप्रायसे उन पर उप-
सर्ग करते ॥८॥

और भी—'इहलोइयाइ' इत्यादि ।

वे भगवान् परीवह और उपसर्गोंकी कुछ भी परवाह न कर मनु-
ष्यकृत अनेक मयंकर उपद्रवोंको, देवकृत एवं तिर्यङ्मय अनेक कठोर
उपसर्गोंको, चाहे वे अनुकूल हों चाहे प्रतिकूल हों, सहते थे । पुष्पोंकी
माला, और मलयगिरिपर्वतसे उत्पन्न सुगन्धिमें और सबे हुए सर्प,
शृगाल आदिके कछेवरकी दुर्गन्धमें, तथा मनोस और अमनोस इन्नि
येकै शब्दादिक विषयोंमें उन्हें न राग था और न द्वेष था, वे सब
अवस्थामें सममाणी थे ॥९॥

भय शरीर जोई जमाशयी विरक्त जनी जये' आवे जशज विचार मनभां
छपी जेमना उपर त्रास परतावता (८)

इरी—इहलोइयाइ इत्यादि

भगवान् आपा हुंजो अने उपसर्गोंनी देश भाज परता न करवां मनुष्ये।
दाश कसता अनेक लयकर उपद्रवो देव अने तिर्यंशयी कसता अनेक कठोर
उपसर्गो, चाहे ते अनुकूल होय के प्रतिकूल, तेने सहन करवा। पुष्पोंनी माला,
मलीयाजिरी बदनयी उत्पल सुगन्धमां तथासठेला सर्प तेमज अन्य भरेला
पशुजोला सठेला शरीरिनी दुर्गन्धमां, तथा मनोस अने अमनोस इन्निथोला
शब्दादिक विषयोमां जेमने न तो राग कतो न द्वेष, तेजो इरेक अवस्थामां
समभावी कता। (९)

अन्यच्च—‘अहियासए’ इत्यादि ।

मूलम्—अहियासए सयासमिए, फासाइं विरूवरूवाइं ।

अरइं रइं अभिभूय, रीयइ माहणे अवहुवाइं ॥१०॥

छाया—अध्यास्ते सदासमितः स्पर्शान् विरूपरूपान् ।

अरतिं रतिम् अभिभूय रीयते माहनः अवहुवादी ॥१०॥

टीका—सदासमित = पञ्चसमितिसमन्वितः विरूपरूपान् = अनेकप्रकारकान् स्पर्शान् = दुःखविशेषान् अध्यास्ते = अविसहते स्म । अवहुवादी = अल्पभाषी माहनः = भगवान् अरतिं सयमे, तथा रतिं विषयानन्दे अभिभूय = तिरस्कृत्य निवार्येत्यर्थः, रीयते = तपःसंयमसमाराधने प्रवर्तते स्म ॥१०॥

किञ्च—‘स जणेहिं’ इत्यादि ।

मूलम्—स जणेहिं तत्थ पुच्छिसु एगचरा वि एगया राओ ।

अव्वाहिय कसाइत्था, पेहमाणे समाहि अपडिन्ने ॥११॥

छाया—स जनै तत्र अप्रच्छि एकचरा अपि एकदा रात्रौ ।

अव्याहृते कपायिताः प्रेक्षमाणः समाधिम् अप्रतिज्ञः ॥ ११ ॥

और भी—‘अहियासए’ इत्यादि ।

उन प्रभुने निरन्तर पांच समितियोंके पालनमें सावधान रह कर ही अनेक प्रकारके दुखोंको सहन किया। वे सदा ही हित मित प्रिय वचन बोलते। अल्पभाषण करते—बहुत थोड़ा बोलते। सयमसे अरतिभावको और विषयोंसे रतिभावको हटानेमें ये सदा जागरूक रहते और तप संयमकी ही आराधनामें सदा तत्पर रहते ॥१०॥

और भी—‘स जणेहिं’ इत्यादि ।

इरी—‘अहियासए’ इत्यादि

प्रभु निरन्तर पांच समितियोंका पालनमा सावधान रहेता, अने अनेक प्रकारका दुःखोने सहन करता तेओ सदा हित मित अने प्रिय वचन बोलता, थोड़े बहुत बोलता सयमथी अरतिभावने अने विषयोथी रतिभावने इरे करवाभा जागृत रहेता तप अने सयमनीआराधनामा सदा तैयार रहेता (१०)

इरी—‘स जणेहिं’ इत्यादि.

टीका-शून्यगृहे निर्जने वा स भगवान् अनैः अमच्छि=पृष्ट, यथा-‘को भगवान्? किमत्र स्थित? कुतः समायातः? इत्येवं शून्योऽपि तूष्णीमेवासीत्। तथा-एकवराः=एकाकिनः पारपुरुषादयः एकदा=कदाचित्, रात्रौ विषस वा भगवन्तं पश्यन्, तदा भगवता-भग्यादृते सति कृपापिताः=कृपावियुक्ताः सन्तः भगवन्तं दृष्ट्वापादिमिस्तादृयन्ति स्म। भगवांस्तु अमतिष्ठः=वैरनिर्यातिनप्रविहारहितं समाधिं प्रेक्षमाणः=धर्मध्यानं समाकुम्भयन् ससतं स्म ॥११॥

किञ्च-‘अयमंतरंसि’ इत्यादि।

‘भगवान् जिस समय विहारमें रहते हुए शून्यगृह आदिमें ठहरते तो उस समय मनुष्य अनेक प्रकारके उनसे प्रश्न करते-कोई पूछता-तुम मौन हो? क्यों ठहरे हो। कोई २ पूछता-अरे तुम कहाँसे आये हुए हो, इत्यादि। इस प्रकार पूछे जाने पर भी वे प्रश्न किसीको कुछ भी उत्तर नहीं देते और मौन रहते। इसी प्रकार कभीरु ध्यनिधारी पुरुष अकेले आकर जब भगवानसे कुछ पूछते तो भगवान् उस समय भी मौन रहते-उन्हें कुछ भी उत्तर नहीं देते। इस प्रकार उनके चित्तमें भगवानके प्रति कृपापरिणति जाग्रत हो जाती और इससे क्रोधाविष्ट हो वे भगवानको वण्ड और मुक्के आदिसे खूब पीटते-मारते, परन्तु फिर भी भगवानके चित्तमें वैरका यवला केनेका भाव उनके प्रति जाग्रत नहीं होता था, प्रत्युत समाधिपूर्वक वे धर्मध्यानमें ही लक्ष्मीन होकर उन सब उपसर्गों को सहते ॥११॥

और भी-‘अयमंतरंसि’ इत्यादि।

भगवान् ७ समय विहारमा रहेवा अने ठीक ४ वर वजेरे स्थले शोकावा तो के समये भावुआ आवा अनेक प्रकारमा प्रश्नो करवा. केळ पुछतु तमे केळु छे ? अछि के भ शोकावा छे ? केळ केळ पुछतु के तमे कथाभी अछवा छे ? वजेरे आ रीते पुछनासज्जेभाना केळने पक्ष प्रक्ष केळ पक्ष उत्तर अपवा नथी परतु मौन रहेवा आर रीते केळ केळ व्यक्तियारी पुत्र अकेलौ आवा भगवानने केळ पुछे तो पक्ष भगवान मौन व रहेवा, अने पक्ष केळ ववाव अपवा नथी आवा के ठोकेना दितमा भगवान अने कृपापरिवृति नथी वती अने कीधमुष्ट नथी आवा भावुआ भगवानने लाकेली के कायभी पुत्र भार भास्वा, छवा पक्ष भगवानना दितमा तेमना अने जइसे देखनी वृत्ति वनती नथी अने तेवा समये पक्ष तेजो समाधिपूर्वक धर्मध्यानमा व तइनीन रही आ वधा उपसजेनि सहन करवा (११)

इरी-‘अयमंतरंसि’ इत्यादि.

अन्यच्च—‘अहियासए’ इत्यादि ।

मूलम्—अहियासए सयासमिए, फासाइं विरूवरूवाइं ।

अरइं रइं अभिभूय, रीयइ माहणे अवहुवाइं ॥१०॥

छाया—अध्यास्ते सदासमितः स्पर्शान् विरूपरूपान् ।

अरतिं रतिम् अभिभूय रीयते माहनः अवहुवादी ॥१०॥

टीका—सदासमितः=पञ्चसमितिसमन्वितः विरूपरूपान्=अनेकप्रकारकान् स्पर्शान्=दुःखविशेषान् अध्यास्ते=अधिसहते स्म । अवहुवादी=अल्पभाषी माहनः=भगवान् अरतिं सयमे, तथा रतिं विषयानन्दे अभिभूय=तिरस्कृत्य निवार्येत्यर्थः, रीयते=तपःसयमसमाराधने प्रवर्तते स्म ॥१०॥

किञ्च—‘स जणेहिं’ इत्यादि ।

मूलम्—स जणेहिं तत्थ पुच्छिसु एगचरा वि एगया राओ ।

अव्वाहिय कसाइत्था, पेहमाणे समाहि अपडिन्ने ॥११॥

छाया—स जनै तत्र अप्रच्छि एकचरा अपि एकदा रात्रौ ।

अव्याहृते कषायिताः प्रेक्षमाणः समाधिम् अप्रतिज्ञः ॥ ११ ॥

और भी—‘अहियासए’ इत्यादि ।

उन प्रभुने निरन्तर पांच समितियोंके पालनमें सावधान रह कर ही अनेक प्रकारके दुखोंको सहन किया। वे सदा ही हित मित प्रिय वचन बोलते। अल्पभाषण करते—बहुत थोड़ा बोलते। सयमसे अरतिभावको और विषयोंसे रतिभावको हटानेमें ये सदा जागरूक रहते और तप संयमकी ही आराधनामें सदा तत्पर रहते ॥१०॥

और भी—‘स जणेहिं’ इत्यादि ।

क्षरी—‘अहियासए’ इत्यादि

प्रभु निरन्तर पांच समितियोंका पालनमा सावधान रहेता, अने अनेक प्रकारका दुःखोने सहन करता तेयो सदा हित मित अने प्रिय वचन न बोलता, अल्पभाषण करता थोड़ा बोलता सयमभी अरतिभावने अने विषयोभी रतिभावने दूर करवाभा जागृत रहेता तप अने सयमभी आराधनामा सदा तैयार रहेता (१०)

क्षरी—‘स जणेहिं’ इत्यादि ।

કિંચ—‘અસિપ્યેગે’ इत्यादि।

મૂલ્ય—જસિપ્યેગે પથેયતિ, સિસિરે મારુપ પવાયતે ।

તસિપ્યેગે અણગારા, હિમવાપ નિવાયમેસતિ ॥૧૩॥

અર્થા—યસ્મિન્નપ્યેકે પ્રવેપતે શિથિરે મારુતે પ્રવાતિ (સતિ) ।

તસ્મિન્નપ્યેકેઽનગારા, હિમવાત નિવાતમપયન્તિ ॥૧૩॥

ટીકા—યસ્મિન્ શિથિરે=શિથિરશ્ચતૌ, મારુતે=શ્રીતપથન પ્રવાતિ=પ્રકર્ષેષ
શતિ સતિ, એકે=કેવન અન્યે જનાઃ પ્રવેપતે=પ્રકર્ષેણ વન્તવીમાવાદનપુરસ્તર
ક્ષ્યન્તે । યદ્વા—‘પ્રવેદયન્તિ’ इति છાયા, શ્રીતસમુત્થ સ્પર્શદુ સમનુભવન્તિ ।
તસ્મિન્નપિ કાલ એકે=કેવન અન્યઽનગારા હિમવાતે=શ્રીતમધમોર વહતિ સતિ
નિવાત=નિવાતસ્થાનમ્, પપયન્તિ=ગતપયન્તિ ॥ ૧૩ ॥

કિંચ—‘સંઘાઢીઓ’ इत्यादि।

મૂલ્ય—સંઘાઢીઓ પથેસિસ્તામો, યદ્વા ય સમાદૃહમાણા ।

પિહિયા વ સયસ્તામો, અશ્વુલ્લે હિમગસપાસા ॥૧૪॥

અર્થા—સંઘાઢી પ્રવક્ષ્યામ, યપાસિ ચ સમાદૃહન્તઃ ।

પિહિયા વા શસ્ત્રામ, અતિદુઃસ્વાન્ હિમગસપાસાન્ ॥૧૪॥

આર મી—‘જસિપ્યેગે’ इत्यादि।

શીતશ્ચતુર્થે કિ જિસમે શીતલ પથનક ચલન પર કર્ક મનુષ્યોક
શરીરમે રોગટે સ્વહે હો જાતે હે, વાંતોસ વાંત થજન લગતે હે, શરીરમે
તૂષ કપકપી છૂટને લગતી હે, હસ પ્રકાર પઢી મુદિકલસ શીતકા કુમ્ભ
સહન હોતા હે । કર્ક એક અનગાર તા હસ શીતકાલમે એસે સ્થાનકી
મોઝમે રહતે હે કિ અહાં શીતલ ધાયુકા સંચાર તક ની ન હો આર
ઝંઢી હયાસે ધ્રાણ-રક્ષણ-હોતા રહે ॥ ૧૩ ॥

કરી—અસિપ્યેગે ઇત્યાદિ.

શરીરની રૂપમા કામ પથનના નાશવાથી માણુએના શરીરમા એનો પ્રવેશ
થવા રૂપમા ઉભા થઈ બધે છે હવ સામે હવ અગાધ છે શરીરમા કામરી
છૂટે છે. આ રીતે ખુબજ મુશ્કેલીથી કામીનુ કામ નાણુએ મદદન કરે છે કેલ
અન્યાર તે આ કામીથી અન્યા એના સ્થાનના વપામમાં રહે છે કે કામીનુ
સંચાર મધુન થઈ શકે અને કામીથી એને અચાન થઈ શકે (૧૩)

मूलम्—अयमंतरंसि को इत्थ ? अहमंसिति भिक्षु आहट्टु ।

अयमुत्तमे से धम्मे, तुसिणीए कसाइए झाइ ॥१२॥

छाया—अयमन्तः कोऽत्र ? अहमस्मीति भिक्षुः आहृत्य ।

अयमुत्तमः स यमस्तूष्णीकः कपायितान् ध्यायति ॥१२॥

टीका—अन्तः=मध्ये, अयं कोऽस्ति, इत्येव दुःशीलैः कर्मकरादिभिर्वा पृष्ठः भगवान् क्वचिद् शङ्कादिदोषवारणार्थमाह स्म—‘अह भिक्षुरस्मि’ इति। एवमुक्ते सति स्वार्थव्याघातेन कपायितास्ते भगवन्तमब्रुवन्—‘आहट्टु’=अयं देशीयः शब्दः शीघ्रार्थकः, शीघ्रमितः स्थानान्निर्गच्छ, ततः स भगवान् अय=निषेधित-स्थानान्निस्सरणरूपो धर्मः=आचारः उत्तमः=श्रेष्ठः, इति कृत्वा ततो निर्जगाम। यदि ते निर्गन्तु नाब्रुवन् तदा कपायितान् प्रति तूष्णीकः सन् व्यायति=ध्यानस्थ एवासीत्=धर्मध्यानात् प्रच्युतो न बभूवेत्यर्थः ॥१२॥

“इस शूने घरके भीतर कौन ठहरा हुआ है” इस प्रकार जब प्रभुसे कोई दुःशील कर्मकरादि जन पूछता, तब भगवान् उसकी शका-की निवृत्तिके लिये यही प्रत्युत्तर देते कि—मैं भिक्षु हूं। इस प्रकार प्रभुके कहने पर जब उसका किसी प्रकारका स्वार्थ उनके वहां रहनेसे घातित होता तो वह भगवान् पर क्रुद्ध होकर उनसे कहता कि—तुम यहांसे निकल कर शिघ्र ही किसी दूसरे स्थानपर चले जाओ। भगवान् भी इसकी इस प्रकारकी बातसे भी मध्यस्थभावयुक्त होकर यह समझकर कि ‘निषेध किये गये स्थानपर साधुको नहीं ठहरना चाहिये, यही साधुका उत्तम आचार है’ वहांसे निकल जाते। यदि वे वहांसे निकलनेको नहीं कहते तो भी प्रभु अपने ऊपर कषाययुक्त उन मनुष्योंके प्रति समभावी होकर धर्म-ध्यानमें ही मग्न रहते—धर्मध्यानसे कभी ये प्रच्युत नहीं होते ॥१२॥

“આ ઉજ્જડ ઘરમા કોણ ઉતરેલ છે” એ પ્રકારથી જ્યારે પ્રભુને કોઈ પુછતુ ત્યારે ભગવાન એની શકાનુ સમાધાન કરવા એટલે જ પ્રત્યુત્તર આપતા કે—હું ભિક્ષુ છું આ જવાબ પછી પુછનારનો આમા કોઈ પ્રકારનો સ્વાર્થ ન દેખાતો તો તે ભગવાન સામે કોપિત બની કહેતો કે તમે અહિંથી નીકળી કોઈ બીજા સ્થાન ઉપર તાત્કાલિક ચાલ્યા જાવ ભગવાન પણ આ પ્રકારની એની વાતથી મધ્યસ્થ બાવયુક્ત થઈ એવુ સમજીને એ સ્થાનનો ત્યાગ કરતા કે ‘જ્યા વિરોધ કરવામા આવે એ સ્થાનમા સાધુએ ન રોકાવુ બેઈએ એ જ સાધુનો ઉત્તમ આચાર છે’ ત્યાથી નીકળી જતા એ તે ત્યાથી નિકળવાનુ નહિ ઠહેતા તો પણ પ્રભુ પોતાના ઉપર કષાયયુક્ત થતા તે માણસો પ્રત્યે સમભાવી બની ધર્મ-ધ્યાનમા મગ્ન રહેતા ધર્મધ્યાનથી કદી પણ તેઓ ચ્યુત ન થતા (૧૨)

ક્રિચ્—‘જસિપ્યેગે’ ઇત્યાદિ ।

શ્લુ—જસિપ્યેગે પવેયતિ, સિસિરે મારુપ પવાયતે ।

તસિપ્યેગે અણગારા, હિમવાપ નિવાયમેસતિ ॥૧૩॥

છાયા—યસ્મિન્નપ્યેકે પ્રવેષતે શિશિરે મારુતે પ્રવાતિ (સતિ) ।

તસ્મિન્નપ્યેકઽનગારા, હિમવાપે નિવાસમેપયન્તિ ॥૧૩॥

ટીકા—યસ્મિન્ શિશિરે=શિશિરશ્ચટૌ, મારુતે=શીતપક્વે પ્રવાતિ=પ્રકર્ષેણ
પ્રવતિ સતિ, એકે=કેચન અન્યે જનાઃ પ્રવેષન્તે=પ્રકર્ષેણ દન્તવીજાત્પદનપુરસ્સર
ક્રમ્યન્તે । યદ્વા—‘પ્રવદયન્તિ’ ઇતિ છાયા, શીતસમુત્પન્ન સ્પર્શદુઃસ્વમનુભવન્તિ ।

તસ્મિન્નપિ કાલ એકે=કેચન અયઽનગારાઃ હિમવાપે=શીતલસમોર પ્રવતિ સતિ
નિવાતે=નિવાતિત્યાન્તમ્, એપયન્તિ=ગમપયન્તિ ॥૧૩॥

ક્રિચ્—‘સંઘાઢીઓ’ ઇત્યાદિ ।

શ્લુ—સંઘાઢીઓ પવેસિસ્સામો, યદ્વા ય સમાવહમાણા ।

પિહિયા વ સવસ્થામો, અદ્વુક્ષ્વે હિમગસપાસા ॥૧૪॥

છાયા—સંઘાઢીઃ પ્રવેક્ષ્યામાઃ, ઇષાંસિ ય સમાવહન્તઃ ।

પિહિતા યા શ્લ્યામાઃ, અતિગુસ્તાન્ હિમગસપાસાન્ ॥૧૪॥

ઔર મી—‘જસિપ્યેગે’ ઇત્યાદિ ।

શીતઋતુમેં કિ જિસમેં શીતલ પથનકે ચલને પર ફર્ફ મનુષ્યોકે
શરીરમેં રોગકે ત્રહે હો જાતે હૈ, વાંતોસે વાંત થજને લગતે હૈ, શરીરમેં
શ્વેત કપકપી છૂટને લગતી હૈ, હસ પ્રકાર થકી મુદ્ધિકલસે શીતકા દુઃસ્વ
સહન હોતા હૈ । ફર્ફ એક અનગાર તો હસ શીતકાલમેં પેસે સ્થાનકી
બોજમેં રહતે હૈ કિ જહાં શીતલ વાયુકા સંચાર તક મી ન હો ઔર
ઠંડી હવાસે શ્વાણ-રક્ષણ-હોતા રહે ॥ ૧૩ ॥

શ્લુ—જસિપ્યેગે ઇત્યાદિ ।

શરીરની રૂપમા ઠંડા પવનના આક્રમણથી માણસોના શરીરમાં બેનો પ્રવેશ
થવા રૂપમાં બેના થઈ જાય છે એવ સામે એવ અવશ્યક છે શરીરમાં ઠંડાથી
હુકે છે આ રીતે યુગલ યુરકેલીથી ઠંડીનું દુઃખ માણસો સહન કરે છે કેમ
જ્યાર તો આ ઠંડીથી બચવા બેના સ્થાનની તપાસમાં રહે છે કે ઠંડા વાયુને
સંચાર પલુ ન થઈ શકે અને ઠંડીથી બેનો બચાવ થઈ શકે (૧૩)

ટીકા—તથા—કેચિદેકેઽનગારાઃ=સાધયઃ ઇન્ઞન્તિ-શીતાર્દિતા વયં સઘાટીઃ=શીતનિવારણક્ષમાણિ પ્રાવરણાણિ યયાવશ્યકમેક દ્વય ત્રય વા પ્રવેશ્યામઃ=સ્પર્શીં તત્ર નિવેશયિષ્યામ ઇતિ, તથા કુર્વન્તિ ચ। પરતીર્થિકાસ્તાપસાદયસ્તુ એવમિન્ઞન્તિ-વયમ્-એવાસિ=કાષ્ઠાણિ સમાદહન્તઃ અતિદુઃખાન્ દિમકસસ્પર્શાન્=શીતસ્પર્શાન્ સોદુ શશ્યામઃ=પારયિષ્યામઃ, ઇતિ, તથા કુર્વન્તિ ચ। એકે કેચિદ્ ગૃહસ્થાઃ પુનરેવ વાન્ઞન્તિ-વય પિહિતાઃ=શીતનિવારણક્ષમમૃદુરુક્મ્બલશાલદિશાલકાદિભિરાન્ઞદિતાઃ સન્તઃ શીતસ્પર્શાન્ સોદુ શશ્યામ ઇતિ, તથા કુર્વન્તિ ચ॥૧૪॥

કિન્ચ--‘તસિ’ ઇત્યાદિ।

મૂલમ્—તાંસિ ભગવં અપહિન્ને, અહે વિગડે અહિયાસૅ દવિૅ।

નિવલ્લમ્મ એગયા રાઓ, ચાણ્ઢ ભગવં સમિયાૅ ॥૧૫॥

ઔર ખી—‘સંઘાઢીઓ’ ઇત્યાદિ।

કર્કે એક સાધુજન અપને પાસમે રહી હુઈ ઉપધિસે અપને શરીરકો ઢાંક કર શીતસે અપની રક્ષા કરતે હૈ, કખી ઝની કવલ ઓઢ લિયા કરતે હૈ તો કખી સૂતી દો વસ્ત્રોંસે અપને શીતકા નિવારણ કર લેતે હૈ। ઇસસે ખી યદિ ઠઢકા નિવારણ નહીં હો તો ઝની કવલકે સાથ સૂતી ચદર મિલાકર શીતકી વાધાસે અપની રક્ષા કિયા કરતે હૈં। પરતીર્થિક તાપસજન તો એસે સમયમે લકડે જલાકર ધૂની લગા લેતે હૈં ઔર ડસકે પાસ વૈઠકર તાપતે હુૅ શીતકી કઢકની ઠઢીસે અપની રક્ષા કરતે રહતે હૈ। કર્કે ધનિક ગૃહસ્થજન ઇસ સમય શીતનિવારણ યોગ્ય શાલ દુશાલે ઓઢકર શીતસવંધી દુઃખોસે અપનેકો બચાતે રહતે હૈ ॥૧૪॥

ફરી—‘સંઘાઢીઓ’ ઇત્યાદિ

કોઈ કોઈ સાધુજન ઠંડીના બથાવ માટે પોતા પાસે રાખેલા વસ્ત્રાદિકથી પોતાના શરીરને ઢાકી ઠંડીથી રક્ષણ મેળવે છે ક્યારેક ઊની કમ્બલ ઓઢી લે છે તો ક્યારેક સુતરના બે વસ્ત્રોથી પોતાની ઠંડીનું નિવારણ કરી લે છે પરંતુ બ્યારે ઠંડીને ઉપદ્રવ વધે છે, ત્યારે ઊની કમ્બલ અને સુતરાઉ વસ્ત્રો લેના કરી ઓઢે છે અને ઠંડીથી પોતાનું રક્ષણ કરે છે પરતીર્થિક તાપસજન તો આ સમયે લાકડા બાળી ધુણી ધખાવી એની પાસે બેસી તાપે છે અને એ રીતે ઠંડકડતી ઠંડીથી પોતાની રક્ષા કરે છે ધનવાળા કોઈ ગૃહસ્થો આ સમયે શાલ દુશાલા ઓઢીને ઠંડીથી પોતાને બચાવે છે (૧૪)

પ્રાપા—તસ્મિન્ અપ્રતિદ્વઃ, અપોવિક્રટે અધ્યાસ્તે દ્રવિકઃ ।

નિષ્કમ્યૈકદા રાત્રૌ શૂકનોતિ, મગધાન્ શ્રમિતયા ॥૧૫॥

ટીકા—તસ્મિન્=સ્થાપ્યુતે ક્ષિણિરે કાલે હિમધાતે મયદિતિ સતિ અપ્રતિદ્વઃ=નિર્વાતસ્પાનવાર્યનાદિરૂપમતિદ્વાવિધિવિત, દ્રવિકઃ=દ્રાવણાત્=કર્મગ્રન્થિનાશનાયુ દ્રવઃ=અયમ્, ઇડસ્પાસ્તીતિ દ્રવિકઃ=વ્યાયામ્યાતચારિણઃ, મગધાન્=ધીર્ધર્માન્-સ્વામી અપોવિક્રટે=કુષ્ઠપાદિરદિતે સ્થાને સ્થિત્વા અધ્યાસ્તે=અતિદુઃસ્વદહીતસર્ણા નવિસરતે સ્મ । એકદા=કદાચિત્ રાત્રૌ નિષ્કમ્ય=મુહૂર્તમાત્ર ધનિઃ સ્થિત્વા મગધાન્ શ્રમિતયા=ઉપશાન્તમાત્રેણ વ્યવસ્થિત સન્ અતિદુઃસ્વાન્ હિમસંસ્પર્શાન્ ઇદં શૂકનોતિ=અવિસરતે સ્મ ॥૧૫॥

બૌર મી 'તસિ' इत्यादि ।

ऐसे शीतकालमें मी भी वीर प्रसुने यह स्वप्न तकमें भी विचार नहीं किया कि मुझे कोई निर्वात स्थान मिल जाय, प्रस्युत वे इस समयमें भी चौकटे पर कि जहां चारों ओरसे शीतल पवन पड़कर ठंडको खूब असह्य बना देती है, स्थित होकर पथाख्यात चारित्र्य की आराधनामें तल्लीन रहते कुछ शीतपरीपहको सहन करते। कभी-कभी रात्रिमें भी वसतिसे बाहर निकल कुछ समय तक वहां ठहर कर उपशान्त भावसे वे प्रसु शीतकालके कष्टोंको सहते।

इस सूत्रमें 'द्रविक' शब्दका अर्थ—“पथाख्यातचारित्र्यका आराधन करने वाला” ऐसा है। “द्रावणात्=कर्मग्रन्थिनाशनायु द्रवः” कर्मरूप

इति— सति ” इत्यादि.

આવા હાલના સમયમાં પણ મી વીર પ્રસુએ સ્વપ્ને પણ એવો વિચાર નથી કર્યો કે મને કેઈ હાલથી બધી શકાય તેવું સ્થાન મળી જાય. આવી હાલહાલિ હાલના સમયે પણ પ્રસુ તદ્દન ઉપાધ્યાય કે જ્યાં આરે તરફથી હાલ પવનને સુસવાટો લાગતો હોય તેવા સ્થાને સ્થિત બની અથાખ્યાત ચારિત્રની આરાધનામાં તદ્દલીન રહી હાલના ઉપદ્રવને સહન કરતા. ક્યારેક ક્યારેક આવી હાલહાલિ હાલમાં સત્રીના વખતે વસતીથી બહાર નીકળી જઈ ઉપશાંતિ શાવધી હાલના કષ્ટોને સહન કરતા.

આ સૂત્રમાં દ્રવિક શબ્દનો અર્થ—પથાખ્યાત ચારિત્રનું આરાધન કરવાવાળા એવો છે ‘દ્રાવણાત્ કર્મગ્રન્થિનાશનાયુ દ્રવઃ’ એનાથી કમરૂપ મધીનિ બિનાય કાય છે તે દ્રવ—સયમ અથાત્ પથાખ્યાત ચારિત્રયે. આ દ્રવ એનામાં હોય છે તે દ્રવિક છે

ટીકા—તથા—કેચિદેકેઽનગારાઃ=સાધવઃ ઇચ્છન્તિ-શીતાર્થિતા વય સઘાટીઃ=શીતનિવારણક્ષમાણિ પ્રાવરણાણિ યયાપશ્યક્રમેક દ્વય ત્રય વા પ્રવેક્ષ્યામઃ=સ્વશરીરં તત્ર નિવેશયિષ્યામ ઇતિ, તથા કુર્વન્તિ ચ । પરતીર્થિકાસ્તાપસાદયસ્તુ એવમિચ્છન્તિ-વયમ્-એધાસિ=ઠાણાણિ સમાદહન્તઃ અતિદુઃખાન્ હિમકસસ્પર્શાન્=શીતસ્પર્શાન્ સોદુ શક્ષ્યામઃ=પારયિષ્યામઃ, ઇતિ, તથા કુર્વન્તિ ચ । એકે કેચિદ્ ગૃહસ્થાઃ પુનરેવ વાચ્છન્તિ-વય પિહિતાઃ=શીતનિવારણક્ષમમૃદુકકમ્બલશાલદ્વિશાલકાદિભિરાચ્છાદિતાઃ સન્તઃ શીતસ્પર્શાન્ સોદુ શક્ષ્યામ ઇતિ, તથા કુર્વન્તિ ચ ॥૧૪॥

કિન્ચ—‘ તંસિ ’ ઇત્યાદિ ।

મૂલમ્—તંસિ ભગવં અપહિન્ને, અહે વિગડે અહિયાસૅ દવિૅ ।

નિવલ્લમ્મ એગયા રાઓ, ચાણ્ઙ ભગવં સમિયાણ ॥૧૫॥

ઔર भी—‘ સઘાટીઓ ’ ઇત્યાદિ ।

કર્કે એક સાધુજન અપને પાસમેં રહી હુઈ ઉપધિસે અપને શરીરકો ઢાંક કર શીતસે અપની રક્ષા કરતે હૈં, કમી ઝની કવલ ઓઢ લિયા કરતે હૈં તો કમી સૂતી દો વસ્ત્રોંસે અપને શીતકા નિવારણ કર લેતે હૈં । ઇસસે भी યદિ ઠંડકા નિવારણ નહીં હો તો ઝની કવલકે સાથ સૂતી ચદર મિલાકર શીતકી વાધાસે અપની રક્ષા કિયા કરતે હૈં । પરતીર્થિક તાપસજન તો એસે સમયમેં લકડે જલાકર ધૂની લગા લેતે હૈં ઔર ઉસકે પાસ વેઠકર તાપતે હુૅ શીતકી કડકની ઠડીસે અપની રક્ષા કરતે રહતે હૈં । કર્કે ધનિક ગૃહસ્થજન ઇસ સમય શીતનિવારણ યોગ્ય શાલ દુશાલે ઓઢકર શીતસબધી દુઃખોંસે અપનેકો બચાતે રહતે હૈં ॥૧૪॥

ફરી—‘ સંઘાટીઓ ’ ઇત્યાદિ

કોઈ કોઈ સાધુજન ઠંડીના બચાવ માટે પોતા પાસે રાખેલા વસ્ત્રાદિકથી પોતાના શરીરને ઢાંકી ઠંડીથી રક્ષણ મેળવે છે ક્યારેક ઊની કમ્બલ ઓઢી લે છે તો ક્યારેક સુતરના બે વસ્ત્રોથી પોતાની ઠંડીનું નિવારણ કરી લે છે પરંતુ બન્યારે ઠંડીને ઉપદ્રવ વધે છે, ત્યારે ઊની કમ્બલ અને સુતરાઉ વસ્ત્રો લેખા કરી ઓઢે છે અને ઠંડીથી પોતાનું રક્ષણ કરે છે પરતીર્થિક તાપસજન તો આ સમયે લાકડા બાળી ધુણી ધખાવી એની પાસે બેસી તાપે છે અને એ રીતે કડકડતી ઠંડીથી પોતાની રક્ષા કરે છે ધનવાળા કોઈ ગૃહસ્થો આ સમયે શાલ દુશાલ ઓઢીને ઠંડીથી પોતાને બચાવે છે (૧૪)

स्वयं इननादि कार्यो से निवृत्त होकर दूसरों को भी मा इन-मा इन-
‘मत मारो-मत मारो’ इस प्रकार कह कर उनसे निवृत्त कराना चाहे,
तथा हेय और उपादेयके विवेकसे युक्त, एवं सर्वथा अप्रतिज्ञ-निदानरहित
ऐसे श्रीवर्धमानस्वामीने इस पूर्वोक्त आचारका स्वयं पालन किया, अतः
इसी तरहसे अन्य मोक्षसाधक साधुजन भी अपने समस्त कर्मोंका नाश
करनेके लिये संयम मार्गमें विचरण करें। अर्थात् इसी प्रकारसे इस
विधि पालन कर अन्य मोक्षाभिलाषी साधुजन भी अपने कर्मोंका
नाश करनेके लिये संयममार्गमें लयसीन बनें। ‘इति ब्रवीमि’ इ जम्बू!
जैसा मैंने भगवानसे सुना हूँ वैसा ही कहता हूँ, अपनी कल्पनासे नहीं। १५।

॥ नवमे अध्यायनका द्वितीय उद्देश समाप्त ॥ १-२ ॥

स्वयं इननादि कार्योषी निवृत्त जनी जीवज्जोने पक्ष मा इन मा इन-
‘माये नहिं माये नहिं’ आ प्रकारनु कहीने तेनाही निवृत्त कसवनार
तथा हेय जने उपादेयना विवेकशी मुक्त जने सर्वथा निदानशून्य, जोवा श्रीवर्ध
मान स्वामीजो आ पूर्वोक्त आचार स्वयं पालन करेह, भाटे आ रीते जीव
मोक्ष साधक साधुजन पक्ष पिताना समस्त कर्मोना नाश करवा भाटे सबम
भार्जभा विचरण करे अर्थात् जोना प्रकारशी जोनी विधिनु पालन करी जीव
मोक्षाभिलाषी साधुजन पक्ष पिताना कर्मोना नाश करवा भाटे सबम भार्जभा
लयसीन बने, ‘इति ब्रवीमि’ हे जम्बू! जेतुं मे भगवानशी सांभज्जु तेवुं
कहुं छ पितानी कल्पनाशी नहिं (१६)

नवमा अध्यायनने जीवो उद्देश समाप्त ॥ ६-२ ॥



ઉદ્દેશકાર્થમુપસહરન્નાહ—‘ એસ વિહી ’ ઇત્યાદિ ।

મૂલમ્—એસ વિહી અણુક્રંતો, માહણેણ મહમયા ।

વહુસો અપહિન્નેણ, ભગવયા એવં રીયાંતિ-ત્તિવેમિ ॥૧૬॥

છાયા—એપ વિધિરનુક્રાન્તો, માહનેન મતિમતા ।

વહુશોઽપ્રતિજ્ઞેન, ભગવતા, એવં રીયન્તે ॥ ઇતિ વ્રવીમિ ॥૧૬ ॥

અસ્ય વ્યાખ્યા—અસ્યૈવાધ્યયનસ્ય મથમોદ્દેશગતાઽન્તિમગાથા(૨૩)વ્યા-
ખ્યાવદ્ વિજ્ઞેયા । ઇતિ વ્રવીમીત્યર્થસ્તૂત્ત એવ ॥ ૧૬ ॥

॥ નવમાધ્યયનસ્ય દ્વિતીય ઉદ્દેશઃ સમાપ્તઃ ॥ ૧-૨ ॥

ગ્રન્થિકા જિસસે વિનાશ હો વહ દ્રવ-સયમ, અર્થાત્ યથાખ્યાત ચારિત્ર
હૈ, યહ દ્રવ જિસકે મૌજૂદ હો વહ દ્રવિક હૈ । યથાખ્યાતચારિત્રકી
આરાધનાસે હી જીવ અપને અવશિષ્ટ ચાર અઘાતિયા કર્મોંકા નાશ કર
મુક્તિસ્થાનકા પાત્ર હો જાતા હૈ, ઇસકે વિના નહીં, એસા શાસ્ત્રસંમત
સિદ્ધાન્ત હૈ । “અધોવિકટ” શબ્દ કુડ્યાદિ-ભીત આદિરહિત સ્થાનકા
વાચક હૈ । વહ સ્થાન કિ જિસમેં ભીત આદિકા આવરણ નહીં હો,
ચૌહટા હી એસા હોતા હૈ, ક્યો કિ વહ ચારોં ઓરસે વિલકુલ ખુલા
હુઆ રહતા હૈ, ઓર એસે હી સ્થાનમેં સવ તરફસે વહુત જોરકી હવા
આતી હૈ । ‘શમિતા’ શબ્દકા અર્થ-ઉપશાન્ત ભાવ હૈ । રાગ દ્વેષકા
સવધ જિસ ભાવમેં નહીં હોતા હૈ વહી ઉપશાન્તભાવ કહા ગયા હૈ ॥૧૫॥

અવ સૂત્રકાર ઇસ ઉદ્દેશકે અર્થકા ઉપસંહાર કરતે હુએ કહતે હૈ—
‘ એસ વિહી ’ ઇત્યાદિ ।

યથાખ્યાત ચારિત્રની આરાધનાથીજ શુભ પોતાના અવશિષ્ટ ચાર અઘાતિયા કર્મોંના
નાશ કરી મુક્તિસ્થાન મેળવવા ભાગ્યશાળી બની રહે છે, એના વગર નહીં
એવો શાસ્ત્રસંમત સિદ્ધાન્ત છે. “અધોવિકટ” શબ્દ ભીત વગેરેથી રહિત
એવા સ્થાનનો વાચક છે એ સ્થાન કે જેને ભીત વગેરેના અભાવ ન હોય તેને
ઉઘાડું સ્થાન કહેવામા આવે છે, કેમકે ચારે તરફથી તે બીલકુલ ખુલ્લુ હોય
છે અને એવા સ્થાનમા ચારે તરફથી મોટા પ્રમાણમા ખુલ્લી હવા આવતી હોય
છે શમિતા શબ્દનો અર્થ ઉપશાન્ત ભાવ છે રાગ દ્વેષનો સબધ જે ભાવમા
નથી તે ઉપશાન્ત ભાવ કહેવાય છે (૧૫)

હવે સૂત્રકાર આ ઉદ્દેશના અર્થનો ઉપસંહાર કરતા કહે છે—‘ એસ વિહી ’
ઈત્યાદિ

સ્વયં જનનાદિ કાર્યોં સે નિવૃત્ત હોફર દૂસરોં કો મી મા જન-મા જન-
‘મત મારો-મત મારો’ હસ પ્રકાર કહ કર વનસે નિવૃત્ત કરાનેવાહે,
તથા જેય ઔર ઉપાદેયકે ચિલેકસે યુક્ત, ઇયં મર્ચયા અપ્રતિજ્ઞ-નિવાનરહિત
પેસે મીવર્ધમાનસ્વામીને હસ પૂર્વોક્ત આચારકા સ્વયં પાલન ક્રિયા, અતઃ
હસી તરહસે અન્ય મોક્ષસાધક સાધુજન મી અપને સમસ્ત કર્મોંકા નાશ
કરનેકે લિયે સંયમ માર્ગમેં ચિચરણ કરેં । અર્થાત્ હસી પ્રકારસે હસ
ચિધિકા પાલન કર અન્ય મોક્ષાભિલાષી સાધુજન મી અપને કર્મોંકા
નાશ કરનેકે લિયે સંયમમાર્ગમેં લલ્લીન બનેં । ‘હિતિ વ્રતીમિ’ હે જમ્બૂ !
જેસા મેંને મગધાનસે સુના હું વેસા હી કહતા હું, અપની કલ્પનાસે નહીં । ૧૬।

॥ નવથે અધ્યયનકા ત્રિતીય ઉદ્દેશ સમાપ્ત ॥ ૧-૨ ॥

સ્વયં જનનાદિ કાર્યોંથી નિવૃત્ત બની બીજાઓને પણ મા જન મા જન-
“મારો નહિં મારો નહિ” આ પ્રકારનું કહીને તેનાથી નિવૃત્ત કરાવનાર
વધા હેય અને ઉપાદેયના વિલેકથી મુક્ત બને સર્વથા નિવાનશૂન્ય, જેવા મીવર્ધ
માન સ્વામાએ આ પૂર્વોક્ત આચાર સ્વયં પાલન કરેલ માટે આ રીતે બીજા
મોક્ષસાધક સાધુજન પણ પોતાના સમસ્ત કર્મોંના નાશ કરવા માટે સંયમ
માર્ગમાં વિચરણ કરે અર્થાત્ જેવા પ્રકારથી જેવી વિધિનું પાલન કરી બીજા
મોક્ષાભિલાષી સાધુજન પણ પોતાના કર્મોંના નાશ કરવા માટે સંયમ માર્ગમાં
લલ્લીન બને. ‘હિતિ વ્રતીમિ’ હે જમ્બૂ ! જેવું મેં જગપાનથી સાંભળ્યું તેવુંજ
હું હું પોતાની કલ્પનાથી નહિ (૧૬)

નવમા અધ્યયનનો બીજો ઉદ્દેશ સમાપ્ત ॥ ૬-૨ ॥



॥ अथ नवमाध्ययनस्य तृतीय उद्देशः ॥

इहानन्तरद्वितीयोद्देशके भगवतः शय्यासनानि कथितानि । तत्रावस्थितेन ये परीषदा उपसर्गाश्च यथा भगवता सोढास्तत्प्रतिबोधनार्थं तृतीयमुद्देशकं कथयन् भगवतस्तृणस्पर्शादिसहनमाह—‘तणफासे’ इत्यादि ।

मूलम्—तणफासे सीयफासे य, तेउफासे य दंसमसगे य ।

अहियासए सया समिए, फासाइं विरूवरूवाइं ॥१॥

छाया—तृणस्पर्शान् शीतस्पर्शाश्च, तेजःस्पर्शाश्च दशमशकाश्च ।

अध्यास्ते सदा समितः, स्पर्शान् विरूपरूपान् ॥ १ ॥

टीका—सदा—सर्वकाले समितः=सम्यग्भावं गतः, यद्वा—समितिसमन्वितः,

भगवान् आतापनादिकाले तृणस्पर्शान्=कुशादिस्पर्शान्, शीतस्पर्शाश्च, तथा तेजः—

नववें अध्ययनका तीसरा उद्देश ।

इससे पहिले द्वितीय उद्देशमें सूत्रकारने भगवान् श्री वीर-प्रभुके शयन और आसनोका वर्णन किया है । उस उद्देशमें यह कहा गया है कि उस अवस्थामें रहे हुए प्रभुने अनेक प्रकारके उपसर्ग और परीषहोंको सहा है । इस तृतीय उद्देशमें सूत्रकार यह स्पष्ट करेंगे कि किस २ प्रकारके उपसर्ग और परीषहोंको प्रभुने सहा है ? अतः सर्व प्रथम तृणस्पर्श आदि परीषहोंके सहन करनेके विषयमें सूत्रकार कथन करते हैं—‘तणफासे’ इत्यादि ।

सम्यग्भाव, या पांच समितिसे युक्त वे प्रभु आतापना आदिके समयमें अनेक प्रकारके तृणस्पर्शजन्य कष्टोंको, शीतस्पर्शजन्य दुःखोंको,

नवमा अध्ययननो त्रींजे उद्देश

આ ત્રીજા ઉદ્દેશથી પહેલા બીજા ઉદ્દેશમા સૂત્રકારે ભગવાન શ્રી વીરપ્રભુના શયન અને આસનોનું વર્ણન કરેલ છે તે ઉદ્દેશમા એવું બતાવ્યું છે કે તેવી અવસ્થામા રહેલા પ્રભુએ અનેક પ્રકારના પરિષદ અને ઉપસર્ગો સહ્યા છે આ ત્રીજા ઉદ્દેશમા સૂત્રકાર એ સ્પષ્ટ કરશે કે ભગવાને કેવા કેવા પરિષદ અને ઉપસર્ગો સહન કર્યા છે આથી સર્વ પ્રથમ તૃણસ્પર્શ આદિ પરિષદો સહન કરવાના વિષયનું સૂત્રકાર કથન કરે છે—‘તણફાસે’ ઇત્યાદિ

સમ્યગ્ભાવ, અને પાંચ સમિતિથી યુક્ત તે પ્રભુ આતાપના આદિના સમયમા અનેક પ્રકારના તૃણસ્પર્શજન્ય કષ્ટોને, ઠંડીના ત્રાસજન્ય દુઃખને,

स्पर्शान्=उष्णस्पर्शान्, तथा दशमशकान्=दशमशकवृत्तनभनिततीव्रदु सहस्पर्शान्,
एतान् विरूपरूपान्=अनेकप्रकारकाम् स्पर्शान् अभ्यास्ते=सहवेस्म ॥१॥

फिर—‘अहं’-स्यादि।

मूत्रम्—अहं बुद्धरलाहमचारी, वज्रमूर्मिं च सुब्रमूर्मिं च ।

पत सिउज सेर्विसु आसणगाणि चेष पताणि ॥२॥

छाया—अहं बुद्धरलाहमचारीत् वज्रमूर्मिं च सुब्रमूर्मिं च ।

प्रान्तां श्रय्यामसेविट, आसनकानि चेष प्रान्तानि ॥२॥

टीका—अहं=अनन्तरम् भगवान् बुद्धरलाहं=दुर्गमं लाहनाम्ना प्रसिद्धं देशविश्लेषम्, अचारीत्=मगात् । लाहं=द्वो द्विविधभूमिकाः, वज्रभूमिकाः सुब्रभूमिकेति तत्र द्विविधेऽपि देशे भगवान् बिहारं कृतवान् इत्याह—‘वज्रभूमिं च’-त्यादि। वज्रभूमिं तथा सुब्रभूमिं च=लाहान्तर्गतदेशविश्लेषम् अचारीदित्यन्वयः । तत्र च ‘प्रान्ताम्=भमनां जीर्णान्यमुहादिरूपां विविधापद्रव्युक्तां, श्रय्यां=वसतिं प्रान्तानि च उष्णस्पर्शजन्यं व्यथाभोको, औरं दशमशक आदिके काटनेसे उत्पन्न हई तीव्र-दु सह पीडाओंको सहते ये ॥१॥

फिर—‘अहं बुद्धर०’ इत्यादि।

भगवान् अनेक प्रकारके परीषद् और उपमर्गोंको सहते हुए बिहार करते २ जिस देशमें प्रवृत्ति करना मुश्किल है ऐसे लाह देशमें पहुँचे । वहाँपर वज्रभूमि और सुब्रभूमि इस प्रकार दो प्रकारकी भूमियाँ हैं । भगवान् ने इन दोनोंमें बिहार किया । इस बिहारमें उन्हें प्रान्त-भमनोद्-जीर्ण एवं शूयघररूप अनेक प्रकार के उपद्रवोंसे युक्त छाया-वसति, और धूलि आदिसे परिपूर्ण-घूमरित एवं दूटे छूटे काट

उष्णस्पर्शजन्य व्यथाभोको, और दशमशक आदिके काटनेसे उत्पन्न हई तीव्र असह्य पीडाओंको सहते रहता होता (१)

इसी—अहं बुद्धर इत्यादि।

भगवान् अनेक प्रकारका परिषद् और उपमर्गोंमें सहता सहता बिहार करता करता वे देशोंमें प्रवेश करवा मुश्किल है जेवा अनाथ लाह देशमें पहुँचा त्या वज्रभूमि और सुब्रभूमि आ प्रकारका वे जाये है भगवान् ने भमनेमें बिहार कर्वा । आ बिहारमा तेमने प्रा-त-भमनोद्-लपु जेटके पठार जेवा शून्य पथमा अनेक प्रकारका उपद्रवोंकी युक्त छाया-वसती और पूजा

ધૂલિર્શર્કરાલોષ્ટાદિપૂર્ણાનિ, દુર્ઘટિતકાષ્ઠાનિ આસનકાનિ ફલકાદીનિ ચ ભગવાનસેવિષ્ટ ॥ ૨ ॥

કિંચ્ચ—લાઢનામકેષુ દેશવિશેષેષુ ભગવતો વહવઃ પ્રતિકૂલા ઉપસર્ગાં વમ્ભુવુસ્તાન્ ભગવાન્ સહતેસ્મ, ઇત્યાહ—‘લાઢેહિં’ ઇત્યાદિ।

મૂલમ્—લાઢેહિં તસ્સુવસગ્ગા, બહવે જાણવયા લ્હસિંસુ ।

અહ લ્હદેસિયમત્તે, કુવ્કુરા તત્થ હિંસિંસુ નિવહંસુ ॥૩॥

છાયા—લાઢેષુ તસ્યોપસર્ગાં વહવો જાનપદા અલ્હપિપુઃ ।

અથ રુક્ષદેશ્યં ભક્તં કુકુરાસ્તત્ર જિહિંસુઃ નિપેતુ ॥ ૩ ॥

ટીકા—લાઢેષુ=લાઢાણ્યેષુ દેશવિશેષેષુ, તસ્ય=ભગવતઃ, વહવઃ=વહુવિધાઃ, ઉપસર્ગાઃ પ્રતિકૂલરૂપાઃ વમ્ભુવુઃ । તાન્ કથયતિ—“ જાણવયા ” ઇત્યાદિ । જાનપદાઃ=જનપદે ભવાઃ—તદેશીયા દુશ્વરિત્તિ અનાર્યા લોકાઃ અલ્હપિપુઃ=ઉલ્મુકદળદળાદિભિર્ભગવન્તમતાહયન્ । અથ=અપિ ચ તત્ર રુક્ષદેશ્ય=રુક્ષરૂપમ્ વિગતરસમ્

આદિવાલે આસન-ફલક વગેરહ મિલે, જિન્હેં પ્રમુને સમભાવસે અપને ઉપયોગમેં લિયા ॥ ૨ ॥

ઇસ લાઢનામકે દેશમેં ભગવાનકો વહુત અધિક પ્રતિકૂલ ઉપસર્ગ સહને પડે, ઇસ વાતકો વતલારનેકે લિયે સૂત્રકાર કહતેહેં—‘લાઢેહિં’ ઇત્યાદિ।

ઇસ લાઢ નામકે દેશવિશેષમેં ભગવાનને અનેક પ્રકારકે ઉપસર્ગોંકો સહા । જૈસે-ઉસ દેશકે અનાર્ય મનુષ્યોંને ભગવાનકે ઉપર ઉલ્મુક-મશાલદળદળાદિ શસ્ત્ર આદિ દ્વારા અનેક પ્રકારસે પ્રહાર કિયે-ઉન્હેં મારે-પીટે । વહાં ઉન્હેં અન્ત પ્રાન્ત આહાર મિલા । વહાંકે કુત્તોંને મી ભગવાનકે શરીરકો અપને તીક્ષ્ણ દાંતોં દ્વારા વિવિધરૂપસે ક્ષત-

વગેરેથી પરિપૂર્ણ એવા ધુળીયા મકાન જેનો તુટેલ કુટેલ કાઠમાળ છે, અને એવાજ આસન-ફલક વગેરે મળેલા જેને પ્રભુએ સમભાવથી પોતાના ઉપયોગમા લીધેલ (૨)

આ લાઢ નામના દેશમા ભગવાનને ધણા જ પ્રતિકૂળ ઉપસર્ગોં સહેવા પડેલા આ વાત બતાવવા માટે સૂત્રકાર કહે છે—‘લાઢેહિં’ ઇત્યાદિ

આ લાઢ નામના દેશવિશેષમા ભગવાને અનેક પ્રકારના ઉપસર્ગોં સહ્યા જેમ-તે દેશના અનાર્ય મનુષ્યોએ ભગવાન ઉપર ઉલ્મુક-મશાલ, દડ, અસ્ત્ર શસ્ત્ર વગેરેથી અનેક પ્રકારે પ્રહારો કર્યા-એમને માર્યા-પીટ્યા ત્યા તેમને અન્ત પ્રાન્ત આહાર મળેલ ત્યા કુતરાઓએ પણ ભગવાનના શરીરને પોતાના તીક્ષ્ણ

अन्तमान्त भक्तम्=अग्रम्, भगवता लब्धम्। तत्र कुकुराः=धान, निर्हिसुः=भगवतः
शरीरं दन्तैर्भिच्छिद्युः, उपरि च निपतुः=आरोहन्त ॥ ३ ॥

हिं—‘अप्ये’ इत्यादि।

मृतम्—अप्ये जणे निवारद्, लूसणए सुणए दसमाणे ।

लुलुकरसि आहतु, समण कुक्कुरा दसतु—त्ति ॥४॥

छाया—अग्नो जना निवारयति रूपकान् भुनक्तान् दधतः ।

छु-छु कुर्वन्ति आस्य ‘भमम् कुकुरा दधन्तु’ इति ॥ ४ ॥

टीका—यः रूपकान्=अश्वत्थवृक्षादिभिर्मग्नतो हिमकान् जनान्, दधतः=भगवद्भाष्ये दन्तैश्छेद्यत भुनक्तान्=कुकुरान् निवारयति=दूरीकराति, तादृशो जनस्तत्र अरपः=होषि नासीदित्यर्थः, अश्वत्थवृक्षोऽयमावार्थिकः’ मृत्युत जना आस्य=तादृशित्वा “भमम्=एनं मुग्धिनं कुकुरा दधन्तु” इतीच्छया छु-छु कुर्वन्ति=दधन्ताय कुक्कुरान् भेरयन्ति स्म-भगवन्त कुकुरैर्दधयामासुरित्यर्थः । एन-मृत्युते प्रतिष्ठापसर्गकारकं दध भगवान् पश्चात्पर्यन्तमवतस्यौ ॥४॥

विक्षत किया । भगवानको दसकर वे कुचे उन्हें काट खाते और उनके क्कर चढजाते ॥३॥

और भी—‘अप्ये जणे’ इत्यादि ।

उस दधामें ऐसा कोई भी मनुष्य नहीं था जो भगवानको मारने वालोंसे तथा कान्ने खाके कुत्तोंसे पचाता । उससे बड़कि लोग इसी भावनासे कि ‘इस मुग्धित भ्रमणका कुत्ते काट खावें’ ऐसा विचार कर उनपर कुत्तोंको छुछकारते और उनसे उन्हें फटवाते । इस प्रकार इस प्रतिकूल अवस्थावाले दधामें भी भगवानने छ महीने तक बिहार किया ॥४॥

छितीथी लुडे लुडे स्थले गटका क्षेत्वा भगवानने जेत्याज्जे जे जेमना पश्चिमी
आवत्ता अने गटका क्षेत्वा (३)

हरी—अप्ये जणे इत्यादि।

जो देशमां जेवो कोछ पक्ष मायुच न कतो के ने भगवानने भास्वावा
जाम्भेथी के करकत्ता कुत्तजाम्भेथी जवावे, उठटा तर्जना दोहो जेवी आवनावाज्जा
कत्ता के आ मुग्धित साधुने कुत्तजाम्भेथी करी जाय जेवा विचारथी कुत्तजाम्भेथी
तेमना उपर दधकारीने करकववा माटे छिती मुक्कत्ता, जवावा प्रतिकूल अवस्थावाज्जा
देशमां पक्ष भगवानने छ महीना मुधी विकार कर्षो. (४)

ધૂલિર્શર્કરાલોષ્ટાદિપૂર્ણાનિ, દુર્ઘટિતકાષ્ઠાનિ આસનકાનિ ફલકાદીનિ ચ ભગ-
વાનસેવિષ્ઠ ॥ ૨ ॥

કિન્નર—લાઢનામકેષુ દેશવિશેષેષુ ભગવતો વહવઃ પ્રતિકૂલા ઉપસર્ગા વમ્ભુવસ્તાન્
ભગવાન્ સહતેસ્મ, ઇત્યાહ—‘લાઢેહિં’ ઇત્યાદિ।

મૂલમ્—લાઢેહિં તસ્સુવસગ્ગા, વહવે જાણવયા લૂસિંસુ ।

અહ લૂહ દેસિયમત્તે, કુકુરા તત્થ હિંસિંસુ નિવહંસુ ॥૩॥

છાયા—લાઢેષુ તસ્યોપસર્ગા વહવો જાનપદા અલ્પિપુઃ ।

અથ રૂક્ષદેશ્યં ભક્તં કુકુરાસ્તત્ર જિહિંસુઃ નિપેતુ ॥ ૩ ॥

ટીકા—લાઢેષુ=લાઢારૂપેષુ દેશવિશેષેષુ, તસ્ય=ભગવતઃ, વહવઃ=વહુવિધાઃ,
ઉપસર્ગાઃ પ્રતિકૂલરૂપાઃ વમ્ભુવઃ । તાન્ કથયતિ—“ જાણવયા ” ઇત્યાદિ । જાન-
પદાઃ=જનપદે ભવાઃ—તદેશીયા દુશ્વરિત્રા અનાર્યા લોકાઃ અલ્પિપુઃ=ઉલ્મુકદણ્ડપ્રહા-
રાદિર્ભગવન્તમતાહયન્ । અય=અપિ ચ તત્ર રૂક્ષદેશ્ય=રૂક્ષકલ્પમ્ વિગતરસમ્

આદિવાલે આસન-ફલક વગેરહ મિલે, જિન્હેં પ્રભુને સમભાવસે અપને
ઉપયોગમેં લિયા ॥ ૨ ॥

ઇસ લાઢનામકે દેશમેં ભગવાનકો વહુત અધિક પ્રતિકૂલ ઉપસર્ગ
સહને પડે, ઇસ વાતકો વતલારનેકે લિયે સૂત્રકાર કહતેહેં—‘લાઢેહિં’ ઇત્યાદિ।

ઇસ લાઢ નામકે દેશવિશેષમે ભગવાનને અનેક પ્રકારકે ઉપસ-
ર્ગોંકો સહા । જૈસે—ઉસ દેશકે અનાર્ય મનુષ્યોંને ભગવાનકે ઉપર ઉલ્મુક
—મશાલદણ્ડ ઓર અસ્ત્ર શસ્ત્ર આદિ દ્વારા અનેક પ્રકારસે પ્રહાર કિયે-
ઉન્હેં મારે-પીટે । વહાં ઉન્હેં અન્ત પ્રાન્ત આહાર મિલા । વહાંકે કુત્તોંને
મી ભગવાનકે શરીરકો અપને તીક્ષ્ણ દાંતોં દ્વારા વિવિધરૂપસે ક્ષત-

વગેરેથી પરિપૂર્ણ એવા ધુળીયા મકાન જેનો તુટેલ કુટેલ કાઠમાળ છે, અને એવાજ
આસન-ફલક વગેરે મળેલા જેને પ્રભુએ સમભાવથી પોતાના ઉપયોગમા લીધેલ (૨)

આ લાઢ નામના દેશમા ભગવાનને ધણા જ પ્રતિકૂળ ઉપસર્ગોં કહેવા
પડેલા આ વાત બતાવવા માટે સૂત્રકાર કહે છે—‘લાઢેહિં’ ઇત્યાદિ

આ લાઢ નામના દેશવિશેષમા ભગવાને અનેક પ્રકારના ઉપસર્ગોં સહા
જેમ—તે દેશના અનાર્ય મનુષ્યોંએ ભગવાન ઉપર ઉલ્મુક-મશાલ, દડ, અસ્ત્ર
શસ્ત્ર વગેરેથી અનેક પ્રકારે પ્રહાર કર્યા—એમને માર્યા-પીટ્યા ત્યા તેમને અન્ત-
પ્રાન્ત આહાર મળેલ ત્યા કુતરાઓએ પણ ભગવાનના શરીરને પોતાના તીક્ષ્ણ

મગધદાહાનુવર્તિનાં સાધુનાં તુ સ્થિરાવસ્થામન્તરેણ ન કલ્પયેત્ વૃષ્ણધારણં,
તથા ધોક્તં વ્યવહારમૃત્રે (૩૦૮) “ધેરાણં ધેરમૂમિપત્તાણં કપ્પહ્ વૃષ્ણ વા૦”
इत्यादि; अत्र ‘धेराणं’ इत्युपलक्षणं रोगिग्लानानाम्, स्थिरादेस्त्यत्र
वृष्णधारणं न युक्तं, भय-हिंसा-जनकत्वाद्यगमाविहितत्वाच्च, अत एवाग्रे “निहाय

उत्तर—वहाँ पर ये साधु कुत्सा आदिको भगाने या उ-हैं लाडनेके
लिये अपने हाथोंमें अपन शरीरप्रमाण वृष्ह और अपने शरीरसे
चार अंगुल अधिक ऊँची नलिका-इण्डबिंदोष पासमें रखते हैं, और
विचरण करते रहते हैं।

शंका—भगवानने भी क्यों नहीं वहाँ बिहार करते समय अपने
हाथमें वृष्ह आदि रक्खा?

उत्तर—स्थिर-वृद्ध अवस्थाके सिवाय वृष्ह धारण करनेकी आज्ञा
भगवानके शासनमें रहने वाले साधुओंके सिद्धान्तमें नहीं है, अतः
भगवानने भी उस समय वहाँ वृष्ह आदि पासमें नहीं रखा, व्यवहार
सूत्रमें भी यही कहा है—

“धेराणं धेरमूमिपत्ताणं कप્पह् वृष्ह वા૦” इत्यादि। इस सूत्रमें
‘धेराणं’ यह पद रोगी ग्लान अवस्थाका भी उपलक्षक है, अतः स्थिरादि
अवस्थाके सिवाय अन्य अवस्थाओंमें वृष्हका धारण करना युक्त नहीं
माना गया है, क्योंकि एक तो वृष्हका धारण करना अन्यजीवोंको भयफ
जनक तथा हिंसाका जनक होना है, दूसरे इस प्रकारका शास्त्रमें इसके

ઉત્તર—તે સ્થળે તેવા સાધુ કુતલ વજેરેને એ ભાવના માટે અને તેને
ભાવના માટે પોતાના કાષ્ઠમાં પોતાના શરીરમાંથી લાકડી અને પોતાના શરી
રથી ચાર અંગુળ ઓટી એવો ૬૬ રાજે છે અને વિદ્યાર કરે છે

શંકા—ભગવાને પણ એ રીતમાં વિદ્યાર કરતાં પોતાના કાષ્ઠમાં ૬૬-લાકડી
વજેરે કેમ ન રાખ્યા?

ઉત્તર—વૃદ્ધ અવસ્થા સિવાય ૬૬ ખાતણ કરવાની આજ્ઞા ભગવાનના શાસ-
નમાં રહેવાવાળા સાધુઓના સિદ્ધાંતમાં નથી માટે ભગવાને પણ તે સમય તે
સ્થળે ૬૬ વજેરે થાસે રાખેલ ન હતાં અવધાર સૂત્રમાં પણ એ જ કહેલ છે—

“ધેરાણં ધેરમૂમિપત્તાણં કપ્પહ્ વૃષ્ણ વા૦” इत्यादि.

એ સૂત્રમાં “ધરાણ” આ પદ રોગી ગ્લાન અવસ્થાનું ઉપલક્ષક છે માટે
સ્થિર આદિ અવસ્થા સિવાય અન્ય અવસ્થાઓમાં ૬૬ ને ખાતણ કરવા એ યુક્ત માનેલ
નથી, કેમકે એક તો ૬૬ ને ખાતણ કરવો તે બીજા છવોને અયજનક તથા
હિંસાને પ્રોત્સાહન આપનાર છે બીજી શાસ્ત્રમાં ૬૬ ખાતણ કરવાનું કહ્યું પણ

કિન્ન—‘एलिक्खए’ इत्यादि।

मूलम्—एलिक्खए जणा भुज्जो, वहवे वज्जभूमि परुसासी।

लट्ठिं गहाय नालियं, समणा तत्थ य विहरिंसु ॥५॥

છાયા—ईदृक्षा जना भूयो वहवो वज्रभूमौ परुपाशिन।

यष्टिं गृहीत्वा नालिका श्रमणास्तत्र च विजहुः ॥ ५ ॥

टीका—ईदृक्षा=उक्तविधा; जना यत्रासन्, तत्र देशे भगवान् भूयः=मनुष्यः विहरतिस्म। तत्र लाढदेशे वज्रभूमौ=वज्रभूमिनाम्नि देशविशेषे वहवो जनाः परुपाशिन=तुच्छभोजिनः, अत एव क्रोधस्वभावाः सन्ति तेन ते साधुमवलोक्य कुकुरादिभिः कदर्शयन्ति। नन्वेव कुकुरादिभिः साधुरुदर्यने तत्रत्याः शाक्यादयः कथं तत्र विचरुः? इति जिज्ञासायामाह—‘यष्टि’—मित्यादि। तत्र च श्रमणाः=अन्ये-शाक्यादयः श्वादिनिवारणार्थं यष्टिं=स्वदेहप्रमाण दण्डं नालिका=स्वदेहाच्चतुरङ्गुलाधिकप्रमाणं दण्डं वा गृहीत्वा विजहुः=विचरन्तिस्म।

और भी—‘एलिक्खए जणा’ इत्यादि।

यद्यपि इस प्रकारके ही बहुतसे मनुष्य वहां थे तो भी भगवानने वहां विहार बंद नहीं किया—प्रत्युत वे बार-बार वहीं पर विचरते और प्रतिकूल परीषद् और उपसर्गोंको धैर्यके साथ शान्तचित्तसे सहन करते। वज्रभूमिमें बहुत मनुष्य तुच्छ आहार करते हैं, इसलिये उनके स्वभावमें क्रोध ही क्रोध सदा बना रहता है—वे बिना किसी निमित्तके भी सदा क्रोधसे भरे रहते हैं। ये साधु सत्तोंको देखकर द्वेष करते हैं और कुत्ते आदिकोंसे उन्हें व्यर्थमें कष्ट पहुँचाते हैं।

शका—यदि ऐसी बात है तो वहां पर शाक्यादि साधु कैसे विचरण करते हैं?

इरी—‘एलिक्खए जणा’ इत्यादि

જે કે એવા પ્રકારના માણસો ઘણા હતા તો પણ ભગવાને ત્યાનો વિહાર બંધ કરેલ ન હતો, અને તેઓ વારંવાર ત્યા વિચરતા અને પ્રતિકૂલ પરીષદ તથા ઉપસર્ગને ધૈર્ય સાથે શાન્ત રીતે સહન કરતા વજ્રભૂમિમા ઘણા મનુષ્યો તુચ્છ આહાર કરે છે જેનાથી તેના સ્વભાવમા ક્રોધજ ભરેલો રહે છે કેઈ પણ જાતના કારણ વગર પણ તેઓ ક્રોધયુક્ત જ રહે છે સાધુ સતોને જોઈ તેમના ઉપર દ્વેષ કરે છે અને કુતરાઓ વિગેરેથી તેમને હુ.ખ પહોંચાડે છે

શકા—આવી વાત છે તો ત્યા શાક્યાદિક સાધુ કઈ રીતે વિચરી શકે છે?

મગનદાઞ્જાનુવર્તિનાં સાધુનાં તુ સ્થવિરાવસ્થામન્તરેણ ન કલ્પતે દષ્ટપારણ, તથા ચોક્તં સ્વવહારમ્ (૩૦૮) “ચેરાણં ચેરમૂમિપત્તાણં કપ્પહ્ દંઢપ ઘા૦” ઇત્યાદિ; અથ ‘ચેરાણં’ ઇત્યુપલક્ષણ રોગિગ્લાનાનામ્, સ્થવિરાદસ્ત્યથ દષ્ટપારણં ન યુક્તં, મય-હિસા-અનકલ્પાદ્યાગમાવિહિસત્વાથ, અતઃ પચાગ્રે “નિશાય

ઉત્તર—યહાં પર ચે સાધુ કુલ્પા આવિકો મગાને યા ઠ હૈં તાઢનેકે તિપે અપમે હાયોમિં અપને શરીરપ્રમાણ દળ્ઢ ઓર અપને શરીરસે પાર અગુલ અધિક જંબી નલિકા-દળ્ઢવિશેષ પાસમેં રલ્પતે હૈં, ઓર વિષરણ કરતે રહતે હૈં ।

શંકા—મગધાનને મી કયોં નહીં યહાં વિહાર કરતે સમય અપને હાયમેં દળ્ઢ આદિ રલ્પસા ?

ઉત્તર—સ્થવિર—બુદ્ધ અવસ્થાકે સિવાય દળ્ઢ પારણ કરનેકી આજ્ઞા મગધાનકે શાસનમેં રહને બાહે સાધુઓંકે સિદ્ધાન્તમેં નહીં હૈં, અતઃ મગધાનને મી ડસ સમય યહાં દળ્ઢ આદિ પાસમેં નહીં રલ્પા, વ્યવહાર સૂત્રમેં મી યહી કહા હૈ—

“ચેરાણં ચેરમૂમિપત્તાણ કપ્પહ્ દંઢપ ઘા૦” ઇત્યાદિ । ઇસ સૂત્રમેં ‘ચેરાણં’ યહ પદ રોગી ગ્લાન અવસ્થાકા મી ઉપલક્ષક હૈ, અતઃ સ્થવિરાદિ અવસ્થાકે સિવાય અન્ય અવસ્થાઓંમેં દળ્ઢકા પારણ કરના યુક્ત નહીં માના ગયા હૈ, કયોં કિં ઇક તો દળ્ઢકા પારણ કરના અન્યજીવીઓં મયકા જનક તથા હિસાકા જનક હોના હૈ, ડસરે ઇસ પ્રકારકા શાસ્ત્રમેં ઇસકે

ઉત્તર—તે સ્થળે તેવા સાધુ કુતર વએરેને જે ભજવા માટે અને તેને માત્ર માટે પોતાના કાષ્ઠોમાં પોતાના શરીરપ્રમાણે લાકડી અને પોતાના શરીરથી આર આંગળ મોળી જેવો ઇંડ સળે છે અને વિહાર કરે છે

શંકા—ભજવાને પણ જે રેશમાં વિહાર કરવા પોતાના કાષ્ઠમાં ઇંડ-લાકડી વએરે કેમ ન શક્યા ?

ઉત્તર—બુદ્ધ અવસ્થા સિવાય ઇંડ પારણ કરવાની આજ્ઞા ભજવાના શાસનમાં રહેવાવાળા સાધુઓના સિદ્ધાંતમાં નથી, માટે ભજવાને પણ તે સમય તે સ્થળે ઇંડ વએરે પાસે સળેલ ન હતાં. અવહાર સૂત્રમાં પણ જે જ કહેલ છે—

“ચેરાણં ચેરમૂમિપત્તાણ કપ્પહ્ દંઢપ ઘા ૦” ઇત્યાદિ.

જે સૂત્રમાં “ચેરાણ” આ પદ રોગી ગ્લાન અવસ્થાનું ઉપલક્ષક છે, માટે સ્થવિર આદિ અવસ્થા સિવાય અન્ય અવસ્થાઓમાં ઇંડને પારણ કરવા જે મુદ્દા માનેલ નથી, કેમકે જેકે તો ઇંડને પારણ કરવો તે બીજા જીવોને લપકનક તથા હિસાને પ્રીત્સાહન આપનાર છે. બીજી શાસ્ત્રમાં ઇંડ પારણ કરવાનું કહી પણ

દંડ' પાળેહિંન્દ્રત્યપિ વદતા ભગવતા દણ્ડધારણ સ્વયમનાચરિતં, મુનીના ચ દણ્ડ-
ધારણપ્રતિપેધાયોપદિષ્ટમિતિ સુસ્પષ્ટં જ્ઞાયતે । યે તુ દણ્ડિનઃ 'સર્વાવસ્થાયાં
દણ્ડધારણં મુનિરુત્પન્નઃ' ઇતિ મત્વા સર્વદા દણ્ડેન સહ વર્તન્તે તદેતત્તેષા પ્રવલમોહ-
વિજૃમ્ભણમાત્રમ્ ॥૫॥

કિંચ—'એવં પિ' ઇત્યાદિ ।

મૂલમ્—એવં પિ તત્થ વિહરંતા, પુટ્ટપુઠ્ઠવા અહેસિ સુણણ્હિં ।

સંલુચમાણા સુણણ્હિં, દુચ્ચરાણિ તત્થ લાઢેહિં ॥૬॥

છાયા—એવમપિ તત્ર વિહરન્તઃ સ્પૃષ્ટપૂર્વા આસન્ શુનકૈઃ ।

સલુચ્યમાના શુનકૈઃ દુશ્ચરાણિ તત્ર લાઢેપુ ॥ ૬ ॥

રખવેના કોઈ વિધાન મી નહીં હૈ "નિહાય દડ પાળેહિં" ઇસ સૂત્રાંશસે
આગે ચલકર ભગવાનને યહી સ્પષ્ટ કિયા હૈ, અતઃ ઇસ અવસ્થામે
દણ્ડકા ધારણ અયોગ્ય સમજ્ઞ શ્રી વીરપ્રભુને મી દણ્ડ ગ્રહણ નહીં કિયા ।
જવ અન્ય મુનિજનોંકો મી પૂર્વોક્ત અવસ્થાઓંકે અતિરિક્ત દણ્ડ ધારણ
કરનેકી વીરપ્રભુકી આજ્ઞા હી નહીં હૈ, તો વિચારનેકી વાત હૈ કિ વે
પ્રભુ સ્વયં દણ્ડ કૈસે ગ્રહણ કર સકતે થે । જો લોગ યહ સમજ્ઞકર
કિ દણ્ડ ધારણ કરના મુનિયોંકા કલ્પ હૈ સદા દણ્ડ ધારણ કરતે હૈં યહ
ઉનકી માન્યતા શાસ્ત્રીય માર્ગસે સર્વથા પ્રતિકૂલ હૈ, તથાપિ દણ્ડ રખતે હૈં
ઇસકા કારણ સિર્ફ પ્રવલ મોહકા હી વિલાસ જાનના ચાહિયે ॥૫॥

ઔર મી—'એવં પિ' ઇત્યાદિ ।

વિધાન નથી "નિહાય દડ પાળેહિં" આ સૂત્રાંશથી આગળ ચાલી ભગવાને એ
સ્પષ્ટ કરેલ છે માટે એ અવસ્થામા દડ ધારણ કરવો એ અયોગ્ય સમજ
વીર પ્રભુએ દડ ધારણ કરેલ ન હતો જ્યારે બીજા મુનિઓને માટે પણ પૂર્વોક્ત
અવસ્થાઓના અતિરિક્ત દડ ધારણ કરવાની વીર પ્રભુની આજ્ઞા નથી ત્યારે
વિચારવાની એ વાત છે કે જ્યા બીજાને માટે દડ ગ્રહણ કરવાની આજ્ઞા નથી ત્યા
પ્રભુ પોતે દડ શી રીતે ધારણ કરી શકે? બે હોડો દડ રાખે છે તે એણે સમજે છે
કે દડ રાખવો તે મુનિઓનો કલ્પ છે તેથી સદા દડ ધારણ કરે છે એમની
એ માન્યતા શાસ્ત્રીય માર્ગથી તદ્દન વિરુદ્ધની છે તો પણ દડ રાખે છે, આમ
કારણ કેવળ પ્રબળ મોહનો વિલાસજ સમજવો જોઈ એ (૫)

ફરી—"એવં પિ" ઇત્યાદિ

ટીકા—તપ્ત=કાઠવેશો પશ્યમપિ=ચાહ્યાદિગ્રહણેનાપિ વિહરન્તઃ ભ્રમણા=અન્યે
શાસ્ત્રાદયા, શુનકૈઃ=કુકુરોઃ સ્પૃશ્વપૂર્ણા=સ્પૃશ્વપૂર્ણા આસન્ । તથા શુનકૈઃ સત્સુખ્ય-
માના=ઇત્યેતદ્ધ ગયત્રે મદ્યમાયાઃ આસન્ । દષ્ટૈર્ધાર્યમાણા અપિ તપ્તસ્યાઃ શ્વાનાઃ
પરિનિષ્ઠા ન મવન્તીતિ માયાઃ, અતઃ એવ તપ્ત=તેણે કાઠેણ દુધરાશિ=સર્વાં દુર્ગ-
માનિ ગ્રામાવીનિ સન્તીત્યર્થ ॥ ૬ ॥

‘અન્યે ભ્રમણા યષ્ટ્યાદિકં શૂરીત્વા પિચ્છુઃ’ ઇત્યુક્તમ્, મગવાન્ કયં તપ્ત
કાઠેણ પિહારમકરોદિતિ વર્ણયિતુમાર્—‘નિહાય દઢં’ ઇત્યાદિ ।

મૂલ્ય—નિહાય દઢ પાળેઈં ત કાર્ય વોસિરિજ્જ મળગારે ।

અહ ગામકટપ્ ભગવતે, અહિઆસપ્ અભિસમિચ્છા ॥૭॥

અર્થ—નિહાય દઢં પ્રાણિયુ તં કાર્ય વ્યુત્સુજ્યાનગારઃ ।

અથ ગ્રામકટકાન્ મગવાનખ્યાસ્ત અભિસમત્ય ॥ ૭ ॥

ઉસ કાઠવેશમેં ફતમે ચલિષ્ઠ કુષે હેં ફિ રંજા હાપમેં છેકર મી
ચિચરણ કરનેચાલે અન્ય શાક્યાદિક અમળ ઉનકો મગાતે તો મી બે
છપકકર છૂમ જાતે ઓર કાઠ છાતે હેં પહિલે મી ફનકો ઉન્હોને કઈપાર
કાઠ છાપ્યા હે । બહાકે ગ્રામ ફન કુર્તીસે ફી દુર્ગમ યને કુપ હેં । અતઃ
અપરિચિત કોઈ મી અપ્તિ વહાં નહી જા સક્ષતા ॥૬॥

જય અન્ય સાધુજન વળ્લાવિસે સજ્જ હોકર વહાં ચિચરણ કરતે હે
તપ મગવાન્ બીર પ્રમુને કેસે વહાં પિહાર કિયા ? ફસ વિપયકો સૂત્રકાર
સ્પષ્ટ કરતે હે—‘નિહાય દઢં’ ઇત્યાદિ ।

મગવાનને ઉસ કાઠવેશમેં પિહાર કરતે સમય અનેક પ્રકારકે પરી
પદ્ધ ઓર ઉપસર્ગોકો કર્મોકી નિર્જરાકા કારણ માન યહે ફી પેર્ય ઓર

લાઠ દેશમાં જોવા બળવાન કુતરા હોય છે કે કાશમાં હઠ લાઠને વિચ
રણ કરવાવાળા શાક્યાદિક અમળ જોને બગાડે છતાં તે સામે કુદીને કરડે છે.
અગાઉ પણ વળા શાક્યાદિક અમળોને જો કુતરાઓએ કરડી ખાધા છે ત્યાંના
ગામડાં આ કુતરાઓથી દુર્ગમ રહે છે એટલે અપરિચિત કોઈ પણ વ્યક્તિ ત્યાં
જઈ શકતી નથી. (૬)

અર્થે અન્ય સાધુજન હઠ વગેરેથી સજ્જ થઈ ત્યાં વિચરણ કરે છે ત્યારે
બળવાન બીર પ્રમુએ ત્યાં વિકાર કઇ રીતે કર્યો ? આ વિષયને સૂત્રકાર સ્પષ્ટ
કરે છે— નિહાય દઢં ’ ઇત્યાદિ.

જો લાઠ દેશમાં વિકાર કરતી વળતે બળવાને અનેક પ્રકારના પરિવહ
અને ઉપસર્ગોને કર્યોની નિજ શત્રુ કારણ માની પુણ વાં મિર્ષ અને સમજાવ સાથે
હઠ

દંડ' પાણેહિં^૦ઇત્યપિ વદતા ભગવતા દણ્ડધારણં સ્વયમનાચરિતં, મુનીનાં ચ દણ્ડ-
ધારણપ્રતિપેધાયોપદિષ્ટમિતિ સુસ્પષ્ટ જ્ઞાયતે । યે તુ દણ્ડિનઃ 'સર્વાવસ્થાયાં
દણ્ડધારણં મુનિકલ્પઃ' ઇતિ મત્વા સર્વદા દણ્ડેન સદ્ વર્તન્તે તદેતત્તેષા પ્રવલમોહ-
વિજૃમ્ભણમાત્રમ્ ॥૫॥

કિञ્ચ—'એવં પિ' ઇત્યાદિ ।

મૂલમ્—એવં પિ તત્થ વિહરંતા, પુટ્ટપુઠ્ઠા અહેસિ સુણણ્હિં ।

સંલુચમાણા સુણણ્હિં, દુચ્ચરાણિ તત્થ લાઢેહિં ॥૬॥

છાયા—એવમપિ તત્ર વિહરન્તઃ સ્પષ્ટપૂર્વાં આસન્ શુનકૈઃ ।

સલુચ્યમાના શુનકૈઃ દુશ્વરાણિ તત્ર લાઢેષુ ॥ ૬ ॥

રખનેકા કોઈ વિધાન બી નહીં હૈ “નિહાય દડ પાણેહિ ” ઇસ સૂત્રાંશસે
આગે ચલકર ભગવાનને યહી સ્પષ્ટ ક્રિયા હૈ, અતઃ ઇસ અવસ્થામે
દણ્ડકા ધારણ અયોગ્ય સમજ્ઞ શ્રી વીરપ્રભુને બી દણ્ડ ગ્રહણ નહીં કિયા ।
જવ અન્ય મુનિજનોંકો બી પૂર્વોક્ત અવસ્થાઓંકે અતિરિક્ત દણ્ડ ધારણ
કરનેકી વીરપ્રભુકી આજ્ઞા હી નહીં હૈ, તો વિચારનેકી યાત હૈ કિ વે
પ્રભુ સ્વય દણ્ડ કૈસે ગ્રહણ કર સકતે થે । જો લોગ યહ સમજ્ઞકર
કિ દણ્ડ ધારણ કરના મુનિયોંકા કલ્પ હૈ સદા દણ્ડ ધારણ કરતે હૈં યહ
ઉનકી માન્યતા શાસ્ત્રીય માર્ગસે સર્વથા પ્રતિકૂલ હૈ, તથાપિ દણ્ડ રખતે હૈં
ઇસકા કારણ સિર્ફ પ્રવલ મોહકા હી વિલાસ જાનના ચાહિયે ॥૫॥

ઔર બી—'એવં પિ' ઇત્યાદિ ।

વિધાન નથી “નિહાય દડ પાણેહિં” આ સૂત્રાશયી આગળ ચાલી ભગવાને એ
સ્પષ્ટ કરેલ છે માટે એ અવસ્થામા દડ ધારણ કરવો એ અયોગ્ય સમજ
વીર પ્રભુએ દડ ધારણ કરેલ ન હતો જ્યારે બીજા મુનિઓને માટે પણ પૂર્વોક્ત
અવસ્થાઓના અતિરિક્ત દડ ધારણ કરવાની વીર પ્રભુની આજ્ઞા નથી ત્યારે
વિચારવાની એ વાત છે કે જ્યાં બીજાને માટે દડ ગ્રહણ કરવાની આજ્ઞા નથી ત્યાં
પ્રભુ પોતે દડ શી રીતે ધારણ કરી શકે? જે લોકો દડ રાખે છે તે એવું સમજે છે
કે દડ રાખવો તે મુનિઓનો કલ્પ છે તેથી સદા દડ ધારણ કરે છે એમની
એ માન્યતા શાસ્ત્રીય માર્ગથી તદન વિરુદ્ધની છે તો પણ દડ રાખે છે, આનું
કારણ કેવળ પ્રબળ મોહનો વિલાસજ સમજવો જોઈએ (૫)

ફરી—“એવં પિ” ઇત્યાદિ

સ કેન પ્રકારેષ ગ્રામકષ્ટકૃતપરીપહોપસર્ગાન્ સહતે ? इति सप्त्यान्तमाह—
'નાગો' इत्यादि ।

મૂલ્—નાગો સગામસીસે વા, પારણ તત્થ સે મહાવીરે ।

एव पि तत्थ लाडेहिं, अलङ्घपुञ्चो वि एगया गामो॥८॥

જાણા—નામઃ સગ્રામશીર્ષે ઇવ પારગઃ તત્થ સ મહાવીરઃ ।

एवमपि तत्र सादेषु असम्भपूर्वोऽप्यकदा ग्रामः ॥ ८ ॥

ટીકા—સંગ્રામશીર્ષે=યુદ્ધક્ષેત્રે નાગ ઇવ=હસ્તીય તત્થ=તેણુ સાદેણુ મહાવીરઃ
પારગઃ=પારગામી અર્થતઃ । યથા=હસ્તી યુદ્ધમુખે શત્રુસેનાં વિવિધત્વ સ્વપારગામી
ભવતિ, તથા સ મહાવીરઃ=મગધાન્ અપિ સાદેણુ પરીપહોપસર્ગાનીક વિવિધત્વ સ્વપા
રગામી અર્થતઃ । કિઞ્ચ=એવમપિ તત્થ=તેણુ સાદેણુ ગ્રામાણામતિદૂરવર્તિત્વાદ એકદા=
એકસિત્ કાલે એકદાશ્ચ મગધતા ગ્રામઃ=સાકાનાં વાસસ્થાનમ્ અસમ્ભવપૂર્વઃ=પૂર્વે ન
સમ્ભવઃ, તેનારમ્યનાર્ગે ગચ્છતો મગધતઃ સમીપમાગત્યાન્નાર્યલાકાઃ પરીપહોપસર્ગ
પશુઃ । एतच्चानुपदमेव वक्ष्यते ॥८॥

इष्ट्यान्तद्वारा सूत्रकार इसी बातकी पुष्टि करते हैं—'नागो' इत्यादि।

जिस प्रकार युद्धक्षेत्रमें गजराज शत्रुसेनाको परास्त कर
उससे पार हो जाता है, ठीक इसी प्रकार वे महावीर प्रभु भी लाडदेशमें
उपसर्गरूपी सेनाको जीतकर उससे पार हुए। एक समयकी बात
है किजब मगधान बिहार करते२ एक पेसे ग्राममें आ रहे थे जो छोड़े
हुए ग्रामसे बहुत दूर था, तथा जिसमें वे पहुँचे कमी नहीं भाये थे,
उस समय जंगली मार्गसे आते हुए उनके पास बहुतसे अनार्यजन
भाये और अनक प्रकारक परीपह और उपसर्ग करने लगे ॥८॥

इष्ट्यान्तद्वारा सूत्रकार जो ४ बातनी पुष्टि करे छे—'नागो' इत्यादि

જે રીતે યુદ્ધક્ષેત્રમાં ગેમ ગજરાજ શત્રુસેનાને પરાસ્ત કરી એની
પરજા નીકળી જાય છે બરાબર જો ૪ રીતે મહાવીર પ્રભુ પણ લાડ દેશમાં
પરીપહ અને ઉપસર્ગરૂપ સેનાને છુટી બેનાથી પાર થયા. એક સમયની વાત
છે કે જ્યારે મગધાન વિકાર કરતાં કરતાં એક બેના ગામમાં અર્થ રહ્યા હતા
કે જે છોડેલા ગામથી થયો દૂર હતો અને જ્યાં અગાઉ કદી પણ અથ ન
હતા. જો વખતે ૪ મગધના માર્ગથી જતા થયું. અનાર્થ લોકો તેમની પાસે
આશ્ચ, અને બેમના ઉપર અનેક પ્રકારના પરિપહ અને ઉપસર્ગ કરવા લાગ્યા. (૮)

ટીકા--અનગારઃ=ભગવાન પ્રાણેષુ=પ્રાણિષુ દણ્ડ=લલ્કુટયષ્ટ્યાદિકં નિહાય=અગૃહીત્વા સર્વથા પરિત્યજ્ય 'ઓહાક્ ત્યાગે' ઇતિ ધાતોર્લ્યવન્તરૂપમ્। યદ્વા-દણ્ડ=દુષ્પ્રણિહિતમનોવાક્કાયરૂપં નિહાય=ત્યક્ત્વા, તથા તમ્=અનાર્યકૃતોપસર્ગા-પન્નં કાય કાય=મમત્વં વ્યુત્સૃજ્ય અથ=અનન્તરમ્ અભિસમેત્ય=સમ્યગ્ નિર્જરાં વિદિત્વા ગ્રામકણ્ઠકાન્=રૂક્ષભાષિણોઽનાર્યલોકાન્ તત્કૃતપરીપહોપસર્ગાનિતિ યાવત્, અધ્યાસ્તે=અધિસહતેસ્મ। દુસ્સહપરીપહોપસર્ગસમ્પ્રાપ્તૌ સત્યામપિ ભગવાન્ સર્વમેવ સહતેસ્મ, કિન્તુ-પ્રાણિભયહિંસાજનકત્વાદ્યષ્ટિલલ્કુટાદિકં ન ગૃહીતવાનિતિભાવઃ॥૭૭॥

સમભાવકે સાથ સહન કિયા, પરન્તુ ફિર મી દણ્ડ આદિકા ઉન્હોને ઉસ અવસ્થામેં મી ગ્રહણ નહી કિયા, ઉસકા કારણ પ્રાણિયોંકો અભય દેના થા, યદિ વે દણ્ડ વગેરહકા ઉસ સમય વહાં ઉપયોગ કરતે તો અન્ય પ્રાણિયોંકો ઉસસે ભય અવશ્ય હોતા, જો જૈન મુનિયોંકે લિયે સર્વથા હેય હૈ। 'ભગવાન શારીરિક મમત્વસે રહિત થે। રક્ષાકે સાધનોંકા ઉપ-યોગ વે હી લોગ કરતે હૈ-જિન્હેં વાહ્ય પદાર્થોંસે અપને વિગાડકા ભય હોતા હૈ, 'ભગવાન નિર્ભય થે અતઃ ન તો ઉન્હેં ઉન અનાર્યોંસે ભય હુઆ ઔર ન ઉનકે દ્વારા કૃત ઉપસર્ગ ઔર ઉપદ્રવોંસે। સૂત્રકા શબ્દાર્થે હિસ પ્રકાર હૈ-શારીરિક મમતાસે રહિત વે પ્રભુ 'જીવોંકો મેરે દ્વારા ભય ન હો' હિસ અભિપ્રાયસે દણ્ડકા અથવા મન વચન કાયકી અશુભ પ્રણિધાનરૂપ પ્રવૃત્તિકા સર્વથા પરિત્યાગ કર "વે સવ વાહ્ય ઉપસર્ગ ઔર પરિષહ 'મેરે કર્મોંકી નિર્જરાકે સાધક હૈ" એસા વિચાર કર ઉન્હેં અનાર્યોંકે સસર્ગસે વિચલિત નહીં હોકર સહા ॥૭૭॥

સહન કર્યા પરન્તુ છતા પણ તેમણે લાકડી સરખીએ સાથે ન લીધી, એટલું કારણ પ્રાણીયોને અભય આપવાનું હતું જે એ સમયે પ્રભુ લાકડી વગેરે રાખત તો અન્ય પ્રાણીયોને એનાથી ભય અવશ્ય લાગત જે જૈન મુનિયોને માટે સર્વથા ત્યાગ્ય છે ભગવાન શારીરિક મમત્વથી તદ્દન રહિત હતા રક્ષાના સાધનોને ઉપયોગ તો એ લોકો કરે છે કે જેમને બાહ્ય પદાર્થોથી પોતાના બગાડનો ભય હોય છે ભગવાન નિર્ભય હતા આથી એમને ન અનાર્યોના ભય થયો કે ન તો એના તરફથી કરાયેલા ઉપસર્ગ અને ઉપદ્રવોનો સૂત્રનો શબ્દાર્થ આ પ્રકારનો છે-શારીરિક મમતાથી રહિત એ પ્રભુ 'જીવોને મારાથી ભય ન હો.' આ અભિપ્રાયથી દડનો અથવા મન વચન અને કાયાની અશુભ પ્રણિધાનરૂપ પ્રવૃત્તિનો સર્વથા પરિત્યાગ કરી "આ બધા બાહ્ય ઉપસર્ગ અને પરિષદ મારા કર્મોની નિર્જરાના સાધક છે" એવો વિચાર કરી અનાર્યોના સસર્ગથી વિચલિત ન બનતા સહન કરેલા. (૭)

स केन प्रकारेण ग्रामकण्टककृतपरीपहोपसर्गान् सहते ? इति सङ्ख्यन्तमाह—
'नागो' इत्यादि ।

मूक्य—नागो संगामसीसे वा, पारण तस्य से महावीरे ।

एष पि तस्य लाबेहिं, अलङ्घयिष्यो वि एगया गामो ॥८॥

भाषा—नागः संग्रामक्षीरं इव पारणः तत्र स महावीरः ।

एवमपि तत्र सादृश्यं ब्रह्मपूर्वोऽप्येकदा ग्रामः ॥ ८ ॥

टीका—संग्रामक्षीरं=युद्धक्षेत्रे नाग इव=इस्तीय तत्र=तत्र लाबेयु महावीरः
पारणः=पारगामी अभूत् । यथा=इस्ती युद्धभूमौ शत्रुसेनां विजित्य तत्पारगामी
भवति, तथा स महावीरा=भगवान् अपि सादृश्यं परीपहापसर्गानीकं विजित्य तत्पा-
रगामी अभूत् । किञ्च=एवमपि तत्र=तेषु लाबेयु ग्रामाभ्यामतिदूरवर्तित्वाद् एकदा=
एकस्मिन् काले कदाचिद् भगवता ग्रामः=लोकानां वासस्थानम् ब्रह्मपूर्वः=पूर्वं न
कृत्वा, तेनारण्यमार्गं गच्छतो भगवतः समीपमागत्यान्तार्यलोकाः परीपहोपसर्गं
पशुः । एतच्चानुपदमेव वक्ष्यते ॥८॥

इष्टान्तद्वारा सूत्रकार इसी बातकी पुष्टि करते हैं—'नागो' इत्यादि।

जिस प्रकार युद्धक्षेत्रमें गजराज शत्रुसेनाको परास्त कर
उससे पार हो जाता है, ठीक इसी प्रकार वे महावीर प्रभु भी लाबेयुक्षेत्रमें
उपसर्गरूपी सेनाको जीतकर उससे पार हुए। एक समयकी बात
है कि जब भगवान् बिहार करते-एक ऐसे ग्राममें आ रहे थे जो छोटे
हुए ग्रामसे बहुत दूर था, तथा जिसमें वे पहिले कभी नहीं आये थे,
उस समय जंगली मार्गसे आते हुए उनके पास बहुतसे अनार्यजन
आये और अनेक प्रकारके परीपह और उपसर्ग करने लगे ॥८॥

इष्टान्तद्वारा सूत्रकार जो ७ बातनी पुष्टि करे थे—'नागो' इत्यादि

वे होते युद्धक्षेत्रमें जेव गजराज शत्रुसेनाने परास्त करी जेनी
अरपार नीकणी जाव थे जसकर जेव रीते महावीर प्रभु पशु लाबे देशमें
परिपह अने उपसर्गरूप सेनाने लट्ठी जेनाथी पार कया जेक समझनी पाव
थे के ज्यारे भगवान् बिकार करतां करतां जेक जेवा आभवा जर्ग रखा कया
के के छोटेछा आभवी पशु दूर कते अने जथा जयाउ कही पशु जथा न
कया जे वजते जजवना मार्गथी जया पशु अनार्य बोको तेभनी पासे
जयाव, अने जेभनाउपर अनेक प्रकारका परिपह अने उपसर्ग कया लाव्या (८)

તદેવાહ—‘ઉવસંકમંતં’ ઇત્યાદિ ।

મૂલમ્—ઉવસંકમંતમપડિન્નં, ગામંતિયં પિ અપ્પત્તં ।

પડિનિક્ખમિત્તુ હુસિંસુ, ણયાઓ પરં પલેહિ-ત્તિ ॥૧॥

છાયા—ઉપસંક્રામન્તમપ્રતિજ્ઞં ગ્રામાન્તિકમપિ અપ્રાપ્તમ્ ।

પ્રતિનિષ્ક્રમ્ય અલ્હષિણુઃ એતસ્માત્ પરં પલાયસ્વેતિ ॥ ૮ ॥

ટીકા—પ્રતિનિષ્ક્રમ્ય=તેઝનાર્યલોકાસ્તસ્માદ્ ગ્રામાત્ પ્રતિનિર્ગત્ય, અપ્રતિજ્ઞં=નિયતાવસ્થાનાદિપ્રતિજ્ઞારહિતમ્—ઉપસંક્રામન્તમ્=વાસાર્થં વ્રજન્તં, ગ્રામાન્તિકે=વસતિસમીપે પ્રાપ્તમપ્રાપ્તં વા ભગવન્તમ્ અલ્હષિણુઃ=દણ્ડમુષ્ટ્યાદિભિસ્તાડયામાણુઃ, ઋચુશ્ચ—‘એતસ્માત્=ઇતઃ સ્થાનાત્ પરમ્=અન્યસ્થાન, પલાયસ્વ’ ઇતિ ॥ ૯ ॥

કિશ્ચ—‘હયપુવ્વો’ ઇત્યાદિ ।

સૂત્રકાર ઇન્हीं પરીષદ્દ્ઃ ઓર ઉપસર્ગોંકો વતલારનેકે લિયે સૂત્ર કહતે હૈ—‘ઉવસંકમંતં’ ઇત્યાદિ ।

ઉસ ગ્રામકે વે અનાર્યજન અપને ૨ ઘરસે નિકલ કર નિયમિત સ્થાન પર ઠહરનેકે અથવા ઁક નિયત સ્થાન પર રહને આદિકે બન્ધસે રહિત ઉન ભગવાનસે જો ઉસ સમય ઠહરનેકે લિયે ઉસ ગ્રામકી ઓર ષદ રહે થે, તથા વસતિમેં આને ખી નહીં પાચે થે, ઉસ પહલે હી પાસમેં આકર કહને લગે કિ તુમ શીઘ્ર હી યહાંસે કિસી દૂસરી જગહ ભાગ જાઓ । ઁસા કહતે હુઁ ઉન લોગોંને ભગવાનકો દણ્ડ, મુષ્ટિ આદિસે ખૂબ પ્રહાર કિયા ॥૧॥

ઓર ખી ‘હયપુવ્વો’ ઇત્યાદિ ।

સૂત્રકાર ઁ પરીષદ્દ્ઃ અને ઉપસર્ગોંને સમજાવવા માટે સૂત્ર કહે છે—
‘ઉવસંકમંતં’ ઇત્યાદિ

ઁ ગામના ઁ અનાર્યજન પોત-પોતાના ઘરેથી નીકળી નિયમિત સ્થાન પર રોકાવાના અથવા ઁક નિયત સ્થાન પર રહેવા આદિના બંધનથી રહીત ઁવા ભગવાનથી કે જે તે સમય રહેવા માટે તે ગામની તરફ આવી રહ્યા હતા, અને વસતીમા આવી પણ નહિ શક્યા તે પહેલાજ સામને આવી કહેવા લાગ્યા કે તમે તાત્કાલિક અહીંથી ખીલ જાઓ ઁ ભાગી જાઓ ઁમ કહી ઁ લોકોઁ ભગવાનને લાકડી, હાથની મુઠી વગેરેથી ખુબ પ્રહાર કરેલા. (૬)
કરી—‘હયપુવ્વો’ ઇત્યાદિ.

તદેવાહ—‘ઉવસંકમંત૦’ ઇત્યાદિ ।

મૂલમ્—ઉવસંકમંતમપડિન્નં, ગામંતિયં પિ અપ્પત્તં ।

પડિનિક્ખમિત્તુ લુસિંસુ, ઇયાઓ પરં પલેહિ-ત્તિ ॥૧॥

છાયા—ઉપસંક્રામન્તમપ્રતિજ્ઞં ગ્રામાન્તિકમપિ અપ્રાપ્તમ્ ।

પ્રતિનિષ્ક્રમ્ય અલ્હપિપુઃ એતસ્માત્ પરં પલાયસ્વેતિ ॥ ૮ ॥

ટીકા—પ્રતિનિષ્ક્રમ્ય=તેઽનાર્યલોકાસ્તસ્માદ્ ગ્રામાત્ પ્રતિનિર્ગત્ય, અપ્રતિજ્ઞ=નિયતાવસ્થાનાદિપ્રતિજ્ઞારહિતમ્—ઉપસંક્રામન્તમ્=વાસાર્થં વ્રજન્ત, ગ્રામાન્તિકે=વસતિસમીપે પ્રાપ્તમપ્રાપ્ત વા ભગવન્તમ્ અલ્હપિપુઃ=દણ્ડમુષ્ટ્યાદિભિસ્તાડયામામુઃ, ઋચુશ્ચ—‘એતસ્માત્=ઇતઃ સ્થાનાત્ પરમ્=અન્યસ્થાન, પલાયસ્વ’ ઇતિ ॥ ૯ ॥

કિશ્ચ—‘હયપુવ્વો’ ઇત્યાદિ ।

સૂત્રકાર ઇન્हीं પરીષદ્ ઔર ઉપસર્ગોકો વતલानेके लिये सूत्र कहते हैं—‘उवसकमंत०’ इत्यादि ।

उस ग्रामके वे अनार्यजन अपने २ घरसे निकल कर नियमित स्थान पर ठहरनेके अथवा एक नियत स्थान पर रहने आदिके बन्धसे रहित उन भगवानसे जो उस समय ठहरनेके लिये उस ग्रामकी ओर बढ रहे थे, तथा वसतिमें आने भी नहीं पाये थे, उस पहले ही पासमें आकर कहने लगे कि तुम शीघ्र ही यहांसे किसी दूसरी जगह भाग जाओ। ऐसा कहते हुए उन लोगोंने भगवानको दण्ड, मुष्टि आदिसे खूब प्रहार किया ॥९॥

और भी ‘हयपुव्वो’ इत्यादि ।

સૂત્રકાર એ પરિષદ્ અને ઉપસર્ગોને સમજાવવા માટે સૂત્ર કહે છે—
‘ઉવસંકમંત૦’ ઇત્યાદિ

એ ગામના એ અનાર્યજન પોત-પોતાના ઘરેથી નીકળી નિયમિત સ્થાન પર રોકાવાના અથવા એક નિયત સ્થાન પર રહેવા આદિના બંધનથી રહીત એવા ભગવાનથી કે જે તે સમય રહેવા માટે તે ગામની તરફ આવી રહ્યા હતા, અને વસતીમાં આવી પણ નહિ શક્યા તે પહેલાજ સામને આવી કહેવા લાગ્યા કે તમે તાત્કાલિક અહીંથી ખીણ જાઓ ભાગી જાઓ એમ કહી એ લોકોએ ભગવાનને લાકડી, હાથની મુઠી વગેરેથી ખુબ પ્રહાર કરેલા. (૬)

કરી—‘હયપુવ્વો’ ઇત્યાદિ

एव भवतिः=दुःस्वप्नवीकारप्रतिज्ञारहिता, अत एव दुःस्वप्नः=परीषदोपसर्गकृत्य
दुःस्वप्नरिप्युः सन् प्रगतः=म=प्रकर्षेण नतः=धर्मध्यानलीन आसीत् ॥१२॥

ममवतः परुषपरीषदसहनं सद्यन्तमाह—'सूरो' इत्यादि ।
मूय-सूरो सगामसीसे वा, सखुडे सत्य से महावीरे ।

पद्विसेवमाणे फरुसाह, अथल भगव रीइरथा ॥१३॥

अथा—सूरः संग्रामधीर्यं इव, संवृतस्तत्र स महावीरः ।

पद्विसेवमाणः परुषाम्, अथलो भगवान् अरीयत् ॥ १३ ॥

टीका—सङ्ग्रामधीर्यं=रणभूमौ संवृता=कलचाच्छादितकायः सूर इव=अप्रति-
हतपरुष्मयी योद्धेव स महावीरः संवृतः=वैर्पादिगुणाच्छादितमनोवाक्काययोगः

एव और उपसर्ग भगवानने धर्मध्यानमें लीन होनेसे जीते । धर्मध्यानमें
लीनता होने पर ही कायसे ममत्वका अभाव होता है, जहां धर्मध्यान
का सवभाव होता है वहां दुःस्वप्नकोक होने पर भी आत्मा उनसे
विच्छिन्न नहीं होती, वे प्रभु अप्रतिज्ञ-उन प्रहारादि परीषदोंके प्रतीकार
करनेकी भावनासे रहित थे ॥ १२ ॥

भगवानने इन परुष-कठोरवचनाविजन्त्य परीषदोंको कैसे सहन
किया ? इस विषयका खुलाशा सूत्रकार दृष्टान्तसे करते हैं—'सूरो'
इत्यादि ।

किस प्रकार कवच धारण किये हुए कोई एक सबल घोडा युद्धमें
शत्रुओंके द्वारा अनेक रीतिसे किये गये भाँडे भाँदि शत्रुओं के आघातों
से बालर बच निकलता है और विजयभी की प्राप्तिसे सुशोभित होता

या अथ आरु जने दुःश्रो लजवान धर्मध्यानमा लीन होनाभी छुटेक-
धर्मध्यानमा लीनता होनाभी अ कायाना भगवतो अथवा वाय छे अथ धर्म
ध्यानने सङ्भाव होय छे त्वा अगे तेवा दुःश्रो आनी पडे तो पणु आत्मा
विच्छिन्न गतो नथी ते प्रभु अप्रतिज्ञ-अगे तेवा आक्रमण बया छत्ता तेनी सामे
भगवत करानी के सामने करानी भावनाभी रहित कता (१२)

भगवानने जो अनार्योन्त कठोर वचनोभी तथा भारभी उत्पल दयेक परी
छोने कर्हि रीते सकन कर्मा ? आ विषयने खुलासे सूत्रकार दृष्टान्तभी करे छे—
'सूरो' इत्यादि ।

ये प्रकार कवच धारण करेक केहि कोक सबल सैनिक युद्धमा शत्रुओं
दरुभी बाधा, तरवार वजेरे शत्रुओंभी बया प्रहारोनी तेम अ तेना शरीरमा
भगवत तेना प्रकार नीकणी कर्ता तेनी पणु दरुकार न कर्ता विषय भेज्य

વિવિધપ્રતિકૂલપરીપદરૂપા અનાર્યલોકાઃ ભગવન્તમલુચ્ચિપુઃ=આકૃષ્ટવન્તઃ, અથવા-
પાંસુના=ધૂલિના ઉપાકિરન્=ભગવતઃ શરીરમાચ્છાદયમામ્નુઃ ॥ ૧૧ ॥

કિન્ન—‘ઉચ્ચાલઈય’ ઇત્યાદિ ।

મૂલમ્—ઉચ્ચાલઈય નિહર્ણિસુ, અદુવા આસળાઉ ચલઈસુ ।

વોસટ્ટકાણ પળયાSSસી, દુઃખસહે ભગવં અપડિન્ને ॥૧૨॥

છાયા—ઉચ્ચાલ્ય નિજઘ્નુઃ અથવા આસનાદસ્વલયન્ ।

વ્યુત્સૃષ્ટકાયઃ પ્રણત આસીત્ દુઃખસહઃ ભગવાન્ અપતિજ્ઞઃ ॥૧૨॥

ટીકા—અનાર્યલોકાઃ ઉચ્ચાલ્ય=ઉચ્ચૈર્નીત્વા=ભગવન્તમૂર્ધ્વમુત્થાપ્ય નિજઘ્નુઃ
=ભૂમૌ નિપાતયામામ્નુઃ । અથવા આસનાત્=ગોદોહિકોત્કુદુકવીરાસનાદિકાત્
અસ્વલયન્=ભગવન્તં નિપાતિતવન્તઃ । ભગવાન્ પરીપદોપસર્ગ કેન પ્રકારેણ સેહે ?
ઇત્યાદિ—વ્યુત્સૃષ્ટકાય ઇત્યાદિ । ભગવાસ્તુ વ્યુત્સૃષ્ટકાયઃ=કાયોત્સર્ગસ્થિતઃ, અત

લિયા થા, ફિર મી ઉનકી ભગવાનકો દુઃખિત કરને કી કુતિસત્ મનો-
વૃત્તિયાં શાંત નહીં હુઈ । વે કમી ૨ ભગવાનકે શરીર પર અનેક પ્રકાર-
સે આક્રમણ કર ઉન્હેં ઇધર ઉધર લોંચ ડાલતે ઓર ફિર બાદમેં
ઉનકે ઉપર અધિકસે અધિક ધૂલિ ફેંકતે ॥ ૧૧ ॥

ઔર મી—‘ઉચ્ચાલઈય’ ઇત્યાદિ ।

વે અનાર્યજન કમી ૨ ભગવાનકો ઉપર ઉઠાકર નીચે પટક દેતે થે,
અથવા ગોદોહિક આસન, ઉત્કુટક આસન, ઔર વીરાસન આદિસે નહીં
ચલાયમાન ઉન પ્રમુકો વે ઉન આસનોંસે ચલાયમાન કરતે—હિલાકર
પટક દેતે । ભગવાનને યે પરીષદ્ ઔર ઉપસર્ગ કિસ પ્રકારસે જીતે હસે
‘વોસટ્ટકાણ’ હસ પદસે સ્પષ્ટ કરતે હુણ સૂત્રકાર કહતે હૈં—યે સબ પરી-

અવયવમાથી માસના લોચા પણ કાપી લીધેલા, આ પ્રકારના હિચકારા કૃત્યથી
પણ ન સતોષાતા લોહી નીતરતા પ્રભુના શરીરને એક બાબુથી બીજી બાબુ
ઢસરડવાનુ તેમજ ધુળ અને કાકરાઓથી વધુ હુ ખીત બનાવવાનુ કરેલુ (૧૧)

ફરી પણ—‘ઉચ્ચાલઈય’ ઇત્યાદિ.

એ અનાર્ય લોકોને આટલેથી પણ સતોષ ન થયો હોય તેમ
ભગવાનના ક્ષત-વિક્ષત બની ગયેલા શરીરને ઉચ્ચ ઉપાડી ફેંકવામા પણ
બાકી રાખેલ નહી પરંતુ ગોદોહિક આસન, ઉત્કુટક (ઉકડુ) આસન
અને વીરાસન વગેરેથી ધ્યાનસ્થ થયેલા પ્રભુને એ લોકો ચલાયમાન કરી શક્યા
નહી ભગવાને આ પ્રકારના માનવતાવિહોણા અનાર્યોદ્ધારા અપાયેલા કષ્ટોને
કેવા પ્રકારે સહન કર્યા ? એને ‘વોસટ્ટકાણ’ એ પદથી સ્પષ્ટ કરતા સૂત્રકાર કહે છે—

एव भवतिः=दुःस्वप्नप्रतीकारप्रतिष्ठापितः, अत एव दुःस्वप्नः=परीपक्षोपसर्गबन्ध
दुःस्वप्नविष्णुः सन् प्रकृतः=प्र=प्रकर्षेण नतः=धर्मध्यानलीन आसीत् ॥१२॥

भगवतः परुषपरीपक्षसङ्घर्षं सदृष्टान्तमाह—'सूरो' इत्यादि ।

मृत्यु—सूरो सगामसीसे वा, सबुद्धे तस्य से महावीरे ।

पट्टिसेवमाणे फलसाइ, अथल भगव रीइस्था ॥१३॥

अथा—सूरः संग्रामशीर्षे इव, सहतस्तत्र स महावीर ।

प्रतिसेवमानः परुषाम्, अथलो भगवान् अरीयत् ॥ १३ ॥

टीका—सङ्ग्रामशीर्षे=रणधूमौ संवृता=कृष्णाच्छादितकायः सूर इव=अप्रति-
हतपरक्रामी योदेव स महावीरः संवृता=वैर्यादिगुणाच्छादितमनोवाक्यायोगः

यह और उपसर्ग भगवानने धर्मध्यानमें लीन होनेसे जीते । धर्मध्यानमें
लीनता होने पर ही कायसे भगवत्का अभ्यास होता है, जहाँ धर्मध्यान
का सम्भाव होता है वहाँ दुःस्वप्नादिकोंके होने पर भी आत्मा उनसे
विचलित नहीं होती, वे प्रभु अप्रतिष्ठ—उन प्रहारादि परीपक्षोंके प्रतीकार
करनेकी भावनासे रहित थे ॥ १२ ॥

भगवानने इन परुष—कठोरवचनविजय परीपक्षोंको कैसे सङ्घ-
र किया ? इस विषयका खुलाशा सूत्रकार इष्टान्तसे करते हैं—'सूरो'
इत्यादि ।

जिस प्रकार कवच धारण किये हुए कोई एक सबल योधा युद्धमें
शत्रुओंके द्वारा अनेक रीतिसे किये गये आछे भावि शस्त्रों के आघातों
से बालर बच निकलता है और विजयभी की प्राप्तिसे सुशोभित होता

अथ यथा ग्रस्तं जने दुःखो भगवान् धर्मध्यानमां लीन होनाभी लोके
धर्मध्यानमां लीनता होनाभी व भगवान् अभ्यवने अथवा याव छ अथ धर्म
ध्यानमां सङ्भाव होय छ त्वां जमे तेवां दुःखो ज्ञापी पडे तो पक्ष अथ
विचलित यतो नथी ते प्रभु अप्रतिष्ठ—जमे तेवां आक्रमण यथा छत्वा तेनी आमे
भयाव करानी के सामने करानी भावनाभी रहित छत्वा (१२)

भगवाने जो जनाओंनां कठोर वचनोभी तथा भावभी उत्पन्न किये परी
पक्षोने कर्हि रीते सङ्घन कर्वा ? अ विषयने खुलासे सूत्रकार इष्टांथी करे छे—
सूरो इत्यादि

के प्रकार कवच धारण करेता कर्हि जोक सलज सैनिक युद्धमें शत्रुओं
परकभी आलां, उत्पन्न किये शत्रुओंभी यत्ता प्रकरानी तेम व तेम सरीसृप
भक्षता होय अकार नीकणी जत्वा तेनी पक्ष दशकार न करय विषय मेव

તત્ર=લાઢદેશે પરુપાન્=દુઃસહપરીપહાન્ પ્રતિસેવમાનઃ=સહમાનઃ, અત એવ અચલઃ= નિષ્કમ્પઃ સન્ અરીયત=વિહરતિસ્મ । યથા શૂરઃ શત્રુભિઃ કુન્તાદિશસ્ત્રૈઃ પ્રતિહન્ય માનોઽપિ કવચાતૃતશરીરઃ સન્ ન પરાજયં પ્રાપ્નોતિ તથા ભગવાનપિ અનાર્યલોકૈર્દંડમુષ્ટ્યાદિવિવિધઘોરપરીપહોપસર્ગૈરુપદ્રુતોઽપિ ધૈર્યાદિગુણસંતૃતઃ સન્ ધર્મધ્યાનચ્યુતિલક્ષણ પરાજય પ્રાપેતિ ભાવઃ ॥૧૩॥

ઉદ્દેશકાર્થમુપસંહરન્નાહ—‘એસ વિહી’ ઇત્યાદિ ।

મૂલમ્—એસ વિહી અણુક્રંતો માહણેણ મહિમયા ।

વહુસો અપહિન્નેણ ભગવયા એવં રિયંતિ—ત્તિવેમિ ॥૧૪॥

હૈ, ઉસી પ્રકાર ઉસ લાઢ દેશમેં ધૈર્ય આદિ સદ્ગુણરૂપ કવચસે યુક્ત મન, વચન ઓર કાય યોગવાલે ભગવાન્ મહાવીરને ઉન દુઃસહ પરી-પહોંકો અડોલ બન કર સહતે હુએ વિહાર કિયા । તાત્પર્ય યહ હૈ કિ— જિસ પ્રકાર કવચ પહિરે હુએ યોધા યુદ્ધમેં શત્રુઓદ્વારા કિયે ગયે વારોં કો વચાતા હુઆ અપને લક્ષ્ય પર ડટા રહતા હૈ ઓર અન્તમેં વિજયકી પ્રાપ્તિસે જૈસે આનદિત હોતા હૈ, ઉસી પ્રકાર ઠીક ભગવાન્ મહાવીર ભી ઉસ લાઢદેશમેં ઇન અનાર્યોં દ્વારા કિયે ગયે અનેક પ્રકારકે ભયંકર ઉપદ્રવોંસે યુક્ત હોને પર ભી ધૈર્ય આદિ ગુણોંસે સંવૃત શરીરવાલે હોનેસે ઉન્હેં સહતે હુએ અપને ધર્મધ્યાનસે તનિક ભી વિચલિત નહીં હુએ ॥૧૩॥

ઇસ ઉદ્દેશકે અર્થકા ઉપસંહાર કરતે હુએ સૂત્રકાર કહતે હૈ— ‘એસ વિહી’ ઇત્યાદિ ।

વામાં જ તન્મય બની શત્રુઓને હરાવવામાં જ એટલે કે ધ્યેયની પ્રાપ્તિમાં જ મશગુલ રહે છે, અને વેદનાની કે પોતાના શરીરના લબઝતા માસના લોથાની જરા સરખીએ પરવા કરતો નથી, એ જ રીતે એ લાઢ દેશમાં ધૈર્ય વગેરે સહ-શુશ્રૂષ કવચથી શોભતા અને તેમજ મન, વચન અને કાયાના યોગવાળા ભગવાન મહાવીરે પણ અસહ્ય એવા દુ ગોને અડોલ રહી સહન કરતા વિહાર કર્યો તાત્પર્ય એ કે—જે રીતે કવચ ધારણ કરેલા યોદ્ધાને યુદ્ધમાં શત્રુએ તરફથી કરવામાં આવતા પ્રહાર-વારને બચાવતા બચાવતા તે યોદ્ધો પોતાના લક્ષ્યથી જરા પણ વિચલિત બનતો નથી, અને અતે વિજય પ્રાપ્ત કરે છે, ઠીક એ જ રીતે ભગવાન મહાવીરે પણ એ લાઢ દેશમાં અનાર્યોં દ્વારા કરવામાં આવેલ અનેક પ્રકારના ભયકર ઉપદ્રવો આવવા છતાં પણ ધૈર્ય વગેરે શુશ્રૂષથી શોભતા શરીરવાળા હોવાથી આવી પડેલા ઉપદ્રવોને સહેવા છતાં પોતાના ધર્મધ્યાનથી લેશ માત્ર પણ ચલિત બનેલ ન હતા (૧૩)

આ ઉદ્દેશના અર્થનો ઉપસંહાર કરતા સૂત્રકાર કહે છે—‘એસ વિહી’ ઇત્યાદિ

प्राया—एष विधिरनुकान्तः माहनेन भविमता ।

बहुधाः अप्रतिष्ठेन मगधता एष रीयन्ते, इति व्रथीमि ॥१४॥

टीका—अस्य व्याख्याऽप्रेषाध्ययने प्रथमोद्देशऽभिहितः, तत्र एवावगन्तव्यः । इति व्रथीमीत्यस्यार्थस्तुक्त एष ॥ १४ ॥

नवमाध्ययनस्य तृतीय उद्देशः समाप्तः ॥ ०-३ ॥

इस सूत्रकी व्याख्या इसी अध्ययनके प्रथम उद्देशमें की जा चुकी है, अतः यहांसे समाप्त होनी चाहिये । 'इति व्रथीमि' इसका अर्थ पहले किया जा चुका है ॥ १४ ॥

नववें अध्ययनका तीसरा उद्देश समाप्त ॥०-३॥

आ सूत्रनी व्याख्या आ अध्ययनना प्रथम उद्देशमा उद्देशमा आवी अर्थ है, अतः त्याही समस्त होनी चाहिये. 'इति व्रथीमि' आने अर्थ पहले आवी अर्थ ॥ (१४)

नवमा अध्ययनना तीसरे उद्देश समाप्त ॥०-३॥

તત્ર=લાઢદેશે પરુપાન્=દુઃસ્-
નિષ્કમ્પઃ સન્ અરીયત=નિ
માનોડપિ કવચાઢૃતશરીરઃ
દંઢ્ઢમુષ્ટયાદિવિવિધધોરણ
નચ્યુતિલક્ષણ પરાજય પ્ર
ઉદેશકાર્યમુપસંહરન્ન।

મૂલમ્-એસ વિહી ડ
વહુસો અપિ

હૈ, ડસી પ્રકાર ડરુ
મન, વચન ડર ક
ષહોંકો અડોલ વન્
જિસ પ્રકાર કવચ
કો વચાતા હુઆ
પ્રાસિસે જૈસે આન
ડસ લાઢદેશમેં
ડપદ્રવોંસે યુક્ત હૈ
ડન્હેં સહતે હુએ
હિસ ડદેશવે
'એસ વિહી' ઇત

વામાં જ તન્મય ડ
મશગુલ રહે છે,
જરા સરખીએ પ
શુશ્રૂરૂપ કવચથી
વાન મહાવીરે પણ
તાત્પર્ય એ કે-જે ર
આવતા પ્રહાર-વાર
વિચલિત બનતો ન
મહાવીર પણ એ લા
ભય કર ડપદ્રવો ડ
હોવાથી આવી પડેલા
ચલિત બનેલ ન હૈ
આ ઉદેશના અ

नहीं हो सकती है। तपसे दो लाभ होते हैं—एक तो संचित कर्मोंकी निर्जरा और दूसरा संवरकी प्राप्ति, इसी लिये मोक्षार्थियोंको मोक्षप्राप्तिके लिये तपश्चर्याकी अनिवार्य आवश्यकता है। भगवानने भी इसी भूमि-प्रापसे तपश्चर्या करनेमें थोड़ी भी कमी नहीं रखी, और क्यावासे क्यादा तपश्चर्या करने में ही अपने आपको संलग्न किया, इस विषयमें उन्हें अनेक परीपह और उपसर्गोंको सहने पड़े—जो सामान्यजनके लिये असम्भव होते हैं।

भाषा :- प्रायः यह बात देखी जाती है कि मनुष्य जब किसी रोग आदिसे आक्रान्त होता है, तब वह ऊनोदर रहता है जिससे उसके रोग दमित हो, परन्तु भगवान तो जन्मसे ही रोगादिकसे रहित थे, फिर भी तप करनेमें जो उन्होंने करकसर नहीं रखी, उसका कारण सिर्फ कर्मोंकी निर्जरा करना था। इसी प्रकार श्वास कास (खांसी) आदिसे भगवान रहित थे। उन्हें त्रिलोकमें भी कोई ऐसी बीज-वस्तु नहीं थी जो दुर्लभ होती, परन्तु फिर भी जब उनके उपर कुछे आदि उपसर्ग करते, उनके शरीर पर झपटकर जब उन्हें काट खाते तब भी वे किसी भी औषधिका उपचार नहीं करते ॥ १ ॥

जनी शक्ती नहीं, तपशी ने लाभ प्राप्त है—जो तो संचित कर्मोंकी निर्जरा और जीवु संवरकी प्राप्ति आ आगे मोक्षार्थियोंको मोक्षप्राप्ति आगे तपश्चर्या करनी लेखने को अनिवार्य है। भगवानने पशु आ अविग्रहशी तपस्या करवाया। अतः पशु आदि संचित नहीं, अनेक वधारेमां वधारे तपस्या करवाया। पीते पीताना आभाने लेखे। आ आशाना जेभने अनेक प्रकारका परिपह अने उपसर्ग सहने पड़ा के सामान्य भावसे आगे असंभव होय ॥

आवार्थ—आधी को बात लेखामा आने के के लिये केवल शत्रु वज्रेभी पीछा करनी बाय है। तयारे ते बुद्धिसे रहते केलेभी तेना शत्रु कोछि बाय, परतु भगवान तो न मधी न शत्रुदिकभी रहित कथा तो पशु तप करवाया। तेजोको अतः पशु वज्रुप संपत्ती नहीं, तेनु कायु हस्त कर्मोंकी निर्जरा करवानु कतु आ प्रकारे खांसी—उपरस वज्रेभी भगवान रहित कथा। तेभना आगे तपु होकमा जेपी केछ पशु वस्तु न कथा के के तेभने आगे दुर्लभ लेख तो पशु लयारे इतराको वज्रे तेभना उपर आक्रमण करता अने उपसर्ग आपता, तेभना शरीर उपर उपर मारी करकता—अथार्थ भरता तयारे केछ पशु औषधिनो उपचार प्रभु करता नहीं (१)

॥ अथ नवमाध्ययनस्य चतुर्थ उद्देशः ॥

इहानन्तरतृतीयोद्देशके भगवतः परीषहोपसर्गसहर्न प्रतिबोधितम् । अथ चतुर्थोद्देशके रोगातङ्कूपीडाप्रतीकारपरिहारेण परीषहोपसर्गानामतीव सहर्न तपश्चर्या-प्रवृत्तिं च भगवतः कथयन्नाद्यं सूत्रमाह—‘ओमोयरियं’ इत्यादि ।

मूलम्—ओमोयरियं चाण्ड, अपुष्टेऽपि भगवं रोगेहिं ।

पुष्टे वा अपुष्टे वा, नो से साइज्जइ तेइच्छं ॥१॥

छाया—अवमौदरिका करोति अस्पृष्टोऽपि भगवान् रोगैः ।

स्पृष्टो वा अस्पृष्टो वा नो स स्वदते चिकित्साम् ॥ १ ॥

टीका—भगवान् रोगैरस्पृष्टोऽपि=वातादिप्रकोपरहितोऽपि, अवमौदरिका=न्यूनोदरतां करोतिस्म, लोका हि रोगाऽऽक्रान्ताः सन्तस्तत्प्रशमनार्थं न्यूनोदरतां करोति, भगवास्तु रोगानाक्रमणेऽपि कर्मनिर्जरार्थं तां कर्तुं प्रवृत्त इति भावः । यद्यपि स भगवान् अस्पृष्टो वा=कासश्वासादिभिरनाक्रान्त आसीत्, किन्तु स्पृष्टो वा=कुकुरादिभिः क्षतमात्रोऽपि सन् चिकित्सा=औषधादिभिस्तत्प्रतीकारं नो स्वदते=नाभिलषतिस्म ॥१॥

॥ नववें अध्ययनका चौथा उद्देश ॥

तृतीय उद्देशमें भगवानने किन् २ परीषह और उपसर्गोंको सहा ? यह प्रकट किया गया है । इस चतुर्थ उद्देशमें भगवानद्वारा आचरित तपश्चर्याका वर्णन किया जायगा, अतः सर्व प्रथम सूत्रकार अवमौदर्य तपका कथन करते हैं—‘ओमोयरियं’ इत्यादि ।

भगवान यद्यपि किसी भी वातादिकके प्रकोपसे उत्पन्न होने वाले रोगसे सदा रहित थे तो भी ऊनोदर नामक तपको करते थे, कारण कि कर्मोंकी निर्जराका प्रधान साधन तप ही है । तपके बिना कर्मोंकी निर्जरा

नवमा अध्ययनने चौथा उद्देश

त्रीज उद्देशमा भगवाने केवा केवा परिषहू अने उपसर्गो सहा तेनु वर्णन करवामा आवेल छे आ चौथा उद्देशमा भगवाने आचरेली तपस्यानु वर्णन करवामा आवशे आ भाटे सर्व प्रथम सूत्रकार अवमौदर्य तपनु कथन करे छे—‘ओमोयरियं’ इत्यादि

भगवान जे के कोषपणु वात आदिना प्रकोपथी उत्पन्न थवावाणा रोगथी महा रहित छता ते पणु उनोदरी तप करता छता, कारण के कर्मोनी निर्जरानु प्रधान साधन तप न छे, तप वगर कर्मोनी निर्जरा

नहीं हो सकती है। तपसे वो लाभ होते हैं—एक तो सचित कर्मोंकी निर्जरा और दूसरा संभरकी प्राप्ति, इसी लिये मोक्षार्थियोंको मोक्षप्राप्तिके लिये तपश्चर्याकी अनिवार्य आवश्यकता है। भगवानने भी इसी अति प्रायसे तपश्चर्या करनेमें थोड़ी भी कमी नहीं रखी, और ज्यादासे ज्यादा तपश्चर्या करने में ही अपने आपको संलग्न किया, इस विषयमें उन्हें अनेक परीपक्ष और उपसर्गोंको सहने पड़े—जो सामान्यजनक लिये असम्भव होते हैं।

भाषा :- प्रायः यह बात देखी जाती है कि मनुष्य जब किसी रोग आदिसे आक्रान्त होता है, तब वह ऊनोवर रहता है जिससे उसके रोग शमित हों, परन्तु भगवान तो जन्मसे ही रोगादिकसे रहित थे, फिर भी तप करनेमें जो उन्होंने करकसर नहीं रखी, उसका कारण सिर्फ कर्मोंकी निर्जरा करना था। इसी प्रकार श्वास कास (सांसी) आदिसे भगवान रहित थे। उन्हें त्रिलोकमें भी कोई ऐसी बीज-वस्तु नहीं थी जो दुर्लभ होती, परन्तु फिर भी जब समके उपर कुपे आदि उपसर्ग करते, उनके शरीर पर झपटकर जब उन्हें काट खाते तब भी वे किसी भी औषधिका उपचार नहीं करते ॥ १ ॥

जनी शक्ति नहीं। तपही ने लाभ प्राप्त है—जो तो सचित कर्मोंकी निर्जरा करने की शक्ति प्राप्ति आ आते आकाशियोंको आकाशप्राप्ति आते तपश्चर्या करने के लिये जो अनिवार्य है। भगवानने यह भी अतिप्रायसी तपस्या करवाया जिस पक्ष पाई सजेह नभा, जने वधारेमा वधारे तपस्या करवाया पोते पोटाना आरमाने लेउले। आ आरमा जेभने अनेक प्रकारका परिपक्ष जने उपसर्ग सहने पड़ना के सामान्य भावसे आते असम्भव होते हैं।

साधारण—आभी जे बात लेवाया आवे छे के न्याये के छे शत्रु वधारेभी पीछे छली शत्रु छे त्पारे ते शत्रुको स्ते छे लेभी तेनो शत्रु जो छे शत्रु, परन्तु भगवान तो जन्मसे ही शत्रुशक्तिही रहित कथा ते पक्ष तपश्चर्यामा तेको जे जस्त पक्ष वरुप सभी नहीं, तेनो कारण इहो कर्मोंकी निर्जरा करवाया कथा आ प्रकार सांसी—उधरस वधारेभी भगवान रहित कथा तेमना आते तप होकरमा जेनी के छे पक्ष वरुप न कथा के के तेमने आते दुर्लभ होय, ते पक्ष न्याये कथाको वधारे तेमना उपर आकरमा करवा जने उपसर्ग आपदा, तेमना शरीर उपर उपर भारी करवा—जभां लरवा त्पारे के छे पक्ष औषधिका उपचार प्रसू करवा नहीं (१)

તદેવ દર્શયિતુમાહ—‘ સંસોહણં ચ ’ इत्यादि ।

મૂલ્મ—સંસોહણં ચ વમણં ચ, ગાયઞ્મંગણં ચ સિણાણં ચ ।

સંવાહણં ચ ન સે કપ્પે, દંતપક્ષાલણં ચ પરિન્નાણ ॥૨॥

છાયા—સંશોધન ચ વમનં ચ ગાત્રાભ્યજ્ઞનં ચ સ્નાનં ચ ।

સંવાહનં ચ ન તસ્ય કલ્પતે દન્તપ્રક્ષાલનં ચ પરિજ્ઞાય ॥૨॥

ટીકા—પરિજ્ઞાય=અશુચિ, અશુચિસંભવમૌદારિકશરીરમિતિ વિદિત્વા સંશોધનં=વસ્તિકર્મણૌષધપ્રયોગેણ વા મલકોષ્ઠસ્ય સમ્યક્ શોધનં, તસ્ય ભગવતો ન કલ્પત इत्यन्वयः । एवमग्रेऽपि वमनादिषु योजनीयम् । वमनं=वमनजनकौषधप्रयोगेण शरीरान्तर्वर्तिकफादिनिःसारणं, तथा गात्राभ्यञ्जनं=शतपाकसहस्रपाकतैलादिभिश्चन्दनकुङ्कुमकेसरादिभिर्वा गात्रોद्वર્तन, तथा-स्नानं=द्रव्यસ્नानं=अप्रासुकेन-प्रासुकेन वा जलेन स्नानम् । तद् द्विविधं-देशस्नानं सर्वस्नानं चेति । तत्र हस्ताद्यधिष्ठानादिशौचातिरेकेणाऽक्षिपक्ष्मप्रक्षालनमपि देशस्नानम् । सर्वस्नान-सर्वाङ्गप्र-

इसी बातको और स्पष्ट करते हैं—‘ संसोहणं च ’ इत्यादि ।

ભગવાનને કમી મી સંશોધન-વસ્તિકર્મ-इमेमा अथवा विरेचक औषधि आदिद्वारा मलकोष्ठकी शोधनक्रिया, वमनकारक औषधिके उपचारसे शरीरके भीतरके कफादिक मैलका संशोधन-बाहर निकालना, शतपाकवाले, अथवा सहस्रपाकवाले तैलसे मर्दन, अथवा चदन, कुङ्कुम और केशर आदिसे शरीरका उवटन और प्रासुक अथवा अप्रासुकजलसे द्रव्य स्नान करना, ये समस्त क्रियाएँ बिलकुल नहीं कीं, कारण कि इस प्रकारकी क्रियाओंका करना उनके आचारसे उन्हें कल्प्य नहीं था । द्रव्यस्नान-देशस्नान और सर्वस्नानके भेदसे दो प्रकारका है । हाथ पैर आदिकी शुद्धिके सिवाय आखों और उनकी पलकोंका प्रक्षालन करना देशस्नान,

આ વાતને વધુ સ્પષ્ટ કરવામા આવે છે—‘ સસોહણં ચ ’ ઇત્યાદિ

ભગવાને કહી પણ સંશોધન-વસ્તિકર્મ-એનીમા અથવા વિરેચક ઔષધી વગેરે દ્વારા મળશુદ્ધિની ક્રિયા, ક્ય-ઉલટી કરાવનારા ઔષધોના ઉપચારથી શરીરની અદરના વડે વગેરે મેલને બહાર કાઢવો, શતપાકકે સહસ્રપાક તૈલથી મર્દન, અથવા ચદન, કુકુ કે કેશર વગેરેથી શરીરનું લેપન, ગરમ અથવા ઠંડા પાણીથી દ્રવ્યસ્નાન કરવું, આવી બધી ક્રિયાઓનો ભગવાને સર્વથા ત્યાગ કર્યો હતો, કારણ કે આ પ્રકારની ક્રિયાઓ કરવા માટે તેમના આચારથી તેમનો કલ્પ ન હતો દ્રવ્યસ્નાન-દેશસ્નાન તથા સર્વસ્નાનના ભેદથી બે પ્રકારના છે હાથ પગ વગેરેની શુદ્ધિના સિવાય આખો અને તેની પાપણોનું પણ પ્રક્ષાલન કરવું એ દેશ-સ્નાન,

સાબ્દસ્-અપ્રાસુકજલજ્ઞેન સ્નાનકરણેડપ્રકાયાવિધિરાધનયા તપસંયમચિનાશ્ચાત્,
પ્રાસુકજલજ્ઞેનાપિ સ્નાનકરણે શુપિરવિદીર્ઘભૂમિવર્તિશ્ચન્તૂનામુત્પ્લાવનેન પ્રાપિધિરા
પનાયાઃ સદુમાશ્વાત્ સાધોઃ સ્નાનં ન કલ્પયત્ત્વમિતિ માય ૧ ૩ ૪—

નોદકપિલગ્નગામ્રોડપિ, સ્નાત્ત્વમિધીયતે ।

સ સ્નાતો યો વ્યસ્નાતઃ, સ વાઘામ્યન્તરઃ શુષિ ॥૧॥

ચિન્તમન્તર્ગતં દુષ્ટ, ધીર્વસ્નાનૈર્ન શુદ્ધયતિ ।

શતશોડપિ વપુર્ધૌતં, સુરામાણ્ડમિથાશુષિ ॥ ૨ ॥

ઘૌર સમસ્ત અંગ ઉપાંગ સહિત શરીરકા પ્રક્ષાલન કરના સર્વસ્નાન
હૈ। અપ્રાસુક જલજ્ઞેના સ્નાન કરનેપર અપ્રકાયાકે જીર્ણોકી ચિરાપના હોતી હૈ,
હસે સ્નાન કરનેલાકેતપ ઘૌર સંયમકા ચિઘાત્ત હોતા હૈ । પ્રાસુકજલજ્ઞે
મ્ની સ્નાન કરનેસે જીર્ણોકી ચિરાપના હસલિયે હોતી હૈ કિ વહ પાની
વહકર જમીનમેં નીતર સમા જાતા હૈ ઘૌર જ્ઞેર્ધમેં મરજાનેસે ઠનકે
નીતર રહે હુપ જીવ ઠસસે મર જાતે હૈ । હસ પ્રકાર ઠન્હે કષ્ટકા કારક
હોનેસે વહ પ્રાસુકજલજ્ઞેના દ્વારા ક્રિયા ગયા સ્નાન મ્ની સાધુઓકે લિયે
હૈપ હૈ । કહા મ્ની હૈ—

નોદકપિલગ્નગામ્રોડપિ સ્નાત્ત્વમિધીયતે ।

સ સ્નાતો યો વ્યસ્નાતઃ, સ વાઘામ્યન્તરઃ શુષિ ॥૧॥

ચિન્તમન્તર્ગતં દુષ્ટ તીર્થસ્નાનૈર્ન શુદ્ધયતિ ।

શતશોડપિ વપુર્ધૌતં સુરામાણ્ડમિથાશુષિ ॥૨॥

જાને સમસ્ત અંગ ઉપાંગ સહિત શરીરનુ પ્રક્ષાલન કરવું તે સ્વ-સ્નાન
અપ્રાસુક જલજ્ઞેના સ્નાન કરવામા અપ્રકાયા લવેની વિરાપના થાય છે, જેથી સ્નાન
કરવાને વપ તેમજ સજમને વિઘાત થાય છે પ્રાસુક જલજ્ઞેના પશુ સ્નાન કરવાથી
લવેની વિરાપના એ રીતે થાય છે કે તે પાણી વહેતુ-વહેતુ જમીનમા સમાઈ
થાય છે તેમજ જમીનમા છિદ્રીમાં ઉતરી જતુ કોવાથી તેમાં રહેલા લવે મરે છે
અ પ્રમરે તેના કષ્ટનુ કારણ કોવાથી તેમા પ્રાસુક જલજ્ઞેના કરાવેલ સ્નાન પશુ
સાધુ માટે લાભ્ય કોવા છે કહ્યું પશુ છે—

નોદકપિલગ્નગામ્રોડપિ, સ્નાત્ત્વમિધીયતે ।

સ સ્નાતો યો વ્યસ્નાતઃ, સ વાઘામ્યન્તરઃ શુષિ ॥૧॥

ચિન્તમન્તર્ગતં દુષ્ટ તીર્થસ્નાનૈર્ન શુદ્ધયતિ ।

શતશોડપિ વપુર્ધૌતં સુરામાણ્ડમિથાશુષિ ॥ ૨ ॥

તદેવ દર્શયિતુમાહ—‘ સંસોહણં ચ ’ इत्यादि ।

મૂલ્મ—સંસોહણં ચ વમણં ચ, ગાયબ્ભંગણં ચ સિનાણં ચ ।

સંવાહણં ચ ન સે કપ્પે, દંતપક્ષાલણં ચ પરિજ્ઞાણ ॥૨॥

છાયા—સંશોધનં ચ વમનં ચ ગાત્રાભ્યજ્ઞનં ચ સ્નાનં ચ ।

સંવાહનં ચ ન તસ્ય કલ્પતે દન્તપ્રક્ષાલનં ચ પરિજ્ઞાય ॥૨॥

ટીકા—પરિજ્ઞાય=અશુચિ, અશુચિસંભવમૌદારિકશરીરમિતિ વિદિત્વા સંશો-
ધન=વસ્તિકર્મણૌષધપ્રયોગેણ વા મલકોષ્ઠસ્ય સમ્યક્ શોધનં, તસ્ય ભગવતો ન કલ્પત
इत्यन्वयः । एवमग्रेऽपि वमनादिषु योजनीयम् । वमनं=वमनजनकौषधप्रयोगेण शरी-
रान्तर्वर्तिकफादिनिःसारणं, तथा गात्राभ्यञ्जनं=शतपाकसहस्रपाकतैलादिभि-
श्चन्दनकुङ्कुमकेसरादिभिर्वा गात्रोद्धर्तनं, तथा-स्नानं=द्रव्यસ્नानं=अप्रासुकेन-
प्रासुकेन वा जलेन स्नानम् । तद् द्विविधं—देशस्नानं सर्वस्नानं चेति । तत्र हस्ताद्य-
धिष्ठानादिशौचातिरेकेणाऽक्षिपक्ष्मप्रक्षालनमपि देशस्नानम् । सर्वस्नानं—सर्वाङ्गप्र-

इसी बातको और स्पष्ट करते हैं—‘ संसोहणं च ’ इत्यादि ।

भगवानને કમી મી સંશોધન-વસ્તિકર્મ-इमेमा अथवा विरेचक औषधि
आदिद्वारा मलकोष्ठकी शोधनक्रिया, वमनकारक औषधिके उपचारसे
शरीरके भीतरके कफादिक मैलका सशोधन—बाहर निकालना, शतपा-
कवाले, अथवा सहस्रपाकवाले तैलसे मर्दन, अथवा चदन, कुंकुम और केशर
आदिसे शरीरका उवटन और प्रासुक अथवा अप्रासुकजलसे द्रव्य स्नान
करना, ये समस्त क्रियाएँ बिल्कुल नहीं कीं, कारण कि इस प्रकारकी
क्रियाओंका करना उनके आचारसे उन्हें कल्प्य नहीं था । द्रव्यस्नान—
देशस्नान और सर्वस्नानके भेदसे दो प्रकारका है । हाथ पैर आदिकी
शुद्धिके सिवाय आखों और उनकी पलकोंका प्रक्षालन करना देशस्नान,

આ વાતને વધુ સ્પષ્ટ કરવામા આવે છે—‘ સસોહણં ચ ’ इत्यादि

ભગવાને કહી પણ સશોધન-वस्तिकर्म-એનીમા અથવા વિરેચક ઔષધી
વગેરે દ્વારા મળશુદ્ધિની ક્રિયા, કચ-ઉલટી કરાવનારા ઔષધોના ઉપચારથી શરીરની
અદરના કફ વગેરે મેલને બહાર કાઢવો, શતપાકકે સહસ્રપાક તૈલથી મર્દન,
અથવા ચદન, કુકુ કે કેશર વગેરેથી શરીરનું લેપન, ગરમ અથવા ઠંડા પાણીથી
દ્રવ્યસ્નાન કરવું, આવી બધી ક્રિયાઓનો ભગવાને સર્વથા ત્યાગ કર્યો હતો,
કારણ કે આ પ્રકારની ક્રિયાઓ કરવા માટે તેમના આચારથી તેમનો કલ્પ ન હતો
દ્રવ્યસ્નાન—देशस्नान तथा सर्वस्नानના ભેદથી બે પ્રકારના છે હાથ પગ વગેરેની
શુદ્ધિના સિવાય આખો અને તેની પાપણું પણ પ્રક્ષાલન કરવું એ देश-સ્નાન,

प्राप्तम्-अप्राप्तकजलेन स्नानकरणेऽपकायाविचिराधनया तपसंयमविनाश्यात्,
प्राप्तकजलेनापि स्नानकरणे शुपिरविदीर्णभूमिषर्षिमन्तूनामुत्प्लावनेन प्राप्तिविरा
पनाया सद्मायात् साधो स्नानं न कल्पत इति भावः । उक्तञ्च—

नोदकविलम्बगात्रोऽपि स्नात इत्यभिधीयते ।

॥ स्नातो यो दमस्नातः, स बाह्याभ्यन्तरः शुचिः ॥१॥

चित्तमन्तर्गतं दुष्टं, तीर्थस्नानेन शुध्यति ।

अतश्चोऽपि वपुर्धौतं सुरामाण्डमिवाशुचि ॥ २ ॥

और समस्त अंग उपाग सहित शरीरका प्रक्षालन करना सर्वस्नान
है। अप्राप्तक जलसे स्नान करनेपर अपकायके जीर्णोकी विराधना होती है,
इससे स्नान करनेवालेके तप और संयमका विघात होता है। प्राप्तकजलसे
भी स्नान करनेसे जीर्णोकी विराधना इसलिये होती है कि वह पानी
पहकर जमीनमें भीतर समा जाता है और भेदोंमें मरजानेसे उनके
भीतर रहे हुए जीव उससे मर जाते हैं। इस प्रकार उन्हें कष्टका कारण
होनेसे वह प्राप्तकजल द्वारा किया गया स्नान भी साधुओंके लिये
हेतु है। कहा भी है—

नोदकविलम्बगात्रोऽपि स्नात इत्यभिधीयते ।

स स्नातो यो दमस्नातः, स बाह्याभ्यन्तरः शुचिः ॥१॥

चित्तमन्तर्गतं दुष्टं तीर्थस्नानेन शुध्यति ।

अतश्चोऽपि वपुर्धौतं सुरामाण्डमिवाशुचि ॥२॥

जने समस्त अंग उपाग सहित शरीरका प्रक्षालन करतुं ते सर्व-स्नान
अप्राप्तक जलसे स्नान कस्याभा अपकाय लोचनी विराधना बाध है केधी स्नान
कस्याने तप तेमज सधनने विघात बाध है प्राप्तक जलसे पक्ष स्नान कस्याधी
लोचनी विराधना के शीते बाध है के ते पाणी बहेतु-बहेतु जमीनमा समाध
बाध है तेमज जमीनमा छिरीमा डतरी अतुं डोवाधी तेमां बहेतु लोच मरे है,
आ प्रकार तेना कष्टतुं कारण डोवाधी तेना प्राप्तक जलसे कस्याने स्नान पक्ष
साधु माटे लोचन डोवा है कक्ष पक्ष है—

नोदकविलम्बगात्रोऽपि स्नात इत्यभिधीयते ।

स स्नातो यो दमस्नातः, स बाह्याभ्यन्तरे शुचिः ॥१॥

चित्तमन्तर्गतं दुष्टं तीर्थस्नानेन शुध्यति ।

अतश्चोऽपि वपुर्धौतं सुरामाण्डमिवाशुचि ॥ २ ॥

અન્યચ્ચ-સ્નાનં મદદર્પકરં, કામાર્જ્ઞં પ્રથમં સ્મૃતમ્ ।

તસ્માત્કામં પરિત્યજ્ય, નૈવ સ્નાન્તિ દમે રતા ॥૧॥

અપરચ્ચ-“ મલમડ્ડલપંકમડ્ડલા, ધૂલીમડ્ડલા ન તે નરા મડ્ડલા ।

જે પાવપંકમડ્ડલા, તે મડ્ડલા જીવલોચંમિ ” ॥ ૧ ॥

છાયા-“ મલમલિનાઃ પદ્મમલિના, -ધૂલીમલિના ન તે નરા મલિનાઃ ।

યે પાપપદ્મમલિના, -સ્તે મલિના જીવલોકે ॥૧॥ ” ઇતિ ।

તથા સવાહનં=હસ્તાદિના શરીરપરિકર્મ, અસ્થ્યાદિસુખાર્થ ગાત્રનિષ્પીડનમ્ ।
તથા-દન્તપ્રક્ષાલનં=કાષ્ઠેન ચૂર્ણાદિના વા દન્તમાર્જનં ચ તસ્ય ભગવતઃ શ્રીવર્દ્ધમાન-
સ્વામિનો ન કલ્પતે ॥ ૨ ॥

और भी-स्नानं मददर्पकर, कामार्ज्जं प्रथमं स्मृतम् ।

तस्मात् कामं परित्यज्य, नैव स्नान्ति दमे रताः ॥१॥

फिर भी-मलमलपंकमड्ढला, धूलीमड्ढला न ते नरा मड्ढला ।

जो पावपंकमड्ढला, ते मड्ढला जीवलोचंमि ॥१॥

भावार्થ--પાનીકો શરીર પર ઢાલના, અથવા ડસસે શરીરકો ગીલા કરના इसका नाम स्नान नहीं है । ऐसे लौकिक स्नानसे न बाह्य शरीरकी शुद्धि होती है और न आभ्यन्तर आत्माकी ही । इन दोनों प्रकारकी शुद्धिका कारण दमस्नान है । पांच इन्द्रिय और मनको वश करनेका नाम दम है । इससे (पांच इन्द्रियोंके वश करने से) शरीरकी, और मनको वश करनेसे आत्माकी शुद्धि होती है, इसीका नाम बाह्य और आभ्यन्तर शुद्धि है । दम को स्नान इस लिये कहा है कि जिस प्रकार जल स्नानसे शरीर आदिके ऊपरका लगा हुआ मैल दूर हो जाता है

इरी पणु-स्नानं मददर्पकर, कामार्ज्जं प्रथमं स्मृतम् ।

तस्मात् कामं परित्यज्य, नैव स्नान्ति दमे रताः ॥१॥

इरी पणु-“ मलमड्ढलपंकमड्ढला, धूलीमड्ढला न ते नरा मड्ढला ।

जो पावपंकमड्ढला, ते मड्ढला जीवलोचंमि ” ॥१॥

ભાવાર્થ--પાણીને શરીર ઉપર ઢોળવુ, અથવા તેનાથી શરીરને ધોવુ તેનું નામ સ્નાન નથી પણ એવા લૌકિક સ્નાનથી નથી બાહ્ય શરીરની શુદ્ધિ થતી કે નથી તેમ અંદરના આત્માની પણ, આ બંને પ્રકારની શુદ્ધિનું કારણ દમસ્નાન છે પાંચ ઇન્દ્રિયો અને મનને વશ કરવાનું નામ દમ છે આથી પાંચ ઇન્દ્રિયોને વશ કરવાથી શરીરની અને મનને વશ કરવાથી આત્માની શુદ્ધિ થાય છે તેનું નામ આભ્યંતર શુદ્ધિ છે દમસ્નાન આ માટે કહેવાયેલ છે કે જે પ્રકારે જળસ્નાનથી શરીર વગેરે ઉપર લાગેલો મેલ દૂર થઈ જાય છે એ પ્રકારે આ દમક્રિયાથી

ફિજ્—‘વિરપ’ત્યાદિ ।

મૂષ્—વિરપ ય ગામધસ્મેર્દિ, રીયઙ્ માહણે અથદુવાઈ ।

સિસિરમિ યગયા ભગવં, છાયાપ શાહ આસીય ॥૩॥

ઢાયા—વિસ્ત્રામ ગ્રામપર્મેમ્બો, રીયતે માહનઃ અથદુવાદી ।

શિશિરે પદ્મા મગવાન, ઢાયાયાં ધ્યાયતિ આસિયા ॥૩॥

હસી પ્રકાર હસ દમ—ક્રિયાસે હમ્નિય આદિકી નિરગૃહ પ્રવૃત્તિસે ઉત્પન્ન
હૃદય શારીરિક ઓર આત્મિક અપવિત્રતા ની જો જ્ઞકમૈત્ર જેસી માની
ગઈ હૈ નષ્ટ હો જાતી હૈ । દમસ્નાનકે વિના હમ અન્તર્ગત ચિત્તની
કુચ્છતા બાદે હજારોં ની સીધોંમે સ્નાન કયોં ન કર લિયા જાય કમી નષ્ટ
નહીં હો સકતી હૈ । જિસ પ્રકાર મદિરાકે રખ્ખનેકા ચર્તન અનેક વાર ઘોને
પર ની શુષ્કિ—પવિત્ર નહીં હોતા હૈ, હસી પ્રકાર સેફઢોં ઘાહિરી ઉપાયસે
પોયા ગયા યહ શરીર ની કમી પવિત્ર નહીં હો સકના હૈ । હસલિયે જો
દમસ્નાન કરનેમેં રત સાધુ હૈ એ હસ મદ્ ઓર વર્પકારી તથા કામકે
પ્રધાન કારણમૂત હસ જલસ્માનસે દૂર રહતે હૈ । હસી લિયે પ્રમુ હન સબ
પાતોંસે પરે રહે ઓર આત્મિક શુષ્કિતાની વૃદ્ધિકી ઓર અપ્રેમર હુપ ।
‘મગવાનને’ હમી પ્રકાર ‘શરીરકો સુખ મિછે’ હસ માવનાસે હમરોંકો
પેરિત કર કમી ની કિસીસે અપના શરીર નહીં વષવાયા ઓર ન અપને
વાંતોંકા પ્રક્ષાલન—વન્તઘાષન હી ક્રિયા, કયોં કિ એ મય પાતે
જેનવીક્ષામેં હેય—ત્યાગ્ય—માની જાતી હૈ ॥૨॥

કન્નિય વરેશની નિરનજ પ્રવૃત્તિથી ઉત્પન્ન થયેલ શારીરિક અને આત્મિક
અપવિત્રતા યજ્ઞ કેને પ્રેમ કેત્રી માની દેવાયેલ છે તે નાશ પામે ॥ દમસ્નાન
વિના અન્તર્ગત ચિત્તની કુચ્છતા કલશે તીર્થમા સ્નાન કરવાથી પણ નાશ પામતી
નથી એ રીતે શ્રદ્ધ શાખવાત્ કામ અનેક વખત સાધ કરવા છતાં પણ તે તેની
વાસથી મુક્ત થઈ પવિત્ર જનતુ નથી, તેવી રીતે જલ્દારના સે કહે ઉપદેશથી પોવામા
આવેલ આ શરીર પણ કહી પવિત્ર થતુ નથી માટે એ સાધુ દમસ્નાન કરવામા
મસ્ત છે તેવા સાધુ આવા મદ્ અને વર્પકારી તથા કામના પ્રધાન કારણમૂત આ
જલસ્નાનથી દૂર રહે છે આથી જ પ્રમુ જ્ઞાતી રીતથી દૂર રહ્યા અને આત્મિક
શુદ્ધિની વૃદ્ધિને માટે અશ્વસર રહ્યા ભજવાને આવી રીતે શરીરને સુખ મળે
આ ભાવનાથી બીજાઓને પ્રેરિત કરી કહી પણ કોઈથી પોતાત્ શરીર કળાવશાનુ
નહિ, અને પોતાનો કાલોત્તર પોણ એટલે કાલજ્ઞ કરવું વગેરે પણ કરેલ નહીં
કારણ કે આ બધી પાતે જેનવીક્ષામા હેય—ત્યાગ્ય—માનેલ છે (૨)

અન્યચ્ચ—સ્નાનં મદદર્પકરં, કામાર્જ્જ્ઞં પ્રથમં સ્મૃતમ્ ।

તસ્માત્કામં પરિત્યજ્ય, નૈવ સ્નાન્તિ દમે રતા ॥૧॥

અપરચ્—“મલમઇલપંકમઇલા, ધૂલીમઇલા ન તે નરા મઇલા ।

જે પાવપંકમઇલા, તે મઇલા જીવલોયંમિ ” ॥ ૧ ॥

છાયા—“મલમલિનાઃ પદ્મમલિના, -ધૂલીમલિના ન તે નરા મલિનાઃ ।

યે પાપપદ્મમલિના, -સ્તે મલિના જીવલોકે ॥૧॥ ” ઇતિ ।

તથા સવાહનં=હસ્તાદિના શરીરપરિકર્મ, અસ્થ્યાદિસુખાર્થ ગાત્રનિષ્પીડનમ્ ।

તથા-દન્તપ્રક્ષાલનં=કાળેન ચૂર્ણાદિના વા દન્તમાર્જનં ચ તસ્ય ભગવતઃ શ્રીવર્દ્ધમાન-
સ્વામિનો ન કલપતે ॥ ૨ ॥

ઔર भी-સ્નાન મદદર્પકર, કામાર્જ્જ્ઞં પ્રથમં સ્મૃતમ્ ।

તસ્માત્ કામં પરિત્યજ્ય, નૈવ સ્નાન્તિ દમે રતાઃ ॥૧॥

ફિર भी-મલઇલપંકમઇલા, ધૂલીમઇલા ન તે નરા મઇલા ।

જે પાવપંકમઇલા, તે મઇલા જીવલોયંમિ ॥૧॥

ભાવાર્થ—પાનીકો શરીર પર ઢાલના, અથવા ઉસસે શરીરકો ગીલા કરના ઇસકા નામ સ્નાન નહીં હૈ । એસે લૌકિક સ્નાનસે ન વાહ્ય શરીરકી શુદ્ધિ હોતી હૈ ઔર ન આભ્યન્તર આત્માકી હી । ઇન દોનોં પ્રકારકી શુદ્ધિકા કારણ દમસ્નાન હૈ । પાંચ ઇન્દ્રિય ઔર મનકો વશ કરનેકા નામ દમ હૈ । ઇસસે (પાંચ ઇન્દ્રિયોંકે વશ કરને સે) શરીરકી, ઔર મનકો વશ કરનેસે આત્માકી શુદ્ધિ હોતી હૈ, ઇસીકા નામ વાહ્ય ઔર આભ્યન્તર શુદ્ધિ હૈ । દમ કો સ્નાન ઇસ લિયે કહા હૈ કિ જિસ પ્રકાર જલ સ્નાનસે શરીર આદિકે ઝપરકા લગા હુઆ મૈલ દૂર હો જાતા હૈ

इरी पशु—स्नान मददर्पकं, कामार्ज्ज्जं प्रथमं स्मृतम् ।

तस्मात् कामं परित्यज्य, नैव स्नान्ति दमे रताः ॥१॥

इरी पशु—“मलमइलपंकमइला, धूलीमइला न ते नरा मइला ।

जे पापपंकमइला, ते मइला जीवलोयमि ” ॥१॥

ભાવાર્થ—પાણીને શરીર ઉપર ઢોળવુ, અથવા તેનાથી શરીરને ધોવું તેનું નામ સ્નાન નથી પણ એવા લૌકિક સ્નાનથી નથી વાહ્ય શરીરની શુદ્ધિ થતી કે નથી તેમ અદરના આત્માની પણ, આ બન્ને પ્રકારની શુદ્ધિનું કારણ દમસ્નાન છે પાપ ઇન્દ્રિયો અને મનને વશ કરવાનું નામ દમ છે આથી પાપ ઇન્દ્રિયોને વશ કરવાથી શરીરની અને મનને વશ કરવાથી આત્માની શુદ્ધિ થાય છે તેનું નામ અભ્યંતર શુદ્ધિ છે દમસ્નાન આ માટે કહેવાયેલ છે કે જે પ્રકારે જળસ્નાનથી શરીર વગેરે ઉપર લાગેલો મેલ દૂર થઈ જાય છે એ પ્રકારે આ દમક્રિયાથી

मगवान् कियन्त काष्ठं रूसोदनादीनि स्रजे स्मेत्याह—‘पयाणि’ इत्यादि।
मूष्म्—पयाणि तिष्ठि पडिसेवे, अष्टमासे य जावय भयव ।

अवि इत्थ पगया भगव, अष्टमास अवुवा मासपि ॥५॥

पया—पयानि प्रीणि प्रतिसेपते, अष्टमासां य यापयति मगवान् ।

अप्यय एकदा मगवान्, अष्टमासमयवा मासमपि ॥ ५ ॥

टीका—मगवान् पयानि=पूर्वोक्तानि प्रीणि=ओदनादीनि यथाप्राप्तं प्रति-
सपदेस्म। एवं कृत्वाऽष्टौ मासान् यापयति=शरीरप्राप्तां निर्भरतिस्म। अथ
ममवतस्तस्यो वर्णयति—‘अवि इत्थ’ इत्यादि। अपिच—एकदा मगवान् अत्र=छत्र
स्वावस्थायाम् अष्टमासमयवा मासमपि चतुर्विंशतिवारपरित्यागेन तपश्चकार ॥ ५ ॥

किञ्च—‘अवि साहिय’ इत्यादि ।

मूष्म्—अवि साहिय तुवे मासे, छप्पि मासे अवुवा विहरित्या ।

राओवराय अपडिन्ने, अन्न गिलायमगया मुजे ॥६॥

आदि, पैरो=पैरोके चूर्ण आदि तथा कुसुमी आदिसे अपने शरीरका
निर्वाह करते। यह सब रूक्ष आहार है ॥ ४ ॥

मगवानने किन्ने दिनों तक रूक्ष आहारका सेवन किया? इसे छत्र
कार प्रकट करते हैं—‘पयाणि’ इत्यादि।

मगवानने इन ओदन=कोदण्ड, मधु=धरचूर्ण और कुसुमी, ये तीन
प्रकारके पयुपित रूक्ष आहार जिस समय गोचरीमें जो मिल जाता था
वही छेले थे, इस प्रकार आठ मास तक रूक्ष आहार सेवन किया।
मगवानने अपनी इस छत्रस्थावस्थामें कभी-कभी अर्ध मास या एक मास आदि
बनेक चौबिहार तपश्चर्या की ॥५॥

बजेरे तथा जगधी बजेरेवी पोताना शरीरने निर्वाह करता अथ अथ इक्ष
आकार छे (४)

जमवाने डेटला दिवसे। सुधी इक्ष आकारतु सेवन करु? जेने सूत्रकार
प्रकट करे छे—पयाणि इत्यादि।

जमवाने जे ओदन=कोदण्ड मधु=गिरसुर्ष अने कसुमी, जे त्रय
प्रकारका पयुपित वासी इक्ष आकार के समये जेण्णरीमा के भणी वतु ते देवा
देवा अथ प्रकार आठ मास सुधी इक्ष आकारतु सेवन करु? जमवाने पोतानी
जे छत्रस्थ अवस्थायां कही कही अर्धमास, अथर कोकमास आदि अनेक
चौबिहार तपश्चर्या करी। (५)

ટીકા--ગ્રામધર્મેભ્યઃ=શબ્દાદિવિષયેભ્ય, વિરતઃ=નિવૃત્તઃ, માહનઃ=અહિંસો-પદેશી, અવહુવાદી=અલ્પભાષી, ભગવાન્ રીયતે=વિહરતિસ્મ। એકદા શિશિરે ભગવાન્ છાયાયા વૃક્ષલતામણ્ડપાદેરઘસ્તાદ્ આસિત્વા=ઉપવિશ્ય ધ્યાયતિ=ધ્યાન-લીનો વભૂવ ॥ ૩ ॥

કિંચ-‘આયાવહ’ ઇત્યાદિ।

મૂલમ્-આયાવહ ય ગિમ્હાણં, અચ્છહ ઉક્કુહુએ અભિતાવે।

અદુ જાવહૃત્થ લૂહેણં, ઓયણમંથુકુમ્માસેણં ॥૪॥

છાયા--આતાપયતિ ચ ગ્રીષ્મેષુ, તિષ્ઠતિ ઉત્કુટુકઃ અભિતાપમ્।

અથાડયાપયદ્ રુક્ષેણ, ઓદનમન્યુકુલમાષેણ ॥ ૪ ॥

ટીકા--ભગવાન્ ગ્રીષ્મેષુ આતાપયતિ=સૂર્યાંતાપનાં સેવતેસ્મ। કેન પ્રકારેણ-ત્યાહ-‘તિષ્ઠતી’-ત્યાદિ। ઉત્કુટુકઃ=ઉત્કુટુકાસનો ભૂત્વા અભિતાપ=સૂર્યાભિમુખં તિષ્ઠતિ। અથ=સમુચ્ચયે, તથા રુક્ષેણ=નીરસેનાન્તપ્રાન્તેન પર્યુષિતેન ચ ઓદનમ-ન્યુકુલમાષેણ, ઓદનઃ=કોદ્રવોદનાદિઃ, મન્યુ=વદરચૂર્ણાદિક, કુલમાષઃ=કુલત્યાદિઃ, એવા સમાહારઃ ઓદનમન્યુકુલમાષં, તેન અયાપયત્=શરીરયાત્રા નિર્વહતિસ્મ ॥૪॥

ફિર મી--“વિરણ ય” ઇત્યાદિ।

શબ્દાદિક પાંચ ઇન્દ્રિયોંકે વિષયોંસે સર્વથા વિરક્ત વે ભગવાન સદા જીવોંકો અહિંસા ધર્મકા ઉપદેશ દેનેવાલે થે। વહુત કમ બોલતે થે। યદિ બોલનેકા અવસર આતા તો સદા હિત મિત ઓર પ્રિય વચન બોલતે થે। કમીર શિશિર ઋતુમેં ભગવાન વૃક્ષ, લતા-મણ્ડપ આદિકે નીચે બેઠ કર ધ્યાનમેં લીન હોતે થે ॥૩॥

ઓર મી--‘આયાવહ ય’ ઇત્યાદિ।

ગ્રીષ્મઋતુમેં પ્રભુ સૂર્યકે સંમુખ ઉત્કુટુક (ઉકડુ) આસનસે બેઠકર આતાપના લેતે। તથા અન્ત પ્રાન્ત ઓર પર્યુષિત કોદ્રવકા અન્ન

ફરી--‘વિરણ ય’ ઇત્યાદિ

શબ્દાદિક પાંચ ઇન્દ્રિયોના વિષયોથી સર્વથા વિરક્ત એવા ભગવાન સદા જીવોની અહિંસાના ઉપદેશક હતા થોડું બોલતા હતા કદાચ બોલવાનો પ્રસંગ આવતો તો સદા હિત મિત અને પ્રિય વચન કહેતા હતા કદી કદી શિશિર ઋતુમા ભગવાન વૃક્ષ, લતામંડપ વગેરેની નીચે બેસી ધ્યાનમા લીન થતા હતા (૩)

ફરી પણ--‘આયાવહ ય’ ઇત્યાદિ

ગ્રીષ્મઋતુમા પ્રભુ સૂર્યની સામે ઉત્કુટુક (ઉકડુ) આસનથી બેસી આતાપના લેતા હતા, તથા અન્ત પ્રાન્ત અને પર્યુષિત કોદ્રવોનું અન્ન વગેરે, યોરનું ચણું

ममवान् क्षियन्त कालं रूक्षोदनादीनि सेवत स्मेत्याह—‘पयाणि’ इत्यादि।
मूल्म्—पयाणि तिलि पडिसेवे, अद्धमासे य जावए भयव ।

अवि इत्थ पगया भगव, अद्धमास अबुवा मासपि ॥५॥

पया—एतानि ग्रीणि प्रतिसेवते, अष्टमासां य पापयति मगवान् ।

अप्यत्र एकदा मगवान्, अद्धमासमयवा मासमपि ॥ ५ ॥

टीका—मगवान् एतानि=पूर्वोक्तानि ग्रीणि=ओदनादीनि यथाभावे प्रति-
सेवतेस्म। एव कृत्वाऽष्टौ मासान् पापयति=शरीरयात्रां निर्वहतिस्म। अथ
मगतवत्स्वो धर्मयति—‘अवि इत्थ’ इत्यादि। अपिच—एकदा मगवान् अत्र=छष्ट
स्वास्वयाम् अद्धमासमयवा मासमपि चतुर्विंशद्वारपरित्यागेन तपश्चकार ॥ ५ ॥

किञ्च—‘अवि साहिए’ इत्यादि ।

मूल्म्—अवि साहिए बुवे मासे, छप्पि मासे अबुवा विहरित्था ।

राओवराय अपडिसे, अन्न गिलायमगया मुजे ॥६॥

आदि, पैरो—पोरोके बर्ण आवि तथा कुलपी आविसे अपने शरीरका
निर्वाह करते। यह सब रक्त आहार है ॥ ४ ॥

मगवानने कितने दिनों तक रक्त आहारका सेवन किया? इसे छष्ट
कार प्रकट करते हैं—‘पयाणि’ इत्यादि।

मगवानने इन ओदम—कोद्वब, मधु—वरबर्ण और कुलपी, ये तीन
प्रकारके पशुपित रक्त आहार जिस समय गोबरीमें जो मिल जाता था
वही छेते थे, इस प्रकार आठ मास तक रक्त आहार सेवन किया।
मगवानने अपनी इस छष्टस्थावस्थामें कभीर अर्ध मास या एक मास आवि
अनेक बीबिहार तपश्चर्या की ॥५॥

बबेरे तथा कणधी बबेरेधी पोताना शरीरने निर्वाह करता था पछा दक्ष
आकार के (४)

मगवानने केवल दिवसे सुधी दक्ष आकारतु सेवन कर्तुं? अने सूत्रकार
प्रकट करे छे—‘पयाणि’ इत्यादि।

मगवानने जो ओदम—कोद्वब, मधु—गोश्वर्ण अने कलधी, जो मधु
प्रकारका पशुपित वासी दक्ष आकार के समवे गोबरीमें जे मणी जतु ते बेदा
कता था प्रकार आठ मास सुधी दक्ष आकारतु सेवन कर्तुं मगवानने पोतानी
जे छष्टमे अवस्थामें कही कही अर्धमास, अथवा एकमास आवि अनेक
बेबिहार तपश्चर्या करी (५)

छाया--अपि साधिकौ द्वौ मासौ पडपि मासान् अथवा विजहार।

रात्रोपरात्रमप्रतिज्ञः, अन्न ग्लानमेरुदा भुङ्क्ते ॥ ६ ॥

टीका--अपि च-साधिकौ द्वौ मासौ=सार्धमासद्वयम्। अथवा पण्मासान् अपि पानीयमप्यपीत्वा अप्रतिज्ञः=पानप्रतिज्ञारहितः सन् रात्रोपरात्रम्=अहर्निशं विजहार=तपश्चर्यायां विहरतिस्म। तथा-एरुदा=तपःपारणादिवसे ग्लान=पर्युषित-मन्तप्रान्तम्, अन्नम्=ओदनादिकं भुङ्क्तेस्म ॥ ६ ॥

किञ्च--'छट्टेण' इत्यादि।

मूलम्-छट्टेण एगया भुंजे, अटुवा अट्टमेण दसमेणं।

दुवालसमेण एगया भुंजे, पेहमाणे समाहिं अपडिन्ने॥७॥

छाया--पण्ठेन एरुदा भुङ्क्ते अथवा अष्टमेन दशमेन।

द्वादशेन एकदा भुङ्क्ते प्रेक्षमाणः समाधिमप्रतिज्ञः ॥ ७ ॥

टीका--अप्रतिज्ञः=इहलोकपरलोकप्रतिज्ञारहितः समाधि=सयमसमाधि प्रेक्ष-माणः=पर्यालोचयन् भगवान् एकदा=कदाचित् पण्ठेन=पण्ठभक्तेन भुङ्क्तेस्म। अथवा अष्टमेन, एकदा द्वादशेन=द्वादशभक्तेन च भुङ्क्तेस्म। पण्ठभक्तादीनां पारणां चकारेत्यर्थः ॥ ७ ॥

और भी--'अवि माहिण' इत्यादि।

इतना ही नहीं-किन्तु कभीरु ढाईर मास तक अथवा छह छह मास तक चौविहार तपश्चर्या करके भगवान् तपमें लवलीन रहे। पार-णाके दिन अन्त-प्रान्त और पर्युषित ओदनादिका आहार ग्रहण करते थे ॥ ६ ॥

और भी--'छट्टेण एगया' इत्यादि।

कभी भगवान् छठ (बेला) करते थे, कभी अट्टम (तेला) करते, कभी द्वादशभक्त (पचोला) करते हुए समाधि भावमें लीन रहते थे॥७॥

इरी पद्य--'अवि साहिण' इत्यादि

अष्टव ७ नही पद्य कोछ कोछ वण्ठे अठ्ठी अठ्ठी मडिना सुधी अथवा छ छ मडिना सुधी चौविहार तपस्या उरीने भगवान् तपमा लवलीन रह्या पारध्याना दिवसे अन्त प्रान्त अने वासी ओदनादिनु सेवन करता हुता (६)

इरी--'छट्टेण एगया' इत्यादि

क्यारेक भगवान् छठ करता हुता, क्यारेक अठम करता हुता, क्यारेक द्वादशभक्त करता समाधी लावमा लवलीन रहैता हुता (७)

किञ्च—‘णञ्चा ण’ इत्यादि।

मूल्म्—णञ्चा णं से महावीरे, नो वि य पावग सयमकासी।

अन्नेहिं वा ण कारिस्था, कीरतंपि नाणुजाणिस्था ॥८॥

जाया—ज्ञात्वा स्वतु ॥ महावीरः नापि य पापकं स्वयमक्षयीत्।

अन्यैर्वा नाकारयत्, कुर्वन्तमपि नान्वज्ञासीत् ॥ ८ ॥

टीका—अपि य—समहावीर ज्ञात्वा हेयोपादेयमवबुध्य पापक कर्म=हिंसा-
हिंस न नयमकार्यीत्, अन्यैर्वा तस्यापकं कर्म नाकारयत्। कुर्वन्तं=पापकर्म
समाचरन्तमन्यमपि नान्वज्ञासीत्=नान्वस्मोवृषत् ॥ ८ ॥

अथ भगवता प्राप्तपणाधिधिमार्—‘गाम पविस्स’ इत्यादि।

मूल्म्—गाम पविस्स नगरं वा, घासमेसे कड परहाए।

सुविस्सुद्धमेसिया भगव, आयतजोगयाए सेविस्था ॥९॥

जाया—ग्रामं प्रविश्य नगरं वा घासमपयति कुतं परार्थाय।

सुविस्सुद्धमेपयित्वा भगवान् आपतयोगतयाऽसेविष्ट ॥ ९ ॥

टीका—भगवान् ग्रामे नगरं वा प्रविश्य घासमन्वेपयतिस्मि। कीदृशं प्राप्तमि-
त्याकाङ्क्षायामाह—‘कड परहाए’ इत्यादि। परार्थाय कृतम्=उद्गमदोपरहितं,

और भी—‘नञ्चा ण’ इत्यादि।

हेय और उपादेय तत्त्वके ज्ञाता भगवान् महावीरने कभी भी न
स्वयं पापकर्म किया, न किसीसे कराया और न पापकर्म करते हुएका
भनुमोदन किया ॥ ८ ॥

अथ भगवान् की घास—पषणाधिधिको कहते हैं—‘गाम पविस्स’ इत्यादि।

ईयांसमितिपूर्वक बिहार करमेवाले प्रभु महावीरने ग्राम अथवा
नगरमें प्रवेश कर उद्गम और उत्पादनाके दोषोंसे रहित शुद्ध आहार

करी—नञ्चा ण इत्यादि।

हेय अने उपादेय तत्त्वका ज्ञाता भगवान् महावीरने कभी पशु घेते पापकर्म
कियां नही अने जीव प्रासे कशान्ना पशु नही, तेमन् पापकर्म कस्यावजानु अनु-
येदन पशु कहुं नही. (८)

कवे भगवान् की घास—अवेपणाधिधिको कहते हैं—‘गाम पविस्स’ इत्यादि।

आम अन्तर नजरमां प्रवेश करी उद्गम अने उत्पादनका दोषोंसे रहित
शुद्ध आहारकी अवेपणा करी. अवेपणा करी आहार ज्ञानवस्तुत्वकी भन वस्तु

छाया--अपि साधिकौ द्वौ मासौ पडपि मासान् अथवा विजहार।

रात्रोपरात्रमप्रतिज्ञः, अन्न ग्लानमेकदा भुङ्क्ते ॥ ६ ॥

टीका--अपि च-साधिकौ द्वौ मासौ=मार्धमासद्वयम्। अथवा पण्मासान् अपि पानीयमप्यपीत्वा अप्रतिज्ञः=पानप्रतिज्ञारहितः सन् रात्रोपरात्रम्=अर्हर्निश विजहार=तपश्चर्यायां विहरतिस्म। तथा-एकदा=तपःपारणादिवसे ग्लानं=पर्युषित-मन्तप्रान्तम्, अन्नम्=ओदनादिक भुङ्क्तेस्म ॥६॥

किञ्च--'छट्टेण' इत्यादि।

मूलम्--छट्टेण एगया भुंजे, अदुवा अट्टमेण दसमेणं।

दुवालसमेण एगया भुंजे, पेहमाणे समाहिं अपडिन्ने॥७॥

छाया--पण्ठेन एकदा भुङ्क्ते अथवा अण्टमेन दशमेन।

द्वादशेन एकदा भुङ्क्ते प्रेक्षमाणः समाधिमप्रतिज्ञः ॥ ७ ॥

टीका--अप्रतिज्ञः=उहलोकपरलोकप्रतिज्ञारहितः समाधि=सयमसमाधि प्रेक्ष-माणः=पर्यालोचयन् भगवान् एकदा=कदाचित् पण्ठेन=पण्ठभक्तेन भुङ्क्तेस्म। अथवा अण्टमेन, एकदा द्वादशेन=द्वादशभक्तेन च भुङ्क्तेस्म। पण्ठभक्तादीनां पारणां चकारेत्यर्थः ॥ ७ ॥

और भी--'अवि माहिण' इत्यादि।

उतना ही नहीं--किन्तु कभीरु ढाईर मास तक, अथवा छह छह मास तक चौविहार तपश्चर्या करके भगवान् तपमें लवलीन रहे। पार-णाके दिन अन्त-प्रान्त और पर्युषित ओदनादिका आहार ग्रहण करते थे ॥ ६ ॥

और भी--'छट्टेण एगया' इत्यादि।

कभी भगवान् छठ (वेला) करते थे, कभी अट्टम (तेला) करते, कभी द्वादशभक्त (पचोला) करते हुए समाधि भावमें लीन रहते थे॥७॥

इरी पण्णु--'अवि साहिण' इत्यादि

अट्टम ४ नडी पण्णु कोछ कोछ वण्णते अण्णे अही अही मडिना सुधी अथवा छ छ मडिना सुधी चौविहार तपस्या करीने भगवान् तपमा लवलीन रह्या पारणाना द्विवसे अन्त प्रान्त अने वामी ओदनादिनु भेवन करता हुता (६)

इरी--'छट्टेण एगया' इत्यादि

कथारेक भगवान् छठ करता हुता, कथारेक अट्टम करता हुता, कथारेक द्वादशभक्त करता समाधि भावमा लवलीन रहेता हुता (७)

તથા—સુચિશુદ્ધમ્=ઉત્પાદનાદોષવર્જિતમ્, એપયિત્વા=એષણાદોષ પરિહરન્ અન્વેષ્ય, ભગવાન્ આયતયોગતયા=આયતશ્વાસૌ યોગશ્ચ-આયતયોગઃ=જ્ઞાનચતુષ્ટયેન સમ્યગ્ મનોવાકાયલક્ષણયોગપ્રણિધાનમ્, તસ્ય ભાવઃ આયતયોગતા, તયા=ગ્રાસૈષણાદોષ-પરિવર્જનેન સમ્યક્ શુદ્ધમાહારમ્ અસેવિટ ॥ ૯ ॥

પુનરપિ ગ્રાસૈષણાપ્રિધિ ગાયાત્રયેણાહ—‘અદુ વાયસા’ ઇત્યાદિ ।

મૂલમ્—અદુ વાયસા દિગિંછિયા, જે અન્ને રસેસિણો સત્તા ।

ગ્રાસેસણાઽ ચિટ્ઠંતિ, સયયં ણિવત્તિઽ ય પેહાઽ ॥૧૦॥

છાયા—અથ વાયસા બુદ્ધુક્ષિતા યેઽન્યે રસૈષિણઃ સત્ત્વાઃ ।

ગ્રાસૈષણયા તિષ્ઠન્તિ સતત નિપતિતાશ્ચ પ્રેક્ષ્ય ॥૧૦॥

ટીકા—અથ મિત્સાર્ય ગચ્છતો ભગવતઃ પથિ બુદ્ધુક્ષિતાઃ=શુભપ્રવૃત્તિઃ રસૈષિણઃ=પિપાસાકુલાઃ વાયસાઃ=કાકાઃ, તયા યેઽન્યે સત્ત્વાઃ પારાવતાદય

કી ગવેષણા કી । ગવેષણા કર વાદમેં જ્ઞાનચતુષ્ટયસે મન, વચન ઓર કાય, હન ત્રીન યોગોંકી શુભ પ્રવૃત્તિપૂર્વક ઉસ આહારકા જો ગ્રાસ-એષણાકે દોષોંકે પરિહારસે ભલીભાંતિ શુદ્ધ થા સેવન કિયા ॥૧॥

ગ્રાસ-એષણા કી વિધિકા કથન સૂત્રકાર ત્રીન ગાથાઓંસે પ્રકટ કરતે હૈં—‘અદુ વાયસા’ ઇત્યાદિ ।

ભગવાન્ જિસ સમય આહારકે લિયે વિચરણ કરતે થે, ઉસ સમય ભૂખસે વ્યાકુલ ઓર પ્યાસસે દુઃખિત કૌવા તથા કબૂતર આદિ જો અપની બુદ્ધુક્ષાકે શમનાર્ય્ હધર ઉધરસે આકર જહાં સંમિલિત હોતે રહતે, ઉનકો જરા મી કષ્ટ ન હો, આહાર પા કર યે ઉડ ન જાયે, ઇસ

અને કાય, આ ત્રણ યોગોની શુભપ્રવૃત્તિપૂર્વક એ આહાર કે જે ગ્રાસૈષણાના દોષોના પરિહારથી સારી રીતે શુદ્ધ હોય તેનું સેવન કરેલું (૯)

ગ્રાસ-એષણાની વિધિનું કથન સૂત્રકાર ત્રણ ગાથાઓથી પ્રગટ કરે છે,— ‘અદુ વાયસા’ ઇત્યાદિ

ભગવાન આહાર માટે જે સમયે વિચરણ કરતા હતા એ સમયે ભૂખથી વ્યાકુળ અને તરસથી દુઃખી એવા કાગડા તથા કળુતરો વગેરે જીવો કે જે ભૂખને સંતોષવા રસ્તામાં જહીં કહીંથી આવી જ્યાં એક જગ્યાએ મળતા હતા અને બીજા પશુ વધુ સંખ્યામાં આવી તેમની સાથે ભળતા હતા. આવા પક્ષિઓ ઉડી ન જાય અને તેને જરા પશુ કષ્ટ ન પડે એ રીતે સંભાળપૂર્વક એમની

પણિયઃ ગ્રાસેપણયા=મણપાનેચ્છયા મૂમ્યુપરિ તિષ્ઠન્તિ=વિષરન્તિ, તથા સત
તમ્=પ્રવિસન્ નિપતિતાન્-આકાશાદ્ મૂમિતલમાગતાન્ પ્રેક્ષ્ય=દૃષ્ટા મગ્ધાન્-તેષાં
પ્રવિરોધમકર્ત્વન્ પાર્થમાગતઃ શ્વેનૈર્ગન્ધન્ ગ્રાસમન્યૈવીદિતિ તુહીયગાયયા સમ્બન્ધઃ ॥૧૦॥

છિન્ન—‘અવુષા’ ઇત્યાદિ । ‘વિત્તિચ્છેય’ ઇત્યાદિ ।

મૂમ્યુ-અવુષા માહુણ ચ સમણ ઘા, ગામપિંડોલગ ચ અતિર્હિ ઘા

સોવાગ મૂસિયારિ ઘા, કુક્કુર ઘાવિ ચિદ્વિય પુરઓ ॥૧૧॥

વિત્તિચ્છેય વજ્જતો, તેસિમપ્પસિય પરિહરતો ।

મદ પરક્કમે મગ્ધા, અર્હિસમાણો ઘાસમેસિરયા ॥૧૨॥

ઘાયા—અથવા ગ્રાહ્યં ચ મગ્ધા યા ગ્રામપિંડોલકં જાતિર્ધિ યા ।

અપાકં મૂપિકારિ યા કુકુરં યાપિ સ્થિતં પુરતઃ ॥૧૧॥

વિત્તિચ્છદં વજ્જયન્ તેપામપ્પસ્યયિકં પરિહરન્ ।

મન્દં પરક્કમે મગ્ધાન્ અર્હિસન્ ગ્રાસમન્યૈવીદ્ ॥૧૨॥

ટીકા—અથવા-ગ્રાહ્યં તથા મગ્ધા=જાતિયકપરિગ્રાહકતાપસનિર્ગ્ન્યા
નામન્યતરં, તથા-ગ્રામપિંડોલકં=મિષ્ટુકં, અતિવિપ્ર-અકસ્માદામતં, અપાકં=પાચ્છાતં,

રીતિસે અપન આપકો સંમાલતે હુણ ઝર્મીકિ સમીપસે ધીરે નિકલ
જાતે । તાત્પર્યં યહ હે કિ-પ્રમુ જિમ સમય આહાર છેનેકે કિયે
નિકલતે છે, ઘસ સમય ઘનકે ગમનસે કિસી મી જીવકો કષ્ટ નહીં
પહુંચતા યા । યહાં તક કિ જો કચ્છતર આદિ જીવ માર્ગમેં જુગતે હુણ
ફર ઘર ઘર ફિરા કરતે ઘસ સમય ઘનકે નજદીકસે યત્નાપૂર્વક મગ્ધાન્
નિકલ જાતે ॥૧૦॥

ફિર મી—‘અવુષા’ ઇત્યાદિ । ‘વિત્તિચ્છેય’ ઇત્યાદિ ।

इसी प्रकार ग्राहण, भ्रमण, शासन, आजीवक, परिग्राहक,
तापस, मिष्टुक, और अकस्मात् आया हुआ आवांछित एवं माजूर-बुधका

બાબુમાંથી ખીર ખીર નીકળી જતા તાત્પર્ય એ છે કે—પ્રમુ એ સમયે આહાર
લેવા નીકળતા હતા ત્યારે એમના જવા આવવાથી કેઈ પણ ભવને કષ્ટ પહેંચતું
નહીં, ત્યાં સુધી કે જે કચ્છતર વગેરે ભવ માર્ગમાં જાય ચલુતા અમ-તેમ
ઈત્યાં એ સમયે કચ્છવાન એમની નજીકથી આવવાની પૂર્વક નીકળી જતા (૧)

हरी—अवुषा इत्यादि.

આ રીતે ગ્રાહણ, ભ્રમણ, શાસન પરિગ્રાહક તાપસ અને મિષ્ટુક
અમાંથી કેઈને પણ તેમના તરફથી નકતર થતા નહીં અને અકસ્માત

તથા—સુવિશુદ્ધમ્=ઉત્પાદનાદોષવર્જિતમ્, એપયિત્વા=એષણાદોષં પરિહરન્ અન્વેષ્ય, ભગવાન્ આયતયોગતયા=આયતશ્ચાસૌ યોગશ્ચ-આયતયોગઃ=જ્ઞાનચતુષ્ટયેન સમ્યગ્ મનોવાકાયલક્ષણયોગપ્રણિધાનમ્, તસ્ય ભાવઃ આયતયોગતા, તયા=ગ્રાસૈષણાદોષ-પરિવર્જનેન સમ્યક્ શુદ્ધમાહારમ્ અસેવિષ્ટ ॥ ૯ ॥

પુનરપિ ગ્રાસૈષણાવિધિ ગાથાત્રયેનાહ-‘અદુ વાયસા’ ઇત્યાદિ ।

મૂલમ્—અદુ વાયસા દિર્ગિંછિયા, જે અન્ને રસેસિળો સત્તા ।

ઘાસેસળાણ ચિઢંતિ, સયયં ણિવત્તિણ ય પેહાણ ॥૧૦॥

છાયા—અથ વાયસા વુશુક્ષિતા યેડન્યે રસૈષિણઃ સત્ત્વાઃ ।

ગ્રાસૈષણયા તિષ્ઠન્તિ સતત નિપતિતાશ્ચ પ્રેક્ષ્ય ॥૧૦॥

ટીકા—અથ ભિક્ષાર્થ ગચ્છતો ભગવતઃ પથિ વુશુક્ષિતાઃ=શુભીક્રિતાઃ રસૈષિણઃ=પિપાસાકુલાઃ વાયસાઃ=કાકાઃ, તયા યેડન્યે સત્ત્વાઃ પારાવતાદય

કી ગવેષણા કી । ગવેષણા કર વાદમેં જ્ઞાનચતુષ્ટયસે મન, વચન ઓર કાય, હન ત્રીન યોગોંકી શુભ પ્રવૃત્તિપૂર્વક ઉસ આહારકા જો ગ્રાસ-એષણાકે દોષોંકે પરિહારસે મલીભાંતિ શુદ્ધ થા સેવન કિયા ॥૧॥

ગ્રાસ-એષણા કી વિધિકા કથન સૂત્રકાર ત્રીન ગાથાઓંસે પ્રકટ કરતે હૈં—‘અદુ વાયસા’ ઇત્યાદિ ।

ભગવાન્ જિસ સમય આહારકે લિયે વિચરણ કરતે થે, ઉસ સમય મૂલસે વ્યાકુલ ઓર પ્યાસસે દુઃસ્થિત કૌવા તથા કબૂતર આદિ જો અપની વુશુક્ષાકે શમનાર્થ ઇધર ઉધરસે આકર જહાં સમિલિત હોતે રહતે, ઉનકો જરા મી કષ્ટ ન હો, આહાર પા કર ચે ઉઢ ન જાયે, હિસ

અને કાય, આ ત્રણ યોગોની શુભપ્રવૃત્તિપૂર્વક એ આહાર કે જે ગ્રાસૈષણાના દોષોના પરિહારથી સારી રીતે શુદ્ધ હોય તેનું સેવન કરેલું (૯)

ગ્રાસ-એષણાની વિધિનું કથન સૂત્રકાર ત્રણ ગાથાઓથી પ્રગટ કરે છે,— ‘અદુ વાયસા’ ઇત્યાદિ

ભગવાન આહાર માટે જે સમયે વિચરણ કરતા હતા એ સમયે ભૂખથી વ્યાકુળ અને તરસથી દુઃખી એવા કાગડા તથા કબુતરો વગેરે છવો કે જે ભૂખને સતોષવા રસ્તામાં જહીં કહીંથી આવી જ્યાં એક જગ્યાએ મળતા હતા અને બીજા પશુ વધુ સચ્ચામાં આવી તેમની સાથે બળતા હતા. આવા પક્ષિઓ ઉડી ન જાય અને તેને જરા પશુ કષ્ટ ન પડે એ રીતે સલામતપૂર્વક એમની

પશિંગઃ પ્રાસેપણયા=મસપણાનેચ્છયા ધૂમ્પુપરિ ચિષ્ઠન્તિ=ચિચરન્તિ, તથા સત
ત્ત્વમ્=પ્રતિષ્ઠા નિપતિતાન્--આકાશાત્ ધૂમિતસમાગતાન્ પ્રેક્ષ્ય=દ્રષ્ટા મગ્તાન્-તેષાં
પ્રતિરોધમકુર્ષન્ પાર્શ્વમાગતાઃ ક્ષૈર્નૈર્ગચ્છન્ પ્રાસમનૈવીદિતિ તૃતીયગાયયા સમ્બન્ધઃ॥૧૦॥

કિચ્—‘અવુવા’ इत्यादि । ‘चिचिच्छेयं’ इत्यादि ।

ધૂમ્—અવુવા માહુણ ચ સમણ ઘા, ગામપિંડોલગ ચ અતિર્હિ ઘા।

સોવાગ મૂસિયારિં ઘા, કુક્કુરં ઘાવિ ચિષ્ઠિય પુરઝો ॥૧૧॥

ચિચિષ્ઠેયં ધઞ્જતો, તેસિમપ્પસિય પરિહરતો ।

મદ્ પરક્કમે મગવ, અર્હિસમાણો ઘાસમેસિત્થા ॥૧૨॥

પાયા—અથવા વ્રાહ્મણ ચ અમળં ઘા ગ્રામપિંડોલકં ચાતિરિં ઘા ।

અપાકં મૂપિકારિં ઘા કુકુર ઘાવિ સ્થિતં પુરઝઃ ॥૧૧॥

ચિચિષ્ઠં વર્જયન્ તેપામપ્પસિય પરિહરન્ ।

મન્દં પરક્કમે મગવાન્ અર્હિસન્ પ્રાસમનૈવીત્ ॥૧૨॥

ટીકા—અથવા—વ્રાહ્મણ તથા અમળં=શાળ્યઃ, આજીબકપરિવ્રાજકતાપસર્નિર્ન્યા-
નામન્યત્ત્વમ્, તથા—ગ્રામપિંડોલકં=મિષ્ટુકં, અતિરિપ્—અકસ્માદામતં, ઘપાકં=ચાણ્ડાલં,

રીતિસે અવને આપકો સંમાલતે હુણ ડન્હાંકિ સમીપસે ધીરેર નિકલ
જાતે । તાત્પર્યં યહ હૈ કિ-પ્રસુ જિસ સમય આહાર છેનેકે લિયે
નિકલ્લે ધે, હસ સમય હમકે ગમનસે કિસી મી જીબકો કાઢ નહીં
પહુંચતા યા । યહાં તક કિ જો કચૂતર આવિ જીબ માર્ગમેં જુગતે હુણ
હથર ડધર ફિરા કરતે હસ સમય હમકે મજ્જીકસં યત્નાપૂર્વક મગવાન્
નિકલ જાતે ॥૧૦॥

પિર મી—‘અવુવા’ इत्यादि । ‘चिचिच्छेयं’ इत्यादि ।

इसी प्रकार ब्राह्मण, अमण, शाक्य, आजीबक, परिव्राजक,
तापस, मिष्ठुक, और अकस्मात् आया हुआ चण्डाल एवं माज्जर-बुग्घका

બાબુમાંથી ધીરે ધીરે નીકળી જતા વાતપણ એ છે કે—મધુ એ સમયે આહાર
લેવા નીકળતા હતા ત્યારે એમના જવા આવવાથી કોઈ પણ હાથે એને કંઈ પહેંચતુ
નહોં, ત્યાં સુધી કે એ કહુતર નગરે હાથ માર્ગમાં ચાલુ થાયતા આમ-તેમ
રેશ્યો એ સમયે કાચવાન એમની નહીંથી આવવાની પૂર્વક નીકળી જતા. (૧૦)

૧૧—અવુવા इत्यादि.

આ રીતે બ્રાહ્મણ, અમળ, શાક્ય, આજીબક પરિવ્રાજક વાપસ અને મિષ્ટુક
આમાંથી કોઈને પણ તેમના વસ્ત્રથી નહતર થતાં નહોં. અને અકસ્માત

મૂપિકારિ=દુઃધાર્થિનં માર્જાર, અપિ ચ કુકુરં=થાનં વા પુરતઃ અગ્રે સ્થિત દ્વદ્વા
તેપા વૃત્તિચ્છેદં વર્જયન્, અપ્રત્યયિઋમ્=અપ્રતીતિ પરિહરન્ ભગવાન્ મન્દ પરાક્રમતે=
પાર્શ્વભાગત શનૈર્ગચ્છતિસ્મ । તથા અર્હિસન્=કુન્થુપ્રમૃતીનપિ જન્તૂન્ અપીડયન્
ગ્રાસમન્વૈષોત્=અષ્ણાશુદ્ધયા મિશ્કાર્થમટતિસ્મ ॥૧૧॥૧૨॥

કિન્ચ—‘અવિ સૂદ્ય’ ઇત્યાદિ ।

મૂલમ્—અવિ સૂદ્યં વા સુવકં વા, સીયં પિંડં પુરાણકુમ્માસં ।

અદુ વુવકસં પુલાગં વા, લઘ્વે પિંડે અલઘ્વે દ્રવિણ ॥૧૩॥

છાયા—અપિ સૂચિત વા શુષ્ક વા, શીતં પિંડ પુરાણકુલમાપમ્ ।

અથ વુવકસ પુલાકં વા, લઘ્વે પિંડે અલઘ્વે દ્રવિકઃ ॥ ૧૩ ॥

ટીકા—અપિ ચ—સૂચિતં=વ્યાધારિતં દિહ્નુજીરકાદિના સંસ્કૃત વ્યજ્જના-
દિયુક્તં તત્કાદૌ નિશ્ચિત મુદ્ગચ્છાદિવટકાન્નં ‘દહીવટા’ ઇતિ ભાષા-

અર્થો વિલાવ, ઓર કુત્તા આદિકો દેવ કર ભગવાન્ ઇન કિસીકો વિઘ્ન
નહીં કરતે હુણ યત્નાપૂર્વક ધીરે ૨ નિકલ જાતે । ડનકે ચલનેસે કુન્થુ
આદિ સૂક્ષ્મ જીવોં તકકો ભી કોઈ કષ્ટ ન પહુંચતા ॥૧૧-૧૨॥

ઑર ભી—‘અવિ સૂદ્ય’ ઇત્યાદિ ।

ભગવાન્ કો મિક્ષા નિમિત્ત જાતે સમય જો ભી ગૃહસ્થોંકે યહાં
શુદ્ધ નિર્દોષ આહાર મિલ જાતા થા, વે ડસે હી લે લેતે, ચાહે વહ વિલ-
કુલ રૂક્ષ ભી કયો ન હો । હીંગ ઓર જીરે આદિસે સંસ્કૃત, વ્યજ્જનાદિ
સે યુક્ત એવ તત્ક-છાંછમેં પડે હુણ, મૂગ ઓર ચના આદિકી
ગીલી દાલકો વાંટ તૈલમે તલ કર તયાર કિયે પદાર્થકા નામ સૂચિત હૈ ।
ભાષામેં ઇસે “દહીવટા” કહતે હૈં । સૂચિત પદસે રાઈતા, કરમ્વા

આવી ચડેલ ચાડાલ, તેમજ ડધની લોષી ખીલાડી, કુતરા વગેરેને જોઈ ભગવાન
એ કોઈને વિઘ્નરૂપ ન થતા યત્નાપૂર્વક ધીરે ધીરે નીકળી જતા એમના ચાલવાથી
કુથવા કે કોડી, મકોડી વગેરે સૂક્ષ્મ જીવોને પણ કોઈ કષ્ટ થતુ નહીં. (૧૧-૧૨)

ફરી—‘અવિ સૂદ્ય’ ઇત્યાદિ

ભગવાને મિક્ષા નિમિત્તે જવાના સમયે જે પણ ગૃહસ્થોને ત્યા શુદ્ધ નિર્દોષ
આહાર મળી જતો તેને ગ્રહણ કરતા, ચાહે તે ખોલકુલ રૂક્ષ પણ કેમ ન હોય
હીંગ અને જીરૂ વગેરેથી વધારેલા વ્યજ્જનાદિથી યુક્ત એમજ તત્ક-છાસમા
પડેલા મગ અને ચણાની ઢાળને ભીન્નવી વાટી તૈયાર કરવામા આવેલા પદાર્થનુ
નામ સૂચિત છે ભાષામા એને “દહીવટા” કહેવામા આવે છે, સૂચિત-પદ્ધતી

પ્રસિદ્ધ, કરમ્યાદિકં ચા, 'રણ્ણ' इति मापाप्रसिद्धं वा, तथा-शुष्कं वा
 મર્મિતચખકાદિકં, તથા શીતં=પર્યુપિતં वा पिण्डम्=आहारम् तथा पुराणकुसुमायं=
 પુરાતનમાપકુસુમાદિ बहुविधससिद्धस्थितकुसुमापमित्यन्ये। अथ-बुद्धसं वा नीरस-
 धान्यौदनं वा, यद्वा-पुरातनसक्तुपिण्डं वा, तथा पुलाकं वा=यवधानादिकं 'जवधानी'
 इति मापाप्रसिद्धं सम्भवा, तथाऽन्यस्मिन्नपि निर्दोषे पिण्डे=सम्पेऽप्यलम्बे वा
 शक्ति एव=संयममना पचासीत्। अयं भावः-सम्पे सति यथासम्पपुंफित-

આવિ મી સ્તિય જાતે હૈ। સુજે કુપ ચને આવિ અભક્ષ્ય નામ શુષ્ક હૈ। પર્યુપિત
 (પાસ્ટી), આહાર-ચીત્ત ઓર પુરાની ઉઢવકી દાલ તથા કુસુમી આવિકો
 કહતે હૈ। નીરસ ઘાન્યકે ચાલ અથવા પુરાના સક્તુપિણ્ડ-બુક્કસ, ઓર યવ-
 ધાન આવિક જિસે 'માપામેં 'જવકી ધાળી' કહતે હૈ ઓર ઘઠી પુલાક
 કહાતા હૈ। આહારમેં પ્રમુકો રહીયકા આદિ પદાર્થ મિલ જાવે તો કોઈ
 ર્પં નહીં ઓર મુંજે કુપ ચને આવિ શુષ્ક પદાર્થ મિલ જાવે તો કોઈ શોક
 નહીં। इनके अतिरिक्त और भी चाहे कोई पदार्थ क्यों न मिल जाय यदि
 यह निर्दोष एवं शुद्ध होता तो प्रभु उसे अपने आहारमें ग्रहण कर
 छेते। वे किसी भी पदार्थको जो शुद्ध निर्दोष होता वह छे छेते थे। नहीं
 मिलने पर भी वे संयमसे अपने मनको विचलित नहीं करते। आहार
 मिछे तो ठीक, नहीं मिछे तो ठीक, इस प्रकार दोनोंमें समभाव रखते
 थे। मिलने पर वे उम गृहस्थकी अथवा उस गाँवकी प्रज्ञांता नहीं करते

સમતા કરવા વિગેરે પણ લેવાય છે શેકેલા ચણા વગેરે અમતુ નામ
 શુષ્ક છે. પર્યુપિત (વાસી) આકારને, ટાકી અને લુગી અદહની દાગ અને
 કણથી વગેરેને કુસુમાય કહે છે નીરસ ધાન્યના ઘોળા, અથવા ઢાંલા વખતથી
 બનાવેલા ચકતુષ્વિદ-ગુલ્મ, અને યવધાન વગેરે, જેને ભાષ્યમાં "જવની
 ધાળી" કહે છે એને પુલાક કહે છે। આકારમાં પ્રભુને રહીયકા વગેરે મળી
 અથ તો ર્પં નહીં અને શેકેલા ચણા વગેરે શુષ્ક પદાર્થ મળે તો કોઈ શોક નહીં
 આનંદથી બીજી જાતનો કોઈ પણ પદાર્થ કાઢે મળે પણ ને નિર્દોષ અને શુદ્ધ
 હોય તો પ્રભુ એને પોતાના આકાર માટે મરજી કરી લેતા શુદ્ધ અને નિર્દોષ
 એવો કોઈ પણ પદાર્થ પ્રભુ પોતાના આકાર માટે મરજી કરી લેતા, ન મગવાથી
 પણ મુશમલો પોતાના મનને અલિપ્ત થવા ન દેતા. આકાર મળે તો ઠીક ન
 મળે તો ઠીક આ રીત જન્મેના યનશાય સખતા. મગવાથી તેઓ આપનાર

મૂપિકારિ=દુગ્ધાર્થિન માર્જાર, અપિ ચ કુકુરં=ધાનં વા પુરતઃ અગ્રે સ્થિત દૃષ્ટા
તેપાં વૃત્તિચ્છેદં વર્જયન્, અપ્રત્યયિરમ્=અપ્રતીતિં પરિહરન્ ભગવાન્ મન્દ પરાક્રમતે=
પાર્શ્વભાગત ગનેર્ગચ્છતિસ્મ । તથા અર્હિસન્=કુન્ધુપ્રમૃતીનપિ જન્તૂન્ અપીડયન્
ગ્રાસમનૈપીત્=અપનાશુદ્ધયા ભિક્ષાર્યમદતિસ્મ ॥૧૧॥૧૨॥

ફિચ્ચ—‘અવિ સૂઝય’ इत्यादि ।

મૂલમ્—અવિ સૂઝયં વા સુક્કં વા, સીયં પિંડં પુરાણકુમ્માસં ।

અદુ વુક્કસં પુલાગં વા, લઢ્ઢે પિંડે અલઢ્ઢે દવિણ ॥૧૩॥

છાયા—અપિ સૂચિત વા શુક્લ વા, શીત પિંડ પુરાણકુલમાપમ્ ।

અથ વુક્કસં પુલાકં વા, લઢ્ઢે પિંડે અલઢ્ઢે દ્રવિકઃ ॥ ૧૩ ॥

ટીકા—અપિ ચ—સૂચિતં=વ્યાધારિતં દિહ્ગુજીરકાદિના સસ્કૃત વ્યજ્ઞના-
દિયુક્ત તક્રાદૌ નિશ્ચિત મુદ્રચ્છનાદિવટકાત્રં ‘દહીવડા’ इति भाषा-
અર્થો વિલાવ, ઔર કુત્તા આદિકો દેવ કર ભગવાન્ ઇન કિસીકો વિધન
નહીં કરતે હુણ યતનાપૂર્વક ધીરે ૨ નિકલ જાતે । ડનકે ચલનેસે કુન્ધુ
આદિ સૂક્ષ્મ જીવોં તકકો ખી કોઈ કષ્ટ ન પહુંચતા ॥૧૧-૧૨॥

ઔર ખી—‘અવિ સૂઝય’ इत्यादि ।

ભગવાન્ કો ભિક્ષા નિમિત્ત જાતે સમય જો ખી ગૃહસ્થોંકે યહાં
શુદ્ધ નિર્દોષ આહાર મિલ જાતા યા, વે ડસે હી લે લેતે, ચાહે વહ વિલ-
કુલ રૂક્ષ ખી ક્યો ન હો । હીગ ઔર જીરે આદિસે સંસ્કૃત, વ્યજ્ઞનાદિ
સે યુક્ત ઇવં તક્ર-છાંછમેં પડે હુણ, મૂગ ઔર ચના આદિકી
ગીલી દાલકો વાંટ તૈલમે તલ કર તયાર કિયે પદાર્થકા નામ સૂચિત હૈ ।
ભાષામેં ઇસે “દહીંવડા” कहते हैं । सूचित पदसे राईता, करम्बा

આવી ચડેલ ચાણલ, તેમજ દુધની ઢોલી ખીલાડી, કુતરા વગેરેને જોઈ ભગવાન
એ કોઈને વિધનરૂપ ન થતા યતનાપૂર્વક ધીરે ધીરે નીકળી જતા એમના ચાલવાથી
કુથવા કે કીડી, મકોડી વગેરે સૂક્ષ્મ જીવોને પણ કોઈ કષ્ટ થતુ નહીં. (૧૧-૧૨)

ફરી—‘અવિ સૂઝય’ इत्यादि

ભગવાને ભિક્ષા નિમિત્તે જવાના સમયે જે પણ ગૃહસ્થોને ત્યા શુદ્ધ નિર્દોષ
આહાર મળી જતો તેને ગ્રહણ કરતા, ચાહે તે ખોલકુલ રૂક્ષ પણ કેમ ન હોય
હીગ અને જીરે વગેરેથી વધારેલા વ્યજ્ઞનાદિથી યુક્ત એમજ તક-છાસમા
પડેલા મગ અને ચણાની દાળને ભીજાવી વાટી તૈયાર કરવામા આવેલા પદાર્થતુ
નામ સૂચિત છે ભાષામા એને “દહીંવડા” કહેવામા આવે છે, સૂચિત-પદથી

प्रसिद्ध, करम्मादिकं वा, 'राईवा' इति मायाप्रसिद्धं वा, तथा-शुष्कं वा
मर्मितपत्रकादिकं, तथा-शीतं=पर्युषितं वा पिण्डम्=आहारम्, तथा पुरातनकुसुमापं-
पुरातनमापकुसुमादि बहुविधप्रसिद्धस्थितकुसुमापमित्यन्य। अथ-शुक्ष्म वा नीरस-
धान्यौदनं वा, यद्वा-पुरातनसफुपिण्डं वा, तथा पुलाकं वा=यवधानादिकं 'जवधानी'
इति मायाप्रसिद्धं सम्भवा, तथा अन्यस्मिन्नपि निर्दोषं पिण्डे=सम्प्रेष्यलक्षणे वा
शुष्के एव=संयममना एवासीत्। अयं माय-लक्षणे सति यवाम्भपपर्युषित

आदि भी मिले जाते हैं। सुजे हुए अने आदि अन्नका नाम शुष्क है। पर्युषित
(बासी), आहार-शीत और पुरानी उबकी दाल तथा कुलपी आदिको
कहते हैं। नीरस धान्यके बाबल अथवा पुराना सफुपिण्ड-शुक्ष्म, और यव
धान आदिक जिसे मायामें 'जवकी घाणी' कहते हैं और वही पुलाक
कहलाता है। आहारमें प्रभुको वहीबड़ा आदि पदार्थ मिल जावे तो कोई
हर्ष नहीं और सुजे हुए अने आदि शुष्क पदार्थ मिल जावें तो कोई शोक
नहीं। इनके अतिरिक्त और भी बाहे कोई पदार्थ क्यों न मिल जाय यदि
वह निर्दोष एवं शुद्ध होता तो प्रभु उसे अपने आहारमें ग्रहण कर
छेते। वे किसी भी पदार्थको जो शुद्ध निर्दोष होता वह छे छेते थे। नहीं
मिलने पर भी वे संयमसे अपने मनको विचलित नहीं करते। आहार
मिले तो ठीक, नहीं मिले तो ठीक, इस प्रकार दोनोंमें सममाय रखते
थे। मिलने पर वे उस गृहस्थकी अथवा उस गाँवकी प्रशंसा नहीं करते

राखता, करवा विवेक पक्ष लेवाय छे शेकेला बल्लु वगेरे अजनु नाम
शुष्क छे। पर्युषित (बासी) आहारने, दादी अने लुनी आदिकी दाग अने
कण्ठी वगेरेने प्रभाय कहे छे नीरस धान्यका बाणा, अथवा बाँठा वज्रतथी
बनावेला अकतुपिण्ड-शुक्ष्म, अने यवधान वगेरे अने बाधान "अपनी
घाणी कहे छे अने पुलाक कहे छे। आहारमा प्रभुने वहीबड़ा वगेरे भोजी
अथ तो हर्ष नहीं अने शेकेला बल्लु वगेरे शुष्क पदार्थ भोजे तो शोक शोक नहीं।
आनाथी वीलु जतने कौश पक्ष पदार्थ भोजे भोजे पक्ष ने निर्दोष अने शुद्ध
अथ तो प्रभु अने पोताना आहार भाटे भक्षु करी देता शुद्ध अने निर्दोष
अथ तो कौश पक्ष पदार्थ प्रभु पोताना आहार भाटे भक्षु करी देता, न भजवाथी
पक्ष अथमथी पोताना मनने अलित बवा न देता आहार भोजे तो शोक न
भोजे तो शोक आ शीत अनेमा अमलाय सभवा भजवाथी तेजे आपनार

मन्तप्रान्तादिक निर्दोषमशनादिकं रागद्वेषरहितः सन् भुङ्क्तेस्म, अलब्धे च ग्रामादिक
गृहस्थमात्मानं वा न निन्दतिस्मेति ॥१३॥

किञ्च—‘अवि झाइ’ इत्यादि।

मूलम्—अवि झाइ से महावीरे, आसनस्थे अकुक्कुए झाणं ।

उड्डं अहे तिरियं च, पेहमाणे समाहिमपडिन्ने ॥१४॥

छाया—अपि ध्यायति स महावीरः आसनस्थः अकौत्कुचः ध्यानम् ।

ऊर्ध्वमधस्तिर्यक् च प्रेक्षमाणः समाधिप्रतिज्ञः ॥१४॥

टीका—अपि च—स महावीरः भगवान् आसनस्थः=उत्कुटुकगोदोहिकावीरा-
सनाद्यासनस्थितः, अकौत्कुचः=मुखविकारादिरहितः, तथा-अप्रतिज्ञः=शरीरशुश्रूषा-
दिप्रतिज्ञारहितः समाधिम्=आत्मशान्तिं प्रेक्षमाणः=भावयन् ऊर्ध्वमधस्तिर्यक्=लोक

और नहीं मिलने पर अपनी एवं गृहस्थ और उस ग्रामकी निन्दा नहीं
करते, समभाव बन अपने संयममार्गमें दत्तचित्त रहते थे ॥१३॥

फिर भी—‘अवि झाइ’ इत्यादि ।

वे भगवान् महावीर, उत्कुटुक (उकड्डु) आसन, गोदोहिका-आसन
एवं वीरासन, इनमेंसे किसी एक आसनसे विराजमान होकर ध्यानमें
तल्लीन होते । ध्यान करते समय उनका शरीर निष्कंप रहता । मुख नेत्र
आदि किसी भी अवयवमें उनके हलन-चलनादिरूप विकृति नहीं होती ।
शारीरिक शुश्रूषाकी भावना उनके भीतर देखने तकको भी नहीं
मिलती । सदा वे आत्मशान्ति की ही भावना भाते रहते । ध्यानमें वे
ऊर्ध्वलोक, मध्यलोक और अधोलोक, इन तीनों लोकोंके स्वरूपका, तथा

गृहस्थनी अथवा ऐ गामनी प्रसशा न करता, अने न भगता पोतानी के,
न आपनार गृहस्थनी अथवा ऐ गामनी निन्दा न करता समभावथी सयम
मार्गमा ऐकचित्त रहेता (१३)

इरी पशु—‘अवि झाइ’ इत्यादि

भगवान् महावीर, उत्कुटुक (उकड्डु) आसन, गोदाहिकाआसन,
अने वीरासन, आमाना कोछि ऐक आसनथी विराजमान थछि ध्यानमा तल्लीन
रहेता ध्यान करती वण्णते तेभनु शरीर निष्कंप रहेतु, सुअ, नेत्र वगेरे कोछि
पशु अवयवनी हलन चलननी क्रिया थती नछी शरीरनी शुश्रूषानी भावना
ऐभनामा कही पशु थती न छती सदा आत्मशान्तिनी ज भावना राखता
ध्यानमा ऊर्ध्वलोक, मध्यलोक अने अधोलोक, आ त्रैलोक्ये लोकना स्वरूपना तथा

व्यवस्थितं ध्यानं=मीमांसीवादिपदार्थानां द्रव्यगुणपर्यायनिस्त्यानिस्त्यादिरूपतया चिन्तनरूपं ध्यायति=करोतिस्म ॥ १४ ॥

छिन्न—‘अकसाई’ इत्यादि ।

मूढम्—अकसाई विगयगोही य, सहस्रवेसु अमुच्छिप साइ ।

छउमरथोऽपि परवक्त्रममाणो, न पमाय सह पि कुन्विस्था ॥ १५ ॥

छाया—अध्यायी विगतवृद्धिश्च अमूर्च्छितो ध्यायति ।

छयस्योऽपि पराक्रमान्नो न प्रमाई सहस्रप्यक्षापीत् ॥ १५ ॥

टीका—अध्यायी=श्लोकादिकथापरिणतः, अत एव—विगतवृद्धिः=विषयाऽऽसक्तिरहितः, अत एव—छयरूपेषु=उपसम्पन्नमार्गत्वात् अमूर्च्छितगन्धरससंक्षेपे, अमूर्च्छितः=ममत्वमाश्रितः सन ध्यायतिस्म तथा—छयस्योऽपि भगवान् पराक्रममाणः=उपसयमे निहरन् सन प्रमाई सहस्रपि=एकवारमपि नाक्षर्यीत्=न इनक भीतर रहे हुए जीव और अजीव आदि पदार्थों के द्रव्य गुण और पर्याय की अपेक्षासे नित्य और अनित्यरूप स्वरूपका विचार करते ॥ १४ ॥

और भी—‘अकसाई’ इत्यादि ।

श्लोच आदि कथापरिणतिसे रहित भगवान् महावीरने विषयोंमें आसक्तिसे और शब्द, रूप, रस, एवं गन्ध आदि पौष्टलिक गुणोंकी ममतासे रहित हो कर ध्यानका अवलम्बन किया । यद्यपि भगवान् चार ज्ञानके घाटी थे, अतः छद्मस्थानस्थामें वर्तमान थे, फिर भी तप और संयममें अपनी शक्तिकी स्फूर्ति करते हुए उन्हेंमि केवलज्ञानकी प्राप्ति तक एक बार भी प्रमादका सेवम नहीं किया । जबसे शिक्षा धारण करी

जेली अक्ष रहेनास छय अने अछय आदि पदार्थोंना द्रव्य पद अने पदो-
यनी अपेक्षाधी नित्य अने अनित्यरूप स्वरूपने विचार करता ॥ १४ ॥

द्वितीय—अकसाई इत्यादि

श्लोच पदोरे कथाय पस्तिपुतिभी शक्ति अजगान महावीर विषयोंनी अवसक्तिभी अने शब्द, रूप, अने अक्ष पदोरे पौष्टलिक गुणोंमा ममताभी स्वीत रही ध्यानत अवलम्बन करता अने के अजगान चार ज्ञाननु धारक होता आभी छद्मस्थानस्थामें वर्तमान होता तो पदु तप अने संयममां पोतानी शक्तिनी स्फूर्ति करीने तेजोमे केवलज्ञाननी प्राप्ति मुभी अने चार पदु प्रमाद सेवमी नहीं अचारभी शिक्षा धारण करी तथाभी केवलज्ञान

मन्तप्रान्तादिकं निर्दोषमशनादिक रागद्वेपरहितः सन् भुङ्क्तेस्म, अलब्धे च ग्रामादिक
गृहस्थमात्मानं वा न निन्दतिस्मेति ॥१३॥

किञ्च—‘अवि झाइ’ इत्यादि।

मूलम्—अवि झाइ से महावीरे, आसनस्थे अकुक्कुप् झाणं ।

उड्डं अहे तिरियं च, पेहमाणे समाहिमपडिन्ने ॥१४॥

छाया—अपि ध्यायति स महावीरः आसनस्थः अकौत्कुचः व्यानम् ।

ऊर्ध्वमधस्तिर्यक् च प्रेक्षमाणः समाधिप्रतिज्ञः ॥१४॥

टीका—अपि च—स महावीरः भगवान् आसनस्थः=उत्कुटुकगोदोहिकावीरा-
सनाद्यासनस्थितः, अकौत्कुचः=मुखविकारादिरहितः, तथा—अप्रतिज्ञः=शरीरशुश्रूषा-
दिप्रतिज्ञारहितः समाधिम्=आत्मशान्तिं प्रेक्षमाणं=भावयन् ऊर्ध्वमधस्तिर्यक्=लोक

और नहीं मिलने पर अपनी एव गृहस्थ और उस ग्रामकी निन्दा नहीं
करते, समभाव बन अपने समयमार्गमें दत्तचित्त रहते थे ॥१३॥

फिर भी—‘अवि झाइ’ इत्यादि ।

वे भगवान् महावीर, उत्कुटुक (उकडु) आसन, गोदोहिका-आसन
एवं वीरासन, इनमेंसे किसी एक आसनसे विराजमान होकर ध्यानमें
तल्लीन होते । ध्यान करते समय उनका शरीर निष्कंप रहता । मुख नेत्र
आदि किसी भी अवयवमें उनके हलन-चलनादिरूप विकृति नहीं होती ।
शारीरिक शुश्रूषाकी भावना उनके भीतर देखने तकको भी नहीं
मिलती । सदा वे आत्मशान्ति की ही भावना भाते रहते । ध्यानमें वे
ऊर्ध्वलोक, मध्यलोक और अधोलोक, इन तीनों लोकोंके स्वरूपका, तथा

गृहस्थनी अथवा ऐ गामनी प्रसशा न करता, अने न भणता पोतानी के,
न आपनार गृहस्थनी अथवा ऐ गामनी निन्दा न करता समभावधी सयम
मार्गमा ऐक्यित्त रहेता (१३)

इरी पञ्च—‘अवि झाइ’ इत्यादि

भगवान् महावीर, उत्कुटुक (उकडु) आसन, गोदाहिकाआसन,
अने वीरासन, आमाना केधं ऐक आसनधी विराजमान थधं ध्यानमा तल्लीन
रहेता ध्यान करती वर्णते तेमनु शरीर निष्कंप रहेतु, सुध, नेत्र वगेरे केधं
पण अवयवनी हलन चलननी क्रिया थती नही शरीरनी शुश्रूषानी भावना
ऐमनामा कही पण थती न हेती सदा आत्मशान्तिनी ज भावना राभता
ध्यानमा ऊर्ध्वलोक, मध्यलोक अने अधोलोक, आ त्रणे लोकना स्वरूपना तथा

अप्यपि यत्कं ध्यानं=भीष्मभीष्मादिपदार्थानां द्रव्यगुणपर्यायनिस्त्यानिस्त्यादिस्मृत्या
विन्तनस्मं ध्यायति=करोतिस्म ॥ १४ ॥

स्थिति—‘अकसाई’ इत्यादि ।

मृग-अकसाई विगयगेही य, सहरवेसु अमुच्छिप झाइ।

छडमस्थोऽविपरवक्कममाणो, न पमाय सई पि कुब्बिस्था॥१५॥

उपा—सम्प्राप्ति विगतपृथिव्य शब्दरूपेषु अमूर्त्तिस्तो ध्यायति ।

अथस्योऽपि पराक्रमाजो न प्रमार्द सकृदप्यकार्षीत् ॥१५॥

टीका—अरुणायो=शोभादिस्वयंरहित, अत एव—विगतसृष्टि=

सिंयाऽऽकिरहितः, अत एव- अक्षररूपेषु-उपलब्धवार्थत्वात् अक्षररूपगन्धरसस्पर्शेषु,

अमृच्छितः=अमत्त्वमाश्रितः समं ध्यापयिस्म तथा-छद्मव्योऽपि भगवान्

पराक्रममालः-तपस्यमे विहरन् सन् प्रमादं सङ्कदपि-एकवारमपि नाङ्गार्थीत्वन

इनके भीतर रहे हुए जीव और अजीव भावि पदार्थों के द्रव्य गुण और

पर्याय की अपेक्षासे नित्य और अनित्यरूप स्वरूपका चिन्ता करते ॥१४॥

और नी—‘अकसाई’ इत्यादि।

क्रोध आदि कथापरिणामिते रहित भगवान् महावीरने विषयोनि

भासक्तिसे और शब्द, रूप, रस, एवं गन्ध भादि पौष्ट्यलिक गुणोंकी

ममतासे रहित हो कर ध्यानका अवलम्बन किया। यद्यपि भगवान् बार

हृदयके घाटी से, भला: छायास्थावस्थामें वर्तमान से, फिर भी तप और

संयममें अपनी शक्तिकी स्फूर्ति करते हुए उन्होंने कबलखानकी प्राप्ति

तक एक बार भी प्रमादका सेवन नहीं किया। जबसे बीहता चरण करी

જોની અદર રહેનારા હવે અને અહવે જાતિ પદાર્થોના દ્વન્દ્વ ક્ષય થવે પડે.

મળી અપેક્ષાથી નિત્ય જાને અનિવર્ય સ્વરૂપનો વિચાર કરતા. (૧૪)

મન્ત્રાન્તાદિક નિર્દોષમશનાદિકં રાગદ્વેષરહિતં સન્ શુદ્ધકૃતેસ્મ, અલબ્ધે ચ ગ્રામાદિક
ગૃહસ્થમાત્માન વા ન નિન્દતિસ્મેતિ ॥૧૩॥

કિન્ચ—‘અવિ જ્ઞાઈ’ ઇત્યાદિ ।

મૂલમ્—અવિ જ્ઞાઈ સે મહાવીરે, આસનતથે અકુક્કુણ જ્ઞાણં ।

ઉડ્ડં અહે તિરિયં ચ, પેહમાણે સમાહિમપહિન્ને ॥૧૪॥

છાયા—અપિ ધ્યાયતિ સ મહાવીરઃ આસનસ્થઃ અઠૌત્કુચઃ વ્યાનમ્ ।

ઊર્ધ્વમધસ્તિર્યક્ ચ પ્રેક્ષમાણઃ સમાધિમપ્રતિજ્ઞઃ ॥૧૪॥

ટીકા—અપિ ચ—સ ગદાવીરઃ મગવાન્ આસનસ્થઃ=ઉત્કુટુકગોદોહિકાવીરા-
સનાદ્યાસનસ્થિતઃ, અઠૌત્કુચઃ=મુખવિકારાદિરહિતઃ, તથા—અપ્રતિજ્ઞઃ=શરીરશુશ્રૂષા-
દિપ્રતિજ્ઞારહિતઃ સમાધિમ્=આત્મશાન્તિ પ્રેક્ષમાણઃ=ભાવયન્ ઊર્ધ્વમધસ્તિર્યક્=લોક

ઔર નહીં મિલને પર અપની ઇવ ગૃહસ્થ ઔર ઉસ ગ્રામકી નિન્દા નહીં
કરતે, સમભાવ બન અપને સંયમમાર્ગમેં દત્તચિત્ત રહતે થે ॥૧૩॥

ફિર મી—‘અવિ જ્ઞાઈ’ ઇત્યાદિ ।

વે મગવાન્ મહાવીર, ઉત્કુટુક (ઉકડુ) આસન, ગોદોહિકા-આસન
ઇવં વીરાસન, ઇનમેંસે કિસી ઇક આસનસે વિરાજમાન હોકર ધ્યાનમેં
તહ્લીન હોતે । ધ્યાન કરતે સમય ઉનકા શરીર નિષ્કંપ રહતા । મુખ નેત્ર
આદિ કિસી મી અવયવમેં ઉનકે હલન-ચલનાદિરૂપ વિકૃતિ નહીં હોતી ।
શારીરિક શુશ્રૂષાકી ભાવના ઉનકે મીતર દેખને તકકો મી નહીં
મિલતી । સદા વે આત્મશાન્તિ કી હી ભાવના ભાતે રહતે । ધ્યાનમેં વે
ઉર્ધ્વલોક, મધ્યલોક ઔર અધોલોક, ઇન તીનોં લોકોંકે સ્વરૂપકા, તથા

ગૃહસ્થની અથવા ઐ ગામની પ્રસશા ન કરતા, અને ન મળતા પોતાની કે,
ન આપનાર ગૃહસ્થની અથવા ઐ ગામની નિન્દા ન કરતા. સમભાવથી સયમ
માર્ગમા ઐકચિત્ત રહેતા (૧૩)

ક્રૂરી પશુ—‘અવિ જ્ઞાઈ’ ઇત્યાદિ

મગવાન મહાવીર, ઉત્કુટુક (ઉકડુ) આસન, ગોદોહિકાઆસન,
અને વીરાસન, આમાના કોઈ ઐક આસનથી વિરાજમાન થઈ ધ્યાનમા તહ્લીન
રહેતા ધ્યાન કરતી વખતે તેમનું શરીર નિષ્કંપ રહેતું, મુખ, નેત્ર વગેરે કોઈ
પશુ અવયવની હલન ચલનની ક્રિયા થતી નહીં. શરીરની શુશ્રૂષાની ભાવના
ઐમનામા કદી પશુ થતી ન હતી સદા આત્મશાન્તિની જ ભાવના રાખતા
ધ્યાનમા ઉર્ધ્વલોક, મધ્યલોક અને અધોલોક, આ ત્રણે લોકના સ્વરૂપના તથા

परया गणधरेस्तदीयचरितं सूत्ररूपेण समग्रयित, तदेव चाप्रोपधानभुताध्ययनं मुनीना-
दुपकारार्थं प्रवृत्तं, तस्मात्कथमपि नास्त्यत्र प्रदंसापरकल्पनापसर इति, उक्तम्—

“सध्वे तित्थयरा खलु, नियचरियं जं कहेति उवहाणे ।

गंधंति गणहरा त, तदेव नो नूणमम्महिं ॥१॥ ” इति ।

अथा—सर्व तीर्थकराः खलु, निजचरितं यद्वदन्ति उपनाम ।

प्रप्नन्ति गणधरास्तत्, तथैव नो नूणमभ्यधिकम् ॥१॥ इति ।

इस प्रकारक तप और संयमकी अनुष्ठित प्रवृत्तिको सुनकर, अथवा जानकर
मुक्तिमार्गमें उत्साहशील होने और मुक्तिका लाभ करते रहें, अतः समस्त
भागमों में गणधरेनि जो तीर्थङ्करों के चरितका सूत्ररूपसे वर्णन किया है
वही इस उपधानभुत नामक अध्ययनमें अन्य मुनिजनोके उपकार निमित्त
वर्णित किया गया है—इसमें उनकी प्रशंसा की कल्पना करनेकी बात ही
कीन सी है, इस विषयमें उनकी प्रशंसापरता की कल्पना करना बिल्कुल
निर्मूल ही है । कहा भी है—

“सध्वे तित्थयरा खलु, नियचरियं जं कहेति उवहाणे ।

गंधंति गणहरा त, तदेव नो नूणमम्महिं ” ॥ १ ॥

यह भागमप्रसिद्ध बात है कि अपने २ गणधरों के प्रति जो समस्त
तीर्थङ्कर अपने २ चरितका कथन करते हैं, व गणधर उपधानमें उस
चरितका उसी रूपसे (न कम और न अधिक) ग्रथन करते हैं ॥१॥

अबमनी अनुष्ठित प्रवृत्तिने लाभणीने अथवा लब्धिने मुक्तिमार्गमा उत्साहशील
हने अने मुक्तिमो लाभ करवा रहे, भागे समस्त आश्रमाभां अबुधारेको ने
वीथी करेना चरित्रनु सूत्ररूपे वक्तुन करेले छे ते आ उपधानभुत नाममा
अध्ययनमा अन्य मुनिजनोना उपकार निमित्त वर्णन करेले छे आमा तेमनी
प्रशंसा करवाणी बात न कथा छे ? आ विषयमा तेमनी प्रशंसा अजिनी करेना
करेनी बीलकुल निमुग न छे, अल्ल पण छे—

“सध्वे तित्थयरा खलु, नियचरियं जं कहेति उवहाणे ।

गंधंति गणहरा त तदेव नो नूणमम्महिं ॥ १ ॥

आ आनमप्रसिद्ध बात छे के पोतपोताना अबुधारे फसे समस्त वीथी कर
पोतपोताना चरित्रनु कथन करे छे ते अबुधर उपधानमां ते चरित्रनु को न रूपमा
(न कोपुं न वधारे) कथन करे छे. (१)

કૃતવાન્, દીક્ષાગ્રહણાનન્તરં યાવત્કેવલપર્યાયં પ્રાપ્તવાન્ તાત્પર્યસ્થાવસ્થાયામપિ ભગવાન્ લેશતોઽપિ પ્રમાદં ન ચકારેતિ ભાવઃ ।

કેચિત્ત્વેવં વદન્તિ—एतद्वचनं भगवतः प्रशंसापरं, परमार्थतो भगवान् षड्लेश्या-
धारी प्रमादवान् संयमे स्खलित इति, तथा ‘भगवान् चूके’ इति भाषायामपि प्रल-
पन्ति, तन्निर्मूलं प्रवलमोहोदयजनितकल्पनामात्रम्, आगमरहस्याभिज्ञानात्,
तथाहि—सर्वे तीर्थङ्कराः स्वस्वगणधरेभ्यः स्वयमनुष्ठितं तपःसयमविधिकथयन्ति—यद-
न्येऽपि मोक्षाभिलाषिणः सोत्साहमनुष्ठाय मोक्षपदं प्रयान्तु—इति। सर्वस्मिन्नागमेऽपि पर-
तवसे केवलज्ञान प्राप्त होनेकी अवस्था तक उन्होंने अपनी छद्मस्थाव-
स्थामें भी कभी भी प्रमादको अंगतः भी अपने पास तक नहीं आनेदिया।

કોઈંર હસ ગાથાકે “સકૃદપિ પ્રમાદ નાકાર્ષોત્” હસ વચન
કોં કેવલ ભગવાન્ કી પ્રશસાપરક હી માનતે હૈં । પ્રશસા પ્રાય
વસ્તુસ્થિતિસે રિક્ત હોતી હૈ । ઉસકા કારણ વે યહ યતલાતે હૈં કિ “ભગ-
વાન્ ષડ્લેશ્યાધારી થે, તથા પ્રમાદસહિત ઔર સયમસે બી સ્ખલિત-
ચ્યુત થે, હસીં લિયે વે લોગ “ભગવાન્ ચૂકે” જેસા કહ દિયા કરતે હૈં ”
સો ઉનકા હસ પ્રકારકા કથન નિર્મૂલ હૈ—સત્યસે રહિત હૈ । માલૂમ
હોતા હૈ કિ હસ પ્રકારકી કલ્પના કરનેવાલે વ્યક્તિકો આગમકા રહસ્ય
જ્ઞાત નહીં હૈ કિ સમસ્ત તીર્થઙ્કર અપને દ્વારા અનુષ્ઠિત તપ ઔર સયમ
કી વિધિકો અપને ૨ ગણધરોંસે કહતે હૈં । હસ પ્રકારકે કથન કરનેકા
ઉનકા ઉદ્દેશ સિર્ફ યહી હોતા હૈ કિ અન્ય મોક્ષાભિલાષી મુનિ બી ઉનકે

પ્રાપ્ત થવાની અવસ્થા સુધી તેઓએ પોતાની છદ્મસ્થ અવસ્થામા પણ કોઈ
વખત પ્રમાદનો અશ પણ પોતાની પાસે આવવા દીધો નથી

કોઈં કોઈં આ ગાથાના “સકૃદપિ પ્રમાદ નાકાર્ષોત્” આ વચનને કેવળ
ભગવાનની પ્રશસાપરકજ માને છે પ્રશસા પ્રાય વસ્તુસ્થિતિથી રિક્ત હોય
છે એનું કારણ પણ આ બતાવે છે કે ભગવાન છલેશ્યાધારી હતા, પ્રમાદ-
સહિત અને સયમથી પણ ચ્યુત હતા આ કારણે તે લોકો “ભગવાન ચુક્યા” એવું
કહ્યા કરે છે” તેઓનું આ પ્રકારનું કહેવું નિર્મૂળ છે—સત્યથી રહિત છે માલુમ
પડે છે કે આ પ્રકારની કલ્પના કરવાવાળા માણસોને આગમનું આ રહસ્ય જાણ-
વામા આવ્યું નથી કે સમસ્ત તીર્થં કર પોતાના દ્વારા અનુષ્ઠિત તપ અને સયમની
વિધિને પોતપોતાના ગણધરોને કહે છે, આ પ્રકારનું કથન કરવાનો ઉદ્દેશ ફક્ત
એજ હો છે કે બીજા મોક્ષાભિલાષી મુનિ પણ તેમના આ પ્રકારના તપ અને

परया गणधरेस्तदीयचरितं सूत्ररूपेण सप्रथित, तथैव चाप्रोपधानभुताध्ययनं मुनीना
दुष्प्रकार्यं प्रवृत्तं, तस्मात्कथमपि नास्त्यत्र प्रशंसापरकत्वं शङ्कावसर इति, उक्तम्—

“सम्भवे तित्थयरा सल्लु, नियचरियं जं कहेति उवहाणे ।

गंधंति गणहरा त, तथैव नो नूनमग्गमहिं ॥१॥ ” इति ।

प्राया—सर्वे तीर्थकराः सल्लु, निजचरितं यद्वदन्ति उपधाने ।

प्रपन्नन्ति गणधरास्तत्, तथैव ना न्यूनमगम्यधिकम् ॥१॥ इति ।

इस प्रकारक तप और संयमकी अनुष्ठित प्रवृत्तिको सुनकर, अथवा जानकर
मुक्तिमार्गमें उस्ताहशील पने और मुक्तिका लाभ करते रहें, अतः समस्त
भाग्यों में गणधरेनि जो तीर्थहूतों के चरितका सूत्ररूपसे वर्णन किया है
वही इस उपधानभुत नामक अध्ययनमें अन्य मुनिजनोके उपकार निमित्त
वर्णित किया गया है—इसमें उनकी प्रशंसा की कल्पना करनेकी बात ही
कौन सी है, इस विषयमें उनकी प्रशंसापरता की कल्पना करना बिल्कुल
निर्मूल ही है । कहा ‘मी है—

“सम्भवे तित्थयरा सल्लु, नियचरियं जं कहेति उवहाणे ।

गंधंति गणहरा तं, तथैव नो नूनमग्गमहिं ” ॥ १ ॥

यह भागमप्रसिद्ध बात है कि अपने २ गणधरों के प्रति जो समस्त
तीर्थहूत अपने २ चरितका कथन करते हैं, व गणधर उपधानमें उस
चरितका उसी रूपसे (न कम और न अधिक) ग्रथन करते हैं ॥१॥

सबभनी अनुष्ठित प्रवृत्तिने साधणीने अथवा व्यष्टीने मुक्तिमार्गमा उस्ताहशील
पने अने मुक्तिनो लाभ करत रहे, भागे अभस्त आनमिमां अवधारणे ले
वीर्यदेशना चरितनु सूत्ररूपे वर्णन करेले छे ते आ उपधानभुत नामना
अध्ययनना अन्य मुनिजनोना उपकार निमित्त वर्णन करेले छे, आमां तेभनी
प्रशंसा करवानी बात न् कथा छे ? आ विषयमा तेभनी प्रशंसा अजेनी करवना
करेनी बिल्कुल निमुग न छे, कसु पण्ण छे—

“सम्भवे तित्थयरा सल्लु, नियचरियं जं कहेति उवहाणे ।

गंधंति गणहरा त तथैव नो नूनमग्गमहिं ॥ १ ॥

आ भागमप्रसिद्ध बात छे के पोतपाताना अवधारणे पासे अभस्त वीर्यकर
पातपोताना अविवर्णु कथन करेले छे ते अवधर उपधानमा ते अस्तिनु को न इवधी
(न कोहुं न वधार) ग्रथन करेले (१)

ભાવતઃ પદ્મલેશ્યાપ્ત્ય તુ ભગવતઃ કથમપિ ન સંભવતિ, ધર્મપ્રકૃતિકસ્ય તસ્ય ધર્મલેશ્યામાત્રસદ્ભાવાત્, ધર્મલેશ્યા હિ તિસ્રઃ સન્તિ, તથા ચોક્તમ્—“ તેઽ પમ્હા મુક્તા, તિન્નિ એયાઓ ધમ્મલેસ્સાઓ । ” ઇતિ । અધર્મસ્ય તુ તત્ર લેશતોઽપિ શદ્ધા નાસ્તિ, અસ્મિન્નેવોદેશકે—

“ળન્ના ળ સે મહાવીરે, ળો ચિય પાવગં સયમકાસી ।

અન્નેહિં વા ળ કારિત્થા, કીરંતં પિ નાણુજાણિત્થા (૧-૮)” ॥

ઇત્યષ્ટમગાથાયા ભગવતા ન સ્વયં પાપં કૃત, નાન્યૈઃ કારિત, કુર્વન્તમન્ય પ્રતિ નાનુમોદિતમિત્યેવં ત્રિરુરણત્રિયોગૈર્ભગવતઃ પાપસમ્બન્ધાભાવો વ્રોધિતઃ । એવં ચ તસ્મિન્નધર્મલેશ્યાત્રયસ્ય સ્થાનં નોપપદ્યતે ।

યહ જો કહા ગયા હૈ કિ ભગવાન છહ લેશ્યાવાલે થે સો ખી કથન યુક્તિસંગત નહીં હૈ, કારણ કિ સ્વભાવતઃ ધર્મપ્રકૃતિસમ્પન્ન પ્રભુકે સિર્ફ ધર્મલેશ્યા માત્રકા હી સદ્ભાવ હોતા હૈ, પાપલેશ્યાકા નહીં । તેજ, પદ્મ ઓર શુક્લ, યે ત્રીન લેશ્યાઈ ધર્મલેશ્યા કહી જાતી હૈ કૃષ્ણ, નીલ ઓર કાપોત, યે અધર્મલેશ્યા (પાપલેશ્યા) હૈ । ઇન અધર્મલેશ્યાઓકા તો વહાં અંશતઃ ખી સદ્ભાવ નહીં પાયા જાતા હૈ, ક્યો કિ ઇસી ઉદ્દેશમે—

“ ળન્ના ળ સે મહાવીરે, ળો ચિય પાવગ સયમકાસી ।

અન્નેહિં વા ન કારિત્થા, કીરંતંપિ નાણુજાણિત્થા ” ॥ (૧-૮)

હસ આઠવીં ગાથા દ્વારા યહી વાત સ્પષ્ટ કી ગઈ હૈ કિ-જવ ભગવાનને સ્વય કમી પાપ નહીં કિયા ઓર ન દૂસરોંસે હી કરાયા, તથા કરનેવાલોં કી અનુમોદના ખી નહીં કી, ઇસ પ્રકાર વે ત્રીન કરણ ઓર

આ જો કહેવાયુ છે કે ભગવાન છ લેશ્યાવાળા હતા તે પછુ કહેવુ યુક્તિસંગત નથી, કારણ કે સ્વભાવત ધર્મપ્રકૃતિસમ્પન્ન પ્રભુને કૃત ધર્મલેશ્યા માત્રનો જ સદ્ભાવ હોય છે, પાપ-લેશ્યાનો નહીં તેજ, પદ્મ, અને શુક્લ, આ ત્રણ લેશ્યાઓ ધર્મલેશ્યા કહેવાય છે કૃષ્ણ, નીલ અને કાપોત એ, અધર્મ-લેશ્યા (પાપ-લેશ્યા) છે એ અધર્મ-લેશ્યાઓનો ત્યા લેશ માત્ર પછુ સદ્ભાવ દેખવામા આવતો નથી. કેમકે એ જ ઉદ્દેશમા—

“ ળન્ના ળ સે મહાવીરે, ળો ચિય પાવગ સયમકાસી ।

અન્નેહિં વા ન કારિત્થા, કીરંતંપિ નાણુજાણિત્થા ॥” (૧-૮)

આ આઠમી ગાથા દ્વારા એ વાત સ્પષ્ટ કરેલ છે કે જ્યારે ભગવાને પોતે કહી પાપ કરેલ નથી, અને ન બીજાથી કરાવેલ, તથા કરવાવાળાઓને અનુમોદન પછુ આપ્યુ નથી આ પ્રકારે જ્યારે તેઓ ત્રીન કરણ અને ત્રણ યોગથી પાપના

‘प्रमादवशेन संयमे स्तस्मि’ इत्यपि तेषां कथनादुन्मत्तप्रलपनम्, “छतमत्थो वि परक्कममाप्पो न पमायं संहपि कुम्बित्था” इति यदत्र गाथायां सुस्पष्टं वचनं येषां दृष्टिषु नारोहति ते प्रथमोद्धान्धाः सम्यग्दृष्टिर्मिथ्यनीया इत्यर्थं विस्तरेण ॥१५॥
तीन योगसे पापके त्यागी रहे तो फिर उनमें पापका (पापछेदयाओंका) सम्बन्ध कल्पित करना बिलकुल मूर्खतापूर्ण है, इस लिये यह बात अवश्य माननी चाहिये कि भगवानमें अपर्मछेदयाके लिये किंचिन्मात्र भी स्थान घटित नहीं होता है।

तथा ‘भगवान् बूके’ इस प्रकार कह कर जो यह बात सिद्ध करना चाहते हैं कि ‘भगवान् प्रमादके वशसे संयमसे स्थलित हुए हैं’ यह भी कथन एकतरह उन्मत्तका प्रलाप जैसा ही है, क्यों कि “छतमत्थो वि परक्कममाप्पो न पमायं संहपि कुम्बित्था” मालूम होता है यह आगम वचन उनकी दृष्टिमें नहीं आया है, नहीं तो वे इस प्रकारका व्यर्थ प्रलाप नहीं करते। इसको जान बूझकर भी जो अपनी दृष्टिग्राहिता नहीं छोड़े तो उनके लिये हम क्या कहें—ऐसे जीब प्रबल मोहसे ही भरे बने हुए हैं, जो जान-बूझकर भी वास्तविक वस्तुस्थितिसे अज्ञान हो रहे हैं, ऐसे जीवों पर सम्यग्दृष्टि जीब केवल दयाके सिवाय और क्या अपनी ओर से प्रकट कर सकती है। अब इस विषयमें और अधिक कहने की जरूरत नहीं है ॥१५॥

त्वाग्नी रक्षा तां पत्नी तेमनाभा पापलेखाम्बोने स लघ कल्पित करेवो ते भीलकुल भूषतापुषु छे आभाटे जे बात अवश्य मानवी जोई जे के अज्ञवानमा अध भंडिरमा भाटे वरासशुभुके स्थान लक्षित नथी।

“सत्त्वान् बुक्का आ प्रकारु कहीने के जे बात सिद्ध करवा छिछे छे के अज्ञवान प्रमादवशशी सचमभी स्थलित वथा छि आ कहेवु पयु जेक परेकना छे भादने प्रलापन छि केभके—“छतमत्थो वि परक्कममाप्पो न पमायं संहपि कुम्बित्था” मालूमथाय छे के आनुं आगमनु वचन तेनी द्रष्टीमा आनुं नथी, नही तो ते आ प्रकारने व्यर्थ प्रलाप न करत। आनी रीते व्यवसा पत्नी पयु के पोतानी कथनकता न छिछे तो तेने भाटे कहेवानुं शु डोव ? जेवा एव प्रलय मोहशी अध बनेव छे के लक्ष्मीजुलने पयु वास्तविक वस्तुस्थितिशी अलावु रहे छे। जेवा एवो उपर सम्यग्दृष्टी एव केवज दया सिवाय पोताना तक्षशी भीलु शु करी शके ? जेवे आ विषयमा अधिक कहेवानी जरूरत नथी। (१५)

ભાવતઃ પદ્મેશ્યાવત્ત્વં તુ ભગવતઃ કથમપિ ન સંભવતિ, ધર્મપ્રકૃતિકસ્ય તસ્ય ધર્મલેશ્યામાત્રસદ્ભાવાત્, ધર્મલેશ્યા હિ તિસ્રઃ સન્તિ, તથા ચોક્તમ્—“તેઽપમ્હા સુક્ષ્મા, તિન્નિ ઇયાઓ ધમ્મલેસ્સાઓ ।” ઇતિ । અધર્મસ્ય તુ તત્ર લેશતોઽપિ શદ્ધા નાસ્તિ, અસ્મિન્નવોદેશકે—

“ળચ્ચા ણ સે મહાવીરે, ણો ચિય પાવગં સયમકાસી ।

અન્નેહિં વા ણ કારિત્થા, કીરંતં પિ નાણુજાણિત્થા (૧-૮)” ॥

ઇત્યુપમગાથાયા ભગવતા ન સ્વયં પાપ કૃત, નાન્યૈઃ કારિત, કુર્વન્તમન્ય પ્રતિ નાનુમોદિતમિત્યેવ ત્રિકરણત્રિયોગૈર્ભગવતઃ પાપસમ્બન્ધાભાવો વોધિતઃ । एवं च तस्मिन्नधर्मलेश्यात्रयस्य स्थानं नोपपद्यते ।

यह जो कहा गया है कि भगवान छह लेश्यावाले थे सो भी कथन युक्तिसंगत नहीं है, कारण कि स्वभावतः धर्मप्रकृतिसम्पन्न प्रभुके सिर्फ धर्मलेश्या मात्रका ही सद्भाव होता है, पापलेश्याका नहीं । तेज, पद्म और शुक्ल, ये तीन लेश्याएँ धर्मलेश्या कही जाती हैं कृष्ण, नील और कापोत, ये अधर्मलेश्या (पापलेश्या) हैं । इन अधर्मलेश्याओंका तो वहां अंशतः भी सद्भाव नहीं पाया जाता है, क्योंकि इसी उद्देशमें—

“ णच्चा ण से महावीरे, णो चिय पावग सयमकासी ।

अन्नेहिं वा न कारित्था, कीरंतपि नाणुजणित्था ” ॥ (१-८)

इस आठवीं गाथा द्वारा यही बात स्पष्ट की गई है कि-जब भगवान्ने स्वयं कभी पाप नहीं किया और न दूसरोंसे ही कराया, तथा करनेवालों की अनुमोदना भी नहीं की, इस प्रकार वे तीन करण और

આ જે કહેવાયુ છે કે ભગવાન છ લેશ્યાવાળા હતા તે પણ કહેલુ યુક્તિસંગત નથી, કારણ કે સ્વભાવત ધર્મપ્રકૃતિસમ્પન્ન પ્રભુને ફક્ત ધર્મલેશ્યા માત્રનો જ સદ્ભાવ હોય છે, પાપ-લેશ્યાનો નહીં તેજ, પદ્મ, અને શુક્લ, આ ત્રણ લેશ્યાઓ ધર્મલેશ્યા કહેવાય છે કૃષ્ણ, નીલ અને કાપોત એ, અધર્મ-લેશ્યા (પાપ-લેશ્યા) છે એ અધર્મ-લેશ્યાઓનો ત્યા લેશ માત્ર પણ સદ્ભાવ દેખવામા આવતો નથી. કેમકે એ જ ઉદ્દેશમા—

“ ણચ્ચા ણં સે મહાવીરે, ણો ચિય પાવગ સયમકાસી ।

અન્નેહિં વા ન કારિત્થા, કીરંતપિ નાણુજાણિત્થા ॥” (૧-૮)

આ આઠમી ગાથા દ્વારા એ વાત સ્પષ્ટ કરેલ છે કે જ્યારે ભગવાને પોતે કદી પાપ કરેલ નથી, અને ન બીજાથી કરાવેલ, તથા કરવાવાળાઓને અનુમોદન પણ આપ્યું નથી આ પ્રકારે જ્યારે તેઓ ત્રણ કરણ અને ત્રણ યોગથી પાપના

उक्तम्—

“आदित्यादिर्विबुधबिसरः सारमस्यां त्रिलोक्या,—

मास्कन्दन्तं पदमनुपमं यच्छिष्यं त्वामुवाच ।

तीर्थं नावाऽऽष्टपुमबभयच्छेदि तूर्णं निषस्त्वे,—

त्येतद् वाक्यं त्वदधिगतये नाकिनां स्याद्विषयोः ॥१॥” इति ।

तीर्थमपर्वनार्थं कथं प्रश्नोऽभूदिति दर्शयितुमाह—‘आत्मशोध्या’ कर्मणः क्षयोपशमादुपशमात् स्याच्चक्ष्मणः श्रोत्रिस्तथा, आपत्तयोर्गन्धमिधानयुक्तमनो-

“आदित्यादिर्विबुधबिसरः सारमस्यां त्रिलोक्या,—

मास्कन्दन्तं पदमनुपमं यच्छिष्यं त्वामुवाच ।

तीर्थं नावाऽऽष्टपुमबभयच्छेदि तूर्णं निषस्त्वे,—

त्येतद्वाक्यं त्वदधिगतये नाकिनां स्याद्विषयोः ॥ १ ॥

हे भगवन् ! सारस्वत आदित्य आदि आठ प्रकारके लोकान्तिक देव, अनुपम एवं तीनों लोकमें सारभूत ऐसे शिष्यपद—मोक्षपदको प्राप्त करने के लिये उद्यत हुए आपके पास आ कर हम प्रकार प्रार्थना करते हैं कि—“हे नाथ ! इस संसाररूपी महाभय को नष्ट करनेवाछे तीर्थकी आप शीघ्र स्थापना कर ” यह उनकी प्रार्थना आपके लिय निवेदनमात्र है, क्यों कि आप तो स्वयंबुद्ध हैं । उन देवोंका यह केवल परम्परागत आचार है ॥ १ ॥

भगवान् अपने चारित्र्यमोहनीयरूप कर्मके क्षयोपशम, उपशम और सर्वथा

“आदित्यादिर्विबुधबिसरः सारमस्यां त्रिलोक्या,

मास्कन्दन्तं पदमनुपमं यच्छिष्यं त्वामुवाच ।

तीर्थं नावाऽऽष्टपुमबभयच्छेदि तूर्णं निषस्त्वे,

त्येतद्वाक्यं त्वदधिगतये नाकिनां स्याद्विषयोः ॥ १ ॥

हे भगवान् ! सारस्वत आदित्य आदि आठ प्रकारके लोकान्तिक देव, अनुपम अने उद्ये लोकमा सारभूत ऐसे शिष्यपद—मोक्षपद—ने प्राप्त करने आ उद्यत—तेवारे लिये आ आपकी आछे आनीने आ प्रकार प्रार्थना करे छे हे— हे नाथ ! आ संसाररूपी महाभयने नष्ट करनेवाछे तीर्थकी आप शीघ्र स्थापना करे । आ प्रकारकी तेजोनी प्राप्तिना आपने आटे निवेदनमात्र छे हे भगवन् आप तो स्वयंबुद्ध छे । ते देवोंने आ केवल परम्परागत आचार छे । (१)

भगवान् पीतान् आदित्रिभोहनीयरूप कर्मना क्षयोपशम, उपशम अने

કિન્ન—‘સયમેવ’ ઇત્યાદિ ।

મૂલમ્—સયમેવ અભિસમાગમ્, આયતજોગમાયસોહીષ ।

અભિનિવૃદ્ધે અમાઙ્ગે, આવકહં ભગવં સમિયાસી ॥૧૬॥

છાયા—સ્વયમેવાભિસમાગમ્ય આયતયોગમાત્મશોધ્યા ।

અભિનિવૃત્તઃ અમાયાવી યાવત્કથં ભગવાન્ સમિત આસીત્ ॥૧૮॥

ટીકા—અમાયાવી=માયારહિતઃ ભગવાન્ સ્વયમેવ=આત્મનૈવ, અભિસમાગમ્ય=સંસારસ્વરૂપ વિદિત્વા સ્વયંબુદ્ધ સન્ તીર્થપ્રવર્તનાર્થમુદ્યતો વભૂવેત્યર્થઃ । યદ્યપિ ભગવાન્ સ્વયમેવ તીર્થપ્રવર્તનાર્થમુદ્યુક્ત આસીત્ તથાપિ લોકાન્તિકા દેવા ભગવદન્તિકં સમાગત્ય પરમ્પરાગતાચારમાલમ્બ્ય ભગવન્ત તીર્થપ્રવર્તનાય પ્રાર્થયામામુઃ ।

और भी—‘सयमेव’ इत्यादि ।

માયાચારીકી પ્રવૃત્તિસે સર્વથા રહિત ભગવાન્ મહાવીરને અપને આપ હી ઇસ સસારકા સ્વરૂપ ખલીખાંતિ જાન કર પરિત્યાગ ક્રિયા, ઉન્હોને સંસારકી અસારતાકા પાઠ કિસી દૂસરેકે પાસસે નહીં સીખા, ક્યોં કિ તીર્થઙ્કર સ્વયંબુદ્ધ હોતે હૈં । સાંસારિક અસારતાકે ચિત્તમેં ચઢને પર દીક્ષાકે ભાવ હોતે હી લોકાન્તિક દેવોંકા શીખ્ર હી આગમન હોતા હૈં । યે આ કર તીર્થપ્રવૃત્તિ કરનેકે લિયે પ્રમુસે પ્રાર્થના કરતે હૈં । યદ્યપિ ભગવાન્ તીર્થપ્રવૃત્તિ કરનેકે લિયે પહિલેસે હી તય્યાર રહતે હૈં, ફિર ખી લોકાન્તિક દેવોંકા એસા હી પરમ્પરાગત નિયોગ-આચાર-હૈં કિ પ્રમુ જબ દીક્ષા લેનેકે લિયે ઉદ્યત હોતે હૈં તબ યે આ કર અપને પરમ્પરાગત ઇસ નિયોગ કી પૂર્તિ કરતે હૈં । કહા ખી હૈ—

इरी पशु—‘सयमेव’ इत्यादि

માયાચારીની પ્રવૃત્તિથી સર્વથા રહિત ભગવાન મહાવીરે પોતાની બાતે આ સસારનું સ્વરૂપ બલી-ભાતિથી બાણી પરિત્યાગ કર્યો તેઓએ સસારની અસારતાનો પાઠ બીજા કોઈ પાસેથી શીખેલ ન હતા કેમકે તીર્થ કર સ્વયંબુદ્ધ હોય છે સાસારિક અસારતા ચિત્તમાં ચડતા દીક્ષાના ભાવ થતા જ લોકાન્તિક દેવોનું શીખ્ર આગમન થાય છે એ આવીને પ્રમુથી તીર્થ-પ્રવૃત્તિ કરવા માટે પ્રાર્થના કરે છે બે કે ભગવાન તીર્થપ્રવૃત્તિ કરવા માટે પહેલેથી જ તૈયાર રહે છે તો પશુ લોકાન્તિક દેવોનો એવો પરમ્પરાગત નિયોગ-આચાર-છેકે પ્રમુબ્યારે દીક્ષા લેવા માટે ઉદ્યત હોય છે ત્યારે તે આવીને પોતાની પરમ્પરાગત આ નિયોગની પૂર્તિ કરે છે કહ્યું પશુ છે—

उक्तम्—

“आदिस्थादिर्विबुधसिद्धः सारमस्यां त्रिलोक्या,
मास्कन्दन्तं पदमनुपमं यच्छिष्यं त्वागुवाच।
तीर्थं नायाऽल्लघुमवमयच्छेदि तूर्णं विप्रस्त्वे,
त्येतद्वाक्यं त्वदधिगतये नाकिनां स्याद्वियोगः ॥१॥” इति।

तीर्थमवर्तनार्थं कथं प्रवृत्तोऽभूदिति दर्शयितुमाह—‘आत्मशोध्या’ कर्मणाः
क्षयोपशमादुपशमात् सत्यत्वात्मनः शोचिस्तथा, आयतयोर्गन्धुषणिभानयुक्तमनो-

“आदिस्थादिर्विबुधसिद्धः सारमस्यां त्रिलोक्या,
मास्कन्दन्तं पदमनुपमं यच्छिष्यं त्वागुवाच।
तीर्थं नायाऽल्लघुमवमयच्छेदि तूर्णं विप्रस्त्वे,
त्येतद्वाक्यं त्वदधिगतये नाकिनां स्याद्वियोगः” ॥ १ ॥

हे भगवन् ! सारस्वत आदित्य आदि आठ प्रकारके लोकान्तिक देव,
अनुपम एवं तीनों लोकमें सारभूत ऐसे शिष्यपद—मोक्षपदको प्राप्त करने
के लिये उद्यत हुए आपके पास आ कर इस प्रकार प्रार्थना करते हैं कि
—“हे नाथ ! इस संसाररूपी महाभय को नष्ट करनेवाले तीर्थकी आप
शीघ्र स्थापना कर ” यह उनकी प्रार्थना आपके लिये निवेदनमात्र है,
क्यों कि आप तो स्वयंबुद्ध हैं। उन देवोंका यह केवल परम्परागत
आचार है ॥ १ ॥

भगवान् अपने चारित्र्यमोहनीयरूप कर्मके क्षयोपशम, उपशम और सर्वथा

“आदिस्थादिर्विबुधसिद्धः सारमस्यां त्रिलोक्या,
मास्कन्दन्तं पदमनुपमं यच्छिष्यं त्वागुवाच।
तीर्थं नायाऽल्लघुमवमयच्छेदि तूर्णं विप्रस्त्वे,
त्येतद्वाक्यं त्वदधिगतये नाकिनां स्याद्वियोगः” ॥ १ ॥

हे भगवान् ! सारस्वत आदित्य आदि आठ प्रकारके लोकान्तिक देव,
अनुपम अने उद्ये लोकमें सारभूत जेना शिष्यपद—मोक्षपद—ने प्राप्त करना चाहे
उद्यत—तेषां यथैव आपनी पक्षे आपनीने आ प्रकारे प्रार्थना करे ॥ १ ॥ हे
नाथ ! आ सारभूती महाभयने नष्ट करवावाक्य तीर्थनी आप शीघ्र स्थापना
करे ॥ आ प्रकारनी तेजोनी प्राथना आपने माटे निवेदनमात्र ॥ हे भगवन्
आप तो स्वयंबुद्ध हो, ते देवोंने आ केवल परम्परागत आचार छे. (१)

भगवान् प्रोक्ताना चरित्रमोहनीयरूप कर्मणा क्षयोपशम, उपशम अने

વાકાયયોગં વિધાય, અભિનિર્વૃતઃ=રૂપાયાનલપ્રશમેન શીતીભૂતઃ, અત એવ યાવત્કથં= યાવજીવ સમિતઃ=સમિતિપશ્ચકસમન્વિત, તથા ગુપ્તિત્રયસમન્વિતથાસીત્ ॥૧૬॥

ઉપસંહરન્નાહ-‘ એસ વિહી ’ ઇત્યાદિ ।

મૂલમ્-એસ વિહી અણુવકંતો, માહણેણ મઝ્ઝમયા ।

વહુસો અપહિન્નેણ, ભગવયા એવં રીયંતિ-ત્તિવેમિ ॥૧૭॥

છાયા-એપ વિધિરનુક્રાન્તઃ, માહનેન મતિમતા ।

વહુશોઽપતિજ્ઞેન, ભગવતા એવં રીયન્તે-ઇતિ બ્રવીમિ ॥૧૬॥

ટીકા--અસ્ય વ્યાખ્યા પ્રથમોદ્દેશકેઽભિહિતા તત એવાધિગન્તવ્યા । ‘ ઇતિ બ્રવીમિ ’ અસ્ય વ્યાખ્યાઽપિ પૂર્વં ગતા ॥ ૧૭ ॥

॥ નવમાધ્યયનસ્ય ચતુર્થ ઉદ્દેશઃ સમાપ્તઃ ॥૧-૪॥

ક્ષયસે આત્માકી શુદ્ધિ કર ચારિત્ર અંગીકાર કર મન, વચન ઓર કાયકી પ્રવૃત્તિકો સુપ્રણિધાનયુક્ત કરતે હુએ કષાયરૂપી અગ્નિકે પ્રશમસે અત્યંત શીતલ હુએ ઓર જીવનપર્યન્ત પાંચ સમિતિ એવ ત્રીન ગુપ્તિસે યુક્ત શોભિત હુએ ॥૧૬॥

અવ સૂત્રકાર ઉપસંહાર કરતે હુએ કહતે હૈં-‘ એસ વિહી ’ ઇત્યાદિ ।

હસ સૂત્રકી વ્યાખ્યા પ્રથમ ઉદ્દેશમેં કી જા ચુકી, હૈં અતઃ વહીંસે જાન લેની ચાહિયે ॥૧૭॥

॥ નવવે અધ્યયનકા ચૌથા ઉદ્દેશ સમ્પૂર્ણ ॥૧-૪॥

સર્વથા ક્ષયથી આત્માની શુદ્ધિ કરી ચારિત્ર અંગીકાર કરી, દીક્ષા ધારણ કરી મન, વચન અને કાયાની પ્રવૃત્તિને સુપ્રણિધાનયુક્ત કરતા કરંતા કષાયરૂપી અગ્નિના પ્રશમથી અત્યંત શીતળ બન્યા અને જીવનપર્યન્ત પાંચ સમિતિ અને ત્રણ ગુપ્તિથી યુક્ત શોભિત થયા (૧૬)

હવે સૂત્રકાર ઉપસંહાર કરતા કહે છે-‘ એસ વિહી ’ ઇત્યાદિ

આ સૂત્રની વ્યાખ્યા પ્રથમ ઉદ્દેશમાં કહેવાઈ ગયેલ છે, એટલે ત્યાંથી સમજ લેવી જોઈએ (૧૭)

નવમા અધ્યયનનો ચોથો ઉદ્દેશ સમાપ્ત ॥ ૬-૪ ॥

अध्ययनविषयोपसंहारः—

भीषर्मानस्य विमोर्बिहारं, अध्यासनं घोरपरीपहम् ।
 विस्मयामिग्रहसम्भृतिं, मोक्षे नवाङ्गाध्ययने सुधर्मा ॥ १ ॥
 मापशुक्लप्रयोदस्यो, गुरौ पुण्ये च वैक्रमे ।
 श्रपक्षिद्विसहस्रेष्वे, टीकेय पूर्णवामगात् ॥ २ ॥
 ॥ इत्याचाराङ्गसूत्रस्याचारचिन्तामणिटीकायामुपधानास्यं
 नममध्ययने सम्पूर्णम् ॥ ९ ॥

अध्ययनके विषयोक्ता उपसंहारः—

इस अन्तिम श्लोकद्वारा टीकाकारने इस नवमें अध्ययनके चार
 वेशोंमें वर्णित विषयका उपसंहार रूपसे कथन किया है, वे धतलाते
 हैं कि श्रीसुधर्मास्वामीने प्रथम वेशमें भगवान् के विहार का, द्वितीय
 वेशमें उनके शयन और आसनका, तृतीय वेशमें घोर परीपह और
 उपसर्गोंके सहनेका और चतुर्थ वेशमें माना प्रकारके कठिन अभिप्रहोंसे
 प्राप्त आहारका वर्णन किया है ॥१॥

विक्रम संवत् २००९ माघशुक्ल ११ बुधस्पतिवार पुष्य नक्षत्रमें
 यह टीका पूर्ण हुई है ॥ २ ॥

यह आचाराङ्गसूत्रके उपधानश्रुत नामके नवमें अध्ययनकी आचार
 चिन्तामणि-टीकाका द्वितीयानुवाद सम्पूर्ण ॥ ९ ॥

अध्ययनना विषयानो उपसंहारः—

आ अन्तिम श्लोकद्वारा टीकाकारे आ नवमा अध्ययनना ओषा वेशमां
 वर्णयवामा आवेदा विषयना उपसंहार रूपे कथन करेव छे तेको जतावे छे
 के श्री सुधर्मास्वामीने पढेवा वेशमा अभ्यासना विहार जागत, पीला वेशमां
 कोमल शयन अने आसन जागत, तीला वेशमां पार परियक अने उपसर्गो
 सहवा जागत, अने ओषा वेशमां धवा प्रकारना कठिण अभिप्रहोधी भयेव
 आहारतु वर्णन करेव छे (१)

विक्रम संवत् २० ९ भद्रपुर्णि १३ शुक्रवार पुष्य नक्षत्रमां आ टीका
 पूर्ण भई छे (२)

आ आचार्यसंगसूत्रना उपधानश्रुत नामना नवमा अध्ययननी आचार-
 चिन्तामणि-टीकानो गुजराती अनुवाद स पूर्ण ॥ ६ ॥

वाकाययोगं विधाय, अभिनिर्वृतः=कषायानलप्रशमेन शीतोभूतः, अत एव यावत्कथं=यावज्जीव समितः=समितिपञ्चकसमन्वितः, तथा गुप्तित्रयसमन्वितश्चासीत् ॥१६॥

उपसंहरन्नाह—‘एस विही’ इत्यादि ।

मूलम्—एस विही अणुव्रकंतो, माहणेण मईमया ।

बहुसो अपडिन्नेणं, भगवया एवं रीयंति—त्तिवेमि ॥१७॥

छाया—एष विधिरनुक्रान्तः, माहनेन मतिमता ।

बहुशोऽप्रतिज्ञेन, भगवता एवं रीयन्ते—इति ब्रवीमि ॥१६॥

टीका—अस्य व्याख्या प्रथमोद्देशकेऽभिहिता तत एवाधिगन्तव्या । ‘इति ब्रवीमि’ अस्य व्याख्याऽपि पूर्वं गता ॥ १७ ॥

॥ नवमाध्ययनस्य चतुर्थ उद्देशः समाप्तः ॥९-४॥

क्षयसे आत्माकी शुद्धि कर चारित्र अंगीकार कर मन, वचन और कायकी प्रवृत्तिको सुप्रणिधानयुक्त करते हुए कषायरूपी अग्निके प्रशमसे अत्यंत शीतल हुए और जीवनपर्यन्त पांच समिति एव तीन गुप्तिसे युक्त शोभित हुए ॥१६॥

अब सूत्रकार उपसंहार करते हुए कहते हैं—‘एस विही’ इत्यादि ।

इस सूत्रकी व्याख्या प्रथम उद्देशमें की जा चुकी, है अतः वहींसे जान लेनी चाहिये ॥१७॥

॥ नववे अध्ययनका चौथा उद्देश सम्पूर्ण ॥९-४॥

सर्वथा क्षयशी आत्मान्नी शुद्धि करी आश्रित अंगीकार करी, दीक्षा धारण करी मन, वचन अने कायान्नी प्रवृत्तिने सुप्रणिधानयुक्त करता करता कषायरूपी अग्निना प्रशमशी अत्यंत शीतल अन्या अने जीवनपर्यन्त पांच समिति अने त्रय गुप्तिशी युक्त शोभित थया (१६)

इसे सूत्रकार उपसंहार करता कहे छे—‘एस विही’ इत्यादि ।

आ सूत्रनी व्याख्या प्रथम उद्देशमा कहेवाछ गयेल छे, ओटवे त्याशी समल देवी लेछिअ (१७)

नवमा अध्ययननो चौथा उद्देश समाप्त ॥ ९-४ ॥

अध्ययनविषयोपसंहारः—

श्रीवर्षमानस्य विमोर्षिहारं, श्रव्यासनं घोरपरीपहं ।
 विष्णुनाभिप्रसम्पत्किं, घोषे नवाङ्गाध्ययने सुधर्मा ॥ १ ॥
 मापद्भुक्तप्रयोदश्यां, गुरौ पुन्ये च वैक्रमे ।
 इपधिकद्विसहस्रेऽन्वे, टीकेय पूर्णतामगात् ॥ २ ॥
 ॥ इत्याचाराङ्गसूत्रस्याचारचिन्तामणिटीकायामुपधानास्य
 नवममध्ययनं सम्पूर्णम् ॥ ९ ॥

अध्ययनके विषयोक्ता उपसंहारः—

इस अन्तिम श्लोकद्वारा टीकाकारने इस नवम अध्ययनके चार उद्देशोंमें वर्णित विषयका उपसंहार रूपसे कथन किया है, ये बातें बताते हैं कि श्रीसुधर्मास्वामीने प्रथम उद्देशमें भगवान् के विहार का, द्वितीय उद्देशमें उनके शयन और आसनका, तृतीय उद्देशमें घोर परीपह और उपसर्गोंके सहनेका और चतुर्थ उद्देशमें माना प्रकारके कठिन अभिप्रहोंसे प्राप्त आहारका वर्णन किया है ॥१॥

विक्रम संवत् २००२ माघशुद्ध ११ बुधस्पतिवार पुष्य नक्षत्रमें यह टीका पूर्ण हुई है ॥ २ ॥

यह आचाराङ्गसूत्रके उपधानमुत्त नामके नवम अध्ययनकी आचार चिन्तामणि-टीकाका हिन्दीभाषानुवाद सम्पूर्ण ॥ ९ ॥

अध्ययनना विषयेना उपसंहारः—

अन्तिम श्लोकद्वारा टीकाकारे नवम अध्ययनना चोद्य उद्देशमा चतुर्विधमा आवेष्टा विषयना उपसंहार इपि कथन करेत्तु तेजो ज्ञावे उद्देशमा श्रीसुधर्मास्वामीने पठेष्टा उद्देशमा भगवान्ना निकार ज्ञावेत्तु, जीव उद्देशमा ज्ञेयना शयन ज्ञेय आसन ज्ञावेत्तु, त्रीन् उद्देशमा घोर परिपह ज्ञेय उपसर्गो सहने ज्ञावेत्तु, ज्ञेय चोद्य उद्देशमा धन्य प्रकारना कर्म ज्ञेय अलिप्रहोपी भवेत्तु आकरत्तु चर्चन करेत्तु ॥ (१)

विक्रम संवत् २०२ मकरसुदि १३ शुक्रवार पुष्य नक्षत्रमा आ टीका पूर्ण धर्तु ॥ (२)

आ आचारसंग्रहना उपधानमुत्त नामना नवम अध्ययनना आचार-चिन्तामणि-टीकाको अनुवाद सम्पूर्ण ॥ ६ ॥

शास्त्रप्रशस्तिः—

तस्मै श्री-वर्द्धमानाय, केवलालोकशालिने ।

दयालवे सदा भूयाद्, घासीलालकृता नतिः ॥१॥

उद्यद्दीरजरामरस्य महतः पूज्यस्य गच्छाश्रितः,

शान्तो दान्त उदारचित्तकमलः शब्दागमन्यायवित् ॥

नम्रो जीवदयाकरो मुनिवरो गच्छाधिपो भासुरः,

श्रीमानस्ति गुलावचन्द्र-विवुधः पट्टानुपट्टाश्रितः ॥ २ ॥

शान्तो दान्त उदञ्चितामलयशश्वन्द्रो महान् पण्डितः,

सेवासद्विनयैर्वशीकृतजगद्विद्यागुणैर्मण्डितः ॥

धर्माचारनिदेशभूतधरणिर्भव्यैकचिन्तामणिः,—

लोकानन्दकरो विभाति धनजी-स्वामी सदा सन्मुनिः ॥३॥

गणेऽस्मिन् प्रमुख्यः सुधीवृन्दवन्द्यो,—

भ्रमन् देशदेशान्तरं पावयन् यः ॥

भविस्थापितस्वीयधर्मप्रबोधो,—

मुनिर्नानचन्द्रः कवीन्द्रः सुबोधः ॥ ४ ॥

अत्रत्यः प्रियधर्मको दृढतरं धर्मं दधानस्तथा,

श्रीसङ्घोऽतितरामुदारचरितो धन्यादिवोधे क्षमः ॥

पुण्यापुण्यनिरूपणेऽपि निपुणो जीवानुकम्पापरो,—

जीवाऽजीवमुखं च तत्त्वमभितो विद्वान् सदा राजते ॥५॥

चारित्र-श्रुतयुग्मकेन सुषमा जैनानुशास्तेर्यथा,

सङ्घाभ्यां जिनशासनस्य च तथा सा लिम्बडीपत्तने ॥

एव स्थानकवासिसङ्घ उभयोऽन्योऽन्यानुरागोन्नतो,—

जानन्नास्रव-संवरादिकमय रत्नत्रये तत्परः ॥ ६ ॥

बालोऽपि धर्मी स्थविरोऽपि धर्मी,

समागतः प्राधुणकोऽपि धर्मी ॥

प्रायोऽत्र सङ्घे सकलोऽपि धर्मी,

धन्या जनन्यो जनयन्ति तौश्च ॥ ७ ॥

श्रीमान् यादवजी-स्वामी, सेवाभावी विनीतिमान् ।

मुनिप्रवरो धीमान्, साम्प्रतं राजपैतराम् ॥ ८ ॥

मिनागमः प्रियमञ्जुमापी,
निहाय दोषान् गुणतो भिलासी ॥

तपःक्रियाज्ञाननिस्तकः,
सदा मुनिप्रवृत्तिरूपचन्द्र ॥ ९ ॥

धीमान् केशवसालज्जीमुनिपरः स्वामी सतां सेवकः,
शीलं विश्वपक्षीकरं च विनये संपारयन् यस्ततः ॥

बर्मादेश्वरतो दयाद्रुतयनाधारिभरप्रापरो,-
धीरं वीरवरं सदा परिचरन् शान्तोऽधुना रावते ॥ १० ॥

शान्तिमान् सृन्जीस्वामी, मद्रभाषसमन्वितः,
वान्तो दयापयाराधिः, स्थानवासो विरामते ॥ ११ ॥

मुनि श्रीनागजीस्वामी, व्याख्यानामृततोपकः ।
शान्तो यदुस्वमावय, दयालुः क्षोभते मुनि ॥ १२ ॥

नयल्लक्ष्मन्मुनिर्विनयान्वितो,-
मुदुसचिच आरमतिः सदा ॥

सकलसाधुनिपेक्षतत्परो,-
विद्वद्वेषकलार्जन उद्यतः ॥ १३ ॥

मिनीतः सुशान्तो दयाराभितान्तः,
सदा सत्यये विद्यमानोऽतिदान्तः ॥

तपःसयमाचारनिष्ठाविद्यालः,
मुपीहृन्दसेवी मुनिम्पुनितालः ॥ १४ ॥

मुदुस्वभावो विनयी गुणः
सदा सदाचारलसत्समस्तः ॥

निरन्तरध्यानलसन्निग्रनेत्रं
मुद्रामतं पीबिमनो महेन्द्र ॥ १५ ॥ इति ॥

॥ इति श्री-विश्वविस्मात-जगद्वल्लभ-मसिदशापक-पञ्चदशमाशक्तिवलि-
कलापालापक-प्रविशुद्धगणपदनैकग्रन्थनिर्मापक-वारिमानमर्दक-शाह-
उपपति-कान्हापुरराजमद्वय-“ जैनशास्त्राचार्य ”-पद्मपित-
कोन्हापुरराजगुरु-बाणप्रसन्नारि-जैनाचार्य-जैनपदविदाकर-
पूज्य-श्रीधाम्नीलाल-वतिपिरचितायाम् भाषाराहस्य-
स्याऽऽचारनिष्ठापिटीकायां प्रथमः भूतम्भ्य
सम्पूर्णः ॥ १ ॥

शास्त्रप्रशस्तिः—

तस्मै श्री-वर्द्धमानाय, केवलालोकशालिने ।
 दयालवे सदा भूयाद्, घासीलालकृता नतिः ॥१॥
 उद्यद्दीरजरामरस्य महतः पूज्यस्य गच्छाश्रितः,
 शान्तो दान्त उदारचित्तकमलः शब्दागमन्यायवित् ॥
 नम्रो जीवदयाकरो मुनिवरो गच्छाधिपो भासुरः,
 श्रीमानस्ति गुलाबचन्द्र-विबुधः पट्टानुपट्टाश्रितः ॥ २ ॥
 शान्तो दान्त उदश्रितामलयशश्वन्दो महान् पण्डितः,
 सेवासद्विनयैर्वशीकृतजगद्विद्यागुणैर्मण्डितः ॥
 धर्माचारनिदेशपूतधरणिर्भन्यैकचिन्तामणिः,—
 लोकांनन्दकरो विभाति धनजी-स्वामी सदा सन्मुनिः ॥३॥
 गणेऽस्मिन् प्रमुख्यः सुधीदृन्दवन्द्यो,—
 भ्रमन् देशदेशान्तरं पावयन् यः ॥
 भविस्थापितस्वीयधर्मप्रबोधो,—
 मुनिर्नानचन्द्रः कवीन्द्रः सुबोधः ॥ ४ ॥
 अत्रत्यः प्रियधर्मको दृढतरं धर्मं दधानस्तथा,
 श्रीसङ्घोऽतितरामुदारचरितो धन्वादिबोधे क्षमः ॥
 पुण्यापुण्यनिरूपणेऽपि निपुणो जीवानुकम्पापरो,—
 जीवाऽजीवमुखं च तत्त्वमभितो विद्वान् सदा राजते ॥५॥
 चारित्र-श्रुतयुग्मकेन सुपमा जैनानुशास्तेर्यथा,
 सङ्घाभ्यां जिनशासनस्य च तथा सा लिम्ब्वडीपत्तने ॥
 एवं स्थानकवासिसङ्घ उभयोऽन्योऽन्यानुरागोन्नतो,—
 जानन्नास्रव-संवरादिकमय रत्नत्रये तत्परः ॥ ६ ॥
 बालोऽपि धर्मी स्थविरोऽपि धर्मी,
 समागतः प्राघुणकोऽपि धर्मी ॥
 प्रायोऽत्र सङ्घे सकलोऽपि धर्मी,
 धन्या जनन्यो जनयन्ति तांश्च ॥ ७ ॥
 श्रीमान् यादवजी-स्वामी, सेवाभावी विनीतिमान् ।

[૧]

શ્રી અખિલ ભારત શ્વેતામ્બર સ્થાનઠવાસી

જૈન શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિ

અરેડીયા કુવા રોડ-મીન હોલ પાસે

રાજકોટ



સમિતિની સફળતા તા. ૧૮-૧૦-૪૪ થી
તા-૨-૧૧-૫૭ સુધીમાં દાનવીર મહાસાહે
તરફથી મળેલી રકમોની નામગ્યથી



(રૂ. ૨૫૦ થી વધારી રકમો આ મારીમાં સંગ્રહ કરેલી નથી)





શ્રી અખિલ ભારત શ્વેતામ્બર સ્થાનકવાસી

જૈન શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિ

અરેડીયા મુલા શેઠ-મીન લોખ પાસે

રાજકોટ

*

સમિતિની શરૂઆત તા. ૧૮-૧૦-૪૪ થી
તા. ૨-૧૧-૫૭ સુધીમાં દાનવીર મહાસાહે
તરફથી મળેલી રકમોની નામાવહી.

*

(રૂ. ૧૫૦ થી વધારી રકમો આ યાદીમાં સામેલ કરેલી નથી.)

*

આદ્ય મુરખખીશ્રી-૪

(ઓછામાં ઓછી રૂા ૫૦૦૦ ની રકમ આપનાર)

૧૦૦૦૦	શેઠ શાંતિલાલ મગજદાસભાઈ, પ્રમુખ સાહેબ	અમદાવાદ
૬૦૦૦	શેઠ હરખચંદ કાલીદાસભાઈ	
	(હા શેઠ લાલચંદભાઈ, જેચંદભાઈ, નગીનદાસભાઈ, વૃજલાલભાઈ તથા વલ્લભદાસભાઈ)	ભાણુવડ
૫૨૫૧	કોઠારી જેચંદભાઈ અજરામર હા હરગોવીંદભાઈ જેચંદ	રાજકોટ
૫૦૦૧	શેઠ ધારશીભાઈ જીવનભાઈ	સોલાપુર

મુરખખીશ્રીઓ-૨૧

(ઓછામાં ઓછી રૂા ૧૦૦૦ ની રકમ આપનાર)

૩૬૦૫	વકીલ જીવરાજ વર્ધમાન હા કોઠારી કહાનદાસભાઈ	જેતપુર
	તથા વેણીલાલભાઈ	
૩૬૦૪	દોશી પ્રભુદાસ મુળજીભાઈ	રાજકોટ
૩૨૮૯૧૧-૧૧	મહેતા ગુલાબચંદ પાનાચંદ	રાજકોટ
૩૨૫૦	મહેતા માણેકલાલ અમુલખરાય	ઘાટકોપર
૩૧૦૧	સઘવી પીતામ્બરદાસ ગુલાબચંદ	જામનગર
૨૫૦૦	શેઠ શામજીભાઈ વેલજી વીરાણી	રાજકોટ
૨૦૦૦	નામદાર ઠાકોર સાહેબ લખધીરસી હજી બહાદુર	મોરબી
૨૦૦૦	શેઠ લહેરચંદ કુવરજી હા શેઠ ન્યાલચંદભાઈ લહેરચંદ	સિદ્ધપુર
૨૦૦૦	શાહ છગનલાલ હેમચંદ વસા હા મોહનલાલભાઈ	
	તથા મોતીલાલભાઈ	સુબઈ
૧૯૬૩	શ્રી સ્થાનકવાસી જૈન સઘ	મોરબી
૧૦૦૧	શેઠ આત્મારામ માણેકલાલ	અમદાવાદ
૧૦૦૧	શેઠ માણેકલાલ ભાણુજીભાઈ	પોરબંદર
૧૦૦૦	શેઠ સોમચંદ તુલસીદાસ	રતલામ
૧૦૦૦	કોઠારી છબીલદાસ હરખચંદ	સુબઈ
૧૦૦૦	કોઠારી રગીલદાસ હરખચંદ	શીહોર
૧૦૦૨	બગડીઆ જગજીવનદાસ રતનશી	જામનગર
૧૦૦૧	શ્રીમાન ચંદ્રસિંહજી મહેતા (રેલ્વે મેનેજર સાહેબ)	કલકત્તા
૧૦૦૧	મહેતા પોપટલાલ માવજીભાઈ	જામજોધપુર
૧૦૦૧	મહેતા સોમચંદ નેણશીભાઈ	(કરંચીવાળા) મોરબી
૧૦૦૧	શાહ હરીલાલ અનુપચંદ	ખભાત
૧૦૦૨	દોશી કપુરચંદ અમરશી હા દલાપતરામ કપુરચંદ દોશી જામજોધપુર	

(બોમ્બા બોર્ડી રૂ. ૫૦૦ ની રકમ આપનાર)

૭૫૦	શ્રી સ્થાનકવાસી ડેન સુધ હા. રોડ કુજાભાઈ	
	વેલસીભાઈ	વડવાણ શહેર
૭૫૦	મોટી કેશવલાલ હરિચંદ	સાબરમતી
૭૦૦	રોડ નરોત્તમદાસ બોમ્બેભાઈ	બેસવસ્તનગર
૫૦૧	રોડ ચીવલાલ હમરભાઈ	લીમડી
૫૦૦	કામદાર વારાચંદ પોપટલાલ પિરાલવાળા	કુજકોટ
૫૦૦	શ્રી સ્થાનકવાસી ડેન સુધ	ધુનમક
૫૦૦	રોશ વાસબદલ પુખસજલ	ઝોરગાવાડ
૫૦૦	શ્રી સ્થાનકવાસી ડેન સુધ	ઝોરગાવાડ
	૧૫૦ રોડ ચેવમલલ લવસજલ	
	૧૨૫ „ બાનસજલ લાલચંદ	
	૧૨૫ પુકડંચંદ રૂપચંદ	
	૧૦૦ , દમડુમલલ ચાંદમલલ	
	૫૦૦	
૫૦	મહેતા મોહનલાલ કપુરચંદ	કુજકોટ
૫૦૦	રોડ ગોવીંદલ પોપટભાઈ	કુજકોટ
૫૦	મહેતા ગુણચંદ સાવલંક હા મગનલાલભાઈ તથા દુલ્હાજીભાઈ મોટા	ધારવાડ
૫૦૧	રોડ હરખચંદ પરસોત્તમ હા. ભાઈ ઇન્દુકુમાર	ધારવાડ
૫૧	રોડ ખીમજી વાવાભાઈ હા. તેમના પુત્ર કુલચંદભાઈ	
	નાગરદાસભાઈ જુલાળચંદભાઈ તથા જમનાદાસભાઈ	સુળઈ
૫૧	રોડ મણીલાલ મોહનલાલ કમલી હા. રોડ ગુણજીભાઈ મણીલાલ સુળઈ	
૫૧	રોડ ઇન્દુલાલ પુર્ણોત્તમદાસ	જામદાવાડ
૫૦૧	રોડ બદુલાલ ઇમનલાલ	જામદાવાડ
૫૦૧	૨૧. કાંતીલાલભાઈના સમરચાંદે હ. રોડ વાલચંદ	
	સાકરચંદ	સુળઈ
૫૦૦	અ. સો. ડેન મણીગોરી મગનલાલ તે	
	મહેતા ચેમચંદ જુલહીરાસના ખર્મપતિ	સ્વદામ
૫૦૧	૨૧. પોતામી નદાલના સમરચાંદે હ. વેળીચંદ	
	સાંતિલાલ (બજુઆવાળા)	મેઘનગર

આદ્ય મુરખખીશ્રી-૪

(ઓછામાં ઓછી રૂ. ૫૦૦૦ ની રકમ આપનાર)

૧૦૦૦૦	શેઠ શાંતિલાલ મગજદાસભાઈ, પ્રમુખ માહેબ	અમદાવાદ
૬૦૦૦	શેઠ હરખચંદ કાલીદાસભાઈ	
	(હા શેઠ લાલચંદભાઈ, જેચંદભાઈ, નગીનદાસભાઈ, વૃજલાલભાઈ તથા વલ્લભદાસભાઈ)	ભાણુવડ
૫૨૫૧	કોઠારી જેચંદભાઈ અજરમર હા હરગોવીંદભાઈ જેચંદ	રાજકોટ
૫૦૦૧	શેઠ ધારશીભાઈ જીવનભાઈ	સોલાપુર

મુરખખીશ્રીઓ-૨૧

(ઓછામાં ઓછી રૂ. ૧૦૦૦ ની રકમ આપનાર)

૩૬૦૫	વકીલ જીવરાજ વર્ધમાન હા કોઠારી કહાનદાસભાઈ તથા વેણીલાલભાઈ	જેતપુર
૩૬૦૪	દોશી પ્રભુદાસ મુળજીભાઈ	રાજકોટ
૩૨૮૯૧૧-૧૧	મહેતા ગુલાબચંદ પાનાચંદ	રાજકોટ
૩૨૫૦	મહેતા માણેકલાલ અમુલખરાય	ઘાટકોપર
૩૧૦૧	સઘવી પીતામ્બરદાસ ગુલાબચંદ	જામનગર
૨૫૦૦	શેઠ શામજીભાઈ વેલજી વીરાણી	રાજકોટ
૨૦૦૦	નામદાર કોકેર સાહેબ લખધીરસી હજીબહાદુર	મોરબી
૨૦૦૦	શેઠ લહેરચંદ કુવરજી હા શેઠ ન્યાલચંદભાઈ લહેરચંદ	સિદ્ધપુર
૨૦૦૦	શાહ છગનલાલ હેમચંદ વસા હા મોહનલાલભાઈ તથા મોતીલાલભાઈ	મુબઈ મોરબી
૧૬૬૩	શ્રી સ્થાનકવાસી જૈન સઘ	મોરબી
૧૦૦૧	શેઠ આત્મારામ માણેકલાલ	અમદાવાદ
૧૦૦૧	શેઠ માણેકલાલ ભાણુજીભાઈ	પોરબંદર
૧૦૦૦	શેઠ સોમચંદ તુલસીદાસ	રતલામ
૧૦૦૦	કોઠારી છબીલદાસ હરખચંદ	મુબઈ
૧૦૦૦	કોઠારી રંગીલદાસ હરખચંદ	શીહોર
૧૦૦૨	ખગડીઆ જગજીવનદાસ રતનશી	દામનગર
૧૦૦૧	શ્રીમાન ચંદ્રસિંહજી મહેતા (રેલ્વે મેનેજર સાહેબ)	કલકત્તા
૧૦૦૧	મહેતા પોપટલાલ માવજીભાઈ	જામજોધપુર
૧૦૦૧	મહેતા સોમચંદ નેણશીભાઈ	(કરંચીવાળા) મોરબી
૧૦૦૧	શાહ હરીલાલ અનુપચંદ	ખભાત
૧૦૦૨	દોશી કપુરચંદ અમરશી હા દલાપતરામ કપુરચંદ દોશી	જામજોધપુર

૨૫૧	શાહ લક્ષ્મીચંદ્ર કપુરચંદ	જેતલસર જ'કશન
૨૫૧	શાહ અતુરદાસ ઠાકરશીભાઈ	જમનમર
૨૫૧	ખંડેરીયા કાન્તિલાલ ત્રજકલાલ (છેશન માસ્તર)	વાકાનેર
૨૫૧	શાહ દેશવલાલ જેજાં	વેસવળ
૨૫૧	શાહ ખીમચંદ શૌભાવચંદ વસનભ	વેશવળ
૨૫૧	સ્વ. બાબાશ વચ્છરાજ તુલસીદાસનાં ધર્મપત્નિ કમળબાઈ	
	તરફથી હા માણેકચંદભાઈ તથા કપુરચંદભાઈ	બોંહલ
૨૫૧	શેઠ હનનલાલ નાનભાઈ	મુબઈ
૨૫૧	વેલાણી ત્રીકમભાઈ લાખાભાઈ	ભુવનગર
૨૫૧	શેઠ બીરધરાલાલ કરમચંદ	જમદવાહ
૨૫૧	શેઠ ભટ્ટાલાલ વખતચંદ	જમદવાહ
૨૫૧	ગેશ્વલિયા હરિલાલ લાલચંદ	જમદવાહ
૨૫૧	શેઠ પ્રેમચંદ માણેકચંદ	જમદવાહ
૨૫૧	શેઠ માણેકલાલ જમવાનદાસ	ખંભાત
૨૫૧	શ્રી સ્થાનકવાસી જૈન સભા હા. પટેલ કાન્તીલાલ અબાલાલ ખંભાત	
૨૫૧	શેઠ રમણીકલાલ બે. કપાસી	કેશકાપુર
૨૫૧	બહેન સુસીબહેન (લક્ષ્મીબેન)	
	હા. મહેતા હરીલાલ પીતામ્બરદાસ	જાલનપુર
૨૫	શેઠ વાઘીલાલ નેમચંદ વહીલ	વીરમગામ
૨૫૧	શાહ વીંહદાસ મેલી માસ્તર	વીરમગામ
૨૫૧	શાહ નાગરદાસ માણેકચંદ	વીરમગામ
૨૫૧	શાહ મણીલાલ લવણલાલ	વીરમગામ
૨૫૧	શાહ નાગરદાસ લાલભાઈ	જમદનેર
૨૫૧	શ્રી સ્થાનકવાસી જૈન સભા	જમદનેર
૨૫૧	શેઠ મનુભાઈ મુળચંદ (કિન્નનીબર આહેબ)	રાજકોટ
૨૫૧	શેઠ ચાંતિલાલ પ્રેમચંદ	
	[તેમના ધર્મપત્નીના વરસીતપ પ્રસંગે ખુશાલીના]	રાજકોટ
૨૫૦	શ્રી સ્થાનકવાસી જૈન સભા હા. જાણલાલ આસ્વે	કોંકણિયા
૨૫૧	શેઠ મેલીલાલ રણભટ્ટાલાલ કોંકણ	કેશપુર
૨૫	શેઠ બાદરમલાલ મુરજમલાલ બે. કચા	વાઘીસી
૨૫	શેઠ મોપાલાલ મીરાભાઈ	કાટીયા માળીયા
૨૫૧	ઉલાણી ન્યાયચંદ હાકેમચંદ (વહીલ)	રાજકોટ

૭૫૧	શાહ રગજીભાઈ મોહનલાલ	અમદાવાદ
૫૦૧	કામદાર રતીલાલ દુર્લભજી જેતપુરવાળા	મુબઇ
૫૨૭	ખાટવીયા ગીરધર પ્રભાષુદ હસ્તે અમીચદ ગીરધરભાઈ—	આખીનળીયા
૫૧૧	મોરખીવાળા સઘવી દેવચદ નેણશીભાઈ તથા તેમના ધર્મપત્નિ અ સૌ મણીભાઈ તરફથી હા મુળચંદ દેવચદ કરાચીવાળા	મહાડ
૫૦૧	શેઠ કેસરીમલજી વસતીમલજી ગુગલીયા	રાણવાસ
૫૦૧	સ્થાનકવાસી જૈન સંઘ હસ્તે ખાટવીયા અમીચદ ગીરધરભાઈ	આખીનળીયા
૫૦૨	વોરા મણીલાલ પોપટલાલ	અમદાવાદ

પ્રથમ વર્ગના મેમ્બરો—૨૭૭

(ઓછામા ઓછી રકમ રૂા. ૨૫૦ આપનાર)

૪૦૨	શ્રી સ્થાનકવાસી જૈન સંઘ	ધ્રાકા
૪૦૦	ધી વાડીલાલ ડાઇંગ એન્ડ પ્રિન્ટિંગ વર્ક્સ	રાજકોટ
૩૫૩	શેઠ રતનશી હીરજીભાઈ હા ગોરધનદાસભાઈ	નમનગર
૩૦૧	શેઠ જેચદભાઈ માણેકચદ	ભાણુવડ
૨૫૧	સઘવી માણેકચદ માધવજી	ભાણુવડ
૨૫૧	શેઠ લાલજીભાઈ માણેકચદ (લાલપુરવાળા)	ભાણુવડ
૨૫૧	શેઠ રામજી ઝીણાભાઈ	ભાણુવડ
૨૫૧	પચમીયા ભવાનભાઈ કાળાભાઈ	વડીઆ
૨૫૧	શ્રી સ્થાનકવાસી જૈન સંઘ	વાકાનેર
૨૫૧	શેઠ રતીલાલ ન્યાલચદ	રાજકોટ
૨૫૦	ખાણુ પરશુરામ છગનલાલ શેઠ (ઉદેપુરવાળા)	રાજકોટ
૨૫૧	શેઠ મગનલાલ છગનલાલ વિશ્રામ (ધ્રાકાવાળા)	રાજકોટ
૨૫૧	શેઠ જેઠાલાલ ગોરધનદાસ	ઉપલેટા
૨૫૧	સ્વ. બહેન સંતોક કચરા હા ઓતમચદભાઈ, છોટાલાલભાઈ તથા અમૃતલાલભાઈ વાલજી (કલ્યાણવાળા)	ઉપલેટા
૨૫૧	શેઠ ખુશાલચદભાઈ કાનજીભાઈ હા, શેઠ પ્રતાપભાઈ	ઉપલેટા
૨૫૧	શેઠ છોટાલાલ કેશવજી	નમનગર

૨૫૧	શાક લક્ષ્મીબદ્ધ કપુરબદ્ધ	જેતલસર જાંઘન
૨૫૧	શાક વ્યતુરદાસ ઠાકરશીખાઈ	ભમનગર
૨૫૧	ખંડેરીયા કાન્તિલાલ ત્રણકલાલ (સ્ટેશન માસ્તર)	વાંકાનેર
૨૫૧	શાક કેશવલાલ જેવડ	વેરાવળ
૨૫૧	શાક ખીમબદ્ધ શૌભામ્યબદ્ધ વસનભ	વેરાવળ
૨૫૧	સ્વ બાબડા વચ્છરાજ તુલસીદાસનાં ખર્મપત્તિ કમળબાઈ	
	તરફથી હા માણેકજીદાસ તથા કપુરજીદાસ	ગેંઠલ
૨૫૧	શેઠ હમનલાલ નાનભાઈ	મુળઈ
૨૫૧	ચેલાણી ત્રીકમભાઈ લાખાભાઈ	ભુપારદેવ
૨૫૧	શેઠ ગીરધરલાલ કરમજી	અમદાવાદ
૨૫૧	શેઠ દિપ્તાલાલ વળતવજી	અમદાવાદ
૨૫૧	ગોસલિયા હરિલાલ લાલજી	અમદાવાદ
૨૫૧	શેઠ પ્રેમજી માણેકજી	અમદાવાદ
૨૫૧	શેઠ માણેકલાલ અમવાનદાસ	ખલાત
૨૫૧	શ્રી સ્થાનકવાસી જૈન સઘ હા પટેલ કાન્તીલાલ અળાલાલ ખલાત	
૨૫૧	શેઠ રમણીલાલ બે. કપાસી	કેશકાપુર
૨૫૧	બહેન સુશીબહેન (લક્ષ્મીબેન)	
	હા મહેતા હરીલાલ પીતામ્બરદાસ	પાલનપુર
૨૫૦	શેઠ વાઘીલાલ નેમજી વહીલ	વીરમગામ
૨૫૧	શાક બીડલદાસ મેઘી માસ્તર	વીરમગામ
૨૫૧	શાક નાનરદાસ માણેકજી	વીરમગામ
૨૫૧	શાક મણીલાલ ભગવંતલાલ	વીરમગામ
૨૫૧	શાક તામરદાસ વાવભાઈ	અમદાનેર
૨૫૧	શ્રી સ્થાનકવાસી જૈન સઘ	અમદાનેર
૨૫૧	શેઠ મનુભાઈ મુળજી (ઈન્ડિયન આર્ટિસ્ટ)	રાજકોટ
૨૫૧	શેઠ શાંતિલાલ પ્રેમજી	
	[તિમનાં ખર્મપત્તિના વરસીતપ્ર પ્રસંગે ખુશાલીના]	રાજકોટ
૨૫	શ્રી સ્થાનકવાસી જૈન સઘ હા વાલાલભાઈ મારવે	રેડિયાન્સ
૨૫૧	શેઠ મેઘીલાલભાઈ રણુભાઈભાઈ હીંગડ	ઉડપુર
૨૫	શેઠ બાદશમભાઈ સુરજમભાઈ બે. કપા	વાઘીરી
૨૫	શેઠ ગોવાલાલ મીઠાભાઈ	હાટીના મા...
૨૫૧	લલાણી ન્યાલજી હાકોમજી (વહીલ)	સ

૨૫૧	શેઠ પ્રભારામ વીઠલજી	રાજકોટ
૨૫૧	શેઠ મેઘરાજજી દેવીચદજી મહેતા	મદ્રાસ
૨૫૧	પટેલ ગોવિંદલાલ ભગવાનજી	કોલકી
૩૦૨	પટેલ ખીમજી જેઠાભાઈ વાઘાણી	કોલકી
૨૫૧	શેઠ હુકમીચ દ દીપચ દ ગોંડલવાળા [સ્ટેશન માસ્ટર ભક્તિનગર]	રાજકોટ
૨૫૧	શેઠ વસનજી નારણજી	ભમખ ભાળીયા
૨૫૧	શ્રી સ્થાનકવાસી જૈન સઘ	ભમખ ભાળીયા
૨૫૧	શેઠ કીશનલાલ પૃથ્વીરાજ	ખીચન (પાલી)
૨૫૧	શેઠ પદમસી બીમજી ફેડરીયા	ભાણવડ
૨૫૧	અ સો બહેન બચીબહેન ગાળુભાઈ	ધોરાજી
૨૫૧	શેઠ નેમચ દ સવજીભાઈ મોદી	લાલપુર
૨૫૦	શ્રી સ્થા જૈન સઘ હા પ્રમુખ શેઠ ગ્રેમચ દ ભગવાનલાલ ન હુરબાર	
૨૫૧	શેઠ અમૃતલાલ હીરજીભાઈ જસાપરવાળા હા. નરભેરામભાઈ જેતપુર	
૨૫૧	દોશી છોટાલાલ વનેચ દ	જેતપુર
૨૫૧	કામદાર લીલાધર જીવરાજના સ્મરણાર્થે તેમના ધર્મપત્ની	
	બાઈ ઝબકબહેન તરફથી હા બાઈ શાંતિલાલ	જેતલસર
૨૮૭	શ્રી સ્થાનકવાસી જૈન સઘ	ભમખધપુર
૨૫૧	સ્વ બહેન વિન્યાગૌરી રાયચ દ હા શેઠ રાયચ દ પાનાચ દ ધોરાજી	
૨૫૦	ગાધી પોપટલાલ જેચ દભાઈ	ધોરાજી
૨૫૧	શ્રી સ્થાનકવાસી જૈન સઘ	
	હા પ્રમુખ રાયચ દ વૃજલાલ અજમેરા	વીછીયા
૨૫૧	શેઠ મુળચ દ પોપટલાલ હા મણીલાલભાઈ	
	તથા જેસી ગલાલભાઈ	લાલપુર
૨૫૧	શેઠ મણીલાલ મીઠાભાઈ હા હરીલાલભાઈ	
	(હાટીના માળીયાવાળા)	જીનાગઢ
૨૫૧	સ્વ વસાણી હરગોવિંદદાસ છગનલાલના સ્મરણાર્થે	
	તેમનાં ધર્મપત્ની બાઈ છબલબેન તરફથી	ખોટાક
૨૫૧	શ્રી સ્થાનકવાસી જૈન સઘ	ચુડા (ઝાલાવાડ)
૨૫૧	શેઠ મગનલાલજી બાગરેયા	ઉદેપુર
૨૫૧	શેઠ ચાંપશીભાઈ સુખલાલ	સુરેન્દ્રનગર

- ૨૫૧ સ્થાનકવાસી લેન સહ બોટાલ
- ૨૫૧ ૨૧ પૂજ્ય માતૃમી અમરવર્ણના સ્મરણાર્થે
કા. ડોક્ટર સાહેબ નયોત્તમદાસ મુનીશાલ કાપડીયા રાણપુર
- ૨૫૧ ૨૧ તુરખીલા લહેરજી માણેકજી મુદમદાવાળાના સ્મરણાર્થે
તેમના ખર્ચપત્રી ભવતીભાઈ તરફથી કા. જમ તિલાલ લહેરજી દાબાસ
- ૨૫૧ શ્રી રથા. લેન મોટા સહ પ્રાંતપ્રા
- ૨૫૧ ચાક હીલપકુવર સવાઈલાલ
કા. શેઠ સવાઈલાલ ત્રજાલાલ વલવાલુ શહેર
- ૨૫૧ શેઠ જોડુભાઈ હરોવિદ્યાસ કોરીવાળા મુળક
- ૨૫૧ શ. ત. નાથલાલ ડી મહેતા પ્રેમભાઈ
- ૨૫૧ અલ્લી માણલાલ લવણભાઈ જમજ ભાળીયા
- ૨૫૧ બાવીસી મણીલાલ અત્રકુળના સ્મરણાર્થે
તેમનાં ખર્ચપત્રી ભાઈ મણીબેન તરફથી
કા. ભાઈ રશીકલાલ, બનીશાંત તથા વિનોદજી આસનસોલ
- ૨૫૧ ભાવચાર જોડીદાસ અણેશભાઈ ધ મુકા
- ૨૫૧ ચાક પોપ/લાલ ખનજીભાઈ ધ મુકા
- ૨૫૧ ૨૧ સુભાજીદાસના સ્મરણાર્થે
કા. વોરા પોપટલાલ નાનજી ધ મુકા
- ૨૫૧ શેઠ અત્રકુલ વાલજીભાઈ વસાણી ધ મુકા
- ૨૫૧ ૨૧ મીકનલાલ નરહીદાસના સ્મરણાર્થે
તેમના ખર્ચપત્રી સુરજબેન મોરારજી તરફથી જરવાળા
- ૨૫૧ શ્રી સ્થાનકવાસી લેન સહ ખાણસલા (લીંબડી)
- ૨૫૧ સલાણી મુળશંકર હરજીવનભાઈના સ્મરણાર્થે
કા. તેમના પુત્રો જમંતિલાલભાઈ તથા રમણીકલાલભાઈ કપલેડા
- ૨૫૧ ચાક મનનલાલ જોડેજીદાસ
કા. સ્તીલાલ મનનલાલ કામદાર વલવાલુ શહેર
- ૨૫૧ સવની મુળશંકર બેરભાઈ
કા. જીવનલાલ ગજેશદાસ વલવાલુ શહેર

- ૨૫૧ ખડેન સુર્યબાળા નૌતમલાલ જસાણી
[વરસતીપના પારણાની ખુશાલીમા] રાજકોટ
- ૨૫૧ શાહ રાયચંદ ઠાકરશીના સ્મરણાર્થે
હા ભાઈ શાતીલાલ રાયચંદ લખતર
- ૨૫૧ ભાવસાર હરજીવનદાસ પ્રભુદાસના સ્મરણાર્થે
હા. ભાઈ ત્રીલોવનદાસ હરજીવનદાસ લખતર
- ૨૫૧ શાહ તલકશી હીરાચંદના સ્મરણાર્થે
હા ભાઈ અમૃતલાલ તલકશી લખતર
- ૨૫૧ શાહ ચુનીલાલ માણેકચંદ લખતર
- ૨૫૧ શેઠ વૃજલાલ સુખલાલ વઢવાણ શહેર
- ૨૫૧ શેઠ કાતિલાલ નાગરદાસ વઢવાણ શહેર
- ૨૫૧ વોરા ચન્નભુજ મગનલાલ વઢવાણ શહેર
- ૨૫૧ સઘવી શીવલાલ હીમજીભાઈ વઢવાણ શહેર
- ૨૫૧ શાહ દેવશીભાઈ દેવકરજી વઢવાણ શહેર
- ૨૫૧ શાહ જહવજી ઓઘડભાઈ સદાહવાળાના સ્મરણાર્થે
હા ભાઈ શાતિલાલ જહવજી લખતર
- ૨૫૧ ભાવસાર ચુનીલાલ પ્રેમચંદભાઈ મુરેન્દ્રનગર
- ૨૫૧ શ્રી વર્ધમાન શ્રવેતામ્બર સ્થા શ્રાવક સઘ
હા શેઠ કેસરીમલજી અનોપચંદજી ગુગળીયા મલાડ (મુબઈ)
- ૨૫૧ દોશી ઠાકરશી ગુલાબચંદના સ્મરણાર્થે તેમના
ધર્મપત્ની સમરતબેન વૃજલાલ તરફથી
હા જયતીલાલ ઠાકરશી લખતર
- ૩૦૦ શાહ અમુલખભાઈ ઉર્ફે બચુભાઈ નાગરદાસના ધર્મપત્નિ
અ. સૌ બેન લીલાવતીના વરસીતપના પારણાની
ખુશાલીમા હા ભાઈ કાતીલાલ નાગરદાસ વીરમગામ
- ૨૫૧ કામદાર કેશવલાલ હીમતરામ પ્રોફેસરસાહેબ (ગોડલવાળા) વડોદરા
- ૨૫૧ શેઠ ડુંગરશી હસરાજ વીસરીયા મુબઈ
- ૨૫૧ શેઠ ધનરાજ ગુણચંદ મુથા લોનાવાલા (પુના)
- ૨૫૧ મહેતા નાનાલાલ છગનલાલના ધર્મપત્ની
સ્વ ચચળબેન તથા પુરીબેનના સ્મરણાર્થે
હા ભાઈ મનહરલાલ નાનાલાલ મુ. વણી (વીરમગામ)

૨૫૧	શાહ રતનશી મોલુચીની કુ	મુળર્થ
૨૫૧	ભાવસાર લેખીલાલ જમનાદાસ	જમનાદાસ
૨૫૧	શાહ ચીવલ માણેકભાઈ	વેરાજ (કમ્પ)
૨૫૧	શાહ કુણાલ પ્રહાભચંદ	સજેલી (૫૫મકાલ)
૨૫૧	શ્રી સ્વાજેન સદા હા. શાહ પ્રેમચંદ	હલીચંદ સજેલી (૫૫મકાલ)
૨૫૧	શાહ કુવરલ ગુલાબચંદ	લીમડી (૫૫મકાલ)
૨૫૧	શાહ પનાચંદ સદાભાઈ હા. ત્રણકલાલ રતીલાલ	મુળર્થ
૩૦૧	શાહ અમુલખભાઈ મુળાલ હા. પ્રહાભચંદ અમુલખ	હારીજ
૩૦૧	સ્વ. બેન ચંદ્રહાતાના સ્મરણાર્થે હા. અમુલખ મુળાલભાઈ	હારીજ
૨૫૧	સ્વ. પદમશી સુસ્વદના સ્મરણાર્થે હા. ચીવલાલ પદમશી મેસાણા	
૨૫૧	શાહ બેકળદાસ શામલ ઉદાણી	વેરાજ કમ્પ
૨૫૧	શ્રીમતી જી. સૌ. બેન ચંદ્રાવતી તે શ્રીમાન બહોતલાલ	
	નાકરના ખર્ચપત્ર હા. શેઠ રવુલવલાલ	હીન્દ
૨૫૧	સ્વ. શેઠ વીરબહાઈ બેચીંગ લખતરવાળાના સ્મરણાર્થે	
	હા. કેશવલાલ વીરચંદ શેઠ	મુળર્થ
૨૫૧	જાજેઠ ધારીરામ પ્રહાભચંદ	લીમડી (૫૫મકાલ)
૩૫૧	મહેતા પ્રમુદાસ મુળાલભાઈ	વેરાજ
૩૦૧	શ્રીમતી હીરબેન નમુભાઈના વરચીતાપ નીમીત્તે	
	હા. નમુભાઈ નાનચંદ શાહ	વીરમગામ
૨૫૧	સ્વ. મણીચાર પરસોત્તમ મુદરલના સ્મરણાર્થે	
	હા. સાકરચંદ પરસોત્તમ	વીરમગામ
૨૫૧	શેઠ મણીલાલ ચીવલાલ	વીરમગામ
૨૫૧	શાહ ત્રીલોચનદાસ બજવાનલ પાનેલીવાળા	જમનાદાસ
૨૫૧	શાહ નરસલાલ ચંદુલાલ	જમનાદાસ
૩૦૧	શાહ ત્રીલોચનદાસ જાગળલાલ	વેરાજ
૨૫૧	શાહ નરસીદાસ ત્રીલોચનદાસ	જમનાદાસ
૩૦૧	બીપીનચંદ તથા ઉમાકાંત મુનીલાલ બેપાણી	
	હા. બેપાણી મુનીલાલ માણેકચંદ	સવુપુર

- ૨૫૧ શ્રી શાહપુર, દરીયાપુરી આઠકોટી સ્થા. જૈન ઉપાશ્રય
હા. વહીવટ કરનાર શેઠ ઈશ્વરદાસ પુરુષોત્તમદાસ અમદાવાદ
- ૨૫૧ શ્રી છીપાપોળ દરીયાપુરી આઠકોટી સ્થા. જૈન સઘ
હા. શેઠ ચંદુલાલ અમૃતલાલ અમદાવાદ
- ૨૭૭ શ્રી સ્થાનકવાસી છકોટી જૈન સઘ
હા. મહેતા ચુનીલાલ વેલણ માડવી (કચ્છ)
- ૨૫૧ વકીલ મણીલાલ કેશવલાલ શાહ વડોદરા
- ૨૫૧ શાહ ચીનુભાઈ ખાલાભાઈ C/o શાહ ખાલાભાઈ મહાસુખરામ
અમદાવાદ
- ૨૫૧ શાહ ભાઈલાલ ઉત્તમશી અમદાવાદ
- ૨૫૧ સ્વ કેશવલાલ મુળજીભાઈના ધર્મપત્ની, સ્વ, અમૃતખાઈના
સ્મરણાર્થે હા. ભાઈલાલ કેશવલાલ થાનગઢવાળા સુરેન્દ્રનગર
- ૨૫૧ પુરીબેન ચીમનલાલ કલ્યાણજી સઘવી લીમડીવાળાના સ્મરણાર્થે
હા. વાડીલાલ મોહનલાલ કોઠારી સાણંદ
- ૨૫૧ પારેખ નેમચંદ મોતીચંદ મુળીવાળાના સ્મરણાર્થે
હા. ભીખાલાલ નેમચંદ સાણંદ
- ૨૫૧ સઘવી નારણદાસ ધરમશીના સ્મરણાર્થે
હા. જયતીલાલ નારણદાસ સાણંદ
- ૨૫૧ શા પ્રવિણચંદ્ર નરસીદાસ સાણંદવાળા બોડેલી (ગુજરાત)
- ૨૫૧ માસ્તર જેઠાલાલ મોનજીભાઈ હા. મહેતા
અમૃતલાલ જેઠાલાલ સીવીલઇન્જીનીયર સાહેબ લાખેરી (રાજસ્થાન)
- ૨૫૧ શ્રી સુખલાલ ડી. શેઠ
હા. ડા. કુ. સરસ્વતી ખેડેર શેઠ અમદાવાદ
- ૨૫૧ શ્રી સૌરાષ્ટ્ર સ્થા જૈન સઘ
હા. શાહ કાતીલાલ જીવનલાલ અમદાવાદ
- ૨૫૧ સ્વ શેઠ કાળુલાલજી લોઢાના સ્મરણાર્થે
હા. શેઠ દોલતસિંહજી લોઢા ઉદેપુર
- ૨૫૧ સ્વ મહેતા કુવરજી નાથાભાઈના સ્મરણાર્થે
હા. તેમના ધર્મપત્તિ, કુવરખાઈ હરખચંદ તરફથી
(માનકુવા સ્થા જૈન સઘને માટે) માનકુવા (કચ્છ)

૧૫૧	રોમી મુનીલાલ કુલચંદ મોરળીવાળા	મુ. ચાલખની (બાળ)
૨૦૧	ચાક હીરાચંદ છગનલાલ હા. ચાક પીમનલાલ હીરાચંદ	સાવુદ
૨૫૧	ચેક મોહનલાલ જેઠાભાઈના સમરજીભે	
	હા. ચેક જીત્તાશમ મોહનલાલ	કલોલ
૨૫૧	ચાક સમજીકલાલ કાળીદાસ તથા અ. સો. કાંતાબેન	
	સમજીકલાલ (માઝાવાળા)	મુબઈ
૨૫૧	ચેકટર મથાલંદ મગનલાલ હા. ચે. રતનચંદ મથાલંદ	કલોલ
૨૫૧	ચ. ચાક નાથલાલ ઉમેશચંદના સમરજીભે	
	હા. ચાક સ્વીલાલ નાથલાલ	કલોલ
૨૫૧	શ્રી રથા. હરોવાપુરી લેન સ. ચા. સાવસાર	
	હા. મોહનદાસ હમિરભાઈ	કડી
૨૫૧	ચાક મણીલાલ વલ્લભચંદના સમરજીભે	
	હા. મારફતીયા ચંદુલાલ મણીલાલ	કલોલ
૨૫૧	અ. સો. જામલેન હ. ચેક હજરતજી લાલચંદ રોશી	સાવુદ
૨૫૧	પરેલ મહામુખલાલ યોગાભાઈ	સાવુદ
૨૫૧	ચાક સાકરચંદ કાનજીભાઈ	સાવુદ
૨૫૧	ચાક હીમવલાલ હરજીવનદાસ	મુબઈ
૨૫૧	ચાક હોતેન્દ્રકુમાર વાઘીલાલ ખાલેકચંદ	
	(રાજસીતાપુરવાળા)	સાબરમતી
૨૫૧	અ. સો. સમસ્તજેન પ્રેમચંદ	
	C/o પ્રેમચંદ ખાલેકચંદ (રાજસીતાપુરવાળા)	સાબરમતી
૨૫૧	ચા. કાંતિલાલ ત્રીલોચનદાસ	અમદાવાદ
૨૫૧	ચ. ચેક ઉજ્જમશી નાનજીચંદના સમરજીભે	
	તેમના પુત્રો તરફથી હા. ચેક મુનીલાલ નાનજી	વીરમગામ
૨૫૧	ચ. ચાક મણીલાલ લક્ષ્મીચંદના સમરજીભે	
	તેમના પુત્રો તરફથી હા. ખીમજીદભાઈ	વીરમગામ
૨૫૧	ચ. ચેક હરીલાલ પ્રમુદાસના સમરજીભે	
	હા. ચેક અનુભાઈ હરીલાલ	વીરમગામ
૨૫૧	સમવી જેવદભાઈ નારણદાસ	વીરમગામ

૫૧	સ્વ. શાહ વેલશીભાઈ સાકરચંદના સ્મરણાર્થે	
	હા. ચીમનલાલ વેલશી કાગળવાળા	વીરમગામ
૫૧	શાહ પોચાલાલ પીતાળરદાસ	અમદાવાદ
૫૧	પારેખ મણીલાલ ટોકરથી લાતીવાળા તરફથી	
	મોટીબેનના સ્મરણાર્થે	વીરમગામ
૫૧	શાહ નારણદાસ નાનજીભાઈના સુપત્ર વાડીભાઈના ધર્મપત્ની	
	અ સૌ નારજીબેનના વરસીતપ નિમિત્તે હા. શાતીભાઈ	વીરમગામ
૫૧	શાહ પોપટલાલ મોહનલાલ	અમદાવાદ
૫૦	શેઠ ગ્રેમચંદ સાકરચંદ	અમદાવાદ
૫૧	લાલ પુરણચંદ જૈન (સેન્ટ્રલબેંકવાળા)	ડીલ્હી
૫૧	સ્વ. છબીલદાસ ગોકળદાસના સ્મરણાર્થે તેમના	
	ધર્મપત્નિ કમળાબેન તરફથી હા. મજીલાકુમારી	વીરમગામ
૫૧	શાહ રતીલાલ વાડીલાલ	અમદાવાદ
૫૧	શેઠ લાલભાઈ મગળદાસ	અમદાવાદ
૫૧	અ સૌ. કમળાબેન તે કામદાર ગોરધનદાસ મગનલાલના	
	ધર્મપત્નિ (વઢવાણવાળા)	રંજુન
૫૧	વોરા ડોસાભાઈ લાલચંદ સ્થા જૈન સઘ	
	હા. વોરા નાનચંદ શીવલાલ	વઢવાણ શહેર
૫૧	વોરા ધનજીભાઈ લાલચંદ સ્થા જૈન સંઘ	
	હા. વોરા પાનાચંદ ગોખરદાસ	વઢવાણ શહેર
૫૧	સ્વ. અમૃતલાલ વર્ધમાનના સ્મરણાર્થે	
	હા. કહાનજીભાઈ અમૃતલાલ દેશાઈ	અમદાવાદ
૫૧	શ્રી વીરમગામ સ્થા જૈન શ્રાવિકા સઘ	વીરમગામ
૫૧	સ્વ ત્રિભોવનદાસ દેવચંદ તથા સ્વ. અ સૌ.	
	ચચળબેનના સ્મરણાર્થે હા. ડોકટર હિંમતલાલ સુખલાલ	વીરમગામ
૫૧	શાહ સુલચંદ કાનજીભાઈ તરફથી	
	હા. શાહ નાગરદાસ ઓઘડભાઈ	વીરમગામ
૫૧	શેઠ મોહનલાલ પીતાળરદાસ હા. ભાઈ કેશવલાલ	
	તથા મનસુખલાલભાઈ	વીરમગામ

- ૨૫૧ સાદ હીરાચદણ વનેચદણ કટારીઆ હુલ્લી (ધારવાક)
- ૩૦૧ ૨૫. જટારા કર દેવણ દોસીઆ રમરણુમે
ક. દોસી રણુભિદદાસ (ભાણુભાઈ) જટારા કર ટ કારાવાળા મુળઈ
- ૨૫૧ ૨૫. શેઠ વણુરસી ત્રીલોવનદાસ બેઠાના રમરણુમે
ક. જજલવન વણુરસી સરસઈવાળા મલાક
- ૨૫૧ ૨૫. પિતામી કનણ મુળણના રમરણુમે તથા માતુમી
દિવાળીભાઈના સોળ ઉપવાસના પારણા પ્રસંગે
ક. દોસી જજલીલાલ કનણ કાળાવાળા મલાક
- ૨૫૧ ૨૫. જજમેશ ત્રીલોવનદાસ મજપાલ વીછીઆવાળાના
રમરણુમે ક. જજમેશ હરજોવીદાસ ત્રીલોવનદાસ મુળઈ
- ૨૫૦ શેઠ ખુશાલભાઈ જેઝારભાઈ મુળઈ
- ૨૫૧ સાદ પ્રેમણ માલમી ઝમર મલાક
- ૨૦૧ ૨૫. પિતામી સમચી વેલણના રમરણુમે
ક. સાદ કમણ સમચી મુળઈ
- ૩૦૧ સાદ વેલણ લેલી તમાઈ કાસસવાળા
(લેમના કમ પત્નિ સ્વા નાનભાઈના રમરણુમે) મલાક
- ૨૫૧ ૨૫. પિતામી ચતુભાઈ મિનાભાઈના રમરણુમે
ક. સાદ કાનણભાઈ ચતુભાઈ કપલ કુદાળાવાળા મુળઈ
- ૨૫૧ શેઠ તળકલાલ કસ્તુરચંદ (ભીમચીવાળા તરફથી
અજસમરણ ચાસબદારને લેટ) માતુ આ
- ૩ ૧ ૨૫. પિતામી ભીમચી કેરચી તથા માતુમી પાલાભાઈના
રમરણુમે ક. સાદ ઉમરચી ભીમચી કપલચીવાળા મલાક
- ૨૫૧ મેસર્સ સખાણી દાનપીઠ કપની
ક. શેઠ માણેકલાલ વાલીલાલ મુળઈ
- ૨૫૧ સાદ ન્યાયચંદ કરખચંદ શુદેન્દ્રનમર
- ૨૫૧ શેઠ મુનિલાલ નરસોરામ વેકરોવાળા મુળઈ
- ૨૫૧ ૨૫. માતુમી લવીઆઈના રમરણુમે
ક. સાદ ચામણ ચીવણ કપલકુદાળાવાળા ગેરેનાં
- ૨૫૧ સાદ વરબ નભાઈ ચીવણ મલાક
- ૨૫૧ ૨૫. માતુમી લોકભાઈના રમરણુમે
ક. દેશાઈ મજલાલ કાળીદાસ બનસરાખાવાણી

૨૫૧	સ્વ. શાહ વેલશીભાઈ સાકરચંદના સ્મરણાર્થે હા ચીમનલાલ વેલશી કત્રાજવાળા	વીરમગામ
૨૫૧	શાહ પોચાલાલ પીતાબરદાસ	અમદાવાદ
૨૫૧	પારેખ મણીલાલ ટોકરથી લાતીવાળા તરફથી મોટીબેનના સ્મરણાર્થે	વીરમગામ
૨૫૧	શાહ નારણદાસ નાનજીભાઈના સુપત્ર વાડીભાઈના ધર્મપત્ની અ સૌ નારંગીબેનના વરસીતપ નિમિત્તે હા. શાતીભાઈ	વીરમગામ
૨૫૧	શાહ પોપટલાલ મોહનલાલ	અમદાવાદ
૨૫૦	શેઠ ગ્રેમચંદ સાકરચંદ	અમદાવાદ
૩૫૧	લાલ પુરણચંદજી જૈન (સેન્ટ્રલબે કવાળા)	ગીલ્ડી
૨૫૧	સ્વ. છબીલદાસ ગોકળદાસના સ્મરણાર્થે તેમના ધર્મપત્નિ કમળાબેન તરફથી હા મળુલાકુમારી	વીરમગામ
૨૫૧	શાહ રતીલાલ વાડીલાલ	અમદાવાદ
૨૫૧	શેઠ લાલભાઈ મગળદાસ	અમદાવાદ
૨૫૧	અ સૌ. કમળાબેન તે કામદાર ગોરધનદાસ મગનલાલના ધર્મપત્નિ (વઢવાણવાળા)	રંજુન
૨૫૧	વોરા ડોસાભાઈ લાલચંદ સ્થા. જૈન સંઘ હા વોરા નાનચંદ શીવલાલ	વઢવાણ શહેર
૨૫૧	વોરા ધનજીભાઈ લાલચંદ સ્થા. જૈન સંઘ હા. વોરા પાનાચંદ ગોખરદાસ	વઢવાણ શહેર
૨૫૧	સ્વ. અમૃતલાલ વર્ધમાનના સ્મરણાર્થે હા કહાનજીભાઈ અમૃતલાલ દેશાઈ	અમદાવાદ
૨૫૧	શ્રી વીરમગામ સ્થા જૈન શ્રાવિકા સંઘ	વીરમગામ
૨૫૧	સ્વ ત્રિભોવનદાસ દેવચંદ તથા સ્વ અ. સૌ ચચળબેનના સ્મરણાર્થે હા ડોકટર હિ મતલાલ સુખલાલ	વીરમગામ
૨૫૧	શાહ મુલચંદ કાનજીભાઈ તરફથી હા. શાહ નાગરદાસ ઝોઘડભાઈ	વીરમગામ
૨૫૧	શેઠ મોહનલાલ પીતાબરદાસ હા. ભાઈ કેશવલાલ તથા મનસુખલાલભાઈ	વીરમગામ

- ૨૫૧ શાક હીરાચક્ર વનોચક્ર કટારીના હુબલી (ધારવાક)
- ૨૦૧ સ્વ. જટાકર દેવજી દોશીના સ્મરણથી
કા. દોશી રણભટ્ટાચ (બાબુભાઈ) જટાકર ટકારાવાળા સુભઈ
- ૨૫૧ સ્વ. શેઠ વલ્લભચી ત્રિભોવનદાસ ગ્રામના સ્મરણથી
કા. જગજીવન વણ્ણવસી સુવસર્ધવાળા મહાક
- ૨૫૧ સ્વ. પિતાશી કનજી સુજીના સ્મરણથી તથા માતૃશી
દિવાળીબાઈના સોજ ઉપવાસના ચારણ પ્રસંગે
કા. દોશી જયતીલાલ કાનજી કાગાવડવાળા મહાક
- ૨૫૧ સ્વ. જગજીવન ત્રિભોવનદાસ મજબાલ વીહીબાવાળાના
સ્મરણથી કા. જગજીવન હરબોલીકદાસ ત્રિભોવનદાસ સુભઈ
- ૨૫૦ શેઠ ખુશાલભાઈ ખેઝારભાઈ સુભઈ
- ૨૫૧ શાક પ્રેમજી માલગી જગર મહાક
- ૨૦૧ સ્વ. પિતાશી ચામચી વેલજીના સ્મરણથી
કા. શાક કામજી ચામચી સુભઈ
- ૩૦૧ શાક વેલજી બેચી ગભાઈ કમલસવાળા
(વેમના કામીપતિ સ્વા નાનભાઈના સ્મરણથી) મહાક
- ૨૫૧ સ્વ. પિતાશી પતુભાઈ મેનાભાઈના સ્મરણથી
કા. શાક કાનજીભાઈ પતુભાઈ કમલ સુભાવાળા સુભઈ
- ૨૫૧ શેઠ વલ્લભલાલ કચ્છરજી (લીમડીવાળા વરકી
જગજીવનજી સાચાકારને લેઈ) માદુગા
- ૩૧ સ્વ. પિતાશી ભીમચી કેરચી તથા માતૃશી પાલાબાઈના
સ્મરણથી કા. શાક ભીમચી ભીમચી કમલચીવાળા મહાક
- ૨૫૧ મેસર કમલચી ડાન્ડપોર્ટ કચી
કા. શેઠ માલેકલાલ વાઘીલાલ સુભઈ
- ૨૫૧ શાક ન્યાયજી હરખજી રેન્ડનમર
- ૨૫૧ શેઠ સુનિલાલ નરસીરામ વેલરોળા સુભઈ
- ૨૫૧ સ્વ. માતૃશી જીવીબાઈના સ્મરણથી
કા. શાક ચામજી ચીવજી કમલસુભાવાળા વેરેચાંબ
- ૨૫૧ શાક વરજી ગભાઈ ચીવજી મહાક
- ૨૫૧ સ્વ. માતૃશી વલ્લભાઈના સ્મરણથી
કા. રેશાઈ મજલાલ કાળીદાસ જગજીવનવાળી

૨૫૧	શાહ શાન્તીલાલ માણેકચંદ,	અમદાવાદ
૩૦૧	શેઠ જ્વાનમલજી નેમીચંદજી હા ગાધી રીખચંદજી રાણાવાસ	
૨૫૧	શેઠ ગુલાબચંદ ભુદરભાઈ	ખારરોડ
૨૫૧	શાહ ખીમજી મુળજી પુળ	મલાડ
૨૫૧	સાવળા શામજી હીરજી	
	સદાનદી જન મુનિશ્રી છોટાલાલજી મહારાજના ઉપદેશથી	
	સુવર્ધ સ્થા જૈન સઘના જ્ઞાન બહારને ભેટ. સુવર્ધ (કચ્છ)	
૨૫૧	ઘેલાણી વલભજી નરભોરામ હા નરશીદાસ વલભજી ઘેલાણી મુબઈ	
૨૫૧	અ સૌ. સમતાએન શાતિલાલ	
	C/o શાતિલાલ ઉજ્જમશી શાહ	મલાડ
૨૫૧	તેજાણી કુબેરદાસ પાનાચંદ	મુબઈ
૨૫૧	કપાસી મોહનલાલ શીવલાલ	મુબઈ
૨૫૧	શ્રી દોડાગચ્છ સ્થા માગી જૈન પુસ્તકાલય	
	હા. મહેતા મણીલાલ ભાઈચંદ	પાલનપુર
૨૫૧	સ્વ પિતાશ્રી કેશવલાલ વછરાજ કોઠારીના સ્મરણાર્થે	
	હ. પૂ માતુશ્રી સુરજબેનનીવતી તનમુખલાલ કેશવલાલ	મલાડ
૨૫૧	દડીયા અમૃતલાલ મોતીચંદ	ઘાટકોપર
૨૫૧	અ સૌ. લાચ્છુજેન	
	હા શાહ રવજી શામજી	કાદેવલી
૨૫૧	શાહ શેરમલજી દેવીચંદજી જસવતગઢવાળા	
	હ. પૂનમચંદજી શેરમલજી બોલ્યા	મનોર (થાણા)
૨૫૧	શેઠ સરદારમલજી દેવીચંદજી કાવેડીયા	મુબઈ
૨૫૧	દોશી ચત્રભુજ સુદરજી	ઘાટકોપર
૨૫૧	દોશી ભુગલકીશોર ચત્રભુજ	ઘાટકોપર
૨૫૧	દોશી પ્રવીણચંદ્ર ચત્રભુજ	ઘાટકોપર
૨૫૧	મહેતા રતિલાલ ભાઈચંદ	મુબઈ
૨૫૦	સ્વ. શાહ ત્રિભોવનદાસ માનસીંગ દોદીવાળાના	
	સ્મરણાર્થે હ. શાહ હરખચંદ ત્રિભોવનદાસ	મુબઈ
૨૫૦	શાહ જેઠાલાલ ડામરશી ધાગધાવાળા,	
	હ વાડીલાલ જેઠાલાલ	મુબઈ
૨૫૧	શાહ ચંદલાલ કેશવલાલ	મુબઈ

૨૫૧	મોરી નાચાલાલ મહાદેવદાસ	અમદાવાદ
૨૫૧	શાહ મોહનલાલ ત્રીકમદાસ	અમદાવાદ
૨૫૧	સ્વ. શેઠ પ્રતાપમલ્લ સાખલાના સ્મરણાર્થે હા. પ્રભુલાલ હીરાલાલ સાખલા	ઉદેપુર
૨૫૧	શ્રી છોટી સ્ત્રી. જેન સબ હા. શાહ પોખાલાલ પીતામ્બરદાસ	અમદાવાદ
૨૫૧	દોશી વીરજી સુરજી હા. દોશી નાનજી ઉત્તમશી	વડવાણ શહેર
૨૫૧	સ્વ. વેરા મણીલાલ મનનલાલ હા. વેરા જમજી મનનલાલ	વડવાણ શહેર
૨૫૧	શાહ પોપટલાલ હંસરાજ સ્મરણાર્થે હા. શેઠ બાબુલાલ પાપ/લાલ	અમદાવાદ
૨૫૧	શાહ કુવરજી હંસરાજ	સુબર્ષ
૨૫૧	દેશાઈ અમૃતલાલ વર્ધમાન બાપોદરાવાળા હા. ભાઈલાલ અમૃતલાલ દેશાઈ	અમદાવાદ
૨૫૧	દેશાઈ અમૃતલાલ વર્ધમાન બાપોદરાવાળા હા. દલીપજી અમૃતલાલ દેશાઈ	સુબર્ષ
૨૫૧	શાહ સાકરજી મોહનલાલ	અમદાવાદ
૨૫૧	શાહ નવનીતલાલ અમુલખરાવ	અમદાવાદ
૨૫૧	શાહ મણીલાલ આશાસન	અમદાવાદ
૨૫૧	શેઠ ચીનુભાઈ સાકરજી	અમદાવાદ
૨૫૧	જી. સી. ચાખેન બેસલીયા હા. બેસલીયા કરીલાલ લાલજી	અમદાવાદ
૨૫૧	શ્રી વટામજી સ્ત્રી. જેન સબ હા. શ્રી ડહાભાઈ હજીભાઈ	વટામજી (પાલકા)
૨૫૧	કોઠારી ડાહ્યાજીભાઈ વેણીલાલ	જેતપુર
૨૫૧	શાહ વરજીવનદાસ ઉમેદજી	અમદાવાદ
૨૫૦	શ્રી સ્થાનકવાસી જેન સબ	સાવરમતી
૨૫૧	શેઠ અમરજી ઉત્તમલાલ બાનરેયા	વાઘદારા

૨૫૧	શાહ શાન્તીલાલ માણેકચંદ	અમદાવાદ
૩૦૧	શેઠ જવાનમલજી નેમીચંદજી હા. ગાધી રીખચંદજી	રાણાવાસ
૨૫૧	શેઠ ગુલાબચંદ ભુવરભાઈ	ખારરોડ
૨૫૧	શાહ ખીમજી મુળજી પુબ	મલાડ
૨૫૧	સાવળા શામજી હીરજી	
	સદાનદી જન મુનિશ્રી છોટાલાલજી મહારાજના ઉપદેશથી	
	સુવર્ધ સ્થા જૈન સઘના જ્ઞાન લડારને ભેટ સુવર્ધ (કચ્છ)	
૨૫૧	ઘેલાણી વલભજી નરભેરામ હા નરશીદાસ વલભજી ઘેલાણી મુબઈ	
૨૫૧	અ સૌ સમતાએન શાતિલાલ	
	C/o શાતિલાલ ઉજમશી શાહ	મલાડ
૨૫૧	તેજણી કુબેરદાસ પાનાચંદ	મુબઈ
૨૫૧	કપાસી મોહનલાલ શીવલાલ	મુબઈ
૨૫૧	શ્રી લોકાગચ્છ સ્થા માગી જૈન પુસ્તકાલય	
	હા મહેતા મણીલાલ ભાઈચંદ	પાલનપુર
૨૫૧	સ્વ ચિતાશ્રી કેશવલાલ વછરાજ કોઠારીના સ્મરણાર્થે	
	હ પૂ માતુશ્રી સુરજબેનનીવતી તનમુખલાલ કેશવલાલ	મલાડ
૨૫૧	દડીયા અમૃતલાલ મોતીચંદ	ઘાટકોપર
૨૫૧	અ સૌ લાચૂળેન	
	હા શાહ રવજી શામજી	કાદેવલી
૨૫૧	શાહ શેરમલજી દેવીચંદજી જસવતગદવાળા	
	હ પૂતમચંદજી શેરમલજી બોલ્યા	મનોર (થાણા)
૨૫૧	શેઠ સરદારમલજી દેવીચંદજી કાવેડીયા	મુબઈ
૨૫૧	દોશી ચત્રભુજ સુદરજી	ઘાટકોપર
૨૫૧	દોશી જુગલકીશોર ચત્રભુજ	ઘાટકોપર
૨૫૧	દોશી પ્રવીણચંદ્ર ચત્રભુજ	ઘાટકોપર
૨૫૧	મહેતા રતિલાલ ભાઈચંદ	મુબઈ
૨૫૦	સ્વ. શાહ ત્રિભોવનદાસ માનસીંગ દોઢીવાળાના	
	સ્મરણાર્થે હ. શાહ હરખચંદ ત્રિભોવનદાસ	મુબઈ
૨૫૦	શાહ જેઠાલાલ હામરશી ધાગધાવાળા,	
	હ વાડીલાલ જેઠાલાલ	મુબઈ
૨૫૧	શાહ ચંદલાલ કેશવલાલ	મુબઈ

- ૨૫૧ શાહ પ્રેમણ હીરણ નાથ મુળર્ધ
- ૩૦૧ સ્વ. પિતાશ્રી યામગણ કમ્યાવૃણ ગોડલવાળાના સ્મરણાર્થ
તેમના પુત્રો તરફથી હા. મજલાલ યામગણ મુળર્ધ
- ૨૫૧ શાહ ચંદુલાલ હરીલાલ
(સહસ્રબાર્ધના રૂ. ૧૫૧ મળીને) ખજાત
- ૨૫૨ શાહ ચાંતિલાલ મોહનલાલ પામડાવાળા અમદાવાદ
- ૩૦૧ પીતાશ્રી ભગવાનજી હીરાચંદ જસાણીના સ્મરણાર્થ
હા. લક્ષ્મીચંદભાઈ તથા કેશવલાલ ભગવાનજી મુળર્ધ
- ૨૫૧ સ્વ. પિતાશ્રી હનુમા / હીરાના સ્મરણાર્થ
જ. દેવશી હનુમાન કમ્પ જિલ્લાવાળા-મલાદ
- ૨૫૧ જ સૌ બેન સ્તનબાર્ધ નારેયા
હ. શાહ મુલાલ નવાલાલજી અમદાવાદ
- ૨૫૧ શાહ હરીલાલ જેઠલાલ ભાડલાવાળા અમદાવાદ
- ૨૫૧ શેઠ પેપટલાલ સમવજી રાઈડીવાળા
હ. માનસી ન પ્રેમચંદ રાઈડીવાળા બમસરાભાયાણી
- ૨૫૧ શેઠ ગાંધી કેશવજી (જ્ઞાનજી દાર ગાંધી) કમ્પ બેસાલ



કુલ મેમ્બરોની સંખ્યા ૪૧૦

- ૪ આલે મુરબીશીઓ ૨૭૭ પ્રથમ વર્ગના મેમ્બરો
- ૨૧ મુરબીશીઓ ૮૨ બીજા વર્ગના મેમ્બરો
- ૧૬ સહાયક મેમ્બરો ૪૧૦ કુલ મેમ્બરો

(બીજા વર્ગને સહતર બધા કરનાર્માં આવેલ છે)

શબ્દકોદ તા ૨-૧૧-૫૭

૨૫૨	ઘેલાણી પ્રભુદાસ ત્રિકમજી	મુંબઈ
૩૦૧	સ્વ. સઘવી મનસુખલાલ મોહનલાલના સ્મરણાર્થે હા. ધીરજલાલ મનસુખલાલ	પાલેજ
૩૦૦	મહેતા ગુલાબચંદ ગભીરમલ	ઘોલવડ (થાણા)
૨૫૧	શાહ ખીમચંદ મુળજીભાઈ	વલસાડ
૨૫૧	શાહ હરજીવનભાઈ કેશવજી	મુંબઈ
૨૫૧	શ્રી સ્થાનકવાસી જન સઘ હા. છોટુભાઈ અલોચંદ શાહ	સુરત
૨૫૧	શાહ મોહનલાલ પોપટલાલ પાનેલીવાળા	ઉમરગામરોડ
૨૫૧	શાહ રવજીભાઈ તથા ભાઈલાલની કુ.	કાંદિવલી
૨૫૧	શાહ રજનીકાન્ત કસ્તુરચંદ	અમદાવાદ
૨૫૧	સઘવી જીવણલાલ છગનલાલ (સ્થા. જૈન)	અમદાવાદ
૩૦૧	સ્વ માતુશ્રી માણેકભાઈના સ્મરણાર્થે હા. શાહ વલભદાસ નાનજી પોરબંદરવાળા	મુંબઈ
૨૫૧	શેઠ દેવરાજજી જીતમલજી પુનમીઆ સાદડીવાળા	મુંબઈ
૩૦૧	શાહ ચુનિલાલ નારણજી	આટકોટ
૨૫૧	એક સદ્ગ્રંથકર્થ હા શેઠ સુદરલાલ માણેકચંદ	મુંબઈ
૨૫૧	અ સૌ બહેન પાનબાઈ હા શેઠ પદમસી નરશીભાઈ	મલાડ
૨૫૧	શ્રી સરસપુર દરીઆપુરી આઠકોટી સ્થા. જૈન ઉપાશ્રય હા ભાવસાર ભોગીલાલ છગનલાલ	અમદાવાદ
૨૫૧	ભાવસાર ભોગીલાલ છગનલાલ	અમદાવાદ
૩૦૧	સ્વ પિનાશ્રી નાગશીભાઈ સેજપાલના સ્મરણાર્થે હા. શાહ રામજી નાગશી ગુદાળાવાળા	મલાડ
૨૫૧	શાહ રામજીભાઈ કરશનજી ધાનગઢવાળા	મુંબઈ
૨૫૧	શાહ ઠાકરશી કરશનજી	ધાનગઢ
૨૫૧	શાહ જેઠાલાલ ત્રીભોવનદાસ	ધાનગઢ
૨૫૧	શાહ ધારશી પાશવીર	ધાનગઢ
૨૫૧	શાહ નગીનદાસ કલ્યાણજી વેરાવળવાળા	મુંબઈ
૨૫૧	શેઠ શીવલાલ ગુલાબચંદ	મુંબઈ

- ૨૫૧ શાક પ્રેમણ હીરણ ગાથા મુબર્ક
- ૩૦૧ સ્વ. પિતામી શામળણ કસ્યાણુણ ગોડલવાળાના સ્મરણાર્થે
તેમના પુત્રો તરફથી હા. મજલાલ શામળણ મુબર્ક
- ૨૫૧ શાક ચાંદુલાલ હરીલાલ
(સકસભાઈના રૂા ૧૫૧ મળીને) ખભાલ
- ૨૫૨ શાક શાતિલાલ ગોકુનલાલ ખાગમવાળા અમદાવાદ
- ૩૦૧ પીતામી ભગવાનણ હીરાચંદ જસાણીના સ્મરણાર્થે
હા. લક્ષ્મીજીવભાઈ તથા કેસવલાલ ભગવાનણ મુબર્ક
- ૨૫૧ સ્વ. પિતામી હંસરાવ હીરાના સ્મરણાર્થે
હં. દેવશી હંસરાવ કચ્છ બિંદલાવાળા-મલાદ
- ૨૫૧ અ. સૌ બેન રતનભાઈ નારેયા
હં. શાક પુલાલ જાલાલણ અમદાવાદ
- ૨૫૧ શાક હંસીલાલ જેઠલાલ ભાડલાવાળા અમદાવાદ
- ૨૫૧ શેઠ પાપ/લાલ સમવણ તાઈડીવાળા
હં. માનસીજ પ્રેમચંદ, તાઈડીવાળા જમલરાજાવાણી
- ૨૫૧ શેઠ ગાગળ કેસવણ (જ્ઞાનભાઈ માટે) કચ્છબેરાબ



કુલ મેમ્બરોની સંખ્યા ૪૧૦

- ૪ આલે મુરબીમીઓ ૨૭૭ પ્રથમ વર્ગના મેમ્બરો
- ૨૧ મુરબીમીઓ ૮૨ બીજા વર્ગના મેમ્બરો
- ૨૬ સહાયક મેમ્બરો ૪૧૦ કુલ મેમ્બરો
- (બીજા વર્ગને ચલતર જામ કરવામાં આવેલ છે)

રાજકોટ તા. ૨-૧૧-૫૭

સે કડો સર્ટીફિકેટો ઉપરાંત હાલમાં મળેલા
કેટલાક તાબા અભિપ્રાયો

શાસ્ત્રો દ્વારા ના કાર્યને વેગ આપો

તત્રીસ્થાનેથી (જૈનજ્યોતિ) તા. ૧૫-૯-૫૭

પૂજ્ય શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ ઠાણા ૪ હાલમાં અમદાવાદ મુકામે સરસપુરના સ્થા જૈન ઉપાશ્રયમાં ખિરાજમાન છે તેઓશ્રી શાસ્ત્રોદ્ધારનું કાર્ય ખૂબ જ ખત અને ઉત્સાહથી વૃદ્ધવયે પણ કરી રહ્યા છે તેઓશ્રી વૃદ્ધ છે છતાં પણ આખો દિવસ શાસ્ત્રની ટીકાઓ લખી રહ્યા છે આજ સુધીમાં તેમણે લગભગ ૨૦ જેટલા શાસ્ત્રોની ટીકાઓ લખી નાખી છે અને બાકીના સુત્રોની ટીકા જેમ અને તેમ જલદી પૂર્ણ કરવી તેવા મનોરથ સેવી રહેલ છે સ્થા જૈન સમાજમાં શાસ્ત્રો ઉપર મસ્કૃત ટીકા લખવાનો આ પ્રથમ જ પ્રયાસ છે અને તે પ્રયાસ સંપૂર્ણ અને એવી અમે શાસનદેવ પ્રત્યે પ્રાર્થના કરીએ છીએ આજ સુધી ઘણા મુનિવરોએ શાસ્ત્રોનું કામ શરૂ કરેલ છે પણ કોઈએ પૂર્ણ કરેલ નથી પૂજ્યશ્રી અમુલખખંડીજી મહારાજે ખત્રીસે શાસ્ત્રો ઉપર હિંદી અનુવાદ કરેલ અને સંપૂર્ણ બનેલા, ત્યારબાદ આચાર્ય શ્રી આત્મારામજી મહારાજશ્રીએ હિંદી ટીકા કેટલાક શાસ્ત્રો ઉપર લખેલ પણ ઘણા શાસ્ત્રો બાકી રહી ગયા પૂજ્ય હસ્તિમલજી મહારાજે એક બે શાસ્ત્રો ઉપરની ટીકાઓના અનુવાદો કરેલ. પૂજ્ય શ્રી જવાહિરલાલ મહારાજશ્રીએ સૂયગડાગ સૂત્ર ટીકા સહિત હિન્દી અનુવાદ સાથે કરેલ શ્રી સૌભાગ્યમલજી મહારાજે આચારાગની હિંદી ટીકા લખેલ પણ સંપૂર્ણ શાસ્ત્રો ઉપર સસ્કૃત ટીકા હજી સુધી સ્થા જૈન સાધુઓ તરફથી થયેલ નથી જ્યારે પૂજ્યશ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજશ્રીએ ૨૦ શાસ્ત્રો ઉપર સસ્કૃત ટીકા તેનો હિંદી ગુજરાતી અનુવાદ કરાવેલ છે આથી હવે આશા બધાય છે કે તેઓશ્રી ખત્રીસે ખત્રીસ શાસ્ત્રો ઉપર સસ્કૃત ટીકા લખવામાં સફળ થશે અને શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિએ આજ સુધી ૧૦ થી ૧૨ શાસ્ત્રો છપાવી પણ દીધા છે અને હજી પણ તે શાસ્ત્રો વિશેષ જલદી છપાય ને માટે શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિ સંપૂર્ણ પ્રયત્ન કરી રહેલ છે તે ધન્યવાદને પાત્ર છે

જૈન શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિના રૂ. ૨૫૧૭ લરીને લાઇફ મેમ્બર થનારને શાસ્ત્રો તમામ શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિ તરફથી ભેટ મળે છે આ રીતે એક પથ અને દો કાળ બંને રીતે લાભ થાય તેમ છે રૂ. ૨૫૧ માં ૫૦૦ રૂપિયાની કિંમતમાં શાસ્ત્રો મળે એ પણ મોટો લાભ છે અને પ્રવચનની પ્રભાવના કરવાનો ધર્મ લાભ પણ મળે છે.

આ સાથે પૂજ્યશ્રી ધાસીલાલજી મહાસાગરના મુશિખ પ મુનિશ્રી કન્હેવા
લાલજી મહાસાગર મહાક મુકામે બાપુમાંસ જિતજે છે અને તેઓશ્રી શાસ્ત્રોના
મેન્બરો કરવા માટે અધ્યાત્મ પ્રયત્ન કરીને પ્રવચનની સેવા બજાવી રહ્યા છે અને
અત્યાર મુખીમાં મુખર્ષ તેમજ પરબોના હાજબત ૪૦ જેટલા બૃહસ્પતિ હાઈ
મેન્બર બની ગયા છે અને મુખર્ષમાં હાજબત ૩ • જેટલા મેન્બરો ધાસ તે
ધર્મિકવા સોચ છે શ્રીમત ગૃહસ્થો હજારો રૂપિયા પોતાના ઘર બર્મા તેમજ
શાસ્ત્રોના કામોમાં તેમજ વ્યવહારિક કામોમાં વાપરી રહ્યા છે તે અપા
શાસ્ત્રોદ્ધાર તેમ પવિત્ર કાર્યમાં રૂપિયા વાપરશે તે ખર્ચની સેવા કરી ગણાશે.
અને બહામ કુતમ આજમસાહિત્યની જોડ લાખોસી બની જશે. જેનું વાંચન
કરવાથી આત્માને શાંતિ મળશે અને શાસ્ત્રઆજ્ઞા પ્રમાણે વર્તવાથી જીવન સફળ થશે.



સેકડો સર્ટીફિકેટો ઉપરાંત હાલમાં મળેલા
કેટલાક તાબા અભિપ્રાયો

શાસ્ત્રોદ્ધારના કાર્યને વેગ આપો

તત્રીસ્થાનેથી (જૈનજ્યોતિ) તા. ૧૫-૬-૫૭

પૂજ્ય શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ ઠાણા ૪ હાલમાં અમદાવાદ મુકામે સરસપુરના સ્થા જૈન ઉપાશ્રયમાં ખિરાજમાન છે તેઓશ્રી શાસ્ત્રોદ્ધારનું કાર્ય ખૂબ જ ખત અને ઉત્સાહથી વૃદ્ધવયે પણ કરી રહ્યા છે તેઓશ્રી વૃદ્ધ છે છતાં પણ આખો દિવસ શાસ્ત્રની ટીકાઓ લખી રહ્યા છે આજ સુધીમાં તેમણે લગભગ ૨૦ જેટલા શાસ્ત્રોની ટીકાઓ લખી નાખી છે અને બાકીના સુત્રોની ટીકા જેમ બને તેમ જલદી પૂર્ણ કરવી તેવા મનોરથ સેવી રહેલ છે સ્થા જૈન સમાજમાં શાસ્ત્રો ઉપર સસ્કૃત ટીકા લખવાનો આ પ્રથમ જ પ્રયાસ છે અને તે પ્રયાસ સંપૂર્ણ બને એવી અમે શાસનદેવ પ્રત્યે પ્રાર્થના કરીએ છીએ આજ સુધી ઘણા મુનિવરોએ શાસ્ત્રોનું કામ શરૂ કરેલ છે પણ કોઈએ પૂર્ણ કરેલ નથી પૂજ્યશ્રી અમુલખજીજી મહારાજે બત્રીસે શાસ્ત્રો ઉપર હિંદી અનુવાદ કરેલ અને સંપૂર્ણ બનેલ, ત્યારબાદ આચાર્ય શ્રી આત્મારામજી મહારાજશ્રીએ હિંદી ટીકા કેટલાક શાસ્ત્રો ઉપર લખેલ પણ ઘણા શાસ્ત્રો બાકી રહી ગયા પૂજ્ય હસ્તિમલજી મહારાજે એક બે શાસ્ત્રો ઉપરની ટીકાઓના અનુવાદો કરેલ પૂજ્ય શ્રી જવાહિરલાલ મહારાજશ્રીએ સૂચકગાગ સૂત્ર ટીકા સહિત હિન્દી અનુવાદ સાથે કરેલ શ્રી સૌભાગ્યમલજી મહારાજે આચારાગની હિંદી ટીકા લખેલ પણ સંપૂર્ણ શાસ્ત્રો ઉપર સસ્કૃત ટીકા હજી સુધી સ્થા જૈન સાધુઓ તરફથી થયેલ નથી જ્યારે પૂજ્યશ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજશ્રીએ ૨૦ શાસ્ત્રો ઉપર સસ્કૃત ટીકા તેનો હિંદી ગુજરાતી અનુવાદ કગવેલ છે આથી હવે આશા બધાય છે કે તેઓશ્રી બત્રીસે બત્રીસ શાસ્ત્રો ઉપર સસ્કૃત ટીકા લખવામાં સફળ થશે અને શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિએ આજ સુધી ૧૦ થી ૧૨ શાસ્ત્રો છપાવી પણ દીધા છે અને હજી પણ તે શાસ્ત્રો વિશેષ જલદી છપાય ને માટે શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિ સંપૂર્ણ પ્રયત્ન કરી રહેલ છે તે ધન્યવાદને પાત્ર છે

જૈન શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિના રૂા ૨૫૧૭ ભરીને લાઇફ મેમ્બર થનારને શાસ્ત્રો તમામ શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિ તરફથી ભેટ મળે છે આ રીતે એક પથ અને દો કાજ બન્ને રીતે લાભ થાય તેમ છે રૂા ૨૫૧ માં ૫૦૦ રૂપિયાની કિંમતમાં શાસ્ત્રો મળે એ પણ મોટો લાભ છે અને પ્રવચનની પ્રભાવના કરવાનો ધર્મ લાભ પણ મળે છે.

શ્રી અખિલ ભારત શ્રેતામ્બર સ્થાનકવાસી જેન શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિનો ટૂંક પરિચય

સ્થાનકવાસી સમાજની આ જોડની જોડ સરસ છે કે જેણે જનનાર મુખીના તેર સૂત્રો છપાવાં જહાર પાઠી દીધા છે ત્રાવ સૂત્રા છપાયા છે અને બીજા કેટલાક છાપવા માટે તૈયાર થઈ ચૂક્યા છે

આ પ્રમાણે આ સરસાએ મહાન્ પ્રગતિ સાધી છે તેનો ટૂંક પરિચય આ પત્રિકામાં આપેલ છે તે વાંચી જઈ સર્વ સ્થા. જેન શાસ્ત્રોદ્ધારને આ સરસાને ચલાવ્યકિત મહત્ત કરી તેના કાર્યને હજુ વિશેષ વેગવાન બનાવવાની જરૂર છે

ખાલી ઘડા વાગે ઘણા જોન સ્થા. કેા ફરનલ જેમ ખોળા બહુગા કુઠનારી સરસાની કેઈ કિંમત નથી, ત્યારે નક્કર કામ કરનારી આ શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિને દરેક પ્રકારે ઉત્તેજન આપવાની દરેક સ્થાનકવાસી તેનની અનિવાર્ય ફરજ છે

જને આ સર્વ સૂત્રો તૈયાર કરનાર પૂજ્ય મુનિશ્રી ધાસીલાલજી મહા શાસ્ત્રો સ્થાનકવાસી સમાજ ઉપર ઘણા મહાન્ ઉપકાર છે વયોવૃધ્ધ હોવા છતાં તેઓશ્રી જે મહેનત લઈ સૂત્રો તૈયાર કરાવે છે તેણે કાન હજુ મુખી બીજા કેઈએ કમું નથી અને બીજા કેઈ કરી શક્યો કે નહિ તે પણ શકા થયું છે પૂજ્ય મુનિશ્રીના આ મહાન્ ઉપકારને કિંમિત બહલો સમાજે આ શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિને બની શકતી સહાય કરીને વાળવાનો છે સ્થાનકવાસી સમાજ જ્ઞાનની કદર કરવામાં પાછો હકે તેમ નથી એવી અમે આશા રાખીએ છીએ

“જેનસિદ્ધાંત પત્ર એપ્રિલ ૧૯૫૭

શતાવધાની મુનિશ્રી જ્ય તિલાલજી મહારાજશ્રીનો અમદાવાદનો પત્ર “સ્થાનકવાસી જૈન” તા. ૫-૯-૫૭ ના અકમાં છપાએલ છે જે નીચે મુજબ છે.

સૂત્રોના મૂળ પાઠમાં ફેરફાર હોઈ શકે ખરો ?

તા ૭-૮-૫૭ના રોજ અત્રે બિરાજતા શાસ્ત્રોદ્ધારક આચાર્ય મહારાજશ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ પાસે, મારા ઉપર આવેલ એક પત્ર લઈને હું ગયો હતો, તે સમયે મારે પૂ. મ સા સાથે જે વાતચીત થઈ તે સમાજને બાણ કરવા સાફ લખુ છું

‘શાસ્ત્રોનું કામ એક ગહન વસ્તુ છે અપ્રમાદી થઈ તેમાં અવિરત પ્રયત્નો કરવા જોઈએ સંપૂર્ણ શાસ્ત્રોનું જ્ઞાન તેમજ દરેક પ્રકારની ખાસ ભાષાઓનું જ્ઞાન હોય તોજ આગમોદ્ધારકનું કાર્ય સફળતાથી થાય છે આ પ્રકારનો પ્રયત્ન હાલ અમદાવાદ ખાતે સરસપુર જૈન સ્થાનકમાં બિરાજતા પૂજ્ય શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ કરી રહ્યા છે શાસ્ત્ર લેખનનું આ કાર્ય થઈ રહ્યું છે, તેમાં અનેક વ્યક્તિઓને અનેક પ્રકારની શકાઓ થાય છે તેમાં શાસ્ત્રોના મૂળ પાઠમાં ફેરફાર થાય છે? કરવામાં આવે છે? એવો પ્રશ્ન પણ કેટલાકને થાય છે અને તેવો પ્રશ્ન થાય ને સ્વાભાવિક છે, કેમકે અમુક મુનિરાજો તરફથી પ્રગટ થયેલ સૂત્રોના મૂળ પાઠમાં ફેરફાર થયેલા છે જેથી આ કાર્યમાં પણ સમાજને શકા થાય

પણ ખરી રીતે જોતા, અત્યારે જે શાસ્ત્રોદ્ધારનું કામ ચાલી રહ્યું છે તે વિષે સમાજને ખાતરી આપવામાં આવે છે કે, શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિ તરફથી અત્યાર સુધીમાં પ્રગટ થયેલા આગમોના મૂળ પાઠમાં જરાપણ ફેરફાર કરવામાં આવેલ નથી અને ભવિષ્યમાં જે સૂત્રો પ્રગટ થશે તેમાં ફેરફાર થશે નહિ તેની સમાજ નોંધ લ્યે

લી

શતાવધાની શ્રી જ્ય ત મુનિ-અમદાવાદ

શ્રી અખિલ ભારત શ્રેતામ્બર સ્થાનકવાસી જેન શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિનો ટુક પરિચય

સ્થાનકવાસી સમાજની આ જોકની જોક સંસ્થા છે કે જેણે અત્યાર સુધીમાં તેર સૂત્રો છપાવાં જાહેાર પાડી દીધાં । આત સૂત્રો છપાય । અને બીજા કેટલાક છાપવા માટે તૈયાર થઈ ચૂક્યા છે

આ પ્રમાણે આ સંસ્થાએ મહાન્ પ્રગતિ લાધી છે તેનો ટુક પરિચય આ પત્રિકામાં આપેલ છે તે વાચી જઈ સર્વે સ્થા જેન ભાઈબહેનોએ આ સંસ્થાને યથાશક્તિ મદદ કરી તેના કાર્યને હંજી વિશેષ વેગવાન બનાવવાની જરૂર છે

ખાલી થગ વાજે ઘણો જોમ સ્યા. કેા હરન્દ જેમ જોત। બહુજાં ટુકનારી સંસ્થાની કોઈ કિંમત નથી ત્યારે નક્કર કામ કરનારાં આ શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિને દરેક પ્રકારે ઉત્તેજન આપવાની દરેક સ્થાનકવાસી જેનની અનિવાર્ય ફરજ છે.

અને આ સર્વ સૂત્રો તૈયાર કરનાર પૂજ્ય યુનિશ્રી વાસીલાલજી મહા-શાસ્ત્રો સ્થાનકવાસી સમાજ ઉપર ઘણો મહાન ઉપકાર છે વધેાવધેા હોવા છતાં તેઓશ્રી જે મહેનત લઈ સૂત્રો તૈયાર કરાવે છે તેવું કામ હજી સુધી બીજા કોઈએ કર્યું નથી અને બીજી કોઈ કશે શક્યો કે નહિ તે પવ્વ સકા બહુ છે પૂજ્ય યુનિશ્રીના આ મહાન્ ઉપકારનો કિંચિત્ જરૂરો સમાજે આ શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિને બની શકતી સલામ કરીને વાગવાનો છે સ્થાનકવાસી સમાજ સ્થાનની કદર કરવામાં પાછો જડે તેમ નથી જોવી અમે આશા સચીએ છીએ.

“જેનસિદ્ધાન્ત પત્ર” એપ્રિલ ૧૯૫૭



શતાવધાની મુનિશ્રી જ્ય તિલાલજી મહારાજશ્રીનો અમદાવાદનો પત્ર “ સ્થાનકવાસી જૈન ” તા. ૫-૯-૫૭ ના અકમાં છપાયેલ છે જે નીચે મુજબ છે.

સૂત્રોના મૂળ પાઠમાં ફેરફાર હોઈ શકે ખરો ?

તા ૭-૮-૫૭ના રોજ અત્રે ખિરાજતા શાસ્ત્રોદ્ધારક આચાર્ય મહારાજશ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ પાસે, મારા ઉપર આવેલ એક પત્ર લઈને હું ગયો હતો, તે સમયે મારે પૂ. મ સા સાથે જે વાતચીત થઈ તે સમાજને જાણ કરવા સાડ લખુ છું

‘ શાસ્ત્રોનું કામ એક ગહન વસ્તુ છે અપ્રમાદી થઈ તેમાં અવિરત પ્રયત્નો કરવા જોઈએ સ પૂર્ણ શાસ્ત્રોનું જ્ઞાન તેમજ દરેક પ્રકારની ખાસ ભાષાઓનું જ્ઞાન હોય તોજ આગમોદ્ધારકનું કાર્ય સફળતાથી થાય છે આ પ્રકારનો પ્રયત્ન હાલ અમદાવાદ ખાતે સરસપુર જૈન સ્થાનકમાં ખિરાજતા પૂજ્ય શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ કરી રહ્યા છે શાસ્ત્ર લેખનનું આ કાર્ય થઈ રહ્યું છે, તેમાં અનેક વ્યક્તિઓને અનેક પ્રકારની શકાઓ થાય છે તેમાં શાસ્ત્રોના મૂળ પાઠમાં ફેરફાર થાય છે ? કરવામાં આવે છે ? એવો પ્રશ્ન પણ કેટલાકને થાય છે અને તેવો પ્રશ્ન થાય ને સ્વાભાવિક છે, કેમકે અમુક મુનિરાજો તરફથી પ્રગટ થયેલ સૂત્રોના મૂળ પાઠમાં ફેરફાર વ્યવેલા છે જેથી આ કાર્યમાં પણ સમાજને શકા થાય

પણ ખરી રીતે જોતા, અત્યારે જે શાસ્ત્રોદ્ધારનું કામ ચાલી રહ્યું છે તે વિષે સમાજને ખાત્રી આપવામાં આવે છે કે, શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિ તરફથી અત્યાગ્ર સુધીમાં પ્રગટ થયેલા આગમોના મૂળ પાઠમાં જરાપણ ફેરફાર કરવામાં આવેલ નથી અને ભવિષ્યમાં જે સૂત્રો પ્રગટ થશે તેમાં ફેરફાર થશે નહિ તેની સમાજ નોધ લે

લી

શતાવધાની શ્રી જ્ય ત મુનિ-અમદાવાદ

શ્રી અખિલ ભારત શ્વેતામ્બર સ્થાનકવાસી જૈન શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિનો દુક પરિચય

સ્થાનકવાસી સમાજની આ એકની એક સંસ્થા છે કે જેણે અત્યાર સુધીના તેર સૂત્રો છપાવ્યા બહાર પાડી દીધા છે. સાત સૂત્રો છપાયા છે અને બીજા કેટલાક છાપવા માટે તૈયાર થઈ ચૂક્યા છે.

આ પ્રમાણે આ સંસ્થાએ મહાન પ્રગતિ સાધી છે તેનો દુક પરિચય આ પત્રિકામાં આપેલ છે તે વાંચી જઈ સર્વ સ્થા. જૈન શાસ્ત્રોદ્ધારને આ સંસ્થાને યથાશક્તિ મદદ કરી તેના કાર્યને હજી વિશેષ વેગવાન બનાવવાની જરૂર છે.

ખાલી મગા વાગે મલો જૈન સ્થા. કેા ફરનત જેમ જોના બલુઆ કુકનારી સંસ્થાની કેઈ કિમત નયા, ત્યાજે નક્કર કામ કરનારાં આ શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિને દરેક પ્રકારે ઉત્તેજન આપવાની દરેક સ્થાનકવાસી જૈનની અનિવાર્ય ફરજ છે.

અને આ સર્વ સૂત્રો તૈયાર કરનાર પૂજ્ય મુનિશ્રી ધામીલાલજી મહા સજનો સ્થાનકવાસી સમાજ ઉપર મલો મહાન ઉપકાર છે. વર્ષોવુધ્ધ હોવા છતાં તેઓશ્રી જે મહેનત લઈ સૂત્રો તૈયાર કરાવે છે તેવું કામ હજી સુધી બીજા કેઈએ કર્યું નથી અને બીજી કેઈ કરી શકશે કે નહિ તે પણ યકા શય છે. પૂજ્ય મુનિશ્રીના આ મહાન ઉપકારનો કિંમત બદલો સમાજે આ શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિને બની શકતી સહાય કરીને વાળવાનો છે. સ્થાનકવાસી સમાજ જ્ઞાનની કદર કરવામાં પાછે ખડે તેમ નથી જોવી અમિ અશ્યા સખીએ છીએ.

જૈનવિહાર પત્ર" જોડાદોમ્બર ૧૯૫૭

શાસ્ત્રોની માહિતી

છપાયેલાં શાસ્ત્રોનાં નામ

- (૧) શ્રી ઉપાસક દશાગ સૂત્ર
 (૨) „ દશવૈકાલિક „ (ભાગ પહેલો અને બીજો)
 (૩) „ વિપાક „
 (૪) „ આચારાગ „ (ભાગ પહેલો અને બીજો)
 (૫) „ અન્તકૃત દશાગ „
 (૬) „ આવશ્યક „
 (૭) „ અનુતરોપપાતિક „
 (૮) „ દશાશ્રુત સ્કન્ધ
 (૯) થી (૧૩) શ્રી નિર્યાવલિકા,, (એકથી પાચ ભાગ)

ઉપાસક દશાગ અને દશવૈકાલિક ભાગ પહેલો, પહેલી આવૃત્તિ ખલાસ થતાં બીજી આવૃત્તિ પ્રસિદ્ધ કરવામા આવેલ છે.

તુરતમાં પ્રસિદ્ધ થનારાં શાસ્ત્રોનાં નામ

- ૧ આચારાગ સૂત્ર ભાગ ૩ જે
 (૧૪) ૨ ઉવવાઈ (ઓપપાતિક) સૂત્ર
 (૧૫) ૩ કલ્પ સૂત્ર
 ૪ આવશ્યક સૂત્ર (બીજી આવૃત્તિ)

ત્રેસમાં છાપવા આપેલાં બીજા સૂત્રોનાં નામ

- (૧૬) ૧ નદી સૂત્ર
 ૨ આચારાગ સૂત્ર ભાગ ૧ લો (બીજી આવૃત્તિ)
 ૩ વિપાક સૂત્ર (બીજી આવૃત્તિ)
 ૪ અન્તકૃત સૂત્ર (બીજી આવૃત્તિ)
 બીજી આવૃત્તિ છાપવા આપવાનાં સૂત્રોનાં નામ

- ૧ દશાશ્રુત સ્કન્ધ (બીજી આવૃત્તિ)
 ૨ અનુતરોપપાતિક (બીજી આવૃત્તિ)

લખેલાં તૈયાર સૂત્રોનાં નામ

- (૧૭) ૧ ઉત્તરાધ્યયન સૂત્ર (સ સ્કૃત-હિન્દી-ગુજરાતી તૈયાર)
 (૧૮) ૨ સાતા „ (સ સ્કૃત-હિન્દી તૈયાર સ શોધન તથા ગુજરાતી બાકી)

- (૧૬) ૩ સમવાર્ધાન સૂત્ર (સંસ્કૃત-હિન્દી તેવાર સ શોધન તથા ગુજરાતી બાકી)
 (૨૦) ૪ પ્રથમ બ્યાકરણ , (સંસ્કૃત-હિન્દી તેવાર સ શોધન બાહ્ય ગુજરાતી બાકી)
 (૨૧) ૫ અનુચોજકાર (સંસ્કૃત તેવાર હિન્દી અનુવાદ બાહ્ય ગુજરાતી બાકી)
 (૨૨) ૬ શલ્યપરિણી " (સંસ્કૃત તેવાર હિન્દી ગુજરાતી બાકી)
 (૨૩) ૭ સ્થાનાંશ " (સંસ્કૃત તેવાર હિન્દી ગુજરાતી બાકી)

ચાલુ કામ

- (૨૪) ૧ જાન્યુકીય પ્રગ્નિ સૂત્રની સંસ્કૃત ટીકા ચાલુ છે
 (૨૫) ૨ સુમત્રકામ સૂત્રની સંસ્કૃત ટીકા ચાલુ છે.

અધ્યાપના બાકી શાસ્ત્રોનાં નામ

- | | |
|------------------------|-------------------------|
| (૨૬) ૧ ભગવતી સૂત્ર | (૩૦) ૫ વદ પ્રગ્નિ સૂત્ર |
| (૨૭) ૨ છવાભિજમ " | (૩૧) ૬ અવકાર " |
| (૨૮) ૩ પ્રસાપના " | (૩૨) ૭ અલંકાર " |
| (૨૯) ૪ સુમત્રપ્રગ્નિ " | (૩૩) ૮ નીચીવ " |

અત્રીસ સૂત્રો તથા બેક કલ્પસૂત્ર મળી સૂત્રોની સંખ્યા ત્રેવીસ થયેલ છે. જે અનુવા માટે ઉપર ૧ થી ૩૩ ના આંક આપવામાં આવેલ છે.

નોંદ—જલ્દારે મેમ્બર બનારને તેવાર શાસ્ત્રો હાથમાં જે છોકરામાં છે તે તુરંત પ્રાકલ્પવામાં આવે છે અને પાછળથી બીજા તેવાર ક્ષેત્રે સ્થાનાંશ કલ્પમાં આવશે.

શાસ્ત્રોની માહિતી

છપાયેલાં શાસ્ત્રોના નામ

- (૧) શ્રી ઉપાનિષદ દશાગ સૂત્ર
 (૨) „ દશવૈકલિંગ „ (ભાગ પહેલો અને બીજો)
 (૩) „ વિપાક „
 (૪) „ આચારાગ „ (ભાગ પહેલો અને બીજો)
 (૫) „ અન્તકૃત દશાગ „
 (૬) „ આવશ્યક „
 (૭) „ અનુત્તરોપપાતિક „
 (૮) „ દશાશ્રુત સ્કન્ધ
 (૯) થી (૧૩) શ્રી નિર્યાવલિકા, „ (એકથી પાંચ ભાગ)

ઉપાનિષદ દશાગ અને દશવૈકલિંગ ભાગ પહેલો, પહેલી આવૃત્તિ ખલામ થતા બીજી આવૃત્તિ પ્રસિદ્ધ કરવામા આવેલ છે

તુરતમાં પ્રસિદ્ધ થનારાં શાસ્ત્રોનાં નામ

- ૧ આચારાગ સૂત્ર ભાગ ૩ જે
 (૧૪) ૨ ઉવવાઈ (ઓપપાતિક) સૂત્ર
 (૧૫) ૩ કલ્પ સૂત્ર
 ૪ આવશ્યક સૂત્ર (બીજી આવૃત્તિ)

ત્રેસમાં છાપવા આપેલાં બીજા સૂત્રોનાં નામ

- (૧૬) ૧ નદી સૂત્ર
 ૨ આચારાગ સૂત્ર ભાગ ૧ લો (બીજી આવૃત્તિ)
 ૩ વિપાક સૂત્ર (બીજી આવૃત્તિ)
 ૪ અન્તકૃત સૂત્ર (બીજી આવૃત્તિ)
 બીજી આવૃત્તિ છાપવા આપવાનાં સૂત્રોનાં નામ
 ૧ દશાશ્રુત સ્કન્ધ (બીજી આવૃત્તિ)
 ૨ અનુત્તરોપપાતિક (બીજી આવૃત્તિ)

લખેલાં તૈયાર સૂત્રોનાં નામ

- (૧૭) ૧ ઉત્તરાધ્યયન સૂત્ર (સ સ્કૃત-હિન્દી-ગુજરાતી તૈયાર)
 (૧૮) ૨ જ્ઞાતા „ (સ સ્કૃત-હિન્દી તૈયાર સ શોધન તથા ગુજરાતી બાકી)

શ્રી દશવૈકાલિક તથા ઉપાસક દશાંગ સૂત્રો

શુભરાતી ભાષામા અનુવાદ થયેલા પૂજ્ય શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ વિરચિત શ્રી ઉપરોક્ત જે સૂત્રો લૈન ધર્મ પાળતા દરેક ઘરમા હોવા જ નોઈએ તે વાચવાથી શ્રાવક ધર્મ અને શ્રમણ ધર્મના આચારનું જ્ઞાન પ્રાપ્ત થઈ શકે છે અને શ્રાવકો પોતાની નિરવધ અને એપણિય મેવા શ્રમણ પ્રત્યે બળવા શકે છે વર્તમાનકાળે શ્રાવકોમા તે જ્ઞાન નહિ હોવાને લીધે અધદ્વંદ્વે શ્રમણ વર્ગની વૈયાવચ્ચ તો કરી રહેલ છે પરંતુ ‘કલ્પ શુ અને અકલ્પ શુ’ એનું જ્ઞાન નહિ હોવાને લીધે પોતે સાવધ સેવા અર્પી પોતાના સ્વાર્થને ખાતર શ્રમણ વર્ગને પોતાને સહાયક થવામા ધમડી રહ્યા છે અને શ્રમણ વર્ગની પ્રાય કુમેવા કરી રહ્યા છે તેમાથી બચી લાભનું કારણ થાય અને શ્રમણને યથાતથ્ય સેવા અર્પી તેમને પણ જ્ઞાનદર્શન ચારિત્રની આરાધના કળવામા સહયક થઈ પોતાના જ્ઞાનદર્શન ચારિત્રની આરાધના કરી મુગતિ મેળવી શકે. શ્રમણની યથાતથ્ય સેવા કરવી તે અવશ્ય ગૃહસ્થની ફરજ છે

પૂજ્ય શ્રી ઘાસીલાલજી મ. શાસ્ત્રોધધારનું અનુવાદન ત્રણ ભાષામા રૂડી રીતે કરી રહ્યા છે અને રૂપીયા ૨૫૧૭ ભરી મેમ્બર થનારને રૂા ૪૦૦-૫૦૦ ની લગભગ કીમતના બત્રીસે આગમો ક્રી મળી શકે છે તો તે રૂા ૨૫૧૭ ભરી મેમ્બર થઈ બત્રીસે આગમો દરેક શ્રાવક ઘરે મેળવવા નોઈએ બત્રીસે શાસ્ત્રોના લગભગ ૪૮ પુસ્તકો મળશે તો તે લાભ પોતાની નિર્જરા માટે પુન્યાનુબધી પુન્ય માટે જરૂર મેળવે ઉપરોક્ત બને સૂત્રોની કીમત સમિતિ કઈક ઓછી રાખે તો હરકોઈ ગામમા શ્રીમત હોય તે સૂત્રો લાવી અરધી કીમતે, મફત અથવા પૂરી કીમતે લેનારની સ્થિતિ નોઈ દરેક ઘરમા વસાવી શકે

—એક ગૃહસ્થ

નોંધ—ઉપરની સુચનાને અમે આવાકારીએ છીએ આવા સૂત્રો દરેક ઘરમા વસાવવા યોગ્ય તેમજ દરેક શ્રાવકે વાચવા યોગ્ય છે. તત્રી—

“ રત્નજ્યોત ” પત્ર

તા ૧-૧૦-૫૭

